व्यवसाय संगठन और प्रबंध

(BUSINESS ORGANISATION)

लेखक

मेहरचंद शुक्ल

बी० ए०, बी० काम, (बिरमिंघम), बैरिस्टर एट-ला, वाइस प्रिन्सिपल और प्रोफेसर आफ कामर्स एण्ड ला, श्रीराम कालेज आफ कामर्स, दिल्ली, भूतपूर्व प्रोफेसर आफ कामर्स, एच० एल० कालेज आफ कामर्स अहमदाबाद एण्ड दा हेली कालेज आफ कामर्स, लाहौर, मर्केन्टाइल ला, कम्पनी ला, इण्डियन ला, कन्ट्रेक्ट आफ लाज के लेखक तथा कास्ट एकाउंट्स के सह-लेखक

भूमिका-लेखक

डा. वी. के. आर. वी. राव

एम० ए०, पी एच० डी०, डी० लिट०.

डायरेक्टर, दिल्ली स्कूल आफ इकनामिक्स तथा प्रोफेसर आफ इकनामिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय

एस० चांद एण्ड कम्पनी

दिल्ली - जलन्धर - लखनऊ

एस० चांद एंड कंपनी

आसफअली रोड नई दिल्ली
फव्वारा ,, दिल्ली
माई हीरा गेट ,, जलंधर
लालबाग ,, लखनऊ

मूल्य १२॥)

प्रकाशक गौरीशंकर शर्मा द्वारा एस० चांद एण्ड कम्पनी, दिल्ली
मुद्रक शानिकल प्रेस, मोरी गेट, दिल्ली।

अध्याय : : १

व्यवसाय संगठन की प्रकृति व अभिक्षेत्र

व्यवसाय का अर्थ व अभिक्षेत्र—व्यवसाय (अंग्रेजी का Business) एक लोचदार तथा पूर्णार्थक शब्द है जिसकी परिधि में वे सभी शृंखलाबद्ध प्रक्रियाएं आ जाती हैं जिनके द्वारा वांछनीय वस्तुओं को पृथ्वी के गर्भ से निकाला जाता है, उनको मनुष्य व मशीन के द्वारा स्थानान्तरित व स्थानान्तरित किया जाता है एवं एकत्रित किये जाने के बाद उन्हें उन व्यक्तियों के सुपुर्द किया जाता है जो उनके लिए पैसे देने को तैयार हैं।' वस्तुतः यह "उन मानव-क्रियाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है जो वस्तु क्रय-विक्रय के द्वारा धन-उत्पादन व धन-अधिकरण के लिए संचालित की जाती हैं।[1]" व्यवसाय शब्द के अन्तर्गत वाणिज्य व उद्योग दोनों आते हैं। दुनिया के कोने-कोने से सामान एकत्रित किये जाते हैं, अनन्य कोटि की औद्योगिक प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद वे सामान बनते हैं तथा वाणिज्य के द्वारा व्यावहारिक रूप ग्रहण करते हैं। उत्पादित माल को दुनिया के कोने-कोने में पहुंचाया जाता है और उनके आगे प्रस्तुत किया जाता है जिन्हें उनकी चाह है। व्यवसाय का उद्देश्य है भौतिक आवश्यकताओं तथा आध्यात्मिक उत्कण्ठाओं की पूर्ति करना। व्यवसाय का अनिवार्य उद्देश्य है उन उपकरणों की व्यवस्था करना जो शरीर को सुखपूर्ण बनावें। वे उपकरण हैं - खाने के लिए भोजन, पहनने के लिए वस्त्र, उपस्कर (फर्नीचर) तथा रसोई बनाने के बर्तन व आश्रय के लिए मकान—इसी प्रकार की वे वस्तुएं जो शारीरिक आराम तथा सुख से सम्बद्ध भौतिक सन्तुष्टि प्रदान करें। इसका अर्थ बदल जाता है जब एक किताब खरीदने की बात आती है। पुस्तक प्रकाशन एक व्यावसायिक साहस है, इस साहस का परिणाम होता है वे भौतिक वस्तुएं जो आलमारी में अपना स्थान ग्रहण करती हैं। फिर उनको पढ़ने से जो आनन्द प्राप्त होता है वह भौतिक आनन्द से परे की कोटि का आनंद है। आदमी केवल भोजन करने और कपड़े पहनने में जीवित नहीं रह सकता है, उसके पास एक आध्यात्मिक प्रकृति भी है जो कुछ अंशों में भोजन और वस्त्र की आवश्यकता की भांति इसकी वृत्तियों पर शासन करती है। व्यवसायी मनुष्य की इस प्रकृति को पहचानना है, फिर पुस्तकों, ग्रामोफोन तथा रेडियो का उत्पादन करता है।

व्यवसाय सेवाओं की व्यवस्था करता है और माल की भी। जब मनुष्य निनेमा जाता है या अपने जीवन के लिए बीमा करवाता है तो उसे अपने द्रव्य के बदले ठोस चीज नहीं मिलती, उसे केवल एक कागज का टुकड़ा ही मुयस्सर होता है। लेकिन

---

1 Haney—Business Organization and Combination page 3.

फिर भी, सिनमा गृह या बीमा कम्पनी व्यवसायिक फर्म हैं। वे जिन चीजों (का व्यवसाय) करते हैं उन्हें माल की कोटि में कतई नहीं रखा जा सकता, वे तो अवसर हैं—कुछ चीज को देखने और उसके आनन्द प्राप्त करने का अवसर, द्रव्य बचत तथा मृत्यु के बाद स्त्री तथा परिवार के लिए व्यवस्था कर जाने का अवसर। इस (प्रकार) की चीजों को हम प्राय सेवा कह सकते हैं, और बहुतेरे व्यवसाय ऐसी ही (अनेक) प्रकार की सेवाएं प्रदान करने के लिए किये जाते हैं। होटल आवास की व्यवस्था करते हैं, रेलगाडियां तथा वायुयान एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के साधन उपस्थित करते हैं। *जलपोत कम्पनियां छुट्टियों के लिए यात्रा-व्यवस्था के द्वारा स्वास्थ्य की* आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं।

व्यवसाय (Business) तथा पेशा (Profession) में अन्तर— स्वास्थ्य-सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्था केवल पोत कम्पनियां ही नहीं करती। डाक्टर, वैद्य तथा हकीमों जैसे लोग भी हैं, जिन्होंने मानव व्याधियों को अपने जीवन का कार्य बना लिया है तथा अपने-अपने तरीकों से जिन्होंने उन्हें रोकने की सभी ज्ञात विधियों का अध्ययन किया है तथा हो जाने पर उनके निदान का पता लगाया है। पोत कम्पनी की भांति डाक्टर, वैद्य या हकीम का उद्देश्य भी मानव आवश्यकता की पूर्ति करना है, ऐसा करने के लिए व अपनी सेवाएं अर्पित करने को तैयार रहते हैं और पोत कम्पनी की तरह बदले में भुगतान पाने के लिए भी। किन्तु वे व्यवसायी नहीं हैं, उनका कार्य पेशा कहलाता है, व्यवसाय नहीं। डाक्टर या वकील मानव-ज्ञान की एक अमुक शाखा में कुशल होता है, इसी प्रकार व्यवसायी अपने विशेष कार्य में कुशल होता है। लेकिन कुशल ज्ञान के प्रयोग में वे एक दूसरे से भिन्न हैं। डाक्टर या वकील का कार्य मूलत तथा तत्वत वैयक्तिक कोटि का है। वह अपने रोगी या मुवक्किल के सम्पर्क में आता है तथा रोगी की हालत या मुवक्किल के मुकदमा से सम्बद्ध समस्याओं से निबटने के लिए अपने कुशल ज्ञान का उपयोग करता है। कुछ क्षण के लिए वह अपने को पूर्ण रूप से उस रोगी या मुवक्किल की समस्या के निदान में निमग्न कर देता है। इस समय के लिए उसे रोगियों या मुवक्किलों की सामान्य समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। लेकिन व्यवसायी का कार्य ठीक इसके विपरीत है। किसी अमुक व्यक्ति की तकलीफों से उसे कोई ताल्लुक नहीं, उसे जनसमूह से निबटना है। मानव आवश्यकताओं से उसे तभी दिलचस्पी शुरू होती है जब वे विस्तृत रूप धारण कर चुकी होती हैं। जब मानव आवश्यकता व्यावहारिक व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश करती है तब यह व्यावसायिक प्रश्न हो जाती है ताकि इसके उत्तर के लिए कुछ साधन ढूंढ निकाले जाय।

लाभ आशय (Profit Motive) तथा सेवा (Service Motive) आशय— अत जब आवश्यकता, चाहे वह भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक, व्यक्ति विशेष की सीमा लांघ कर सामान्य रूप ग्रहण कर लेती है और मांग का रूप धारण कर लेती है तब ही वह व्यवसाय की परिधि में आती है। वैयक्तिक उद्यम के लिए यः-

संगठन का अर्थ—संगठन (Organisation) शब्द की अनेकानेक परिभाषाएं की गयी हैं तथा मान्य (Standard) परिभाषा देने का भी प्रयास किया गया है, परन्तु मुश्किल से ही कोई भी ऐसा प्रयत्न पूर्ण सफल हुआ हो और न सम्प्रति इन प्रयत्नों की सूचि में एक ऐसा प्रयास और जोड़ देना है। केवल दो परिभाषाएं दी जाती हैं वे सीधी और विवादरहित हैं। पहिली परिभाषा जी० ई० मिलवर्ड के द्वारा दी गयी है—"कृत्य तथा कर्मचारी समुदाय का मैत्रीपूर्ण अंतर-सम्बन्ध", और दूसरी परिभाषा और जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है हने महोदय के द्वारा दी गयी है—"सामान्य उद्देश्य या उद्देश्य-समूह की प्राप्ति के लिए विशिष्ट अवयवों का मैत्रीपूर्ण समायोजन संगठन है।' कहने का अर्थ है कि किसी चीज की उत्पत्ति इस अर्थ में होती है कि कतिपय तत्त्वों को एक विशेष ढंग से आबद्ध कर दिया जाता है। कौनसे तत्त्व चुने गये हैं और किस ढंग से वे सम्बद्ध कर दिये गये हैं—इससे संगठन के स्वरूप का निर्धारण होता है तथा निर्मित व्यवसाय के कतिपय तत्त्वों पर हम विचार करें तो ये हैं: मनुष्य, सामान, मशीन, भवन तथा मुद्रा। और जब तीन घटक (Factors) भूमि, श्रम तथा पूंजी चौथे घटक व्यावसायिक साहस के साथ साहसी-सुलभ योग्यता के द्वारा धन-उत्पादन या धन प्राप्ति के लिए मैत्रीपूर्ण रीति से संयुक्त कर दिये जाते हैं तब हमें व्यवसाय संगठन मिल जाता है। अतः व्यावसायिक इकाई भूमि, श्रम व पूंजी की प्रायः स्वतन्त्र मिलावट है जो साहसी-सुलभ योग्यता के द्वारा उत्पादन-सम्बन्धी उद्देश्य के लिए संगठित तथा संचालित की जाती है।' —(हैने)

प्रायः निम्नलिखित समस्याओं की चर्चा व्यावसायिक ढांचे में होती है:—(क) सम्पत्ति का स्वामित्व, (ख) पूर्ति भुगतान तथा अन्य साधनों से आय में हिस्सेदारी, (ग) जनसाधारण तथा राज्य से सम्बन्ध, (घ) निम्नलिखित के सम्बन्ध में व्यक्तियों के बीच पारस्परिक कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व (१) सामान की प्राप्ति, (२) वस्तु की निर्माण-विधि, (३) वस्तु की विक्रय विधि, (४) नियुक्ति अवधि। चूंकि उपक्रमी या व्यवसायी संगठन रीति तथा उसके संचालन में निर्णयात्मक रीति से अपना प्रभाव डालता है अतः हम इसकी सेवाओं की प्रकृति या अभिक्षेत्र को साफ-साफ समझ लेने की चेष्टा करनी चाहिए।

व्यवसायी या साहसी—व्यवसायी कहने से लोगों को प्रायः तोंदियल धनियों का बोध होता है जिसके पास असीम धन है तथा जिसका हृदय पाषाणवत् कठोर है और जिसके लालच का विस्तार इस विश्व में कम नहीं है और जो यह बता दे कि आपने अपनी प्रत्येक चीज कितने में खरीदी है तथा कहाँ आपको उससे सस्ती चीज मिल सकती है। ऐसा कहना निस्सन्देह व्यवसायी का मखौल उड़ाना है, लेकिन फिर भी यह आंशिक रूप में सत्य है। जनसाधारण की उपर्युक्त कल्पना के व्यवसायी से हमारी समय-समय पर मुलाकात होती रहती है। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि कोई भी व्यक्ति, जिसमें यह योग्यता हो कि वह उन चीजों की व्यवस्था करे जिसे लोग चाहते हों पर उसके पास नहीं हो, व्यवसायी है। आरम्भिक काल में वे लोग जिन्होंने दूसरों की आवश्यकताएं

की पूर्ति को अपना धंधा बना लिया तथा जिन्होंने जरूरतमन्द लोगों से भी ज्यादा उनकी जरूरतों का समझना शुरू कर दिया, व्यवसायी की कोटि में आ गये। आज भी ठीक यही बात है। कोई भी व्यक्ति जो माला व सेवाओं के उपभोक्ताओं की असंख्य चाहों की पूर्ति करने में लगा है, व्यवसायी है। कुछ व्यवसायी स्वयं या अन्य की सहायता से माला का उत्पादन करते हैं और कुछ उत्पादकों से खरीद कर विक्रेताओं के आगे माल प्रस्तुत करते हैं। पान-बीड़ी की दुकान का स्वामी जैसा व्यवसायी है वैसा ही व्यवसायी थी ज० आर० डी० टाटा है—अन्तर केवल परिमाण का है।

साहसी या व्यवसायी (Entrepreneur) वह मनुष्य या मनुष्य समूह है जो व्यावसायिक इकाइयों का संगठित तथा संचालित करता है। उद्योग की दृष्टि से कहा जाय तो साहसी या व्यवसायी भूमि, श्रम तथा पूंजी पर आधिपत्य होता है तथा निर्देश करता है और इन घटकों के उचित कर्त्तव्य के लिए उत्तरदायी होता है। वह व्यवसाय योजना का निर्माण करता है तथा उसकी कार्यान्विति पर ध्यान देता है इसलिए वह पूंजीपति कहलाता है। लेकिन ठीक कहा जाय तो केवल पूंजी का स्वामित्व ही किसी को साहसी नहीं बना देता। साहसी (Entrepreneur) मूलतः वह व्यक्ति है "जो प्रकृति-प्रदत्त अवसरों से लाभ उठाता है, ऐसा करने के लिए वह अपनी योग्यता तथा दूरदर्शिता के जरिये मानव ऊर्जा के प्रयोग को श्रम शक्ति तथा पूंजी-संयम के रूप में संचालित करता है। पूंजी का स्वामित्व तो इस उद्देश्य की पूर्ति का साधन मात्र है, पूंजी उसके हाथ में यंत्र के रूप में है"। स्वभावतः, इसका लाभ पूंजी के अनुपात के ही लगभग होगा।

स्वतन्त्र संगठन-कर्त्ता तथा निर्देशक के रूप में साहसी अपने नियुक्तों को भृति तथा जिन्होंने उसे पूंजी दी है उन्हें ब्याज देने की गारण्टी देता है और फलस्वरूप अपेक्षतः बड़ा जोखिम अपने माथे उठाता है। प्रत्येक व्यक्ति में इतनी क्षमता नहीं होती कि वह किसी इकाई का संगठन करे, इसका निर्देशन करे तथा जोखिम उठाये। हालांकि प्रत्येक व्यवसायी, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, लाभार्थ व्यवसाय करता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि सभी व्यवसायियों को बड़ी रकम का मुनाफा मिले या मुनाफा मिले ही। यदि व्यवसाय हमेशा लाभदायक ही होता और उसके साथ कोई जोखिम नहीं होता तब तो प्रत्येक आदमी व्यवसायी हो ही जाता। व्यवसाय चातुरी का खेल है जिसमें संयोग (Chance) बड़ी मात्रा में विद्यमान है। प्रत्येक खिलाड़ी सफलता की आशा नहीं कर सकता। इस खेल में जोखिम अधिक है और पारितोषिक भी। चूंकि आवश्यक योग्यता, की गई सेवा तथा उठाया गया जोखिम तीनों एक दूसरे से जनित हैं, अतः, उच्चतम कोटि की योग्यता के बल पर ही कोई अधिक सफल व्यवसायी हो सकता है।

वे गुण जो व्यवसायी का निर्माण करते हैं—प्रेसीडेन्ट स्टायरेट ने एक बार ऐसा कहा था कि कोई भी आदमी, जिसमें निष्कर्ष निकालने की क्षमता है, यदि व्यावसायिक अवस्थाओं का जरा भी अध्ययन करे तो उसे पता लग जायगा कि वैयक्तिक

योग्यता व्यवसाय-सचालन मे सबसे बडा घटक है। किसी भी व्यवसाय, चाहे छोटा हो या बडा, के शीर्षस्थ व्यक्ति की व्यावसायिक योग्यता वह घटक है, जो आश्चर्यजनक सफलता तथा नैराश्यपूर्ण विफलता के बीच की खाई का निर्धारण करता है। लाभपूर्ण व्यवसाय तथा सुसचालित सस्थाए प्राय उस व्यक्ति या व्यक्तिसमूह की प्रतिच्छवि है जिनमे योग्यता है। सगठित इकाई के प्रबन्ध या सचालन की कला की नीव व्यक्ति म सन्निहित होती है। आरम्भ करने, सचालन तथा नियत्रण करने के लिए योग्यता चाहिए और इससे भी बढकर सहकर्मियो की स्वामिभक्ति, एव प्रतिष्ठा को प्राप्त करने तथा इसे कायम रखने की क्षमता। व्यावसायिक विफलता प्राय दोषपूर्ण प्रबन्ध या (व्यवस्था) के कारण होती है या उसका कुछ कारण होता ही नही। व्यावसायिक विफलताओ के लिए प्राय जो कारण कहे जाते है वे है अपर्याप्त कार्यशील पूजी तथा अपर्याप्त बिक्री। ठीक उसी प्रकार जैसे सफलताओ के सूचक अच्छे लाभ तथा अच्छी आर्थिक हालत मानी जाती है। लेकिन ये तो ठीक उसी प्रबन्ध नीति का परिणाम मात्र है जिस प्रकार व्यक्ति की सफलता और विफलता वैयक्तिक प्रबन्ध योग्यता की सूचना देती है।

कोई भी सुव्यवस्थित व्यवसाय प्राय उस व्यक्ति तथा व्यक्तिसमूह की प्रतिच्छवि होता है जिसम नेतृत्व तथा सचालन-सम्बन्धी प्रकृत या प्राप्त गुण होते है। अत, सफलता प्राप्त करने के लिए व्यवसायी को अनिवार्यत सुसन्तुलित तथा प्रतिभावान होना चाहिए। दूसरो के साथ व्यवहार करने के समय स्पष्टता, स्थिरता तथा दृढता की दृष्टि से उसे मानसिक रूप से एकनिष्ठ होना चाहिए। उच्चकोटि के स्वानशासन के जरिये ही एकनिष्ठता प्राप्त की जा सकती है। आज प्रसन्नचित्तता, कल ईर्ष्या और परसो अपने आदमियो की ओर से उदासीनता का प्रदर्शन करके उसे, अपनी मनोदशाओ का शिकार नही होना चाहिए। ऐसे ही मालिक—जिनके मस्तिष्क मे चीजो की धुधली तस्वीर रहती है तथा जिनका स्वभाव परिवर्तनशील है—सच्चे कार्यकर्त्ताओ के लिए विकर्षण का कारण बनते है और चारो ओर चाटुकारो तथा ऐसे खुशामदियो को एकत्रित कर लेते है जो प्रिय पात्र बनने की चेष्टा करते है तथा दूसरो की शिकायतें पहुचाते है। इनके पास ऐसे भी व्यक्ति होते है जो प्रमुखता की कोटि में नही आना चाहते और कम से कम काम करके झझट से बचे रहना चाहते है। जो व्यवसायी अपने व्यवसाय को सफल देखना चाहता है उसे निश्चयरहितता (Inconsistency) तथा इसके दुष्परिणाम अनुचितता से बचे रहना चाहिए।

प्राय यह कहा जाता है कि नेता जन्मजात होते है, बनाये नही जाते। लेकिन यह सत्य नही है। इसमें सन्देह नही कि कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा जन्म से ही अच्छे नेता होते है। लेकिन कोई भी आदमी, जिसे कार्य-सचालन-सम्बन्धी नेतृत्व का भार उठाना पडा है, विचारशीलता के द्वारा अपनी वैयक्तिक प्रभविष्णुता को बढा सकता है। विभिन्न लोगो ने व्यवसायी के लिए विभिन्न गुणो का होना आवश्यक समझा

हैं। अनुभव बताता है कि व्यवसायी के कतिपय प्रमुख तथा मौलिक गुण निम्नलिखित प्रकार के होने चाहिएं।

यथार्थता या शुद्धता (Accuracy)—व्यवसायी का प्रथम मुख्य गुण यह है कि वह जानता है कि मैं क्या बात कर रहा हूं तथा मेरा तात्पर्य क्या है क्योंकि उसे अनेक सामान्य आवश्यकताओं से निबटना पड़ता है। आदेश (Order) तथा इसकी कार्यान्विति (Execution) में यथार्थता (Precision) इसके लिए अनिवार्य है तथा वह बड़ी उत्तरदायित्वपूर्ण रीति से इसका पालन करता है। जहाँ प्रत्येक व्यवहृत शब्द का सुनिश्चित तथा विवादरहित अर्थ होता है, वहाँ यह बहुत ही अधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि शब्द का सदेहरहित शुद्धता के साथ व्यवहृत किया जाय तथा इसी प्रकार उनका अर्थ भी लगाया जाय। बही-लेखन की एक अच्छी प्रणाली प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय के लिए आवश्यक है और इसमें एकाध भूल भी सह्य नहीं है। शुद्ध कार्य शुद्ध चिन्तन पर निर्भर करता है। अच्छे व्यवसायी में इतनी योग्यता तो होनी ही चाहिए कि अपनी समस्याओं को परिमाणात्मक हल निकालने के बाद उसमें इसकी पैठ हो जाय।

समय ज्ञान (Time Sense)—अपने द्वारा उत्पादित माल की प्रकृति व परिमाण को समझने के अतिरिक्त व्यवसायी को आवश्यक रूप में समय की जानकारी होना चाहिए। उसे सर्वदा समय के बारे में सोचना ही पड़ता है। कार्यों के आपसी सम्बन्ध को बिलकुल तोड़कर कोई कार्य नहीं किया जा सकता। कार्यों की एक शृंखला और भी है जो अवश्यमेव अन्तिम उपभोक्ताओं की द्रुत परिवर्तनशील इच्छाओं के अनुकूल होनी चाहिए। इससे यह परमावश्यक हो जाता है कि विभिन्न कार्यों का आभास यथास्थान व यथासमय हो। व्यवसाय में अन्दाज की बात नहीं चलती, सारे कार्य अंकों एव वास्तविकता पर निर्भर करते हैं। जिस व्यवसायी ने सख्या व समय पर उचित ध्यान दिया वह अवसर के उपस्थित होने पर इससे अधिकाधिक लाभ उठाने को हमेशा तत्पर रहेगा और अपनी आवश्यकता के अनुकूल भविष्यत् घटनाओं की ओर दृष्टि गड़ाये रहेगा। व्यवसाय की दुनिया आवश्यकताओं का जाल के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अत, साहसी (व्यवसायी) को इन आवश्यकताओं की पहचान में शीघ्रता तथा विश्वास के साथ काम करना चाहिए तथा अपनी सम्पत्ति का इनकी पूर्ति में उपभोग करना चाहिए। सफल व्यवसायी अपने विचार, वाणी तथा कार्य में सचेष्ट रहता है तथा उसे यह अच्छी तरह तथा ठीक मालूम रहता है कि वह क्या करना चाहता है और तब वह बुद्धिमानीपूर्वक प्रत्येक कार्य के सम्पादन के लिए कदम उठाता है।

सतर्कता (Alertness)—किसी भी व्यवसायी को जो सफलता के लिए उद्यत है अपने को दुनिया के सम्पर्क में रखना पड़ता है तथा उसे अपनी जागरूकता सर्वदा बनाये रखनी पड़ती है। उसे घूमना चाहिए तथा यह देखते रहना चाहिए कि कहाँ क्या हो रहा है। उसे नयी आवश्यकताओं तथा नयी आवश्यकताओं को जन्म देने

वाले आविष्कारो का परीक्षण करना पडता है। इस अर्थ में उसे एक सौदागर होना है। क्योकि उन मालो को बचने के लिए जिनका उत्पादन हुआ है, चरित्र बल तथा ज्ञान की आवश्यकता है। इतना भी तय करने के लिए कि उसे किस किस्म की वस्तु बेचनी है या अपनी मशीनो के द्वारा किस कोटि की वस्तुए निर्मित करनी है, उसे सौदागर या व्यापारी होना ही पडेगा। उसे पूर्णरूप से जागरूक रहना पडता है तथा वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है तथ नयी आवश्यकताओं को जन्म देने की क्षमता रखनी है।

सत्यता (Honesty)—उपभोक्ताओ की मागो की पर्याप्त पूर्ति के लिए, व्यवसायी को अनिवार्यत सच्चा होना पडेगा। थोडे समय के लिए भ्रामक विज्ञापन या धनघोर विक्रय कला के बल पर अवाछनीय चीजो की बिक्री की जा सकती है लेकिन ऐसी बिक्री कायम नहीं रह सकती। ऐसा इसलिए होता है कि प्रत्येक बिक्री के उपरान्त क्रेता के अधिकार में एक वस्तु चली आती है जो शीघ्र ही क्रेता को यह बताना शुरू कर देती है कि उसने उसे खरीदने में गलती की है और इस प्रकार इसकी बहुत कम सभावना है कि क्रेता दुबारा क्रयादेश दे। इसके विपरीत यदि विक्रेता अपनी योग्यता का उपयोग आवश्यकता की ठीक पूर्ति करने में करता है, तब वह अपने लिए ख्याति (Goodwill) की रचना करता है। इस ख्याति मे सन्निहित सत्यता तथा आज्ञाकारिता अत्यधिक सफल व्यवसायी के गुण है।

सहयोगात्मक क्षमता (Ability to Cooperate)—व्यवसायी का दूसरा उल्लेखनीय गुण है अधिक से अधिक लोगों के साथ मिलकर काम करने की क्षमता। इसमें अनिवार्यत समझौता करने, समजन (Adjustment) करने, अनुकूलित (to adapt) होने की क्षमता होनी चाहिए तथा समय आने पर उसे अपनी निर्मिति सम्बन्धी भूलों को स्वीकार करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त विभाजित अधिकार का उपयोग करने के लिए भी उसे स्वभावत सक्षम होना चाहिए। वह एक अच्छा सहयोगी प्रमाणित होगा और इसलिए अच्छा व्यवसायी भी यदि वह अपने व्यवसाय के अन्य लोगो का दृष्टिकोण ले सके ताकि वह अपने व्यवसाय से बाहर वाले ग्राहको के मन की बात जान सके।

निर्भर-योग्यता (Dependability)—एक सगठन को जन्म देने के बाद व्यवसायी को यह भरपूर प्रयत्न करना चाहिए कि उस सगठन म निरन्तरता तथा निर्भरयोग्यता के तत्त्व विद्यमान रह ताकि उस सगठन की गति मे आरोहावरोह के बावजूद भी इसमें काम करने वालो को अपनी आशा की परिधि का ज्ञान बना रह। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का सर्वदा ज्ञान रहता है कि मै क्या कर सकता हूँ और क्या नही, मुझसे लोग क्या उम्मीद करते हैं और दूसरे मेरे लिए क्या कर देंगे और उस प्रकार वह अपने को तदनुकूल बनाता है।

निर्भर योग्य व्यवसायी अपने सहकर्मियो को सन्तुष्ट रखता है और ये सन्तुष्ट सहकर्मी उस व्यवसायी तथा उसके द्वारा सचालित व्यवसाय के प्रति वफादार रहते हैं।

ऊर्जा शक्ति (Energy)—शरीर तथा स्नायुओ मे पर्याप्त ऊर्जा दूसरा आवश्यक गुण है जिसके बिना व्यवसायी के और सारे गुण बिलकुल बेकार हो जाते हैं । दूसरे क्षेत्रों का भाति व्यवसाय-क्षेत्र में भी मेहनत करने की असीम क्षमता अति आवश्यक है । ऊर्जा के अक्षय कोष के अतिरिक्त व्यवसायी में अपने उन विचारो तथा सुझावो का, जिन्हे वह ठीक समझता है, मनवाने की दृढता होनी चाहिए ।

चरित्र बल (Character)—प्रतिभाए और निखर उठती है यदि उनमे नैतिक चरित्र मिल जाता है क्योकि इसमे ऊर्जा वफादारी, योग्यता की अनवरुद्ध वृद्धि तथा निरीक्षण म बचत प्राप्ति की आशा रहती है । नैतिक बल से युक्त होने क लिए नेता को धर्मभीरु तथा ईश्वरोन्मुख होना चाहिए लेकिन इसे केवल घटा बजाने वाला नही होना चाहिए, उसे वैसा होना चाहिए जो अपने द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य का आत्म-निरीक्षण करता हो । प्रोफेसर हार्किंग के शब्दो में ऐसा मनुष्य अपनी आखो के द्वारा, अपनी बोली के द्वारा, अपने हाव-भाव के द्वारा, अपने कथन के तत्त्व के द्वारा, अपने आदमियो में अपना मन डाल देता है । वह अपने साथियो तथा मातहत लोगो के प्रति मिथ्याचरण से बचने का प्रयत्न करेगा । सभी प्रकार के मिथ्याचरण व्यर्थ होते हैं और वफादारी का तो यह नितान्त विनाशक है ।

इन विशिष्ट गुणो के अतिरिक्त व्यवसायी में वे सभी या कतिपय गुण होने चाहिए जो सभी नेताओ में पाये जाते है । इसमें औसत से अधिक कुशाग्रता या मानसिक चौकन्नापन, व्यावहारिक (रचनात्मक) कल्पना, मानव-प्रकृति का ज्ञान, प्रस्तुत योजना के हेतु उत्साह, विनोदशीलता, आत्मविश्वास, आत्मनियत्रण, मनोरजक व्यक्तित्व, एकाग्रता, सहिष्णुता तथा नेतृत्व किये जाने वाले लोगो के प्रति मैत्रीभाव तथा सदाशयता की भावना होनी चाहिए ।

इस सूचि में कतिपय ऐमे लक्षण है जिन्हें विचारोपरान्त बदला जा सकता हो । कुछ हद तक शरीर तथा स्नायु सम्बन्धी ऊर्जा बनायी जा सकती है । तार्किक प्रक्रिया तथा तज्जनित अवस्थाओ की ओर चेष्टापूर्वक ध्यान देने से कल्पनाशीलता में वृद्धि की जा सकती है । मानव-प्रकृति के ज्ञान में तत्सम्बन्धी अध्ययन तथा अनुभव के उपरान्त वृद्धि की जा सकती है । उत्साह में उस गति से वृद्धि लायी जा सकती है जिस गति से आदमी विश्वास तथा भावना के जरिये उद्देश्य से तादात्म्य स्थापित करता जाता है । हीनता की भावना कहा से पैदा होती है—इसकी जानकारी के लिए आत्म-विश्वास की मात्रा बढायी जा सकती है । लोगो के प्रति मैत्रीभाव तथा इससे भी गहरा प्रेम का भाव पैदा किया जा सकता है । आखिरी बात सबसे अधिक महत्त्व की है क्योकि यह समस्या के केन्द्र-बिन्दु का स्पर्श करती है, क्योकि यह जीवन तथा मानव जाति के प्रति व्यक्ति के रुख के प्रश्न को लाकर उपस्थित करती है ।

अध्याय : : २

वाणिज्य तथा उद्योग का विकास

हम लोग पहले देख चुके हैं कि व्यवसाय शब्द के अन्तर्गत वाणिज्य और उद्योग दोनों आते हैं । यदि हम इन दो अवयवों के विकास पर अलग-अलग विचार करें तो हमें व्यवसाय के विकास की एक तस्वीर प्राप्त हो जायगी। इस अध्याय में वाणिज्य तथा उद्योग का रेखाचित्र उपस्थित करना हमारा उद्देश्य है।

वाणिज्य का प्रारम्भ—वाणिज्य का अर्थ होता है मालों के वितरण की प्रक्रिया अर्थात् मालों को उस स्थान से, जहाँ वे उत्पन्न किये जाते हों और पर्याप्त मात्रा में हों, हटाकर उस स्थान को ले जाना जहाँ वे अल्प मात्रा में हों और माग की वस्तु हों। यह एक वृहत् तथा पेचीदा कार्य है जो अपने में मालों के क्रय विक्रय से सम्बद्ध सारे कार्यों को निहित किये है। लेकिन अपेक्षत हाल में ही इसने अपना इतना प्रमुख तथा वृहत् रूप धारण किया है। वाणिज्य का आरम्भ विनिमय के आरम्भ के साथ माना जा सकता है। वाणिज्य नामक तन्त्र की आवश्यकता इन कारणों से होती है: (क) प्राकृतिक साधनों की अनेकरूपता तथा पृथ्वी पर उनका भौगोलिक वितरण; (ख) मानव-आवश्यकताओं में विभिन्नता, (ग) श्रम-विभाजन, (घ) मानव-आवश्यकताओं की पूर्ति की जरूरत। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि उत्पादन तथा उपभोक्ता एक ही व्यक्ति है, या जहाँ वस्तुएं उत्पादित होती हों वहीं उपभुक्त भी हो जाती हों, तो वाणिज्य की आवश्यकता है ही नहीं ।

सभ्यता के आदिकाल में मनुष्य का जीवन शत-प्रतिशत अपने श्रम पर निर्भर करता था। वह जो कुछ उत्पादन करता था वही उपभोग करता था तथा वही उपभोग करता था जो कुछ उत्पादन करता था। उत्पादन तथा उपभोग के केन्द्र में दूरी नहीं होती थी। अत, स्थान, समय तथा व्यक्ति के कारण कोई व्यवसाय नहीं था। मनुष्य स्वच्छन्द तथा स्वावलम्बी प्राणी था। वह भूमि को जोतता था तथा जीवित रहने के लिए इसमें भोजन पैदा करता था। मांस पाने के लिए वह शिकार करता था और इस एक काम के जरिए वह अपनी शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए भोजन की, तथा मानसिक चाह की पूर्ति के लिए चर्म लगोटी की व्यवस्था करता था। यह भी सम्भव है कि इसके एक पत्नी रही हो जो खेत जोतने में इसको सहायता पहुँचाती रही हो तथा पहनने के लिए कपड़े बनाती हो। ऐसी दुनिया में न तो वाणिज्य की कोई गुंजाइश थी और न वणिक् की ही। इस समय सम्पत्ति एक प्रकार का अधिकार होना और इस अधिकार

को प्रत्येक आदमी सर्वोत्कृष्ट समझता था; किसी चीज को पता लगाने का अर्थ था इस पर स्वामित्व कायम करना। राज्य या अन्य प्रकार की सामुदायिक संस्था का इस अधिकार निर्धारण में कोई हाथ नहीं था क्योंकि इस समय में राज्य नाम की कोई चीज थी ही नहीं। जिस भी किसी भांति हो, मनुष्य प्रकृति के उन्मुक्त दान कोष से अपनी आवश्यकता की वस्तुएं प्राप्त कर लेता था। वैयक्तिक रूप से प्रकृति पर निर्भर रहने का तात्पर्य था प्रकृति की अनिश्चितता पर शत-प्रतिशत निर्भरता। स्थान पर बसने के बाद लोगों को पर्याप्त विश्राम मिलता था और तब वे कबीले बनाकर रहने लगे। इस प्रकार विपत्ति के समय पारस्परिक सहायता का उद्भव हुआ। घर बनाये गये, पौधे लगाये गये जिससे एक स्थान पर बस कर कृषि करने का प्रारम्भ हुआ। इससे खानगी सम्पत्ति की प्रथा चल पड़ी। अब आदमी अपनी भूमि पर विचरण करता था तथा अपने मकान में रहने लगा। वह अपने आप भूमि को जोतता था, इसी से यह कहावत चल पड़ी है 'जो बोता है वह काटेगा।' सम्पत्ति के अधिकार ने उत्तराधिकार को जन्म दिया तथा परिवार के अधिकार में सम्पत्ति एकत्रित होने लगी। स्थायी जनपद बसने लगे और क्रमश: जैसे-जैसे लोग एक स्थान में एकत्रित होने लगे वैसे-वैसे गांव, शहर तथा बड़े शहर बनने लगे। इसने समाज के प्रशासन तथा संगठन की सामाजिक समस्या को जन्म दिया। समाज में रहने तथा श्रम-विभाजन के लाभ सामने आने लगे। विकास का क्रम जारी रहा, समय ने पलटा खाया तथा सभ्यता की प्रगति एवं नागरिक जीवन की उन्नति के साथ अति साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति भी ज्यादा दुष्कर हो गयी। इसके अतिरिक्त आवश्यकताएं भी बहुत बढ़ गयीं। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्यत्र चेष्टा की जाय। पड़ोस के शहर में देखा जाय जो शायद अपनी आबादी की आवश्यकता से अधिक गेहूं का उत्पादन करता है तथा उनसे मांगा जाय कि वह कुछ दे सकता है कि नहीं। इसका मतलब हुआ कि इसके बदले में कुछ दिया जाय और इसलिए एक शहर को अपनी निजी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना पड़ता था ताकि वह पड़ोसियों से खरीदे गये सामान का मूल्य चुका सके। स्वभावत: अधिक आदमी उसी प्रकार के उत्पादन में विशेषज्ञ होने लगे जिसमें उनकी रुचि सबसे अधिक थी तथा जिसके लिए उन्हें सुविधा प्राप्त थी। इन सबका परिणाम श्रम-विभाजन हुआ तथा मालों के विनिमय का आधार किसी धंधे को करने में लगने वाला समय तथा श्रम था। रॉबिन्सन क्रूसो की अर्थ-प्रणाली वस्तु विनिमय (Barter) अर्थ-प्रणाली में परिवर्तित हो गयी। हमारे देश में गांवों में अब तक भी वस्तु-विनिमय का चलन है।

वस्तु-विनिमय अर्थ-प्रणाली के बहुत से परिणाम हुए। विशेषीकरण के कारण कारीगरी तथा चतुराई पर्याप्त रीति से बढ़ी, धंधे वंशानुगत हो गये। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रणाली के अन्तर्गत दूरों की रचना हुई, व्यापार का जन्म हुआ, लेकिन खरीद और बिक्री का काम उत्पादक तथा भोक्ता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में किया जाता था। मध्यस्थ कोई नहीं था। विनिमय का तात्पर्य था कि आप कुछ चीजें दूसरे को दे रहे

है इसलिए कि दूसरा आपको वह चीज दे जो आपके पास नही है लेकिन जिसे वह देना चाहता है। इसमे एक बहुत बडी त्रुटि यह थी कि विनिमय कभी-कभी होता था। विनिमयो की इतनी अल्प सख्या वाणिज्य को जन्म देने तथा उसे कायम रखने के लिए पर्याप्त न थी।

समय के बीतने के साथ और खासकर मालो के विनिमय में जब मौद्रिक अर्थ-प्रणाली का प्रवेश हुआ तब मनुष्यो ने दूसरो के लिए आवश्यक वस्तुओ की व्यवस्था करना तथा यह जानना कि वे कहाँ से प्राप्त की जा सकती है, अपना व्यवसाय बना लिया। आज ठीक यही हालत है। सम्यता का विकास हो गया है और परिस्थितियाँ पेचीदगियो से भर गयी है। दुनिया के हर एक कोने से सामान एकत्रित किये जाते है; वे असख्य कोटि की औद्योगिक प्रक्रियाओ मे गुजरते है ताकि वे कुछ व्यावहारिक रूप ग्रहण कर सके और इस प्रकार के उत्पादित माल वाणिज्य के द्वारा दुनिया के प्रत्येक भाग मे उन घरो म पहुचा दिये जाते है जहा उनकी आवश्यकता होती है। इसी क्रिया को प्राय यह कहा जाता है कि व्यवसाय का उद्देश्य मानव आवश्यकताओ की पूर्ति करना है। पुराने जमाने की तरह आज भी दुनिया काम में लगी है। कृषक मैदान में है, वह बीज बो रहा है या फसल काट रहा है। कारखाने का मजदूर मशीनो का नियन्त्रण कर रहा है, उसमें कच्चा माल डाल रहा है जो रूपान्तरित होकर निर्मित माल मे बदल जाता है। खान मजदूर पृथ्वी के गर्भ से खनिज पदार्थ को ऊपर ला रहा है। किरानी आफिस मे व्यवहारो (Transactions) को लिपिबद्ध कर रहा है। डाक्टर अपने परामर्श-कक्ष में रोगियो को सलाह दे रहा है। शिक्षक कालेज या स्कूल म अपने शिष्यो को शिक्षा दे रहा है। ट्रान्सपोर्ट मजदूर मालो एव मनुष्यो को स्थानान्तरित कर रहा है। तार तथा टेलीफान के जरिए समुद्री तार तथा बेतार के जरिए आश्चर्यजनक चाल से आदेश तथा निर्देश एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जाते है। आर्थिक हलचल के पहिये तूफान की तरह घूम रहे है। लेकिन प्रश्न यह है कि आखिर ये सारे कार्य होते क्यो है ?

प्रत्येक मजदूर इच्छा या अनिच्छा से मजदूरी कमाने जाता ही है। वह पैसे की खातिर पैसा नही चाहता। वह पैसे के द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओ के लिए पैसा चाहता है। वह आदमी सामर्थ्य भर इसे प्राप्त करता है ताकि वह अपनी उन चीजो की आवश्यकता, जिन्हे हम उपभोक्ता की वस्तुए कहते है, की पूर्ति कर सके। यदि वह बिना काम किये उन वस्तुओं को पा सकता तो वह काम करने तक न जाता। वह इसलिए काम करता है कि वह उपभोग कर सकने मे समर्थ हो सके। यह बात प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होती है जो निजी श्रम के द्वारा, अपने धन के विनियोग द्वारा या अपना धन का दूसरो को व्यवहार के लिए देकर आर्थिक कार्य में योगदान देता है। आर्थिक कार्य या उत्पादन का तात्त्विक निष्कर्ष है मानव-आवश्यकता की पूर्ति। यह सम्यता के आदिकाल मे होता था, और आज भी ऐसा ही होगा। ये आर्थिक कार्य प्राय चार श्रेणियो मे विभक्त किये जाते है :

खान सम्बन्धी (Extractive), रचनात्मक (Constructive) या निर्माण सम्बन्धी (Manufacturing), वाणिज्य सम्बन्धी (Commercial), तथा प्रत्यक्ष सेवाएं (Direct Services)। खान सम्बन्धी धन्धे का सम्बन्ध है मिट्टी से पैदावार करने, या भूमि के गर्भ से अनेक प्रकार के धन प्राप्त करने से। निर्मित-प्रधान धन्धे के द्वारा खान उद्योग से प्राप्त किये गये कच्चे माल को निर्मित पदार्थ में रूपान्तरित किया जाता है। वितरण या वाणिज्यप्रधान श्रेणी के अन्तर्गत वे धन्धे आते हैं जो उत्पादकों के यहां से कच्चे माल का निर्मितिकर्त्ताओं के यहां स्थानान्तरित करने, या निर्मितिकर्त्ताओं के यहाँ से निर्मित पदार्थों का उपभोक्ताओं के यहाँ स्थानान्तरित करने से सम्बन्ध रखते हैं। इन वितरण कार्यों में संलग्न सभी व्यक्ति, जैसे रेल व्यापारी, बैंक, बीमा कम्पनियां, दलाल, थोक विक्रेता तथा खुदरा विक्रेता, इस धन्धे में हाथ बटाने वाले हैं। प्रत्यक्ष सेवा श्रेणी के धन्धे वाले वे व्यक्ति हैं जो स्वयं तो उपभोग्य वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते लेकिन जो अपेक्षित प्रत्यक्ष रूप से निर्मिति कार्य में लगे मजदूरों की कुशलता वृद्धि करने तथा उनके समय की बचत करने में प्रयत्नवान् रहते हैं। इन धन्धों के अन्तर्गत सिपाहियों, नाविकों तथा पुलिस आदि के रक्षण सम्बन्धी कार्य आते हैं। इसी श्रेणी में वे शिक्षक, वकील, डाक्टर तथा गायक भी शामिल हैं जो बुद्धिप्रधान कार्य में लगे हैं। कहने का सारांश यह है कि वाणिज्य सम्बन्धी वे धन्धे हैं जिनका उद्देश्य है निर्मितिकर्त्ताओं तथा उत्पादनकर्त्ताओं के बीच एवं निर्मितिकर्त्ताओं तथा उपभोक्ताओं के बीच माल का विनिमय। व्यवसाय संगठन में वाणिज्य का कार्य है आर्थिक सिद्धान्त के अनुसार विनिमय की उपलब्धि द्वारा उत्पादन के विभिन्न विभागों को एक सूत्र में ग्रथित करना। संक्षेप में, यह उत्पादन-सम्बन्धी कार्य की शृंखला में आखिरी तथा पहली कड़ी है।

उद्योग का विकास—मध्ययुग के प्रारम्भ से ही तीन प्रमुख कोटि के उद्योग देश के विभिन्न भागों में चालू रहे हैं और इनमें से प्रत्येक, एक सुदीर्घ पर अनिश्चित काल में मुख्य रहा है। इनमें पहला दस्तकारी प्रणाली है जिसका दस्तकारी संघ से घना सम्बन्ध रहा है और जो पन्द्रहवीं शताब्दी तक सारे देश में प्रचलित था। दूसरी घरेलू प्रणाली कोटि का है जिसने औद्योगिक पूंजीवाद को जन्म दिया और जो सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी तक प्रचलित था। तीसरी फैक्ट्री प्रणाली कोटि का है जो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पर्याप्त रीति से इङ्गलैण्ड में शुरू हुआ और जिसने उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में जर्मनी तथा तीसरे दशक में फ्रांस में प्रमुखता प्राप्त की और तत्पश्चात् सारे विश्व में फैल गया।

दस्तकारी प्रणाली—प्रारम्भिक मध्ययुगीन काल का उद्योग अल्प तथा सीधा था। दस्तकारी प्रणाली सब जगह प्रचलित थी। निर्मिति प्रक्रियाएं अल्प तथा साधारण कोटि की थीं। अतएव, काम में लायी जाने वाली मशीन भोंडे ढंग की तथा सस्ती थी। भाप की शक्ति के बारे में कोई जानता नहीं था, तथा जलशक्ति का बहुत कम उपयोग होता था। सभी प्रकार की चीजें सचमुच में हाथ से बनायी जाती थीं। दस्तकारी

गाद स उस उद्योग का बोध होता है जो न केवल हाथ के श्रम पर आधारित है बल्कि जिसम किसी भी प्रकार का पूजीवादी तत्व विद्यमान न हो। दस्तकारी प्रणाली के अ तगत औद्योगिक सगठन की इकाई परिवार या वह परिवार जिस थोडी मात्रा म बाहरी श्रम की सहायता मिलती हो होता था। निर्मिति के लिए कच्चे माल मुख्य रूप स नजदीक से ही उपलब्ध हो जाते थ। उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति के हेतु होता था। इसका एक बडा कारण था यातायात में असह्य व्यय। श्रम विभाजन उदग्र कोटि (Vertical Type) का न होकर क्षैतिज कोटि (Horizontal Type) का था और शिल्प (या कारीगरी) एक दूसरे से बिल्कुल अलग होता था और प्रत्येक शिल्प म सम्बद्ध सारे निर्मिति कार्य—कच्चे माल की प्राप्ति स लेकर माल को बाजार म बिक्री के लिए उपस्थित करने तक—शिल्पियो का एक समूह करता था। श्रम की उत्पादन क्षमता निम्न थी। तब भी मध्य युग हस्त श्रम तथा आधुनिक युग क मशीनी (या यात्रिक) उत्पादन के बीच कोई उचित तुलना हो नही सकती। केवल श्रम तथा कच्चे माल की पूर्ति की दिशा म ही नही वरन वस्तुओ की बिक्री क क्षेत्र म भी एक प्रकार का अविश्वसनीय स्थायित्व था। *मध्ययुगीन समाज गतिहीन था—परिवर्तन की धीमी गति थी तथा फैशन म बहुत कम रद्दो-बदल होता था।* परिणामस्वरूप पूर्ति तथा माग क बीच सतुलन कभी बिगडता नही था।

सघ (Guild)—मध्ययुगीन उद्योगो की सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता था श्रमजीवियो का सगठन। मध्ययुग के लोगो म समुदाय-बद्ध (Corporate) होने की कितनी तत्परता थी इसके कई व्यावहारिक रूपो में से एक रूप सघ है। इसके दो मुख्य रूप हो गये व्यापारी सघ (Merchant Guild) तथा शिल्पी सघ (Crafts Guild)। व्यापारिक सघ व्यापार म लगे लोगो का एक साहचर्य था जो नगरो म क्रय विक्रय करते थ। व्यापारी सघ के दो काम थ उपभोक्ता के लिए उचित मूल्य तथा विक्रेता को उचित प्रतिफल। व्यापारी सघ पारस्परिक रक्षण तथा सहायता के लिए निर्मित एक सघ (Association) था तथा रोग एव दरिद्रता स रक्षा के लिए एक बीमा-सगठन था। बारहवी शताब्दी के अन्त तक शिल्पी सघ (Crafts Guild) का उद्गम हुआ और एक शताब्दी के अनन्तर यह दुनिया म सब जगह फैल गया। शिल्पी सघ शहर या जिले में एक ही प्रकार के धधे म लगे कारीगरो का सघ था। साधारणत एक शहर म कई शिल्पी सघ होते थ। बुनकरो का एक सघ रगरेजो का दूसरा मोमबत्ती बनाने वालो का तीसरा तथा सुनारो का चौथा और इसी प्रकार अनेको सघ होते थ। शिल्पी सघ की सदस्यता प्रत्येक शिल्पी के लिए अनिवार्य थी। एकाधिकार (Monopoly) की रचना इन सघो का उद्देश्य होता था। शिल्पी सघ शिल्पी—कुशल शिल्पी—को उचित रोजी जीवन निर्वाह का तथा कारीगरी के अच्छे मानदण्ड का भरोसा दिलाते थ। बीमारी तथा गरीबी के समय पारस्परिक सहायता उनके सगठन का आवश्यक अग था।

मध्यकालीन उद्योग सगठन म साफ तौर से तीन श्रेणियो में श्रमजीवी या

उस्ताद (Masters), कारीगर (Journeyman) तथा नवसिखुए (Apprentices)। नवसिखुआ लड़का या युवक होता था जो काम सीखता था और प्रायः अपने उस्ताद के परिवार के साथ रहता था और बदले में अपने उस्ताद की जो सहायता कर सकता था, करता था। उसे कुछ मजदूरी मिल जाती थी। नवसिखुआ अवधि के बीत जाने के बाद, जो प्रायः सात वर्षों की होती थी, वह युवा आदमी कारीगर हो जाता था यानी एक भ्रमणशील श्रमजीवी जो मजदूरी के लिए अपने शिल्प-सम्बन्धी कार्य करता था, और अन्त में जब वह इतने पैसे इकट्ठा कर लेता जो उसे अपना कारखाना खोलने योग्य बना सकता और वह मनचाही जगह में कारखाना खोलने के लिए अपने साथी श्रमजीवियों के संघ (Guild) की अनुमति पा लेता तब वह उस्ताद हो जाता था। उस्ताद श्रमजीवी अपने परिवार के सदस्यों की सहायता और प्रायः एक या दो कारीगर तथा एक या दो नवसिखुओं की सहायता पाकर उस विशेष गिरोह का रूप धारण कर लेता था जिसका चलन मध्य युग में था। सिद्धान्ततः एक गिरोह के सभी सदस्य एक ही स्थान पर रहते थे, जिसमें निवास करने का स्थान ऊपरी मंजिल पर होता था और नीचे की मंजिल में व्यवसाय होता था जिसमें काम करने के कमरे (कार्य-कक्ष) पीछे होते थे और विक्रय-कक्ष सामने। हस्तशिल्प प्रणाली (Handicraft System) के अन्तर्गत उद्योग मूलतः वैयक्तिक कोटि का होता था जो आज की पूँजीवादी प्रणाली की तरह संयुक्त प्रयत्नों पर निर्भर नहीं था।

जब संघ का चरमोत्कर्ष था तो वह बहुत ही उपयोगी था तथा अनेक तरह के उद्देश्यों की पूर्ति करता था। वह अपने सदस्यों के आर्थिक हित की रक्षा करता था; वह श्रमजीवियों के लिए प्राविधिक शिक्षण (Technical Training) की व्यवस्था करता था, वह निर्मिति (Manufacturing) का मानदंड ऊंचा रखता था तथा वैयक्तिक हितों को समाज-कल्याण के मातहत बनाता था। लेकिन इसमें कोई असुविधा नहीं हो, ऐसी बात नहीं है। इसका निहित सिद्धान्त एकाधिकार था; इसके कठोर नियम साहस या उद्यम को दबाते थे, यह मजदूरी को निम्न करता था, यह उस प्रकार के औद्योगिक संगठन को बढ़ाता था जो मध्य श्रेणी का ही उत्पादन कर सकता। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक परित्याग प्रधान नीति (Exclusionist Policy) के अपनाये जाने तथा परिणामतः प्रतिद्वन्द्वी सेवक (Yeomen) या कारीगर संघ (Journeymen Guild) के जन्म के कारण यह प्रणाली क्षयग्रस्त होने लगी। पूँजीवाद की वृद्धि तथा उद्योग में पूँजी के बढ़ते हुए प्रयोग ने भी जिसका परिणाम, उद्योग वितरण के भौगोलिक परिवर्तन में हुआ, संघों के ह्रास में योगदान दिया।

गृह-प्रणाली (Domestic System)—संघ प्रणाली के पतन के साथ एक नई कोटि के संगठन का उद्भव हुआ जिसका नाम था गृह-प्रणाली। संघ-प्रणाली के अन्तर्गत उस्ताद शिल्पी आता कच्चा माल खरीदता था, उसे अपने ही कारखाने में अपने परिवार तथा नियुक्तों (Employees) की सहायता से

निर्मित माल मे परिवर्तित करता था तथा उस निर्मित माल को प्राय उसी जगह अपने ग्राहको को हाथ बेच देता था। लेकिन इसके विपरीत गृह प्रणाली के अन्तर्गत उद्यमी या व्यवस्थापक उन नियुक्तो का काम देता जो उसके मकान मे नही रहते थे तथा जो अपने घरो मे ही श्रम करते थे। कभी-कभी नियुक्त स्वय सामान तथा औजार की व्यवस्था करता था लेकिन अधिकतर सामान अथवा औजार इन दोनो की व्यवस्था नियोक्ता (Employer) ही करता था। सबसे अधिक प्रचलित परिपाटी के अनुसार नियोक्ता दोनो चीजो की व्यवस्था कर देता था और नियुक्त औजार के लिए भाड़ा चुकाता था तथा काम के अनुसार मजदूरी पाता था, अर्थात् मजदूरी उसके द्वारा निर्मित माल के परिमाण पर निर्भर करती थी। इस नयी प्रणाली की उन्नति बाजार के विस्तार, कार्य-विधि के विकास तथा जनसख्या की वृद्धि के कारण हुई। लेकिन मुख्य रूप से पूजी मे वृद्धि तथा एक नयी श्रेणी के औद्योगिक प्रवर्तको या उद्यमियो (या साहसिको) के उद्भव से इसको मुख्य प्रेरणा मिली, तथा इसकी सबसे बडी विशेषता, जो इसे अन्य प्रणालियो से भिन्न रखती है, वह है, उत्पादक तथा उपभोक्ता के बीच मे उद्यमी का आ जाना। नये प्रकार का नियोक्ता प्रथमत व्यापारी था वह किसी भी तरह शिल्पी नही कहा जा सकता। वह बडे परिमाण में क्रय विक्रय पर ध्यान देता था, और न तो वह स्वय अपने हाथो से काम करता था और न निर्मिति के निरीक्षण में समय देता था। हाँ, वह अपने ठेको की पूर्ति करवाने के लिए समय देता था। वह केवल सघ का सदस्य होता था और उसके वृत्तिधारियो या नियुक्तो का, जो प्राय पास के जिले या गाव मे रहते थे, कोई सगठन नही होता था।

यह प्रणाली मुख्यत वस्त्र-निर्माण उद्योग के सिलसिले में ही उद्भूत हुई तथा बढी। निर्मिति का कार्य उन व्यक्तियो द्वारा होता था जो अपने घरो मे रहते थे तथा जिन्हे कभी-कभी एक या दो कारीगरो या कुछ नवसिखुओ द्वारा सहायता मिलती थी, लेकिन अधिकतर अपने परिवार के सदस्यो के द्वारा ही। यह धन्धा मुख्यत गावो तथा पास के शहरो मे होता था तथा इसके साथ खेती का कार्य भी होता था। कभी-कभी उत्पादन कार्य अपने सभी स्तरो (Stages) पर एक ही स्थान पर होता था; कभी-कभी एक घर का गिरोह कताई बुनाई या रगाई जैसे उत्पादन की किसी विशेष शाखा में विशेषीकरण प्राप्त करता था (विशेषज्ञ होता था)। यह प्रणाली कृषको के लिए, जो अपनी थोडी जमीन के बल पर परिवार का निर्वाह नही कर सकते थे, बडी लाभदायक सिद्ध हुई। ऊनी उद्योग, कील (Nail) निर्माण-उद्योग, साबुन निर्माण उद्योग बर्तन निर्मिति तथा इस तरह के बहुत से शिल्प उद्योगो में इन आदमियो को अपनी रोजी या अपनी जीविका के साधनो को बढाने का अवसर मिला। ऐसा करने में उन्हें खेती के परित्याग तथा अपनी सामाजिक या आर्थिक स्थिति मे कोई मौलिक परिवर्तन करने की नौबत नही आयी। वे अपने मन के मुताबिक अधिक से अधिक या कम से कम काम कर सकते थे, तथा जाडे व झडी के दिनो मे वे इन कामो को आसानी से कर सकते थे। स्त्रियाँ और बच्चे कामो मे हाथ बटाकर घर की सहायता कर सकते थे।

ऐसा करना न तो इनके लिए अस्वास्थ्यकर ही था और न मनोरजनहीन ही था। जिन औजारो की आवश्यकता होती थी उन्हे सचालित करने के लिए दक्षता के बजाय धैर्य सबसे आवश्यक गुण था।

सोलहवी और सत्रहवी शताब्दी म निर्मिति विधि में पर्याप्त उन्नति हुई, इसका कुछ कारण तो फ्लेमिश तथा ह्यूजनोट के उन कारीगरो द्वारा लाये गये नये विचार तथा विधियां थीं, जिन्होंने यातनाओं से पीडित होकर इग्लैण्ड के औद्योगिक क्षेत्रो में शरण ली थी और कुछ कारण उस काल के माला क्रम तथा बुनाई की मशीन के छोटे-छोटे आविष्कार थे। किन्तु फिर भी, मशीनें सीधी तथा कम खर्चीली ही रही। इन आविष्कारो तथा माला के लिए बढती माग न गृह-प्रणाली के दूसरे अध्याय का प्रारम्भ किया, जो आधुनिक निर्माणी प्रणाली (Factory System) का परिचायक हुआ। अब उत्पादन एक नियन्त्रणकर्ता स्वामी या प्रधान के द्वारा सम्पादित होता था जो मशीन चलाने तथा मजदूरी के लिए हस्तश्रम करने के लिए भृतिधारियों को नियुक्त करता था। यह उत्पादन का कार्य प्राय भृतिदाता या नियोक्ता के द्वारा नियन्त्रित तथा अधिकृत किसी मकान में होता था, जिसका नाम कारखाना (Workshop) पड चुका था। उपक्रमी या व्यापारी के उद्भव ने पूजीवाद का जन्म दिया। यद्यपि पूजीवाद धीरे-धीरे बढा, चूकि यह स्वतन्त्र शिल्पियो तथा स्वावलम्बी कृषि-भवनो के गृह-उत्पादन का स्थान शीघ्र ही नहीं ले सका, फिर भी श्रम विभाजन पर आधारित इस पूजीवाद ने शिल्पियो के द्वारा उत्पादित मालो (Products) को बेरहमी से मार भगाया। ह्रासशील या पतनोन्मुख सघ, जिन्होंने शिल्पकारिता के मापदण्ड तथा कीमत की रक्षा की थी, पूजीवाद की बढती चोट के कारण पूर्ण रूप से विनष्ट हो गए।

इस परिवर्तन का सामाजिक परिणाम यह हुआ कि शिल्पियो ने अपनी स्वतन्त्रता खो दी तथा औजार एव सामान पर नियत्रण और स्वामित्व भी खो दिया। अपने जीविकोपार्जन के लिए उन्हे किराये के मजदूरो की तरह दूसरे आदमियो की सज्जा या उपकरणो (Equipment) का उपयोग करना पडा। साफ तौर से परिलक्षित होने वाला एक परिवर्तन दिखाई पडा, व्यवहार के लिए उत्पादन से बिक्री के लिए उत्पादन; और वह उत्पादन जिसकी बिक्री पर पर्याप्त लाभ हो जिसके कारण वैयक्तिक सम्पत्ति का एकत्रीकरण शुरू हुआ। इस प्रक्रिया ने आधुनिक औद्योगिक पूजीवाद (*Modern Industrial Capitalism*) को जन्म दिया।

औद्योगिक क्रान्ति

पूजीवादी लाभ के लिए घनघोर प्रतियोगिता ने वैज्ञानिक अनुसधान तथा ज्ञान की सामान्य प्रगति को प्रेरणा दी। अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इग्लैण्ड में एक सामाजिक तथा आर्थिक उलट-फेर हुई जिसकी व्याप्ति (Scope)

परिणाम तथा सामान्य महत्त्व इतने अधिक हुए कि इसका नाम ही औद्योगिक क्रान्ति पड़ गया। यह औद्योगिक क्रान्ति नियमित प्रक्रिया तथा अवस्थाओं का स्वरूप परिवर्तन था जो दीर्घकाय उत्पादन के लिए अनुकूल मशीनों तथा आविष्कारों के कारण हुआ; विशेषतया उन मशीनों के कारण जो भाप की शक्ति से सचालित होती थीं। इसका सबसे अधिक उल्लेखनीय परिणाम (Manifestation) हुआ—गृह-प्रणाली के स्थान पर निर्माण-पद्धति का उत्थान तथा नगर की जनसंख्या में वृद्धि। यह कहा जा सकता है कि यह क्रान्ति अठारहवीं सदी के मध्य के बाद (१७६०) में आरम्भ हुई तथा १८२५ ई० में समाप्त हुई।

औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम इंगलैण्ड में आरम्भ हुई, तत्पश्चात् अमेरिका तथा यूरोपीय देशों में फैली, जहाँ इसने एक नवीन औद्योगिक दक्षता को जन्म दिया। दूसरे देशों के बजाय यह परिवर्तन इंगलैण्ड में ही क्यों आरम्भ हुआ—इसके अनेक, पेचीदा तथा कुछ हद तक भ्रामक कारण हैं। किन्तु फिर भी इन परिवर्तनों की उत्प्रेरक परिस्थितियों का उल्लेख किया जाता है। वे कारण इस प्रकार हैं "सैनिक चढ़ाई से निरापदता, इंगलैण्ड को सामुद्रिक मार्गों की उपलब्धि, भारतीय साम्राज्य से लूट तथा भाड़े में एकत्रित की गयी सम्पदा, खुले खेतों की घेराबन्दी के कारण सस्ते श्रम की बहुलता, अन्यत्र यातनाओं के डर से आये हुए शिल्पियों की निपुण शिल्पज्ञता, वैज्ञानिक प्रयोगों में प्रदर्शित की गयी अभिरुचि, जल-शक्ति, लोहा तथा कोयले के रूप में प्राकृतिक साधन, अंग्रेजों का धरिग्रवल जो दक्षता के नये सिद्धान्त में असीम उत्साह का अनुभव करते आर्थिक मन्दी में, उत्पादन के सारे घटक सस्ती कीमत में उपलब्ध थे। सस्ती पूंजी, सस्ता श्रम, सस्ती प्राविधिक योग्यता, सस्ती शक्ति तथा सस्ता कच्चा माल—सभी चीजें सस्ती थीं। इसके अतिरिक्त, उत्पादित माल के लिए उत्सुक क्रेताओं का तैयार बाजार भी था।"[1] इन कारणों में हम संघ-प्रणाली का अपेक्षत द्रुत ह्रास तथा व्यापारी निर्मिति-कर्त्ताओं (Merchant Manufacturers) के द्वारा नियन्त्रित गृह-उद्योगों के क्षेत्र-विस्तार को भी जोड़ सकते हैं, इन व्यापारी निर्मिति-कर्त्ताओं ने निर्माणी पद्धति को और परिवर्तन की ओर गतिशील कर दिया। अनुकूल राजनीतिक तथा धार्मिक अवस्थाएं, कम हानिप्रद आर्थिक प्रणाली तथा इनके अतिरिक्त शीघ्र तथा द्रुत यान्त्रिक आविष्कारों की प्रगति भी औद्योगिक क्रान्ति के कारण कहे जा सकते हैं। इस काल में इंगलैण्ड ने बहुत सारे अद्वितीय आविष्कारकों का जन्म दिया—के, हारग्रीव्स, आर्कराइट, क्रॉम्पटन, कार्टराइट, रैडक्लिफ हारोक्स, न्यूकमैन, वाट, बोल्टन, टेल्फोर्ड, मरडॉक, ट्रेवेथिक, कार्ट और अनेक दूसरे—जिनके द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ काल में संयुक्त राज्य का नेतृत्व इतनी दृढ़ता के साथ कायम किया गया कि उद्योग तथा निर्माणी प्रणाली के क्षेत्र में की गयी प्रगति स्थायी हो गयी।

---

1 P Sargant Florence Economics of Fatigue and Unrest, page 20.

निर्माणी पद्धति (Factory System)—औद्योगिक क्रान्ति, जिसकी परिणति निर्माणी पद्धति (Factory System) में हुई, का सबसे बडा महत्त्व है आविष्कारों का होना जिसने हाथ के कार्य को यान्त्रिक सहायता में बदल दिया। इसके पहले, औजार तथा मशीनी औजार (Machine Tools) हाथ के शासन में थे। शिल्पी शक्ति दान करता था और औजार इसकी आज्ञा का पालन करते थे लेकिन उपयुक्त आविष्कारों का वाणिज्यीकरण होने के बाद शिल्पी का काम मशीनों ओजार तथा हाथ को स्फूर्ति देने के बजाय मशीनों की सहायता प्रदान करना हो गया। शिल्पी केवल संचालक मात्र रह गया और बहुत से कार्यों की दृष्टि में वह जड यन्त्र से अधिक नहीं रह गया। अब जरा भी शिल्पकला नहीं रह गयी है, और शिल्पी मशीन के मातहत हो गया है। इस निर्माणी पद्धति का दूसरा महत्त्वपूर्ण लक्षण है पूँजीवादी के अधीन बडे-बडे कारखानों में बहुत बडी संख्या में भृतिकारी श्रमजीवियों का एकत्रित होना, जिन कारखानों में प्रायः बडी तथा खर्चीली मशीन शक्ति के द्वारा संचालित की जाती है। औद्योगिक पूँजीवाद के परिणामस्वरूप पूँजीवादी वर्ग तथा *श्रमजीवी वर्ग के बीच पूर्ण अलगाव (Demarcation) हो गया है।*

चूँकि मशीनें कीमती थी, अतः कुटीर शिल्पी के द्वारा उनका प्रयोग एक व्यय-साध्य बात थी, और नयी मशीनों को घर में संचालित करना लगभग असंभव कार्य था। परिणामतः, कुटीर शिल्पी ने कुटीर निर्मिति का कार्य छोड दिया और वह किसी कारखाने में भृतिकारी (Wage Earner) हो गया जहाँ मशीन चालक भृतिदाताओं (Employers) के नियंत्रण में नियंत्रित घंटे तक काम करते। शिल्पी (Craftsman) श्रमजीवी (Worker) में परिणत हो गया। हस्त-शिल्पी का शिल्प बिक्री की दृष्टि से एक व्यर्थ की वस्तु हो गया क्योंकि नयी मशीनें अकुशल लोगों के द्वारा भी प्रयुक्त की जा सकती थी। सारी कार्यशील शक्ति अपने स्थान से पदच्युत हो गयी अर्थात् उनके कौशल और श्रम का बाजार मूल्य गिर कर उन अकुशल लडके-लडकियों के, जो नयी मशीन परिचालित कर सकती थी, मूल्य के बराबर हो गया। इस प्रक्रिया में स्वाभाविक क्रम का ठीक उल्टा हुआ। रोजी कमाने वाला तो घर में बिना काम के बैठने लगा और स्त्री तथा छोटे-छोटे बच्चे मिल जाने को बाध्य होने लगे। उदाहरणतः इंगलैण्ड में १८३३ ई० में सूती कपडों की मिलों ने ६०,००० वयस्क पुरुषों, ६५,००० वयस्क महिलाओं तथा ८४,००० अवयस्कों—जिनमें आधे की संख्या में १४ वर्ष से नीचे के लडके-लडकियाँ थी, काम दिया। १८४४ ई० तक ४२०,००० परिचारकों में चौथाई से कम १८ वर्ष के ऊपर तथा २४२,००० औरतें तथा लडकियाँ थीं। परिणाम भयावह हुआ। एक पत्नी को, जिसे प्रतिदिन फैक्टरी में १२–१३ घंटे तक काम करना पडता था, अपने बच्चों की देखभाल करने का समय ही नहीं मिलता था और एंजिल के दुःखपूर्ण शब्दों में वे (बच्चे) जंगली घास की तरह बढे। बच्चों पर इसका क्या प्रभाव पडा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। थके मांदे होकर जब वे रात को घर लौटते, इतने थके होकर कि उन्हें

स्थान पर उन नयी विधियो को जन्म दे रही है जिन्हे श्रमिको का नया वर्ग परिचालित करता है।[1]

मशीनों तथा यातायात मे वृद्धि के साथ-साथ उद्योगो ने अपने कार्य का क्षेत्र निरन्तर गति से बढाया है। इसके लिए उसे अधिक पूजी की आवश्यकता हुई। इस प्रकार अकेला व्यापारी उत्तरोत्तर दूसरे का साहचर्य प्राप्त करने को बाध्य हुआ। इस सगठित पूजी ने वैयक्तिक व्यापारी से अधिक शक्ति प्राप्त की। वृहदन का यह क्रम, जिनकी ओर साधारण मनुष्य का ध्यान गया भी नहीं, उस समय तक आगे रहा जब तक सम्पत्तिशाली वर्ग का यह स्वतन्त्रता नही मिल गयी कि वह अपने धन को समामेलित सस्थाओ (Corporate Bodies) में विनियोग कर के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाय। सीमित दायित्व (Limited Liability) के विस्तार से व्यवसायी तथा पेशवारी (Professional) वैयक्तिक विनियोक्ता उत्तरोत्तर अपने धन को उन व्यवसायी फर्मों को सुपुर्द करने लगे जो हजारो मनुष्यों व करोडो रुपयो पर पर्याप्त नियन्त्रण रखते थे। इस परिवर्तन का आर्थिक परिणाम यह हुआ कि धन का स्वामित्व धन के नियन्त्रण से उत्तरोत्तर विलग होने लगा, तथा व्यक्ति इसके उपयोग को नियन्त्रित करने की चिन्ता से दूर हो गया। यह क्रम आज तक जारी रहा है और आज हम दीर्घकाय परिचालन (Large-Scale Operation) को औद्योगिक निपुणता का प्राण मानते है। फर्म बहुत बडा होने लगा है जिसे उसका स्वामी सम्भाल नही सकता। अत, वेतनभोगी प्रबधक, जो प्रशिक्षित तथा निपुण होता है, औद्योगिक कारखानो की व्यवस्था में बहुत बडा योगदान देता है। भूमि, श्रम तथा पूजी के तीन घटको के अतिरिक्त, सगठन उत्पादन का एक महत्वपूर्ण घटक हो गया है।

सीमित दायित्व के सिद्धान्त ने आर्थिक समाज के लिए कम्पनी प्रवर्तक (Company Promoters) नामक एक नये प्रणेता को ला खडा किया है—जिसकी चातुरी इसी में है कि वह अनुकूल शर्त (Favourable Terms) पर व्यावसायिक फर्मों को खरीदने या रचित करने के लिए कर्ज पर धन एकत्रित करे; और तत्पश्चात् उस खरीदे गये या रचित फर्म को लाभ पर बेच डाले। ऐसा करने में उसके लिए यह आवश्यक नही है कि उन फर्मों की उत्पादक-क्षमता को बढाये प्रत्युत उनके बाजार-मूल्य की वृद्धि करे। विज्ञापनकर्त्ताओ, प्रकाशन-अभिकर्त्ताओ, अश दलालो व अश विक्रेताओ ने इस काम में उसकी सहायता की। अगर उनको बेचने के आशाजनक प्रयत्न के पहले उसका फर्म विनष्ट हो गया तो वह परिमित दायित्व का बहाना लेकर भाग खडा होता, कम्पनी को समेट लेता तथा विधि का आशीर्वाद लेकर दूसरी कम्पनी आरम्भ कर देता। इसका भार-वहन कम्पनी के ऋणदाता तथा अशधारी करते।

मशीनो तथा वैज्ञानिक क्रियाओ के आविष्कार, या यो कहा जाय कि उनके वाणिज्यीकरण, ने आर्थिक बचत के द्वारा औद्योगिक दक्षता में बहुत बडा योगदान

1. Kimball, op cit page 29

दिया, इस आर्थिक बचत को समय की बचत, श्रम की बचत तथा सामान की बचत कहा जा सकता है। मनुष्य का सामर्थ्य मशीनों के प्रयोग से असीम रूप से बढ़ गया है, तथा उसकी शक्ति हजारों गुणा बढ़ जाती है जब विद्युत, तेल, भाप तथा जल शक्ति को कार्यानुकूल बनाया जाता है, और आज सामूहिक श्रम के प्रधान बल के उपयोग की बहुत कम आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक अनुसंधान ने उप-जातों (By-product) की उपयोगिता के मूल्य को बहुत बढ़ा दिया है, और बहुत सी अवस्थाओं में तो उन्हें संयुक्त वस्तु (Joint Product) बना दिया है। दूसरा महत्त्वपूर्ण लाभ यह हुआ है कि मशीन माप में जरा भी हेरफेर किये बिना बारीक से बारीक तंत्र (Mechanism) का पुनरुत्पादन कर सकती है।

मशीनों के प्रयोग ने श्रम-विभाजन या विशेषीकरण को और भी अधिक गति प्रदान की है। आज के औद्योगिक संगठन में दो प्रकार का विशेषीकरण बुनियादी सा हो गया है, उदग्र श्रम विभाजन (Vertical Division of Labour), जिसमें अनेक श्रमिक कच्चे माल को निर्मित माल में परिवर्तित करने की विभिन्न प्रक्रियाओं में संलग्न होते हैं और विशेषकर अविच्छिन्न प्रक्रिया (Continuous Process) वाले उद्योग में, जैसे जूता निर्माण, कागज के मिल आदि तथा क्षैतिज श्रमविभाजन (Horizontal Division of Labour) जिसमें एक ही प्रकार के कच्चे माल से विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाने में कई लोग संलग्न रहते हैं। चमड़े का उपयोग जूता बनाने वाला, घोड़े की जीन बनाने वाला तथा सूटकेस बनाने वाला करता है। इनमें से प्रत्येक एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाता है। श्रम-विभाजन, प्रमाणीकरण (Standardisation), विशेषीकरण तथा बृहत्-माप-उत्पादन (Large-Scale Production)—जिनका परिणाम औद्योगिक पूंजीवाद हुआ है—निर्माणी प्रणाली के आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण परिणामों में से कुछ हैं।

आधुनिक औद्योगिक ढांचा पूंजीवादी है—पिछले पृष्ठों में औद्योगिक ढांचे का जो विश्लेषण उपस्थित किया गया है, उससे यह साफ दिखायी पड़ने लगा है कि आधुनिक प्रवृत्ति बृहत्काय ढांचे की ओर है, जिसे मौलिक आर्थिक सुविधाएं प्राप्त हैं, लेकिन इस प्रणाली का वास्तविक परिणाम क्या है? इन ढांचों का नियन्त्रण-सम्बन्धी किसी सिद्धान्त के अनुसार सूत्रबद्ध होना अनिवार्य है। नवीन औद्योगिक पद्धति के अनुसार नियन्त्रण उपक्रमी के हाथ में था। नई दक्षता के हित श्रम के लिए पूंजी अनिवार्य थी और पूंजी पूंजीवादी उद्यमी के हाथ में थी जिसके बल पर उसे सारे श्रम, कच्चे माल, मशीनों तथा फैक्टरी की तमाम साज-सज्जा पर नियन्त्रण प्राप्त था। वह श्रम तथा कच्चे माल को बाजार में खरीदता था तथा इन दो घटकों के संयुक्त उत्पादन पर उसका आधिपत्य था। पूंजी पर स्वामित्व होने के नाते किसी भी व्यावसायिक इकाई के अन्तर्गत नियन्त्रण उसके हाथ की वस्तु थी। १९वीं शताब्दी में नियंत्रण पूंजी के स्वामी के हाथों से निकल कर उधार लेने वालों के हाथों में चला गया और खासकर संयुक्त

स्कन्ध कम्पनी के विकास के बाद। अब तथाकथित वित्तदाता (Financier) के हाथ में वास्तविक नियन्त्रण है, और वह प्रायः बड़े-बड़े व्यावसायिक सयोगों को आवद्ध करता है और वह ऐसा, सम्पूर्ण पूजी के थोड़े से अंश का स्वामी होकर कर पाता है।

प्राविधिक (Technical) और वैज्ञानिक विकास तथा बृहत्काय सचालन के लिए नये आविष्कारों व पूंजी का एकत्रीकरण दोनों क्रियाएं साथ-साथ चली और उद्योग पूंजीवादी उद्योग कहलाने लगा। वर्तमान प्रणाली दूसरे अर्थ में भी पूंजीवादी प्रणाली है क्योंकि सम्पूर्ण उद्योग पर जो भी नियन्त्रण है वह प्रतिद्वन्द्वी व्यवसाय के पूंजीपतियों द्वारा है जो प्रतियोगिता का अन्त कर देने तथा अपने लाभ में वृद्धि करने के नये-नये रास्ते ढूंढ रहे हैं। सर्वपक्षीय पूंजीवादी अर्थ-प्रणाली के चार पहलू है जो एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं (१) माल लाभार्थ बिक्री के लिए उत्पादित किये जाते हैं। (२) एक प्रकार की धन-प्रणाली सामान्य व्यवहार में है जो कीमत का मापक, मूल्य का मानदंड, विनिमय का माध्यम तथा श्रम भुगतान का साधन है। जब मृतिमूलक श्रम उत्पादन के व्यापक आधार की तरह व्यवहृत होता है तब धन सामान्य आवश्यकता की वस्तु हो जाता है। (३) व्यक्ति और कम्पनियां उत्पादन के साधन हैं जिनका उपयोग, श्रमजीवी (Worker) करते हैं। (४) उत्पादक स्वतन्त्र भाड़े के कर्मचारी हैं जिनके पास न तो उत्पादन के लिये आवश्यक सामान तथा साज-सज्जा है, और वे अपने श्रम से उत्पन्न वस्तु के अधिपति हैं।

पूंजी के स्वामी ही सब कुछ हैं। पूंजीवादी उत्पादन ने एक-एक करके सब प्रकार की प्रकृत अर्थप्रणाली का स्थान ले लिया। पश्चिमी जगत् में तो गृह कुटीर के आखिरी शिल्पी का स्थान भी बेकरी, खाने कपड़े की फैक्टरी तथा भट्टीखाने ने ले लिया। जो औजार श्रम-जीवियों के हाथों से ले लिये गये वे अब बहुत बड़ी सामाजिक यन्त्रक्रिया में बदल दिये गये हैं जिसमें श्रमजीवियों का गिरोह संयुक्त प्रयत्न की ओर खिंचा चला आता है। श्रम की प्रक्रिया भी समाजीकृत कर दी गयी है। जो व्यक्ति अपनी पुरानी पृष्ठभूमि से उन्मूलित कर दिये गये वे कठोरता के कारण संग्राम तथा एकता में दीक्षित हो गये हैं। पूंजीवादी प्रणाली ने अपर्याप्त सम्मिश्रण (Integration) के कारण सामाजिक दुर्बलता (Malnutrition) पैदा कर दी है। इसने वैयक्तिक धन के दुरुपयोग तथा श्रमजीवियों के लिए काम सम्बन्धी अनिश्चितता जैसी असमानता की भयंकर समस्याएं पैदा कर दी हैं। चूंकि वैयक्तिक धन का दुरुपयोग किया गया है, अतः यह दलील पेश की जाती है कि इसका अन्त कर दिया जाय। पुरानी मागे दुहरायी जा रही है कि उत्पादन उपयोग के लिए होना चाहिए, न कि लाभ के लिए। रूस में राजकीय समाजवाद (State Socialism) ने पूंजीवाद का स्थान ले लिया है। खानगी सम्पत्ति समाज को हस्तान्तरित कर दी गयी है जिसका नियन्त्रण राज्य को सौंप दिया गया है। इंग्लैण्ड जैसे अन्य देशों में हाल में उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है।

वैज्ञानिक क्रान्ति (Scientific Revolution)—आदर्श सम्बन्धी

सभी परिवर्तनों की प्रगति के साथ दूसरा महत्वपूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन हो रहा है। प्रोफेसर कान्लिफ ने आधुनिक परिवर्तन को वैज्ञानिक परिवर्तन का नाम दिया है।[1] उनके मतानुसार वैज्ञानिक क्रांति का प्रभाव औद्योगिक क्रान्ति से निश्चय ही अधिक गहरा है क्योंकि इसका उद्गम द्रव्य (Matter) तथा ऊर्जा (Energy) की प्रकृति तथा बनावट (Structure) के सम्बन्ध में मौलिक अनुसंधान है। औद्योगिक क्रांति प्रथमतः यन्त्रमूलक (Mechnical) थी जिसमें निर्गत वस्तुएँ थीं—भाप इंजिन तथा विद्युत करघा। आधुनिक रसायन तथा भौतिक शास्त्र जिनकी प्रवृत्ति एक दूसरे में मिल जाने की है न केवल ऊर्जा (Energy) के नए रूप की उत्पत्ति करते हैं बल्कि उनमें यह क्षमता है कि वे द्रव्य (Matter) के टुकड़े कर डालें तथा उन टुकड़ों को मिलाकर संघटन कर दें। नए माल (Product) तथा नयी प्रक्रियाएँ अनवरुद्ध गति से निकल्ती जा रही हैं। यातायात (Transport) तथा संचार (Communication) के नवीन साधनों के फलस्वरूप दूरी तथा समय में संकोचन आता जा रहा है। शक्ति को वायु में लाने तथा संचालित करने के लिए नए साधनों का अनुसंधान हो रहा है। अणुशक्ति तथा तरंगान्वेष (Radar) का व्यापारिक उपयोग किया जा रहा है। इसका अर्थ है कि अधिकांश लोगों के जीवन काल में ही विद्युत् उत्पादन के लिए अणुशक्ति का नियंत्रित तथा व्यवहृत किया जायगा। कोयले युग का अंत दिखाई देने लगा है। इससे हम लोगों के घरों के स्थापत्य (Architecture) में नया मोड़ आयगा तथा शायद अणुशक्ति और गैस के चक्र (Gas Turbine) संयन्त्र हो जाय ताकि यातायात के स्वरूप में कुछ परिवर्तन हो जाय। इसका अर्थ वह शक्ति है जो दक्षिणी ध्रुव को रहने लायक स्थान बना दे तथा मरुस्थल को भी सींचना आरम्भ कर दे। इन सबका अर्थ यह हो सकता है कि सम्पूर्ण विश्व के लिए बाहुल्य का एक नया युग आरम्भ हो, बशर्ते कि युद्ध हम लोगों की शक्ति को कम लाभदायक क्षेत्र में मोड़ने न आ जाय। इसके अतिरिक्त औद्योगिक क्रांति के आविष्कारों के विपरीत वर्तमान अनुसंधान अनुसंधानकर्ताओं के दल के द्वारा किसी खास उद्देश्य के लिए संगठित ढंग से किया जाता है। आज उद्योग के साथ मिलकर वैज्ञानिक रूप अध्ययन (Design Study) का कार्य करते हैं, और आज इसके पहले कि प्लांट के लिए वास्तविक योजना बनाई जाय या उसे खड़ा किया जाय, हर संभावना का अध्ययन किया जाता है। और इस प्रकार आविष्कारों का वाणिज्यीकरण पहले से ज्यादा दूत होता है और इस प्रकार युगों में चला आता शुद्ध तथा युक्त विज्ञान के बीच का बिलगाव खत्म हो गया है। लेकिन इन सभी प्रकार के विकास के लिए यह आवश्यक है कि लाभप्रद उत्पादन के लिए उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में किया जाय। आर्थिक विकास का दूसरा पहलू है मुक्त व्यापार की नीति (Laissez

1 Condliffe Technological Progress and Economic Development Lecture 1

faire) का अन्त हो जाना और योजनाकरण का प्रचलन । सर्वत्र अनय उच्छृखल औद्योगिक प्रणाली पर काबू पाने की चेष्टा की जा रही है । यह सभी मानने लगे हैं कि आधुनिक आर्थिक प्रणाली की मौलिक विशेषता है आयोजित अर्थ-व्यवस्था जो पूँजीवाद की बाजार अर्थ-व्यवस्था के ठीक विपरीत है ।

भारतवर्ष में औद्योगिक विकास (Industrial Evolution in India)

प्राचीन युग में ही क्यो, अपेक्षत आधुनिक समय तक, भारतीय उद्योग, जिसका आधार हस्त-शिल्प था, समसामयिक यूरोपीय उद्योग से अत्यधिक उच्च स्तर पर था। भारतीय सूती उद्योग उतना ही पुराना है जितनी भारतीय सभ्यता और अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भारतवर्ष सभ्य जगत् का सूती-वस्त्र निर्माता रहा । इसके माल उच्चकोटि के होते थे । ढाका की मलमल अपनी अत्यधिक बारीकी के कारण 'वस्तु की छाया' कहलाती थी तथा उसको बनाना आदमियो के बजाय दुनिया की परियो का काम था। शॉल और सतरञ्जी ऊनी उद्योग के इतिहास में उल्लेखनीय हैं। कहा जाता है कि भारत के रेशम के कपडे रोम में अपने तोल के बराबर सोने के मूल्य म बिके थे। लोहा उद्योग न केवल स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति करता था, प्रत्युत वह भारतवर्ष को निर्मित वस्तुए विदेश को निर्यात करने में समर्थ करता था । इस्पात तथा पिटे लोहे का निर्माण कम से कम दो हजार वर्ष पहले पूर्णता को पहुच चुका था। दिल्ली में कुतुबमीनार के पास का खम्भा इस बात का पूर्ण प्रमाण है कि ४५०० वर्ष पहले भारत वर्ष के लोहनिर्माताओ की कला और चातुरी कहा तक पहुच चुकी थी । यह बगैर किसी धातुमैल के शुद्ध ढलता लोहा है। पर शताब्दियो तक खुली हवा में रहने पर भी इसमें जग नहीं लगा। भारतीय शीशा-उद्योग की प्राचीनता का पता अर्थशास्त्र, शुक्रनीति तथा पिल्नी में पाये गये वर्णन से चल जाता है। ऋग्वेद में वर्णन आता है कि स्त्रिया शीशे की चूड़िया पहनती थी । यदि हम चीनी की तरफ मुडते हैं तो यह दावा किया जाता है कि भारतवर्ष गन्ने का जन्म-स्थान है। प्राचीन काल में ग्रीस में चीनी को लोग भारतीय मीठा नमक कहते थे ।

ऊपर जो कुछ बताया गया है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अंग्रेजो के आगमन के पहले भारतवर्ष व्यापार तथा उद्योग के क्षेत्र मे दुनिया में पहला स्थान रखता था। ह्रास तथा अन्तिम पतन के कारण अनेक तथा बहुत प्रकार के हैं, लेकिन यहा उनमें से कुछ का वर्णन कर देना ही पर्याप्त होगा। पतन का बीज-वपन मुगल काल में हो चुका था और अंग्रेजो के आगमन ने विनाश की गति को केवल तेज कर दिया। कुछ उद्योगों के लिए भारतीय दरबारो तथा रईसो का सरक्षण अप्राप्य हो गया, इन दरबारो तथा रईसो के स्थान तथा उनकी सख्या में विदेशियो के राजनीतिक प्रभुत्व के कारण बडी कमी हुई । मुगल राजाओ ने अंग्रेज व्यापारियो को व्यापार तथा फैक्टरी स्थापित करने की जो सुविधाए प्रदान की, उन सुविधाओ के कारण ही वास्तव में भारतीय वाणिज्य तथा उद्योग के विनाश का श्रीगणेश हुआ है। मशीन निर्मित सस्ते माल ने, जिसका इस देश में आयात होने लगा, भारतीय कारखानो के अपेक्षाकृत महगे, पर

अधिक कलापूर्ण व टिकाऊ माल को बाजार से बाहर निकाल दिया। लेकिन इन सबके अतिरिक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति ही भारतीय व्यापार के विरुद्ध थी। भारतीय माल इंगलैण्ड के बाजार में न बिके, ऐसा करने के लिए इस कम्पनी ने कुछ भी नहीं उठा रख छोड़ा। कम्पनी का ऐसा करना देशी माल के लिए बड़ा ही घातक था। जैसी आशा की जाती थी, इसने उन उद्योगों को विनष्ट कर दिया जो विदेशी बाजार की माँग पर निर्भर करते थे।

भारतवर्ष में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution in India)--इंगलैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देशों के विपरीत, हिन्दुस्तान की औद्योगिक क्रान्ति उन शक्तियों का परिणाम थी जो विदेशों में प्रसूत हुई तथा वे मशीन-निर्मित माल, जिनके साथ देशी कारीगरों को प्रतिद्वन्द्विता करनी पड़ती थी, हिन्दुस्तान में नहीं वरन् इंगलैण्ड की फैक्टरियों में बनते थे। यथारहित उद्योगजीवी लोगों को खेती का सहारा लेना पड़ा और इस प्रकार नए वृहत्कार्य उद्योग विफल होने लगे तथा देश के ग्रामीकरण में तेजी से वृद्धि होने लगी। और यद्यपि हिन्दुस्तान ही प्रथम देश था जिसने उद्योगवाद के प्रभाव का अनुभव किया फिर भी इसमें परिवर्तन या युगान्तरण (Transition) कभी भी पूर्ण नहीं हुआ, लेकिन जापान में, जहाँ उद्योगीकरण बाद में शुरू हुआ, यह परिवर्तन पूर्ण हुआ। छिटपुट तथा असफल प्रयत्नों के अतिरिक्त, हिन्दुस्तान में उद्योगीकरण (निर्मिति तथा यातायात में यान्त्रिक शक्तियों का उपयोग) १८५० ई० में शुरू हुआ, लेकिन जापान में १८६८ ई० में मेजी रेस्टोरेशन (Meiji Restoration) के उपरान्त भी यह आरम्भ नहीं हुआ और जापान १८८० ई० तक हिन्दुस्तान से औद्योगिक विकास की दृष्टि से पिछड़ा था। उसके पश्चात् औद्योगिक विकास के क्रम ने जापान में जोर पकड़ना शुरू किया और परिणामस्वरूप १८६८ ई० के युवक आयोजकों के लघुजीवन काल में ही औद्योगिक क्रान्ति सम्पूर्ण हो गयी, और १९३० ई० तक जापान की अर्थ-प्रणाली आधुनिक उद्योगप्रधान राष्ट्र के समकक्ष हो गयी। लेकिन हिन्दुस्तान में इस दिशा में प्रगति बहुत धीमी रही। यद्यपि भारतीय दृष्टिकोण से तो हिन्दुस्तान ने वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से ही इतनी महत्त्वपूर्ण प्रगति कर ली है कि वह विश्व के दस औद्योगिक अग्रणी देशों के बीच में रखा जाता है, फिर भी यदि हम प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि से देखें तो हिन्दुस्तान की प्रगति देश की आवश्यकता से कम है। यद्यपि इसके साफ प्रमाण उपलब्ध हैं कि हिन्दुस्तान का उद्योगीकरण आगे बढ़ रहा है तथापि इसकी गति व परिमाण से कोई सन्तुष्ट नहीं है। ऐसी भावना केवल अधैर्य के कारण ही हो, ऐसी बात नहीं है, इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता भी है। इसमें सदेह नहीं कि इसको जितने साधन प्राप्त हैं उसके बल पर हिन्दुस्तान, जिसमें अभी आंशिक उद्योगीकरण हुआ है, सम्पूर्णरूप से उद्योगीकृत हो जायेगा। लेकिन समस्या उद्योगीकरण के होने न होने की नहीं है, बल्कि इसकी शीघ्रता की है। द्रुत उद्योगीकरण के रास्ते में बहुत-सी और टेढ़ी कठिनाइयाँ हैं, इसमें सभी सहमत हैं। फिर भी उद्योगीकरण की भविष्यत् गति को वर्तमान गति की

अपेक्षा तेज होना ही होगा ताकि लोगों का वर्तमान जीवन-स्तर और इतना नीचा न हो जाय कि उसे ऊपर उठाना ही मुश्किल हो।

द्रुत उद्योगीकरण के साधनों को ढूंढ निकालने के लिए यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि साधनों की बहुलता तथा प्रारम्भिक आरम्भ के बावजूद हिन्दुस्तान का उद्योगीकरण इतना धीमा तथा अपूर्ण क्यों हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से जाति प्रथा, जो आनुवंशिक धंधों के कठोर पालन को आवश्यक समझती है, मुक्त अवसर, निर्बन्ध प्रतियोगिता, वृद्धिशील विशेषीकरण तथा वैयक्तिक गत्यात्मकता जो गतिशील औद्योगिक अर्थप्रणाली के साथ जुड़े होते हैं, विपरीत दिशा में काम करती है। संयुक्त-कुटुम्ब-प्रथा भी जो १९वीं शताब्दी में यूरोप में प्रचलित नहीं थी, आधुनिक उद्योगीकरण के विपरीत सिद्ध हुई है। जाति की तरह इसने सामाजिक गत्यात्मकता को सीमित कर दिया क्योंकि इसमें व्यक्ति जन्म के आधार पर दूसरों के साथ आबद्ध हो जाता था, वह योग्यता की परवाह किये बिना एक गिरोह को आर्थिक सम्बल प्रदान करने को बाध्य करता था, वह व्यवसाय और राजनीति दोनों में पक्षपात का प्रवेश करता था तथा कम उम्र के लोगों का बड़ों के द्वारा भरण-पोषण के सम्बन्ध में विश्वास दिलाता था। यह कठोर परिवारवाद उद्योगीकरण के रास्ते में बाधा बनकर खड़ा हो गया और इस प्रकार यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि पूर्व की बजाय यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। हिन्दुस्तान में हिन्दू धर्म भी आधुनिकीकरण के लिए बाधा का काम करता था क्योंकि यह कर्मरहित तथा वैयक्तिक कोटि के सन्तवाद तथा भौतिक जगत् के परित्याग पर बहुत जोर देता था। जाति, परिवारवाद तथा धर्म का यह संयोग आधुनिकीकरण के रास्ते में एक दुर्भेद्य दीवार था। हालांकि यह कठिनाई अजेय नहीं थी क्योंकि आज तो वे (जाति, परिवारवाद आदि) कम से कम नष्ट हो रहे हैं तथा आधुनिक प्रविधि (Technique) व आधुनिक आर्थिक जीवन ने अनवरत अपने को बना रहे हैं।[1]

औद्योगिक विकास को अवरुद्ध करने वाले सामाजिक तथा सांस्कृतिक घटकों के अतिरिक्त भारतीय उद्योगीकरण के रास्ते में राजनीतिक तथा आर्थिक परावलम्बन भी रुकावट का काम करते थे। उदाहरणतः जापानी उद्योगीकरण जापान के राजनीतिज्ञों द्वारा एक शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण के हित किये गये सचेष्ट योजनाकरण का परिणाम था। इसके विपरीत, चूंकि हिन्दुस्तान राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से एक परावलम्बी राष्ट्र था, अतः इसकी और इंगलैण्ड के द्वारा बरती जाने वाली नीति एक औद्योगिक राष्ट्र के द्वारा कृषि-प्रधान उपनिवेश की ओर बरती जाने वाली नीति थी। इंगलैण्ड इस देश को कच्चे माल का उत्पादक तथा अपने उद्योग के द्वारा उत्पादित माल के लिए बाजार ही समझता था। हिन्दुस्तान में केवल उन्हीं उद्योगों को विकसित होने दिया जाता था, जो प्रायः उस शक्तिशाली राष्ट्र के नागरिकों के लिए लाभदायक थे। इस आर्थिक परावलम्बन के प्रमाण भारतीय और अंग्रेज दोनों प्रकार

1 Kingsley Davis, The Population of India and Pakistan

के लेखकों के द्वारा एकत्रित तथा परिपुष्ट किये गये हैं। हम निम्नलिखित कतिपय की रूपरेखा उपस्थित कर सकते हैं —

१—वे अंग्रेज, जो हिन्दुस्तान पर शासन करते थे, उस कोटि के नहीं थे जो भारतीय उद्योग का विकास कर सके। वे इस प्रकार के व्यक्ति थे जो अपनी पूर्वी प्रजा को समझते नहीं थे, इसे हेय दृष्टि से देखते थे तथा उससे बिल्कुल अलग रहते थे। इसके अतिरिक्त यद्यपि वे दुनियां में औद्योगिक रूप से सर्वोन्नत राष्ट्र के अधिवासी थे, फिर भी वे उद्योग में प्रशिक्षित नहीं थे, यहां तक कि वे तत्सम्बन्धी समस्याओं से अवगत भी नहीं थे। बहुधा वे सभी अमीर खानदानों के थे जो न केवल व्यवसाय से अनभिज्ञ थे बल्कि व्यवसाय को घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनकी भक्ति अपने घर तथा उसी प्रकार की चीजों से थी। उनमें ऐसी क्षमता मुश्किल से ही थी जो हिन्दुस्तान को एक शक्तिशाली आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र में परिवर्तित कर सके।

२—जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, तटकर नीति (Tariff Policy) पर निश्चित रूप से इगलैण्ड के आर्थिक हितधारियों की मांगों का बहुत बड़ा प्रभाव था। सन् १७०० ई० से लेकर सन् १८२५ ई० तक ब्रिटेन ने भारतीय शिल्प उद्योग के द्वारा निर्मित उच्च श्रेणी के कपड़ों पर बहुत बड़ी मात्रा में सरक्षणमूलक कर लगा दिया और दूसरी ओर इगलैण्ड का इस बात पर जोर था कि विलायती माल हिन्दुस्तान में बिना कर के प्रवेश करे। जब इगलैण्ड ने अमेरिकी रुई से शक्तिम-चालित मशीनों के द्वारा कपड़े बनाना आरम्भ किया तब भारतीय वस्त्र से सरक्षण की आवश्यकता जाती रही। मुक्त व्यापार की नीति पर जोर देते हुए ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान के अरक्षित बाजार को सस्ते कपड़ों से भर दिया तथा देशी हस्त शिल्प उद्योग का सर्वनाश कर दिया। तत्पश्चात् १९२७ के बाद से जब इगलैण्ड के द्वारा प्राप्त लाभों की परिस्थिति में परिवर्तन हो गया, तब मुक्त व्यापार की नीति से प्राप्य लाभ को लोग आसानी से भूल गये। इसके स्थान पर भारतवर्ष के मत्थे जबरन अन्त साम्राज्य अधिमान (Imperial Preference) की नीति लाद दी गयी, यह नीति विलायती माल को भारतीय बाजार में भारतीय माल तथा साम्राज्य से बाहर देश के माल के मुकाबिले में सुविधा प्रदान करती थी।

३—रेलवे का सगठन तथा ढांचा इस प्रकार आयोजित किया जाता था कि वह विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में बन्दर शहरों (Port Towns) को अनुचित मात्रा में लाभ पहुंचाये। ऐसा करना देश के विकास के प्रतिकूल था।

४—भारत सरकार राष्ट्र के प्राकृतिक साधनों का नियन्त्रण तथा दोहन (Exploitation) राष्ट्र के दीर्घकालीन हित की वृद्धि के उद्देश्य से नहीं करती थी। उसके विपरीत, यह विदेशी उद्यमों को मुक्त सहायता प्रदान करती थी ताकि यह उद्यम भविष्यत् उत्पादनों को नुकसान पहुंचाकर भी शीघ्र लाभ कमा सकें।

५—भारतीय सरकार की व्यापक नीति भारतीय हितों के लिए हानिकारक थी। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के हस्त-शिल्प-उद्योग जैसे भी स्वाभाविक

रूप में नष्ट हो जाने लेकिन जो विचारणीय बात है वह यह है कि अंग्रेजों ने वैसे किसी उद्योग की रचना नहीं की जो हस्त-शिल्प-प्रणाली का स्थान ले सके और न तो उन लोगों ने ही पुरानी हस्त-शिल्प-पद्धति को नवीन औद्योगिक पद्धति से मिलाने का कोई प्रयत्न किया।[1]

आर्थिक परावलम्बन के जो भी प्रमाण ऊपर दिये गये हैं उनका मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि बाहरी शासकों ने प्रत्यक्ष रूप से उद्योगीकरण के रास्ते में कितनी बाधाएं उपस्थित की। अब जब हम अपनी सरकार बना पाये हैं तब हमें कृषिप्रधान अर्थ-प्रणाली को उद्योग-प्रधान अर्थ-प्रणाली में परिवर्तित करने का काम बड़ी तेजी से करना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह देश को शीघ्र ही उद्योगीकृत करने के लिए मजबूत से मजबूत नीति तथा युक्तिसंपन्न नीति को अपनावे। जब हम यह देखते हैं कि इस देश में पूंजीवाद पुरानी तथा प्रारम्भिक नीति से अभी भी काम कर रहा है तथा पूंजीपति को लोग एक सुविधाप्राप्त वर्ग का प्राणी मानते हैं जो कर की बचत करता है, श्रमिकों का शोषण करता है तथा ग्राहकों से निश्चित होकर मनमानी अधिक कीमत लेता है, तब इसकी आवश्यकता और अधिक हो जाती है।

1. Davis, op. cit.

अध्याय : : ३

परिचालन का पैमाना एवं व्यावसायिक इकाई का आकार

आधुनिक औद्योगिक संगठन के उल्लेखनीय लक्षणों में एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है औद्योगिक संस्थापना (Industrial Fstablishments) के आकार में वृद्धि तथा परिणामस्वरूप दीर्घकाय उत्पादन । दो व्यापक दिशाओं में यह वृद्धि हुई —(१) औद्योगिक संस्थापन का आकार वृद्धि तथा (२) सामान्य नियन्त्रण के अन्तर्गत समान या असमान संस्थापनों का केन्द्रीकरण या एकीकरण (Integration) । इस दोहरे विकास ने कभी-कभी इकाई के आकार या सचालन के परिणाम के सम्बन्ध में पर्याप्त गडबडी पैदा की है । उद्योग के आकार या परिमाण के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए अर्थशास्त्री भी कभी-कभी साफ-साफ यह नहीं बता सकते कि उनका मतलब फर्म से है प्लांट (Plant) से या इन दोनों से परे किसी और चीज से । इसीलिए यह आवश्यक है कि व्यावसायिक इकाई के आकार के सम्बन्ध में व्यवहृत विभिन्न शब्दों की साफ-साफ परिभाषा की जाय । इस प्रकार तीन शब्द हैं प्लान्ट, फर्म तथा उद्योग जिनकी व्याख्या शुरू में ही कर लेनी चाहिए यदि हमें आकार का ठीक बोध प्राप्त करना है । प्रो० सारजण्ट फ्लोरेंस प्लान्ट की परिभाषा करते हैं एक जमात या व्यक्तियों का समूह जो एक निश्चित स्थान और समय में एकत्रित होते हैं ।[1] प्लान्ट शब्द फैक्टरी, मिल, कारखाना (Workshop) खान, गोदाम, खुदरा दुकान आदि का समानार्थक है । फर्म एक इकाई है जो प्लान्ट या प्लान्ट समूह की व्यवस्था करता है, स्वामित्व करता है तथा नियन्त्रण करता है । उदाहरणत यदि कोई व्यक्ति या कम्पनी दो या उससे अधिक मिल या फैक्टरियों का स्वामी है तो उस व्यक्ति या कम्पनी को आर्थिक तथा प्रशासन की दृष्टि से फर्म या एकाकी औद्योगिक इकाई कहना चाहिए । कभी-कभी एक प्लान्ट फर्म के समरूप हो सकता है । यह उस समय होगा जहाँ एक फर्म एक प्लान्ट का स्वामित्व तथा नियन्त्रण करता है लेकिन ऐसे भी बहुत से फर्म हैं जो कई प्लान्टों के स्वामी हैं । इस प्रकार आकार, लाभ उत्पादकता तथा व्यय की दृष्टि से एक स्वामी के अधीन सारी फैक्टरियों की इकाइयों को एक फर्म ही समझना होगा । यह फर्म या केन्द्रीय अधिकारी अपने अधीन सभी प्लान्टों के आर्थिक बाजार सम्बन्धी तथा हिसाब सम्बन्धी नीतियों का सचालन करता है । उद्योग उन लोगों का समूह है जो प्लान्ट या फर्म के सम्बन्ध में काम में लगे होते हैं । यह उन फर्मों तथा प्रबन्धक प्लान्टों का समुच्चय है जो समान

---

1 Florence Logic of Industrial Organization Paga 3

प्रकार के मालो का उत्पादन करते हैं। भारतीय उद्योग में एक कठिनाई और है। पब्लिक कम्पनियो के अधीन लगभग सारी फैक्टरियो का प्रबन्ध, प्रबन्ध अभिकर्त्ता (मैनेजिंग एजेंट) करते हैं और बहुत से उदाहरणो में एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता फर्म एक या विभिन्न स्थान के कई व्यवसायो का प्रबन्ध करता है, जिनमें बहुत बार भिन्न-भिन्न कार्य होता है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता के इस नियन्त्रण के कारण सामूहिक क्रय तथा विक्रय सम्बन्धी बहुत-सी बचत प्राप्त होती हैं जिसमे उत्पादन की छोटी इकाइयो को दीर्घकाय संगठन के लाभ प्राप्त हो जाते हैं। हिन्दुस्तान में फर्म की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—यह (फर्म) एक ही अभिकर्त्ता के द्वारा व्यवस्थित किसी औद्योगिक केन्द्र की उत्पादक इकाइयों का सम्पूर्ण समुदाय है। लेकिन कुछ हर्ज नहीं होगा यदि हम फर्म की मौलिक परिभाषा पर ही टिक रहें, जो इस प्रकार है 'किसी एक इकाई के अधीन प्लान्ट समूह।' इस अर्थ में हिन्दुस्तान के सूती मिल उद्योग के अन्तर्गत वे सारे फर्म चले आयेंगे जो उन सूती मिलो का स्वामित्व तथा नियन्त्रण करते हैं—जो सूत तथा कपड़े की सम्पूर्ण मात्रा का निर्माण करते हैं।

आकार का मापदण्ड (Measure of Size)—उपयुक्त मापदण्ड का, जो पर्याप्त रीति से आकार को माप सके, चुनना सर्वदा सम्भव नहीं। बहुधा उद्योग की प्रकृति या उत्पादित माल की विशेषता उपयुक्त मापदण्ड की कोटि का निर्धारण करेगी। चाहे जिस प्रकार के मापदण्ड चुने जाय, वे सन्निकट (Approximate) ही होंगे यथार्थ (Precise) नहीं। सीमेंट, चीनी तथा कोयला उद्योगों में, जहां समजातीय या समरूप माल का उत्पादन होता है, उत्पादन की राशि आकार के मापदण्ड की तरह व्यवहृत हो सकती है लेकिन सूती वस्त्र सरीखे उद्योगों में, जो विभिन्न कोटि के मालो का उत्पादन करता है, उत्पादन की राशि औद्योगिक इकाइयो के आकार की विभिन्नता प्रदर्शित करने में प्रायः सफल नहीं हो सकती। करघों तथा तकुओं (Spindles) की संख्या तथा उनकी क्षमता ऐसी हालत में आकार का एक अच्छा मापदण्ड हो सकती है। उसी प्रकार कागज, रसायन, शीशा या लोहा इस्पात जैसे उद्योगों में प्लान्ट की संख्या व उनकी उत्पादन क्षमता आकार का एक विश्वसनीय सूचक हो सकती है।

पूंजी विनियोग आकार का एक अच्छा मापदण्ड है, लेकिन पूंजीकरण के सम्बन्ध में ठीक-ठीक आकडे प्राप्त करना मुश्किल है। उदाहरणतः, अमुक इकाई की पूंजी आवश्यकता तथा उसकी अर्थपूर्ति की विधियां एक दूसरे से इतनी भिन्न होती हैं कि प्रदत्त पूंजी के आकडे या पूंजी का सम्पूर्ण विनियोग भी आकार का पर्याप्त मापदण्ड प्रमाणित नहीं हो सकते। दूसरी विधि जो साधारणतः व्यवहृत की जाती है, श्रमिकों की संख्या है। यह मापदण्ड उस समय महत्वपूर्ण है जब उन इकाइयों की तुलना की जाती है जो एक ही प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करती हैं या जो प्राविधिक विकास की एक ही अवस्था (Stage) का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन जब उत्पादन प्रविधि तथा उत्पादित वस्तुओं की कोटि में पर्याप्त भिन्नताएं हों तब ऐसे मापदण्ड का परिणाम

नियत होता है, इस नियत आकार में कम होने पर प्राविधिक दृष्टि से उत्पादन या तो असम्भव होता है या आर्थिक दृष्टि से अलाभदायक।[1] इस आकार को न्यूनतम 'प्राविधिक" या "आर्थिक" आकार कहा जाता है। लघु प्रारम्भ की अपनी अनेक सुविधाएं हैं और बहुतेरी व्यावसायिक इकाइयां प्रारम्भ में न्यूनतम आर्थिक आकार से बडी नहीं होतीं। लेकिन सम्भवतः कोई भी व्यावसायिक इकाई इस न्यूनतम से सतुष्ट नहीं हो सकती और निश्चय ही उसका आकार विस्तार इतना तो होगा ही कि वह दीर्घकाय उत्पादन के लाभों को प्राप्त कर सके लेकिन उसका विस्तार और अधिक नहीं होगा। एक सीमा है जिसका अतिक्रमण लाभदायक नहीं होगा। यह सीमा सचालन परिमाण की दिशा में आदर्श या आदर्शाकार कहा जाता है।

रॉबिन्सन महोदय[2] कहते हैं, 'आदर्श फर्म से हमें केवल उसी फर्म का बोध होना चाहिए जिसमें प्राविधिक तथा सगठन योग्यता की वर्तमान अवस्थाओं में सारे अनिवार्य व्ययों को जोड़ने के उपरान्त औसत लागत न्यूनतम हो।" किसी निश्चित अवधि में उद्योग में एक अमुक आकार की व्यावसायिक इकाई होती है जो इतनी निपुणता से सचालित होती है कि जरा भी बडी या छोटी किये जाने पर वह निपुणता (Efficiency) खो बैठती है। यह इकाई आदर्श इकाई या आदर्श फर्म कहलाती है और यदि उत्पादक की दृष्टि से कहें तो जब तक आदर्श की अवस्था बनी रहेगी तब तक इस फर्म के द्वारा निर्मित माल की प्रति इकाई औसत लागत न्यूनतम होगी। यह न्यूनतम लागत सब व्ययों को जोडने के बाद होगी। यह सर्वोत्कृष्ट फर्म है जिसका आकार बिल्कुल ठीक है, न अधिक बडा और न अधिक छोटा।

लेकिन आगे बढने के पहले हमें "आदर्श फर्म" तथा मार्शल द्वारा वर्णित "प्रतिनिधि फर्म" के बीच विभाजन-रेखा खीच लेनी चाहिए। "प्रतिनिधि फर्म" से मार्शल का तात्पर्य उस फर्म से था जो औसत अवस्थाओं में औसत दक्षता से काम करती हो, और जो प्रसगानुसार मापदण्ड का काम दे। मार्शल का तात्पर्य इस फर्म से नहीं था जो अतिविशेष अवस्थाओं—चाहे वे अच्छी हों या बुरी—में काम करती हो क्योंकि ऐसी फर्म को, तुलना का मापदण्ड मानने से परिणाम भ्रामक ही होगा। लेकिन प्रतिनिधि फर्म की कल्पना इतनी अमूर्त—(Abstract) या सूक्ष्म तथा गतिहीन (Static) है कि इसका व्यावहारिक उपयोग कुछ हो ही नहीं सकता। कुछ भी हो, ऐसा फर्म विचार तल पर ही स्थित है। ऐसे भी बहुतेरे फर्म हैं जो जीवन के प्रारम्भकाल में ही दीर्घकाय होते हैं जो आदर्श भी हो सकते हैं। अतएव यह आवश्यक नहीं कि प्रतिनिधि फर्म आदर्श फर्म ही हो—आदर्श फर्म तो वह है जिसकी प्रति इकाई दीर्घकालीन लागत व्यय प्रविधि, ज्ञान तथा सगठन योग्यता की अनुकूल अवस्था में न्यूनतम हो। ऐसा फर्म सर्वाधिक दक्ष होता है।

प्रोफेसर पीगू ने एक दूसरे फर्म का व्यवहार किया है "सन्तुलित फर्म" (Equilibrium Firm) जो स्वयं सतुलित तभी होगा जब सम्पूर्ण

1 Lokanathan, Industrial Organization in India, p 132
2. Robinson, The Structure of Competitive Industry, p 15.

उद्योग सतुलित है । यह मार्शलीय नमूना फर्म (Typical Firm) के समकक्ष है जिसका निर्माण उसी परिमाण पर होता है जिसे फर्म व्यवहारत प्राप्त करते हैं। यह विचार भी वास्तविकता से दूर है तथा बहुत कम व्यावहारिक है क्योंकि कोई भी उत्पादनकर्त्ता, सभवत जैसा कि इन विचारों में अपेक्षित है, अपने फर्म के आकार के सम्बन्ध मे प्रयोग या खिलवाड नही करेगा। आदर्श फर्म एक ठोस सम्भावना है। यह आकार की इकाई है जिसे प्रबुद्ध सचालन व प्रतियोगिता की शक्तिया से बाध्य होकर वे सभी फर्म, जो जीवन-सग्राम मे जीवित रहना चाहती है, प्राप्त करने को बाध्य होते हैं।

आदर्शाकार कोई स्थिर बिन्दु नही हो सकता। अल्पकाल में यह स्थिर बिन्दु हो सकता है। यह सदा परिवर्तनशील है, यदि प्रविधि की अवस्था, ज्ञान तथा सगठन की योग्यता उन्नत होती है तो आदर्शाकार बढता है। इसलिए आदर्शाकार सापेक्ष (Relative), न कि निरपेक्ष (Absolute) विचार है। साधनो की अमुक प्रदत्त राशि की दृष्टि से जो आदर्शाकार है वह एक या अधिक घटको मे परिवर्तन होने से बदल जायेगा। प्राविधिक उन्नति, बाजारदारी (Marketing) की कला में उन्नयन, पूँजी प्राप्त करने की नयी सुविधाए आदर्श इकाई के आकार वृद्धि की दिशा में पर्याप्त सहायक है, इसके विपरीत यदि एक या अधिक प्रकार के साधन की प्राप्ति में नई कठिनाइया पैदा होती है तो आदर्शाकार में कमी हो सकती है।

आदर्शाकार (Optimum Size) या सर्वोत्कृष्ट आकार को निर्धारित करने वाली शक्तिया

यदि यह मान लिया जाय कि बाजार कम से कम एक आदर्शाकार फर्म के सम्पूर्ण उत्पादन को खपा लेने के लिए पर्याप्त है तो वे शक्तिया, जो सर्वश्रेष्ठ आकार को निर्धारित करती है, पाच श्रेणियो मे बाटी जा सकती है।[1] वे शक्तिया हैं : प्राविधिक शक्तिया, (Technical Forces), प्रबन्ध सम्बन्धी शक्तिया (Managerial Forces), जोखिम तथा उतार-चढाव (Forces of Risks and Fluctuation) की शक्तिया । इनमे से प्रत्येक शक्ति मे मेल खाते हुए एक आदर्शाकार इकाई है जिसे क्रमश. प्राविधिक आदर्श इकाई, प्रबन्ध आदर्श-इकाई, वित्तीय आदर्श इकाई, बाजार-आदर्श इकाई तथा जीवत्सु (Surviving) आदर्श इकाई कहा जाता है । किसी व्यावसायिक इकाई का अन्तिम आकार अन्तत विभिन्न आदर्श आकारो के एक दूसरे से सुसगत हो जाने पर निर्भर करता है। अब हम इन विभिन्न आदर्श इकाइयो पर विचार करेंगे।

प्राविधिक आदर्शाकार इकाई (The Optimum Technical Unit) प्राविधिक विशेषज्ञ के द्वारा प्राविधिक आदर्शाकार निर्धारित होता है और बाकी चार आदर्शाकार बिल्कुल छोड दिये जाते है। यह (१) श्रम-विभाजन तथा (२) प्रक्रियाओ के समेकन के आर्थिक लाभ का परिणाम है।

1. Robinson, op cit pp. 16-17.

श्रम-विभाजन के मुख्य आर्थिक लाभ हैं (क) प्रत्येक श्रमिक की कुशलता में वृद्धि, (ख) उस समय की बचत, जो एक काम से दूसरे काम के लिए स्थानान्तरण में बर्बाद होता है; तथा (ग) बड़ी-बड़ी मशीनों का आविष्कार जो श्रम में कमी करता तथा एक आदमी को अनेक आदमियों के बराबर काम करने में समर्थ करता है। श्रम-विभाजन के सिद्धान्त के लिए आवश्यक है कि फर्म इतना बड़ा हो कि वह अधिक से अधिक लाभदायक श्रम-विभाजन के लायक हो। जब बहुत से कामों की अपेक्षा कम यान्त्रिक सचालना का स्थान लेने के लिए किसी बड़ी मशीन का रूप निर्धारण किया जाता है तब समेकन की उत्पत्ति होती है। श्रम-विभाजन की प्रक्रिया उलट जाती है और किसी काम की पूर्ति के लिए पहले की अपेक्षा कम निर्मित प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। समेकन से जो आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं वे हैं नियत लागत व्यय में कमी तथा उत्पादन की वृद्धि के अनुपात में निर्माण तथा सचालन व्यय में कम वृद्धि। प्रक्रियाओं के सतुलन से प्राविधिक इकाई निर्धारित होती है। हो सकता है कि आर्थिक लाभों का होना भी बन्द हो जाय लेकिन आर्थिक हानियों का होना अवश्य ही बन्द हो जायगा। यही कारण है कि प्राविधिक आदर्शाकार इकाई न्यूनतम, न कि अधिकतम, परिमाण निर्धारित करती है, अधिकतम इकाई का निर्धारण अन्य शक्तियों के द्वारा होता है। उदाहरण के लिए यदि १०,००० इकाई के उत्पादन में ही आर्थिक लाभ अपनी अन्तिम सीमा पर पहुच जाते हैं और १०,००० इकाई से अधिक उत्पादन के बाद भी आर्थिक हानि शुरू नहीं होती है तो प्राविधिक आदर्शाकार का न्यूनतम आकार १०,००० इकाई का उत्पादन ही है और अधिकतम आकार का निर्धारण तो अन्य शक्तियों के द्वारा होगा।

प्रबन्ध सम्बन्धी आदर्शाकार इकाई (The Managerial Optimum Unit)—ऐसी इकाई भी प्रबन्ध-सम्बन्धी कृत्यों (Functions) की प्रक्रिया में श्रम-विभाजन तथा समेकन के आर्थिक लाभों व हानियों का परिणाम है। इस सम्बन्ध में श्रम-विभाजन का आर्थिक लाभ यह है कि विशिष्ट योग्यता का पूरा उपयोग किया जा सकता है तथा किसी काम के सम्बन्ध में पूरी जानकारी इस काम पर ध्यान-मग्नता के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। उस प्रबन्धकर्ता को, जिसे कच्चे माल का क्रय करना है, पहले जमाने के प्रबन्धकर्ता की तरह अन्य सैकड़ो प्रकार के बोझ से पिसना नहीं है। लेखापाल को लेखा की बहियों तथा टाइपराइटर दोनों जगह काम नहीं करना पड़ता। यहा प्रक्रियाओं के समेकन का उदाहरण मशीन बही लेखन (Machine Book Keeping) है। प्राविधिक शक्तियों के विपरीत, इस अवस्था में आर्थिक लाभों की समाप्ति के शीघ्र पश्चात् ही आर्थिक हानिया शुरू हो जाती हैं। एक अमुक आकार के बाद सूत्रीकरण (Co-ordination) या समन्वय से पैदा होने वाली कठिनाइया ही प्रबन्ध-सम्बन्धी आदर्शाकार इकाई की ऊपरी और निचली सीमाओं का निर्धारण करती हैं। अधिकार समर्पण (Delegation of authority) के हेतु कर्मचारी समुदाय (Staff) सगठन के विभिन्न प्रणालियों को काम में लाकर प्रबन्ध-सम्बन्धी आदर्शाकार इकाई को अधिक प्रशस्त करने के लिए प्रयत्न किये गये हैं, रेखा व कर्मचारी समुदाय प्रणाली (Line and Staff

System) तथा तृतीय योजना (Functional Plan) ऐसे प्रबलता के कतिपय उदाहरण हैं।

आदर्शाकार वित्तीय इकाई (Optimum Financial Unit)--किसी फर्म की उत्पादन लागत उस फर्म की पूंजी प्राप्ति योग्यता पर भी निर्भर करती है। पूंजी उगाहने का कार्य फर्म के आकार तथा ढांचे दोनों को प्रभावित करता है, प्रथम तो ब्याज के दर द्वारा और द्वितीय, किसी समय में अमुक ब्याज दर पर विभिन्न कोटि के फर्म कितनी रकम उगाह सकते हैं। बड़े आकार के फर्म को इस सम्बन्ध में हमेशा सुविधा प्राप्त है। क्योंकि फर्म आकार में जितना ही बढ़ेगा उसे उतने ही सस्ते दर पर पूंजी प्राप्त होगी। उत्पादन जिस रीति से बढ़ता जायगा, वित्तीय व्यय उसी रीति से कम होता जाता है। अतएव वित्तीय शक्ति न्यूनतम या अधिकतम आकार का निर्धारण नहीं करती।

बाजार सम्बन्धी आदर्शाकार इकाई—किसी फर्म के सम्पूर्ण व्यय पर क्रय-विक्रय का पर्याप्त प्रभाव रहता है। अतः ये आदर्शाकार फर्म तथा उद्योग के ढांचे को पर्याप्ततः प्रभावित करते हैं। आदर्शाकार बाजार इकाई बृहत् क्रय विक्रय के आर्थिक लाभ व हानियों का परिणाम है। जब कोई बड़ा फर्म बड़ी मात्रा में खरीदारी करता है तो वह सस्ते दाम पर चीजों की खरीद कर सकता है। उसमें मोल-भाव करने की अधिक शक्ति होती है, वह विशेषज्ञ क्रेताओं की सेवायें प्राप्त कर सकता है, तथा वह यातायात व्यय में बचत कर सकता है, लेकिन बड़ा फर्म खरीदारी में की गयी गलतियों का आसानी से निराकरण नहीं कर सकता। बृहत् परिमाण बिक्री के ये आर्थिक लाभ हैं पर्यटकों की बिक्री में बचत, कम स्टाक तथा ब्याज में बचत तथा फर्म के द्वारा अनेक कोटि के स्टाक रखे जाने की क्षमता में वृद्धि। जो फर्म सतत बढ़ता जाता है, वह बिक्री सम्बन्धी आर्थिक लाभों को उस अवस्था में भी प्राप्त कर सकता है जब उसने प्राविधिक आदर्शाकार इकाई तथा प्रबन्ध आदर्शाकार इकाई प्राप्त कर ली है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में बृहत्तर उत्पादन से होने वाली हानियों के मुकाबले में विक्रय से आर्थिक लाभ के बाद जो शेष प्राप्त होगा, उसी से सन्तुलन की प्राप्ति होगी। पर अपूर्ण प्रतियोगिता की हालत में यह सम्भव नहीं कि फर्म विक्रय आदर्शाकार, या कोई भी आदर्शाकार प्राप्त कर सके।

आदर्शाकार जीवन इकाई (The Optimum Survival Unit)—अब तक हम लोगों ने यह मान रखा है कि उत्पादित माल की माग बराबर कायम है। लेकिन व्यवहार में माग सम्बन्धी परिवर्तन बहुत ज्यादा हुआ करता है। माग में परिवर्तन की सम्भावना एक अनिश्चितता पैदा देती है तथा उत्पादनकर्ता को अपने फर्म की आकार योजना बनाते समय इस परिवर्तन का ख्याल रखना पड़ता है। जब माग स्थिर है तब उत्पादनकर्ता यह चाहेगा कि उसका फर्म सर्वाधिक दक्ष आकार का हो, तथा वह सर्वाधिक विशिष्ट मशीनों का उपयोग करेगा। लेकिन यदि माग बदल गयी तो विशिष्ट मशीनों को अन्य कोटि के माल उत्पादन के लायक नहीं बनाया जा सकता। अतः उस फर्म की समाप्ति हो जाती है। इसके विपरीत वह फर्म, जो स्थिर माग की दृष्टि से अपनी मशीनों की सापेक्षिक अविशिष्टता के कारण कम कुशल है, माग के परिवर्तन होने पर आसानी से अपने को नयी-नयी कोटि के माल उत्पादन के लायक

बना सकती है। अतएव माग परिवर्तन की सम्भावना लघुतर आदर्शाकार जीवत्नु इकाई का कारण बन जाती है।

किसी फर्म ने किस हद तक आदर्शाकार की प्राप्ति मे सफलता प्राप्त की है—यह व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करता है। ऐसा हो सकता है कि यदि किसी फर्म ने प्राविधिक या प्रबन्ध-सम्बन्धी आदर्शाकार की प्राप्ति कर ली है तो उसने अन्य प्रकार के भी आदर्शाकार की प्राप्ति कर ली हो। कतिपय उद्योगो को इस दृष्टि से अन्य उद्योगो की अपेक्षा अधिक सुविधा प्राप्त होती है क्योंकि विभिन्न प्रकार के आदर्शाकार उत्पादन की एक ही मात्रा में समान रूप से सहायक हो और साहसी को शायद ही किसी कठिनाई का सामना करना पडे। लेकिन अनुभव बताता है कि कतिपय शक्तियों के सम्बन्ध में जो आदर्शाकार व्यवसाय के एक अमुक आकार म प्राप्त हो जाता है वह आकार दूसरी कोटि की शक्ति के लिए अनुकूल नहीं होता। उदाहरण के लिए प्राविधिक आदर्शाकार इकाई १५००० इकाइयो की हो सकती है, प्रबन्ध-सम्बन्धी आदर्शाकार इकाई १२००० इकाइयो की तथा बाजार आदर्शाकार इकाई २०,००० इकाइयो की और इसी प्रकार आगे। अन्तिम आदर्शाकार उस उत्पादन दर के द्वारा निर्धारित होता है जिस पर सम्पूर्ण आर्थिक लाभ सम्पूर्ण आर्थिक हानिया से सन्तुलित हो जाता है। इस कठिनाई से पैदा होने वाली समस्या मामूली नहीं है। इस समस्या का हल निकालने के प्रयत्न ने आधुनिक व्यावसायिक ढाचे पर अपनी महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया छोडी है। उदाहरण के लिए, प्रत्येक सुगठित फर्म इसलिए सुगठित है कि इसका प्रबन्ध आदर्शाकार अन्य आदर्शाकार इकाइयो से बडा है। इञ्जीनियरिंग उद्योग में यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि प्रविधि की दृष्टि से आदर्शाकार एक सचालन सम्बन्धी सगठन की अपेक्षा बडा है। वृहत् भण्डारो तथा एक ही फर्म की बहुत सारी दुकानो के उद्भव तथा बाजार सम्बन्धी आदर्शाकार के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है।

उपर्युक्त विवेचन बिल्कुल सामान्य विवेचन है यद्यपि उसमें प्राय सभी उद्योगों में पायी जाने वाली एक प्रवृत्ति का उल्लेख है—वह प्रवृत्ति है उत्पादन के औसत व्यय को कम से कम करना। आदर्शाकार फर्म वास्तव में है या नहीं, यह सदिग्ध है, क्योंकि फर्म आदर्शाकार तभी हो सकती है जब सम्पूर्ण बाजार का क्षेत्र बडा हो तथा प्रतियोगिता पूर्ण हो। यदि प्रतियोगिता पूर्ण है, तब फर्मों के आदर्शाकार होने की प्रवृत्ति जोर पर होगी क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता माग मूल्य को सर्वाधिक दक्ष आकार वाली फर्म की उत्पादन लागत से अधिक नहीं होने देगी। जो फर्म आदर्शाकार फर्म से कम या अधिक उत्पादन करेगी उसका उत्पादन लागत व्यय औसत लागत व्यय से अधिक होगा। अत इसका उत्पादन हानिकारक होगा और अन्ततोगत्वा इसकी स्थिति समाप्त हो जाएगी। पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में केवल आदर्शाकार फर्म ही अपनी उत्पादन लागत पूरी कर सकती है। जब किसी फर्म की सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर हो तब यह फर्म सन्तुलन (Equilibrium) को प्राप्त होती है। विक्रय मूल्य की सीमान्त आय कुल आय में एक योग है जो उत्पादन की एक और इकाई की बिक्री मे प्राप्त होती है। सीमान्त लागत कुल लागत में योग है जो एक और इकाई के

उत्पादन के कारण व्यय करना पड़ता है। जब तक सीमान्त आय सीमान्त लागत से अधिक है फर्म की प्रवृत्ति बढ़ने की रहती है, लेकिन जब सीमान्त लागत सीमान्त आय से अधिक है तो फर्म की प्रतिक्रिया विपरीत दिशा में होगी। पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में सीमान्त आय सीमान्त कीमत के बराबर होती है, अतः सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत कीमत के बराबर हो जाती हैं। जब फर्मों की संख्या कई होती है तब कीमत सन्तुलन में औसत लागत के बराबर होनी है अन्यथा पुरानी फर्म मिट जायेंगे और नये फर्म व्यवसाय में प्रविष्ट होंगे। अतएव, औसत लागत को सीमान्त लागत के बराबर होना ही चाहिए और ये दोनों कीमत के बराबर होनी हैं। दूसरे शब्दों में, यह फर्म आदर्शाकार को प्राप्त हुआ है और इसकी औसत लागत में कमी होना बन्द हो गया, लेकिन इसमें वृद्धि शुरू नहीं हुई है तब यह साफ है कि ऐसी स्थिति में औसत लागत सीमान्त लागत के बराबर हो। जब प्रतियोगिता पूर्ण है तब परिस्थिति अधिक पेचीदा होती है। एक सीमा तक तो फर्म को औसत लागत कम करने की सम्भावना को ढूढ निकालने की प्रेरणा मिलती है किन्तु उद्योग के कुल उत्पादन की दृष्टि से इसका उत्पादन अधिक है। अतः हो सकता है कि विक्रय कीमत में कटौती किये बिना उसके लिए अत्युत्पादित माल को बेच डालना सम्भव नहीं हो। ऐसी हालत में औसत व्यय को कम करने के लिए उत्पादन को बढ़ाना लाभदायक नहीं भी हो सकता है क्योंकि अधिक उत्पादन के कारण लागत में प्राप्त बचत से बिक्री मूल्य में कटौती के कारण घाटा अधिक होगा। अपूर्ण प्रतियोगिता की हालत में फर्म के लिए आदर्शाकार की प्राप्ति कतई सम्भव नहीं होती। वास्तविक दुनिया अपूर्ण प्रतियोगिता की दुनिया है तथा वास्तविक जीवन में शायद ही आदर्शाकार की प्राप्ति होती हो। हम अपूर्ण मानवों के लिए आदर्शाकार अप्राप्य आदर्श ही है।

वृहत् व लघु व्यवसाय

वृहत् माप व लघु माप संचालन के आपेक्षिक लाभ

'ऐसा मानने का तार्किक कारण है कि यान्त्रिक तथा मानवीय विशेषीकरण (Specialisation) के लाभ उपलब्ध होने पर वृहत् माप उत्पादन का परिणाम विशेषतया वृहतमाप फर्मों तथा प्लाटों में कार्यान्वित किये जाने पर, महत्तम दक्षता होती है।"[1] एक संगठन के अन्तर्गत वृहत् संचालन का उपयोग वृहत् उत्पादन का द्योतक होता है। वृहत् माप संचालन के लाभों का इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है — (१) उत्पादन में मितव्ययिता (Economy), (२) प्रबन्ध में मितव्ययिता, (३) वित्तीय प्रशासन में मितव्ययिता, (४) बाजारदारी में मितव्ययिता।

उत्पादन में मितव्ययिता—(१) बड़ा फर्म क्रय-व्यय में बचत करता है क्योंकि यह कच्चा माल तथा जलावन (Fuel) बड़ी मात्रा में और इसलिए सस्ता भी खरीदता है अतः इसे रियायती भाड़ा देना पड़ता है और इस तरह ट्रान्सपोर्ट में अनेक प्रकार से बचत करता है। इसका परिणाम फ्लोरेन्स के शब्दों में 'थोक व्यवहार' (Bulk Transaction) होता है जिसके फलस्वरूप वृहत् परिमाण में सौदा करने का व्यय

1 Florence : Logic of Industrial Organisation, p. 11.

लघु परिमाण में सौदा करने के व्यय से प्राय अधिक नही होता, और इस प्रकार प्रति इकाई लागत अपेक्षाकृत कम होती है। किसी क्रय अभिकर्त्ता को १०,००० हजार रु० के आर्डर का सौदा करन म, या लिपिक को उसे दर्ज और नत्थी करने म उतना ही समय लगेगा, जितना १० रु० के आर्डर मे।

(२) श्रम शक्ति का अधिक लाभपूर्ण उपयोग हो सकता है क्योंकि प्रक्रियाओ का विभाजन सम्भव है जिसके परिणाम श्रमविभाजन तथा विशेषीकरणके कारण बचत होगा।

(३) प्लाट तथा पूर्ति को अविलम्ब तथा पूरी क्षमता से चलाया जा सकेगा। माग का अदाज लगाया जा सकता है जिसम मदी तथा तेजी का भय नही रहता।

(४) सामान का अधिक फलदायक उपयोग हो सकता है—उप-उत्पादन (By-Product) निर्माण द्वारा या बेकाम माल की थोक बिक्री द्वारा।

(५) प्रमाणीकरण को आसानी से प्रयुक्त किया जा सकता है जिसका परिणाम प्रक्रियाओ के अन्तर्गत श्रेष्ठतर सूत्रीकरण (Better Coordination) होता है। और इस प्रकार बृहत्माप उत्पादन सम्भव हो जाता है।

(६) प्रति उत्पादित इकाई की कम लागत पर अनुसन्धानकर्ताओ के द्वारा खोज तथा विकास के कार्य चलाये जा सकते हैं। जिसका परिणाम उद्योग की प्राविधिक प्रक्रियाओ में बचत होता है।

(७) बडा फर्म एक वस्तु के उत्पादन में वैसी विशिष्टता प्राप्त कर सकता है कि वह प्लाट का उपयोग उस वस्तु के उत्पादन में कर सके।

प्रबन्ध में मितव्ययिता—(१) प्रति इकाई उपरिव्यय (Overhead Cost) विशेषकर नियत प्रभार, उत्पादन के उत्पादन मे नहीं बढेंगे।

(२) श्रेष्ठतम प्रबन्ध की व्यवस्था की जा सकती है जिसमें सर्वोत्कृष्ट मस्तिष्क जिसे बृहत् व्यवसाय प्राप्त कर सकता है, व्यवसाय के विभिन्न विभागो का प्रबन्ध कर सकते है। बृहत् व्यवसाय प्रबन्ध के कृत्यो (Functions) को बहुतेरे भागो में विभाजित कर देते हैं तथा प्रत्येक कृत्य के सम्पादन के लिए उन आदमियो को चुना जाता है जो रुचि तथा अनुभव के कारण अपने स्थान के लिए सर्वाधिक अनुकूल होते हैं।

(३) बडा फर्म सगठन की मितव्ययिता को प्राप्त कर सकता है। श्रम का अधिक कुशल सगठन तथा प्राप्त साधनो के अनुरूप होने की क्षमता सर्वदा सम्भव है। फर्म व्यवसाय जितना ही बडा होगा वह उतनी ही खूबी के साथ योग्य आदमी को अनुकूल काम दे सकता है। यह विशेष योग्यता का भरपूर व्यवहार कर सकता है।

(४) बडा फर्म बहुत से पेटेन्ट, ट्रेडमार्क, तथा गुप्त विधिया पर नाज कर सकता है तथा इनका लाभ दूसरे प्लाँटो को दे सकता है, विभिन्न फर्मों तथा सर्वोच्च पेटेन्ट के सयोग के जरिये वह ऐसा कर सकता है और इस प्रकार वह फर्म की मितव्ययिता या एकाधिपत्य का लाभ उठा सकता है।

(५) तुलनात्मक आलेखन (Comparative Accounting) उत्पादन मान की मितव्ययिता, यथा लागत आलेखन, अपेक्षत प्रति इकाई कम

लागत पर व्यवहृत किये जा सकते है और मार्शल की आन्तरिक बचत (Internal Economy) प्राप्त की जा सकती है।

वित्तीय प्रशासन में मितव्ययिता—(१) बडा फर्म सस्ते दर पर पूँजी प्राप्त कर सकता है क्योंकि इसमें यहा पूजी अधिक निरापद अवस्था में रहती है, और चूकि इसका उपार्जन प्राय बडा होता है, अत यह अपनी पूँजी का एक अंश पूर्ण विनियुक्त कर सकता है। छोटे फर्म की बहुत थोडी अंश पूजी (Share Capital) होती है और उसे लघुकालीन-शर्त पर ऊँचे दर से ऋण लेना पडता है, अत इसे बडे फर्म की अपेक्षा जोखिम उठाना पडता है।

(२) बडे फर्म को अपनी प्रतिभूतियों (Securities) के प्रवर्तन (Flotation) करने में छोटे फर्मों की अपेक्षा कम खर्च लगता है। बडे फर्म को लाभ तथा हानि के सचयन (Pooling of the Profits and Losses), बाह्य बाजार की अवस्थाओं के अध्ययन की अधिक योग्यता तथा योग्यतर प्रशासन के कारण जोखिम की मात्रा पर्याप्त रूप में कम होगी।

(३) बडा फर्म, वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से छोटे फर्म की अपेक्षा आय सम्बन्धी स्थायित्व का अधिक प्रदर्शन कर सकता है। ऐसा इसीलिए होता है कि बडे फर्म के लाभ और हानि की दर एक सकुचित दायरे में घटती और बढती है। इसके विपरीत फर्म जितना ही छोटा होगा लाभ तथा हानि की मात्रा उतनी ही बडी होगी। बहुत अधिक सफल छोटे व्यवसाय के लाभ की दर बहुत ही ऊँची होगी और हानि भी उस दर से होगी। लेकिन बडे फर्म की ऐसी नितान्तता औसत के निकट होती है।

(४) यह भी सम्भव है कि छोटे व्यवसाय का प्रत्याय (Return) मूलत लघुकालीन प्रत्याय हो। क्योंकि लागत के आकडे स्वामी सचालक की योग्यता तथा उसे प्रतिस्थापित करने की कठिनाई की पूर्ति करने की गुजाइश नहीं रख छोडते। केवल बडा फर्म ही आसानी से व्यवसाय की निरन्तरता को बिगाडे बिना ऐसे प्रतिस्थापन का कार्य कर सकता है।

(५) मन्दी तथा व्यावसायिक कठिनाई के समय बडे फर्म को अपेक्षत अधिक वित्तीय साधन प्राप्त हो सकते है। यद्यपि सभी व्यवसाय में अनिश्चितता के तत्व विद्यमान है, फिर भी इसका वास्तविक प्रभाव बडी इकाई पर थोडा और छोटी इकाई पर अधिक होता है। हो सकता है कि छोटे व्यवसायी का बच जाना किसी एक व्यवहार (लेन देन) की सफलता पर आधारित हो। इसके विपरीत बडे फर्म को साधन अधिक प्राप्त होते है तथा आय अनेक कोटि की होती है। हानि तथा विफलताओं की सख्या छोटे मनुष्यों की मौलिक कमजोरी का इजहार पेश करती है।

(६) एक बडी कम्पनी अपनी हानि को अपने लाभ से सन्तुलित करने की प्रवृत्ति रखती है, यह निज का बीमा व्यवसाय करती है जो छोटा फर्म करने में असमर्थ है। जब एक क्षेत्र में कार्य बन्द हो जाता है तो नये क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि वर्ष का लाभ नये माल के प्रयोग लागत के कारण कम हो जायेगा, लेकिन व्यवसाय का समामेलित व्यक्तित्व प्रतिवर्ष बना रहेगा। हो सकता है कि अंशधारी को

वैकल्पिक रीति पर थोडा कम मुनाफा मिले लेकिन लाभ पाने की निश्चितता लघुप्रत्याय से होने वाली हानि की पूर्ति कर सकती है।

(७) असाध्य ऋणों के उन्मूलित होने की ज्यादा सम्भावना है। फर्म के एकाधिकारिक (Monopolistic) होने पर ऋणी ऋण का भुगतान करने से इनकार नहीं कर सकता, चूंकि उसको यह डर बना रहेगा कि कहीं ऐसा न हो कि उसे माल का मिलना बन्द हो जाय।

बाजारदारी में मितव्ययिता—(१) बडे परिमाण मे बिक्री के द्वारा बडे फर्म की बिक्री व्यय में बचत होती है। थोक परिमाण म माल दूसरी जगह भेजे जा सकते है जिसका परिणाम प्रति इकाई प्रेषित माल मे बचत होता है।

(२) विज्ञापन लागत प्रति उत्पादित इकाई बहुत कम होगी यद्यपि विज्ञापन पर खर्च की गयी रकम वास्तव में बहुत अधिक हो सकती है।

(३) बडा फर्म लाभपूर्ण रीति से विक्रय और वितरण अभिकर्ताओं को कार्यरत रख सकता है।

(४) सभी चालू किस्म के मालों की पूर्ति की जा सकती है लेकिन केवल उन्ही फर्मों के द्वारा जिनका पार्श्विक समेकन (Lateral Integration) हुआ है।

(५) बडा फर्म प्राप्त आदेशों की पूर्ति शीघ्रता से कर सकता है चाहे उन आदेशों का आकार कितना ही बडा क्यो न हो।

(६) चूंकि बड़ा फर्म देश भर के बाजार के लिए सब तरह के मालों का निर्माण करता है, अत: वह दोहरे भाड़े (Cross Freight) को समाप्त कर सकता है। ऐसा देश के विभिन्न भागों में उसी प्रकार की विभिन्न फर्मों के संयोग के द्वारा हो सकता है।

(७) व्यवसाय विस्तार के साथ व्यापार चिह्न (Trade Mark), ख्याति तथा डिजाइन के मूल्य में वृद्धि होगी।

बडे फर्म की दुर्बलताएँ—किन्तु एक छोटे आदमी को कुछ ऐसी सुविधायें प्राप्त है जो कतिपय परिस्थितियों में उसे सफलतापूर्वक बडे निर्माता (Manufacturer) या व्यापारी से प्रतियोगिता करने में समर्थ कर सकती है, और इन्ही कारणो से फिर भी छोटे फर्म सफलतापूर्वक कायम हैं यद्यपि दीर्घमान सचालन की ओर प्रवृत्ति बढ रही है। एक दीर्घमान नियोक्ता कुछ हद तक अपने मातहत काम करने वाले व्यवस्थापकों की दया पर निर्भर करता है; हालांकि उसे ऐसा अवसर प्राप्त है कि वह सगठन-योग्यता वाले व्यक्तियों को चुने, फिर भी उसका चुनाव दोषपूर्ण हो सकता है। हो सकता है कि उनके द्वारा नियुक्त किये आदमी में सफलता के अधिकांश तत्व विद्यमान हों, लेकिन नैतिकता या अन्य दोष की वजह से उसमें पूर्णरूप से विश्वासपात्रता की कमी हो। जो भी हो, यह सम्भव नहीं कि एक वेतनभोगी प्रबन्धकर्ता या व्यवस्थापक उतना ही दिल लगाकर काम करे जितना कि वह व्यक्ति, जिसकी सफलता व विफलता अपने ही चौकन्नेपन पर निर्भर करती है। पुन: एक छोटा नियुक्तिकर्ता (Employer), वनिस्बत उस आदमी के जो अपनी शक्ति के वितरण के कारण लाभ उठाता है, प्रत्यक्ष निरीक्षण के

कारण निस्सन्देह अधिक लाभ उठा सकता है। इसके अतिरिक्त बडे फर्म में ऐसे बहुत से काम हैं जो वस्तुत आवश्यक हैं लेकिन प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में सहायक नहीं हैं, जैसे बही लेखन की लम्बी प्रणालियां, जो छोटे फर्म में बहुत थोडी हैं। बडे फर्म के बृहत् स्टाफ से जो लाभ प्राप्त होता है वह छोटे फर्म म छोटे आदमियों के द्वारा वैयक्तिक आवश्यकताओं के किये अध्ययन के बराबर हो सकता है। कुछ ऐसे व्यापार में भी, जहा पूजीवाद सर्वोपरि है, हाथ का काम बिल्कुल समाप्त हो नहीं हो गया है। बहुत से जूता बनाने वाले वैयक्तिक अवस्थाओं का ऐसा अध्ययन करते हैं कि हाथ से बनाये गये जूते म विशिष्टता प्राप्त करना ही इनके लिए लाभदायक है।

लेकिन बडे फर्म की छोटे फर्म से तुलना में कोई लाभ नहीं क्योंकि बृहत उत्पादन के लाभ इतने सुनिश्चित हैं। इस सम्बन्ध में यह समझ रखना चाहिए कि कतिपय निर्धारित अवस्थाओं म फर्म की वृद्धि पर एक स्वाभाविक रोक लग जाती है और वे शक्तियाँ जो ऐसे रोक लगाती हैं लघुतम व्यवसाय की अक्षुण्णता को बनाये रखती है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि दीर्घमाप व्यवसायों का विकास विवेक रहित आशय (Irrational Motive), वाणिज्य सम्बन्धी प्रतिष्ठा की अभिलाषा, प्रभुत्व के लिए सघर्ष और अन्त में प्राप्ति विषयक तृष्णा से निर्धारित होता है। ऐसे विचारों का कार्यान्वयन और अधिक बढ जाता है, यदि फर्मों की तथाकथित स्वय अर्थपूर्ति प्रबन्धक अभिकर्ताओं द्वारा बढ जाती है और इस प्रकार फर्म को पूजी बाजार पर निर्भर रहे बिना विस्तृत होने का अवसर मिल जाय और परिणामस्वरूप उसे ब्याजदर नियमन से छुट्टी मिल जाय। दूसरा हानिकारक सामाजिक परिणाम यह होना है बृहत्माप उत्पादन कर्मचारियों को श्रमिक वर्ग की श्रेणी में परिणत कर देता है। इन कतिपय निष्कर्षों की दृष्टि से हम बृहत माप परिचालन (Large Scale Operation) के प्राप्त करने की विविध विधियों पर विचार करेंगे।

बृहत्माप परिचालन को कार्यान्वित करने की विधियाँ—हम लोगों ने आगे यह देखा कि व्यवसाय सस्थापनों की (Business Undertakings) बढ़ने की प्रवृत्ति दो प्रकार से होती है। प्रथम विधि है किसी एक प्लाट या सस्थापन की प्रकृत विकास या समुच्चयन से स्वाभाविक वृद्धि। इस प्रकार की वृद्धि रूप म केन्द्र मूलक (Concentric) होती है, क्योंकि प्लाट बिना किसी उल्लेखनीय परिवर्तन, के अपने मूल के इर्द गिर्द ही विस्तार प्राप्त करता जाता है। उदाहरणत एक कपड़े की मिल केवल १०,००० तकुए से उत्पादन कार्य आरम्भ करे लेकिन वर्षों तक समय-समय पर तकुओं की सख्या में वृद्धि करती जाय और अन्त म तकुओं की सख्या १००,००० हो जाय जो किसी एक इकाई के लिए अधिकतम सख्या है। दूसरी विधि है किसी एक नियन्त्रण के अतर्गत समान या असमान सस्थापनो के सम्मिश्रण या केन्द्रीकरण के द्वारा वृद्धि। इस प्रकार की वृद्धि एकीकरण (Integration) के द्वारा होती है। यह एकीकरण (१) क्षैतिज (Horizontal) (२) लम्ब (Vertical) स्वजातीय या भुजीय (Lateral) तथा कर्णीय (Diagonal) हो सकता है।

क्षैतिज या समानान्तर या इकाई एकीकरण—जहा वैसी इकाइयाँ या औद्योगिक सस्थापन जो एक ही प्रकार की वस्तुएँ, जैसे मोटर गाडिया, बनाने में सलग्न है एक व्यवस्था के अन्तर्गत कर दी जाती है वहा क्षैतिज सयोग का उद्‌भव होता है। यहा दो या अधिक फैक्टरिया जो उत्पादन की एक अवस्था में सलग्न है, सयुक्त हो जाती है। जो

क्षैतिज एकीकरण

(Horiz antal Integr ation)

१	मोटर गाडिया	मोटर गाडियाँ	मोटर गाडिया	→बाजार
२	कपडे की मिल	कपडे की मिल	कपडे की मिल	→बाजार
३	खाड की मिल	खांड की मिल	खांड की मिल	→बाजार
४.	कोयले के स्थानीय व्यापारी	कोयले के स्थानीय व्यापारी	कोयले के स्थानीय व्यापारी	→बाजार

चित्र न० १

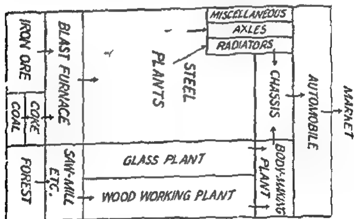
फर्म एक ही धरातल या व्यवसाय में एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी है या जो समान व्यवसाय के क्षेत्र में है, एक दूसरे के पास सयुक्त हो जाते है। यह सबसे अधिक प्रचलित कोटि का एकीकरण है जो उपभोक्ताओ के लिए सबसे अधिक हानिप्रद सिद्ध हुआ है। यह एकाधिपत्य स्थापित करने का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

क्षैतिज एकीकरण से होने वाले लाभ महत्त्वपूर्ण है। केन्द्रीकृत थोक खरीद, केन्द्रीकृत विशिष्ट सेवाओ, जैसे खोज व इजीनियरिंग तथा सम्मिश्र विज्ञापन, के लाभ असदिग्ध है। ऐसा सम्भव है कि सम्मिश्रण (Consolidation) के द्वारा प्लांटो की पुनर्व्यवस्था के परिणामस्वरूप एक ही स्थान पर अधिकतम मात्रा म उत्पादन हो, तथा प्रत्येक प्लाट को सर्वाधिक अनुकूल काम मिले। सबसे बडा लाभ यह है प्रतियोगितात्मक बल में अधिक वृद्धि हो जाती है, क्योकि सम्मिश्रण से बाजार मूल्यो पर नियन्त्रण का दायरा बढ जाता है।

लम्ब या प्रक्रिया एकीकरण (Vertical or Process Integration)—लम्ब एकीकरण से जो आकार वृद्धि होती है वह क्षैतिज एकीकरण वाली आकार वृद्धि से बहुत भिन्न है। लम्ब एकीकरण के अन्तर्गत उन सगठनो का एकीकरण होता है जो विभिन्न धरातलो पर स्थित होते है या जो एक ही उद्योग की क्रमिक अवस्थाओ या व्यापार का प्रतिनिधित्व करते है। यह निर्मित वस्तु की निर्मित प्रक्रियाओ या अवस्थाओ का ऐक्य है जो कच्चे माल से प्रारम्भ होकर निर्मिति से गुजरते हुए, निर्मित वस्तु तथा तत्सम्बन्धी वितरण में समाप्त होता है। जो सगठन सयुक्त होते है वे एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी नहीं बल्कि एक के ऊपर दूसरा इस भाति स्थित होते है और एक, दूसरे की निर्मित वस्तु को कच्चे माल की तरह प्राप्त करता है। उपक्रम की प्रत्येक इकाई एक निर्मित वस्तु बनाती है जो दूसरी प्रक्रिया (इकाई) के लिए कच्चा माल हो जाती है, इस तरह यह काम उस समय तक चलता है जब तक वस्तु पूर्णरूपेण बन न जाय। लम्ब एकीकरण का उल्लेखनीय उद

हैं कच्चा लोहा (Pig Iron), लोहे की गलाई (Smelting) तथा लोहे व इस्पात से तरह-तरह की चीजों का निर्माण। टेक्सटाइल उद्योग दूसरा उदाहरण है जहाँ धुनाई, कताई तथा बुनाई जैसी सम्बद्ध प्रक्रियायें एक संगठन के अन्तर्गत सम्पादित होती हैं। ऐसे एकीकरण में आधारभूत (Basic) या खनिज उद्योग (Extractive) से लेकर निर्मित वस्तु तक—और बाजारदारी तक भी, सभी अवस्थाएं एक में मिल जाती हैं। इन अवस्थाओं को प्रायः उद्धारणात्मक (Extractive) (कच्चा माल) विश्लेषणात्मक (Analytical) (अंगों का तनुकरण) (Fabrication), एकत्रीकरण निर्मित माल बनाने के लिए अंशों का एकत्रित करना (Assembling) तथा बाजारदारी (Marketing) कहा जाता है। हमारे देश में रेल के क्षेत्र में हम लम्ब एकीकरण का उदाहरण पाते हैं। उदाहरणतः ई० पी० रेलवे जी० आई० पी० रेलवे के साथ एकीकृत है या ईस्ट इण्डियन रेलवे के साथ या बी० बी० व सी० आई० रेलवे के साथ और व्यावहारिक क्षेत्र में यह सभी रेलें एक प्रणाली की तरह काम करती हैं। हम लोग इस तरह एकीकरण की व्याख्या करने के लिए मोटरगाड़ी निर्मित का उदाहरण लेंगे।

लम्ब एकीकरण (Vertical Integration)



चित्र सं० २

यह उन इकाइयों के एकीकरण का उदाहरण है जो सामान्यतः स्वतन्त्र हैं या कम से कम कभी हाल तक अपेक्षतः स्वतन्त्र थीं। यहाँ पर बात विचारणीय है कि यह उन सम्पादनों का पूर्णतः एकीकृत समूह है जिसमें कच्चे माल से विक्रय माल मोटर गाड़ी की निर्मिति के लिए सभी प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं। एकीकरण के पहले कच्चे माल कच्चा लोहा, कोयला, जंगल का स्वामित्व—तीन विभिन्न फर्मों के हाथ में होगा तथा गलाई, तापन, ढलाई, लकड़ी चिराई तथा शीशा निर्माण कई अन्य विभिन्न फर्मों के द्वारा सम्पादित होंगे। मोटरगाड़ी निर्माता मोटरगाड़ी का फ्रेम पहिया आदि बनाने

के लिए इस्पात खरीदेगा लेकिन एक्सेल तथा अन्य बहुत से पुर्जे दूसरे से बनवायेगा। एकीकरण के काम की समाप्ति के बाद वह मोटरगाडी को बाडी दूसरी जगह बनायेगा। जब माल बिक्री के लिए बनकर तैयार हैं तब वह बिक्री का कार्य किसी विनरक कम्पनी को सौंप देगा। अब एकीकरण हो जाने के बाद सभी क्रमिक प्रक्रियाएँ कच्चे माल से मोटर-गाडी निर्माण तक एक ही संगठन के हाथ में हैं।

एकीकरण उस निर्माता से आरम्भ हो सकता है जो पूर्ति तथा बाजार पर नियन्त्रण की अभिलाषा करता है, यह उस विक्रेता से प्रारम्भ हो सकता है जो विक्रेय माल पर ज्यादा अच्छा नियन्त्रण चाहता है, यह कच्चे माल के उस उत्पादन कर्ता से प्रारम्भ हो सकता है जो माल का विकास चाहता है या इसकी उत्पत्ति सभी पक्षों के पारस्परिक हितों की मान्यता के फलस्वरूप हो सकती है।[1]

उन उद्योगों में जिनमें निम्नांकित लक्षण पाये जाते हैं, लम्ब एकीकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है।

(१) जहाँ उत्पादित माल का गुण (quality) महत्वपूर्ण है। यहाँ निर्मित माल कच्चे माल का निर्धारण करता है। अतः कच्चे माल पर नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है।

(२) जहाँ एक उद्योग का निर्मित माल दूसरे उद्योग के द्वारा कच्चे माल की तरह व्यवहृत होता है।

(३) जहाँ एक प्रक्रिया का अन्त स्वभावतः दूसरी प्रक्रिया के आरम्भ में होता है।

(४) जहाँ 'सन्तुलित उत्पादन' महत्वपूर्ण है यानी निर्मिति के प्रत्येक स्तर पर बिल्कुल उचित परिमाण में उत्पादन, जैसे कताई और बुनाई, किया जा सके।

(५) जहाँ सुपुर्दगी (Delivery) के समय को दृष्टि में रखकर पूर्ति का नियन्त्रण करना है। एकीकरण इस दिशा में सहायता प्रदान करता है कि प्रत्येक प्लाट में कम से कम माल का स्टाक रखा जा सके।

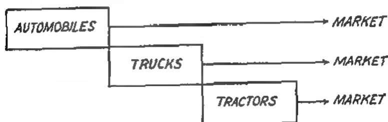
मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि गुण-प्रधान मालों का उत्पादन करने वाले एकीकृत होते हैं तथा सस्ते मालों का उत्पादन करने वाले एक दूसरे से अलग होते हैं। निस्सन्देह यह एकीकरण भाण्डारीकरण (Storage) विक्रय, क्रय निरीक्षण तथा उत्पादन की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में माल को ले जाने में परिवहन व्यय की दृष्टि से पूंजी की बचत करता है। लेकिन बृहत्माप उद्योगों को छोडकर लम्ब एकीकरण शायद ही प्रगति कर सकता है, इस एकीकरण को उत्पादित माल की सादगी तथा समरूपता में बडी सहूलियत होती है। लेकिन चूंकि उपक्रम का बड़ा होना अनिवार्य है, अतः इसका सफलतापूर्वक नियन्त्रण करना और विशेषकर तब जब यह एकीकरण असमान इकाइयों से बना है, बहुत ही कठिन कार्य है। यद्यपि संगठन व व्यवस्था की आधुनिक विधियों ने बृहत् उपक्रमों को सफलतापूर्वक नियन्त्रित करना पहले से आसान बना दिया है फिर भी खतरा बिल्कुल समाप्त हो गया हो, ऐसी बात नहीं है। जिन

1 Kimball, Principles of Industrial Organisation, p. 60

उद्योगों में ऊँचे दरजे का एकीकरण हुआ है उनमें भी जोश के अभाव की प्रवृत्ति रहती है तथा उन्हें उत्पादन में परिवर्तनों के अनुकूल होना कठिन है।

भुजीय या सम्बन्धित एकीकरण (Lateral or Allied Integration)—जहाँ विभिन्न प्रकार की वस्तुएं, फिर भी एक जाति की, एक ही संगठन के द्वारा निर्मित की जाती हों, वहाँ भुजीय एकीकरण का जन्म होता है। कहने का अर्थ यह है कि विश्लेषणात्मक अवस्था की प्राप्ति के बाद विभिन्न फर्म विभिन्न वस्तुएं अलग अलग न बनाकर एक ही साथ हो जाते और तब उन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। उदाहरणतः जब कच्चा लोहा विश्लेषणात्मक अवस्था में गलाई को पार कर जाता है तब वह अनेकों प्रकार से तथा लोहा व इस्पात के माल निर्माण की बहुत सी प्रक्रियाओं में व्यवहृत होता है और इस प्रकार एक फर्म सुइयाँ बना सकती है, दूसरी कैंची, तीसरी पिन और चौथी मछली पकड़ने की वंसी। जब ये फर्म साथ हो जाते हैं लोहा गलाने का काम तो एक स्थान पर होता है, और ये वस्तुएँ तथा अन्य बहुत सी मिलती-जुलती चीजें एक ही फर्म के द्वारा निर्मित की जाती हैं। इसी प्रकार जब चमड़ा पका लिया गया हो तब घोड़े की जीन व लगाम, सूटकेस व थैले तथा बहुत-सी फैन्सी चीजें (Fancy Goods) भुजीय एकीकरण के बाद अलग-अलग फर्म के द्वारा न बनायी जाकर एक ही फर्म के द्वारा बनाई जाती हैं। प्रोफेसर फ्लोरेन्स के शब्दों में इस एकीकरण के द्वारा हम 'आधार को अधिक प्रशस्त करते हैं।'

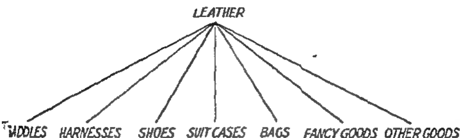
भुजीय एकीकरण Lateral Integration



चित्र नं० ३

भुजीय एकीकरण दो प्रकार का होता है विस्तारक (Divergent) तथा संकोचक (Convergent)। जब एक सामान से बहुत सी चीजें बनायी जाती हैं तब एकीकरण विस्तारक होता है और जब विभिन्न कच्चे मालों को एक वस्तु के निर्माण के लिए एकत्रित किया जाता है तब एकीकरण संकोचक होगा। विस्तारक एकीकरण में एक ही प्रक्रिया या उद्गम से तरह-तरह के मालों का निर्माण होता है। लेकिन संकोचक एकीकरण की अवस्था में एक ही प्रक्रिया या बाजार में सामान केन्द्रीभूत होते हैं।

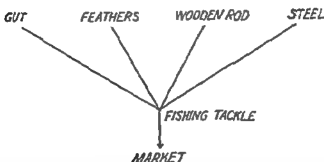
विस्तारक भुजीय एकीकरण
(Divergent Lateral Integration)



चित्र न० ४

चमड़ा कच्चे माल का उद्गम है जिसमे जीन, लगाम, जूते, सूटकेस हाथ के थैले फैन्सी माल आदि फूट निकलते है। चूकि ये सभी समान प्रक्रिया मे निकलते है तथा सबो का कच्चा माल एक ही है, अत थोक की अर्थ-प्रणाली लागू होती। अब एक सगठन समान माल की खरीद करता है।

सकोचक भुजीय एकीकरण
(Convergent Lateral Integration)



चित्र नं० ५

यहा यह उल्लेखनीय है कि सकोचक एकीकरण में कच्चे माल अनेको प्रकार के होते है, जैसे पख, रोदा, इस्पात, लकडी का डडा जिनमे मछलीमार (Angler) के लिये बनायी जाती है। वे सब एक ही बाजार में जमा होते है, अत उन सबके लिए एक ही बाजार-व्यय होता है।

भुजीय एकीकरण लाभदायक रीति से उस स्थिति में किया जा सकता है जहा प्रक्रिया विशेष एक प्रकार के उत्पादन के लिए पूरे तौर से व्यवहृत की जा सकती है तथा दूसरे व तीसरे प्रकार की प्रक्रिया जो पहिली प्रक्रिया से प्रसूत होती है, बीच की रिक्तता (gap) की पूर्ति करे। यह एकीकरण वहा भी व्यवहृत होता है जहा उत्पादन एक

दिशा में वढ़न के बजाय कई दिशाओं में बढ़े और इस प्रकार उत्पादन श्रम में जो रिक्तता है, उसकी पूर्ति के लिए जोखिम उठाये जा सकते हैं। इस उद्देश्य से विभिन्नदिशीय विस्तारक एकीकरण का संगठन होना कि यदि एक प्रकार के माल के लिए माँग कम हो जाय तो इस क्षति की पूर्ति दूसरे प्रकार के माल उत्पादन की वृद्धि से हो। एक किस्म की पूर्ति की माँग की समाप्ति से पैदा होने वाले जोखिम या बढ़ती लागत से बचने के हेतु मराचार एकीकरण के द्वारा बहुत् फर्मों की रचना हो सकती है। भुजीय एकीकरण को सामान और माल का एकीकरण भी कहा जाता है।

कर्णीय या सेवा एकीकरण (Diagonal or Services Integration)—सेवा एकीकरण की उत्पत्ति उस समय होती है, जब एक संगठन अपने अन्तर्गत सम्पादित होने वाली विभिन्न प्रकार की मुख्य उत्पादन प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक सहायक माल व सेवाओं की स्वयं व्यवस्था करे। उदाहरणतः एक संगठन अपने विजायन या शक्ति की व्यवस्था कर सकता है अपनी मशीन व औजार स्वयं बना सकता है, तथा मरम्मत के लिए अपनी वढ़ाई की सेवाओं का उपयोग कर सकता है। हो सकता है कि यह संगठन अपने प्रधान माल को बिक्री के लायक बनाने के लिए सहायक वस्तुओं का निर्मित करे। उदाहरण के लिए सिगरेट निर्माता टिन का डिब्बा पैकेट आदि निर्माताओं से न खरीदकर स्वयं बनाये।

सेवा एकीकरण से यातायात (Transport) संवाद वहन (Communication) कार्यपालन या कार्यान्वयन (Exectution) तथा निरीक्षण में मितव्ययिता होती है क्योंकि श्रमवद्ध प्रक्रियाएं व सेवायें एक ही प्लांट के अन्तर्गत सम्पादित होती हैं।

उपसंहार—अन्त में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एकीकरण एक सापेक्ष शब्द है, क्योंकि व्यवहारतः सभी औद्योगिक प्लांट किसी न किसी हद तक एकीकृत होते हैं। लेकिन एकीकरण की मात्रा अपरिवर्त्य नहीं होती। कुछ टक्सटाइल फर्म बुनाई और कताई दोनों कार्य करते हैं परन्तु कुछ केवल बुनाई का कार्य ही करते हैं। कुछ फर्म तो विद्युत शक्ति की स्वयं व्यवस्था करते हैं लेकिन दूसरे कम्पनी से खरीदते हैं। इस प्रकार अन्य कई उदाहरण हैं। एकीकरण की मात्रा इतनी बड़ी हो सकती है कि उसके अन्तर्गत चारों प्रकार के एकीकरण आ जाएं। उदाहरण के लिए, तम्बाकू उद्योग में तम्बाकू उपजाना, तम्बाकू तैयार करना व्यवहार में आने वाली मशीनें निर्मित करना, तमबाकू जर्दा, सिगार, सिगरेट, पाइप तम्बाकू बनाना, लिथो रा़टस, टीन की परत, टिन या डिब्बा, पैकेट तथा पैकेज बनाना आदि और अन्त में पैक निर्मित माल की खुदरा बिक्री—ये सभी कार्य करीब-करीब भुजीय तथा कर्णीय रूप से एकीकृत कर दिये गये हैं। जब दो या अधिक फर्म जो एक प्रकार के कार्य करते हैं संयुक्त हो जाते हैं, तब हम क्षैतिज संयोग पाते हैं।

अध्याय : : ४

प्लांट का स्थान व अभिन्यास

(Plant Location and Layout)

वह क्षेत्र, जिसमें किसी फैक्ट्री की स्थापना होती है, प्राय मौके की बात है। लेकिन जिस रीति से कतिपय उद्योग किसी क्षेत्र से सम्बद्ध होते हैं, उससे उन घटको का महत्त्व प्रकट होता है जो सस्थापन को प्रभावित करते हैं। इसमें सन्देह नही कि स्थानीय विषमताओ को दूर करने की दिशा मे पर्याप्त प्रगति हुई है और इस तरह मशीनो तथा फैक्टरी भवन के प्रमाणीकरण (Standardisation), भृति दर और ब्याजदर के समतलीकरण (Levelling) और सुदूर क्षेत्रो में स्थित उपभोक्ताओ की आदतो के प्रमाणीकरण के द्वारा स्थापन घटको की महत्ता कम कर दी गयी है, फिर भी निर्माण उपक्रम (Manufacturing Enterprise), और विशेषकर जब लघुमाप सस्थापन हो, के लाभपूर्ण सचालन पर स्थान निश्चित रूप से अपना असर डालता है। छोटे सस्थापन का बाजार प्रधानत स्थानीय होता है तथा यह निकटस्थ विनियोक्ताओ को ही रखता है। किसी एक उद्योग के सम्बन्ध मे स्थान की चाहे जो भी महत्ता हो, जब स्थान-सम्बन्धी निर्णय एक बार हो जाता है तब स्थानान्तरण की कठिनाइयो के कारण स्थान मे परिवर्तन करना बिल्कुल असम्भव हो जाता है। ऐसे अनेको घटक है जो किसी फर्म या व्यवसाय के स्थापन को करीब-करीब निर्धारित करते हैं, लेकिन एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि किसी प्लाट का स्थान-निर्णय इस भाति होना चाहिए कि जो लोग इसकी सफलता के अभिलाषी हैं वे लाभपूर्वक इसके माल की बिक्री कर सकें तथा उसे कम से कम व्यय पर निर्मित कर सकें।

उन मौलिक घटको को, जो सलाभ सचालन हित प्लाट का स्थान निर्धारित करते हैं, निम्नलिखित श्रेणी मे विभक्त किया जा सकता है —

क्रय—

१. कच्चे माल से निकटता।
२ कच्चे माल तक पहुचने की सुविधा।

निर्मिति—

१. ग्रहणशील (Adaptive) श्रम-समुदाय से निकटता।
२. शक्ति-स्रोतो से निकटता।
३. मरम्मती कारखानों तक सुलभ पहुँच।
४. अच्छे बैंको तथा उधार सम्बन्धी सुविधाओ से निकटता।
५. पर्याप्त यानायात तथा सचार सुविधाएँ।

६. सस्ती रीति पर प्लाट को निर्माण करने तथा विस्तृत करने की योग्यता।
७. सरकारी नियमन तथा आर्थिक सहायता।
८. आग बुझाने की पर्याप्त सुविधाएं।
९. शिक्षा के सगठन व विकास की अवस्था।
१०. अनुकूल मिट्टी, जलवायु, तथा भूमि रचना।

अन्य उद्योगों के साथ सम्बद्धता—
१. पूरक उद्योग।
२. प्रतिद्वन्द्वी उद्योग।
३ प्रारम्भिक आरम्भ का गतिलाभ (Momentum)

विक्रय—
१ बाजार से निकटता तथा पहुँच।
२. आबादी।
३. स्टाइल आन्दोलन।

क्रय—

कच्चे माल से निकटता—कच्चे माल के प्राप्त करने में जो व्यय या लागत होती है उसका स्थान पर बड़ा असर पड़ता है। कच्चे माल की लागत में कई प्रकार के व्यय सम्मिलित हो जाते है। आरम्भिक क्रय मूल्य, क्रय व्यय तथा भाड़े की दर के अतिरिक्त रिजर्व स्टाक के रखने में भी कतिपय व्यय हैं जिनका इसमें जोड़ा जाना आवश्यक है। रिजर्व स्टाक का रखना अनिवार्य हो जाता है ताकि पूर्ति की अनियमितता (Irregularity of Supply) से होने वाली असुविधा से बचा जाय। क्वालिटी या गुण के बदलते रहने के कारण उत्पादित माल में रद्दोबदल करने में जो खर्च पड़ते हैं वे भी इन्हीं व्ययों में जोड़ लिये जाते हैं। भरोसे योग्य पूर्ति, मालों के किस्म में अनेकता—ताकि मनपसन्द माल चुने जा सकें—का प्रभाव इतना अधिक होता है कि मौलिक पूर्ति के क्षेत्र के बजाय प्लाट को बड़े बाजार में अधिक सफलता होगी। अपर्याप्त या दोषपूर्ण वर्गीकरण के कारण मौलिक पूर्ति की निकटता के बजाय प्लाट सफलतापूर्वक ऐसे बाजार के निकट स्थित होंगे जहां पूर्ति मिलती हो तथा जहां माल एकत्रित किये जाते हों। सामग्री (Material) की दृष्टि से आदर्श स्थिति वह है जहां सभी घटकों के मिलने से निर्मित माल की प्रति इकाई कच्चे माल की लागत निम्नतम हो। व्यवहृत सामग्री की प्रति इकाई लागत में लागत की परीक्षा नहीं की जा सकती। बम्बई में सूती उद्योग, कलकत्ता में पाट उद्योग तथा जमशेदपुर में लोह या इस्पात उद्योग के स्थापन पर इसी घटक का प्रभाव पड़ा है। कच्चे माल की पूर्ति के प्रभाव के अतिरिक्त मोटे तौर पर पड़ोस में प्राप्त उन प्राकृतिक साधनों का भी प्रभाव पड़ता है जिनका होना लोगों के कल्याण के लिए आवश्यक है। कच्चे माल की लागत न केवल उन प्राकृतिक साधनों पर निर्भर करती है जो प्रत्यक्ष रूप से उद्योग के काम में आते है, वरन् श्रम, पूजी और व्यवस्था की स्थानीय लागत पर भी निर्भर करती है। फिर ये घटक इस बात पर निर्भर करते हैं कि सन्तोषजनक जीवन-यापन के लिए आवश्यक चीजें पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं या नहीं।

कच्चे माल तक पहुँच—किसी सामान की भरपूर मात्रा में केवल उपलब्धि ही पर्याप्त नहीं। उपलब्धि तक आसानी से पहुँच सकना भी आवश्यक है। यदि वह क्षेत्र पहुँच के बाहर है तो उसका विदोहन (Exploitation) भी नहीं हो सकता, क्योंकि वस्तुत वह उन साधनों से रहित है जो मानव जीवन के लिए आवश्यक है। कच्चे माल की उपलब्धि इतनी कठिन बात नहीं है जितनी श्रमिको की प्राप्ति। यदि अभीष्ट सामग्री के साथ वे सामग्रियां, जिन पर उद्योग निर्भर करता है, उपलब्ध नहीं है तो इसके पहले कि उनका उपभोग कोई मूल्य रखे, उनमे अतिशय गुण व परिमाण का होना आवश्यक है क्योंकि अधिक लागत के कारण विदोहनशीलता (Exploitability) का सीमान्त ऊँचा होगा। अतएव स्थापन की दृष्टि से कच्चे माल के मूल्य पर पर्याप्त ढुलाई सुविधा, उपजाऊ मिट्टी तथा अनुकूल जलवायु का प्रभाव पड़ता है।

निर्माण (Manufacturing)

पर्याप्त ग्रहणशील (Adaptive) श्रम से निकटता—प्लांट की आवश्यकतानुसार नियन्त्रित तथा निर्भर-योग्य श्रम की पर्याप्त उपलब्धि निस्सन्देह महत्वपूर्ण है लेकिन इसके अतिरिक्त कई बातें हैं, यथा निर्वाह-व्यय तथा श्रम की दक्षता व प्रकृति, जिन पर विचार करना आवश्यक है। श्रम की पूर्ति सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जो किसी स्थापित उद्योग को स्थिरता (Inertia) प्रदान करता है। औद्योगिक समाज के निर्मित होने में समय लगता है और जब एक बार यह निर्मित हो जाता है तो उसे मशीन की तरह स्थानान्तरित कर देना आसान कार्य नहीं है। यह प्रवृत्ति भारतीय श्रमिको में भी दिखायी देने लगी है। उदाहरणत भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के बीच, जो देहातो के रहने वाले हैं, स्थायित्व-विहीन प्रवृत्ति के विपरीत बम्बई, जमशेदपुर, मद्रास, नागपुर, अहमदाबाद जैसे उद्योग प्रधान शहरों में स्थायी औद्योगिक आबादी की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है। औद्योगिक श्रमिकों के इस नये वर्ग ने उस चातुरी को विकसित किया है जिसके बल पर बढ़िया माल का उत्पादन सम्भव होता है तथा जो उद्योग की स्थिति को पर्याप्त रीति से प्रभावित करती है।

शक्ति स्रोतो से निकटता—उद्योग के चक्के को संचालित करने के लिए शक्ति स्रोत ने प्लाट स्थापन तथा विकास को युगो से प्रभावित किया है। भाप इन्जिन के आने तक जल व वायु शक्ति अभीप्सित शक्ति पूर्ति थी। विभिन्न प्रकार की शक्तियो के अलग-अलग लाभ हैं। जल शक्ति के निकट उद्योग स्थापन, अविच्छिन्न प्रक्रिया वाले उद्योग, जैसे आटा पिसाई, कागज निर्माण, पल्प मिल, के लिए आवश्यक होगा क्योंकि इससे सस्ती विद्युत शक्ति उपलब्ध होगी। जहा कोयला व्यवहृत होता है, वहा बन्दरगाहो के निकट स्थापना की प्रवृत्ति होती है क्योंकि इससे यातायात लागत में कमी होगी। अभी हाल में जलविद्युत शक्ति के विकास के कारण, जिसमें उच्च दबाव लाइन (High Tension Line) के जरिये औद्योगिक केन्द्र तक विद्युत शक्ति को ले जाया जाता है, इस बात की सम्भावना है कि प्लाट स्थापन के लिए विद्युत की महत्ता में कमी हो जाय।

मरम्मती कारखानों की सहज गम्यता—मुख्यत लघुमाप उद्योग की दृष्टि से ही यह घटक महत्त्वपूर्ण है। यदि नयादेश पर्याप्त हो और मशीन बीच म ही टूट जाय तो यदि अविलम्ब मरम्मत नही हो जाती है तो फर्म की प्रतिष्ठा मे कमी होगी और वह व्यवसाय भी खो बैठेगा। बडे व्यवसाय में मरम्मत का काम फैक्टरी में हो जायगा, ऐसा कर्णीय एकीकरण (Diagonal Integration) के कारण सम्भव है।

अच्छी उधार व अधिकोषण सुविधाओ से नैकट्य—बिना धन की उपलब्धि के, जो विनियोग के कामो मे विनियोजित किया जा सके, उद्योग न तो कायम रह सकते है, और न वृद्धि ही प्राप्त कर सकते हैं। धन की प्राप्ति बैंको तथा अन्य अर्थपूर्ति गृहो में होती है। एक छोटे व्यवसाय को बैंक के निकट होना चाहिए हालांकि बडे व्यवसाय के लिए, जिसकी साख पर्याप्त प्रशस्त है, ऐसा होना कोई महत्त्व नही रखता। ऋण पर प्राप्त *होने वाली पूंजी तथा वित्तीय सस्थाओ का उसी प्रकार एक आर्थिक भूगोल है जिस* प्रकार कच्चे माल व श्रम पूर्ति का। शहर के बजाय देहात मे स्थित व्यवसाय को कम ब्याज पर पूंजी मिलती है लेकिन बडे केन्द्रो में पूंजी बडी मात्रा म उपलब्ध होती है। अतएव औद्योगिक व्यवसाय को अर्थपूर्ति का कार्य बडे से बडे वित्त बाजार में करना चाहिए, ताकि यह अपनी साख बना सके। वित्त की दृष्टि से बम्बई एक अनुकूल स्थान है। यही कारण है कि नवीन मोटरगाडी उद्योग की प्रवृत्ति वहा ही स्थित होने की है।

यातायात (Transport) व सचार (Communication)—स्थानीय *अनुकूलताओ की सीमा को भी लाघकर विकसित होने तथा कभी-कभी तो केवल कायम* रहने के लिए भी यह आवश्यक है कि यातायात उद्योग की पहुँच के भीतर हो। कच्चे माल की प्राप्ति तथा बने माल का विक्रय आवश्यक है। उद्योग के लिए जगह चुनते समय रेल, जल तथा वायु, यातायात व ट्रक यातायात की उपलब्धि व मात्रा को ध्यान में रखना अनिवार्य है। यातायात या ट्रान्सपोर्ट शब्द के कहने म भाडारीकरण (storage) तथा उठाधरी (Handling) तथा सेवा-सुविधाओ का भी बोध होता है तथा उद्योग उन्ही स्थानो मे आकृष्ट होते है जहा ये उचित मूल्य में उपलब्ध हो। कोई भी औद्योगिक प्लाट अनवरुद्ध तथा सफल रीति से सचालित होता रहे—इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रबन्धाधिकारियो को कच्चे माल, निर्मित माल, पूर्ति व मूल्य की दृष्टि से बाजार की स्थिति के बारे म सूचनाएँ मिलती रहे।

अग्नि-शामन (Fire-fighting) की पर्याप्त सुविधाएं—प्लाट के भीतर तथा बाहर कहीं से भी आग लग सकती है। यदि आग अन्दर से लगी है तो उस पर अग्नि-शामक साधनो से काबू पाया जा सकता है, लेकिन यदि आग बाहरी कारणो से लगी है तो उस पर काबू पाना कठिन कार्य है। हमारे देश के अधिकाश शहरो में आग बुझाने की सुविधाए *अपर्याप्त है और देहाती क्षेत्रो में किसी भी प्रकार का साधन उपलब्ध नहीं है।* इसका परिणाम यह हुआ है कि बीमा की किस्तो में, तथा निर्धारण (Assessment), भवन के ढाचो तथा व्यवसाय की प्रकृति के बीच कोई अनुपात हो नहीं है। अत, औद्योगिक स्थापन की दृष्टि से वैसा स्थान वाछनीय है, जहा अग्नि-शामन की पर्याप्त सुविधाए उपलब्ध हो।

शिक्षा के संगठन व विकास की स्थिति—उत्पादित माल के विकास तथा उत्पादन विधि के उन्नयन के लिए नये व पुराने दोनों प्रकार के उद्योग खोज तथा अनुसंधान पर निर्भर होते हैं। इसके अतिरिक्त, किसी भी उद्योग का लाभपूर्ण संचालन इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षित व प्रशिक्षित आदमी निरन्तर गति से मिलते रहें। दोनों प्रकार के लोगों की प्राप्ति के लिए शैक्षणिक व छ खोज संस्थाओं की आवश्यकता है। संगठित शिक्षा के बिना शायद ही कोई उद्योग अनवरुद्ध गति से विकसित होता रहे। अब तक तो हमारे देश में इस क्षेत्र में बहुत थोड़ी मात्रा में कार्य हुआ था लेकिन हाल में ही सरकार ने औद्योगिक क्षेत्रों के निकट व इर्द-गिर्द बहुतेरी संस्थाओं की स्थापना की है, जहां नवयुवकों को प्रशिक्षण मिल सकेगा।

प्लाट को विकसित करने की योग्यता—किसी भी प्लाट की रचना इस प्रकार करनी पड़ती है कि निर्माण प्रक्रिया कम से कम समय तथा सामग्री में सम्पादित की जा सके। यह भी देखना पड़ता है कि उसके चारों ओर काफी जगह छुटी हो ताकि काम को रोके बिना, जिससे उत्पादन में कमी होती है, उसमें हेरफेर या वृद्धि का काम किया जा सके। फैक्टरी भवन उसी स्थान पर बनाया जाता है जिसका मूल्य कम हो ताकि निर्मिति का ऊपरी व्यय कम से कम हो।

राज्य-नियमन (Regulation) व सहायता (Subsidy)—राज्य व राष्ट्रीय सरकार उत्तरोत्तर उन अधिनियमों की रचना कर रही है जो प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय का नियन्त्रण व निर्देशन करेंगे। निर्मिति उद्योग विशेष रूप से इन विधियों से प्रभावित होते हैं। नियुक्तों की सुरक्षा सम्बन्धी विधि (Law), दुर्घटनाओं के लिए क्षतिपूर्ति सम्बन्धी विधि, अन्य कर सम्बन्धी विधि, भवनों के उपयोग, अग्नि-रोग व सरक्षण सम्बन्धी, अनुज्ञप्तियों (Licence) तथा कच्चे माल के उपयोग व निर्धारण सम्बन्धी विधि तथा इसी प्रकार की अनेकों विधियों के फलस्वरूप उत्पादन लागत में इतनी वृद्धि हो जाती है कि लाभ की दृष्टि से उद्योग की स्थिति ही संकटपूर्ण हो जाती है; तब निर्माताओं के लिए ऐसी जगह ढूंढना, जो इस दृष्टि से अधिक लाभदायक हो, प्रायः अनिवार्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त वे निर्माता, जो नये स्थानों की खोज में हैं, इन बातों पर पहले से ही विचार कर लेते हैं। सरकार आर्थिक सहायता देकर उद्योगों के विकास की ओर प्रभावित करती है। देश के निर्मिति व्यवसाय को विदेशी प्रतियोगिता से बचाने के लिए टैरिफ का उपयोग किया जाता है और कभी-कभी तो विशेष निर्मित उपक्रमों की स्थापना तथा इन्हें चालू रखने के निमित्त, सरकारों द्वारा मोटी रकमों का अनुदान दिया जाता है। सरकारी सहायता प्लाट स्थापना को प्रभावित करती है क्योंकि इसके कारण उद्योग उन स्थानों में स्थित होता है जहां साधारणतः प्रतियोगितानुकूल अवस्था में उद्योगों का होना लाभदायक नहीं माना जायगा।

अनुकूल मिट्टी, जलवायु तथा भूमि रचना (Topography)—प्रारम्भिक विकास के काल में किसी देश के अमुक क्षेत्र या भाग के निवासी कौनसे धन्धे करेंगे, इस पर मिट्टी का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। उपजाऊ मिट्टी कृषि के लिए अवसर प्रदान करती है, तथा ऐसे उद्योगों को आकृष्ट करती है जिनमें खेती की उपज का उपयोग हो या जो

कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति करें। ऊसर मिट्टी (भूमि) लोगो को रोजी के अन्य साधनो जैसे मत्स्य-पालन (Fishing), व्यापार या निर्मिति को अपनाने के लिए बाध्य करती हैं। तप्तीकरण (Heating) व वायु नियन्त्रण (Air conditioning) की आधुनिक विधिया के विकास ने प्राकृतिक तापमान तथा आर्द्रता की महत्ता को औद्योगिक प्लाट के स्थान निर्धारक घटक की दृष्टि से कम कर दिया है। फिर भी किसी क्षेत्र या भाग के औद्योगिक कार्यालया पर जलवायु का बहुत बडा प्रभाव है। इसका श्रमिको पर प्रभाव पडता है। शीतल स्फूर्तिदायक जलवायु सर्वोत्कृष्ट कोटि के औद्योगिक श्रमिक का विकास करता है। उन्हे मकान, भोजन तथा वस्त्र प्राप्त करने के लिए काम करना ही होगा, लेकिन अति उष्ण जलवायु के निवासी, यथा उष्ण कटिबन्ध के निवासी, औद्योगिक श्रम के लिहाज से अपेक्षत कम दक्ष होते हैं। उनमें मकान, भोजन तथा वस्त्र की प्राप्ति के लिए काम करने की प्रेरणा नही रहती, क्योकि ये आसानी से प्राप्य होते हैं। आदतन वे ठडे जलवायु में रहने वाले श्रमिको की भाँई स्फूर्तिपूर्ण (Energetic) नही होते और स्वभावत वे अपने को घरेलू धन्धा के लायक शीघ्र नही बना सकते। भूमि रचना (Topography) भी स्थापन पर महत्त्वपूर्ण असर डालती है। पहाडी, ऊबड-खाबड तथा पथरीला स्थान सुगमता से कृषीय धन्धा के अनुकूल नही होता और न वहा कोई औद्योगिक कार्य ही होते हैं—सिवाय इसके कि किसी स्थान विशेष को खनिज पदार्थों का वरदान मिला हो, जिससे किसी एक किस्म का उद्योग उन्नत हो सके। पर्वतीय अवरोध, उपत्यकायें तथा बडी-बडी नदिया औद्योगिक विकास के लिए प्राय बाधा सिद्ध होती हैं। इनमें से किसी भी एक या कई के सयोग से यातायात तथा सचार सम्बन्धी कठिनाइया पैदा हो जाती हैं और व्यय भी बढ जाता है जिसके कारण उन क्षेत्रा से प्रतियोगिता मे उतरना जो अपेक्षत सहज गम्य हैं असम्भव हो जाता है। हो सकता है कि इन्ही घटको के कारण जनसख्या वृद्धि पर विपरीत असर पडे और परिणामस्वरूप सम्भावित स्थानीय उद्योगो का बाजार अति सीमित हो जाय।

अन्य उद्योगों—परिपूरक (Complimentary) तथा प्रतिद्वन्द्वी (Competitive)—का साहचर्य—कुछ निर्मितिकर्ता परिपूरक या सहायक उद्योगो के निकट स्थान चुनते हैं वे सहायक या परिपूरक उद्योग वे हैं जो उन सामग्रियो व पूर्तियो का उत्पादन करते हैं जिनका उपयोग उन्ही की निर्मिति प्रक्रियाओ मे होता है। प्लाट स्थापन की दृष्टि से इसमे उद्योग के केन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है। इसके विपरीत उद्योगो के बीच प्रतिद्वन्द्विता अक्सर उद्योगो के विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहित करती है। यह सम्भव है कि वे प्रतिद्वन्द्वी उद्योगो के साथ जो एक दूसरे के निकट स्थित हैं परस्परा के कारण बध हो जिससे नयी निर्मिति विधियों के प्रारम्भ करने में कठिनाई हो, और कम्पनियो को आपस मे श्रमिको के लिए प्रतियोगी होना पडे। इसके अतिरिक्त, हो सकता है कि प्लाटो के बीच श्रम-सकट पैदा करने की सहज ही प्रवृत्ति हो। फिर भी, जैसा कि जोन्स महोदय[1] ने व्याख्या की है, निम्नलिखित कारणो की वजह से उद्योग समूह मे ही सर्वा-

1 D Jones Administration of Industrial Enterprises pp 49-51.

सिद्ध विकसित होते हैं

१ एक क्षेत्र में कई व्यवसाय, एक व्यवसाय की अपेक्षा प्राय आसानी से सामग्रिया प्राप्त कर सकते हैं। कई समान व्यवसायों के एक जगह (Concentration) होने से उन सामानों की किस्मों में वृद्धि होती है जो पूर्तिकर्ताओं के द्वारा प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

२ व्यवसायों के एकत्रित होने से, चाहे वे एक प्रकार के या एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी ही क्यों न हों, नियुक्तिकर्ता और नियुक्त दोनों के हित में कई प्रकार से वृद्धि होती है। वह क्षेत्र, जो एक तरह के व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध हो चुका हो उन दक्ष श्रमिकों को अपनी ओर आकृष्ट करता है, जिन्होंने दूसरी जगह रोजी खो दी हैं तथा जो अपनी कारीगरी बदलने में असमर्थ हैं, तथा उन शिल्पज्ञों को, जो वैसी जगह में अपने को ज्यादा सुरक्षित महसूस करते हैं, जहा एक से अधिक नियुक्तिकर्त्ता हो। इसके अतिरिक्त, यदि किसी बडे केन्द्र का श्रम बाजार असन्तुलित हो जाता है तो उन व्यवसायों के लिए जो अधिक श्रम का उपयोग कर सकते हैं, अतिरिक्त श्रम के उपयोग का आकर्षण बढ जाता है।

३ विशिष्ट केन्द्रों में बैंक प्रमुख उद्योग की आवश्यकताओं से परिचित हो जाते हैं। उन्हें फर्मों की साख की जानकारी रहती है और वे अधिक तत्परता व निरापदता के साथ विशिष्ट व्यापारिक साख-पत्रों को भुना सकते हैं।

४ कई प्लाट मिलकर ऐसी माग पैदा कर सकते हैं जो अनेकों तरह के मरम्मत प्लाट व पूर्ति केन्द्रों तथा औद्योगिक सेवाओं, जैसे ढलाई कारखाना (Foundries), मशीन कारखाना (Machine Shop), औजार निर्माता, मिल सामग्री विक्रेता (Mill Store Suppliers) आदि की स्थापना का कारण हो।

५ यदि हम श्रम-विभाजन की पूर्णता की ओर एक कदम आगे चलें तो यह मालूम होगा कि विशिष्ट औद्योगिक केन्द्र के कारण सेवा उद्योगों में वृद्धि हो जाती है, यथा पार्ट निर्माता तथा एकत्रकर्ता (Assemblers) बढ जाते हैं जो विशेष कोटि के कार्यों को अमरूर करते हैं और उच्च कोटि की पूर्णता प्राप्त करते हैं। इन व्यवसायों के होने से यह सम्भव होता है कि उपक्रमी स्वेच्छानुसार सीमित क्षेत्रों में अपने को लगाये रहें जो उनकी पूजी व प्राविधिक योग्यता के अनुकूल हो।

६ एक स्थान में सम्बद्ध या समान निर्माताओं के रहने से स्थानीय बाजार में पूर्णता आती है। एक फर्म की ख्याति दूसरे फर्म की ख्याति की पूर्ति करती है और इस प्रकार उस शहर का नाम ही व्यापार चिन्ह (Trade Mark) हो जाता है और फर्म केवल इस बात से प्रतिष्ठित हो जाता है कि वह रव्यप्रतिष्ठ जगह में स्थित है।

७ विशिष्ट निर्मिति केन्द्र विभिन्न प्रकार के व्यापारिक सेवा उद्योग, जैसे बधाई करने वाले (Packers), बीमा करने वाले (Insurers), माल चालान करने वाले (Forwarders), पेशेवर ग्रेड करने वाले, विज्ञापन अभिकर्त्ता (Advertising Agents), आम माटागार (Public Warehouses) आदि को प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं।

प्रारंभिक आरंभजन्य गतिलाभ (Momentum of an Early Start)– साधारणत , ऐसी जगह उद्योग शुरू करने में, जहाँ पहले से ही इस प्रकार के उद्योग सफल हो चुके हैं, लोग निश्चिन्तता का अनुभव करते हैं। वह उद्योग, जो किसी स्थान में कुछ काल तक सफलतापूर्वक सचालित हो चुका है, चल निकलता है, क्योंकि केन्द्र की आरम्भजन्य गति इतनी अधिक होती है कि वह दूसरे उद्योग को इस कोटि में आने नही देती। किसी स्थान में आरम्भजन्य गति स्थापन की दृष्टि से इतनी महत्त्वपूर्ण होती है, कि दो शहरो में से, जो किसी किस्म के माल निर्मिति के लिए समान रूप से अनुकूल है, आरम्भजन्य गति वाला विकसित होगा और वह उद्योग के केन्द्रीयकरण को आकृष्ट करेगा और दूसरा शहर इस दिशा में बिल्कुल असफल रहेगा। कोई क्षेत्र अनुकूल समय में ही निर्मिति कार्य के लिए अनुकूल है और जब कोई दूसरा क्षेत्र निर्मिति का कार्य शुरू कर देता है तब इसकी अनुकूलता खत्म हो जाती है। स्थान ठीक है, लेकिन अनुकूल समय बीत चुका।

विक्रय––

विक्री बाजार तक पहुंच तथा उससे निकटता––बाजार की निकटता से जो लाभ प्राप्त होते हैं उसकी तुलना कच्चे माल की निकटता से नही करनी चाहिए। जब निर्मितिकर्त्ता बाजार के निकट है तब बाजार की गतिविधि के सम्पर्क में रह सकता है। कभी-कभी औद्योगिक केन्द्र में विशेष कोटि के लाभ उपलब्ध होते हैं, क्योंकि क्रेता उसके आस-पास चक्कर काटते रहते हैं। जब क्रेता किसी निर्मिति प्लाट को देखने जाता है तब वह उत्पादन कर्ता तथा डिजाइन निर्माता के गहरे सम्पर्क में आता है। इससे निर्मितिकर्त्ता ग्राहकों से अपना सम्बन्ध उन्नत कर सकता है तथा उनकी की जानेवाली सेवाओं को भी उन्नत कर सकने में समर्थ होता है। बाजार की गम्यता या बाजार सम्बन्धी भूगोल स्थापन के महत्व को बढा देता है। बाजार के भूगोल का मूल्यांकन करने के लिए वाणिज्य सम्बन्धी दूरी वास्तविक दूरी नही है। यह दूरी मीलो के माध्यम से नही नापी जाती, वरन् नगद, (Cash), उद्व्यय (Outlay), समय, व्यय, जोखिम, असुविधा तथा मानसिक सुस्ती, (Mental Inertia) जिन पर विजय पाना जरूरी है, के माध्यम से वह दूरी नापी जाती है।

लोक-स्वरूप (Characteristics of People)—सभी प्रकार की निर्मितियों का उद्देश्य होता है बाजार में उन मालों को प्रस्तुत करना जिन्हें लोग खरीदें। किसी समाज के लिए कैसा बाजार चाहिए—यह आबादी, धन तथा लोगों की आदतों पर निर्भर करता है। उस माल की निर्मिति व्यर्थ है जिसे लोग नही चाहते हो या जिसे वे वाञ्छनीय नही समझते हो तथा जिसे खरीदने के लिए लोगो के पास क्रय शक्ति (Purchasing Power) नही हो। उपभोक्ता मालो की बिक्री तभी हो सकती है जब लोगों की चिन्तन व जीवन-यापन की आदतें इस प्रकार की हों कि उनमे इन मालो को अपने जीवन में सम्मिलित करने के लिए आग्रह किया जा सके।

स्टाइल आन्दोलन—स्टाइल की दृष्टि से लोग उस बाजार से माल नही खरीदेंगे

जिनमें नये स्टाइल का आगमन बहुत देर से होता हो। स्टाइल आन्दोलन का नियम है कि यह बडे शहरो के बाद छोटे शहरो में और धनाढ्य क्षेत्र से अपेक्षाकृत कम धन वाले क्षेत्र में जाता है।

फैक्टरी के निमित्त स्थान (Factory Site)

ग्राम, शहर या पार्श्ववर्त्ती क्षेत्र—ग्राम या ग्रामीण क्षेत्रो से प्राप्त होने वाले आर्थिक लाभ थोडे हैं, लेकिन कतिपय उद्योगो के लिए ये महत्वपूर्ण हैं। देहातो में भूमि सस्ती मिलती है, अत कारखानो का फैलाव अधिक हो सकता है और आग लगने का जोखिम बहुत कम हो जाता है तथा एक-मंजिले भवनो का मनचाहा उपयोग हो सकता है। स्थानीय कर (Rates), भाटक (Rent) तथा कर की मात्रा थोडी होती है। छोटे स्थान में श्रमिक वर्ग अधिक स्थिर-मति (Constant) तथा कर्तव्यपरायण होता है, वह मिल-जुल कर काम करने का अधिक अभिलाषी होता है क्योकि प्रत्येक श्रमिक एक दूसरे को अच्छी तरह जानता है तथा वह श्रम-आन्दोलनकर्ताओ के प्रभाव में आ जाय, इसकी सम्भावना कम रहती है। देहाती क्षेत्र अधिक स्वास्थ्यप्रद होता है, अत यह सम्भव है कि श्रमिक ज्यादा दक्ष हो। किन्तु ग्रामीण स्थापन (Rural Location) के विरुद्ध कतिपय आपत्तिया हैं। ग्रामीण क्षेत्रो मे बहुत अधिक कुशल श्रम को आकृष्ट करना कठिन है। लेकिन बडे केन्द्र में कुशल श्रम बहुतायत से प्राप्त हो सकता है। ग्रामीण स्थापन पूर्ति गृहो तथा बाजार से प्राय दूर होता है तथा मरम्मत सम्बन्धी सुविधाए तत्काल प्राप्त नही होती।

शहरो में कुशल श्रम की बहुलता रहती है, हालाकि निर्वाह खर्च की अधिकता के कारण मजदूरी का कुल व्यय अधिक होता है। शहर में महत्वाकाक्षी श्रमिक के लिए अपनी स्थिति को उन्नत करने के पर्याप्त अवसर होते है। जिन उद्योगो में औरतें नियुक्त की जाती हैं, उन उद्योगो के लिए शहर सर्वोत्कृष्ट स्थान है। शहरी स्थापन बाजार के निकट होता है तथा अपेक्षाकृत छोटा प्लाट शहर में अधिक सफलता के साथ संचालित हो सकता है क्योकि सहायक सेवाए निकट ही उपलब्ध हो जाती है। लेकिन भूमि व्यय, भाटक, स्थानीय कर तथा कर-सम्बन्धी व्यय अधिक होते हैं, फिर भी शहरो में निर्मित स्थानो के मूल्य में स्थिरता रहती है जिससे इस प्रकार की अचल सम्पत्ति पर ऋण प्राप्त करना आसान हो जाता है। साधारणत ग्रामीण स्थापन छोटे तथा नगर स्थापन बडे उद्योगो के लिए अनुकूल होते हैं। लेकिन इधर कुछ वर्षो से प्लाट को शहरो के पार्श्ववर्तीय (Suburban) क्षेत्रो में स्थित करने की प्रवृत्ति जोर पकड रही है। पार्श्ववर्त्ती क्षेत्र नगर और ग्रामीण क्षेत्र के बीच में होने के कारण दोनो प्रकार के लाभो से संयुक्त होता है।

विकेन्द्रीकरण व फैलाव (Decentralisation and Dispersal)—स्थापन घटको की महत्ता स्थैतिक (Static) नही वरन् परिवर्तनशील होती है। न केवल मानवीय अनुसन्धानो ने ही कतिपय घटको की महत्ता कम कर दी है, वरन् प्राकृतिक प्रवृत्तियो के कारण भी कुछ घटक महत्वहीन हो गये हैं। उदाहरण के लिए, टैक्सटाइल मिलो में स्वचल आर्द्रताकारक उपकरणो (Automatic Humidifying Applia-

nces) के प्रवेश ने उद्योग स्थापन की जलवायु सम्बन्धी समस्या को पर्याप्त कम कर दिया है। उत्तरप्रदेश, पंजाब तथा दिल्ली, टैक्सटाइल मिल उद्योग के लिए बिल्कुल अनुकूल माने जाते हैं हालांकि इन स्थानों में बम्बई या अहमदाबाद की आर्द्र जलवायु नहीं पायी जाती। इसी प्रकार विशिष्ट श्रम-बचाऊ मशीनों (Labour-Saving Machinery) के प्रवेश ने श्रमिक समाज की कारीगरी सम्बन्धी कुशलता के महत्त्व को कम कर दिया है। अतः, उद्योग व्यवस्थापकों को यह मान लेना चाहिए कि स्थापन सम्बन्धी लाभों में परिवर्तन होते रहते हैं और यदि सम्भव हो सके तो उन्हें स्थापित उद्योग के निकट ही नये प्लाट की स्थापना नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने में उन्हें यह स्वीकार करना चाहिए कि स्थापन के विषय में हाल में पर्याप्त विचार-मन्थन किया जा चुका है।

बहुधा यह पाया गया है कि मौलिक लाभ, जिनकी खोज की जाती है, लाभदायक रीति से निर्मिति सचालन में जरा भी महत्त्वपूर्ण नहीं होते। इसलिए हाल में इधर कुछ वर्षों से बड़े उद्योगों के द्वारा अपने कार्यों को विकेन्द्रित कर देने की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है, कभी-कभी तो ये बड़े प्लाट शीर्ष एकीकरण की योजना के अन्तर्गत अपने सहायक प्लाट को पर्याप्त दूरी पर स्थित करते हैं या भुजीय एकीकरण (Lateral Integration) को कार्यान्वित करने के लिए वे सहायक प्लाट जो समकक्ष सम्पूर्ण वस्तु को निर्मित करते हैं, एक दूसरे से दूर स्थित होते हैं, ताकि भीड़-भाड़ (Congestion) न हो। प्लाट के इस फैलाव से सामग्री पूर्ति सम्बन्धी, श्रम सम्बन्धी तथा माल वितरण सम्बन्धी उल्लेखनीय लाभ प्राप्त होते हैं। परिणामतः सारी दुनिया में उद्योग फैलाव या विस्तृतीकरण को उत्तरोत्तर मान्यता मिल रही है। भारतवर्ष में सन्तुलित क्षेत्रीय विकास (Balanced Regional Development) पर जोर दिया गया है। क्षेत्रीय योजनाकरण वांछनीय तो है लेकिन कहीं ऐसा न हो कि क्षेत्रीय विकास प्रान्तीयता का रूप ले ले क्योंकि स्वावलम्बन की दौड़ में प्रान्तीय औद्योगिकता देश के औद्योगिक विकास के स्वरूप को ही विद्रूप कर देगी। राज्य को चाहिए कि वह स्थापन व नियन्त्रण करे, इस कार्य के लिए विशेषज्ञ समिति (Expert Committee) बनानी चाहिए जिसका कार्य होगा उद्योगों के समन्वितरण के निमित्त योजना बनाना ताकि देश के सभी क्षेत्रों का आर्थिक व सामाजिक कल्याण हो सके।

भारत में उद्योग स्थापन

वृहत् औद्योगिक केन्द्रीकरण सभी उन्नत देशों का एक सामान्य लक्षण है। उदाहरणतः ब्रिटेन के उद्योगों का उद्भव मुख्यतः कोयले की खानों तथा बड़े-बड़े बन्दरगाहों के निकट हुआ। भारतवर्ष में प्रधान औद्योगिक केन्द्र खनिज क्षेत्रों में नहीं पाये जाते वरन् वे बन्दरगाहों तथा व्यापारिक केन्द्रों, जैसे बम्बई, २४-परगना, हावड़ा, अहमदाबाद तथा कानपुर में पाये जाते हैं। इस देश में छोटे-छोटे उद्योगों की बहुलता की दृष्टि से ऐसा होना स्वाभाविक ही है और साथ-साथ यह बात भी है कि हमारे देश की औद्योगिक प्रणाली ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक अर्थप्रणाली के ही समान कोयले व लोहे पर निर्भर नहीं करती। उन उद्योगों की प्रवृत्ति, जो वैसे मालों का उत्पादन करते हैं, जो वजन में

हल्के हों, लेकिन कीमत में भारी और इस प्रकार अपेक्षत कम व्यय में दूर-दूर पहुँचाये जा सकते हों, घनी आबादी वाले क्षेत्रों में स्थित होने की होती है। इस प्रकार के उद्योगों में सामान्यतः महत्त्वपूर्ण बाह्य मितव्ययिता (External Economy) प्राप्त होती है। लोहा व इस्पात तथा अन्य सहायक उद्योग बिहार व बंगाल के उन भागों में स्थित हैं जहाँ कोयला व लोहा एक दूसरे के निकट पाये जाते हैं, सूती तथा पाट उद्योग की जाति के अन्य उद्योग बन्दरगाहों या व्यापारिक शहरों में या उनके आस-पास के क्षेत्रों में केन्द्रीभूत हैं। प्रवन्ध अभिकर्त्ताओं ने भी बन्दरगाहों तथा अन्य व्यापारिक नगरों को, जहा इनके कार्य-कलाप केन्द्रीभूत थे, ही पसन्द किया। सब मिलाकर, भारतवर्ष की औद्योगिक गतिविधि नितान्त रूप से विषम है। भारतवर्ष में फैक्ट्री श्रमिकों की कुल संख्या की आधी से अधिक दो राज्यों, बम्बई और बंगाल, में पाई जाती है। उद्योगों का विषम वितरण केवल निरपेक्ष (Absolute) नहीं, वरन् आबादी वितरण की दृष्टि से भी यह औद्योगिक वितरण विषम है। उदाहरणत, विभाजन के पूर्व बंगाल और बम्बई में सम्पूर्ण जनसंख्या का क्रमशः १५% और ५% निवास करता था लेकिन कुल औद्योगिक श्रमिकों का क्रमशः १९% और २३% इन दो राज्यों में ही था। अजमेर-मेरवाड़ा, दिल्ली और कुर्ग के छोटे-छोटे क्षेत्रों को छोड़कर भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में कुल जनसंख्या के अनुपात में कम औद्योगिक आबादी निवास करती थी। अभी इधर कुछ काल में बंगाल और बम्बई इस दृष्टि से अपना अग्रणीपद खो रहे हैं, तथा उद्योगों के विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है। सन् १९५० ई० में प्रकाशित Large Industrial Establishments in India in 1948 के अनुसार निम्नांकित तालिका में भारतवर्ष के स्थापन ढाँचे का पता लगता है :

प्रमुख उद्योगों का स्थान, १९४८

उद्योग, फैक्टरियों की संख्या, मजदूरों की संख्या	राज्य और प्रमुख जिलों में फैक्टरियों की संख्या
सूती कपड़ा (कताई बुनाई तथा अन्य मिलें) १०८४ मिलें[1] ७,७६,२८३ मजदूर	बम्बई राज्य, ८२५; पश्चिमी बंगाल, २९; मद्रास, ९३; उत्तर प्रदेश, ३१, दिल्ली, ७; मैसूर, ३३; मध्य प्रदेश, १८; मध्य भारत और विन्ध्य प्रदेश, २०, पंजाब, बिहार, हैदराबाद, राजस्थान, २६।
मोजा-बनियान (होजरी) १३९, ८६५६	उत्तर प्रदेश, ८; मद्रास, १६; पंजाब, ३१, बम्बई, ३१; देहली, ८; पश्चिमी बंगाल, २८; शेष, २८।
जूट, १०१ ३,२०,३९९	पश्चिमी बंगाल, ८८; बिहार, ३; उत्तर प्रदेश, ३; मद्रास ५; शेष २।
रेशम १७९ २२,२६१	पश्चिमी बंगाल, ६; बिहार, ५; बम्बई, ८; मद्रास, ६; देहली, २; पंजाब, ६; उत्तर प्रदेश, १; कश्मीर, २२; हैदराबाद, ६, मैसूर, ३८।

१. शोलापुर की २४३ मिलों के मजदूरों की संख्या इसमें शामिल नहीं है।

उद्योग, फैक्टरियो की संख्या, मजदूरों की संख्या	राज्य और प्रमुख जिलों में फैक्टरियों की संख्या
ऊनी गलीचा इत्यादि २९, ५,४४३	मद्रास, ५, मैसूर, १२, कश्मीर, ४, उत्तर प्रदेश, ४, राजस्थान, २, ग्वालियर, २।
ऊनी वस्त्र मिल, ४४ १८,४८२	उत्तर प्रदेश, ५, पजाब, २३, बम्बई, ५, कश्मीर, ५; शेष, ६।
लोहा और इस्पात, ४५, ९८,२५६	बिहार, ४, (६६,९३८ मजदूर), पश्चिमी बगाल, १६ (२३,८०४ मजदूर); उत्तर प्रदेश, १४, मैसूर, १, शेष १०।
चीनी १६० १,००,५७५	उत्तर प्रदेश, ८५, (५६, २२२ मजदूर), बिहार, ३५ (१९२३९ मजदूर), मद्रास, ११, बम्बई, १४, शेष १५।
रसायनिक द्रव्य १२२ २४,६४९	पश्चिमी बगाल, ३५, बम्बई, ३३, मद्रास, ७, उत्तर प्रदेश, १२, पजाब, ७, बिहार, ८, देहली, ६, मैसूर, ५, शेष ९।
दियासलाई १६१, २१,०२३	मद्रास ९५, पश्चिमी बगाल, ८, बम्बई, १०, उत्तर प्रदेश, ४, सौराष्ट्र, १२, हैदराबाद, १८, ट्रावनकोर-कोचीन, १०, शेष ८।
कागज मिल, ३२, २३,१३५	बम्बई, १३, पश्चिमी बगाल, ८, उत्तर प्रदेश, ६, मद्रास, २, बिहार और उड़ीसा, २, हैदराबाद, ४, मध्यप्रदेश, १।
सीमन्ट, २१, १९,५२१	बिहार और उड़ीसा, ६, मद्रास, ८, मध्य प्रदेश, १, मध्य-भारत, २, राजस्थान, १, हैदराबाद, १, पैप्सू २, बम्बई, १, पश्चिमी बगाल १, सौराष्ट्र २।
काच, १८६, ३०,७८८	बम्बई, ३०, पश्चिमी बगाल, २८, उत्तर प्रदेश, ९६, पजाब, ५, मद्रास, ५, दिल्ली,१, बिहार और उड़ीसा, ८ शेष १३।

मुख्य औद्योगिक क्षेत्रों के प्रमुख उद्योग, १९४८

क्षेत्र	उद्योग
बम्बई राज्य और सौराष्ट्र	सूती कपड़ा, ८६४, होजरी, ३१; रेशम ८७, ऊनी वस्त्र, ५; चीनी, १४, रसायनिक द्रव्य (केमिकल) ३३, दियासलाई, १८, काच, ३०, इन्जीनियरिंग, रेल के डिब्बो और मोटरकार की मरम्मत, और पुर्जे जोडकर मोटर बनाना, ३५, तम्बाकू और बीडी, १९५०, जर्दा, ११८; तेल मिले, ११३ ।
पश्चिमी बगाल	जूट, ८८, लोहा और इस्पात, १६; सूती वस्त्र, २९, होजरी, २८, रेशम, ६, रसायनिक द्रव्य, ३५; दियासलाई, ८; कागज मिले, ४; काच, २८, चीनी मिट्टी के बर्तन (पौटरीज), १२ ।
उत्तर प्रदेश	चीनी ८५; काच, ९६; सूती वस्त्र, ३१; होजरी, ८; ऊनी मिले, ५; लोहा और इस्पात, १४, रेशम, १; दियासलाई, ४; रसायनिक द्रव्य, १२; कागज मिले, ६ ।
मद्रास	सूती वस्त्र मिले, ९२; होजरी, १६; रेशम, ६; दियासलाई, ९५; जहाज बनाना, १; चीनी, ११; जूट, ५; रसायनिक द्रव्य, ७, काच, ५ ।
मध्यप्रदेश	सूती वस्त्र मिल, १८; कागज मिल, १; सीमेंट, १; काच ४ ।
बिहार	लोहा और इस्पात, ४; चीनी, ३५; जूट, ३; रसायनिक, द्रव्य, ७, सीमेंट, ३, काच, ७; रेशम, ५; कागज मिले, २ ।
देहली	सूती वस्त्र मिले, ७, होजरी, ८; रेशम, २, रसायनिक द्रव्य, ५; काच, १ ।
पंजाब	होजरी, ३१; रेशम, ६; ऊनी कपड़ा मिल, २३; लोहा और इस्पात, ७; चीनी, २; रसायनिक द्रव्य, ७; कागज मिल, १; सीमन्ट, १; काच, ५ ।
मैसूर	रेशम ३८; रसायनिक द्रव्य, ५; सूती कपड़ा, ३३; लोहा और इस्पात, १ ।
हैदराबाद	रेशम, ६; दियासलाई, १४; कागज मिल, ४ ।
कश्मीर	रेशम, २२; ऊनी वस्त्र, ९ ।

सूती टैक्सटाइल मिलो तथा उनमें नियुक्त दैनिक श्रमिकों की औसत सख्या से पता लगता है कि कुल मिलो व श्रमिको की संख्या का दो-तिहाई से अधिक बम्बई राज्य में केन्द्रित है। देश के सम्पूर्ण वस्त्र उत्पादन का ६०% बम्बई राज्य निर्मित करता है। किन्तु

बम्बई राज्य में स्थापन घटकों की प्रवृत्ति ह्रास पर है। पाट (जूट) उद्योग मुख्यत पश्चिमी बंगाल में स्थित है यद्यपि उत्तर प्रदेश की पाट मिलों को कच्चा माल प्राप्त कराने के हेतु उत्तर प्रदेश में ही जूट उत्पादन की चेष्टायें की जा रही हैं। देश की रेशम आवश्यकताओं की पूर्ति का अधिकांश मैसूर, कश्मीर, पश्चिमी बंगाल तथा मद्रास निर्मित करते हैं। ऊनी मिलें मुख्यत उत्तर प्रदेश, पंजाब और कश्मीर में केन्द्रित हैं। लोहा व इस्पात उद्योग बिहार और पश्चिमी बंगाल में केन्द्रित है। यह बात सही है कि दूसरे राज्य भी लोहा व इस्पात उद्योग के लिए श्रमिकों की पूर्ति करते हैं लेकिन फिर भी कुल श्रमिकों का ७०% बिहार में (सिंहभूम, जमशेदपुर), २०% पश्चिमी बंगाल में तथा केवल १०% अन्यत्र नियुक्त हैं। चीनी उद्योग में उत्तरप्रदेश का स्थान सर्वप्रथम है जहां चीनी मिलों व श्रमिकों की सम्पूर्ण संख्या का आधा स्थित है। यदि हम राज्यों को लें तो सूती कपड़े में प्रथम स्थान बम्बई का है, पाट में पश्चिमी बंगाल का, चीनी और कांच में उत्तरप्रदेश का, पोतनिर्माण में मद्रास का, लोह और इस्पात में बिहार का तथा ऊनी वस्त्र उद्योग में पंजाब का।

भारतवर्ष में भविष्यत् में स्थापन का स्वरूप कैसा होगा, इस सम्बन्ध में वित्तीय (Fiscal) आयोग ने यह सुझाव दिया है कि लघुमाप उद्योग व कुटीर उद्योग तथा बृहत् माप उद्योग के लिए भी सावधानीपूर्वक योजनाकरण होना चाहिए। आयोग का कहना है कि आरम्भ में नकारात्मक उपायों (Negative Measures) के द्वारा बृहत माप उद्योग के स्थापन स्वरूप का नियमन करना अधिक अच्छा होगा। ये नकारात्मक उपाय उन क्षेत्रों में, जहां पहले से ही औद्योगिक केन्द्रीकरण हो चुका है या जो क्षेत्र उद्योगन अति विशिष्ट हो चुके हैं, अधिक औद्योगिक केन्द्रीकरण को रोकते हैं। इन नकारात्मक विधियों के साथ-साथ स्वीकारात्मक (Positive) कदम भी उठाये जा सकते हैं जिससे उन क्षेत्रों का आकर्षण बढ़े जिन क्षेत्रों में वर्तमान उद्योग का स्थानान्तरण या नये उद्योगों की स्थापना वाछनीय है। ऐसा करने के लिए राज्य की सहायता से कतिपय कोटि की सेवाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए।"[1] इंगलैण्ड की रीति से, व्यापार प्रक्षेत्रों (Trading Estates) की स्थापना के बारे में इस आयोग तथा योजना आयोग दोनों ने सिफारिशें कीं।

प्लांट अभिन्यास (Plant Layout)

भवन ढांचा—स्थान चुन लेने के बाद दक्ष मशीनों का क्रय तथा उपयुक्त रीति के भवन निर्माण का स्थान आता है।

निर्माणी या फैक्टरी भवन का प्रधान काम है, ताप, प्रकाश (Light), वायु संचार, तथा श्रमिकों के आराम व स्वास्थ्य-सम्बन्धी अवस्थाओं को नियन्त्रित रखना तथा निश्चित प्रक्रिया में सलग्न यान्त्रिक उपकरणों (Mechanical Equipments) तथा सामग्रियों को क्षति से बचाना। भवन के द्वारा मशीनों की नींव तथा शक्ति सचारण (Transmission of Power) के लिए मजबूत साधन की व्यवस्था होनी है। भवनों के द्वारा आग से पैदा होने वाले जोखिम नियमित और

1 Report of the Fiscal Commission 1949, p 125

विभाजित होने और इस तरह कम होने हैं। कोलाहलपूर्ण तथा धूल वाले विभाग एक दूसरे से विलग हो जाते हैं, अनेक मंजिलों के द्वारा अतिरिक्त स्थान की रचना होती है, तथा प्रत्येक कारखाना व प्रशासन इकाइयां स्थानीय आवास व नाम (Local Habitation and Name) प्राप्त करती हैं। भवन का ढांचा कई घटकों द्वारा निर्धारित होता है। विभिन्न स्थान खण्ड में इकाई दबाव क्या होगा—इसमें दीवार की मोटाई, शहतीर तथा खम्भों की दिशा स्थिति तथा भवन निर्माण के स्टाइल निर्धारित होते हैं। बहुत हल्के भवन बनाने की अपेक्षा बहुत भारी भवन बनाना ज्यादा अच्छा होता है। *भवन की चौड़ाई तथा छत की ऊँचाई दोनों एक दूसरे को निर्धारित करती हैं।* यदि छत से प्रकाश की व्यवस्था न हो तो भवन जितना ही चौड़ा है, खिड़कियां उतनी ही ऊँची होनी चाहिएँ ताकि कमरे के मध्य में प्रकाश आ सके। आग सम्बन्धी खतरों का प्रभाव भवन की लम्बाई पर पड़ता है। भवन की लम्बाई उतनी ही होनी चाहिए जिसे यदि चौड़ाई से गुणा कर दिया जाय तो गुणनफल में वह क्षेत्रफल प्राप्त हो जो नगरपालिका भवन नियमों के द्वारा स्वीकृत अधिकतम सीमा के अन्तर्गत हो। मंजिलों की संख्या उत्पादित माल की प्रकृति तथा एक भवन में उत्पादन प्रक्रियाओं को (एक दूसरे से बिल्कुल अलग) प्रचलित रखने की सुविधा पर निर्भर करती है। प्रति वर्ग फुट स्थान खण्ड की लागत तिमंजले व चौमंजले भवन से न्यूनतम हो सकती है, लेकिन दो मंजिल से अधिक जाने में लागत में विशेष कमी नहीं होती। जब पर्याप्त श्रम मूल्य में, जैसे देहातों में, पर्याप्त भूमि उपलब्ध हो तब एक-मंजिला मकान ही सर्वोत्कृष्ट होता है।

कई मंजिले भवन की अपेक्षा एक-मंजिले भवन के ये लाभ हैं (१) प्रकाश ज्यादा आता है, (२) हवा अच्छी आती है, (३) भवन आसानी से गरम व ठंडे होते हैं, (४) मशीनों का ढांचा ज्यादा सस्ती लागत में दिया जा सकता है, (५) चूंकि मशीनें सीधे जमीन में गाड़ी जाती हैं, अतः मकान में कम्पन नहीं होता, (६) फर्श सस्ते होते हैं, (७) श्रमिकों पर अधीक्षक (Superintendent) आसानी से निगरानी रख सकता है, (८) सामग्रियों को सुलभता से तथा कम व्यय पर इधर-उधर किया जा सकता है, (९) भवनों का किसी भी दिशा में विस्तार किया जा सकता है, (१०) भवन निर्माण व्यय कम होता है, (११) आग से क्षति होने का भय नहीं रहता है।[1] जहां एक-मंजिले मकान का व्यवहार सम्भव या वाछनीय नहीं है, वहां अच्छी लिफ्ट प्रणाली या बैंड कन्वेयर्स (Band Conveyors) या शूट (Chute) की व्यवस्था होगी। यह उस स्वीकृत सिद्धान्त का केवल प्रयोग मात्र है जो यह बताता है कि यान्त्रिक साधन (Mechanical Appliance), चाहे उन्हें खड़ा करने में कितना भी व्यय क्यों न पड़े, खाली हाथ के श्रम से सस्ता ही पड़ता है, बशर्ते कि यान्त्रिक साधनों को सतत उपयोग में रखने के लिए पर्याप्त काम हो। वजनी मशीन निचली सतह पर ही गाड़ी जायेगी ताकि उन वजनी वस्तुओं का ऊपर से नीचे किया जाना कम से कम किया जा सके जिनके लिए इन मशीनों का व्यवहार होगा। निचली सतह पर मशीन के गाड़े जाने से वह व्यय

1. M. S. Kethcum, quoted by E. D. Jones op. cit. p. 99.

भी बच जाता है जो दिवालों तथा ऊपरी सतह को इसलिए अधिक मजबूत बनाने में करना पड़ता है कि उसे आवश्यकता से अधिक बोझ सहना पड़ेगा।

अभिन्यास (Layout)—प्लाट के वास्तविक अभिन्यास पर विचार नहीं किया गया तो दक्ष मशीनों के खरीदने तथा उचित रीति के भवन निर्माण के लिए किये गये प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि कुशल अभिन्यास के जरिये ही व्यवस्थाधिकारी सभी उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकते हैं। वे अभीष्ट उद्देश्य इस प्रकार के हैं : (१) सामग्री व उत्पादित माल की उठाधरी में मितव्ययिता, (२) उपयोगी क्षेत्रों की व्यय न्यूनता, (३) उत्पादन में विलम्ब-न्यूनता, (४) अवरोध (Bottle-neck) से बचाव, (५) अच्छा उत्पादन नियंत्रण और निरीक्षण (६) जब एक अभिन्यास तय हो तब अनावश्यक और खर्चीले परिवर्तनों से बचना, (७) उत्पादन की प्रक्रिया और तरीकों में सुधार (८) आकार निम्पण की व्यवस्था जिसमें प्रतियोगितात्मक मदों पर व्यय करना सम्भव हो सके, और (९) सुरक्षा को अभिन्यास तथा संगठन का अंग मानकर उसका प्लाट में वस्तुतः सम्मिलित किया जाना। प्लाट अभिन्यास की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है : प्लाट अभिन्यास फैक्टरी के अन्दर मशीनों, प्रक्रियाओं तथा प्लाट सेवाओं को इस प्रकार स्थित करने की विधि है जिसमें निम्नतम कुल निर्मिति व्यय में सर्वाधिक तथा सर्वोच्च कोटि के माल का उत्पादन किया जा सके। इसका उद्देश्य है उस आदर्शाकार (Optimum) योजना को ढूँढ निकालना जिसके द्वारा प्रत्येक परिचालन (Operation) सर्वाधिक सुविधा से सम्पादित हो सके और किसी परिचालन की सुविधा दूसरे परिचालन की सुविधा से संघर्ष में न आ जाय।

स्थान के चुनने तथा निरूपण को आयोजित करने के समय विस्तार की गुंजाइश रख छोड़ना बुद्धिमानी होगी। यदि जगह तंग होगी तो व्यवसाय की मात्रा में पर्याप्त वृद्धि के कारण भवनों को असुविधाजनक ऊंचाई तक ले जाना होगा या इस बात की आवश्यकता होगी कि व्यवसाय को नयी जगह में ले जाया जाय या उसे छिन्न भिन्न करने में अनावश्यक व्यय किया जाय। विभिन्न कारखाना (Workshop) तथा विभागों के लिए स्थान निर्धारित करने में भी इसी प्रकार की दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए ताकि वहां पर भी कार्याधिक्य के कारण स्थान की सीमा का अतिक्रमण न हो जाय। भिन्न भिन्न विभागों को कितनी जगह देनी चाहिए—इसका निर्णय विगत अनुभव के आधार पर किया जा सकता है पर यदि विगत अनुभव उपलब्ध नहीं हो तो प्रत्येक विभाग के लिए तदनुकूल आवश्यक उपकरणों (Equipments) तथा परिचालनों (Operations) की दृष्टि से अनुमान तैयार करना होगा। इसके बाद निर्मिति के अन्तर्गत प्रक्रियाओं की क्रमिकता तथा सामग्रियों के संचलन (Movement) की दृष्टि से उत्पादन केन्द्रों के बीच सम्बन्ध को निर्धारित करना होगा। दूसरा अनिवार्य उद्देश्य यह है कि कार्य का प्रवाह अनवरुद्ध हो तथा अवरोध (Bottle-neck) के कारण काम की भीड़ (Congestion) न हो और न अर्धनिर्मित माल से सम्बद्ध कार्य को रोक कर पीछे की ओर मुड़ना पड़े। अतएव, प्लाट अभिन्यास का

आरम्भ बिन्दु उत्पाद वस्तु का विस्तृत विश्लेषण ही होना चाहिए। ऐसा इसलिए आवश्यक है चकि प्रत्येक उत्पादित माल या सेवा की अपनी समस्या होती है। चीनी मिल केवल कच्चे माल—ईख—पर प्रक्रियाएँ करती है, इस्पात मिल अपने कच्चे माल को विभिन्न स्थितियों से गुजारती है और अन्त में वह एक कडी धातु में परिणत हो जाता है, या मोटर गाडी प्लांट में विभिन्न स्तरों पर अनेक असमान प्रक्रियायें होती हैं और अन्त में बाजार के लिए प्रस्तुत मोटर गाडी तैयार हो जाती है। सतत या सम्बद्ध प्रक्रिया वह कहलाती है जो कच्चे माल से शुरू होकर, बिना किसी बाधा या रुकावट के, निर्मित माल तक जारी रहती है, तथा उत्पादन के चरण में, क्रियाओं की शृंखला उत्पादित माल को पूर्णाकार बनाती है। क्रियायें कई अवस्थाओं में होती हुई सचालित होती हैं। कहने का मतलब यह है कि ये सविराम (Intermittant) क्रियाय कई अलग-अलग प्रक्रियाओं से निर्मित होती है जिनके योग से अन्तिम माल बन जाता है। ये प्रक्रियाएँ एक दूसरे पर निर्भर करती है और सभी उत्पाद्य वस्तु के निर्मित होने में सहायक होती है। फिर प्रक्रिया दो प्रकार की हो सकती हैं विश्लेषणात्मक (Analytical) तथा सश्लेषणात्मक (Synthetic)। जब कच्चा माल कई प्रकार के उत्पादों यथा तैल शिपिद्धि (Oil Refineries), आटा पिसाई आदि में विभक्त कर दिया जाता है, तब प्रक्रियाएं विश्लेषणात्मक कहलाती हैं, किन्तु जब प्रक्रिया कई वस्तुओं को एक में सयुक्त कर देती है तब प्रक्रिया सश्लेषक (Synthetic) कहलाती है। उदाहरणार्थ, रग लेप (Paint), सफेदा तेल तथा अन्य रगद्रव्यों का सयोग है।

सम्बद्ध प्रक्रिया उद्योग के लिए निर्धारित अभिन्यास इस तरह का होना चाहिए कि विभिन्न प्रक्रियाएँ उन कारखानों में सम्पादित हो जो एक दूसरे से उसी क्रम में जुडे हों, जिस क्रम से प्रक्रियाएँ सम्पादित होती हैं। तभी उत्पाद्य वस्तु सम्बद्ध क्रम से होकर गुजरेगी। कार्य का प्रभाव एक प्रक्रिया से दूसरी प्रक्रिया तक अनवरुद्ध होता है और किसी स्थान पर भीड नहीं होती। तथा श्रमिक स्वच्छन्द तथा द्रुत गति से एक स्थान से दूसरे स्थान में जाते हैं। कार्य के ऋजुरेखीय सचालन का तात्पर्य होता है अधिकतम सरलता तथा सफाई। इसका अर्थ चलने-फिरने की जगह की न्यूनातिन्यून लम्बाई भी होता है। अत, निर्माण के काम में लगा हुआ स्थान अधिकतम होता है। किन्तु हो सकता है कि उत्पादित वस्तु इस तरह की न हो जो सम्बद्ध प्रक्रियाओं से होकर गुजर सके लेकिन इस प्रकार की हो जो सम्बद्ध कारखानों में निर्मित वस्तुओं के अंगों से बनी हो। मशीन का निर्माण सयोजन विभाग (Assembly Department) में होना चाहिए जो अशनिर्माणकारी कारखाना (*Part-manufacturing Department*) के केन्द्र में अवस्थित हो। प्राप्ति तथा प्रेषण विभाग (Receiving & Despatch Departments), जिनके साथ लदाई तथा उतराई डेक भी हो, कारखाने के प्रवेश द्वार या निकास द्वार पर स्थित होना चाहिए, लेकिन यदि सम्भव हो सके तो सम्पूर्ण अभिन्यास को इस प्रकार आयोजित करना चाहिए कि विभिन्न विभाग, जो प्राप्ति तथा प्रेषण-डेकों (Receiving and Despatch Decks) का उपयोग करते हैं, एक दूसरे

के विपरीत सतुलन मे हो क्योकि प्रत्येक उत्पादनशील विभाग को हमेशा इन विभागो से सामग्री प्राप्त करने तथा भेजने के समय काम पडेगा । निर्माणी द्वार के पास काललिपिक (Time-Keeper) का स्थान होगा । विक्रय प्रबन्धक का आफिस, आगणन गृह (Counting House), क्रय विभाग तथा अन्य व्यापारिक विभाग भवन के मुख्य द्वार पर ही स्थित होंगे ।

एकाकी) साहसी बड़े व्यवसाय का साहस नहीं कर सकता और न प्रयास करने की ही हिम्मत कर सकता है। इस प्रकार के व्यवसाय का प्रधान लक्षण यह है कि व्यक्ति स्वयं अपने निमित्त, अपने जोखिम पर तथा केवल अपने लाभ के लिए व्यवसाय करता है। वह न केवल व्यवसाय में प्रयुक्त अपनी पूँजी का स्वामी है वरन् प्रायः वह उसका संगठनकर्ता भी है। जो भी हो, व्यवसाय से सम्बद्ध सभी बातों का वह सर्वशक्तिशाली निर्णयकर्त्ता है, जो जब चाहे किसी को नौकर रख सकता है और जब चाहे हटा सकता है और इच्छा के अनुसार वह अपना अधिकार दूसरों को समर्पित कर सकता है। लेकिन अपने काम के लिए उसे किसी प्रकार का पारिश्रमिक मिलना निश्चित नहीं है और उसे मालूम है कि वह जो भी लाभ अर्जन करता है, वह उसकी व्यावसायिक कुशलता पर निर्भर करता है।

किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वैयक्तिक व्यवसाय का पंजीयन (Registration) हो। व्यवसायों की वे कोटियाँ जो एकाकी व्यापारी के संगठन का रूप धारण करती हैं, इस प्रकार हैं फुटकर व्यापारी, फेरी वाले, मिठाई वाले (Confectioners) तथा प्रत्यक्ष सेवा प्रदान करने वाले लोग।

लाभ (Advantages)—वैयक्तिक उद्यम संगठन के मुख्य लाभ इस प्रकार हैं

(१) वैयक्तिक उद्यम (उपक्रम) की रचना करना तथा उसे सचालित करना सरल है। इसको स्थापित करने के लिए किसी वैधिक (Legal) आडम्बर जैसे पंजीयन (Registration) की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार, इस प्रकार के व्यवसाय में बशर्ते कि राज्य ने उस पर कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं लगाया हो, अपने को संलग्न कर सकता है। उदाहरणतः कोई भी आदमी अनुज्ञप्ति (Licence) के बिना अफीम या शराब न तो बेच सकता है और न निर्मित ही कर सकता है। शराबबन्दी की दशा में, जैसे बम्बई में, किसी भी आदमी को, औषधि के कामों के सिवा, शराब निर्माण तथा विक्रय व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता नहीं है।

(२) निजी व्यवसाय का दूसरा बड़ा लाभ है व्यवसाय में अपेक्षित अधिक दिलचस्पी तथा तज्जनित सावधानी, दक्षता तथा मितव्ययिता। नीति निर्धारण में बड़ा लोच होता है क्योंकि एकाकी व्यवसायी सर्वशक्तिसम्पन्न (Supreme) स्वामी होता है जो परिस्थिति की माँग पर कभी भी परिवर्तन कर सकता है।

(३) लघु व्यवसाय की सफलता के लिए गोपनीयता (Secrecy) बहुत महत्त्वपूर्ण है, और एकाकी व्यापारी ऐसी स्थिति में होता है कि वह अपने मामलों को अपने तक ही सीमित कर सकता है।

(४) अविलम्ब (Prompt) निर्णय से दक्षता (Efficiency) पैदा होती है और अविलम्ब निर्णय का उद्भव तत्परता (Preparedness) तथा दायित्व ग्रहण की उत्सुकता से होता है। एकमात्र स्वामी होने के कारण एकाकी व्यापारी शीघ्र निर्णय कर सकता है तथा इस पर कायम रह सकता है।

(५) नियन्त्रण की मात्रा सम्पूर्ण होती है तथा लाभ का सर्वांश स्वामी का होता है। प्रयास व पारिश्रमिक का सीधा सम्बन्ध एकाकी स्वामी को अधिकतम प्रयास करने को प्रेरित करता है। पूंजीवाद का सुनहला नियम कि जहां जोखिम है वहीं नियन्त्रण भी रहना चाहिए, इस प्रकार के संगठन में आश्चर्यजनक रीति से लागू होता है।

(६) एकाकी व्यवसाय इस स्थिति में है कि वह अपने ग्राहकों के गहरे सम्पर्क में रहे तथा उनकी रुचियों की पूर्ति करता रहे और इस प्रकार वह अपने लिए बृहत् ख्याति (Goodwill) की रचना करे। वैयक्तिक स्वामी उन सारे व्यवसायों में समुन्नत होता है जहां 'वैयक्तिक तत्व' की महत्ता होती है।

(७) बृहत् ख्याति (Large Goodwill) ग्राहकों की बड़ी संख्या तथा असीमित दायित्व—इन तीनों के मिलने से यह सम्भव है कि प्रदायक (Creditors) उसे खुलकर उधार देने को उद्यत हो जाएं, और इस तरह एकाकी व्यापारी अधिक लाभ के लिए अपने व्यवसाय का विस्तार कर सकता है।

(८) छोटी दुकान के रूप में वैयक्तिक स्वामित्व का समाजशास्त्रीय महत्व इस बात में है कि वह अनिवार्य सेवाएं प्रदान करता है और साथ-साथ बहुत से लोगों के लिए स्वतन्त्र रोजी कमाने का साधन बनता है। एकाकी व्यवसाय एक ऐसे जीवन व कार्य को सम्भव करता है जिसमें उच्चकोटि का आत्म-निर्णय है, सार्थक कार्य-सम्पादन का आनन्द है, सामाजिक सम्पर्क का उत्साह है, सुसम्बद्ध परिवार का आनन्द है तथा नौकर सरीखा जीवन (Non-proletarian life) नहीं है। संयुक्त स्कन्ध कम्पनी में तो सम्पत्ति व शक्तियों के हाथ में शक्ति का केन्द्रीकरण होता है पर एकाकी व्यवसाय में सम्पत्ति विकेन्द्रित होती है। इसके अतिरिक्त आत्म-निर्भरता, उत्तरदायित्व, स्वयंकर्तृत्व (Initiative) के गुण, जिनका सामाजिक महत्व अत्यन्त अधिक है, एकाकी साहसियों में विकसित होते हैं।

अलाभ (Disadvantages)—इतने लाभों के बावजूद भी इस प्रकार के संगठन की कई गम्भीर सीमाएं हैं, जो नीचे दी जाती हैं :

(१) प्रथम सीमा पूंजी के सम्बन्ध में है। इकट्ठी की जाने वाली पूंजी की राशि आवश्यक रूप से सीमित होगी। एकाध अपवादरूप अवस्था को छोड़ कोई एक आदमी इतना धनाढ्य नहीं हो सकता कि व्यवसाय के लिए पर्याप्त पूंजी दे सके या पर्याप्त पूंजी देने को इच्छुक हो। इसके अतिरिक्त, चूंकि एकाकी व्यवसायी अपने व्यवसाय का एकमात्र निर्णायक होता है, अन्य विनियोक्ताओं को उसके हाथ में अपना धन दे देने को प्रेरित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार उसकी पूंजी उतनी ही राशि तक सीमित होती है जो वह स्वयं या अपने मित्रों या सम्बन्धियों के यहां से निजी साख पर प्राप्त कर सकता है। परिमित पूंजी के व्यवहार का तात्पर्य है परिमित लाभ।

(२) दूसरा बड़ा अलाभ है परिमित व्यवस्थापन योग्यता (Limited Man-Aagerial bility)। किसी एक व्यक्ति से, चाहे वह कितना ही योग्य क्यों न हो, यह आशा नहीं की जा सकती कि उसे व्यवसाय की प्रत्येक शाखा की पूरी जानकारी प्राप्त होगी अतः वह उन कार्यों के करने में अपनी शक्ति का ह्रास कर देता जिन कार्यों के सम्पादन में

साझेदारी में या कम्पनी में दूसरो के जिम्मे सौंपा जा सकता है। चूंकि प्रत्येक काम उसे देखना ही चाहिए, अत एकाकी व्यवसायी उत्तरदायित्व का बहुत बडा बोझ ढोये रहता है जिसके भार मे वह दब जाएगा यदि निर्णय, कुशाग्रता (Intelligence) तथा मेधा की दृष्टि से उसकी क्षमता असीम न हो। इस प्रकार से हो सकता है कि उत्पादन लागत मे वृद्धि हो जाय और लाभ में उतनी ही कमी हो गए। प्रत्यक्ष प्रेरणा और अविलम्ब कार्य, एकाकी व्यवसाय के ये दो बडे लाभ समाप्त हो जाते है, यदि हम यह सोचे कि एक व्यक्ति की अपेक्षा दो व्यक्ति श्रेष्ठतर है या फिर कि वह एक व्यक्ति सर्वोत्कृष्ट हो।

(३) पूंजी तथा व्यवस्थापन योग्यता की परिमितता व्यवसाय विस्तार पर रोक का काम करती हैं।

(४) व्यवसाय स्वामी की दृष्टि से अपरिमित दायित्व दूसरा अलाभ है। उसके प्रदायकों (Creditors) का दावा उसकी सारी सम्पत्ति पर होता है, न कि केवल व्यवसाय में विनियुक्त धन राशि पर। नियन्त्रण केन्द्रीकरण का लाभ जोखिम के एकत्र होने से समाप्त हो जाता है। यह जोखिम कभी-कभी बहुत बडा हो सकता है और एकाकी व्यवसायी जो कुछ करता है उसके बदले में उसे पारिश्रमिक प्राप्त हो जाए, इस बात का कोई निश्चय नही।

(५) सामाजिक व वैयक्तिक दृष्टि से एकाकी व्यवसाय की बहुत बडी त्रुटि यह है कि इसमें स्थायित्व का बनाये रखना कठिन है और शाश्वतता उससे भी अधिक कठिन है। जब स्वामी की मृत्यु हो जाती है या वह इस लायक नही है कि वह व्यवसाय का सचालन या अपने भाग्य का निर्देशन कर सके तब व्यवसाय का अन्त हो सकता है। सामान्यत स्वामी की जीवनावधि या स्वास्थ्य उसके व्यवसाय के जीवन काल की सीमा परिबद्ध करता है क्योंकि यह आवश्यक नही कि उसका उत्तराधिकारी भी व्यवसाय सचालन की योग्यता रखे या उसमें ऐसा सामर्थ्य हो। व्यवसाय की अविच्छिन्नता (Continuity) मुख्यत उत्तराधिकार तथा वंशानुक्रम पर निर्भर करती है। लेकिन प्राय यह होता है कि उत्तराधिकारियों म आवश्यक योग्यता की कमी रहती है और व्यवसाय दूसरी व तीसरी पीढी में निर्बल कन्धो पर आ पडता है। श्री मार्शल महोदय ने इस घटना का इतना विस्तृत उल्लेख किया है कि वह उद्धृत करने के लायक है। व्यवसायी के पुत्र को एक विशेष लाभ प्राप्त है कि उसे अपने पिता की व्यावसायिक व्यवस्था व समस्या को गौर से देखने का अवसर है, प्राय उसे उत्तराधिकार में पर्याप्त पूंजी मिलती है, और वह स्थापित मशीनो तथा व्यापारिक सम्बन्धों से व्यवसाय प्रारम्भ करता है। लेकिन उसमें अनुशासन, प्रेरणा तथा प्रारम्भिक संघर्ष की कमी है। इतिहास में ऐसे पतन के कई उदाहरण मिलते हैं जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यवसाय की या तो समाप्ति हो गयी है या नये लोगों का सम्मिलित कर व्यवसाय को चालू रखा गया है। इस कठिनाई का दूर करने तथा व्यवसाय में नवजीवन डालने के लिए सबसे सरल विधि है कि योग्यतम कर्मचारी को साझे में सम्मिलित कर लिया जाए।

भारतवर्ष में अविभक्त हिन्दू परिवार फर्म के रूप में पारिवारिक व्यवसाय है

जो सारत: एकाकी व्यवसायी हैं जिसे उपयुक्त सभी लाभ व अलाभ प्राप्त हैं। अत:, साझेदारी पर विचार करने के पहले हम अविभक्त हिन्दू परिवार फर्म तथा इसके मुख्य लक्षणो पर विचार करेंगे तथा यह देखेंगे कि यह साझेदारी से किस प्रकार भिन्न है।

अविभक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय[1]

हिन्दू विधि या समाज की दो पद्धतिया हैं, अर्थात् दायभाग जो बगाल में व्यवहार्य है और मिताक्षरा जो भारतवर्ष के शेष भागो में प्रचलित हैं। मिताक्षरा विधि के अनुसार अविभक्त परिवार हिन्दू समाज की सामान्य अवस्था है तथा अविभक्त हिन्दू परिवार म वशानुक्रम से एक पूर्वज से जन्म ग्रहण करने वाले सभी लोग होते हैं जिसमें उनकी पत्नियां तथा पुत्रियां भी सम्मिलित होती हैं। इस अविभक्त परिवार के अन्तर्गत कुछ बंधे व्यक्तियां का एक छोटा समूह होता है, जिसमें केवल वे लोग होते हैं जो जन्मना सयुक्त या दादेलाई (Coparcenary) सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त करते हैं। ये सम्पत्तिधारी के पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र होते हैं। पुरुष सम्पत्तिधारी के बाद की तीन अविच्छिन्न नर सततियो से दादेलाई की रचना होती है तथा एक हिन्दू के द्वारा उत्तराधिकार में पिता, पिता के पिता तथा पितामह से प्राप्त सम्पत्ति पैतृक सपत्ति होती है। अन्य दूसरी सम्पत्ति जिसे वह अपने सम्बन्धियो से या अपने प्रयत्न से प्राप्त करता है उसकी अपनी अलग सम्पत्ति होती है। पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र जन्म से ही सम्पत्ति के सह-स्वामी हो जाते हैं। पिता परिवार का प्रधान बनकर सम्पत्ति को धारण कर सकता है तथा उसका प्रबन्ध कर सकता है। हालांकि पुत्र को भी पिता के साथ उस सम्पत्ति में समान स्वत्व धारण करने तथा उसका उपयोग करने का अधिकार है और वह अपनी सम्पत्ति को पिता की सम्पत्ति से विभाजित कर सकता है।

हिन्दू विधि (Hindu Law) में व्यवसाय एक पृथक् उत्तराधिकार-प्राप्य आस्ति (Asset) है। हिन्दू की मृत्यु के बाद यह अन्य उत्तराधिकार प्राप्त सम्पत्ति की भांति उत्तराधिकारी को मिल जाती है। यदि वह नर सन्तति छोड जाता है तो व्यवसाय उन्हीं को मिलता है। नर सतति के हाथ में पडकर यह अविभक्त परिवार फर्म हो जाता है। नर सन्ततियों के बीच में इस प्रकार से रचित सयुक्त स्वामित्व साधारण साझेदारी नहीं है जो प्रसविदा से उद्भूत होती है, यह एक साझेदारी (Partnership) है, जो विधि के प्रवर्त्तन से बनती है। अत:, सदायादो (Co-parceners) के दायित्वो व अधिकारो का निर्धारण भारतीय साझेदारी अधिनियम १९३२ में दी गयी व्यवस्थाओं के द्वारा नहीं होता। इस पर हिन्दू विधि के सामान्य नियमो, जो सयुक्त परिवार के लेन-देनों का नियमन करते हैं, की ही दृष्टि से विचार करना चाहिए।

सयुक्त परिवार के व्यवसाय का प्रबन्ध साधारणत: पिता या अन्य तत्कालीन अग्रतम व्यक्ति (Senior) करता है। वह **कर्त्ता** या व्यवस्थापक कहा जाता है। परिवार के प्रधान की हैसियत से आय-व्यय

1. Adapted from D. F. Mulla, Principles of Hindu Law.

पर उसका नियन्त्रण होता है तथा यदि कोई रकम बच जाती है तो वह रकम उसकी देख-रेख में रहती है। परिवार के अन्य सदस्य व्यवसाय संचालन के सम्बन्ध में उसके निर्णय में मीनमेख नहीं कर सकते, उनके पास केवल एक ही चारा है कि वे बटवारे की मांग करें। इसके विपरीत, यदि उसने उनके हिस्से की रकम का दुरुपयोग किया है या ऐसे मद में खर्च किया है जिसमें परिवार की दिलचस्पी नहीं थी तो वह उस प्रकार खर्च की गयी रकम की पूर्ति करने का दायी है। व्यवसाय के व्यवस्थापक को पारिवारिक व्यवसाय के लिए रुपया उधार लेने का ध्वनित अधिकार (Implied Right) है लेकिन दूसरे सदस्य का दायित्व पारिवारिक सम्पत्ति में हिस्से तक ही होगा। पुनः व्यवस्थापक को व्यवसाय से सम्बद्ध प्रसंविदा करने, रसीद देने, पावना का भुगतान लेने या तत्सम्बन्धी समझौता करने का अधिकार है, क्योंकि इस प्रकार के व्यापक (या सामान्य) अधिकार के बिना व्यवसाय का संचालन ही असम्भव कार्य हो जाएगा। किन्तु परिवार के द्वारा प्राप्य ऋण को वह छोड़ नहीं सकता। व्यवसाय संचालन के अधिकार के कारण आवश्यक रूप से उसे यह ध्वनित (Implied) अधिकार भी प्राप्त हो जाता है कि व्यवसाय सम्बन्धी वैध व उचित उद्देश्य की पूर्ति के लिए पारिवारिक सम्पत्ति को बन्धक (Mortgage) रखे या बेच डाले। और इस बात का निर्णय करना कि अलाभदायक व्यवसाय को चालू रखना चाहिए कि बन्द कर देना चाहिए, उस पर निर्भर करता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, परिवार के सभी वयस्क सदस्य पारिवारिक सम्पत्ति में अपने हिस्से तक पारिवारिक ऋण के लिए दायी हैं और उन्हें दिवालिया करार दिया जा सकता है। लेकिन अवयस्क (नाबालिग) सदस्य को दिवालिया करार नहीं दिया जा सकता, हालांकि भुगतान करने के लिए उसकी सम्पत्ति हस्तांतरित की जा सकती है।

साझेदारी संगठन

वैयक्तिक साहस संगठन में कार्य बड़ी तंग परिस्थितियों में सम्पादित होता है, हर आदमी अपना लाभ देखता है और व्यवसायों का प्रशासन (Administration) एक प्रकार की प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक अपने काम का खयाल रखता है। संगठन स्वामित्वधारी का विस्तार मात्र है। यदि स्वामित्वधारी अच्छे व्यवसायी के गुण से युक्त है तब लाभार्जन करता है। लेकिन हमेशा यह सम्भव नहीं कि किसी एक व्यक्ति में सारे आवश्यक गुण विद्यमान हों या उसके पास सफल व्यवसाय संचालन के लिए, जो सफलता के साथ आकार में बढ़ता जायगा, पर्याप्त पूंजी हो। अतएव समान स्वास्थ्य तथा सामर्थ्य के लोग अपने साधनों को संयुक्त करते हैं। तथा पूंजी, श्रम तथा कौशल के इस संयोग से साझेदारी संगठन का जन्म होता है। इस प्रकार की कल्पना से उद्भूत व्यवसाय उन विभिन्न श्रेणियों के योग्य व्यक्तियों की वफादारी का मिलन-विन्दु होता है जो पारस्परिक सफलता के निमित्त काम करते हैं। आरम्भ में इस प्रकार का संगठन परिवार के सदस्यों या पड़ोसियों के साहचर्य (Association) से अधिक नहीं था जो एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित होते तथा जो किसी काम के लिए अपने साधनों के थोड़े हिस्सों को एकत्रित करते थे। प्रायः वह काम या व्यवसाय ऐसा होता कि उसके लिए आवश्यक पूंजी किसी एक व्यक्ति से प्राप्त पूंजी से अधिक होती या जोखिम इतना बड़ा होता कि

उनका सम्पूर्ण भार किसी एक आदमी के लिए उठा सकना सामर्थ्य के बाहर होता। अत: ऐतिहासिक दृष्टि से साझेदारी संगठन का जन्म इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए हुआ है—वर्द्धमान बाजार के लिए उत्पादन के हेतु अधिक पूंजी अधिक प्रभावी निरीक्षण तथा नियन्त्रण, स्वामित्वधारियों के बीच श्रेष्ठतर कार्यविभाजन तथा विशेषीकरण और जोखिम का विभाजन (Spreading)। साझेदारी संगठन व्यवसाय आकार को विस्तृत करने की सबसे सरल विधि है और साथ-साथ एकाकी उत्पादक को उसके दायित्व से अंशत: मुक्त भी कर देता है। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि साझेदारी संगठन त्रुटियों से सदैव रहित है। इसका सफल संचालन पारस्परिक विश्वास तथा उत्कृष्ट सद्भावना पर निर्भर करता है। चूंकि प्रत्येक साझेदार दूसरे साझेदार का अभिकर्ता है तथा धन के मामले में उसे पूरा उत्तरदायी बनाता है इसलिए साझेदारी का चुनाव करते समय पूरी सावधानी बरतने की आवश्यकता है। ऐसा कहा गया है कि "जब तुम साझेदार के बारे में विचार कर रहे हो तब जल्दी न करो—उसका परीक्षण करने के लिए तुम अपने को समय दो। साझेदार चुनना पत्नी चुनने की तरह है। जल्दी में विवाह करना बाद में पछताना है—दोनों अवस्थाओं में शान्ति से विचार करने की तथा निश्चित जानकारी की आवश्यकता है।

साझेदारी की प्रकृति व स्वरूप—प्रसंविदा करने के योग्य व्यक्तियों का वह साहचर्य जिसमें वे मिलकर लाभ के उद्देश्य से वैध व्यवसाय करने को सहमत होते हैं, साझेदारी है। इस तरह का संगठन साधारणत: पूंजी, श्रम कौशल या श्रम व कौशल दोनों के संयोग से होता है लेकिन केवल पूंजी देने और सम्पत्ति के संयुक्त स्वामित्व मात्र से ही साझेदारी का निर्माण नहीं होता क्योंकि विधि की दृष्टि में साझेदारी का अपना अर्थ होता है और साझेदारी की प्रकृति समझने के लिए सबसे अच्छा यह हो कि हम भारतीय साझेदारी अधिनियम १९३२ में दी गयी परिभाषा को देखें। अधिनियम की ४थी धारा में परिभाषा इस प्रकार दी गयी है "उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध जो अपने द्वारा संचालित या सबके निमित्त किसी एक के द्वारा संचालित व्यवसाय में होने वाले लाभ को विभाजित करने के लिए सहमत हुए है।" इस परिभाषा में वे पांच तत्त्व हैं जिनके मिलने से साझेदारी का निर्माण होता है।

१. साझेदारी एक प्रसंविदा का परिणाम है, जो
२. दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच,
३. जो व्यवसाय करने को सहमत होते हैं,
४. लाभ-अर्जन के उद्देश्य से किया जाता है,
५. यह व्यवसाय सभी सहमत व्यक्तियों, या सबके हेतु उनमें से किसी एक व्यक्ति द्वारा सम्पादित होता है।

किसी समूह के व्यक्तियों को साझेदार होने के लिए इन सभी तत्त्वों का होना आवश्यक है। प्राय: ऐसा होता है कि यदि निश्चित रूप से लिखित राजीनामा न हो तो यह तय करना कठिन हो जाता है कि साझेदारी है या नहीं। व्यवसायी हमेशा सभी प्रकार की सम्भावनाओं से बचने की व्यवस्था नहीं करते, यदि कार्य-सम्पादन-मात्र के

लिए भी इन्तजाम हो गया है तो वे सन्तुष्ट हो जाते हैं और जब तक कुछ गोलमाल न हो जाय कानूनी उलझनो में भी लोग नही पडते। अतएव साझेदारी के लिए उपयुक्त इन आवश्यक तत्वो की चर्चा करना आवश्यक है। पहले तत्त्व से यह मालूम पडता है कि साझेदारी प्रसविदा का परिणाम है और यह किसी सयोग, जैसे अविभक्त हिन्दू परिवार फर्म में स्थिति का परिणाम नही है। दूसरा तत्त्व बताता है कि साझेदारी व्यक्तियो के ऐच्छिक आचरण का परिणाम है और इससे यह भी पता चलता है कि प्रसविदा के लिए कम से कम दो व्यक्तियो की आवश्यकता है। साझेदारी अधिनियम साझेदारो की अधिकतम सख्या के सम्बन्ध में कुछ नही कहता लेकिन भारतीय कम्पनी अधिनियम १९१३ की धारा ४ के अनुसार अधिकोपण (Banking Business) व्यवसाय के निमित्त साझेदारो की सख्या १० तथा अन्य व्यवसाय के निमित्त २० हो सकती है। इसके अतिरिक्त, जब साझेदारी का उद्देश्य अवैध हो या अनैतिक या सरकारी नीति के प्रतिकूल हो या इसमें अवैधता के प्रविष्ट होने से अवैध हो गया हो या अन्तर्राष्ट्रीय सौजन्य के विरुद्ध हो तब साझेदारी अवैध हो जाती है। अवैध साझेदारी न्यायालय में न्याय याचना नही कर सकती हालाकि इसके विरुद्ध मुकदमे चलाये जा सकते हैं बशर्ते कि मुकदमा ठोकने वाले ने इसके साथ वैध प्रसविदा की हो या वह किसी भी तरह उस अवैध कार्य से सम्बद्ध न हो। तीसरा तत्त्व इस बात पर जोर डालता है कि प्रसविदा व्यवसाय सचालन के लिए की गयी हो। साझेदारी से व्यवसाय की ध्वनि निकलती है और जहा व्यवसाय सपादन के हित सयोग या सम्मेलन नही है वहा साझेदारी नही हो सकती। अधिनियम में व्यवसाय शब्द सबसे विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त किया गया है तथा इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के व्यवसाय आ जाते हैं। इसम प्रत्येक प्रकार के व्यापार (Trade), उपजीविका (Occupation) तथा वृत्ति (Profession) सम्मिलित है। यह दीर्घ परिचालन (Operation) तक ही सीमित नही है, इसमें कोई एक व्यवसाय भी आ सकता है और तब यह विशष साझेदारी (Particular Partnership) कहलाता है। जब इसका निर्माण अनिश्चित काल या व्यवसाय के लिए होता है तब उस इच्छानुसार साझेदारी (Partnership at Will) कहा जाता है। पहले प्रकार की साझेदारी का अन्त व्यवसाय की पूर्ति हो जाने या अवधि के बीत जाने पर होता है तथा दूसरे प्रकार की साझेदारी का अन्त किसी साझेदार द्वारा इसे समाप्त करने की सूचना देने से होता है।

चौथे तत्त्व के अनुसार, साझेदारो के बीच व्यवसाय सचालन की सहमति का उद्देश्य होता है सबके निमित्त लाभ का अर्जन। अत दानशीलता का कोई कार्य, चाहे उसम कितना भी व्यवसाय क्यो न हो, साझेदारी नही है। यद्यपि लाभ मे हिस्सेदारी आवश्यक है लेकिन इसका यह अर्थ नही कि जो व्यक्ति लाभ में हाथ बटाते हैं, वे साझेदार हैं। प्रबन्धकर्ता, जिसे व्यवसाय के लाभ में हिस्सा मिलता है, फर्म का भृत्य है, साझेदार नही, और फर्म को उधार देने वाला महाजन, जिसे व्यवसाय के लाभ में हिस्सा देने की शर्त है, उत्तमर्ण (Creditor) है साझेदार नही। साझेदारी की रचना के लिए लाभ की सजातीयता (Community) होनी चाहिए, हितो का सघर्ष नही, जैसे ऋणदाताओ व ऋणधारियो की अवस्था में होना है। पाचवा तत्त्व साझेदारी

का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण उपादान है क्योंकि साझेदारी का आधारभूत विचार है अभिकरण का विचार, सच तो यह है कि साझेदारी अभिकरण का ही विस्तार है। प्रत्येक साझेदार अपने तथा दूसरों के निमित्त अभिकर्ता और प्रधान दोनों है। कहने का अर्थ यह है कि प्रत्येक साझेदार अभिकर्ता है जो दूसरे साझेदारों को, जो उसके प्रधान हैं, उत्तरदायित्व से आबद्ध करता है तथा स्वयं प्रधान की हैसियत से दूसरे साझेदार, जो उसके अभिकर्ता हैं, के कर्तृत्व में अनुबद्ध होता है। इस प्रकार साझेदारीमूलक सम्बन्ध में अभिकर्तृत्व ध्वनित होता है और जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक साझेदार जो व्यवसाय को संचालित करता है, दूसरे साझेदार का अभिकर्ता समझा जाता है। व्यवसाय संचालन का भार एक या एक से अधिक साझेदारों को सौंप दिया जा सकता है लेकिन जब तक व्यवसाय अन्य साझेदारों के साथ है तब तक यह साझे का व्यवसाय है।

वे व्यक्ति जो एक दूसरे के साथ साझेदारी में प्रविष्ट होते हैं व्यक्तिगत रूप से साझेदार, तथा सामूहिक रूप से फर्म कहलाते हैं तथा जिस नाम से व्यवसाय होता है वह 'फर्म का नाम' कहलाता है। फर्म एक सुविधाजनक शब्द है जो साझेदारों का द्योतक है तथा इसका साझेदारों से अलग कोई वैध अस्तित्व नहीं है। कम्पनी की तरह न तो यह कोई वैध सत्ता है और न कोई ऐसा व्यक्ति है जिसको साझेदारों से पृथक् कोई अधिकार प्राप्त हो। केवल व्यक्ति ही साझेदार हो सकते हैं, फर्म या मण्डल (Association) नहीं। प्रत्येक साझेदार एक अभिकर्ता है जो फर्म के नाम पर सम्पादित किये गये सभी नियमित कार्यों, जैसे व्यापार के निमित्त स्वत्व या स्टाक की खरीद व बिक्री, मूल्य तथा अभिकर्ताओं की नियुक्ति, धन की उधार प्राप्ति या विनिमेय पत्रों (Negotiable Instruments) के निर्गमन द्वारा सभी सदस्यों को बाध्य कर सकता है। साझेदार का यह कार्य फर्म का कार्य समझा जाता है तथा साझेदार के द्वारा इस अधिकार का उपयोग साझेदार का वह ध्वनित (Implied) अधिकार है, जिससे वह अन्य साझेदारों को बाध्य कर सकता है। लेकिन साझेदारों को निम्नलिखित कार्यों के लिए ध्वनित या अन्तर्गत (Implied) अधिकार नहीं है —

१ फर्म के व्यवसाय से सम्बद्ध झगड़े को पंचायत के सुपुर्द करना,

२ फर्म के निमित्त अपने नाम से बैंक में खाता खोलना,

३. फर्म के किसी दावे को पूर्णतः या अंशतः त्याग देना या तत्सम्बन्धी समझौता करना,

४. फर्म की ओर से किये गये मुकदमे या तत्सम्बन्धी कार्यवाही (Proceeding) को वापिस लेना,

५. फर्म पर किये गये मुकदमे के कोई दायित्व स्वीकार करना,

६. फर्म के निमित्त अचल सम्पत्ति अर्जित करना,

७ फर्म की अचल सम्पत्ति हस्तान्तरित करना,

८. फर्म की ओर से साझेदारी में प्रविष्ट होना।

यद्यपि साझेदारी के कार्य फर्म के नाम से सम्पादित होते हैं, फिर भी उनमें उत्पन्न दायित्व सामूहिक तथा विभाजित, या वैयक्तिक होता है जो प्रत्येक साझेदार पर होता है

तथा अपरिमित होता है। यदि साझेदार इस दायित्व को आपसी समझौते से सीमित कर देते हैं, तो उनका ऐसा करना उनके इतर पक्ष के लिए बंध नहीं होता इसकी जिन्हें सूचना नहीं है। अत, जब कोई साझेदार लापरवाही करता है, या क्षतिदायक कार्य करता है, या धोखेबाजी का दोषी है, तब उसकी अधिकार-परिधि के अन्तर्गत उसके दूसरे साझेदार भी उसके साथ समान रूप से आर्थिक दायित्व के भागी हैं। फर्म से निवृत्ति के बाद भी साझेदार फर्म के कृत्या के लिए दायी हो सकता है यदि उसने अपनी निवृत्ति की आम सूचना नहीं दी है। सभी महत्वपूर्ण कार्यों, जैसे फर्म की नीति के निर्माण के समय साझेदारों का सहमत होना अनिवार्य है हालांकि फर्म के साधारण मामलों में अधिकतर (Majority) व्यक्तियों का शासन ही चलता है। कोई साझेदार फर्म का प्रतियोगी नहीं हो सकता और न तो प्रत्यक्ष अनुमति के बिना फर्म के हाथ किसी प्रकार की बिक्री कर सकता है और न खरीद ही कर सकता है या इसके साथ बाहरी व्यक्ति की तरह अन्य व्यवहार कर सकता है, यदि ऐसा करता है तो वह अन्य साझेदारों के आगे तत्सम्बन्धी हिसाब देने के लिए अपने को दायी ठहराता है। सर्वसम्मति के बिना साझेदारों में स्वत्व का हस्तान्तरण नहीं हो सकता। यदि इसके विपरीत इकरारनामा नहीं है तो, मृत्यु, दिवाला, या किसी सदस्य का सदस्यता-त्याग फर्म की समाप्ति का कारण होते हैं।

साझेदारों के सम्बन्ध का आधार पारस्परिक आस्था (Faith) तथा विश्वास (Confidence) है। एक ओर तो प्रत्येक साझेदार को व्यवसाय के प्रबन्ध में हाथ बटाने का अधिकार है और दूसरी ओर उसका यह कर्तव्य है कि वह दूसरे साझेदार के प्रति अधिकतम सद्विश्वास के साथ कार्य करे। सभी साझेदारों को अधिक से अधिक समान लाभ के लिए उत्साहजनक सहयोग के साथ काम करना चाहिए। चूंकि उद्देश्य की सचाई तथा व्यवहार का औचित्य साझेदारी के मौलिक सिद्धान्त हैं, अत साझेदार का चुनाव के समय सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि हो सकता है कि साझेदारों का गलत चुनाव फर्म के विनाश का कारण बने।

अन्य सहचर्यों (Associations) से साझेदारी का विभेद

सह स्वामित्व तथा साझेदारी (Co ownership and Partnership)– ऐसा सम्भव है कि सहस्वामी अपनी सम्पत्ति का उपयोग व्यवसाय के लिए करें तथा लाभ आपस में बांटें पर फिर भी वे साझेदार न हों। हम दोनों के बीच अन्तर समझ सकते हैं। सहस्वामित्व सर्वदा इकरार का परिणाम नहीं होता, इसकी उत्पत्ति विधि के प्रवर्तन के कारण या परिस्थितिवश हो सकती है। इसके विपरीत, साझेदारी लिखित या मौखिक या ध्वनित (Implied) इकरार से ही हो सकती है। सह-स्वामियों के मध्य वह ध्वनित अभिकर्तृत्व नहीं है। यह आवश्यक नहीं कि सहस्वामित्व में लाभ और हानि साझी हो लेकिन साझेदारी में ऐसा होता है। एक सहस्वामी दूसरों की अनुमति के बिना भी अपनी सम्पत्ति तथा स्वत्व को अपरिचित के हाथ हस्तान्तरित कर सकता है लेकिन साझेदार अन्य साझेदारों का अभिकर्त्ता है, अत साझेदार सम्पत्ति पर उसका धारणाधिकार (Lien) है लेकिन सह-स्वामी का संयुक्त सम्पत्ति पर

ऐसा घरणाधिकार नहीं। सहस्वामी सम्पत्ति को वस्तुओं के बटवारे की माग कर सकता है लेकिन साझेदार ऐसा नहीं कर सकता। उसका केवल यही अधिकार है कि वह सम्पत्ति से प्राप्त लाभ का हिस्सा ले।

समामेलित (Incorporated) कम्पनी तथा साझेदारी—साझेदारी का वैधानिक व्यक्तित्व (Legal Entity) नहीं होता तथा इसका साझेदारों से पृथक् कोई अधिकार तथा दायित्व नहीं होता। लेकिन कम्पनी जैसे ही संस्थापित होती है, जैसे पंजीयन के द्वारा, वैसे ही यह एक वैधानिक व्यक्ति हो जाती है और मनुष्य व्यक्ति की नाई यह मुकदमा चला सकती है तथा इस पर मुकदमे चलाये जा सकते हैं। साझेदारी में अलग-अलग साझेदारों के विरुद्ध अधिकार तथा दायित्व प्राप्त होते हैं लेकिन कम्पनी में कल्पित संस्था कम्पनी के विरुद्ध अधिकार तथा दायित्व प्राप्त होते हैं न कि इसे निर्मित करने वाले सदस्यों के विरुद्ध। साझेदारों का दायित्व अपरिमित होता है लेकिन अंशधारियों का दायित्व परिमित होता है। इसके अतिरिक्त साझेदार की मृत्यु से फर्म की समाप्ति, साझेदारों की स्वीकृति के बिना स्वत्व का हस्तान्तरण करके अपने स्थान पर नया साझेदार न ला सकना, साझेदारों का एक दूसरे के प्रति पारस्परिक दायित्व—ये कुछ ऐसे लक्षण हैं जो साझेदारी को कम्पनी से विलग करते हैं।

साझेदारी तथा अविभक्त हिन्दू कुटुम्ब फर्म—साझेदारी तथा अविभक्त हिन्दू कुटुम्ब फर्म के बीच निम्नलिखित विभेद हैं।

१ साझेदारी पक्षों के बीच संविदा (Contract) से ही हो सकती है, लेकिन अविभक्त हि० कु० फर्म विधि के प्रवर्तन (Operation of Law) से बनता है।

२ हि० कु० फर्म पट्टीदार की मृत्यु या दिवालियापन (Insolvency) से समाप्त नहीं होता लेकिन साझेदारी साधारणतः समाप्त हो जाती है।

३ पट्टीदार जब कौटुम्बिक फर्म से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है तब उसे लाभ-हानि का अधिकार नहीं रहता। लेकिन साझेदारी में इसके विपरीत होता है।

४ अ० हि० कु० फर्म में केवल प्रबन्धकर्ता (कर्त्ता) को ही यह ध्वनित या अप्रत्यक्ष अधिकार है कि वह कौटुम्बिक व्यवसाय के उद्देश्य के वशीभूत होकर ऋण ले या फर्म की साख या सम्पत्ति को जमानत रखे। साझेदारी में कोई भी साझेदार व्यवसाय संचालन में ऋण प्राप्ति के द्वारा अन्य सह भागीदारों (Copartners) को बाध्य कर सकता है।

५ साझेदारों का दायित्व संयुक्त तथा विभाजित है, यानी प्रत्येक साझेदारी सम्पत्ति में साझेदारों का जो हिस्सा होता है उनका दायित्व उतना ही सीमित नहीं होता वरन् प्रत्येक साझेदार की निजी सम्पत्ति भी साझेदारी के दायित्व में चली आती है। कर्त्ता के द्वारा लिये गए ऋण, जो वह (कर्त्ता) कौटुम्बिक व्यवसाय के सामान्य संचालन के सिलसिले में लेता है, की अवस्था में कर्त्ता के दायित्व तथा परिवार के और सदस्य के दायित्व में अन्तर है। प्रबन्धकर्ता या कर्त्ता संयुक्त कुटुम्ब सम्पत्ति में अपने हिस्से तक ही दायी नहीं है, चूंकि वह किये जाने वाले अनुबन्ध में एक पक्ष है, अतः वह व्यक्तिगत

लोग सदस्य होते हैं जो तथ्यतः साझेदारी में प्रविष्ट हो, अविभक्त कुटुम्ब के सब सदस्य नहीं। पर प्रबन्धकर्ता के परिवार को आगे हिसाब दिखाना पड़ेगा लेकिन साझेदारी अनुबन्धकर्ता सदस्य (Contracting Partners) जिसमें प्रबन्धकर्ता भी सम्मिलित हैं, तथा अपरिचित के बीच हो सम्पादित समझी जायगी। इस तरह की साझेदारी भारतीय साझेदारी अधिनियम, १९३२ के अनुसार शासित होगी जिसका परिणाम यह होगा कि यदि अपरिचित की मृत्यु हो जाती है तो साझेदारी की समाप्ति हो जाएगी। उत्तरजीवी (Surviving) सदस्य अपरिचित के साथ साझेदारी में बने रहने का दावा नहीं कर सकते और न तो साझेदारी की समाप्ति के लिए मुकदमा ही दायर कर सकते हैं क्योंकि उनकी हैसियत अवर साझेदार (Sub-partner) की है। अपरिचित साझेदार भी मृतक साझेदार के घाटे के हिस्से की वसूली के लिए उत्तरजीवी साझेदार पर मुकदमा कर सकता है। इसके लिए एक ही चारा है और वह यह कि वह मृतक साझेदार की सम्पत्ति से वसूली की कार्रवाई कर सकता है। अविभक्त कुटुम्ब, जिसका प्रबन्धकर्ता अपरिचित के साथ साझेदार है, के सदस्यों के बीच बटवारा होने पर, प्रबन्धकर्ता को कुटुम्ब के लाभ के लिए तथा सदस्यों में बाटे जाने के लिए, साझेदारी की अवधि बीत चुकने पर साझेदारी की आस्तियों में से अपने हिस्से को प्राप्त कर ही लेना होगा।

साझेदारों की श्रेणियां

कोई भी व्यक्ति, जिसको फर्म से व्यवहार रहता है, उस समय तक जब तक फर्म का काम निर्विघ्न गति से चलता रहता है और ऋण का भुगतान होता रहता है और मालों की सुपुर्दगी (Delivery) होती रहती है, सम्भवतः यह चिन्ता नहीं करता कि फर्म के साझेदार आखिर हैं कौन, लेकिन जैसे ही फर्म से उसके बकाया की वसूली नहीं होती, उसे उन व्यक्तियों की खोज करनी पड़ती है जो उसका पावना चुका दें। ऐसे ही अवसर पर दावेदार यह जानना चाहेंगे कि कौन उसके साझेदार हैं और किस हद तक उनमें से प्रत्येक दायी है। ऐसा इसलिए चूंकि विभिन्न कोटि के साझेदार होते हैं। वे साझेदार जो व्यवसाय में सक्रिय भाग लेते हैं सक्रिय (Active) या कर्मवाहक (Working) कहलाते हैं। वह व्यक्ति जो वस्तुतः साझेदार है लेकिन जिसका नाम साझेदार की हैसियत से कहीं प्रकट नहीं होता तथा जिसे बाहरी लोग साझेदार की हैसियत से नहीं जानते, निष्क्रिय (Dormant) सुषुप्त (Sleeping) या गुप्त (Secret) साझेदार कहलाता है। ऐसे साझेदार उन तीसरे पक्षों (Third Parties) के आगे, जिन्होंने उसे साझेदार जाने बिना भी फर्म को ऋण दिया है लेकिन बाद पश्चात् तत्सम्बन्धी जानकारी उन्हें प्राप्त हो गयी है, दायी होगा। वह व्यक्ति जिसका नाम इस भांति व्यवहृत किया जाता है मानो वह साझेदार नहीं है और न फर्म के लाभ में जिसका हिस्सा ही है नाममात्र का (Nominal) साझेदार कहा जाता है। वह फर्म के सारे कार्यों के लिए दायी है। वह व्यक्ति जिसने अन्य साझेदारों से यह सम्मति कर ली है कि वह हानियों में साझेदार हुए बिना केवल फर्म के लाभ में साझेदार होगा, लाभार्थ साझेदार (Partner for Profit)

कहा जाता है। साधारणत, व्यवसाय के प्रबन्ध मे उसका कोई हाथ नही रहता लेकिन *तीसरे पक्ष के आगे वह फर्म के सभी कार्यों के लिए दायी होगा।*

प्रतिष्टंभ तथा अवस्थिति द्वारा साझेदार (Partners by Estoppel and Holding out)—जब कोई व्यक्ति कथित या लिखित शब्दो या अपने आचरण द्वारा दूसरे व्यक्ति को यह विश्वास दिलाये कि वह अमुक फर्म का साझेदार है हालाकि वस्तुत वैसा नही है और इस विश्वास पर दूसरा व्यक्ति फर्म को साख दे या फर्म को माल या धन उधार दे तो विधित वह साझेदार होने की बात से इनकार नही कर सकता। उसके मुह पर अपने आचरण द्वारा ही ताला पड जाता है और इस प्रकार के साझेदार को प्रतिष्टभ द्वारा साझेदार (Partner by Estoppel) समझा जाता है। उदाहरणत, यदि क ख और ग इस शर्त पर व्यवसाय करते हैं कि ग न तो श्रम करेगा और न पूजी देगा और न व्यवसाय के लाभ में हिस्सा ही बटावेगा लेकिन साझेदार की तरह फर्म को अपने नाम का उपयोग करने की अनुमति देगा तब ग उस प्रत्येक बाहरी व्यक्ति के आगे दायी होगा जिसने यह समझकर फर्म को ऋण दिया है कि ग फर्म का साझेदार है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के द्वारा साझेदार घोषित किया जाता है और वह व्यक्ति इस जानकारी के बाद भी, कि उसका नाम साझेदार की तरह व्यवहृत किया जा रहा है, इस घोषणा का प्रतिवाद नही करता है तो वह साझेदार अवस्थित साझेदार (Holding out Partner) कहा जाता है और वह उस व्यक्ति के आगे दायी होगा जिसने उक्त घोषणा को सत्य मानकर फर्म को उधार दिया है। चूकि ऐसा व्यक्ति फर्म का वास्तविक साझेदार नही है, अत वह फर्म के लाभ मे हकदार नही है लेकिन फर्म के सभी ऋणो के लिये दायी है। ऐसे उदाहरण प्राय पाये जाते है। एक व्यक्ति ने फर्म से निवृत्ति के बाद भी अपनी निवृत्ति सम्बन्धी आम सूचना या वास्तविक सूचना नहीं दी और फर्म के बिलो, पत्र-शीर्षको आदि मे उसके नाम का व्यवहार चालू है और यदि वह उसे रोकने का कोई प्रयत्न नहीं करता है तो वह उन ऋणदाताओ (Creditors) के द्वारा, जिन्होने उसको उक्त विश्वास पर ऋण दिया है, अवस्थित साझेदार (Holding out) समझा जायगा।

निवृत्त या बहिर्गत साझेदार (Retired or Outgoing Partner)—वह सक्रिय या निष्क्रिय साझेदार जो फर्म को छोडकर बाहर चला जाता है जबकि अन्य साझेदार व्यवसाय सचालित करते होते है, निवृत्त या बहिर्गत साझेदार कहा जाता है और वह अपनी निवृत्ति के पहले फर्म के ऋणो (Debts) व देनो (Obligations) के दायित्व से मुक्त नही हो जाता। वह उन सारे लेन-देनो (Transactions) के लिए भी, जो उसकी निवृत्ति के समय फर्म के द्वारा शुरू किये गये थे लेकिन समाप्त नही हुए थे, *तीसरे पक्ष के आगे दायी होगा हालाकि उसने निवृत्ति-सम्बन्धी सूचना* तीसरे पक्षो को दे दी है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अपनी निवृत्ति के बाद फर्म द्वारा प्राप्त ऋणो से मुक्त होने के लिए उसे सभी ऋणदाताओ को अपनी निवृत्ति की सूचना विधिवत् देनी ही होगी। लेकिन निवृत्ति प्राप्त (Retired) साझेदार ऋणदाताओ तथा अन्य सभी साझेदारो की सहमति से अपने सारे दायित्वो से मुक्त हो

है, वह अन्य साझेदारों की तरह फर्म के सारे ऋणों व देयों के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी हो जाता है।

साझेदारी विलेख (Partnership Deed)

साझेदारी की रचना के लिए पक्षों के बीच समझौता होना तो अनिवार्य है लेकिन यह आवश्यक नहीं कि यह समझौता लिखित हो। यह बिल्कुल आडम्बररहित या अनौपचारिक (Informal) ढग का हो सकता है, या मौखिक हो सकता है, चाहे तत्सम्बन्धी व्यवसाय में लाखों का लेन-देन हो। इसके विपरीत, यह साझेदारी समझौता ऐसा सुविस्तृत लिखित लेख हो सकता है जिसे साझेदारी विलेख (Partnership Deed) या साझेदारी के अन्तर्नियम (Articles of Partnership) कहते हैं, जो वकीलों द्वारा तैयार किया हुआ हो सकता है। जहा साझेदारों ने साझेदारी विलेख में प्रविष्ट होने का निश्चय किया है, वहा मुद्राङ्क अधिनियम (Stamp Act) के अनुसार इसे मुद्राङ्कित होना चाहिए। साझेदारी विलेख कम्पनी पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) की नाई सार्वजनिक लेख्य (Public Document) नहीं है और यह तीसरे पक्ष पर उसी हालत में लागू होगा जब वह इससे अवगत है। विधिवत् रचित साझेदारी विलेख में सामान्यतया निम्नलिखित बातों का समावेश होना चाहिए

१. फर्म का नाम, इसके निर्माता साझेदारों का नाम।
२. व्यवसाय की प्रकृति तथा साझेदारी की अवधि।
३. प्रत्येक साझेदार द्वारा दिए जाने वाले पूंजी (Capital) अंशदान (Contribution) की राशि और देने की रीति।
४. लाभ-हानि विभाजन का अनुपात।
५. साझेदारों को चुकाया जाने वाला वेतन, कमीशन आदि, तथा उनके द्वारा निकाली जा सकने वाली (drawable) राशि।
६. साझेदारों को पूंजी पर दिया जाने वाला ब्याज, साझेदारों द्वारा लिये गये ऋण तथा प्रत्याहरण (drawing) पर ब्याज तथा उनके द्वारा प्राप्त अधिविकर्ष (Overdraft) पर लगाया जाने वाला ब्याज।
७. फर्म के प्रबन्ध के लिए साझेदारों के बीच कार्य का विभाजन।
८. निवृत्ति (Retirement), साझेदारों की मृत्यु (Death), प्रवेश (Admission), ख्याति का मूल्यांकन (Valuation of Goodwill) तथा लाभ के साझेदारों को प्राप्य अंश-सम्बन्धी बातें, और निवृत्ति-प्राप्त साझेदारों पर व्यवसाय-सम्बन्धी प्रतिबन्ध।
९. फर्म के विघटन पर हिसाब का परिशोधन (Settlement of Accounts)।
१०. न्यायालय की शरण गये बिना, साझेदारों के बीच होने वाले झगड़ों के निबटाने के लिए पचायत विषयक धारा (Arbitration Clause)
११. अन्य खण्ड जो व्यवसाय विशेष की दृष्टि से आवश्यक समझा जाय।

साझेदारियों का पञ्जीयन (Registration of Partnerships)

साझेदारी अधिनियम से जो महत्त्वपूर्ण नयी चीज है वह है फर्म के पञ्जीकर्त्ता (Registrar) के कार्यालय में आयी साझेदारों द्वारा हस्ताक्षरित घोषणा के रूप में फर्म का पञ्जीयन किया जाना। पञ्जीयन के लिए तीन रुपये पञ्जीयन शुल्क (Registration Fee) देना पड़ता है और निम्नलिखित बातों की घोषणा करनी पड़ती है

(१) फर्म का नाम, (२) फर्म का प्रधान व्यवसाय-स्थान, (३) प्रत्येक साझेदार की व्यवसाय में सम्मिलित होने की तारीख, (४) साझेदारों के पूरे नाम व पते, (५) फर्म की कार्यविधि। साझेदारों के नाम व स्थान के प्रत्येक परिवर्तन की सूचना पञ्जीकर्त्ता को विधिवत् दी जानी चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि अधिनियम पञ्जीयन को अनिवार्य नहीं बनाता और न अपञ्जीयन (Non-Registration) के लिए दण्ड का उपबंध करता है लेकिन यह अपञ्जीयन की दशा में कतिपय निर्योग्यताओं (disability) की रचना करता है जिनसे पञ्जीयन किसी न किसी समय आवश्यक हो ही जाता है। ये निर्योग्यताएं ये हैं

(१) अपञ्जीयित फर्म के सदस्य न तो आपस में एक दूसरे के विरुद्ध कानून से अपने अधिकारों की प्राप्ति कर सकते हैं और न किसी बाहरी व्यक्ति के विरुद्ध, (२) बाहरी (Stranger) व्यक्तियों का फर्म तथा साझेदारों के विरुद्ध अभियोग चलाने (मुकदमा करने) का पूरा अधिकार है। अतः पञ्जीयन किसी समय भी किया जा सकता है—अभियोग चलाने से पहले भी और फर्म द्वारा चलाये गये अभियोग के बाद भी। अभियोग को न्यायालय से वापिस लिया जा सकता है और पञ्जीयन के बाद फिर चलाया जा सकता है।

किन्तु अपञ्जीयन से निम्नाङ्कित अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता :

१ तीसरे पक्षों का फर्म या किसी साझेदार पर अभियोग चलाने का अधिकार।

२. फर्म के विघटन या विघटित फर्म के खाते (हिसाब) या विघटित फर्म की आस्ति (Asset) में अपने हिस्से के निमित्त अभियोग चलाने का किसी साझेदार का अधिकार।

३ सरकारी अभिहस्तांकिती (Official Assignee) या धारक (Receiver) का दिवालिया साझेदार की सम्पत्ति से वसूली करने (Realisation) का अधिकार।

४ उन फर्मों या फर्म के साझेदारों के अधिकार जिनका व्यवसाय-क्षेत्र भारतवर्ष में नहीं है।

५ कोई अभियोग या प्रति-दावा (Set-off), जिसकी रकम एक सौ रुपये से अधिक नहीं हो, और जो लघुवाद न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के अन्[illegible] हो।

साझेदारी सम्पत्ति

इस बात का निश्चय करना साझेदारों की पारस्परिक

है कि कौन-सी सम्पत्ति फर्म की मानी जाएगी और कौन-सी किसी एक या एक से अधिक साझेदार की, चाहे इसका उपयोग फर्म के कार्यों के लिए होता हो। यदि साझेदारों के बीच कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष करार न हो तो निम्नलिखित फर्म की सम्पत्ति समझी जाएगी—

(क) साझेदारों द्वारा साझेदारी के आरम्भ में या तत्पश्चात् लायी गई वे सब सम्पत्ति, अधिकार या स्वत्व जो व्यवसाय कार्य के निमित्त एकत्रित की गई हों।

(ख) व्यवसाय के सिलसिले में फर्म के धन से प्राप्त की गई वे सम्पत्ति, अधिकार या स्वत्व जिनमें गुप्त लाभ तथा किसी साझेदार को प्राप्त वैयक्तिक लाभ।

(ग) व्यवसाय की पहत या ख्याति (Goodwill)

पहत या ख्याति (Goodwill)—साझेदारी अधिनियम में इस बात की विशेष व्यवस्था है कि फर्म की ख्याति साझेदारी की सम्पत्ति है। अधिनियम में ख्याति की परिभाषा नहीं है, क्योंकि सम्भवतः यह एक ऐसी चीज है जिसकी परिभाषा करना आसान कार्य नहीं। इसके द्वारा ख्याति व्यवसाय द्वारा प्राप्त वह सुविधा है जो नियुक्त पूँजी, और स्कन्ध, निधि तथा सम्पत्ति से अलग है और जो व्यापार जन-संरक्षण व उत्साह-वर्द्धन और नियमित एवं अभ्यस्त ग्राहकों के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है। ख्याति ही वह अन्तर है जो हम सद्य आरम्भ व्यवसाय, जिनके पास ख्याति नहीं है, और उस व्यवसाय के बीच पाते हैं, जिसने संस्थापित प्रतिष्ठा तथा व्यावसायिक सम्बन्ध के द्वारा ख्याति प्राप्त की है। नवीन व्यवसाय में व्यापारी को उपभोक्ता समाज के बीच से अपने ग्राहकों को ढूंढ निकालना पड़ता है, लेकिन संस्थापित व्यवसाय की दशा में व्यापारी को बने बनाये ग्राहक मिलते हैं। हो सकता है कि 'ख्याति' का मूल्य उल्लेखनीय हो, कभी-कभी तो यह 'ख्याति' व्यवसाय की भित्ति ही होती है जिसके बिना व्यवसाय में किसी प्रकार का लाभार्जन नहीं किया जा सकता, हालांकि ख्याति अमूर्त (Abstract) वस्तु है। साझेदारी अधिनियम में ख्याति आगणन के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं है। ख्याति की आगणना करने का एक प्रचलित तरीका यह है कि पिछले तीन वर्षों के औसत लाभ को तीन गुणा से पाँच गुणा तक कर दिया जाता है और इस प्रकार प्राप्त राशि ख्याति की राशि होती है। दूसरी, और सम्भवतः श्रेष्ठतर, विधि है पूंजीकरण (Capitalisation)। यह मान लिया जाता कि व्यवसाय में नियमित रूप से सामान्य लाभ हो रहा है। गर्स्टेनबर्ग के मतानुसार पिछले पाँच वर्षों के अर्जनों (Earnings) या लाभों को एक निर्धारित प्रतिशत की दर से पूंजीकृत कर दिया जाता है। इस दर का निर्धारण व्यवसाय की प्रकृति तथा जोखिम पर निर्भर करता है। इस पूंजीकृत राशि से व्यवसाय की मूर्त आस्तियों का आगणित मूल्य घटा लिया जाता है। बाकी बची राशि ख्याति की राशि है। यदि औसत वार्षिक लाभ ३०,००० रुपये है और यदि यह ५ प्रतिशत की पूंजीकृत किया जाता है तो इसकी राशि ६००,००० रु० होगी। यदि वास्तविक मूर्त ५००,००० रु० की कूती जाती है तो ख्याति की राशि १,००,००० होगी।

विघटन (Dissolution)

भारतीय साझेदारी अधिनियम ने साझेदारी के विघटन तथा फर्म के विघटन के बीच अन्तर बताते हुए यह व्यवस्था दी है कि सभी साझेदारो के बीच साझेदारी सम्बन्ध का विच्छेद हो जाना फर्म का विघटन है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि फर्म का विघटन हुए बिना भी साझेदारी का विघटन हो सकता है। उदाहरणत यदि क ख ग किसी फर्म के साझेदार थे और क मर गया, या निवृत्त हो गया या दिवालिया घोषित हो गया तो साझेदारी का अन्त हो जाएगा लेकिन साझेदारो ने यदि यह सहमति कर ली कि किसी साझेदार की निवृत्ति या दिवालिये या मृत्यु से फर्म विघटित नहीं होगा तो इन घटनाओ म से किसी एक के घटित होने पर साझेदारी का निस्सन्देह अन्त हो जाएगा हालाकि फर्म या पुन निर्मित फर्म (जैसा कि अधिनियम ने कहा है) पुराने नाम से चालू रह सकता है। अत साझेदारी के विघटन म फर्म का विघटन शामिल हो भी सकता है, और नहीं भी, लेकिन फर्म के विघटन का अर्थ साझेदारी का विघटन होगा ही। साझेदारी के विघटन के उपरान्त पुन फर्म द्वारा व्यवसाय को सचालित रखा जा सकता है लेकिन फर्म के विघटित होने पर सारे व्यवसाय का अन्त हो ही जाना चाहिए, आस्तियो को बेचकर ऋण-दाताओ का भुगतान कर ही देना चाहिए तथा बाकी धनराशि को साझेदारो के बीच वितरित कर देना होगा।

साझेदारी का विघटन (Dissolution of Partnership)—साझेदारी का विघटन इन घटनाओ के कारण होता है (१) साझेदारी की अवधि पूरी हो जाने पर व्यवसाय विशेष के पूरे हो जाने के कारण, (२) किसी साझेदार की मृत्यु, दिवालियापन या निवृत्ति के कारण। इन सभी अवस्थाओ में तत्सम्बन्धी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहमति के अनुसार बाकी साझेदार अपने व्यवसाय को चालू रख सकते हैं।

फर्म का विघटन (Dissolution of Firm)—निम्नलिखित अवस्थाओ में साझेदारो के बीच जो सम्बन्ध होता है वह अवश्य छिन्न भिन्न हो जाता है और व्यवसाय की समाप्ति हो जाती है :

१ पारस्परिक स्वीकृति से फर्म विघटित हो सकता है यानी सभी साझेदारो के बीच विघटन-सम्बन्धी सहमति द्वारा।

२ एक को छोडकर यदि सभी साझेदार दिवालिया या मृतक हो जाय तब फर्म विघटित हो जाएगा।

३ *यदि व्यवसाय अवैध है या पश्चात् घटित घटना के कारण वैसा हो जाता* है तो फर्म विघटित हो जायगा।

४ यदि साझेदारी इच्छित साझेदारी (Partnership at Will) है तो किसी एक साझेदार के द्वारा सभी साझेदारो को विघटन सम्बन्धी लिखित सूचना देने से साझेदारी का विघटन हो जायगा।

न्यायालय द्वारा विघटन (Dissolution through Court)—इच्छित

साझेदारी के विपरीत विशेष साझेदारी (Particular Partnership) (जो एक नियत अवधि या व्यवसाय के लिए हो) सूचना द्वारा विघटित नहीं हो सकती। और जब साझेदारी ऊपर लिखित किसी भी कारण से विघटित नहीं हो सकती तब किसी साझेदार के द्वारा न्यायालय में अभियोग चलाये जाने पर ही यह सम्भव है कि इसका विघटन हो। निम्नांकित अवस्थाओं में ही साझेदारी का न्यायालय द्वारा विघटन हो सकता है—

१ जब किसी साझेदार का मस्तिष्क विकृत (Unsound) हो जाय। किसी साझेदार के उन्मत्त हो जाने मात्र से साझेदारी का विघटन नहीं हो जाता और न उसके उस अधिकार का अन्त होता है जिसके द्वारा वह साझेदारी को दायी ठहरा सकता है। अतः यदि उन्मत्त साझेदार अपने अभिभावक या अन्य साझेदार द्वारा न्यायालय में अभियोग प्रस्तुत करे तो न्यायालय विघटन का आदेश दे सकता है।

२ जब कोई साझेदार साझेदारी सम्बन्धी कर्त्तव्यों का पालन करने में स्थायी रूप से अयोग्य हो जाता है तब अन्य साझेदारों के अभियोग चलाने पर न्यायालय विघटन आदेश दे सकता है।

३ जब कोई साझेदार अभद्राचरण (Misconduct) का दोषी हो और उसका अभद्राचरण फर्म के व्यवसाय के लिए हानिकारक हो तब अन्य किसी भी साझेदार के अभियोग चलाने पर न्यायालय विघटन आदेश दे सकता है।

४ जब कोई साझेदार साझेदारी अनुबन्ध का अवसर उल्लंघन करता है और अन्य साझेदारों के लिए व्यवसाय को चालू रखना असम्भव हो जाता है तब किसी साझेदार के तत्सम्बन्धी अभियोग पर न्यायालय विघटन आदेश दे सकता है।

५ जब किसी साझेदार ने अपना सम्पूर्ण हिस्सा किसी तीसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित कर दिया है या उसका स्वत्व आज्ञप्ति द्वारा कुर्क (attach) हो गया है या विधि प्रक्रियान्तर्गत (Under Process of Law) बेच डाला गया है तब दूसरे साझेदार विघटन सम्बन्धी अभियोग चला सकते हैं।

६ न्यायालय को जब यह विश्वास हो जाय कि अमुक साझेदारी बिना हानि के चालू नहीं रखी जा सकती या उसे विघटित करना ठीक या न्यायसंगत है तब वह उसे विघटित कर सकता है।

विघटन के उपरान्त भुगतान

हानियों का चुकता—जहाँ फर्म को घाटा हुआ है या पूँजी क्षतिग्रस्त हो गई है वहाँ अवितरित लाभ, यदि हो तो, वह सर्वप्रथम घाटा चुकाने में तथा पूँजी की क्षतिपूर्ति में प्रयुक्त करना चाहिए। यदि लाभ की रकम अपर्याप्त है तो पूँजी को घाटे की पूर्ति करने में प्रयुक्त करना चाहिए। यदि इसके बाद भी घाटा है तो आनुपातिक ढंग से साझेदारों के लिए अपनी सम्पत्ति में से उस घाटे की पूर्ति करना अनिवार्य है।

आस्तियों का वितरण (Distribution of Assets)—फर्म की सम्पत्ति का सर्वप्रथम उपयोग तीसरे पक्षों के ऋणों को चुकता करने में होना चाहिए। उसके

बाद यदि कुछ बच रहे तो साझेदारों के द्वारा दिये गये अग्रिमों (Advances) का भुगतान होना चाहिए। इसके बाद भी कुछ बचत रहे तो उसे साझेदारों के पूंजी खाते में आनुपातिक मात्रा में चुकता करना चाहिए। इन भुगतानों के बाद बची राशि को साझेदारों के बीच अनुपात में (Prorata) में वितरित करना चाहिए।

साझेदारी संगठन के लाभ व अलाभ (Advantages and Disadvantages of Partnership Organisation)

लाभ—साधारण साझेदारी संगठन में वैयक्तिक साहसी संगठन के कुछ लक्षण (Characteristics) विद्यमान रहते हैं और परिणामस्वरूप इसके लाभ और इसकी अधिकतर सीमाएं भी।

१ एकाकी व्यवसाय की भांति साझेदारी भी बिना किसी व्यय तथा वैधानिक औपचारिकताओं (Legal Formalities) के निर्मित की जा सकती है तथा उसी प्रकार विघटित भी की जा सकती है। संयुक्त स्कन्ध कम्पनियों की भांति विधिवत दस्तावेजों के रचित किये जाने की आवश्यकता नहीं होती।

२ साझेदारी को साझेदारों के संयुक्त साधनों तथा योग्यताओं के लाभ प्राप्त हैं और प्राय कई व्यक्तियों का सम्मिलित निर्णय बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। हितों तथा दायित्वों के ऐक्य को और बढ़ाने के लिए नये लोगों को लाने की हमेशा गुंजाइश रहती है।

३ चूंकि साझेदारी व्यवसाय कार्यों पर लगभग कोई वैधानिक प्रतिबन्ध नहीं होता, अतएव, यह व्यवसाय बिल्कुल गतिशील (Dynamic) तथा लोचदार (Elastic) होता है। यह कई साझेदारों द्वारा स्वेच्छा से किया गया एक आनुबन्धिक (Contractual) सम्बन्ध है। उन्हें इस बात की पूर्ण स्वच्छन्दता है कि व्यवसाय के संचालन काल में वे अपनी इच्छा के अनुसार अपने व्यवसाय में कोई भी वांछनीय परिवर्तन कर सकते हैं तथा किसी भी प्रकार की शर्त अपना सकते हैं।

४ व्यवसाय में वैयक्तिक तत्त्व (Personal Elements) तथा उसी हिसाब से सावधानी, निपुणता व मितव्ययिता एक विशेष लाभ है। इस प्रकार इसमें उत्पादन के लिए एक प्रभावी प्रेरणा है (Effective Motivation) हालांकि यह प्रेरणा एकाकी व्यवसाय जैसी उच्च कोटि की नहीं है।

५ यह वैधानिक व्यवस्था कि साधारण साझेदार अपनी सम्पूर्ण निजी सम्पत्ति तक दायी होंगे, खतरनाक सौदेबाजी से रोकती है। यह व्यवस्था ऋणदाताओं की आंखों में फर्म की साख को बढ़ाती है। और इस प्रकार फर्म को सुगमतापूर्वक कम ब्याज पर ऋण मिल सकता है।

६ कानून साझेदारी में अल्पसंख्यक हित की वास्तविक रक्षा करता है। नीति सम्बन्धी सभी बातों में सभी साझेदारों की सहमति अनिवार्य है, और दैनिक कार्यों जैसी मामूली बातों में भी असन्तुष्ट साझेदार किनाराकशी कर सकता है और फर्म को विघटित कर सकता है या इसके कार्यों में इतनी अड़चनें उपस्थित कर सकता है कि साझे-

दार उसके हिस्से को खरीद लेने के लिए बाध्य हो जायें।

अलाभ (Disadvantages)—१ उपर्युक्त कथन से वैयक्तिक साहसी संगठन की अपेक्षा इस फर्म में फूट की सम्भावना अधिक मालूम होती है। साझेदारी का सबसे बड़ा दोष है अविलम्ब तथा एकतापूर्ण प्रबन्ध की प्रायः कमी। साधारणतः मतभिन्नता पैदा हो जाती है तथा प्रत्येक साझेदार एक दूसरे का असत् व्यवहार में हरा देना चाहता है। साझेदारों का संख्या जितनी ही अधिक होगी, प्रबन्ध में हितों का समन्वय प्राप्त करने में उतनी ही कठिनाई पेश होगी। साझेदारी की सफलता के लिए साझेदारों की संख्या जितनी भी कम हो उतना ही अच्छा है।

२ किन्तु साझेदारों की संख्या की सीमितता से उगाही जाने वाली पूंजी भी सीमित हो जाती है। साझेदारी का यह दूसरा बड़ा दोष है, और विशेषकर उस स्थिति में जब व्यवसाय के लिए बड़ी मात्रा में स्थायी पूंजी (Fixed Capital) की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से हालांकि यह एकाकी व्यवसाय से श्रेष्ठ है, फिर भी अति उन्नत संयुक्त पूंजी कम्पनी से यह हीन ही है।

३ अपरिमित दायित्व में वृहत् साहस (Enterprise) पर प्रतिबन्ध डालने की प्रवृत्ति विद्यमान है, और विशेषकर उस स्थिति में, जब इसके लिए वृहत् दायित्व की रचना की आवश्यकता होती है। सच्ची बात तो यह है कि अधिकांश प्रयोजनों के लिए साझेदारों का दायित्व अतिशय ही समझा जायगा। साझेदारी व्यवसाय खुदरा व्यवसाय, मध्य श्रेणी के व्यापारिक फर्म या बहुत ही छोटे निर्मिति-व्यवसाय सरीखे अपेक्षतः छोटे व्यवसाय के लिए ही उपादेय प्रतीत होता है। वास्तव में हमारे देश में साझेदारी फर्मों से संयुक्त कुटुम्ब फर्मों की संख्या ही अधिक है।

४ वैधानिक विनियमनों के नहीं होने तथा साझेदारी व्यवसाय के मामलों के प्रचार की कमी के कारण इसमें विश्वास कम हो जाता है।

५ निरंतरता की कमी एक ऐसा दोष है जो लोच के लाभ का लुप्त कर देता है। साझेदार की मृत्यु, दिवालियापन या निवृत्ति पर व्यवसाय का अन्त होना अनिवार्य है, या साझेदारी इकरारनामे (Partnership Agreement) के उल्लंघन जैसे दोषपूर्ण कार्य का परिणाम क्षतिग्रस्त साझेदार द्वारा अभियोग चलाये जाने पर साझेदारी का विघटन हो सकता है। लेकिन साझेदारी में शाश्वतता (Perpetuity) की कमी की पूर्ति दत्तकग्रहण (Adoption) द्वारा हो जाती है। वैयक्तिक साहस में व्यवसाय का अधिकारान्तरण उत्तराधिकार द्वारा होता है लेकिन साझेदारी में नयी पीढ़ी के प्रवेश हित सन्तानों को गोद ही लेना होगा और इस प्रकार नवीन तथा प्राचीन के समन्वय से निरंतरता प्राप्त की जा सकती है।

परिमित साझेदारी (Limited Partnership)

कतिपय सीमाओं यथा सामान्य साझेदार के अपरिमित दायित्व (Unlimited Liability) व पूंजी की परिमित राशि को परिमित साझेदारी संगठन (Lim Partnership Oganisation) द्वारा दूर किया जा सकता है। हम लोगों ने यह

देख लिया है कि साझेदारी का सफल सचालन पारस्परिक निश्चिन्तता तथा विश्वास (Mutual Confidence and Trust) पर निर्भर करता है, अतः अपरिचित अपने धन को नियोजित करने में सतर्क ही रहेंगे। परिमित साझेदारी किस्म का सगठन अपरिमित दायित्व धारी सामान्य साझेदारो (General Partners) के साथ विशेष साझेदारो (Particular Partners) के प्रवेश को सम्भव बनाता है। हमारे देश में इस प्रकार का उपाय प्राप्य नहीं है लेकिन पश्चिमी देशों में इस प्रकार का सगठन बिलकुल प्रचलित है। इस प्रकार की साझेदारी की रचना करने वाली सभी सविधियों में एक ही प्रकार का सिद्धान्त निहित है, अत हम आंग्ल परिमित साझेदारी अधिनियम १९०७ (English Limited Partnership Act, 1907) के महत्त्वपूर्ण उपबन्धो की रूपरेखा उपस्थित करेंगे।

इस विधान का उद्देश्य है साझेदारो में से कुछ को, उनके द्वारा लायी गई पूजी की राशि तक ही दायी बनाना, इस प्रकार उनके दायित्व को परिमित करना तथा अन्य फर्म के लिए पूरे तौर से दायी बनाना। परिमित साझेदारी की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ ये है

१ इसमें एक या एक से अधिक ऐसे व्यक्तियों का होना अनिवार्य है जो सामान्य साझेदार (General Partners) कहलायेंगे तथा जो फर्म के सारे ऋणो व देयो के लिए दायी होंगे।

२. इसमें ऐसे भी एक, या एक से अधिक व्यक्ति, जिन्हें परिमित साझेदार (Limited Partners) कहा जायगा, रहने अनिवार्य है जो पूजी की एक निश्चित राशि दें तथा उसी राशि तक दायी होगे, आगे नही। सच तो यह है कि परिमित साझेदार वह अशधारी है जिसने अपने अश की पूरी राशि चुकता कर दी है, और जिसकी पूजी उस समय तक नही लौटाई जा सकती, जब तक साझेदारी चालू है।

३ परिमित साझेदार न तो साझेदारी व्यवसाय के प्रबन्ध में भाग ले सकता है और न वह फर्म पर दावा कर सकता है, लेकिन वह इसकी लेखा पुस्तकों आदि का निरीक्षण कर सकता है।

४. यदि वह व्यवसाय प्रबन्ध मे भाग लेता है तो अपने कार्य-काल में फर्म द्वारा लिये गये ऋणो तथा देयो के लिए पूरे तौर से दायी होगा।

५ सामान्य साझेदारों की स्वीकृति से परिमित साझेदार साझेदारी में अपने हिस्से का अभिहस्तांकन (Assignment) कर सकता है और अभिहस्तांकिती (Assignee) को अपने स्थान में परिमित साझेदार बना सकता है।

६ प्रत्येक परिमित साझेदार का पंजीयन अनिवार्य है।

साधारणतः साझेदारी की तुलना में परिमित साझेदारी के कतिपय लाभ हैं। एक ओर तो प्रबन्ध में प्रारम्भ प्रेरकत्व बना रहता है और दूसरी ओर प्रबन्ध में एकाग्र प्रबंध बना रहता है जो अधिक द्रुतता तथा एकता से काम कर सकता है। नियोजक समाज को धन का बृहत्तर नियोजन करने के लिए प्रोत्साहित करती है और इस प्रकार यह उन औद्योगिक नेताओं के सम्मुख, जिनके पास कम पूंजी है, समाज सेवा के हित

अपनी प्रतिभा तथा शक्ति का उपयोग करने का अवसर उपस्थित करती है। नियन्त्रण में कमी किये बिना भी सामान्य साझेदार अतिरिक्त पूंजी प्राप्त कर सकते हैं। परिमित दायित्व उस स्थिति में अधिक उपादेय प्रमाणित होगा "जब बहुत ही केन्द्रीभूत तथा उत्तरदायी प्रबन्ध अपेक्षित है और साथ-साथ पूंजी भी अधिक चाहिए और विशेषकर जब कर या विनियामक प्रबन्धों (Regulating Provisions) के कारण निगमन वाञ्छनीय न हो।

अध्याय : : ६

संयुक्त स्कन्ध कम्पनी संगठन

(JOINT STOCK COMPANY ORGANISATION)

व्यवसाय संगठन के रूप में साझेदारी के अधिकांश दोषों को परिमित दायित्व वाली संयुक्त स्कन्ध कम्पनी द्वारा दूर किया जा सकता है। संयुक्त स्कन्ध संगठन का मौलिक सिद्धान्त यह है कि व्यवसाय की पूंजी बहुतेरे लोगों द्वारा, जिन्हें अंशधारी कहा जाता है, एकत्रित की जाती है तथा इन अंशधारियों के अधिकार बहुत सीमित होते हैं, और प्रबन्ध में इनका बहुत कम हाथ रहता है। ये अंशधारी प्रबन्ध का भार एक प्रबन्ध समिति का, जिसे संचालक मंडल कहा जाता है सौंप देते हैं और वह विभागीय प्रबन्धकों के जरिये कम्पनी को नियन्त्रित करता है। भारतवर्ष में संचालक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा अपने कार्य करते हैं। संयुक्त स्कन्ध संगठन की यह प्रणाली उन व्यवसायों के लिए बहुत ही उपादेय है जिनके लिए बड़ी पूंजी की आवश्यकता होती है, और जो पूंजी उन बहुतेरे लोगों से प्राप्त की जा सकती है जिन्हें इस बात का विश्वास होता है कि साझेदारी की तरह यहां उनका सारा धन जोखिम में नहीं है। किसी भी अंशधारी का दायित्व उस द्वारा लिये गये अंश तक ही सीमित है—यह एक ऐसा सत्य है जो सब प्रकार के लोगों को अपनी बचत उस कम्पनी में नियोजित करने को प्रोत्साहित करता है, जिसे वे अपनी कहते हैं और साथ-साथ अपने धन्धों में लगे भी रहते हैं क्योंकि लाभांश की प्राप्ति मात्र से ही उन्हें सन्तोष होता है। यही कारण है कि संयुक्त स्कन्ध उपक्रम का आज व्यापार व उद्योग के लिए पूंजी की पूर्ति का माध्यम तथा उत्पादन का एक शक्तिशाली व दक्ष इंजन माना जाता है।

प्रकृति व लक्षण (Nature and Characteristics)—कम्पनी लाभ के निमित्त एक स्वेच्छया निर्मित संघ है जिसकी पूंजी परिमित दायित्व वाले हस्तान्तरणीय अंशों में विभाजित होती है तथा जिसे निगमित निकाय तथा सार्व मुद्रा (Common Seal) प्राप्त होती है। यह कानून द्वारा निर्मित एक रचना है और कभी-कभी कृत्रिम व्यक्ति कहलाती है, जो अदृश्य अमूर्त होती है और जो केवल कानून की कल्पना में ही होती है और इसलिए जिसका प्राकृतिक या मौलिक अस्तित्व नहीं होता। चूंकि यह उन लोगों से जो इसके सदस्य होते हैं, बिल्कुल भिन्न कानूनी अस्तित्व रखती है, अतः इसके सदस्य इसके अंशधारी भी हो सकते हैं और ऋणदाता भी। किसी भी अंशधारी को कम्पनी के कार्यों के लिए उस स्थिति में भी दायी नहीं ठहराया जा सकता जब वह कम्पनी की लगभग सम्पूर्ण अंश पूंजी का स्वामी

हो। अंशधारी कम्पनी को अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते, वे इसके अभिकर्त्ता नहीं हैं। कम्पनी को अभियोग चलाने का अधिकार है तथा इस पर भी अभियोग चलाया जा सकता है लेकिन आप इससे प्रेम से हाथ नहीं मिला सकते और न गुस्से में इसको ठोकर ही मार सकते हैं। चूंकि कम्पनी एक भावनाहीन अमूर्त (Abstract) तथा कानून द्वारा निर्मित एक कृत्रिम सत्ता है, अत, यह उन देहधारी मरणशील मनुष्यों से बिल्कुल भिन्न है जो समय-समय पर इसके सदस्य होते हैं। विधिगत व्यक्तित्व (Legal personality) तथा परिमित दायित्व (Limited Liability), कम्पनी की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं। कोई भी व्यक्ति कागज के उन टुकड़ों को खरीद कर, जिन्हें अंश या स्कन्ध कहा जा सकता है, कम्पनी के नाम में प्राप्त सम्पत्ति का स्वामी हो जाता है, और उसे इस बात की स्वतन्त्रता है कि यदि कम्पनी में कुछ गोलमाल हो तब इन अंशों को जब चाहे बेच डाले। उसका दायित्व उसके द्वारा लिये गये अंशों की रकम तक ही सीमित है। दूसरे शब्दों में, एक ओर तो उसे अपने द्वारा नियोजित धन को खो देने का खतरा है और दूसरी ओर यह बात भी सही है कि कम्पनी के ऋण के भुगतान के लिए उसे अपनी सम्पत्ति से एक पाई भी देनी नहीं होगी। निगमन तथा अंशों की हस्तान्तरणीयता के स्वाभाविक परिणामस्वरूप कम्पनी को वह चीज जिसे शाश्वत उत्तराधिकार (Perpetual Succession) कहते हैं, प्राप्त है, जिसका अर्थ यह होता है कि कम्पनी का जीवन इसके सदस्यों के जीवन से स्वतन्त्र है। सदस्यों की पीढ़ियां आती और चली जाती हैं पर कम्पनी के क्रम में कोई परिवर्तन नहीं होता, बशर्ते कि कानून द्वारा इसे समेट न लिया जाए। इस कथन का मुख्य तात्पर्य है पार्षद, स्वेच्छया निर्माण लेकिन अनिवार्य सातत्य, राज्य द्वारा सृजन, स्वायत्तता (Autonomy), कार्य की अनिवार्य एकता, परिमित दायित्व तथा निजी लाभ के जरिये कुछ जनकल्याण की सिद्धि। इन सभी दृष्टियों से कम्पनी संगठन तथा साझेदारी व्यवसाय में मौलिक विभिन्नताएं हैं।

कम्पनियों का निगमन (Incorporation of Companies)—कम्पनियों का निगमन तीन प्रकार से हो सकता है . सनद द्वारा (By Charter), सविधि द्वारा (By Statute) और पंजीयन द्वारा (By Registration)। वह कम्पनी जो राजा द्वारा स्वीकृत या सनद के द्वारा निर्मित होती है, सनद धारी कम्पनी या चार्टर्ड कम्पनी (Chartered Company) कहलाती है तथा इसका निर्माण सनद द्वारा होता है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा चार्टर्ड बैंक आफ इण्डिया, आस्ट्रेलिया एण्ड चाइना इस प्रकार की कम्पनी के उदाहरण हैं। वह कम्पनी जो विधान मंडल (Legislature) की विशेष सविधि (Special Statute) से निर्मित होती है, सांविधिक कम्पनी कहलाती है और इस प्रकार की सविधि में दी गयी व्यवस्थाओं द्वारा प्रशासित होती है। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया तथा इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया ऐसी कोटि की कम्पनियों के उदाहरण हैं। वह कम्पनी जो भारतीय कम्पनी अधिनियम १९५५ के अन्तर्गत रजिस्ट्रार के यहां किये गये पंजीयन के फलस्वरूप जन्म ग्रहण करती

है, पंजीयित कम्पनी (Registered Company) कहलाती है। इस अधिनियम की धारा ११ के अनुसार प्रत्येक उस संघ को, जिसमें २० सदस्य हों (बैंक व्यवसाय की हालत में १०) अनिवार्य रूप से पंजीयित हो जाना चाहिए, अन्यथा ऐसे संघ को अवैध समझा जायगा।

पंजीयित कम्पनी के सदस्यों का दायित्व परिमित या अपरिमित हो सकता है, लेकिन अपरिमित दायित्व वाली कम्पनियाँ अब बहुत कम पायी जाती हैं। लगभग सभी कम्पनियों ने अपने को परिमित दायित्व वाली कम्पनियों की तरह पंजीयित करवा लिया है। ऐसी भी कम्पनियाँ हो सकती हैं जिनकी पूँजी गारण्टी द्वारा परिमित (Limited by Guarantee) हो सकती है। गारण्टी परिमित होने का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य कम्पनी के ऋण की एक निश्चित मात्रा का भुगतान करने के लिए दायित्व ग्रहण करता है। क्लब, व्यापार संघ तथा विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों के संवर्द्धन के निमित्त बनाई गई समितियाँ इस प्रकार की कम्पनियों के उदाहरण हैं। इस प्रकार की कम्पनियाँ भी आजकल बहुत दुर्लभ हो गयी हैं। अन्त में, सबसे अधिक प्रचलित कम्पनी, जो आजकल देखने को मिलती है, वे हैं अंशों द्वारा परिमित दायित्व वाली कम्पनियाँ। सभी प्रकार के व्यवसायों में ये ही चलती हैं। निम्नांकित लाइनों में मुख्यतः हम इसी प्रकार की कम्पनी का वर्णन करेंगे।

निजी या लोक कम्पनी (Private or Public Company)—कोई भी कम्पनी, जिसका पंजीयन परिमित दायित्व के साथ हुआ है, निजी कम्पनी या लोक कम्पनी हो सकती है। निजी कम्पनी वह है जो दो या अधिक लोगों द्वारा पंजीयित हो सकती है तथा जो अन्तर्नियमों द्वारा (१) अपने सदस्यों (कर्मचारियों या भूतपूर्व कर्मचारियों को छोड़कर) की संख्या पचास तक ही सीमित कर देती है, (२) अपने अंशों के हस्तान्तरण पर कतिपय प्रतिबन्ध लगा देती है तथा (३) अंश (Shares) या ऋणपत्र (Debentures) को खरीदने के लिए सर्वसाधारण को विवरण-पत्रिका व अन्य जरिया से आमन्त्रित करने पर रोक लगा देती है। यह स्पष्ट है कि निजी कम्पनी उन लोगों की आवश्यकता के अनुकूल सिद्ध होती है जो परिमित दायित्व से लाभ तो उठाना चाहते हैं लेकिन व्यवसाय को अपने सामर्थ्य भर निजी ही बनाये रखना चाहते हैं। कई दृष्टियों से यह साझेदारी की तरह है। इसमें स्वच्छन्दतापूर्वक अंशों का हस्तान्तरण नहीं हो सकता। और न अंश अधिपत्रों (Share Warrants) का निर्गमन ही हो सकता है। इस प्रकार साझेदारों की तरह निजी कम्पनी के सदस्य इस स्थिति में हैं कि वे आपस में वैयक्तिक सम्पर्क बनाये रख सकें।

चूँकि निजी कम्पनी की सदस्यता प्रायः मित्रों व सम्बन्धियों तक ही सीमित रहती है, अतः इसे कतिपय ऐसे लाभ उपलब्ध हैं जो लोक कम्पनी को प्राप्त नहीं। पार्षद सीमा नियम (Memorandum of Association) में दो व्यक्तियों का हस्ताक्षर ही निजी कम्पनी को रचना के लिए पर्याप्त है, तथा यह पंजीयन के शीघ्र पश्चात् व्यवसाय आरम्भ कर सकती है। इसे विवरण पत्रिका के बदले घोषणा (Statement in lieu of Prospectus) प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती। यह आवश्यक नहीं कि यह

साविधिक बैठक (Statutory) बुलाये और इसमें सिर्फ दो सचालक या डाइरेक्टर हो सकते है।

लोक कम्पनी वह कम्पनी है जिसकी सदस्यता अन्तर्नियमो की व्यवस्थानुसार सर्वसाधारण के लिए उपलब्ध हो। इसका निर्माण करने के लिए न्यूनतम संख्या ७ है। लेकिन अधिकतम संख्या पर कोई सीमा नहीं। यह अपने अश विवरण पत्रिका में विज्ञापन के जरिए सर्वसाधारण के हाथ बेचती है। एक कम्पनी निजी कम्पनी के लिये आवश्यक किसी भी प्रतिबन्ध को काम मे नहीं लाती, अत, कोई भी व्यक्ति जो अनुबन्ध-योग्य है, वह भारतीय हो या विदेशी, इसका सदस्य हो सकता है। इस हालत में, जब न्यूनतम प्रार्थित पूजी (Minimum Subscription) के लिए आवेदन-पत्र आ गये हो, विवरण-पत्रिका निर्गमित किये जाने के १२० दिनों के अन्दर ही अपने अशो का बटन कर देना होगा। इसके लिए कम से कम तीन सचालकों का होना अनिवार्य है तथा यह पजीकार के यहा से व्यवसाय आरम्भ का प्रमाण-पत्र (Certificate to Commence Business) पाने के बाद ही व्यवसाय आरम्भ कर सकती है।

भारतवर्ष में सयुक्त स्कंध कंपनियां

सयुक्त पूजी कपनी तथा कम्पनी कानून सह-विस्तारी (Co-extensive) है और दोनों भारतवर्ष के लिए विदेशी है क्योंकि इनका आयात इगलैण्ड से हुआ है। इगलिश कम्पनी एक्ट १८४४ के अनुरूप भारतवर्ष में सर्वप्रथम सन् १८५० ई० में कम्पनी अधिनियम (Companies Act) स्वीकृत हुआ। परिमित दायित्व वाला सिद्धान्त सन् १८५७ ई० में लागू किया गया, तथा अनेक सशोधन अधिनियमों (Amendment Acts) के द्वारा कानून की त्रुटियों को दूर करने के लिए बहुतेरे सशोधन किये गये। १९१३ मे एक नया कानून बनाया गया जिसमे सब सशोधन उपबंध समाविष्ट कर दिये गये थे। इसमें १९३६ म सशोधन हुआ। यद्यपि इस सशोधित कानून म बहुत परिवर्तन किये गये थे तो भी बहुत सी त्रुटिया रह गयी थी। इसलिए, भारतवर्ष म भी सर्वसाधारण ने यह माग पेश की कि कम्पनी अधिनियम का पुन निर्माण हो। इस माग की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने १९४९ मे एक स्मरण-पत्र निर्गमित किया जिसमे व्यापक के लिए प्रस्तावित सशोधन थे। विभिन्न हितों द्वारा प्रकट किये गये विचार एक दूसरे म इतने भिन्न थे कि भारत सरकार को भारतीय कम्पनी विधि पर विचार करने तथा आवश्यक सुझाव पेश करने के लिए १२ आदमियों की एक समिति बनानी पड़ी। समिति ने १९५२ में अपना प्रतिवेदन दिया जिसमे मौजूदा कानून में बहुत दूर-गामी परिवर्तन करने की सिफारिश की गयी थी। उनकी अधिकतर सिफारिशें १९४८ के इगलिश कानून के आधार पर है। इसी बीच, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा किये जाने वाले कदाचारों (Malpractices) को रोकने के लिए १९५१ म एक सशोधन कानून पास किया गया। कम्पनी कानून समिति के प्रतिवेदन पर आधारित एक नया विधेयक ससद में १९५३ मे पेश किया गया, और दोनों सदनों की सयुक्त प्रवर समिति द्वारा इसमें कई महत्त्व के सारभूत परिवर्तन किए जाने के बाद, यह नवम्बर १९५५

व स्वतन्त्रता के पश्चात् का समय सहयोगहीनता का समय रहा है और पूजी ने हड़ताल की हुई है।

जैसा कि ५० वर्षों में कम्पनियो की संख्या में हुई वृद्धि से ज्ञात होता है, कम्पनी विकास का चित्र बिल्कुल आशामय नहीं कहा जा सकता। एक ओर तो उन कम्पनियों की संख्या जिनका पंजीयन हुआ और जो इस अवधि के अन्त में चालू अवस्था में थी १३,००० से थोड़ी अधिक है, और दूसरी ओर, उन कम्पनियों की संख्या, जिनका समापन हो गया या जिन्होंने अपना व्यवसाय बन्द कर दिया, या कभी शुरू ही नहीं किया लगभग १५४०० है। इससे यह पता चलता है कि पंजीयित कम्पनियों में ५५ प्रतिशत या तो समापित (Wound up) हो गयी थी या व्यवसाय बन्द हो गया या उन्होंने इस प्रकार व्यवसाय शुरू किया ही नहीं। कम्पनी विफलता का वार्षिक औसत ६.३ प्रतिशत है। यह कोई अच्छी अवस्था नहीं है और इससे यह साफ-साफ पता चलता है कि कम्पनी का निर्माण उचित व्यवसाय उद्देश्यों या सुदृढ़ व्यवसाय आधारों पर नहीं हुआ है। कुछ बेईमान प्रवर्तक सर्वसाधारण से पैसे एठना अपना रोजगार बना लेते हैं—ये सर्वसाधारण प्रायः भोले होते हैं। सौभाग्य से सच्चे उद्देश्यों के निमित्त बनायी जाने वाली कम्पनियों की संख्या वृद्धि पर है। भारतीय कम्पनी (संशोधन) अधिनियम १९३६ का कम्पनी प्रवर्तन तथा प्रबन्ध पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। मौजूदा कानून तो इस दिशा में जनता के लिए वरदान सिद्ध होने की आशा है।

निवेशकों के लिए बचाव (Safeguards for Investors)—इस बात के निश्चय के लिए कि कम्पनी अपना व्यवसाय पर्याप्त पूजी से प्रारम्भ करे तथा मनमानी न्यूनतम पूजी राशि, जैसे १० अंश मात्र, तय न करे, कम्पनी कानून की धारा ६८ और अनुसूची दो का खंड ५ न्यूनतम आधार, जिसे न्यूनतम प्रार्थित पूजी (Minimum Subscription) कहते हैं निर्दिष्ट करते हैं। इस प्रार्थित पूजी का विवरण सम्भावित अंश-क्रेताओं की सूचना के लिए प्रविवरण में होना अनिवार्य है। न्यूनतम प्रार्थित पूजी एक ऐसी निर्धारित रकम हो जो निर्गमन द्वारा नकद प्राप्त की जाय और जो इन कार्यों के लिए पर्याप्त हो (क) क्रीत या क्रय की जाने वाली सम्पत्ति का मूल्य जो अंश निर्गमन से प्राप्त धन के द्वारा चुकाया जाय, (ख) प्रारम्भिक व्यय (Preliminary Expenses) तथा कम्पनी द्वारा देय कमीशन (Commission), (ग) उपर्युक्त व्यय की व्यवस्था के लिए लिये गये ऋण का भुगतान तथा (घ) कार्यशील (Working) पूजी। विधान ऐसी भी व्यवस्था करता है कि प्रार्थना पत्र के साथ चुकाई जाने वाली रकम अंश की अंकित राशि (Nominal amount) के ५ प्रतिशत से कम हो ही नहीं सकता और न कमीशन जिसमें अभिगोपन कमीशन (Underwriting Commission) भी सम्मिलित है, निर्गमन मूल्य के ५% से अधिक हो सकता है। प्रवर्तकों का जनता को गुमराह करने से रोकने की दृष्टि से न्यूनतम प्रार्थित पूजी सम्बन्धी पांच बातों के बारे में विस्तृत जानकारी के विषय में, १९५५ के अधिनियम की धाराएं ४३ और ५५ १९४८ के इंग्लिश अधिनियम ३८वीं तथा ४७वीं धाराओं पर आधारित हैं। पुनः ऐसी व्यवस्था कि प्रार्थना-पत्र राशि को अनिवार्य रूप से किसी अनुसूचित बैंक में

रखना होगा तथा पंजीकार से व्यवसाय आरम्भ का प्रमाण-पत्र पाये बिना इसका उधार नहीं लिया जा सकता, एक अन्य नियन्त्रण का काम करती है तथा इसका अर्थ अंशधारियों का संरक्षण भी है। अंशधारियों के हितों की एक प्रकार से और रक्षा होती है क्योंकि केन्द्रीय शासन की पूर्वानुमति से, पंजीकार कम्पनी के समापन के लिए आवेदन करता है, यदि चिट्ठे (Balance Sheet) की जांच के बाद उसे इस बात का विश्वास हो जाय कि कम्पनी अपने ऋण चुकता कर सकने में असमर्थ है।

नया फार्म जैसा कि अनुसूची ६ में वर्णित है, जिसके अनुसार ही चिट्ठे का बनाया जाना अनिवार्य है, पहले की अपेक्षा अधिक सूचनाएं देता है। सचालकों के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रत्येक चिट्ठे के साथ कम्पनी की स्थिति सम्बन्धी रिपोर्ट जोड़ दें तथा यह भी बतावें कि सहायक कम्पनी (यदि हो तो) के लाभ-हानि (Profit and Loss) का लेखा-जोखा सधारी कम्पनियां (Holding Companies) के खातों में किस प्रकार किया गया। अंकेक्षक की रिपोर्ट भी साथ होनी चाहिए और तब ये लेखे व रिपोर्ट वार्षिक वृहत् अधिवेशन (Annual General Meeting) से २१ दिन पहले अंशधारियों और ऋणपत्र धारियों के पास भेजी जानी चाहिए ताकि वे कम्पनी की स्थिति को समझ सकने में समर्थ हों। कपट तथा कपटी कम्पनियों को रोकने के लिए पंजीकार को एक और अधिकार दिया गया है। यदि उसे प्रस्तुत किये गये लेखों के पढ़ने या किसी अंशधारी या ऋणदाता से सूचना प्राप्त करने पर यह विश्वास हो गया है कि कम्पनी के प्रबन्ध में छल व अनियमितता से काम लिया गया है तो वह केन्द्रीय सरकार को आवश्यक कार्यवाही करने के लिए सूचित कर सकता है। केन्द्रीय सरकार जांच करने वालों को नियुक्त कर सकती है और यदि उनकी रिपोर्ट पर आवश्यक प्रतीत हो तो उस व्यक्ति या व्यक्ति समूह के विरुद्ध, फौजदारी मुकदमा (Criminal Case) या एडवोकेट-जनरल के प्रस्तावानुसार अन्य कार्रवाई की जा सकती है, जो कपट या मिथ्याचरण का दोषी प्रतीत होता हो। लेकिन अतीत में जांच पड़ताल की कार्रवाई वैधानिक दुर्बलताओं के कारण प्रभावरहित साबित हुई है। अत, जांच पड़ताल अधिकोषण कम्पनियों (Banking Companies) के जांच-पड़ताल के स्तर पर कर दी गयी है।

पूंजी-निर्गमन पर नियन्त्रण (Control of Capital Issue)—भारतवर्ष में कम्पनी विकास की बात को समाप्त करने के पहले एक महत्वपूर्ण विषय, अर्थात् पूंजी निर्गमनों के नियन्त्रण का विवरण, अनिवार्य है। सन् १९४३ ई० में युद्ध दूर-दूर तक फैल गया था और भारत सरकार के सामने युद्ध के हित विपुल धन राशि एकत्रित करने की विकट समस्या आ गयी थी। देश के साधनों का मुख्यतः युद्ध-जनित उद्देश्यों के हित उपयोग करने के लिए सरकार ने उद्योगों के द्वारा स्वच्छन्द वित्त उपयोग पर रोक लगानी चाही, अतएव, सरकारी उधारग्रहण (Govt. Borrowing) तथा औद्योगिक विनियोग के बीच उचित सन्तुलन (Judicious Balance) बनाने तथा मुद्रास्फीतिमूलक प्रवृत्तियों पर रोक लगाने के लिए भारत सरकार ने मई १९४३ में भारत रक्षा नियम ९४-ए (Defence of India Rule 94-A.)

के अन्तर्गत पूजी निर्गमन नियन्त्रण सम्बन्धी आदेश जारी किया, जिनकी समाप्ति सितम्बर १९४६ में हो गयी लेकिन उनकी वह अवधि १९४६ के विशेष आर्डिनेन्स नं० २०, द्वारा बढा दी गयी।

आर्डिनेन्स की व्यवस्थानुसार कोई भी कम्पनी केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति के बिना (क) अग्रेजी भारत मे किसी भी प्रकार की पूजी निर्गमित नही कर सकती, (ख) अग्रेजी भारत में किसी भी प्रकार की प्रतिभूतिया सर्वसाधारण के बीच बिक्री करने का प्रस्ताव नहीं कर सकती, (ग) किसी भी प्रतिभूति को जो अग्रेजी भारत में भुगतान की तारीख प्राप्त कर रही हो ,पूर्णावधि, की तारीख स्थगित की या बदली नही जा सकती। इसने जनसाधारण को कम्पनी की ऐसी प्रतिभूतिया खरीदने से भी निषिद्ध कर दिया जो केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति के बिना निर्गमित की गई हो। सरकार ने प्रतिभूतियो के निर्गमन की स्वीकृति या मान्यता देने के समय ऐसी शर्ते लगाने का, जो वह उचित समझती हो, अधिकार अपने पास रख लिया। इन उपबधो का उल्लघन करने वाला कोई भी प्रवर्तक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता या अभिकेता पाच वर्ष की कैद या अर्थदण्ड या दोनो का भागी हो सकता था। आर्डिनेन्स की व्यवस्थाय अधिकोषण (Banking) तथा बीमा कम्पनी को छोडकर पाच लाख से कम पूजी निर्गम पर लागू नही होती थी।

यद्यपि पूजी नियन्त्रण का मौलिक उद्देश्य या युद्धजन्य आवश्यकताओ की पूर्ति तथा युद्धकाल म आवश्यक सेवाओ तथा वस्तुओ की सीमित पूर्ति के लिए छीना-झपटी को रोकना, फिर भी युद्ध के बन्द होने पर भी यह अनुभव किया गया कि देश की युद्धोत्तर परिस्थिति ऐसी है जिसमे नियन्त्रण का होना जरूरी है। अत, "उद्योग, कृषि एव सामाजिक सेवाओ के बीच सन्तुलित नियोजन प्राप्त करने एव इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि प्राप्य पूजी साधन कृषीय, औद्योगिक तथा अन्य विकास के बीच सन्तुलित रूप से प्रयुक्त किये जाए और पूजी वस्तुओ व उपभोक्ता वस्तुओ के निर्माण के बीच एक सन्तुलन रखने के निमित्त" १९ अप्रेल १९४७ में केन्द्रीय विधान मडल में एक विधेयक पेश किया गया जो पूजी निर्गम (नियत्रण जारी रखना) अधिनियम के नाम से प्रकट हुआ। निम्नाकित परिवर्तनो को छोडकर यह अधिनियम भारत रक्षा नियम ९४ ए (Defence of India Rule) की व्यवस्थाओ के अनुसार ही था—

१ अधिनियम तीन वर्ष लागू रहना था।

२ पाच सदस्यो की एक परामर्शदात्री समिति का गठन होने वाला था, जो कानून के लागू होने के फलस्वरूप उत्पन्न विषयो पर परामर्श देती।

३ जब पूजी निर्गमन के हित दिया गया आवेदन-पत्र अस्वीकृत होता तो प्रार्थी के आवेदन-पत्र पर केन्द्रीय सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह अस्वीकृति के कारण प्रार्थी के पास लिखित रूप में प्रेषित करे।

चूकि इस कानून की अवधि मार्च १९५० में समाप्त होने वाली थी, अत दूसरा

व्यर्थ पड़ी रहती। प्रायः व्यवसाय चलाने के लिए हमारे पास काफी बचत नहीं होती और यदि हम लोगों के पास पर्याप्त धन हो, तब भी शायद हम लोग अपने वर्तमान धन्धे को छोड़कर वह धन्धा अपनाना नहीं चाहेंगे जिसके लिए हमारे पास रुचि या कुशलता का अभाव है। लेकिन कम्पनी के अंशों को खरीदने के बाद काम का त्याग किये बिना ही हम लोग आंशिक रूप से कम्पनी के स्वामी हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक लाभ और है, चूंकि थोड़े परिमाण में अंश खरीदे जा सकते हैं, अतः हम अपनी बचत को विभिन्न कम्पनियों के बीच वितरित कर सकते हैं और इस प्रकार सम्पूर्ण जोखिम को कम कर सकते हैं। अंशों की हस्तान्तरणीयता तथा स्टाक मार्केट में उनका खरीद बिक्री कम्पनी को पूंजी प्राप्ति के मामले में और आकर्षक बना देती है। कम्पनी में विनियोजित पूंजी को हम आसानी से वापस पा सकते हैं। उन लोगों से, जिनके पास अतिरिक्त थोड़ी रकम प्राप्य होती है, पूंजी एकत्रित करने की विधि के कारण कम्पनी को उस धन राशि से कहीं ज्यादा पूंजी प्राप्त हो जाती है जो वैयक्तिक व्यवसायियों द्वारा आसानी से इकट्ठी की जा सकती है और जो स्वामित्व-धारियों की हैसियत या उनके द्वारा लिये गये ऋण पर निर्भर करती है। सच्ची बात तो यह है कि वृहत् पूंजी एकत्रित करने के मामले में जितनी अनुकूल संयुक्त स्कन्ध कम्पनी है उतना कोई व्यवसाय का दूसरा रूप नहीं। कम्पनी की उपादेयता पूंजी के वृहत् संचय से है और यह संचय आज के उद्योग की विशेषताओं में से है।

२. दूसरा लाभ उपर्युक्त विवेचन का परिणाम है। हानि का जोखिम बहुत से विनियोक्ताओं के बीच वितरित हो जाता है तथा थोड़े से लोगों को, जैसे साझेदारी या एकाकी व्यवसायी की अवस्था में, होने वाली क्षति की सम्भावना न्यूनतम हो जाती है। अब यह आवश्यकता नहीं रही कि धनाढ्य लोग व्यवसाय का भार वहन करते रहें, क्योंकि दूर-दूर से तथा दरिद्र एवं धनी व्यक्तियों से पूंजी एकत्रित एवं व्यवस्था के द्वारा नियन्त्रित की जा सकती है।

३. पूंजी का औसतन छोटी-छोटी राशियां एकत्रित की जाती हैं और सामूहिक रूप से विनियुक्त की जाती हैं जिसका परिणाम मार्शल महोदय के शब्दों में, व्यवसाय नियन्त्रण के प्रजातन्त्र, स्वामित्व का लोकतन्त्रीकरण (Democratisation of Ownership) होता है। एक ओर तो संयुक्त पूंजी कम्पनी सब प्रकार के लोगों को, चाहे वे बड़े हों या छोटे साहसी हों या सावधान, यह सामर्थ्य प्रदान करती है कि वे व्यवसाय के आंशिक स्वामी हों और दूसरी ओर योग्य साहसिकों की पटुता तथा प्रारम्भण (Initiative), इनकी विशिष्टता तथा व्यावसायिक क्षमता की उपादेयता के अवसर प्रदान करती है। साहसिकों के ये गुण समाज को अन्यथा उपलब्ध नहीं होते।

४. परिसीमित दायित्व एक औद्योगिक लाभ प्रदान करता है। व्यावसायिक संगठन के विकास की किसी अवस्था (Stage) ने भी, शायद, विनियोग को इतना सुगम नहीं बनाया जितना कि परिसीमित दायित्व की वैधानिक व्यवस्था ने। इसने जोखिम तथा प्रत्याय (Return) के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध को सम्भव बनाया है। क्योंकि

जैसा कि हैने महोदय ने कहा है, साझेदारी मत या साहचर्य (Association) के विचार का उसी विनियोग में प्रयुक्त करती है लेकिन कम्पनी सब सम्बन्धी विचार को न केवल रचना व प्रबन्ध में बल्कि जोखिम में भी, प्रयुक्त करती है। केवल निगमित कम्पनी के अन्तर्गत ही मूल सदस्यों का आर्थिक दायित्व उनके विनियोग के साथ सम्बद्ध कर दिया जाता है। अतः परिमित कम्पनी उन व्यवसायों के लिए विशेष रूप से अनुकूल है, जिनसे लम्बी अवधि के बाद ही लाभ अर्जन किया जा सकता है।

५ यह संगठन एक वैधानिक व्यक्ति है जिसे अविच्छिन्न उत्तराधिकार (Perpetual Succession) प्राप्त है। यह व्यापारी उत्पादकों की अनेक पीढ़ियों के बाद भी जीवित रह सकता है। उस व्यापारी फर्म का अन्त निश्चित है जिसे असीम शक्ति प्राप्त नहीं है। एक बड़ी कम्पनी का एक बहुत से विशेष लाभ प्राप्त है जो काल के साथ वास्तव में समाप्त नहीं हो जाते। वास्तविकता यह है कि इसकी निरन्तरता, जो निगमन से उद्भूत होती है और जो निगमन, उत्तराधिकार तथा कार्य की एकता की सम्बद्धता के कारण स्थायित्व का कारण बनती है, एक बहुत बड़ा लाभ है, क्योंकि यह प्रयास तथा निपुणता को प्रोत्साहित करती है। कम्पनी की इस अविच्छिन्नता पर प्रबन्ध या स्वामियों के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मृतक की सम्पत्ति के समायोजन के समय अंशों या स्कन्ध का स्वामित्व सम्बन्धी झगड़ा भी कम्पनी पर कोई असर नहीं डाल सकता। सच्ची बात यह है कि वे व्यवसाय भी, जिनका स्वामित्व वस्तुतः किसी एक आदमी के हाथ में होता है, एक-व्यक्ति कम्पनियां (One man Company) की तरह कभी-कभी निगमित कर दिये जाते हैं, और व्यवसाय का स्वामी अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों को कतिपय अंश दे देता है ताकि व्यवसाय का संगठन ऐसा हो कि वह व्यवसायी की मृत्यु के उपरान्त भी चालू रहे।

६ कम्पनी का छठा लाभ संचालन तथा प्रबन्ध की बढ़ी हुई दक्षता में है। उत्पादन के उपकरणों का सरल संयोग हो जाता है। परिमित दायित्व तथा स्वतन्त्र हस्तान्तरण के फलस्वरूप प्रशासन की पटुता तथा लोच में वृद्धि हो जाती है। सर्वाधिक चतुर तथा पटु संचालक चुने जा सकते हैं, और यदि वे बाद में उदासीन तथा अकुशल साबित हों तो बदले भी जा सकते हैं। यह बात भी है कि एक ओर तो व्यापक समस्याओं के निराकरण के लिए संचालकों द्वारा नवीन विचार प्रविष्ट किये जा सकते हैं और दूसरी ओर, कम्पनी में सर्वोच्च योग्यता को पूंजी की कमी के कारण अवरुद्ध करना अनावश्यक है क्योंकि योग्य संगठनकर्ता उन्नति की अपेक्षा करते हैं। इस प्रकार की कम्पनी स्वेच्छापूर्वक वृद्धि प्राप्त कर सकती है। सर्वाधिक योग्य व्यवसायी भी व्यवसाय पर अधिकार नहीं रख पाता है या ऐसे संगठन की समस्या उसके सामने आ खड़ी होती है जो उसके लिए बहुत ही बड़ा है। लेकिन कम्पनी किसी एक आदमी पर निर्भर नहीं करती। इस प्रकार संचालक मण्डल किसी एक आदमी की अपेक्षा वृहत्तर नीति परिवर्तन को आरम्भ कर सकता है। इसके अलावा, जैसे-जैसे कम्पनी बड़ी होगी, वैसे ही वैसे इसे नयी प्राविधिक मितव्ययिताएं प्राप्त होती जायेंगी।

७ कम्पनी को एक बड़ा आर्थिक लाभ यह है कि प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओं, प्रबन्ध-सचालकों और प्रबन्ध-व्यवस्थापकों का दिए जाने वाले कुल वेतनों की राशि एक सफल वैयक्तिक व्यापारी को होने वाले अतिरिक्त लाभों की तुलना में बहुत ही कम है।

८ कम्पनी व्यवसाय का एक निश्चित हैसियत प्रदान करती है और अभिकर्त्ताओं के जरिये उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों के सम्पादन को सुविधा प्रदान करती है। इससे यह होता है कि अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इसे छल-छद्म या प्रपंच की आवश्यकता नही रहती। कोई बाहरी व्यक्ति कम्पनी के साथ व्यवहार करने को हमेशा तत्पर रहता है चूंकि यह कम्पनी के व्यवसाय के अधिक्षेत्र व इसके अधिकारों की वैधानिक सीमाओं से अच्छी तरह अवगत होता है।

९ कम्पनी से जो लाभ समाज का प्राप्त होता है, वह है विनियोग को प्रोत्साहन तथा बड़े पमाने के उद्योग (Largescale Industry) के कुशल सचालन की सम्भावना। कम्पनी के द्वारा स्वामित्व के तत्व पर काफी निगरानी रखी जाती है। अनिवार्य प्रकाशन तथा कम्पनियों के अन्य नियमन समाज के लिए बहुत ही लाभप्रद हैं और विशेषकर बैंक तथा लोकोपयोगी (Public utility) कम्पनियाँ सबधी नियमन।

हानियाँ (Disadvantages)—कम्पनी सगठन के इतने लाभों के बावजूद, इसके बहुत से खतरे हैं और विशेषकर एक विनियोक्ता के लिए, जिसे उस कम्पनी की वास्तविक स्थिति का बहुत कम ज्ञान होता है जिसमें वह अपनी बचत का विनियोग करना चाहता है। किन्तु जनहित की रक्षा के लिए सभी प्रकार की कम्पनियों का नियमन करने की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है, लेकिन कम्पनी सगठन का नियमन आज की सर्वाधिक कठिन समस्याओं में से एक है तथा इसके खतरे व दोष हमारे सामने हैं।

१ इसका पहला दोष तो यह है कि दो कारणों से इस बात की सम्भावना है कि कपनी दगाबाज लोगों के हाथोंमें पड़ जाय। पहला कारण तो यह है कि चरित्रहीन प्रवर्त्तकों के द्वारा पूंजी प्राप्त करने के साधन का आसानी से दुरुपयोग हो सकता है, और दूसरा कारण यह है कि उन सचालकों व प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की योग्यताओं तथा सचाई को ज्ञात करना जिनके नाम प्रविवरणों में छपते हैं, कठिन है। प्रविवरणों को ऐसे शब्दों में लिखकर, जिनसे सब्ज बाग दिखायी दे, चालाक तथा ठग लोग भोली जनता से रुपये एठ लेते हैं, जिसका परिणाम सर्वनाश होता है। गाफिल लोगों की बचत उनसे ठग न ली जाय, इस काम के लिए किसी प्रकार के अभिकरण (Agency) की स्थापना होनी चाहिए जिसका काम रहे सर्वसाधारण को विनियोग सम्बन्धी निरापदता या अनिरापदता के सम्बन्ध में परामर्श देना। इसके साथ जिस दगाबाज का भंडाफोड़ हो उसके बारे में अधिकाधिक प्रचार किया जाना चाहिए। उसे दबाना नहीं चाहिए जैसा कि आजकल होता है। ऐसा करने से ही मुफ्त की कमाई पर पलने वालों से समाज की रक्षा हो सकती है।

२ सिद्धान्त में तो निस्सन्देह सयुक्त स्कन्ध कम्पनी एक लोकतन्त्र है लेकिन

व्यवहार में दुर्भाग्यवश अभिकर्त्ताओं तथा सचालकों का अल्पतन्त्र है, जिसका परिणाम होता है थोड़े से लोगों में नियन्त्रण का नितान्त केन्द्रीकरण। अशधारियों की, जो कम्पनी के वास्तविक स्वामित्वधारी हैं तथा जोखिम को ढोने वाले हैं, शायद ही कम्पनी के मामले में कोई आवाज हो या जोखिम को उठाने में कोई हाथ हो। वे सुषुप्त साझेदार होते हैं, जो बदलते हैं तो साल में एक ही बार और तब भी अल्पतन्त्रवादियों तक उनकी आवाज पहुंच जाय, इतना जोर उनकी आवाज में नहीं होता। "भीतरी" (Insiders) लोग, जिनके पास पर्याप्त मात्रा में अश तथा मताधिकार होता है अशधारियों तथा प्रबन्ध के बीच मजबूत दीवार होते हैं। अधिकतर अशधारी अधिवेशनों में सम्मिलित नहीं होते क्योंकि तत्सम्बन्धी व्यय उस रकम से ज्यादा होता है जिसे पाने की आशा वे कम्पनी से करते हैं। जब तक उन्हें लाभांश मिलता रहे, तब तक सब ठीक है, चाहे कोई उन्हें उनके अधिकार से वचित ही क्यों न कर दे। और नहीं तो पैसे तथा समय बचाने एव यह सन्तोष प्राप्त करने के लिए कि उन्होंने अपने अधिकार का उपयोग किया है, वे प्रबन्ध अभिकर्त्ता या सचालक के पक्ष में प्रतिपत्र (Proxy) दे देते हैं। यह रिवाज भारतवर्ष में अत्यधिक चालू है। इन उपायों द्वारा प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचालक तथा उनके मित्र, जो कम्पनी के भीतरी घेरा "(Inner Ring)" होते हैं, पूजी थोड़े से भाग, यथा अश पूजी का दस प्रतिशत, के स्वामी होकर भी कम्पनी पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं।

प्रबन्ध (Management) चाहे तो, विभिन्न कोटि के अशों से सम्बद्ध मताधिकारों का इस प्रकार उलट-फेर करके कि अपेक्षत थोड़ी कीमत वाले अशों की प्राप्ति द्वारा बहुमत (Majority) प्राप्त हो जाय, अशधारियों को अपने विचार स्वीकृत कराने से वचित भी कर सकता है। उदाहरणत, १०,००,००० रुपये की अधिकृत पूंजी १०० रुपये वाले २,५०० मताधिकारहीन अधिमान अशों में, जिसमें २,५०,००० प्राप्त हुए, १० रुपये वाले ६५,००० साधारण अशों में (प्रत्येक को एक मत प्राप्त) जिसमें ६,५०,००० रुपये प्राप्त हुए तथा एक रुपये वाले १,००,००० डैफर्ड अशों या संस्थापक अशों में (प्रत्येक को एक मत प्राप्त) जिसमें १,००,००० रुपये प्राप्त हुए—विभाजित की जा सकती है। यहा यह उल्लेखनीय है कि डैफर्ड अशों के धारक ६५% साधारण अशधारियों तथा २५% अधिमान अशधारियों (जिन्हें मताधिकार होता ही नहीं) के मुकाबले में निर्विवाद बहुमत में हैं। अपनी स्थिति को बिल्कुल निरापद बना लेने के बाद प्रबन्ध अभिकर्त्ता तथा सचालक कम्पनी के कोष को निजी लाभ के लिए व्यवहृत करके, बिक्री या लाभ पर कमीशन के रूप में अतिशय प्रतिफल, तथा वेतन व भत्ता लेकर कम्पनी का दोहन करते हैं। हो सकता है कि कम्पनी का धन उनके द्वारा बरबाद कर दी जाय या अनुत्पादक कार्यों में प्रयुक्त कर दी जाय; बेचारे अशधारियों के पास कोई प्रतिकार नहीं।

३. तीसरा दोष यह है कि इस प्रकार का सगठन स्टाक मार्केट में सट्टेबाजी को प्रोत्साहन देता है। यह हमारे देश में भयकर दोष है, क्योंकि स्टाक मार्केट सबल विनियोग (Sound investment) या स्थायित्व (Stability)

को सहायता देने के बदले सट्टेबाजी के उत्प्रेरक (Hush Agency) का काम करते हैं। बहुधा प्रबन्ध अभिकर्ता अपने लाभ तथा सामान्य अशधारियो की प्राणघातक हानि के लिए स्टाक एक्सचेंज मे अशो के मूल्य इधर-उधर करके अपनी स्थिति का दुरुपयोग करते हैं।

४ उपर्युक्त हानि से बिल्कुल सम्बद्ध वह हानि है जिसे डा० लोकनाथन "प्रबन्ध अभिकर्ताओ तथा अशधारियो के बीच हित का सघर्ष" कहते हैं। प्रारम्भ मे ही यह कहा जा सकता है कि यद्यपि दोनो के बीच इस सघर्ष तथा असगति का कारण प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली है और वास्तव मे यह घटक सबसे बड़ी कमजोरियो में से एक है, लेकिन इसका यह तात्पर्य नही कि अशधारी सर्वदा सही तथा प्रबन्ध (Management) गलत या दोषी है। यहा यह कहने का इतना ही तात्पर्य है कि भारतवर्ष में अशधारियो का प्रबन्ध के प्रतिकूल कुछ भी करने का अधिकार नही है, यदि वे ऐसा अधिकार रखना भी चाहें। अक्सर यह होता है कि अयोग्य तथा बेईमान प्रबन्ध अभिकर्त्ता, जिनमें कम्पनी की सफलता के लिए काम करने के उच्चादर्शों की नितान्त कमी होती है, अशधारियो को विपत्ति में डाल देते हैं और स्वय बाल-बाल बच जाते हैं। ऐसा करते समय वे सभी प्रकार की आर्थिक गोटेबाजी के जरिये लाखो की रकम हड़प जाते हैं। ऐसे प्रबन्ध अभिकर्ता अशधारण से होने वाली आमदनी को अन्य जरियो से होने वाली आमदनी की अपेक्षा हीन समझते हैं और इस प्रणाली को बदनाम करते हैं। कम्पनी तथा प्रबन्ध के हितो में ऐक्य की इस कमी के कारण ही गोटेबाजी (Manipulation), सट्टेबाजी (Speculation) तथा सर्वनाश को प्रोत्साहन मिलता है।

अशधारियो तथा प्रबन्ध के बीच इस सघर्ष के अतिरिक्त विभिन्न कोटि के अशधारियो के बीच भी हित सघर्ष का खतरा हमेशा विद्यमान रहता है। यह नियम सा हो गया है कि अधिकाश अशधारी निर्धारित लाभाश (Fixed Dividend) में ही अपना हित समझते हैं, अत, लाभो के न्यूनाधिक किये जाने की ओर वे अरुचि दिखाते हैं। साधारणतया स्थगित अशधारी लाभस्फीति के लिये अपनाये गये इन साधनो को पसन्द करते हैं और हो सकता है कि वे सचिति निर्माण का विरोध करे।

५ एकाकी व्यापारी तथा साझेदारी के मुकाबले में सयुक्त स्कन्ध कम्पनी का दूसरा दोष है अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यायोजित (Indirect and Delegated) व्यवस्था से उत्पन्न होने वाली बरबादी तथा अकुशलता की सम्भावना। वेतनभोगी प्रबन्धकर्ताओं के द्वारा व्यक्तिगत दिलचस्पी के अभाव के कारण अकुशलता तथा बरबादी की उत्पत्ति होती है, क्योकि वैयक्तिक प्रारम्भण (Individual Initiative) तथा वैयक्तिक उत्तरदायित्व का नामोनिशान नही होता। उत्साह तथा वफादारी की ओर प्रेरणा उतनी तीव्र नहीं होती जितनी साझेदारी में, जिसमें सभी साझेदार सक्रिय प्रबन्धकर्ता होते हैं। एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि कम्पनी में अन्य व्यावसायिक सगठनो की अपेक्षा चालक शक्ति कम प्रत्यक्ष तथा निश्चित होती है। व्यवसाय का स्वामी जब किसी परिवर्तन की बात सोचता है तब उसमें उसका निजी हित सम्मिलित होता है जिसके बल वह होने वाले लाभ को हानि से तोलता है।

लेकिन इनके विपरीत वेतनधारी प्रबन्धकर्त्ता या पदाधिकारी का निजी हित विपरीत दिशा में होता है। न्यूनतम विरोध का रास्ता, सर्वाधिक आराम तथा स्वयं को न्यूनतम खतरा, यह वह मार्ग है जिसमें उन्नयन के लिए प्रयत्नशील नहीं होना है तथा उन्नयन के लिए प्रयत्न नहीं करने की स्थिर दलील उस समय तक दुहराते जाना है जब सफलता बिल्कुल असंदिग्ध नहीं हो गयी हो। पुनः वैयक्तिक उत्पादनकर्त्ता अविलम्ब कार्य कर सकता है, लेकिन संयुक्त स्कन्ध कम्पनी चिन्तामग्न हो एक-एक डग बढ़ती है और तब ही कार्य करती है जब विरोधी हितों में मतैक्य हो जाए।

६ कम्पनी प्रबन्ध का एक और दोष है कम्पनी के सदस्यों का नौकरशाही मिजाज जिसके कारण वे क्लेशजनक प्रारम्भण (Troublesome initiative) से दूर भागते हैं, क्योंकि उन्हें इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। इससे सामाजिक यन्त्र में जंग लगता है तथा चरित्र बल में गिरावट होती है।

७ अन्त में बृहत् व्यवसाय की कतिपय दुर्बलताएं हैं जो संयुक्त स्कन्ध कम्पनी से प्रस्तुत होती हैं। सर्वप्रथम तो यह बात होती है कि अंशधारियों के पैसे से काम किये जाते हैं, लेकिन अंशधारियों का उत्तरदायित्व इन कामों के लिए प्राप्त नहीं होता। इससे अनेक प्रकार की बुराइयां पैदा होती हैं। जैसे दोहन (Sweating), असन्तोषजनक कार्य परिस्थितियां तथा श्रमिक का शोषण (Exploitation of Labour) द्वितीय, बड़े व्यवसाय का प्रत्येक विभाग भरा हुआ तथा निश्चित होता है जिसके लिए परीक्षा (Check) तथा प्रतिपरीक्षा (Counter-checks) की प्रणाली आवश्यक हो जाती है। इस तरह की प्रणाली आवश्यक रूप से मानव-प्रयत्नों के लिए घातक होती है और लोच (Elasticity) को दबाती है। तीसरी बात यह है कि संयुक्त स्कन्ध संगठनों में संयोजन (Combination) निर्माण की प्रवृत्ति होती है। ये संयोजन एकाधिपत्य अधिकारों का उपयोग करते हैं जिनकी प्रतिक्रिया समकक्ष उत्पादनकर्त्ताओं तथा उत्पादित माल के उपभोक्ताओं के लिए अहितकर हो सकती है।

जो कुछ ऊपर बताया गया है उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक दृष्टि से धन के वितरण पर संयुक्त स्कन्ध संगठन का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इसमें बुरी और अच्छी दोनों तरह की सम्भावनाएं निहित हैं। एक ओर तो यह लघुराशि विनियोग एवं तत्सम्बन्धी लाभ व ब्याज के वितरण के द्वारा धन को विकेन्द्रित करता है और दूसरी ओर इसका परिणाम मुट्ठी भर औद्योगिक तानाशाहों के हाथ में धन का दोषयुक्त तथा अलोकतन्त्रीय केन्द्रीकरण भी हो सकता है। संयुक्त स्कन्ध संगठन के द्वारा धन के असमान वितरण को प्रोत्साहन मिला है। कम्पनियों को वृहदाकार होने देना और साथ-साथ तज्जनित लाभ सर्वसाधारण को निश्चित रूप से प्राप्त करा सकना टेढ़ी खीर मालूम पड़ता है।

अध्याय : : ७

कम्पनी प्रवर्त्तन (COMPANY PROMOTION)

व्यावसायिक फर्में, जो मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु मालों का उत्पादन तथा संभरण करती हैं, यह पाती हैं कि इन आवश्यकताओं की कोई दृश्य सीमा नहीं है, और वे नयी आवश्यकताएं पैदा करती चली जाती हैं। नयी-नयी विधियों द्वारा नयी कोटि का माल दो में से किसी एक प्रकार से बाजार में प्रवेश करता है, चालू व्यवसाय के उत्पादित मालों की शृंखला में जुड़कर या नये साहस (व्यवसाय या उपक्रम) की रचना या प्रवर्त्तन द्वारा।

चालू व्यवसाय की प्रतिभूतियां विनियोगी जनता द्वारा शीघ्र खरीद ली जाती हैं। लेकिन धनार्जन के लिए विनियोक्ता नयी योजना की खोज नहीं करेगा और न नयी योजना को अपनायेगा ही। उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, उस व्यवसाय में विनियोग करने की जिसके बारे में वह कुछ जानता है और जो लाभदायक सिद्ध हो रहा है। अतः इसके पहले कि वित्तवान् व्यक्ति को नये व्यवसाय का लोभ दिया जाय ताकि धन के उपार्जन के नये अवसर का उचित विकास हो, यह आवश्यक है कि उसे एक सुनिश्चित योजना या प्रस्थापना प्रदान की जाय, अर्थात् उसे यह बताया जाय कि प्रस्तावित व्यवसाय क्या करने जा रहा है तथा संगठन के कौन साधन हैं जिनके जरिये अभीष्ट की प्राप्ति होगी। अतएव, एक ऐसे आदमी की आवश्यकता पड़ती है, जो धनोपार्जन के अवसर ढूंढ निकाले, ऐसी प्रस्थापनाओं का अन्वेषण करे, उनके विभिन्न तत्वों को एकत्रित करे व उसका वित्तपोषण करे तथा उन कार्यों के सम्पादन द्वारा एक चालू व्यवसाय को जन्म दे। वह व्यक्ति जो इन कार्यों का सम्पादन करता है, प्रवर्त्तक कहा जाता है। व्यवसाय के विशिष्ट अवसरों को ढूंढ निकालने तथा उत्पादन के घटकों को, धनोपार्जन के हित तत्पश्चात् संगठित करने की प्रक्रिया को प्रवर्त्तन कहा जा सकता है।

प्रवर्त्तकों की तीन कोटियां होती हैं—(१) पेशेवर प्रवर्त्तक (Professional Promoters) जो कम्पनियों का प्रवर्त्तन व निर्माण (Floating) अपना पेशा बना लेते हैं। (२) सामयिक प्रवर्त्तक (Occasional Promoters) जो कभी-कभी प्रवर्त्तन कार्य करते हैं, जो उनके व्यवसाय का मुख्य अंग होता है, (३) किसी अवसर के लिए प्रवर्त्तक जो किसी व्यवसाय का जिसमें उनकी दिलचस्पी होती है, प्रवर्त्तन करते हैं। अनुसन्धान-कर्त्ता अपने अनुसन्धान को विकसित करने के लिए कम्पनी

का प्रवर्तन कर सकता है। कोई भी व्यक्ति, फर्म, सिन्डिकेट, संघ या कम्पनी जो कम्पनी की रचना तथा निरूपण के लिए आवश्यक कार्यों का सम्पादन करती है, प्रवर्तक हो सकती है। पश्चिमी देशों में प्रवर्तकों का एक स्वतन्त्र वर्ग होता है, जिसका मुख्य कार्य होता है व्यवसाय को आरम्भ या संगठित करना और प्राय वह वर्ग व्यवसाय के जीवनक्रम तथा विकास में आगे कोई दिलचस्पी नहीं रखता। इसके विपरीत, भारत में कुछ अपवादों के अतिरिक्त, प्रवर्तन कार्य ऐसा विशिष्ट कार्य नहीं बन पाया है कि प्रवर्तकों का एक नया वर्ग पैदा हो सके। हमारे देश में प्रवर्तन कार्य उन व्यक्तियों द्वारा सम्पादित हुआ है जिन्होंने प्रवर्तन के पश्चात् व्यवसाय का प्रबन्ध व नियन्त्रण किया है। इन लोगों को प्रबन्ध अभिकर्ता कहा जाता है जिनके बारे में आगे बताया जाएगा।

प्रवर्तकों के हाथ में कम्पनी की रचना तथा स्वरूप-निर्धारण होता है जिन्हें यह अधिकार होता है कि वे यह बतावें कि कम्पनी कब, किस रूप में तथा किसकी देख-रेख में उद्भूत होगी, और व्यवसाय निगम (Corporation) के रूप में अपना कार्य आरम्भ करेगी। ऐसी अवस्था में कम्पनी में उनकी स्थिति विश्वासाश्रित (Fiduciary) होती है जिसके परिणामस्वरूप कम्पनी के आगे वे अभिकर्ता या प्रन्यासी (Trustees) के रूप में उत्तरदायी होते हैं। उन्हें अनुचित लाभ हरगिज नहीं कमाना चाहिए, और सभी प्रकार की प्राप्ति का, चाहे वह जिस भी जरिए से हो, हिसाब कम्पनी को देना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे स्वतन्त्र संचालक मण्डल (Board of Directors) के द्वारा अपने पारिश्रमिक तथा अपने द्वारा विक्रीत सम्पत्ति के मूल्य को स्वीकृत करा लें। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो हो सकता है कि कम्पनी उनके द्वारा की गयी संविदाओं को भंग कर दे। जब तक कम्पनी अपने ही मण्डल (बोर्ड) के हाथों में नहीं आ जाती है, तब तक यह प्रवर्तकों की चीज है जिसे अपने हिताहित पर विचार करने की क्षमता नहीं होती और जो अपने हित के लिए कोई कार्य नहीं कर सकती। अतः प्रवर्तकों को सावधान होना ही है तथा उन्हें सत्यता व सद्विश्वास के साथ काम करना ही चाहिए। यदि किसी ने कम्पनी के विरुद्ध धोखा तथा विश्वासोल्लंघन के लिए मुकदमा किया है तो किसी मृत प्रवर्तक की सम्पत्ति उसी हालत में दायी होगी जब उस सम्पत्ति को कुछ लाभ प्राप्त हुआ है, अन्यथा नहीं।

प्रवर्तन मंजिलें (Stages in Promotion)

किसी व्यवसाय के प्रवर्तन में चार मंजिलें होती हैं, यथा, १. विचारोत्पत्ति तथा *आरम्भिक अन्वेषण, २. विस्तृत अन्वेषण ३. एकत्रीकरण (Assembling)* ४ वित्तीकरण (Financing)

विचारोत्पत्ति (Discovery of Idea)—जिस आदमी को किसी विचार की सूझ होती है उसे अपने विचार के लिए असीम उत्साह होना है। उदाहरणतः, एक आविष्कारक यान्त्रिक चातुर्य (Mechanical Skill), बुद्धिमानी तथा मौलिकता से सम्पन्न व्यक्ति होता है लेकिन उसमें यह क्षमता नहीं होती कि वह अपने अन्वेषण का

आर्थिक मूल्यांकन करके उसकी उपयोगिता को परख सके। यही कारण है कि अन्वेषक को अव्यावहारिक प्रतिभा (Impractical Genius) कहा गया है। न तो उसमें प्रशिक्षित प्रवर्तक की तरह व्यवसाय का मस्तिष्क ही होता है और न संगठन सम्बन्धी प्रतिभा (Organising Gift) ही होती है। अतः उसके हक में यही अच्छा होगा कि वह अपना विचार (Idea) किसी निष्पक्ष अनुसन्धानवर्त्ता को दे जो प्रशिक्षित प्रवर्तक हो और जो सफलता तथा विफलता के तत्वों का माप-जोख कर सके। प्रवर्तक की प्रारम्भिक खोज-पड़ताल का अर्थ होगा इस बात का पता लगाना कि विस्तृत खोज-पड़ताल करना लाभप्रद है या नहीं। वह सम्भव आय-व्यय (Revenue and Expenditure) का अन्दाजा लगाता है और तब अपने अनुमान को चालू व्यवसाय के वास्तविक आंकड़ों से मिलाता है, और तब वह व्यवसाय के हेतु अपने अनुसन्धान को पेटेन्ट (एकस्व) करवा लेता है।

विस्तृत खोज पड़ताल (Detailed Investigation)—प्रवर्तन की दूसरी अवस्था के अन्तर्गत विचार व योजना या प्रस्थापना की विस्तृत जाँच में निहित दुर्बलताओं का पता लगाना, आवश्यक वस्तुओं का निर्धारण, तथा संचालन व्यय एवं सम्भाव्य (Probable) आय का अन्दाजा आते हैं। जब खोज का कार्य पूर्ण हो जाता है, तब मुद्रित या टंकित (Typewritten) रिपोर्ट के रूप में खोज के निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाता है जिसमें संकलित आंकड़े, लागत तथा आय के अनुमान तथा खास क्षेत्र, जैसे इन्जीनियरिंग, में विशेषज्ञ के विचार रखे जाते हैं। खोज के दौरान प्रमुख समस्याओं का विस्तृत शोध करना होगा। इन प्रमुख समस्याओं के अन्तर्गत निम्नलिखित समस्याएं आती हैं: उत्पादन समस्या, जिसका निदान इन्जीनियर या रसायन-शास्त्री द्वारा प्राप्त किया जाता है। माँग का पता लगाना, जिसकी उचित जानकारी बाजार विश्लेषण विशेषज्ञ द्वारा प्राप्त की जाती है, उचित पेटेन्ट का प्रश्न, जिसका उत्तर प्रवीण वकील द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, प्लांट के उचित स्थापन की समस्या, (जिसमें यातायात, कच्चा पदार्थ तथा बाजार से निकटता, सन्तोषजनक श्रम-पूर्ति तथा अनुकूल जलवायु के प्रश्न आते हैं) जिसका हल प्रबन्ध व परामर्श विशेषज्ञों से मिलकर ढूंढा जाता है तथा यह प्रश्न कि पूंजीकरण पर्याप्त है या प्रस्तावित कम्पनी अतिपूंजीकृत या अल्प-पूंजीकृत होगी, जिसका हल वित्त विशेषज्ञ के द्वारा होना है। संक्षेप में, विस्तृत खोज के द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि अनुमानित आय अनुमानित संचालन लागत, विनियोजित पूंजी पर ब्याज तथा स्वामित्वधारियों द्वारा उठाये गये जोखिम तथा प्रदत्त सेवाओं के लिए क्षति-पूर्ति देने के लिए पर्याप्त होगी या नहीं।[1]

उपकरण संचय (Assembling)—जब प्रस्तावित व्यवसाय की पूरी खोज-पड़ताल की जा चुकी है तब प्रवर्तक यह निर्णय करता है कि वह प्रवर्तन के

१ निगमन तथा औद्योगिक वित्त का अध्याय देखिये।

जोखिम उठाने को तैयार है या नहीं और तब वह पूँजीकरण की याचना के सम्बन्ध में निर्णय करता है। तदुपरान्त वह प्रस्तावना के उपकरणों का संचय करता है। संचय (Assembling) से हमारा तात्पर्य है मूल विचार का संरक्षण, व्यवसाय के लिये आवश्यक सम्पत्ति की प्राप्ति तथा उन सारे व्यक्तियों से संविदा करना जो प्रमुख प्रबन्धक पदों पर लिए जाने के लिये चुने गये हैं।

साध्य का विनियोजन (Financing the proposition)—विचार सोचा गया, उसकी खोज-पड़ताल हो गई तथा उपकरणों का संचय हो गया, अब प्रवर्तक को साध्य की प्राप्ति हो गयी। यह साध्य सर्वसाधारण तथा अभिगोपकों (Underwriters) के सम्मुख एक रिपोर्ट के रूप में, जिसे प्रविवरण कहा जाता है, प्रस्तुत किया जाता है, जिसका उद्देश्य होता है उनमें यह आग्रह करना कि यह काम उनके धन लगाने के योग्य है। प्रविवरण में सम्पूर्ण काम का विस्तृत विवेचन होता है और साथ ही कार्य के दरम्यान नियुक्त अनेक विशेषज्ञों की रिपोर्ट होती है। इस प्रक्रिया को अवसर का पूंजीकरण (Capitalisation of opportunity) कहा जाता है। इस क्रिया के दो भाग होते हैं, पहला, सम्पत्ति सम्हालने के लिए कम्पनी का निर्माण और दूसरा, सम्पत्ति वस्तुतः प्राप्त करना।

कम्पनी का निर्माण (Formation of Company)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि कम्पनी निर्मित वस्तु है और यह सच है कि पंजीयन द्वारा निर्मित कम्पनियों की संख्या सर्वाधिक है, अतएव पंजीयन द्वारा स्कन्ध प्रमण्डल या स्टाक कम्पनी निर्माण के अभिलाषी व्यक्तियों, यानी प्रवर्तकों को संयुक्त स्कन्ध कम्पनियों के पंजीकार के यहाँ निम्नलिखित लेख्य (Documents) अनिवार्यतः प्रस्तुत करने चाहिए—

(१) पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) जिस पर कम से कम सात व्यक्तियों ने (यदि निजी कम्पनी हो तो दो ने) अपने नाम लिखे हों और सातों में से प्रत्येक व्यक्ति ने कम से कम एक अंश खरीदा हो।

(२) पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association) इसी प्रकार हस्ताक्षरित।

(३) संचालकों की सूची।

(४) संचालकों द्वारा संचालक बनने की लिखित सम्मति।

(५) सचिव या एक संचालक या किसी प्रवर्तक द्वारा यह साविधिक घोषणा (Statutory Declaration) कि पंजीयन की सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर दी गयी है।

आवश्यक नत्थीकरण (Filing) करा लेना तथा पंजीयन शुल्क भी चुका देना चाहिए। नत्थीकरण शुल्क प्रति लेख्य ३ रुपये है और पंजीयन शुल्क अधिकृत पूँजी के अनुसार कम अधिक होता है। पंजीयन शुल्क निम्नलिखित हैं—

जहा पूजी २०,००० रुपये से अधिक नही हो वहा ४० रुपये;

जहा पूजी २०,००० रुपये से अधिक हो लेकिन ५०,००० रुपये से अधिक न हो वहा प्रति १०,००० रुपये या उसके भाग पर २० रुपये;

जहा पूजी ५०,००० रुपये से अधिक हो पर १०,००,००० रुपये से अधिक न हो वहा प्रति १०,००० रुपये या उसके भाग पर ५ रुपये।

१०,००,००० रुपये से अधिक पूजी होने पर प्रति १०,००० रुपये या उसके भाग पर १ रुपया।

अधिकतम देय शुल्क १००० रुपये है और यह अधिकतम देय शुल्क ५२,४०,००० रुपये की पूजी पर हो जाता है।

पजीकार को जब यह सतोष हो जाये कि सभी औपचारिकताओ (Formalities) की पूर्ति कर दी गई है, तब वह नई कम्पनी का नाम पजी मे प्रविष्ट कर लेगा और तब निगमन का प्रमाणपत्र (Certificate of Incorporation) निर्गमित करेगा। यह प्रमाणपत्र कम्पनी को उस दिन से वैध अस्तित्व प्रदान करता है जिस दिन की तिथि उस पर अकित होती है। यह इस बात का असदिग्ध प्रमाण है कि कम्पनी ने मरणधर्मा मनुष्य के अधिकारो व दायित्वो से युक्त होकर जन्म ग्रहण किया है, तथा इस सविदा करने की क्षमता है।

पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association)—पार्षद सीमानियम कम्पनी का सबसे महत्वपूर्ण लेख्य है। यह एक अधिकार पत्र (Charter) है जिसम वे सभी आधारभूत अवस्थाए (Conditions) उल्लिखित होती है जिनकी परिधि म ही कम्पनी निगमित हो सकती है। यह कम्पनी की शक्ति सीमा के उस क्षेत्र को निर्दिष्ट करता है जिसके परे कम्पनी नही जा सकती। इस का उद्देश्य है अशधारियो, ऋणदाताओ तथा कम्पनी से व्यवहार करने वाले व्यक्तियो को यह अवगत कराना कि कम्पनी के व्यवसाय की स्वीकृत सीमा क्या है। अतएव इसका निर्माण बडी सावधानी से होना चाहिए। इसे मुद्रित, सदर्भो म विभाजित, क्रमाकित (Numbered) तथा साक्षी के सम्मुख सातो हस्ताक्षरकर्ताओ (Signatories) म से प्रत्येक द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए। प्रत्येक हस्ताक्षरकर्ता को अनिवार्यत अपना पता व विवरण देना चाहिए तथा कम्पनी का कम से कम एक अश अवश्य खरीदना चाहिए। अशो द्वारा परिमित कम्पनी के पार्षद सीमानियम में निम्नलिखित विवरणो या खडो का होना अनिवार्य है —

नाम खड (Name clause)—कम्पनी इच्छानुसार कोई भी नाम ग्रहण कर सकती है, शर्त केवल यह है कि वह नाम समान व्यवसाय करने वाली किसी चालू कम्पनी के नाम के समान या वही (Identical) न हो। धारा २० में यह उपबन्धित है कि कोई कम्पनी ऐसे नाम से पजीयित नही हो सकती जो केन्द्रीय सरकार की राय मे अवाछनीय है। नाम का अन्तिम शब्द 'लिमिटेड' ('परिमित') होना चाहिए ताकि कम्पनी से व्यवहार करने वाले सब व्यक्तियो को यह साफ सूचना

मिल जाय कि कम्पनी के सदस्यो का दायित्व परमित है। कम्पनी के नाम से यह भी सूचित होना चाहिए कि वह निजी यानी प्राइवेट कम्पनी है या लोक कम्पनी। इसलिए प्रत्येक प्राइवेट कम्पनी के नाम के अन्त में "प्राइवेट लिमिटेड" शब्द आने चाहिएं।

अवस्थिति खड (Situation clause) —प्रत्येक कम्पनी का पजीयित कार्यालय होना चाहिए जहा सूचना भेजी जा सके, लेकिन सीमानियम में राज्य का उल्लेख करना ही पर्याप्त है और उस शहर का उल्लेख आवश्यक नही जिसमें कम्पनी का पजीयित कार्यालय स्थित होगा। वास्तव में केवल राज्य का नाम देना सुविधाजनक है क्योंकि तब, बिना किसी कानूनी औपचारिकता के, पजीयित कार्यालय एक शहर से दूसरे शहर म बदला जा सकता है।

उद्देश्य खड (Object clause)—सीमानियम मे उद्देश्य का विवरण बडा महत्व रखता है, क्योंकि इससे कम्पनी की शक्ति के विस्तार तथा इसके कार्य-क्षेत्र का पता लगता है। उन उद्देश्यो से, जिनका विशिष्ट रूप से वर्णन होना चाहिए, हटकर नहीं चला जा सकता, तथा कम्पनी के शक्ति-विस्तार से बाहर किए गए सारे कार्य "शक्ति बाह्य' (Ultra Vires) तथा शून्य (Void) होते हैं और सारे अशधारी मिलकर भी उन कार्यों की पुष्टि करने में असमर्थ होते हैं। अत यह आवश्यक है कि उद्देश्य खड की रचना म पूर्ण रूप से स्वतन्त्र प्रवर्तको को उन सारे व्यवसायो के सम्बन्ध म, जिन्हें कम्पनी करेगी, अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिए। अस्पष्टार्थक (ambiguous) व्यापक व्यवस्थाओ (General Provisions) का कोई उपयोग नहीं होगा। यद्यपि उद्देश्य खण्ड के अतिरिक्त, अन्य सारे अधिकारो का भी साफ साफ उल्लेख कर देना सर्वोत्तम है, फिर भी यदि कम्पनी कुछ ऐसे कार्य करती है जो विशिष्टत उल्लिखित शक्ति के प्रासगिक या आनुषगिक हो तो ऐसा कार्य *"शक्तिबाह्य" नही समझा जाएगा। इस प्रकार व्यापारी कपनी को ऋण लेने*, सामान्य रूप से हुण्डिया या विपत्र लिखने तथा स्वीकृत करने की ध्वनित शक्ति है लेकिन कोई रेलवे कम्पनी हुण्डिया या विपत्र निर्गमित नही कर सकती, यद्यपि वह धन उधार ले सकती है।

दायित्व खड (Liability Clause)—इस आशय की घोषणा कि अशधारियो का दायित्व उनके अशो की म चुका दी गई राशि तक सीमित है, पार्षद सीमानियम में होनी अनिवार्य है।

पूंजी खड (Capital clause) —इस खड मे कपनी के द्वारा प्रस्तावित पूजी की राशि तथा उसके निश्चित राशि वाले अशो में विभाजन सम्बन्धी घोषणा होनी चाहिए। मुद्राक शुल्क (Stamp duty) इस राशि पर देय होता है और इसका वर्णन विभिन्न तरीको से किया जाता है, यथा "पजीयित," "अधिकृत" या "नामाकित" पूजी (Registered, authorised or nominal capital)। जब पूजी सर्वसाधारण को प्रस्तुत तथा आवटित की जाती है तब वह निर्गमित (Issued) तथा अभिदत्त पूजी कहलाती है जो नामाकित (No-

minal) पूजी से अत्यधिक कम हो सकती है और प्राय होती भी है। निर्गमित पूजी पूर्णत. या अशत याचित (Called-up) हो सकती है और हो सकता है कि याचित पूजी का एक अश ही प्रदत्त या शोधित (Paid-up) हो। इस प्रकार यदि नामाकित पूजी ५,०० ००० रुपये की हो, जो १०० रुपये वाले ५००० साधारण अशो मे विभाजित हो और निर्गमित पूजी १,००,००० रुपये हो तो प्रारम्भ मे प्रति अश ५० रुपये ही व्यवसाय स्थापित तथा सचालित करने के लिए पर्याप्त हो सकते हैं। १,००,००० रुपये याचित पूजी होगी और यदि कतिपय अशधारियो से १०,००० रुपये अभी प्राप्त होने हो तो केवल ९०००० रुपये प्रदत्त पूजी होगी।

पार्षद या अभिदान खड (Association or subscription clause)—यह खड सीमानियम के हस्ताक्षरकर्त्ताओ के नामो से पहले आता है और प्राय इस प्रकार होता है. "हम कई लोग, जिनके नाम और पते दिये हुए है, इस बात के इच्छुक है कि इस सीमानियम के अनुसार हम कपनी बना लें तथा हम क्रमश अपने नामो के सामने लिखित अशो की सख्या कम्पनी की पूजी मे लेना मजूर करते हैं।"*

प्रार्थियो के नाम, पते तथा वर्णन	प्रत्येक प्रार्थी द्वारा लिये गये अशो की सख्या	साक्षियो के नाम, पते तथा वर्णन
१ २ ३ ४ ५ ६		
योग	अश	

तिथि १९५ का का दिन

सीमानियम मे परिवर्तन

कम्पनी अधिनियम की धारा १६ मे इस बात की व्यवस्था है कि सीमानियम जब एक बार पजीयित हो जाता है तब कम्पनी उसमे, अधिनियम में दी गई अवस्थाओ मे, और रीति से तथा हद तक ही परिवर्तन कर सकती है, अन्यथा नही। इस प्रकार निम्नलिखित, विषयो के सम्बन्ध मे ही सीमानियम में

* We the several persons, whose names and addresses are subscribed, are desirous of being formed into a Company in pursuance of this memorandum of Association and we respectively agree to take the number of smhares in the capital of the Company set opposite our respective names

परिवर्तन किये जा सकते हैं बशर्ते कि प्रत्येक विषय में, दी गई कार्यविधि का पालन किया गया हो—

(१) सीमानियम में प्रबन्धक या प्रबन्ध अभिकर्ता, प्रबन्ध सचालक या सचिवो और कोषाध्यक्षों की नियुक्ति तथा अन्य ऐसे मामलो सम्बन्धी कोई उपबन्ध, जो कम्पनी के मुख्य उद्देश्य के प्रासंगिक (Incidental) या सहायक हो, विशेष प्रस्ताव द्वारा तथा सरकार या न्यायालय के अनुमोदन के बिना परिवर्तित किया जा सकता है।

(२) विशेष प्रस्ताव द्वारा तथा केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन से कम्पनी का नाम किसी भी समय बदला जा सकता है, लेकिन परिवर्तन उसी समय प्रभावी होगा जब पंजीकार निगमन का नया प्रमाण-पत्र निर्गमित कर दे।

(३) कोई भी कम्पनी सब सम्बन्धित व्यक्तियों को सूचित करके तथा न्यायालय की अनुमति प्राप्त करके विशेष प्रस्ताव द्वारा (१) अपना पंजीयित कार्यालय एक राज्य से दूसरे राज्य में परिवर्तित कर सकती है (२) अपने उद्देश्य खड में परिवर्तन कर सकती है, यदि यह परिवर्तन निम्नलिखित कार्यों के लिए आवश्यक हो (क) अपना व्यवसाय अधिक मितव्ययिता तथा दक्षता से करने के लिए, (ख) नवीन तथा उन्नत साधनों द्वारा अपने मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, (ग) अपने कार्य के स्थानीय क्षेत्र को बढा या परिवर्तित करने के लिए या (घ) कोई ऐसा व्यवसाय करने के लिये जो मौजूदा परिस्थितियों में लाभदायक रीति से कम्पनी के व्यवसाय के साथ मिलाया जा सकता है। (ङ) सीमानियम में विनिर्दिष्ट किसी उद्देश्य की परिधि कम करने या उनका परित्याग करने के लिए, (च) कम्पनी के उपक्रम या किसी एक उपक्रम को अथवा बिक्री करने, या उसे व्ययित करने के लिए, (छ) किसी अन्य कम्पनी या व्यक्तियों के निकाय में सम्मिलित होने के लिये।

परिवर्तन की पुष्टि करने के पूर्व न्यायालय को यह विश्वास होना चाहिए कि परिवर्तन उपर्युक्त ७ उद्देश्यों में किसी एक उद्देश्य की पूर्ति से सम्बन्ध रखता है, और यह परिवर्तन कम्पनी के सदस्यों के बीच औचित्य को नष्ट नहीं करता तथा ऋणदाताओं के हित पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता। न्यायालय को यह भी तसल्ली होनी चाहिए कि उक्त परिवर्तन कम्पनी के प्रमुख उद्देश्य को नष्ट नहीं कर देता। पंजीकार को भी न्यायालय के सामने अपनी आपत्तियां और सुझाव रखने का मौका दिया जायगा। आदेश-प्राप्ति के तीन महीने के अन्दर न्यायालय के आदेश की प्रमाणित प्रति तथा परिवर्तित सीमानियम की मुद्रित प्रति कम्पनी के पंजीकार के यहां प्रस्तुत करना अनिवार्य है। इसके पश्चात् पंजीकार परिवर्तित सीमानियम के पंजीयन के बाद एक प्रमाण पत्र निर्गमित करेगा और तब वह परिवर्तित सीमानियम कम्पनी का सीमानियम होगा। यदि कम्पनी का पंजीयित कार्यालय एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरित किया जाना है तो तत्सम्बन्धी लेख्य प्रत्येक राज्य के पंजीकार के यहां भेजना तथा प्रमाण-पत्र प्राप्त करना अनिवार्य है।

यदि अन्तर्नियम अधिकार देते हों तो अंशों द्वारा परिमित कम्पनी वृहत् अधिवेशन (General meeting) में स्वीकृत साधारण सकल्प द्वारा निम्नलिखित

उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूजी में परिवर्तन कर सकती है—(१) नवीन अशो के निर्गमन द्वारा पूजी मे वृद्धि के लिए, (२) पूजी को समपिंडित (Consolidate) करने तथा इसे बडी राशि के अशो मे विभाजित करने के लिये, (३) प्रदत्त पूजी को स्कध (Stock) मे परिणत करने के लिए या स्कध को प्रदत्त पूजी में परिणत करने के लिये, (४) इसके अशो को छोटी राशि के अशो में उपविभाजित करने के लिये, (५) उन अशो को रद्द करने के लिये जो अविक्रीत हो या जिनके सम्बन्ध में सकल्प के समय लेने का वचन दिया गया था (धारा ९३)। यदि अन्तर्नियम में तत्सम्बन्धी अधिकारों की व्यवस्था नहीं है तो कम्पनी अधिनियम कम्पनी को विशेष सकल्प द्वारा पूजी परिवर्तित करने के अधिकार प्राप्त करने की अनुमति देता है। पूजीवृद्धि के हित निर्गमित किए गए नवीन अश पहले पुराने अशधारियो को उनके धारित अशो के अनुपात में प्रस्तुत किये जाने चाहिए और जब उन द्वारा प्रस्ताव (Offer) स्वीकृत न हो तब उन्हें सर्वोत्तम रीति से बेचना चाहिए। इन सारे परिवर्तनों की सूचना पजीकार को एक मास के अन्दर मिल जानी चाहिए, तथा परिवर्तन के उपरान्त सीमानियम की सब प्रतियो में नवीन पूजी का ही उल्लेख होना चाहिए।

अश पूजी को घटाना (Reduction of Share Capital)—अतर्नियमों द्वारा अधिकृत होने पर या अन्तर्नियमों म तत्सम्बन्धी व्यवस्था न हो तो विशेष सकल्प के अनुसार पूजी घटाने के अधिकार प्राप्त कर लेने के पश्चात् अश परिमित कम्पनी विशेष प्रस्ताव द्वारा, जिसकी पुष्टि न्यायालय ने कर दी हो, अपनी पूजी किसी भी प्रकार कम कर सकती है और विशेषतया निम्नलिखित प्रकार से कम कर सकती है—(क) अयाचित पूजी पर सदस्यो के दायित्व को कम करके या उसे बिलकुल समाप्त करके (ख) विनष्ट पूजी (Lost Capital) को रद्द (Write-off) करके (ग) कम्पनी की आवश्यकता से अतिरिक्त पूजी को वापिस करके। जहा अश पूजी कम करने मे, अदत्त पूजी के दायित्व में कमी की जाती है या किसी अशधारी को प्रदत्त पूजी वापिस की जाती है, वहा ऋणदाताओ को आपत्ति उठाने का अधिकार है और न्यायालय तभी घटाने की अनुमति देगा जब उसे यह सतुष्टि हो जाए कि या तो ऋणदाताओ की सम्मति प्राप्त कर ली गयी है या उनके ऋण चुका दिए गये हैं। न्यायालय कम्पनी को एक नियत अवधि तक अपने नाम में "और घटायी गयी (And Reduced)" शब्द जोडने, तथा घटाने के कारण जनता की सूचनार्थ प्रकाशित करने का आदेश दे सकता है। पूजी म कमी किये जाने के पश्चात् सीमानियम में भी आवश्यक परिवर्तन अवश्य कर लेना चाहिए। न्यायालय से पुष्टि प्राप्त सकल्प तभी प्रभावी होगा जब वह तथा वृत्तलेख (Minutes) पजीकार के यहा नत्थी कर दिये गये हो। पजीकार एक प्रमाण-पत्र निर्गमित करेगा जो इस बात का कि सभी चीजें विधिवत् थीं, अन्तिम प्रमाण होगा।

पूजी कम करने के पश्चात् भूत या वर्तमान सदस्य का दायित्व उस प्रदत्त राशि या न्यूनकृत (जैसी भी स्थिति हो) राशि का, जो अशो पर शोधित ठहराई गई

हैं तथा वृत्तलेख (Minutes) द्वारा निदिष्ट की गई अंशों की राशि का अन्तर होगा। उदाहरण के लिये, यदि पूंजी १,००,००० रुपये से घटाकर ६०,००० रुपये कर दी जाए जो ६० रुपये के १००० अंशों में विभाजित हो और यह कमी ४० रुपये प्रति अंश के वर्तमान अशोधित दायित्व का रद्द करके की गई हो तो अब कोई भी सदस्य ६० रुपये तक ही दायी होगा, जो उस अंश का अंकित मूल्य है।

यदि अन्तर्नियमों द्वारा अधिकार प्राप्त हो तो कम्पनी वृहत् अधिवेशन में साधारण प्रस्ताव के जरिये अपने पूर्ण प्रदत्त (Fully Paidup) अंशों को स्कन्ध में परिणत कर सकती है और ऐसा करने के एक मास के अन्दर पंजीकार को सूचना प्रेषित कर सकती है। सदस्यों की पंजी में सदस्यों के द्वारा लिये गये अंशों की संख्या के बजाय स्कन्धों की संख्या का अनिवार्य उल्लेख मिलना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि आरम्भ में स्कन्ध निर्गमित नहीं किये जा सकते। पहले अंशों का निर्गमन और उनका पूर्णतः प्रदत्त होना अनिवार्य है, और तब वे स्कन्ध में परिवर्तित किये जा सके हैं।

यहां यह जान लेना चाहिए कि स्कन्ध तथा अंश के बीच क्या अन्तर है। किसी भी कम्पनी की पूंजी समान राशि की इकाइयों में विभाजित होती है। इस प्रकार की इकाई अंश कहलाती है, जिसे कोई भी व्यक्ति कम्पनी की सदस्यता प्राप्त करने के लिये खरीदता है। कम्पनी के निश्चयानुसार यह अंश पूर्णतः या अंशतः प्रदत्त हो सकता है। यह इकाई अविभाज्य है, तथा पूर्णतः हस्तान्तरणीय है। जब अंश पूर्ण प्रदत्त हो जाते हैं, तब उन्हें स्कन्ध में परिणत किया जा सकता है। अतएव, स्कन्ध ऐसे पूर्ण प्रदत्त अंश मात्र हैं, जिन्हें एकत्रित या संपिंडित (Consolidate) कर दिया गया है तथा वे किसी भी धन राशि में हस्तान्तरणीय हैं।

पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association)—पार्षद अन्तर्नियम वे नियम या उपविधि (By-laws) हैं जो कम्पनी के आन्तरिक संगठन तथा आचरण को प्रशासित करते हैं। अन्तर्नियम में संचालकों तथा पदाधिकारियों के मतदान आदि सम्बन्धी अधिकार, वह विधि (Method) तथा स्वरूप (Form) जिसके अनुसार कम्पनी का व्यवसाय संचालित होगा, तथा वह विधि और स्वरूप जिसके अनुसार समय-समय पर कम्पनी के आन्तरिक नियमनों में परिवर्तन होगा, दिये रहते हैं।

अन्तर्नियम सीमानियम के मातहत होता है, जो कम्पनी के उद्देश्यों को निर्धारित करता है। अतः अन्तर्नियम वे अधिकार नहीं दे सकता जो सीमानियम के परे हैं और न यह संविधि (Statute) के विपरीत ही व्यवस्था दे सकता है। वस्तुतः, अन्तर्नियम केवल नियम तथा कायदे मात्र हैं, जो सीमानियम में उल्लिखित उद्देश्यों की पूर्ति किन रास्ते होगी—इसे निर्धारित करते हैं। अतएव, यह निश्चित है कि सीमानियम में परिमापित क्षेत्र की परिधि तथा कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए कम्पनी उन नियमों को निर्मित कर सकती है जिन्हें वह उचित समझे।

कम्पनी अन्तर्नियमो को पजीयित कर भी सकती है और नहीं भी, क्योंकि यह कम्पनी अधिनियम की प्रथम अनुसूची (Schedule) मे दी गयी तालिका 'ए' जिसमे ९९ आदर्श नियम दिये हुए है, को सम्पूर्ण रूप मे अगीकृत कर सकती है या अपनी विशिष्ट आवश्यकताओ के अनुकूल अपने नियम निर्मित कर सकती है और उन्हे पजीयित करा सकती है। कम्पनिया प्राय अपने अन्तर्नियम ही बनाती है। अन्वय के नियम के अनुसार, यदि अन्तर्नियम पजीयित नही कराये गये है, तो तालिका 'ए' लागू होगी, और यदि पजीयित कराये गये है तो तालिका की वे व्यवस्थायें लागू होगी जो पजीयित कराये गये अन्तर्नियमों म नहीं है। लेकिन प्रत्याभूति द्वारा परिमित कम्पनी (Company Limited by Guarantee) या अपरिमित कम्पनी या निजी कम्पनी के लिए, अन्तर्नियमो का पजीयन अनिवार्य है हालाकि तालिका 'ए' के कोई नियम यह अगीकृत कर सकती है। अन्तर्नियमों को अनिवार्यत मुद्रित, सन्दर्भो में विभाजित, क्रमाकित, मुद्राकित (Stamped) तथा सीमानियमा के हस्ताक्षरकर्त्ताओ द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए। सीमानियम के साथ इसका भी पजीकार के यहा प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है।

अन्तर्नियमो में परिवर्तन (Alteration of Articles)—चूकि अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक प्रवन्ध सम्बन्धी नियम है, अत बिना न्यायालय की अनुमति के विशेष प्रस्ताव के जरिये इनमे परिवर्तन किया जा सकता है, बशर्ते कि परिवर्तन सद्भाव पूर्वक (Bonafide) तथा कम्पनी के सर्वोत्तम हित के लिए हो। यदि परिवर्तन अनुचित तथा सदस्या के पारस्परिक हित के विपरीत हो तो न्यायालय ऐसे परिवर्तन को रोक देगा। उदाहरणत, उस परिवर्तन को न्यायालय रोक देगा जिसमें अल्पसंख्यक सदस्यो के प्रति अत्याचार हो, या वह सदस्यो के दायित्व म वृद्धि कर देता हो या किसी की गयी सविदा को भग करता हो। इस बात की सावधानी भी रखनी चाहिए कि परिवर्तित नियम कम्पनी के सीमानियम द्वारा प्रदत्त अधिकार को बढा न दे और न वे सविधि के (Statute) विपरीत हो। पुन, कम्पनी अपने अन्तर्नियम म कोई ऐसी व्यवस्था नही कर सकती जो उसे अपने को अन्तर्नियम मे परिवर्तन करने के अधिकार से वचित कर दे।

सीमानियम तथा अन्तर्नियमों का प्रभाव—पजीयित किये गये सीमानियम तथा अन्तर्नियम कम्पनी तथा इसके सदस्यो को इस प्रकार दायी ठहराते है, मानो उन पर प्रत्येक सदस्य ने व्यक्तिगत ढग से हस्ताक्षर किया हो, तथा इनमे उल्लिखित व्यवस्थाओ का पालन करने के लिए सदस्यो ने करार किया हो। इस प्रकार सदस्य कम्पनी के प्रति बद्ध है तथा कम्पनी सदस्यो के प्रति बद्ध है और सदस्य एक दूसरे के प्रति पारस्परिक रूप से बद्ध है। सीमानियम तथा अन्तर्नियम सार्वजनिक लेख (Public Documents) है, जिनका कोई भी बाहरी व्यक्ति, जो कम्पनी से व्यवहार करने की इच्छा रखता है, निरीक्षण कर सकता है और करता भी है। अतएव, यह मान लिया जाता है कि वह व्यक्ति जो किसी कम्पनी से सविदा करता है, कम्पनी के अन्तर्नियमो

से अवगत होगा, पर साथ ही केवल 'आन्तरिक प्रबन्ध' (Indoor Management) का सिद्धान्त भी लागू होता है जो उसे यह मानने का अधिकार देता है कि कम्पनी के पदाधिकारियों ने अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं का पालन किया है।

प्रविवरण (Prospectus)

यह नियम-सा हो गया है कि निगमन प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के बाद कम्पनी के प्रवर्तक एक लेख्य के रूप में, जिसे प्रविवरण कहा जाता है, सवसाधारण को निमन्त्रित करते हैं कि वे कम्पनी की पूंजी के लिए आवेदन भेजें। भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा २ (३६) प्रविवरण को इस प्रकार परिभाषित करती है, "यह एक प्रविवरण, सूचना, गश्तीपत्र, विज्ञापन या अन्य लेख्य है जो सर्वसाधारण से किसी निगमित निकाय के अंश या ऋण-पत्र लेने या क्रय करने के प्रस्ताव मांगता है।"[1] संक्षेप में, प्रविवरण हर किसी के लिए, जो अपना धन लाए तथा उचित रीत्या आवेदन करे, कम्पनी के अंश तथा ऋणपत्र खरीदने का निमन्त्रण है। प्रविवरण के चार उद्देश्य हैं, पहला सर्वसाधारण को यह सूचित करना कि कम्पनी की रचना हुई है, दूसरा, उन लोगों को, जिनके पास विनियोग करने के लिए अपनी बचतें हैं, यह विश्वास दिलाना कि चूंकि कम्पनी ने सच्चे तथा योग्य सचालकों व प्रबन्ध अभिकर्ताओं की सेवाएं तथा सफलतादायक अन्य घटक प्राप्त कर लिये हैं, अत यह लाभपूर्ण विनियोग की दृष्टि से सर्वोत्तम अवसर प्रदान करती है, तीसरा, उन शर्तों एवं आकर्षणों को अधिकृत अभिलेख (Record) के रूप में सुरक्षित रखना जिनके आधार पर सर्वसाधारण को कम्पनी के अंश व ऋण-पत्र खरीदने के लिए आमन्त्रित किया गया है, चौथा, इस बात को सुनिश्चित या प्रत्याभूत करना कि प्रविवरण में किये गये कथन के लिए सचालक उत्तरदायित्व स्वीकार करते हैं। इस कारण कम्पनी की स्थापना से सम्बद्ध महत्वपूर्ण व्यावहारिक विधियों में से प्रविवरण का निर्माण तथा निर्गमन भी एक है।

अंश या ऋणपत्र खरीदने की इच्छा रखने वालों को यह हक है कि उन्हें प्रविवरण में सभी सत्य सूचनाएं प्राप्त हों। प्रविवरण को निर्गमित करने वाले दायी व्यक्ति उसे मन्द दाम दिखाने वाली वस्तु बना सकते हैं। पर साथ ही उन्हें सब बात बिल्कुल सत्य बतानी चाहिए, और उन्हें कोई ऐसी बात छिपानी भी न चाहिए जो उनकी जानकारी में हो और जिसका अंश क्रय सम्बन्धी लाभ तथा सुविधाओं की प्रकृति मात्रा तथा गुण पर, जो प्रलोभन के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, जरा भी प्रभाव पड़ता हो। जो भी चीज सर्वसाधारण को अशक्रय के लिए प्रेरित करने के लिए आवश्यक प्रतीत हो, वह प्रविवरण में दी जा सकती है, पर अनुसूची २ में उल्लिखित कुछ बातें कम्पनी द्वारा निकाले जाने वाले प्रविवरण में अवश्य होनी चाहिए।

---

1 "Any prospectus, notice, circular, advertisement or other document invititing offers from the public for the subscription or purchase of any shares in or debentures of, a body Corporate."

कम्पनी का प्रास्पेक्टस या प्रविवरण

कम्पनी के प्रासपेक्टस में निम्नलिखित बातें अवश्य होनी चाहिए —

(१) कम्पनी के मुख्य उद्देश्य और मैमोरेण्डम यानी सीमानियम के हस्ताक्षर-कर्त्ताओं के नाम पेशे और पते और उन द्वारा लिये गये शेयरों की संख्या तथा यह भी कि उन्होंने किस किस तरह के कितने कितने शेयर लिये हैं और धारी का कम्पनी की सम्पत्ति और लाभों में कैसा स्वहित है तथा विमोचन योग्य प्रेफरेन्स शेयरों की संख्या और विमोचन की तिथि तथा विधि।

(२) यदि अन्तर्नियमों ने किसी सचालक के लिए कुछ शेयर लेना जरूरी रखा हो तो उनकी संख्या, और सचालकों के, प्रबन्ध सचालकों के या अन्य रूपों म उनकी सेवाओं के लिये सचालकों का पारिश्रमिक।

(३) सचालकों, प्रबन्ध सचालक, प्रबन्ध अभिकर्ता, सचिवों, कोषाध्यक्षों और प्रबन्धक (प्रत्येक के बारे में यह बताते हुए कि वह नियुक्त किया जा चुका है या नियुक्त किया जाना है) के नाम, पेशे और पते।

४ किसी अन्तर्नियम में या किसी सविदा में प्रबन्ध सचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचिवों, कोषाध्यक्षों या प्रबन्धक की नियुक्ति के बारे में, उसे दिये जाने वाले मेहनताने के बारे में और अपने पद की हानि के लिये उसे दिये जाने वाले मुआवजे के बारे म कोई उपबन्ध हो तो।

(५) जहां किसी कम्पनी का प्रबन्ध प्रबधअभिकर्त्ता या सचिवों और कोषाध्यक्षों द्वारा किया जाना है जो निगमित निकाय (Body Corporate) हैं, वहां उस निकाय की अभिदत्त पूजी।

(६) वह न्यूनतम अभिदान जिस पर सचालक शेयर या अश बाटना शुरू कर सकते हैं, अभिदान सूचियों के खुलने का समय और प्रत्येक शेयर के प्रार्थना-पत्र तथा बटन पर देय राशि।

(७) प्रत्येक शेयर के प्रार्थना-पत्र और बटन पर देय राशि और यदि शेयर दुबारा या बाद म प्रस्तुत किये गये हों तो पूर्ववर्ती दो वर्षों में किये गये प्रत्येक पिछले बटन पर अभिदान के लिये प्रस्तुत राशि, वस्तुत बटित राशि और इस तरह बटित शेयरों पर कोई धन चुकाया गया हो तो वह।

(८) यदि किसी व्यक्ति को कम्पनी के शेयर या ऋण पत्रों के लिए अभिदान करने के वास्ते कोई विकल्प या विशेष अधिकार देने की सविदा या व्यवस्था की गई हो उसका ब्योरा और देय राशियां तथा वह अवधि जिसमें इस विकल्पाधिकार का प्रयोग किया जाना है, जिन व्यक्तियों को यह अधिकार दिया गया है, उनके नाम, पेशे और पते भी देने होंगे।

(९) पूर्ववर्ती दो वर्षों के भीतर नकद के अलावा और किसी तरह से जो शेयर या ऋण पत्र दिये गये हैं या देने स्वीकार किये गये हैं, उनके नाम, वर्णन और राशियां तथा उनका प्रतिफल (Consideration)। प्रत्येक शेयर पर जो जारी किया

जाना है, प्रीमियम के रूप में देय राशि तथा जारी करने की प्रस्तावित तिथि। जहा उसी वर्ग के कुछ शेयर कुछ प्रीमियम पर तथा और शेयर कुछ कम प्रीमियम पर या बिना प्रीमियम के य डिस्कोंट पर निर्गमित किये जाने हैं, वहा यह भेद करने के हेतु और प्रीमियम को निपटाने का तरीका।

(१०) यदि कोई अभिगोपक हो तो उनके नाम और सचालकों का यह अभिमत कि अभिगोपकों के साधन उनके वचनों की पूर्ति के लिए काफी हैं।

(११) यदि कम्पनी ने किसी विक्रेता से सम्पत्ति खरीदी हो तो उसका नाम, पेशा और पता तथा नकद दी गई या दी जाने वाली राशि विक्रेता के दिये जाने वाले शेयर या ऋण पत्र, और जहा एक से अधिक विक्रेता हो या कम्पनी अनुक्रेता (Sub-buyer) हो, वहा प्रत्येक विक्रेता का दी गई या दी जाने वाली राशि यदि कोई राशि ख्याति के लिए दी गई या दी जाने वाली हो तो उसका स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

(१२) ऐसी सम्पत्ति में जो कम्पनी द्वारा अवाप्त की गई है या अवाप्त की जानी है उसके स्वत्व (Title) या स्वहित (Interest) का स्वरूप और पूर्ववर्ती दो वर्षों में सम्पत्ति के बारे में किये गये प्रत्येक व्यवहार का, जिसमें कोई प्रवर्तक या सचालक वद्धहित था, सक्षिप्त विवरण और उस व्यक्ति का नाम।

(१३) ऐसे प्रत्येक प्रवर्तक या कम्पनी के अफसर का नाम, वर्णन, पता और पेशा जिसे कोई शेयर या ऋण लेना स्वीकार करने या उन्हें अभिगोपित करने के लिए पूर्ववर्ती दो वर्षों के भीतर कोई कमीशन दिया गया है, दी गयी राशि और अभिगोपन कमीशन की दर,

(१४) आरम्भिक खर्चों की राशिया अनुमानित राशि और वे व्यक्ति जिन्होने इनमें से कोई खर्च अदा किये हो या अदा करने हो। इन खर्चों में मैमोरैण्डम यानी सीमानियम और अन्तर्नियम बनाने और छपवाने के, रजिस्ट्रेशन के, मुद्राक शुल्क, वकील की फीस, आदि, प्रासपैक्टस छपवाने और निकालने, आरम्भिक सविदाए लिखने और निष्पादित करने, साविधिक पुस्तकों और सार्वमुद्रा (Common seal) के खर्च शामिल होगे।

(१५) पूर्ववर्ती दो वर्षों में किसी प्रवर्तक या अफसर को अदा की गई कोई राशि या पहुचाया गया कोई लाभ, या अदा करने या पहुचाने के लिए आशयित कोई राशि या लाभ तथा उस अदायगी के लिए या लाभ पहुचाने के लिए प्रतिफल।

(१६) प्रबन्ध संचालक, प्रबन्ध अभिकर्ता, सचिवों और कोषाध्यक्षों या प्रबन्धक की नियुक्ति करने या मेहनताना निश्चित करने वाली प्रत्येक सविदा, चाहे वह कभी भी की गई हो, की तिथिया, उसके पक्ष और साधारण स्वरूप तथा प्रत्येक अन्य सारभूत सविदा और वह समय और स्थान जहा ऐसी सविदा देखी जा सकती है।

(१७) (१) कम्पनी के प्रवर्तन में या (२) प्रासपैक्टस निकालने के दो वर्ष के भीतर कम्पनी द्वारा अवाप्त किसी सम्पत्ति म किसी सचालक या प्रवर्तक का कोई स्वहित हो तो उस प्रत्येक के स्वरूप और मात्रा का पूर्ण विवरण।

(१८) अन्तर्नियम कम्पनी की बैठकों में मतदान का जो अधिकार देते हो वह,

क्रमश विभिन्न वर्गों के शेयरो से सल्गन पूजी और लाभाश के विषय में कोई अधिकार। यदि अन्तर्नियम सदस्यो पर हाजिरी मतदान या बैठको म बोल्ने के बारे में या शेयरो के हस्तातर के अधिकार के बारे म तथा सचालको पर उनकी प्रबन्ध की शक्तियो के बारे में कोई पाबन्दिया लगाते हो तो वे।

(१९) अगर कम्पनी कारबार कर रही है तो ऐसे कारबार के समय की अवधि और यदि वह कोई कारबार अवाप्त करना चाहती है तो यह बात कि वह कारबार कब से चल रहा है।

(२०) यदि कम्पनी या उसकी किसी सहायक कम्पनी का सचित धन (Reserve) या लाभ पूजीकृत किया गया है तो ऐसे पूजीकरण का विवरण और कम्पनी की आस्तियो के या इसकी किसी सहायक कम्पनी के, प्रासपैक्टस की तिथि से पूर्ववर्ती दो वर्षों में किसी पुन मूल्याकन से उत्पन्न आधिक्य (Surplus) का विवरण और यह बात कि उस आधिक्य का क्या किया गया।

(२१) कम्पनी के अकेक्षको के नाम और पते और यदि कम्पनी कारबार करती रह रही है तो लाभो और हानियों तथा आस्तियो और दायित्वो के बारे में अकेक्षकों की रिपोर्ट तथा प्रासपैक्टस निकालने के ठीक पहले के पहले पाच वित्तीय वर्षों में से प्रत्येक में दिये गये लाभाश की दर। किस किस वर्ग के शेयर पर कैसे-कैसे लाभाश दिया गया और उन वर्षों में उन शेयरो का विवरण जिन पर कोई लाभाश नही दिया गया।

(२२) रिपोर्ट में प्रासपैक्टस निकालने से ठीक पहले वाले ५ वित्तीय वर्षों में से प्रत्येक में कम्पनी के लाभो और हानियो का विवरण तथा जिस अन्तिम तिथि तक कम्पनी का हिसाब पूरा है उस पर उसकी आस्तिया और दायित्वो का विवरण भी होना चाहिए। यदि कम्पनी की सहायक कम्पनिया है तो रिपोर्ट में प्रत्येक सहायक कम्पनी के बारे म उपर्युक्त विवरण होना चाहिए।

(२३) यदि शेयरो या ऋण पत्रो के निर्गम के आगम या उनका कोई भाग सीधे तौर से या परोक्ष रूप से (१) किसी कारबार के खरीदने में या (२) किसी कारबार में कोई स्वहित खरीदने में काम लाये जाएगे या लाया जाएगा जिससे कम्पनी को उस कारबार की पूजी या लाभो और हानियों या दोनो में उसके ५० प्रतिशत से अधिक स्वहित प्राप्त हो जाएगा तो रिपोर्ट में प्रासपैक्टस निकालने से ठीक पहले वाले ५ वित्तीय वर्षों म से प्रत्येक के लिए उस कारबार के लाभो और हानियो का विवरण देना होगा।

(२४) यह वक्तव्य कि प्रास्पैक्टस की एक प्रति पजीकार के यहा पेश कर दी गयी है, तथा प्रासपैक्टस पेश करने के लिए विशेषज्ञ की सम्मति। प्रबन्ध सचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचिवो और कोषाध्यक्षो या प्रबन्धक की नियुक्ति या पारिश्रमिक तय करने वाली प्रत्येक सविदा की एक प्रति, यह वक्तव्य भी साथ होना चाहिए कि पूजी निर्गम नियत्रण अधिनियम के अधीन जैसा अपेक्षित है उसके अनुसार केन्द्रीय सरकार की सम्मति प्राप्त कर ली गयी है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इन अनिवार्य विवरणों के अतिरिक्त कोई और जानकारी भी स्वयं दी जा सकती है और बहुधा दी जाती है। यह स्वेच्छया दी गयी जानकारी शेयरों के निर्गम की शर्तों के बारे में अभिदान सूचों के खुलने और बन्द होने की तिथियों और स्टाक एक्सचेंज में कम्पनी के शेयरों का सौदा करने के लिए आवेदन पत्र देने के बारे में हो सकती है।

प्रास्पैक्टस के बदले में वक्तव्य या घोषणा

पर जहां कोई कम्पनी पूंजी प्राप्त करने के लिए अपनी निजी व्यवस्था कर सकती है वहां उसके लिए प्रासपैक्टस निकालना जरूरी नहीं। पर उस अवस्था में प्रासपैक्टस के बदले में एक वक्तव्य, जिसमें प्रासपैक्टस जैसी सूचनाएं होनी चाहिए, और जो उसी तरह हस्ताक्षरित होना चाहिए, पंजीकार के यहां पेश करना होगा। जब तक प्रासपैक्टस या प्रासपैक्टस के बदले में वक्तव्य पंजीकर्त्ता के यहां दर्ज नहीं कराया जाता, तब तक कोई लोक कम्पनी (पबलिक कम्पनी) शेयर या ऋणपत्र नहीं बांट सकती।

कानूनी अपेक्षाओं की पूर्ति करने वाला प्रासपैक्टस तैयार हो जाने पर यह दिनांकित और सब संचालकों द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए और उसी दिन उसकी प्रत्येक संचालक द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रति पंजीयन के लिए पंजीकर्त्ता को सौंप दी जानी चाहिए। इस प्रति के साथ (१) प्रासपैक्टस निकालने के लिए विशेषज्ञ की सम्मति, (२) प्रबन्ध संचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचिवों और कोषाध्यक्षों या प्रबन्धक की नियुक्ति या पारिश्रमिक निदिष्ट करने वाली प्रत्येक संविदा की, चाहे वह कभी भी की गयी हो, एक प्रति और प्रत्येक अन्य सारभूत संविदा, जो किये जाने वाले कारबार के सामान्य क्रम में या कंपनी द्वारा करने के लिए आयोजित कारबार के सामान्य क्रम में की गई संविदा नहीं है, होनी चाहिए। पंजीकार उपर्युक्त शर्तें पूरी न होने पर प्रासपैक्टस पंजीयन करने से इन्कार कर देगा। इसके अलावा यदि ऊपर की शर्तें पूरी किये बिना प्रासपैक्टस निकाला जाएगा तो कम्पनी और वह प्रत्येक व्यक्ति जो जानते हुए इसके निकालने में हिस्सेदार बना है, ५ हजार रुपये तक के जुर्माने से दंडनीय होगा। प्रासपैक्टस की प्रति रजिस्ट्रार को देने की तिथि के बाद ९० दिन के भीतर प्रासपैक्टस निकाल दिया जाना चाहिए। और यदि यह ९० दिन के बाद निकाला जाता है तो कंपनी और इसके निकालने में हिस्सेदार प्रत्येक व्यक्ति ५००० रुपये तक के जुर्माने से दंडनीय होगा। आम जनता को शेयरों के आवेदन के लिए दिये गये सब फार्मों के साथ प्रासपैक्टस जरूर होना चाहिए। यह ध्यान रहना चाहिए कि नया कानून उन प्रत्येक लेख्य का (जिसमें अखबार का विज्ञापन भी शामिल है), जिसमें जनता को शेयर या ऋण पत्र बिक्री के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं, प्रासपैक्टस बना देता है।

भ्रामक प्रविवरण (Misleading Prospectus)

यह अनिवार्य है कि प्रविवरण सत्य, सम्पूर्ण सत्य और केवल सत्य का कथन करे; उसे उन बातों को छिपाना भी नहीं चाहिए जिन्हें कहना अनिवार्य है। प्रविवरण

में ग्राहक खींचने की दृष्टि से लच्छेदार तथा आकर्षक भाषा रखी जा सकती है जिससे लोग इसकी बात सुनने के लिए आकृष्ट हो जाए, लेकिन इसे किसी भी तरह भ्रामक नहीं होना चाहिए। प्रविवरण में असत्य कथन न हो, और न सत्य को दबाया गया हो, तब भी वह भ्रामक या कपट पूर्ण हो सकता है, यदि इसे जानबूझ कर इस प्रकार गढ़ा गया हो कि इसमे मिथ्या तथा भ्रामक प्रभाव पड़े। पुन यदि किसी प्रविवरण म प्रत्येक तथ्य सत्य हो, लेकिन जो कुछ कहा गया है उसका वास्तविक असर मिथ्या तथा भ्रामक हो तो भी वह प्रविवरण कपटपूर्ण होगा। यदि सम्पूर्ण प्रविवरण में मिथ्या छाप पड़ती हो तो वह कपटपूर्ण होगा, चाहे जितनी चालाकी या अस्पष्टार्थक भाषा या अर्ध सत्यो से ऐसी छाप डाली गयी हो।

यदि कोई प्रविवरण इस कारण भ्रामक या कपटपूर्ण है कि इसमें सारभूत (Material) तथ्यों की गलतबयानी है या इसमें सारभूत तथ्यों का भ्रामक विलोप है, तो उस व्यक्ति को, जो इस प्रकार की गलत बयानी या विलोप पर भरोसा करके अंश खरीद लेता हो और भ्रम में पड़ जाता है, निम्नलिखित उपचार (Remedies) प्राप्त हैं —

(१) वह संविदा का निराकरण कर सकता है क्योंकि नितान्त सद्भाव के अभाव के कारण यह शून्य (Void) है। इस प्रकार के निराकरण का प्रभाव यह होगा कि वह अंश को अस्वीकार कर देगा तथा कम्पनी से ब्याज सहित अपना धन वापस पा लेगा और उसका नाम भी सदस्यों की पंजी से हट जाएगा। किन्तु संविदा के निराकरण का अपना अधिकार वह निम्नलिखित हालतों म खो देगा—

(क) यदि उस व्यक्ति ने प्रविवरण का अध्ययन करते हुए वैसे कार्य नहीं किया, जैसे ऐसी परिस्थितियों म कोई प्राज्ञ व्यक्ति करता;

(ख) यदि वह गलतबयानी की जानकारी के बाद शीघ्रता तथा तर्कसंगत समय के भीतर कार्यवाही नहीं करता,

(ग) यदि वह ऐसी जानकारी प्राप्त करने के बाद अपने आचरण से संविदा का अनुसमर्थन कर देता है, यथा, याचित राशि का भुगतान कर देता है, अधिवेशन में सम्मिलित होता है, लाभांश प्राप्त करता है या अंश बेचने का प्रयत्न करता है,

(घ) यदि उसके संविदा के निराकरण से पहले कम्पनी विघटित हो जाती है।

(२) निराकरण के अधिकार के अतिरिक्त, क्षतिग्रस्त व्यक्ति को कम्पनी पर क्षतिपूर्ति का दावा करने का भी अधिकार है बशर्ते कि उसे कोई हानि हुई हो। उपर्युक्त कारणों से यह अधिकार नष्ट हो जायगा।

(३) यदि उसने क्षति उठायी है तो वह किसी भी संचालक, प्रवर्तक या अन्य व्यक्ति स जिसने प्रविवरण के निर्गमन का अधिकृत किया था, क्षतिपूर्ति माग सकता है।

संचालक, प्रवर्तक या अन्य अफसर के लिए निम्नलिखित सफाइयां (Defences) हैं —(1) कि उसने निर्गमन के पूर्व अपनी स्वीकृति वापिस ले ली थी,

या निगमन के बाद पर आवटन से पहले, उसने स्वीकृति वापिस लेने के कारण देते हुए तर्कसगत लोक-सूचना दी थी,

(ii) कि निर्गमन उसकी जानकारी या सम्मति के बिना किया गया था और वह इस तथ्य की तर्कसगत सूचना देता है,

(iii) कि ऐसा विश्वास करने के लिये उसके पास तर्कसगत आधार थे कि कथन सच है,

(iv) कि वह कथन किसी विशेषज्ञ (Expert) की रिपोर्ट (Report) का सही और उचित सक्षेप है या किसी अधिकृत व्यक्ति का कथन है या अधिकृत लेख्य मे आया हुआ कथन है ।

पर यदि वह सचालक प्रवर्त्तक या अन्य अफसर कार्यवाही होने से पहले मर जाए तो उसकी सपदा क्षतिपूर्ति के लिए दायी नही ।

(४) अपने दीवानी दायित्व (Civil liability) के अतिरिक्त, असत्य कथन (Misrepresentation) के लिए इनका फौजदारी दायित्व (Criminal liability) भी है । पहले सचालक तथा प्रवर्त्तक दड विधि के अधीन कपट के लिए दायी होते थे जिसे सिद्ध करना कठिन होता था। अब वह व्यक्ति, जिसने ऐसे प्रविवरण का निर्गमन प्राधिकृत किया है जिसमे कोई असत्य कथन है, दो वर्ष तक के कारावास, या ५००० रुपये तक के जुर्माने या दोनो से दडित हो सकेगा। पर प्रतिवादी दायी नही होगा यदि वह यह सिद्ध कर सके कि वह कथन असारभूत था, या कि उसके पास यह मानने के लिए तर्कसगत आधार था कि वह कथन सत्य था।

उपर्युक्त उपचार केवल आरम्भिक आवटिती (Original allottee) को उपलब्ध है जिसने प्रविवरण के असत्य कथनो या विलोपो पर विश्वास करके अश खरीदे है। खुले बाजार मे अशो के क्रेता या पार्षद सीमा नियम के हस्ताक्षर कर्त्ता को ये अधिकार प्राप्त नही है ।

इसमें सदेह नहीं कि कानून (law) सर्वसाधारण की हितरक्षा के लिए तत्पर है तथा विवेकहीन सचालक और प्रवर्त्तक कानून के जाल म बाधा जा सकता है जिससे सभाम्यत कम्पनी को अविलम्ब वित्तीय हानि होगी जो उनकी सुख्याति व व्यवसाय को सामान्य रूप से अपूर्व क्षति पहुचायेगी, लेकिन फिर भी, यदि सचालक या प्रवर्त्तक उपर्युक्त बचाव का सहारा लेने म समर्थ हुए तो भोले तथा अति उत्साही विनियोक्ता ऊपर से युक्तिसगत दीखने वाले चालाको के फदे में पडकर अपने धन से वचित किये जा सकते है और उनके पास कोई उपचार नही होगा। प्रवर्त्तक प्राय विनियोक्ता के अज्ञान पर अपनी अमन् इच्छाओ की पूर्ति के लिये आशा लगाये बैठा रहता है । अक्सर विनियोक्ता अनजान होता है, लेकिन उसे अपने अज्ञान का पता नही होता, और ऐसी स्थिति म वह आशापूर्ण तथा बडी-बडी बात करने वाले प्रविवरण के जाल में फस जाता है और तब प्रवर्त्तक आसानी से अदक्ष विनियोग के लिये धन प्राप्त कर सकता है। अत अश क्रेता या ऋणदाता के लिए अपना धन देने से पहले प्रविवरण का सावधानी से अध्ययन करना आवश्यक है। यदि वह इस योग्य नहीं है कि

प्रविवरण में लिखे विभिन्न विषयों की पेचीदगी को समझ सके तो उसे अपने दलाल (Broker) या अधिकोषक (Banker) से परामर्श लेने में हिचकिचाना नहीं चाहिए। नये कानून में अग्रक्रेता की मदद के लिए यह उपबन्ध है कि जो व्यक्ति किसी को किसी कम्पनी के अंश लेने के लिए प्रलोभित करेगा, करेगा, वह पाच वर्ष तक के कारावास या १०,००० रुपये तक जुर्माने या दोनों से दण्डनीय होगा। अंश या ऋण पत्र घर-घर जाकर बेचने पर पाबन्दी लगा दी गयी है, और ऐसा करने या दोषी पाया जाने वाला व्यक्ति ५०० रुपये तक जुर्माने का भागी होगा।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विधि प्रविवरण में कतिपय महत्त्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में सूचना देना अपेक्षित करती है। स्थानाभाव के कारण इन सब विषयों का पूरा विवेचन यहा नहीं किया जा सकता। उनका संकेत भर देना ही यहा पर्याप्त होगा ताकि सम्भावी विनियोक्ता के ध्यान में वे बातें विचारार्थ आ जाय। पहली बात यह है कि उसे व्यवसाय की प्रकृति, तथा सफलताकारक घटकों के प्रकाश में उसकी सभावनाओं की जाच करनी चाहिए; सफलताकारक घटक ये हैं—व्यवसाय की साधारण स्थिति, उत्पादन के विभिन्न घटक, यातायात तथा बाजारदारी (Marketing) सुविधाए तथा राज्य का रुख। दूसरी बात यह कि उसे व्यवसाय के कर्णधारों के बारे में जितनी जानकारी सम्भव हो, उतनी प्राप्त करनी चाहिए। अधिकाश उपक्रमों की सफलता या विफलता सचालकों व प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के इसी छोटे से समूह की योग्यता पर निर्भर होती है। सचालकों व प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का स्वहित, तथा यह बात भी देखनी चाहिए कि किस हद तक सचालक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के मुखापेक्षी हैं। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के साथ हुई सविदाओं की शर्तों (Terms) की जाच करनी चाहिए। तीसरी बात यह कि इस बात का पता लगाने के लिए कि प्रस्तावित पूजी, जिसके उगाहे जाने की सभावना है, व्यवसाय की सफलता के लिये पर्याप्त होगी या नहीं, कम्पनी की पूजी योजना का अध्ययन करना चाहिए। विभिन्न वर्गों के अंशधारियों के मतदान के अधिकार भी देखने चाहिए? यह भी देखना चाहिए कि निर्गम अभिगोपित किया गया है या नहीं, और कि क्या कमीशन दिया जा रहा है। जब कम्पनी किसी सम्पत्ति या चालू व्यवसाय को खरीदना चाहती है, तब व्यवसाय के अतीत इतिहास का अध्ययन इस बात का पता लगाने के लिये करना चाहिए कि किया जाने वाला व्यवहार (Transction) मुस्थिर (Sound) है या नहीं। कम्पनी के अधिकोषक (Bankers) वैधानिक परामर्शदाता, अंकेक्षक, दलाल (Broker) तथा अन्य परामर्शदाता कम्पनी की स्थिति के अच्छे सूचक हैं। ख्यातिसम्पन्न संस्थाए तथा व्यक्ति साधारणत संदिग्ध व्यवसाय में हिस्सेदार नहीं हो सकते।

अशो के लिए आवेदन

साधारणत. प्रविवरण के साथ, इच्छुक विनियोक्ताओं के उपयोग के लिए

एक प्रार्थना-पत्र लगा दिया जाता है। अब प्रासपेक्टस तथा प्रार्थनापत्र, दोनों साथ निर्गमित करना अनिवार्य कर दिया गया है। यदि अंशों या ऋणपत्रों के किसी प्रार्थना-पत्र के साथ प्रासपेक्टस नहीं है तो दोषी व्यक्ति या व्यक्तियों पर ५००० रुपये तक जुर्माना हो सकता है। कोई भी व्यक्ति अंशों की किसी भी संख्या के लिए प्रार्थना कर सकता है। ऐसा करने के लिए उसे निर्दिष्ट स्थान पर अंशों की संख्या भर देनी होगी और अपना हस्ताक्षर कर देना होगा। आवश्यक धनराशि के साथ भेजा गया यह प्रार्थना-पत्र प्रार्थी द्वारा अंशों के लिए किया गया प्रस्ताव है जो उस समय एक मान्य संविदा (Valid Contract) बन जायगा जब कम्पनी उसे अंश आवंटित कर देगी। प्रार्थना पत्र निरुपाधि (Absolute) या सामान्य (Simple) अथवा सशर्त (Conditional) हो सकता है। यदि यह सामान्य है तो आवंटन तथा प्रार्थी को इसकी सूचना पर्याप्त स्वीकृति है। यदि यह सशर्त है तो आवंटन प्रार्थी द्वारा दी गयी शर्त के अनुसार होना चाहिए, क्योंकि सशर्त प्रार्थना के उत्तर में निरुपाधि (Absolute) आवंटन अमान्य (Invalid) होगा। पर स्वीकार्य होने के लिए शर्त पूर्ववर्ती (Precedent) शर्त होनी चाहिए। उदाहरणत, यदि किसी व्यक्ति ने इस शर्त पर अंश आवंटन के लिये प्रार्थना-पत्र भेजा कि उसे आवंटन से पूर्व कम्पनी का शाखा प्रबन्धक नियुक्त कर लिया जाय तो वह कम्पनी का सदस्य नहीं बनेगा यदि इस शर्त की पूर्ति के बिना उसे अंश आवंटित किये जाते हैं।

अंशों का आवंटन—अंशों के आवंटन का अर्थ है संचालक मंडल (Board of Directors) द्वारा प्रार्थना-पत्र के उत्तर में अंशों की कुछ संख्या का निर्धारण कर देना। अंश आवंटन वस्तुत अंश लेने के प्रस्ताव की कम्पनी द्वारा स्वीकृति है। अन्य स्वीकृति की भांति इसको भी अनिवार्यत शर्तरहित (Absolute) तथा संसूचित (Communicated) होना चाहिए। आवंटन की सूचना जैसे ही डाक में डाली जाती है वैसे ही संसूचन सम्पादित हो जाता है। जैसा कि साधारणतया समझा जाता है, संचालकों को यह स्वतन्त्रता नहीं कि वे अंशों को प्रार्थित संख्या से कम आवंटित करें। लेकिन व्यवहार में प्रार्थित संख्या से कम आवंटित करने का अधिकार सुरक्षित रखा जाता है जिसके परिणामस्वरूप संचालकों को इस बात का अधिकार प्राप्त होता है कि वे अंशों को न्यून संख्या आवंटित करें। आवंटन मान्य (Valid) हो, इसके लिए आवंटन का कार्य विधिवत् गठित संचालक मंडल के अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव द्वारा आवेदन की तिथि से उचित अवधि के अन्तर्गत ही सम्पादित होना चाहिए। कम्पनी अधिनियम की धारा १०१ के अनुसार कम्पनी के द्वारा आवंटन कार्य शुरू किये जाने के पूर्व निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए :—

(१) प्रथम आवंटन के पूर्व, प्रविवरण या प्रविवरण के बदले घोषणा का नत्थी-करण हो चुका हो।

प्रथम आवंटन के पूर्व, प्रविवरण में निर्धारित "न्यूनतम अभिदान" (Minimum Subscription) अभिदत्त हो चुका हो, या प्रार्थित हो चुका हो।

(३) कम्पनी को अंश के नामांकित मूल्य का कम से कम ५ प्रतिशत प्रार्थना-पत्र राशि के रूप में नकद मिल चुका हो और प्राप्त राशि आवटन के पूर्व किसी अनुसूचित बैंक (Scheduled Bank) में जमा कर दी गयी हो।

अनियमित आवटन (Irregular Allotment)—यदि किसी कम्पनी ने उपर्युक्त शर्तों में से किसी एक की भी पूर्ति किये बिना आवटन कर दिया है, तो प्रार्थी सांविधिक अधिवेशन (Statutory Meeting) के बाद दो महीने के भीतर आवटन का परिहार कर सकता है, और यदि आवटन सांविधिक अधिवेशन के बाद किया गया है तो इस प्रकार के आवटन के दो महीने के भीतर परिहार कर सकता है। यदि कम्पनी का समापन हो रहा हो तो भी वह अपने धन की वापसी का दावा कर सकता है। यदि कम्पनी या आवटिती ने इस प्रकार के आवटन के फलस्वरूप कोई क्षति उठायी है तो संचालक कम्पनी या आवटिती की क्षति की पूर्ति करने के लिए दायी है। संचालक, प्रवर्तक तथा वे अन्य व्यक्ति भी, जो जानने-बूझते उपर्युक्त उपबन्धों के अतिक्रमण के लिए जिम्मेवार हैं, ५०००रु० तक जुर्माने से दण्डनीय हैं।

अभिदान सूची (Subscription list)—पुराने कानून की कुछ कमियों को दूर करने के लिए नये उपबन्ध किये गये हैं। पुराने कानून में कम्पनी के लिए अपनी अभिदान सूची किसी समय तक खुली रखना जरूरी नहीं था। अंशों के लिए आवेदन करने वाले का भी आवटन किये जाने से पहले अपना आवेदन वापस लेने की आजादी थी। कानून की इस हालत का नतीजा यह था कि दो बुराइयाँ चल पड़ी थी। कुछ कम्पनियाँ में अभिदान सूची जिस दिन खोली जाती थी उसी दिन बन्द कर दी जाती थी। परिणामत जनता को प्रास्पैक्टस में दी हुई बातें दिमाग में बैठाने के लिए भी समय नहीं मिलता था, स्वतन्त्र रूप से सलाह लेने के समय की तो बात ही क्या और प्रास्पैक्टस में विस्तृत बातें दिये जाने का विधान करने में विधान मंडल का जो आशय था उसे व्यर्थ कर दिया जाता था। दूसरी बात यह कि 'स्टैग्स' (Stags) यानी नकली आवेदक, अच्छी कम्पनियों के शेयर अधिक मूल्य में पुन बेचकर जल्दी नफा कमाने की दृष्टि से बहुत से आवेदन पत्र दे देते, पर यदि जरा भी यह सम्भावना होती कि कम्पनी अच्छी नहीं चलेगी तो वे झूठे आवेदन पत्र वापस ले लेते थे। नई धारा ७२ में इसका इलाज किया गया है इसके अधीन अभिदान सूची को प्रासपैक्टस निकालने के बाद ५ दिन तक खुला रखना पड़ेगा। ये ५ दिन बीतने से पहले आवेदक अपना आवेदन वापस नहीं ले सकता। पर यदि उन पाँच दिनों के अन्दर किसी ऐसे व्यक्ति ने, जो प्रासपैक्टस निकालने में एक पक्ष था, उदा० किसी विशेषज्ञ ने, लोक सूचना द्वारा अपनी सम्मति वापस ले ली है, तो आवेदक अपना आवेदन-पत्र वापस ले सकता है। यह भी उपबन्ध है कि जिस दिन अभिदान सूचियाँ बन्द की जाए, उस दिन की घोषणा की जानी चाहिए और कि ऐसे बन्द करने के दिन के बाद दसवें दिन के अपरचात् आवटन कर दिया जाना

चाहिए और आवटन की सूचना दे देनी चाहिए। ये बातें धन लगाने वाली जनता तथा उपक्रम, इन दोनों के लिए लाभदायक होने की आशा है।

बहुधा यह जोर-शोर से कहा जाता है कि अभिदान के लिए प्रस्तुत अंशों या ऋणपत्रों की कीमत बताने के लिए स्टाक एक्सचेंज में आवेदन किया गया है या किया जायगा। यह काम रुपया लगाने के इच्छुक लोगों का यह आश्वासन देने के लिए किया जाता है कि अंश खरीदने-बेचने योग्य हो जाएंगे और वह इस आधार पर अंश खरीद ले। पर असल में, अधिकतर आवश्यक इजाजत नहीं मांगी जाती, या बहुत देर बाद मांगी जाती है। इस समस्या को धारा ७२ में हल किया गया है। इस धारा के अधीन, जब किसी प्रासपैक्टस में उपर्युक्त प्रकार का कथन किया जाता है तब कम्पनी को प्रासपैक्टस के पहली बार निकाले जाने के बाद दसवें दिन से पहले सौदे करने के लिए स्टॉक एक्सचेंज को आवेदन पत्र देना होगा। यदि वह ऐसा नहीं करती तो किए गए आवंटन शून्य हो जायगे। यह उपबन्ध भी किया गया है कि यदि स्टाक एक्सचेंज अभिदान सूची बन्द होने की तिथि से तीन सप्ताह बीत जाने से पहले या वह बड़ी अवधि बीत जाने से पहले जो उक्त ३ सप्ताहों में आवेदक को सूचित की जाए (पर यह अवधि ६ सप्ताह से अधिक नहीं हो सकती), इन्कार कर दे तो आवटन शून्य होगा इनमें से किसी भी अवस्था में, अर्थात् वहां भी जहां आवेदन नहीं किया गया है और वहां भी जहां इजाजत नहीं दी गई है। कम्पनी को बिना ब्याज के धन तुरन्त आवेदनकर्ताओं को लौटाना होगा और यदि धन लौटाने के लिए कम्पनी के दायी होने के बाद ७ दिन के भीतर ऐसा धन वापस नहीं दे दिया जाता तो आठवां दिन बीतने के बाद से ५ प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज सहित धन वापस करने के लिये कम्पनी के सचालक सयुक्तत और पृथक्त दायी होंगे।

आवटन का विवरण (Allotment Return)

आवटन का विवरण, चाहे वह एक ही अंश के आवटन का क्यों न हो, आवटन के एक महीने के अन्दर पजीकार के पास नत्थी किया जाना अनिवार्य है, जिसमें अंशों की नामांकित राशि व सख्या, आवंटिती का नाम व पता, तथा प्रत्येक अंश पर शोधित (Paidup) या शोध्य (Payable) राशि का उल्लेख होना है। उन अंशों के सम्बन्ध में जो नगदी के बजाय अन्य प्रतिफल के बदले आवटित किये गये हों, उन सविदाओं की लिखित प्रतियां, जो आवटिती का स्वतन्त्र अस्तित्व गठित करती हैं, तथा विक्रय सविदाओं की प्रतियां पजीकार के पास नत्थी कर देनी चाहिए।

यदि कोई कम्पनी "न्यूनतम अभिदान" राशि की अप्राप्ति या किसी अन्य शर्त की अपूर्ति के कारण प्रविवरण के प्रथम निर्गमन के १८० दिनों के अन्दर अंश आवटित करने में असमर्थ है, तो उसके लिए यह अनिवार्य है कि अगले दस दिनों के अन्दर वह प्रार्थियों को उनका धन बिना ब्याज के लौटा दे। इसके पश्चात् सचालक सयुक्तत: तथा पृथक्त सारी रकम वार्षिक ७½ प्रतिशत के ब्याज के साथ लौटा देने के लिए दायी होंगे।

कारबार आरम्भ करने का प्रमाणपत्र

अब कम्पनी पंजीकार से कारबार आरम्भ करने का प्रमाणपत्र मांगने के लिए आवेदन करने की स्थिति में है। यदि सारी औपचारिकताओं (Formalities) तथा वैधानिक अपेक्षाओं की पूर्ति हो गयी है तो यह प्रमाण-पत्र निर्गमित कर दिया जाएगा। मतलब यह कि पंजीकार तभी प्रमाणपत्र देगा यदि—

(१) "न्यूनतम अभिदान" राशि आवटित हो गयी है,

(२) पापद अन्तर्नियमों की व्यवस्थानुसार संचालकों ने अर्हता अंश खरीद लिए हैं तथा उनके लिए भुगतान कर दिया है,

(३) प्रविवरण या प्रविवरण के बदले घोषणा तथा इस आशय की साविधिक (Statutory) घोषणा कि उपर्युक्त शर्तों की पूर्ति कर दी गयी है, नत्थी कर दी गयी है।

यह उल्लेखनीय है कि यदि निगमन के एक वर्ष के भीतर कम्पनी अपना कारबार शुरू नहीं करती तो न्यायालय इस के समापन की आज्ञा दे सकता है। निगमन की तिथि तथा व्यवसायारम्भ के बीच की गयी सब संविदाएं अस्थायी (Provisional) होती हैं और वे कम्पनी को तब से बद्ध करेंगी जबसे कम्पनी को व्यवसायारम्भ का अधिकार होता है, यानी उस तिथि से जो व्यवसायारम्भ के प्रमाण पत्र पर अंकित है। कम्पनी के निगमन से पूर्व की गयी कोई भी संविदाएं कम्पनी को बद्ध नहीं करतीं और न वे संविदाएं निगमन के पश्चात् अनुसमर्थित ही की जा सकती हैं।

अध्याय : : ८

निगम व औद्योगिक वित्त

CORPORATION & INDUSTRIAL FINANCE

पिछले अध्याय में उस विस्तृत जाँच-पड़ताल की चर्चा की गयी है जो एक प्रवर्तक व्यवसाय के लिए आवश्यक पूंजी निर्धारित करने के हेतु करता है। यह कहा गया था कि प्रवर्तक आवश्यक पूंजी का अनुमान लगाता है और तब एक वित्तीय योजना तैयार करता है जो उसके अनुमान के अनुकूल हो। ठीक यहीं प्राय भयकर गलती हुआ करती है। प्राय आवश्यक पूंजी की उचित मात्रा नहीं तय की जाती। यह आगणन करना आसान है कि प्लाट, मशीनों, भवन, साज-सज्जा (Equipment), कार्यालय फर्नीचर (उपस्कर)—एक शब्द में, व्यवसाय के लिए स्थिर आस्तियों (Fixed Assets) के लिए कितनी पूंजी की आवश्यकता होगी। किन्तु इसके अतिरिक्त आस्तियों की कुछ अनिश्चित राशि भी आवश्यक होती है, यथा प्लाट सचालन व्यय, प्लाट को अच्छी अवस्था में बनाये रखने अर्थात् उसके संधारण (Maintenance) व अवक्षयण का व्यय तथा विक्रय व्यय। तदुपरान्त, कच्चे माल तथा पूनिक्रय, माल के निर्माण, माल के विक्रय तथा भुगतान की प्राप्ति तक इन्तजार के लिए यानी कार्यशील पूंजी के रूप में भी पर्याप्त पूंजी की व्यवस्था की जानी चाहिए। यदि कार्यशील पूंजी का अनुमान अपर्याप्त है तो वैसी स्थिति में कुछ आपातिक (Emergent) उपाय करना अनिवार्य होगा, अन्यथा व्यवसाय बिल्कुल बन्द हो जायगा।

पुन, हानियों का तथा विकासार्थ व्यय की राशि का अनुमान प्राय अल्प किया जाता है। प्रत्येक नवीन सगठन अज्ञात एक परीक्षण होता है। वैसे व्यक्ति नियुक्त होंगे जो पदों के लिए अनुकूल नहीं, उत्पादन तथा विक्रय की वे विधियां प्रयुक्त होंगी जिन्हें त्याग देना होगा, मशीनें शायद अनुपयुक्त साबित हो, विज्ञापन शायद लाभदायक के बजाय हानिकारक साबित हों। यदि साहस का आधार दृढ है तो उन सारी खर्चीली हानियों को व्यवसाय के चल निकलने में प्रारम्भिक व्यय माना जा सकता है। पीढ़ियों के अनुभव ने यह प्रमाणित कर दिया है कि इस प्रकार के व्यय अनिवार्य हैं और पूंजी व्यय (Capital Expenditure) के आरभिक अनुमान में ही इनकी व्यवस्था कर देनी चाहिए। ये कथन, अपेक्षाकृत कम मात्रा में, विस्तार तथा उन्नयन की योजनाओं पर भी लागू होते हैं जिनके लिए नयी पूंजी उगाही जाती है।

सम्पूर्ण पूंजी आवश्यकता का आगणन—सम्पूर्ण पूंजी आवश्यकता का इस दृष्टि से आगणन करने में कि व्यवसाय का कार्यारम्भ हो जाए, पंजीयन शुल्क, कार्यालय व्यय, वकील की फीस (Lawyer's Fees) तथा अन्य प्रारम्भिक लागत प्रवर्तन व्यय

के अन्तर्गत आती है। द्वितीय, स्थिर आस्तियां जो व्यवसाय को आरम्भ करने के लिए आवश्यक है, यथा भवन, मशीन तथा कार्यालय सज्जा। व्यवसाय को स्थापित करने के व्यय पर भी विचार करना चाहिए। इस लागत (या परिव्यय) का अनुमान बाजार विश्लेषण विशेषज्ञ (Market analysis expert) करते है और यह उतनी मात्रा है जितनी मात्रा म, कतिपय प्रारम्भिक महीनो म व्यय आमदनी से बढ जाता है। इसके बाद नगद राशि या तरल पूजी (यानी कार्यशील पूजी) आती है जिसका हाथ मे होना व्यवसाय के लिए उचित है। कार्यशील पूजी उस कोष की पूर्ति करती है जो व्यवसाय सचालन के लिए आवश्यक है। अन्त मे, वित्तपोषण व्यय (Cost of Financing) आता है। इसमें आवश्यक नकद धन और उसे प्राप्त करने की लागत शामिल है। आवश्यक नगद राशि से उपर्युक्त व्यय स्वत निकल आता है जिसमे आपाता (Emergencies) के लिए, जो सगठन के दरम्यान उत्पन्न हो सकते है, १०% और जोड़ देना चाहिए। धन सग्रह करने का व्यय सगृहीत धन का २% से १०% तक पडता है, और यह व्यय धन सग्रह करने के लिए प्रयुक्त विधि पर निर्भर करता है। उस हालत म जब सम्पूर्ण धन प्रवतक समूह के सदस्यो से एकत्रित किया जाता है, सग्रह व्यय वास्तव मे कुछ नहीं पडता, लेकिन यह विधि आजकल प्रचलित नहीं है। दूसरी विधि है कम्पनी की प्रतिभूतिया (Securities) सर्वसाधारण के बीच बेचना और तब व्यय १०% से अधिक तक जा सकता है। यह व्यय कितना आएगा, यह उपक्रम के समर्थक व्यक्तियो की ख्याति, उपक्रम की प्रकृति तथा विनियोग बाजार की स्थिति पर निर्भर करता है। पूजी सग्रह करने की तीसरी विधि है अभिगोपन गृहो के द्वारा।

कुल आवश्यक पूजी की गणना की दो विधिया है। पहिली आगणन विधि (Estimating Method) और दूसरी तुलना विधि (Comparison Method)। आगणन विधि के अनुसार खोज (Investigation) की विभिन्न लागतें, जैसे स्थिर आस्तिया, कार्यशील पूजी आदि, जैसा कि ऊपर बता दिया गया है, का अनुमान कर लिया जाता है। तुलना विधि के अनुसार प्रस्तावित कम्पनी के सम आकार तथा तथा सम परिस्थिति के कुछ व्यवसायो का पता लगाने का प्रयत्न किया जाता है। इन व्यवसायो के आकडो के जरिये नये व्यवसाय के लिए पूजी की सम्भावित आवश्यकताओ का अनुमान लगाया जाता है। दोनो विधियो का उपयोग करना प्रवतको के लिए अधिक लाभप्रद होगा।

उपर्युक्त विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक व्यवसाय को तीन उद्देश्यो के लिए पूजी की आवश्यकता होती है, अर्थात् (१) स्थिर आस्तिया को खरीदने या स्थिर (Block) व्यय के लिए, (२) चालू आस्तिया खरीदने के लिए यानी चालू कार्यशील व्यय के लिए, जिसे चक्रशील (Revolving) व्यय कहा जाता है और जो नियमित (Regular) या परिवर्ती (Variable) हो सकता है, तथा (३) उन्नयन (Improvement) व विस्तार पर व्यय के लिए। अगले सन्दर्भो म इन आवश्यकताओ तथा इनकी पूर्ति के लिए निधिसग्रह करने की प्रणालियो का सक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

स्थिर पूंजी (Block Capital)—किसी फैक्टरी को आरम्भ करने तथा इसे सज्जित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में आरम्भिक पूजी की आवश्यकता होती है जो करीब-करीब स्थायी रूप से स्थिर होती है या गला दी जाती है (Sunk) और जिसे इच्छानुसार वापिस नही पाया जा सकता । स्थिर पूंजी प्लाट, सज्जा, (Equipment) भूमि व भवन या ऐसे रूपो में लगी होती है जिन्हें व्यवसाय को खण्डित किये बिना बेचा नहीं जा सकता। स्थिर आस्तिया खरीदने के लिए आवश्यक पूजी की रकम उद्योग की प्रकृति उत्पादन कार्य की सम्पादन विधि, तथा इन कार्यों के सम्पादन की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि योजना सार्वजनिक उपयोगिता या रेलवे की किस्म की है तो सज्जा तथा सम्पत्ति में विनियोग हेतु पूजी की बडी रकम की आवश्यकता होगी। यदि किसी वस्तु का निर्माण होना है तो उत्पाद्य वस्तु की इकाई के परिमाण के अनुसार स्थिर पूजी की छोटी रकम की आवश्यकता होगी। इकाई जितनी बडी होगी, पूजी उतनी ही अधिक होगी और इकाई जितनी छोटी होगी, पूजी उतनी ही कम। पूजी को प्रभावित करने वाला तीसरा घटक यह है कि क्या व्यवसाय सिर्फ विक्रेता होगा, या विक्रेता या निर्माता दोनो ? यदि व्यवसाय केवल विक्रेता है तो स्थिर पूंजी की शायद ही आवश्यकता हो, परन्तु यदि व्यवसाय निर्माण और विक्रय दोनो कार्य करता है तो ऐसी स्थिति मे पर्याप्ततः बडी राशि की आवश्यकता होगी—यह राशि उत्पादित वस्तु की प्रकृति तथा आकार द्वारा निर्धारित होगी। उत्पादन की साधारण विधि (Method of handling production) भी स्थिर पूजी (Block Capital) को प्रभावित करती है । उत्पादन के कई तरीके हो सकते हैं, यथा पुरानी मशीनो की सहायता से वस्तुए स्वय निर्मित की जा सकती है, प्लाट का क्रय तथा पट्टा (Lease) किया जा सकता है, माल निर्माण कराने की सविदा की जा सकती है, नमूनो या विशेष औजारों का स्वामित्व प्राप्त किया जा सकता है, या माल के अशो को बनाये बिना या बहुत थोडे से अशो को बनाकर माल के एकत्रीकरण का काम किया जा सकता है ।

इससे दूसरी समस्या उठ खडी होती है जिसे प्रवर्त्तक को यह निर्णय करने के समय हल करना पडता है कि कब छोटे परिमाण मे निर्माण या सर्वथा अ-निर्माण योजना व्यवहृत की जानी चाहिए और कब माल बनाने और उसे बेचने, दोनो कार्यों की कोशिश की जानी चाहिए। यदि प्रवर्त्तक को पूजी सचय करने मे कठिनाई हुई थी तो उसे उसी विधि को चुनना चाहिए जिसमे निम्नतम प्रारम्भिक पूजी की आवश्यकता हो, अर्थात् केवल माल की बिक्री करनी चाहिए तथा माल निर्माण के लिए सविदा कर लेनी चाहिए। वूलवर्थ (Woolworths) का विख्यात बहुसख्यक विभागीय शृखला भण्डार इसी विधि का अनुसरण करता है । इगलैण्ड में दर्जन से अधिक फैक्टरिया प्रधानत इसी फर्म के लिए अनेक प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करती है । वैसी स्थिति में भी, जहा मशीन आदि में बहुधा बृहत राशि के विनियोग की आवश्यकता हो, या व्यवसाय मौसमी (Seasonal) प्रकृति का हो, या विफलता का बडा

जोखिम हो, संविदा प्रणाली का उपयोग किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, जहां प्रस्तावित साहस की सफलता असन्दिग्ध तथा मांग में स्थिरता हो और बड़े पैमाने पर उत्पादन की सम्भावना हो, और जहां उत्पादित माल की गोपनीयता या क्वालिटी महत्वपूर्ण हो। वहां माल का निर्माण तथा माल की बिक्री, दोनों ही कार्य किये जाने चाहिए। बहुत सी फर्में एकत्रीकरण प्रणाली (Assembling method) और माल निर्माण संबंधी संविदा को अपनाकर व्यवसाय करने के कुछ समय पश्चात सम्पूर्ण माल के निर्माण करने का इसलिए निश्चय करती हैं कि वे तीव्र प्रतियोगिता का मुकाबला कर सकें। स्थिर आस्तियां (Fixed Assets) खरीदने के लिए जिस पूंजी की आवश्यकता होती है वह दीर्घकालीन पूंजी है, और प्राय अंश पूंजी, निजी व लोक निक्षेपों, प्रबन्ध अभिकरण तथा ऋणपत्र निर्गमन के लिए जरिये संचित की जाती है। इधर हाल में कुछ राज्यों ने भी इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए विभिन्न रूपों में ऋण देना शुरू किया है।

कार्यशील पूंजी (Working Capital)—कार्यशील पूंजी कच्चे माल, निर्मित व अर्धनिर्मित माल के स्टाक, प्राप्य लेखे, विक्रेय प्रतिभूतियों तथा रोकड़ (Cash) में विनियुक्त की जाती है। आवश्यक रूपपरिवर्तन के पश्चात इस प्रकार की पूंजी निरन्तर गति से रोकड़ या नगद में परिवर्तित होती रहती है और यह रोकड़ पुन अन्य प्रकार की कार्यशील पूंजी के बदले बाहर चली जाती है। इस प्रकार यह सर्वथा घूमती (Revolving) या चक्कर काटती (Circulating) रहती है। यहां यह समझ लेना चाहिए कि नकद या नकद-योग्य आस्तियों का कुल मूल्य कार्यशील पूंजी की मात्रा में नहीं लगाया जा सकता। चिट्ठे के दूसरी तरफ ऐसे दायित्व होते हैं, जो प्रधानतः लघुकालीन बैंक ऋण तथा शोध्यलेखों से बने होते हैं, जिन्हें कुल कार्यशील आस्तियों में से घटा कर शुद्ध कार्यशील पूंजी निर्धारित की जा सकती है। यदि ऐसा नहीं होगा तो वह फर्म जिसने बहुतेरी उधार वस्तुओं का ढेर लगा लिया है, अपनी आस्तियों को दृष्टि से अच्छी कार्यशील पूंजी वाली प्रतीत होगी, हालांकि सच्ची बात यह हो सकती है कि चालू दायित्वों के अतिरिक्त उसके पास कार्यशील पूंजी हो ही नहीं और हो भी तो थोड़ी हो। अतः कार्यशील पूंजी की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है, "चालू दायित्वों में अतिरिक्त चालू आस्तियों की मात्रा" और निम्नलिखित समीकरण में इसे प्रकट किया जा सकता है -

कार्यशील आस्तियां—चालू दायित्व-कार्यशील पूंजी। चालू आस्तियां या कार्यशील पूंजी प्राप्त करने के लिए आवश्यक पूंजी अल्पकालीन पूंजी होती है।

पर्याप्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता—बहुत-सी कम्पनियों ने प्रारम्भ में काफी आकर्षण प्रदर्शित किया है लेकिन लगभग एक साल के अन्दर ही पत्र के समाप्त हो जाने के कारण वे विफल हो गयी हैं। अपर्याप्त कार्यशील पूंजी के कारण ही ऐसा होता है। या किसी कम्पनी ने लाभजनक तथा बड़ा व्यवसाय किया है और जहां तक तात्कालिक प्रक्रियाओं का सम्बन्ध है, वह नितान्त सुव्यवस्थित रही है, लेकिन व्यवसाय

के द्रुत विस्तार के कारण, जिसके परिणामस्वरूप स्थिर आस्तियों में काफी रकम विनियुक्त हो गयी है, कार्यशील आस्तियों में विनियुक्त की जाने वाली राशि में आंशिक कमी हुई है, और इस प्रकार वह आर्थिक कठिनाइयों का शिकार हुई है। हो सकता है कि चालू देन बिना चुकाये बढ़ती चली जाय, कम्पनी का नवीन अंशों के निर्गमन द्वारा अपनी पूंजी बढ़ानी पड़े और वे अंश न बिकें और वैसी हालत में कम्पनी को बाध्य होकर ब्याज की ऊँची दर पर कर्ज लेना पड़े और साथ-साथ व्यवसाय को जीवित रखने के लिए बढ़ाने की आवश्यकता हो। अतएव, इस प्रकार की उन्नति का यह परिणाम हो सकता है कि कम्पनी शनैः-शनैः किसी भी दर पर धन प्राप्त करने को लाचार हो। यदि वह अपनी प्रणालियों में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं करती तो इस बात की बड़ी सम्भावना बनी रहेगी कि कम्पनी विघटन (Liquidation) की ओर तेजी से बढ़े। "व्यवसाय जिन्दगी की यह एक दुःखपूर्ण तथा लगातार पुनर्घटित होने वाली घटना है कि एक बलिष्ठ आदमी उत्पादन तथा बिक्री सम्बन्धी अपनी ही योग्यता तथा शक्ति के कारण विफल हुआ है।" इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि पूंजी निधि के विनियोग में सावधानी बरती जाय और विशेष कर कार्यशील पूंजी की पर्याप्त राशि हाथ में रखी जाय।

कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले घटक—ऊपर के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि कार्यशील पूंजी की गणना पहले ही कर ली जाय ताकि पूंजी निधि की व्यवस्था करने में सुविधा रहे। कोई ऐसा मान्य सूत्र नहीं है जो सभी अवस्थाओं में प्रयुक्त किया जाय; केवल अनुमान से काम लिया जा सकता है। प्रारम्भ में यह कहा जा सकता है कि परिवहन तथा अन्य उपक्रमों में, जिनमें दायित्वों से आस्तियां अधिक नहीं होतीं, कार्यशील पूंजी नहीं होती, उनमें परिचालन पूंजी या व्यय होते हैं। निर्मिति उपक्रमों (Manufacturing Enterprises) में प्रायः यह माना जाता है कि आस्तियों एवं दायित्वों के बीच अनुपात १०० व ७५ या १०० व ८० से कम नहीं होना चाहिए। किन्तु ये अनुपात स्थिर और अन्तिम मापदण्ड नहीं हो सकते; ये केवल पथप्रदर्शन कर सकते हैं। फिर कतिपय कोटि के व्यवसायों में कार्यशील पूंजी का अनुपात अन्य व्यवसायों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। हम उदाहरणस्वरूप दो चरम उदाहरण दें। *विद्युत्‌वितरण कम्पनी या टेलीफोन कम्पनी की अवश्य ही बृहत् स्थिर आस्तियां होती हैं,* जैसे तार, खम्भे, केन्द्रीय कार्यालय तथा दूसरी सज्जा; लेकिन जब किसी समुदाय में टेलीफोन प्लांट स्थापित कर दिया गया, तब चालू व्ययों के अन्तर्गत साधारण व्यय, भृतिदारियों व पदस्थों के वेतन आते हैं जो अपेक्षतः कम होते हैं। टेलीफोन कम्पनियां अग्रिम भुगतान *ले लेती हैं और परिणामस्वरूप चालू व्ययों के लिए आवश्यक धनराशि वास्तविक* व्यय के पहले ही आ जाती है। अतः, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि चालू व्यय के लिए चालू आय पर सुगमता से भरोसा किया जा सकता है। विद्युत्‌वितरण, परिवहन तथा अन्य इसी प्रकार के उपक्रमों में ठीक यही बात होती है। अब दूसरी तरफ हम एक खुदरा भण्डार (Retail Store) का उदाहरण लें, जो एक भाड़े के मकान में व्यवसाय करता है। इसके लिए आवश्यक स्थिर आस्ति भण्डार, उपस्कर

(Furniture) तथा सज्जा ही होगी; अन्य दूसरी आस्तियां, जैसे माल का स्टाक, प्राप्य लेखे तथा रोकड, कार्यशील होंगे। अत कार्यशील पूजी सम्पूर्ण पूजी का ७५% या ८०% होगी। प्राय सभी व्यापार सम्बन्धी उपक्रमो की यही हालत होती है और यह बात विशेष रूप से वित्तीय व्यवसायो म लागू होती है। बैंको को अनिवार्यत अपनी सम्पूर्ण आस्तियां ऐसे रूप मे रखनी होती है कि वे क्षण मात्र की सूचना पर रोकड (Cash) मे बदली या परिवर्तित की जा सके।

आधारभूत या मौलिक घटक, जो कार्यशील पूजी की आवश्यकता का निर्धारण करते है, दो है—(क) व्यवसाय की व्यापक प्रकृति तथा (ख) व्यवसाय का परिमाण (Volume)। यदि व्यवसाय अचल सम्पत्ति का पट्टा देने, परिवहन की सुविधा प्रदान करने या ऐसे ही किसी और प्रकार का है तो सम्पूर्ण या लगभग सम्पूर्ण विनियोग स्थिर रूप मे होगा। यदि व्यवसाय माल निर्माण का है तो कार्यशील पूजी का अनुपात अपेक्षत कम होगा। यदि व्यवसाय व्यापार या वित्त-पोषण का है तो व्यवसाय की प्रमुख आवश्यकता कार्यशील पूजी होगी। पट्टेदारी (Leasing) या परिवहन (Transport) के अतिरिक्त, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कार्यशील पूजी की आवश्यकता सामान्यत बिक्री के परिमाण के अनुपात के अनुसार बदलेगी। किन्तु ऐसी स्थिति मे यह बात मान्य हो जाती है कि अन्य घटक, जिनकी चर्चा नीचे की गयी है, एक गति से परिचालित होते है। यदि यह मान लिया जाय कि मालो के क्रय-विक्रय की शर्तें, व्यय तथा विधियां व मालो के उत्पादन का प्रमापीकरण हो गया है तो हम यह आसानी से कह सकते है कि उत्पादन तथा बिक्री मे ५० प्रतिशत की वृद्धि होने पर उसी अनुपात मे कार्यशील पूजी की वृद्धि की आवश्यकता होगी और इस हालत मे कार्यशील पूजी परिवर्ती होगी। ऊपर की पंक्तियो मे व्यवसाय की प्रकृति व परिमाण के सम्बन्ध मे जो भी सामान्य विवेचन किया गया है उसका मुख्य उद्देश्य है निम्नलिखित विवेचन के सम्बन्ध मे भ्रान्ति को दूर रखना। कार्यशील पूजी का अनुमान करने मे जिन व्यावहारिक बातो पर विचार करना चाहिए और जिनसे उसमे सहायता मिलती है, वे इस प्रकार है :

१ निर्मिति काल की अवधि।
२ कुल बिक्री (Turnover) या वापसी।
३. खरीद और बिक्री की शर्तें।
४ कार्यशील आस्तियो को रोकड मे रूपान्तरित करने की सुविधाए।
५ व्यवसाय मे मौसमी परिवर्तन।

निर्मिति काल की अवधि—उस कम्पनी को, जो ऐसे माल बनाती है जिसकी निर्मिति म लम्बी अवधि की आवश्यकता हो, इस बात के लिए बाध्य होना पड़ेगा कि वह कच्चा माल खरीदे, श्रमिक का भृति दे तथा निर्मिति के अन्य प्रासंगिक व्यय चुकावे तथा इसके पहले कि निर्मित माल बिक्री के लिए प्रस्तुत हो, इन्तजार करे। केवल निर्मिति प्रक्रियाओ मे पूजी की बहुत बडी रकम फस जाएगी। एक बहुत बड़े जलपोत को बनाने तथा सज्जित करने मे तीन या चार साल लग सकते है तथा कई करोड़ रुपये की पूजी

की आवश्यकता हो सकती है। वैसी स्थिति में, जब कि माल को सपुर्दगी तक भुगतान नही मिलता, पूजी की राशि बहुत बडी हो जाती है। इन परिस्थितियो में साधारणत क्रेता पर बहुत बडा बोझ पड जाता है। ऐसा होने पर भी बहुत बडी रकम की आवश्यकता पडती है। ठेकेदारी व्यवसाय में दिवालियापन की सख्या सबसे बडी होती है। इसका एक सीधा सा कारण यह है कि ठेकेदारी फर्म की कार्यशील पूजी व्यवसाय के लिए पर्याप्त नही होती। इससे अपेक्षत अच्छी हालत वाले व्यवसायो में भी इस घटक का महत्वपूर्ण हाथ है लेकिन प्राय इसकी उपेक्षा की जाती है जिसका परिणाम व्यवसाय के लिए दुखद होता है। इसके अतिरिक्त, लम्बी प्रक्रिया वाली निर्मिति में कीमतो के घटने बढने का जोखिम रहता है—जिसके कारण अपेक्षित लाभ मे कमी हो सकती है, या वह बिल्कुल ही समाप्त हो जा सकता है। यहा कार्यशील पूजी पर्याप्त होनी चाहिए ताकि कम्पनी अपनी कठिनाई पर विजय प्राप्त कर सके। लम्बी प्रक्रिया वाली निर्मिति में तत्काल बाजार की दशाओ के अनुकूल हो जाना प्राय असम्भव घटना है। इसके विपरीत, हम बेकरी (Bakery) का उदाहरण ले सकते है। यहा आवश्यक समय की अवधि न्यूनतम होती है क्योकि यह रात भर में अपना माल बना लेता है, और प्रात काल बेच देता है। यदि एक प्रकार की रोटी के स्थान पर एकाएक दूसरे प्रकार की रोटी की माग हो जाय या रोटी की माग की जगह दूसरे प्रकार के भोजन की माग हो जाय तो रोटी बनाने वाले थोडे समय में ही इस परिवर्तन के अनुकूल अपने को बना सकते है। पर चर्म-निर्माता को ऐसा लाभ प्राप्त नही है। इसके पास हमेशा कच्चे चमडे (Hides) तथा निर्मिति के भिन्न स्तरो पर तैयार चमडे का बडा स्टाक रहता है। यह उसके लिए कम से कम व्ययसाध्य है और अक्सर चर्म निर्माता के लिए एक प्रकार के माल-निर्माण को छोडकर दूसरे प्रकार के माल निर्माण में जाना असम्भव है। उपभोक्ताओ के रुचि-परिवर्तन के कारण मात्र से उसे बहुत बडी हानि उठानी पड सकती है। अत उत्पादित माल का मूल्य तथा निर्मिति की अवधि महत्वपूर्ण घटक है जो यह निर्धारित करते है कि कम्पनी के लिए कितनी कार्यशील पूजी चाहिए। यदि औसतन उत्पादन प्रक्रिया में छह महीने लगे और उत्पादित माल की कीमत इस तरह लगातार बढती जाय कि निर्मिति के छह महीने में जो इसकी कीमत हो, वह बने माल की कीमत की आधी हो तो यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्यशील पूजी की मात्रा तीन महीने मे उत्पादित माल की कीमत के बराबर होगी।

वापसी (turn-over)—एक दूसरा घटक, जो घनिष्ठ रूप से इस प्रश्न से सम्बद्ध है, कार्यशील पूजी की वापसी या टर्न ओवर है। इससे तात्पर्य है औसत कार्यशील आस्तियो तथा वार्षिक समग्र बिक्री के बीच अनुपात। यह वह अक है जो यह बतलाता है कि कार्यशील आस्तियो में विनियुक्त रकम का वर्ष में कितनी बार व्यापार हुआ है या वह रकम कितनी बार वापस हुई है। याद रखना चाहिए कि यह सम्बन्ध समग्र बिक्री तथा कार्यशील आस्ति के बीच है न कि समग्र बिक्री तथा कार्यशील पूजी के बीच। व्यापार प्रधान व्यवसाय मे, और विशेष कर खुदरा बिक्री में, टर्न ओवर के बारे

मे प्राय बहुत-सी बातें कही जाती हैं। लेकिन निर्मिति व्यवसाय में टर्न ओवर के बारे में अपेक्षाकृत कम चर्चा की जाती है। फिर भी यह निर्मिति-कर्त्ता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यह प्राय स्वयंसिद्ध है कि टर्न ओवर जितना ही बडा होगा, एक निश्चित कार्यशील पूंजी के जरिये उतनी ही बडी मात्रा म व्यवसाय किया जा सकता है। उदाहरणत , यदि एक खुदरा भण्डार ऐसे माल की बिक्री कर रहा है जिसकी काफी माग है, और स्टाक करते ही उस माल की बिक्री हो जाती है, तो कुल बिक्री काफी बडी होगी। इसके विपरीत, यदि बिक्री अनियमित और धीमी है तो स्टाक मे विनियुक्त पूजी अवश्यमेव बडी होगी। इस प्रकार टर्न ओवर की द्रुतता को निर्धारण करने में पहला तत्व माग है। परस्पर एक दूसरे के विरोधी दो उदाहरण इस कथन की व्याख्या कर देंगे। एक समाचार-पत्र विक्रेता (Newsagent),जो दैनिक समाचार-पत्र की बिक्री से अपना व्यवसाय आरभ करता है, पायेगा कि उसका टर्न ओवर काफी तेज है क्योंकि विनियुक्त पूजी और लाभ एक दिन में ही वापस मिल जाते है। जब वह मासिक पत्रो व किताबो का स्टाक, जिसकी बिक्री सविलम्ब होती है, रखना शुरू करता है तो उसका टर्न ओवर या वापसी कम हो जाती है। दूसरी ओर एक आभूषण भण्डार का उदाहरण है जिसमे आवश्यक है कि कीमती मालो का बडा स्टाक हो ताकि ग्राहक अपनी पसन्द की चीज चुन सके और साथ-साथ बिक्री भी अपेक्षाकृत अनियमित तथा इक्के-दुक्के होती है। यह साफ जाहिर है कि इस प्रकार के व्यवसाय मे टर्न ओवर बहुत कम होगा।

जो दूसरा तत्व टर्न ओवर या वापसी की द्रुतता को निर्धारित करता है, वह है फर्म की विक्रय नीति। यदि विक्रय प्रयत्न इस उद्देश्य से निर्दिष्ट किये जाते हैं कि स्टाक की बिक्री शीघ्र हो—यदि आवश्यक हो तो कीमत में छूट कर दी जाय या निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए असाधारण विक्रय व्यय किये जाए, तो टर्न ओवर की दर ऊँची होगी। उस व्यवसाय में यह नीची होगी जिसमें निश्चित विक्रय नीति नहीं है। ठीक ये ही बातें निर्मित व्यवसाय में टर्न ओवर की द्रुतता निर्धारित करती हैं। निर्मित माल की अविलम्ब विक्रयशीलता इस बात को निर्धारित करती है कि निर्मितिकर्त्ता कच्चे माल का स्टाक रखता है, या अर्धनिर्मित माल का स्टाक रखता है या निर्मित माल इधर से उधर आ जा रहे है, या उसके यहा इतना बडा ढेर लग रहा है। दूसरी बात यह है कि उत्पादित माल (Product) के प्रमापीकरण के जरिये और साथ-साथ विज्ञापनबाजी के द्वारा, जो उपभोक्ताओ को प्रमाणित माल की अच्छाई के सम्बन्ध में प्रभावित करती हैं, निर्माता अपने द्वारा निर्मित मालो की किस्मो तथा शैलियों की संख्या में कमी करने मे समर्थ हो सकता है। आटोमोबाइल के निर्माता यह जानते हैं कि चेसिस की एक या दो स्टाइल और प्रत्येक मे दो या तीन बॉडी (body) की स्टाइलें किसी भी निर्माता के लिए निर्माण का पर्याप्त क्षेत्र है। सच्ची बात तो यह है कि इस क्षेत्र में जो सर्वाधिक सफल हुए है वे इतनी किस्में भी नहीं बनाते, उदाहरण के लिए, राल्सरायस (Rolls-Royce)। एक सुनिश्चित विक्रय नीति जो इस बात का प्रयत्न करती है कि शीघ्रता में स्टाक की निकासी होती जाय, जितनी व्यापारी (Merchant) के लिए आवश्यक है, उतनी ही एक सफल

निर्माता के लिए भी है।

क्रय-विक्रय की शर्तें (Terms of Sale and Purchase)—यदि कोई व्यवसाय सारी चीजें नगद खरीदता है और उधार बेचता है तो निस्सन्देह उसे उतनी कार्यशील पूंजी चाहिए जो माल के पूरे स्टाक को खरीदने तथा उस माल को भी खरीदने के लिए पर्याप्त हो जो बेच दिया गया है लेकिन जिसकी कीमत प्राप्त नहीं हुई है। इसके विपरीत यदि एक व्यवसाय ऐसा है जो काफी अरसे के लिए माल उधार खरीदता है और बिक्री नगद करता है तो उसके सम्पूर्ण स्टाक के लिए भी तात्कालिक पूंजी नहीं चाहिए और वह अपने देन का चुकता विक्रय से प्राप्त आमदनी के जरिये कर देगा। साधारणतः इन दोनों में से कोई भी अवस्था व्यावहारिक जीवन में नहीं मिलती। मालों की खरीद और बिक्री दोनों, कम से कम आंशिक रूप में, उधार होती है, हालांकि इधर उधार की अवधि को कम करने की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है। उधार की अवधि जितनी ही लम्बी होगी (और जो विक्रय के लिए आवश्यक है) कार्यशील पूंजी की राशि उतनी ही बड़ी होगी। नागपुर में काटन मिल के लिए आवश्यक कार्यशील पूंजी अहमदाबाद स्पिन मिल की अपेक्षा बड़ी होती है। इसका कारण यह है कि नागपुर में मिलों को साल भर के लिए आवश्यक रुई फसल के समय खरीदनी होती है जब कि बम्बई में सारे साल रुई की खरीद चलती है।

कार्यशील आस्तियों का नगदी में रूपान्तर—उस कम्पनी के लिए, जिसके पास तरल कार्यशील आस्तियां पर्याप्त मात्रा में है, यह आवश्यक नहीं कि उसके पास कार्यशील पूंजी हो। तरल आस्ति प्राप्य खाते या विपत्र (Bill) जो कुछ ही दिनों में भुगतान-योग्य होने हैं तथा वे माल होते हैं जो नगद बिक चुके हैं या शीघ्र ही बिक सकते हैं। लेकिन वे चालू आस्तियां, जो पर्याप्त समय या प्रयास के बाद ही नगदी में रूपान्तरित की जा सकती, नगदी नहीं कही जा सकती। किसी व्यापारी का यह समझना कि जो स्टाक पड़े हुए हैं वे बिक चुके या जो अशोध्य ऋण है उनकी प्राप्ति हो चुकी है, उसे मरदयस्त कर सकता है। अतः कुल चालू आस्तियों को चालू दायित्वों से काफी अधिक रखना आवश्यक है। निर्मिति व्यवसाय में, यदि आस्तियां चालू दायित्वों के १२५ प्रतिशत से लेकर १३३ प्रतिशत तक है तो साधारणतया यह ठीक है। किसी कम्पनी की चालू आस्तियों को जितनी तेजी से नगदी में रूपान्तरित किया जा सकता है, चालू आस्तियों तथा चालू दायित्वों के बीच अनुपात उतना ही कम रखा जा सकता है, या अन्य शब्दों में, व्यवसाय के लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता उतनी ही कम होगी। अतएव चालू आस्तियां जितनी अधिक मात्रा में तरल होंगी, कार्यशील पूंजी की बचत उतनी ही अधिक होगी।

मौसमी परिवर्तनों (Seasonal Variations) के लिए आवश्यक कार्यशील पूंजी—बहुत-सी कम्पनियों को दिक्कतों का सामना करना पड़ता है जिसका कारण यह है कि एक मौसम से दूसरे मौसम में उनके व्यवसाय की मात्रा तथा स्वरूप में पर्याप्त परिवर्तन आते रहते है। चीनी, तेल, तथा रबर माल के निर्माता, ओटाई तथा तेल की मिलें

ऐसे व्यवसाय के कतिपय उदाहरण हैं। उद्योग के इन सारे क्षेत्रों में निर्मित माल (चीनी, बिनौला तथा तेल) काफी बड़ी मात्रा में निर्मित करने होंगे, तथा मौसम के बाद तक रखने होंगे, या एक मौसम में कच्चे माल का पर्याप्त स्टाक खरीदा जाय तथा तथा बाकी महीनों में धीरे-धीरे उनका प्रयुक्त किया जाय। इन दोनों हालतों में साफ जाहिर है कि वर्ष के कुछ महीनों में अन्य महीनों की अपेक्षा बहुत अधिक कार्यशील आस्ति में धन का फंसाकर रखा जायगा। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें असाधारण रूप से कठिनाई पैदा होती है और जो कार्यशील पूंजी की मात्रा को पर्याप्त प्रभावित करती है। साधारणतया यह किया जाता है कि जैसे-जैसे निर्मित माल का स्टाक जमा होता जाता है, वैसे-वैसे उत्तरोत्तर बड़ी मात्रा में बैंक से कर्ज लिया जाता है जो बिक्री के मौसम में अदा कर दिया जाता है। या खरीद के मौसम में काफी कर्ज ले लिया जाता है जो माल की बाकी अवधि में चुका दिया जाता है। कुछ कम्पनियां हलके मौसम में अपने अतिरिक्त धन को अल्पकालीन प्रतिभूतियों में नियुक्त कर देना लाभदायक समझती है तथा व्यवसाय के मौसम में उसे भुना डालती है।

निष्कर्ष—किसी व्यवसाय के लिए आवश्यक कार्यशील पूंजी की राशि का आगणन करने के लिए कोई निश्चित सूत्र ढूंढ निकालना अव्यवहार्य ही होगा। हम इस सामान्य कथन से ही सन्तोष कर लेना चाहिए कि मोटे रूप में पूंजी सम्बन्धी आवश्यकताएं व्यवसाय के परिमाण (Volume), निर्मिति की अवधि, ग्राहकों को दिये जाने वाले उधार की औसत अवधि, व्यवसाय के परिमाण में मौसमी परिवर्तन की सीमा के अनुपात में बदला करती है, और आवर्त्ती (Turnover) की द्रुतता, माल क्रय में प्राप्त उधार की अवधि तथा चालू आस्तियां को नकद (Cash) में रूपान्तरित करने की सुविधाओं के उत्क्रमानुपात (Inverse Proportion) में बदलती है। चूंकि अधिकांश व्यापारिक कार्यों की गणना का आधार महीना होता है, अतएव कार्यशील पूंजी सम्बन्धी आवश्यकताओं का आगणन भी माहवारी आधार पर ही होना चाहिए।

साधारण (Maintenance) तथा उन्नयन (Betterment) का वित्त योजन—वर्तमान कार्यशील पूंजी की व्यवस्था के अतिरिक्त, एक सफल व्यवसाय सधारण तथा उन्नयन की व्यवस्था भी करता है। सम्पत्ति को वैसी हालत में रखने के लिए, जो प्लाट की अच्छी हालत के लिए निर्धारित, प्रमापित भौतिक अवस्था के अनुरूप हो, जो धन श्रम, औजारों तथा सामग्री पर खर्च किया जाता है, वह उस व्यवसाय का सधारण व्यय है। निर्धारित मापदण्ड आदर्श है और यह देखना सधारण विभाग का कर्त्तव्य है कि सम्पत्ति उसी हालत में बनी रहे, और उत्पादन के क्षेत्र में निर्धारित मापदण्ड को कायम रखने के लिए सतत सावधानी तथा अचूक निगरानी की आवश्यकता है। सधारण के अन्तर्गत उन्नयन भी आता है, और उन्नयन व्यय वह व्यय है जो प्लाट के मापदण्ड को ऊंचा करता है, और इसको अधिक दक्ष बनाता है। सधारण अपेक्षया एक स्थिर व्यय है जिसमें तभी परिवर्तन होता है जब सम्पत्ति के नाश व छीजन करने वाले तत्वों में परिवर्तन या हेर-फेर हो। अत जिस प्लाट का सधारण निरन्तर है, उस प्लाट पर साधारण व्यय कम

पड़ता है। अतएव यदि व्यवसाय को जीवित रखना है तो प्लाट की मरम्मत सदैव होती रहे। सुधारण के सम्बन्ध में टालमटोल किसी भी अच्छे प्रबन्ध को सह्य नहीं होती।

कार्यशील तथा स्थिर पूंजी (Working and Block Capital) का आपेक्षिक अनुपात—स्थिर तथा कार्यशील पूंजी के बीच का अनुपात उद्योग की प्रकृति तथा माल निर्माण के लिए आवश्यक अवधि की लम्बाई पर निर्भर करता है। उत्पादन प्रक्रिया जितनी ही घुमावदार होगी, स्थिर पूंजी तथा चक्रशील पूंजी (Fixed and Circulating Capital) के बीच अनुपात उतना ही बड़ा होगा। इस प्रकार स्थिर तथा कार्यशील पूंजी का जो अनुपात किसी साहस या उपक्रम के लिए आवश्यक है वह उद्योग के अनुसार बदला करता है, जैसा कि निम्नलिखित तालिका[1] में दिये गये अंकों से साफ-साफ प्रतीत होगा।

१९५२ में २९ उद्योगों में स्थिर तथा कार्यशील पूंजी का आपेक्षिक अनुपात

क—राज्यों के अनुसार (रुपये, करोड़ों में)

राज्य	प्रयुक्त उत्पादनशील पूंजी		
	स्थिर पूंजी	कार्यशील पूंजी	कुल पूंजी
बम्बई	८१·७	१९६·१	२३७·८
पश्चिमी बंगाल	७४·१	८३·६	१५७·[illegible]
बिहार	४७·२	४६·०	९३·२
उत्तरप्रदेश	२३·४	५३·६	७७·०
मद्रास	३२·४	४१·२	७३·६
अन्य (१२ राज्य)	४०·१	४१·४	९१·५
य.ग	३००·९	४२९·९	७३०·८

[1] १९५२ के भारतीय निर्मित उद्योगों के आँकड़ों के संक्षेप के आधार पर भारतीय निर्माताओं की सातवीं गणना की रिपोर्ट, जो १९५५ में प्रकाशित हुई है।

ख–उद्योगों के अनुसार

उद्योग	पंजीयित फैक्टरियों की संख्या	सूचना देने वाली फैक्टरियों की संख्या	प्रयुक्त उत्पादक पूंजी: स्थिर पूंजी		कार्यशील पूंजी		कुल पूंजी
			रु० करोड़ में	सम्पूर्ण का %	रु० करोड़ में	सम्पूर्ण का %	रु० करोड़ में
रुई	४९१	४६८	७६ ३	३१ २%	१६६ ८	६८ ८%	२४३ १
पाट	१०९	१०४	२८ ४	४२ ०%	४० ३	५८ ०%	६८ ७
सामान्य व विद्युत इंजीनियरिंग	२,०२०	१,७६४	२७ २	४५ ०%	३३ ४	५५ ०%	६० ६
लोहा व इस्पात	१३७	१३०	२५ ५	४७ ३%	२९ २	५२ ७%	५४ ७
चीनी और गुड — चीनी	१४७	१३७	२० ३	२८ ७%	५१ ७	७१ ३%	७२ ०
गुड़	२३९	१९६	० ७		० २		० ९
वनस्पति तेल (भोज्य हाइड्रोजिनेटेड तेलों को छोड़ कर)	१०३६	९५५	१२ ८	५२ ७%	१२ ०	४७ ३%	२४ ८
भोज्य हाइड्रोजिनेटेड तेल	३३	३२	७ ६		६ ८		१४ ०
रसायन (कैमिकल)	२७६	२५५	३७ ३	६२ ७%	२१ ४	३७ ३%	५८ ७
सीमेंट	१९	१९	१२ ९	६९ ९%	८ २	३० १%	२१ १
अन्य (२१ उद्योग)	२,६३८	२,४१०	५२ ३	४६ ४%	६० ३	५३ ६%	११२ ६
योग	७,१५५	६,४७०	३०० ९	४१ २%	४२९ ९	५८ ८%	७३० ८

उपर्युक्त तालिकाओं से यह पता लगता है कि १९५२ में जिन उन्तीस भारतीय उद्योगों की गणना की गई, उनमें कुल उत्पादनशील पूंजी ७३०.८ करोड लगाई गई, जबकि १९५१ में यह ७१३ करोड, १९५० में ६१४५ करोड १९४९ में ५००.५ करोड रुपये और १९४८ में ८८२.१ करोड रुपये लगाई गई थी। चूंकि स्थिर पूंजी ३००.९ करोड रुपये की थी, अतः यह कुल पूंजी का ४१.२ प्रतिशत थी और कार्यशील पूंजी ४२९.९ करोड रुपये की थी जो कुल लगायी गई पूंजी का ५८.८ प्रतिशत थी। यदि हम राज्यवार लें तो बम्बई के हिस्से सबसे अधिक उत्पादन शील पूंजी यानी २३७.८ करोड थी। इसके बाद पश्चिमी बगाल का स्थान है जिसकी पूंजी १९७.७ करोड रु. थी। तब बिहार का स्थान आता है जिसकी पूंजी ९३.२ करोड थी। इसके बाद उत्तरप्रदेश तथा मद्रास आते हैं जिनकी पूंजी क्रमशः ७७ करोड तथा ७३.६ करोड है। यह एक दिलचस्प बात है कि इन पांच राज्यों ने कुल उत्पादनशील पूंजी का ८९ प्रतिशत लगाया और बाकी बची ११ प्रतिशत पूंजी अन्य १२ राज्यों में लगाई गई।

विभिन्न उद्योगों में सूती वस्त्र उद्योग की पूंजी सबसे अधिक थी जो २४३ करोड रुपये था। इनके बाद पाट उद्योग जिसकी पूंजी ६९ करोड है, सामान्य तथा विद्युत इन्जीनियरिंग, जिसकी पूंजी ६१ करोड है, लोहा व इस्पात उद्योग, जिसकी पूंजी ५२ करोड है तथा चीनी उद्योग, जिसकी पूंजी ७३ करोड है, वनस्पति तेल जिसकी पूंजी ३९ करोड है, रसद्रव्य उद्योग जिसकी पूंजी ५९ करोड है, और सीमेंट जिसकी पूंजी २१ करोड रुपये है, आते हैं। इन आकडों से यह पता लगता है कि ये सात उद्योग बडे पैमाने पर सचालित किये जाते थे जिनमें सर्वे के अन्तर्गत २९ उद्योगों में लगी ७३०.८ करोड रुपये की कुल उत्पादन शील पूंजी का ८१ प्रतिशत लगा है। इससे यह भी पता लगता है कि बाकी उद्योग मध्य या लघु आकार वाले हैं।

सूती वस्त्र उद्योग में कार्यशील पूंजी की जो आवश्यकता होती है वह स्थिर पूंजी व्यय से अधिक होती है। इसका कारण कच्ची रुई तथा भण्डार (Stores) की लागत है तथा वह अवधि है जिसमें निर्मित माल तथा कच्ची रुई आदि को हाथ में रखना पडता है। कार्यशील पूंजी तथा स्थिर पूंजी के बीच का अनुपात ३:१ है। एक काफी बडी मिल में, जिसकी चुकता पूंजी एक करोड रुपये है, लगभग सारी चुकता पूंजी उद्व्यय को निरूपित करती है और कार्यशील पूंजी के लिए डेढ करोड रुपये से भी अधिक प्रति वर्ष चाहिए। लोहा व इस्पात तथा इन्जीनियरिंग उद्योग में स्थिर तथा कार्यशील पूंजी दोनों बडी मात्रा में चाहिए। इनके लिए आवश्यक कार्यशील पूंजी छह महीने में उत्पादित माल की लागत के लगभग बराबर होती है। कागज मिल और सीमेंट फैक्टरी में स्थिर और कार्यशील पूंजी का अनुपात लगभग ५:१ होता है और आवश्यक कार्यशील पूंजी छह मास के उत्पादन की लागत के बराबर होती है। चीनी उद्योग में यह अनुपात लगभग ३:१ है तथा कार्यशील पूंजी तीन महीने में उत्पादित माल की लागत के मूल्य के बराबर है, तथा दियासलाई उद्योग में चार महीने में उत्पादित माल की लागत कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का अन्दाज लगाने के लिए एक अच्छा

आधार समझा जाता है। इस उद्योग में स्थिर तथा कार्यशील पूंजी के बीच का अनुपात ३ १ है। जूट मिल में कार्यशील पूंजी स्थिर पूंजी विनियोग का ५० प्रतिशत थी चूंकि इसमें कच्चा माल सबसे अधिक महत्वपूर्ण मद है और यह मौसम में ही खरीदा जाता था तथा शेष महीनों में इसके लिए बहुत कम कार्यशील पूंजी आवश्यक थी। बटवारे के बाद स्थिति बदल गई है। कच्चा माल पाकिस्तान में है तथा जूट फैक्टरियां हिन्दुस्तान में। जब और जिस प्रकार पटसन मिल सके उसे खरीदना है और परिणामस्वरूप कार्यशील पूंजी का अनुपात बढ़ गया है। अब कार्यशील तथा स्थिर पूंजी के बीच का अनुपात १३ ७ हो गया है जबकि वनस्पति तेलों में यह ४ ३ है।

चाय उद्योग की लाक्षणिक विशेषता यह है कि चाय बागान के आरम्भ करने तथा चाय की उपज होने के बीच एक लम्बा मध्यान्तर (Interval) है। न केवल भूमि खरीदने, बाग लगाने, मशीन खरीदने तथा भवन निर्माण आदि के लिए बड़ी मात्रा में स्थिर पूंजी की आवश्यकता होती है, बल्कि वास्तविक उत्पादन मूल्य की प्राप्ति के पहले बागान में चार-पांच वर्षों तक काम करने के लिए भी ऐसी पूंजी की आवश्यकता है। मान लिया जाय कि लाभदायक उत्पादन (Economic Production) के लिए ५०० एकड़ के न्यूनतम आकार का बाग चाहिए तो प्रारम्भ में लगभग सात आठ लाख रुपए की पूंजी आवश्यक समझी जायगी। उत्पादन आरम्भ होने पर बृहत राशि की कार्यशील पूंजी नहीं चाहिए क्योंकि तब बैंक उत्पादन की प्रतिभूति पर कर्ज देने को इच्छुक रहते हैं। लेकिन विकास तथा उन्नयन के लिए पूंजी चाहिए और यह पूंजी दीर्घकालीन पूंजी है। चाय उद्योग की तरह कोयले की खान में भी कुछ वर्षों तक स्थिर पूंजी लगातार आनी रहनी चाहिए। यद्यपि प्रारम्भिक पूंजी की व्यवस्था प्रायः हो जाती है, फिर भी अन्य उद्योगों के विपरीत, यहां स्थिर पूंजी (Block Capital) की आवश्यकता बार-बार होती है। कालियरी के कार्यशील स्थिति में आ जाने के बाद भी बहुत-सी पूंजी स्थायी रूप से डालनी होती है।

पूंजीकरण (Capitalisation)

'पूंजीकरण' शब्द का अर्थ होता है निर्गमित अंशों, अन्य पत्रों तथा ऋणपत्रों की कुल संख्या, न कि 'पूंजी' या "पूंजी स्कन्ध" और किसी भी कम्पनी का पूंजीकरण एक अंक पर निश्चित होता है। कम्पनी के सम्पूर्ण संसाधन 'पूंजी" का प्रतिनिधित्व करते हैं, तथा सभी प्रकार के निर्गमित अंशों का सम मूल्य (Par Value) "पूंजी-स्कन्ध' का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि सब प्रकार की प्रतिभूतियां, यथा सभी वर्ग के अंशों तथा सभी प्रकार की 'उत्तमर्णता प्रतिभूतियों' (Creditorship Securities) का कुल योग 'पूंजीकरण' का प्रतिनिधित्व करता है। इसी अर्थ में अतिपूंजीकरण (Over-capitalisation) अल्पपूंजीकरण (Under-capitalisation) या सामान्य पूंजीकरण (Normal Capitalisation) होता है। पूंजीकरण का अति, अल्प या सामान्य होना तब होता है जब क्रमशः कम्पनी अपने अंशों को सममूल्य पर बचने के लिए पर्याप्त अर्जन नहीं कर रही है, उपक्रम को संचालित करने

के लायक पूंजी पर्याप्त नहीं है अथवा आवश्यकताओं के लिए पूंजी पर्याप्त है। अतः उपक्रम की आस्तियां पूंजीकृत अंक के बराबर हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकती हैं। लेकिन रूढ़िवादी (Conservative) या सावधान उपक्रम में व्यवसाय के आरम्भ में आस्तियों का मूल्य पूंजीकृत अंक का सवाई होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब कम्पनी एक रुपये की प्रतिभूति निर्गमित करती है तो एक रुपया नकद या उतने मूल्य की सम्पत्ति भी पाती है। जब उपक्रम अपना कार्य आरम्भ कर देता है तब आस्तियों का वास्तविक मूल्य पूंजीकरण से कम या अधिक हो सकता है। इस मूल्य का कम या अधिक होना उपक्रम की सफलता पर निर्भर करता है।

किसी व्यवसाय का शुद्ध मूल्य (Net Worth) इसकी आस्तियों तथा दायित्वों के बीच का अन्तर है। किसी कम्पनी का शुद्ध मूल्य 'पूंजी स्कन्ध' के सममूल्य में आलोच्य अवधि में व्यापार के कारण हुई बचत को जोड़ने या कमी को उसमें से घटाने पर प्राप्त राशि होती है। यदि कोई दायित्व न हो तो शुद्ध मूल्य कम्पनी द्वारा धारित सारी आस्तियों का मूल्य है। किसी भी अंश का बाजार मूल्य, शुद्ध मूल्य, निर्गमित अंशों के मूल्य तथा कम्पनी की अर्जन शक्ति के बीच जो सम्बन्ध है, उस पर निर्भर करता है। यदि शुद्ध मूल्य निर्गमित पूंजी से बहुत अधिक हो तो प्रत्येक अंश का मूल्य बढ़ जाता है और हो सकता है कि यह सममूल्य से बहुत अधिक कीमत पर बिके। यदि शुद्ध मूल्य (Net worth) में कोई परिवर्तन हुए बिना लाभांश की दर गिर जाती है, तो ऐसी स्थिति में अंशों के मूल्य में गिरावट होगी और इस हालत में भी वह सममूल्य से कम में बिक सकता है। यदि शुद्ध मूल्य में गिरावट आती है, तो अंशों के दाम गिर सकते हैं, चाहे कम्पनी की अर्जनक्षमता अच्छी हो, दूसरी ओर, यह साफ है कि कम्पनी की अर्जन शक्ति में परिवर्तन होने पर अंशों के मूल्य में भी वैसा ही परिवर्तन होगा। इन प्रभावों का परिणाम व्यवसाय की सामान्य सुख्याति और स्थिति तथा उसके परिणामस्वरूप जनसाधारण में व्यवसाय की सफलता के बारे में विश्वास के कारण भी परिवर्तित हो जाता है। यह निश्चय करने के समय कि उपक्रम अतिपूंजीकृत है या अल्पपूंजीकृत, इस सामान्य विवेचन को ध्यान में रखना चाहिए।

अतिपूंजीकरण (Over-capitalisation)—जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, अतिपूंजीकरण उस स्थिति में होता है जहां कम्पनी की अर्जन-शक्ति निम्न है, अथवा व्यवसाय का शुद्ध मूल्य कुल निर्गमित प्रतिभूतियों के मूल्य से नीचे गिर गया है यानी वह इतना पर्याप्त अर्जन नहीं करती कि इसकी प्रतिभूतियां सममूल्य पर बिक सकें। दूसरे शब्दों में जो अंश निर्गमित किये गये हैं, उनकी राशि वास्तविक आवश्यकता से बहुत अधिक है, और इस प्रकार वह वास्तविक आस्तियों से अधिक है, और परिणाम-स्वरूप लाभांश की दर इतनी कम है कि अंश सम मूल्य पर नहीं बिकते। ऐसी स्थिति प्रायः परिकाल्पनिक या सट्टेबाजी प्रकृति के उपक्रमों में होती है। दूसरा अर्थ यह है कि अतिपूंजीकृत व्यवसाय में विनियुक्त धन का लाभदायक प्रयोग नहीं होता।

दूसरी तरह से यह कहा जा सकता है कि अतिपूंजीकरण का अर्थ है कि उस व्यवसाय में पूंजी को इस व्यर्थ रीति से विनियुक्त किया गया है कि उसे वहां से निकाल कर दूसरी जगह इससे कहीं अधिक लाभदायक तरीके से व्यवहृत किया जा सकता था। व्यवसाय वित्तीय अनुकूलतम या आदर्शाकार (Financial Optimum) से बढ़ गया है।

निम्नलिखित में से किसी भी प्रकार अति-पूंजीकरण हो सकता है —

१ जहां कोई उपक्रम लाभदायक तरीके से प्रयुक्त की जा सकने योग्य पूंजी से ज्यादा पूंजी निर्गमित करता है।

२ जहां जानबूझकर यह आवश्यकता से अधिक पूंजी इस उम्मीद में निर्गमित करता है कि अंकित मूल्य में कम कीमत पर ही अंश बेचे जा सकते हैं, लेकिन फिर भी वह कीमत लाभदायक होगी,

३ जहां यह भविष्य में अधिक लाभ की उम्मीद में ज्यादा अंश निर्गमित करता है वहां उसमें भविष्य के अर्जन की दृष्टि से अतिपूंजीकरण उचित है,

४ जब किसी व्यवसाय की आस्तियों की दक्षता (Efficiency) में इसलिए गिरावट होती है कि अवक्षयण (Depreciation) व अप्रचलितता (Obsolescence) या अन्य आकस्मिकताओं के लिए की गयी व्यवस्था अपर्याप्त है। आस्तियों की लाभ-अर्जन क्षमता में गिरावट के कारण अंशों के मूल्य में भी ह्रास होता है;

५ जब किसी कम्पनी को उधार लिये गये धन पर अत्यधिक ऊँची दर में ब्याज देना पड़ता है, तब ऊँची दर का यह ब्याज लाभ में बहुत कमी कर देता है;

६ जहां कोई कम्पनी तेजी के दिनों में नये कारखाने बनाती है या पुराने कारखानों को विकसित करती है, वहां उसे अतिपूंजीकरण के रोग से ग्रस्त होना पड़ता है। आस्तियों तथा अन्य सम्पत्तियों को बहुत अधिक ऊंची कीमतों पर खरीदना होता है जिसका परिणाम यह होता है कि पूंजी की मात्रा बहुत बढ़ी हो जाती है। उत्पादन शुरू होते-होते मन्दी आ जाती है जो कीमतों में गिरावट लाती है। मन्दी के समय भी आस्तियों को मौलिक मूल्य पर ही रखा जाता है हालांकि उनकी कीमत उसमें बहुत कम रह जाती है। कम्पनी की अर्जन-क्षमता कम हो गई है और दूसरी ओर पूंजी की राशि पर्याप्त बड़ी हो गयी है, जिसके कारण लाभांश में पर्याप्त गिरावट हो जाती है और परिणामत अंश मूल्य में कमी हो जाती है।

७ जब कोई कम्पनी विस्तृत मकानों पर बहुत ज्यादा खर्च करती है, कीमती मशीनों तथा उपकरणों पर भी अधिक व्यय करती है और इधर उत्पादन उतना नहीं होता कि जिस पर इतना अधिक व्यय करना उचित हो। इसके कारण परिचालन व्यय बढ़ जाता है और परिणामत अंशधारियों को लाभांश अपर्याप्त मिलता है।

तरलित पूंजी (Watered Capital)—जब कम्पनी किसी चालू व्यवसाय को खरीदने में अंशों के जरिये ख्याति के लिए उचित से बहुत अधिक कीमत चुकाती

है तब पूंजी का अधिकांश इसी प्रकार की अमूर्त आस्ति का प्रतिनिधित्व करता है, और वह पूंजी तरलित पूंजी कहलाती है। पूंजी में 'तरलता' शब्द से पूंजी के उस अंश का बोध होता है, जो व्यवसाय के लाभदायक सचालन मे प्रकट रूप से सहायता नहीं करता, या वह हिस्सा जो उन आदमियों को निर्गमित किया गया है जो इस प्रकार की आस्तियां नहीं देते, जो व्यवसाय के लाभदायक रीति से चलने में सहायता करे—उदाहरणतः व्यर्थ के विज्ञापन अभियान पर खर्च किया गया धन, ख्याति के लिए चुकाया गया धन, वैधानिक या अन्य साधनों पर खर्च किया गया धन—यह सभी तरलता है। पूंजी में अनिवार्य तरलता (Water) राशि का रहना एक बड़ा दोष है यद्यपि इसका थोड़ा होना कुछ क्षति नहीं पहुंचा सकता।

यहां यह ज्ञातव्य है कि "पूंजी में तरलता" और "अतिपूंजीकरण" दोनों समानार्थक शब्द हों, यह कोई आवश्यक नहीं। हो सकता है कि कभी-कभी पूंजी की तरलता होने पर भी अतिपूंजीकरण न हो, क्योंकि कम्पनी का सचालन इतना ज्यादा दक्ष हो कि इसका उपार्जन बहुत अधिक हो जाय और परिणामस्वरूप अंश अंकित मूल्य से अधिक में बिकें। दूसरी ओर, कम्पनी अपने अंशों के लिए पूरा भुगतान पाये, फिर भी अतिपूंजीकरण इस कारण हो सकता है कि कम्पनी अपने अंशों को अंकित मूल्य पर भी बनाये रखने की खातिर उपार्जन शक्ति को पर्याप्त नहीं बढ़ा पायी है :

अतिपूंजीकरण से उत्पन्न बुराइयां—अतिपूंजीकरण कम्पनी और अंशधारियों को निम्नलिखित रूप से हानि पहुंचा सकता है —

१ जिस कम्पनी के अंश अंकित मूल्य से कम में बिकते हैं, उस कम्पनी की साख में गिरावट हो जाती है। और यह सम्भव है कि विस्तार तथा उन्नयन के निमित्त अतिरिक्त पूंजी प्राप्त करने में इसे कठिनाई हो।

२ अतिपूंजीकरण सुरक्षा का भ्रान्तिमूलक धारणा उत्पन्न करने की प्रवृत्ति रखता है चूंकि "अवांछित लाभांश" देकर समृद्धि का प्रदर्शन मात्र (Window-dressing) किया जा सकेगा।

३ सम्भवतः अनुचित उपायों के जरिये लाभ को बढ़ा हुआ दिखलाया जायगा या लाभ की कमी को छिपाया जायगा। घिसाई, असोध्य ऋण तथा अन्य सम्भावनाओं के लिए व्यवस्था करने की उपेक्षा जायगी।

४. इन सब बातों से दक्षता में गिरावट आती है तथा उत्पादित माल के गुण में ह्रास होता है, लेकिन उसकी कीमत में वृद्धि होती है।

५ अंशधारियों के दृष्टिकोण से पूंजी तथा आय की हानि होगी। जब इस तरह की कम्पनी निर्मित की जाती है तब बहुत से लोग कम्पनी की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ होने हुए भी अंश खरीद लेते हैं और वे अक्सर ऊंची कीमत पर खरीदते हैं और कम्पनी की वास्तविक स्थिति से बाद में परिचित होते हैं। ऐसे अंशधारी दुविधा में पड जाते हैं—यदि वे अंश अविलम्ब बेच देते हैं तो उन्हें भारी क्षति होती है, क्योंकि उन्हें अंशों की अच्छी कीमत नहीं मिल सकती, और यदि वे अंश अपने पास रखते हैं तो उन्हें शायद ही लाभांश मिले।

६ अतिपूंजीकृत कम्पनी के अंश ऋण के लिए अच्छी प्रतिभूति नहीं हो सकते, क्योंकि इन अंशों का मूल्य निस्सन्देह अस्थिर होगी और इसमें परिकाल्पनिक गोटेबाजी (Speculative manipulation) की सम्भावना रहती है।

७ पुनर्गठन का बाद, जो अतिपूंजीकृत कम्पनी में करीब-करीब निश्चित हो है, अंशधारियों के मत्थे पड़ेगा, और अंशधारियों को मुश्किल से अपने धन पर कुछ प्रत्याय (Return) मिल सकेगा।

८. श्रमिकों को भी हानि की सम्भावना है क्योंकि उन्हें पर्याप्त मजदूरी व कल्याण सम्बन्धी सुविधाएं यह कहकर नहीं दी जा सकती कि लाभ कम हुआ है।

९ अतिपूंजीकृत उपक्रम का समवसाद (Collapse) घबराहट बढ़ा सकता है और इस प्रकार उत्तमर्ण वर्ग के हित को नुकसान पहुंचा सकता है।

१० अतिपूंजीकरण सामान्यतः उद्योग में एक बुरा नैतिक वातावरण पैदा करता है, और विवेकहीन सट्टेबाजी को बढ़ावा देता है।

११ समुदाय की दृष्टि से, कीमतों में वृद्धि तथा गुण में गिरावट के अतिरिक्त अतिपूंजीकरण से देश के समाधनों का दुरुपयोग तथा उनकी बरबादी होती है।

१२ अतिपूंजीकरण से, सब मिलाकर, उद्योग को बड़ा धक्का लग सकता है क्योंकि हो सकता है कि उचित उपक्रम को भी पर्याप्त पूंजी पाने में सफलता न हो। औद्योगिक विनियोग में लोगों की आस्था का हिल जाना अवश्यम्भावी है।

प्रथम विश्व युद्ध तथा युद्धोत्तर काल के तेजी में हमारे देश में और विशेषकर बम्बई की मिलों में तो पूंजी की मौलिक राशि से पूंजी विनियोग तीन गुणा अधिक हो गया था। बहुत-सी मिलों में पूंजी का नष्टीकरण भी हुआ क्योंकि कई वर्षों तक तेजी के कारण अति उत्साह वातावरण में बहुत अधिक कीमतों पर सम्पत्तियां खरीदी गयी थीं। मोटे लाभांश घोषित किये गये, लेकिन संचितियों (Reserves) के अवक्षयण तथा प्रतिस्थापन के निमित्त शायद ही कोई व्यवस्था की गई हो। जब १९२४ के लगभग मन्दी आयी, तब इन मिलों ने बड़ी कठिनाई अनुभव की और उनमें से कइयों ने तो अपनी पूंजी बराबर आधी कर दी, कई विलय के जरिये दूसरी मिलों से एकीकृत हो गयीं तथा कई को अपने काम बन्द कर देने पड़े।

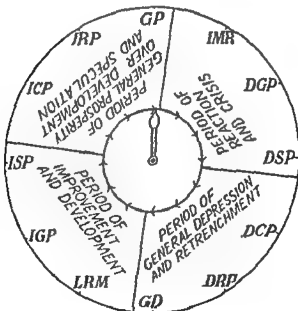
अल्पपूंजीकरण (Under-capitalisation)—अल्पपूंजीकरण का मतलब होता है व्यवसाय की सम्पूर्ण आवश्यकताओं के लिए अपर्याप्त पूंजी। उदाहरणार्थ, १९४० के पहले भारतवर्ष में अल्पपूंजीकरण एक सामान्य घटना थी और बम्बई में भी जब पूंजी सम्पादन तथा औद्योगिक विनियोग में बड़ी मात्रा दिलचस्पी विद्यमान थी, तब उद्योग का स्वामित्व इतना थोड़ा। प्रारम्भिक चुकता पूंजी से हुई थी जो स्थिर पूंजी के लिए भी अपर्याप्त थी। तथा कार्यशील पूंजी के लिए तो बिल्कुल ही अपर्याप्त थी। अहमदाबाद में अल्पपूंजीकरण एक नियम सा था। उस स्थिति में भी अल्पपूंजीकरण होता है जहां व्यवसाय की स्थायी आवश्यकता की पूर्ति सर्वसाधारण या बैंक से प्राप्त धन द्वारा करने की चेष्टा की जाती है जिसकी प्राप्ति प्रायः कम और अधिक होती रहती है। अतिपूंजीकरण जो ऊपर से दिखाई देता है वह ऊपरी वित्तीय समृद्धि का परिणाम

है और लगभग सदा औद्योगिक तेजी का सहचर है, लेकिन अल्प-पूंजीकरण तब होता है जब उद्योग उन्नति की ओर नहीं चल रहे होते और पर्याप्त पूंजी उगाहने में असमर्थ होते हैं। किसी व्यवसाय के अल्पपूंजीकृत होने के कई कारणों में एक कारण यह है कि प्रवर्तक इसकी पूंजीगत आवश्यकताओं का ठीक-ठीक अन्दाज नहीं लगा सकते तथा वे चालू धन की पर्याप्त व्यवस्था नहीं कर सकते। यही कारण है कि कम्पनी अधिनियम में न्यूनतम प्रार्थित पूंजी की व्यवस्था है जिसका अंश-बंटन के पहले प्राप्त हो जाना आवश्यक है। अधिनियम द्वारा न्यूनतम आवश्यकता सम्बन्धी व्यवस्था के अतिरिक्त किसी व्यवसाय की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण पूंजी-आवश्यकता के लिए प्रचुर व्यवस्था कर ली जाय।

अल्पपूंजीकृत व्यवसाय को सर्वदा समाप्त हो जाने का भय बना रहता है। वे अपर्याप्त पूंजी से अपना व्यवसाय शुरू करते हैं और अपर्याप्त व्यवसाय के प्रारंभिक काल को पार करने में असमर्थ होते हैं, और फलतः बहुत ही ऊंची दर पर पूंजी उधार लेने को मजबूर होते हैं। बहुत अधिक ऋण लेना औद्योगिक वृद्धि में रुकावट का काम करता है। किसी भी सफल व्यवसाय के लिए अपनी वित्तीय आवश्यकताओं का पूरे तौर से अध्ययन करना और तब उतनी पूंजी संचित करना, जितनी इसकी आवश्यकताओं के लिए अपेक्षित हो, जरूरी है। जहां एक ओर, हमारे देश में बहुत से लोग उधार ली गई पूंजी से ही अपने व्यवसाय का प्रारम्भ करते हैं, वहां दूसरी ओर, उधार ली गई पूंजी कम्पनी के लिए परेशानी का कारण है। उधार लिये गये धन के पश्चात् एक यह दायित्व आ जाता है कि निश्चित समय पर निश्चित राशि, जो प्रायः अत्यधिक हुआ करती है, चुकाई जाय, अन्यथा कम्पनी को निस्तारक (Liquidater) के हाथों में सौंप दिया जाय। अतः नये व्यवसाय को वित्त सम्बन्धी प्रत्येक तरह की सावधानी बरतनी चाहिए, यथा बहुत कम उधार खरीद करना, अल्प अवधि के लिए उधार बेचना, बकाया अविलम्ब वसूलना, न्यूनतम स्टाक रखना, वेतन में कम रकम खर्च करना, लाभांश में थोड़ी राशि देना या बिल्कुल न देना और इस प्रकार कार्यशील पूंजी को प्रत्येक विधि से बचाना और अतिरिक्त कोष निर्मित करने की चेष्टा करना। पूंजी संचित करना तथा उसे व्यवहृत करना एक कला है। इस कला के लिए तात्त्विक तथ्यों (Vital Facts) की जानकारी तथा अग्रिम योजना निर्माण आवश्यक है। किसी भी उपक्रम को आवश्यकता से अधिक पूंजी का उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि अनुपयुक्त धन या बेकार धन उस दर से ह्रास प्राप्त करता है जिस दर से ब्याज दिया जाता है। और न आवश्यकता से कम धन होना चाहिए क्योंकि इसका अर्थ होगा व्यावसायिक अवसरों को खो बैठना। जिन ऋणों या देयों का भुगतान भविष्य में होना है, उनके लिए समय रहते कोष का संचय उन विधियों के जरिये होना चाहिए जो व्यवसाय के सामान्य संचालन (Normal Functions) की दृष्टि से यथासम्भव अनुकूल हों। इसी प्रकार, इस बात की भी व्यवस्था होनी चाहिए कि भविष्य में सुनिश्चित रूप से धन उपलब्ध हो और इसके लिए ऐसी योजनाओं का विकास करना चाहिए जिनसे पूंजी को पुनः अपना वास्तविक रूप प्राप्त हो सके।

प्रवर्तन समय (Time of Iloatation)—वित य प्रबन्ध तथा पूंजी निर्धारण या मिलान (Capitel Gearing) के क्षेत्र में कम्पनी प्रवर्तन के लिए उचित समय का चयन एक महत्त्वपूर्ण घटक है। उन सभी देशों में जहां वित्तीय यन्त्र (Financial Machine) तथा आर्थिक प्रत्यय (Credit) की स्वीकृत प्रणाली में व्यवसाय एक साथ एक के बाद दूसरी के स्थितियों या अनिश्चित अवधि वाले चक्रों में से गुजरता है। पूर्ण चक्र या वृत्त में प्रायः ३ से ५ वर्ष का समय लगता है। व्यापारिक या आर्थिक चढ़ाव तथा उतार वाले चक्र जो व्यापार की कतिपय अवस्थाओं के कुछ बाद परन्तु इसी क्रम में—यद्यपि ज्यादा रीति से नहीं—आवृत्ति करते हुए प्रवृत्तियों को लिपिबद्ध करते हैं ४ स्थितियों या अवस्थाओं में समूहबद्ध किए जा सकते हैं :—

१ उन्नयन और विकास का काल
२ व्यापक समृद्धि अनिवार्यतः तथा परिकल्पन (Speculation) का काल
३ प्रतिक्रिया तथा संकट (Crisis) का काल
४ व्यापक मन्दी तथा छटनी का काल जिसके बाद फिर उन्नयन का काल आता है।



व्यापारिक मन्दी या व्यापक व्यावसायिक समृद्धि के काल के आगमन की सूचना पहले से ही मुद्रा बाजार (Money Market) तथा स्टाक मार्केट की दशाओं में उचित रूप में मिल जाती है। वे एक तार्किक रूप से आगे बढ़ते हैं। पहले

वे अधिक बुनियादी निर्मित उद्योग को प्रभावित करते हैं और तत्पश्चात् उन उद्योगों के बीच फैलते हैं जो पर्याप्त कोटि के मालों तथा उपभोक्ता मालों का निर्माण करते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि व्यापार चक्र (Trade Cycle) तीन प्रकार के बाजारों की प्रतिक्रिया है—धन बाजार, स्टाक मार्केट तथा औद्योगिक या खनिज व कृषीय उत्पादनों का बाजार। परिवर्तनों का क्रम पृष्ठ १४८ पर दिये गये घड़ी सरीखे चित्र में निम्नलिखित रीति से स्पष्ट किया गया है।

व्यापार का चक्र

IMR — धन दुर्लभ है, जिसके परिणामस्वरूप ब्याज दरें ऊंची हो गयी हैं।
DGP — परम प्रतिभूतियों (Gilt-edged securities) की कीमतें गिर रही हैं।
DSP — स्टाक एक्सचेंज में कीमतें गिर रही हैं—
प्रतिक्रिया और संकट का काल जिसके बाद व्यापक मंदी आती है।
DCP — जिंसों की कीमतें गिर रही हैं।
DRP — स्थावर सम्पत्ति की कीमत गिर रही है।
GD — व्यापक मंदी का काल।
LRM — धन की प्रचुरता है, जिससे ब्याजदरें नीची हैं।
IGP — परम प्रतिभूतियों की कीमतें चढ़ रही हैं।
ISP — स्टाक एक्सचेंज में कीमतें चढ़ रही हैं—
प्रतिक्रिया के बाद समृद्धि।
ICP — जिंसों की कीमतें चढ़ रही हैं।
IRP — स्थावर सम्पत्ति की कीमतें चढ़ रही हैं।
GP — व्यापक समृद्धि

सुधार का काल (Period of Improvement)—इस काल में नया साहस तथा उत्साह प्रदर्शित होता है। शांत उद्योग पुनः कार्यरत हो जाते हैं तथा विकास प्रयोजनों के लिए तैयार पूंजी मिलती है। अपेक्षतः कम कीमत वाली जिंसों (Commodities) की कीमत में तेजी आती है। विफलताएं कम हो जाती हैं, और व्यवसाय, हालांकि वे बहुत अधिक नहीं होते, आशान्वित हो जाते हैं, और मन्दी की अवस्था से लौटकर सामान्य अवस्था में आ जाते हैं। इस काल में निक्षेप (या जमा) अधिकतम सीमा पर पहुंच जाते हैं तथा निक्षेप के अनुपात से ऋण की मात्रा कम हो जाती है। ब्याज की दर अपेक्षतः कम हो जाती है। भविष्य में अधिक उपार्जन की आशा की जाती है जिसके कारण उन प्रतिभूतियों की कीमत में, जो पहले मन्दी की शिकार हो गई थीं, सामान्य या उससे भी अधिक तेजी आती है।

अतिविकास का काल (Period of Over-development)—उपर्युक्त अवस्थाओं के बाद व्यावसायिक हलचल तथा अति-विकास का काल आता है। फैक्टरियां और कारखाने पूर्णतया कार्यसंलग्न होते हैं। अधिकोषिक सम्मानों पर जोर पड़ता है। ऋण तेजी से बढ़ गये हैं तथा उन्होंने निक्षेप की सीमा को पार कर लिया

है। अधिकोष (या बैंक) ग्राहकों को दी जाने वाली सुविधाओं पर प्रतिबन्ध लगाना शुरू करते हैं। स्कन्धों के दाम तेजी की चरम सीमा पर पहुँचने के बाद भविष्यत् संकट की आशंका से गिरने लगते हैं। बाजार ऊपर से बोझिल (Top-heavy) है, क्योंकि लोगों ने चढ़ती हुई कीमतों इस उम्मीद पर में खरीदा है कि वे विपत्र बाजार (Bill Market) में मोटा मुनाफा कमायेंगे।

प्रतिक्रिया का काल (Period of Reaction) —यह सर्वदा कठिनाई का काल है। जिंसों तथा प्रतिभूतियों के दाम उत्पादन तथा उपभोग शक्ति के अनुकूल होने चाहिए। अतः व विस्तार और विकास पर जो पूर्ववर्ती (Preceding) सुधार काल के फलस्वरूप शुरू हुआ है, अनिवार्यतः प्रतिबन्ध लगना चाहिए। अधिकोषण जगत पर जो अपनी स्थिर आस्तियों को आनंकित बाजार में अनिच्छित समापन (Forced Liquidation) के कारण पूर्ण विनाश से बचाने में व्यस्त है, परेशानी का बड़ा बोझ आ पड़ता है। निक्षेप औसतन कम हैं लेकिन समापन में वृद्धि के साथ उनमें वृद्धि होती है। ऋण की बड़ी माँग है तथा ब्याज की दर बहुत ही बढ़ गई है। इस की समाप्ति के समय अधिकोष समायनों की प्राप्ति सुलभ हो जाती है क्योंकि दबाव में कमी आ गई है। अब ही अवसर है जब श्रेष्ठ कोटि की वे प्रतिभूतियां चुनी जा सकती हैं जिनकी कीमत बहुत ऊपर से नीचे आयी हैं।

मन्दी का काल (Period of Depression)—यद्यपि पर्याप्त पीछे की ओर झूल चुका है और यह अब अशक्त उस शान्तिपूर्ण स्थिरता के काल का संकेत करता है जो अनिवार्यतः इस संकट तथा तूफान का, जिसने व्यवसाय जगत की नींव तक हिला दी है अनुगामी है। व्यवसाय सामान्य हो जाता है तथा वह सब रीति से प्रतिबन्धों के साथ सचालित किया जाता है। जिंसों की कीमतों का स्तर नीचा है, यातायात कम है तथा अधिकोषणों के अर्जन मूल्य जिंसों की दृष्टि से पर्याप्त कम हो गये गये है। औसत दर्जे के व्यवसाय विफलता के शिकार नहीं होते तथा व्यवसाय निम्न स्तर पर सामान्यतः स्थिर (Stable) होता है, जो अन्त में सुधार के कुछ चिन्ह प्रदर्शित करता है। ब्याज की दर बहुत कम होती है तथा अधिकोषण संचितियों में तेजी से वृद्धि होती है। स्कन्ध बाजार में प्रतिभूतियों की माँग के कारण व्यवसाय में वृद्धि होती है तथा मूल्यों में तेजी आती है। व्यापार चक्र की दृष्टि से नये उपक्रम के निर्माण या पुराने उपक्रम के विस्तार की वित्तव्यवस्था सबसे अधिक लाभदायक रीति से आई० एस० पी० (I S P) यानी प्रतिभूतियों की वृद्धिशील कीमतों तथा आई० सी० पी० (I C P.) यानी जिंसों की वृद्धिशील कीमतों के समय किया जा सकता है। वृद्धिशील कीमतों का यह समय सुधार व व्यापक समृद्धि के काल में पड़ता है और उसी कीमत पर भी प्रतिभूतियां खुलकर बिकती हैं तथा यह समय आनंद के शुरू होने से बहुत पहले का समय होता है। इस प्रकार से संचित धन आगामी मंदी के समय साज-सज्जा की व्यवस्था में प्रयुक्त किया जा सकता है जबकि सामग्रियों तथा श्रम की कीमतें कम रहती हैं। "इस योजना के अनुसार शुरू किया गया उपक्रम इस स्थिति में होगा कि वह व्यवसाय की धीरे धीरे पर पूर्णता के साथ तैयारी कर सके, नई प्रक्रियाओं

का प्रयोग कर सकें, श्रम बाजार में मारतव का चयन कर सकें, अनुशासन की स्थापना कर सकें, तथा सभी घटकों को नूतन कार्य की शृंखला में ऐसा जमा सकें जिससे मंदी की समाप्ति के बाद जैसे ही माग की उत्पत्ति हो, वैसे ही वह उसका लाभ उठा सकें।'[1] इसके विपरीत, जैसा कि मैथमन[2] महादय ने बतलाया है—'पूँजीपति लाभ तेजी के समय नए कारखानों का निर्माण शुरू करते हैं और प्रायः यह देखने में आता है कि जब कारखाने बनकर तैयार होते हैं तब तक मूल्य में गिरावट आ चुकी होती है। शायद इसका कारण यह है कि नई-नई फैक्टरियों ने उत्पादन शक्ति को भी बढ़ा दिया है। यह भी कारण हो सकता है कि नई फैक्टरियों की संभावना से प्रतिद्वंद्वियों ने अपनी मांगें कम कर दी हैं। गहरी मंदी के समय ही बुद्धिमान व्यक्ति नई फैक्टरी बनाने या खरीदने के सर्वोत्कृष्ट अवसर पायगा। अतएव तेजी के समय तो धन संचय का कार्य करना चाहिए और मंदी के समय भवनों तथा मशीनों के निर्माण व क्रय का काम करना चाहिए ताकि मंदी की समाप्ति के दृष्टिगोचर होते ही माल बिक्री के लिए प्रस्तुत किया जा सके।

वित्तसंचय की विधियाँ (Methods of Raising Finance)—वित्तसंग्रह की विधि व्यापार चक्र की अवस्था के साथ समायोजित (Adjusted) होनी चाहिए। सम्पूर्ण पूँजी विभिन्न विधियों से एकत्रित की जायेगी, या जैसा कि प्रायः कहा जाता है, व्यापार चक्र की अवस्था के अनुसार प्राप्त की जायेगी (Geared)। विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियाँ कुछ अनुपात में निर्गमित की जा सकती हैं और प्रत्येक प्रकार की प्रतिभूति कुल पूँजी के किस अनुपात में होगी—यह व्यापार चक्र की मौजूदा अवस्था पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, आशाजनक विस्तार के प्रारम्भ में ऋण पत्रों का निर्गमन लाभदायक हो सकता है। इसके बाद जब परिकाल्पनिक उत्साह (Speculative Enthusiasm) जोरों पर है तब अंश ज्यादा अच्छे बिकेंगे। मंदी के समय अल्पकालीन ऋण का सहारा लिया जा सकता है बशर्ते कि कम्पनी की साख अच्छी हो। वित्तपोषण की योजना, निर्गमित प्रतिभूतियों का अनुपात, आय की दर, अभिधान (Denomination), एवं प्रत्याभूत अधिकारों में परिवर्तन करके धन बाजार तथा प्रतिभूति बाजार की अवस्थाओं के साथ समायोजित की जा सकती है।

विनियोक्ता की दृष्टि से विनियोग की राशि व समय बहुत कुछ प्रतिभूति की प्रकृति व उसकी आर्थिक स्थिति रीति पर निर्भर करेगा। कोई प्रतिभूति आकर्षक हो, इसके लिए इन तथाकथित बुनियादी विशेषताओं का होना अनिवार्य है। इसमें विनियुक्त मूलधन सुरक्षित रहे, इसमें पर्याप्त प्रत्याय (*Return*) मिलता रहे, तथा इसमें होने वाली आय स्थायी हो। इसके अतिरिक्त, इस सुलभ विक्रयशीलता प्राप्त हो तथा समार्श्विक (Collateral) प्रतिभूति के रूप में इसका मूल्य हो तथा इस स्वीकार्य राशि तथा अवधि वाला होना चाहिए। इसमें मूल्य वृद्धि की सम्भावना भी हो।

1. Jones Op Cit p. 36.
2. The Depreciation of Factories, pp 114-115.

किसी भी उपक्रम के वित्तपोषण के साधन कई एक दूसरे से विपरीत कोटि के हो सकते हैं। वैयक्तिक व्यवसाय में प्रमुख जरिया वैयक्तिक स्वामित्वधारी वर्ग है जैसा साझेदारी या अविभक्त हिन्दू कुटुम्ब व्यवसाय में होता है। इसका परिपूरक उधार लिया गया धन हो सकता है। यह उधार की राशि व्यवसाय की साख सम्बन्धी सम्पन्नता या विपन्नता पर निर्भर करती है। लेकिन वृहत माप उद्योग के लिए, जिसका संचालन मुख्यत संयुक्त पूँजी कम्पनी के द्वारा होता है, वृहत परिमाण की आवश्यकता है। अत इन उद्योगों को अनिवार्यत आवश्यक धन का संचय करने के लिए सभी प्रकार की विधियों का सहारा लेना पडता है। भारतवर्ष में वित्त के प्रमुख स्रोतों को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है

१ वैयक्तिक विनियोग—केवल वैयक्तिक व्यवसाय की अवस्था में,
२ विभिन्न कोटि के अंशों का निर्गमन
३ बधपत्रों तथा ऋणपत्रों का निर्गमन
४ लोक निक्षेप (Public Deposits),
५ प्रबन्ध अभिकर्ता,
६ संयुक्त स्कन्ध बैंकों तथा देशी महाजनों से प्राप्त ऋण
७ क्रमिक पूँजी वृद्धि पद्धति, जिसमें लाभ का उपयोग पूँजीवृद्धि में किया जाता है जो उपार्जन का पुनर्विनियोग कहलाता है
८ राज्य ।

हम स्थिर पूँजी, कार्यशील पूँजी एवं विस्तार तथा सुधार के वित्तपोषण के सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन कर चुके हैं। वित्त के उद्गमों का इस दृष्टि से पुन वर्गीकरण किया जा सकता है कि पूँजी के इन प्रवर्गों का वित्तपोषण करने के लिए कौन उद्गम उपयुक्त है और कौन नहीं।

स्थिर पूँजी का वित्तपोषण (Financing of Fixed Capital)—बड़े या वृहत्माप उद्योगों द्वारा स्थिर पूँजी के लिए इन उद्गमों द्वारा वित्त संचित किया जाता है

१ अंश पूँजी, २ प्रबन्ध अभिकर्ता, ३ लोकनिक्षेप, ४ ऋणपत्र, ५ राज्य इन्डस्ट्रियल फाइनेंस कारपोरेशन आफ इंडिया तथा राज्य फाइनेंस कारपोरेशनों से ऋण ।

कार्यशील पूँजी का वित्तपोषण (Financing Working Capital)—उद्योगों के लिए कार्यशील पूँजी तीन प्रकार से संचित की जा सकती है, यथा, (१) ऋण द्वारा, (२) अतिरिक्त प्रतिभूतियों के निर्गमन द्वारा, (३) उपार्जन के पुन विनियोग द्वारा। अतीत में भारतीय उद्योगों ने मुख्यत ऋण द्वारा अपनी कार्यशील पूँजी का संचय किया है। भारतवर्ष में कार्यशील पूँजी के मुख्य उद्गम निम्नलिखित हैं (१) प्रबन्ध अभिकर्ता (२) लोक निक्षेप, (३) प्रतिभूतियों, अंशों या ऋणपत्रों का निर्गमन, (४) संयुक्त स्कन्ध बैंकों से ऋण, (५) देशी महाजनों तथा बड़े वित्तदायकों से ऋण ।

विस्तार और सुधारों (Expansion and Improvements) का वित्तपोषण—भारतवर्ष में, विशेषतया वर्तमान समय में, युद्धकाल के कारण और विकास की आवश्यकता के निमित्त विस्तारों व सुधारों का वित्तपोषण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वित्त के साधन ये हैं, (१) लाभ का पुनर्विनियोग, (२) प्रतिभूतियों—अंशों या ऋणपत्रों, या दोनों—का निर्गमन, (३) प्रबन्ध अभिकर्त्ता, (४) लोकनिक्षेप (५) राज्य—इंडस्ट्रियल फाइनेन्स कारपोरेशन या राज्य फाइनेन्स कारपोरेशनों से ऋण।

निम्नलिखित सन्दर्भों में वित्त के विभिन्न उद्गमों का वर्णन है, जिसमें उनके आपेक्षिक गुणों व दोषों की चर्चा की गई है और अपने देश में उद्योग के वित्तपोषण की विधियों को उन्नत करने के लिए सुझाव हैं।

अंश (Shares)

कहा जाता है कि धनलिप्सा सारी बुराइयों की जड़ है। यह सही है कि धन की आवश्यकता औद्योगिक और व्यावसायिक कार्यकलापों की जड़ है। धन इसलिए आवश्यक है कि यह सेवा व माल प्राप्त करने का साधन है। नागरिक अपने धन का लाभदायक उपयोग चाहते हैं। इस धन का वे कम्पनी की पूंजी के लिए अंशदान कर सकते हैं या वे यह कम्पनी को उधार दे सकते हैं। यदि वे कम्पनी में अंश खरीदते हैं तो पूंजी का अंशदान करते हैं। इस पूंजी शब्द का, सीमित अर्थ में, तात्पर्य होता है कंपनी में कुल स्वामित्व। 'विलोमत', यह कुल स्वामित्व सर्वथा ही बहुत से अंशों में विभाजित होता है, जो अंशधारियों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। अतएव, अंश उन समान भागों को कहते हैं जिनमें कम्पनी की पूंजी विभाजित होती है और प्रत्येक अंशधारी को यह हक प्राप्त है कि वह कम्पनी के लाभ का वह हिस्सा प्राप्त करे जो इसके द्वारा गृहीत अंशों की संख्या के अनुपात में हो।

पहले कोई कम्पनी कई प्रकार के अधिमान अंश या सामान्य अंश, संस्थापकों के अंश या स्थगित अंश (Deferred shares) आदि अनेक तरह के शेयर निर्गमित कर सकती थी। जिन पर अलग-अलग अधिकार होते थे। स्थगित अंश या संस्थापकों के अंश प्रायः बहुत कम अंकित मूल्य के होते थे और कम्पनी के प्रवर्तकों द्वारा लिये जाते थे, जो अन्त में इसके अभिकर्त्ता बन जाते थे, या किसी व्यवसाय के विक्रेता होते थे और नई कम्पनी से कीमत की आंशिक अदायगी के रूप में इन्हें लेते थे। ये विशेष रूप से इसी प्रयोजन के लिये रखे जाते थे कि इनके धारकों को उपेक्षणीय पूंजी लगाकर कम्पनी पर नियंत्रण प्राप्त हो जाए। क्योंकि इन्हें अधिमान और सामान्य अंशों पर लाभांश दे दिये जाने के बाद ही लाभांश मिलता था, इसलिए "इनका उपयोग आरम्भिक प्रवर्तकों या विक्रेताओं को लाभ का प्रचुर हिस्सा देने के लिए और साथ ही बड़ी विनम्रता का दिखावा करने के लिए एक चातुर्यपूर्ण उपाय के रूप में किया जाता था"। हार्टले विदर्स के इस वर्णन में, जो इंगलैण्ड की अवस्थाओं का बड़ा सही खाका पेश करता है, इतनी बात और जोड़ी जा सकती है कि प्रबंध अभिकर्त्ताओं को उन नाममात्र के मूल्य वाले शेयरों की सहायता से कम्पनी पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता था। स्थगित

अंशों का यह शक्तिशाली उपाय, जिससे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को अल्प प्रदत्त मूल्य के, बहुत ऊँची मतदान शक्ति वाले और कम्पनियों के लाभों में अवशिष्ट हिस्सेदार अधिकार, ये तीनों चीजें एक साथ देना था, अब कम्पनियों की पूंजी संरचना में अधिमान और सामान्य, इन दो प्रकार के अंशों के अलावा और सब प्रकारों के हटा दिये जाने से खत्म हो गया है। इसलिए भविष्य में लोक-कम्पनी सिर्फ अधिमान अंश और सामान्य अंश निर्गमित कर सकेगी, यद्यपि निजी कम्पनी अब भी किसी भी तरह के अंश निर्गमित कर सकती है और यह आवश्यक नहीं कि वे सिर्फ अधिमान अंश और सामान्य अंश ही हों।

अधिमान अंश—नये अधिनियम में अधिमान अंशों की परिभाषा यह की गई है कि कम्पनी की अंश पूंजी का वह भाग, जो निम्नलिखित दोनों शर्तें पूरी करता हो, यानी यह लाभांश के विषय में अधिमान्य अधिकार देता हो और समापन की अवस्था में पूंजी लौटाने के बारे में अधिमान्य अधिकार देता हो। इन अंशों पर लाभांश निश्चित है। कम्पनी चाहे जितनी समृद्ध हो जाए, पर अंशधारियों को यह निश्चित लाभांश ही, वह ५ प्रतिशत या ६ प्रतिशत या जो भी हो, मिलेगा। ये अंश भी विभिन्न श्रेणियों में विभाजित होते हैं। प्रथम और द्वितीय अधिमान अंश होते हैं, यानी अधिमान अंशों के ये वर्ग लाभांश की दृष्टि से एक के बाद दूसरा आते हैं। अधिमान अंश संचयी (Cumulative) और असंचयी होते हैं। संचयी अधिमान अंशों को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे उन वर्षों का भी लाभांश पाएं जिन वर्षों में लाभांश नहीं हुआ है। असंचयी अधिमान अंशों को यह अधिकार नहीं होता। यदि कम्पनी का कोई वर्ष, मान लीजिए १९५४, खराब गया है और कम्पनी ने लाभांश की घोषणा नहीं की है, पर १९५५ में अत्यधिक लाभ हुए हैं तो ऐसी स्थिति में असंचयी अधिमान अंशधारी १९५५ के लिए लाभांश पायेंगे, लेकिन संचयी अधिमान अंशधारी सन् १९५४ और १९५५ दोनों वर्षों के लिए लाभांश पायेंगे। प्रत्याभूत अधिमान अंश प्रायः उस स्थिति में निर्गमित किये जाते हैं जब कोई निजी कम्पनी परिमित कम्पनी में रूपान्तरित की जाती है या जब यह कम्पनी दूसरी कम्पनी के हाथ बेच डाली जाती है। विक्रेता या अन्य सम्बद्ध पक्षों को इन स्थितियों में कतिपय वर्षों के लिए एक निर्धारित दर पर लाभांश की गारंटी दी जाती है। सहभागी अधिमान अंशों (Participating preference shares) को यह अधिकार है कि उन्हें नियत लाभांश के अतिरिक्त कुछ और दिया जाए। वे अनधिमान अंशों (Non-preference shares) पर लाभांश में पूरी तरह या कुछ सीमा तक हिस्सा प्राप्त कर सकते हैं। विमोचन योग्य अधिमान अंश भी निर्गमित किए जा सकते हैं पर वे शोधित होने चाहिए। इन अंशों का विमोचन प्राप्य लाभांश से किया जा सकता है ताकि विमोचन-योग्य अंशों के भुगतान के कारण पूंजी में कमी न हो।

यद्यपि अधिमान अंश पर लाभांश की आय नियत रहती है, फिर भी ये प्रतिभूतियाँ पूंजी में मूल्य वृद्धि प्राप्त कर सकती हैं। जिस कम्पनी ने वर्षों लाभांश घोषित नहीं किया है, लेकिन अब उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है, उसके संचयी अधिमान अंश

ऐसे अशधारियों के सम्मुख अश के पूंजीगत मूल्य में वृद्धि की सम्भावना प्रस्तुत करते हैं। यह वृद्धि स्थिर तथा अपेक्षाकृत कम नियत दर के लाभाश के कारण हुई क्षति की पूर्ति करती है। अधिमान अश का साधारण अश की अपेक्षा पूर्वाधिकार होता है, लेकिन उन्हे सीमित मताधिकार होता है। अधिमान अशधारी सिर्फ अपने अधिकारो पर सीधा प्रभाव डालने वाले सकल्पो पर मत दे सकते है, पर यदि अधिमान अशधारियों के अशो पर दो वर्षों तक लाभाश न दिया गया हो तो वे सब मामलो पर साधारण अशधारियों की तरह मत दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त अधिमान अश की राशि साधारण अशो की अपेक्षा प्राय ऊँची हुआ करती है जो वास्तव मे अच्छे विनियोग के नियमो के विपरीत है। ऐसे अश उन आदमियों के लिए उपयुक्त होते हैं जो जोखिम नहीं ले सकते। सर्वसाधारण की बचतो का उपयोग करने के लिए, अधिमान अशो की राशि को नीचा करना आवश्यक है।

साधारण अश (Ordinary or Equity shares)—साधारण अश अधिमान अशो के पश्चात् लाभाश पाने के अधिकारी होते है, लेकिन उन्हें, अधिमान अशो के निश्चित लाभाश के भुगतान के बाद लाभाश मद में जो भी रकम बच जाती है, वह सारी पाने का अधिकारी है। साधारण अश सचयी अधिमान अशो की भाति अशधारियों को न केवल लाभाश की प्राप्ति का सकेत करते है, अपितु उन्हे पूँजीगत वृद्धि की भविष्यत सम्भावना का भी सकेत करते हैं। उन पर दिये जाने वाले लाभाश की राशि प्राय लाभ के अनुसार मिलती रहती है। भारतवर्ष मे बहुसख्या में कम्पनियो का वित्तपोषण साधारण अशो के जरिए ही हुआ है। उदाहरणार्थ, आधी से अधिक सूती वस्त्र और चीनी मिलों और चाय बागो के अश साधारण अश ही हैं। केवल लोहा, इस्पात और कुछ हद तक पाट उद्योग में अधिमान अश हैं जिनका परिमाण क्रमश कुल पूँजी का ४३ प्रतिशत और २९ प्रतिशत है।

स्थगित अश (Deferred Shares)—स्थगित अश अब निजी कम्पनियो द्वारा ही निर्गमित किये जा सकते है, लोक कम्पनियो द्वारा नही। ये सामान्यतया थोडे अकित मूल्य वाले होते है और वे अधिमान अशो के परिपूरक हैं। उन्हे अधिमान अशधारियो तथा साधारण अशधारियों को लाभाश मिल जाने के बाद ही लाभाश पाने का अधिकार है जैसा कि ऊपर कहा गया है, अक्सर ऐसे अश कम्पनी के प्रवर्तकों के द्वारा या सम्पत्ति विक्रेताओ द्वारा कम्पनी से भुगतान के रूप मे लिये जाते है। ऐसे अश विशेष उद्देश्य से निर्गमित किये जाते हैं, जिनका वर्णन हार्टले विदर्स महोदय ने अच्छी तरह किया है। ऐसे अशो के बारे में वे कहते हैं: "यह एक चातुर्यपूर्ण साधन है, जिसके जरिये मौलिक प्रवर्तकों या नेताओ के लिए लाभ में पर्याप्त हिस्सा सुरक्षित रखा जाता है और साथ ही साथ इनकी विनम्रता का दिखावा भी बना रहता है।" स्थगित अशो का कभी-कभी सस्थापक या व्यवस्थापक अशों की तरह प्रयोग किया जाता है। अशो के इन दोनों वर्गों की रचना इस प्रयास उद्देश्य से की जाती है कि कम्पनी का नियन्त्रण इनके धारकों के हाथ में चला जाय। सामान्य रूप से ऐसे अश बाजार में बिकने नही आते, पर इन अशो का बहुत कुछ आकर्षण खतम हो गया

है क्योंकि उनका उपयोग और कम्पनियों पर नियंत्रण प्राप्त करने के साधन के रूप में नहीं किया जा सकता ।

किसी कम्पनी में पंजीयित (Rejistered) या वाहक (Bearer) या दोनों प्रकार के अंश हो सकते हैं। पंजीयित अंश अंशधारी की स्वत्वधारी की स्थिति में ला दिया जाता है। नाना प्रकार के अंश कम्पनी की किताबों में उनके नाम पंजीयित होते हैं जिन्होंने उसमें धन पूंजी दी है। उन्हें लाभांश चेक के जरिए प्राप्त होता है। इन अंशधारियों के पास प्रमाणपत्र होते हैं जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उनके पास इतने स्वत्व या अंश हैं लेकिन प्रमाणपत्र स्वयं इन अंशों या स्वत्वों पर परम स्वत्व (Absolute title) नहीं है। यदि प्रमाण पत्र किसी प्रतिफल के बदले में किसी को दे भी दिया जाय तब भी वह उस द्वारा पूंजी में स्वामित्व का हस्तांतरण नहीं करता। हस्तांतरण विधिवत हस्तांतरपत्र के निष्पादन द्वारा ही होना चाहिए और तब हस्तांतर कम्पनी द्वारा रखी गयी सदस्य पुस्तक में पंजीयित होना चाहिए। वाहक (Bearer) अंश स्वयमेव एक स्वत्व है और वह अंश अधिपत्र (Share Warrant) के रूप में निर्गमित किया जाता है। जिसके पास भी यह होता है वह इस द्वारा निरूपित पूंजी का स्वामी है। इसका स्वामी कम्पनी की पुस्तिका में अंकित नहीं होता। इसके लाभांश चेक के जरिये नहीं भेजे जाते किन्तु अंश अधिपत्र (Share Warrant) में संलग्न कूपन के उपस्थापन द्वारा लाभांश एकत्रित किये जाते हैं। कूपन अधिपत्र से काट लिया जाता है और कम्पनी के पास भेज दिया जाता है। कम्पनी उसकी जांच करती है और तब उसका भुगतान देती है। व्यवहार में अधिकतर यह होता है कि वाहक अंशों के अधिकांश अंशधारी अंशअधिपत्र को अपने बैंक में जमा कर देते हैं और बैंक पर यह दायित्व छोड़ देते हैं कि वे आवश्यक कूपन कम्पनी के यहां प्रस्तुत करें। क्योंकि अंश अपने आप एक स्वत्व हैं अतः लोग उन्हें तथा इन धारों में बचाव के लिये अतिशय सावधानी बरती चाहिए। यही एक वजह है जिसके कारण इन अंशों के धारक इस बैंक के मजबूत कक्ष (Strong Room) में सुरक्षित रखने के लिए प्रेरित होते हैं। वाहक अंशों के अनेकों में सबसे बड़ा एवं बहुत बड़ा लाभ यह है कि वह आसानी से एक व्यक्तियों के हाथ हस्तांतरित किया जा सकता है तथा इन पर बैंक आसानी से पैसा उधार दिये जा सकते हैं क्योंकि स्वामित्व परिवर्तन के लिए किसी हस्तांतर विलेख (Transfer Deed) की आवश्यकता नहीं होती। ये वाहक अंश अधिपत्र सिर्फ उन्हीं कम्पनी द्वारा पूर्णतया प्रदत्त अंशों के लिए ही निर्गमित किए जा सकते हैं यदि इसके अंतर्नियम इस नियम को प्राधिकृत करते हों और केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त कर लिया गया हो।

विभिन्न कोटि के अंशों के निर्गमन का उद्देश्य है विभिन्न प्रकृति वाले लोगों को विनियोग के क्षेत्र में आने के लिए प्रेरित करना। सावधान विनियोक्ता जो जोखिम उठाने को तैयार नहीं है निश्चित प्रत्याय वाले अथवा अधिमान अंश के रूप में होगा— वह प्रत्याय की अपेक्षा सुरक्षा को अधिक पसन्द करता है। कम सावधान या साहसी

योजना नहीं बनायी जा सकती, जिसका परिणाम अति या अल्प पूंजीकरण हो सकता है। ऐसा कोई आधार नहीं जिसके बल पर अंशों का मूल्य ऊंचा या नीचा समझा जाय और न कोई ऐसा मापदण्ड ही है जिसके जरिये विनियोग पर प्रत्याय के औचित्य के बारे में निर्णय किया जा सके।

छूट पर अंशों का निर्गमन (Issue of Shares at Discount)—कम्पनी अधिनियम के १९३६ के संशोधन के पूर्व, किसी कम्पनी को छूट पर यानी सौ रुपये के अंश, मान लीजिए, केवल अस्सी रुपये में, निर्गमित करने की अनुमति नहीं थी। किन्तु धारा १०५ए निम्नलिखित अवस्थाओं में कम्पनी को छूट पर अंश निर्गमित करने का अधिकार देती है —

(१) सछूट निर्गमन उसी कोटि के अंशों का हो, जिस कोटि के अंश निर्गमित किये जा चुके हैं,

(२) निर्गमन वृहत् अधिवेशन में स्वीकृत संकल्प द्वारा प्राधिकृत हो तथा न्यायालय ने उसका अनुमोदन कर दिया हो।

(३) संकल्प छूट की अधिकतम दर का उल्लेख कर देता है, जो दस प्रतिशत या ऐसी अन्य प्रतिशतता से, जैसी केन्द्रीय सरकार किसी विशेष मामले में अनुज्ञात करे, अधिक नहीं होगी,

(४) निर्गमन उस तिथि से एक वर्ष बीतने से पहले न किया गया हो जिस तिथि से कम्पनी को व्यवसाय आरम्भ करने का अधिकार प्राप्त हुआ,

(५) न्यायालय से स्वीकृति प्राप्त करने के दो महीने के अन्तर्गत या ऐसे बढ़ाये हुए समय के अन्तर्गत, जैसा न्यायालय अनुज्ञात करे, ही अंश छूट पर निर्गमित किये गये हों।

बन्ध-पत्र तथा ऋण-पत्र (Bonds and Debentures)

हो सकता है कि कोई कम्पनी अधिक अंश पूंजी या स्वामित्व-सूचक प्रतिभूतियों को न चाहे, फिर भी अधिक धन की इच्छा रखे। यह लोगों को पूंजी अंशदान करने के बजाय ऋण दान करने को आमन्त्रित कर सकती है। इस प्रकार, उधार दिया गया धन भी अभिलिखित तथा अभिस्वीकृत (Acknowledged) होना अनिवार्य है। ऋणदाता जो लेख्य पाता है उसे ऋणपत्र कहते हैं। ऋणपत्रधारी कम्पनी का उत्तमर्ण होता है लेकिन अंशधारी कम्पनी की पूंजी का स्वामी है जो इसके दायित्वों के लिए उत्तरदायी होता है। ऋणपत्रधारी कम्पनी के दायित्वों में से है जिसके लिए अंशधारी दायी होता है। इस प्रकार कोई कम्पनी अपनी प्रारम्भिक आवश्यकता के वास्ते दीर्घकालीन वित्त प्राप्त करने के लिए तथा प्रसार विकास तथा सुधार के हेतु अपनी पूंजी की पूर्ति के लिए ऋणपत्र या उत्तमर्णता प्रतिभूतियां (Creditorship Securities) निर्गमित कर सकती है। सच्ची बात तो यह है कि प्रत्येक देश में वित्त संचय के लिए ऋण पत्रों का निर्गमन एक महत्वपूर्ण विधि है।

कम्पनी अधिनियम ऋणपत्र की कोई सन्तोषजनक परिभाषा नहीं

करता। धारा २ (१०) में सिर्फ यह उपबन्ध है "ऋणपत्र में ऋणपत्र, स्कन्ध, बंध-पत्र और कम्पनी की अन्य प्रतिभूतियां शामिल हैं, चाहे वे कम्पनी की आस्तियों पर प्रभार (Charge) हो या नहीं।" सीधे शब्दों में, ऋणपत्र कम्पनी द्वारा ऋण का स्वीकरण है (Acknowledgement), लेकिन चूंकि बहुधा (सर्वदा नहीं) यह सार्व मुद्रा के अधीन निर्गमित किया जाता है, और कम्पनी की आस्तियों पर स्थायी या अस्थायी प्रभार द्वारा सुरक्षित होता है और इसमें विशिष्ट तिथियों पर ब्याज का भुगतान अनिवार्य होता है अतः ऋणपत्र की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है— यह कम्पनी द्वारा सार्व मुद्रा के अधीन निष्पादित संलेख है, जो अग्रिम दी गई रकम की प्रतिभूति करने के निमित्त किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के सम्मुख ऋण का स्वीकरण करता है। ऋणपत्र कम्पनी के द्वारा शृंखलाबद्ध रीति से निर्गमित निश्चित अंकित मूल्य, जैसे सौ रुपये, पांच सौ रुपये, हजार रुपये, का बन्धपत्र है जो लोगों के समक्ष प्रविवरण के जरिये प्रस्तुत किया जाता है। जिन शर्तों पर वे निर्गमित किये जाते हैं, वे बन्धपत्र की पीठ पर उल्लिखित होती हैं और जो इनके धारकों को विभिन्न प्रकार के अधिकार देती हैं। एक शर्त यह होती है कि ऋणपत्र अमुक संख्या की शृंखला में से है और एक शृंखला के सभी ऋण पत्र सममाव से (Pari Passu) भुगतान के अधिकारी होते हैं, अर्थात् किसी एक शृंखला के सभी ऋणपत्रों का अनुपाततः भुगतान किया जायगा, ताकि यदि सबको भुगतान देने के लिए पर्याप्त धन नहीं है तो सबका भुगतान अनुपातनः कम हो जाएगा। यदि 'सममाव से' (Pari Passu) शब्द नहीं प्रयुक्त किए गये हैं तो ऋणपत्रों का भुगतान निर्गमन तिथि के मुताबिक होगा और यदि वे सब एक ही दिन निर्गमित किए गये हैं तो वे संख्या क्रम से भुगतान योग्य होंगे। जो ऋणपत्र सम्पत्ति के स्वत्व विलेख (Title Deeds of Property) के द्वारा रक्षित होता है जिसके साथ एक स्मरण-पत्र होता है जो लिखित रूप में इस पर प्रभार का सृजन करता है, उसे साम्यपूर्ण या इक्विटेबल (Equitable) ऋणपत्र कहते हैं। जहां कम्पनी की सम्पत्ति का वैधानिक स्वामित्व एक विलेख के द्वारा ऋण की रक्षा या प्रतिभूति (Securities) के रूप में ऋणपत्र धारकों को हस्तान्तरित हो जाता है, वहां ऋण पत्र वैधानिक ऋण-पत्र (Legal Debenture) कहलाता है। ऋणपत्र उसी हालत में विमोचनयोग्य या भुगतान योग्य (Redeemable) होता है जब इसमें एक निश्चित तिथि पर, या मांग करने पर या तत्सम्बन्धी सूचना देने पर मूलधन के भुगतान का उल्लेख रहता है या वे उस स्थिति में अविमोच्य या शाश्वत होते हैं, जब कम्पनी के लिये अनिवार्यतः भुगतान कर देने की तिथि का उल्लेख नहीं होता। ऐसी हालत में जब तक कम्पनी चालू हालत में है, तब तक ऋणपत्रधारक भुगतान पाने की मांग नहीं कर सकते। भारतवर्ष में सामान्यतः विमोचनयोग्य ऋणपत्र ही निर्गमित किये जाते हैं। इसका कारण यह है कि इस सामान्य धारणा के विपरीत, कि भारतीय विनियोक्ता वृद्धिशील मूल्यवाली प्रतिभूतियों को ही पसन्द करते हैं, वे प्रतिभूतियों से सम्बद्ध सुरक्षा (Securities) की परवाह करते हैं। अविमोच्य ऋणपत्र की हालत में विनियोक्ताओं को यह इत्मीनान नहीं हो

सकता कि व्यवसाय की आर्थिक स्थिति असदिग्ध रूप से अच्छी है। लेकिन विमोच्य प्रतिभूतियों में उनके हित भली भांति सुरक्षित हैं। विमोच्य ऋण पत्र मन्दी या धन बाजार में होने वाले परिवर्तनों के कारण अवमूल्यन के शिकार नहीं होते। कतिपय अवस्थाओं में वे भुगतान दिवस से पहले कम्पनी द्वारा वापिस लिये जा सकते हैं और प्राय इसी उद्देश्य से निर्मित निक्षेप निधि (Sinking Fund) या ऋण शोधन निधि (Amortisation Fund) में से ऋण पत्रों के भुगतान की व्यवस्था कर दी जाती है।

पूंजी स्रोत की दृष्टि से ऋणपत्र के अनेक लाभ हैं। विनियोक्ता की दृष्टि से ऋणपत्र अधिमान अंशों या अन्य प्रतिभूतियों की अपेक्षा ज्यादा सुरक्षित (Secured) होते हैं। उदाहरणतः, बन्धक ऋणपत्र धारक, (Mortgage Debenture Holder) यह जानता है कि उसकी सुरक्षा कैसी है और प्राय उसके हित की रक्षा के हेतु न्यासी (Trustees) होते हैं। साहस की दृष्टि से अरक्षतः अल्प-संगठित उद्योगों के विकास की दृष्टि से ऋणपत्र विशेषतः उपादेय होते हैं। जब प्रस्तुत सुरक्षा अच्छी है, तब ऋणपत्र व्यष्टि तथा संस्थाएँ, दोनों प्रकार के, विनियोक्ताओं द्वारा पसन्द किये जाते हैं। ऋणपत्र वस्तुतः सावधान विनियोक्ताओं के लिए ही उपयुक्त हैं क्योंकि निर्गमन शर्तों में प्राय एक ऐसा खण्ड होता है जो विनियोक्ताओं के हितों को खतरे से बचाता है। लेकिन कम्पनी द्वारा निर्गमित ऋणपत्र की सफलता प्रस्तुत (Offer) सुरक्षा की प्रकृति पर निर्भर करती है। सुरक्षा जितनी ही बढ़ी होगी, ऋण पत्र निर्गमन की सफलता उतनी ही अधिक होगी।

इसमें सन्देह नहीं कि स्थायी वित्त का एक हिस्सा ऋण पत्रों द्वारा संचित किया जाना वांछनीय है, क्योंकि इससे मितव्ययिता होती है, लेकिन सभी प्रकार के उद्योगों के लिए यह अनुकूल नहीं पड़ता। अधिमान अंशों की भांति ऋणपत्र का अर्थ कम्पनी पर एक वित्तीय भार होता है, अतएव इसे कम्पनी की अर्जन-क्षमता तक ही सीमित होना चाहिए। मीड (Meade) के अनुसार, कम्पनी के सकल अर्जन (Gross Earning) की अधिक से अधिक २० प्रतिशत राशि को ब्याज के भुगतान में लगाना चाहिए। उनके अनुसार, जो कम्पनी इस सीमा से पार अपने अर्जन को ब्याज के भुगतान में फंसा देती है, वह अपने भविष्य को खतरे में डालने की जोखिम उठाती है। वान बेकरथ (Von Beckerath) महोदय ठीक ही कहते हैं कि निरन्तर ब्याज वाले ऋण (Interest Credit), जो व्यावसायिक हानि में हाथ नहीं बटाते, जैसे बंध पत्र, बंधक पत्र तथा अल्पकालीन ऋण, सभी प्रकार के बड़े औद्योगिक उपक्रमों के लिए खतरा हैं क्योंकि यदि ब्याज का भुगतान जारी रखना पड़ा तो मन्दी के कतिपय वर्षों में पूंजी-स्कन्ध समाप्त हो जायगा। ऋण से प्राप्त धन पर अनियन्त्रित निर्भरता सामान्य समय में भी अंशधारियों के हित के विपरीत है। अतएव ऋणपत्र उसी समय निर्गमित करने चाहिए जब कोई और चारा न हो और वह भी कम्पनी की अर्जन-क्षमता की सीमा के अन्तर्गत हो। वह व्यवसाय, जिसके पास पर्याप्त अचल सम्पत्ति है तथा जिसकी अर्जन शक्ति पर्याप्त स्थायी है, उस व्यवसाय की अपेक्षा,

जिसकी सम्पत्ति थोड़ी तथा अर्जन परिवर्तनशील है, अधिक सरलता से और लाभदायक रीति से ऋण-पत्र निर्गमित कर सकता है। उदाहरणत, एकाधिपत्य के कारण पाट मिलों का उपार्जन बहुत तथा निश्चित था, अत उन्होंने सफलतापूर्वक ऋणपत्र निर्गमित किये हैं, लेकिन कोयला कम्पनियों को ऋण-पत्र निर्गमन में विशेष सफलता नहीं हुई। उसी अर्जन शक्ति के कारण रेल तथा ट्राम कम्पनियों में भी ऋणपत्र निर्गमन सफल रहा है। हम लोगों को प्राय सभी प्रमुख रेल प्रणालियों का पोषण भारत सरकार या भारत मंत्री (Secretary of State) द्वारा निर्गमित ऋण-पत्र स्कन्धों द्वारा ही हुआ है और लगभग आधी छोटी रेल कम्पनियों ऋणपत्रों द्वारा ही पर्याप्त धनसंचय करने में सफल रही हैं। चाय उद्योग में बहुत थोड़ी सी कम्पनियों ने ऋणपत्र निर्गमित किए हैं, लेकिन चीनी उद्योग ने, जो अपेक्षाकृत नया उपक्रम है, सफलतापूर्वक ऋण-पत्रों का निर्गमन किया है। सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारतीय उद्योग में ऋण-पत्र का यह बहुत महत्वहीन कार्य रहा है और २० प्रतिशत की सीमा तक भी कोई उद्योग नहीं पहुंच पाया है। यहां यह बता देना लाभदायक होगा कि भारतवर्ष के कतिपय महत्वपूर्ण उद्योगों में कुल पूंजी तथा विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों के बीच क्या अनुपात है। अगले पृष्ठ पर दी गयी तालिका से भारतवर्ष में निर्गमित विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों की आपेक्षिक महत्ता ज्ञात होगी।

इस तालिका से यह साफ हो जाता है कि औद्योगिक वित्त के क्षेत्र में ऋण-पत्रों या बन्धक ऋणों (Mortgage Debts) के कार्य महत्वपूर्ण नहीं रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप, अधिकतर अल्पसंगठित उद्योगों को पूंजी की कमी के कारण परेशानी उठानी पड़ी है किन्तु ऋण पत्रों द्वारा पर्याप्त धन संचय करने में उल्लेखनीय कठिनाइयां हैं। सर्वप्रथम, वे छोटी कम्पनियां, जो काफी सुरक्षा प्रस्तुत नहीं कर सकतीं, सर्वसाधारण के बीच ऋण-पत्र निर्गमित नहीं कर सकतीं। विशिष्ट संस्थाओं को इन उद्योगों की अचल सम्पत्ति की जमानत पर ऋण देने को मनाया जा सकता है, लेकिन उन्हें भी व्यवसाय समाप्त हो जाने की दशा में हानि का खतरा है। द्वितीय, निर्मिति कम्पनियों को लें तो सर्वसाधारण उनके ऋण-पत्रों को तभी लेने को तत्पर होंगे जब उन्होंने पर्याप्त लाभ का अर्जन किया हो। तृतीय, और शायद भारतवर्ष में ऋण-पत्रों की अलोकप्रियता का सब से बड़ा कारण यही है कि बैंकों का कभी भी उनका चाव नहीं रहा है। जो कम्पनी ऋण-पत्र निर्गमित करती है, उसकी साख बैंकों की आंखों में गिर जाती है। चूंकि सम्पत्ति पर प्रथम प्रभार ऋण पत्र ही है, अतः जिस कम्पनी ने ऋण-पत्र निर्गमित किया है, वह बैंक से और धन प्राप्त करने में असफल रहती है। बैंक यह दलील पेश करते हैं, हालांकि यह दलील भ्रान्तिमूलक है, कि कम्पनी की सुरक्षा दुर्बल हो गयी है। वे यह भूल जाते हैं कि यदि कम्पनी की यथार्थ स्थिति दृढ़ है तो ऋण-पत्र उसकी सुरक्षा को उसी तरह दुर्बल नहीं करते, जैसे बैंक-ऋण नहीं करते। यथार्थ बात तो यह है कि भारतवर्ष में शायद ही ऐसी घटना घटी हो कि ऋण-पत्र के निर्गमन के कारण कम्पनी को संकट का सामना करना पड़ा हो। बैंकों को अनिवार्यतः यह चाहिए कि वे ऋण-पत्र के सम्बन्ध में

विभिन्न प्रतिभूतियों की आपेक्षिक महत्ता दिखाने वाली तालिका

उद्योग का नाम	कंपनियों की कुल संख्या	कुल शोधित पूंजी (ऋण-पत्रों सहित) रुपये लाखों में	सामान्य अंश पूंजी		अधिमान अंश पूंजी			स्थगित अंश पूंजी			ऋण-पत्र		
			रुपये लाखों में	कुल पूंजी का प्रतिशत	निर्गमन करने वाली कंपनियों की संख्या	रुपये लाखों में	%	कंपनियों की संख्या	रुपये लाखों में	%	कंपनियों की संख्या	रुपये लाखों में	%
जूट	६१	२१,५४	१३,०४	६०	४९	६,२२	२९	१	०३	(a)	२१	२ २८	११
सूती उद्योग	१५७	३४,१ ५	२८,१७	८१	५७	४ ८७	१४	१	६५	२	१५	८७	३
लोहा और इस्पात	५	२०,४४	८ ७४	४३	२	८,८९	४३	२	२०	१	२	२,६१	१३
सीमेंट	४	१३ ५५	१२,२५	९२	२	४०	३	१	५	(a)	२	६५	५
चीनी	४९	९,६०	६,४०	६७	२३	१७२	१८	१	२	(a)	२१	१,४६	१५
चाय	१३३	५,८४	५ ८४	९०	२३	५१	९	—	—	—	५	९	१

(a) उपेक्षणीय

अपना रुख बदलें और उन्हें ऋण पत्रों को लोकप्रिय बनाने के लिये क्रियाशील होना चाहिए। वास्तविक बात यह है कि बीमा कम्पनियाँ, जो आसानी से ऋण-पत्र खरीद सकती थीं, इस दिशा में आगे नहीं आई हैं। क्या यह कहा जा सकता है कि उनका यह रुख इस बात का संकेत करता है कि भारतीय उद्योग में उन्हें विश्वास नहीं है? ऋण-पत्र निर्गमन के रास्ते में पाचवीं बाधा है प्रन्यासी सेवाओं (Trustee Services) तथा विनियोग अभिकरणों, जैसे विनियोग प्रन्यास, विनियोग बैंक व वित्त कम्पनियों, का न होना। इस देश में ऋण-पत्रों के विकास के रास्ते में छठी रुकावट यह है कि वे बहुत खर्चीले होते हैं। ऋण-पत्रों के हस्तान्तर पर अधिक मुद्रांक शुल्क (Stamp duty), कमीशन व दलाली तथा उनकी सीमित विक्रयशीलता भी उनकी लोकप्रियता को कम करती है। परिणाम यह होता है कि सावधान विनियोक्ता एक निश्चित ब्याज वाले अधिमान अंशों को पसन्द करता है। कार्यशील पूंजी व विस्तार के लिए पूंजी की व्यवस्था लोक निक्षेपों तथा प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं से प्राप्त ऋणों द्वारा हो जाती है। लेकिन औद्योगिक उपक्रमों को चाहिए कि वे उत्तरोत्तर इन दो उद्गमों पर अपनी निर्भरता का परित्याग करें तथा ऋण-पत्रों के निर्गमन पर अधिक भरोसा रखें।

प्रतिभूतियों की बाजारदारी या विक्रय (Marketing of Securities)

अधिकांश संयुक्त स्कन्ध उपक्रम अपनी प्रारम्भिक पूंजी प्रवर्तकों, वित्तपोषकों (Financiers) या प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं से प्राप्त करते हैं। लेकिन सर्वसाधारण के अंशदान के निमित्त भी प्रतिभूतियों को निर्गमित करना होता है, जिनके लिए वितरण की उपयुक्त सरणियों का होना आवश्यक है। साधारणतः अंशों व ऋण पत्रों की बिक्री के लिए तीन महत्वपूर्ण जरिये हैं। वे हैं (क) प्रबन्ध अभिकर्त्ता, जो प्रतिभूतियों को प्रत्यक्ष रूप से अपने सम्बन्धियों, मित्रों तथा अन्यों के हाथ बेचते हैं, और परोक्ष रूप से सर्वसाधारण को अंशदान के लिए आमन्त्रित करते हैं, (ख) इस प्रयोजन के लिये नियुक्त किये गये कमीशन अभिकर्त्ता, तथा (ग) अभिगोपक।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं व कम्पनी के संचालकों द्वारा बिक्री प्रतिभूतियों की सीधी बिक्री का सबसे सस्ता तरीका होना चाहिए, क्योंकि उनसे यह आशा की जाती है कि वे कम्पनियों के प्रवर्तन और शुरू करने में दिलचस्पी रखने वाले व्यक्तियों के रूप में बिना कमीशन लिए स्वयं से ऋण पत्र तथा अंश बेच सकते हैं। लेकिन अंशों के विक्रय हेतु बाजार में प्रस्तुत करने के लिये वे नियमित कमीशन लेते हैं। ऐसा दीखता है कि वे अपने तथा कम्पनी के हितों के बीच संघर्ष से ही अपने कार्य का प्रारम्भ करते हैं और इसमें अपने हित को ही वे आगे रखते हैं। विभिन्न स्थानों में इस उद्देश्य से कमीशन के आधार पर नियुक्त किये गये अभिकर्त्ताओं के द्वारा प्रतिभूतियों की बिक्री होती है। इसमें संदेह नहीं कि अपने स्वार्थ के कारण ये लोग अंशों की पर्याप्त मात्रा में बिक्री करते हैं, लेकिन अंशों की सम्पूर्ण राशि, या सम्पूर्ण नहीं तो लगभग सम्पूर्ण राशि की बिक्री उनके दायित्व पर छोड़ना निरापद नहीं है। फलस्वरूप, अंशों की बिक्री की यह विधि भी सस्ती

दीर्घ पन्थी है, लेकिन, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, इस विधि पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, क्योंकि यह हो सकता है कि निर्गमित अंशों की सम्पूर्ण मात्रा निर्धारित अवधि के अन्दर प्रार्थित न हो, या प्रविवरण के प्रथम निर्गमन के १८० दिनों के अन्दर न्यूनतम अभिदान ही न हो, जिसका परिणाम यह होगा कि विधि के अनुसार अपेक्षित आवेदन राशि (Application Money) वापिस करनी होगी। यह प्रवर्तक की ख्याति को क्षति पहुंचा सकती है तथा अंशों के भविष्यत् निर्गमन में बाधा पहुंचा सकती है। पुनः यह भी हो सकता है कि अभिदान की गति धीमी हो तथा आवेदित राशि कम्पनी की मौजूदा आवश्यकता से बहुत कम हो। इन अनिश्चितताओं की दृष्टि से तीसरी विधि, अर्थात् अभिगोपन का सहारा लेना वांछनीय है।

अभिगोपन (Underwriting)—अभिगोपन की व्यवस्था प्रवर्तकों द्वारा की जाती है जो एसे व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करते हैं जो अंशों या ऋणपत्रों के लोक निर्गमन की सफलता के लिए प्रत्याभतिकर्ता का कार्य करें। बृहत निर्गमन प्रायः अभिगोपित कर लिये जाते हैं लेकिन हमारे देश में अभिगोपन को पश्चिमी देशों की तरह महत्ता प्राप्त नहीं हुई। अभिगोपन की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है, "यह प्रवर्तकों द्वारा व्यक्तियों, जैसे दलालों, या संस्थाओं जैसे बैंकों, बीमा कम्पनियों, सिंडीकेटों या बड़े विनियोक्ताओं के साथ, जिन्हें अभिगोपक कहते हैं, की गयी संविदा है" जिसके अनुसार वे निर्धारित कमीशन के बदले, जो अंशों की निर्गम कीमत में ५ प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए, निर्गमित अंशों की सम्पूर्ण राशि या उस हिस्से को खरीद लेते हैं जो सर्वसाधारण द्वारा आवेदित नहीं हुआ है। अभिगोपक एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत प्रतिभूतियों की बिक्री का अभिगोपित या प्रत्याभूत करता है और जो प्रतिभूतियां सर्वसाधारण द्वारा नहीं खरीदी जाती हैं उन्हें वह खरीद लेता है और उनका मूल्य चुका देता है। विभिन्न प्रकार की अभिगोपन संविदाएं होती हैं लेकिन सभी संविदाओं में एक विशेषता होती है कि अभिगोपक इस बात की गारंटी देते हैं कि कम्पनी को निर्धारित अवधि में सम्पूर्ण निर्गमन के लिए नियत राशि से कम रकम प्राप्त न हो। अतः कम्पनी के लिए इन बातों का कोई महत्व नहीं रह जाता कि सारी प्रतिभूतियां एक साथ बिक गयी या कम से कम विक्रय सम्बन्धी संविदा कर ली गई है या कोई उत्तरदायी बैंक या सिण्डीकेट इसकी बिक्री को प्रत्याभूत कर दे। दोनों हालतों में उन अभिगोपकों द्वारा अविलम्ब व्यवस्था हो जाती है जो अभिगोपित या क्रीत प्रतिभूतियों की बिक्री का यत्न करते हैं ताकि कम्पनी को दिया गया धन उन्हें वापिस मिल जाय।

व्यक्ति, दलाल, बैंक या बीमा कम्पनियां छोटी राशि ही अभिगोपित कर सकती हैं और अवसर व प्रतिभूतियों को बिल्कुल खरीद लेती हैं, और तब सर्वसाधारण के बीच उनकी बिक्री करती हैं या केवल उन्हें अभिगोपित करती हैं पर जहां बहुत बड़ी राशियां होती हैं वहां जोखिम का भार वहन करने या बिक्री को प्रत्याभूत करने के हेतु सिन्डीकेट की रचना की जाती है। कम्पनी स्वयं निर्गमित अंशों की बिक्री कर सकती है और सिण्डीकेट केवल यह गारण्टी देती है कि सम्पूर्ण निर्गमित अंश न्यूनतम मूल्य पर

निर्धारित अवधि के अन्तर्गत बिक जायेंगे। यदि निर्गमित अंशों की बिक्री सफल रही तो *सिंडीकेट अपना कमीशन एकत्रित कर लेगी*, परन्तु यदि नियत मूल्य पर निर्गमन असफल रहा तो अविक्रीत अंश सिंडीकेट खरीद लेगी और उन्हें बेच देगी। किन्तु इस प्रकार समझौते सामान्यतः प्रचलित नहीं हैं। इसके विपरीत, सिंडीकेट प्रतिभूतियों को लेकर अविलम्ब अपने सदस्यों के बीच भागीदारों के अनुपात में वितरित कर सकता है। इस प्रकार का अभिगोपन मनमाने क्रय की प्रकृति का होता है जिसमें यह आशा की जाती है कि *प्रत्येक सदस्य स्वतन्त्रतापूर्वक अपने हिस्से के निर्गमित अंश की बिक्री करेगा।* वृहत् परिमाण के निर्गमन की दृष्टि में यह सर्वाधिक लोकप्रिय तथा उपादेय करार है।

अभिगोपन की महत्ता—कम्पनी को अभिगोपन के लाभों की प्राप्ति के लिए पर्याप्त मूल्य चुकाना पड़े, तब भी कोई हर्ज नहीं, क्योंकि प्रवर्तकों को अंशों की बिक्री की प्रत्याभूति व जोखिम में संरक्षण देकर अभिगोपक नवीन कम्पनियों के प्रवर्तन के क्षेत्र में बहुमूल्य सेवाएं करते हैं। सर्वप्रथम, जो निर्गमन अभिगोपित कर दिया जाता है, उसकी *बिक्री की सफलता निश्चित है। अभिगोपक अपनी प्रत्याभूति या सम्पूर्ण खरीद द्वारा* बिक्री की अनिश्चितता और जोखिम अपने ऊपर ले लेते हैं और इस प्रकार इस बात का ख्याल किये बिना कि उनके द्वारा प्रत्याभूत अंश बिकेंगे या नहीं, प्रवर्तकों को अविलम्ब बड़ी रकम नकद देते हैं। परिणामस्वरूप, कम्पनी अविलम्ब अपनी उस योजना की पूर्ति का कार्य आरम्भ कर सकती है, जिस योजना के वित्तपोषण के लिए नयी पूंजी अभीष्ट थी। अंशों के विक्रय काल में प्रतीक्षा तथा मन को थका देने वाली अवधि नहीं रहती है। जहां समय एक महत्त्वपूर्ण तत्व है, यथा, नया प्लांट किसी संविदा की पूर्ति के लिए खड़ा किया जा रहा है, या प्रतियोगिता का सामना करने की तैयारी की जा रही है, वहां अभिगोपन अत्यधिक उपादेय होता है।

अभिगोपन का दूसरा महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि यह सम्पूर्ण आवश्यक धन-संचय की सफलता को निश्चित कर देता है। अभीष्ट राशि से कम कोई भी राशि कम्पनी के लिए बल होने के बजाय प्रायः बोझ ही होती है। उदाहरणतः, जहां कम्पनी को १०,००,००० रुपये की आवश्यकता है और वह इस राशि के लिए अंश निर्गमित करती है, लेकिन *जैसा कि अक्सर हमारे देश में हुआ है, वह केवल ५,००,००० रुपये ही* प्राप्त करती है, तब इसकी स्थिति ऐसी है कि न तो यह आगे बढ़ सकती है और न पीछे ही हट सकती है। अभिगोपन इस प्रकार की कठिनाई से कम्पनी को बचाता है। यह निर्धारित अवधि में निर्धारित पूंजी की प्राप्ति के लिए निश्चिन्त हो सकती है। यदि हमारे देश में अभिगोपन का उपयोग अधिक होता तो भारतीय उद्योग अल्प पूंजीकरण की त्रुटियों से बचे रहते।

प्रसंगतः अभिगोपन संविदा में वे लाभ निहित हैं जो सब संविदाओं में होते हैं और जिनके अनुसार अभिकोपण कम्पनियां कम्पनी की प्रतिभूतियों का विक्रय करने को सहमत होती हैं। कम्पनी को बैंक के विशिष्ट अनुभव तथा निर्णय का लाभ प्राप्त

हो जाता है और इस प्रकार नवीन प्रतिभूतियों, कीमत एवं रूप में बड़ी गलती करने की जोखिम न्यूनतम हो जाती है।

इसी प्रकार, चूँकि अभिगोपक वित्तीय रूप से सबल एवं ख्यातिलब्ध व्यक्ति होते हैं अतः किसी निर्गमन के साथ उनके नाम का होना निर्गमन की प्रतिष्ठा को लोगों की आँखों में ऊँचा उठा देता है, जिसके फलस्वरूप लोग उसे अविलम्ब खरीद लेते हैं।

अभिगोपन प्रतिभूतियों के भौगोलिक विकिरण (Geographical dispersion) में सहायता प्रदान करता है। इसमें प्रतिभूतियाँ न केवल लम्बे-चौड़े क्षेत्र में वितरित हो जाती हैं, प्रत्युत इनका वितरण दीर्घावधि तक चलता है। ऐसा होना प्रत्येक निर्गमन की अपनी परिस्थिति पर निर्भर करता है। इसका शुभ परिणाम यह होता है कि विनियोग बाजार में मूल्यों की आकस्मिक तेजी-मन्दी से कम्पन नहीं आता जो प्रतिभूतियों का बाजार में एक साथ ला फेंकने से होता है।

अभिगोपन न केवल कम्पनी के लिए लाभदायक होता है वरन यह प्रतिभूति के क्रेता के लिए भी लाभप्रद होता है। सर्वप्रथम तो प्रतिभूति का किसी अभिगोपक या सिण्डीकेट द्वारा अभिगोपन होना इसकी सबलता को प्रत्याभूत करता है। लेकिन इसमें भी बड़ा लाभ यह है कि क्रेता को यह उन्हीं सम्भावनाओं के विरुद्ध आश्वासित करता है, जो सम्भावनाएँ कम्पनी के लिए हानिप्रद होंगी क्योंकि जब यह एक बार कम्पनी की प्रतिभूति खरीद लेता है, तब वह कम्पनी की अच्छाइयों और बुराइयों में भागी होना शुरू कर देता है। अतः यदि प्रतीक्षा या विलम्ब के कारण कम्पनी को क्षति पहुँचती है तो वह भी क्षति में भागी होता है। अतः यह उसके हित में है कि निर्गमन अभिगोपित हो और इस प्रकार उसकी बिक्री निर्विघ्न हो जाए।

अभिगोपन के उपर्युक्त बहुतेरे लाभों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि बड़ी वित्तीय फर्में, जिन्हें अपने धन का विनियोग करना है, प्रतिभूतियों के अभिगोपन का कार्य करें। सम्भावित विनियोक्ताओं को किसी निर्गमन की सबलता या दुर्बलता के विषय में परामर्श दे सकने की स्वतन्त्र स्थिति में रहने के कारण, वे पूँजी एकत्र करने तथा उसे उचित दिशा में निर्दिष्ट करने की स्थिति में होंगे। उद्योग की दृष्टि से उन्नत देशों में अभिगोपन ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और यह भारत में भी बड़ा उपादेय हो सकता है। लेकिन यहाँ इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि जिन व्यक्तियों तथा कोठियों का अभिगोपन होता है, उन्हें किसी भी प्रकार उस कम्पनी के प्रवर्तन या विकास से सम्बद्ध नहीं होना चाहिए जिस कम्पनी की प्रतिभूति वे अभिगोपित करते हों। वस्तुतः यदि वे अपना कार्यक्षेत्र अभिगोपन तक ही सीमित रखें, तो यह सबके लिए लाभप्रद होगा। उन्हें प्रवर्तकों के चरित्र बल का जामिन होना चाहिए, न कि दुष्कर्मों का साथी। इस कथन का कारण यह है कि किसी कम्पनी के निर्माण से सम्बद्ध व्यक्तियों का समूह यदि उतना सच्चा न हो, जितना उसे होना चाहिए तो अभिगोपन उसके हाथों में पड़कर एक खतरे की चीज हो जायगा। उदाहरण के लिए, यदि कोई प्रवर्तक एक वित्त कोठी (Finance House) का सचालन करता है, विज्ञापन

एजेन्सी का स्वामित्व करता है, प्रतीयमानतः बाहरी दलालों के फर्म का निष्क्रिय साझेदार है, तथा विनियोग विषय सम्बन्धी साप्ताहिक पत्र का संचालन करता है तो वह प्रारम्भिक व्ययों के मद में खुले हाथ से खर्च कर सकता है तथा वित्त कोठी (जो अन्य लोगों के पैसे से निर्मित हुई है) के द्वारा कम्पनी की प्रतिभूतियों को, सभावी आवेदकों को घाटे म रखकर, अभिगोपित कर सकता है। उसी के अपने साप्ताहिक में मोटे कमीशन पर बहुत ही खर्चीली रीति में निर्गमन का विज्ञापन होता है, जिसकी मुफ्त प्रतियां उस सप्ताह वितरित की जाती हैं, तथा अपने ही दलाली फर्म (Bucket Shop) से बढ़ावा पाकर प्रवर्तक पर्याप्त धन राशि पा सकता है, चाहे कम्पनी या विनियोक्ताओं का कुछ भी हो। अपने देश में अभिगोपन सफल हो, इसके लिए हमें एेसे लोगों से अवश्य सावधान होना चाहिए तथा सच्चे लोगों को प्रवर्तन और अभिगोपन के कार्य उठाने को प्रेरित करना चाहिए।

विनियोग बैंक (Investment Bank)—एक ऐसी संस्था का जिक्र किया जा सकता है जो संयुक्त राज्य अमेरिका में विनियोक्ता तथा उद्योग के बीच वित्तीय मध्यस्थ के रूप में महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। यह संस्था विनियोग बैंक या अधिकोषक है, जो कम्पनी के प्रतिभूति प्रस्तवन (Security Offering) को अभिगोपित करता है, और इस प्रकार उन्हें पूंजी बाजार के सम्पर्क में लाता है। प्रतिभूति दलाल की हैसियत से विनियोग अधिकोषक दोहरे कार्य करते हैं। एक ओर तो वे समाज का धन सीधे विनियोक्ताओं या मध्यस्थ संस्थाओं के जरिये एकत्रित करते हैं, और दूसरी ओर, वे उनमें सम्पर्क स्थापित करते हैं जिन्हें ऐसी पूंजी की आवश्यकता है, और इसकी धारा को आशाजनक सरणियों में प्रवाहित करते हैं। इन्हीं दलालों या मध्यगों द्वारा अमेरिकी बाजार में संचित नयी पूंजी प्रत्याभूत होती है। ये अधिकोषक केवल थोक व्यापारी का या खुदरा व्यापारी का कार्य कर सकते हैं या दोनों के कार्यों को मिला भी सकते हैं। विनियोग अधिकोषकों के जरिये पूंजी संचय की सामान्य कार्य पद्धति यह है कि जिस कम्पनी को दीर्घकालीन वित्तपोषण के निमित्त धन चाहिए, वह विनियोग अधिकोषण गृह के पास जाती है और अपनी आवश्यकताओं का वर्णन करती है। तब अधिकोषण गृह वित्तीय विवरण तथा कम्पनी के सामान्य इतिहास की जांच तथा विशेषज्ञों की सहायता से भवनों, उपकरणों तथा स्टाक के मूल्यों तथा कम्पनी की आन्तरिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करता है; ऐसा करने का उद्देश्य प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव की सूक्ष्मातिसूक्ष्म छानबीन करना होता है। यदि अधिकोषक संतुष्ट है तो प्रतिभूति की प्रकृति, ब्याज की दर, भुगतान तिथि तथा क्रय कीमत के निर्णय हेतु बातचीत शुरू होती है। जब निर्गमन खरीद लिया जाता है तब दूसरा कदम है इसे विनियोगी जनता के बीच वितरित करना। यदि निर्गमन बृहत् परिमाण का है, तब पहली फर्म अन्य गृहों को इसलिए आमंत्रित करेगी कि वे सम्पूर्ण निर्गमन के एक भाग को अभिगोपित करें। विनियोग अधिकोषक के द्वारा विक्रय कार्य विस्तृत प्रचार तथा विक्रेताओं की सहायता से जोर-शोर से आगे बढ़ाया जाता है।

विनियोग अधिकोषक निर्गमक कम्पनी तथा विनियोक्ता दोनों की सेवा करता

है। कम्पनी की सहायता तो वह आवश्यक पूंजी प्राप्त करने की सर्वाधिक सबल व निरापद विधि के प्रणयन द्वारा करता है और विनियोक्ता की सहायता उन्हें निकृष्ट कोटियों की प्रतिभूतियों से बचाकर करता है। वह अपने ग्राहकों को परामर्श सबंधी सेवाएं प्रदान करने का दायित्व भी अपने ऊपर लेता है। बहुत से गृह तो ग्राहकों की पूछताछ का उत्तर देने के उद्देश्य से अपने सांख्यिकीय विभाग (Statistical Departments) की सेवाएं उपलब्ध कराते हैं। ग्राहकों को उनकी प्रतिभूतियों के उचित वितरण पर परामर्श दिया जाता है, कर सम्बन्धी विषयों पर परामर्श दिया जाता है उन्हें यह सूचित किया जाता है कि बन्ध पत्र कब निर्गमित किये जाते हैं तथा एक वायदे से दूसरे वायदों में कब बदल करना चाहिए। कुछ गृह तो यहां तक करते हैं कि वे ग्राहकों की प्रतिभूतियों की सूची रखते हैं, तथा उनके बारे में कुछ-कुछ समय बाद रिपोर्टें उपस्थित करते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि विनियोग अधिकोषक निर्गमक कम्पनी के सचालक मडल में प्रतिनिधित्व प्राप्त करते हैं ताकि कम्पनी के द्वारा ऐसा कार्य न किया जाय जो अनावश्यक रूप से प्रतिभूतिधारकों की स्थिति कमजोर कर दे। ये अधिकोषक संयुक्त राज्य अमेरिका में बहुत ही लाभदायक प्रयोजन की पूर्ति कर रहे हैं और चूंकि उनके द्वारा दी गई प्रतिभूतियों का प्रतिभूति व विनिमय आयोग (Securities and Exchange Commission) के यहां पजीयन अनिवार्य है, अतः उनके कार्यकलापों पर अच्छा नियन्त्रण रहता है। भारतवर्ष में ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है तथा यह आशा की जाती है कि चूंकि वाणिज्य बैंक तथा बीमा कम्पनियां नियमित अभिगोपन कार्य नहीं करते, अतः उपर्युक्त लाभप्रद कार्यों के सम्पादन के लिए उनकी स्थापना होगी।

लोक निक्षेप (Public Deposits)—बम्बई तथा अहमदाबाद तथा कुछ हद तक, शोलापुर की सूती वस्त्र मिलों ने तथा बंगाल व आसाम के चाय बागों ने लोकनिक्षेप के जरिये अपनी स्थायी पूंजी का सचय किया है, अर्थात् उन्होंने सीधे सर्वसाधारण से निर्धारित अवधि के लिए, प्रायः सात साल के लिए, निर्धारित ब्याज दर पर निक्षेप स्वीकृत किया है। १९३० के दिनों में पंजाब के मिंटगुमरी कॉटन मिल ने ११ वर्षों के लिए स्थायी निक्षेप लिये थे। लोक निक्षेप न केवल उक्त उद्योगों के लिए, बल्कि अन्य उद्योगों के लिए भी कार्यशील और विस्तार के काम आने वाली पूंजी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्रोत रहे हैं। कार्यशील पूंजी के लिए लोकनिक्षेप की अवधि ६ से १२ महीनों के लिए होती है। लोक निक्षेप के जरिये पूंजी संचय की प्रणाली की कड़ी आलोचना की गयी है और संदेह नहीं कि इस प्रणाली में त्रुटियां हैं। लेकिन इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि बम्बई व अहमदाबाद की सूती वस्त्र मिलों का अधिकतर विकास इसी प्रणाली के कारण हुआ है। निम्नलिखित तालिका से अन्य वित्तीय स्रोतों की तुलना में लोकनिक्षेप की महत्ता का ज्ञान हो जायगा।

१९३६ में विविध अभिकरणों का आपेक्षिक अश प्रदर्शित करने वाली तालिका

वर्णन	बम्बई		अहमदाबाद		शोलापुर	
	रुपये लाखों में	कुल पूजी की प्रति-शतकता	रुपये लाखों में	कुल पूजी की प्रति-शतकता	रुपये लाखों में	कुल पूजी की प्रति-शतकता
प्रबन्ध अभिकर्ता	७६४	५९ ७	३२९	३१ ७	२१	१५ ४
लोक निक्षेप	१२७	१० २	५२९	५०·९	१५	११ ०
बैंक	११९	९ २	५८	५·६	२५	१८·४
धक ऋणपत्र	१७०	१३ ५	—	—	४४	३२·४
अन्य	८९	७ १	१२३	११·८	३१	२२·८
कुल योग	१२,५१	१००	१०३९	१००	१,३६	१००,

तालिका में दिये गये आकडो से यह पता चलता है कि उक्त अवधि में अहमदाबाद में लोकनिक्षेप उद्योग वित्त का अकेला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत था । यह सभी स्रोतो से सचित की गई रकम से भी अधिक था। यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान समय में भी यह निक्षेप वहा वित्त का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। परन्तु उक्त आकडो से बम्बई में निक्षेप के महत्त्वपूर्ण कार्य का पता नही लगता, जो १९२१ से पहले बहुत अधिक था। १९२१ के पश्चात के वर्षों मे निक्षेपो को वापस कर लिया गया क्योंकि लोगो ने बम्बई की काटन कम्पनियो के प्रति विश्वास खो दिया। सामान्य समय मे ऋण प्राप्ति की इस विधि का लाभ यह है कि यह कम्पनियों को अश पूजी की मात्रा कम रखने और सस्ते दर पर ऋण प्राप्त करने मे समर्थ रखती है, और इस प्रकार कम्पनियों को इस योग्य बनाती है कि वे उस समय की अपेक्षा जब सारी पूजी अशों के रूप मे होती है, ऊचे दर से लाभाश दे। जहा तक कार्यशील पूजी की आवश्यकता का प्रश्न है, यह प्रणाली सूती वस्त्र उद्योग के लिए बहुत अधिक उपयुक्त है। खरीद के मौसम मे जब रूई की खरीद चलती है, निक्षेप छह महीने के लिए लिये जाते है और छह महीने बाद जब कपडे की बिक्री हो जाती है तब ये लौटा दिये जाते है। उद्योग सुलभ धन लेता है और जब इसका मिलना दुर्लभ होने लगता है, तब इसकी आवश्यकता जाती रहती है। चूकि उद्योगो को अधिकोषण सहायता की सुविधाए अप्राप्य है, अत. इस प्रणाली ने भारतवर्ष मे एक वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति की है।

किन्तु यह प्रणाली मन्दी के समय, जब उद्योग की गति उतार पर होती है, संकटपूर्ण है। ऐसे समय में जब उद्योग को अधिक धन की आवश्यकता है, निक्षेपकर्त्ताओं में आतंक छा जाता है और वे अपने जमा की वापिसी कर लेते हैं और इस प्रकार उस प्रणाली को उद्योग के लिए दुर्बलता व परेशानी का जरिया बना देते हैं। अतः वित्त-पोषण की दृष्टि से इस प्रणाली की सूखे के समय के साथी से तुलना की गई है। जब उद्योग विकासोन्मुख है तब आवश्यकता से अधिक धन आ गिरता है। लेकिन मन्दी के समय यह स्रोत सूख जाता है। औद्योगिक फर्म इस स्रोत पर निर्भर नहीं कर सकतीं क्योंकि मालूम नहीं कि कब निक्षेपों की वापिसी कर ली जाय। अतीत में, व्यवसाय में संबद्ध अभिकर्त्ताओं की हैसियत और साख इन निक्षेपों की प्राप्ति का कारण थी, लेकिन अब इन अभिकर्त्ताओं की साख की अवस्था बदल चुकी है और इसलिए पूंजी सग्रह की इस विधि पर बहुत अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता।

प्रबन्ध अभिकर्ता

भारतवर्ष में औद्योगिक व्यवसायों के प्रवर्तन, वित्तपोषण तथा प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रबन्ध अभिकर्त्ता केन्द्रीय आकर्षण रहे हैं। औद्योगिक क्षेत्र में प्रबन्ध अभिकर्ता अद्वितीय संस्थात्मक अभिकरण (Institutional Agency) हैं। उन्होंने न केवल स्थिर (Block) तथा कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध किया है, अपितु इसे विभिन्न स्रोतों से प्राप्त करने में साधन का काम भी किया है। अतीत में उन्होंने भारतीय औद्योगिक उपक्रमों के विकास में निम्नलिखित प्रकार से बहुमूल्य सेवाएं की हैं: औद्योगिक कम्पनियों का प्रवर्तन करके, स्वयं वृहत राशि में अंश क्रय करके या अन्य प्रकार से अपने प्रभावों का उपयोग करके, ताकि उनके मित्रों, सम्बन्धियों व सामान्य जनता के बीच अंश प्रस्तुत किये जा सकें। उनके अधीन कम्पनियों को जब कभी भी अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता हुई है, तब उन्होंने इसकी पूर्ति की है। प्रत्यक्ष वित्त-पूर्ति के अतिरिक्त प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने ऋण पत्र, बैंक ऋण तथा लोक निक्षेप के रूप में धन आकृष्ट किया है। कम्पनी की प्रतिभूतियों को बाजार में प्रस्तुत करने के द्वारा वे पश्चिमी देशों के अभिगोपकों या निर्गमन गृहों या यूरोप के औद्योगिक बैंकों के कार्यों का सम्पादन करते हैं और इस प्रकार विनियोक्ता तथा कम्पनी को एक दूसरे के सम्पर्क में लाते हैं। उदाहरणतः अहमदाबाद में सूती वस्त्र मिलों की पूंजी का प्रायः ६० प्रतिशत प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के हाथ में है और ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं जिनमें कुछ अंशों के ८५ से लेकर ९० प्रतिशत का स्वामित्व इन्होंने किया है। बम्बई में भी, वे बहुसंख्यक अंशों के धारक हैं। उनके द्वारा प्रारम्भ में बहुत बड़ी संख्या में अंशों का लिया जाना और फिर जनसाधारण के बीच उन्हें बेच देना वैसा ही कार्य है जैसा विनियोग के क्षेत्र में जर्मनी के औद्योगिक बैंकों का। विकास काल में या मन्दी के समय, जब बैंकों से रुपये नहीं मिल सकते और न जनता ऋण पत्र खरीदती या निक्षेप जमा करती है, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान की है।

यद्यपि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आवश्यक पूंजी के प्रबन्ध द्वारा भारतीय उद्योग की महत्वपूर्ण सेवाएं की हैं, फिर भी इस प्रणाली की

बहुतेरी त्रुटिया हैं। डाक्टर लोकनाथन तीन प्रकार के दोषो की ओर सकेत करते है, यथा (क) उद्योगो म औद्योगिक विचारो के प्राबल्य की अपेक्षा वित्तीय विचारो (Financial Considerations) का प्राधान्य, (ख) वित्त के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ पर अतिशय निर्भरता (ग) उनके नियत्रण में स्थित कम्पनियो के अशो मे अतिशय सट्टेबाजी। इन त्रुटियो मे इधर के वर्षों म उनकी आर्थिक स्थिति में तथा निजी सम्पत्ति में हुआ ह्रास भी जोडा जा सकता है। अब हम उद्योगो की प्रारम्भिक पूजी का सचय करने के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ पर निर्भर नही रह सकते। वर्तमान समय में अभिकर्त्ताओ की असीम गिरावट से यह स्थिति उत्पन्न हो गई है कि उनके लिए कम्पनिया को सहायता प्रदान करना उत्तरोत्तर एक कठिन काम होता जा रहा है। कतिपय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने जो दुष्कृत्य किये है, उनका भण्डाफोड हो चुका है और अब जनता में उस वर्ग के विरुद्ध बडा अविश्वास पैदा हो गया है। इन परिस्थितियो में भारतीय उद्योगो का वित्तपोषण पहले की अपेक्षा उन पर कम छोडना चाहिए।

सयुक्त स्कध बैंक

भारतीय उद्योगो की स्थिर व कार्यशील पूजी की पूर्ति के सम्बन्ध मे बैंको की विवशता के बारे मे काफी कहा और लिखा जा चुका है। यह कहा जाता है कि न्हें जर्मनी के बैंको की तरह न ेलि कम्पनियो के अशो व ऋ पत्रो के क्रय द्वारा उद्योग को बढावा ेना चाहिए। लेकिन ऐसा कहने के समय लोग यह भूल जाते है कि १८४८–१८७० में, जब जर्मन बैंक ये कार्य करते थे, वे विशुद्ध रूप म औद्योगिक बैंक थे, तथा निक्षेप की प्राप्ति नही करते थे और जब गत शताब्दी के तीसरे चर में वे निक्षेप प्ति करने लगे तब "मिश्रित बैंक" हो ग`, जिन्होने पहले के विनियोग प्रन्यास के कार्यों को केवल ४३ वर्ष (१८७०–१९१३) की लघु अवधि के लिए निक्षेप व्यवसाय से सयुक्त कर दिया।

प्रथम विश्व-युद्ध के समय तथा पश्चात् बैंको की यह इच्छा जाती रही कि वे दीर्घावधि के लिए रुपये उधार दें तथा उन्होने उत्तरोत्तर नियमित वाणिज्य अधिकोषण पर ध्यान जमाना शुरू कर दिया। अब वे निक्षेप अधिकोषक बन गये है जो इगलैण्ड तथा भारतवर्ष के बैंको की तरह वाणिज्य बैंको के कार्य करते है। इन परिस्थितियो मे औद्योगिक वित्त के स्रोत की हैसियत मे जर्मन बैंको के उदाहरण का औचित्य जाता रहा है। चूकि भारतीय सयुक्त स्कन्ध बैंक निक्षेप बैंक है और उनके दायित्व लघुकालीन दायित्व है, अत वे लघुकाल के लिए ही अग्रिम दे सकते है। वे अपने धन को दीर्घकालीन ऋण में नहीं फसा सकते, क्योकि इस बात की सभावना बनी रहती है कि वे माग पर या अग्रिम लघुकालीन सूचना देकर वापिस ले लिये जायेंगे। आस्तियो की तरलता बनाये रखने के हेतु भारतीय बैंको ने उद्योगो की स्थिर पूजी आवश्यकता के वित्तपोषण में कोई योग नहीं दिया है।

प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् "औद्योगिक बैंको" की स्थापना द्वारा, जिनमें टाटा इन्डस्ट्रियल बैंक सबसे बडा था, दीर्घकालीन वित्तपोषण का असफल प्रयोग किया

हैं, यदि लाभांश नीति बहुत उदार न रखी जाय। संचितियों के निर्माण हेतु संचिति निधि (Reserve Fund) निर्मित करने की यह नीति व्यष्टि इकाइयों को भी बड़ी-से-बड़ी मन्दी के टूटनेवाले प्रभाव से बचाने में सहायता प्रदान कर सकती है। इसके विपरीत, ये संचितियां व्यवसाय मंदी के समय में, जब सामग्रियां सस्ती हों, श्रम की बहुलता हो तथा बेहतरी का कार्य व्यवसाय को तनिक भी बाधा पहुंचाये बिना सम्पादित हो सकता हो, विस्तार तथा बेहतरी के लिए बड़ी ही लाभपूर्ण रीति से प्रयुक्त की जा सकती है। पुनर्विनियोग की यह विधि सस्ती है तथा प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा दिये जाने वाले वित्त की आवश्यकता खत्म करती है।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी, अर्जन से आवश्यकीय विकास तथा पुनर्गठन के निमित्त पूंजी संचय की प्रणाली उस योजना से कहीं ज्यादा युक्तिसंगत है, जिसके द्वारा वर्ष प्रतिवर्ष व्यक्तियों की आय के रूप में वृहत लाभांश राशि का वितरण किया जाता है। दूसरे पथ के अनुसरण (मानो प्रत्येक वर्ष लाभांश के वितरण) से यह आशा की जाती है कि लोग प्राप्त आय को खर्च नहीं करेंगे, वरन् विकास के हेतु नयी पूंजी का निर्माण करने के लिए विनियोजित करेंगे, हालांकि ऐसा मानना अतार्किक दिखाई पड़ता है। उद्योग की दृष्टि से उन्नत देशों में साफ लक्षण दिखाई पड़ते हैं कि औद्योगिक विकास के लिए पूंजी के निमित्त आय में व्यक्तियों द्वारा बचत करने की युगों से आती पद्धति पुरानी पड़ चुकी है। राज्य राष्ट्रीय बचत की राशि का न केवल निर्धारण करने की स्थिति में है बल्कि इसे विभिन्न उद्योगों व सेवाओं के बीच वितरण करने की स्थिति में भी हो सकता है। ब्रिटिश तथा अमेरिकन कम्पनियों के निर्माण व विकास में अर्जन का पुनर्विनियोग एक बहुत बड़ा घटक रहा है। ऐसा मानने का कोई कारण नहीं दीखता कि यह पद्धति भारतवर्ष के लिए लाभदायक क्यों न हो। वास्तविकता तो यह है कि यह पद्धति हमारे देश के लिए, जहां पर्याप्त पूंजी निर्माण, तथा पूंजी निर्देशन की अविलम्ब तथा बड़ी आवश्यकता है, बड़े काम की प्रमाणित होगी।

पुनर्विनियोग में कुछ त्रुटियां भी हैं और यदि इसे सीमा से बाहर प्रयुक्त किया गया तो यह खतरनाक भी प्रमाणित हो सकता है। अत्युत्साही संचालकों के हाथ में पड़कर विनियोग, उद्योग में विनियोगाधिक्य का कारण हो सकता है, जिसमें अति-विस्तार होगा जिसका एक अनिवार्य परिणाम होगा एकपक्षीय उपभोग (One-sided Consumption)। पुनः वे अंशधारी, जिनकी कम्पनी में, अलग-अलग, दिलचस्पी नहीं होती और जो सर्वदा बदला करते हैं, अधिक से अधिक लाभांश चाहते हैं। यदि संचालकों ने संचिति निर्माण की नीति अपनाकर, अनजाने ही सही, अंशधारियों का यह विश्वास दिला दिया है कि वे अंशधारियों के हितों का विचार नहीं करते, तो इस बात का खतरा है कि कहीं पूंजी सम्पूर्ण उद्योग की दृष्टि से असन्तुलित ढंग से न वितरित हो जाय। इसके विपरीत, इस प्रणाली से अंशधारी उन प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के चंगुल में निकल जायेंगे जो पुनर्विनियोग के लिए लाभ में से कुछ राशि निकाल लेने पर अंशधारियों के लिए जितना धन बच रहता उसमें बहुत कम उनके लिए छोड़ते हैं। इसलिए यदि स्वयं-नियोजन की सावधान, लेकिन साहसपूर्ण नीति का अनु-

सरण किया जाय तो भारतीय उद्योग प्रबन्ध अभिकर्ता से, जिन्हे अन्त में खतम हो ही जाना है, स्वतन्त्र आन्तरिक वित्त की प्रणाली विकसित कर सकता है।

उद्योगों को राजकीय सहायता की आवश्यकता सभी जगहो में लोग बहुत दिनो से मानते आये हैं। किन्तु भारतवर्ष में एक विश्व युद्ध ने सरकार को तटस्थता की नीति (Lassez faire) की नीद म जगाया तथा उसका यह भ्रान्त विचार "कि देश के आर्थिक जीवन म राज्य का हस्तक्षेप इसके कल्याण के लिए हानिकारक है", छुड़ाया। औद्योगिक आयोग ने, जो १९१६ में नियुक्त किया गया था, अन्य सिफारिशो के साथ यह सिफारिश भी की कि राज्य को उद्योगो के वित्तपोषण में निश्चित कार्य करना चाहिए। आयाग न सुझाव दिया कि राज्य सहायता का यह रूप होना चाहिए: नयी कम्पनियो के लाभाश प्रत्याभूत करना, चालू कम्पनियों को ऋण प्रदान करना, राष्ट्रीय महत्व के उद्योगो की प्रतिभूतियो—अश तथा ऋण पत्र, दोनो—का क्रय करना तथा उनके उत्पादन को खरीदने की गारंटी देना। यद्यपि मद्रास तथा उत्तर प्रदेश की सरकारो द्वारा राज्य सहायता के लिए कतिपय प्रयत्न किये गए, लेकिन राज्य सहायता के युग का आरम्भ औद्योगिक आयोग की रिपोर्ट के प्रकाश के बाद अनेक प्रान्तो द्वारा उद्योग राज्य सहायता अधिनियमो की स्वीकृति से हुआ। सर्वप्रथम मद्रास सरकार ने १९२२ में एक अधिनियम स्वीकृत किया, जिसका उद्देश्य था "कृषीय तथा औद्योगिक कार्य सम्पादन की सुविधा तथा मशीनो की खरीद व उन्हें खड़ा करने के हेतु ऋण स्वीकृत करना।" उसी अधिनियम के अनुरूप १९२३ में "बिहार तथा उड़ीसा अधिनियम" स्वीकृत हुआ। दूसरे प्रान्तो में भी उद्योग राज्य सहायता अधिनियम स्वीकृत हुए और अगले दस वर्षों की अवधि में इसी प्रकार सभी प्रान्तो में तत्सम्बन्धी अधिनियम स्वीकृत हुए। इन अधिनियमो के अन्तर्गत पर्याप्त ऋण दिये गये लेकिन परिणाम निराशाजनक ही रहा जिसके कारण कुछ लोगो को यह विश्वास हो गया कि उद्योगो को राज्य द्वारा सहायता दिये जाने का सिद्धान्त ही गलत है। लेकिन उद्योगों को सहायता की यह प्रणाली इसलिए असफल नही रही कि इसमें कुछ मौलिक असगति रही थी, बल्कि यह मुख्यत इसलिए असफल रही कि इसका प्रयोग दोषपूर्ण था। विभिन्न इकाइयों के बजाय कुछ व्यवसायी को बड़ी रकमो के ऋण देने तथा ऋण के पये देने में नौकरशाही विलम्ब के कारण वैसा निराशाजनक परिणाम हुआ। इसमे प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारो की औद्योगिक नीति में समन्वय की कमी भी जोड़ी जा सकती है। लेकिन सबसे बड़कर दोष था इस प्रकार के उपयोगी तथा कुशल यन्त्र की कमी, जो सरकारी रुपये देने से पहले राज्य सहायता के लिए प्रार्थी उद्योग की ऋण-योग्यता का सावधानीपूर्वक तथा सम्पूर्णता के साथ अनुमान करे, तथा व्यवसायी फर्म की दृष्टि से इसकी दृढ़ता का मूल्याकन करे।

औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation)

इन निराशाजनक परिणामो, तथा भारत में औद्योगिक बैंको की असफलताओ एव उद्योग के लिए राज्य सहायता को सफल बनाने की दृष्टि से सेंट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी

कमिटी ने प्रान्तीय औद्योगिक कारपोरेशन की स्थापना के लिए सिफारिश की थी, हालांकि कतिपय अवस्थाओं में अखिल भारतीय औद्योगिक निगम या (कारपोरेशन) को भी सम्भव बताया था। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पहले तक रिपोर्ट की इन सिफारिशों के अनुकूल कोई कार्यवाही नहीं की गई। युद्ध समाप्ति के बाद एक बार फिर भारत में औद्योगिक वित्त की समस्या पर लोगों का ध्यान केन्द्रित हुआ। इसी अवधि में दुनिया के विभिन्न देशों की सरकार उद्योग को वित्तीय सहायता प्रदान करने के हेतु विशिष्ट संस्थाओं का गठन करने लगी। यहां भारतवर्ष में युद्ध के पश्चात् युद्धकालीन उत्पादन को शान्तिकाल के लिए उत्पादन में, परिवर्तन करने, प्रतिस्थापन (Replacement) तथा मरम्मत के जरिये उद्योगों को पुनः सज्जित करने तथा कतिपय उद्योगों में उद्योगों के आधुनिकीकरण तथा विस्तार (Modernisation and Extension) की विशेष समस्याएं उठ खड़ी हुई। जब भारतवर्ष स्वतन्त्र हो गया, तब समस्या ने नवीन रूप धारण कर लिया, क्योंकि अब लोग इस बात की आशा करने लगे कि विदेशी सरकार ने जिस काम को नहीं किया, उसे अपने देश की सरकार सम्पादित करेगी। इन लोगों की आशा की पूर्ति करने के लिए तथा उद्योगों को राज्य सहायता की अविलम्बनीयता का अनुभव करते हुए अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार ने ६ नवम्बर १९४६ को केन्द्रीय विधान सभा में औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया। १९४८ के आरम्भ में यह विधेयक अन्तिम रूप में पास हुआ और मार्च १९४८ में इस गवर्नर-जनरल की अनुमति मिल गयी और औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम, जिसका उद्देश्य भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना थी, १ जुलाई, १९४८ में लागू हुआ। इस अधिनियम का अधिक्षेत्र जम्मू तथा काश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत है।

अपने चार साल के कार्यकाल में इस निगम ने इस देश के औद्योगिक विकास के लिए एस समय में पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान की जब बाजार से पूंजी प्राप्त करना सुलभ नहीं था। देश के बृहत्तर औद्योगिक विकास के हित की दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया कि इस निगम का कार्य क्षेत्र बढ़ाया जाय तथा इसकी स्थिति ऐसी हो कि यह अपने ससाधनों का, संस्थाओं से ऋण द्वारा, यथा पुनर्निर्माण, व विकास के अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank for Reconstruction and Development) के ऋण द्वारा, विस्तार कर सके। अतः, औद्योगिक वित्तनिगम अधिनियम में १९५२ में संशोधन किया गया। निम्नलिखित सदर्भों में निगम की वर्तमान स्थिति का, जैसी कि वह ३० जून १८५३ को थी और उसकी पंचम वार्षिक रिपोर्ट में उल्लिखित है, विवेचन किया जायगा।

पूंजी ढांचा—निगम की अधिकृत पूंजी १० करोड़ रुपये है जो ५००० रुपये वाले पूर्णतः घोषित २०,००० अंशों में विभाजित है। सम्प्रति १०,००० अंश ही, जिनका कुल मूल्य ५ करोड़ रुपये है, निर्गमित किये गये हैं तथा शेष अंश केन्द्रीय सरकार की आज्ञा से समय-समय पर आवश्यकता तथा सुविधा के अनुसार निर्गमित किए जायेंगे। पांच करोड़ रुपये (१०,००० अंश) की इस निर्गमित पूंजी में केन्द्रीय सरकार तथा

रिजर्व बैंक में से प्रत्येक ने १ करोड़ रुपये के २००० अंश, अनुसूचित (Scheduled) बैंकों ने सवा करोड़ रुपये के २,५०० अंश, बीमा कम्पनियों, विनियोग प्रन्यासों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं ने सवा करोड़ रुपये के २,५०० अंश तथा सहकारी बैंकों (Co-operative Banks) ने एक करोड़ रुपए के १,००० अंश खरीदे हैं। सहकारी बैंक अपने हिस्से के पूरे अंश नहीं ले सके, अतः अधिनियम की धारा ४ (५) के अनुसार केन्द्रीय सरकार तथा रिजर्व बैंक ने ७९ अनावंटित अंश ले लिये। ३० जून १९५५ को अंश वितरण की स्थिति इस प्रकार थी —

	अंशधारी	लिए गये अंशों की संख्या	राशि
(१)	केन्द्रीय सरकार	२,०००	१,००,००,०००
(२)	रिजर्व बैंक	२,०५४	१,०२,७०,०००
(३)	अनुसूचित बैंक	२,४०५	१,२०,२५,०००
(४)	बीमा कम्पनियां, विनियोग संन्यास तथा अन्य वित्तीय संस्था	२,५९६	१,२९,८०,०००
(५)	सहकारी बैंक	९४५	४७,२५,०००

अलग-अलग संस्थाओं के बीच अंशों के वितरण के सम्बन्ध में यह उपबंध है कि कोई भी संस्था अपने वर्ग की संस्थाओं के लिए सुरक्षित अंशों के १० प्रतिशत से अधिक नहीं ले सकती। अंश अंशधारियों के उक्त वर्गों के बीच ही हस्तान्तरणीय हैं, अन्य कोई उन्हें नहीं ले सकता। निगम के पूंजी ढांचे की इस बात की कुछ क्षेत्रों में आलोचना की गयी है कि यह लोगों को निगम के अंशधारी बनने का अवसर प्रदान नहीं करता। मैं अनुभव करता हूं कि यह उचित दशा में उठाया गया कदम है क्योंकि लोक निगम (Public Corporation) के ढंग की संस्थाओं के लिए व्यष्टि अंशधारी न तो आवश्यक हैं और न वांछनीय ही, क्योंकि कुछ व्यष्टियों के समूह के हाथ में इसका एकाधिपत्य नहीं देना है। निगम के अंश मूलधन की वापिसी तथा वार्षिक लाभांश शोधन की दृष्टि से केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रत्याभूत हैं। सम्प्रति लाभांश सवा दो प्रतिशत की दर पर प्रत्याभूत हैं। लाभांश की अधिकतम दर ६ प्रतिशत है लेकिन इस दर से लाभांश का शोधन तभी होगा जब प्रदत्त पूंजी राशि के बराबर संचित निधि निर्मित हो चुकी हो और प्रत्याभूति के अन्तर्गत सरकार द्वारा चुकायी गयी रकम की वापसी निगम के द्वारा हो चुकी हो। कालक्रम से जब संचित निधि अंश पूंजी के बराबर हो जाएगी तब ५ प्रतिशत से अनधिक लाभांश घोषित करने के बाद बची राशि केंद्रीय सरकार को दे दी जाएगी। १९५३ का लाभ सवा दो प्रतिशत के प्रत्याभूत ब्याज के लिए पर्याप्त से भी अधिक था। अतः १९५३ का वर्ष प्रथम वर्ष था जब सरकारी कोष से रुपये नहीं लिये गये। पर १९५४ में सरकारी कोष से धन लेना पड़ा था और इस प्रकार ३० जून, १९५४ को समाप्त हुए वर्ष तक, प्रत्याभूत लाभांश देने के लिए

सरकार से ली गयी। राशि ३०,९५,४९० रु० २ आने ६ पाई थी। १९५५ में ९,६९,५०९ रु० ४ आ० ५ पाई का सारा शुद्ध लाभ करा के लिए रख दिया गया था। इसलिए १९५५ में भी सरकार को प्रत्याभूत लाभांश की सारी राशि ११,१५,००० रुपये देनी पड़ी।

अंश पूंजी के अतिरिक्त, निगम बन्ध पत्र तथा ऋण पत्र भी निर्गमित कर सकता है, तथा सर्वसाधारण से निक्षेप स्वीकृत कर सकता है, जो निक्षेप तिथि से पाच वर्ष की अवधि के पहले शोध्य नहीं है। किसी भी समय इन निक्षेपों की कुल रकम १० करोड़ रुपये तक सीमित कर दी गयी है। १९४९ के जून के अन्त तक निगम के द्वारा स्वीकृत कुल ऋणों की राशि ३,४२,२५,००० रुपये थी और चूंकि निगम की प्रदत्त पूंजी ५ करोड़ रुपये ही थी, अतः निगम को बन्धपत्र निर्गमन द्वारा अपने मसाधनों को अधिक दृढ़ बनाना पड़ा। १९४९–५० में निगम ने साढ़े सात करोड़ रुपये के मूल्य के १९६४ में शोध्य ३॥ प्रतिशत के बंध पत्र निर्गमित किये जिन्हें केन्द्रीय सरकार ने औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम की धारा २१ के अन्तर्गत मूलधन तथा ब्याज शोधन के सम्बन्ध में प्रत्याभूत किया है। ३० जून, १९५५ को अशोधित कुल बन्धपत्रों की राशि ७,८०,५०,००० रुपये थी। अभी तक लोक निक्षेप नहीं आमन्त्रित किये गये हैं। संशोधन अधिनियम १९५२ निगम को यह अधिकार देता है कि वह विश्व बैंक (World Bank) से विदेशी चलार्थ में ऋण की याचना करे तथा यह केन्द्रीय सरकार को ऐसे ऋण को प्रत्याभूत करने की शक्ति प्रदान करता है। ३० जून १९५५ का निगम पर ऐसा कोई ऋण नहीं था। निगम रिजर्व बैंक से भी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की ऐसी प्रतिभूतियां की जमानत पर, जो माग पर या ९० दिनों की अवधि के उपरान्त शोध्य हो, ऋण ले सकता है। यह रिजर्व बैंक से अपने बन्धपत्रों तथा ऋणपत्रों की जमानत पर ऋण प्राप्त कर सकता है जो १८ महीनों के भीतर शोध्य हैं, बशर्ते कि इस प्रकार के ऋण की कुल रकम तीन करोड़ रुपये से अधिक न हो। १९५५ में कुल २९ लाख रुपये की राशि रिजर्व बैंक से उधार ली गयी थी, और प्रतिभूति के रूप में निगम के १९५६ में परिपक्व (mature) होने वाले, २॥ करोड़ रुपये के अंकित मूल्य के ३॥ प्रतिशत के बंधपत्र रख गये थे। यह सारा ऋण ३० जून, १९५५ तक चुका दिया गया था। निगम के वित्तीय ढांचे को और सबल बनाने के लिए उसे यह अनुज्ञा प्राप्त है कि रिजर्व बैंक से परामर्श के बाद, यह अपने कोष को अनुसूचित बैंकों या राज्य सहकारी बैंक में रखे। एक विशेष संचिति निधि का निर्माण किया गया है जिसमें केन्द्रीय सरकार तथा रिजर्व बैंक द्वारा धारित अंशों पर देय सारे लाभांश उस समय तक जमा होते रहेंगे जब तक यह राशि ५० लाख रुपये से अधिक न हो जाए।

प्रबन्ध—निगम के कार्य व व्यवसाय के सामान्य अधीक्षण तथा निर्देशन का भार सचालक मंडल को सौंप दिया गया है जो एक कार्यकारिणी समिति तथा प्रबन्ध सचालक की सहायता से उन सारे अधिकारों का प्रयोग तथा कार्यों का सम्पादन कर सकती है, जिन्हें निगम कर सकता है। अपने कृत्यों (functions) का पालन करते समय सचालक मंडल व्यावसायिक सिद्धान्त के अनुसार आचरण करेगा तथा

व्यापार, उद्योग एवं सर्वसाधारण के हितों का उचित ख्याल रखेगा। किन्तु कृत्य पालन में नीति के प्रश्नों पर मंडल उन हिदायतों पर चलेगा जो इसे केन्द्रीय सरकार से प्राप्त हों। यदि मंडल इन हिदायतों का पालन करने में असमर्थ रहा तो यह अधिक्रांत (Superseded) हो सकता है (धारा ६)। मंडल के ४ संचालक केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किये गये हैं, २ संचालक रिजर्व बैंक के केन्द्रीय मंडल द्वारा मनोनीत हैं, तथा २ संचालक अनुसूचित बैंकों द्वारा, २ संचालक बीमा कम्पनियों आदि द्वारा और दो संचालक सहकारी बैंकों द्वारा चुने गये हैं। मंडल तथा उप-प्रबन्ध-संचालक की सिफारिश पर विचार करने के बाद प्रबन्ध संचालक केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया गया है।

निगम का क्षेत्र—निगम साधारणतः लोक सीमित कम्पनियों या सहकारी समितियों द्वारा, न कि निजी सीमित कम्पनियों या साझेदारी या व्यष्टियों द्वारा, बड़े पैमाने के निजी उपक्रम को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। इससे यह भी अपेक्षा नहीं की जाती कि यह राज्य के स्वामित्व वाले उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करेगा। लघुमाप उद्योगों की सहायता प्रदान करने के लिए कई राज्यों ने समकक्ष राज्य निगमों की स्थापना की है। ऐसी भी व्यवस्था है कि सहायता प्राप्त करने के लिए व्यवसाय अनिवार्यतः भारतवर्ष में पंजीयित हों तथा निर्मिति या मालों के निर्माण या खदान या विद्युत के उत्पादन या वितरण या शक्ति के किसी अन्य रूप या जहाजरानी में संलग्न हों। लेकिन १९५३ में इसने लोक कम्पनियों द्वारा संचालित लघु औद्योगिक व्यवसायियों से ऋणार्थ प्राप्त आवेदन पत्र पर विचार किया, उदाहरणार्थ, इसने एक लघु रसद्रव्य कारखाने (कैमिकल वर्क्स) को ५०,००० रुपये ऋण प्रदान किया।

निगम को निम्नलिखित प्रकार के व्यवसायों के संचालन तथा सम्पादन करने का अधिकार प्राप्त है—

(१) *औद्योगिक व्यवसायों द्वारा लिये गये उन ऋणों को प्रत्याभूत करना* जो ऐसी अवधि के अन्तर्गत शोध्य हैं जो २५ वर्ष से अधिक नहीं हो, तथा जो खुले बाजार में लिये गये हों।

(२) औद्योगिक कम्पनियों द्वारा निर्गमित स्कन्धों, अंशों, बन्ध पत्रों, या ऋण पत्रों को अभिगोपित करना, लेकिन ऐसी प्रतिभूतियों को ७ वर्षों के अन्तर्गत यापित कर देना अनिवार्य है। पर यदि केन्द्रीय सरकार ने समय बढ़ा दिया हो तो यह अनिवार्य नहीं।

(३) ऋण व अग्रिमों को प्रत्याभूत करना या औद्योगिक कम्पनियों के उन ऋण पत्रों में अभिदान करना जो २५ वर्षों के अन्तर्गत शोध्य हों।

(४) केन्द्रीय सरकार के निमित्त और उसके अनुमोदन से विकास तथा पुनर्निर्माण के अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank of Development and Reconstruction) के निमित्त कम्पनियों को उनके द्वारा

स्वीकृत ऋण के विषय में अभिकर्ता का काम करना।

(५) केन्द्रीय सरकार से धन उधार लेना।

(६) अपने पास आहित (Pledged) या बंधकित (Mortgaged) सम्पत्ति पट्टे पर देना।

(१) तथा (३) के अन्तर्गत वह ऋण तब तक नहीं दे सकता जब तक वह ऋण पर्याप्त आधान, बंधक, उपाधान या सरकारी प्रतिभूतियों, स्टाक, या अंशों के अभिहस्ताक्षन द्वारा प्रत्याभूत न हो या ऋण पत्र, सोना चाँदी, चल या अचल सम्पत्ति या अन्य मूर्त आस्तियाँ द्वारा प्रत्याभूत न हो। दूसरे शब्दों में, मूर्त आस्तियों द्वारा प्रत्याभूत किये जाने पर ही निगम ऋण दे सकता है या उसे प्रत्याभूत कर सकता है। यह भी व्यवस्था की गयी है कि किसी एक औद्योगिक व्यवसाय से निगम ऐसा अनुबन्ध नहीं कर सकता जिसके द्वारा वह अपनी प्रदत्त पूँजी के १० प्रतिशत से अधिक ऋण दे, लेकिन किसी भी हालत में १ करोड़ से अधिक का ऋण यह नहीं दे सकता। सहायता प्राप्त व्यवसाय पर निगम किसी भी प्रकार की शर्त, जिसे वह आवश्यक समझता हो, डाल सकता है। ऐसी शर्त में सहायता-प्राप्त व्यवसाय के संचालक मंडल में संचालक की नियुक्ति भी शामिल है। वह सहायता-प्राप्त व्यवसाय को अपने हाथ में ले सकता है यदि वह ऋण शोधन में चूक करता है। वह ऐसे व्यवसाय में अपना संचालक भी नियुक्त कर सकता है। १९५३ में एक कम्पनी की व्यवस्था निगम ने अपने हाथ में ली। १९५३ और १९५५ में निगम ने चार और कम्पनियों को, जिन्होंने ऋण लिया था और जिनका कार्य असंतोषजनक सिद्ध हुआ था, अपने कब्जे में लिया। इसे यह भी अधिकार प्राप्त है कि वह ऋण का शोध करने वाले ऋणी के विरुद्ध कार्रवाई करे तथा नियत तिथि के पहले ऋण शोधन की माँग करे। जहाँ तक प्रतिभूतियों को अभिगोपित करने का प्रश्न है, निगम ने अभी तक यह कार्य नहीं किया है। इसका कारण धन बाजार तथा स्टाक एक्सचेंज की वर्तमान अवस्था है। किन्तु परिस्थिति के सुधरने पर तथा उपयुक्त प्रस्ताव प्राप्त हो तो वह अभिगोपन कार्य भी करने की अभिलाषा रखता है। निगम के लिए (१) अधिनियम की व्यवस्था के अतिरिक्त निक्षेप प्राप्त करना, तथा (२) लोकसीमित कम्पनियों के अंशों में सीधे अभिदान करना निषिद्ध है।

उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि निगम बंधक ऋणदान (Mortgage Lending) को अभिगोपन व्यवसाय से संयुक्त करता है। इस प्रकार, वह निर्गमन गृह के रूप में कार्य करता है और सीमित दायित्व वाली कम्पनियों की प्रतिभूतियों के निर्गमों को अभिगोपित करता है, तथा ऋणदाता संस्था की हैसियत से भी कार्य करता है और दीर्घकालीन ऋण प्रदान तथा प्रत्याभूत करता है। किन्तु वह धारण व्यवसाय नहीं कर सकता। आयकर अधिनियम की दृष्टि में निगम कम्पनी समझा जाता है, जिसे अपनी आय, लाभ तथा प्राप्ति (Gains) पर आयकर तथा अधिकर (Super-tax) चुकाना पड़ता है। यदि यह देखना अभीष्ट हो कि राज्य-नियन्त्रित तथा सहायता-प्राप्त संगठन किस हद तक

निजी उपक्रम से तुलनीय हो सकता है, तब तो बात दूसरी है, अन्यथा यह साफ-साफ नहीं दिखाई देता कि यह व्यवस्था क्यों की गई है। कर लगाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि सरकार ने न्यूनतम लाभांश का प्रत्याभूत किया है और न्यूनतम लाभांश चुकाने तथा सचिति की व्यवस्था करने के उपरान्त जो कुछ भी बच रहता है वह केन्द्रीय सरकार को दे दिया जाता है। क्या यह बात है कि आधिक्य खण्ड (Surplus clause) के कारण जितना सम्भव है, सरकार भुगतान के सम्बन्ध में उससे अधिक साधना चाहती है ?

निगम किस प्रकार कार्य करता है—उन प्रार्थी को जो भारतवर्ष में पंजीयित व सीमित कम्पनी या सहकारी समिति के अतिरिक्त अन्य न हो तथा जो निर्मिति या विधायन (Processing), खदान (Mining) या विद्युत या अन्य शक्ति के उत्पादन तथा वितरण अथवा जहाजरानी के कार्य में संलग्न हो, निम्नलिखित के विषय में विस्तृत सूचना प्रस्तुत करनी होती है—प्रार्थी की कार्य परिधि, प्रारम्भ या प्रारम्भ की जाने वाली परियोजनाएं (Projects) उत्पादित माल की बिक्री या वितरण की गुंजाइश प्रार्थित ऋण की राशि, दी गई प्रतिभूति की प्रकृति। ऋण स्वीकृत करने में निगम निम्नलिखित कसौटी प्रयुक्त करता है —

१ उद्योग की राष्ट्रीय महत्ता।
२ प्रबन्ध का अनुभव तथा क्षमता।
३ योजना की साध्यता।
४ गुण या क्वालिटी की दृष्टि से कम्पनी के उत्पादन को प्राप्त ख्याति।
५ कम्पनी के समाधनों की तुलना में योजना की लागत।
६ प्रस्तुत प्रतिभूति तथा ऋण के साथ इसका अनुपात।
७ क्या स्वीकृत सहायता कम्पनी को क्षमता तथा सुविधा से कार्य सम्पादन में सहायता प्रदान करेगी ?
८ क्या उद्योग ऐसा तो नहीं है जिसका उत्पादन देश की आवश्यकताओं से अतिरिक्त है ?
९ क्या कम्पनी के पास पर्याप्त प्राविधिक कर्मचारी है ?
१० क्या वर्षों तक कच्ची सामग्री कम्पनी को पर्याप्त मिलती रहेगी।

निगम अपने अफसरों द्वारा फैक्टरियों के कार्य का निरीक्षण करवाता है, और उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे कम्पनी की पुस्तकों व खाता, आस्तियों के मूल्यांकन, इनके उत्पादन के लिए बाजार, आदि, पर रिपोर्ट दें। यदि चाहे तो औद्योगिक व्यवसाय प्रबन्ध सचालक की उपस्थिति में निगम के परामर्शदाताओं के साथ अपनी योजनाओं के विवेचन के लिए अपने विशेषज्ञों को भेज सकते हैं। इस बात का पता लगाने के लिए कि जो योजना प्राविधिक रूप से साध्य है, वह वित्तीय दृष्टि से भी दृढ़ है या नहीं, कम्पनी की भूमि, भवन, मशीन, तथा कार्यशील पूंजी सम्बन्धी आवश्यकता की आद्योपान्त परीक्षा की जाती है। बहुधा ऐसा होता है कि लागत में कमी करने तथा योजना को उन्नत करने के लिये रद्दोबदल का सुझाव दिया जाता है।

फरवरी १९५२ तक, निगम द्वारा लिये जाने वाले व्याज की दर ५।। प्रतिशत थी जिसमे आधा प्रतिशत उस हालत म छूट दी जाती थी जब व्याज और मूल की किश्ते निर्धारित तिथियो पर चुका दी जाय। इस प्रकार वास्तविक व्याज दर ५ प्रतिशत ही थी लेकिन ऋण प्राप्त करने के व्यय म वृद्धि के कारण निगम को बाध्य होकर १८५२ में ब्याज दर ६ प्रतिशत तथा १९५३ म ६।। प्रतिशत कर देनी पडी लेकिन निर्धारित समय पर भुगतान के लिए छूट आधा प्रतिशत ही रही। यही ब्याज दर और छूट की दर आज भी है। ये दर व्यापारिक दरो मे पर्याप्त कम है तथा अन्य ऋणदायको की दरो स और भी कम है। यह पद्धति ऋण-पत्र निर्गमन से भी कम खर्चीली है, क्योंकि उसमे ऋण-पत्र निर्गमन कमीशन, दलाली तथा ऋण-पत्र प्रन्यास के अन्तर्गत प्रन्यासी व्यय पडते है। निगम प्राय कम्पनी के स्थिर आस्तियो के प्रथम बंधन पर अग्रिम देता है जिसका प्राथमिक उद्देश्य स्थिर आस्तियो की प्राप्ति होता है। नियमत यह स्टार, कच्ची सामग्री तथा निर्मित माल के उपाधान (Hypothecation) पर कार्यशील पूंजी के लिए अग्रिम नही देता। निगम के ख्याल म कार्यशील पूंजी के लिए अग्रिम देना व्यापारिक बैंको का कार्य है और वह कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करने के प्रश्न पर उन बैंको से प्रतिद्वंद्विता नही करना चाहता। लेकिन धन बाजार की कडाई और परिणामत बैंको स कार्यशील पूंजी के लिए ऋण प्राप्ति की दृष्टि से कम्पनियो की अयोग्यता को देखते हुए निगम न अपनी कठोर नीति का उल्लघन किया और १९५०-५१ म इसने उन औद्योगिक व्यवसायो को भी, जो ऋण प्राप्त कर चुके थ, तथा नये प्रार्थियो को, कार्यशील पूंजी के निमित्त वित्तीय सहायता दी। सचालन व्यय के लिये ऋण नही देने के सम्बन्ध में निगम की सामान्य नीति की बडी आलोचना की गयी थी। सामान्य नीति म की गई यह ढिलाई आलोचको की माग को बहुत कुछ पूरा करती है।

यह सुनिश्चित करने के निमित्त कि जिन औद्योगिक कम्पनियो को सहायता प्रदान की गयी है, उनकी व्यवस्था उचित होती होगी है, निगम ने इस बात को आवश्यक बना दिया है कि सचालक या अभिकर्त्ता फर्म के साझेदार दिये गये ऋण को निजी तौर स प्रत्याभूत कर, प्रत्याभूति सयुक्त तथा पृथक् होगी। निगम यह अधिकार अपने लिए सुरक्षित रखता है कि वह इस आशय से दो सचालक नियुक्त करे कि सचालन बुद्धिमानी से हो तथा निगम के हित की रक्षा हो। ऋण शोधन की अवधि किसी सयुक्त कम्पनी की भविष्य की सभावनाओ तथा व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करती है। साधारणतया यह अवधि १२ वर्ष से अधिक नही होती, और अब तक यह अवधि १५ वर्ष तक अनुज्ञात हुई है। अधिकाश कम्पनिया इसी अवधि मे ऋण का भुगतान कर देने की आशा रखती है। यह भुगतान किस्तो में होता है, जो वार्षिक या किसी अन्य क्रमिक विधि से हो सकती है। निगम के नाम बधक रखी जाने वाली सम्पत्तियो का पूर्ण मूल्य पर अग्नि, दगा, जानपद सक्षोभ (Civil Commotion) आदि जोखिमो के लिए ख्यात बीमा कम्पनियो द्वारा आरोपित किया जाना आवश्यक है। ऋण की स्वीकृति के पश्चात् निगम समय-समय पर यह पता लगाने के लिए निरीक्षण की व्यवस्था करता है कि ऋण उसी उद्देश्य के लिए खर्च किया जा रहा है, जिसके लिए

यह दिया गया था।

औद्योगिक वित्त निगम (संशोधन) विधेयक १९५२, पर वाद-विवाद के समय निगम पर पक्षपात तथा अनुचित भेदभाव (Undue Discrimination) का दोष भी मढा गया था। एक जाच समिति भी नियुक्त की गयी, जिसकी अध्यक्ष श्रीमती सुचेता कृपलानी थी, जिसने मई १९५३ में अपनी रिपोर्ट दी। रिपोर्ट पर भारत सरकार के प्रस्ताव के अनुसार, जो दिसम्बर मे ससद म प्रस्तुत किया गया था, जाच समिति ने निगम को लगभग सब दोषो से मुक्त कर दिया। इस समिति ने अन्य सिफारिशो के साथ यह भी सिफारिश की थी कि निगम का अध्यक्ष इसका सारे समय का सदस्य होना चाहिए। इसके अनुसार, सर श्रीराम ने इस्तीफा दे दिया और सरकार ने श्री पी० सी० भट्टाचार्य को, जो रेल्वे के वित्तीय आयुक्त थे, इसका अध्यक्ष नियुक्त किया और वही अब भी इसके अध्यक्ष हैं।

प्रार्थना-पत्रों का यापन दिखाने वाली तालिका

१ जुलाई, १९४८ से ३० जून, १९५५ तक

	१ जुलाई १९५४ से ३० जून १९५५		१ जुलाई १९५३ से ३० जून १९५४		१ जुलाई १९४८ से ३० जून १९५३	
	सख्या	रुपये हजारो में	सख्या	रुपये हजारो में	सख्या	रुपये हजार
प्रार्थना पत्र प्राप्त	४६	११,२७,००	४३	९,००,७०	३३३	३०,१२,०३
„ स्वीकृत	२७	७,३४,००	२९	५,२७,०५	१०८	१५,४६,७०
„ अस्वीकृत	१८	२,९३,२५	२७	७,२१,००	१४८	१२,२२,४६
„ वर्ष के अत में विचाराधीन	७	३४,००	१७	५,११,२५	१३६	१५,७७,२९
„ जो व्यपगत या वापिस लिये गये माने गये	११	,५०,००	११	१, २२,११	२७	५,१४,४०

इस निगम ने ३० जून १९५५ को भारतीय उद्योग को अर्पित की जाने वाली सेवाओं के सात वर्ष पूरे किये। इस काल में देश की जो मौद्रिक स्थिति रही, उसमें व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग के द्वारा वित्तीय माग अधिक रही और धन कम रहा और विशेषकर दीर्घावधि विनियोग में ऐसी बात रही। जहा तक ऋण प्रदान का प्रश्न है, वाणिज्यिक बैंको ने सावधानी की नीति का अनुसरण जारी रखा। स्कन्ध बाजार में कुछ भी सुधार नही हुआ, तथा औद्योगिक फर्मों, दीर्घकालीन और लघुकालीन आवश्यकताओं के लिए रुपये सचय करना कठिन हो गया; और पूजी निर्माण की

गति बहुत ही धीमी रही और बचतों का मूल्य इतना अपर्याप्त रहा कि यह तत्सम्बन्धी माग की पूर्ति नहीं कर सका। इस परिस्थिति की पृष्ठभूमि में, निगम ने अपनी जिन्दगी के सात वर्षों म विभिन्न उद्योगों को जो वित्तीय सहायता प्रदान की, वह सब मिलाकर, जैसा कि पिछले पृष्ठ पर दी गयी तालिका से प्रकट होता है, पर्याप्त ही कही जा सकती है।

उपर्युक्त तालिका से यह पता चलता है कि पिछले सात वर्षों में प्राप्त प्रार्थना-पत्रों का किस प्रकार यापन (Disposal) हुआ।

स्वीकृत ऋण और अग्रिम दिखाने वाली तालिकाएं

क—उद्योगवार

क्रम संख्या	उद्योग का प्रकार	३० जून १९५५ को समाप्त होने वाले वर्ष में स्वीकृत	३० जून १९५४ को समाप्त होने वाले वर्ष तक स्वीकृत	
		रुपये हजारों में	रुपये हजारों में	योग
१	टैक्सटाइल मशीनें	—	६४,००	६४,००
२	यान्त्रिक इन्जीनियरिंग	—	७३,००	७३,००
३	विद्युत ,,	७५०	१,२९,२०	१,३६,७०
४	सूती वस्त्र	१,०४,५०	३,०७,२५	४,११,७५
५	ऊनी वस्त्र	—	३५,००	३५००
६	रेयन उद्योग	६०,००	५०,००	१,१०,००
७	रसद्रव्य	३७,५०	२,४३,७५	२,८१,२५
८	सीमेंट	८०,००	२,३५,००	३,१५,००
९	चीनी मिट्टी तथा काँच	१०,५०	१,३५,००	१,४५,५०
१०	तैल मिलें	—	६५०	६,५०
११	विद्युत शक्ति	—	४२,७५	४२,७५
१२	अलौह धातुएं	—	३५००	३५००
१३	लोहा व इस्पात	११,००	१,१२,५०	१,२३,५०
१४	अल्मीनियम	—	५०,००	५०,००
१५	चीनी	२,३८,००	२,०५,५०	४,४३,५०
१६	खनिज उद्योग	—	३७,००	३७,००
१७	कागज उद्योग	१,०७,५०	२०४,००	३,११,५०
१८	आटोमोबाइल, आदि	६२,५०	५०,००	१,१२,५०
१९	अवर्गीकृत	१५,००	५८,३०	७३,३०
	योग	७,३४,००	२०,७३,७५	२८,०७,७५

ख—राज्य-तथा-उद्योगवार

राज्य	उद्योग क्रम सख्या के अनुसार यथा तालिका 'क' में	कुल राशि ,००० रु०	प्रार्थनापत्रों की संख्या
आसाम	—	—	—
बम्बई	१, २, ३, ४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५, १७, १८, १९	८, ९७, ९०	३८
बिहार	३, ८, ९, ११, १३, १५, १७	२,९०,००	१०
मध्य प्रदेश	४, ९	३९,७५	३
पंजाब	४, ०, ७, १३, १५	१,१०,५०	७
मद्रास	४, ७, ८, १३, १५, १९	२,३२,५०	८
आंध्र	४	४,००	१
उड़ीसा	४, ८, ११,	१,०४००	३
उत्तर प्रदेश	४, ७, १०, १५, १७, १९	१,३०,६०	११
पश्चिमी बंगाल	१, २, ३, ४, ७, ९, ११, १२, १३, १४	३,८८,५०	२०
राजस्थान	३, ४, ६	७५,५०	३
सौराष्ट्र	५, ७, ८	१,४०,००	३
मध्यभारत	१९	३५०	१
ट्रावनकोर-कोचीन	३, ४, ७, ९, १७	१,१२,५०	६
मैसूर	२, ३, ४, ९, १७, १९	१,२०,५०	८
हैदराबाद	५, १६	६०००	२
दिल्ली	४	२०,२०	१
	योग	२८,०७,७५	१२५

यह मनोरंजक और उल्लेखनीय बात है कि १९५५ में प्रार्थित ऋणों की कुल राशि सब वर्षों से अधिक थी और प्रार्थनापत्रों की कुल संख्या पिछले साल की संख्या के लगभग बराबर थी। निगम ने अपने जीवन के के सात वर्षों में जो महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान की है, उसकी कुल राशि २८०८ करोड़ रुपये है, जिसमें से १४५३ करोड़ रुपये की राशि ३० जून, १९५५ तक दी जा चुकी थी। इस सहायता के बिना बहुतेरे उद्योग जीवित न रह पाते, अथवा विस्तार तथा आधुनिकीकरण की योजनाएं शुरू नहीं कर पाते।

शेष १२ ५५ करोड़ का हिसाब इस प्रकार है : (१) ३ ७८ करोड़ रुपये की राशि के ऋण स्वीकृत कर दिये गये थे, पर बाद में प्रार्थियों ने लेने से इन्कार कर दिया; (२) १.१९ करोड़ रुपये की राशि के ऋण स्वीकृत कर दिये गये थे, पर बाद में रोक लिये गये; (३) ८ ६२ करोड़ रुपये की राशि के ऋण स्वीकृत हो चुके हैं, पर अभी दिये नहीं गये। इस अन्तिम राशि में २.३ करोड़ रुपये की राशि वह है जिसके ऋण १९५५ के अप्रैल, मई और जून में स्वीकृत किये गये।

अधिकांश ऋणी (Borrowers) ब्याज तथा किश्त नियमित रूप से

चुकाने रहे हैं। इस वर्ष में स्वीकृत प्रार्थनापत्र विभिन्न प्रकार के उद्योगों से सम्बद्ध थे जो विभिन्न राज्यों में स्थित थे, जैसा कि पीछे दी गयी तालिकाओं में प्रकट होता है।

३० जून १९५५ तक स्वीकृत ऋणों का वर्गीकरण दिखानेवाला विवरण

	प्रार्थना पत्रों की संख्या	कम्पनियों की संख्या	राशि ,००० रुपये
ऋण १० लाख रुपये से अधिक	८५	४७	२,६९,५५
,, १० लाख रु. से अधिक पर २० लाख से अनधिक	३८	३५	५,२८,४५
,, २० लाख रु. से अधिक पर ३० लाख से अनधिक	१४	१४	३,६८,२५
,, ३० लाख रु. से अधिक पर ४० लाख से अनधिक	१०	९	३,३४,००
,, ४० लाख रु. से अधिक पर ५० लाख से अनधिक	११	९	४,११,००
,, ५० लाख से अधिक पर ६० लाख से अनधिक	१	२	१,१३,५०
,, ६० लाख रु. से अधिक पर ७० लाख से अनधिक	—	४	२,६३,००
,, ७० लाख रु. से अधिक पर ८० लाख से अनधिक	—	—	—
,, ८० लाख रु. से अधिक पर ९० लाख से अनधिक	१	१	९०,००
,, ९० लाख से अधिक पर १ करोड़ से अनधिक	२	३	३,००,००
,, १ करोड़ से अधिक पर १ करोड़ १० लाख से अनधिक	—	१	१,१०,००
योग	१६४	१२५	२८,०७,७५

निगम ने सहकारी समितियों को भी ऋण दिये हैं, उदाहरण के लिए, १९५५ में दक्षिण की दो ऐसी समितियों को चीनी निर्माण के कारखाने बनाने के लिए ऋण दिये गये। इनमें से प्रत्येक की पेराई क्षमता (Crushing Capacity) ८००/१००० टन गन्ना प्रतिदिन थी। उन्हें देने के लिए स्वीकृत ऋण की राशि ८३ लाख रुपये था। इसने दक्षिण की एक और सहकारी समिति को, ४००/४५० टन गन्ना प्रतिदिन की पेराई क्षमता वाले मौजूदा प्लांट के स्थान पर १०००/१२०० टन क्षमता वाला नया प्लांट लगाने के लिए ३६ लाख रुपये का एक और ऋण दिया।

राज्य वित्तीय निगम

(State Financial Corporations)

चूंकि एक निगम से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह भारतीय उद्योग की सम्पूर्ण वित्तीय आवश्यकता का दायित्व वहन कर सके और चूंकि भारतीय औद्योगिक वित्त निगम उन्हीं बड़े पैमाने के व्यवसायों को ऋण देता है जिनका स्वामित्व लोकसीमित

कम्पनियाँ या सहकारी समितियाँ करती हैं, अतः, यह आवश्यक समझा गया है कि विभिन्न राज्यों में भी वैसे निगमों की स्थापना हो। राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, १९५१ संसद् द्वारा सितम्बर में स्वीकृत हुआ और जब यह लागू हुआ तब इसने विभिन्न राज्य सरकारों को यह अधिकार दे दिया कि वे अपने राज्यों के लिए वित्तीय निगमों की स्थापना करें। चूंकि यह आशा की जाती है कि ये राज्य निगम केन्द्रीय निगम के परिपूरक होंगे, अतः उन्हें सभी प्रकार के बड़े व छोटे उद्योगों को ऋण देने की अनुमति है, और विशेषतया वे लघु, मध्यम तथा कुटीर उद्योगों को अग्रिम प्रदान करेंगे। राज्य तथा केन्द्रीय निगमों के कार्यक्षेत्रों को अलग-अलग करने के लिए सहायताप्राप्त उद्योगों के आकार बांट दिये गये हैं, और वित्त एवं उद्योगों के मामलों में इन निगमों के बीच सहयोग भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। राज्य वित्तीय निगम अधिनियम की व्यवस्थाएं औद्योगिक वित्त निगम की व्यवस्थाओं के सदृश हैं। ग्यारह राज्यों, अर्थात् मद्रास, उत्तर प्रदेश, आसाम, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्यभारत, मध्य प्रदेश और बम्बई में ऐसे

शुरु से ३० जून १९५५ तक नये और पुराने उपक्रमों के लिए स्वीकृत ऋण

को समाप्त होने वर्ष में	नये उपक्रम [1]		पुराने उपक्रम		योग	
	प्रार्थना पत्रों की संख्या	राशि ,००० रु.	प्रार्थना पत्रों की संख्या	राशि ,००० रुपये	प्रार्थना पत्रों की संख्या	राशि ,००० रु.
३०-६-१९४९	१४	२,१५,७५	७	१,२६,५०	२१	३,४२,२५
३०-६-१९५०	८	१,६४,५०	१५	२,१२,५०	२३	३,७७,००
३०-६-१९५१	११	१,६५,४५	६	७३,५०	१७	२,३८,९५
३०-६-१९५२	१७	१,९३,५०	१६	२,५१,७५	३३	४,४५,२५
३०-६-१९५३	६	४१,५०	८	१,०१,७५	१४	१,४३,२५
३०-६-१९५४	१२	१,८९,३०	१७	३,३७,७५	२९	५,२७,०५
३०-६-१९५५	१८	५,५२,५०	९	१,८१,५०	२७	७,३४,००
योग	XX ८६	१५,२२,५०	XXX ७८	१२,८५,२५	१६४	२८,०७,७५

१. नये उपक्रम : वे फैक्टरियां जिन्होंने १५ अगस्त १९४७ के बाद काम शुरू किया। XX ये प्रार्थनापत्र उन ऋणों के बारे में हैं जो ६० कम्पनियों को दिये गये। XXX " " " " " " " जो ६५ कम्पनियों को दिये गये। पिछले सात वर्षों में जिन कम्पनियों को ऋण दिये गये उनकी कुल संख्या १२५।

निगमो की स्थापना हो चुकी है जिनका उद्देश्य है लघु, मध्यम एव कुटीर उद्योगो की सहायता प्रदान करना। अगस्त १९५४ मे रिजर्व बैंक के तत्वावधान मे राज्य वित्तीय निगमो के प्रतिनिधियो की एक बैठक म यह निश्चय किया गया था कि उन प्रार्थना पत्रो को, जिनमे १० लाख रुपये, या राज्य वित्तीय निगम की प्रदत्त पूंजी के १९ प्रतिशत, दोनो म जो कम हो उस, तक ऋण मागा गया है, राज्य वित्तीय निगमो द्वारा निपटाया जाए।

राज्य निगम की अधिकृत पूजी राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाएगी जिसकी न्यूनतम तथा अधिकतम सीमाए क्रमश ५० लाख तथा ५ करोड रुपये होगी और जो राज्य सरकार के द्वारा नियत, समान मूल्य के अशो मे विभाजित होगी। राज्य निगम के अश (१) सम्बन्धित राज्य सरकार, (ख) रिजर्व बैंक, (ग) अनुसूचित बैंक, बीमा कम्पनिया, विनियोग प्रन्यास, सहकारी बैंक तथा अन्य वित्तीय सस्थाए तथा (घ) अन्य पक्ष, अर्थात् सर्वसाधारण, सम्पूर्ण अशो के २५ प्रतिशत ले सकते है। राज्य सरकार अशो को प्रत्याभूत करेगी।

कोई भी राज्य वित्तीय निगम रिजर्व बैंक से परामर्श के उपरान्त अपनी कार्यशील पूजी वृद्धि के निमित्त बध पत्रो तथा ऋण पत्रो का निर्गमन तथा विक्रय कर सकता है, बशर्ते कि इसका कुल दायित्व उक्त निर्गमन के पश्चात् प्रदत्त अश पूजी तथा सचिति से पाच गुणा से अधिक न हो। इन ऋण पत्रो तथा बध पत्रो को राज्य सरकार प्रत्याभूत करेगी। ५ वर्षो मे प्रतिदेय लोक निक्षेप, जो किसी भी समय निगम की प्रदत्त पूजी स अधिक न हो, प्राप्त किया जा सकता है।

राज्य वित्तीय निगम का प्रबन्ध उसी प्रकार होगा जिस प्रकार औद्योगिक वित्त निगम का। एक सचालक मडल, एक प्रबन्ध सचालक तथा एक कार्यपालक समिति (Excutive Committee) होगी। यदि चाहे तो निगम राज्य के विभिन्न स्थानो पर कार्यालयो की स्थापना कर सकता है।

राज्य वित्तीय निगम का अभिक्षेत्र औद्योगिक वित्त निगम के अभिक्षेत्र से अधिक विस्तृत है क्योकि यह किसी भी औद्योगिक व्यवसाय को ऋण द सकता है। इसे निम्नलिखित मे से किसी भी प्रकार का व्यवसाय या व्यवहार (Transaction) कर सकने का अधिकार है—

(क) औद्योगिक व्यवसायो द्वारा लिये गये ऋण को एसे निबधनो और शर्तों पर प्रत्याभूत करना जैसे तय हो जाए, यदि वह ऋण २० वर्षो की अवधि के भीतर प्रतिदेय हो तथा खुले बाजार मे लिया गया हो ;

(ख) औद्योगिक कम्पनियो के स्कन्ध, अश, बध पत्र या ऋण-पत्र के निर्गमन को अभिगोपित करना,

(ग) (क) व (ख) म वर्णित सेवाओ के लिए पहले तय किया हुआ प्रतिफल पाना,

(घ) अभिगोपन दायित्व की पूर्ति के लिए इसे जो स्कन्ध, अश, बधपत्र या ऋण-पत्र लने पड, उनकी आस्तिया अपने पास रखना बशर्ते कि यह इन स्कन्धो, अशो,

आदि, को जितना शीघ्र सम्भव हो, बेच डाले, परन्तु हर हालत में इन्हें प्राप्त करने के सात साल के भीतर बेच डाले।

(ङ) औद्योगिक व्यवसाय को ऋण या अग्रिम प्रदान करना, या उनके ऋण पत्रों को अभिदान करना। यह धन जिस तिथि को दिया गया हो उस तिथि से २० साल के भीतर प्रतिदेय होगा तथा

(च) जो कार्य इस अधिनियम के अन्तर्गत कर्त्तव्य के पालन या अधिकार के प्रयोग के आनुषंगिक या प्रासंगिक हों, उनका सामान्य सम्पादन।

(क) तथा (ख) के अन्तर्गत उस अवस्था में ऋण नहीं दिया जा सकेगा, यदि वह ऋण बन्धक, आधान या उपाधान या सरकारी अथवा अन्य प्रतिभूतियों, स्कन्धों या अंशों के अभिहस्तांकन या प्रत्याभूत ऋण पत्र, सोना-चांदी, चल या अचल सम्पत्ति या अन्य मूर्त आस्तियों द्वारा प्रत्याभूत न हो।

पर निगम परिमित दायित्व वाली किसी कम्पनी के अंश या स्कंध में सीधे धन नहीं लगा सकता पर अभिगोपन के प्रयोजनों के लिए वह धन दे सकता है उसको अपने ही अंशों की प्रतिभूति पर ऋण या पेशगी देने की भी इजाजत नहीं है अन्य दृष्टियों से राज्य वित्तीय निगम और औद्योगिक वित्त निगम बहुत कुछ एक जैसे हैं।

उद्योगों को यह परोक्ष वित्तीय सहायता देने के अलावा, सरकार स्वामित्व में हिस्सा लेकर, जैसा कि जहाजरानी निगमों में है, और औद्योगिक संस्थाओं को ऋण देकर प्रत्यक्ष सहायता भी देती है। १९५० में सरकार ने स्टील कारपोरेशन आफ बंगाल को ३॥ करोड रुपये और इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को १॥ करोड रुपये तथा टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड और मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स लिमिटेड को विस्तार और सुधार के लिये सहायता दी थी। १९५४ तक सरकार भारत में भारी उद्योगों को वित्तपोषित करने के लिए प्रचुर धन दे चुकी थी, उदाहरण के लिए, मैशीनरी मैन्यूफैक्चरर्स कारपोरेशन लिमिटेड, कलकत्ता, में ४॥ प्रतिशत अधिमान अंशों के रूप में २५ लाख रुपये, नाहन फाउण्डरी लिमिटेड में ४० लाख रुपये की समस्त पूंजी तथा ७॥ लाख रुपये ऋण, इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को २॥ करोड रुपये और मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स को १ करोड रुपये की राशियां ऋण के रूप में दी गई हैं। केन्द्रीय सरकार ने मशीन टूल फैक्टरी जलहल्ली को १ करोड ८० लाख रुपये अंश पूंजी के रूप में दिए हैं और हिन्दुस्तान शिपयार्ड की पूंजी में २०८.५ लाख रुपये दिए हैं और उसे ६० लाख रुपये ऋण भी दिये हैं। सरकार ने टाटा लोकोमोटिव एण्ड इन्जीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड में २ करोड रुपये के मूल्य के ५ प्रतिशत संचयी अधिमान अंश खरीदे हैं और सिंदरी फर्टिलाइजर्स एण्ड कैमिकल्स लिमिटेड में सरकार ने २३ करोड रुपये लगाए हैं, जिसमें ६ करोड रुपये का ऋण भी शामिल है। विशाखापटनम शिपिंग यार्ड सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया है। देहाती क्षेत्रों में बडी मात्रा में और सस्ता कर्ज उपलब्ध कराने की दृष्टि से वायु यातायात के राष्ट्रीयकरण के बाद इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। जनवरी १९५६

में जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया जिससे इसके धन का उपयोग दूसरी पचवर्षीय योजना की कुछ आवश्यकताए पूरी करने म किया जा सके।

औद्योगिक विकास निगम

मुख्यत छोटे पैमाने और बडे पैमाने के निजी उद्योगो के विकास के लिए विश्व बैंक के प्रतिनिधि-मडल द्वारा निर्धारित रूप में एक और औद्योगिक प्रत्यय और नियोजन निगम (Industrial Credit and Investment Corporation of India Limited) जनवरी १९५५ म २५ करोड रुपये की पूजी से पजीयित हुआ। निगम का लक्ष्य नए उद्योगो के प्रवर्तन को बढावा देना मौजूद उद्योगो का विस्तार और आधुनिकीकरण तथा टैकनिकल और प्रबन्ध सम्बन्धी सहायता देना है जिससे उत्पादन बढे और रोजगार के अवसरो की वृद्धि हो —

निगम ने शुरू मे १०० रुपये वाले ५ लाख पूर्णत शोधित साधारण अश निर्गमित किये है जो निम्नलिखित प्रकार से लिये गये है

(१) कई भारतीय बैंक और बीमा कम्पनिया और कुछ सचालक तथा उनके मित्र ३२ लाख शेयर,

(२) अमरीका के कुछ नागरिक और निगम ५० हजार अश,

(३) ब्रिटिश ईस्टर्न एक्सचज बैंक और ब्रिटेन की तथा कामनवैल्थ के कुछ और देशो की बीमा कम्पनिया और अन्य ब्रिटिश कम्पनिया १ लाख अश।

(४) शेष १॥ लाख अश आम जनता को प्रस्तुत किये गये है।

भारत सरकार ने कम्पनी को ७॥ करोड रुपये की राशि देना स्वीकार कर लिया है, जिस पर कोई ब्याज नही होगा। यह राशि कम्पनी को धन मिलने की तिथि से १५ वर्ष बीत जाने के बाद से शुरू होने वाली १५ वार्षिक किस्तो में चुकाई जाएँगी। सरकार को एक सचालक नामजद करने का अधिकार है जिस पर नम्बरवार निवृत्त होने की शर्त्त नही लागू होगी। विश्व बैंक ने कम्पनी को समय समय पर विभिन्न मुद्राओ मे एक करोड डालर (५ करोड रुपये) की राशि उधार देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार निगम को १७॥ करोड रुपये की कार्यशील पूजी मिल गई है। यह भी आशा है कि इस निगम के माध्यम से विदेशी पूजी को ऋणो के रूप मे आने म मदद मिलेगी और कुछ ही समय में निगम के पास ५० करोड रुपये हो जाएगें।

निगम के स्वामी दूर दूर तक फैले हुए है और इसके कार्यो और पूजी नियोजन के अन्तर्गत छोटे बडे सब तरह के बहुत सारे औद्योगिक उपक्रम आ जाएगे। निगम दीर्घकालिक और मध्यकालिक ऋण देगा, अश पूजी म हिस्सा लेगा अशो और प्रतिभूतियो के नए निर्गम को अभिगोपित करेगा, अन्य निजी पूजी स्रोतो से लिए जाने वाले ऋणो को प्रत्याभूत करेगा, घूमते हुए नियोजन द्वारा पुनर्नियोजन के लिए धन उपलब्ध कराएगा, प्रवधकीय टैंकनीकल और प्रशासनीय सलाह देगा तथा भारतीय उद्योग को प्रबधकीय टैंकनीकल तथा प्रशासनीय सहायता प्राप्त करने में मदद करेगा।

निगम का आरम्भिक धन और वह धन जो उसके पास अवश्य आना है सामर्थ्य

और दूर दृष्टि से काम में लगाया जाए तो वह देश म निजी पूजी बाजार के साधनो को भी बढा सकता है और भविष्य में उपलब्ध सरकारी तथा अर्धसरकारी सुविधाओ को भी बढा सकता है। इस निगम के कार्यो, केन्द्रीय तथा राज्य औद्योगिक वित्त निगमो, निजी बाजार की सस्थाओ, और औद्योगिक विकास निगम, जो भारत सरकार ने हाल में ही स्थापित किया है, के उचित समन्वय, द्वारा घरेलू पूजी को पहले से अधिक बडे पैमाने पर इकट्ठा करना और भारतीय उद्योग म विदेशी पूजी के आगमन को बढावा देना सम्भव होना चाहिए।

अन्य वित्तीय सस्थाए

कुछ अन्य वित्तीय सस्थाए हैं जो औद्योगिक व्यवसायो की वित्तीय आवश्यकताओ की परोक्षत पूर्ति करती हैं। वे हैं स्टाक एक्सचेंज या स्कन्ध विनिमय विनियोग प्रन्यास, (जो प्रबन्ध प्रन्यास, इकाई प्रन्यास, अथवा स्थायी प्रन्यास हो सकते हैं), विनियोग कम्पनिया तथा विनियोग मत्रणा (Investment Counsel)।

स्कन्ध विनिमय—स्कध विनिमय वह बाजार है जिसमें स्कधो, अशो तथा अन्य वस्तुओ का क्रय विक्रय होता है। परोक्षरूप मे यह सस्था उद्योग वाणिज्य की नाडी, कम से कम एक बडी नाडी, पूजी, की व्यवस्था करती है। यह परिकल्पन या सट्टेबाजी तथा विनियोग के लिए पूजी का साधन है। बाजार उन प्रतिभूतियो के लिए, जिन पर धन लगाया जाता है, खुले बाजार की व्यवस्था करने के सिलसिले में स्कध विनिमय या स्टाक एक्सचेंज धन का आकृष्ट करता है तथा उसे ऐसे स्थान पर लाता है जहा अन्यथा वह नही आता। अधिकाश लोग सर्वोत्कृष्ट प्रतिभूतियो के विनिमय म भी अपने धन का त्याग नही करते, यदि उन्हें यह विश्वास नही होता कि आवश्यकता पडने पर प्रतिभूति को खुले बाजार में बेचकर रुपये वापस आ जायगे। जिस प्रकार की व्यवस्था स्कध विनिमय करता है। अत स्कध विनिमय पूजी को गतिशील बनाता है। यदि यह स्कध विनिमय न होता तो सरकार के लिए ऋण प्राप्त करना कठिन हो जाता, और बडी-बडी राष्ट्रीय व्यापारिक तथा औद्योगिक योजनाए, पूजी का सुलभ प्रवाह न होने के कारण, मृतप्राय हो जाती। स्कध विनिमय का मुख्य काम है विनियोग के निमित्त तरलता (Liquidity) प्रदान करना तथा इसके जरिये विनियोग-योग्य कोष में बचत के स्रोत को प्रेरित करना और इस प्रकार पूजी-निर्माण में सहायता प्रदान करना। यह कार्य तो दक्षता से सम्पादित किया जा सकता है यदि कीमत के उतार-चढाव का परास (Range) आर्थिक घटको से निर्धारित होता हो। जुए के कारण जोर का कम्पन (कीमत का उतार-चढाव) सच्चे विनियोक्ताओ को रोकता है और इस प्रकार बचत की धारा को विनियोग कोष में जाने से रोकता है। भारतीय स्टाक मार्केट पर जुए का चलन है जो पूजी निर्माण तथा विनियोग को अवरुद्ध करता है। यह बात भी है कि हर विनियोक्ता के पास इतना समय तथा जानकारी नही होती कि वह उस प्रतिभूति की सफलता या दृढता का, जिसमें वह अपना धन विनियुक्त करता है निर्णय कर सके। अत वह प्रतिभूतियो के गलत चुनाव की जोखिम में रहता है।

कम्पनियो के प्रविवरणों में चाहे जितनी भी सूचनाए दी हो, पर अविशेषज्ञ आदमी के निर्णय मे गलतिया रहेंगी ही। हो सकता है कि व्यवसाय से परिचित तथा अनुभवी दलाल भी निष्पक्ष निर्णय करने म समर्थ न हो। चूकि वह स्वय भी विनियोक्ता है, अत यह हो सकता है कि वह आशावाद तथा निराशावाद की लहरों से बच न सके और अपने ग्राहको को दीर्घकालीन आधार पर निष्पक्ष राय न दे सके। एकाकी विनियोक्ता को न सिर्फ बेईमान शोषकों से रक्षित करना अनिवार्य है, बल्कि उसे स्वय अपने से भी बचाने के लिये कुछ करना चाहिए। इस उद्देश्य से विनियोग की दो विधिया बताई जाती हैं—(क) विनियोग मत्रणा, (Investment Counsel) तथा (ख) विनियोग प्रन्यास।

विनियोग मत्रणा (Investment Counsels)—विनियोग मत्रणा उन विशेषज्ञ तथा निष्पक्ष व्यक्तियो का फर्म होना है जो अपने विनियोग परामर्श उसी प्रकार बेचते है जिस प्रकार अपने-अपने क्षेत्रो में वकील, डाक्टर, लागत लेखपाल (Cost-accountants) और भवन निर्माता (Architect)। चूकि ये स्वतन्त्र विनियोग परामर्शदाता विशेषज्ञ होते है, अत ये विनिर्दिष्ट प्रतिभूतिया तथा विनियोग प्रत्याय को प्रभावित करने वाली विभिन्न वाह्य दशाओ—दोनों का विस्तृत अध्ययन कर सकते है। वे व्यष्टि की विशेष वैयक्तिक परिस्थिति के आधार पर भी परामर्श दे सकते है। ऐसा कार्य इसलिए सम्भव होता है कि इसका व्यय तथा प्राप्त होने वाले लाभ बहुत से विनियोग खातो मे वितरित कर दिये जाते है। की गई सेवाओं के लिए तत्सम्बन्धी प्रकार का व्यय प्रारम्भिक शुल्क, स्थायी शुल्क (Retainer) तथा उस अवधि के, जिसके लिए यह प्रबन्ध किया गया है, वार्षिक कमीशन का रूप लेता है। विनियोक्ता प्राय अपनी प्रतिभूतियो को अपने पास रखता है और वह इस बात का अन्तिम निर्णायक होता है कि परामर्शदाता के द्वारा दिये गये परामर्श को कार्यान्वित करे या नही। यह प्रणाली सयुक्त राज्य अमेरिका में बहुत व्यवहार म लाई जाती है तथा भारतवर्ष मे भी इसके प्रयोग का समर्थन किया जाता है। इस प्रकार की सेवा का महत्व स्पष्ट है। पर इस योजना के समर्थक यह मानते है कि देश मे वर्तमान स्थिति बनी रहेगी तथा इस पेशे मे लगे लोगो, जैसे स्कन्ध दलाल, अश विक्रेता, तथा इस प्रकार के लोगो ने प्रतिष्ठित तथा ऊंचे नाम रख कर अपना धन्धा करते जाना है। योग्य दलाल प्रतिभूतियों के प्रारम्भिक चुनाव मे पर्याप्त सहायता कर सकते है, जैसा कि वास्तव में वे अपने धनी ग्राहको के लिए करते है, लेकिन छोटे विनियोक्ताओं के लिए, जिनके ससाधन वैविध्यकरण की दृष्टि से बहुत अल्प होते है, ये दलाल मुश्किल से उपयोगी सिद्ध होंगे। अमेरिका मे भी, जहा पेशेवर विनियोग परामर्श कार्य करते पर्याप्त समय बीत चुका है, ये छोटे खातो को स्वीकार करने में लापरवाह दिखाते है। छोटे विनियोक्ता को, जिसे सरक्षण तथा सहायता की वास्तविक आवश्यकता है, अपने दोषपूर्ण निर्णय पर ही निर्भर रहना होगा या ऐसे लोगो के पास जाना होगा जो किसी दायित्व के मानदण्ड या पेशे की नैतिकता के खूटे मे बधे

नहीं होते। हो सकता है कि ऐसा कथन अपने देशवासियों के चरित्र बल पर आक्षेप-सा हो लेकिन यह कहना पड़ता है कि अभी इस प्रकार विनियोग मन्त्रणा की स्थापना के लिए लोगो को अनुमति देने के लिए उपयुक्त समय नहीं आया है। ऐसी मन्त्रणा की स्थापना को प्रोत्साहन देने या उन्हे अनुमति देने का अर्थ होगा कि हम लोग असावध न विनियोक्ता को कड़ाही से निकाल कर चूल्हे में झोंक रहे है। कम से कम अभी तो हमें दूसरे सुझाव, विनियोग प्रन्यास, की ओर ध्यान देना चाहिए।

विनियोग प्रन्यास
(Investment Trusts)

विनियोग प्रन्यास एक व्यापक शब्द है जिसके अन्तर्गत विनियोग कम्पनिया जो अक्सर प्रबन्ध प्रन्यास कहलाती है, और खास प्रन्यास, जो इकाई प्रन्यास (Unit Trust) या नियत (Fixed Trusts) प्रन्यास के नाम से विख्यात है, आते है। फिलहाल इस अन्तर की ओर ध्यान न देते हुए विनियोग प्रन्यासो की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते है कि ये वे वित्तीय संस्थाए है जो वैयक्तिक विनियोक्ता को, चाहे उसके साधन कितने भी कम क्यो न हो, इस योग्य बनाने के उद्देश्य से गठित की जाती है कि वह एक ही विनियोग में वैविध्यकरण (Diversification) के लाभ प्राप्त कर सके। प्रन्यास का प्रधान व्यवसाय है विभिन्न कोटि के स्कन्धो, अशो, तथा ऋणपत्रो में कोष का विनियोग। अतः विनियोग प्रन्यास या या कम्पनी के पूजी दायित्व, जो धन आस्तियो में हिस्सेदारी को निरूपित करते है, छोटे विनियोक्ता को यह अवसर देते है कि उसका विनियोग जोखिम कई जगह बट जाए जो और अवस्थाओं में असभव होता। विनियोग प्रन्यास सधारी कम्पनियो (Holding Companies) से भिन्न है, क्योंकि सधारी कम्पनिया साधारणत एक या एक से अधिक चालू कम्पनियो पर प्रबन्ध सम्बन्धी नियन्त्रण प्राप्त करने के उद्देश्य से निर्मित की जाती है लेकिन विनियोग प्रन्यास सिर्फ विनियोग के रूप में प्रतिभूतिया खरीदते है। विनियोग प्रन्यास जोखिम को विभिन्न वर्गों की प्रतिभूतियों तथा विभिन्न उद्योगो व व्यापारो के बीच वितरित करते है और इस प्रकार अधिकोपण (बैंकिंग) तथा बीमे के कुछ पहलुओ को अपनाते है। मुख्य रूप से विनियोग प्रन्यास सगठन में यह विशेषता होती है कि यह अशो या ऋण पत्रो को सम्भावित विनियोक्ताओं के हाथ बेचने के लिए निर्गमित करता है। जो कोष इस प्रकार एकत्रित होता है, उस कोष से प्रन्यास के सगठनकर्ता कम्पनियो की खास-खास प्रतिभूतिया खरीदते है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वे इन प्रतिभूतियो को नियन्त्रण के उद्देश्य से नहीं खरीदते बल्कि केवल विनियोग के उद्देश्य से खरीदते है। प्राप्त व्याज तथा लाभाश में से वे अपनी प्रतिभूति पर व्याज तथा लाभाश चुकाते है। प्रन्यास की सफलता प्रबन्ध की योग्यता तथा आर्थिक जगत में सचालको (डायरेक्टरो) की ख्याति व हैसियत पर निर्भर करती है। इसकी सफलता उन अफसरो के, जो प्रतिभूतियो के चुनाव से सीधे सम्बद्ध होते है, चरित्रबल तथा बुद्धिमानी तथा विनियोगो के वैविध्यकरण की समस्या का सफल हल

तत्सम्बन्धी प्रतिभूतिया अनिवार्यत उसी समय खरीदनी पड़ती है जब बाजार अधिकतम तेजी पर हो।

विनियोग कम्पनी या प्रबन्ध प्रन्यास—नियत प्रन्यास के विपरीत यह वह प्रन्यास अथवा कम्पनी होती है जो सचालकों को प्रतिभूतियों के मौलिक चुनाव तथा बाद मे उनमे विनियोग के समय रद्दोबदल करने की पर्याप्त छूट देती है। इसमे प्रबन्ध ऐसी स्थिति म होता है कि वह अपनी विनियोग सूची में ऐसी प्रतिभूतिया मौजूद रखे जो आय तथा पूंजी-वृद्धि (कैपिटल एप्रिसियशन) दोनो की दृष्टि से उत्कृष्ट हों। प्रन्यास विविध समूहो म विभाजित अशो मे वित्तपोषित किया जाता है। इस प्रकार समुच्चयित कोष विभिन्न प्रतिभूतिया म विनियुक्त किया जाता है और विनियोग के समय यह पुरानी सीख याद रखनी चाहिए कि सब अडे एक ही टोकरी में हरगिज न रखो। चूकि समय-समय पर प्रतिभूतियो का चुनाव करना प्रबन्धको का काम है, इसलिए प्रबन्ध प्रन्यास को विवेकाधीन प्रन्यास (Discretionary Trust) भी कहा जाता है।

भारतीय विनियोग प्रन्यास या विनियोग कम्पनी (वस्तुत यह विनियोग कम्पनी ही होता है) प्रबन्धक या विवेकाधीन प्रकार की होती है तथा अन्य कम्पनिया की तरह, कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित की जाती है। इसे उस सयुक्त स्कन्ध कम्पनी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो अपने अश व ऋण पत्र सर्वसाधारण के हाथ बेचती है और प्राप्त रकम को अन्य कम्पनियों के अशों व ऋण पत्रों अथवा सरकारी प्रतिभूतियों, प्रन्यासी प्रतिभूतियों, विदेशी बन्ध-पत्रों तथा इसी प्रकार की प्रतिभूतियो मे विनियुक्त करती है। विनियोग तथा गीअरिंग (Gearing) सम्बन्धी निर्णय सचालक मडल द्वारा किये जाते है, जिसके सदस्यों का चुनाव प्रचलित रीति से होता है तथा जिनकी स्थिति व दायित्व अन्य कम्पनिया के सचालकों के समान होते है। कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association) सचालकों व प्रबन्धकों के अधिकारों व कर्तव्यों का निर्धारण करते हैं। कोष का वास्तविक प्रशासन, मडल की एक छोटी समिति प्रबन्ध सचालक या प्रबन्धक या सचिव (Secretary) के हाथ मे होता है, लेकिन इसकी अन्तिम रास पूरे सचालक-मडल के हाथ में होती है। प्रचलित रीति से लाभाश वितरित किया जाता है तथा चालू लाभ से सचिति की रचना होती है। विनियोग कम्पनी का उस कम्पनी के प्रबन्ध तथा नियन्त्रण से कोई ताल्लुक नहीं रहता जिस कम्पनी मे इसने अपना कोष विनियुक्त किया है। कोष के विनियोग तथा पुनर्विनियोग का आशय केवल सबल विनियोग स्थिति का निर्मित करना तथा बनाये रखना है। इसका दृष्टिकोण सिर्फ यह होता है कि विनियोग मूल्य यथार्थत कहा सबसे अधिक है। यह तो स्पष्ट ही है कि "प्रन्यास" एक भ्रामक शब्द है जिसका यह अर्थ कभी नहीं लगाना चाहिए कि विनियोग प्रन्यास कम्पनी तथा इसके अशधारियों के बीच प्रन्यासी सम्बन्ध है। यह केवल एक वित्तीय सस्था है, चाहे इसे विनियोग प्रन्यास कहो, या विनियोग कम्पनी या प्रबन्ध प्रन्यास या विनियोग प्रन्यास कम्पनी, जिसके

सचालन का एकमात्र उद्देश्य अशधारियो का हित है।

चूकि प्रतिभूतियो के चुनाव का अधिकार प्रबन्ध को दे दिया जाता है, अत यह आवश्यक है कि जिन व्यक्तियो को यह कार्य सौंपा जाय, वे सदा चौकन्ने तथा सावधान रहें। उन्हे न केवल अपने विशेष क्षेत्र म व्यापारी होना चाहिए, बल्कि उन्हे उत्साही भी होना चाहिए, यद्यपि उनमें दृष्टिकोण की कट्टरता, उद्देश्य की सत्यता, चरित्र की भद्रता तथा वास्तविकता का स्वस्थ परिज्ञान भी वाछनीय है। उन्हें अपना आचरण ऐसा रखना चाहिए कि अशधारी उन्ह सदेह की दृष्टि से न देख, इसके विपरीत, उनके प्रति दृढ विश्वास की उत्पत्ति हो।

सर्वप्रथम, विनियोग कम्पनी को इकाई प्रन्यास के सामान्य लाभ—जैसे वैविध्यकरण, विशिष्ट ज्ञान, तथा सतत निरीक्षण प्राप्त होते हैं। द्वितीय, यह विनियोक्ता को अपनी पूंजी पर अधिक लाभ अर्जन करने में समर्थ करता है। यह लाभ अर्जन वैविध्य करके (या बहुविध विनियोग), जो लाभो के जरिये क्षति की पूर्ति करा देता है, तथा पूजी योजन (Gearing) के यथोचित साधन और अनुदारता से लाभाश वितरण की नीति के द्वारा निर्मित सचिति के पुनर्विनियोग द्वारा सम्भव होता है। तृतीय, यह सभी प्रकार के लोगो को अपनी बचत निरापद तथा लाभप्रद सरणि में विनियुक्त करने की योग्यता प्रदान करता है और इस प्रकार ये विनियोग राष्ट्रोनति के कार्य में योग दे सकते हैं। यह मितव्ययिता तथा पूजी की बचत (Conservation) को भी प्रोत्साहित करता है। चतुर्थ, विनियोग प्रन्यास का प्रबन्ध व्यय विशृखलित पूजी के प्रबन्ध व्यय की अपेक्षा कही कम होता है क्योकि हजारो व्यक्तियो के विनियोग का थोडे विशेषज्ञ लोग प्रबन्ध कर सकते हैं। पाचवा लाभ है पूजी की बचत (Conservation) तथा लाभ के पुनर्विनियोग के कारण लाभाश की ऊची दर। एक और बहुत महत्वपूर्ण लाभ यह है कि विनियोग प्रन्यास पूजीवाद के इस स्वर्णिम नियम को लागू करती है, 'जो जोखिम उठाता है, वही नियत्रण करेगा,' क्योंकि अशधारियो की स्थिति उस कम्पनी में, जिसमें उनके अश होने हैं, बडी प्रबल होती है और इस तरह उनका नियत्रण भी होना है। इस सूचि में यह लाभ और जोडा जा सकता है कि विनियोग प्रन्यास साधारण विनियोक्ता को सट्टेबाजी से दूर रखता है और दृढ कम्पनियो के अनुपात को बढाना है।

विनियोग कम्पनी की सबसे बडी त्रुटि हो सकती है प्रबन्ध के निमित्त अनुपयुक्त व्यक्तियो का चुनाव। यदि प्रबन्ध एसे व्यक्तियो के हाथ में है जिन में सच्चाई, सरक्षणशीलता (लाभाश वितरण के मामले में) (Conservation) प्रवीण ज्ञान, तथा कम्पनी के कल्याण में सच्ची दिलचस्पी के गुणो की कमी है तो कम्पनी का सकटग्रस्त होना निश्चित है। चूकि प्रबन्ध को प्रतिभूतियो के चयन का सोल्हो आने अधिकार दे दिया जाता है, इसलिए निर्णय सम्बन्धी भूलो का जोखिम भी विद्यमान है।

सीमित प्रबन्ध प्रन्यास—नियत या इकाई प्रन्यास तथा प्रबन्ध प्रन्यास या

विनियोग कम्पनी एक दूसरे के ठीक विपरीत मार्ग का अनुसरण करते हैं। पहली अवस्था में तो प्रबन्ध को विवेकाधिकार (Discretion) बिल्कुल नही होता और दूसरी अवस्था में प्रतिभूतियों के चयन का पूरा निर्णयाधिकार होता है। इन परस्पर प्रतिकूल अवस्थाओं की दुर्बलताओं को दूर करने के उद्देश्य से सीमित प्रबन्ध प्रन्यास के रूप में मध्यम मार्ग निकाला गया है। इस प्रकार का प्रन्यास एक ओर तो नियत प्रन्यास की अनम्यता (Inflexibility) को दूर करता है और दूसरी ओर प्रबन्ध प्रन्यास के प्रबन्धाधिकारियों के विवेकाधीन अधिकार में कटौती करता है। दूसरे शब्दों में, अन्तर्नियमों के अनुसार या निरीक्षण पर आश्रित यह सीमित विवेकाधिकार (Discretion) देता है। इस विशेषता (या लक्षण) के कारण सीमित प्रबन्ध प्रन्यास को "नम्य" या "लोचदार" (Flexible) या पर्यवेक्षित (Supervised) प्रन्यास भी कहा जाता है।

अवक्षयण (Depreciation) का वित्तपोषण

मीड महोदय कहते हैं "सुप्रबन्धित व्यावसायिक उपक्रम अपनी आय में से भौतिक आस्तियों के मूल्य में छीजन या अवक्षयण के लिए व्यवस्था करते हैं।" अवक्षयण या छीजन के लिए व्यवस्था करना व्यवसाय की निरापदता के लिए बड़े महत्व की बात है। लेकिन भारतवर्ष में, कम्पनी वित्त की बात चलने पर, इस पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। वेब्स्टर अवक्षयण की परिभाषा इस प्रकार करता है, "घटते हुए मूल्य की क्रिया या अवस्था"। इस परिभाषा के अनुसार मूल्यों की सभी प्रकार की ह्रासशीलता को, चाहे वह समय के कारण है, या घिसाई के कारण, उचित रखाव (Maintenance) की कमी के कारण है या असमर्थता, अपर्याप्तता, अप्रचलन (Obsolescence) के कारण, अवक्षयण, कहा जा सकता है, हालांकि लेखाकन की दृष्टि से किसी वस्तु का वही ह्रास अवक्षयण है, जिसकी पूर्ति मरम्मत द्वारा नही की जा सकती और जिसके लिये पूर्ण नवकरण की आवश्यकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी कम्पनी के अधीन प्रत्येक औजार, भवन, मशीन या ढाचे (जिनमें स्थायी ढाचा अपवाद है) की जिन्दगी सीमित है और सभी अवक्षयण के शिकार होते, हालाकि अवक्षयण की गति पर सतत निगरानी तथा सावधानी के जरिये रोक-थाम की जा सकती है। किसी मशीन के कार्यशील जीवन का अनुमान दूसरी मशीन के, जो उसी कार्य को सस्ती तथा तेज रीति से कर सके, आविष्कार से भी हो सकता है। नया आविष्कार या फैशन में परिवर्तन, प्लाट या इसकी किसी सामग्री को व्यवहार की दृष्टि से उस समय अमितव्ययी बना दे सकता है जब उसकी तुलना नयी कोटि की मशीन से होती है जो अधिक तेज और सस्ता काम करती है और प्रतियोगिता द्वारा काम से हटाये जाते हैं। इस प्रकार मशीनों का बेकाम हो जाना अप्रचलन (Obsolescence) के कारण अवक्षयण होता है क्योंकि तब बहुत तेजी के साथ नये-नये सुधार होते हैं।

अतः अवक्षयण दो प्रधान कारकों के मिलने से बनता है—ह्रास

(Deterioration) तथा अप्रचलन (Obsolescence), और वे दोनो एक साथ नही चलते क्योंकि इनमे जो कार्यशील (Operating) घटक होता है, उसी के अनुसार इस पर विचार किया जाता है। एक प्रमाप (Standard) मशीन उपयोग की सामान्य गति से काम में लायी जाने पर ५० साल तक चल सकती है और इसके बाद उसकी मरम्मत लाभदायक नही सिद्ध होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि २ प्रतिशत वार्षिक की दर से अवक्षयण हुआ। किन्तु हो सकता है कि दो ही वर्षों के उपयोग के बाद यह अप्रचलित पड जाय यानी पुरानी हो जाय और तब अवक्षयण ५० प्रतिशत वार्षिक होगा। यह आवश्यक ही है कि प्रतिस्थापन (रिप्लसमेंट) की व्यवस्था बीच-बीच में करते जाना चाहिए क्योंकि यदि ऐसा नही किया गया तो व्यवसाय पर एकाएक बडा बोझ पड जायगा और व्यवसाय इस बोझ से दबकर बैठ जायगा। जब प्लांट नय होते हैं तब मरम्मत मामूली हल्की होती है और प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती ही नही। ऐसे समय में प्रबन्धको को भविष्य के लिये प्रतिस्थापन के निमित्त पर्याप्त व्यवस्था करनी चाहिए। लाभांश वितरण में अनुदार होना तथा चालू अर्जन से सचिति निर्माण करने में उदार होना सुस्थित नीति है। यह सचिति सुकरता से प्राप्य विनियोग मे लगाकर अलग रखी जा सकती है और जहा उसका सर्वाधिक लाभप्रद उपयोग हो सके, वहा सामान्य आस्तियो में मिलाकर रखी जा सकती है। अवक्षयण प्रभार को चालू खाते मे इस तरह विभाजित करना कि जब आस्ति को बेचा जाय तो उसका मौलिक मूल्य मिल जाय, एक सुस्थित नीति है, और इस बात का कोई महत्व नही कि प्रभाव का निर्धारण ऋजुरेखीय पद्धति (Straightline Method) से होता है या क्रमिक ह्रास शेष पद्धति (Reducing Balance Method) या निक्षेपनिधि पद्धति (Sinking Fund Method) या अन्य किसी पद्धति से, बशर्ते कि प्रभार की मात्रा लगभग ठीक हो और मूल्य की घटबढ तथा अप्रचलन सम्बन्धी घटकों का, अतिरिक्त राशि के प्रयोग (Appropriation) द्वारा या बीमे के किसी रूप द्वारा ख्याल रखा गया हो।

लाभांश नीति

विनियोक्ताओं को किसी कम्पनी के अंशो मे अधिक से अधिक लाभ पाने मे विशेष दिलचस्पी होती है, लेकिन कम से कम उतना तो उन्हे मिलना ही चाहिए जितना वे धन बाजार (मनी मार्केट) में अन्यत्र प्राप्त कर सकते है। दूसरी ओर, एक सफल कम्पनी को अपने शुद्धलाभ का एक हिस्सा लाभांश के रूप में वितरित करने की आवश्यकता समझते हुए भी स्थिर प्रभारो (Fixed charges) यथा कर, भाडे, प्रगोपित दायित्वो (Funded Obligations) पर ब्याज चुकाने तथा आधिक्य (Surplus) को बढाने की व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए। यदि यह मान लिया जाय कि स्थायी प्रभारो के चुकता हो जाने के बाद लाभांश तथा आधिक्य के लिए लाभ की शेष मात्रा पर्याप्त है, तो इस शेष का लाभांश व आधिक्य के बीच अभिभाजन करना सचालक मडल

का काम है। लाभांश की दर तथा आधिक्य में देय राशि को निर्धारित करना सचालकों के विवेकाधीन है। कम्पनी के अफसर (Officers) या अंशधारी लाभांश की दर को न तो बढ़ा सकते हैं और न घटा सकते हैं, और वे लाभांश शोधन की माग भी नहीं कर सकते। यदि सचालकों ने लाभांश वितरित न करने का निर्णय किया हो तो इस बात को प्रतिबन्ध के बाद कि लाभांश पूजी से नहीं चुकाया जा सकता, तथा वह लाभ में ही चुकाया जा सकता है, सचालकों को यह निर्णय करने का पूरा-पूरा अधिकार है कि लाभांश दिया जाना चाहिए या नहीं, अथवा यदि दिया जाए तो किस दर से। इस विवेकाधिकार के पश्चात् सचालकों का यह कर्तव्य हो जाता है कि लाभांश की दर के निर्धारण के समय वे अनुदारता से काम लें। लाभांश नीति के सम्बन्ध में निगम वित्त (Corporation Finance) के कतिपय मौलिक नियम हैं जिनका अनुसरण करना सचालकों के लिए अनिवार्य है, यदि वे अपने व्यवसाय को विनाश से बचाना चाहते हैं।

दर निर्धारण के प्रारम्भ में, सचालक कम्पनी की नगदी या तरल आस्तियों पर ध्यान देंगे जिनमें से लाभांश दिया जा सकता है। फिर वे इस बात की जाच करेंगे कि निकट भविष्य में व्यवसाय की क्या सभावनाए हैं तथा अंशों व ऋण पत्रों के विक्रय से कम्पनी नयी रचना के निमित्त किस हद तक धन प्राप्त कर सकती है। इन बातों पर विचार करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि हो सकता है कि कम्पनी बहुत अधिक समृद्ध हो परन्तु व्यवसाय के द्रुत विकास की वजह से, जिसके कारण इसकी नकद आस्तिया (Cash Assets) प्राप्तव्य खातों तथा सामान आदि में फस गयी है, लाभ का थोड़ा भी हिस्सा लाभांश के रूप में वितरित करने की स्थिति में न हो। इन परिस्थितियों में अंशों व ऋणपत्रों के विक्रय से धन-सचय के उपरान्त लाभांश घोषित किया जा सकता है। लेकिन यह उचित नहीं है और इससे बचना चाहिए।

दूसरी चीज, जिस पर लाभांश दर निर्धारण करने से पहले सच्चा तथा अनुदार सचालक मडल विचार करता है, ऐसी दर का निर्धारण है, जो अर्जन की सभी परिस्थितियों में कायम रखी जा सके। लाभांश की नियमितता अंशधारियों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि उनमें से कम से कम कुछ तो ऐसे अवश्य हैं जो लाभांश को अपने आश्रितों के जीवन-निर्वाह की दृष्टि से अपनी आय का स्थायी अंश समझते हैं। सचालकों को यह यत्न करना चाहिए कि इस प्रकार के अंशधारियों की आवश्यकताए स्थायी दर से लाभांश के जरिये, जिसमें कम से कम परिवर्तन हो, पूरी हो जाए। यह नियम होना चाहिए कि वृद्धि के अतिरिक्त, लाभांश की दर बदले नहीं और लाभांश की दर तभी बढ़ानी चाहिए जब सचालकों को यह विश्वास हो जाए कि मानवीय सम्भाव्यता की परिधि के अन्तर्गत, पुन इसे घटाना आवश्यक नहीं होगा। लाभांश अंशधारियों के लिए आय का स्थायी स्रोत तो है ही, साथ-साथ यह उनके अंशों के मूल्य में भी वृद्धि कर देता है। उदाहरणत, उन अंशों के मूल्य कम होंगे जिनके लाभांश ६, ६, २, २ और ४ के क्रम में हो, जिनका पाच वर्ष का औसत ४ प्रतिशत हुआ, और उन अंशों के मूल्य अधिक होंगे जिन पर प्रति वर्ष ४ प्रतिशत की

दर में लाभांश मिलना हो। नियमित लाभांश वाले अंशों के विक्रय मूल्य अधिक होते हैं तथा साम्पार्श्विक प्रतिभूति (Collateral Security) के रूप में उनका मूल्य अधिक होता है। कम्पनी को भी लाभांश की स्थायी दर से लाभ होता है, जिसके परिणामस्वरूप कम्पनी का मूल्य ऊंचा और स्थायी हो जाता है। बैंक की दृष्टि में ऐसी कम्पनी की साख बहुत ऊंची होती है तथा ऋणप्राप्ति अधिक सुलभ तथा सस्ती हो जाती है। जब लाभांश की दर स्थिर हो तथा चालू प्रतिभूतियों के मूल्य अधिक हों, तब नये अंश व ऋण पत्र अधिक आसानी से निर्गमित किये जा सकते हैं। अतएव, एक सफल कम्पनी सर्वदा न्यून दर से लेकिन नियमित ढंग से लाभांश घोषित करेगी, ताकि निम्न अर्जन के समय लाभांश की दर कायम रखी जा सके। असाधारण समृद्धि के वर्षों में संचिति में ज्यादा रकम स्थानान्तरित की जानी चाहिए ताकि मंदी के वर्षों में निर्धारित दर से लाभांश देने के लिए रकम प्राप्त हो सके। इस बात पर फिर बल देना उचित होगा कि कि लाभांश की दर अधिकतम समृद्धि के समय भी कम्पनी की न्यूनतम अर्जन शक्ति के अनुरूप निर्धारित दर से ऊपर नहीं उठने देनी चाहिए।

ऊपर लाभांश की नियमितता को बनाये रखने की वांछनीयता के सम्बन्ध में जो भी कुछ कहा गया है उसे श्री मीड[1] महोदय के शब्दों में संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है: "स्कन्ध पर वितरण दर की समता को बनाये रखने के लिए सन्तुलित कम्पनियों के संचालकों को निम्नलिखित नियमों पर चलना चाहिए :—

प्रथम, कार्यारम्भ करने के उपरान्त काफी अर्से तक लाभांश बिलकुल न देना।

द्वितीय, कम्पनी के व्यय खातों की ऐसी व्यवस्था करना कि अनिरिक्त लाभ में घटबढ़ कम से कम हो।

तृतीय, किसी एक वर्ष में लाभांश के रूप में लाभ का केवल कुछ हिस्सा ही देना।"

इस विवेचन की समाप्ति से पहले यह कह देना उचित होगा कि जिस साल कम्पनी ने लाभ-अर्जन नहीं किया है, उस साल लाभांश देना तथा उसे पहले से एकत्रित आधिक्य में से निकालना उचित नहीं है। यह आधिक्य उसी अर्थ में कम्पनी की स्थायी पूंजी है जिस अर्थ में स्वयं पूंजी-स्कन्ध। ऋणदाता भी सामान्यत: यह समझते हैं कि यह (आधिक्य) स्थायी विनियोग को निरूपित करता है। लाभांश देना न केवल कम्पनी के लाभ पर निर्भर होना चाहिए, प्रत्युत उसे कम्पनी की रोकड़ स्थिति पर भी निर्भर होना चाहिए। तभी वह संकट से बची रह सकती है। क्योंकि थोड़ी सी कार्यशील पूंजी के बल पर बड़ी मात्रा में व्यवसाय करने की चेष्टा करना वित्तीय आत्महत्या का द्रुततम और निश्चित मार्ग है। फिर भी, वे कम्पनियां, जो लाभ दीखने मात्र से लाभांश की घोषणा कर देती है, उसी मार्ग का अनुसरण करती है और घोषित लाभांश देने पर उनकी कार्यशील पूंजी बहुत कम रह जाती है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत बुद्धिमानी का रास्ता यही है कि लाभांश उस समय तक रोक रखा जाय,

---

1 कारपोरेशन फिनान्स, पृ. २१७।

जब तक इतनी नगदी एकत्र न हो जाए जो व्यवसाय की आवश्यकता से अधिक हो। एक उदाहरण में यह बात साफ हो जाएगी। एक कम्पनी, जिसकी अंश पूंजी १०,००,००० रुपये की है, सूचित करती है कि लाभांश के लिए प्राप्य शुद्ध लाभ ९१,४६२ रुपये है और ३०,००० रुपये अर्थात् ३ प्रतिशत लाभांश घोषित कर देती है और ६१,४६२ रुपये आधिक्य में डालने के लिए छोड़ देती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कम्पनी ने अनुदार लाभांश नीति का अनुसरण किया है। लेकिन चिट्ठे (Balance Sheet) का दर्शन से पता लगता है कि कम्पनी ने बैंक से १,९१,००० रुपये का प्रतिभूत अधिविकर्ष (Secured overdraft) लिया है। हाथ में नगदी ६,००० रुपये से भी कम है तथा प्राप्य नगद और विपत्रों की राशि चालू दायित्वों से कम है। चिट्ठे पर दृष्टि डालने से ही यह बात साफ हो जाती है कि लाभांश देना न केवल बुद्धिमानी से परे था, प्रत्युत यह शतप्रतिशत विचारहीन तथा संकटपूर्ण कार्य था। संचालकों के ऐसा मार्ग अनुसरण करने के कारण ये हो सकते हैं—अज्ञान (Ignorance), तत्काल समृद्धि का मिथ्या विश्वास कम्पनी को स्कन्ध बाजार में या ऋणदाताओं की आंखों में हैसियत प्रदान करने की इच्छा।

लाभांश देने के सम्बन्ध में कानूनी नियम—कम्पनी अधिनियम लाभांश देने के सम्बन्ध में कतिपय मौलिक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है और लाभांश घोषणा के समय इन नियमों को ध्यान में रखना अनिवार्य है। कम्पनी अधिनियम तथा निर्णीत मुकदमों से निःसारित ये नियम या सिद्धान्त इस प्रकार हैं —

१ यदि कोई कम्पनी अपने अन्तर्नियमों द्वारा वैसा करने के लिए अधिकृत हो तो, जहां कुछ अंशों पर और अंशों की अपेक्षा अधिक राशि प्रदत्त (Paid-up) हो वहां, प्रत्येक अंश पर प्रदत्त राशि के अनुपात में लाभांश दे सकती है।

२ लाभांश अनिवार्यतः लाभ से, न कि पूंजी से, होना चाहिए। पूंजी से लाभांश देना गैर-कानूनी है क्योंकि इसका अर्थ प्रदत्त पूंजी में कटौती करना हुआ। यदि पार्षद सीमानियम (मेमोरेंडम) में भी तत्सम्बन्धी अधिकार दिये गये हों, तो भी वह गैरकानूनी है क्योंकि ऐसा करना कम्पनी अधिनियम ने अभिव्यक्ततः निषिद्ध कर दिया है। पर लाभांश उस निधि में से दिया जा सकता है जो केन्द्रीय या राज्य सरकारों ने लाभांश की प्रत्याभूति के अनपालन में इस प्रयोजन के लिए दी हो।

३ जो सचालक पूंजी से लाभांश देने के जिम्मेदार हैं उन पर प्रथमदृष्ट्या (Prima Facie) सामूहिक तथा वैयक्तिक रूप से वह रकम लौटाने का दायित्व है।

४ लाभांश सिर्फ पंजीयित धारक को, या उसके आदेशानुसार, या उसके बैंकरों को, या (वाहक अंशों की अवस्था में) अंश अधिपत्र के वाहक को या उसके बैंकरों को दायित किया जा सकता है। जो सचालक कम्पनी के अंशों की मूल्य-वृद्धि के उद्देश्य से मिथ्या (Fictitious) लाभांश की घोषणा के जिम्मेदार हैं, उन पर षड्यन्त्र

का दण्डनीय अभियोग चल सकता है।

५. जहाँ कम्पनी ने लाभांश घोषित कर दिया है पर घोषणा की तिथि से तीन मास के भीतर भुगतान नहीं किया है या लाभांश अविभक्त डाक में नहीं डाला है वहाँ संचालक प्रबन्ध अभिकर्ता, सचिव और कोषाध्यक्ष, प्रबन्ध अभिकरण फर्म के या सचिवों और कोषाध्यक्षों की फर्म के साझी, प्रबन्ध अभिकरण परिमित कम्पनी के संचालक या सचिवों और कोषाध्यक्षों की परिमित कम्पनी के संचालक जो जानते हुए इस चूक (default) में जिम्मेदार होंगे जुर्माने के अतिरिक्त सात दिन तक के साद कारावास से दण्डनीय हो सकते हैं। इसके अपवाद सिर्फ ये हैं (i) जहाँ किसी कानून के कारण से लाभांश घोषित नहीं किया जा सका, (ii) जहाँ घोषित के बारे में अंशधारी की हिदायतें पालन के अयोग्य हैं, (iii) जहाँ लाभांश पर अधिकार के बारे में विवाद है, (iv) जहाँ वह कम्पनी की किसी अभ्यर्थना (claim) को चुकाने में समन हो जाता है, (v) जहाँ कम्पनी का दोष नहीं था।

इन नियमों से यह निष्कर्ष निकलता है कि वितरण के लिये किसी न किसी प्रकार का लाभ उत्पन्न होना चाहिए, लेकिन यह निश्चय करने में कि किस प्रकार का लाभ वितरण योग्य है, संचालकों को अनिवार्यतः यह ख्याल रखना चाहिए कि पूंजी से या उधार ली गयी रकम में लाभ नहीं दिया जाता है। स्थिर आस्तियों की हानि या अवक्षयण का, लाभांश के लिए प्राप्य लाभ पर कोई असर नहीं पड़ता और न यह आवश्यक है कि स्थिर पूंजी की हानि या अवक्षयण की पूर्ति आमदनी में से हो। पर किसी अवधि विशेष में लाभ का निश्चय करने में चलमान पूंजी (सर्कुलेटिंग कैपिटल) का हिसाब लगाना चाहिए। यदि पूंजी में कोई वृद्धि हुई और वह नगद के रूप में मिल गयी हो तो उसे लाभ-हानि खाते में लाया जा सकता है तथा तदनुसार उसका प्रयोग किया जा सकता है। अंशों के निर्गमन पर प्राप्त होने वाली प्रव्याजि (Premium) को भी लाभ माना जा सकता है और पिछले लाभ में से जो रकमें अवक्षयण की मद में निकाली जा चुकी हैं उनको भी लाभ की तरह प्रयुक्त किया जा सकता है बशर्ते कि स्थिर आस्तियों के वास्तविक मूल्य में वस्तुतः अवक्षयण हुआ हो। ख्याति के खाते में लाभ की जो रकम विकलित (Debited) जा चुकी है उसे भी लाभ की तरह व्यवहृत किया जा सकता है लेकिन ख्याति को लाभ की भांति वितरित नहीं किया जा सकता।

पर व्यवहार में होता यह है कि कम्पनियाँ सामान्यतया सुस्थित व्यावसायिक सिद्धान्तों के अनुसार अपने लाभ का निर्धारण करती हैं, तथा पूंजीगत हानियों के लिए व्यवस्था किये बिना अपने उस सम्पूर्ण लाभ को, जिसे कानूनन वे बाँट सकती हैं, लाभांश के रूप में वितरित नहीं करतीं। सामान्यतः, जहाँ पूंजी की हानि हो चुकी है या वह विद्यमान आस्तियों में निरूपित नहीं होती, वहाँ कम्पनियाँ अपनी पूंजी घटा लेती हैं और न्यायालय यह हठ नहीं करता कि घटाना व्यर्थ है।

लाभों का पूंजीकरण (Capitalisation of Profits)—अपने

अर्तानियमों द्वारा अधिकृत होने पर कोई भी कम्पनी अपने लाभो का लाभाश के रूप में वितरण करने के बजाय पूजीकरण कर सकती है। ऐसी अवस्था में, कम्पनी अपने अवितरित लाभो में लाभाश या "अधिलाभाश" (Bonus) की घोषणा करती है, और उसी समय उतनी ही सख्या में नये अश निर्गमित करती है और तब उक्त घोषित लाभाश या अधिलाभाश को, जिनके अधिकारी अशधारी है, निर्गमित अशो पर देय पूर्ण राशि के शोधन में प्रयुक्त करती है। पूजीकरण का परिणाम यह होता है कि कम्पनी अपनी किसी भी आस्ति का त्याग नही करती तथा अपनी पूजी बढाने में समर्थ होती है और अशधारी अपना लाभाश अतिरिक्त अशों के रूप में, जिन्हे "अधिलाभाश अश" कहा जाता है, पाते है। अवितरित लाभो का पूजीकरण सदस्यो के नाम पूर्णत प्रदत्त अशो का निर्गमन होता है और इस प्रकार पूजीकृत राशि को लाभ-हानि खाते तथा सचिति खाते से, अधिलाभाश के जरिये, अश पूजी में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। बोनस (या अधिलाभाश) पहले सचिति में से दिया जाता है और फिर नये निर्गमित किये गये अशो की कीमत के रूप में ले लिया जाता है, इसका कारण यह है कि सचिति में से, पूर्णत प्रदत्त अशों की कीमत सीधे पूजी में स्थानान्तरित करने का अर्थ यह होगा कि कम्पनी अपने आपको ही धन दे रही है और यह कार्य अवैध है। ये अधिलाभाश अश आय नही है, बल्कि पूजी है, अत इन पर अतिकर (Surtax) नही लग सकता।

पुनर्गठन (Reorganisation)

पुनर्रचना (Reconstruction) और समामेलन (Amalgamation)

पुनर्गठन, चाहे वह पुनर्रचना के रूप म हो और चाहे समामेलन के रूप में, उस समय सामान्यत आवश्यक हो जाता है, जब कोई कम्पनी अपने को परेशान अवस्था म पाती है, अथवा उसके गठन मे कोई ऐसी बात है जो उसके सफल व्यवसाय-सम्पादन के प्रतिकूल है। हो सकता है कि इसका उद्देश्य खड इतना प्रतिबन्धित हो कि इसका अभीप्सित विस्तार सम्भव न हो, या वित्तीय ससाधनो के समाप्त हो जाने के कारण, कम्पनी के सचालन के लिये अतिरिक्त पूजी की व्यवस्था आवश्यक हो गयी हो। इन परिस्थितियों म भी पुनर्गठन आवश्यक हो सकता है (१) पूर्णत प्रदत्त अशो के जरिये कम्पनी कार्य की परिधि का विस्तार करने के लिये, बहुसख्यक अशधारी नयी पूजी की अभिलाषा कर लेकिन अल्पसख्यक अशधारी और कुछ भी विनियोग करने को इच्छुक न हो। पुरानी कम्पनी की आस्तियो को खरीद लेने के लिए एक नयी कम्पनी की रचना होती है और इसके अशधारी वे ही लोग होते है जो व्यवसाय में और अधिक बढने की इच्छा रखते है। (२) कभी कभी कम्पनी का अर्जन इतना अधिक होता है कि उससे अश पूजी पर अतिशय ऊची दर से लाभाश मिलता प्रतीत होता है, और चूकि सम्पूर्ण अधिकृत पूजी निर्गमित की जा चुकी है, अत अर्जन की अतिशयता की इस प्रतीति को दूर करने के लिए, पूजी को बढाने के निमित्त पार्षद अन्तर्नियमो को बदलने अथवा नयी कम्पनी निर्मित करने के सिवाय और कोई चारा नही रह जाता।

कम्पनी के शुद्ध अर्जन की दृष्टि से, इस रास्ते के अवलम्बन का वास्तविक परिणाम कम्पनी का न्यून पूंजीकरण होता है, अथवा इसका वास्तविक परिणाम अति-पूंजीकरण के जरिये एकाधिकारीय अर्जन (Monopoly Earning) को चिरस्थायी करना हो सकता है। संक्षेप में, पुनर्गठन पूंजी की नाममात्र वृद्धि की योजना का एक अंग हो सकता है। सगठन अथवा पूंजी लाने के समायोजन (Adjustment) के लिए पुनर्गठन के इन कारणों के अतिरिक्त ऐसी परिस्थितियां भी हो सकती हैं जो कम्पनी को पुनर्गठित होने को बाध्य करें। यह तब हो सकता है जब (३) कम्पनी "वाणिज्यिक दृष्टि से दिवालिया" हो, अर्थात्, इसकी चालू आस्तियां इतनी पर्याप्त न हों कि चालू दायित्व चुकता किये जा सकें, हालांकि वैसे व्यवसाय बिल्कुल सुस्थित हो सकता है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर प्रदायकों (Creditors) से समझौते या किसी प्रकार की व्यवस्था (Arrangement) की आवश्यकता होती है, तथा धारा ३९४ के अनुसार, कंपनी का स्वच्छन्दाह्वान समापन (Voluntary liquidation) न करके पुनर्गठन किया जा सकता है। प्रदायकों तथा अंशधारियों के हितों के समायोजन से होने वाला पुनर्गठन कम्पनी को आखिर में दिवालिया होने से बचा सकता है। (५) कभी कभी असाधारण व्यावसायिक दशाओं के कारण भी पुनर्गठन आवश्यक हो जाता है। हो सकता है कि व्यवसाय को अपना स्थायी प्रभार, जैसे ऋण पत्रों पर ब्याज, कम करना पड़े, जो नियत समय पर चुकाना पड़ता है, चाहे किये गये व्यवसाय की मात्रा कुछ भी हो। अतिशय व्यवसाय प्रभारों का सामान्य कारण कुव्यवस्था है, और इस बात की संभावना रहती है कि औद्योगिक मंदी के समय संकट आ जाए और तब, ऐसी स्थिति में या तो अंशधारियों को ऋणपत्रधारियों के हाथ में कम्पनी का स्वामित्व देना पड़ता है और या ऋणपत्रधारियों को ही कुछ रियायत कर देने को प्रेरित होना पड़ता है, यथा कम ब्याज वाली प्रतिभूतियों को स्वीकृत करना पड़ता है या दोनों ही कार्य करने पड़ते हैं।

कम्पनी के पुनर्गठन का चाहे जो कारण हो, पुनर्गठन समामेलन या पुनर्रचना के जरिये सम्पादित होना है। समामेलन तत्वत दो या दो से अधिक कम्पनियों (Undertakings) का मिश्रण (Blending) है, तथा प्रत्येक मिलने वाली कम्पनी के अंशधारी उस कम्पनी के प्रमुख अंशधारी हो जाते हैं जो समामेलित कम्पनियों के अंश धारण करती है। पुनर्रचना का अर्थ होता है इस उद्देश्य से पुरानी कम्पनी की आस्तियों का खरीदना कि उन्हीं व्यक्तियों द्वारा प्राय उसी प्रकार का व्यवसाय किया जाएगा। दोनों के बीच सारभूत अन्तर यह है कि समामेलन से दो या अधिक कम्पनियों के मिलकर एक हो जाने का संकेत मिलता है लेकिन पुनर्रचना का अर्थ होता है वस्तुत उन्हीं लोगों के जरिये परिवर्तित रूप में व्यवसाय का सम्पादन किया जाना। अत, जहां 'क' तथा 'ख' व्यवसाय एक नयी कम्पनी 'ग' को हस्तान्तरित कर दिया जाता है, अथवा 'क' तथा 'ख' इस शर्त पर सविलीन हो जाती है कि 'क' कम्पनी के अंशधारी 'ख' कम्पनी के अंशधारी हो

जायेंगे, वहाँ समामेलन होता है। लेकिन जब किसी पुरानी कम्पनी 'स' की आस्तियों को खरीद लेने के उद्देश्य से 'ब' कम्पनी निर्मित होती है और पुरानी कम्पनी के सभी या लगभग सभी अंशधारी नयी कम्पनी के अंशधारी हो जाते हैं जो वही व्यवसाय करती है जो पुरानी कम्पनी करती थी, वहाँ पुनर्रचना होती है। पुनर्रचना या समामेलन के पाँच रास्ते हैं, यथा

१ कम्पनी अधिनियम की धारा ४९३ (सदस्यों द्वारा स्वेच्छया समापन) तथा ५०६ (प्रदायकों द्वारा स्वच्छया समापन) के अधीन आस्तियों के विक्रय तथा हस्तांतरण द्वारा।

२ पार्षद सीमानियम के अधीन विक्रय, जिसके उपरान्त समापन हो जाता है।

३ बिना समापन किये कम्पनी अधिनियम की धारा ३९१ के अधीन कार्यवाही (Proceedings) द्वारा।

४ धारा ३९४ तथा ३९५ के अधीन, दूसरी कम्पनी के हाथ, सब या लगभग सब अंशों की बिक्री।

५ केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय हित की दृष्टि से धारा ३९६ के अधीन।

धारा ४९३ या ५०६ के अधीन पुनर्रचना या समामेलन—जब सदस्यों या प्रदायकों के स्वच्छया समापन के अनुसार, धारा ४९३ या धारा ५०६ के अधीन क्रमश पुनर्रचना या समामेलन होता है, तब इस आशय का एक विशेष प्रस्ताव स्वीकृत होता है कि कम्पनी की पुनर्रचना वाछनीय है, तथा कम्पनी का स्वेच्छया समापन कर दिया जाय। उसी प्रस्ताव के द्वारा अवसायक (Liquidator) की नियुक्ति हो जाती है तथा उसे यह अधिकार दे दिया जाता है कि वह एक विशिष्ट करार के मसौदे में दी गयी शर्तों के अनुसार पुरानी कम्पनी नयी कम्पनी को हस्तान्तरित कर दे और बदले में, उदाहरण के लिए, नयी कम्पनी के पूर्णतः प्रदत्त या अंशतः प्रदत्त अंश पुरानी कम्पनी के अंशधारियों में या जो उन्हें लेना चाहें उनमें वितरित कर दिये जायें। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विक्री, कम्पनी के हाथ या प्रस्तावित कम्पनी के अभिकर्ता के हाथ होती है, किसी व्यक्ति के हाथ नहीं। वास्तविक वितरण का कार्य तो तदुपरान्त समापन के समय होता है। जब दो या दो से अधिक कम्पनियाँ अपने व्यवसाय को संयुक्त करना चाहती हैं, तब तत्सम्बन्धी कार्य अधिनियम की इन धाराओं के अधीन मिलकर किये जाते हैं। कभी तो ऐसा होता है कि समामेलन एक नयी कम्पनी के पंजीयन द्वारा होता है जो चालू कम्पनियों के अनेक व्यवसायों को खरीद लेती है, और कभी चालू कम्पनियों में से एक, अन्य कम्पनियों के व्यवसाय या व्यवसायों को खरीद लेती है, लेकिन इसमें पहले कि कम्पनी ऐसा करे, उसे अपने सविधान द्वारा तत्सम्बन्धी अधिकार व्यक्त रूप से होना चाहिए, क्योंकि अन्य कम्पनी की ख्याति का क्रय करना कम्पनी के सामान्य क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आता।

कतिपय अपवादों को छोड़कर, कम्पनी का कोई भी सदस्य विक्रयजनक समामेलन तथा पुनर्रचना सम्बन्धी विशेष प्रस्ताव से असहमति प्रकट कर सकता है तथा अपने स्वहित का नकद मूल्य माँग सकता है। असहमत सदस्य को अनिवार्यतः

विशेष प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद सात दिनों के अन्दर, अपने विरोध की लिखित सूचना अवसायक के नाम भेज देनी चाहिए जिसमें अवसायक से विशेष प्रस्ताव को कार्यान्वित न करने अथवा असहमत सदस्य के स्वहित का समझौते या पंचायत द्वारा निर्धारित मूल्य पर खरीद लेने की मांग की गयी हो। यदि अवसायक असहमत सदस्य के अंश का खरीद लेने का निश्चय करता है तो कम्पनी के विघटन के पूर्व ही क्रय धन चुकता हो जाना चाहिए, तथा तत्सम्बन्धी रकम का संचय अवसायक को विशेष प्रस्ताव में निर्धारित रीति से करना चाहिए।

सीमानियम द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन विक्रय द्वारा पुनर्गठन—पुनर्रचना या समामेलन सम्पादित करने की दूसरी विधि, जो एक जमाने में बहुत लोकप्रिय थी, यह है कि पार्षद सीमानियम में दिये गये अधिकार के अनुसार कम्पनी के व्यवसाय को नयी कम्पनी से प्राप्त उन पूर्णतः प्रदत्त अंशों के बदले उसके हाथ बेच डाला जाए, जो विक्रेता कम्पनी या उसके नामजद (Nominee) व्यक्ति को दिये गये हैं। इसके बाद स्वेच्छया समापन सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया जाए तथा अन्तर्नियम में दिये गये अधिकार के अनुसार अवसायक को यह अधिकार दे दिया जाए कि कम्पनी के ऋणों या दायित्वों का चुकता करने या तत्सम्बन्धी व्यवस्था करने के बाद, अतिरिक्त विक्रय राशि को (जो अंशों के रूप में है) अधिकारों और स्वहितों के अनुसार सदस्यों में वितरित कर दिया जाए।

धारा ३९१ के अधीन पुनर्गठन—धारा ३९१ के अधीन किये गये समझौते या व्यवस्था को कार्यान्वित करने के लिये पुनर्रचना या समामेलन किया जा सकता है। जब कम्पनी मृतप्राय हो तथा दायित्वों को चुकता करने में असमर्थ हो, तब प्रदायकों को आज्ञप्ति (Decree) पाने तथा कम्पनी की आस्तियों पर कब्जा कर लेने का अधिकार है। लेकिन कम्पनी की आस्तियों का इस प्रकार अनिश्चित बिक्री (Forced Sale) प्रदायकों तथा अंशदाताओं (Contributors) दोनों के लिए विनाशकारी है। धारा ३९४ बहुसंख्यक प्रदायकों को यह अधिकार देती है कि वे कोई उपयुक्त व्यवस्था कर लें जो सभी सम्बद्ध व्यक्तियों के लिए लाभदायक सिद्ध हो। ऐसा, कम्पनी का समापन करके या धारा १९३ के अधीन बिना समापन किये, दोनों तरह किया जा सकता है। दोनों अवस्थाओं में न्यायालय में प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है जिसमें प्रस्तावित योजना पर विचार करने के लिये प्रदायकों के विभिन्न वर्गों की तथा सदस्यों या सदस्यों के वर्गों की सभाएं करने का आदेश देने की मांग की जाती है। सभा में स्वीकार्य प्रस्ताव स्वयं या प्रतिपत्री (Proxy) द्वारा उपस्थित सदस्यों के तीन-चौथाई बहुमत से स्वीकृत होना चाहिए। जब प्रस्ताव आवश्यक बहुमत से स्वीकृत हो जाता है, तब योजना की स्वीकृति के लिए न्यायालय में एक प्रार्थना-पत्र दिया जाता है और जब न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है, तब, यदि पुनर्रचना या समामेलन करना है तो धारा ३९४ के अधीन आदेश जारी कर दिया जाता है। आमतौर से अपनायी जाने वाली योजना यह होती है कि एक नयी कम्पनी निर्मित की जाएगी, चालू कम्पनी के ऋणपत्रधारी अपनी पुरानी

प्रतिभूतियों के विनिमय में नयी कम्पनी के ऋण पत्र या अधिमान अंश (प्रेफरेंस शेयर) लेंगे, चालू कम्पनी के अप्रतिभूत (Unsecured) प्रदायक पर्ये में इतने आने स्वीकार करेंगे, जो अशत नगदी व अशत. अंशो या अशत ऋणपत्रों में शोध्य होंगे, और कि अंशधारी नयी कम्पनी के अंश प्राप्त करेंगे लेकिन इन अंशो के साथ दायित्व जुड़ा होगा। ऋणपत्रधारी अपने पुराने ऋणों की चुकाई म पूर्णत प्रदत्त अंशों को स्वीकार करते है। कोई भी योजना, जो उचित तथा न्यायसंगत हो तथा सद्विश्वास के साथ बनायी गयी हो, स्वीकृत हो जायगी, यदि समझदार व्यवसायी यह मान ले कि उक्त योजना सभी वर्ग के अंशधारियों तथा प्रदायकों के हित के लिए है, और इस प्रकार की योजना के अधीन न्यायालय असहमत अंशधारियों या ऋणपत्रधारियों को बाध्य करेगा कि वे अपने अंश बेच दें या अपनी प्रतिभूतियां समर्पित कर दें।

अंशों के विक्रय द्वारा पुनर्गठन —किसी एक कम्पनी के व्यवसाय का नियन्त्रण दूसरी कम्पनी के हाथ हस्तान्तरित करने की एक सुविधाजनक विधि है उक्त कम्पनी के अंशधारियों द्वारा ऐसी कम्पनी के हाथ अपने अंशों का विक्रय। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सभी अंशधारियों के लिए अपने अंशों का हस्तान्तरण आवश्यक नहीं है, प्रत्युत धारा ३९५ के अधीन यदि प्रभावित अंशों के ⁹⁄₁₀ धारियों ने हस्तान्तरण की योजना स्वीकृत कर ली है तो बाकी ¹⁄₁₀ अंशधारियों के अंश, जो अल्पसंख्यक है, केता कम्पनी बलात् अवाप्त (Acquire) कर सकती है बशर्ते कि न्यायालय अन्यथा आदेश न दे दे। जब न्यायालय योजना के औचित्य की बात से संतुष्ट हो, तब वह कम्पनी अधिनियम की धारा ३९४ ए के अधीन इसे स्वीकृत कर देगा।

केन्द्रीय सरकार के आदेश से समामेलन—जहा केन्द्रीय सरकार को यह संतोष हो जाए कि राष्ट्रीय हित साधन के लिए यह परमावश्यक है कि दो या अधिक कम्पनियों का समामेलन हो जाए, वहा यह सरकारी राजपत्र में अधिसूचित आदेश द्वारा उन कम्पनियों को, ऐसे संविधान; ऐसी सम्पत्ति, शक्तियों, अधिकारों, स्वहितों (Interests) अधिकारों, और विशेषाधिकारों (Privileges); और ऐसे दायित्वों, कर्तव्यों तथा बंधनों (Obligations) के साथ, जैसे आदेश में विनिर्दिष्ट हो, एक कम्पनी के रूप में समामेलित करने का उपबंध कर सकती है। नयी कम्पनी में भी सदस्यों और प्रदायकों या उत्तमर्णो (Creditors) के वही अधिकार रहेंगे जो समामेलन से पहले उनको अपनी-अपनी कम्पनी में उनके थे।

धारा ४०२ न्यायालय को यह शक्ति प्रदान करती है कि यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि कम्पनी के कार्य कम्पनी के हितों के प्रतिकूल सम्पादित किये जा रहे हैं, या कतिपय अंशधारी ऐसे कार्य से पीड़ित हो, तो वह अल्पसंख्यक अंशधारियों के संरक्षण के हित आदेश जारी कर सकता है। दिये गये आदेश में, अन्य हिदायतों के साथ कम्पनी के भविष्यत कार्यों के विनियमन की, तथा कम्पनी और इसके प्रबन्धक, मैनेजिंग एजंट, प्रबन्ध संचालक या किसी अन्य संचालक के बीच की गयी संविदा की, चाहे वह किसी भी तरह की गयी है, समाप्ति का उपबन्ध हो सकता है उपर्युक्त धारा ४०२ के अधीन होने वाली संविदा समाप्ति का कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी जाएगी।

अध्याय ६

कम्पनी का प्रबंध

जैसा कि संकेत किया जा चुका है, कम्पनियां अपना कार्य अभिकर्ताओं द्वारा ही कर सकती हैं और कम्पनी के व्यवसाय संचालन के लिए कम्पनी के कार्यों का संचालन संचालकों के हाथों में छोड़ दिया जाता है। जो अंशधारी सदस्य न हों, वे करीब-करीब निष्क्रिय ही रहते हैं, और केवल साधारण सभाओं में साधारण नीति पर अपने विचार प्रकट कर लेते हैं। व्यक्तिगत हैसियत से, किसी भी अंशधारी का उस उद्योग की व्यवस्था में कुछ भी प्रभाव नहीं होता, जिसमें वह अंश पूंजी के आंशिक स्वामी होने के नाते दिलचस्पी रखता है,लेकिन सामूहिक रूप से अंशधारी अपने बीच में कुछ व्यक्तियों को संचालक चुनते हैं। ये संचालक मिलकर संचालक मण्डल का निर्माण करते हैं जो संचालन तथा व्यवस्था के कर्त्तव्यों का दायित्व वहन करता है। संचालक मण्डल के सदस्य प्रायः अपने में से एक को मण्डल का अध्यक्ष नियुक्त कर लेते हैं, तथा एक या दो को प्रबन्ध संचालक के पद पर नियुक्त कर लेते हैं। हमारे देश में यह रिवाज है कि संचालक मण्डल के अधिकार सीधे 'प्रबन्ध अभिकर्ताओं' को दे दिये जाते हैं और जहां प्रबन्ध अभिकरण निषिद्ध है, यथा अधिकोषण और बीमा उद्योग में, वहां यह अधिकार प्रबन्ध संचालक को दे दिये जाते हैं। अतएव, सिद्धान्ततः कम्पनी के कार्यों का नियन्त्रण कम या अधिक मात्रा में, अंशधारियों, संचालकों तथा प्रबन्ध अभिकर्ताओं के हाथों में, तथा बड़े-बड़े व्यवसायों की अवस्था में, वैतनिक मुख्याधिकारियों के हाथों में, जो किसी किसी कार्य के विशेषज्ञ होते हैं, होता है।

नियन्त्रण व प्रबन्ध अलगनीय

किसी कम्पनी के अंशधारियों की स्थिति उस उपक्रमी तथा स्वामित्वधारी की होती है जो जोखिम उठाता और पूंजी की व्यवस्था करता है लेकिन व्यवसाय का संचालन तथा प्रबन्ध संचालकों और प्रबन्ध अभिकर्ताओं के हाथों में छोड़ देता है। सिद्धान्त में तो वह स्वामी है, लेकिन व्यवहार में प्रायः सुषुप्त साझी है, जो हार्टले विदर्स महोदय के शब्दों में, "कभी-कभी नींद में करवटें बदलता है तथा अविवेकपूर्ण में प्रायः प्रासंगिक-अप्रासंगिक मार्ग दे देता है।" जोखिम को वितरित कर देने के सुदृढ़ सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए वह अपने रुपये भिन्न-भिन्न व्यवसायों (कम्पनियों) में लगाता है। न तो वह इस स्थिति में है और न इस बात की अभिलाषा ही करता है कि वह इन विभिन्न व्यवसायों की विस्तृत कार्यविधि को समझ या कुछ अपवाद रूप परिस्थितियों के अतिरिक्त, किसी तरह उन व्यक्तियों की नीति या प्रशासन पर

नियन्त्रण रखे। जब व्यवसाय में भयंकर गड़बड़ी नजर आती है तब प्रारूपिक अंशधारी संचालकों की नीति के सम्बन्ध में अपनी निष्क्रियता का परित्याग करके सामने आता है।

ये संचालक सिद्धान्ततः अंशधारियों द्वारा नियुक्त किये गये होते हैं। लेकिन यह बात सिद्धान्त में ही सही है, व्यवहार में नहीं। संचालक मण्डल के चुनाव में शायद ही कभी प्रतिद्वन्द्विता होती है, और व्यवहार में संचालक अपने को स्वयं छाटते हैं, या सहयोजित (Coopted) किये जाते हैं, अथवा कभी-कभी वे अभिकर्त्ताओं तथा अन्य महत्वपूर्ण हितधारियों द्वारा नामजद होते हैं। जैसे कि रूमल ने लिखा है, "वास्तविकता यह है कि अंशधारी संचालकों का निर्वाचित तो करते हैं, पर उन्हें कभी छाटते नहीं।' अंशधारी मानो रबर स्टाम्प के जरिये संचालकों के निर्वाचन की पुष्टि कर देते हैं। फिर एक बात और है। एक बार नियुक्त होने पर वे कभी ही संचालक पद छोड़ते हैं। क्योंकि यद्यपि यह बात सही है कि अधिनियम उनकी क्रमिक निवृत्ति की व्यवस्था करता है, परन्तु उन्हें पुनर्निर्वाचन के लिए उम्मीदवार होने की स्वीकृति भी देता है। निवृत्त होने वाले संचालक सदा पुनर्निर्वाचित हो जाते हैं और इस प्रकार एक ही वर्ग के लोगों के हाथ में नियन्त्रण चिरस्थायी हो जाता है। इतना ही क्यों, भारतवर्ष में अधिकतर कम्पनियां ऐसी हैं, जिनमें संचालकों का प्रभाव अंशधारियों से अधिक नहीं होता, तथा व्यावहारिक नियन्त्रण व्यवहारतः प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के हाथ में हुआ करता है। वे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के हाथों में कठपुतली होते हैं, और वही करते हैं जो साधारण नीति के सम्बन्ध में उन्हें करने की आज्ञा होती है। अतएव, आधुनिक व्यवसाय संगठन के सिद्धान्त तथा व्यवहार में पर्याप्त अन्तर है। सिद्धान्त में संयुक्त स्कन्ध कम्पनी एक लोकतन्त्र है, लेकिन व्यवहार में वह ऐसी हरगिज नहीं है, क्योंकि अधिकतर अंशधारी दूर-दूर बिखरे होते हैं। उनमें हमेशा दलबदल होती रहती है। अंशधारी अपनी कम्पनी की कार्य-प्रणाली से बिल्कुल अनभिज्ञ होते हैं। अतः वे अपने सामान्य मताधिकार का शायद ही कोई प्रभावोत्पादक उपयोग कर सकें। एक ओर आधुनिक उद्योग का स्वामित्व तो पर्याप्त फैल गया है, पर दूसरी ओर इसका नियन्त्रण बिल्कुल केन्द्रित हो गया है।[×] अतएव, जैसा कि मार्गोल का कथन है, व्यवसाय स्वामित्व में लोकतन्त्रीकरण हुआ है, व्यवसाय नियन्त्रण में नहीं। नियन्त्रण भी भारत अल्पतन्त्रीय होता है क्योंकि अंशधारियों को अन्त भार कर संचालक मण्डल के उन सदस्यों को स्वीकार करना ही पड़ता है जिनके नाम उनके समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। संचालकों के मुकाबले में स्वतन्त्र या बाहरी अंशधारी को एक दूसरी कठिनाई आती है। इतना ही नहीं, कि वे अपनी पसन्द के संचालक नहीं निर्वाचित कर सकते, वरन् यदि वे उनमें से किसी को, जो भीतरी गुट में शामिल है, हटाना भी चाहें तो ऐसा नहीं कर सकते। पार्षद अन्तर्नियम इन प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को निरंकुश शक्तियां प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध के प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए बहुमत चाहिए और ये अंशधारी इतना बहु-

× G D H Cole Modern Theories and Forms of Industrial Organisation, pp 20-22

मत हरगिज प्राप्त नही कर सकते । इस बात से अधिक विचित्र, लेकिन साथ-साथ स्वाभाविक तथा उपदेशप्रद, अन्य और कोई घटना नही है कि यूरोपीय तथा संयुक्त-राज्य अमेरिका जैसे प्रगतिशील देशो में तथा अब भारत में आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ एक सी है—वे 'रूप' में तो लोकतान्त्रिक है, लेकिन सारत अल्पतन्त्रीय है । सरकार में भी तथा बडे-बडे व्यवसायो में भी शासन तो मुठ्ठी भर लोग ही करते है लेकिन ये लोगो में ऐसा विश्वास उत्पन्न कर देने में सफल हो जाते है कि मानो वे (लोग) स्वयं शासन कर रहे है । राजनीतिक जगत में शासन शक्ति पेशेवर राजनीतिज्ञो के हाथ में होती है । आर्थिक जगत मे कम्पनी में शक्ति का उपयोग सचालक तथा प्रबन्ध अभिकर्त्ता करते है, और कम्पनी सबसे अधिक प्रमुख व्यवसाय सगठन है । अत हावसन[1] कहता है, "सयुक्त स्कन्ध कम्पनी, जो स्वरूप में आर्थिक लोकतन्त्र है तथा जिसकी सरकार निर्वाचित एव उत्तरदायी होती है, व्यावहारिक जगत में नितान्त अल्पतन्त्र है । सर्वसाधारण से सिर्फ धन की अपेक्षा की जाती है, उसके सचालन की नही ।" सयुक्त स्कन्ध सगठन से प्रसूत होने वाले स्वामित्व के विस्तृत प्रसार का अनिवार्य परिणाम होगा व्यवसाय के स्वामित्व तथा नियन्त्रण के बीच प्राय पूर्ण बिलगाव ।

यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि चूकि सचालक तथा प्रबन्ध अभिकर्त्ता भी उस कम्पनी के अशधारी है, जिसका वे प्रबन्ध करते है, अत उनके द्वारा नियन्त्रण अशधारियो द्वारा ही नियन्त्रण हुआ । यह सत्य है कि वे कम्पनी के अशधारी है, लेकिन वे कम्पनी के पूजी ढाचे का सदा ऐसा रूप स्थिर करते है कि बहुत थोडे अशो के स्वामी होकर भी वे कम्पनी को सर्वदा अपने नियन्त्रण के अधीन रखते है । एक उदाहरण से यह बात साफ हो जायगी । के० ओ० ई० लिमिटेड ने २५ लाख रुपये की अश पूजी निर्गमित की, जो १० रुपये वाले 'ए' श्रेणी के, ५०,००० अशो तथा १०० रुपये वाले 'बी' श्रेणी के २०,००० अशो में विभाजित है । अशो की कुल सख्या में से प्रवर्त्तको, सचालको तथा प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने अपने पास 'ए' श्रेणी के ४५,००० अश तथा 'बी' श्रेणी के ४००० अश रख लिये है । 'ए' श्रेणी के अशो को वे ही मताधिकार है, जो 'बी' श्रेणी के अशो को, अर्थात् प्रत्येक अश को एक । इस प्रकार केवल ४,५०,००० रुपये की लघुराशि के अशदान के जरिये ही प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ और उनके मित्रो ने अपने लिए ४५,००० मतो का ठोस पक्ष निर्मित कर लिया है, जबकि सम्पूर्ण मतो की सख्या केवल ७०,००० है और सम्पूर्ण निर्गमित पूजी की राशि का कुल योग २५,००,००० रुपये है । अश प्रबन्ध तथा बहुल मताधिकार की यह प्रणाली कई दृष्टिकोणो से आपत्तिजनक है । प्रथम तो यह कि इस प्रणाली में नियन्त्रण को कुछ ऐसे व्यक्तियों के हाथ में चिरस्थायी बनाने की प्रवृत्ति है जिनका व्यवसाय में अपेक्षत कम जोखिम होता है । द्वितीय, यह सच्चे विनियोक्ता के इस विश्वास को हिला देती है कि उसके प्रति औचित्य बरता जायगा, और इस प्रकार विनियोग के बहाव

1. Evolution of Modern Capitalism.

में रुकावट डालने लगती है। तृतीय, इसकी परिणति भ्रष्टाचार तथा बेईमान प्रबन्ध में होती है।[1]

इसके बाद यह प्रश्न उठता है कि क्या वर्तमान व्यावसायिक ढांचे के युग में अंशधारियों के हाथ में वर्तमान से अधिक नियन्त्रण होना सम्भव या वाछनीय है? जहां तक सम्भवता का प्रश्न है, यह आसानी से देखा जा सकता है कि अंशधारी अपने व्यवसाय पर व्यावहारिक नियन्त्रण नहीं रख सकते, क्योंकि वे इधर-उधर बिखरे हुए होते हैं तथा जोखिम को वितरित कर देने की नीति का अनुसरण करने के परिणाम-स्वरूप खतरा भी कम होता है। जहां तक उनके द्वारा नियन्त्रण की वाछनीयता का प्रश्न है, इतना समझना आसान है कि थोड़े से अंशधारियों को छोड़कर, औरों के पास न तो समय है, न ज्ञान और न अधिकतर अंशधारियों में यह अभिलाषा ही होती है कि जब तक उन्हें लाभांश मिलता रहे तथा जब तक कम्पनी का प्रबन्ध योग्य व ईमानदार संचालकों व प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के हाथ में है, तब तक वे कम्पनी के प्रबन्ध की चिन्ता में पड़े। प्रोफेसर सारजण्ट फ्लोरेन्स ने अपना सबसे नयी पुस्तक में अंशधारियों की निष्क्रियता या सम्यक् स्वस्थ कम्पनी में सौर्वस्य शासन संचालन की अयोग्यता के कारणों का विवेचन किया है। सम्यक् विचार-विमर्श (Deliberations) की दृष्टि से अंशधारियों की संख्या अधिक होती है अतः प्रभावोत्पादक साधारण बैठक का होना असम्भव है। यदि सभी या पर्याप्त संख्या में अंशधारी बैठक में सम्मिलित होने पहुँच जाय तो वह बैठक विचार-प्रधान नीति निर्धारण संस्था के बजाय एक राजनीतिक आम सभा (Mass Rally) के समान हो जायेगी, जिसमें जनता को प्रभावित करने वाले प्रचार तथा भावना का बोलबाला रहता है। वस्तुतः, बात यह है कि अंशधारियों की सम्पूर्ण संख्या का एक छोटा हिस्सा ही, शायद ५० या १००, अधिवेशन में सम्मिलित होता है। यह छोटी संख्या प्रतिनिधि नहीं होती, और सम्मिलित होने वाले सनकी तथा बेपरवाह लोग होते हैं। संख्या की न्यूनता के अतिरिक्त अंशधारियों की सामान्य प्रभावहीनता का कारण उनका गुण भी है। अंशधारियों की बहुत बड़ी संख्या में अनभिज्ञता, या व्यावसायिक अपूर्णता या अनिव्यस्तता, इनमें से दो या तीन गुण होते हैं। यहां तक कि ज्ञान-सम्पन्न व्यवसाय-निपुण विनियोक्ता—वे जो अन्य व्यवसाय या वृत्ति में लगे हैं, चुस्त सट्टेबाज हैं या निगमित संस्थाएँ, (Corporate Institutions) हैं—अपने अंशों को एक उपक्रम में सच्चे विनियोग के बजाय एक पण्य वस्तु (Commodity) समझते हैं। वे अंशों का स्वामित्व लाभ के उद्देश्य से करते हैं, न कि व्यवस्था पर नियन्त्रण के उद्देश्य से। यदि वे असन्तुष्ट हैं तो अंशधारियों के आगामी अधिवेशन में न जाकर अंशों को ही बेच देंगे। और वे शायद तब भी अंशों को बेच दे जब उन्हें पूरा सन्तोष प्राप्त हुआ हो—मूल्य में वृद्धि होने पर तथा कुछ लाभ प्राप्त होने पर। फिर एक बात और है, कम्पनी से उनका सम्बन्ध ढीला होता है। क्योंकि उन्हें जानकारी प्राप्त है और वे व्यवसाय में निपुण हैं, अतः उन्हें

1. N Das Industrial Enterprise in India p 83

जोखिम को विनिरित कर देने की कला का ज्ञान है। उनकी प्रवृत्ति होगी कि अपनी बचत के टुकड़े-टुकड़े कर दें तथा उन विभिन्न कम्पनियों में विनियोग करें। इस अभिनरण के परिणामस्वरूप अधिकतर अंशधारी सम्पूर्ण मताधिकार पूंजी में बहुत ही थोड़े अंश धारण करते हैं। चूंकि अंशों के अनुपात में मताधिकार होता है, अतः औसत अंशधारी कम्पनी के निर्णयों पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ होते हैं। दलील का निष्कर्ष निकालते हुए प्राफेसर फ्लोरेन्स कहते हैं, "अंशधारियों का अधिवेशन विधानतः कम्पनी की सर्वप्रभुसम्पन्न सभा है, लेकिन किसी एक कम्पनी में अधिकतर अंशधारियों का गुण और महत्ता, उनकी जल्दी-जल्दी अदल-बदल, उनकी विभाजित दिलचस्पी, जोखिम का विनरण तथा अंशों की न्यून संख्या इस परिणाम पर पहुँचाते हैं कि अंशधारियों की सभा में वास्तव में न तो उपस्थिति अधिक होगी और न प्रभावोत्पादकता। अनुपस्थिति प्रायः ९९ प्रतिशत से अधिक होती है और जो स्वयं या प्रतिपत्री (Proxy) द्वारा उपस्थित होते हैं, (इन प्रतिपत्रियों में समाविष्ट बहुतेरे बड़े-बड़े अंशधारी होते हैं) वे चिट्ठे (Balance Sheet), नीति तथा संगठन विषयक निर्णयों तथा संचालकों की रिक्त जगह पर संचालकों द्वारा की गयी भरती पर स्वीकृति मात्र देते हैं।" जो कुछ कहा गया है, उसका सारांश यह है कि स्वामित्व तथा नियन्त्रण में बिलगाव के कारण—और यह बिलगाव उतना ही अधिक होता है जितना बड़ा व्यवसाय होता है—व्यवस्था में कम दक्षता तथा अधिक बेईमानी आती है। यदि किन्हीं उपायों द्वारा अंशधारियों के हित की दृष्टि से नियन्त्रकों के कार्य पर नियन्त्रण रखा जा सके तो कुछ अल्पतन्त्रीय लोगों के हाथ में अधिकार या शक्ति के रहने से कोई खतरा नहीं हो सकता, जैसा कि राजनीतिक क्षेत्र में भी इस स्थिति में हो सकता है, जहां शासक सच्चे हों और मतदाताओं एवं समाज के हित का ख्याल रखते हों। व्यवसाय के स्वामित्व तथा नियन्त्रण में बिलगाव तो जरूर रहना ही है। हमारे देश में व्यवसाय के आकार के विकास के साथ-साथ यह बिलगाव, वेतनधारी कार्यपालकों के आगमन के साथ-साथ और अधिक बढ़ता जाएगा, जैसा कि अन्य देशों में हुआ है। हम 'उत्तरदायी प्रबन्ध तथा नियन्त्रण" के लिए कार्यशील होना चाहिए, न कि "अल्पतन्त्रीय नियन्त्रण" के रूप में आसमान के तारे तोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

संचालक

प्रत्येक लोक सीमित कम्पनी तथा उस निजी कम्पनी के लिए, जो किसी लोक सीमित कम्पनी की गौण कम्पनी है, यह अनिवार्य है कि इसमें कम से कम तीन संचालक हों और संचालकों की दो-तिहाई संख्या अनिवार्य क्रमशः निवृत्त हो, लेकिन निवृत्त होने वाले संचालक पुनर्निर्वाचन के योग्य होते हैं, और प्रायः वे पुनर्निर्वाचित हो जाते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि केवल एक-तिहाई सदस्य स्थायी रूप से अपने पद पर बने रह सकते हैं, और यह उल्लेखनीय है कि ये संचालक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा नामजद होते हैं। निजी कम्पनी में दो संचालक अवश्य होने चाहिए। संचालकों की न्यूनतम संख्या की व्यवस्था इसीलिए की गयी है कि कोई कम्पनी अपने व्यक्तित्व के रूप में कार्य नहीं कर सकती क्योंकि इसका कोई भौतिक

व्यक्तित्व नही है और अनिवार्यत. यह अभिकर्त्ताओ की मार्फत कार्य करती है। ये व्यक्ति, जिनके द्वारा कम्पनी कार्य करती है, जिनके द्वारा इसका व्यवसाय सचालित होता है तथा जिनके जरिये इसकी नीति के निर्माण तथा सामान्य अधीक्षण का कार्य सम्पादित होता है, सचालक कहे जाते है। सामूहिक रूप से सचालको को सचालक मडल कहते है, तथा यह आवश्यक है कि वे अनिवार्यत मण्डल की बैठक में ही कार्य करें, बशर्ते कि अन्तर्नियमो में अन्यथा व्यवस्था न हो। ये लोग (सचालक) कभी-कभी "परिषद" (Council), अधिशासी सस्था (Governing Body), "प्रबन्ध समिति" (Managing Committee) या "प्रबन्धक साझेदार" (Managing Partners) भी कहलाते है। चूंकि कम्पनी अधिनियम सचालक की परिभाषा नही करता, इसलिए हम एम आर जेमेल को उद्धृत कर सकते है, जो कहते है, "नाम चाहे जो हो, पर उन व्यक्तियो की, जो सचालक पद पर आसीन है, वास्तविक स्थिति यह है कि वे वाणिज्यिक व्यक्ति है, जो अपने तथा सब अशधारियो के लाभ के लिए एक व्यापारिक कम्पनी का प्रबन्ध करते है।" अपनी शक्तियो तथा कम्पनी की पूंजी की दृष्टि से उनकी स्थिति विश्वासाश्रित (Fiduciary) होती है, लेकिन वे कम्पनी के कर्मचारी नही है—उसकी बात दूसरी है, जो प्रबन्ध सचालक के स्थान पर है या किसी सविदा के अधीन किसी अन्य प्रकार से कार्यपालक (Executive) की स्थिति में है। विधि की दृष्टि में सचालक कम्पनी के अभिकर्त्ता तथा न्यासी है—अभिकर्त्ता उन व्यवहारो में जो वे कम्पनी के निमित्त करते है, तथा न्यासी कम्पनी के धन तथा सम्पत्ति के।

कम्पनी के जो रुपये-पैसे उनके हाथ में आते है, तथा जिन पर उनका नियन्त्रण होता है, न्यास निधि (Trust Fund) के रूप में होते है और अतएव इनके दुरुपयोग का अर्थ होगा विश्वास भग, जिसके लिए वे वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से दायी होगे। अभिकर्त्ता की हैसियत से सचालक कम्पनी के निमित्त कार्य करते है और यदि उन्होने वैयक्तिक दायित्व ग्रहण न कर लिया हो तो वे वैयक्तिक दायित्व के भागी नही हो सकते। चूंकि कम्पनी का प्रशासन कार्य उनके हाथो में छोड दिया जाता है, अतः उनमें चरित्र बल, व्यावसायिक मेधा, प्रबन्ध सम्बन्धी चातुर्य, सच्चाई तथा ख्याति का होना अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति जो अननुमोचित दिवालिया (Undischarged Insolvent) न हो, तथा जिसने अन्तर्नियमो में उपबधित न्यूनतम योग्यता के अश लिये है, सचालक हो सकता है। इन व्यापक योग्यताओ के अतिरिक्त, जिनका सब सचालको में होना आवश्यक है, कुछ सचालको में विशिष्ट कार्यों, जैसे प्राविधिक शाखा या विक्रय विभाग की विशिष्ट योग्यता हो सकती है, तथा वे कम्पनी के पूर्णकालिक अफसर हो सकते है। भारतवर्ष में सचालक का का पद पूर्णकालिक कार्य नही होता, तथा सचालक किसी नियमित मध्यान्तर पर सचालक मण्डल की बैठको में सम्मिलित होते है, और कभी-कभी बीच में आपातिक कार्य के लिए असाधारण अधिवेशन में उपस्थित होते है। वे अपने में से किसी सदस्य को मडल का

सभापति नियुक्त कर लेते है, जिसका कार्य होता है साधारण वार्षिक बैठक तथा मडल की बैठको की अध्यक्षता करना ।

नियुक्ति, निवृत्ति, अपनयन और त्यागपत्र—पहले सचालक या तो प्रवर्तको द्वारा नियुक्त किए जाते है और या उनका नाम अतर्नियमो में लिखा होता है और इस अवस्था में यह आवश्यक है कि उनकी सचालको के रूप मे काम करने की और अर्हता अश लेने की या लेने के लिए सहमत होने की सम्मति पजीकार के यहा न यी कराई जाए। यदि यह प्रक्रिया नही अपनाई जाती तो सीमानियम के हस्ताक्षरकर्ता (जो व्यष्टि होते है) तब तक सचालक माने जाते है जब तक बृहद् सभा मे पहले सचालको की नियुक्ति हो। सचालको की जो महत्वपूर्ण स्थिति होती है, उसे देखते हुए नए अधिनियम ने प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ पर सचालको के प्रभावी नियत्रण का उपबन्ध किया है, विशेष रूप से इस कारण कि रोजमर्रा का प्रबन्ध प्राय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के हाथो में छोड दिया जाता है। इसलिए १ अप्रैल १९५६ के बाद कोई व्यष्टि ही (कम्पनी, साहचर्य या फर्म नही) किसी लोक कम्पनी या निजी कम्पनी का सचालक नियुक्त किया जा सकता है। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ पर इस विषय में रोक लगाने के लिए कि व सचालक मडल में अपने ही आदमी न भर दें, अधिनियम यह उपबन्ध करता है कि कुछ प्रकार के व्यक्ति, जो प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ से सम्बन्धित या उनके प्रभावाधीन माने जा सकते है ऐसे सचालको के रूप में नियुक्त न किए जा सकेंगे जिनकी पदावधि निवृत्ति द्वारा या चक्रानुक्रम (Rotation) द्वारा समाप्त हो सकती है। पर ये लोग कम्पनी द्वारा पास किए गए विशेष सकल्प द्वारा नियुक्त किए जा सकते है। यदि अतर्नियमो में अन्यथा उपबन्ध न हो तो अन्य सचालक भी, उदाहरण के लिए, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के मनोनीत व्यक्ति भी, विशेष सकल्प द्वारा नियुक्त किए जाने चाहिए। सचालको के सब चुनावो में प्रत्येक सचालक के बारे में एक अलग सकल्प पास होना चाहिए। जैसा कि ऊपर बताया गया है, लोक कम्पनियो और उनकी सहायक कम्पनियो की अवस्था में सचालको की सख्या का कम से कम दो-तिहाई चक्रानुक्रम से निवृत्त होते जाना चाहिए और प्रत्येक वार्षिक बृहद् सभा में, चक्रानुक्रम से निवृत्त होने वाले सचालको में से एक-तिहाई निवृत्त हो जाने चाहिए पर वे पुन चुने जा सकेंगे और कुछ परिस्थितियो में पुन निर्वाचित माने जाएगे। नए सचालक को अर्थात् उस सचालक को, जो निवृत्त होने वाला सचालक नही है, चुनाव के लिए अपने आपको प्रस्तुत करने से पहले कम्पनी को १४ दिन का नोटिस देना होगा और सचालक के रूप में काम करने पर अपनी सम्मति पजीकार के यहा न यी करानी होगी। सचालको की अतर्नियमो द्वारा निर्धारित अधिकतम सख्या में वृद्धि केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के बिना नही की जा सकती। पर अधिकतम सख्या के अन्दर रहते हुए कोई वृद्धि या कमी साधारण सकल्प द्वारा की जा सकती है। बीच में होने वाली रिक्तताओ की पूर्ति मडल द्वारा की जा सकती है और नियुक्त व्यक्ति तब तक सचालक बना रहेगा जब तक पहले वाला व्यक्ति बना रहता है। लोक कम्पनियो या उनकी सहायक कम्पनियो के अतर्नियमो में यह उपबन्ध हो सकता है कि दो-तिहाई सचालको की नियुक्ति आनुपातिक प्रतिनिधान की प्रणाली

में हो। जो सचालक चक्रानुक्रम से निवृत्त होने वाला नहीं है, उसकी नियुक्ति या पुन-नियुक्ति से सम्बन्धित किसी उपबन्ध में कोई संशोधन केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के बिना प्रभावकारी न होगा।

यदि कोई अंश अर्हता रखी गई है तो सचालकों को वह अपनी नियुक्ति के बाद दो महीने के भीतर प्राप्त कर लेनी चाहिए। अर्हता अंशो का मूल्य ५ हजार रुपये से अधिक न होना चाहिए और जहा वह ५ हजार रुपये से अधिक है वहा एक अंश के नामाकितमूल्य से अधिक न होना चाहिए। अर्हता अंशो के प्रयोजनों के लिए वाहक अंशो की गणना की जाएगी। ये उपबन्ध ऐसी निजी कम्पनियों पर लागू नहीं होते जो लोक कम्पनियों की उपसहायक नहीं हैं। निम्नलिखित को सचालक नियुक्त नहीं किया जा सकता (१) विकृत मस्तिष्क वाले व्यक्ति, (२) अनुन्मोचित शोधाक्षम (३) वे व्यक्ति जिन्होंने शोधाक्षम अभिनिर्णीत किये जाने के लिए प्रार्थना-पत्र दिये हैं और जिनके प्रार्थना-पत्र लम्बित हैं (४) व व्यक्ति जिनको नैतिक भ्रष्टता वाले किसी अपराध में सिद्धदोष पाया गया है और ६ महीने की कैद की सजा हुई है (यह रुकावट सजा खत्म होने से ५ साल की अवधि तक रहेगी), (४) वे व्यक्ति जिन्होंने याचना धन पूरा नहीं चुकाया है, (५) वे व्यक्ति जिन्हें न्यायालय के आदेश द्वारा अनर्हित कर दिया गया है। केन्द्रीय सरकार उपर्युक्त (४) और (५) के विषय में उचित अवस्थाओं में उन्मोचन प्रदान कर सकती है निजी कम्पनी अनर्हता के और आधार भी निर्दिष्ट कर सकती है।

कम्पनी ला कमेटी (Company Law Committee) की सिफारिश पर यह सीमा बाध दी गई है कि एक सचालक २० सचालकत्व ही धारण कर सकता है, अधिक नहीं इसलिए एक अप्रैल १९५६ के बाद कोई व्यक्ति २० से अधिक कम्पनियों का सचालक नहीं रह सकता। २० की यह सख्या गिनते हुए, (उपसहायक कम्पनियों को छोड़कर अन्य) निजी कम्पनिया, अपरिमित कम्पनिया, बिना-लाभ (Non-Profit) साहचर्यों के सचालकत्व और वैकल्पिक सचालकत्वों को छोड़ दिया जाएगा। यदि १ अप्रैल १९५६ को कोई व्यक्ति २० से अधिक कम्पनियों का सचालक है, तो उसे २ मास के भीतर वे २० कम्पनिया चुन लेनी चाहिए जिनमें वह सचालक बना रहना चाहता है और अन्य सचालक पदों से त्याग-पत्र दे देना चाहिए और उसने जो कम्पनिया चुनी हैं, उन्हें, पजीकार को तथा केन्द्रीय सरकार को अपने चुनाव की सूचना दे देनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति, जो पहले २० कम्पनियों का सचालक है, किसी अन्य कम्पनी में सचालक नियुक्त किया जाता है तो यदि वह उसके बाद १५ दिन के भीतर किसी अन्य कम्पनी या कपनियों में अपना पद नहीं छोड़ देता जिससे उसके सचालकत्वों की अधिकतम सख्या २० रहे तो उसकी नियुक्ति प्रभावी नहीं होगी। यदि वह २० से अधिक कम्पनियों के सचालक के रूप में कार्य करता है तो पहली २० कम्पनियों के बाद प्रत्येक कम्पनी के विषय में वह ५ हजार रुपये तक के जुर्माने से दडनीय होगा।

एक और बहुत महत्वपूर्ण उपबन्ध सचालकों की उम्र के बारे में है। सचालकों का पद जितनी जिम्मेवारी का है, उसे देखते हुए यह आवश्यक है कि सचालक शरीर

से स्वस्थ और मन से सचेत हो, और जिस कम्पनी से उनका सम्बन्ध हो, उसके कारबार में समय और मस्तिष्क लगा सकें। कुछ सचालक जो प्रबन्ध में सक्रिय भाग लेने में असमर्थ होते है, सचालक मडल में अपने स्थानो पर बने रहकर अधिक सक्रिय व्यक्तियो के चुने जाने में बाधक होते हैं। इन तथा अन्य कारणो से अब यह उपबन्ध किया गया है कि ऐसा कोई व्यक्ति जो ६५ वर्ष की आयु पूरी कर चुका है, किसी लोक कम्पनी या इसकी उपसहायक कम्पनियो का सचालक नियुक्त नही किया जाएगा और न ऐसा व्यक्ति इतनी आयु हो जाने के बाद सचालक बना रह सकेगा। तो भी कम्पनी बृहत् सभा में साधारण सकल्प द्वारा ६५ वर्ष या इससे अधिक के व्यक्ति को नियुक्त कर सकती है या बनाए रख सकती है। प्रत्येक सचालक को सम्बन्धित कम्पनी से अपनी आयु प्रकट करनी होगी और यदि वह अपनी आयु प्रकट नही करता या ६५ वर्ष की आयु के बाद सचालक के रूप में कार्य करता है तो उस प्रत्येक दिन के लिये जिसमे वह यह चूक करता है या सचालक के रूप में कार्य करता है, ५० रुपये जुर्माने से दडनीय होगा।

सचालक का पद निम्नलिखित अवस्थाओ में स्वतएव रिक्त हो जाएगा यदि वह (क) अपनी नियुक्ति के बाद दो मास के भीतर अपनी अर्हता अश धारण करना छोड देता है, (ख) विकृत मस्तिष्क हो जाता है, (ग) शोधाक्षम अभिनिर्णीत किए जाने के लिए प्रार्थना पत्र देता है, (घ) शोधाक्षम अभिनिर्णीत हो जाता है, (ङ) किसी अपराध पर ६ महीने के कारावास की सजा पाता है, (च) याचना की तिथि से ६ मास के भीतर याचना धन चुकाने में असमर्थ रहता है; (छ) सचालक मडल की लगातार ३ बैठको से या लगातार ३ महीने तक सब बैठको से, सचालक मडल से अनुपस्थिति की इजाजत लिए बिना, अनुपस्थित रहता है, (ज) कम्पनी से केन्द्रीय सरकार के सम्मोदन के बिना कोई ऋण या ऋण के लिए कोई प्रत्याभूति या प्रतिभूति स्वीकार करता है, (झ) कम्पनी की किसी सविदा या व्यवस्था में अपना स्वहित सचालक मडल को नही बताता है, (ञ) किसी न्यायालय द्वारा सचालक होने से रोक दिया गया है, (ट) कम्पनी के साधारण सकल्प द्वारा सचालकत्व से हटा दिया गया है। ऐसी निजी कम्पनी, जो किसी लोक कम्पनी की उपसहायक नही है, पद रिक्त करने के लिए और कारण भी निर्धारित कर सकती है।

कोई कम्पनी विशेष सूचना के बाद पास किए गए साधारण सकल्प द्वारा किसी सचालक को उसकी पदावधि पूरी होने से पहले हटा सकती है और शेष अवधि के लिए दूसरे को नियुक्त कर सकती है, पर यह बात किसी निजी कम्पनी के उन सचालकों पर लागू नहीं होगी जो १ अप्रैल १९५२ को आजीवन पदधारण करते थे। कोई सचालक अन्तर्नियमो द्वारा उपबन्धित रीति से अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है पर यदि अन्तर्नियमो में कोई उपबन्ध नही है तो वह तर्कसंगत समय पहले सूचना देकर वैसा कर सकता है और कम्पनी इसे स्वीकार करे या न करे, इससे कुछ अन्तर नही पडता। यह उल्लेखनीय है कि कोई सचालक अपना त्यागपत्र वापिस नही ले सकता, चाहे कम्पनी ने इसे स्वीकार न किया हो।

शक्तियां और अधिकार—अधिनियम सचालको को विशेष रूप से और सचालक

मडल को साधारण रूप से, कम्पनी की उन शक्तियो के अलावा, जो कम्पनी की बृहत् सभा के लिए सुरक्षित हैं, और सब शक्तिया प्रयोग करने की शक्ति देता है, पर कंपनी की बृहत् सभा मडल की शक्तियो पर पाबन्दी लगा सकती है। सचालकों की कुछ शक्तिया ये हैं अंश निर्गमित और आवटित करना, हस्तातरो को पजीयित करना या पजीयित करने से इनकार करना, लाभाश की सिफारिश करना, कम्पनी की ओर से सविदा करना और उसे कम्पनी को तथा अपनी शक्ति के अन्तर्गत आने वाले कार्यों द्वारा बद्ध करना, अश याचित करना धन पक्षगी याचनाए स्वीकार करना, अश जब्त करना अशो का समर्पण स्वीकार करना, लाभ का कुछ हिस्सा रक्षित धन के रूप में अलग कर देना और कम्पनी की साधारण नीति का निर्माण करना निम्नलिखित शक्तियों का प्रयोग सिर्फ सचालक मडल द्वारा और सचालक मडल की बैठकों में ही किया जा सकता है (१) याचना करने की शक्ति, (२) ऋण पत्र निर्गमित करने की शक्ति, (३) ऋण पत्रों से इतर प्रकार से उधार लेने की शक्ति, (४) धन नियोजित करने की शक्ति, (५) ऋण देने की शक्ति। पर सचालक मडल बैठक में सकल्प द्वारा सख्या (३) (४) और (५) में बताई गई शक्तिया किसी कमेटी, प्रबन्ध सचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचिवों और कोषाध्यक्षों या प्रबन्धक को, और यदि कम्पनी बैंकिंग कम्पनी है तो इसके प्रबन्धक या शाखा प्रबन्धक को प्रत्यायोजित कर सकती है, पर सचालक मडल को ऐसे प्रत्यायोजन की परिसीमाए विनिर्दिष्ट कर देनी चाहिए।

सचालकों की शक्तियो पर लगायी गई पाबंदियों को अधिनियम की धारा २९३ द्वारा अधिक स्पष्ट कर दिया गया है और कुछ नई पाबन्दिया भी लगा दी गई हैं। लोक कम्पनियों और उनकी उपसहायक कम्पनियों की अवस्था में सचालक मडल निम्नलिखित कार्यों में से कोई भी कार्य कम्पनी की बृहत् सभा की सम्मति के बिना नही कर सकता (१) कम्पनी के सारे या लगभग सारे उपक्रम को बेचना, पट्टे (Lease) पर देना या अन्यथा व्ययित करना, (२) किसी सचालक द्वारा चुकाये जाने वाले ऋण में कमी या चुकाने के लिए समय-विस्तार, (३) कम्पनी की सम्मति के बिना कम्पनी की किसी सम्पत्ति या उपक्रम के अधिग्रहण के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले बिक्री आगमों का न्यास प्रतिभूतियों के अलावा अन्यत्र लगाना, (४) कम्पनी की कुल प्रदत्त पूंजी और इसके स्वतन्त्र रक्षित धन के कुल योग से अधिक राशि उधार लेना (कम्पनी के बैंकरों से कारबार के सामान्य क्रम में लिए गए अस्थायी ऋण इस प्रयोजन के लिए हिसाब में नही लगाए जाते)। (५) किसी वित्तीय वर्ष में हुए औसत शुद्ध लाभ के ५ प्रतिशत या २५ हजार रुपये से अधिक राशि दान आदि में देना। पर बैंकिंग कम्पनियों द्वारा निक्षेप स्वीकार करना उनका उधार लेना नही माना जाएगा। सचालक मडल द्वारा एकल (Sole) बिक्री अभिकर्त्ता की नियुक्ति का नियुक्ति के ६ मास के भीतर कम्पनी की बृहत् सभा के द्वारा अनुमोदन हो जाना चाहिए; अन्यथा नियुक्ति की मान्यता खत्म हो जाएगी।

समितियों को शक्तिप्रेषण (Delegation of Powers to Commi-

tees)—यह सूत्र कि 'जिसको शक्ति प्रेषित की गयी है वह अन्य को अपनी शक्ति प्रेषित नहीं कर सकता' सचालकों पर लागू होता है और वे प्रथम दृष्ट्या (Prima-Facie) अपनी शक्ति प्रेषित नहीं कर सकते। लेकिन अन्तर्नियमों में शक्ति-प्रेषण के सम्बन्ध में व्यक्त (Express) व्यवस्था के द्वारा उक्त नियम को शिथिल किया जा सकता है। अन्तर्नियमों में प्राय यह व्यवस्था होती है और अधिनियम अब यह विधान करता है कि सचालक मंडल साधारणत भृत्यों व अभिकर्त्ताओं की नियुक्ति तथा उनके कर्त्तव्यों व अधिकारों का निर्धारण कर सकता है। अन्तर्नियमों में इस आशय की भी व्यवस्था होती है कि सचालक अपने बीच में से एक या दो को अपनी शक्ति प्रेषित कर सकता है। जो कम्पनियां वृहत् व्यवसाय का नियन्त्रण करती हैं, वे प्रचलन के अनुसार, अपने सचालक मंडल को विशिष्ट कृत्यों (Functions), यथा वित्त, उत्पादन, वितरण, नियुक्ति, स्थानान्तरण (Transfers) आदि की देखरेख के लिए समितियों में विभाजित कर देती हैं। विशिष्ट कार्य प्राय उन सचालकों के जिम्मे किया जाता है जो उस कार्य के लिए विशेष योग्य हों और इस प्रकार विशेषज्ञ (Expert) विचार व परामर्श का लाभ प्राप्त किया जाता है। कार्यविभाजन के परिणामस्वरूप समय, धन, तथा प्रयत्न में मितव्ययिता होती है। पर १ अप्रैल के बाद कोई सचालक अपना पद अभिहस्तांकित नहीं कर सकता।

कर्तव्य और दायित्व—शक्तियों की भांति सचालकों के कर्तव्य भी अन्तर्नियमों द्वारा नियमित होते हैं, तथा वे कम्पनी के व्यवसाय के आकार तथा प्रकृति पर निर्भर करते हैं। सचालकों के कर्तव्य अनेक तथा विभिन्न प्रकार के हैं, तथा सामान्य शब्दों में उनकी व्याख्या करना कठिन है। अत जे रोमर के शब्दों में हम उनकी गिनती कर सकते हैं, जिनका कहना है कि अपने कर्तव्यों का सम्पादन करने में सचालक को अनिवार्यत ईमानदारी से कार्य करना चाहिए, तथा उसे उस मात्रा में चातुर्य तथा श्रम से कार्य करना चाहिए जिसकी एक साधारण व्यक्ति से, जो समान परिस्थितियों में अपने निमित्त काम करता है अपेक्षा की जाती है लेकिन इसमें अधिक उससे अपेक्षित नहीं है। यह बात नहीं है कि सचालक को किसी भी प्रकार लापरवाह नहीं होना चाहिए, लेकिन निर्णय सम्बन्धी भूल के लिए वह दायी नहीं हो सकता। वह कम्पनी के कार्यों पर सतत ध्यान रखने के लिए बाध्य नहीं है, उसके कर्तव्य सविराम प्रकृति के हैं, जिनका सम्पादन समय-समय पर मण्डल की बैठकों तथा उस समिति की बैठकों में उपस्थिति से होता है, जिसका वह सदस्य नियुक्त किया गया है और यद्यपि वह इस प्रकार की सब बैठकों में उपस्थित होने को बाध्य नहीं है, तथापि यदि उसका उपस्थित होना तर्कसंगत रूप से संभव हो तो उसे उपस्थित होना चाहिए। व्यवसाय की परिस्थिति तथा अन्तर्नियमों को ध्यान में रखते हुए उन सारे कर्तव्यों के सम्बन्ध में, जो अन्य पदस्थों के जिम्मे उचित रीति या छोड़े जा सकते हैं, उसका ऐसा विश्वास करना कि वे पदस्थ उनका सम्पादन ईमानदारी से करेंगे, युक्तिसंगत है। प्रत्येक सचालक का समय-समय पर यह निरीक्षण करना कर्तव्य है कि कम्पनी का धन विनियोग की उचित अवस्था में है। हां, यदि अन्तर्नियम ऐसी व्यवस्था करते हैं कि

उक्त कर्तव्य दूसरों को प्रपित किया जा सकता है तो बात दूसरी है। कोई भी सचालक अन्तर्नियमों के अनुसार अपने कर्तव्य दूसरों को प्रपित कर सकता है, लेकिन प्रत्येक कार्य दूसरों के जिम्मे छोडकर उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता। मण्डल या मण्डल की समिति से अधिकार प्राप्ति के बिना कोई भी सचालक चैक पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता। किसी भी सचालक के लिए केन्द्रीय सरकार की सम्मति के बिना, पूँजी से लाभांश देना तथा कम्पनी से ऋण लेना निषिद्ध है। जिन संविदाओं में सचालकों के रिश्तेदारों के हित बंधे हों, उनके लिए मण्डल की स्वीकृति लेना आवश्यक है। कम्पनी द्वारा प्रस्थापित सुविधाओं या व्यवस्थाओं में सचालकों के जो स्वहित हों, वे मण्डल की बैठकों में अवश्य प्रकट कर देने चाहिए।

अशपत्र (शेयर मनी) के शोधन के सम्बन्ध में सचालकों का दायित्व भी साधारणत उसी प्रकार सीमित है जिस प्रकार कम्पनी के अन्य सदस्यों का। लेकिन कम्पनी अधिनियम की धारा ३२२ तथा ३२३ के अनुसार, सीमानियम उनके दायित्व को असीमित भी कर सकता है। जहा तक उनके पद (Office) का सम्बन्ध है, वे कम्पनी अभिकर्ता की हैसियत से कार्य सम्पादन करते हुए व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होते, लेकिन निम्नलिखित अवस्थाओं में वे व्यक्तिगत रूप से दायी हो सकते हैं—

१ शक्ति-बाह्य (Ultra vires) कार्य के लिए, (क) कम्पनी की शक्ति से बाहर संविदा में प्रविष्ट होकर अपने अधिकार की ध्वनित (Implied) शर्त का उल्लंघन करने पर, (ख) शक्ति से बाहर अपने अधिकार का उपयोग करने पर, यथा (१) अश के समर्पण की गलत स्वीकृति, (२) पूँजी से लाभांश शोधन, (३) वर्तमान पूँजी की क्षति-पूर्ति किए बिना लाभांश की सिफारिश, (४) कम्पनी की निधि का दुरुपयोग (५) कम्पनी के व्यवसाय का विक्रय या हस्तान्तरण, अथवा कम्पनी द्वारा सचालक से प्राप्य ऋण की माफी,

२ न्यास भग (Breach of trust) के लिए, यथा गुप्त लाभ, कम्पनी का रक्षित धन (Reserve) का दुरुपयोग अथवा अपने वैयक्तिक उपयोग के लिए अग्रिम याचित राशि प्राप्त करना,

३ बेईमानी से कार्य सम्पादन के लिए,

४ कम्पनी के प्रति अपने कर्तव्य के सम्पादन में लापरवाही के लिए,

५ जानबूझकर की गयी गलती (Wrong) या चूक (Default) अथवा जानबूझकर किए गए असदाचरण या अपकरण (Misfeasance) के लिए

६ उस स्थिति में अन्य सह-सचालकों के कार्यों के लिए जब वह आदतन सचालक मण्डल की बैठकों में अनुपस्थित रहता है,

७ प्रविवरण (प्रास्पेक्टस) में असत्य-कथन (Misstatement) या गोपन (Concealment) के लिए।

८ कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कपट (Fraud), अपचार (Delinquency), न्यासभग (Breach of Trust) तथा अन्य दोषों, यथा अवास्तविक लाभांश (Fictitious dividend) देने के लिए फौजदारी दायित्व।

प्रबन्ध सचालक और प्रबन्धक

१९१३ के अधिनियम म एक मुख्य त्रुटि यह थी कि उसमे प्रबन्ध-सचालको और प्रबन्धको की नियुक्ति के निबन्धनो और शर्तों के सम्बन्ध में कोई साविधिक उपबन्ध नहीं था। प्राय अन्तर्नियमो म सचालको को अपने में से एक या अधिक व्यक्ति को प्रबन्ध सचालक या प्रबन्धक नियुक्त करने का और उन्हें कुछ विशेष पारिश्रमिक देने का और आवश्यक शक्तिया प्रत्यायोजित करने का अधिकार होता था। इसके अलावा, प्रबन्ध सचालको के बारे म कोई विनिर्दिष्ट उपबन्ध न होने का लाभ प्रबन्ध अभिकर्त्ता उठा लेते थे। वे उन पर कानून द्वारा विशेष रूप से लगाई गई पाबन्दियो से बचने के लिए अपने आपको प्रबन्ध सचालक या प्रबन्धक कहा करते थे। इस त्रुटि का दूर करने के लिए अधिनियम में 'प्रबन्ध सचालक' और 'प्रबन्धक' की परिभाषा कर दी गई है, और उनकी नियुक्ति की शर्तें दे दी गई है। प्रबन्ध सचालक की परिभाषा यह दी गई है—"वह सचालक (और इसलिए एक व्यष्टि) जिसे कम्पनी के साथ करार होने से या कम्पनी की बृहत् सभा द्वारा या इसके सचालक मडल द्वारा पास किये गये सकल्प के कारण या इसके पार्षद सीमा नियम या अन्तर्नियमो के कारण कुछ ऐसी प्रबन्ध सम्बन्धी शक्तिया सौंपी गई हैं जिनका वह अन्यथा प्रयोग नहीं कर सकता था, और इस में वह सचालक भी शामिल है, जो प्रबन्ध सचालक के पद पर हो, चाहे वह किसी भी नाम से पुकारा जाता हो।" प्रबन्ध सचालक या प्रबन्धक की नियुक्ति के समय सचालक लोग प्राय उन शक्तिया को विनिर्दिष्ट कर देते हैं जिनका प्रबन्ध सचालक या प्रबन्धक ने प्रयोग करना है। बशर्ते कि इस प्रकार प्रत्यायोजित शक्तियो म वे शक्तिया न हो जिनका प्रयोग सचालक मडल बैठक में ही कर सकता है, पर कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले बाहरी व्यक्ति को यह धारणा बनाने का अधिकार है कि कारबार चलाने के लिए प्रायिक और उचित शक्तिया उसे प्रत्यायोजित की गई हैं और उन वे सब शक्तिया प्राप्त हैं जिन्हें प्रबन्ध सचालक या प्रबन्धक होने के नाते उसे प्राप्त करने का अधिकार है।

'प्रबन्धक' की यह परिभाषा की गई है "वह व्यष्टि (पर प्रबन्ध अभिकर्त्ता नहीं) जो सचालक मडल के अधीक्षण, नियन्त्रण और निदेशन के अधीन, कम्पनी के सारे या सारत सारे मामलों का प्रबन्ध करता है, और इसमे प्रबन्धक के पद पर काम करने वाला सचालक या कोई अन्य व्यक्ति भी शामिल है चाहे वह किसी भी नाम से पुकारा जाता हो और उसने सेवा की सविदा की हो या न की हो।" अत प्रबन्ध सचालक या प्रबन्धक कम्पनी के मामलो के प्रबन्ध में केन्द्रीय स्थान रखता है, इसलिए उनके बारे में कुछ महत्वपूर्ण उपबन्ध किये गए हैं। अब यह उपबन्धित किया गया है कि—

(क) कोई फर्म या निगमित निकाय प्रबन्ध सचालक या प्रबन्धक नहीं नियुक्त किया जाएगा (सिर्फ व्यष्टि नियुक्त किया जाएगा)।

(ख) पहली बार प्रबन्ध सचालक की कोई नियुक्ति या उसकी नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति सम्बन्धी किसी उपबन्ध का सशोधन केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के बिना मान्य या प्रभावी न होगा।

(ग) ऐसा कोई व्यक्ति जो अनुन्मोचित शोधाक्षम है या किसी समय शोधाक्षम अभिनिर्णीत हुआ है या जो अपने उत्तमर्णों को भुगतान बन्द कर देता है या जिसने कभी भुगतान बन्द किया है या जो नैतिक भ्रष्टता वाले किसी अपराध का दोषी पाया गया है या किसी समय दोषी रहा है, किसी लोक कम्पनी या उसकी उपसहायक कम्पनी का प्रबन्ध संचालक नियुक्त नहीं किया जा सकता।

(घ) कोई लोक कम्पनी या उसकी उपसहायक कम्पनी किसी ऐसे व्यक्ति को अपना प्रबन्धक नियुक्त नहीं कर सकती या अपनी नौकरी में नहीं रख सकती या उसकी नियुक्ति या नौकरी जारी नहीं रख सकती जो अनुन्मोचित शोधाक्षम है या पूर्ववर्ती ५ वर्षों में कभी शोधाक्षम अभिनिर्णीत हुआ है, या अपने उत्तमर्णों को भुगतान बन्द कर देता है या जिसने पूर्ववर्ती ५ वर्षों के भीतर किसी समय भुगतान बन्द किया है, या उनके साथ पूर्ववर्ती ५ वर्षों म किसी समय संधान किया है या जो भारत में किसी न्यायालय द्वारा नैतिक भ्रष्टता वाले किसी अपराध का दोषी पाया जाता है या पूर्ववर्ती ५ वर्षों म किसी समय ऐसा अपराधी पाया गया है।

(ङ) कोई व्यक्ति २ से अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध संचालक या प्रबन्धक नियुक्त नहीं हो सकेगा और दूसरी कम्पनी म ऐसी नियुक्ति संचालक मंडल की बैठक म जिसकी सब संचालकों को विशेष सूचना दी गई है, मंडल के सर्वसम्मत प्रस्ताव द्वारा ही की जाएगी।

(च) कोई प्रबन्ध संचालक या प्रबन्धक एक साथ ५ वर्ष से अधिक के लिए पद धारण नहीं करेगा पर वह प्रत्येक मौके पर पुनर्नियुक्त हो सकेगा या उसका समय और ५ वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकेगा बशर्ते कि ऐसी पुनर्नियुक्ति या समय विस्तार का मौजूदा पदावधि के पिछले २ वर्षों म ही कम्पनी द्वारा सम्मोदन कर दिया जाए।

(छ) शुद्ध लाभ का ११% सारे प्रबन्ध सम्बन्धी पारिश्रमिक के रूप म देने की शर्त के अधीन रहते हुए प्रबन्ध संचालक या प्रबन्धक का पारिश्रमिक शुद्ध लाभ का कुछ प्रतिशत रखा जा सकता है पर वह ५% से अधिक नहीं हो सकता। जहाँ वह शुद्ध लाभ का कुछ प्रतिशत पाता है, वहाँ वह किसी उपसहायक कम्पनी से कोई पारिश्रमिक नहीं ले सकता। पारिश्रमिक सम्बन्धी उपबन्ध में कोई परिवर्तन केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के बिना प्रभावी नहीं होगा।

प्रबन्ध अभिकर्ता

कानून की दृष्टि में संचालक मंडल ही व्यवसाय के सब महत्त्वपूर्ण विभागों, जैसे वित्त, उत्पादन, क्रय, विक्रय विस्तार आदि के सम्बन्ध म व्यापक नीति का निर्माण करता है। यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रबन्ध तथा अंशधारियों के मध्य कड़ी का काम करेगा और बीच-बीच में साधारण निरीक्षण का कार्य करेगा। पर असल में "भारत के मौजूदा औद्योगिक ढाँचे में संचालक मंडल व्यर्थ होता है और प्रबन्ध अभिकर्ताओं को छोड़कर उसके अन्य सदस्यों को कोई निश्चित

काम नही करना होता। यदि वे बहुत उत्साह प्रदर्शित करते हैं तो अगली बार उन्हे सदस्य नही बनाया जाता।"[1] दूसरी ओर, प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न तथा अनेक विधियो द्वारा जिनका विवेचन आगे के अध्याय में किया गया है, व्यवसाय पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं, यहा तक कि भारतीय कम्पनी अधिनियम भी उन्हे एकछत्र राजा मानता है। व्यवहारत, वे सभी सचालको को नामजद करते हैं, और यदि सयोग से बाहरी अशधारियो ने अपने हितो का प्रतिनिधान करने के लिए किसी सचालक को चुना और वह सचालक प्रबन्ध अभिकर्त्ता की दृष्टि में ज्यादा सक्रिय रहा तो प्रबन्ध अभिकर्त्ता उसे निकाल कर ही दम लेते हैं। १९१३ का कम्पनी अधिनियम प्रबन्ध अभिकर्त्ता की यह परिभाषा करता था कि 'वह व्यक्ति फर्म या कम्पनी जिसे कम्पनी के साथ हुई सविदा के अनुसार, कम्पनी के सम्पूर्ण कार्यों का प्रबन्ध करने का अधिकार प्राप्त है, और जो सविदा में वर्णित क्षेत्र के अतिरिक्त और सब बातो में सचालको के नियन्त्रण व निर्देशन के अन्तर्गत है।' परिभाषा के आखिरी हिस्से के कारण, जिसका सर्वदा फायदा उठाया जाता था, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के हाथमे पूरा नियन्त्रण तथा निर्देशन आ जाता था और इस प्रकार सचालक केवल कागजी औपचारिकता के अलावा और कुछ नही रह जाते थे। इस प्रकार मण्डल (Board) के प्रारम्भण कार्य की अपेक्षा अनुमोदन कार्य अधिक महत्वपूर्ण हो जाता था। लेकिन अनुमोदन (Approval) के प्रश्न पर बहुत से मण्डल पूर्णरूपेण निष्क्रिय रहे हैं। मण्डल का सभापति, जो करीब-करीब हमेशा प्रबन्ध अभिकर्त्ता का प्रतिनिधि तथा सचालक होता है, नीति का वास्तविक आरम्भकर्त्ता तथा प्रबन्ध अधिकारियो के द्वारा उनका निष्पादक भी होता है। १९५६ के अधिनियम ने प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की अनियन्त्रित सत्ता पर रोक लगाने की दृष्टि से यह परिभाषा बदल दी है। अब प्रबन्ध अभिकर्त्ता की परिभाषा यह की गयी है कि "वह व्यक्ति फर्म या निगमित निकाय, जिसे, इस अधिनियम के उपबधों के अधीन रहते हुए, किसी कम्पनी के साथ की गयी सविदा के द्वारा, या इसके सीमानियम या अन्तर्नियमो के द्वारा, किसी कम्पनी के सारे, या सारतः सारे मामलो के प्रबन्ध का अधिकार हो, और इसमें वह व्यष्टि, फर्म या निगमित निकाय भी आता है, जो प्रबन्ध अभिकर्त्ता के पद पर हो, चाहे वह किसी भी नाम से पुकारा जाता हो"। भविष्य में, सचालक मडल को अधिक शक्ति होगी।

इस अध्याय में भारतवर्ष में विद्यमान प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली के कार्य का पूर्ण विवेचन अभीष्ट नही है। अगले अध्याय में इसका पूरा विवेचन उपस्थित किया जायगा। यहा केवल इतना कहना पर्याप्त है कि तीन अभिकर्त्ताओ में से, जिन्हें कम्पनी प्रबन्ध का कार्य भार सौंपा गया है, तथा जो इस सम्बन्ध में दिलचस्पी रखते हैं, प्रबन्ध अभिकर्त्ता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। नीतियो का वास्तविक कार्यान्वयन तथा कम्पनी के कार्यो का दिन-प्रति-दिन का सचालन आवश्यकतावश वेतनभोगी कार्यपालो, प्रधान प्रबन्धक तथा व्यवसाय के विभिन्न विभागीय अध्यक्षो को सौंपा जाता है। अतएव,

१. लोकनाथन, उपर्युक्त, पृ० ३३०।

व्यवसाय का नियन्त्रण तथा प्रबन्ध मुख्यत प्रबन्ध अभिकर्त्ता तथा वैतनिक कार्यपालो के हाथो में होता है, न कि कम्पनी के स्वत्वधारियो के हाथो में । स्वामित्व तथा नियन्त्रण के बीच यह विलगाव व्यवसाय की आकारवृद्धि के साथ-साथ और अधिक हो जाता है । जो व्यवसाय इकाई जितनी ही बडी होगी, स्वामित्व तथा नियन्त्रण के बीच की खाई उतनी ही चौडी होगी ।

सचिव और कोपाध्यक्ष

१९३६ के संशोधन अधिनियम द्वारा प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ पर बहुत सी कानूनी रुकावटे लगा दिये जाने के बाद "सचिवो और कोपाध्यक्षो" की एक प्रणाली पैदा हुई । सयुक्त प्रवर समिति की सिफारिश पर १९५६ के अधिनियम द्वारा सचिवो और कोपाध्यक्षो को साविधिक स्वीकृति (Statutory Recognition) दे दी गई है । सचिव और कोपाध्यक्ष साधारणतया वही कार्य करते है जो प्रबन्ध अभिकर्त्ता, पर एक महत्वपूर्ण भेद यह है कि सचिवो और कोपाध्यक्षो को सचालक मडल म अपने मनोनीत व्यक्ति नियुक्त करने का कोई अधिकार नही । इस प्रणाली म वे बहुत सी बुराइया नही है जो प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली मे थी पर साविधिक स्वीकृति उन्हे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का अनुकरण करने से बचाएगी । सचिवो और कोपाध्यक्षो की परिभाषा की गई है कि 'कि कोई फर्म या निगमित निकाय' (पर प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही) जो सचालक मडल के अधीक्षण, नियन्त्रण और निदेशन के अधीन रहते हुए किसी कम्पनी के सारे या सारत सारे कामो का प्रबन्ध करता है, और इसमें सचिवो और कोपाध्यक्षो की स्थिति म काम करने वाली हर एक फर्म या निगमित निकाय आ जाता है चाहे वह किसी भी नाम से पुकारा जाता है और चाहे उसने सेवा की सविदा की हुई हो या नही ।" यह ध्यान देने की बात है कि परिभाषा म यह स्पष्ट कर दिया गया है कि "सचिवो और कोपाध्यक्षो' का पद कोई फर्म या निगमित निकाय ही धारण कर सकता है, एक आदमी नही । पर अन्य दृष्टियो से उन्हे "प्रबन्धक' की परिभाषा की सब अपेक्षाएँ पूरी करनी चाहिएँ । यह भी ध्यान देना चाहिए कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता होते हुए सचिवो और कोपाध्यक्षो की नियुक्ति नही हो सकती और नीचे दिये गये रूपभेदो को छोडकर अभिकर्त्ताओ और उनके सब साथियो से सम्बन्धित इस नियम के और सब उपबन्ध उन पर तथा उनके साथियो पर लागू होते है ।

केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा उद्योग या व्यवसाय के किन्ही विनिर्दिष्ट वर्गों मे प्रबन्ध अभिकरणो का प्रतिषिद्ध कर सकती है । इस समय मौजूद सब प्रबन्ध अभिकरण सविदाएँ अधिक से अधिक १५ अगस्त १९६० तक खत्म हो जाती है । इसके बाद कोई व्यक्ति किसी कम्पनी का प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही बन सकता । इनमे से कोई भी उपबन्ध सचिवो और कोपाध्यक्षो पर लागू नही होता । सचिवो और कोपाध्यक्षो को शुद्ध लाभ की प्रतिशतकता के आधार पर ही पारिश्रमिक दिया जा सकता है और यह प्रतिशतकता साढे सात से अधिक नही होनी चाहिए, पर जब लाभ अपर्याप्त या बिलकुल नही होते तब उन्हे धारा १९८ के अधीन रहते हुए न्यूनतम पारिश्रमिक दिया जा सकता है ।

यह धारा न्यूनतम ५०,००० रुपये प्रबन्धकीय पारिश्रमिक के रूप में उपबन्धित करती है। सचिवों और कोषाध्यक्षों को अपने प्रबन्ध के अधीन कम्पनियों में सचालक नियुक्त करने का अधिकार भी नहीं है। उन्हें कम्पनी द्वारा बनाई गई कोई वस्तु बेचने का या कम्पनी के प्रयोजन के लिए कोई मशीनरी, वस्तुएँ या कच्चा माल खरीदने का या उसकी आवश्यकता न होने पर उसे बेच देने का भी अधिकार नहीं है, पर यदि सचालकों ने उन्हें ऐसा करने का अधिकार दिया हो तो जिस सीमा तक उन्हें यह अधिकार दिया गया है, उस सीमा तक वे उसका उपयोग कर सकेंगे।

राज्य

यहाँ यह बताना अप्रासंगिक नहीं होगा कि उन अभिकर्त्ताओं के अतिरिक्त, जो कम्पनी से प्रत्यक्षत सम्बद्ध हैं राज्य व अन्य पक्ष, यथा ऋणपत्रधारी, बीमा-पत्रधारी, विनियोग बैंक तथा अभिगोपक, भी विभिन्न मात्रा में कम्पनी के कार्यों पर नियन्त्रण रखते हैं। राज्य अपने लिए कतिपय आपात शक्तियाँ (Emergency Powers) सुरक्षित रखता है जिनका उपयोग उस समय होता है जब कम्पनी में दुर्व्यवस्था होती है। हाल का कम्पनी अधिनियम, १९५६ केन्द्रीय सरकार को कम्पनी की दुर्व्यवस्था की अवस्था में प्रबन्ध परिवर्तन के प्रशस्त अधिकार प्रदान करता है। उदाहरणार्थ अधिनियम निम्नलिखित व्यवस्थाएँ करता है (क) चालू कम्पनी के नियन्त्रक स्वत्वों तथा वर्तमान या आगामी प्रबन्ध द्वारा इस पर यौगिक शर्तें लादे जाने के पूर्व केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति, और (ख) कम्पनी के मामलों में सचालकों या प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा घोर दुर्व्यवस्था या कम्पनी के कतिपय सदस्यों के शोषण की अवस्था में न्यायालय वैसी उपचारात्मक (Remedial) कार्यवाही कर सकता है जैसी वह (न्यायालय) उचित समझे। केन्द्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना कम्पनी के नियन्त्रक स्वत्वों में परिवर्तन करना, इसे आरम्भ में ही शून्य (Void) बना देता है।

कम्पनी अधिनियम १९५६ केन्द्रीय सरकार को इसके बारे में कुछ मामलों पर सलाह देने के लिए एक सलाहकार आयोग बनाने की शक्ति देता है। आयोग में एक सभापति और चार से अनधिक सदस्य होंगे जो सब सरकार द्वारा नामजद किये जायेंगे किसी विनिर्दिष्ट उद्योग या व्यवसाय में प्रबन्ध अभिकरणों का प्रतिषेध अधिसूचित करने की सरकार की शक्ति का प्रयोग करने के विषय में सरकार के लिए सलाहकार आयोग से सलाह लेना अनिवार्य होगा। इसी प्रकार निम्नलिखित मामलों के बारे में सरकार को आयोग से जरूर सलाह लेनी होगी :

(क) सचालकों की संख्या में वृद्धियाँ (जो धारा २५९ में निर्दिष्ट है)।

(ख) प्रबन्ध सचालक या सारे समय के सचालकों की नियुक्ति और पुनर्नियुक्ति (धाराएँ २६८ और २६९);

(ग) प्रबन्ध सचालकों का पारिश्रमिक बढ़ाना (धाराएँ ३१० और ३११);

(घ) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की नियुक्ति आदि का अनुमोदन करना (धारा ३२६),

(ङ) प्रबन्ध अभिकर्त्ता की, उसका पद खत्म होने से दो साल से अधिक पहले, पुर्ननियुक्ति (धारा ३२८),

(च) प्रबन्ध अभिकरण करारो में परिवर्तन (धारा ३२९),

(छ) प्रबन्ध अभिकर्त्ता को १० से अधिक कम्पनियो में यह पद धारण करने की अनुज्ञा देना (धारा ३३२),

(ज) प्रबन्ध अभिकर्त्ता के पद के हस्तान्तर, उत्तराधिकार द्वारा प्रबन्ध अभिकरण की प्राप्ति या प्रबन्ध अभिकरण फर्मों और कम्पनियो के गठन में परिवर्त्तनो का अनुमोदन करना (धाराएँ ३४३, ३४५ और ३४६),

(झ) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को शुद्ध लाभ के दस प्रतिशत के बाद अतिरिक्त पारिश्रमिक के लिए अनुमोदन करना (धारा ३५२)

(ञ) अत्याचार या कुप्रबन्ध को रोकने की दृष्टि से केन्द्रीय सरकार द्वारा सचालको की नियुक्ति या सचालक मडल में परिवर्तनो का प्रतिषेध (धाराएँ ४०८ और ४०९),

सलाहकार आयोग सरकार को उन अन्य मामलो पर भी सलाह देगा, जो सरकार उसके पास भेजे। आयोग को अपने कार्यों के निर्वाह के सिलसिले में कम्पनियों से जानकारी, स्पष्टीकरण और बहीखाते आदि पश करने के लिए कहने की शक्ति है और जो व्यक्ति इस विषय में आयोग की अपेक्षाओ की पूर्ति नही करेगा उसे दो वर्ष तक की कैद और असीमित जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा।

कम्पनी विधेयक सम्बन्धी सयुक्त प्रवर समिति ने अपने प्रतिवेदन म ससद से सिफारिश की थी कि सरकार को सयुक्त स्कन्ध कम्पनियो और अन्य सम्बन्धित विषयों के प्रबन्ध के लिए वित्त मत्रालय के अन्तगत कार्य करने वाला एक पृथक् सचिवालय विभाग बनाना चाहिए,क्योंकि कम्पनियो के प्रशासन से सम्बन्धित काम बहुत अधिक होने की आशा है। इसलिए सरकार ने प्रवर समिति की सिफारिश स्वीकार कर ली है, और एक अगस्त १९५५ से वित्त मत्रालय के अन्तर्गत एक नया विभाग बना दिया है जो कम्पनी विधि प्रशासन विभाग कहलाता है, इस नये विभाग की जिम्मेदारिया निम्नलिखित हैं—

(१) सयुक्त स्कन्ध कम्पनिया जिनमें ये विषय शामिल हैं—
 (क) कम्पनी विधि और पूजी विनियोग का प्रशासन।
 (ख) पूजी निर्गम नियन्त्रण,
 (ग) चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट,
(२) स्टाक एक्सचेज।

(२) वित्त निगम जिनके अन्तर्गत ये विषय होंगे—

(क) औद्योगिक वित्त निगम,

(ख) औद्योगिक उधार और विनियोग निगम,

(ग) पुनर्वास वित्त प्रशासन।

इस अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय सरकार को इस अधिनियम के कार्य और प्रशासन के बारे में एक साधारण वार्षिक प्रतिवेदन तैयार कराना होगा और प्रतिवेदन जिस वर्ष के बारे में है उसकी समाप्ति के बाद एक वर्ष के भीतर उसे संसद के दोनों सदनों में रखना होगा।

अध्याय : : १०

प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली
(MANAGING AGENCY SYSTEM)

यह सभी मानते हैं कि भारतवर्ष में आधुनिक उद्योग के उद्भव तथा विकास का श्रेय प्रथमतः दो प्रकार के लोगों को मिलना चाहिए (१) अंग्रेज सौदागरों को, जो अंग्रेजी फर्मों का प्रतिनिधित्व करते भारतवर्ष आये थे, तथा (२) बम्बई और बाद में अहमदाबाद तथा अन्य केन्द्रों के रुई के व्यापारियों को। चूंकि ये अभिकर्त्ता थे, जो दूसरे के निमित्त व्यवसाय की व्यवस्था करते थे, अतः वे प्रबन्ध अभिकर्त्ता कहलाने लगे। मार्गनिर्माता (Pioneer) के रूप में उन्होंने अपने को अपरिहार्य बना लिया, तथा भारतीय औद्योगिक वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं में उन्होंने प्रवर्तन वित्तपोषण तथा प्रबन्ध इन तीन कार्यों का सम्पादन किया है। समय-समय पर इन लोगों के कन्धे पर प्रत्येक किस्म की आर्थिक समस्याओं का दायित्व आ गिरा है, जिन्हें इन लोगों ने वैयक्तिक योग्यता तथा चरित्रबल के अनुसार, न्यूनाधिक सफलता के साथ हल किया है। लेकिन एक चीज सभी में समान मात्रा में उल्लेखनीय है। चूंकि सच्चे अर्थ में वे प्रविधिज्ञ या उद्योगपति नहीं हैं, और केवल निपुण व्यवसायी (Keen Businessmen) या व्यापारी हैं, अतः उन्होंने प्रायः वित्त तथा वित्तीय सट्टेबाजी को अधिक महत्ता दी है। सच्ची बात तो यह है कि अन्य कारणों से अधिक वित्तपोषक की हैसियत से ही इतने दुष्कृत्यों (Malpractices) के बावजूद वे अब तक प्रबन्ध अभिकर्त्ता बने हुए हैं। भारतीय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के मामले में वित्तीय पहलू अधिक महत्वपूर्ण है। इन अभिकर्त्ताओं में से अधिकांश आरम्भ में ही अपने-अपने तरीके से कमाने को बाध्य थे। थोड़ी सी शिक्षा पा लेने के बाद ही उन लोगों ने सामान्य तथा व्यापारिक शिक्षा के प्राथमिक सिद्धान्त सीख लिये। उन्होंने अपनी छोटी-छोटी बचतों को और इसके बाद मोटे लाभों को एकत्रित किया, जिनसे उनके धन का एकीकरण हुआ और इस प्रकार उन्होंने व्यवसायसाहसी की हैसियत में अपनी आर्थिक शक्ति प्राप्त की। वे उद्योग के कप्तान हो गये तथा योग्यता के अधिकार द्वारा उन्होंने नेतृत्व पर कब्जा किया। लेकिन प्राविधिक दृष्टि से वृहत धनराशि के स्वामित्व से उत्पन्न होने वाले विशेषाधिकार (Privileges) के रूप में उन्होंने उक्त नेतृत्व प्राप्त किया। चूंकि व्यवसाय तथा वित्त के सिवाय अन्य किसी चीज में वे संलग्न नहीं थे, अतः उन्होंने व्यवसाय प्रशासन व अन्य सामाजिक कार्यों के प्रशासन के बीच कोई समता देखी ही नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि उद्योग

के इन बड़े-बड़े कम्पनियों ने देश की उत्पादक क्षमता को अत्यधिक बढ़ाया है। लेकिन वैयक्तिक लाभ कमाने में जुटे रहने तथा सामाजिक विचार की कमी के कारण उन्होंने अपनी उस शक्ति का दुरुपयोग किया जिसे उन्होंने विभिन्न विधियों से हासिल किया था और जिसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि हाल के वर्षों में जनता के बहुतेरे लोगों ने प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली के विरुद्ध आवाजें बुलन्द की हैं। इन लोगों का कहना है कि इस प्रणाली की उपयोगिता अतीत के गर्भ में समा चुकी है और अब इसका शीघ्र अन्त्येष्टि संस्कार हो जाना चाहिए। वर्तमान समय में प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली को लेकर बहुत बड़ा वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ है। जितनी आज यह प्रकाश में आयी है, उतनी पहले कभी नहीं आयी थी। अतः हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि हम इस प्रणाली की समाप्ति अथवा असमाप्ति के प्रश्न के विभिन्न पहलुओं की छानबीन करें। ऐसा करने के लिए यह उचित होगा कि हम संक्षेप में इसके विकास के आरम्भ को देखें, औद्योगिक ढाँचे के प्रति इसके कृत्य तथा उस पर इसके प्रभाव की परीक्षा करें तथा इसके सचालन (Working) को उन्नत करने के निमित्त उपाय सुझाएँ।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता तथा प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली का आरम्भ—प्रबन्ध अभिकर्त्ता वे व्यक्ति या व्यक्ति-समूह होते हैं, जिनके पास पर्याप्त वित्तीय साधन होते हैं तथा वे नवीन व्यवसायों का श्रीगणेश होने के पहले छानबीन के प्रारम्भिक कार्य का सम्पादन करते हैं, नयी संयुक्त स्कन्ध कम्पनियों का प्रवर्तन करते हैं, उन कम्पनियों के वित्त-पोषक तथा प्रत्याभूतिकर्त्ता (Guarantor) होते हैं, और सामान्यतः अपने व्यवसाय का प्रबन्ध करते हैं। अक्सर वे अपने द्वारा प्रबन्धित कम्पनी के लिए कच्ची सामग्री के क्रय तथा निर्मित मालों के विक्रय या वितरण के सम्बन्ध में अभिकर्त्ता का काम करते हैं। भारतवर्ष में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा व्यवसाय का प्रबन्ध किया जाना साधारणतः भारतीय औद्योगिक संगठन की अपनी विशेषता मानी जाती है। लेकिन सच यह है कि "प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली, चीन, मलाया तथा ईस्ट इन्डीज में भी प्रचलित है"। सामूहिक प्रशासन प्रणाली, जो प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के ढंग की चीज है, दक्षिण अफ्रीका के स्वर्ण उत्खनन उद्योग (Gold Mining Indstry) में भी पायी जाती है। इसके अतिरिक्त, यह प्रणाली देशी नहीं, वरन् भारतवर्ष में अंग्रेजों द्वारा लायी गयी है। भारतीय व्यापारियों ने तो केवल अंग्रेजों के उदाहरण का अनुसरण किया है।

अंग्रेज प्रबन्ध अभिकर्त्ता—भारतवर्ष में प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली का आरम्भ आंशिक रूप से उस कठिनाई के कारण हुआ जो अंग्रेजों द्वारा नियन्त्रित कम्पनियों को हिन्दुस्तान में उपलब्ध अंग्रेज छोटे वर्ग से, ऐसे सचालक और विशेषतः प्रबन्ध सचालक प्राप्त करने में हुई जो काफी अरसे तक इस देश में रह कर कम्पनियों के सफल सचालन के लिए आवश्यक सतत पर्यवेक्षण की गारण्टी दे सकते। प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली के उद्भव का दूसरा कारण यह था कि ये बृहत् व्यवसाय-गृह इस योग्य थे कि वे नया व्यवसाय शुरू करने वालों को वित्तीय सहायता प्रदान कर सकें। ब्रिटिश व्यापारी कोठियों के अधिकांश प्रतिनिधि जब हिन्दुस्तान आये तो उन्होंने यह

देखा कि वे जिस कार्य से हिन्दुस्तान आये, उस कार्य के अलावा बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं, जहा वे अपनी योग्यताओ का उपयोग करने के अतिरिक्त अवसर पा सकते हैं। इस देश मे बडी मात्रा में साधन अछूते पडे थे। सस्ता श्रम पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध था, तथा उपभोक्ताओ की बडी सख्या विद्यमान थी। व्यापार-प्रधान व्यवसाय मे उन्होने पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था। अतएव वे चुस्त व्यापारी तथा सफल सगठनकर्ता प्रमाणित हुए। चूंकि उनमे प्राविधिक ज्ञान का अभाव था, अत उन्होने प्राविधिक विशेषज्ञो को नौकर रखा। कालान्तर म एकाकी प्रबन्ध अभिकर्ता साझदारी फर्मो म परिणत हो गये, जिनम प्रथम तो एक ही परिवार के सदस्य साझेदार थे परन्तु आगे चलकर कुछ बाहरी व्यक्ति भी, जो प्राय प्राविधिक विशेषज्ञ थे, उनकी नौकरी में साझेदार हो गये। इधर के कुछ वर्षों में य साझेदारिया निजी कम्पनियो में परिणत हो गयी है, जिसका मुख्य कारण यह रहा है कि व्यावसायिक परिवारो के लडके हिन्दुस्तान आने को अनिच्छुक रहे हैं। अत उन्होने सर्वदा प्रशिक्षित सहायको की सेवाओ का लाभ उठाने की तत्परता दिखाई है। इससे स्वामित्व की निरन्तरता तथा प्रबन्ध की दक्षता निश्चित हो जाती है।

अग्रेज प्रबन्ध अभिकर्ताओ ने अनुकूल घटको का लाभ उठाया है और उद्योग के क्षैतिज (Horizontal) व शीर्ष (Vertical) विकास की दोनो दिशाओ में कम्पनी प्रवर्त्तन की जोरदार नीति का अनुसरण किया है। अपनी कार्यशीलता के प्रारम्भिक काल मे उन्होने अपनी शक्ति को बगाल, बिहार तथा आसाम तक ही सीमित रखा, जहा उन्होने पाट, कोयला तथा चाय बागान को विकसित किया। उनके कार्य का श्रीगणेश किसी एक व्यवसाय, मान लीजिए पाट मिल, मे हुआ, तब उसके बाद कई पाट मिलें खुली, फिर कोयले की बारी आयी और फिर नौपरिवहन और अन्त में लाइट रेल्वे। आगे चलकर उन्होने अपने कार्य का विस्तार मद्रास तथा उत्तरी भारत और खासकर कानपुर तथा दिल्ली मे किया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ये लोग न केवल प्रवर्तक थ वरन् वित्तपोषक तथा प्रबन्धक भी थे। करीब-करीब हमेशा ही उन्होने प्रारम्भिक पूजी की स्वय ही पूर्ति की है तथा अपने जरिये अग्रेजी पूजी को भारतवर्ष म प्रवाहित किया है। जब प्रबन्ध अभिकरण विकास के क्रम में था, तब भारतवर्ष म शायद ही कोई विनियोक्ता वर्ग रहा हो। भारतीय जनता से किसी भी मूल्य पर पूजी आकृष्ट नही की जा सकती थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रबन्ध अभिकर्ताओ ने बडी मात्रा मे अपनी तथा अपने देश की पूजी को विनियुक्त किया। इस प्रकार वे इस स्थिति में थे कि वे बहुत सारे उपक्रमो को उनके शैशव काल में पोषण प्रदान कर सकें, उनके वृद्धिकाल तथा जीवन-सग्राम के समय उन्हें पोषणशक्त दे सकें, तथा पाल पोसकर बडा बना सकें। इसके पश्चात् ही उन्होने पूजी के लिए जनता का दरवाजा खटखटाया और पूजी प्राप्त की। अवसर पाकर उन्होने व्यवसायो को लोक सीमित कम्पनियो में परिवर्तित किया तथा अपने हितो का बडा भाग भारतीय जनता के हाथ बेच डाला जिसे अब उपक्रमो (Enterprise) की दृढ़ता में विश्वास

उत्पन्न हो गया। अपनी पूंजी का पर्याप्त अश वापिस पा जाने के पश्चात्, प्रबन्ध अभिकर्ता पुन अपना ध्यान अन्य उपक्रमो की ओर लगाने को तत्पर थे। लेकिन वे इस बात मे हमेशा सावधान थे कि लगभग स्थायी अवधि वाले पद की प्राप्ति द्वारा या अपने सम्बन्धियो तथा मित्रो की सचालक पद पर नियुक्ति द्वारा, कम्पनी पर अधिकार तथा नियन्त्रण उन्ही के हाथो मे बना रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत बडी मात्रा मे अंग्रेजो की पूजी थोडे से योग्य नेताओ के हाथो मे, जो बडी-बडी कम्पनियो की व्यवस्था कर सकते थे आ टिकी और इन थोडे से नेताओ ने ही सब कार्यभार सम्भाला। उसका अर्थ हुआ पूंजीपतियो के लिए कम प्रशासन व्यय, लेकिन अच्छा लाभ, और यह प्रणाली कई दृष्टियो से मितव्ययितापूर्ण प्रमाणित हुई। अंग्रेजी पूजी का स्रोत चालू ही रहा तथा नियन्त्रण अंग्रेजो के हाथो मे था। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड दोनो देशो को लाभ हुआ। यदि प्रबन्ध अभिकर्ता न होते तो भारतवर्ष का औद्योगिक विकास बहुत धीमी गति से होता तथा भारतवर्ष मे अंग्रेजी साहस और अंग्रेजी पूजी के विनियोग के अवसर बहुत कम होते। भारत मे उनकी असीम सफलता के कारण इस प्रणाली का भारत के अन्य हिस्सो मे भी विस्तार हुआ।

भारतीय प्रबन्ध अभिकर्ता—यूरोपीय लोगो के द्वारा जो नेतृत्व दिया गया, उसे भारतीय व्यापारियो तथा व्यवसायियो ने ग्रहण कर लिया और उन्होने प्रमुखत भारत के पश्चिमी हिस्से, बम्बई, अहमदाबाद तथा इर्द-गिर्द के जिलो मे, एकाधिकार स्थापित कर लिया। इन्हें भी उन्ही परिस्थितियो मे काम करना पडा, जिनका सामना प्रणाली के प्रारम्भिक विकास काल मे अंग्रेज व्यवसायियो को करना पडा था। पूजी अति सीमित थी और जो भी पूजी थी वह उन्ही के जैसे मुट्ठी भर धनी व्यवसायियों के हाथो मे थी और खासकर उन लोगो के हाथ मे थी जिन्होने १८६०–६५ के अमेरिकी गृह-युद्ध के समय रुई के व्यापार मे मोटा लाभ कमाया था, जो सोने और चादी के घडो के रूप मे था और जिसकी कीमत ५१ करोड रुपये थी। सूती वस्त्र कम्पनियो के बम्बई मे स्थापित होने के कई कारणो मे एक यह भी है, और बम्बई के रुई के व्यापारी सूती वस्त्र के निर्माता हो गये। पश्चिमी भारत मे सबसे अधिक प्रमुख पथनिर्माता (Pioneer) पारसी और भाटिये थे। उनके पथ का अनुसरण शीघ्र ही अन्य जातियो के धनियो व व्यवसायियो ने किया। सूती मिलो के लिए आवश्यक द्रव्य का अशदान प्रवर्तकों तथा उनके मित्रो ने किया तथा उन लोगो ने, जिनका इन मिलो मे वृहद हित था, अपने को प्रबन्ध अभिकर्ता बना लिया। बगाल के व्यवसायियो की भाति ही मिल का प्रारम्भण, प्रवर्तन, वित्तपोषण तथा प्रबन्ध इन व्यवसायियो के ही कन्धे पडा, जिन्हें इस बात की चिन्ता हमेशा रहती थी कि नियन्त्रण उनके हाथो मे रहे। एक इस प्रकार के उद्भव का सगठन हुआ, जो सयुक्त स्कन्ध कम्पनी तथा एकल स्वामित्व (Proprietorship) की प्रकृति का था, जिसमें कम्पनी की वृहद् पूजी तथा सीमित दायित्व का लाभ तथा एकल स्वामित्व के प्रबन्ध ऐक्य का लाभ विद्यमान

थे। ऐसा संगठन विशेषतया अहमदाबाद में उद्भूत हुआ जहाँ की बहुतेरी तथाकथित लोक संयुक्त स्कन्ध कम्पनियाँ वस्तुतः निजी कोटि की हैं, चूंकि पूंजी का अधिकांश आधे दर्जन व्यक्तियों के ही हाथों में है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता तथा प्रवर्त्तन—ऊपर तथा अन्यत्र के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि तीन चौथाई शताब्दी तक प्रबन्ध अभिकर्ताओं ने प्रवर्तकों के कृत्यों का प्रशंसनीय रीति से सम्पादन किया। जब विनियोक्ता थोड़े तथा लजीले थ, तब उनकी साख तथा मान परम आवश्यक थे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि यदि अंग्रेज तथा भारतीय दोनों प्रकार के पथनिर्माता (Pioneer) अपनी शक्ति तथा साधनों को उस रीति से नहीं लगाते जिससे कि उन्होंने लगाया तो भारतीय उद्योग किंचित् मात्र भी प्रगति नहीं करता। अभी इधर कुछ वर्षों में उपक्रमियों (Entrepreneurs) का एक नया वर्ग उत्पन्न हो गया है, विशेषतया चीनी, सीमेंट, कागज, रासायनिक द्रव्यों तथा दियासलाई जैसे नये उद्योगों के क्षेत्र में। उदाहरण के लिए, चीनी उद्योग में १९३३–३४ में भारतवर्ष में जो १४५ चीनी की मिलें चालू थीं, उनमें से ७१ मिल ऐसी थी जो किसी भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता फर्म के नियन्त्रण में नहीं थीं। सीमेण्ट उद्योग में आधा दर्जन मुख्य कम्पनियाँ कार्य-संलग्न हैं, जिनमें से तीन किसी भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता फर्म के अन्तर्गत नहीं हैं। दियासलाई उद्योग में आधा दर्जन बड़ी कम्पनियों को छोड़कर १२५ छोटे-छोटे संस्थान (Establishment) स्वामित्व के आधार पर चल रहे हैं। अतएव नये उद्योगों में तो इस नये वर्ग के उपक्रमियों के आगे प्रबन्ध अभिकर्त्ता मैदान छोड़कर भागते नजर आते हैं, हालांकि पुराने उद्योगों में वे इतने सुरक्षित हैं कि उन पर से उनका नियन्त्रण हट नहीं सकता।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता तथा वित्त—वित्तपोषक के रूप में प्रबन्ध अभिकर्त्ता के कार्यों का अन्यत्र विवेचन किया जा चुका है। पाठक विस्तृत सूचना के लिए उसे देखें। परन्तु इसके पहले कि वित्तपोषण की इस प्रणाली द्वारा लागत का अनुमान लगाया जाय, उनके सम्बन्ध में प्रमुख बातों का यहाँ संक्षेपतः उल्लेख कर दिया जाता है। विनियोजक जनता तथा संगठित पूंजी बाजार की जब कमी थी, तब प्रबन्ध अभिकर्ताओं तथा उनके मित्रों को आवश्यक वित्त की पूर्ति करनी पड़ती थी। वे न केवल अपनी ओर से पूंजी की व्यवस्था करते थे वरन् उद्योगों के लिए अग्रिम उपलब्ध कराने के लिए हर तरह से व्यवस्था करते थे। कम्पनी के द्वारा प्राप्त ऋण का उनके द्वारा प्रत्याभूत किया जाना एक आम चलन हो गया था, यहाँ तक कि जनता द्वारा लोक-निक्षेप (Public Deposit) भी प्रबन्ध अभिकर्ताओं की योग्यता तथा चरित्र बल सम्बन्धी ख्याति के अनुसार कम या अधिक होता था। अतः उद्योग की प्रारम्भिक अवस्थाओं में और प्रायः विस्तार कार्य के लिए, प्रबन्ध अभिकर्त्ता धन की पूर्ति करते थे और प्रायः मन्दी के समय अपने द्वारा प्रबन्धित उद्योग की रक्षा को दौड़ पड़ते थे। इस प्रकार वे उन्हें पूर्ण विनाश से बचाते थे। लेकिन, जैसा कि डा० लोकनाथन ने बताया है, प्रबन्ध अभिकरण वित्त प्रणाली में, कतिपय

लाक्षणिक (Characteristic) दोष अभिलक्षित होते हैं। उनका कहना है कि प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली वित्त के विद्यमान रहने से (क) उद्योग में वित्तीय विचारों की अतिशय प्रधानता हो गयी है, और औद्योगिक घटक सम्बन्धी विचार बहुत ही गौण हो गये हैं, (ख) कोई भी मिल कम्पनी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं से स्वतन्त्र अपनी वित्त प्रणाली विकसित नहीं कर पायी है; तथा (ग) इस प्रणाली ने कई मिल कम्पनियों के अंशों में परिकल्पन (Speculation) को जन्म दिया है।

लेकिन इसके विपरीत, डा० नवगोपालदास[1] का विश्वास है कि प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओं की पोषण नीति उनकी सबसे कम आपत्तिजनक विशेषता है। उनके मतानुसार, किसी भी प्रकार की प्रबन्ध प्रणाली में दोषों का होना अनिवार्य है। अपने विश्वास के प्रमाणस्वरूप वे ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जहां, जैसा कि वे कहते हैं, सैकड़ों की संख्या में वृहदाकार निजी सीमित कम्पनियां एक प्रकार के स्वामित्व-धारियों या प्रबन्धकों के हाथ से दूसरे प्रकार के स्वामित्वधारियों या प्रबन्धकों के हाथों में इसलिए चली जाती हैं कि पहलों से वित्त का प्रबन्ध नहीं हो सका। उनका निष्कर्ष यह है कि वित्त की प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली औद्योगिक घटकों के मूल्य पर वित्तीय विचारों को अतिशय प्रधानता नहीं देती। लेकिन यह तर्क कि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की वित्तीय नीति जरा भी आपत्तिजनक नहीं है, यह प्रमाणित नहीं करता कि यह प्रणाली त्रुटिपूर्ण नहीं है। अन्य कृत्यों का सम्पादन अधिक त्रुटिपूर्ण हो सकता है। लेकिन वहां तो किंचित्मात्र त्रुटि भी बुरी है, यदि उसके कारण खर्च ज्यादा पड़ता हो। इसके अतिरिक्त, ब्रिटेन या संयुक्त राज्य अमेरिका में कम्पनियों का स्वत्वान्तरण ठीक वैसा नहीं होता जैसा इस देश में। उन देशों में स्वत्वान्तरणों का एक मात्र उद्देश्य होता है पूंजी की प्राप्ति, लेकिन यहां तो इसका इसका मुख्य उद्देश्य होता है अनन्त धन राशि बटोरना। यदि इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता हो तो भारतीय कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, १९५१, जो अगस्त, १९५१, में ही स्वीकृत हुआ है, मौजूद है। प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकारों की खरीद-बेच तथा वित्तीय गोटेबाजियां इतनी अधिक बढ़ गयी थीं कि सरकार ने जुलाई में अध्यादेश (Ordinance) जारी करने के लिए अविलम्ब कदम उठाना आवश्यक समझा, और बाद में इसकी जगह उक्त अधिनियम लागू किया। यह निःसन्देह सत्य है कि अपने जीवन के प्रथम ५० वर्षों में यह प्रणाली मितव्ययितापूर्ण थी, लेकिन उसके बाद दुष्कृत्यों (Malpractices) का प्रवेश हो गया है, जिनके जरिये *प्रबन्ध अभिकर्त्ता पहले की तरह विनियोग के बजाय वित्तीय गोटेबाजी में अधिक लगे* रहते हैं। डा० दास द्वारा गिनायी गयी दूसरी और तीसरी त्रुटियां प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के दोष के ही कारण हैं, यह आवश्यक नहीं, लेकिन वे त्रुटियां वित्तीय प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली के कारण ही हैं। १९५६ के कम्पनी अधिनियम ने, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा वित्तीय गोटेबाजी किये जाने का अस्तित्व मानते हुए, १९५१ के

1 Nabgopal Das, Individual Enterprise in India, pp--18.19.

(संशोधन) अधिनियम ने उपबंधो को कायम रखा है और प्रबन्ध अभिकर्ताओं की वित्तीय जादूगरी पर कई रुकावटो की व्यवस्था की है।

उपर्युक्त तीन त्रुटियो में इसकी कतिपय दुर्बलताएँ भी जोडी जा सकती है। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि कम्पनी पर अपना नियन्त्रण बनाये रखने के लिए प्रबन्ध अभिकरणो ने अशो के निर्गमन को सीमित ही रखा है, हालांकि अधिक अशो का निर्गमन आवश्यक था। धारा ६९ ने, जो न्यूनतम आवेदन की व्यवस्था करती हैं उस बुराई को दूर कर दिया है। फिर, १९३७ के पूर्व वैधानिक प्रतिबंध न होने के कारण अल्पपूंजीकरण की उत्पत्ति होती थी। इसके अतिरिक्त, प्रबन्ध अभिकर्ताओ द्वारा वहन किया जाने वाला भार इतना भारी था कि वे इसके नीचे दब कर रह जाते और अपने साथ-साथ अपनी कम्पनी का भी सर्वनाश कर लेते। यह घटना तब अधिक घटती थी जब एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता अनेक कम्पनियो का प्रबन्ध करता था। और प्राय बोझ से दबने और कम्पनी के विनष्ट होने का धक्का इतना जबरदस्त होता कि दुर्बल कम्पनियो के साथ-साथ सबल कम्पनिया भी सर्वनाश के मुँह म चली जाती। अब यह उपबंध किया गया है कि १५ अगस्त १९६० के बाद कोई व्यक्ति १० से अधिक कम्पनियो का प्रबंध अभिकर्ता नही हो सकता। यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली का यह परिचय इसलिए नही दिया गया है कि भारतीय उद्योगो के वित्त पोषण की दिशा म प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ द्वारा की गयी सेवाओ की महत्ता कम की जाय। त्रुटियो तथा दुर्बलताओ के बावजूद उन्होने अतिशय वित्तीय भार वहन किया है तथा भारतीय उद्योग की वृद्धि तथा विकास का श्रेय उन्ही को है। यदि वे केवल इतना ही कर पाते कि अपनी चालबाजियो स अपने को मुक्त कर लें, तो यह प्रणाली भारतीय दशाओ के लिए आदर्श रूप से अनुकूल बनी रहती।

प्रबन्ध अभिकर्ता तथा प्रबन्ध—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृत्य, अर्थात् प्रबन्ध, पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। इसका आशिक कारण तो यह है कि चूकि उनके कार्यों की शृखला में यह सबसे दुर्बल कडी है, अत प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ न इसके विवेचन को प्राय उत्साहित नही किया है। प्रबन्ध के सम्बन्ध में इस प्रणाली की दुर्बलता का कारण यह है कि आतरिक सगठन, कम से कम भारतीय प्रबन्ध अभिकर्त्ता फर्मों का सगठन, ऐसा अनुकूल नही है कि वह प्रबन्ध तथा प्रशासन की विभिन्न समस्याओ का कुशलता से निराकरण कर सके। अभिकरण सगठन के अन्तर्गत श्रमविभाजन नही होता तथा कम्पनी की आतरिक तथा बाह्य मितव्ययिताओ की सूक्ष्मताओ पर उनके द्वारा किया जाने वाला नियन्त्रण निस्सन्देह असन्तोषजनक होता है। अभिकर्त्ता केवल वित्तपोषण करने वाला अभिकर्ता होता है वह नियन्त्रित उद्योग का वास्तविक प्रबन्धक नही होता। उसका ध्यान विभिन्न कम्पनियो के आर्थिक झमेले में इस तरह उलझा रहता है कि वह किसी एक पर अपना ध्यान जमा नही सकता। यह कहना अतिशयोक्ति नही है कि वे अपने 'विश्वस्त' मातहतो के जिम्मे इतना काम छोड देते है कि उससे पक्षपात तथा चारो ओर भ्रष्टाचार की उत्पत्ति

होती है।

इन व्यापक द्रष्टव्यों को दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि सब मिलाकर साधारणतः अंग्रेजी अभिकर्ता फर्मों और विशेषतः कलकत्ता क्षेत्र वाली फर्मों ने अपनी कम्पनियों का सन्तोषजनक रीति से प्रबन्ध किया है। इसके विपरीत, बम्बई क्षेत्र वाली तथा अन्यत्र स्थित अभिकर्ता कोठियां अपने को चालबाजियों (Manoeuverings) में ज्यादा और 'प्रबन्ध' में कम संलग्न किया है। कतिपय प्रबन्ध अभिकर्ता कोठियों के अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि कलकत्ता और आस-पास वाले क्षेत्रों में प्रबन्ध अभिकर्ता अब भी, जैसा कि उनके नाम से ध्वनित होता है, कम्पनियों का प्रबन्ध करते हैं। ये कोठियां वित्त की अपेक्षा प्रबन्ध को अधिक महत्त्वपूर्ण समझती हैं, तथा कम्पनियों को अपनी प्रबन्ध योग्यता प्रदान करती हैं। दुर्भाग्यवश, पश्चिमी तथा उत्तरी भारत के सभी प्रबन्ध अभिकर्ताओं के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती। और इससे भी बढ़कर यह बात है कि जो अंग्रेजी अभिकरण कोठियां या वैयक्तिक भारतीय अभिकरण उपक्रमियों द्वारा खरीद ली गयी हैं, उनमें इस दिशा में गिरावट का भारी खतरा है।

संगठन ढांचे पर प्रबन्ध अभिकर्ताओं का प्रभाव—हिन्दुस्तान के औद्योगिक ढांचे पर अभिकर्ताओं का बहुत बड़ा प्रभाव रहा है। हमने पिछले अध्याय में यह देखा कि बृहत् मात्र संचालन तथा निपुणता की प्राप्ति के उद्देश्य से पश्चिमी देशों में विभिन्न कोटि के एकीकरण, यथा क्षैतिज, शीर्ष, भुजीय तथा विकर्णीय (Diagonal) का सहारा लिया गया है। वह रीति है विभिन्न कम्पनियों का नियन्त्रण एक व्यक्ति-प्रबन्ध अभिकर्ता—में केन्द्रीभूत करना। कुछ प्रबन्ध अभिकरण फर्मों के उदाहरणों के जरिये इस कथन की सत्यता को जांचा जा सकता है। मेसर्स एण्ड्रयूल एण्ड को० १० जूट मिल्स, १८ चाय कम्पनियों, १४ कोयला कम्पनियों, ३ ट्रान्सपोर्ट कम्पनियों, १ चीनी मिल, ३ लोहा, इस्पात तथा इन्जीनियरिंग कम्पनियों, २० विविध कम्पनियों, सब मिलाकर, ५४ कम्पनियों का नियन्त्रण करती है। डन्कन ब्रदर्स की फर्म २८ चाय कम्पनियों तथा १ जूट मिल का, बर्ड एण्ड को० लिमिटेड, और हेल्जर्स कम्पनी लिमिटेड ४६ कम्पनियों का प्रबन्ध करती है, इत्यादि। इसी प्रकार भारतीय प्रबन्ध अभिकरण फर्म भी, जिसमें टाटा, बिरला, डालमिया, वालचन्द, करमचन्द थापर, तथा जे० के० उद्योग प्रमुख हैं, न्यूनाधिक संख्या में कम्पनियों का नियन्त्रण करते हैं। *कतिपय अवस्थाओं में नियन्त्रण कम्पनियों की संख्या ४५ तक पहुंच जाती है।* इससे यह साफ है कि जहां एक ओर प्रत्येक कम्पनी का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है, वहां दूसरी ओर, प्रबन्ध अभिकर्ता के केन्द्रीय कार्यालय से सभी कम्पनियों के कार्यों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। किन्तु इधर हाल में बहुत-सी कम्पनियों के और प्रायः परस्पर विरोधी प्रकृति वाली कम्पनियों के प्रबन्ध अभिकर्ता द्वारा नियन्त्रित किये जाने के औचित्य पर सन्देह प्रकट किया गया है। यह कहा जाता है कि जो फर्म प्रबन्ध का

कार्य करती है, उस पर अनुचित भार पडता है और परिणामत प्रत्येक प्रबन्धित कम्पनी कम दक्ष तथा कम मितव्ययी हो जाती है। एक प्रबन्ध के अन्तर्गत सभी कम्पनियो के हितो का मेल रखना भी कठिन है। १५ अगस्त १९६० के बाद कोई व्यक्ति १० से अधिक कम्पनियो का प्रबन्ध अभिकर्ता नही रह सकेगा। यहा पर उचित होगा कि हम इस बहुगत प्रबन्ध प्रणाली का उस रूप म मूल्याकन कर जिस रूप मे यह भारतवर्ष में विद्यमान है।

जैसा कि डा० लोकनाथन ने बताया है, निरे प्राविधिक प्रबन्ध के विपरीत, औद्योगिक उपक्रमो के बहुगत प्रबन्ध मे प्रशसनीय समेकन हुआ है। ऐसा इसलिए सम्भव हुआ है कि कार्य के आधार पर विभिन्न विभागो का सगठन हुआ है जिससे बृहत्-माप क्रय-विक्रय तथा निरीक्षण प्राप्त किया जा सका है। इस प्रणाली ने एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत सब इकाइयो के कार्यों में एक प्रकार के समन्वय को अवश्यम्भावी कर दिया है, और वस्तुत एक ही प्रबन्ध अभिकर्ता के नियन्त्रण के अन्तर्गत विभिन्न समान इकाइयो के बीच प्रतिद्वन्द्विता का मूलोच्छेद कर दिया है। प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली के सर्वोत्कृष्ट गुणो म प्रशसनीय गुण समेकन भी है। बिना किसी औपचारिक (Formal) सयोजन के तथा बिना अपने स्वतन्त्र वैधानिक तथा कृत्य सम्बन्धी (Functional) व्यक्तित्व को खोये, विभिन्न इकाइया बहत्माप सगठन की मितव्ययिताए लाने में समर्थ होती है। एक ही प्रबन्ध अभिकर्ता क अन्तर्गत कम्पनियो के बीच धन के अन्तर्विनियोग का परिणाम वित्तीय समन्वय हुआ है। यह प्रथा बम्बई, तथा अहमदाबाद के रुई मिल उद्योग म बहुत अधिक प्रचलित है, हालाकि प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली की यह विशेषता अन्य उद्योगो म भी पायी जाती है। धन का यह अन्तर्विनिमय (Inter-change) दो प्रकार से सम्भव हुआ है एक ही प्रबन्ध अभिकर्ता के अन्तर्गत एक कम्पनी की माग पर एकत्रित अतिरिक्त धन का दूसरी कम्पनी में विनियुक्त किया गया है, अथवा एक ही समूह (Group) के अन्तर्गत एक कम्पनी द्वारा निर्गमित अश या ऋणपत्र को दूसरी कम्पनी ने अशत या पूर्णत अभिदत्त (Subscribe) किया है। सामान्य रूप में यह योजना सन्तोषजनक रीति से काम करती है और सच्ची बात तो यह है कि एक समूह की दुर्बल कम्पनिया असीम लाभ प्राप्त करती है और सबल कम्पनियो को यह सन्तोष प्राप्त होता है कि उनके धन (Fund) का सुविनियोग हुआ है। लेकिन एक सीमा के पार जाने और दीर्घावधि तक कार्यान्वित किये जाने पर, इस योजना का सम्भावित परिणाम होगा दिवालिया कम्पनी का बना रहना, या उसके चिरस्थायित्व तथा दृढ कम्पनियो के अशधारियो को गलत क्षति। इस प्रथा के कारण प्राय अतिशय हानिया हुई, और विवश होकर इस निष्कर्ष पर पहुँचना ही पडता है कि अन्तर्विनियोग की प्रथा को यदि उन्मूलित नही किया जाए, तो कम से कम प्रोत्साहित तो नही करना चाहिए, क्योकि इसमे विनाशकारी सम्भावनाए निहित हैं तथा इसके कारण भयकर दुर्गुणो की उत्पत्ति होती है।

प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता स्थाननिश्चय (Location), प्राविधिक अवस्था आदि के कारण अनिवार्य अन्तर की सीमा को दृष्टि में रखते हुए अपने अन्तर्गत भिन्न-भिन्न कम्पनियों की लाभांश दर में समरूपता (Uniformity) प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। यह इसलिए होता है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता सभी कम्पनियों को एक ऐसी इकाई समझने की प्रवृत्ति रखते है, जो समान परिणाम प्रदर्शित करे, और इस प्रकार जब भी सम्भव होता है तब, व्यय तथा लाभ का स्तर एक-सा रखते है।

थोड़े से प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के हाथों में व्यवसायों के केन्द्रीभूत होने से साधारणत यह अपेक्षा की जाती है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के बीच सहयोग अधिक आसान होगा, लेकिन उनकी स्थिति ऐसी होती है कि उनके "निहित" अधिकार एक दूसरे से भिन्न होते हैं। अत यह आशा कि उनके बीच सहयोग अधिक सुगम होगा, प्रणाली के प्रारम्भिक विकास की अवस्था में ही पूरी हुई है, उसके बाद नहीं। फिर भी पाट उद्योग मे सहयोग के कतिपय उदाहरण मिलते है उदाहरण के लिए कम घंटे कार्य करने के सम्बन्ध में मिलों के बीच हुआ करार (Agreement) जो १८८६ में हुआ था और जिसका अनुसरण उस समय से होता रहा है। इसके विपरीत, अभी हाल तक सूती मिल उद्योग के बीच सहयोगात्मक कार्य की बड़ी कमी रही है। लेकिन भारतवर्ष में श्रमिक संघों के उत्तरोत्तर विकास ने नियोक्ताओं को इकट्ठे मिलकर कार्य करने का तथा अधिक सहयोग का अर्थ अच्छी तरह समझा दिया है।

जैसा कि उक्त विवेचन से कहा जा चुका है, प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली अपूर्ण है। प्रणाली की दूसरी लाक्षणिक विशेषता है प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं तथा अशधारियों के बीच सम्भव असामञ्जस्य (Disharmony) तथा हित संघर्ष (Conflict of interests) यह सम्भावना दुनिया मे सब जगह वृहत् औद्योगिक व्यवसायों में विद्यमान है, लेकिन भारतवर्ष म स्थिति कुछ और है। अन्यत्र तो न्यून लाभांश का अर्थ ही सकता है सचित निर्माण और यह सभी पक्षों, सचालकों तथा अशधारियों, को समान रूप से प्रभावित करेगा। किन्तु भारतवर्ष में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा बाहरी अशधारियों की अपेक्षा अधिक पैसा बनाने के लिए अपनाया गया तरीका अनूठा है। वे अपने अशधारण में इस प्रकार गोटेबाजी करते हैं कि जब सब ठीक-ठाक चल रहा है तब वे अधिक लाभ का अर्जन करें, किन्तु गड़बड़ी होने पर उन्हें कम से कम क्षति हो। उनकी समझ में जब यह आता है कि कम्पनी का हानि होगी तो वे अपने अंशो को बेच डालते हैं, किन्तु जब वे स्थिति उन्नती पाते है तो अधिक अश खरीद लेते हैं। हथियाने (Cornering) की इस प्रथा पर पहले सशोधन अधिनियम १९५१ द्वारा प्रतिबन्ध लगाया गया था। दूसरी बात यह है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता यह समझते हैं कि अशधारण से जो आय होती है, वह उनकी अन्य क्षेत्रों और कार्य से होने वाली आमदनी से गौण या उससे निम्न कोटि की है। अत, उनके इन कार्यों या सहायक सेवाओं के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना अप्रासंगिक नहीं होगा।

प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा सहायक सेवाएं—प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली की यह अपरिवर्ती विशेषता रही है कि अन्तर्नियमों या अभिकरण संविदा द्वारा स्वीकृत शक्तियों के बल पर, प्रबन्ध अभिकर्ता को अपने द्वारा प्रबन्धित कम्पनी के निमित्त क्रय तथा विक्रय अभिकर्ता, दलाल, मुकद्दम, आदि की हैसियत से कार्य करने की स्वतन्त्रता है। ऐसे कार्य करने के लिए उसे, उसके तथा कम्पनी के बीच निश्चित किया गया प्रतिफल पाने का, तथा प्रतिनियोक्ता (प्रिंसिपल) की हैसियत से कम्पनी के साथ संविदा करने का अधिकार है, उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह इस प्रकार के व्यवहार से होने वाले लाभ का हिसाब दे। प्रबन्ध अभिकर्ताओं का यह आर्थिक हित निश्चय ही उनके कर्त्तव्यों से टकराता है और आर्थिक हित तथा कर्तव्यों के बीच यह विरोध प्रतिनियोक्ता तथा अभिकर्ता सम्बन्धी कानून के नियमों के प्रतिकूल है। लेकिन ऐसा कहने का यह अर्थ नहीं निकाल लेना चाहिए कि प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा की जाने वाली इन सहायक सेवाओं का परिणाम प्रायः उत्पादन, विक्रय तथा दैनिक प्रबन्ध में मितव्ययिता तथा समन्वय नहीं हुआ है। लेकिन, जैसा कि १९४९ के बाम्बे शेयरहोल्डर्स मेमोरेन्डम में, और लोक सभा में १९५६ के अधिनियम पर विचार के समय हुए विवाद में बताया गया था, जब प्रबन्ध अभिकर्ता कम्पनी के सम्बन्ध में प्रतिनियोक्ता की हैसियत से कार्य करते हैं तब कम्पनी को दिये जाने वाले माल के मूल्य या क्वालिटी की दृष्टि से स्वतन्त्र जांच या निरीक्षण नहीं होता और जब प्रबन्ध अभिकर्ता क्रेता की हैसियत से कार्य करता है तो इस बात की कोई गारंटी नहीं रहती कि वह खरीदे गये माल के लिये कम्पनी को अच्छी से अच्छी कीमत देता है तथा कम्पनी से वे शर्तें नहीं प्राप्त करता जो वह स्वयं दूसरों को देने से इन्कार करेगा। इसके अतिरिक्त, जब प्रबन्ध अभिकर्ता को क्रेता या विक्रेता की हैसियत से कार्य करने की अनुमति होती है, तब क्रय और विक्रय के मामले में कम्पनी को प्रबन्ध अभिकर्ता के रहम में छोड़ देने की प्रवृत्ति होती है, जो सिद्धान्ततः दक्षता और मितव्ययिता की दृष्टि से बिल्कुल अवांछनीय है। इस प्रकार के अधिकार को प्रबन्ध अभिकर्ताओं ने हमेशा अपना विशेषाधिकार समझा है और इसमें तनिक भी कमी का इन लोगों ने जमकर विरोध किया है। तब इसमें क्या आश्चर्य कि प्रबन्ध अभिकर्ता इन कार्यों से होने वाली आय को अंश-धारण से होने वाली आय की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। प्रबन्ध अभिकरण की बहुतेरी बुराइयों की जड़ में यह विशेषाधिकार ही है। ये बुराइयां इतनी बड़ी हैं कि सूती वस्त्र जांच पर टैरिफ बोर्ड, १९३२ की रिपोर्ट में इस बात की विशेष चर्चा की गयी है और यहां तक कि फेडरेशन आफ इण्डियन चैम्बर्स आफ कामर्स ने भी, जो प्रबन्ध अभिकर्ता के हितों की पक्षपोषक है, इस विशेषाधिकार की समाप्ति का प्रतिपादन किया है। टैरिफ बोर्ड की रिपोर्ट का पैरा ७५ इस प्रकार है : "किन्तु यह एक उचित निष्कर्ष है कि उस स्थिति का, जिसमें प्रबन्ध अभिकर्ता अपने और या अपनी कम्पनी द्वारा की गयी सेवाओं में वित्तीय दिलचस्पी रखता है, परिणाम गम्भीर बुराइयों के रूप में हो सकता सकता है।" फेडरेशन ने एक सांविधिक उपबंध की मांग की है जिसमें "प्रबन्ध अभिकर्ता पर, परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से या किसी के साथ साझेदार के रूप में कम्पनी

के साथ कच्चे माल या भंडार या निर्मित माल के निर्माण के सम्बन्ध में संविदा करने की पाबन्दी हो"। कम्पनी तथा प्रबन्ध अभिकर्ता के बीच सभी प्रकार की संविदाओं या व्यवस्थाओं पर कठोर प्रतिबन्ध लगा कर सही दिशा में कदम उठाया गया है। अब प्रबन्ध अभिकर्ता या उसका साथी किसी संपत्ति की खरीद, बिक्री या सभरण के लिए, या कोई सेवा करने के लिए या कंपनी के किन्हीं अंशों या ऋणपत्रों को अभिगोपित करने के लिए कंपनी के विशेष संकल्प द्वारा दी गयी सम्मति से ही प्रबंधित कंपनी के साथ संविदा कर सकेगा। पर किसी पचांग वर्ष (Calender year) में, उस सम्पत्ति या सेवा के विषय में जिसका कंपनी या प्रबंध अभिकर्ता नियमित रूप से व्यापार या व्यवसाय करता है, ५००० रुपये तक की संविदाएं इस पाबंदी से मुक्त हैं।

प्रबन्ध अभिकरण करार (Agreement)—१९३६ के संशोधन कानून के पूर्व प्रबन्ध अभिकर्ताओं तथा उनके साथ होने वाले करारों को कानून ने कम्पनी की मर्जी पर छोड़ दिया था, तथा प्रबन्ध अभिकर्ता प्राय सर्वदा अपने करारों में ऐसे खंड शामिल कर देते थे जिनके परिणामस्वरूप उनके हाथ में कम्पनी का पूर्ण नियन्त्रण आ जाता था और जो नियन्त्रण हमेशा उनके लिए लाभदायक तथा कम्पनी के लिए हानिप्रद प्रमाणित होता था। १९१३ के अधिनियम प्रबन्ध अभिकर्ता शब्द को परिभाषित करते हुए ये शब्द जोडकर कि "यदि करार में अन्य रीति से उपबन्ध किया गया हो तो जिस हद तक वह हो, उस तक छोडकर" (Except to the extent, if any, otherwise provided in the agreement) बहुत बड़ी त्रुटि छोड़ दी थी तथा प्रबन्ध अभिकर्ता अपने सम्बन्ध में संचालकों के अधिकारों पर सब प्रकार के प्रतिबन्ध डालकर अधिनियम की इस व्यवस्था का पूरा फायदा उठाते थे। चूंकि यह परिभाषा त्रुटिपूर्ण थी तथा तालिका "ए" के विनियम ७१ से, जो अनिवार्य है, असंगत भी थी, अत प्रबन्ध अभिकर्ता प्रबन्ध अभिकरण करार में कुछ असामान्य तथा मनचाहे उपबन्ध, यथा संचालकों के अधिकारों पर प्रतिबन्ध, उनके पारिश्रमिक का आगणन, पदहानि की अवस्था में क्षतिपूर्ति देना, अंशो के भविष्यत निर्गमन पर ग्रहणाधिकार (lien), लाभजनक पदों पर अभिकर्ता फर्मों के सदस्यों की नियुक्ति, प्रतिद्वन्द्वी व्यवसाय का संचालन आदि, प्रविष्ट करने में जरा भी संकोच नहीं करते थे। मौजूदा अधिनियम में दी गयी परिभाषा का लक्ष्य यह है कि उक्त त्रुटियां हट जायं।

प्रबन्ध अभिकर्ताओं का पारिश्रमिक—प्रबन्ध अभिकर्ताओं के पारिश्रमिक की बड़ी आलोचना की गयी है और इसकी, तथा उन विधियों की, जिनसे उन्होंने यह पारिश्रमिक प्राप्त किया है, अच्छी तरह जांच करना आवश्यक है। प्रचलित विधियां ये हैं: १. कार्यालय भत्ते, २. सभी परिस्थितियों में मिलने वाला एक निश्चित कमीशन; ३. उत्पादन या निर्माण पर कमीशन, ४. क्रय-विक्रय पर कमीशन, ५. लाभ पर कमीशन, ६. प्रकीर्ण कमीशन। यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि पारिश्रमिक की ये

विधिया वैकल्पिक नही, वरन् वे एक साथ अपनायी जा सकती हैं, और प्राय अपनायी जाती रही है। सशोधन अधिनियम १९३६ के प्रवर्तन में आने के पूर्व उक्त सभी विधिया सभी उद्योगो में व्यवहृत की जाती थी, तथा १५ जनवरी १९३७ के पूर्व निगमित कम्पनियों मे व्यवहृत की भी जाती रही। किन्तु इस तिथि के बाद निगमित की गयी कम्पनियो पर १९३६ के सशोधन अधिनियम द्वारा कतिपय प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे, और १९५६ के अधिनियम द्वारा और प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। उपर्युक्त विधिया पर विचार के बाद इन प्रतिबन्धों का वर्णन किया जाएगा।

कार्यालय भत्ता —पारिश्रमिक की जो भी अन्य विधि या विधिया अपनायी जाय पर प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा कार्यालय भत्ते के रूप में मासिक या वार्षिक एक निश्चित धन राशि ली ही जाती थी। इस राशि के अन्तर्गत निम्न चीज आती हैं—प्रधान कार्यालय का स्थान, उसका किराया और कर, बिजली, पंखा, प्रबन्ध अभिकर्ताओं के लिए लिपिक व्यय, प्रेषण, पूछताछ, रोकड विभाग (कई अवस्थाओ में) विशेषकर मुख्य लेखापाल (Chief Accountant) व सांचिविक कर्मचारी वर्ग की सेवाओं पर किये गये व्यय का एक अश तथा बहुतेरी अवस्थाओ में डाक, स्टेशनरी, तार व लघु भृत्य वर्ग (Menials) पर किये गये व्यय। अत कार्यालय भत्ता, प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा कम्पनी के निमित्त जब में किये गये व्यय की वसूली है।[1] जहा तक प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा अपनी जेब में खर्च की गयी राशि का प्रश्न है, उसका शोधन युक्तिसंगत है। लेकिन कार्यालय भत्ता उस समय आपत्तिजनक हो जाता है जब यह छिपे रूप में अतिरिक्त पारिश्रमिक का नियमित रूप धारण कर लेता था, जैसाकि युद्ध के समय तथा पश्चात् निमित सभी कम्पनियो की हालत मे हुआ था। उन प्रबन्ध अभिकर्ताओं ने भी, जिन्हें युद्ध से पहले कार्यालय भत्ते नहीं मिलते थे, अभिकरण करार में आवश्यक संशोधन के जरिये भत्ते की व्यवस्था कर ली थी। भत्ता ५०० रु० से लेकर, ७,००० रुपये मासिक तक होता था तथा यदि कम्पनी कार्यालय सम्बन्धी सब व्ययों का वहन करे तब भी भत्ता देना ही पड़ता है। कतिपय अवस्थाओ में तो करघो (Looms) तथा तकुओं (Spindles) की संख्या तथा पूजी के परिमाण में वृद्धि होने पर भत्ते की रकम में वृद्धि हो जाती थी। उदाहरणत, काइम्बटूर के वसन्त मिल्स लिमिटेड में यह व्यवस्था थी कि १ जनवरी, १९४४, को तकुओं की जो संख्या थी उसमें ५,००० तकुओं की प्रत्येक वृद्धि पर प्रबन्ध अभिकर्ता को दिये जाने वाले १५०० रुपये मासिक भत्ते में ५०० रुपये की वृद्धि हो जाती थी। अन्य मिलों में भी इसी प्रकार की व्यवस्था थी। उडीसा काटन मिल्स में ऐसी व्यवस्था थी कि पूजी यदि २०,००,००० रुपये से अधिक हो जाए तो प्रबन्ध अभिकर्ताओं को शोध्य १५०० रुपये का मासिक भत्ता बढ़कर २५०० रुपये हो जायगा। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि औचित्यपूर्ण व्यय के रूप में कार्यालय भत्ते का महत्व जाता रहा था चूकि लगभग प्रत्येक उद्योग की अवस्था में इसने अतिरिक्त पारिश्रमिक का रूप धारण कर लिया था तथा

1 Indian Tariff Board Report, 1932, para 177.

उद्योग पर यह अवांछनीय बोझ है। अब प्रबन्ध अभिकर्ता को कार्यालय भत्ता देने पर रोक लगा दी गयी है, पर यदि उसने कम्पनी के निमित्त कोई खर्च किया हो और मण्डल ने या कम्पनी ने वृहत्सभा में उसको मंजूरी दे दी हो तो वह धन उसे लौटाया जा सकता है।

जहाँ तक कुछ न्यूनतम राशि देने का प्रश्न है, जो सभी कम्पनियों में दी जाती है तथा जो सभी परिस्थितियों में, चाहे कम्पनी को लाभ हो या घाटा, देय है, इसमें निहित सिद्धान्त के औचित्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता। करार में एक व्यवस्था की जाती है कि यदि लाभ नहीं हो या लाभ अपर्याप्त हो तो प्रबन्ध अभिकर्ता को एक न्यूनतम राशि दी जायगी। लेकिन बखेड़ा उस समय पैदा होता है जब प्रबन्ध अभिकर्ता इसे भी अतिरिक्त पारिश्रमिक समझते हैं। पर अब अधिनियम ने न्यूनतम राशि ५०००० रु० अभिन्यवतन नियत कर दी है।

उत्पादन पर कमीशन (Commission)—उत्पादन पर कमीशन का प्रभार आपत्तिजनक तो है ही, साथ-साथ यह अलाभकारक (Uneconomical) भी है तथा इससे कार्य-सचालन की दक्षता नष्ट होती है। इसमें परिमाण की खातिर गुण के त्याग की प्रवृत्ति विद्यमान है, और उस स्थिति में जब उत्पादन पर नियन्त्रण कम्पनी के हित में है, अत्युत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है। चूंकि अधिक उत्पादन का अर्थ अभिकर्ताओं के लिए अधिक कमीशन होता है, अत उन्होंने अलाभकर व्यवसाय पर बहुत लाभ कमाया है। यह दक्ष प्रबन्ध तथा विपणन (Marketing) के भी विपरीत है। किन्तु इस प्रणाली का परित्याग कर दिया गया है तथा सर जे० एन० ताता ने इसका त्याग कर पथ-प्रदर्शन किया है तथा इसके स्थान पर लाभ पर १० प्रतिशत कमीशन की व्यवस्था की है।

क्रय-विक्रय पर कमीशन—बहुतेरी अवस्थाओं में प्रबन्ध अभिकर्ता मशीन, कच्चे माल, भंडार व पूंजी व्यय पर कमीशन लेते थे और लाभ व विक्रय पर तो कमीशन लेते ही थे। यह प्रथा कोइम्बटूर में बहुत अधिक प्रचलित थी, जहाँ कपास, रुई तथा भंडार की खरीद पर सामान्यत १ प्रतिशत तथा पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure) पर, जिसमें मशीन की लागत, निर्माण, भवन-निर्माण आदि भी शामिल हैं, ढाई प्रतिशत कमीशन दिया जाता था। इस कमीशन को युक्ति-संगत नहीं कहा जा सकता था क्योंकि इससे मितव्ययिता का विनाश निश्चित था। हो सकता है कि कमीशन अर्जन के निमित्त प्रबन्ध अभिकर्ता बढ़िया से बढ़िया सौदा न करके और उल्टे अतिव्ययी (Extravagant) हो जाए।

विक्रय पर कमीशन वस्त्र मिल उद्योग में सर्वत्र पाया जाता था। दर प्राय विक्रय की सकल रकम पर साढ़े तीन प्रतिशत थी। यह ठीक है कि यह प्रणाली प्रबन्ध अभिकर्ताओं को अधिक बिक्री के लिए कार्यशील होने को प्रेरित करती थी परन्तु दूसरी ओर, उत्पादन, वित्त व प्रशासन में दक्षता तथा एजेन्टों के हिस्सों में कमी आदि करके विक्रय की लागत में कमी करने के लिए अभिकर्ताओं को प्रेरणा नहीं प्रदान करती थी। यह वही

युक्तिसगत हो सकता था जहा प्रबन्ध अभिकर्ताओ का व्यवसाय में ज्यादा जोखिम था, जैसे अहमदाबाद में, और यह प्रणाली वहा बहुत सफल रही।

'पारिश्रमिक की उन प्रणालियो म से किसी में भी औचित्य की मात्रा बहुत कम थी क्योंकि उनमें से सबमें त्रुटिया थी। उत्पादन पर कमीशन की बडी त्रुटि यह थी कि यह गुण के बजाय उत्पादन पर ध्यान केन्द्रित करता है, लेकिन इसमे भी बडी आपत्ति यह है कि उत्पादन को सर्वोच्च मूल्य पर विक्रय करने की प्रेरणा को समाप्त कर देता देता है। वह आपत्ति थोडी कम मात्रा में विक्रय पर कमीशन के सम्बन्ध में की जा सकती है। उन मिलो को जो इस प्रणाली को अपनाती हैं (यदि वे उन प्रबन्ध अभिकर्ताओ द्वारा व्यवस्थित होती हैं जो अधिसंख्यक अशों के स्वामी हैं तो बात दूसरी है।) यही चिन्ता होती है कि उनका उत्पादन शीघ्रातिशीघ्र बिक जाय, यह नहीं कि वह किस कीमत पर बिके।*जब प्रबन्ध अभिकर्ता को उत्पादन या विक्रय पर कमीशन दिया जाता था, तब भी उसका हित अशधारियों से भिन्न हो जाता था और वह, उस हालत म भी, जब उद्योग के हित म कम घटे काम करना ही ठीक था, कम उत्पादन की बात स्वीकार नही करता था क्योंकि उसका प्राथमिक हित अपने उद्योग के अधिक उत्पादन म ही था। यह सारे उद्योग की लाभार्जन क्षमता पर अत्यधिक उत्पादन के दूरगामी परिणामो की परवाह नही करता था। अब प्रबन्ध अभिकर्ता या उसके साथी द्वारा भारत म की गयी खरीद या बिक्री पर कमीशन देना मना है। धारा ३५६ और ३५८ म यह उपबन्ध है कि कोई प्रबन्ध अभिकर्ता या उसका साथी भारत के भीतर कपनी की वस्तुओ के लिए बिक्री अभिकर्ता नही नियुक्त किया जा सकता और न वह उन वस्तुओ खरीद के विषय म जो कपनी के निमित्त भारत के भीतर की गयी है, (खर्च का छोड कर और) कोई धन ले सकता है। पर प्रबन्ध अभिकर्ता या उसका साथी कपनी का वस्तुए भारत से बाहर बेच सकता है, या भारत स बाहर के किसी स्थान से कपनी के लिए वस्तुए खरीद सकता है, और कुछ विनिर्दिष्ट शर्तों पर कमीशन प्राप्त कर सकता है।

लाभ पर कमीशन—सभी प्रणालियो की अपेक्षा लाभ पर कमीशन लेना नि सन्देह सर्वोत्तम है। जैसा कि सकेत किया जा चुका है, प्रचलित दर १० प्रतिशत है। लेकिन यह बात ठीक है कि प्रबन्ध अभिकर्ता नुकसान में हिस्सा नहीं बटाते, इसके विपरीत, लाभ न होने या अपर्याप्त होने की अवस्था में उन्हें एक न्यूनतम राशि दिये जाने की गारटी है। इस प्रणाली के गुण प्रत्यक्ष हैं। इसका परिणाम अनिवार्यत मितव्ययिता, दक्षता तथा श्रेष्ठतर व्यवस्था और विपणन होगा। इन सबके परिणामस्वरूप लाभ अधिक होगा और प्रबन्ध अभिकर्ताओ को अधिक रकम मिलेगी। लेकिन यहा प्रश्न यह है कि लाभ तथा कमीशन आगणन करने का आधार क्या होगा। कमीशन सकल लाभ पर होना चाहिए या शुद्ध लाभ पर? उत्तर साफ है—शुद्ध लाभ को ही इस आगणन का आधार होना चाहिए तथा १९१३ के कम्पनी अधिनियम की धारा ८७—भी भी ऐसा उपबन्ध करती थी। बम्बई में अवक्षयण काटने से पहले लाभ पर १० प्रतिशत

*टैरिफ बोर्ड की रिपोर्ट, १९२७, पृ० ८७।

कमीशन की प्रथा थी। इस आधार पर आगणन करने पर भी प्रबन्ध अभिकर्ताओं के कमीशन की मात्रा अपेक्षत ऊंची थी। उदाहरणत, बम्बई की ३९ सूती वस्त्र मिलों में कमीशन सकल लाभ का ९ १४ प्रतिशत होता था और अवक्षयण के बाद यह १० ०१ प्रतिशत होता। अवक्षयण के बाद लाभांश लाभ का ११ ९५ प्रतिशत होता था। किन्तु कमीशन शुद्ध लाभ का ३८ ८ प्रतिशत होता था तथा लाभांश शुद्ध लाभ का ४६ २७ प्रतिशत होता था। इसमें यह पता चलता है कि लाभांश की दृष्टि से प्रबन्ध अभिकर्ताओं के कमीशन की दर ऊंची है, और विशेष कर उस समय जब यह सोचा जाता है कि उस प्रतिशत में अभिमान लाभांश भी सम्मिलित था। साधारण अंशधारियों की क्षति इससे भी अधिक थी। अहमदाबाद की मिलों की स्थिति और भी दिलचस्प थी। यहां लाभ की दृष्टि से कमीशन का बोझ बहुत ही अधिक था, और जब अवक्षयण काट दिया जाता था तब लाभ की दृष्टि में यह बोझ और बढ़ जाता था और अंशधारियों के लाभांश से कमीशन लगभग १२५ प्रतिशत अधिक हो जाता था। कलकत्ते के पाट उद्योग में भी ऐसी ही स्थिति थी।

यह पुन. कहा जा सकता है कि सब मिलाकर, लाभ पर कमीशन देना बिक्री या उत्पादन पर कमीशन देने से कहीं ज्यादा दृढ़ नीति है। टैरिफ बोर्ड ने, जिसने १९४८ में वस्त्र तथा सूत की कीमतों की जांच की थी, यह तथ्य स्वीकार किया था और यह सिफारिश की थी कि कमीशन अवक्षयण घटाने के उपरान्त सकल लाभ के साढ़े सात प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। यहां यह भी स्मरणीय है कि कई कम्पनियां प्रबन्ध अभिकर्ताओं को विक्रय और लाभ दोनोंपर कमीशन देती थीं। यह बोझ भारत अकारण था। मौजूदा कानून ने प्रबन्ध अभिकर्ताओं के पारिश्रमिक की नियतता (Quantum) निश्चित कर दी है। धारा ३४८ यह उपबंध करती है कि कोई कम्पनी, किसी वित्तीय वर्ष के विषय में, प्रबन्ध अभिकर्ता को उस द्वारा इस रूप में या किसी अन्य रूप में की गयी सेवाओं के लिए पारिश्रमिक के तौर पर कम्पनी के शुद्ध लाभों के १०.प्रतिशत से अधिक राशि नहीं देगी, पर शर्त यह है कि यदि कम्पनी के विशेष संकल्प द्वारा अतिरिक्त पारिश्रमिक स्वीकृत किया गया हो और केन्द्रीय सरकार द्वारा यह सार्वजनिक हित में होने के रूप में अनुमोदित किया गया हो तो यह अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जा सकेगा।

प्रकीर्ण कमीशन (Miscellaneous Commission)—इन सीधे कमीशनों के अतिरिक्त बहुतेरे प्रबन्ध अभिकर्ता कई और कमीशन लेते हैं। मेसर्स वर्ड एण्ड कम्पनी को १९४४ में निर्मित अन्तर्नियम के अनुसार यह अधिकार था कि वे अपने द्वारा प्रत्याभूत अग्रिम पर अतिरिक्त कमीशन लें। मेसर्स किर्लोस्कर सन्स एण्ड कं० को उस स्थिति में, जब लाभांश ९ प्रतिशत घोषित है, लाभ का एक-तिहाई लेने का अधिकार प्राप्त था। इस प्रकार १९४६–४७ में उनको दिया जाने वाला पारिश्रमिक ४,२३,५०० रुपये था जबकि अंशधारियों के लाभांश की राशि ३,४५,२०० रुपये ही थी। प्रबन्ध अभिकर्ताओं ने उन राशि से अधिक पाया जो अंशधारियों को मिली।

अतिरिक्त आय प्राप्त करने की दूसरी विधि थी प्रबन्ध अभिकर्ता फर्म के एक या अधिक सदस्यो को मोटी तनख्वाह पर, जो २००० रुपये से ७००० रुपये मासिक तक होती थी, प्रधान प्रबन्धक, सचिव या प्रबन्धक के पद पर नियुक्त करना। झडु फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड में प्रबन्ध अभिकर्ताओ को, अशधारियो के बीच लाभाश वितरण के अनुसार, लाभ पर १२॥ प्रतिशत से लेकर २५ प्रतिशत तक लेने का अधिकार था। पैरी एण्ड को० लि० में मेसर्स पैरीज होल्डिंग्स लि० सचिव (Secretaries) (प्रबन्ध अभिकर्ता नही, स्पष्टत. वैधानिक प्रतिबन्धो से बचने के उद्देश्य से) नियुक्त किये गये थे और वे शुद्ध लाभ पर १० प्रतिशत कमीशन के हकदार थे। फिर भी कम्पनी के प्रबन्ध सचालक, जो पैरीज होल्डिंग्स लि० के सचालक तथा अशधारी थे, अलगम पारिश्रमिक पाते थे जो लगभग २,५०,००० रुपये सालाना होता है।[1] मौजूदा अधिनियम ने इनमें से कुछ प्रथाओ को कम कर दिया है और कुछ को बिल्कुल रोक दिया है। प्रबन्धकीय पारिश्रमिक की उच्चतम सीमा निश्चित करदी गयी, और इस प्रकार अब प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचालक, सचिव और कोषाध्यक्ष, और प्रबंध वित्तीय वर्ष के भीतर शुद्ध लाभ का ११ प्रतिशत से अधिक नही ले सकते। अब प्रबंध अभिकर्ता, प्रत्येक मामले में सचालक मंडल के विनिर्दिष्ट अनुमोदन के विना, कोई प्रबधक नियुक्त नही कर सकता, किसी रिश्तेदार को प्रबंधित कम्पनी में अफसर या स्टाफ का सदस्य नियुक्त नही कर सकता, किसी अफसर या स्टाफ के सदस्य को सचालक मडल द्वारा तय की हुई सीमा से अधिक पारिश्रमिक पर नियुक्त नही कर सकता।

ऊपर के विवेचन से प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ, इसके गुणो व दोषो और सथाओ और दुरुपयोगो का पता लगता है। अब इस प्रणाली के लाभों और हानियो की चर्चा करना अप्रासगिक नही होगा।

प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली के लाभ—

१ प्रबन्ध अभिकर्ताओ ने प्रवर्तक का कार्य किया है। इन्होंने अधिकतर उद्योगो की विशेषतया वस्त्र, पाट, लोहा, इस्पात, चीनी तथा कोयले की निर्मिति से सम्बद्ध उद्योगो की स्थापना तथा नियन्त्रण किया है।

२ प्रबन्ध अभिकर्ता द्वारा प्रवर्तन के परिणामस्वरूप, पराश्रयी कम्पनियों के अधाधुध निर्माण पर, जिसकी सभावना पेशेवर प्रवर्तको के होने से बढ जाती है, रोक लग जाती है। अपने द्वारा व्यवस्थित कम्पनियो में, साधारण प्रवर्तको की अपेक्षा प्रबन्ध अभिकर्ताओ का हित अधिक गहरा होता है, क्योंकि प्राप्त होने वाला पारिश्रमिक आलोच्य कम्पनी की सफलता से सम्बद्ध होता है।

३ प्रबन्ध अभिकर्ता पश्चिम के अभिगोपको तथा निर्गमन गृहो के कार्यों का सम्पादन करते हैं। अपने वित्तीय संसाधनों एव सुख्याति के कारण वे इस स्थिति में होते

---

1 See Memorandum of Bombay Shareholders' Association, 1919.

है कि विनियोजक जनता को औद्योगिक व्यवसायों में अपनी बचतें लगाने को प्रेरित कर सकें और इस प्रकार वे नये उपक्रमों को पर्याप्त धनराशि प्राप्त करने में समर्थ करते हैं।

४ लेकिन इस प्रणाली की सबसे बड़ी सेवा व कार्य है पूँजी में अंशदान व ऋण पत्रों के क्रय तथा दीर्घावधि व अल्पावधि के लिए ऋणदान के जरिये प्रत्यक्ष, तथा बैंकों द्वारा कम्पनियों को दिये जाने वाले ऋण को प्रत्याभूत करके मित्रों, कुटुम्बियों तथा जनसाधारण से निक्षेप के रूप में ऋण प्राप्त करने की अप्रत्यक्ष सेवा प्रदान करना।

५ प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा प्रबन्ध अधिक दक्ष तथा मितव्ययितापूर्ण होता है। सचालक मडल द्वारा प्रबन्ध में यह सम्भव नहीं होता और विशेषकर वैसे आदमियों की कमी होती है जो व्यवसाय के लिए अपनी शक्ति व समय दे सकें। यह बात विशेष रूप से अंग्रेजी प्रबन्ध अभिकर्ता फर्मों पर लागू होती है जिन्होंने लगातार प्रशिक्षित तथा दक्ष प्रबन्धक दिये हैं। अधिकांश भारतीय प्रबन्ध अभिकर्ता फर्मों के बारे में ऐसी बात नहीं कही जा सकती।

६ इस प्रणाली का एक और बड़ा लाभ, जिसकी ओर १९३५ में पहले-पहल डा० लोकनाथन ने ध्यान दिलाया, प्रशासन सम्बन्धी समेकन है। हम लोग यह देख चुके हैं कि किस प्रकार प्रबन्ध अभिकर्ता फर्म प्रत्येक उद्योग में तथा विभिन्न उद्योगों में बहुत सारी कम्पनियों पर नियन्त्रण करती है। यह समेकन (Integration): एक अनूठी पद्धति है क्योंकि इसमें क्षैतिज समेकन उत्पन्न होता है जिसके परिणाम-स्वरूप पश्चिमी जगत में प्रचलित औपचारिक संयोजन के बिना ही उद्योग का वैज्ञानिकीकरण हो गया है और बृहत्मान परिचालन की बहुतेरी मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं। उदाहरणार्थ, सगठन की कार्य सम्बन्धी व विभागीय (Functional-cum Departmental) योजना को अपना कर सभी कम्पनियों के क्रय को केन्द्रीभूत किया जा सकता है और उसका दायित्व एक ऐसे विशेषज्ञ (Expert) को सौंपा जा सकता है जिसकी मोटी तनख्वाह लाभान्वित कम्पनियों के बीच विभाजित कर दी जा सके। थोक खरीद तथा संयुक्त विपणन (Joint Marketing) की सभी मितव्ययिताओं को प्राप्त किया जा सकता है। इन लाभों में निरीक्षण, परामर्श, प्रशिक्षण तथा श्रम व्यवस्था के क्षेत्र में प्राप्त होने वाली मितव्ययिताएं भी जोड़ी जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त, प्रत्यक्ष प्रशासन मितव्ययिताएं भी हैं, यथा सर्वनिष्ठ (Common) कार्यालय, सर्वनिष्ठ कर्मचारी वर्ग, सर्वनिष्ठ मडल कक्ष (Common Board Room), सर्वनिष्ठ स्वागत कक्ष (Common (Reception Room) तथा बैंक, बीमे (Insurance) और माल प्रेषण से सम्बद्ध सर्वनिष्ठ सुविधाएं। प्रशासनात्मक समेकन का दूसरा लाभ है श्रेष्ठतर वित्तीय सुविधाएं। बड़ी कम्पनियों के मुकाबले में छोटी कम्पनियों को हानियां नहीं उठानी पड़ती क्योंकि प्रबन्ध अभिकर्ता की प्रत्याभूति (Guarantee) दोनों प्रकार की कम्पनियों के लिए समान रूप से उपलब्ध है।

७ चूंकि व्यवसाय प्रशासन थोडे से व्यक्तियों के हाथों में होता है, अत, इस प्रणाली में व्यवसाय प्रशासको के बीच सहयोग की बहुत सम्भावना होती है। लेकिन दुर्भाग्यवश बगाल व आसाम की अग्रेज अभिकर्ता कोठियो को छोडकर और जगह इस सुविधा से बहुत कम लाभ उठाया गया है। सहयोग एक वाछनीय कार्य है, क्योंकि यह विपणन, वैज्ञानिकीकरण (Rationalisation), अपव्यय के उन्मूलन, तथा विपणन तथा निर्यात व्यवसाय के निमित्त सयोजन का प्रेरक है। चाय तथा पटसन उद्योग इस प्रकार के सहयोग के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं।

८ इस प्रणाली का एक और लाभ, जो हमेशा प्रत्यक्ष दिखायी नहीं पडता है, एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न इकाइयों के बीच प्रतिद्वद्विता को मिटा देने की प्रवृत्ति का होना, और इस प्रकार सम्बन्धित व्यवस्था व प्रशासन से प्राप्त होने वाले लाभो मे वृद्धि है। भारतवर्ष में एकाधिकारिक कोटि के सयोजनो की इतनी कम सख्या होने का एक कारण सभाव्यत यह भी है।

हानिया (Disadvantages)—इतने लाभो के बावजूद, प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली केवल वरदान साबित नहीं हुई। इस प्रणाली का उद्भव १९वीं सदी म कार्यशील आर्थिक शक्तियों के कारण हुआ, और अब एक ओर तो आर्थिक परिस्थितियो म सुधार हुआ है, लेकिन दूसरी ओर इस प्रणाली में बुराइया बढती ही गयी और विधान की गति इतनी धीमी रही कि वह इस प्रणाली की पुरातनता से उत्पन्न होने वाली बुराइयो को पकड और दबा नही सका। इसकी बुराइया, हानियाँ, त्रुटिया, तथा कमिया सक्षेप में इस प्रकार है ·

१ प्रबन्ध अभिकर्ता सर्वदा अपने द्वारा व्यवस्थित कम्पनी पर सम्पूर्ण तथा तानाशाही नियत्रण रखते है। उन्होंने हमेशा ही १९३६ के सशोधन अधिनियम में की गयी व्यवस्था में उपबन्धित अपवाद वाक्यो का लाभ उठाया है। इन व्यवस्थाओ में उनके अधिकारो पर कतिपय नियत्रण रखने का प्रयत्न किया गया है। प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली के व्यावहारिक प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि कम्पनियो के प्रबन्ध मे न तो अशधारियो का कोई प्रभावशाली हाथ रहता है और न सचालको का। वस्तुत प्रबन्ध अभिकर्ता ही कम्पनी पर तानाशाही शासन करते हैं। अशधारी विवश रहे है तथा सचालक मडल व्यर्थ था।

२ उद्योग में औद्योगिक घटकों के बजाय वित्तीय विचारो की प्रधानता रहनी आवश्यक हो गयी है। वित्त ने सेवक का स्थान छोडकर स्वामी का स्थान ग्रहण कर लिया है और इसके साथ स्वाभाविक बुराइया उत्पन्न हुई है।

३ इस देश की आर्थिक प्रगति में औद्योगिक विकास की जगह व्यापारिकता की प्रधानता का मूल कारण प्रबन्ध अभिकर्ता है, जो उद्योगपति न होकर व्यापारी थे।

४ प्रबन्ध अभिकरण की अवधि घटाकर २० वर्ष कर दिये जाने के बाद भी अधिकाश भारतीय अभिकर्ताओ को स्वामित्व वशानुक्रम से मिलने के कारण बहुधा कम्पनिया अयोग्य हाथो में आ गयी है। 'बेटो' की अयोग्यता प्रसिद्ध ही है लेकिन

प्रबन्ध अभिकर्ता को हटाना असम्भव है चाहे वह कितना ही अयोग्य क्यों न हो। वे सर्वदा इस स्थिति में रहे हैं कि संविदा की अवधि को २० साल की सीमा से अधिक कर दें और अदक्षता, कुव्यवस्था तथा नाजायज लाभ (Graft) को चिरस्थायी बनाए।

५ औद्योगिक उपक्रमों के बहु-प्रबन्ध (Multi-management) का परिणाम होता है आलस्य, विचारहीनता तथा उदासीनता और उसके फलस्वरूप प्रबन्ध अभिकर्ता अपने अन्तर्गत बहुत सी कम्पनियों पर कम ध्यान दे सकते हैं। यह एक स्वयं-सिद्धि है कि व्यक्तिगत तथा गहरा ध्यान देने से जो परिणाम होता है वह वृहत्‌माप व्यवस्था से अच्छा ही होता है। वृहत् माप की सफलता के लिए प्रबन्ध ढांचे के उच्चतम पदों पर आसीन व्यक्तियों में ऊंचे दरजे की संगठन-योग्यता तथा प्रेरक शक्ति चाहिए तथा सामान्य कार्यकर्ताओं में उसी प्रकार की विश्वसनीयता तथा कुशाग्र बुद्धि का होना आवश्यक है। यह कहना कि भारतीय व्यवसाय प्रशासन में ये चीजें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाती हैं, परले दरजे की अतिशयोक्ति होगी।

६ अभी कुछ दिनों से प्रबन्ध अभिकर्ताओं में यह प्रवृत्ति हो गयी है कि वे अंशधारण न करें, और इस प्रकार अपने द्वारा व्यवस्थित कम्पनी की स्थिर पूंजी में उनका प्रत्यक्ष हित जाता रहता है। अतः वे अंशधारियों तथा कम्पनियों के हितवर्धन के बजाय रक्तशोषक का कार्य करते रहे हैं।। कुछ तो ऐसे होते हैं जो स्टाक एक्सचेंज में अपनी कम्पनियों के अंशों में सट्टेबाजी करते हैं। उनकी इस सट्टेबाजी का कम्पनियों की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव होता है और इस कारण बैंक दिया गया नगद उधार वापिस ले लेते हैं, चाहे आलोच्य कम्पनी की स्थिति दृढ ही क्यों न हो।

७ अभिकर्ताओं द्वारा प्रबन्ध प्रायः अदक्ष तथा खर्चीला होता है, जिसका कारण है महत्वपूर्ण पदों पर सम्बन्धियों, मित्रों तथा "विश्वस्तों" का नियुक्त किया जाना। इस प्रकार बंधु-पक्षपात (Nepotism) की वेदी पर प्रतिभा तथा दक्षता की बलि होती है। कच्चे माल, भंडार तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की खरीद प्रायः उन फर्मों से की जाती है जो सम्बन्धियों तथा मित्रों की होती हैं और खरीद किये गये सामान के लिये बाजार मूल्य से अधिक मूल्य चुकाया जाता है और इस प्रकार उत्पादन लागत अनुचित रूप से अधिक हो जाती है।

८ इस प्रणाली ने अधिकोषण तथा उद्योग के बीच एक बिलगाव पैदा कर दिया है, तथा सर्वसाधारण से प्राप्य कुल बचत तथा देश में औद्योगिक योजना व संगठन योग्यता के बीच एक उचित समन्वय स्थापित करने में यह विफल रही है। इस प्रणाली तथा बैंकों के द्वैध अस्तित्व ने औद्योगिक प्रगति को अवरुद्ध किया है। अभिकर्ता एक लीक पकड़कर कार्य करने की प्रवृत्ति रखते हैं, और उद्योग के प्रति उनका दृष्टिकोण रूढ़ हो जाता है तथा नये उद्योगों की योजनाओं पर वे पर्याप्त ध्यान नहीं देते।

९. बहुतेरी प्रबन्ध अभिकर्ता फर्मों द्वारा किया जाने वाला दूसरा आपत्तिजनक कार्य है एक ही अभिकर्ता के अधीनस्थ कम्पनियों के बीच धन का अन्तर्विनियोग

(Inter-investment) । यद्यपि प्रबन्ध अभिकर्ता के अधीनस्थ दो या दो से अधिक कम्पनियों के बीच ऋण अब निषिद्ध है, तो भी अन्य कम्पनी के सदस्यों की सर्वसम्मति के उपरान्त, एक कम्पनी द्वारा दूसरी कम्पनी के अंशों या ऋणपत्रों का खरीदा जाना अनुज्ञात है। इसका परिणाम यह होता है कि वे पुरानी दिवालिया कम्पनियां, जिन्हे समाप्त हो जाना चाहिए, चिरस्थायी हो जाती हैं और उन अंशधारियों को क्षति हो जाती है, जिनका धन दुर्बल कम्पनियों के यहां हस्तांतरित हो जाना है।

१० पारिश्रमिक की विधियों तथा राशि की दृष्टि से देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रशासन की प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली समय बीतने पर उत्तरोत्तर सस्ती तथा मितव्ययितापूर्ण होने के बजाए महंगी और बोझिल हो जाती है। कम से कम प्रारम्भ के १० या १५ वर्ष बाद तो अवश्य ही ऐसा होता है। शुद्ध लाभ पर कमीशन के रूप में उनके उचित तथा युक्तिसंगत पारिश्रमिक पर किसी को आपत्ति नहीं है लेकिन अतिरिक्त कमीशन के प्रकार, और विशेषकर तब जब हम उनकी अयोग्यता तथा उदासीनता का स्मरण करते हैं, निश्चय ही आपत्तिजनक हैं।

११ प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा पद का अभिहस्तांकन (Assignment) शक्ति तथा स्थिति के दुरुपयोग का दूसरा उदाहरण है। प्रबन्धाधिकारों का पणन (Trafficking) बड़े पैमाने पर हुआ है और क्रेताओं की हैसियत व ख्याति तथा अंशधारियों व कर्मचारी वर्ग के कल्याण का ख्याल किये बिना इन शक्तियों की बिक्री की गयी है। बाम्बे शेयरहोल्डर्स एसोसियेशन के १९४९ के स्मरण पत्र के अनुसार, लगभग ५० औद्योगिक कम्पनियों का, जिनमें करोड़ों रुपये की पूंजी व सम्पत्ति की बात थी, हस्तान्तरण हुआ और अंशधारियों को क्रेताओं की मर्जी पर छोड़ दिया गया। इन क्रेताओं में से अधिकांश ने सामे (Common) धन का अपने काम में लगाया। प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा अंशधारण की प्रधानता वरदान की जगह अभिशाप सिद्ध हुई है।

१२ प्रबन्ध अभिकर्ताओं के वर्गीय हित के लिये कम्पनियों तथा उनके अंशधारियों का निम्नलिखित रूप में प्रणालीबद्ध शोषण होता रहा है —

- क प्रबन्ध अभिकर्ता या सम्बन्धित इकाइयां विक्रय अभिकर्ता, दलाल, और मुकद्दम के पद पर नियुक्त किये जाते थे तथा प्रबन्ध अभिकर्ता एवं उनकी कम्पनी के बीच बहुतेरे अनुबन्ध किये जाते थे जिनमें प्रबन्ध अभिकर्ता प्रतिनियोक्ताओं (Principals) का कार्य करते थे।
- ख आन्तरिक सूचनाओं का, जो प्रबन्ध अभिकर्ताओं को मालूम रहती हैं, अंशों की कीमतों की सट्टेबाजी द्वारा अपने लिए अंशों की बिक्री व खरीद करके वे बहुधा दुरुपयोग करते थे।
- ग कम्पनी के धन का निम्नलिखित रीति से अनुचित प्रयोग या दुरुपयोग किया जाता था - १ मित्रों व व्यवसाय-गृहों को अव्यावहारिक प्रकृति का ऋण

व अग्रिम देकर, २ चालू खाते में बड़ी-बड़ी राशियां पेशगी लेकर, ३ अवैध उद्देश्य, यथा अपने वास्ते मताधिकार-नियन्त्रण की प्राप्ति, के लिए सम्बन्धित कम्पनियों में विनियोग करके या उन्हें अग्रिम देकर, ४ अपनी फर्मों को लोक-सीमित कम्पनियों में परिवर्तित करके और फिर कम्पनियों से ऋण प्राप्त करके, और इस प्रकार कम्पनियों को वित्तपोषित करने के बजाय स्वयं को वित्त-पोषित करके, ५ सम्बन्धित कम्पनियों से प्राप्य ऋण का चुकता न होने देना, तथा ६ अपने अनुबन्धों की परिसमाप्ति पर बड़ी राशियां, जो कभी-कभी लाखों तक पहुंच जाती थीं, क्षतिपूर्ति के रूप में तब भी लेना जबकि अनुबन्ध की समाप्ति उन्होंने स्वयं अपने पद को बेचकर की हो।

घ ऋण प्राप्ति, विनियोग तथा पूंजी वृद्धि सम्बन्धी अधिकारों का अवसर दुरुपयोग किया गया है।

ङ डॅफर्ड अंश निर्गमित किये जाते थे, जिनके साथ अत्यधिक मताधिकार तथा अन्य अधिकार जुड़े होते थे और ये अंश प्रबन्ध अभिकर्ताओं को आवंटित किये जाते थे ताकि उनकी शोषण सम्बन्धी क्षमता में और वृद्धि हो।

च प्रबन्ध अभिकरण करारों में अनपेक्षित शर्तें रखी जाती थीं।

छ कम्पनियां प्रायः अपर्याप्त पूंजी से प्रारम्भ की गयी थीं।

ज प्रबन्ध अभिकर्ता के वास्ते लाभदायक प्रबन्ध अभिकरण अनुबन्धों की प्राप्ति के लिए प्रायः सहायक कम्पनियों की प्रणाली को व्यवहृत किया जाता था।

उपचारात्मक उपाय (Remedial Measures)—कुछ कमियों को भारतीय कम्पनी (संशोधन) अधिनियम १९३६ और एक या दो को भारतीय कम्पनी (संशोधन) अधिनियम १९५१ द्वारा हटाने का यत्न किया गया था। कम्पनी अधिनियम १९५६ ने इसकी कमियों को बहुत दूर तक हटा दिया है। नये उपबन्धों का प्रभाव इतना दूरगामी होने की सम्भावना है कि यहां उन्हें संक्षेप में लिख देना मुनासिब होगा। उन ५४ धाराओं का (धाराएँ ३२४ से ३७७, तक) जो प्रत्यक्ष रूप से प्रबन्ध अभिकर्ताओं के बारे में हैं, और कुछ अन्य धाराओं का, जो अप्रत्यक्ष रूप से उनसे सम्बन्ध रखती हैं, सारांश नीचे दिया जाता है।

बहुत सारे अभिकरण गृहों द्वारा किये जाने वाले दुष्कार्यों के कारण जनता का बहुत बड़ा भाग प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली को खत्म करने की लगातार मांग कर रहा था। दूसरी ओर, प्रबन्ध अभिकर्ता और उनके प्रतिनिधि इस प्रणाली की पिछली सेवाओं, मौजूदा उपयोगिता और यदि धूर्त वर्ग को हटा दिया जाए तो इसकी भविष्य की सम्भावनाओं के कारण इसे अनिश्चित काल तक जारी रखने पर जोर देते थे, पर वित्तमंत्री श्री चिन्तामणि देशमुख ने एक बीच का रास्ता निकाला और धारा ३२४ यह उपबन्ध करती है कि केन्द्रीय सरकार सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा यह घोषणा कर सकती है कि उस तिथि से जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की गई हो, उन कम्पनियों में, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट उद्योग और व्यवसाय में लगी हैं, प्रबन्ध अभिकर्ता नहीं होंगे।

तब उस उद्योग या व्यवसाय में प्रबन्ध अभिकरण ३ वर्ष बीतने या १५ अगस्त १९६०, जो भी बाद में हो, उसके बाद प्रबन्ध अभिकरण समाप्त हो जायेंगे। इसके अलावा, उस उद्योग या व्यवसाय में अधिसूचना में विनिर्दिष्ट तिथि के बाद कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता नया नियुक्त नहीं किया जाएगा। इस प्रकार जहां प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपना ढंग नहीं सुधारेंगे वहां वे खत्म हो जायेंगे।

धारा ३२५ यह उपबन्ध करती है कि जो कम्पनी किसी दूसरी कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता के रूप में काम कर रही है वह स्वयं किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता के प्रबन्ध में नहीं होगी। यदि ऐसी कोई कम्पनी इस समय है, तो प्रबन्ध अभिकरण कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता अधिक से अधिक १५ अगस्त १९५६ तक अपना पद खाली कर देंगे।

१९३६ के संशोधन अधिनियम से पहले प्रबन्ध अधिकरण उत्तराधिकार में मिलते थे, क्योंकि इन्हें पितागम्य (Heritable) सम्पत्ति माना जाता था, इससे बहुत सी अवस्थाओं में प्रबन्ध में अदक्षता आ जाती थी। १९१३ के अधिनियम की धारा ८७-ए किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति का अधिकतम समय एक बार में २० साल तय करती थी। पर यह अवधि बीतने पर या बीतने से पहले इसे बढ़ाया जा सकता था। यह प्रबन्ध प्रयोगहीन सिद्ध हुआ, और जिस शाश्वत ढंग के नियन्त्रण को यह रोकना चाहता था वह कायम रहा, क्योंकि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के पद की अवधि मौजूदा संविदाओं के खत्म होने से बहुत पहले उस धारा के अनुसार अनुमत पूर्ण अवधि के लिए बढ़ा दी जाती थी। अंशधारी कुछ नहीं कर सकते थे, क्योंकि अवधि बढ़ाने के संकल्प के लिए सिर्फ मामूली बहुमत चाहिए था, जो प्रबन्ध अभिकर्त्ता आसानी से जुटा सकते थे। इस चलन को रोकने के लिए १९५१ में अधिनियम संशोधित किया गया और यह उपबन्ध किया गया कि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के पद की अवधि बढ़ाने का कोई करार केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुमोदित न होने पर शून्य माना जाएगा। इसी तरह का उपबन्ध मौजूदा अधिनियम में भी किया गया। धारा ३२६ यह उपबन्ध करती है कि किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति कम्पनी द्वारा बृहत् सभा में ही की जा सकती है और वह भी केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन से ही की जा सकती है। केन्द्रीय सरकार उस अवस्था में अनुमोदन न कर सकेगी यदि उसे यह सन्तोष न हो जाए कि कम्पनी में प्रबन्ध अभिकर्त्ता का नियुक्त होना सार्वजनिक हित के विरुद्ध नहीं है, कि प्रबन्ध अभिकरण करार की शर्तें उचित और तर्कसंगत हैं, कि प्रस्तावित प्रबन्ध अभिकर्त्ता इस नियुक्ति के लिए उपयुक्त और योग्य है और कि प्रस्तावित प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाई गई बाकी और शर्तें पूरी कर दी हैं। यह उपबन्ध किया गया है कि इस अधिनियम के आरम्भ के बाद कोई कम्पनी पहली बार में १५ वर्ष से अधिक की अवधि के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त नहीं कर सकेगी। बाद की नियुक्तियां एक बार में १० साल से अनधिक की अवधियों के लिए होनी चाहिए। पुनर्नियुक्ति अवधि खत्म होने से ठीक पहले के दो वर्ष के भीतर ही की जा सकती है और केन्द्रीय सरकार उपयुक्त मामलों में इस शर्त को ढीला कर सकती है (धारा ३२८)।

किसी प्रबन्ध अभिकरण करार की शर्तें अंशधारियों के साधारण संकल्प द्वारा केन्द्रीय सरकार की पूर्व सम्मति लेकर बदली जा सकती हैं (धारा ३२९)।

प्रबन्ध अभिकरण करार का कोई ऐसा उपबन्ध जो प्रबन्ध अभिकरण को विरासत योग्य बनाता है शून्य होगा (धारा ३४४), पर मौजूदा मामलों में केन्द्रीय सरकार प्रबन्ध अभिकरण का उत्तराधिकार प्राप्त करने की अनुज्ञा दे सकती है, यदि उसकी यह राय हो कि उत्तराधिकार पाने वाला व्यक्ति प्रबन्ध अभिकर्त्ता होने के लिए योग्य और उचित व्यक्ति है (धारा ३४५)

सब मौजूदा प्रबन्ध अभिकरण करार अधिक से अधिक १५ अगस्त १९६० तक खत्म हो जायगे बशर्ते कि इस तिथि से पहले प्रबन्ध अभिकर्त्ता इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार पुन नियुक्त न कर दिया गया हो, और प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के सम्बन्ध नए अधिनियम के सब उपबन्ध इस अधिनियम के आरम्भ में लागू होंगे (धाराएँ ३३० और ३३१)।

१५ अगस्त १९६० के बाद कोई व्यक्ति एक ही समय में १० से अधिक कम्पनियों का अभिकर्त्ता नहीं हो सकता, पर यह संख्या गिनने में निम्नलिखित कम्पनियों के प्रबन्ध अभिकरणों को छोड दिया जाएगा—

(१) ऐसी वैयक्तिक या निजी कम्पनियां जो न तो किसी लोक कम्पनी की सहायक कम्पनी है और न सरकारी कम्पनी, (२) कोई बिना लाभ वाला साहचर्य; और (३) कोई असीमित कम्पनी। यदि १५ अगस्त १९६० तक कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता, जो १० से अधिक कम्पनियों में इस पदपर है, अपनी १० कम्पनियां नहीं छांट लेता है, तो केन्द्रीय सरकार यह निश्चय करेगी कि किन १० कम्पनियों में उसे प्रबन्ध अभिकर्त्ता बना रहने दिया जाए (धारा ३३२)।

वह प्रबन्ध अभिकर्त्ता, जिसका पद ऊपर बताई गई धारा ३२४ या ३३२ के अधीन खत्म हो जाता है, ऐसे खात्मे की तिथि पर कम्पनी से प्राप्तव्य सब मांगों के लिए या जो उस तिथि से पहले कम्पनी के निमित्त उस द्वारा उचित रीति से लिए गए किसी दायित्व बन्धन के विषय में अदा करने हों, उनके लिए कम्पनी की आस्तियों से प्राप्त करने का हकदार होगा (धारा ३३३)।

यदि कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता शोधाक्षम या दिवालिया हो जाए या दिवालिया अभिनिर्णीत किए जाने के लिए प्रार्थनापत्र दे, या प्रबन्ध अभिकरण फर्म विघटित कर दी जाए या प्रबन्ध अभिकरण कम्पनी को समाप्त कर दिया जाए तो यह समझा जाएगा कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने अपना पद खाली कर दिया है (धारा ३३४)।

यदि किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता की सम्पत्ति के लिए न्यायालय ने धारक (Receiver) नियुक्त कर दिया है, तो यह समझा जाएगा कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने पद से निलम्बित (Suspended) कर दिया गया है, पर उपयुक्त मामलों में

न्यायालय इस उपबन्ध को शिथिल कर सकता है (धारा २३५)

यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता या जहा प्रबन्ध अभिकरण कोई फर्म है, वहा उसका कोई साझी, या जहा प्रबन्ध अभिकर्त्ता काई कम्पनी है, वहा काई सचालक या अफसर किसी अपराध का अपराधी सिद्ध हो जाए और ६ महीने के कारावास से दण्डित हो जाए, तो भी यह समझा जाएगा कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने अपना पद खाली कर दिया है (धारा ३३६) पर यदि सिद्धदोष साझी सचालक या अफसर अपने सजा पाने के ३० दिन के भीतर निकाल दिया जाता है ता ये अनर्हताएँ लागू नही होगी (धारा ३४१)।

कोई कम्पनी अपने अशधारियों के साधारण सकल्प द्वारा अत्यधिक असावधानी या कम्पनी के या उसकी सहायक कम्पनियो के अत्यधिक कुप्रबन्ध के अपराध पर अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को पद से हटा सकती है (धारा ३३८)

कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता सचालक मडल को सूचना देकर त्यागपत्र दे सकता है, पर वह त्यागपत्र तब तक प्रभावी नही हागा, जब तक मडल ने कम्पनी के मामलो का एक विवरण तैयार नही कर लिया, और वह अवेक्षित (Audited) नही हो गया है और कम्पनी की बृहत् सभा के सामने नही रखा गया है। कम्पनी की बृहत् सभा सकल्प द्वारा त्यागपत्र स्वीकार कर सकती है या वैसी अन्य कार्यवाही कर सकती है जैसी वह ठीक समझे (धारा ३४२)।

जहा किसी लोक कम्पनी का या एसी निजी कम्पनी का, जा किसी लोक कम्पनी की सहायक है, प्रबन्ध अभिकर्त्ता कोई फर्म या परिमित कम्पनी है वहा, यदि उस फर्म या परिमित कम्पनी के गठन म कोई परिवर्तन हाता है, ता जिस तिथि को यह परिवर्तन हुआ है उससे ६ मास बीत जाने पर प्रबन्ध अभिकर्त्ता का इस रूप में कार्य करना खत्म हो जाएगा। पर यह तो है, हागा यदि उस समय के भीतर या एस बढाए हुए समय के भीतर जिसकी केन्द्रीय सरकार इजाजत दे दे, उस गठन के परिवर्तन पर केन्द्रीय सरकार का अनुमोदन प्राप्त कर लिया गया हा। धारा ३४६ के स्पष्टीकरण म यह उपबन्धित किया गया है कि किसी निजी कम्पनी का लोक कम्पनी म या लोक कम्पनी का निजी कम्पनी में सम्परिवर्तन, या कम्पनी के सचालको या प्रबन्धको म कोई परिवर्तन, या कम्पनी के अशा के स्वामित्व म कोई परिवर्तन या (उन प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को छोड कर जो लोक कम्पनिया है और जिनके अशो की कीमत किसी अभिज्ञात स्टाक एक्सचेज पर बतायी जाती है अन्य) कम्पनियो के अशो के स्वामित्व म कोई परिवर्तन, सबके सब, प्रबन्ध अभिकर्त्ता के गठन में परिवर्तन मान जायग (धारा ३४६)। जा फर्म या निजी कम्पनी किसी कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करती है, उस प्रत्यक कम्पनी का प्रबन्धित कम्पनी के यहा एक घोषणा-पत्र नत्थी कराना होगा जिसमें फर्म के साझियो के नाम और फर्म के प्रत्येक साझी का अश या स्वीकृत या अशधारियो के नाम और प्रत्यक द्वारा धारित अश तथा प्रबन्ध अभिकर्त्ता के रूप म कार्य करने वाली कम्पनी के सचालको और प्रबन्ध सचालक के नाम विनिर्दिष्ट होगे। (धारा ३३६)

कुछ अधिकतम पारिश्रमिक, जिसे प्रबन्धकीय पारिश्रमिक का नाम दिया गया है,

और जो सचालकों, प्रबन्ध अभिकर्ताओं, सचिवों और कोषाध्यक्षों और प्रबन्धकों का दय है, कम्पनी के शुद्ध लाभ का ११% तय किया गया है। पर यदि किसी वित्तीय वर्ष म बहुत थोडा लाभ हो, या बिल्कुल लाभ न हो तो न्यूनतम पारिश्रमिक ५०,००० रुपये होगा। उन सब लोगो को जो ऊपर गिनाए गए हैं, किय जाने वाले इस कुल भुगतान के अधीन रहते हुए कोई कम्पनी अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को किसी वित्तीय वर्ष के विषय में पारिश्रमिक के रूप में, चाहे वह प्रबन्ध अभिकर्ता के रूप म उसकी सेवाओ के लिए हो, या किसी और रूप में, ऐसी धन राशि दे सकती है जो कम्पनी के उस वर्ष के शुद्ध लाभ के १०% से अधिक न हो। (धाराएँ १९८ और ३४८) पर यदि कम्पनी के विशेष सकल्प द्वारा किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता को शुद्ध लाभ के १०% से अधिक अतिरिक्त पारिश्रमिक देना स्वीकृत कर लिया जाए और केन्द्रीय सरकार द्वारा इसका देना लोकहित में मान लिया जाए, तो उसे वह दिया जा सकता है और प्रबन्धकीय पारिश्रमिक के लिए निर्धारित ११% अधिकतम की शर्त का इस अतिरिक्त पारिश्रमिक की मात्रा तक उल्लघन किया जा सकता है (धारा ३५२)।

किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पारिश्रमिक उसे तब तक न चुकाया जाएगा जब तक कम्पनी के अकेक्षित लेखे वृहत् सभा के सामने न रक्खे जाएँ। पर यदि प्रबन्ध अभिकर्ता के लिए 'न्यूनतम पारिश्रमिक' तय किया गया है, तो वह न्यूनतम पारिश्रमिक कम्पनी द्वारा तय की जाने वाली उपयुक्त किश्तो में उसे चुकाया जा सकता है (धारा ३५८)।

किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता को कोई कार्यालय भत्ता पाने का हक नहीं है, पर यदि उसने कम्पनी के निमित्त कोई खर्च किये हो तो वे उसे दिये जा सकते है, बशर्ते कि वे सचालक मडल द्वारा या कम्पनी की वृहत् सभा द्वारा स्वीकृत हो (धारा ३५४)।

३४८ से ३५४ तक की धाराओं के उपबन्ध जो प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के पारिश्रमिक के बारे में हैं, उन कम्पनियो पर लागू नहीं होंगे जो निजी कम्पनियां है (और लोक कम्पनियों की सहायक नहीं है। धारा ३५५)

कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसका साथी (Associate) भारत में उस कम्पनी की वस्तुओं के लिए बिक्री एजेण्ट नियुक्त नहीं किया नहीं किया जा सकता। वह भारत से बाहर के स्थानों के लिए बिक्री एजेण्ट नियुक्त किया जा सकता है बशर्ते कि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जायँ -

(क) जिस स्थान के लिए वे बिक्री अभिकर्त्ता नियुक्त किये जाते है, उसमें उनका पहले से कारबार का स्थान हो। (ख) ऐसी नियुक्ति का पारिश्रमिक कम्पनी द्वारा विशेष सकल्प से मजूर किया गया हो। (ग) इस प्रयोजन के लिए खर्च के रूप में या अन्य किसी रूप में कोई और धनराशि देय नहीं होनी चाहिए। (घ) नियुक्ति एक बार में सिर्फ ५ साल के लिए हो सकती है। (च) नियुक्ति की सारभूत शर्तें सकल्प में लिखी होनी चाहिएँ। (छ) नियुक्ति का विवरण एक पृथक् रजिस्टर में लिखा होना चाहिए (धारा ३५६)

किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके साथी को भारत में कम्पनी के निमित्त की गई वस्तुओं की खरीद के विषय में (खर्च के अलावा अन्य) कोई धन नहीं मिलना चाहिए। भारत से बाहर की गई खरीद के लिए भुगतान किया जा सकता है, यदि बिक्री के बारे में बताई गई शर्तों का पालन होना हो, और भुगतान की मजूरी देने वाला विशेष अंश एक बार में सिर्फ ३ साल के लिए मान्य रहता है (धारा ३५८)। यदि कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसका साथी किसी अन्य कम्पनी का प्रतिनिधि है और वह कम्पनी प्रबन्धित कम्पनी को वस्तुएँ या सेवा सभरित करती है तो ऐसी कम्पनी द्वारा प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके साथी को दिया गया कोई कमीशन अपने पास रखने के लिए प्रबन्धित कम्पनी के विशेष संकल्प द्वारा दी गई मंजूरी आवश्यक है। इस मामले में की गई संविदाओं के विवरण एक अलग रजिस्टर में लिखने होंगे (धारा ३५९)।

कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसका साथी प्रबन्धित कम्पनी के साथ किसी सम्पत्ति की खरीद बिक्री या सभरण के लिए या कोई सेवा करने के लिए या कम्पनी के किन्हीं अंशों या ऋण पत्रों को अभिगोपित करने के लिए कम्पनी के विशेष संकल्प द्वारा दी गई सम्मति से ही संविदा में प्रविष्ट हो सकता है। यदि इस विषय में कम्पनी ने प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके साथी से कोई धन लेना है, तो वह धन वस्तुओं के सभरण या सेवा के किये जाने की तिथि से, जैसी भी स्थिति हो, एक मास के भीतर चुका दिया जाना चाहिए। इस धारा द्वारा निर्दिष्ट सब संविदाओं के विवरण एक पृथक् रजिस्टर में लिखे जायेंगे। यहां उपवन्धित पाबन्दियां एक सौर वर्ष में ५००० रुपये तक की उन संविदाओं पर लागू नहीं होंगी जो उन सम्पत्ति या सेवा के बारे में हैं, जिनका कम्पनी या प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियमित रूप से व्यापार या कारबार करता है। विक्रय अभिकरणों क्रय अभिकरणों, आदि सम्बन्धी सब मौजूदा संविदाएं अधिक से अधिक पहली मार्च १९५८ तक खत्म हो जायगी (धाराएँ ३६० और ३६१)

यदि कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसका साथी इस अधिनियम के उपबन्धों के उल्लंघन में कोई पारिश्रमिक प्राप्त करता है तो यह माना जाएगा कि वह उसे कम्पनी की ओर से न्यास में धारण करता है (धारा ३६३) प्रबन्ध अभिकरण पारिश्रमिक का कोई अभिहस्तांकन, बन्धक आदि कम्पनी को बद्ध नहीं करेगा। (धारा ३६४)

कोई कम्पनी अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को निम्नलिखित अवस्थाओं में उसकी पदहानि के लिए कोई मुआवजा न दे सकेगी या देने के लिए दायी न होगी —

(क) जहां प्रबन्ध अभिकर्त्ता कम्पनी की पुनर्रचना या किसी अन्य निगमित निकाय या निगमित निकायों के साथ इसके समामेलन को देखते हुए अपने पद से त्याग पत्र दे देता है और पुनर्रचित कम्पनी या समामेलन के परिणामस्वरूप बनने वाले निगमित निकाय का प्रबन्ध अभिकर्त्ता सचिव और कोषाध्यक्ष, प्रबन्धक या अन्य अफसर नियुक्त हो जाता है।

(ख) जहाँ प्रबन्ध अभिकर्त्ता उपर्युक्त रीति से पुनर्रचना या समामेलन से इतर किसी कारण से अपने पद से त्यागपत्र दे देता है;

(ग) जहा कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपना पद केन्द्रीय सरकार की इस अधिसूचना के अनुपालन में कुछ उद्योगो या व्यवसायो में प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही रहेंगे या इस कारण कि उसकी अवधि १५ अगस्त १९६० को खत्म हो गई है या १५ वर्ष की अवधि पूरी हो गई है और प्रबन्ध अभिकर्त्ता पुन नियुक्त नही किया गया है, अपना पद खाली करता है।

(घ) जहा यह माना जाता है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने अपना पद खाली कर दिया है, क्योकि वह शोधाक्षम अभिनिर्णीत हो गया है या उसने शोधाक्षम अभिनिर्णीत किये जाने के लिए प्रार्थना की है, या यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता कोई फर्म है, तो वह फर्म विघटित कर दी गई है, या यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता कोई निगमित निकाय है तो इसके समापन पर, या क्योकि वह सिद्धदोष पाया गया है और ६ महीने से अन्यून की अवधि के लिए कारावास से दण्डित किया गया है,

(ङ) जहा यह माना जाता है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने अपना पद खाली कर दिया है, क्योकि प्रबन्धित कम्पनी अवसायित हो गई है (Has gone into Liquidation),

(च) जहा प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने पद से इस कारण निलम्बित है या निलम्बित माना जाता है, क्योकि उसकी सम्पत्ति के लिए धारक नियुक्त कर दिया गया है या जहा वह अपने पद से हटा दिया गया है या जहा उसने अपने पद का अन्त करने के लिए उकसाया है या अन्त कराने में हिस्सा लिया है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता से पद की हानि के लिए अधिकतम मुआवजा ३ वर्षों के पारिश्रमिक का औसत तय किया गया है पर शर्त यह है कि यदि कम्पनी इस पद की समाप्ति के एक वर्ष के भीतर अवसायित हो जाए तो कोई मुआवजा नही दिया जाएगा।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपनी शक्तियो का प्रयोग सचालको के अधीक्षण, नियन्त्रण और निदेशन के अधीन ही करेगा और खासकर उस सचालक मडल के विनिर्दिष्ट अनुमोदन के बिना अधिनियम में परिभाषित किसी प्रबन्धक की नियुक्ति नही करनी चाहिए, किसी रिश्तेदार का प्रबन्धित कम्पनी का अफसर या कर्मचारी नियुक्त न करना चाहिए, सचालक मडल द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक पारिश्रमिक पर कोई सदस्य या कर्मचारी नियुक्त न करना चाहिए, स्वय द्वारा या अपने साथियो द्वारा प्रबन्धित कम्पनी को देय राशि छोडनी न चाहिए, या उसके भुगतान का समय न बढाना चाहिए, प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके साथी द्वारा कम्पनी के विरुद्ध की गई किसी अभ्यर्थना (Claims) का अभिसधान (Compound) न करना चाहिए। यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पूजीगत आस्तिया खरीदने या पूजीगत आस्तिया बेचने की शक्ति का प्रयोग तब ही किया जा सकेगा जब पहले सचालक मडल ने कीमत की सीमाये निश्चित कर दी हो। यह सीमा निश्चित हुए बिना उस उस शक्ति का प्रयोग नही किया जा सकता।

कोई कम्पनी अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके साथी को कोई ऋण या वित्तीय सहायता नही दे सकती। प्रबन्धित कम्पनी और प्रबन्ध अभिकर्त्ता के बीच चालू खाते २०००० रुपये या सचालक मडल द्वारा निर्धारित किसी न्यूनतर राशि से अधिक न होने चाहिए। एक ही प्रबधक के अधीन कपनियों को ऋण या वित्तीय सहायता, उधार देनेवाली कपनी के अशधारियों की विशेष सकल्प द्वारा दीगई सम्मति के बिना, नहीं दी जासकती।

एक ही प्रबन्ध के अधीन अन्य कम्पनियों के अशो और ऋणपत्रों में विनियोग मडल द्वारा किया जा सकता है, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ द्वारा नहीं, और वह भी कुछ सीमाओ के भीतर ही किया जा सकता है, जिनका पहले सचालकों की शक्तियों के प्रसग में उल्लेख किया गया है। उन सीमाओं से परे ऐसे विनियोग अशधारियों की सीमा में पास किये गये साधारण सकल्प द्वारा ही और केन्द्रीय सरकार की सम्मति से भी किए जा सकते हैं। पर कोई सधारी कम्पनी अपनी सहायक कम्पनी में अपना धन लगा सकती है इसी प्रकार प्रबध अभिकर्त्ता अपने प्रबध के अधीन किसी कपनी में धन लगा सकता है यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके साथी को कोई ऋण दिया जाता है या ऊपर बताए गए उपबन्धो का उल्लघन करके कोई विनियोग किया जाता है तो वह प्रत्येक व्यक्ति जो ऋण देने या ऐसे में या उपबन्धो का उल्लघन करके विनियोग करने में एक पक्ष है ५००० रुपये तक जुर्माने से या ६ मास से अनधिक अवधि के साधारण कारावास से दण्डनीय होगा। इसके अलावा वे सब व्यक्ति जो ऋण के देने में या उल्लघन म पक्ष है, सयुक्त और पृथक्त उधार देने या विनियोग करने वाली कम्पनी के प्रति दायी होगे।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता को अपने नाम म किसी ऐसे कारबार म नहीं लगना चाहिए जो प्रबन्धित कम्पनी के कारबार जैसा या उसका सीधा प्रतिस्पर्धी है। वह ऐसा कारबार प्रबन्धित कम्पनी के विशेष सकल्प द्वारा दी गई सम्मति से ही कर सकता है। कोई प्रबन्धकर्त्ता निम्नलिखित अवस्थाओं म अपने नाम से कारबार करता हुआ माना जाएगा अर्थात् जहा कारबार करने वाली कम्पनी (क) कोई ऐसी फर्म है जिसम वह साझी है, (ख) कोई ऐसी निजी कम्पनी है, जिसकी कुल मतदान शक्ति का २०% या उससे अधिक उसके प्रबन्ध अभिकरण फर्म के साझियों के या प्रबन्ध अभिकरण के अफसरो के नियन्त्रण म है, (ग) कोई ऐसी कम्पनी है जिसकी कुल मतदान शक्ति का ७०% या उससे अधिक प्रबन्ध अभिकर्त्ता आदि द्वारा, जैसा कि ऊपर बताया गया है। नियन्त्रित है यदि कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता इस उपबन्ध का उल्लघन करके अपने नाम से कारबार करता है तो उससे प्राप्त की गई सब आय उसके पास कम्पनी की ओर से न्यास म धारित मानी जाएगी (धारा ३७५)

धारा ३७६ यह उपबन्ध करती है कि यदि कम्पनी के सीमानियम या अन्तर्नियमों में, या कम्पनी द्वारा या कम्पनी के सचालक मडल द्वारा वृहत् सभा में पास किये गये किसी सकल्प म या कम्पनी या इसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता के मध्य हुई किसी सविदा में, चाहे वह इस अधिनियम के पहले हुई हो या पीछे, कोई ऐसा उपबन्ध है, जो कम्पनी की पुनर्रचना का या किसी अन्य निगमित निकाय या निकायो से इसके निरुपाधि या

बिना इस शर्त के समामेलन का प्रतिषेध करता है कि कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता, प्रबन्ध संचालक, सचिवों और कोषाध्यक्षों या प्रबन्धक को पुनर्रचित कम्पनी या समामेलन के परिणामस्वरूप बनने वाले निकाय का सचिव और कोषाध्यक्ष प्रबन्ध संचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता या प्रबन्धक नियुक्त या पुनर्नियुक्त किया जाए तो वह उपबन्ध इस अधिनियम के लागू होने के बाद शून्य होगा।

धारा ३७७ द्वारा प्रबन्ध अभिकर्त्ता की शक्तियों और अधिकारों पर एक महत्त्वपूर्ण पाबन्दी लगा दी गई है। अब यह उपबन्ध किया गया है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रबन्धित कम्पनी के संचालक मण्डल में, जहां मण्डल के सदस्यों की संख्या ५ से अधिक है वहां एक संचालक, और जहां वह संख्या ५ से अधिक है वहां सिर्फ दो संचालक नियुक्त कर सकेगा। इस अधिनियम के आरम्भ के एक मास के भीतर सब मौजूदा प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का यह चुनाव कर लेना है कि जहां प्रबन्धित कम्पनी के संचालक मंडल में उनके मनोनीत व्यक्तियों की संख्या ऊपर बताई गई सीमाओं से अधिक है वहां उनमें से कौन से मनोनीत व्यक्ति बने रहें। यदि कोई चुनाव न किया गया तो यह माना जाएगा कि इस अधिनियम के आरम्भ से एक मास बीत जाने पर उसके सब मनोनीत व्यक्तियों ने अपना पद खाली कर दिया है।

उन दुष्कार्यों को रोकने के लिए जो कम से कम कुछ प्रबन्ध अभिकरण कोठियां करती ही थीं, बुराइयों को खत्म करने के लिए और भारतीय व्यवसाय के स्तर को ऊंचा करने के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की शक्तियों पर बहुत सी पाबन्दियां लगा दी गई हैं। इन पाबन्दियों को अपने-अपने सोचने के तरीके के अनुसार "उपयोगी न्याययुक्त और व्यावहारिक" अथवा "विचारहीन, सही आदर्शवादी और राजनैतिक सिद्धान्तों से लदी हुई" आदि अलग-अलग रूप में बताया गया है। निःसन्देह अधिनियम लम्बा और कुछ बोझिल हो गया है पर इन अतिविस्तृत उपबन्धों को रखने के कारण ऐतिहासिक हैं। एक कारण है बहुत से संचालकों द्वारा अपनी जिम्मेदारी का त्याग—इसका सीधा सा तरीका यह था कि प्रबंध अभिकर्त्ताओं को अन्तर्नियमों में तथा प्रबन्ध अभिकरण करारों में अत्यधिक शक्तियां दे दी जाती थीं, और संचालक इतने ही में सन्तुष्ट रहते हैं कि वे मण्डल की बैठकों में आए, वहां प्रबन्ध अधिकर्त्ता महाशय की हां में हां मिलाए मिलाए और उन लिफाफों को जेब में रखकर चल दें जिनमें बैठक की फीस के नोट रखे हुए हैं। दूसरा कारण अजीब सा है। यह भी सरकार द्वारा जिम्मेवारी का त्याग ही था अर्थात् वर्षों तक कम्पनी कानून का प्रशासन न करना। इसका कारण भी सीधा था—इसके लिए सरकारी व्यवस्था ही नहीं थी, कम्पनी अधिनियम एक केन्द्रीय अधिनियम था, प्रान्त इस अधिनियम के प्रशासन के लिए केन्द्र के अभिकर्त्ता थे। अधिकतर प्रान्तों ने इस समस्या का यह हल निकाला कि यह काम अपने उद्योगों के पंजीकर्त्ताओं (Registrars of Industries) आदि को उनके बाकी काम के साथ-साथ सौंप दिया। पंजीकर्ता कम्पनियों के पंजीकरण से आगे और किसी परेशानी में नहीं पड़ता था। वित्त और वाणिज्य मंत्रालय और स्वतन्त्रता से पहले केन्द्र के विभाग

कम्पनी कानून प्रवतन के बारे म शिकायत प्रान्तो को भेजते थे और प्रान्तो के सम्बन्धित सचिव अनावश्यक कागजो को फकने का आयोजन करते समय उन सबको लपेटकर पजीयन के महानिरीक्षक (Inspector general of Registration) को भज देते थे जिसे कानून क अधीन स्वय कायवाही करने की कोई विशप शक्ति न थी। कम्पनी अधिनियम १९५६ की प्रमुख विशेषता जसा कि पहले कहा गया है। इसके प्रशासन क लिए एक जीवित केन्द्रीय तन्त्र की स्थापना है। व पुरान पापी जो प्रशासन के अभाव की सुखदायक थवस्था का पता होने के कारण कम्पनी कानून का अपनी आरम्भिक जिम्मदारियो का पूरी नहीं करत थे और जो अशधारियो को अपन उगली के इशारे म चलात थ। अब मजे में वफिकरी म बैठ नहीं रह सकते। नय अधिनियम द्वारा अशधारियो का दिया गया यह सबस बडा सरक्षण है। श्री चितामणि देशमुख न यह कहा था कि भारत म स्टाक बाजार की तजी कम्पनी कानून सशोधन और मपिण्डन का सुस्थितता का उचित पैमाना है और कुछ लोगो द्वारा कुछ नय उपबन्धो के विरुद्ध मचाय जा रहे शार का जवाब है। शायद इसका सारा श्रय नय अधिनियम को देन म श्री देशमुख के साथ सहमत न हुआ जा सक और यह कहा जा सके कि इस तजी का लान म मुद्रा सम्बन्धी आर्थिक और अतस्थ (Intrinsic) कारको का भी हिस्सा है पर इसम कोई सन्देह नहीं है कि इसन स्टाक बाजार म बडा विश्वास पदा किया है और पूजी लगान वालो जो भारत में प्राय मध्य वग का आदमी होता है यह ठीक ही अनुभव करता है कि उसके सिर पर एक नई छाया हो गई है।

इस बात पर एक बार फिर जोर देना होगा कि नया अधिनियम नई प्रेरणा का नष्ट करने वाला होन के बजाय पूजी लगान वालो म विश्वास पैदा करके और इस प्रकार पूजी निर्माण के लिए सबसे बडा सहारा बनकर वैयक्तिक उद्योग क्षत्र क लिए एक वरदान सिद्ध होगा। क्योकि यह कम्पनियो पर मामोल्लाय अधिकार का रोकने के लिए और दुरुपयोग का दमन क लिए अभिप्रेत है इसलिए प्रबन्धक वग को इसका स्वागत करना चाहिए और यह सिद्ध कर देना चाहिए कि उन्हे नये कानून स भय की कोई बात नहीं। अमरिका को मुक्त उपक्रम का घर बनाया जाता है। भारत की तो बात ही क्या और किसी भी जगह स्वतन्त्र उपक्रम पर ऐसा नियम नहीं है जैसा अमरीका म और वयक्तिक उद्योग क्षत्र न इस नियमन को खुशी स स्वीकार कर लिया है और प्रसिद्ध राष्ट्रपति फ्रैन्कलिन रूजवल्ट की नयी योजना (New deal) के बाद के दस वर्षों म अपना काम अच्छी तरह चलाया है उस दृष्टि से आज भारत म जो कुछ हो रहा है वह एक चुनौती और एक अवसर है। कहीं ऐसा नहीं कि बाद म यह कहा जाए, कि वैयक्तिक उद्योग न इस मौके का मर्दानगी स लाभ नहीं उठाया।[1]

वित्त मत्री श्री चिन्तामणि देशमुख ने प्रबन्ध अभिकर्ताओ को और कुछ दिन जीने का मौका दिया है और उन्हे अपने ढंग सुधारने और अपनी कमियां दूर करने का

1 S Narayan Swamy in Capital Annual 1955 page 83

अवसर दिया है, क्योंकि वे यह अनुभव करते थे कि वैधानिक कार्य के समान ही हृदय परिवर्तन भी महत्वपूर्ण हैं। इससे भी आगे बढ़कर यह कहा जा सकता है कि कानूनी कार्यवाही रोग को कुछ देर के लिए हल्का ही कर सकती है। वह रोगी मनोवृत्तियों का इलाज नहीं।

धारा ८७–आई के अनुसार प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा नियुक्त किये गये संचालकों की संख्या कुल संचालकों की संख्या के तिहाई से अधिक नहीं होनी चाहिए। इस उपबन्ध के विपरीत कोई भी शक्ति यदि अन्तर्नियमों में है तो वह शून्य तथा प्रभावहीन है। इस संख्या को एक-तिहाई से घटाकर केवल एक कर देना चाहिए।

१९५१ के अधिनियम के द्वारा जोड़ी गयी धारा १५३–सी के उपबन्ध के अनुसार किसी भी सदस्य के आवेदनपत्र पर न्यायालय, अन्य आदेशों के अतिरिक्त, यह आदेश भी जारी कर सकता है कि चाहे जो भी आधार हों, प्रबन्ध अभिकर्ता, प्रबन्ध संचालक या अन्य किसी संचालक तथा कम्पनी के बीच की गयी संविदा की समाप्ति हो, यदि न्यायालय को यह विश्वास हो जाय कि कम्पनी कुव्यवस्था का शिकार हो रही है। नयी धारा १५३–डी के अनुसार अपनी संविदा न्यायालय के आदेश से समाप्त होने पर प्रबन्ध अभिकर्ता क्षतिपूर्ति का दावा नहीं कर सकता और न वह न्यायालय की आज्ञा के बिना किसी अन्य कम्पनी का प्रबन्ध अभिकर्ता नियुक्त किया जा सकता है। इस उपबन्ध का उल्लंघन करके यदि कोई प्रबन्ध अभिकर्ता बनता है तो वह अपने को कैद का, जिसकी अवधि एक साल से अधिक नहीं हो सकती, तथा अथवा अर्थदंड का, जो ५००० रु० से अधिक नहीं हो सकता, भागी बनाता है, धारा १८९ केन्द्रीय सरकार को उपर्युक्त विविध विषयों पर सरकार को परामर्श देने के लिए, आवश्यक शक्तियों से सम्पन्न एक आयोग नियुक्त करने का अधिकार देती है।

प्रबन्ध अभिकर्ताओं की गतिविधियों पर बहुतेरे नियंत्रण लगाये गये हैं, और उनका कारण यह है कि बुराइयों की जड़ प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली,या यों कहिए कि किसी अन्य प्रणाली, में नहीं है, वह तो उन व्यक्तियों में है जो उक्त प्रणाली को संचालित करते हैं। वे लोग, जो प्रबन्ध अभिकर्ताओं की जगह संचालक मंडल को प्रतिस्थापित करने के पक्ष में हैं इस बात पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते कि अंशधारियों तथा प्रबन्ध के बीच संबन्ध वहाँ ही महत्वपूर्ण नहीं होता जहाँ प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली है, बल्कि वहाँ भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है जहाँ संचालक मंडल कम्पनियों का नियंत्रण करते हैं और वैतनिक कार्यपाल (Executive) कम्पनियों के दैनिक कार्यों का सम्पादन करते हैं। दोनों प्रणालियों के अन्तर्गत ऐसे बहुत अधिक उदाहरण मिलते हैं जिनमें प्रबन्धक अंशधारियों के प्रति अपने विश्वासाधीन उत्तरदायित्व की ओर से प्रमादी या ईमान-रहित रहे या मार्ग से भटक गये रहे। बहुतेरे उदाहरण, जैसे हेट्री का मुकदमा, जिसने इस्पात उद्योग के एक हिस्से के वैज्ञानिकीकरण की योजना के विफल होने पर शृंखलाबद्ध जाली दस्तावेजों का रहस्योद्घाटन किया, अथवा वह मुकदमा जिसमें रॉयल मेल ग्रुप की कम्पनियाँ थीं, जिनके नेता लार्ड किल्सैंट थे तथा जो संचालन की

अलाभदायकता को छिपाने के लिए गुप्त संचिति में से लाभांश देती रही, अथवा मैक्-केसन एण्ड राबिन्स का मुकदमा, जिसमें गोदाम तथा स्टाक की सृष्टि आपराधिक मस्तिष्क की कल्पना मात्र थी, अथवा इवार क्रूगर का मुकदमा, जिसमें प्रतिभूति धारकों को सबल आस्तियों की जगह कौडी के मोल वाली आस्तियां दी गयी और उन्हें ठगा गया, अथवा बथलहम स्टील कम्पनी तथा अमेरिकन टोबेको कम्पनी के प्रबन्धों के विरुद्ध अतिशय पारिश्रमिक व क्षतिपूर्ति लेने पर हुए मुकदमे, यह संकेत करते हैं, हालांकि सिद्ध नहीं करते, कि मंडल द्वारा प्रशासन प्रबन्ध अभिकर्ताओं के प्रशासन से अच्छा हो, यह आवश्यक नहीं। सचालक मंडलों द्वारा होने वाले प्रशासन में कई खतरे सभाव्यत इसलिए विद्यमान हैं कि सचालकों को मंडल के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए शुल्क के रूप में जो प्रत्यक्ष तथा दृश्य धनरूप क्षतिपूर्ति दी जाती है, वह उत्तर-दायित्व, समय तथा प्रयत्न की दृष्टि से बहुत कम होती है। प्रबन्ध अभिकर्ताओं की जगह सचालक मंडल बना देने या 'सुधार' सबधी उपायों के लागू कर देने मात्र से बात नहीं बनेगी। यदि व्यष्टि, चाहे वह प्रबन्ध अभिकर्ता हो या सचालक, व्यवसाय सम्बन्धी अपनी नैतिकता को सामान्यत उन्नत कर ले तो सारी बिगडी बातें बन जाय। प्रबन्ध अभिकर्ताओं को अपनी प्रतिभा का विधान की दुर्बलताओं से लाभ उठाने या अपने दुष्कृत्यों को छिपाने के लिए उपयोग करने में सलग्न रहने के बजाय, यह स्मरण रखना चाहिए कि हेनरी फोर्ड ने आरम्भ में ही जीवन के मौलिक नियम "आप केवल पैसे के बारे में सोचते रहने से ही धनी नहीं हो जायगे" को सीख लिया था, जब वह एक समय दुनिया का सबसे धनी आदमी बन गया। उन्हें यह जानना चाहिए कि स्वार्थ के कारण किसी भी व्यक्ति या समाज को सिवाय घृणा के और कुछ हाथ नहीं आया है। सभी प्रकार की सेवाओं के लिये आवश्यक रूप में 'प्रतिष्ठा' तथा "लगन" के कुछ नियम होते हैं जिन्हें व्यक्ति को अपनी दृष्टि में रखना चाहिए तथा जिनका उसे अनिवार्यत पालन करना चाहिए और जिनके आगे उसे अपने बहुतेरे आवेगों (Impulses) को दबा लेना चाहिए। अत प्रबन्ध अभिकर्ताओं को चाहिए कि वे अपने को समयानुकूल बनावें, अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि लोकमत के लगातार बढ़ते हुए क्रोध के कारण, उनके सिर के ऊपर कच्चे धागे से लटकती हुई तलवार गिर पड़े और प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली सदा के लिए खतम हो जाए।

अध्याय ११

सचिवीय कार्य

कार्य (Secretarial Work)

कम्पनी का सचिव कम्पनी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यपाल (Executive) है जिसके उत्तरदायित्व तथा अवसर बहुत ही अधिक, तथा उसके दायित्वो के अनुरूप ही होते है। यदि सच कहा जाय तो वह कम्पनी निर्माण में सर्वप्रथम रगमच पर उपस्थित होता है। कई दृष्टियो म वह कम्पनी की भुजा और मस्तिष्क है, और उसे ईमानदार, विश्वासपात्र, आत्मनिर्भर, व्यवहारकुशल तथा बुद्धिमान होना चाहिए। उसको कम्पनी अधिनियम तथा सचिव के कार्यों का अच्छा ज्ञान अनिवार्य है। यद्यपि उसकी स्थिति सचालक मडल द्वारा अनुमत अधिकारो तथा विवेक पर निर्भर करती है, फिर भी कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत सारी कार्यवाहियो के विषय म वह मडल का मस्तिष्क है। अत, उसे सचालको के कर्त्तव्यो के बारे में ज्ञान होना चाहिए तथा उन्हे प्राविधिक विषयो पर सहायता देने में समर्थ होना चाहिए। वह एक वैतनिक अफसर है, तथा कम्पनी का भृत्य माना जाता है। वह अधिकारी-वर्ग के लोगो में से नही है, तथा मडल के निर्देशो व आदेशो को कार्यान्वित करना, उसके लिए अनिवार्य है। यदि अन्तर्नियमो में तद्-विषयक व्यवस्था हो तो वह कम्पनी का प्रबन्धक भी हो सकता है। वास्तविकता तो यह है कि इस देश में साधारणत अभिकर्त्ता या उसके एक या अधिक सदस्य सचिव के कार्यों का सम्पादन करते है। चूकि वह मडल का प्रवक्ता है तथा उसका प्रधान कर्त्तव्य है प्राप्त निर्देशो को कार्यान्वित करना, अत सचिव को सावधान रहना चाहिए कि दिये गये निर्देश नपेतुले शब्दो में तथा सुनिश्चित हो, निर्देश तथा तत्सम्बन्धी उल्लेख द्व्यर्थक न हो, तथा वे अवैधानिक न हो और न शक्ति से बाहर या छलपूर्ण हो। उसे मडल के निर्देशो का पालन करना है, न कि मडल के किसी सदस्य के। पर यदि उस सदस्य को मडल के प्रस्ताव द्वारा कार्यभार सौंपा गया है तो बात दूसरी है।

सचिव के अधिकार व शक्तिया—सचिवीय विभाग के प्रधान होने की हैसियत से उसे इस विभाग का अधीक्षण (Superintendence), निदेशन तथा नियन्त्रण करने का हक प्राप्त है। कम्पनी का भृत्य होने की हैसियत से, उसे, कम्पनी समापन के ठीक दो महीने पूर्व के वेतन की माग, जो १००० रुपये से अधिक नहीं हो सकती, करने का हक है, क्योंकि इस दृष्टि में वह कम्पनी का अधिमान्य उत्तमर्ण (Preferential Creditor) है। वह कम्पनी के उन लेखो व कार्य-

विवरणा पर हस्ताक्षर कर सकता है जिन पर कम्पनी का प्रमाणीकरण आवश्यक है। नयी गठित कम्पनी में जो अभी निगमित नहीं हुई उसकी नियुक्ति अल्पकालिक होती है और निगमन के पश्चात यदि कम्पनी इसके बावजूद कि उसकी नियुक्ति के लिए अन्तर्नियमों में उपबन्ध कर दिया गया है उसकी नियुक्ति नहीं करती है तो वह कम्पनी के नाम हरजाने का मुकदमा नहीं कर सकता। अत उसे सावधान होना चाहिए कि निगमन के शीघ्र पश्चात उसकी नियुक्ति मण्डल के प्रस्ताव द्वारा यथाविधि हो जाए। वह कम्पनी का अभिकर्ता नहीं है और वह कम्पनी को बाध्य नहीं कर सकता। उसे कम्पनी का प्रतिनिधान करने का व्यापक अधिकार प्राप्त नहीं है। सचालक मण्डल से अधिकृत हुए बिना उसे हस्तान्तरण को पंजीयित करने का अधिकार नहीं है और न वह ऋण वसूल हो सकता है।

कर्तव्य व दायित्व —कम्पनी के मुख्य कार्यपालक की हैसियत से सचिव सचालकों तथा कर्मचारी वर्ग के बीच की कड़ी है। कम्पनी के सचिव स्वयं (Confidential) भेद होने की हैसियत से उसकी जिम्मे कम्पनी की सार्व मुद्रा (Common Seal) रखना है तथा सचालकों की गोपनीय बातें भी उसके ज्ञान में रहती हैं। नैत्यिक अफसर (Routine officer) होने की हैसियत से उसके ये कर्तव्य हैं (१) मण्डल की मिटिंग का कार्य करना तथा कार्यवृत्त (Minute) के रूप में इसके तथा कम्पनी के कार्यों व निर्णयों को लिपिबद्ध करना (२) बैठकों के लिए सूचनाएं तथा कार्यसूचि (Agenda) निर्गमित करना ( ) कम्पनी की ओर से सूचनाएं (नोटिस) प्राप्त करना (४) पत्रों तथा अंशपत्रों के सभी निर्गमनों के दस्तखत करना (५) अंश प्रमाणपत्रों को सुपुर्दगी के लिए तैयार रखना (६) लाभांश तैयार तथा निर्गमित करना और चुकाना (७) सभी हस्तान्तरणों को प्रमाणित करना (८) अधिनियम के द्वारा आवश्यक ठहराये गये रूप में विभिन्न पंजियां (Registers) को रखना (९) कम्पनी की विभिन्न सार्वविधिक तथा अन्य पुस्तकों में सारे लेनदेनों को लिपिबद्ध करना (१०) कम्पनी के आवश्यक प्रविवरण (Returns) कम्पनी पंजीकर्ता के यहां भेजना।

इसमें सन्देह नहीं कि सचिव सचालक मण्डल का सेवक है लेकिन वह विधि का भी सेवक है क्योंकि कम्पनी का अफसर होने की हैसियत से वह कतिपय कार्यों तथा विलोपों (Omissions) के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी है। इस प्रकार कम्पनी अफसर होने की हैसियत से वह जानबूझकर अनाचरण अथवा लापरवाही के लिए दायी है। कम्पनी व्यवस्थाओं में कम्पनी के सार्वविधिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में विफल रहने के लिए वह सचालकों के साथ सहदायी है। अपने महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पादित करने के योग्य औपचारिक दायित्वों से अपने को बचाने के लिए सचिव के सार्वविधिक कार्यों तथा कम्पनी विधि से पूर्णतया अवगत होने के अतिरिक्त उसे कम्पनी के सीमानियमों तथा अन्तर्नियमों का भी पूरा पूरा जानकार होना चाहिए।

नया अधिनियम सचिवों के कन्धों पर और अधिक जिम्मेदारियां डालता है क्योंकि अब सचालकों और कम्पनी के बहुत सभा के अधिकतर कार्यों के लिए केन्द्रीय

पूरा नाम
पूरा पता
वयन
हस्ताक्षर

तिथि

बक का रसीद जो दकर अश प्रमाणपत्र लिया जाएगा।

संख्या

तिथि १९५ का श्री

स रुपय पाय जो उक्त कम्पना के

अशा पर प्रति अश रुपय की दर स जमा की गई राशि ह।

वास्ते बक लिमिटद

टिकट

आवेदनआवेदन पत्रा का अनुक्रम स एकत्रित कर दिया जाता है ताकि उनसे सम्बधा निर्देश म सरलता हो और तब आवेदन व आवटन पुस्तिका में उन्ह प्रविष्ट कर लिया जाता ह। इस पुस्तक का निरूप रूप इस प्रकार है —

आवेदन व आवटन पुस्तक

(Application & Allotment Book)

आवेदन सम्बन्धी प्रविष्टिया

आवदन पत्र क्रम सख्या	आवदन पत्र की तिथि	आवेदक का नाम	पता	जीविका (Occupation)	आवदित अशा की सख्या	आवदन के समय दत्तराशि	रोकड़ खाता पृष्ठ सख्या	विशेष विवरण (Remarks)
						रु०		

आवंटन सम्बन्धी प्रविष्टियाँ

आवंटन पत्र की संख्या	आवंटन की तिथि	आवंटित अंशों की संख्या	सूचक संख्या		आवेदन और आवंटन के समय शुल्क देय	आवंटन के समय शोध	भुगतान की तिथि	लौटायी गयी राशि	रोकड़ खाता पृष्ठ संख्या	सदस्यों की पंजी का पृष्ठ	अंश प्रमाणपत्रों की संख्या	अन्य विवरण
			से	तक								
					रु०	रु०		रु०				

अंशों के आवंटन के उपरान्त आवेदक के पास सूचना के लिए आवंटन पत्र भेजा जाता है जिस पर दो आने का टिकट लगा होता है।

आवंटन पत्र का प्रपत्र

....कम्पनी लिमिटेड

दिल्ली.....................

सेवा में,

....

....

....

प्रिय महाशय। महाशया,

मुझे आपको यह सूचित करने का निर्देश दिया गया है कि आपके आवदन को स्वीकार करते हुए संचालकों ने उक्त कम्पनी में प्रति अंश.................... रुपये की दर से ....अंश आपको आवंटित किये हैं,

यह आवदन तिथि वाली विवरण-पत्रिका म वर्णित शर्तों के आधार पर किया गया है।

मुझ आपस यह प्राथना करन का आदश भी मिला है कि आप कृपया तिथि को या इसस पहल कम्पनी के अधिकोषक नक लिमिटड क पास रुपय जमा कर दें जिसका हिसाब इस प्रकार है

आवदन क समय प्राप्य राशि जिसम आवदन क साथ जमा करायी गयी राशि भी शामिल है रु०

घटाओ जमा की गयी राशि रु०

प्राप्य शष

भुगतान क समय यह आवदन पत्र उपस्थित करन की कृपा करें।

आपका विश्वसनीय

सचिव

अशा क आवटन धन का रसीद जा दकर अश प्रमाण पत्र दिय जाएग।

म रुपय प्राप्त किय जा उक्त कम्पनी में प्रति शय रुपय का दर म अशा क आवदन पर प्राप्तव्य कुल राशि है।

बास्त बक लिमिटड

टिकट

जिन आवदका का अश नहीं आवटित किय जात उनक नाम खेद-पत्र भजा जाता है जिसका रूप निम्नलिखित है —

खेद पत्र

कम्पनी लिमिटड

दिल्ली

प्रिय महाशय। महाशया

निदेशानुसार म आपका सूचित करता हू कि सचालका का खेद है कि व आपके द्वारा तिथि १९५ वाल आवदन पत्र में आवदित काई भी अश आपक नाम आवटित करन म समर्थ नहीं हो सक। रुपय का चक इस पत्र क साथ भजा जा रहा है जो आपक आवदन पत्र के साथ आयी राशि का वापिसी है।

आपका विश्वसनीय,

साथ म चैक सचिव

आवटन तिथि के एक महीने के भीतर नियत प्रपत्र (Prescribed Form) में आवंटन का विवरण पंजीकता के पास अवश्य भेज देना चाहिए।

जावटनों का विवरण
कम्पनी अधिनियम, १९५६
(देखिए धारा ७५)

कम्पनी का नाम . लिमिटेड।

निम्नलिखित तिथि। तिथियों में अंशों के आवंटनों का विवरण जो धारा ७५ के अनुसार पंजीकता के यहां भेजा गया।

.... द्वारा नस्तीकरण (filing) के लिए प्रस्तुत किया गया।

१ नकद शोध्य आवंटित

क्रम संख्या	अंकित राशि Nominal Amount	प्रत्येक आवंटित अंश पर देय तथा मान्य राशि (जिसमें आवेदन आवंटित राशि भी सम्मिलित है)	चुकता राशि (अंशों पर प्रत्याजिया तथा अंतिम याचना छोड़कर) प्रति अंश	योग

२. नकद से इतर प्रतिफल के बदले में आवंटित अंश

संख्या................ ..

अंकित राशि .... रुपये

प्रति अंश वह राशि जिसे चुकता माना जाता है .. .. रुपये।

जिस प्रतिफल के बदले में अंश आवंटित किये गये हैं, वह यह है —

प्राप्त सम्पत्ति तथा आस्तियां.. .. .. रुपये।

(वर्णन)

ख्याति रुपये

सेवाएं (सेवाओं का स्वरूप लिखिए) ... .रुपये।

अन्य चीजें (उनका उल्लेख करना चाहिए) ....रुपये।

१. बट्टे (Discount) पर निर्गमित किये गये अंशों की संख्या (देखिए धारा ७९ ए)

इस प्रकार निर्गमित किये गये अंशों की अंकित राशि .. ..

प्रति अंश बट्टे की राशि ....

प्रति अंश चुकता राशि .. ..

सदस्य पजी (Registeı of Members)

अशो का आवटन काय समाप्त हो जान पर सदस्य पजी तैयार की जाती है जिसम निम्नलिखित सूचनाओ का होना अनिवार्य है सदस्यो क पूरे नाम, पत और जीविका का पूरा विवरण, अशो की राशि व सख्या तथा उनकी प्राप्ति तिथि उन पर चुकता राशि तथा सदस्यो द्वारा सदस्यता-त्याग की तिथि । जब प्रत्यक सदस्य के लिए एक अलग पृष्ठ प्रयुक्त किया जाता है तब पजी का निम्नाकित प्रपत्र व्यवहृत होगा

सदस्य पजी प्रपत्र (Form)

नाम

पता

जीविका

धारित अ शो के लिए									हस्तातरित अ शों के लिए						
तिथि	ऋण का विवरण	अशो की सख्या	सूचक सख्या		प्रतिअश देय राशि	कुल देय राशि	भुगतान तिथि	कुल चुकता राशि	तिथि	किसको हस्तातरित किया गया	अशो की सख्या	सूचक सख्या		हस्तान्तरिती के लेखे की पृष्ठ सख्या	कुल हस्तान्तरित राशि
			से	तक								से	तक		
					रु०	रु०		रु०							रु०

आवंटितियों (Allotees) के नाम, पते तथा जीविकाएं

आवेदन की तिथि	पूरा नाम	पता	जीविका	आवंटित अंशों की संख्या	
				अधिमान	साधारण

तिथि........... — १९०

हस्ताक्षर ....
पदनाम ....
(यहां यह बताओ कि संचालक, प्रबन्धक, प्रबन्ध अभिकर्ता या सचिव में से कौन है)

अंश प्रमाणपत्र (Share Certificate)

अंशों के आवंटन तथा कम्पनी के सदस्य के रूप में आवंटितियों के पंजीयन के उपरान्त, उक्त आवंटन के तीन महीने के भीतर एक अंश प्रमाणपत्र तैयार किया जाता है जिसमें अंशधारी का नाम, पता, तथा जीविका एवं अंशों की संख्या तथा उनकी सूचक संख्या व चुकता राशि दी रहती है। अंश प्रमाण पत्र की सुपुर्दगी के लिये प्रस्तुत रखा जाता है। इस प्रमाण पत्र में कम्पनी की सार्वमुद्रा का होना तथा इसका मुद्रांकित होना अनिवार्य है। इसमें एक या एक से अधिक संचालकों का हस्ताक्षर भी होना अनिवार्य है। अंश प्रमाणपत्र कम्पनी द्वारा इस आशय की घोषणा है कि वह व्यक्ति, जिसके नाम यह निर्गमित किया जाता है, कम्पनी का अंशधारी है और वह इच्छित रीति से अंश का उपयोग कर सकता है। अंशधारी के पास निम्नलिखित आशय की एक सूचना प्रेषित की जाती है ताकि वह उसकी सुपुर्दगी लेने की व्यवस्था कर सके।

प्रमाणपत्र के तैयार हो जाने की सूचना

———————कम्पनी लिमिटेड

सेवा में तिथि...............

....
....
....

प्रिय महाशय। महाशया,

सविनय सूचित किया जाता है कि कम्पनी के अधिमान। साधारण अंशों का प्रमाणपत्र अब तैयार है तथा वह कारबार के घंटों में आपको या आप द्वारा यथाविधि प्राधिकृत अभिकर्ता को, रसीद तथा आवंटन पत्र पाने के पश्चात् सुपुर्द कर दिया जाएगा। यदि आप चाहें तथा मुझे सूचित करें और अधिकार दें तो मुझे आपके पते पर डाक

द्वारा प्रमाण पत्र भेज देने में खुशी होगी, लेकिन जोखिम आपका होगा।

आपका विश्वसनीय

सचिव

प्रमाण पत्र हमेशा जिल्द में पुस्तक के रूप में बंधे होते हैं जिसमें छिद्ररेखा पृष्ठ को दो भागों में विभाजित करती है। किसी सदस्य को देने के लिए छिद्र रेखा पर उसे प्रतिपर्ण (Counterfoil) से अलग कर लिया जाता है। विभिन्न कोटि के अंशों के लिए विभिन्न रंग व्यवहृत किये जाते हैं।

प्रमाणपत्र का प्रारूप

प्रतिपर्ण (Counterfoil)

अंश प्रमाणपत्र

नम्बर संख्या ________
________ अंशों के लिए
सूचक नम्बर ____ से ____
तक ________ को निर्गमित
जो ________ के निवासी हैं
तिथि ________ १९५
सदस्य पंजी में प्रविष्ट
पृष्ठ संख्या
उक्त प्रमाणपत्र तिथि ________
को पाया।

सदस्य

अंश प्रमाणपत्र

नम्बर संख्या ________

________ लिमिटेड

यह प्रमाणित किया जाता है कि श्री ____ जो ________ के निवासी हैं उक्त नाम वाली कम्पनी के सीमानियम तथा अंतर्नियमों के मातहत प्रति अंश ________ रुपये के पूर्णतः प्रदत्त ________ अंशों के पंजीयित अंशधारी हैं जिनकी नम्बर संख्या ________ से ________ तक (दोनों अंक मिलाकर) है।

उक्त कम्पनी की सार्वमुद्रा के अधीन अर्पित। तिथि ________ १९५

सार्वमुद्रा

टिकट

____
________ } संचालक

________ सचिव

द्रष्टव्य: यहां अंकित किसी भी अंश का हस्तान्तर यह प्रमाणपत्र प्रस्तुत हुए बिना नहीं किया जाएगा।

प्रायः ऐसा होता है कि आवेदनकर्ता अपनी रसीद तथा अंशधारी अपने प्रमाणपत्र खो देते हैं। मौलिक या प्रतिलिपि निर्गमित करने के पूर्व संचालक चाहते हैं कि सदस्य एक तारण पत्र (Letter of Indemnity) पर हस्ताक्षर करें जिसके द्वारा

वह (सदस्य) इस निर्गमन से हो सकने वाली कम्पनी की क्षति की पूर्ति करने का दायित्व अपने ऊपर लेता है। अक्सर किसी अच्छी पार्टी द्वारा लिखित प्रत्याभूति पत्र (Letter of Guarantee) की आवश्यकता होती है। तारण पत्र को मुद्रांकित होना आवश्यक होता है और कम्पनी इस क्षति का विज्ञापन करती है, विज्ञापन व्यय अशधारी या आवेदक को देना पड़ता है।

तारण पत्र का प्ररूप

लिमिटेड

सेवा में,
सचिव,

प्रिय महाशय,

चूंकि उक्त कम्पनी में -- से -- -- -- तक के अंशों के लिए (दोनों संख्याएं मिलाकर) मेरा आवेदन पत्र। अंश प्रमाण पत्र जिसकी क्रमसंख्या है खो गया या नष्ट हो गया, अतः मैं आप द्वारा उक्त अंश के लिए प्रमाण पत्र दिये जाने के प्रतिफल के रूप में कम्पनी द्वारा उठाई जाने वाली क्षति या नुकसान की पूर्ति करने का दायित्व लेता हूं और यह घोषित करता हूं कि मैंने आनुपूर्वक आलोच्य आवेदन पत्र। अंशप्रमाण पत्र को अपने से अलग नहीं किया है और भविष्य में यदि वह मेरे अधिकार में आ गया तो उसे आपको सुपुर्द कर देने का दायित्व लेता हूं।

आपका विश्वासपात्र,

साक्षी -- -- -- हस्ताक्षर -- --

पता --
जीविका -- -- --

प्रतिभू (Surety)

सेवा में,
सचालक,
-- -- -- -- कम्पनी लिमिटेड,

आपके द्वारा -- -- -- -- अंशों के लिये नये प्रमाणपत्र निर्गमित किये जाने के प्रतिफल स्वरूप मैं आपको इस निर्गमन के कारण कम्पनी को होने वाली क्षति या नुकसान से बचाने का दायित्व अपने ऊपर लेता हूं।

साक्षी हस्ताक्षर ---

-- -- -- --

-- -- -- --

अंश अधिपत्र (Share warrants)

लोक सीमित कम्पनी के अन्तर्नियमों में पूर्णतः शोधित अंशों को अंश अधिपत्रों के रूप में जो वाहक को देय हों, परिवर्तित करने की व्यवस्था प्रायः रहती है।

इस प्रकार का अधिपत्र परक्राम्य सलेख (Negotiable Instrument) होता है तथा स्वामित्व का हस्तान्तरण सुपुर्दगी मात्र से होता है। यह बैंक नोट की तरह होता है। अंश अधिपत्र निर्गमित किए जाने पर जो केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से ही निर्गमित किया जा सकता है सदस्य का नाम सदस्य पंजी से काट दिया जाता है क्योंकि अंश अधिपत्र के धारक की स्थिति सदस्य की ही होती है चाहे उसका नाम पंजी में दर्ज हो या नहीं। चूँकि कम्पनी को तो यह मालूम रहता नहीं कि अंशधारी कौन है या कौन लाभांश का अधिकारी है अतः प्रत्येक अंशअधिपत्र के साथ एक कूपन जुड़ा होता है जिस पर लाभांश भुगतान की तिथि अंकित होती है तथा लाभांश उस व्यक्ति को मिलेगा जो अधिपत्र उपस्थित करेगा। निर्गमित किये जाने के पूर्व अंश अधिपत्र मुद्रांकित हस्तान्तरित तथा पूँजी में प्रविष्ट होना चाहिए। नीचे एक अंश अधिपत्र का नमूना दिया गया है।

वाहक शोध्य अंशअधिपत्र का रूप

प्रतिपर्ण (Counterfoil)	———— कम्पनी लिमिटेड।
अंश अधिपत्र	
क्रम संख्या	अंश अधिपत्र क्रमसंख्या रुपये के अंश
रुपये	
के अंश संख्या से	यह प्रमाणित किया जाता है कि उक्त कम्पनी में कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियमों तथा उस पर पृष्ठा
तक (मिलाकर)	
प्रमाणपत्र क्रम संख्या	कित शर्तों के अनुसार और अधीन हो इस अधिपत्र
के विनिमय में	का वाहक प्रति अंश की दर पर से तक
को	संख्यांकित पूर्ण प्रदत्त अंशों का अधिकारी है।
निर्गमित	कम्पनी की सामुद्रा के अधीन १९५ के
हस्ताक्षर	वें दिवस अर्पित।
पंजी	
तिथि	सचिव संचालक

याचना (Calls)

साधारणतया अंश प्रदत्त अंश निर्गमित किये जाते हैं जिनमें यह व्यवस्था होती है कि प्रासपेक्टस में निर्दिष्ट तथा अन्तर्नियमों में लिखित शर्तों के अनुसार संचालक शेष राशि याचित कर सकते हैं। संचालक के प्रस्ताव द्वारा तथा अन्तर्नियमों में निर्धारित विधि के अनुसार तथा व्यवसाय आरम्भ करने का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के उपरान्त याचना की जाती है। याचना के समय यदि अन्तर्नियमों में उल्लिखित सारी औपचारिकताओं (Formalities) की पूर्ति नहीं कर दी गयी है तो वह याचना अमान्य (Invalid) होगी। याचना प्रस्ताव इन शब्दों में लिखा जायगा

संकल्पित हुआ कि अंश प्रदत्त क्रमसंख्या

से तक के अंशों पर प्रति अंश रुपये

याचित किये जायें जो कम्पनी के अधिकोषक वर्ष लिमिटेड को -

.... दिन, १९५, को शोध्य होंगे और कि पंजीयित अंशधारियों को याचना सूचनाएं १९५ के ....वें दिवस या इससे पहले निर्गमित कर दी जाए।'

याचना की जाने के बाद अंश का हस्तान्तरण उस समय तक स्वीकृत नहीं होना चाहिए जब तक याचित राशि चुकता न हो जाए। याचना तिथि से ३ वर्ष तक याचना राशि की वसूली हो सकती है। इसके बाद सचिव याचना सूचनाएं प्रेषित करेगा जो प्रायः प्रतिपर्णों के साथ मुद्रित और जिल्दों में बंधी होती हैं जिनमें क्रम संख्या होती है। याचना प्रपत्र नीचे दिया जाता है :

क्रम ____________

____________ लिमिटेड

याचना की सूचना

अंशों की संख्या ____________

याचना तिथि ____________

राशि प्रति अंश ____________

कुल राशि ____________

कब प्राप्य ____________

सदस्य का नाम ____________

पता ____________

सूचनाएं डाक में डालने की

• तिथि ____________

कहां डाक में डाली गयी

याचना की सूचना

इस प्रपत्र को सम्पूर्णत बैंकर या सचिव के पास शोध्य राशि के साथ, भेज देना चाहिए।

प्रति अंश ______ रुपये की याचना सूचना

प्रति अंश को पूर्ण प्रदत्त करने के लिये प्रति अंश ____________ रुपये

अंशों की संख्या ____________

____________ ____________ कम्पनी लिमिटेड।

प्रिय महाशय,

मुझे यह सूचित करना है कम्पनी के संचालकों के अधिवेशन में जो ____________ को हुआ था, यह संकल्पित हुआ कि कम्पनी के सदस्यों से उनके द्वारा लिये गये अंशों की अप्रदत्त राशि में से प्रति अंश ____________ रुपये की मांग की जाय, तथा मुझे आपसे निवेदन करना है कि आप उक्त तिथि को या पहले उक्त राशि (यह राशि कम्पनी की पुस्तक में आपके नाम पंजीयित अंशों के सम्बन्ध में है)

____________ बैंक लिमिटेड में जमा करा देंगे।

सेवा में,

____

____

____

आपका विश्वासपात्र,

सचिव

टिकट

प्राप्त ____________ रुपये जो ____________ कम्पनी लिमिटेड में प्रति अंश ____________ रुपये की दर से ____________ अंशों की याचना राशि है।

____________ रुपये हस्ताक्षर ____________

प्रत्यक याचना के लिए एक याचना पुस्तक या याचना सूची तैयार की जाती है। यह सूची (आग देखिए) सदस्य पजी से तैयार की जाती है।

याचना सची

• अंश पर प्रति अश • •• • पय की दर से की गयी पहली याचना जो • • को का गयी और ••••• को देय है।

क्रमांक	नाम	पता	व्यवसाय	अशो की सख्या	पृष्ठ	देय राशि	भुगतान तिथि	चुकता राशि	अन्य कोई बात
						रुपये		रुपये	

याचना एक प्रकार का प्रन्यास है तथा केवल कम्पनी के लाभ के लिए की जानी चाहिए सचालकों के निजी लाभ के लिए नहीं। याचना उस वग के सब अशधारियों पर लागू होनी चाहिए।

अशों का अपहरण (Forfeiture)

कम्पनी अधिनियम अशो की अपहृति के सम्बन्ध म कोई व्यवस्था नहीं करता। लेकिन इस प्रकार की व्यवस्था प्राय अन्तर्नियमो म होती है। यदि अन्तर्नियमो म तत्सम्बन्धी अधिकार सुरक्षित कर लिया गया है तो याचना राशि के अशोधन पर अशो का अपहरण अतर्नियमो म उल्लिखित सूचना कार्यविधि, (Procedure) और रीति विषयक विनियमो क अनुसार ही होना चाहिए। इस सम्बन्ध म जरा सी भी अनियमितता या अशुद्धता होने पर अपहरण शून्य (Void) हो जाएगा। सामान्य विधि यह है कि अशधारी को इस आशय की एक सूचना दी जाती है कि चकि निर्धारित तिथि तक याचना राशि का शोधन करने म वह असफल रहा है और यदि वह एक निश्चित तिथि (१४ दिनो स कम नहीं) तक उक्त राशि का भुगतान नहीं करेगा तो सचालक उक्त याचना म सम्बद्ध अशो का अपहरण कर लगे। यदि इतने पर भी अशधारी याचना राशि का भुगतान करने म असफल रहा तो सचालको के द्वारा बैठक म उस आशय के सकल्प के जरिये अश अपहृत किया जा सकता है। अशापहरण के पश्चात सदस्य पजी म सदस्य के खाते म एक प्रविष्टि की जाती है जिसम यह उल्लेख होता है कि मडल के सकल्प के अधीन अश अपहृत किय गये हैं। सकल्प की तिथि तथा क्रमसख्या भी दी जाती है। उस सदस्य का खाता बन्द कर दिया जाता है तथा अश अपहृत अश खाते म स्थानान्तरित कर दिये जाते हैं।

अशों का हस्तातर—एक कम्पनी के प्रत्यक अशधारी को वस्तुओं की तरह अश हस्तान्तरित करने का अधिकार है, पर अशो का हस्तातर अन्तर्नियमो म

दिये गये प्रतिबन्धों तथा रीति से और उनके मातहत ही हो सकता है। यदि अन्तर्नियम हस्तान्तर पर प्रतिबन्ध लगाते हों तो संचालकों के लिये यह अनिवार्य है कि वे समर्पित किये गये सभी हस्तांतरों को पंजीबद्ध करें, चाहे वे हस्तांतर किसी भिक्षमंगे या दिवालिया के ही पक्ष में क्यों न हों, शर्त केवल यह है कि वह स्वाधीन (Svi juris) हो। कम्पनी अधिनियम के अनुसार हस्तान्तर के लिए आवेदन-पत्र हस्तांतरकर्ता (Transferor) या हस्तांतर ग्रहीता (Transferee) द्वारा भेजा जाना चाहिए। यदि आवेदन पत्र हस्तान्तरकर्ता द्वारा प्रेषित किया गया है और अंशतः प्रदत्त अंशों की बाबत है तो कम्पनी के लिए हस्तान्तरग्रहीता को सूचित करना अनिवार्य है। सूचना तिथि से दो सप्ताह के अन्दर यदि हस्तान्तरग्रहीता आपत्ति नहीं करता है तब उसका नाम सदस्य पंजी में प्रविष्ट किया जाना चाहिए। यदि आवेदन पूर्ण प्रदत्त अंशों के सम्बन्ध में हस्तान्तरकर्ता या हस्तान्तर-ग्रहीता द्वारा किया जाता है तो सूचना की आवश्यकता नहीं है। यदि कम्पनी अन्तर्नियमों में सुरक्षित अधिकारों के आधार पर हस्तान्तर अस्वीकार करती है तो उसे अनिवार्यतः हस्तान्तर-पत्र की प्राप्ति के दो महीने के अन्दर हस्तान्तरकर्ता तथा हस्तान्तरग्रहीता को अस्वीकृति की सूचना भेजनी चाहिए। यह सूचना न भेजने पर, कम्पनी तथा प्रत्येक अफसर ५० रुपये प्रति दिन की दर से अर्थदण्ड का भागी होगा।

हस्तांतर का पंजीयन तब अवैध होता है जब उससे पहले कम्पनी को, विधिवत् मुद्रांकित और हस्तांतरकर्ता तथा हस्तांतर-ग्रहीता द्वारा निष्पादित हस्तांतर विलेख (Transfer deed) नामक लेख (Script) न सौंपा गया हो। यदि हस्तांतर की लिखत खो गयी है तो हस्तांतरग्रहीता द्वारा लिखित आवेदन पत्र, जिसमें आवश्यक टिकट लगा हो, प्राप्त होने पर संचालक हस्तांतर को कम्पनी के धारण सम्बन्धी उचित शर्तों पर पंजीयित कर सकते हैं।

नीचे हस्तांतर विलेख का एक नमूना दिया जाता है :

हस्तांतर विलेख (Transfer Deed)

मैं ....,जो...को निवासी हूं ....,के निवासी.......................................द्वारा (जिसे आगे उक्त हस्तांतरग्रहीता कहा गया है) मुझे अदा किये गये.................. ....रुपये के बदले में, इस द्वारा उक्त हस्तांतरग्रहीता को........................... ....कं० लिमिटेड नामक उपक्रम के.. में...............................तक सख्यांकित अंश, हस्तांतरित करता हूं जिन्हें उक्त हस्तांतरग्रहीता, उसके निष्पादक, प्रशासक और अभिहस्तांकिती, उन्हीं शर्तों पर धारण करेंगे जिन पर इनके निष्पादन के समय मैं इन्हें धारण करता था, और मैं, उक्त हस्तांतरग्रहीता, इस द्वारा उक्त अंश उपर्युक्त शर्तों पर लेना स्वीकार करता हूं।

साक्षी के रूप में हमने १९५..... के...के ....दिन, हस्ताक्षर किये।

साक्षी.................................... ... हस्तांतरकर्ता................................
साक्षी................................ हस्तांतरग्रहीता..........

हस्तान्तर को प्रमाणपत्रित करना (Certification of Transfer)—जब कोई अंशधारी अंश प्रमाणपत्र में उल्लिखित अंशों का एक हिस्सा ही बेचता है तब वह हस्तान्तर-विलेख के साथ हस्तान्तर-ग्रहीता को अंश प्रमाण-पत्र नहीं सुपुर्द करता, बल्कि वह प्रमाण पत्र और हस्तान्तर विलेख कम्पनी के अफसर, प्रायः सचिव, के सामने प्रस्तुत करता है जो हस्तान्तर विलेख के हाशिये में "Certificate Lodged" या'प्रमाण-पत्र प्रस्तुत' लिखकर या मुद्रित करके हस्तान्तर को "प्रमाणपत्रित" करता है तथा जितने अंशों के लिए यह प्रस्तुत किया गया है उनकी संख्या का उल्लेख करता है। प्रमाणित हस्तांतर विक्रेता को, एक शेष पत्रक (Balance Ticket) के साथ, लौटा दिया जाता है। इनके प्रपत्र नीचे दिये जाते हैं :—

क्रमांक......................

प्रमाण पत्र संख्या......................इसमें उल्लिखित अंशों के लिये आज ....१९५ के......................................के...................... वें दिन कम्पनी को प्रस्तुत किया गया।

........................द्वारा पारित वास्ते...........कं० लिमिटेड

शेष पत्रक का प्रपत्र सचिव

·········· कम्पनी लिमिटेड	··············· कम्पनी लिमिटेड।
शेष पत्रक ············	शेषपत्रक
क्रमांक ········	क्रमांक ·········
··············१९५	···········१९५
प्रमाण पत्र संख्या ········	यह प्रमाणित किया जाता है कि ········
अंशों की संख्या ·········	कम्पनी लिमिटेड में ··········· अंशों का,
योग ···········	जिसकी क्रमसंख्या ····· से ······· तक
प्रमाणित ············	(दोनों संख्याएं मिला कर) है, शेष पत्रक ····
शेष ··············	के नाम में कम्पनी की पुस्तकों में प्रविष्ट है।
शेष पत्रक पर सूचक संख्याएं ···	शेष प्रमाण-पत्र तिथि ······१९५ को प्रस्तुत
······ से ··· तक ····	होगा।
··········· को निर्गमित	द्रष्टव्य—यह पत्रक कम्पनी के पास जमा किये
शेष प्रमाणपत्र	बिना न तो शेष प्रमाण-पत्र निर्गमित किया
तैयार ·········	जायगा और न हस्तांतर प्रमाणित किया जायगा।

उचित समय पर कम्पनी हस्तान्तरग्रहीता को बेचे गये अंशों के धारक के रूप में उसे पंजीयित कर लेगी। तब कम्पनी पुराने अंश प्रमाणपत्र को रद्द कर देगी और उसकी जगह दो प्रमाण-पत्र तैयार करेगी, एक बेचे गये अंशों के लिये, जो क्रेता को

हस्तान्तर पंजी

हस्तांतर क्रमांक	हस्तांतर विलेख की तिथि	पंजीयन की तिथि	हस्तान्तरकर्ता का				हस्तान्तरित अंश			पुराने प्रमाण-पत्र की क्रमसंख्या	प्रतिफल	हस्तान्तरग्रहीता का				नव प्रमाण-पत्र की क्रम संख्या	विवरण
			नाम	पता	जीविका	सदस्य पंजी के पृ० सं०	संख्या	विशिष्ट संख्या				नाम	पता	जीविका	सदस्य पंजी में पृ० सं०		
								से	तक								
											रुपये						

हस्तान्तर प्रमाणीकरण पुस्तक

प्रमाण-पत्र क्रमांक	प्रमाण-पत्र की तिथि	रद्द किये जाने वाले प्रमाण-पत्रों का क्रमांक	जिन अंशों के हस्तांतर का प्रमाण-पत्र है उनकी संख्या	हस्तांतर पंजीयन की तिथि	हस्तांतरकर्ता का नाम	हस्तांतरग्रहीता का नाम	विवरण

दिया जायगा और दूसरा न बेचे गये अशो के लिए जो विक्रेता को दे दिया जायगा। कम्पनी के लिये एक हस्तातर पजी (Transfer Register) और एक प्रमाणीकरण पंजी (Certification Register) रखना वाछनीय है, और विशेषकर तब जब अश बहुधा हस्तातरित होते हैं। हस्तातर पजी तथा हस्तातर प्रमाणीकरण पजी म पृष्ठ २७७ पर अंकित विधि से लकीरें खींची जा सकती हैं।

निरक हस्तान्तर (Blank Transfer)—जब कोई अशधारी हस्तान्तर ग्रहीता का नाम तथा निष्पादन की तिथि लिखे बिना हस्तान्तर विलेख पर अपना हस्ताक्षर कर देता है, तथा अश प्रमाण पत्र सहित इसे हस्तान्तरग्रहीता के सुपुर्द कर देता है और हस्तान्तर ग्रहीता इन अशो का व्यवहार करने में समर्थ हो जाता है, तब यह कहा जाता है कि उसने निरक हस्तान्तर किया है। साधारणत अश का निरक हस्तान्तर उस स्थिति में होता है, जब कोई अशधारी इसकी जमानत पर रुपये उधार लेता है। निरक हस्तान्तर का आशय यह है कि यदि निर्धारित अवधि म ब्याज सहित ऋण का भुगतान न हो तब रुपये उधार देने वाला उसमे हस्तान्तरग्रहीता के स्थान में अपना नाम भर दे तथा हस्तान्तर को पजीयित करा ले या उचित सूचना के बाद अश को बेच डाले। निरक हस्तान्तर का प्रभाव यह होता है कि हस्तान्तरग्रहीता को अशो का व्यवहार करने का पूरा अधिकार हो जाता है, और यदि हस्तान्तरकर्त्ता पजीयन का गमन के लिए कुछ कार्यवाही करता है तो वह अशो का मूल्य गिर जाने पर क्षतिपूर्ति का दायी होता है।

जाली हस्तान्तर (Forged Transfer)—यदि हस्तान्तर जाली है तथा कम्पनी ऐसे हस्तान्तर के लिए प्रमाणपत्र निर्गमित करती है तो ऐसी स्थिति में अशों के वास्तविक स्वामी को यह हक प्राप्त है कि उसका नाम सदस्य पजी में पुन लिखा जाय, चाहे हस्तान्तर की सूचना उसे दी भी जा चुकी हो। ऐसा इसलिए होता है कि जाली हस्तान्तर पजीयित अशधारी की दृष्टि से शुरू से ही शून्य है (Void) है। यद्यपि हस्तान्तरग्रहीता का नाम सदस्य पजी में पुन प्रविष्ट कर कम्पनी क्षतिपूर्ति करने की दायी नहीं होती, फिर भी यदि कम्पनी प्रमाणपत्र निर्गमित करती है तथा कोई व्यक्ति इस पर विश्वास करके क्षति उठाता है तो कम्पनी क्षतिपूर्ति के लिए दायी होगी। कम्पनी सचिव को पजीयन की पूर्ति के पहले यह सावधानी से देख लेना चाहिए कि हस्तान्तर पर किया गया हस्ताक्षर असली है।

ऋण-पत्र (Debentures)

वह कम्पनी जिसे उधार लेने की अभिव्यक्त (Express) या ध्वनित (Implied) शक्ति है, अपनी शक्ति का किसी भी सीमा तक उपयोग कर सकती है शर्त केवल यह है कि यह शक्ति का उपयोग पार्षद सीमानियम या अन्तर्नियमों मे निर्धारित सीमा के अन्तर्गत ही हो। उधार लेने की एक सामान्य विधि है विभिन्न प्रकार के ऋणपत्रों को निर्गमित करना। ऋण पत्र निर्गमन, व्यवसायारम्भ प्रमाणपत्र प्राप्त होने के बाद ही किया जा सकता है। ऋणपत्र विशिष्ट राशि के लिए बन्ध पत्र है जिस पर कम्पनी की मुद्रा होती है जिसका अर्थ है ऋण का स्वीकरण।

ऋण पत्र पर स्थिर (fixed) या चल (Floating) प्रभार हो सकते हैं। स्थिर प्रभार कतिपय विशिष्ट आस्तियों, जैसे भूमि या भवनों पर, कानूनी अधिकार देता है, तथा कम्पनी इस प्रभार की मात्रा तक, ऐसी आस्तियां हस्तान्तरित कर सकती है। अस्थिर प्रभार चालू व्यवसाय (Going Concern) की तात्कालिक चल आस्तियों (Movable Assets) पर एक प्रकार का साम्यपूर्ण (Equitable) प्रभार है। यह कम्पनी की प्रभारित वस्तुओं पर लागू होता है, जो समय-समय पर विभिन्न हालतों में हो सकती हैं। चल प्रतिभूति (Floating security) का प्रधान आशय है किसी भी चालू कम्पनी को व्यवसाय करने देना जिसके परिणामस्वरूप आस्तियों का मूल्य निरन्तर घटता-बढ़ता रहेगा। प्रतिभूति उस समय तक सुषुप्त (Dormant) रहती है जब तक यह स्थिर या ठोस (Crystallised) न हो जाय, और यह ठोस तब होती है, जब कम्पनी चालू कम्पनी न रह जाय या ऋणपत्रधारकों के हस्तक्षेप के उपरान्त धारक (Receiver) नियुक्त कर दिया गया हो। ऋणपत्र का रूप नीचे दिया जाता है।

ऋण पत्र का नमूना

————————लिमिटेड

(रजिस्टर्ड ऑफिस का पता)

ऋणपत्र पूंजी————————रुपये के ————————ऋणपत्र जिनमें से प्रत्येक पर ब्याज की दर————————प्रतिशत वार्षिक है।

ऋणपत्र

संख्या———————— ————————रुपये

१ ————————लिमिटेड (जिसे आगे कम्पनी कहा गया है) स्वीकार करती है कि वह ————रुपये का ऋण धारण करती है, जो———— १९५ के ————————महीने के———————— वें दिन शोध्य होगा अथवा ऐसी तिथि या पूर्व की तिथि पर शोध्य होगा जब इसके द्वारा प्राप्त किया गया मूलधन देय हो जाएगा, तथा इस द्वारा घोषित करती है कि वह उक्त धारक का या अन्य पंजीयित धारक का ब्याज सहित, जिसकी दर————प्रतिशत होगी, उक्त मूलधन, उक्त कथित समय पर ऐसी अवधि में, जो इस पर उल्लिखित तथा पृष्ठांकित शर्तों के अनुसार ही होगी, अदा करेगी।

२ इस प्रतिभूति के जीवन काल में, कम्पनी उक्त धारक को या तत्समय अन्य पंजीयित धारक को————रुपये के मूलधन पर————प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज प्रतिवर्ष १९५ के महीने के———————— वें दिन वार्षिक/अर्धवार्षिक चुकायेगी। पहला वार्षिक/अर्धवार्षिक भुगतान १९५ के———— महीने के————वें दिन होगा।

३. यह कम्पनी हितग्राही स्वामी (Beneficial Owner) के रूप में इन भुगतानों से सारी वर्तमान तथा भविष्य सम्पत्तियों को, चाहे वे जो हों और जहां

हो, (जिनमें अयाचित पूंजी भी शामिल है) प्रभारित करती है।

४ यह ऋणपत्र पृष्ठांकित शर्तों के मातहत निर्गमित किया जाता है।

आज १९५ के————महीने के————वें दिन कम्पनी की सार्वमुद्रा के अधीन प्रदत्त।

| सार्व मुद्रा |

————————सचिव ————सचालक

के सामने सार्वमुद्रा लगायी गयी। ————

उक्त कथित शर्तें (Conditions) ऋणपत्र का हिस्सा होंगी और वे निम्नलिखित हैं —

(ये निबन्धन ऋणपत्र की पीठ पर छपे होते हैं।)

(क) य ऋणपत्र ऋणपत्रों की उस शृंखला का हिस्सा है जो कम्पनी ने एक साथ (Pari Passu) निर्गमित की है।

(ख) (यह उल्लेख कीजिए कि प्रभार किसी खास संपत्ति पर स्थिर प्रभार होगा या चर (Floating) होगा। ऋणपत्रों की पूर्वता के बारे में भी उल्लेख कीजिए।)

(ग) पंजीकित धारक या उसका हस्तान्तरग्रहीता, जिसका नाम ऋणपत्र धारक पंजी में पंजीयित हो चुका है, अथवा उसकी मृत्यु हो जाने की अवस्था में उसका विधिगत प्रतिनिधि कम्पनी द्वारा उन ही लाभों का हकदार माना जाएगा जो इस ऋणपत्र का प्राप्त होंग।

(घ) यह ऋणपत्र पंजीयित धारक या उसके निष्पादक (Executer) या प्रशासक (Administrator) द्वारा ही सामान्य रीति (Usual form) में लिखकर हस्तान्तरित किया जा सकता है। हस्तान्तर को कार्यान्वित करने वाली लिखतें (Instruments) यथाविधि मुद्रांकित होनी चाहिए, तथा———— रुपय शुल्क सहित कम्पनी के पंजीयित कार्यालय में सुपुर्द की जानी चाहिएँ। सुपुर्दगी के साथ कम्पनी स्वत्व का वैसा साक्ष्य भी होना चाहिए जैसा युक्तियुक्त रीति से कम्पनी द्वारा मांगा जाए।

(ङ) (यदि कोई हस्तान्तरग्रहीता, प्रथम या किसी अन्य मध्यवर्ती (Intermediate) हस्तान्तर कर्त्ता तथा कम्पनी के बीच विद्यमान साम्यों (Equities) के अधीन हस्तान्तर प्राप्त करता है तो इस तथ्य का उल्लेख करना चाहिए। यदि कम्पनी अपने तथा प्रथम या किसी मध्यवर्ती हस्तान्तरकर्त्ता के बीच विद्यमान साम्यों (Equities) से रहित पक्का स्वत्व हस्तान्तरित करती है तो उस शर्त का भी जिक्र ऋण-पत्र में अवश्य करना चाहिए।)

(च) यदि इस ऋणपत्र के धारक प्रथमतः या हस्तान्तर के उपरान्त पंजीयित धारक के रूप में दो या दो से अधिक व्यक्ति हैं, तो उस स्थिति में इससे होने वाला

लाभ उन दोनों का संयुक्त रूप में संयुक्त खाते में उपलब्ध होगा।

(छ) (चल प्रभार की अवस्था में उन अवस्थाओं का उल्लेख करो जिनमें चल प्रभार ठोस हो जाएगा, यथा छह महीने से अधिक समय तक ब्याज न देना, या धारक (Receiver) की नियुक्ति या समापन (Winding up)।

(ज) इस ऋणपत्र के (तत्समय) पंजीयित धारक को किसी भी समय, दिये मूलधन तथा ब्याज का पूरा भुगतान कर देना कम्पनी की इच्छा पर निर्भर होगा। कम्पनी उक्त राशि का शोधन सूचना देकर कर सकती है। ऐसी सूचना देने के एक महीना पश्चात् आलोच्य राशि देय होती है। ऐसी सूचना पंजीयित धारक या उसके निष्पादक या प्रशासक को दी जायगी।

(झ) यदि कम्पनी इस शृंखला के ऋणपत्रों द्वारा प्राप्तव्य मूलधन वापिस करने में असमर्थ हो गयी है तो इस शृंखला के ऋणपत्रों के पंजीयित धारकों के बहुमत को इस प्रकार के ऋणपत्र के लिए प्रभारित सम्पत्ति व आस्तियों के लिए धारक नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त होगा। इस प्रकार नियुक्त किया गया धारक इस शृंखला के ऋणपत्र धारकों का अभिकर्त्ता होगा, तथा वह उक्त धारकों के बहुमत के निर्णयानुसार आचरण करेगा। तथा वह बहुमत उसे पदमुक्त भी कर सकता है, और इन ऋणपत्र-धारकों को उस अवस्था में उसकी जगह अन्य धारक नियुक्त करने का हक होगा।

(ञ) (अन्य तथा उपयुक्त निबन्धनों का उल्लेख कीजिए जो मान्य (Valid) हों तथा व्यर्थ (Redundant) न हों।)

कम्पनी की पुस्तकें (Books)

साविधिक पुस्तकें तथा लेखे

प्रत्येक कम्पनी को अपने पंजीयित कार्यालय में उपयुक्त पुस्तकें रखनी पड़ती हैं, जिन्हें साविधिक पुस्तकें (Statutory Books) कहते हैं। उन पुस्तकों में से कुछ 'कम्पनी वर्ग' (Company set) तथा कुछ 'वित्तीय वर्ग' (Financial set) कहलाती हैं। कम्पनी के सचिव के प्राथमिक कर्त्तव्यों में एक कर्त्तव्य है इस बात की सावधानी रखना कि ये पुस्तकें तथा अन्य पुस्तकें (वैकल्पिक) उचित रीति से रखी जाएं। कम्पनी वर्ग की साविधिक पुस्तकें ये हैं—(१) सदस्य पंजी, (२) वार्षिक सूची तथा संक्षेप (Summary) पुस्तक, (३) संचालक पंजी, (४) संविदा पंजी, (५) बंधक (Mortgage) तथा प्रभार पंजी, और (६) कार्य विवरण पंजी (Minute Book)। वित्तीय वर्ग की पुस्तकें ये हैं — (१) निम्नलिखित विषयों की लेखा पुस्तकें (Books of Accounts) (क) पूरे विवरण सहित आगम (Receipts) व व्यय (Expenditure), (ख) कम्पनी द्वारा किया गया माल का सम्पूर्ण क्रय व विक्रय, (ग) कम्पनी की सम्पूर्ण आस्तियां व दायित्व, तथा (२) निम्नलिखित रूप में प्रकाशित लेखे — (क) स्थिति विवरण या चिट्ठा (Balance Sheet) तथा (ख) लाभ-हानि खाता। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

सदस्य पंजी (Register of Members)—इस पंजी में सदस्यों के नाम, जीविका व पते, उनके अंशों का परिमाण व संख्या, उनकी प्राप्ति की तिथि, उन पर चुकता की गयी राशि तथा सदस्यता द्वारा सहायता त्याग की तिथि का रहना आवश्यक है। यह पंजी कम्पनी द्वारा की गयी संविदाओं की प्रथम दृष्ट्या (Prima Facie) साक्षी है तथा यह ऋणदाताओं को प्रत्याभूत करती है कि उनके सम्पूर्ण ऋण अदा हो जायगे। जिस कम्पनी में सदस्यों की संख्या पचास से अधिक हो, उसके लिए कम्पनी के सदस्यों के नामों की अनुक्रमणिका रखना अनिवार्य है तथा पंजी में सदस्यता परिवर्तन होने के १४ दिन के अन्दर तत्सम्बन्धी परिवर्तन अनुक्रमणिका में भर देना अनिवार्य है। यह पंजी वहीं रखनी होगी जहां सदस्यों की पंजी रखी हुई है। यह उल्लेखनीय है कि कोई प्रन्यास पंजी में प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। कम्पनी पंजी एक लोक लेख्य (Public Document) है तथा इसे कोई भी कतिपय शर्तों की पूर्ति के पश्चात् देख सकता है। कोई भी सदस्य कारबार के घंटों में (Business hours) में दो घंटे तक निःशुल्क इसे देख सकता है, तथा असदस्य व्यक्ति एक रुपया या इससे कम देकर देख सकता है। सदस्य या असदस्य व्यक्ति इस पंजी की नकल कर सकता है। जब पंजी बन्द हो, तब निरीक्षण अस्वीकार किया जा सकता है। पंजी सात दिन की सूचना देकर बन्द की जा सकती है, और बन्द करने की अवधि एक बार में ३० दिन से अधिक और एक साल में ४५ दिन से अधिक नहीं हो सकती।

पंजी में शुद्ध प्रविष्टियां ही रहनी चाहिएं, परन्तु यदि संचालकों की भूल-चूक से किसी की क्षति पहुँची है तो वह अशुद्धि के संशोधन के लिए न्यायालय में आवेदन कर सकता है। न्यायालय या तो आवेदन पत्र रद्द कर सकता है और या निम्न हालतों में अशुद्धि संशोधन का आदेश दे सकता है —(१) जब किसी व्यक्ति का नाम कपटपूर्वक (Fraudulently) या पर्याप्त कारण के बिना सदस्य पंजी में प्रविष्ट किया गया हो या प्रविष्ट होने से रह गया हो, (२) जब किसी व्यक्ति की सदस्यता-समाप्ति सम्बन्धी प्रविष्टि न की गयी हो या अनावश्यक विलम्ब से की गयी हो।

वार्षिक विवरण और सारांश—धारा १५९ यह उपबन्ध करती है कि अंश पूंजी वाली प्रत्येक कम्पनी को, जिस दिन कम्पनी की वार्षिक वृहत सभा होगी है उसमें ४२ दिन के भीतर एक विवरण तय्यार करना होगा और पंजीकर्ता के यहां नत्थी करना होगा जिसमें निम्नलिखित बातों का ब्योरा होना चाहिए : (क) इसका पंजीयित कार्यालय, (ख) इसके सदस्यों का रजिस्टर, (ग) इसके ऋणपत्रधारियों का रजिस्टर; (घ) इसके अंश और ऋणपत्र, (ङ) इसकी ऋणग्रस्तता; (च) इसके अतीत और वर्तमान के सदस्य और ऋणपत्र-धारी और (छ) इसके पिछले और वर्तमान संचालक, प्रबन्ध अभिकर्ता, सचिव और कोषाध्यक्ष तथा प्रबन्धक। विवरण और उसका ब्योरा अनुसूची ५ के भाग २ में दिये गये प्रपत्र में या उसके अधिक से अधिक नजदीकी रूप में दिया जाएगा।

विवरण में निम्नलिखित बातें होनी चाहिएँ —

१. कम्पनी के पंजीयित कार्यालय का पता।

२. यदि कम्पनी के सदस्यों और ऋणपत्रधारियों के रजिस्टर का कोई भाग इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन किसी राज्य में या भारत से बाहर किसी देश में रखा जाता है तो उस राज्य या देश का नाम और उस स्थान का पता जिसमें रजिस्टर का वह हिस्सा रखा है।

३ एक सारांश जिसमें निम्नलिखित ब्योरा दिया गया हो और जहां तक सम्भव हो वहां तक नकद धन लेकर निर्गमित किये गये अंशों और बोनस अंशों से भिन्न उन अंशों में जो पूर्णतया शोधित किये गये हैं या अंशतः नकद के अलावा किसी दूसरे रूप में शोधित किये गये हैं, भेद किया गया हो और अंशों के प्रत्येक वर्ग के विषय में निम्नलिखित ब्योरा दिया गया हो —

(क) कम्पनी की अधिकृत अंश पूंजी की राशि और जितने अंशों में यह विभाजित है उनकी संख्या,

(ख) कम्पनी के आरम्भ से लेकर कम्पनी की पिछली वार्षिक वृहत सभा की तिथि तक लिये गये अंशों की संख्या

(ग) उपर्युक्त तिथि तक प्रत्येक अंश पर याचित राशि ;

(घ) उस तिथि तक प्राप्त याचनाओं की कुल राशि ;

(ङ) उस तिथि पर अशोधित याचनाओं की कुल राशि;

(च) यदि उस तिथि तक किन्हीं अंशों या ऋणपत्रों के विषय में कोई धन कमीशन के रूप में दिया गया हो तो उसकी कुल राशि;

(छ) उपर्युक्त तिथि तक यदि कोई अंश डिस्काउंट या बट्टे पर निर्गमित किये गए हैं तो उस निर्गम दिया गया बट्टा या उस बट्टे का उतना भाग जितना उस तिथि को अपलिखित (write off) नहीं किया गया है।

(ज) जिस वार्षिक वृहतसभा के सम्बन्ध में पिछला विवरण पेश किया गया था उसकी तिथि से किन्हीं ऋणपत्रों के विषय में डिस्काउण्ट के रूप में कोई धन दिया गया हो तो उसकी कुल राशि,

(झ) उपखण्ड (ख) में उल्लिखित तिथि तक जब्त किये गये कुल अंशों की संख्या

(ञ) उन अंशों की कुल राशि जिनके लिए उपखण्ड (ख) में उल्लिखित तिथि पर अंश अधिपत्र जारी नहीं किये गये और उपखण्ड (ज) में निर्दिष्ट तिथि से क्रमशः निर्गमित और समर्पित अंश अधिपत्रों की कुलराशि और प्रत्येक अधिपत्र में आये हुए अंशों की संख्या।

(४) खण्ड ३ के उपखण्ड (ख) में निर्दिष्ट तिथि को उन सब बन्धकों और प्रभारों के विषय में जिनका इस अधिनियम के अधीन पंजीकर्त्ता के यहां पंजीयित कराना अपेक्षित है, (या यदि वे बन्धक और प्रभार पहली अप्रैल १९१४ को या के बाद बनाये गये होते तो जिनका इस प्रकार पंजीयित कराना अपेक्षित होता) कम्पनी की ऋणग्रस्तता की कुल राशि का ब्योरा।

५. एक सूची जिसमें :

(क) उन सब व्यक्तियों के, जो कम्पनी की पिछली वार्षिक वृहतसभा के दिन कम्पनी के सदस्य थे और उन व्यक्तियों के जो उस तिथि को या उससे पहले और खण्ड ३ के उपखण्ड (ज) में निर्दिष्ट तिथि के बाद या पहले विवरण की अवस्था में कम्पनी के निर्गमन के बाद सदस्यता से अलग हो चुके थे, नाम, पते और पेशे दिये हों;

(ख) खण्ड ३ के उपखण्ड (ख) में निर्दिष्ट तिथि पर मौजूदा सदस्यों में से प्रत्येक द्वारा धारित अंशों की संख्या दी गई हो और खण्ड ३ के उपखण्ड में निर्दिष्ट तिथि के बाद से (या पहले विवरण की अवस्था में कम्पनी के निगमन के बाद) क्रमशः उन व्यक्तियों द्वारा जो अब भी सदस्य हैं और उन व्यक्तियों द्वारा जो सदस्यता से अलग हो गये हैं, हस्तांतरित अंशों का और हस्तांतरों के पंजीयन की तिथियों का उल्लेख हो,

(ग) यदि उपर्युक्त नाम अक्षरक्रम से नहीं दिये गये हैं तो उसके साथ वैसी अनुक्रमणी होनी चाहिए जिससे उनमें से किसी व्यक्ति का नाम आसानी से ढूंढा जा सके,

६ उन व्यक्तियों के बारे में जो कम्पनी की पिछली वार्षिक वृहत सभा की तिथि को कम्पनी के सचालक थे और किसी भी व्यक्ति के बारे में जो उस तिथि को कम्पनी का प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचिव और कोषाध्यक्ष, प्रबन्धक या सचिव था, वह सब ब्यौरा जो सचालकों प्रबन्ध अभिकर्त्ता सचिवों और कोषाध्यक्षों, प्रबन्धक और सचिव के विषय में क्रमशः कम्पनी के सचालकों, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं, सचिवों और कोषाध्यक्षों, प्रबन्धकों और सचिवों के रजिस्टर में होना इस अधिनियम द्वारा अपेक्षित है।

सचालकों प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं और प्रबन्धक आदि का रजिस्टर—धारा ३०३ यह अपेक्षा करती है कि प्रत्येक कम्पनी अपने पंजीयित कार्यालय में अपने सचालकों, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं, प्रबन्ध सचालकों सचिवों और कोषाध्यक्षों, प्रबन्धक और सचिव का एक रजिस्टर रखेगी, जिसमें प्रत्येक के विषय में निम्नलिखित ब्यौरा होगा —

(क) व्यष्टियों की अवस्था में उसका वर्तमान पूरा नाम और अल्ल (Surname), कोई पहले वाला पूरा नाम या अल्ल, आम निवास का पता (वर्तमान तथा मूल), राष्ट्रीयता कारबार पेशा और यदि वह किसी और कम्पनी में सचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, प्रबन्धक या सचिव है तो उसका विगत ब्यौरा,

(ख) निगम की अवस्था में इसका निगमित नाम, पंजीयित कार्यालय और इसके सचालकों के पूरे नाम, पते और राष्ट्रीयता।

(ग) फर्म होने पर, प्रत्येक साझी का पूरा नाम, पता तथा राष्ट्रीयता तथा साझी होने की तिथि।

पंजीकर्त्ता के पास उक्त विवरण प्रथम नियुक्ति के २८ दिनों के अन्दर, तथा यदि उसमें कोई परिवर्तन हो तो उसके २८ दिनों के अन्दर भेज देना चाहिए। यदि उपर्युक्त उपबन्धों में से किसी के पालन में चूक की जाएगी तो चूक करने वाले कम्पनी के प्रत्येक अफसर को चूक के प्रत्येक दिन के लिए ५० रु० तक जुर्माने का दंड दिया जा सकेगा। रजिस्टर सदस्यों के निरीक्षण के लिए नि शुल्क तथा असदस्यों के निरीक्षण के लिए एक रुपया शुल्क पर उपलब्ध होना चाहिए। इन अपेक्षाओं की पूर्ति के सम्बन्ध में चूक होने पर कम्पनी तथा इसका प्रत्येक अफसर चूक के प्रत्येक दिन के लिए ५० रुपये अर्थदण्ड का भागी होगा।

अनुबंध पंजी (Register af Contracts)—साधारणतया सचालक को उस कम्पनी के साथ अनुबन्ध नही करना चाहिए जिसका वह सचालक है। धारा २९९ सचालक तथा कम्पनी के बीच अनुबन्धो की अनुमति देती है बशर्ते कि सभी बातें प्रकट कर दी गयी हो। धारा म यह उपबन्ध है कि कम्पनी को अपने पजीयित कार्यालय में एक पंजी रखनी चाहिए, जिसम अनुबन्धो का पूरा विवरण हो, तथा जो सदस्यो के निरीक्षण के लिए खुली हो। यह पंजी रखने के सम्बन्ध म की गयी चूक के कारण कम्पनी का प्रत्येक अफसर ५०० रुपये तक के अर्थदण्ड का भागी हो सकता है।

बन्धकों और प्रभारो की पंजी (Register of Mortgages and Charges)—धारा १४३ के अनुसार, प्रत्येक कपनी के लिए अपने पंजीयित कार्यालय में सब बधकों और प्रभारो की एक पंजी रखना और उसमें उनका सब ब्योरा लिखना जरूरी है। ब्योरे में बधक और प्रभार सम्पत्ति का सक्षिप्त वर्णन, बधक या प्रभार की राशि, और वाहक को शोध्य प्रतिभूति की अवस्था को छोडकर अन्य अवस्थाओ में, बधक-ग्रहीता के या उन पर हक रखने वाले व्यक्तियो के नाम अवश्य होने चाहिए। यह कार्य न करने पर अफसर ५०० रु० तक जुर्माने के भागी होंगे। पंजी सदस्यों के लिए बिना फीस के, और अन्यो के लिए १ रुपया या कम देने पर, निरीक्षणार्थ खुली होनी चाहिए। पंजी सदस्यों द्वारा निरीक्षण के लिए नि शुल्क और असदस्यों द्वारा निरीक्षण के लिए एक रुपया या कम शुल्क उपलब्ध होनी चाहिए।

कार्यविवरणिका (Minute Book)—धारा १९३ के अनुसार प्रत्येक कम्पनी को सारे अधिवेशनों की कार्यवाहियों का विवरण ठीक तरह जिल्दबन्द पुस्तकों में रखना चाहिए जो कम्पनी के रजिस्टर्ड आफिस मे इस उद्देश्य से रखी हो। जब कार्य विवरण पर अधिवेशन का अध्यक्ष हस्ताक्षर कर देता है तब वह अभिलिखित कार्यों का प्रथम दृष्ट्या साक्ष्य (Evidence) होता है, तथा व्यवसायप्रहर में सदस्यों के निरीक्षण के लिए खुला होना है। कोई भी सदस्य अधिवेशन होने के पश्चात् शुल्क चुकाने पर कार्यविवरण की प्रति की माग कर सकता है, जिसकी सुपुर्दगी निवेदन के ७ दिनो के अन्दर हो जानी चाहिए। वृहत् अधिवेशनो तथा सचालक मण्डल के अधिवेशनो के लिए अलग विवरण पुस्तिकाए रखी जाती है। मण्डल की विवरण पुस्तिका निरीक्षण के लिए उपलब्ध नहीं हो सकती।

लेखा-पुस्तक (Books of Account)—धारा २०९ उपबन्ध करती है कि प्रत्येक कम्पनी को निम्नलिखित विषयो के सम्बन्ध में अपने रजिस्टर्ड ऑफिस में उचित लेखा पुस्तकें रखनी चाहिएँ : (१) कम्पनी द्वारा प्राप्त तथा व्यय की गयी सम्पूर्ण राशिया तथा उन विषयो का विवरण जिनके सम्बन्ध में उक्त प्राप्तिया तथा व्यय हुए हैं, (२) कम्पनी द्वारा वस्तुओं का सम्पूर्ण क्रय-विक्रय, (३) कम्पनी की सारी आस्तिया व दायित्व। जहा कम्पनी के शाखा कार्यालय हो, वहा शाखा कार्यालयों में किये गये लेन-देन के सम्बन्ध में लेखा पुस्तकें शाखा कार्यालय में ही रखनी चाहिएँ। दो महीने के मध्यान्तर पर सक्षिप्त विवरण प्रधान कार्यालय को भेजना अनिवार्य है।

साथ वार्षिक विवरण तथा सक्षेप भी होना चाहिए ।

स्थिति विवरण में उल्लेखनीय बातें (Contents of Balance Sheet)—

स्थिति विवरण कम्पनी की आस्तियों तथा दायित्वों का विवरण (statement) है, जो कम्पनी की स्थिति के सम्बन्ध में पूर्ण तथा सच्ची सूचनाएँ देता है। स्थिति विवरण की मुख्य बात है, "सूचनाएँ" न कि "गोपन" यह सूचि मात्र नहीं होना चाहिए वरन् इसे कम्पनी अधिनियम १९५६ की छठी अनुसूची (Schedule) में दिये गये रूप में कम्पनी की व्यापारिक तथा वित्तीय स्थिति का चित्र होना चाहिए या जहा तक सम्भव हो, उसके करीब होना चाहिए। इसमें सम्पत्ति तथा आस्तियो और पूंजी व दायित्वो का इस प्रकार सक्षेप होना चाहिए जिससे उनके साधारण स्वरूप का सही-सही पता लगे। जब अश छूट पर निर्गमित किये गये हैं, तब इसमें, की गयी छूट का पूरा विवरण होना चाहिए अथवा छूट के उस हिस्से का विवरण होना चाहिए जो स्थिति विवरण के तैयार किये जाने के दिन तक खाते में अपलिखित (written off) कर दिया गया हो। उस कम्पनी के प्रत्येक स्थिति विवरण में जिसने विमोचनशील (redeemable) अधिमान अश निर्गमित किये है, अनिवार्यतः एक विवरण होना चाहिए जिसमे विशेषता यह लिखित हो कि निर्गमित पूंजी का कोन सा हिस्सा विमोचनशील अधिमान अशो का है तथा उसके विमोचन की तिथि कोन सी है। यदि अशो व पत्रो के निर्गमन पर दिये गये कमीशन की सम्पूर्ण राशि अपलिखित न कर दी गयी हो तो इस प्रकार के कमीशन की राशि का विवरण भी स्थिति विवरण में होना चाहिए। धारा २१२ उपबन्ध करती है कि विनियोग॰ कम्पनी को छोडकर, यदि कोई अन्य कम्पनी प्रत्यक्ष रूप से या किसी नामजद (Nominee) द्वारा सहायक कम्पनी के अश धारण करती है तो स्थिति विवरण के साथ सलग्न एक विवरण होगा, जो स्थिति विवरण की ही तरह विधिवत हस्ताक्षरित होगा जिसमे इस बात का विवरण होगा कि सधारी कम्पनी के लेखे की दृष्टि से सहायक कम्पनी का लाभ व हानि किस प्रकार डाला गया है।

लाभ और हानि खाता (Profit and Loss Account)—लाभ और हानि खाते में उल्लेख्य विषयो (Contents) के बारे में जो कानून है वह धारा २११ और अनुसूची ६ के भाग दो में निहित है। धारा २११ (२) यह उपबन्ध करती है कि किसी कपनी का प्रत्येक लाभ और हानि लेखा उस वित्तीय वर्ष में कम्पनी के लाभ और हानि का सच्चा और उचित चित्र पेश करेगा और अनुसूची ६ के भाग २ की अपेक्षाओ की पूर्ति करेगा; और वे अपेक्षाए निम्नलिखित है :—

१. लाभ और हानि लेखा इस तरह बनाया जायगा कि वह उसके अन्तर्गत अवधि में कम्पनी के कार्य को साफ-साफ प्रकट करे और प्रत्येक सारभूत विशेषता भी प्रकट करे जिसके अन्तर्गत अनावर्ती व्यवहारो के विषय में या आपवादिक प्रकार के आकलन या प्राप्तियां और विकलन या खर्चे सभी हो।

२. यह कम्पनी के आय और व्यय से सम्बन्धित विभिन्न मदे अधिक से अधिक

सुविधाजनक शीर्षकों के नीचे रखेगा और खास तौर से निम्नलिखित जानकारी देगा :

(क) टर्न ओवर या वापसी (यानी कुल बिक्री) और बिक्री अभिकर्त्ताओं के कमीशन दलाली और व्यापार के प्रचलित डिस्काउन्ट के अलावा बिक्री पर डिस्काउन्ट।

(ख) (१) निर्माता कम्पनियों की अवस्था में, कच्चे सामान की खरीद और उत्पादित वस्तुओं का शुरू में और अन्त म मौजूद माल, (२) व्यापारकर्त्ता कम्पनी की अवस्था में की गई खरीद और शुरू में और अन्त में मौजूद माल, (३) सेवा करने या सभरित करने वाली कम्पनियों की अवस्था में की गई या सभरित सेवाओं से हुई सकल आय, (४) अन्य कम्पनियों की अवस्था में विभिन्न शीर्षकों के अधीन हुई सकल आय।

(ग) जिन कम्पनियों के कारखाने अभी बन रहे हैं, उनकी अवस्था में वे राशियां जिनका काम लेखावन अवधि के शुरू में और अन्त में सम्पादित होना बाकी था।

(घ) स्थिर आस्तियों के मूल्य में अवक्षयण पुनर्नवन या ह्रास के लिये रखी गई राशि।

(ङ.) कम्पनी के ऋण पत्रों और अन्य स्थिर ऋणों पर ब्याज की राशि। यदि प्रबन्ध सचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचिवो कोषाध्यक्षों और प्रबन्धक को कोई ब्याज की राशि शोध्य हो तो उसका उल्लेख अलग होना चाहिए।

(च) भारतीय आयकर या लाभों पर लगने वाले अन्य भारतीय करों के प्रभार की राशि।

(छ) अंश पूंजी और ऋण लौटाने के लिये रखी गई राशियां, सचिति (Reserves) के लिये अलग रखी गई या अलग रखने के लिये प्रस्थापित राशियों का कुल योग और इन सचितियों में से ली गई राशियां।

(ज) विनिर्दिष्ट दायित्वों या आकस्मिकताओं के लिये रखी गई ऐसी ही राशियां।

(झ) निम्नलिखित मदो में से प्रत्येक पर किया गया खर्च—प्रत्येक मद का अलग-अलग (i) भंडार (Stores) और अलग पुर्जों (Spare Parts) का खर्च, (ii) बिजली और ईंधन, (iii) भाड़ा, (iv) मकान की मरम्मत, (v) मशीनों की मरम्मत, (vi) वेतन मजदूरियां और बोनस, भविष्य-निधि तथा अन्य निधियों म अशदान कल्याण और कर्मचारी कल्याण व्यय, (vii) बीमा (viii) स्थानीयकर (Rates), कर जिनमें आयकर शामिल नहीं, (ix) प्रकीर्ण खर्च।

(ञ) विनियोगों से होने वाली आय की राशि—व्यापार विनियोगों और अन्य विनियोगों की आय अलग-अलग दिखानी चाहिए—और ब्याज से होने वाली अन्य आमदनी तथा आयकर की घटायी गई राशि।

(ट) विनियोगों पर और आम या आपवादिक व्यवहारों के विषय में होने

वाले लाभ या हानिया तथा प्रकीर्ण आय।

(ठ) सहायक कम्पनियो से मिलने वाले लाभाश और सहायक कम्पनियो की हानियो के लिए की गई व्यवस्था।

(ड) दिए गए और प्रस्थापित लाभाशो की कुल राशि। यह भी बताना चाहिए कि इन राशियो में से आयकर घटाया जाना है या नहीं।

(३) लाभ और हानि खाते मे निम्नलिखित जानकारी भी होनी चाहिए :—

(क) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता को प्रबन्ध अभिकर्त्ता के रूप मे या किसी अन्य रूप मे की गई सेवा के लिए फीस, प्रतिशतक्ता या अन्य किसी आधार पर कोई राशिया शोध्य है तो उनका कुल योग।

(ख) क्रमश सचालको, प्रबन्ध सचालक या प्रबन्धको को उनके इस रूप में या किसी अन्य रूप मे की गई सेवाओ के पारिश्रमिक के तौर पर फीस, प्रतिशतक्ता या किसी अन्य आधार पर शोध्य राशियो का कुल योग।

(ग) यदि कोई सचिव और कोषाध्यक्ष हो तो उन्हे इस रूप में या किसी अन्य रूप मे की गई सेवाओ के लिए फीस, प्रतिशतक्ता या अन्य किसी आधार पर शोध्य राशियो का कुल योग।

(घ) उपर्युक्त में से किसी को पद की हानि के लिये शोधित किसी मुआवजे की कुल राशि।

ऐच्छिक पुस्तके (Opt o ıal Fo)ks)

सांविधिक या अनिवार्य पुस्तकों के अतिरिक्त, कम्पनिया व्यवहारत व्यवसाय की प्रकृति तथा आकार के अनुसार बहुतेरी पुस्तके रखती है, यथा (१) आवेदन और आवटन पुस्तक, (२) अश प्रमाण पत्र पुस्तक, (३) याचना पुस्तक, (४) हस्तान्तर पजी, (५) लाभाश पुस्तक, (६) ऋणपत्र धारक पजी, (७) ऋणपत्र ब्याज पुस्तक, (८) सार्व मुद्रा पुस्तक, (९) कार्य सूची (Agenda) पुस्तक, (१०) अधिप्रमाण (Probate) पुस्तक, (११) सचालक उपस्थिति पुस्तक।

सभाएँ (Meetings)

सभा कुछ व्यक्तियों के उस सम्मिलन को कह सकते है, जिसका उद्देश्य सकल्प पारित करके कुछ कार्य करना या नहीं करना है। हर कम्पनी का कार्य सचालक मण्डल द्वारा सचालित तथा नियन्त्रित किया जाता है तथा कम्पनी का अन्तिम नियन्त्रण सदस्यों के हाथों में होता है जो वहन् सभा के रूप में कार्य करते है। अत सचालक मण्डल तथा अशधारियो की सभाओ पर अलग-अलग विचार करना आवश्यक है।

संचालक मण्डल की सभाएँ—जब तक अन्तर्नियमो म व्यवस्था न हो, सचालको को अनिवार्यत उस सभा में कार्य करना चाहिए जिसे मण्डल की सभा कहते हैं। प्रत्येक कम्पनी के सचालक मडल की सभा तीन कैलेंडर महीनो में एक बार अवश्य होनी चाहिए। सभा देश में उपस्थित प्रत्येक सचालक के पास भेजी गयी सूचना द्वारा बुलायी जानी चाहिए। अन्यथा सभा का अधिवेशन अमान्य होगा, और उसमें की गयी कार्यवाही

दूषित (Vitiated) होगी, चाहे बहुसंख्यक सदस्य सभा में उपस्थित भी हो। इससे पहले कि संचालक सभा की कार्यवाही शुरू करे, पूर्णतः अर्हता-प्राप्त सञ्चालकों की गणपूर्ति (Quorum) होनी चाहिए। अन्तर्नियम मण्डल के अधिवेशन तथा अध्यक्ष के विषय में पूरी व्यवस्था करते हैं। सभा के अधिवेशन की कार्यविधि है प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में संकल्प पारित करना और ये संकल्प कार्य-विवरण पुस्तिका में लिखे जाते हैं, जिस पर सभा के अध्यक्ष का हस्ताक्षर होता है। निगम विधि (कारपोरेशन लॉ) का बहुसंख्यक सम्बन्धी नियम यहा लागू नही होता और यह अनिवार्य है कि सभी संचालकों का एक मत हो, पर इसके विपरीत यदि बहुसंख्यक नियम को ही लागू होना है तो उस सम्बन्ध में लिखित व्यवस्था अन्तर्नियमों में होनी चाहिए। सूचना निर्गमित करना सचिव का कर्तव्य है तथा सूचना का प्रपत्र (Form) निम्नलिखित है :

मण्डल के अधिवेशन की सूचना का प्रपत्र

——————————कम्पनी लिमिटेड।

प्रिय महाशय,

मैं आपको सविनय सूचित करता हूँ कि तिथि ——————१९५ को——————बजे (मानक समय) कम्पनी के पंजीयित कार्यालय में कम्पनी के संचालकों की सभा है, जहा आपकी उपस्थिति प्रार्थित है।

आपका विश्वसनीय

. . सचिव

निम्नलिखित कार्य सम्पादित होंगे —

१ विगत सभा के कार्यविवरण (Minutes) की पुष्टि (Confirmation)।
२ भुगतान के लिए प्रस्तुत लेखा-सूची पर विचार।
३ अंश प्रमाण पत्रों पर हस्ताक्षर तथा मुहर (Sealing)।
४ प्रस्थापित विस्तार के लिए, विशेषज्ञ समिति (Committee of Experts) के प्रतिवेदन पर विचार।
५ आगामी सभा।

सचिव सभापति से मिलकर कार्यसूची (Agenda) तैयार करता है जिसमें सभा में आलोच्य विषयों का उल्लेख रहता है। कार्य सूची तैयार करते समय सचिव का सभापति से मिलना आवश्यक है, क्योंकि कार्यसूची में विषयों के क्रम की प्राथमिकता महत्व की चीज है। कार्य सूची सूचना के साथ, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, या उसके बाद भेजी जा सकती है। जब कार्य सूची सूचना के बाद भेजी जाएगी, तब उसका रूप कुछ इसी प्रकार होगा :

कार्यसूची

जिस पर कम्पनी के पंजीयित कार्यालय गुरुवार, २१ मई, १९५६ को संध्या के ४ बजे (मानक समय) होने वाली मण्डल की सभा में विचार होगा।

१. विगत सभा का कार्य विवरण।
२ भुगतान के लिए प्रस्तुत लेखा-सूची पर विचार।
३. साधारण अंश प्रमाणपत्रों पर हस्ताक्षर तथा मुहर लगाना (Signing & Sealing)।
४ हस्तान्तर समिति का प्रतिवेदन।
५ आगामी सभा की तिथि।

कार्य सूची पत्रों पर बायीं तरफ पर्याप्त खाली स्थान होना चाहिए, ताकि मण्डल के सभापति, सचिव तथा सदस्य वहाँ स्मरणीय बातें लिख सकें। जब सचालक सभा-स्थल पर पहुँचे तब सचिव को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे उपस्थिति पुस्तक पर हस्ताक्षर कर दें। भर जाने पर उपस्थिति पुस्तक के पृष्ठ का रूप इस प्रकार होगा।

मंडल की बैठक

जो कम्पनी के पंजीयित कार्यालय में शुक्रवार २१ मई, १९५६ को सध्या के ४ बजे (मानक समय) हुई।

उपस्थित

१ ————————————(सभापति)
२. ————————————
३ ————————————

सचालक

सेवार्थ उपस्थित : श्री————————सचिव

(In attendance) श्री————लेखापाल (Accountant)

सभा समाप्ति के पश्चात् जितना शीघ्र हो सके, सचिव को सभा का कार्य-विवरण तैयार करना चाहिए। कार्यविवरण को अनिवार्यतः कार्यवाही का यथार्थ अभिलेख (Record) होना चाहिए। कार्यविवरण पुस्तक में प्रविष्ट किया जाने वाला प्रत्येक कार्य विवरण क्रमश सख्यांकित (Consecutively Numbered) तथा हाशिये पर सक्षेपित (Abbreviated) तथा अनुक्रमित (Indexed) होना चाहिए। उन्हें उसी क्रम में लिखा जाना चाहिए जिस क्रम में सभा में कार्य का सम्पादन हुआ है। कार्यविवरण घटनात्मक (Narration) या निष्कर्ष दोनों रूपों में लिखा जा सकता है। जब कार्य विवरण घटनात्मक का रूप लेता है तब सभा में घटित घटना का पूरा पर सक्षिप्त वर्णन होता है, और उसके बाद सकल्प लिखे जाते हैं, लेकिन जब यह निष्कर्ष का रूप धारण करता है तब सकल्प रूप में केवल निष्कर्ष लिखे जाते हैं। रूप चाहे जो हो, कार्य विवरण साफ, चुस्त या सगठित (Compact) असदिग्ध तथा सुनिश्चित (Definite) होना चाहिए। प्रत्येक सभा का कार्य-विवरण नये पृष्ठ पर शुरू होना चाहिए तथा शीर्षक में क्रमसख्या, तिथि और सभा की प्रकृति का उल्लेख होना चाहिए।

कार्यविवरण का नमूना
(Specimen of Minutes)

सचालक मण्डल का चौदहवा अधिवेशन कम्पनी के पजीयित कार्यालय मे शुक्रवार २१ मई, १९५६ को सध्या के ४ बजे (मानक समय) हुआ ।

निम्नलिखित उपस्थित थे —

———————————सभापति

———————————

———————————

———————————सचालक

सेवार्थ उपस्थित

———————————सचिव

———————————लेखापाल।प्रबन्धक ।

५ अप्रैल १९५६ को हुए विगत अधिवेशन का कार्यविवरण पढ़ा गया और दोषरहित के रूप मे स्वीकृत तथा हस्ताक्षरित हुआ ।

३१ भुगतान	भुगतान योग्य लेख तथा उनके प्रमाणक (वाउचर), जिनका योग १२ ०५१ रुपए १२ आने हुआ, प्रस्तुत किये गये । लेखाओ की पुष्टि हुई तथा उनके निमित्त चैकों के हस्ताक्षरित किये जाने का आदेश हुआ ।
३२ अश प्रमाण पत्रो का हस्ताक्षरण तथा मुद्र लगाना	साधारण प्रमाण पत्र जिनकी सख्या———से———तक (दोनो सख्याएँ मिलाकर) है और जो आवेदन सूची में दिखाये गये आवटितियों के नाम है, प्रस्तुत किये गये तथा उनकी पुष्टि हुई । यह निश्चित हुआ कि उन पर कम्पनी की मुद्रा अकित की जाय तथा यथाविधि उन पर हस्ताक्षर किये जाय ।
३३. हस्तान्तर समिति का प्रतिवेदन	हस्तान्तर समिति के प्रतिवेदन पर जिसका उल्लेख समिति के कार्य विवरण मे किया गया है, विचार किया गया। यह निश्चित हुआ कि ५ अशधारियों द्वारा १०० अशो के हस्तान्तरण को छोडकर सब प्रतिवेदन पूर्णत अगीकृत किया जाए ।
३४ आगामी अधिवेशन	मण्डल का आगामी अधिवेशन कम्पनी के पजीयित कार्यालय मे १० जून, १९५६ को किया जाना तय हुआ ।

सभापति

अशधारियो की सभाए (Shareholders' Meetings)

अशधारियो की सभाएँ, जिन्हे वृहत् सभाए कहते है, तीन प्रकार की होती है — (१) साविधिक सभा (Statutory Meeting), (२) साधारण या वार्षिक वृहत्

सभा (Ordinary or annual General meeting) और (३) असाधारण वृहत् सभा (Extraordinary General meeting)। कम्पनी अधिनियम की १६५ से लेकर १७४ तक धाराएं इन सभाओं के बारे में व्यवस्था करती हैं। उन पर नीचे विचार किया जाता है।

सांविधिक सभा (Statutory meeting)

यह वह सभा है जो निजी कम्पनी को छोड़कर प्रत्येक कम्पनी को कम्पनी अधिनियम की धारा १६५ के अनुसार व्यवसाय आरम्भ करने की तिथि से एक महीने बाद तथा ६ महीने के अन्दर करनी होती है। यह सभा व्यवहारतः कम्पनी की प्रथम सभा है, जिसके बुलाने का उद्देश्य है अंशधारियों को यथाशीघ्र कम्पनी की स्थिति से अवगत करना। सचालकों के लिए यह आवश्यक है कि सभा के अधिवेशन के २१ दिन पूर्व प्रत्येक अंशधारी के पास अधिवेशन की सूचना के साथ एक प्रतिवेदन भेजें जिसे सांविधिक प्रतिवेदन (Statutory Report) कहते हैं। सचिव को सावधानी से यह प्रतिवेदन तैयार करना चाहिए, और कम से कम दो संचालकों द्वारा या सभापति द्वारा, बशर्ते कि वह सचालकों द्वारा इस आशय से दत्ताधिकार हो तथा अंकेक्षक द्वारा इसकी शुद्धता को प्रमाणित करवा लेना चाहिए। सचिव को सांविधिक प्रतिवेदन की एक प्रति अनिवार्यतः पंजीकर्त्ता के पास भजनी चाहिए। सांविधिक प्रतिवेदन में निम्नलिखित बातें होनी चाहिएँ —(१) आवंटित अंशों की पूरी सूचना तथा उनसे सम्बन्धित प्राप्त राशि, (२) स्पष्ट आँकड़ों के नीचे का प्रतिवेदन के ठीक सात दिन पहले तक आय-व्यय का पूरा विवरण तथा प्रारम्भिक व्यय (Preliminary expenses) का एक अनुमान, (३) सचालकों, अंकेक्षक, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं, सचिवों और कोषाध्यक्षों, प्रबन्धक तथा सचिव के नाम, पते तथा जीविका (४) उन अनुबन्धों का विवरण जिनमें किये गये परिवर्तन अधिवेशन के सम्मुख पुष्टि के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले हैं, (५) किस हद तक अभिगोपन (Underwriting) अनुबन्धों का सम्पादन किया जा चुका है, (६) सचालकों, प्रबन्ध अभिकर्ताओं तथा प्रबन्धकों से याचना की मद में प्राप्य बकाया तथा (७) किसी भी सचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं, सचिवों और कोषाध्यक्षों या प्रबन्धक को दिये गये या दिये जाने वाले कमीशन (Commission) या दलाली की राशि, जो अंशों के निर्गमन या बिक्री से सम्बन्धित हो। सांविधिक सभा का अधिवेशन या सांविधिक प्रतिवेदन का नस्तीकरण (Filing) न करने पर कोई भी सदस्य कम्पनी के समापन के लिए न्यायालय में आवेदन कर सकता है—न्यायालय कम्पनी समापन की आज्ञा दे सकता है या सांविधिक सभा का अधिवेशन करने तथा सांविधिक प्रतिवेदन के नस्तीकरण का निर्देश दे सकता है। सचालक या अन्य दोषी व्यक्ति पर ५०० रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है।

साविधिक प्रतिवेदन

कम्पनी अधिनियम, १९५६
(देखिए धारा १६५)

नस्तीकरण शुल्क ३ रुपये

कम्पनी का नाम————————

————————लिमिटेड का साविधिक प्रतिवेदन, धारा १६५ (५) के अनुसरण में ।

श्री————————द्वारा नस्तीकरण के लिए प्रस्तुत ।

साविधिक सभा की तिथि तथा स्थान————————

सवाल्क सदस्यो को निम्नलिखित प्रतिवेदन देते हैं —

१ विगत————————के————————वें दिवस तक (अर्थात् प्रतिवेदन के सात दिनो के अन्तर्गत किसी तिथि तक) आवटित अश तथा उक्त तिथि तक प्राप्त रोकड इस प्रकार थी —

विवरण	अशो की सख्या	प्रत्येक अश का अकित मूल्य	प्राप्त रोकड
(क) नगद भुगतान की शर्त पर आवटित	अधिमान*		
(ख) नगदी के अलावा अन्य रीति से पूर्णत शोधित अश के रूप में आवटित। जिस	साधारण		
प्रतिफल पर आवटित किये गये हैं वे निम्नलिखित हैं	अधिमान*		
	साधारण		
(ग) प्रति अश—रुपये के लिए अशत शोधित अश जिस प्रतिफल पर व उक्त रूप में आवटित किये गये वह निम्नलिखित है —	अधिमान*		
	साधारण		
(घ) प्रति अश————रुपये की छूट पर आवटित	अधिमान*		
	साधारण		
	योग		

२ उक्त तिथि तक कम्पनी की प्राप्तिया तथा भुगतान इस प्रकार हैं —

* विमोचन योग्य अधिमान अशों का, प्रत्येक अवस्था में, विशेष उल्लेख होना चाहिए ।

प्राप्तियां (Receipts)	रुपये	भुगतान (Payments)	रुपये
अंश		प्रारम्भिक व्यय	
अधिमान		अंशों की बिक्री पर कमीशन	
साधारण		अंशों पर छूट (Discount)	
अंश निक्षेप		पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure)	
ऋणपत्र		भूमि	
ऋण		भवन	
निक्षेप		प्लांट	
अन्य स्रोत		मशीन	
		अविक्रेय स्कन्ध (Dead stock)	
		अन्य मद (उनका उल्लेख करो)	
		शेष	
		हाथ में	
		बैंक में	
योग		योग	

३ प्रविवरण पत्रिका या उसके बदले के विवरण में अनुमानित

प्रारम्भिक व्यय————————रुपये

उक्त तिथि तक किये गये प्रारम्भिक व्यय————————

विधि प्रभार (Law Charges)————

मुद्रण ————————

पंजीयन (Registration)————

विज्ञापन ————

अंश विक्रय पर कमीशन ————

अंश विक्रय पर छूट ————

अन्य प्रारम्भिक व्यय ————

योग

४. कम्पनी के संचालकों, अंकेक्षकों (यदि हों) प्रबन्ध अभिकर्ताओं, सचिवों और कोषाध्यक्षों, प्रबन्धकों (यदि हों) तथा सचिव के नाम, पते तथा जीविका और निगमन की तिथि के पश्चात् यदि उनमें कोई परिवर्तन हुए हों तो, इस प्रकार हैं —

संचालक

नाम	पता	जीविका	यदि कोई परिवर्तन हुए[1] हों तो उनका विवरण

अवेक्षक

नाम	पता	जीविका	यदि कोई परिवर्तन हुए[1] हों तो उनका विवरण

प्रबन्ध अभिकर्ता तथा प्रबन्धक

नाम	पता	जीविका	यदि कोई परिवर्तन हुए[1] हों तो उनका विवरण ।

सचिव

नाम	पता	जीविका	यदि कोई परिवर्तन हुए[1] हों तो उनका विवरण ।

५ इन अनुबन्धों के विवरण जिनमें किये गये परिवर्तन सभा के सम्मुख पुष्टि के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले हैं, और किये गये परिवर्तन या परिवर्तनों का विवरण।

६ अभिगोपन अनुबन्ध किस हद तक कार्यान्वित किये गये हैं।

[1] इन विवरणों में परिवर्तन की तिथियाँ अवश्य होनी चाहिएं।

७ सचालक, प्रबन्ध अभिकर्ताओ, सचिवो और कोषाध्यक्षो तथा प्रबन्धक से याचना (Call) के मद में यदि कोई बकाया हो तो उसकी रकम।

८. अशो के निर्गमन या विक्रय के सम्बन्ध में किसी सचालक, प्रबन्ध अभिकर्ता या प्रबन्धक का दिये गये या दिये जाने वाले कमीशन या दलाली की रकम का विवरण। यदि प्रबन्ध अभिकर्ता फर्म है तो इसके किसी साझी को दी गयी उक्त रकम अथवा यदि प्रबन्ध अभिकर्ता निजी कम्पनी है तो इसके किसी सचालक को दी गयी रकम।

तिथि आज १९५ के——के——वें दिवस।

हम प्रतिवेदन को प्रमाणित करते हैं।

दो या अधिक सचालक

सचालक मण्डल का सभापति

(यदि वह सचालक मण्डल द्वारा प्राधिकृत है तो)

हम प्रमाणित करते हैं कि प्रतिवेदन का वह अश, जिसका सम्बन्ध कम्पनी द्वारा आवटित अशो तथा उसके प्रसग में प्राप्त नगदी से है तथा कम्पनी के द्वारा प्राप्ति तथा भुगतान (Receipts and Payments) से है, सही है।

आज १९५ के——————के——————वें दिवस

अकेक्षक

साविधिक सभा का अधिवेशन बुलाने के लिए जो सूचना दी जाती है उसका रूप इस प्रकार होगा —

साविधिक सभा की सूचना

यह सूचित किया जाता है कि कम्पनी अधिनियम की धारा १७१ के अधीन आवश्यक साविधिक सभा का अधिवेशन कम्पनी के पजीयित कार्यालय में ——————१९५ के——————के——————वें दिवस सध्या के——बजे (मा म) होगा।

मण्डल की आज्ञानुसार

सचिव

कार्यसूची :

१. अधिवेशन किये जाने के सम्बन्ध में सूचना को पढना—सदस्यों का भेजा गया साविधिक प्रतिवेदन पठित माना जा सकता है।

२ सभापति द्वारा उस उद्देश्य की व्याख्या जिसके निमित्त अधिनियम की धारा १७१ के अधीन सभा बुलायी गयी है।

३ कम्पनी की साधारण स्थिति के सम्बन्ध में सभापति का वक्तव्य (Statement)।

कम्पनी के जो सदस्य सभा में उपस्थित होते हैं, उन्हें कम्पनी निर्माण के सम्बन्ध में या प्रतिवेदन से नि:सृत किसी भी विषय का विवेचन करने की स्वतन्त्रता है। सभा की समाप्ति पर सचिव सभा का कार्यविवरण लिखेगा।

साविधिक सभा का कार्य विवरण

————कम्पनी लिमिटेड की साविधिक सभा का कार्य विवरण जो ————१९५ के————के————वें दिवस सन्ध्या के ————बजे हुई।

उपस्थित

१ श्री————————सभापति।
२ श्री————————स्वय। प्रतिपुरुष (Proxy) द्वारा
३ श्री————————स्वय। प्रतिपुरुष (Proxy) द्वारा
४ श्री————
५ श्री————

सचिव ने सभा आयोजन सम्बन्धी सूचना पढी, तथा कम्पनी अधिनियम की धारा १६५ द्वारा अभीप्सित साविधिक प्रतिवेदन, जो सदस्यो को यथाविधि वितरित किया जा चुका था, पठित मान लिया गया।

सभापति ने उपस्थित सदस्यो को सूचित किया कि एक सूची, जिसमे कम्पनी के सदस्यो के नाम, जीविका तथा पते और उनके द्वारा गृहीत अशो की सख्या का उल्लेख है, निरीक्षण के लिए प्रस्तुत है, तथा वह अधिवेशन काल मे किसी भी समय किसी भी सदस्य के लिए उपलब्ध हो सकेगी। उन्होंने सदस्यो को कम्पनी की साधारण स्थिति भी, जैसी कि साविधिक प्रतिवेदन से प्रकट होती है, स्पष्ट की और सदस्यो को बताया कि उन्हें उक्त प्रतिवेदन से नि सृत कम्पनी निर्माण से सम्बद्ध किसी भी विषयका विवेचन, चाहे तत्सम्बन्धी पूर्व-सूचना दी गयी हो अथवा नही, करने की स्वतन्त्रता है और उन्होने सदस्यो को विवेचन के लिए आमन्त्रित किया, इस पर कतिपय सदस्यो ने उक्त विषयों पर कुछ प्रश्न किये जिनके उत्तर सचिव ने सन्तोषजनक रीति से दिये। तत्पश्चात् सक्षिप्त विवेचन के उपरान्त साविधिक प्रतिवेदन अगीकृत कर लिया गया।

सभापति को धन्यवाद देने के पश्चात् अधिवेशन की समाप्ति हुई।

साधारण या वार्षिक बृहत सभा—यह कम्पनी के सदस्यो की बृहत् सभा है जो निगमन तिथि से १८ महीने के अन्दर करनी अनिवार्य है। बाद मे वार्षिक बृहत्सभाए, पहले वाली वार्षिक बृहत्सभा से १५ मास के भीतर अवश्य होनी चाहिए, पर यह कपनी के वित्तीय वर्ष की समाप्ति से ९ मास के भीतर भी होनी चाहिए साधारण बृहत् सभा म अन्तर्नियमो म उल्लिखित बधे-बधाये कार्यों का ही सम्पादन किया जाता है। इन कार्यो की प्रकृति इस प्रकार है—सचालकों तथा अकेक्षको के प्रतिवेदनो की प्राप्ति, लेखाओ तथा स्थितिविवरण (Balance sheet) पर विचार, लाभाश की अनुमति (Sanction), सचालकों तथा अकेक्षको की नियुक्ति तथा अकेक्षको के पारिश्रमिक का निर्धारण। अधिवेशन के लिए २१ पूरे दिनो की सूचना अनिवार्य है और सूचना के साथ कम्पनी की उस वर्ष की स्थिति पर सचालको का प्रतिवेदन तथा लेखाओ (Accounts) की अकेक्षित प्रति

भेजना भी अनिवार्य है। प्रथा यह है कि सूचना के अनुसार प्रतिपुरुष (Proxy) का एक प्रपत्र (Form) भेज दिया जाता है, ताकि जो सदस्य-स्वयं उपस्थित होने में असमर्थ हैं, वे अपने प्रतिपुरुष नियुक्त कर सकें। ऐसा तभी हो सकता है जब अन्तर्नियम प्रतिपुरुष के व्यवहृत किये जाने की अनुमति देते हों।

वार्षिक बृहत् सभा की सूचना

————————कम्पनी लिमिटेड

सूचित किया जाता है कि ————————कम्पनी लिमिटेड के अंशधारियों की सत्रहवीं वार्षिक बृहत् सभा का अधिवेशन कम्पनी के पंजीयित कार्यालय में बुधवार १८ अप्रैल, १९५६ को सन्ध्या के ५ बजे (मा. स.) होगा जिसमें निम्नलिखित कार्य सम्पादित किये जायेंगे।

द्रष्टव्य कम्पनी की हस्तान्तर पुस्तकें————————से————————तक (दोनों दिन मिलाकर) बन्द रहेंगी।

१ सचालकों का प्रतिवेदन————————तिथि तक के अंकेक्षित स्थिति-विवरण तथा लाभहानि लेखे की प्राप्ति और अंगीकार करना।

२ लाभांश घोषित करना।

३ जो सचालक क्रमानुसार निवृत्त होते हैं, लेकिन पुनर्निर्वाचन के योग्य हैं, उनके स्थान पर सचालकों का चुनाव।

४ अगले वर्ष के लिए अंकेक्षक नियुक्त करना और उनका प्रतिफल निश्चित करना।

५. अन्य कार्य, जो सभापति की अनुमति से सभा के समक्ष उपस्थित किया जाए, सम्पादित करना।

मण्डल की आज्ञानुसार

सचिव

सचिव आमतौर से सभापति से मिलकर सचालकों का प्रतिवेदन तैयार करता है, जिसमें धारा २१७ में अपेक्षित विषयों की चर्चा होती है। जब इस प्रतिवेदन की पुष्टि हो जाती है, तब सचिव सूचना, स्थिति-विवरण तथा लाभ-हानि लेखे के साथ ही इसे मुद्रित करवा लेगा। सचालक सभा की तिथि तथा हस्तान्तरण पुस्तिका के बन्द रहने की अवधि निर्धारित करेंगे। सचालकों के प्रतिवेदन का नमूना नीचे दिया जाता है।

सचालकों का प्रतिवेदन

महाशय,

आपकी कम्पनी के सचालकों को————————को समाप्त होने वाले वर्ष का अंकेक्षित लेखा विवरण आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हर्ष होता है। सभी उपरि-व्ययों (Overhead charges) तथा ब्याज-सन व्यय चुकता कर देने के पश्चात् आगम (Revenue) लाभ की राशि————————रुपये है। अवक्षयण (Depreciation) के निमित्त राशि निकाल देने के बाद————————रुपये बच रहते हैं, जिसमें विगत वर्ष का शेष जो————————रुपये है, जोड़ने के पश्चात्

कुल योग————————रुपये हो जाता है, जिसके सम्बन्ध में आपके संचालक निम्नलिखित सिफारिश करते हैं —

इस वर्ष अन्तिम लाभांश का शोधन
प्रति अंश————————रुपये वाले——————पूर्णत
शोधित अधिमान अंशों पर————————रुपये
अंश की दर से ———रुपये।

————————रुपये वाले————————अंशत शोधित
अधिमान अंशों पर, जिन पर————————रुपये प्रति
अंश शोधित है,————————रुपये वार्षिक देकर यानी
प्रति अंश————————रुपये की दर से ————————रुपये

पूर्णत शोधित————————साधारण
अंशों पर प्रति अंश———————— की दर से
प्रति अंश————————रुपये ———रुपये
अंशत शोधित साधारण अंशों पर जिन पर प्रति अंश————रुपये शोधित है,
प्रति अंश————————रुपये की दर से ———रुपये

इस सब लाभांश की तथा उस लाभांश की जिसकी सिफारिश
अंशत शोधित अंशों पर————————को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए
संचालकों ने————————को समाप्त होने वाले वर्ष के अंकेक्षित लेखों के विवरणों के साथ संलग्न

संचालक प्रतिवेदन में की है,
कुल रकम————रुपये प्रति अंशत शोधित अधिमान
अंश तथा————रुपये प्रति अंशत शोधित
साधारण अंश की दर से——— ० होती है।
यह राशि लाभांश उन लोगों को तिथि————————को तथा उसके उपरान्त चुकायी जायगी, जिनके नाम कम्पनी की पुस्तकों में तिथि———— को प्रविष्ट थे।
कराधान के लिए संचिति में स्थानान्तरित————————रुपये
साधारण संचिति म स्थानान्तरित————————रुपये

————————रुपये

शेष ————————रुपये अग्रेनीत (Carried forward)

फैक्टरियों का अपेक्षित विस्तार विलम्बित हो गया है, इसका कारण है विनिमय कठिनाइयों के कारण कम्पनी को विदेशों से मशीन प्राप्त न हो सकना।

निर्मिति की लागत बढती गयी है और सरकार को कीमत सशोधन के लिए आवेदन-पत्र दिया गया है।

संचालक मण्डल की आज्ञा से
सभापति

तिथि ————

सभापति का भाषण—सभी सदस्यों के पास सूचना तथा वार्षिक लेखाओ के भेज दिये जाने के बाद सचिव के जिम्मे सभापति के भाषण का प्रारूप तैयार करने का काम आ पडता है। यह भाषण वार्षिक सभा म वह उस समय देता है जब वह अकेक्षित लेखे तथा सचालको का प्रतिवेदन अगीकरण के लिए प्रस्तुत करता है। बहुधा यह भाषण लम्बा होता है, जिसमें कम्पनी के कार्य के लगभग सभी पहलुओ की चर्चा होती है। सभापति अपना भाषण प्राय देश तथा विदेश की राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति के साधारण सिंहावलोकन से शुरू करता है तथा देश के सम्बन्ध मे सरकार की आर्थिक तथा औद्योगिक विकास से सम्बन्धित नीति से भी अपने श्रोताओ को अवगत कराता है, वह यह भी बताता है कि सरकार की नीति का कम्पनी के कार्य पर क्या प्रभाव पडा। इसके बाद सभापति के भाषण में उन विषयो की चर्चा होती है जिनका कम्पनी, इसकी सफलताओ तथा कठिनाइयों से सम्बन्ध रहता है तथा वह इन कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए सुझाव उपस्थित करता है तथा कम्पनी के भविष्यत कार्य के विषय में शुभाशा प्रकट करता है। वह वार्षिक लेखाओ की व्याख्या भी कर सकता है। सभा से पहले सचिव सचालन में सभापति की सहायता करने के लिए विस्तृत कार्य-सूची तैयार करता है।

यदि अन्तर्नियम प्रतिपुरुप (Proxies) के व्यवहृत किये जाने की अनुमति देते है तो यथाविधि भरे जाने पर सचिव के पास वे भेजे जायेंगे। सचिव यह देखने के लिए उनकी परीक्षा करेगा कि उनमें कुछ गोलमाल तो नही है। मतदान (Polling) का प्रबन्ध किया जाएगा। प्रत्येक सदस्य के पास सूचना के साथ प्राय वह मतपत्र (voting card) भेजा जाता है। सभा मे जाने के लिए अनुमति प्राप्त करने के पूर्व सदस्यो द्वारा इसका हस्ताक्षरित किया जाना अनिवार्य है। मतपत्र तथा प्रतिपुरुप के प्रपत्र नीचे दिये जाते हैं।

मत पत्र (Voting Card) का प्रपत्र

क्रम सख्या————

————————कम्पनी लिमिटेड

————महीना १९५ के———————— के दिवस प्रात।मध्या————बजे (मा स) सम्पन्न होने वाली अशधारियो की वार्षिक सभा।

सदस्य

प्रतिपुरुष (Proxy) का प्रपत्र

————————कम्पनी लिमिटेड।

मैं————————का निवासी————————उक्त कम्पनी का सदस्य हूँ और इस धारा————————के निवासी श्री————————को और यदि वे न आवे तो————————के निवासी श्री————————को अपनी ओर से वार्षिक साधारण। कम्पनी की किसी अन्य साधारण वृहत् सभा में मत देने के लिए प्रतिपुरुष नियुक्त करता हूँ।

साक्षी

नाम————————

तिथि————————को होने वाली कम्पनी की सभा तथा उसके किसी स्थगन (Adjournment) में होने वाली सभा।

हस्ताक्षर किया आज————————महीने १९५ के————————व दिवस

हस्ताक्षर

पता————————

संख्या————————से————————तक

अंशों का धारक (अधिमानात्मसाधारण)

सभा में सचिव सभा आयोजन सम्बन्धी सूचना तथा अंकेक्षक प्रतिवेदन पढ़ता है। अधिवेशन काल में वह सभापति की सहायता करता है तथा उन सब की सेवा करता है जिन्हें उसकी आवश्यकता होती है। अधिवेशन में वह कार्यवाही की विस्तृत बात लिख लेता है ताकि सभा की समाप्ति पर कार्य विवरण प्रस्तुत कर सके।

वार्षिक बृहत्सभा का विवरण

कम्पनी की सतहवीं वृहत् सभा————————को————————बजे सम्पन्न हुई।

निम्न व्यक्ति उपस्थित थे।

१ श्री————————सभापति

२ श्री————————

३ श्री————————

४ श्री————————

श्री————————जो संचालक मण्डल के सभापति हैं, और अन्तर्नियम संख्या————————के अधीन सभापतित्व के लिए अधिकारी थे, सभापति हुए (अथवा श्री————————अध्यक्ष चुन गये।)

१ सभा आयोजन सम्बन्धी सूचना सचिव द्वारा पढ़ी गयी।

२ विगत सभा के कार्य विवरण पठित, पुष्ट तथा हस्ताक्षरित हुए।

३ संचालकों के प्रतिवेदन तथा अंकेक्षकों द्वारा यथाविधि प्रमाणित लेखाओं को पठित माना गया।

४. अंकेक्षक का प्रतिवेदन पढ़ा गया।

५. सभापति द्वारा प्रस्तावित तथा श्री————द्वारा समर्थन होने पर यह सर्व सम्मति से निश्चित हुआ कि "प्रतिवेदन तथा लेखे, जो कम्पनी के अंकेक्षकों द्वारा अंकेक्षित तथा प्रमाणित हो चुके हैं, तथा जो————तिथि में कम्पनी की स्थिति को प्रदर्शित करते हैं, और सभा के समक्ष है, पुष्ट तथा अंगीकृत किये जाएँ।

६. श्री————द्वारा प्रस्तावित तथा श्री————द्वारा अनुमोदित होने पर यह निश्चय हुआ कि श्री————पुन कम्पनी के सचालक निर्वाचित हो।

७. सभापति ने प्रस्तावित किया तथा श्री————ने अनुमोदित किया और यह निश्चित हुआ कि अंकेक्षकों द्वारा सिफारिश किया गया लाभांश, अर्थात् साधारण अंशों पर————% लाभांश इस वर्ष के लिए स्वीकृत हों। लाभांश उन्हीं को दिये जाये जिनके नाम————को बही बन्दी के दिन सदस्य पंजी में प्रविष्ट थे।

८. श्री————द्वारा प्रस्तावित तथा श्री————द्वारा अनुमोदित होने पर यह निश्चित हुआ कि मेसर्स————चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स कम्पनी के अंकेक्षक पुनः निर्वाचित हों तथा उन्हें————रुपये पारिश्रमिक दिया जाय।

९. श्री————द्वारा प्रस्तावित तथा श्री————द्वारा अनुमोदित होने पर मण्डल को धन्यवाद देने के उपरान्त सभा विसर्जित हुई। सभापति ने धन्यवाद का उचित उत्तर दिया।

————

सभापति

जब कार्य विवरण का प्रारूप सभापति द्वारा पुष्ट तथा हस्ताक्षरित हो जाता है तब सचिव को सभा में अंगीकृत विभिन्न संकल्पों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक कदम उठाने पड़ते हैं। एक मुख्य कार्य है लाभांश सूचि (Divident list) तथा लाभांश अधिपत्र (Warrants) तैयार करना तथा सदस्यों के पास पत्र भेजना। लाभांश सूची सदस्य पंजी में तैयार की जाती है, तथा सावधानी से उसकी जाँच की जाती है। इस प्रकार की सूची का प्रपत्र नीचे दिया जाता है।

लाभांश सूचि

प्रति अंश———रुपये की दर से———अंश के लिए साधारण लाभांश

प्रपंजी (ledger)	अधिपत्र	अंशधारी का		लाभांश किसको	अंश	कुल	आयकर	शुद्ध लाभांश	विशेष
पृ० सं०	संख्या	नाम	पता	चुकाया जायगा	पूंजी	लाभांश			विवरण
					रु०	रु०	रु०		

जब कई वर्गों के अंशों पर एक ही बार लाभांश का भुगतान करना है तब प्रत्येक वर्ग के अंश के लिए अलग लाभांश सूची बनानी होगी। अधिपत्र (Warrant) का प्रपत्र नीचे दिया जाता है—

लाभांश अधिपत्र

————कम्पनी लिमिटेड।

मानवी साधारण लाभांश — अधिपत्र संख्या————

दिल्ली

————१९५

—वर्ष के लिए अधिपत्र जो तिथि————से————१९५ तक प्रति अंश————% की दर से————साधारण अंश पर आयकर से मुक्त लाभांश है। यह लाभांश इस कम्पनी में————१९५ में पंजीयित अंशों के लिए है जो श्री————के नाम में हैं।

यह लाभांश तिथि १९५ को सम्पन्न हुई वार्षिक बृहत् सभा में घोषित किया गया था।

हम प्रमाणित करते हैं—

१ कि कम्पनी के अनुमान के अनुसार उक्त अवधि के लाभ में से भारत में १०० % और पाकिस्तान में शून्य, आयकर का भागी है और

२ भारत में कम्पनी के विगत पूर्ण निर्धारण (Last completed Assessment) के अनुसार भारत तथा पाकिस्तान में लाभों के वे प्रतिशत जिन पर आय कर लगाए जा सकते हैं, क्रमशः १००% तथा शून्य (nil) है, और

३ सम्पूर्ण लाभ (Profit) तथा नफा (Gains) पर जिस पर आयकर लगाया जा सकता है तथा जिस लाभ का यह लाभांश एक हिस्सा है, हम लोगों द्वारा भारत सरकार को आयकर चुका दिया गया है या चुका दिया जायगा।

वास्ते————कम्पनी लिमिटेड

वास्ते————कम्पनी लिमिटेड

संचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता

(हकदार द्वारा हस्ताक्षरित होने के लिए)

मैं प्रमाणित करता हूँ कि उपर्युक्त लाभांश उन अंशों से सम्बद्ध है जो——— १९५ को, जब लाभांश घोषित किया गया था, मेरी अपनी सम्पत्ति थे तथा—— ————————के कब्जे में थे।

तिथि ——————— हस्ताक्षर

टिप्पणी——इतना हिस्सा अंशधारी द्वारा फाड़कर रख लिया जायगा और आय कर के विवरण पत्र में लगाने के लिए और आयकर वापिस मांगने के लिए रख लिया जायगा।

————कम्पनी लिमिटेड

लाभांश अधिपत्र संख्या——————

उक्त नाम की कम्पनी से————रुपये (पाये जो वर्ष १९५—) के लिए उन अंशों पर लाभांश हैं जिनका लाभांश अधिपत्र क्रमांक————में उल्लेख है।

तिथि——————— अंशधारी का हस्ताक्षर

असाधारण बृहत सभा (Extra-Ordinary General Meeting)—यह कम्पनी के सदस्यों की वह बृहत् सभा है जो संचालकों द्वारा कोई ऐसा विशेष या आवश्यक कार्य करने के लिए बुलायी जाती है जो आगामी साधारण सभा के अधिवेशन के पहले कराना आवश्यक है। यदि शोधित पूँजी के $\frac{1}{10}$ अंशधारी अधियाचन (Requisition) करें, तब भी संचालकों द्वारा यह सभा बुलायी जा सकती है। यदि अधियाचन पत्र के दिये जाने के २१ दिनों के अन्दर संचालक उक्त सभा नहीं बुलाते हैं, तो अधियाचक (Requisitionists) या उनमें से बहुसंख्यक अधियाचक अधियाचन पत्र देने के तीन महीने के अन्दर यह सभा बुला सकते हैं। अधियाचकों द्वारा व्यय किया गया उचित खर्च कम्पनी द्वारा चुका दिया जाएगा और कम्पनी यह खर्च संचालकों से वसूल करती है। सभा के अधिवेशन के कम से कम २१ दिन पहले प्रत्येक सदस्य को अधिवेशन की सूचना मिल जानी चाहिए। यदि अधिवेशन में विशेष संकल्प (Special Resolution) प्रस्तुत किये जाते हैं तो यह सूचना २८ दिन की होगी। सूचना में सभा के बुलाये जाने का उद्देश्य उल्लिखित होना चाहिए, और यदि विशेष संकल्प रखा जायगा तो सूचना के साथ इस संकल्प का होना भी अनिवार्य है। विभिन्न परिस्थितियों में असाधारण सभा के आयोजन के लिए सूचनाओं के कतिपय प्रपत्र नीचे दिये जाते हैं।

असाधारण सभा आयोजन की सूचना का प्रपत्र

पूंजी घटाने के लिए विशेष संकल्प

अंगीकृत करने के वास्ते बृहत् अधिवेशन।

————कम्पनी लिमिटेड।

इस द्वारा सूचित किया जाता है कि तिथि——————को अपराह्ण में इस कम्पनी के सदस्यों की एक असाधारण वृहत् सभा होगी, जिसमें संलग्न विशेष संकल्प स्वीकृत किये जाने के लिए प्रस्तुत किया जायगा।

'तिथि——————को सम्पन्न असाधारण सभा में नियुक्त की गयी जाँच समिति (Investigation Committee) द्वारा की गयी सिफारिश के अनुसार कम्पनी की साधारण अंश पूँजी घटाकर—रुपये से——रुपये की जाय। तथा १० रुपये के प्रत्येक पूर्णत शोधित साधारण अंश को ५ रुपये के पूर्णत शोधित अंश में न्यूनित कर दिया जाए तथा न्यायालय का न्यूनन की पुष्टि प्राप्त करने के लिए निवेदन किया जाए।'

मण्डल के आदेशानुसार

तिथि—————— सचिव

कम्पनी अधिनियम १९५६ की धारा ४८४ (१) (बी) के अन्तर्गत कम्पनी का स्वेच्छया समापित करने के निमित्त विशेष संकल्प अंगीकृत करने के लिए असाधारण वृहत् सभा की सूचना।

इस द्वारा सूचित किया जाता है कि तिथि——————को कम्पनी के पंजीयित कार्यालय में कम्पनी की एक असाधारण वृहत् सभा होगी जिसमें विशेष संकल्प के रूप में निम्नलिखित संकल्प प्रस्तावित किया जायगा, और यदि उचित जँचा तो अंगीकृत किया जाएगा।

१ निश्चित हुआ कि इस सभा के पूर्ण तुष्टि पर्यन्त यह प्रमाणित हो चुका है कि अपने दायित्वों (Liabilities) के कारण कम्पनी अपना व्यवसाय जारी नहीं रख सकती अतः इसका स्वच्छिक समापन वाञ्छनीय है।

२ आगे यह निश्चित हुआ कि श्री——————कम्पनी के समापन कार्य में——————के पारिश्रमिक पर कम्पनी निस्तारक (Liquidator) नियुक्त किये जाय।

मण्डल के आदेशानुसार

कम्पनी की असाधारण वृहत् सभा के लिए अधियाचन

सेवा में,
संचालक
——————कम्पनी लिमिटेड।

श्रीमान्

हम अब हस्ताक्षरकर्त्ता, जो कम्पनी की निर्गमित पूँजी के दसवें हिस्से अथवा अवस्थानुसार $\frac{1}{10}$ से अधिक के धारक हैं तथा जिस पर प्राप्य याचना तथा अन्य राशि चुका दी गयी है, चाहते हैं कि आप अविलम्ब निम्नलिखित कार्य (Agenda) के विचारार्थ कम्पनी की साधारण सभा बुलायें।

(यहाँ प्रस्तावित सभा की कार्य सूची या जिन उद्देश्यों से सभा बुलायी जा

रही हैं, वे दीजिए) ।

————————

————————

तिथि————अधियाचकों के हस्ताक्षर

अधियाचना के अनुसार संचालकों द्वारा आहूत असाधारण वृहत् सभा की सूचना ।

————कम्पनी लिमिटेड ।

सूचना दी जाती है कि अधियाचक सर्व श्री————तथा————आदि द्वारा दिनांक————के अधियाचन, जो इस कार्यालय में १९५ के————के————के दिवस प्रस्तुत किया गया, की पूर्ति के लिए कम्पनी के पंजीयित कार्यालय में १९५ के————के दिवस एक असाधारण वृहत् सभा होगी, जिसमें निम्नलिखित विषय पर विचार किया जाएगा :—

(यहाँ कार्य सूची दीजिए)

दिनांकित मण्डल की आज्ञानुसार

सचिव

(द्रष्टव्य)—यदि संचालक मण्डल अधियाचन के विषय में कुछ टिप्पणी देना चाहता है तो वह कार्य सूची के नीचे लिखी जा सकती है)

स्वतः अधियाचकों द्वारा आयोजित असाधारण वृहत् सभा की सूचना ।

सूचित किया जाता है कि कम्पनी की असाधारण सभा का अधिवेशन ————में १९५ के————के————के दिवस सन्ध्या/सुबह————बजे होगा, जिसमें निम्नलिखित असाधारण संकल्प प्रस्तावित किया जायगा और उचित जचा तो अंगीकृत किया जायगा ।

अधः हस्ताक्षरकर्त्ता द्वारा यह सभा कम्पनी अधिनियम की धारा १६९ (६) के अधीन आयोजित की जा रही है, क्योंकि संचालक————(तिथि) से जिस तिथि को, अधः हस्ताक्षर कर्त्ताओं ने जो निर्गमित पूंजी के दशमांश से अन्यून के धारक हैं और जिन्होंने देय सभी याचना राशि आदि चुका दी है, २१ दिन के अन्दर कम्पनी के पंजीयित कार्यालय में अधियाचन, जिसमें संचालकों से अविलम्ब कम्पनी की साधारण सभा बुलाने की प्रार्थना की गयी थी, जमा कर दिया था ।

————————

————————

आयोजकों के हस्ताक्षर

दिनांकित

सचिव को विस्तृत कार्यक्रम तैयार करना चाहिए जो सभापति द्वारा सभा संचालन के समय अनुसरणीय होगा । अधिवेशन के होने समय सचिव को सभा के वाद-विवाद को सावधानी से नोट करना चाहिए और बाद में इन्हीं की सहायता

से कार्य विवरण तैयार करना चाहिए जिसका रूप इस प्रकार हो सकता है :—

दिनांक————को————को पंजीयित कार्यालय में सम्पन्न हुई कम्पनी की साधारण सभा का कार्य विवरण।

(यहां उपस्थित अंशधारियों के जो स्वयं या प्रतिपुरुषत उपस्थित हों, नाम दीजिए।)

सचालक मंडल के सभापति————————जो कम्पनी के अन्तर्नियम संख्या————के अनुसार सभापति होने के हकदार थे, सभापति हुए।

१ विगत सभा का कार्य विवरण पठित और पुष्ट हुआ।
२ सभा आयोजन की सूचना पठित मानी गयी।
३ निम्नलिखित सकल्प विशेष सकल्प के रूप में प्रस्तावित तथा अंगीकृत हुए।
(१) निश्चित हुआ कि (यहां सम्पादित कार्य का उल्लेख कीजिए)।
(२) निश्चित हुआ कि (यहां सम्पादित कार्य का उल्लेख कीजिए)।

सभापति को धन्यवाद देने के उपरान्त सभा विसर्जित हुई।

तिथि———————— सभापति

सभाओं की कार्यविधि (Procedure) तथा सचालन (Conduct)—सभाओं में अनुसरणीय कार्यविधि का उल्लेख साधारणत कम्पनी के अन्तर्नियमों में रहता है। लेकिन अवांछनीय कृत्यों को खत्म करने या कम करने के निमित्त कम्पनी अधिनियम की धाराएं १७१–१८५ सभाओं तथा मतों से सम्बद्ध विषयों की विस्तृत व्यवस्था करती है। धारा १७१ किसी भी अधिवेशन के लिए (उस अधिवेशन को छोड़कर जिसमें विशेष सकल्प स्वीकृत होने को है और जिसके लिए २८ दिनों की सूचना अनिवार्य है) पूरे २१ दिनों की सूचना अनिवार्य ठहराती है। हां, यदि सूचना पाने के अधिकारी सभी सदस्य एकमत से सूचना की अवधि कम करना चाहें तो बात दूसरी है। आकस्मिक घटनाओं को छोड़कर, सूचना देने के सम्बन्ध में की गयी भूल या चूक के कारण अधिवेशन अवैध हो जाता है। यदि अधिवेशन में कोई विशेष कार्य सम्पादित होने को है, तो सूचना में उस विशेष कार्य का उल्लेख होना चाहिए अन्यथा स्वीकृत प्रस्ताव अवैध हो जायगा। यदि एक बार उचित रीत्या अधिवेशन आयोजित किया जा चुका हो तो सचालक उसे विखंडित नहीं कर सकते।

गणपूर्ति (Quorum)– किसी संस्था के सदस्यों की वह संख्या है जो किसी अधिवेशन में कार्य सम्पादन के लिए अनिवार्य है। अंशधारियों की सभाओं की गणपूर्ति, सामान्यतः, अन्तर्नियम द्वारा निर्धारित की जाती है। साथ, गणपूर्ति वाले सदस्यों का व्यक्तिगत रूप में उपस्थित होना अनिवार्य है। यदि तालिका ए प्रयुक्त नहीं होती हो और अन्तर्नियम इस सम्बन्ध में चुप हैं तो वैसी स्थिति में गणपूर्ति के लिए लोक कम्पनी की अवस्था में पांच तथा निजी कम्पनी की अवस्था में दो सदस्यों का व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होना अनिवार्य है। बिना गणपूर्ति के स्वीकृत

किया हुआ प्रस्ताव अवैध है, क्योंकि सभा ही वैसी हालत में अवैध है। हां, यदि सभा के सभी सदस्य उपस्थित हों तो बात दूसरी है।

मत तथा मतदान (Votes and Poll)—यदि अन्तर्नियम अन्यथा व्यवस्था न करते हों तो अंशधारी को एक अंश के लिए या सौ रुपये के स्कन्ध के लिए एक मत प्राप्त है। जब कम्पनी की कोई अंश पूंजी न हो तब प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है। वही व्यक्ति, जिसका नाम सदस्य पंजी में सदस्य रूप में दर्ज है, मत देने का अधिकारी है। मतदान हाथ दिखाकर अथवा मत पत्र द्वारा किया जा सकता है। व्यवहारतः सभापति हाथ प्रदर्शन करवाता है और प्रत्येक उपस्थित सदस्य एक मत का धारक समझा जाता है, चाहे उसके पास प्रति पुरुष (Proxy) ही क्यों न हो। लेकिन स्वतः या प्रति पुरुष के जरिए पांच उपस्थित व्यक्तियों द्वारा या सभा के सभापति द्वारा या किसी सदस्य या सदस्य समूह द्वारा, जो मताधिकारी निर्गमित पंजी के दसवें हिस्से से कम का धारक न हो मतदान (Poll) की मांग की जा सकती है। निजी कम्पनी हो तो वैसी स्थिति में जहां सात से अधिक सदस्य उपस्थित न हों एक सदस्य और जहां सात से अधिक सदस्य उपस्थित हों, वहां दो सदस्य मतदान की मांग कर सकते हैं। जब मतदान होता है, तब प्रत्येक सदस्य एक मत पत्र में संकल्प के पक्ष या विपक्ष में हस्ताक्षर करता है तथा प्रतिपुरुष गिना जाता है।

प्रतिपुरुष द्वारा मतदान (Polling by Proxy)—प्रतिपुरुष नियुक्तिकर्त्ता द्वारा हस्ताक्षरित एक लिखित प्रलेख है जिसमें दो आने का टिकट लगा होता है, जिस पर हस्ताक्षर करके नियुक्तिकर्त्ता कम्पनी की किसी सभा में किसी को अपने लिए मत देने का अधिकार प्रदान करता है। प्रति-पुरुष द्वारा मत देने का अधिकार कम्पनी अधिनियम की धारा १७६ द्वारा प्रदत्त है लेकिन अन्तर्नियमों में इस सम्बन्ध की प्रत्यक्ष व्यवस्था के जरिए यह अधिकार छीना जा सकता है। निजी कंपनी का सदस्य केवल एक प्रति पुरुष नियुक्त कर सकता है। प्रति पुरुष विवाद में हिस्सा नहीं ले सकता, केवल मत दे सकता है और वह भी तब ही जब मतदान हो। प्रति पुरुष के मतदान करने से पहले उससे प्रतिपुरुष अधिकार वापस लिया जा सकता है। जिस सदस्य ने प्रतिपुरुष नियुक्त किया है वह सभा में उपस्थित हो सकता है और मतदान कर सकता है। उसके द्वारा मतदान किये जाने पर प्रतिपुरुष द्वारा दिया हुआ मत रद्द कर दिया जायगा। प्रतिपुरुष जमा किये जाने के लिए निर्धारित अवधि बीतने के पहले यदि उसी व्यक्ति ने दो प्रतिपुरुष जमा किये हैं, तो दूसरा प्रतिपुरुष माना जायगा और जब एक प्रतिपुरुष अवधि बीतने के पहले और दूसरा अवधि बीत जाने के पश्चात् जमा किया गया है तो पहला माना जायगा।

सचिव द्वारा प्राप्त सभी प्रतिपुरुषों की सचिव द्वारा सावधानी से जांच की जानी चाहिए ताकि यह देखा जा सके कि सभी समय रहते जमा किये गये हैं, सभी उचित रूप से हस्ताक्षरित तथा मुद्रांकित हैं तथा सभी प्रतिपुरुषों के नाम सदस्य पंजी के नामों से मिलते हैं। जो प्रतिपुरुष नियमानुसार नहीं हैं, उनका रद्द हो जाना अनि-

वार्य है। अतएव प्रतिपुरुष की सूची निम्नलिखित रूप से तैयार की जानी चाहिए।

प्राप्त प्रतिपुरुषो की सूची

प्रतिपुरुष धारको के नाम के शीर्षक के नीचे अक्षरानुक्रम से व्यवस्थित

प्रतिपुरुष सख्या	प्रतिपुरुष-धारी का नाम	प्रतिपुरुष नियुक्ति कर्ता सदस्य का नाम	सदस्य पजी में पृष्ठ सख्या		मतो की सख्या	विशेष विवरण
			धारक	नियुक्तिकर्ता		

अधिनियम उस कम्पनी को, जो अन्य कम्पनी की सदस्य है, यह शक्ति देता है कि वह किसी व्यक्ति को सभा में उपस्थित होने का अधिकार दे और वह व्यक्ति कम्पनी की ओर से उन्ही अधिकारो का प्रयोग करे जिनका एक अशधारी करता है। इस आशय का प्रस्ताव सचालको द्वारा स्वीकृत किया जा सकता है।

सभापति (Chairman) —सभापति कम्पनी की सभाओं का एक आवश्यक अवयव है और प्राय अन्तर्नियमो द्वारा नियुक्त किया जाता है। लेकिन यदि अन्तर्नियमो द्वारा अध्यक्ष की नियुक्ति हो तो प्रत्येक सभा अपना सभापति चुनती है। सभापति सर्वदा कम्पनी का एक सदस्य ही होता है। चूकि सभापति सदस्यो द्वारा निर्वाचित किया जाता है, अत उसका यह अर्थ लगाया जाता है कि वे सदस्य, उसे उन्हे तथा अधिवेशनो को सचालित करने के लिए कुछ शक्तियां देते हैं। सभापति को सावधान होना चाहिए कि उसकी नियुक्ति नियमानुकूल हो तथा कि आयोजित सभा वैध हो। उसे यह भी सावधानी रखनी चाहिए कि सभा की कार्यवाही कार्य सूची के अनुसार होती है, हा यदि सभा की अनुमति से कार्य सूची परिवर्तित कर दी गई हो तो बात दूसरी है। उसे शान्ति कायम रखनी चाहिए तथा कार्यवाही नियमित रूप से सचालित करनी चाहिए और इस बात की निगरानी रखनी चाहिए कि सभा के सम्मुख उपस्थित प्रत्येक प्रश्न पर सभा का अभिमत निश्चित रूप से जान लिया जाए। सभापति के लिए इस बात की सतर्कता रखना कर्तव्य हो जाता है कि बहु-सख्यक लोग अल्प सख्यको की बात का सुनने से इन्कार नहीं करे, और सारे कार्य सभा की अधिकार परिधि के अन्तर्गत ही सम्पादित हों, और सारे निर्णय उचित रीति से हो। उसे किसी भी निर्णय की अनुमति तब तक नहीं देनी चाहिए जब तक प्रत्येक प्रस्ताव (Motion) अथवा उपपत्ति यथाविधि प्रस्थापित तथा अनुमोदित न हो जाए और न उसे अप्रासगिक विवेचन की ही अनुमति देनी चाहिए।

अपनी शक्तियो का प्रयोग करते हुए सभापति किसी भी अशधारी को बोलने से मना कर सकता है और सभा को स्थगित भी कर सकता है। किन्तु यदि सभापति सचाई नही बरतता और उस समय में सभा को समाप्ति कर देता है, यानी कार्य सम्पादित हुए बिना सभा छोड जाता है तो उस स्थिति में सभा दूसरा अध्यक्ष नियुक्त कर सकती है और कार्य को आगे बढा सकती है। पर्याप्त वादविवाद के उपरात

अध्यक्ष को सभा के सम्मुख प्रस्तुत मन्तव्यों या संशोधनों पर मत लेने का अधिकार है। यदि अन्तर्नियमों में तदनुकूल व्यवस्था हो तो सभापति को 'विवेचनात्मक मत' (Deliberative vote) के अतिरिक्त निर्णयात्मक मत (Casting Vote) भी प्राप्त होता है। निर्णयात्मक मत तभी दिया जा सकता है जब सभा के मत दो बराबर हिस्सों में विभाजित हों। विगत सभा का कार्य विवरण पठित तथा पुष्ट होने पर अध्यक्ष कार्य सूची के अनुसार सकल्प या उपपत्ति करने वाले व्यक्ति का नाम पुकारता है। सुझाव का स्वीकारात्मक (Affirmative) होना तथा विवेचन के पूर्व अनुमोदित होना अनिवार्य है। जब किसी प्रस्ताव (Motion) पर विवेचन हो जाता है तथा वह अंगीकृत हो जाता है तब वह सकल्प बन जाता है। सभी निर्णय सकल्प के रूप में अभिव्यक्त किये जाते हैं।

सकल्प—कम्पनी अधिनियम १९५६ में 'असाधारण सकल्प' नाम के सकल्पों को, जो भारतीय कम्पनी अधिनियम १९१३ के अधीन होते थे, खत्म कर दिया गया है। जिन मामलों में पुराने अधिनियम के अनुसार असाधारण सकल्प आवश्यक था उनमें से कुछ में नये अधिनियम के अनुसार विशेष सकल्प आवश्यक है। नये अधिनियम ने एक नये प्रकार के सकल्प जारी किये हैं जो विशेष सूचना अपेक्षित करने वाले सकल्प कहलाते हैं। इस प्रकार, अब वृहत सभा में जो सकल्प पास किये जा सकते हैं वे हैं (क) साधारण सकल्प, (ख) विशेष सकल्प, और (ग) विशेष सूचना अपेक्षित करने वाले सकल्प।

साधारण संकल्प (Ordinary Resolution) उन मतदाताओं के साधारण बहुमत से अंगीकृत होता है जो वृहत सभा में स्वय या प्रतिपुरुष के जरिए उपस्थित हों और जिस सभा की लिखित सूचना सदस्यों को २१ दिन पहले दी गयी हो। साधारण सकल्प प्रायः हाथ उठाकर अंगीकृत होता है, और यदि मतदान की माग की गयी हो तो अधिवेशन में दिये गये मतों को साधारण बहुसख्या द्वारा वह अंगीकृत होता है। लेखाओं, लाभांश स्वीकृति आदि कार्यों से सम्बद्ध साधारण कार्य के लिए साधारण सकल्प की आवश्यकता होती है। उन सभी अवस्थाओं में साधारण सकल्प पर्याप्त होते हैं, जिनमें विधि के द्वारा अभिव्यक्तन विशेष सकल्प या विशेष सूचना अपेक्षित करने वाला सकल्प अपेक्षित नहीं है।

वे अवस्थाएं जिनमें विशेष सकल्प आवश्यक है—निम्नलिखित अवस्थाओं में विशेष सकल्प आवश्यक है —

(१) कम्पनी के पंजीयित कार्यालय को एक से दूसरे राज्य में परिवर्तित करना या उद्देश्य खण्ड को परिवर्तित करना। न्यायालय द्वारा पुष्टि भी आवश्यक है (धारा १७)।

(२) कम्पनी के नाम में परिवर्तन : केन्द्रीय सरकार से अनुमोदन आवश्यक (धारा २१)।

(३) कम्पनी के अन्तर्नियमों में परिवर्तन (धारा ३१)।

(४) यह निश्चय कि पूंजी का कोई हिस्सा, जो अब तक याचित नहीं हुआ है, याचित नहीं किया जा सकता (धारा ९९)।

(५) अंश पूंजी का घटाना बशर्ते कि न्यायालय पुष्टि कर दे (धारा १००)।

(६) पंजीयित कार्यालय एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना (धारा १४६) में।

(७) धारा २०८ के अधीन संचित अंश पूंजी पर पूंजी में से ब्याज की अदायगी।

(८) कम्पनी द्वारा यह घोषणा कि इसके मामलों की जांच की जाए (धारा २३७)।

(९) किसी संचालक को देय पारिश्रमिक का निर्धारण (धारा ३०९)।

(१०) सीमानियम में ऐसा परिवर्तन जो इसके संचालकों, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं सचिवों और कार्याध्यक्षों या प्रबन्धक का दायित्व असीमित करता हो (धारा ३१३)

(११) घोर प्रमाद या कुप्रबन्ध के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को हटाना (धारा ३३१)।

(१२) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुमोदित होने पर शुद्ध लाभ के १० प्रतिशत से अतिरिक्त पारिश्रमिक।

(१३) प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके साथी की भारत से बाहर विक्रय या क्रय अभिकर्त्ता के रूप में नियुक्ति (धाराएं ३५६–३५८)।

(१४) कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उनके साथी के साथ, कम्पनी के लिये भारत से बाहर के स्थानों से काम लेने और किसी सम्पत्ति या सेवाओं की बिक्री और खरीद के लिये या अंशों या ऋण पत्रों के अभिगोपन के लिये संविदा करने के वास्ते (धाराएं ३५७–८६०)।

(१५) उसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता के प्रबन्ध के अधीन एक कम्पनी द्वारा दूसरी को ऋण (धारा ३७०)।

(१६) प्रबन्ध अभिकर्त्ता को ऐसे कारबार में भाग लेने की अनुज्ञा जो प्रबन्धित कम्पनी के कारबार का प्रतिस्पर्धी है (धारा ३७५)।

(१७) किसी कम्पनी का स्वेच्छया समापन (धारा ८८४)।

(१८) किसी कम्पनी का स्वेच्छया समापन पूरा होने के बाद पुस्तकों और कागजों का व्ययन (disposal)।

विशेष सूचना अपेक्षित करने वाला संकल्प—यह संकल्प तब पास किया जा सकता है जब कम्पनी को ऐसा संकल्प प्रस्तावित करने के आशय की सूचना २८ दिन पहले दे दी गयी हो और कम्पनी ने अपने सदस्यों को संकल्प की २१ दिन की सूचना दे दी हो।

किसी संकल्प के लिए निम्नलिखित अवस्थाओं में विशेष सूचना अपेक्षित होगी—वार्षिक वृहत् सभा में निवृत्त होने वाले अंकेक्षक के अतिरिक्त किसी व्यक्ति को अंकेक्षक नियुक्त करने के लिये या यह उपबन्ध करने के लिये कि निवृत्त होने वाला अंकेक्षक पुनर्नियुक्त नहीं किया जाएगा (धारा २२५)।

(२) कुछ व्यक्तियों को धारा २६१ में लिखित रीति से सचालक नियुक्त करने के लिये ।

(३) यह घोषणा करने के लिये कि ६५ वर्ष की आयु सीमा किसी विशिष्ट सचालक पर लागू नहीं होगी, (धारा २८१)

(४) किसी सचालक को उसके पद की अवधि व्यतीत होने से पहले हटाने के लिए (धारा २८४) ।

(५) कपनी द्वारा हटाये गये सचालक के स्थान पर कोई और सचालक नियुक्त करने के लिए (धारा २८४) ।

विशेष सकल्प (Special Resolution) वह सकल्प है जो मताधिकारी सदस्यों के तीन-चौथाई बहुमत से अगीकृत हो और ऐसे सदस्य स्वत या प्रति-पुरुष के जरिए उस बृहत् सभा म उपस्थित हैं जिसकी सूचना विधिवत् २१ दिन पहले सदस्यो को दे दी गयी हो और सूचना के साथ सकल्प का विशेष सकल्प के रूप म प्रस्था-पित करने का इरादा भी सूचित कर दिया गया हो । यदि ९५ से १०० प्रतिशत तक सदस्य सहमत हों तो २१ दिनों से कम की सूचना पर विशेष सकल्प स्वीकृत किया जा सकता है ।

इन तीन कोटि के सकल्पो के अतिरिक्त ऐसे भी सकल्प हैं जिनके लिए विशेष कोटि के बहुमतों की आवश्यकता होती है, उदाहरण के लिए, जब कम्पनी तथा उसके उत्तमर्णों या उसके सदस्यो के बीच समझौता या किसी प्रकार का प्रबन्ध प्रस्थापित हो तब । ऐसी स्थिति में न्यायालय उत्तमर्णों या सदस्यों की (जैसी भी स्थिति हो) सभा करने की आज्ञा देगा । ऐसी सभा में उत्तमर्णों (Creditors) या सदस्यों का, जो स्वय उपस्थित हों या प्रतिपुरुष रूप में हों, मूल्य की दृष्टि से तीन-चौथाई बहुमत समझौते या प्रबन्ध से सहमत होना चाहिए और तब वह सभी पक्षों के लिए बाध्य होगा ।

विशेष सकल्प के विधिवत् अगीकृत होने के बाद १५ दिनों के भीतर इसकी एक प्रति पजीकर्ता के यहा जमा कर देना अनिवार्य है ।

विशेष सकल्प के हस्ताक्षरण के प्रपत्र का नमूना

————————कम्पनी लिमिटेड का

विशेष सकल्प

कम्पनी अधिनियम १९५६

(देखिए धारा १९२ (४)) ।

सकल्प को विशेष सकल्प के रूप में प्रस्थापित करने के इरादे का उल्लेख करने वाली सूचना भेजने की तिथि

अगीकृत————१९५ ————

हस्ताक्षरण शुल्क ३ रुपये ।

कपनी का नाम

हस्ताक्षरण के लिए प्रस्तुत करने वाले का नाम————

सेवा में,

पंजीकर्त्ता, संयुक्त स्कन्ध कम्पनी,————

उक्त कम्पनी की एक वृहत् सभा में जो———शहर के———
(स्थान में) १९५ ————के———— महीने के————वें
दिवस सम्पन्न हुई। निम्नलिखित विशेष संकल्प विधिवत् अंगीकृत हुआ।
निश्चित हुआ कि————————————

————————————

हस्ताक्षर————
पद————
(सचालक या प्रबन्धक या सचिव या अन्य जो भी हो वह लिखिए)
दिनांकित १९५ ————के————महीने के———वा दिवस

संशोधन (Amendments)—संशोधन मूल प्रस्ताव में जो विचाराधीन है, सुधार है, जो नये शब्द जोड़ने, कुछ शब्द हटाने, अथवा किसी अन्य रीति से रूपभेद के द्वारा किया जाता है। संशोधन मूल उपपत्ति से सम्बद्ध होना चाहिए। वह मूल संकल्प के लिए मत की माग किये जाने से पहले ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए, केवल नकारात्मक ही न होना चाहिए तथा सूचना के क्षेत्र के अन्तर्गत होना चाहिए। संशोधन का संशोधन भी प्रस्तुत किया जा सकता है लेकिन साधारणतया व्यक्ति एक से अधिक संशोधन नहीं प्रस्तुत कर सकता। सभा की अनुमति के बिना इसे वापिस नहीं लिया जा सकता। जब संशोधन अनेक हों तब ऐसी हालत में सभापति वक्ताओं के क्रम का निर्णय करेगा। जब सभापति वाद-विवाद के लिए उचित समय दे चुका है, तब वह प्रस्तुत किये गये संशोधन पर मत की माग करेगा। यदि इस पर बहुमत प्राप्त हुआ तो मूल प्रस्ताव में तदनुसार परिवर्तन किया जाएगा, और संशोधित प्रस्ताव तब (Revised Motion) मूल प्रस्ताव (Substantive Motion) हो जाता है।

समाप्ति (Closure)—वैध रूप से उपस्थित प्रत्येक सदस्य को प्रस्ताव या संशोधन पर बोलने का अधिकार है लेकिन प्रस्तावक को उत्तर देने का अधिकार है। जब सुझाव या संशोधन पर वाद-विवाद अनावश्यक रूप से लम्बा हो जाए तो कोई भी सदस्य इन शब्दों में समाप्ति की माग कर सकता है "अब प्रश्न पर मत लीजिए।" यदि यह प्रस्ताव अनुमोदित हो जाए तो सभापति प्रश्न पर मत की माग करता है और बहुमत प्राप्त हो जाने पर उक्त विवाद पर रोक लग जाती है। जब कोई उपपत्ति प्रस्तावित तथा अनुमोदित की जाती है लेकिन व्यापक हित की दृष्टि से इस पर विवेचना वांछनीय नहीं है, तब ऐसी स्थिति में कोई भी सदस्य इन शब्दों में "रोक प्रस्ताव" (Previous question) प्रस्तुत कर सकता है :- "अभी यह प्रश्न नहीं प्रस्तुत किया जाय"। जब यह अनुमोदित हो जाय तब अध्यक्ष इसे सभा में प्रस्तुत करता है, और तब इस पर वाद-विवाद हो सकता है। लेकिन इस पर कोई संशोधन नहीं आ सकता। इसे सब कार्यों से पहले निबटाया जाता है, या स्वीकृत हो जाए तो मूल प्रस्ताव सदा के लिए रह जाता है।

अगला काम (Next Business)—कभी कभी किसी प्रस्ताव पर निर्णय न होने देने के लिए चलत वाद-विवाद को बीच में ही छोड़ देना आवश्यक हो जा सकता है। वैसी हालत में इस आशय का एक संकल्प प्रस्तुत किया जा सकता है कि "सभा अब अगले प्रश्न पर विचार करती है।" यदि यह अनुमोदित हो गया तो यह बिना किसी विवाद के मतदान के लिए प्रस्तुत किया जाता है, यदि स्वीकृत हो गया तो मूल प्रस्ताव पर विचार त्याग दिया जाता है और यदि अस्वीकृत हो गया तो वाद-विवाद आगे आरम्भ हो जाता है।

विलम्बन (Postponement)—यदि चर्चा के दरम्यान यह प्रतीत हुआ कि प्रस्ताव पर उचित निर्णय के लिए अधिक जानकारी की आवश्यकता है तो इन शब्दों में विलम्बन प्रस्तुत किया जाता है "जब तक————न हो तब तक के लिए इस प्रस्ताव पर आगे चर्चा विलम्बित की जाय।" यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया तो वाद-विवाद विलम्बित कर दिया जाता है। यह ध्यान रहना चाहिए कि विलम्बन और स्थगन (Postponement and Adjournment) एक चीज नहीं है।

स्थगन (Adournment)—सभा का स्थगन करने के लिए स्थगन का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रस्ताव का रूप यह हो सकता है कि "यह सभा अब स्थगित की जाए।" स्थगन सम्बन्धी प्रस्ताव में यह स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि सभा कितनी अवधि के लिए स्थगित की जाती है और किस तिथि को स्थगित सभा पुनः बुलायी जायगी। साविधिक सभा (Statutory Meeting) तो उपस्थित सदस्यों के बहुमत से स्थगित की जा सकती है, लेकिन अन्य सभाएँ अन्तर्नियमों में तदनुकूल व्यवस्था होने पर सभापति द्वारा स्थगित की जा सकती है।

कभी-कभी कतिपय सदस्यों के अव्यवस्थापूर्ण आचरण के कारण चर्चा में अवरोध उपस्थित हो जाता है। सभापति ऐसे सदस्यों को चेतावनी दे सकता है, परन्तु यदि ऐसे सदस्य अपनी जिद पर कायम रहें तो सभापति उन्हें सभा छोड़ देने की आज्ञा दे सकता है और यदि कोई सदस्य बाहर जाने से इनकार करे तो उसे बाहर निकलवा दे सकता है। अव्यवस्था दूर करने के लिए भी, सभापति कुछ समय के लिए सभा को स्थगित कर सकता है।

अध्याय १२

कार्यालय संगठन तथा प्रबंध

(Office Organisation and Management)

किसी भी व्यवसाय के जीवन म कार्यालय एक महत्त्वपूर्ण विभाग है, और इसके उचित सगठन तथा प्रबन्ध के अध्ययन का शुभ परिणाम उनको मिलेगा जिनका व्यवसाय के दक्ष तथा मितव्ययी सचालन से सम्बन्ध है। यह वह केन्द्र है, जिसके इर्द-गिर्द व्यवसाय के प्रत्येक भाग से सूचनाएँ एकत्रित होती हैं और इसके बाहर से भी उपयोगी जानकारियाँ उपलब्ध होती हैं। समरण तथा ग्राहकों, क्रय तथा विक्रय, आमद व खर्च, तथा अन्य विषयो की, जिनमे व्यवसाय को दिलचस्पी है, सूचनाएँ कार्यालय में उत्पादन के निमित्त उपलब्ध होती है और जब आवश्यकता होती है, तब उनका उपयोग किया जाता है। तथ्यो तथा आकडो के इस कोषागार मे वे सूचनाएँ निसृत होती हैं जिनके बल पर व्यवसाय नियन्त्रण के क्षेत्र में मुख्याधिकारी (Executives) कार्य करते है। अत इस बात की निगरानी रखना कार्यालय प्रबन्धक का अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है कि कार्यालय पर्याप्त सूचनाओं से भरा हो, और वे सूचनाएँ सहसम्बद्ध तथा व्यवस्थित हो, ताकि मुख्याधिकारी को आवश्यक सूचनाएँ अविलम्ब उपलब्ध हो तथा उनकी परिशुद्धता (Accuracy) पर जरा भी सन्देह किये बिना उन्हें दूसरो को दिया जा सके। अनिर्भरयोग्य कार्यालय पुस्तकों से प्राप्त किये गये परिणाम संदिग्ध मूल्य के होते है, पर अच्छे कार्यालय प्रबन्ध मे यह निश्चित हो जाता है कि प्रतिवेदन निर्भरयोग्य है और उनके बल पर निश्चित होकर कार्य किया जा सकता है और ऐसा कार्यालय सही मार्ग-निर्देशन के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

आधुनिक कार्यालय व्यवसाय सम्पादन में अनुकूलकरण (Functionalisation) के सिद्धान्त के प्रयोग का परिणाम है, ताकि लोगो के बीच कार्य-विभाजन कार्यकर्त्ता (Worker) की विशेष क्षमता के अनुकूल कार्य के आधार पर हो। चूंकि सगठन उस समय तक कार्यशील नहीं होता, जब तक इसके लगभग सभी सदस्य कार्यरत न हुए हो, अत कार्यालय का विभागीकरण उस प्रकार होना चाहिए कि व्यवसाय में प्रत्येक पहलू को देखने के लिए लगभग स्वय-सचालित विभाग हो। लेकिन कर्तव्यों के अनुकूल विभाजन (Functional Division) से पूरा लाभ उठाने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि सब कार्य अपनी पूरी मात्रा में एक बिन्दु पर केन्द्रित कर दिये जायें ताकि उनका पर्याप्त उप-विभाजन तथा उत्पादन हो सके। लिपिक सेवाओ (Clerical Services) के अलग करने तथा उन्हें

एक केन्द्रिक विभाग में रखने का तात्पर्य यह है कि जब कोई अधिकारी कोई पत्र लिखना चाहता है, या सांख्यिकीय रिपोर्ट (Statistical report) बनवाना चाहता है, अथवा कोई अन्य कार्य सम्पादित करवाना चाहता है, तब वह कार्यालय से कहता और उसे एक विशेषज्ञ मिल जाता है, जैसे टाइपिस्ट (काम्प्टोमीटर ऑपरेटर), (Comptometre operator), या वह डिक्टाफोन का व्यवहार करता है और अपनी चिट्ठियों को प्रतिलेखन विभाग (Transcribe department) में प्रतिलिखित (Transcribe) करवा लेता है। अभिलेखों (Records) के नत्थी कराने में भी केन्द्र का उपयोग होता है। इसका अर्थ यह है कि कुछ अपवादों को छोड़कर सारे लेख्य (Document) किसी निजी विभागीय नत्थी में नत्थी नहीं किये जाते, प्रत्युत केन्द्रीय नत्थी में किये जाते हैं। इस प्रणाली से अभिलेख बनाने, चिट्ठियाँ लिखने आदि में सब कर्मचारियों की तथा अनुकृत्यकरण तथा चलन की समरूपता निश्चित रहती है। सम्भव विलम्ब के जोखिम के बावजूद केन्द्रीकृत कार्यालय ने अपनी मितव्ययिता प्रमाणित कर दी है तथा बड़े-बड़े व्यवसायों में इसका बहुत अधिक उपयोग होता है।

जिस कार्यक्षेत्र पर आफिस प्रबन्धक का निरीक्षण रहता है, वह विभिन्न कम्पनियों में बहुत कुछ अलग-अलग होता है, लेकिन सामान्य रूप से उस पर कई परस्पर सबद्ध कामों को देखने का दायित्व होता है, जैसे कार्यालय का स्थान (Accommodation) तथा अभिन्यास, प्रकाश तथा वायु सचार कर्मचारी समुदाय (Staff) तथा उसका चुनाव, कार्यालय अभिलेख तथा नैत्यिकी (Routine), शीघ्रलेखन (Stenography) तथा टाइप (Typing), डाक प्रेषण तथा नस्तीकरण (Mailing and filing) तथा कार्यालय उपकरण (Appliances)।

कार्यालय में स्थान तथा उसका अभिन्यास

(Office accommodation and lay-out)

इसमें सन्देह करने की गुंजाइश नहीं कि लिपिक वर्ग (Clerical force) के कार्य पर अधिकतम नियन्त्रण तथा उसका अधिकतम उपयोग उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कार्यालय इस प्रकार स्थित, निर्मित तथा अभिन्यस्त न हो कि उससे अधिकतम दक्षता प्राप्त हो सके, और जब तक कर्मचारी वर्ग उचित रीति से सम्य न हो। पर्याप्त स्थान की व्यवस्था करने के समय सर्वप्रथम इस बात पर विचार किया जाता है कि प्रत्येक लिपिक को पर्याप्त स्थान मिलना ही चाहिए ताकि वह आराम से, बिना किसी बाहरी या भीतरी बाधा के, काम कर सके। विभिन्न विभागों के बीच सम्बन्ध बनाये रखने की आवश्यकता पर भी विचार किया जाना चाहिए। कार्यालय का साधारण अभिन्यास (General lay-out) ऐसा होना चाहिए कि वह, यदि कारखाने (Works) हों तो, उनके साथ मेल खाए। इस प्रकार क्रय विभाग स्टोर के निकट होना चाहिए और विक्रय-विभाग निर्मित माल के गोदाम तथा प्रेषण विभाग के पास होना चाहिए; इसी

प्रकार अन्य विभागो के बीच भी सम्बन्ध होना चाहिए। भविष्य में विस्तार के लिए भी गुजाइश रख छोडनी चाहिए। यह गुजाइश उपलब्ध स्थान के अनुसार होगी और विस्तार क्षैतिज (Horizontal) या शीर्ष (Vertical) हो सकता है।

जब व्यवसाय छोटा हो तब साधारण कार्यालय के लिए एक बडा कमरा ठीक होगा, चूकि इससे निरीक्षण, प्रकाश तथा हवा सम्बन्धी व्यय में बचत होगी, लेकिन यदि व्यवसाय का आकार बडा होने के कारण विभिन्न विभागो के लिए अलग कमरो की आवश्यकता होती हो, तो वहा इनका प्रबन्ध इस प्रकार किया जाना चाहिए कि एक दूसरे से सम्बद्ध विभाग एक दूसरे से सटे हो। सामान्यत लिपिको को कार्य के अनुसार वर्गीकृत करने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि कम से कम दूरी म काम की धारा अबाध रूप से प्रवाहित हो सके। आजकल विभिन्न विभागो को अर्ध शीशे या लकडी की दीवार के जरिए एक दूसरे से अलग किया जाता है, ताकि निरीक्षण में सुविधा हो, तथा कर्मचारी विभाग के विभिन्न सदस्यो की उपस्थिति का पता रहे। इन सामान्य नियमो के अलावा, व्यवसाय की अपनी विशेषताओ के अनुसार अभिन्यास का निर्णय किया जाता है। लेकिन प्रत्येक व्यवसाय म, चाहे वह छोटा या बडा हो, रोकड विभाग चाहे, वह बाहर से खुला ही क्यो न हो, अन्य विभागो से अलग होना चाहिए। लेखा-विभाग, आलेखन, (Drawing Department) कार्यालय, रुपाकण कक्ष (Designing Room), कलाकार विभाग, ये सब प्रधान कार्यालय से अलग होने चाहिएँ। जहा तक सम्भव हो सके, वे सब विभाग जिनम यान्त्रिक उपकरणो जैसे टाइपराइटर, हिसाब लगाने तथा नकल करने की मशीन, का काम होता है, एक साथ होने चाहिएँ तथा जहा तक सुविधाजनक हो, महत्वपूर्ण अधिकारियो के कक्ष से ये दूर ही होने चाहिएँ। अधिकारियो को नियमित रूप से मुलाकातियो से मिलना पडता है। उनके कमरे जहा तक सम्भव हो सके, मुख्य द्वार से निकटतम होने चाहिए।

कार्यालय म हवा का उचित प्रबन्ध होना चाहिए और प्रत्येक लिपिक को उचित रोशनी मिलनी चाहिए, जो यदि उसके बायी तरफ से आकर उसके काम पर गिरे तो अच्छा हो। कृत्रिम प्रकाश का लगातार व्यवहार, जहा तक हो सके, न होना चाहिए, चूकि श्रान्ति (Fatigue) का यह एक बहुत बडा कारण है। खिडकिया ऊँची होनी चाहिएँ और दीवारो पर हल्के रंग का चूना या डिस्टेंपर पुता होना चाहिए। वायु का सचार खिडकियो से अबाध रूप से होना चाहिए और इसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि उचित ताप तथा नमी की मात्रा सब स्थानो पर पर्याप्त पहुँच सके। जहा कृत्रिम प्रकाश आवश्यक हो वहा पर्याप्त रोशनी के निम्नलिखित नियमो का पालन होना चाहिए —

(क) पर्याप्त मात्रा, (ख) उचित वितरण तथा प्रसार (Diffusion), (ग) चकाचौंध का न होना, (घ) घट-बढ का न होना, (च) हानिप्रद अदृश्य विकिरण (Radiation) का अभाव।

कार्यालय उपस्कर तथा सज्जा
(Office Furniture and Equipment)

जिस प्रकार अभिन्यास (Lay-out) हवा और रोशनी लिपिक वर्ग के स्वास्थ्य और क्षमता पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं, उसी प्रकार कार्यालय के उपस्कर तथा कर्मचारी-वर्ग के कल्याण के बीच गहरा सम्बन्ध है। मुख्यत इस कारण से तथा कार्यालय के बाह्य रूप के खातिर तथा लागत पर नियन्त्रण रखने की दृष्टि से भी कार्यालय उपस्कर सावधानी से विचार करके चुनने की चीज है। मोटे तौर से किसी भी कार्यालय के लिए तीन प्रकार के उपस्कर की आवश्यकता होती है —

(१) कार्यपाल उपस्कर (Executive Furniture)
(२) विशेष प्रयोजन उपस्कर (Special purpose Furniture)
(३) लिपिकीय उपस्कर (Clerical Furniture)

इनमें लिपिकीय उपस्कर बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध बहुत व्यक्तियों से रहता है, तथा ये नियमित तथा सतत रूप से काम में आते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान में इन पर कम ध्यान दिया जाता है।

कार्यालय फर्नीचर (उपस्कर) के चुनाव में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए —

(१) कार्यपाल फर्नीचर, जो अनिवार्यत अच्छे किस्म के होते हैं, अच्छे महत्वपूर्ण निजी कार्यालयों में व्यवहृत किये जाने चाहिएँ। एकता (Unity) तथा मेल (Harmony) बनाये रखने के लिए कार्यपाल फर्नीचर का क्रय एक केन्द्रीय अभिकरण द्वारा करना चाहिए। इस प्रकार के फर्नीचर के क्रय में व्यापक स्वीकृत मापदण्ड तथा संगठन की प्रकृति निर्णायक होगी और अन्त में इसकी अन्तिम स्वीकृति वे कार्यपाल करेंगे जिन्हें वह फर्नीचर इस्तेमाल करना है।

(२) विशेष प्रयोजन फर्नीचर—जैसे, स्वागत कक्ष के लिए, भोजन कक्ष के लिए, विश्राम तथा मनोरंजन कक्ष के लिए, पुस्तकालय तथा औषधालय कक्ष के लिये—पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

(३) कार्यपाल तथा विशेष प्रयोजन फर्नीचर के विपरीत, जिसके चुनाव में बाह्य-रूप का अधिक महत्व होता है, *लिपिकीय फर्नीचर का निर्णय मुख्यत इसके उपयोगिता सम्बन्धी गुणों से होना चाहिए*, लेकिन बाह्य रूप का ध्यान बिल्कुल छोड नहीं देना चाहिए।

(४) *लिपिकीय फर्नीचर मापमान, रूपाभा (Finish), ऊँचाई, आकार और* बाह्य रूप की दृष्टि से प्रमापित (Standardised) होना चाहिए। लिपिकीय फर्नीचर के अतिरिक्त मुख्यत डेस्क, मेज, नत्थी पेटिकाएँ (Filing Cabinets) अलमारियाँ (Cupboards), संग्रह पेटिकाएँ (Storage Cabinets) तिजोरियाँ (Safes) तथा तिजोरीदार पेटिकाएँ, दराज (Shelving) तथा

लौरर (Lockers) होते हैं।

(५) लिपिकों के लिए आमने-सामने के (Face-to face) डैस्क उचित नहीं। इसके दो कारण हैं—एक तो स्वास्थ्य, और दूसरे इससे बातचीत को बढ़ावा मिलता है।

(६) जहा तक सम्भव हो, मेज और डैस्क म कागज या लेख्य रखने के लिए दराज नही होनी चाहिए।

(७) बडी-बडी लेख बहियो के लिए ढलावदार डैस्क सबसे अधिक सुविधा-जनक होते हैं। ढलावदार डैस्क वहा भी बहुत सुविधाजनक होती है जहा बहुत अधिक पठन होता है और चौडे सिरे वाले डैस्क या टेबुल साधारण लिपिकीय प्रयोजनों के लिए जिनम मशीनो का उपयोग न होता हो, व्यवहृत किये जा सकते हैं।

(८) शीघ्रलेखन (Stenographic) डैस्क इन तीनो मे किसी भी प्रकार के हो सकते है, ठोस सिरा, अथवा सचिवीय (Secretariat) या गिरा शीर्ष (Drophead) पहला प्रकार टाइप कार्य म, जिसमें लिपिकीय काय हो, उपयोगी है, दूसरा सचिवीय कार्य म जिसम टाइप भी आता हो, उपयोगी है और तीसरा निरन्तर कार्य के लिए उपयोगी है।

(९) मितव्ययिता के साथ-साथ फर्नीचर के चुनाव में चार तत्वो का हमेशा ध्यान रखना चाहिए अनुकूलनीयता (Adaptability) सादगी (Simplicity), टिकाऊपन (Durability) तथा सुरुचि (Good taste)।

लेखन सामग्री तथा प्रपत्र (Stationery and Forms)—

लेखन सामग्री तथा प्रपत्र भारत मे अभी तक आवश्यक बुराई (Necessary evil) समझे जाते है हालाकि पश्चिमी देशो में प्रबन्धकर्ता उत्तरोत्तर अनुभव करने लगे हैं कि ये सरलीकरण, द्रुतकरण (Speed), ग्राहकों पर अच्छा प्रभाव डालने तथा कार्य नियन्त्रण करने और उसके द्वारा लागत कम करने का एक सफल औजार है। जिस लेखन सामग्री को व्यवसाय गृह से बाहर जाना है उसे अवश्य ही अच्छी किस्म तथा सर्वोत्कृष्ट छपाई का होना चाहिए। यदि प्रपत्रों को सफल औजार के रूप म व्यवहृत करना है तो वे स्थापित उद्देश्य की पूर्ति के दृष्टिकोण से उचित रीत्या रूपांकित होने चाहिऐं, जिसमे उनम कम से कम मेहनत पडे, तथा सर्वाधिक मितव्ययितापूर्ण (सस्ती नही) सामग्री लगानी चाहिए। जहा तक सम्भव हो, उनके रूल या लकीर तथा प्रपत्र का प्ररूप प्रमापित होने चाहिऐं। प्रपत्रो के आकार कागज के स्टाक साइज के अनुकूल होने चाहिए। प्रपत्रो के लिए साधारण तथा मैनिला बड, लैजर, इडैक्स, टिशू और विशेष प्रकार के कागज जैसे मिमियोग्राफ, व्यवहृत किये जाते हैं। किस प्रकार का कागज व्यवहृत होगा, यह उसके उपयोग पर निर्भर है, उदाहरणतया, पेंसिल रिकार्डिंग के लिए मैनिला कागज पर्याप्त है। एक तरफ रिकार्डिंग के लिए बौड कागज व्यवहृत किये जा सकते हैं, दो तरफ इस्तेमाल के लिए तथा लिखावट मिटाने के गुणो के लिए तथा लेजर कागज आवश्यक है आकार की

समरूपता के सिद्धान्त का अनुसरण सूची पत्रों, कीमत सूचियों तथा गश्ती पत्रों आदि के लिए आदेश देते समय करना चाहिए, क्योंकि इसमें न केवल प्रेषण में सुविधा होती है, क्योंकि उसी प्रकार के लिफाफे सभी कामों के लिए व्यवहृत किये जा सकते हैं, बल्कि नत्थी करने में भी आसानी होती है। 'विन्डो एन्वेलाप्स' के बढ़ते हुए व्यवहार के कारण इस बात की महत्ता और भी बढ़ जाती है।

कर्मचारी वर्ग तथा उसका चुनाव (Staff and its Selection)

कार्यालय के कर्तव्यों को दो सामान्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—(एक) जिनके लिए कुछ कामों की प्रवीणता की आवश्यकता होती है, जैसे शिघ्रलेखन, टाइपिंग (Typewriting), बही लेखन, आदि, और (दो) वे कार्य जिनके लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन जिनके लिए सोधनापूर्वक सीखने की योग्यता की आवश्यकता होती है, तथा उनके कामों के अनुकूल अपने को बनाने की आवश्यकता होती है, जिनमें परिशुद्धता, चाल, निर्णय या कुछ विशेष अभियोग्यता (Aptitude) की जरूरत होती है। अतएव कर्मचारी वर्ग के विभिन्न सदस्यों के लिए आवश्यक योग्यताएँ उनके कार्य की प्रकृति पर निर्भर हैं। ऐसे चुनाव के लिए व्यवहृत विभिन्न प्रकार की परखें (Test)–प्रवीणता (Proficiency) परख और टाइपिंग परख, शिघ्रलेखन या बही लेखन परख तथा क्षमता परख, जिसमें साधारण अनुकूलनीयता परख तथा विशेष परख शामिल हैं—होती हैं। परीक्षागत योग्यताओं (Examination qualifications) पर हमेशा विचार किया जाता है। लेकिन व्यवहार में कार्यालय कर्मचारी वर्ग के लिए भरती हमेशा सर्वोत्तम सामग्री से नहीं की जाती। फिर उचित पथ-प्रदर्शन या पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नये लिपिक को ही नियुक्त करना तो दूर की बात है, कार्यपाल लोग प्रायः यह नहीं सोचते कि इन कलम चलाने वालों में भी किसी विशेष कोटि की कार्य की आदतों के विकास की कुछ आवश्यकता है या उससे कुछ फायदा है।

सामान्यतः किसी भी अन्य विभाग में कार्यकर्त्ता के प्रति इतनी उपेक्षा नहीं बरती जाती, या काम इतना एकरसा (Stereotyped) नहीं होता, जितना कि साधारण कार्यालय में। प्रायः वर्षों तक एक ही पिटी-पिटाई लीक पर कार्यालय का सचालन होता है। जैसे-जैसे कार्यों के परिमाण में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे कार्यालय का आकार बढ़ता जाता है। बिक्री बढ़ने का परिणाम यह होता है कि एक और लिपिक रख लिया जाए और स्कूल या कालेज से निकले हुए नये लड़के आफिस में भर्ती किये जाते हैं और इस प्रकार आफिस का कलेवर बढ़ता जाता है। इस प्रकार आफिस में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या में जितनी वृद्धि होती जाती है, क्षमता में उतनी ही गिरावट होती जाती है। इससे भी बुरी बात यह होती है कि आगन्तुक को काम या अपने-अपने सहकर्मियों से परिचय कराये बिना सीधे कार्य पर लगा दिया जाता है,

और जब वह दैनिक कार्यों को सीखता हुआ गलतियाँ करता है तब शिक्षा प्रणाली को दोष दिया जाता है। एक आफिस में जो कुछ होता है, उसकी तस्वीर इस प्रकार है :—(बशर्ते कि आगन्तुक किसी खास आदमी का कोई खास आदमी न हो) एक लिपिक एक नये और विचित्र वातावरण में लाया जाता है, और उसे एक डैस्क पर एक जगह मिलती है, और एक बिल्कुल अपरिचित व्यक्ति द्वारा उसे अनेक प्रकार के कार्य करने को दिये जाते हैं। स्वभावतः उसका विभ्रम (Confusion) बढ़ जाता है। वह बुरी तरह से आत्मचेत (Self-conscious) हो जाता है और खास तौर से उस समय जब वह अपने पथ-प्रदर्शक से ज्यादा शिक्षित होता है और ऐसी बात प्रायः होती भी है।

उसे कभी कोई काम समझा दिया जाता है, क्योंकि उसके पथ-प्रदर्शक ने स्वयं भी जो काम सीखा है वह किसी प्रशिक्षण के जरिए नहीं, बल्कि लिखते-काटते ही सीखा है, और न पथ-प्रदर्शक की कोई शैक्षिक पृष्ठभूमि है जो वह काम की विधिवत् व्याख्या कर सके। और तब होता यह है कि बेचारे लिपिक पर सारे काम का दायित्व अकेले आ जाता है, और वह बताई गयी बातों को याद करने की चेष्टा करता है, लेकिन उसे सफलता नहीं मिलती और कुछ समय तक मानसिक अन्धेर-टटोल के बाद वह काम को शुरू करने का साहस बटोरता है। स्वभावतः वह गलतियाँ करता है, और बहुतेरी गलतियाँ करता है, और उसकी पहली गलतियों पर कोई ध्यान नहीं देता, लेकिन कुछ समय के बाद उसकी गलतियाँ देख ली जाती हैं और तब उसे बरखास्तगी की धमकी दी जाती है, जो धमकी और अधिकाधिक विभ्रान्त कर देती है। यदि वह उतनी ही गलतियाँ करता है जितनी प्रत्येक आरम्भ-कर्त्ता के लिए अनिवार्य हैं तो उसे प्रशिक्षित करार दिया जाता है, लेकिन यदि उसकी गलतियों की संख्या बढ़ जाती है तो उसे अयोग्य करार दिया जाता और काम से हटा दिया जाता है।

यह बिल्कुल निश्चित बात है कि यदि लिपिक वर्ग के लोग अपने काम का तथा कार्यप्रणाली को समझ लें, तो वे ज्यादा अच्छा काम करने में समर्थ हो सकेंगे। यह याद रखना चाहिए कि औसत तरीके से काम करने तथा सर्वोत्कृष्ट तरीके से काम करने के परिणामों के बीच जो अन्तर होता है, वह आश्चर्यजनक होता है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि अनुभवी लिपिक भी स्वभावतः सर्वोत्कृष्ट विधि को नहीं अपनाते, वरना वे पर्यवेक्षण से ही सर्वोत्कृष्ट विधि के बारे में सीख सकते हैं। अतः यह आवश्यक है कि लिपिकों को प्रशिक्षित करने में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाए —

१. जिस कार्य का वस्तुतः सम्पादन होता है, उसके सम्बन्ध में कार्यकर्त्ताओं को अच्छी तरह समझा देना चाहिए, ताकि उन्हें निम्नांकित बातों की अच्छी जानकारी हो जाय।

(क) कार्य का प्रयोजन।

(ख) उसके कार्य का अन्य कार्यों से सम्बन्ध,

(ग) कार्य सम्बन्धी विभिन्न विवरणों का आपेक्षिक महत्त्व, तथा
(घ) कार्य करने की विधि ।

२ कार्य तथा कार्य-स्थान की सर्वोत्तम व्यवस्था के बारे में शिक्षा दी जानी चाहिए। यदि प्रत्येक कार्य का सावधानी से अध्ययन किया जाय तो यह पता लगेगा कि कार्य तथा कार्यस्थान की व्यवस्था करने की एक ही सर्वोतम विधि है और वह विधि अन्य विधियों से कहीं ज्यादा अच्छी है।

३ इसके बाद सर्वश्रेष्ठ गतियों का स्थान आता है, जिनका पता सम्पादित होने वाले काम का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने, आवश्यक गति की प्रकृति तथा थकावट की प्रकृति आदि बातो से लगेगा।

४ इसके बाद चाल (Speed) की प्रमाप दर पर गति की ठीक नमिकता के बारे में बताया जाना चाहिए।

५ जब चौथी बात के बारे में शिक्षा दी जा रही हो, तब चाल की आदत पैदा करनी चाहिए, क्योंकि चाल आदत ही है ।

६ उपर्युक्त ४ और ६ की शिक्षा के साथ शुद्धता का ख्याल रखना जरूरी है, लेकिन इसका पूरा विकास उस समय होगा जब चाल की प्रमाप दर पर ठीक अनुक्रम से ठीक गतियो की आदत डाली गयी हो।

यह नही माना जा सकता और न मानना ही चाहिए कि कोई भी व्यक्ति किसी भी आफिस में, जिसमें प्रारम्भिक अध्ययन तथा कार्य विधियों का विश्लेषण नहीं हुआ, अपना प्रशिक्षण हठात् आरम्भ कर सकता है, क्योंकि इसके अभाव मे प्रशिक्षण एक ठोस चीज हो जायगा और उस आफिस म जो स्थिति है उसको बनाये रखेगा, अथवा दूसरे शब्दो में उन्नयन का कोई भी कार्य नही हो सकता। गेट के शब्दो म, प्रायिक विधिया प्राय गलत होती है ("The usual methods are-usually wrong") लेकिन वह कार्यालय प्रबन्धक बहुत-सी बचत कर सकता है जो सबसे पहले गलत विधियों को ठीक कर देता है।

निर्मिति का कार्य करने वाली किसी भी पर्याप्त बड़ी कम्पनी में कर्मचारी वर्ग में निम्नलिखित में से कुछ या सभी पदस्य हो सकते हैं :—

प्रबन्ध अभिकर्ता, अथवा प्रबन्ध सचालक तथा/अथवा महाप्रबन्धक जो व्यवसाय का सक्रिय प्रधान हैं ।

सचिव के बारे में जो व्यवसाय सचालन के लिए सभी आवश्यक वैधानिक औपचारिकताओं की पूर्ति करता है, तथा सचिवीय कर्तव्यों का सपादन करता है, विवेचन किया जा चुका है। छोटे व्यवसाय में सचिव साधारणत आफिस प्रबन्धक का भी कार्य करता है और वह कर्मचारी वर्ग के बीच अनुशासन तथा लिपिकीय कार्य के सगठन के लिये भी दायी होता है। बड़े व्यवसाय में उसके कार्यालय के अन्तर्गत बहुतेरे सहायक विभाग हो सकते हैं, पत्राचार विभाग (Correspondence Department),

डाक विभाग (Mailing Department) तथा पंजीकर्ता का विभाग सम्मिलित है।

लेखापाल (Accountant)—लेखा बहियों के तैयार किये जाने तथा प्रबन्ध संचालक के सचिव द्वारा अपेक्षित वित्तीय विवरण के तैयार किये जाने के लिए जिम्मेवार है।

रोकपाल या रोकड़िया (Cashier) रोकड़ बही रखता है तथा रुपये-पैसे का भुगतान लेता और देता है। वह बैंक लेखें परिचालित किये जाने के लिए भी दायी है।

विक्रय प्रबन्धक को यह देखना पड़ता है कि फार्म के मालों की बिक्री शीघ्र हो जाए तथा उसके लिए उचित कीमत मिले। उसे ग्राहकों की ईमानदारी तथा उनकी भुगतान क्षमता के बारे में निर्णय करते समय प्रत्यय लिपिक (Credit Clerk) से प्राय काम पड़ता है, तथा आवश्यकतावश उसे अनिवार्यतः आदेश (आर्डर) तथा प्रेषण लिपिक तथा पर्यटक विक्रेताओं पर नियन्त्रण रखना पड़ता है। लेकिन विज्ञापन विभाग बिल्कुल अलग से संचालित किया जाता है।

परिवहन प्रबन्धक का कार्य है सर्वाधिक लाभप्रद रीति से थल, जल या नभ द्वारा मालों के परिवहन की व्यवस्था करना।

प्रचार प्रबन्धक या विज्ञापन प्रबन्धक फर्म की प्रचार प्रणाली के सब पहलुओं की देख-रेख करता है। कर्मचारी-वर्ग प्रबन्धक (Staff Manager) कर्मचारी-वर्ग से सम्बद्ध सभी विषयों, यथा नियुक्ति, मजदूरी, अनुशासन, काम की अवस्थाओं, कार्य विभाजन, तथा बरखास्तगी से सम्बद्ध होता है।

प्रपंजी लिपिक (Ledger Clerk) तथा रोजनामचा लिपिक (Day Book Clerk) प्रपंजी (खाता) तथा रोजनामचा तैयार करते हैं तथा बीजक-लिपिक बीजक तथा विवरण तैयार करते तथा उन्हें बाहर भेजने के लिए दायी हैं। प्रत्यय लिपिकों को व्यवसाय के ग्राहकों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है, तथा उन्हें उनकी भुगतान सम्बन्धी क्षमता तथा तत्परता की भी जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है।

प्रधान लिपिक कार्यालय प्रबन्धक का मुख्य सहायक होता है और वह सम्पूर्ण पत्राचार, नत्थीकरण तथा अभिलेख (Record) पर नियन्त्रण रखता है और प्राय वह टाइपिस्टों (Typist) तथा शिघ्रलेखकों (Stenographer) के कार्यों का निरीक्षण भी करता है। पत्राचार कर्त्ता, जो कभी कभी शिघ्रलेखकों में से चुने जाते हैं, अच्छे-अच्छे पत्र लिखने अथवा लिखवाने की योग्यता के कारण चुने जाते हैं।

प्रेषण लिपिक कर्मचारी वर्ग के वे सदस्य होते हैं, जो उपर्युक्त प्रेषण विभाग के कार्यों का सम्पादन करते हैं। नत्थी लिपिक, जैसा कि उसके नाम से पता चलता है, पत्रों तथा अन्य लेखों के नत्थीकरण का कार्य करते हैं। वे कभी कभी अभिलेख रक्षक (Record Keepers) कहलाते हैं। आदेश लिपिक (Order Clerk) फर्म को भेजे गये आदेश प्राप्त करते हैं, उनका वर्गीकरण करते, सम्बन्धित विभागों

को आदेश की पूर्ति के लिए उचित हिदायतें देते हैं और प्रेषण लिपिक (Despatch Clerk) माल प्रेषण के सम्बन्ध में भी दफ्तरी कार्य निपटाते हैं। वे इस बात की निगरानी रखते हैं कि माल बनाई तथा प्रेषण के सम्बन्ध में गोदाम को उचित निर्देश प्रेषित किया जाय, आवश्यक प्रेषण पत्र (Despatch Note) भेजा जाय तथा बीजक विभाग को माल प्रेषण सम्बन्धी सूचना भेजी जाए।

कार्यालय अभिलेख तथा नैत्यिकी—कार्यालय प्रबन्धक के लिए दिन के कार्यों की योजना बनाना आवश्यक है। बहुत से लोग अपने कार्यों की लिखित सूची बना लेना लाभदायक समझते हैं। सामान्यत ऐसी सूची में तीन चीजों का समावेश आवश्यक है नैत्यिकी (Routine), नियत भट, तथा व्याघात (Interruption) हो सकता है कि किसी भी व्यक्ति के लिए दैनिक सूची का पूर्ण पालन सम्भव न हो, फिर भी कार्यक्रम वह विधि है, जो लक्ष्य होना चाहिए। नियमन, प्रबन्धक का दैनिक कार्य पिछले दिन के बाकी कार्यों की पूर्ति से शुरू होगा। इसके पश्चात् बाहर से आने वाली रोजाना डाक पर वह ध्यान देगा। प्रत्येक पत्र पर वह उस विभाग (Section) अथवा उस व्यक्ति का नाम लिख देगा जो उससे सम्बद्ध है ताकि प्राप्ताकित (Receipted) किये जाने पर वह उसके पास भेजा जा सके। जिन पत्रों के जरिये रुपये आते हैं उनमें 'राशि प्राप्त' ('Account Received') लिख दिया जाता है। बाहरी दुनिया से पत्राचार होने के अतिरिक्त बड़े कार्यालयों में आन्तरिक डाक (Internal Mail) की भी एक प्रणाली होती है। इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक व्यक्ति के डेस्क पर एक भीतरी टोकरी (Inward Tray) तथा एक बाहरी टोकरी (Outward Tray) होती है। चपरासी बाहर से लेखों को एकत्रित करता है और उन्हें सम्बन्धित भीतरी टोकरी में रख देता है।

बाहरी पत्राचार के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि पत्रों में चतुराई (Tact) तथा स्वर (Tone) जैसे आवश्यक तत्व का समावेश आवश्यक है, ताकि प्रत्येक पत्र विक्रय पत्र की सफलता प्राप्त कर सके। कभी-कभी पुराने ढंग (Stereotyped) के उत्तर से समय तथा पैसे की बचत होती है, बशर्ते कि वह सीमा के बाहर न हो जाय। ऐसा भी होता है कि नैत्यिकी विषयक सदर्भ लिख लिये जाते हैं और बाहर से आने वाले पत्रों के जवाब में प्रासंगिक सदर्भ पर चिह्न लगा दिया जाता है। जो पत्राचार कभी समाप्त नहीं हुए हैं, उन्हें 'लंबित फाइल' में रखा जाना चाहिए। इस कार्य के लिए एक छोटा सीधा फाइल पर्याप्त है। जब पत्राचार पूर्ण हो जाए तब पत्र की प्रति और प्राप्त पत्र को स्थायी विभाग में भेज देना चाहिए। बाहर जाने वाले पत्र को सम्बन्धित विभाग द्वारा डाक में भेजे जाने के लिए प्रेषण लिपिक के पास भेज देना चाहिए। सबसे अन्त में सन्ध्या समय डाक भेजी जानी चाहिए। इससे लिफाफा तथा टिकटों की बचत होती है और डाकघर या डाक बाक्स तक बार बार जाने की आवश्यकता नहीं होती। जब पत्रों के साथ अन्य चीजें भेजी जाएँ, तब पत्र के नीचे बायीं ओर तद्विषयक टिप्पणी दे देनी चाहिए। पारदर्शक (Transparent)

तथा खिड़कीदार लिफाफे (Window Envelop) इन दिनों बहुत अधिक चलन में आ गये हैं, क्योंकि उनसे समय की बचत होती और चिट्ठी गलत लिफाफे में न पड़ जाय इस बात की निगरानी भी हो जाती है।

नस्तीकरण (Filing)—नस्तीकरण को प्राय जितनी महत्ता दी जानी चाहिए, उतनी नही दी जाती। ऐसा शायद इसलिए होता है कि प्रत्येक कार्यालय में किसी न किसी प्रकार की नस्ती प्रणाली व्यवहार में है और कार्यालय सतत व्यवहार के कारण इसकी त्रुटियों से इतना अधिक परिचित हो जाता है कि उसका शायद ही खयाल आता हो। प्राय यह देखा जाता है कि अधिकांश कार्यालय फाईलिंग की अवैज्ञानिक विधि का अनुसरण करते हैं, और उस विधि में कभी-कभी इतनी गड़बड़ी होती है कि गड़ी सूचनाओं को ढूढने में काफी समय की बरबादी होती है। अत इस समस्या के निराकरण के लिए भी वैज्ञानिक विधि का प्रयोग उतना ही आवश्यक है जितना कि और समस्याओं के लिए। लेकिन इसके पहले कि फाईलिंग की कोई विधि अपनाई जाय, नीति विषयक एक महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर ढूढ निकालना होगा। यह निश्चित करना होगा कि केन्द्रीय फाईलिंग विधि अपनाई जानी चाहिए कि नहीं और चाहिए तो किस हद तक।

फाईलिंग का केन्द्रीकरण दो प्रकार से हो सकता है :—(१) फाईलिंग विधियों तथा सामग्रियों पर नियन्त्रण व प्राधिकार का केन्द्रीभूत कर दिया जाता है। लेकिन फाइल प्रत्येक विभाग में ही रखे जाते हैं और उनका नस्तीकरण फाईलिंग विभाग में किया जाता है, अथवा (२) फाइलों का नियन्त्रण, प्राधिकार तथा स्थान तीनों एक जगह पर केन्द्रीभूत कर लिये जाते हैं। सभी फाईलिंग सामग्रियों को केन्द्रीय फाईलिंग विभाग को भेज दिया जाता है। फाईलिंग का मतलब है पत्रों, कागजों तथा लेख्यों को सुरक्षित रखना ताकि जब उनकी आवश्यकता हो तब से आसानी से ढूढ निकाले जाएँ, अतएव किसी सामग्री के नत्थी किये जाने के पहले दो चीजों का निर्धारण होना चाहिए। (क) क्या अमुक सामग्री को नत्थी किया जाय, और यदि हा (ख) तो कितने दिनों तक ? जो सामग्री नत्थी की जाने वाली है उसको विश्लेषित करने की अपेक्षा नत्थी की गयी सामग्री को एक दूसरे से अलग तथा विश्लेषित करना कठिन है। नत्थी की अवधि विभिन्न घटकों पर निर्भर करती है। प्रथम घटक है वैधानिक आवश्यकता, यथा सीमाकरण अधिनियम (Limitation Act) तथा बही व लेख सम्बन्धी कम्पनी विधि विनियम (Company Law Regulation)। इनसे फाईलिंग आवश्यकता का न्यूनतम आधार निर्धारित करने में सहायता मिलेगी। दूसरा घटक है दूसरी नकल की सुलभता। यदि एक से अधिक नकल उपलब्ध हैं, तो कार्य हो जाने के बाद अतिरिक्त नकलें हटा दी जायेंगी। तीसरी बात यह है कि नत्थी की जाने वाली सामग्री की दो कोटिया की जानी चाहिएँ; (क) वे सामग्रियां जिनका केवल कम्पनी से सम्बन्ध है, और (ख) वे सामग्रियां जिनका बाहरी व्यक्तियों से सम्बन्ध है। रोजमर्रा का अन्तर्विभागीय तथा अन्तःमण्डलीय (Inter-company) पत्राचार

भविष्य प्रसग की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखता। कुछ कम्पनियां ९० दिवस दराज' प्रणाली का अनुसरण करती हैं जिसके लिए फाईलिंग अलमारी में एक दराज अलग कर दी जाती है, जिसमें नैत्यिक (रूटीन) महत्वहीन पत्र, रखे जाते हैं। समय-समय पर इन दराजों को साफ करते जाने से समय की बचत होती है। जो सामग्री पुरानी पड़ रही है, उसके लिए सतत ध्यान तथा पुनरीक्षण की आवश्यकता होती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि नत्यीकरण (Filing) तथा सग्रहण (Storage) दो बिल्कुल भिन्न चीज हैं। इनको एक समझने की गल्ती नहीं करनी चाहिए। सग्रहण में प्रायः काम आने वाली फाइल से चीजें हटाकर निरापद रूप से अलग रख दी जाती है और काम पड़ने पर उनने निकाला जाता है। एक पर एक चीजें रखने के सिद्धान्त पर फाईलिंग करने से बचत के लिए आवश्यकता के अनुकूल सुस्थित सिद्धान्त बना लेने चाहिए और जब तक उनमें परिवर्तन न हो, उनका अनुसरण करना चाहिए इसके अतिरिक्त ऐसे सभार (Equipment) का निर्माण किया जाना चाहिए जो अभिलेखो को स्थायी रूप से सुरक्षित रख सके। और यह समरूप (Uniform), मानक और परस्पर परिवर्तनीय होना चाहिए, क्योंकि फाईलिंग की कोई भी अच्छी प्रणाली बिना अच्छे सभारो के बेकार है जिनकी रूपरेखा नीचे प्रस्तुत की जाती है।

सक्षेपांकन (Docketing)

यह पुरानी पद्धति है, फिर भी यह पेशेवर तथा छोटी-छोटी व्यापारिक कोठियो में अभी भी व्यवहृत की जाती है। इस पद्धति में छोटे-छोटे खाने, जिन्हें अंग्रेजी में पिजन होल (Pigeon Hole) कहते हैं, होते हैं जिनमें अक्षरानुक्रम से सकेत पत्र (Labels) लगे होते हैं। कुछ खाने पत्रों के लिए और कुछ बीजक के लिए, इस प्रकार विभिन्न उद्देश्यों के लिए अलग-अलग खाने बने होते हैं। जिन पत्रों को नत्थी करना होता है वे एक से आकार में जोड दिये जाते हैं, और बाहर उन पर पत्रों के विषय का सक्षिप्त वर्णन होता है। इस सक्षेपाकन को डाकेट कहते हैं। जब एक दिन का डाकेटिंग समाप्त हो जाता है तब लेख्य अपने खानों में विभाजित कर दिये जाते हैं। और उनके पत्र अक्षरानुक्रम से छाट लिये जाते हैं और बडलो में बाध दिये जाते हैं और कुल बडलो पर लेबल चिपका दिया जाता है। ये बडल पेटियों या सुराखो में रख दिये जाते हैं। यह प्रणाली किसी भी कार्यालय के लिए, जहां पत्राचार की मात्रा पर्याप्त है, बोझिल प्रमाणित होगी।

प्रेस नकल पुस्तक (Press Copy Book)

यह पुस्तक उन कार्यालयों में व्यवहृत होती है जहां आधुनिक प्रणाली का प्रयोग होता है। इसकी लोकप्रियता का कारण यह है कि इस पुस्तक से इस बात का लाभदायक प्रमाण मिलता है कि अमुक पत्र अमुक दिन व्यवसाय के प्रसग में लिखा गया था। जब फर्म बड़ी होती है तब प्रेस नकल (Press Copy) अक्षरानुक्रम से भौगोलिक आधार पर विभाजित कर दी जा सकती है। इस प्रकार किसी प्रेस नकल पुस्तक में उन व्यक्तियों के पास लिखे गये पत्रों का ब्योरा हो सकता है,

जिनके अल्ल (Surnames) अंग्रेजी के 'ए' में 'ई' तक हैं तथा दूसरे में 'एफ' से 'जे' तक हो। जब अक्षरों की संख्या बड़ी न होकर और पत्राचारी (Correspondent) देश के विभिन्न विभागों में फैले हों तो वैसी हालत में प्रत्येक नक्कल भौगोलिक आधार पर हो सकती है। प्रत्येक प्रस नक्कल में एक अनुक्रमणिका होनी चाहिए, और जब अक्षरानुक्रम से अनुक्रमित किये जाने वाले नामों की संख्या अधिक हो, तब प्रत्येक अक्षर पुनः स्वरों (Vowels) के अनुसार पांच भागों में विभक्त कर दिये जाते हैं। इस प्रकार Ba Be Bi Bo Bu स्वर अनुक्रम के उदाहरण हैं। इससे क्रमानुसार नामों का ढूंढ़ निकालने में सुविधा होती है। इससे दोहरा निर्देश (Cross Reference) भी सुलभ हो जाता है।

चपटी या क्षैतिज नत्थी (Flat or Horizontal Filing)

इस प्रकार की नत्थी प्रणाली में अधिक आधुनिकता है जिसके लिए दफ्ती का कवर अथवा विशेषतः निर्मित अल्मारी (Cabinet) की दराज फाइल के रूप में व्यवहृत की जाती है। दफ्ती की जिल्द (Cover) या साधारण फाइल में दो छड़ें लगी हुई होती हैं, जो नत्थी किये जाने वाले पत्रों के छेद में प्रविष्ट कर दिये जाते हैं। यह एक दोषयुक्त प्रणाली है, क्योंकि किसी पत्र को निकालने के लिए पहले तो ढढना हाता है और तब ऊपर के अन्य पत्रों का हटाना होता है। बाक्स फाइल अथवा खुली परत प्रणाली का मौलिक रूप यह है कि एक बक्सनुमा पेटी होती है जिसमें एक ढक्कन होता है और उसका एक पार्श्व कब्जे से जुड़ा होता है। मोटे तथा कड़े कागज की परतों के बीच पर अनुक्रमणिका बनी होती जो एक क्रम से बाक्स में रखी होती है, जो अपनी संख्या अथवा अक्षर की परतों के बीच होते हैं। ये बाक्स फाइलें अभी भी दफ्तरों कार्यालयों में व्यवहृत की जाती हैं। विशेषतः इन फाइलों का व्यवहार उन लेखों को रखने के लिये किया जाता है जिनका काम अक्सर पड़ता है, यथा सूचीपत्र तथा वहन पत्र यानी जहाजी बिल्टी (Catalogue and Bills of Lading)। बक्सों की जगह, उत्तरोत्तर में दराजें व्यवहृत की जाने लगी हैं, और अब स्प्रिंग व्यवहृत की जाती है ताकि चिट्ठियां में से कोई बाहर न गिर जाय।

पाइलट फाइल अथवा लिवर-आर्क प्रणाली (The Pilot Files or the Lever Arch System)

इस प्रणाली के लिए दफ्तियां (Card Board) या फाइलिंग सन्दूक का व्यवहार होता है। दफ्तियां वालों में 'टैरा', तथा सन्दूक या कैबिनेट वालों में 'मेनन फाइल' मशहूर हैं। फाइल में एक स्लिप सटा या घुमाया हुआ होता है जिसमें अक्षरानुक्रम तथा अथवा भौगोलिक विभाजन का उल्लेख होता है। जब पत्रों की संख्या बड़ी हो तो एक अक्षर की जगह दो कर दिये जा सकते हैं। ऐसा करने के लिए जो अंग्रेजी का बड़ा अक्षर हो उसका छोटा अक्षर जोड़ दिया जा सकता है। इस प्रणाली का सिद्धान्त यह है कि नत्थी किये जाने वाले कागज में विशेष प्रकार की पंचिंग मशीन से दो छेद कर दिये जाते हैं, ताकि उन्हें फाइल में निकली दो लोहे की कीलों में डाल दिया जा सके।

इन दो कीलो के पीछे दो मेहराबनुमा हुक होते हैं जिनकी नोक इन दो कीलो पर कस कर जम जाती है और जो बायें दायें हटायी जा सकती है ताकि और पत्र को नत्थी किया जा सके। यदि नत्थी किये जा चुके कागजो के बीच म कोई कागज नत्थी करना हो तो *नत्थी किये गये कागजो को मेहराबनुमा हुक में प्रविष्ट करके हुक को हटाकर पीछे की* ओर कर दिया जा सकता है। फिर सामने की कीलों में कागजो को नत्थी करके हुक को पूर्व स्थिति में कर दिया जाता है। नत्थी किये गये कागज को इसी प्रकार हटाया भी जा सकता है पहली प्रणाली के मुकाबले में इस प्रणाली के कतिपय लाभ हैं। (क) पत्र अपने स्थान से हट नही सकते क्योंकि मेहराब उन्हें अपनी जगह पर बनाये रखते हैं। (ख) पत्रो को बिना हटाये देखा जा सकता है। इस से पत्रो को गलत स्थान पर रखे जाने की सम्भावना दूर हो जाती है, (ग) यदि दराज उलट जाय या गिर जाय तब भी पत्रो के मिल जाने का भय नही है, क्योकि मेहराब उन्हें अपने स्थान पर रखते हैं। चपटी प्रणाली के दोष ये हैं (क) पत्रो के निकालने तथा उन तक पहुँचने में अपेक्षत अधिक समय लगता है, (ख) यदि पत्राचार के परिमाण में वृद्धि होने से दराज भर जाय तो उन्हें फिर से सगठित करने में परेशानी का सामना करना पडता है।

खडी या शीर्ष नत्थी (Vertical Filing)

चपटी नत्थी की इन सीमितताओं को दूर करने के लिए खडी नत्थी का व्यवहार किया जाता है, जिसमें जिल्द या फोल्डर का व्यवहार किया जाता है, जिसम कागजो का अक्षरानुक्रम या सख्यानुक्रम से सीधे खडी अवस्था में उपयोगितानुसार बने दराजो में रखा जाता है। प्रत्येक दराज (Drawer) में एक एक्सपैन्डर (Expander) लगा होता है, जिसमें पीछे व आगे हटने वाले स्लाइड लगे होते हैं जो जिल्दो को खडी अवस्था में रखते हैं चाहे उनकी सख्या थोडी हो, या बहुत। भारी मैनिला कागज की बनी अनुक्रमणिका या पथदर्शक पत्र (Guide Card) होता है जिसके सिरे का एक हिस्सा बाहर निकला होता है, जो जिल्दो को कई हिस्सो में विभाजित करता है, जिल्दो के सिरो का भी एक भाग बाहर निकला होता है जिनमें नाम, अक्षर या सख्या लिखा होता है। प्रत्येक ग्राहक से सम्बन्धित पत्राचार अलग जिल्दो में रखा जाता है।

फाइलो का वर्गीकरण (Classification of Files)

फाइलो के वर्गीकरण के कई तरीके हैं। जब कागजात तिथि के क्रम से किसी अच्छे क्रम में रखे जाते हैं तब समयानुक्रम (Chronological order) का अनुसरण किया जाता है। ऐसे कागजात के उदाहरण हैं समाचारपत्र, सूचि, चालू कीमतो की सूचि (Current Price list), बाजार सूचनाएँ। जब प्रत्यक्ष अक्षरानुक्रम का अनुसरण किया जाता है तब सर्वप्रथम उपनामों (Surnames) के आद्य अक्षरों के अनुसार पत्र छाटे जाते हैं और तब शब्दकोष के क्रम से अथवा स्वर-क्रम से लगाये जाते हैं। इसके पश्चात् प्रत्येक विषय अथवा पत्राचारी की जिल्द (Folder) उन गाइड कार्ड के पीछे रख दी जाती है जिसके निचले सिरे पर रखी जाने वाली जिल्द के विषय पर पत्राचारी का आद्यक्षर लिखा रहता है। उन फर्मो के

लिए जिनमे पत्राचारी की सख्या अधिक होती है, साख्यकीय प्रणाली उपयोगी होती है, क्योकि इससे पत्राचारियो के एक ही नाम या लगभग एक नाम होने से होने वाली गड-बडी नही होती। इस प्रणाली मे प्रत्येक पत्राचारी को एक सख्या दी जाती है और वह सख्या उसके फोल्डर या फोल्डरो पर दी हुई होती है। ये फोल्डर रगीन गाइड कार्डों द्वारा जिनम १०, २०, ३० अथवा २०, ४०, ६०, आदि सख्याएँ लिखी हुई होती सख्याएँ लिखी हुई होती है, विभाजित होते हैं। इस विभाजन का उद्देश्य है भविष्यत प्रसग को सुलभ करना। इसमे सन्देह नही कि जब तक अलग अनुक्रमणिका न हो, तब तक साख्यकीय फाइल बहुत ज्यादा लाभदायक नही हो सकती, क्योकि किसी भी लिपिक के लिए यह सम्भव नही कि वह प्रत्येक पत्राचारी की सख्या को याद रखे। अतएव, अनेक प्रकार की अनुक्रमणिका म से एक का व्यवहार होना है, हालाकि पत्र अनुक्रमणिका (Card Index) सर्वाधिक व्यवहृत होती है।

सख्याक्षरानुक्रम (Alphabetical Numerical Order), जैसा कि इसके नाम से विदित होता है दो पद्धतियो का सामजस्य है; इस पद्धति का विशेष लाभ यह है कि इसमे साख्यकीय पद्धति की यथार्थता (Exactness) होती है और उसके लिए अलग पत्र अनुक्रमणिका की आवश्यकता नही होती। मान लो कि हम एम० पटेल नामक पत्राचारी के फोल्डर का पता लगाना चाहते, है हम PA विभाग की दराज खोलते हैं, इसका पता हम सामने लगे लेबल से मिलता है। इसके बाद हम शीघ्र अक्षर गाइड PA-PL को देखते है और इसमे उल्लिखित सारे नामो को देखे जाते है। हम जब १४ को देखते हैं तब एम पटेल का नाम पाते है, १४ का अर्थ है PA-PL का अमुक विभाग जिससे फोल्डर के बदले में आसानी होती है और ५ नम्बर बताता है कि अक्षर गाइड के पीछे इस विभाग में एम० पटेल का पाचवा फोल्डर है। हम इसे शीघ्र देख लेते है। इस प्रणाली का सबसे बड़ा फायदा यह है कि एक ओर तो इसके अन्तर्गत नये फोल्डर उतनी ही आसानी से जोड़े जा सकते है, जितनी आसानी से साख्यकीय प्रणाली के अन्तर्गत और दूसरी ओर बहुत शीघ्रता से इसका पता लगाया जा सकता है। भौगोलिक क्रम (Geographical order) आक्षरिक या साख्यकीय प्रणाली मे की गयी थोडी तबदीली मात्र है, जो अमुक व्यवसाय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भौगोलिक आधार पर बनाये गये हैं। उदाहरणत किसी बहुस्थानीय दूकान व्यवसाय की देश के विभिन्न शहरो में, ५०० शाखाएँ है और प्रत्येक शाखा का प्रबन्धक प्रधान कार्यालय से पत्राचार करता है। प्रधान कार्यालय मे फाइलिंग नौ प्रमुख विभागो मे विभक्त किया जा सकता है। ये विभाग आसाम, बिहार, बम्बई, मध्यप्रदेश, मद्रास, उडीसा, पजाब, उत्तर प्रदेश तथा बगाल हो सकते हैं। यह दराज में सटे लेबुल के द्वारा हो सकता है और प्रत्येक दराज या दराजो का समूह रगीन पथ-प्रदर्शक (guides) पत्रो द्वारा डिवीजन या जिले में विभाजित हो सकता है जो अक्षरानुक्रम से व्यवस्थित हो सकते हैं। ये गाईड फोल्डरो के निकले सिरे में हो सकते हैं, जो बिल्कुल दाई तरफ होगे और जिन पर डिवीजन या जिले

के नाम लिखे होंगे। इनके पीछे हर एक दूकान के लिए एक फोल्डर रखा जा सकता है जिस पर संख्या वाला सिरा लगा हुआ होगा। जहां पर पत्राचारी के नाम की अपेक्षा विषय अधिक महत्वपूर्ण है, वहां विषयानुक्रम ही अपनाया जाता है। ऐसी हालत में सब कागज अक्षरानुक्रम से व्यवस्थित विषयों के पीछे नत्थी किये जाते हैं कि पत्राचारियों के अलग अलग नाम के पीछे।

देशना या अनुक्रमणिका रखना (Indexing)—प्रमुख कोटि की अनुक्रमणिकाएँ ये हैं—साधारण अनुक्रमणिका, स्वर अनुक्रमणिका तथा पत्रक अनुक्रमणिका। साधारण अनुक्रमणिका में कुछ पृष्ठ होते हैं और प्रत्येक पृष्ठ का शीर्षक वर्णमाला का एक अक्षर होता है। जिन नामों को अनुक्रमित करना है वे नाम उन पृष्ठों पर लिखे जाते हैं जिन पृष्ठों का शीर्षक उन नामों का प्रारम्भिक अक्षर होता है। नामों के ठीक सामने पृष्ठ संख्या दी रहती है। साधारण अनुक्रमणिका निम्न प्रकार की हो सकती है —(क) बंधी हुई, जैसे पत्र पुस्तिका या खाते के रूप में, बंधी हुई पुस्तक के रूप में, (ख) खुली, जैसे अलग किताब के रूप में बंधी हुई, अथवा जब खुले पृष्ठ खाते के रूप में व्यवहृत हों तब प्रत्येक आक्षरिक विभाग के सामने खाते में प्रविष्ट किए हुए, (ग) विस्तारित, जैसे किताब के रूप में बंधी हुई लेकिन इस प्रकार व्यवस्थित की हुई कि वह पुस्तक के क्षेत्र के बाहर खुले, (घ) स्वयं अनुक्रमक (Self Indexing) यानी पुस्तक के पन्ने इस प्रकार काट डाले गये हों कि उसमें संकेत अक्षर लिख दिये जाएँ। स्वर अनुक्रमणिका साधारण अनुक्रमणिका का विस्तार-सा है, जिसमें प्रत्येक पृष्ठ छः स्तम्भों (Columns) में विभाजित होता है जिनके शीर्षक क्रमशः अंग्रेजी में लगे होते हैं। नाम उसी पृष्ठ पर प्रविष्ट किये जाते हैं, जिसके स्तम्भ में ठीक प्रारम्भिक अक्षर होता है, जिसका सकेत अन्त्य (Surname) प्रथम अक्षर के बाद प्रथम स्वर से मिलता है। यह अनुक्रमणिका मुख्यतः वहां व्यवहृत होती है जहां बहुत से नाम लिखने होते हैं और जहां प्रत्येक नाम के लिए एक ही निर्देश आवश्यक है।

पत्रक अनुक्रमणिका (Card Index)—यह प्रणाली इतने वैज्ञानिक ढंग से निर्मित की गई है कि यह पत्राचार, लेख्य (Documents), पुस्तकें, कोटेशन, स्टाक अथवा स्टोर या भूमिधारियों का उल्लेख करने के लिए व्यवहृत की जाती है। सच्ची बात तो यह है कि इसका व्यवहार किसी भी कार्य के लिए हो सकता है। पत्र अनुक्रमणिकाओं के रखने के कई तरीके हैं, लेकिन सर्वोत्तम तरीका विशेष रूप से बनायी गई सन्दूकचों में पत्रों को रखना है। प्रत्येक सन्दूकचे में एक छड़ होती है जो कार्डों को ठीक स्थान पर बनाये रखती है। प्रत्येक पत्राचारी के लिए एक कार्ड व्यवहृत होता है, और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यदि अनुक्रमणिका सची फाइलिंग के एक हिस्से के रूप में व्यवहृत होती है, तो प्रत्येक कार्ड पर फोल्डर का नाम, पता तथा संख्या लिखी जाती है। यदि विषय अनुक्रमणिका बनायी गयी हो तो फोल्डर का विषय और संख्या कार्ड पर लिख दी जाती है। नाम कार्ड को ढूंढ निकालने की सुविधा के लिए वर्णमाला के अक्षर सहित गाइड कार्ड की व्यवस्था कर दी जाती है।

पत्रक अनुक्रमणिका प्रणाली में बहुत से लाभ हैं। कार्ड को हम किसी क्रम में छाट सकते हैं। यदि एक कार्ड भर जाए तो दूसरे कार्ड लगाए जा सकते हैं। यदि किसी व्यापारी ने व्यापार बन्द कर दिया हो तो उसका कार्ड निकालकर अलग कर दिया जा सकता है। दूसरे कार्ड के वर्णानुक्रम को जरा भी बिगाड़े बगैर, दूसरा कार्ड ठीक अपनी जगह पर रखा जा सकता है। उसी प्रकार जिस कार्ड की आवश्यकता हो, उसे दूसरे कार्डों पर सूचनाओं का उल्लेख करने के कामों में जरा भी व्यवधान डाले बिना, बाहर निकाला जा सकता है, क्योंकि कार्ड अपनी जगह पर छोड़े जा सकते हैं। यह सत्य है कि ये खुले पृष्ठ पुस्तक (Loose Leaf) में भी सम्भव हैं। लेकिन यदि पृष्ठों से बहुत काम लिया जाय तो जिन्दगी बहुत लम्बी नहीं हो सकती। इस प्रणाली में बढ़ाये जाने की असीम क्षमता है।

दृश्य अनुक्रमणिका (Visible Index)—पिछले कुछ दशकों में दृश्य अनुक्रमणिका का व्यवहार होने लगा है जो स्टाक, उत्पादन, विक्रय, क्रय तथा लेखाओं के लिए व्यवहृत की जाती है। इस प्रणाली में एक कैबिनेट होता है जिसमें लगभग चपटे ट्रे होते हैं। जब ट्रे को बाहर खींचा जाता है तब यह सुविधाजनक कोण पर लटक जाता है। लगभग पचास कार्ड ट्रे पर इस प्रकार लगा दिये जाते हैं कि जब ट्रे खींचा जाता है तब कार्डों के निचले किनारे का हिस्सा दिखाई पड़ता है। इस प्रकार किसी पत्राचारी का नाम या विषय का नाम इस हिस्से में साफ दिखायी पड़ता है। दृश्य अनुक्रमणिका के अनेक लाभ हैं निर्देश शीघ्रता, लगाने (Posting) में शीघ्रता तथा अभिलेखों का नियन्त्रण उनकी निरापदता।

मशीनें तथा कार्यालय उपकरण
(Machines and Office Appliances)

आधुनिक कार्यालयों के दक्ष संचालन के लिए यान्त्रिक उपकरण उत्तरोत्तर अधिक आवश्यक सिद्ध हुए हैं। कार्यालयों में और विशेषतया बड़े कार्यालयों में श्रम बचाऊ (Labour Saving) मशीनों तथा उपकरणों के व्यवहार करने की प्रवृत्ति इसलिए जोर पकड़ रही है कि लोग यह अनुभव करने लगे हैं कि अब वह कार्यालय जो निश्चित मान दण्ड से नीचा है, व्यवसाय का सबसे अधिक हानिकारक विभाग है। जहाँ कुछ वर्ष पूर्व केवल टाइपराइटर थे, वहाँ न केवल लेखन के लिए बहुत ही उन्नत ढंग की तथा आवाजरहित मशीनें पायी जाती हैं, बल्कि प्रत्येक नैत्यिक रीति के कार्य के लिए एक न एक किस्म की मशीन का व्यवहार होता है। इन मशीनों तथा उपकरणों का इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है (क) टाइपराइटर; (ख) डिक्टेशन देने की मशीन, (ग) प्रतिलिपि या नकल करने की मशीन, (घ) पता लिखने की मशीन, (ङ) तालिका बनाने तथा जोड़ने (Calculating) की मशीन, (च) बिल बनाने की मशीन (Billing Machine); (छ) बही लिखने की मशीन; (ज) रोक पंजी तथा सिक्का देखने की मशीन

(Cash Register and Coin-handling Machine); (ञ) समय लिखने की मशीन (Timerecording Machine) अन्य मशीन तथा विविध उपकरण।

टाइपराइटर इतना अधिक मशहूर है कि इस बारे में विवेचन करना भी व्यर्थ प्रतीत होता है। हम सभी जानते हैं कि यह क्या है तथा यह क्या कर सकता है। स्टैण्डर्ड, ध्वनिरहित तथा पोर्टेबल टाइपराइटरों के बारे मे सभी जानते हैं। पर यदि इसे सावधानी तथा बुद्धिमानी से व्यवहृत किया जाए, तो इससे अच्छे परिणाम की आशा भी नहीं की जा सकती। इधर कुछ वर्ष से टाइपराइटर के साथ अन्य कार्यालयिक मशीनें जसे बिल बनाने की मशीन, प्रतिलिपित या नकल करने की मशीन तथा टेलीफोन जोड दी गयी है। यह अन्य सभी कार्यालयिक मशीनों की अग्रज है तथा आगामी कई वर्षों तक इसका नेतृत्व बना रहेगा।

डिक्टेशन लिखने की मशीन (Dictating Machine)—डिक्टेशन मशीन प्रणाली, जिसके द्वारा ध्वनि मोम के बलन पर लिखी जाती है, और बाद में टाइपराइटर के द्वारा लिपिबद्ध की जाती है, तीन प्रकार की मशीनों से निर्मित होती है। ये तीन प्रकार की मशीनें हैं डिक्टटर या ध्वनिलेखक (Dictaphone), प्रतिलेखक (Transriber) तथा शवर (Shaver) या छीलने वाला। डिक्टेशन देने वाला केवल ध्वनिलेखक का व्यवहार करता है, टाइपिस्ट प्रतिलेखक का व्यवहार करता है और चपरासी शेविंग का काम करता है। डिक्टेशन मशीन के जरिए ध्वनि एक मोम के बने बेलन पर लिखी जाती है, जो एक स्थिर लोहे के बेलन पर रखा रहता है। यह लोहे का बेलन एक छोटी बिजली के मोटर के जरिए घूमता है। जब लिवर 'To Dictate' (बोलो) के स्थान पर कर दिया जाता है, तब वक्ता की आवाज का कम्पन बेलन की मोमदार सतह पर खुद जाता है। यदि वक्ता को अपने वक्तव्य को सुनने की इच्छा होती है तो वह लिवर को "Listen" (सुनो) के स्थान पर कर देगा और वह फोन को अपने कान पर रख लेगा। यदि वक्तव्य में कुछ सुधार करना हो तो वह ध्वनिलेखक या डिक्टाफोन के स्लिप पर कर दिया जाता है, जिससे वही माल्यिक मार होता है जो डिक्टाफोन में में होता है। इस प्रकार टाइपिस्ट को शुद्धि के बारे में चेतावनी मिल जाती है। टाइपिस्ट को लेखबद्ध बेलन मिल जाता है जिसे वह प्रतिलेखन मशीन पर रख देता है और इयरफोन तथा नियन्त्रण प्रणाली के जरिए वह अपनी चाल तथा समय के मुताबिक डिक्टेशन ले लेता है। यदि वह कोई शब्द या वाक्यांश नहीं समझता तो मन चाहे रूप मे कई बार दुहरा भी सकता है। शेविंग मशीन को उसी सिद्धान्त पर सचालित किया जाता है, जिस सिद्धान्त पर खराद या लेथ (Lathe) मशीन को। काम में लाया गया बेलन दूसरे बेलन या मैंड्रिल पर रख दिया जाता है और खुदी हुई सतह को साफ करने के लिए छुरी ठीक कर दी जाती है। घूमते हुए बेलन पर जैसे-जैसे छुरी घूमती है, वह मोम की एक पतली सतह को छील देती है और इस प्रकार बेलन की सतह को साफ कर देती है, ताकि वह दुबारा डिक्टेशन के लिए काम में लाया जा सके।

प्रत्येक वेलन को लगभग सौ दफे इस्तेमाल किया जा सकता है। डिक्टाफोन या ध्वनि-लेखक के लाभ ये हैं—

(क) वक्ता और टाइपिस्ट दोनो अपनी चाल और समय पर काम करते है, (ख) क्षिप्रलेखन की आवश्यकता नही होती, (ग) काम को केन्द्रीभूत किया जा सकता है और ज्यादा उचित रीति से विभाजित किया जा सकता है, (घ) कम टाइपिस्टो को आवश्यकता होती है, (च) टेलीफोन वार्ता को वार्ता होने के समय ही लिपिबद्ध किया जा सकता है, (छ) निरीक्षण या अन्य रिपोर्ट उस समय भी तैयार की जा सकती है, जब निरीक्षक एक स्थान से दूसरे स्थान में जा रहा हो।

प्रतिलिपि या नकल करने की मशीन (Duplicating Machine)—प्रतिलिपि कार्य का मतलब बहिर्गामी पत्रो की एक या कई नकले या बहुत सारी नकले करना है। टाइपराइटर, प्रेस नकल तथा रोनियो पत्र नकल, ये तीन साधन है, जिनके द्वारा पत्रो की थोडी संख्या में नकल की जा सकती है। बहु-संख्यक प्रतिलिपि के लिए प्राय छ प्रक्रियाएँ व्यवहृत होती है, जिलेटिन, स्टेन्सिल, टाइपसेटिंग (Typesetting), रोटा प्रिंट (Rota Print), नियन्त्रित टाइपराइटर और फोटोग्राफिक अथवा फोटोस्टैट।

टाइपराइटर भी नकल करने की एक मशीन है। बाहर भेजी जाने वाली चिट्ठी की नकल करने के लिए एक सादे कागज के पीछे एक कारवन पत्र रखकर ठीक स्थान पर जमा दिया जाता है, और जब कागज पर टाइप किया जाता है, तब उसकी ठीक प्रतिलिपि सारे कागज पर छप जाती है। इस प्रकार ५ या ६ पठनीय प्रतियां ली जा सकती है, हालाकि जब चार से अधिक प्रतियो की आवश्यकता होती है, तब विशेष रूप से कड़ रोलर या बेलन की आवश्यकता होगी। कारवन के जरिये नकलो को उतारना कारवोटाइप कहलाता है। कारवोटाइप एक तरीका है, जिसमे टाईपिंग के लिये कई ताव होते है। ये ताव जिल्द में बंधे होते है, और बधाई के करीब आध इंच नीचे एक छेददार लाइन होती है, ताकि जब एक बार के टाईपिंग मे एक ताव या एक सेट टाइप हो जाय तो उन टाइपो को आसानी से अलग किया जा सके। यह प्रणाली अधिक वैज्ञानिक है और इससे समय तथा श्रम की बचत होती है और दक्षता मे वृद्धि होती है।

प्रेस नकल—यह पद्धति पुरानी पडती जा रही है हालाकि छोटे-छोटे कार्यालयो में अब भी व्यवहृत की जाती है। नकल करने का काम एक पत्र पुस्तक (Letter Book) मे होता है, जिसमे टिशू कागज के कई सौ ताव होते है जिन तावो पर शृखलाबद्ध रीति से क्रमसंख्या भी रहती है। जिस पत्र की नकल करनी होती है, उसे या तो कॉपिंग स्याही से हाथ से लिख दिया जाता है या कॉपिंग रिवन के जरिए टाइप कर दिया जाता है जिससे हाथ का लिखा हुआ या टाइप किया हुआ लेख टिशू कागज की जगह दिखाई दे। उसके ऊपर खास तौर से तैयार किया हुआ एक भीगा हुआ कपडा रख दिया जाता है, और इसके ऊपर तथा मौलिक पत्र के नीचे तेलही कागज रख दिया जाता है, ताकि किताब के दूसरे पन्ने मे गीले कपडे की नमी न चली जाय।

तब वह किताब बन्द कर दी जाती है और जब उस पर हैंड प्रैस के जरिये दाब दी जाती है, तब चिट्ठी से स्याही का कुछ अश टिशू पर चला जाता है और नकल हो जाती है। जब यह क्रिया पूरी हो जाती है तब चिट्ठी वहा से निकाल ली जाती है, लेकिन सेल्ही कागज उस समय तक किताब मे छोड दिया जाता है, जब तक कि पन्ने सूख न जाएँ। यह पद्धति धीमी है, और मौलिक पत्र की लिखावट को करीब-करीब पोंछ सा देती है। फिर भी इस पद्धति मे एक लाभ यह है कि मौलिक पत्र की हूबहू नकल हो जाती है, और हस्ताक्षर तक की नकल हो जाती है। निर्देश की सुविधा के लिए पत्र पुस्तक के प्रारम्भ मे एक सूची बना ली जाती है और उन पृष्ठों की सख्या, जिनपर प्रत्येक पत्राचारी के नामाक्षर होने है, पत्राचारी के नाम के सामने लिख दी जाती है।

रोनियो (Roneo) प्रतिलिपित्र (Letter copier)

यह एक स्वयचल (Automatic) प्रतिलिपित्र है, जिसे कागजो को भिगोने की क्रिया से बचाने के लिए बनाया गया है। मशीन हाथ से या बिजली से चलाई जा सकती है। मशीन-चालक रोलरो या बेलनो के बीच चिट्ठियो को डालता जाता है, और उनकी नकल कागज के एक गोल लपट पुलन्दे (Roll) में हो जाती है, जिसे मशीन के जरिए अन्दर डाला जाता है और नकल की चिट्ठिया मशीन की दूसरी तरफ सग्रह टोकरी (Collecting Tray) म जमा हो जाती है। कापिंग कागज खास तौर से तैयार किया जाता है। उन्हे कापिंग रिबन से टाइप किया जाता है या कापिंग स्याही से लिखा जाता है। इस प्रकार किसी पत्र की बहुत-सी प्रतियाँ की जा सकती है।

व्यवसाय कोठियो को कभी-कभी कारबन से नकल किये गये पत्र अधिक सख्या में बाहर भेजने होते है। फिर भी उनकी सख्या इतनी नही हो सकती कि उनका मुद्रित किया जाना ठीक हो, या हो सकता है कि चिट्ठियो की नकल की आवश्यकता अति शीघ्र हो। बहुसख्यक प्रतिलिपि करने के विभिन्न तरीको का वर्णन नीचे किया जाता है।

जिलेटिन प्रक्रियाएँ (Gelatine Processes) नकल करने के सबसे पुराने तरीको में है। जिलेटिन प्रतिलिपित्र या द्विलिपिक टाइपलिखित या हस्तलिखित या मौलिक लिखावट को स्याही के एक डुप्लिकेटिंग कम्पोजीशन में हस्तान्तरित कर देता है, जो गल जाता है और स्याही को उस समय तक सतह पर बनाये रखता है जब तक सारी प्रतियो की नकल न हो जाए। मौलिक प्रति कापिंग रिबन से टाइप की जाती है या कापिंग स्याही से लिखी जाती है। इस तरह के डुप्लिकेटर में एक चौडा छापने वाला ट्रे होता है जिसके ऊपर जिलेटिन से ढका एक बेलन ढका होता है। बेलन की सतह जब एक बार घूम चुकी होती है, तब हैंडल को घुमाकर बेलन की सतह दूसरी बार स्थान पर लायी जाती है। मूल प्रति की लिखावट नीचे करके कापिंग सतह पर रख दी जाती है और हथेली से या उस काम के लिए दिये गये बेलन से उसे चिकना कर दिया जाता है। तब उसे उठा लिया जाता है, और और तब उसकी छाप जिलेटिन पर पडती है। सादा कागज एक-एक करके जिलेटिन की सतह पर कुछ सेकेन्ड के लिए छोड दिया जाता है और तब उस पर छाप पड जाती है।

स्टेंसिल प्रतिलिपित्र (Stencil Duplicator)

टाइपलिखित विषय, नक्शा और तालिकाओं की हूबहू नकल स्टेंन्सिल डुप्लीकेटर के जरिए की जा सकती है। स्टेंसिल, एक मोमदार परत होती है जिस पर नकल की जाने वाली चीज टाइप कर दी जाती है या लिख दी जाती है। स्टेंसिल को टाइपराइटर पर रख दिया जाता है और रिबन को वहाँ से हटा दिया जाता है या एक कील के जरिए ऐसे स्थान पर हटा दिया जाता है जहाँ टाइप करने वाले अक्षर उस छू न सकें। जब टाइप किया जाता है तब अक्षर मुद्रित होने के बजाय कट जाते हैं और इस प्रकार जब स्टेन्सिल मशीन पर रखी जाती है, तब स्याही उन स्टेंन्सिल कटे अक्षरों से पार गुजर जाती है। नकल करने के लिए स्टेंसिल को एक बेलन से बाँध दिया जाता है जिसके नीचे स्याही की गद्दी होती है। हैन्डल को घुमाने से बेलन घूम जाता है और इस प्रकार दबाव पड़ने पर स्टेन्सिल उस कागज के सम्पर्क मे आता है जो मशीन में डाला गया है। इस प्रकार स्याही स्टेन्सिल में कटे अक्षर या डिजाइन से गुजर कर छपने वाले कागज पर चली जाती है और कागज पर आवश्यक छाप पड़ जाती है। 'रोनियो' और 'जेस्टेटनर' इस प्रकार की प्रसिद्ध मशीन हैं और यदि इसमें कागज डालने के लिए स्वचालित यंत्र लगा दिये जाएं तो एक मिनट में एक सौ प्रतियाँ नकल की जा सकती है।

टाइपसेटिंग डुप्लीकेटर (Typ-seetting Duplicator)—वे डुप्लीकेटिंग मशीन जो टाइप बैठाने के सिद्धान्त का पालन करती है, दो प्रकार की होती हैं। पहला प्रकार टाइपराइटर किस्म से छापता है और दूसरा स्टेंडर्ड प्रिन्टर्स टाइप, इलेक्ट्रोटाइप या प्लेट से छापता है। कुछ मशीनें इस प्रकार की होती हैं जिनमें दोनों किस्म की मशीन मिली होती हैं। पत्र या जिसकी भी प्रतिलिपि करनी हो उस टाइपसेटिंग इकाई में ला दिया जाता है जिसमें तीन तरह के बैंक होते हैं, जो धातु के बने फ्रेम पर चढ़े होते हैं। तीन बैंक टाइपराइटर की-बोर्ड बिजली से देशनायुक्त (Indexed) डाई-करियर (Die-carrier) को नियन्त्रित करता है जो एक पतले से एलुमीनियम के रिबन पर अक्षरों को ऊपर की तरफ उठा देता है। प्रत्येक रचित लाइन के अन्त में यह रिबन कट जाता है और फीता धक्के खाकर चक्के (Disc) में अपने स्थान पर आ जाता है और यह चक्का डुप्लीकेटर के ढोल के ऊपर जा बैठता है। जब पूरी चिट्ठी कम्पोज कर ली जाती है तब वह चक्का डुप्लीकेटिंग मशीन के ढोल पर स्थित हो जाता है और चिट्ठी आगे बढ़ती है। उसके बाद फीते हटा दिये जाते हैं। जब टाइप लगा दिया जाता है तब छपाई की जगह मशीन में यथास्थान बन्द हो जाती है और उस पर एक चौड़ा टाइपराइटर रिबन ढक जाता है। प्रिंटिंग ड्रम जैसे-जैसे घूमता है, वैसे-वैसे टाइप की प्रत्येक लाइन उस समय कागज के सम्पर्क में आती है जब वह रबर के बेलन से होकर गुजरती है और इस प्रकार प्रत्येक चक्कर के साथ टाइपलिखित पत्र की हूबहू प्रतिलिपि छप जाती है। हस्ताक्षर करने की बनी एक विधि (Device) के द्वारा प्रत्येक चिट्ठी पर छपते ही हस्ताक्षर हो जाता है। जब चिट्ठियाँ छप चुकी होती हैं तब कारेसपोन्डेन्स टाइप-

टाइटर से नाम और पते भर दिये जाते हैं। ऐसे टाइपराइटर पर वही रिबन इस्तेमाल किया जाता है जो रंग में उस रिबन पर फबे, जो डुप्लीकेटर पर इस्तेमाल किया जाता है।

स्वचालित टाइपराइटर (Automatic Typewriter)

इस प्रकार के डुप्लीकेटर के निर्माण का उद्देश्य है वस्तुतः टाइप-लिखित पत्रों को शीघ्रता से छापना। इस मशीन में स्टेन्डर्ड टाइपराइटर मशीन होती है जो बिजली से सचालित होती है। इसमें मशीन की यान्त्रिक गति पर रेकार्ड पेपर के छेददार (Perforated) फीते से नियन्त्रण रखा जाता है। यह फीता ठीक उसी प्रकार का होता है, जिस प्रकार का पियानो का रोल होता है। यह रिकार्ड विशेषतया निर्मित मशीन पर बनाया जाता है जो इस प्रकार की मशीन की सज्जा में से एक है। परफोरेटर में स्टैण्डर्ड टाइपराइटर का की-बोर्ड होता है। जिस पत्र की नकल करनी होती है उसे पहले हाथ से लिख लिया जाता है और तब टाइपिस्ट इस नकल से परफोरेटर पर रेकार्ड काट लेता है। प्रत्येक छेद (Perforation) टाइपराइटर की-बोर्ड में बने अक्षर का प्रतिनिधित्व करता है और वह परफोरेटर की चाबियों को दबाते ही छप जाता है। जब परफोरेशन की कटाई पूरी हो जाती है तब छेददार कागज काट लिया जाता है और इसके दोनों किनारों को जोड़ दिया जाता है और तब इसकी शक्ल एक बेलन की तरह हो जाती है। तब यह बेलन ड्रम पर रख दिया जाता है जो मशीन के सामने होता है। ड्रम पर लम्बाई की ओर को कई सूटियां होती हैं जिनके सहारे छेददार कागज लगा होता है। जब मशीन चला दी जाती है तब ड्रम घूमने लगता है और रेकर्ड कागज सामने आ जाता है और पिन के नीचे होकर गुजरता है। जब परफोरेशन (या छेददार कागज) पिन के नीचे होकर गुजरता है तब पिन ड्रम के एक छेद (Perforation) में गिर जाता है। एक प्रकार के यान्त्रिक (Mechanical) जोड़ के जरिए इस प्रक्रिया के नीचे टाइपराइटर की चाबियां ऐसी गतिशील हो उठती हैं, मानो उन्हें हाथ से लाया गया हो, और जब सारे परफोरेशन एक ड्रम से होकर गुजर चुकते हैं, तब चालक समाप्त पत्रों को वहां से हटा लेता है और फिर इसी प्रकार नये पत्रों की नकल करने की क्रिया को दुहराता है।

फोटोग्राफिक डुप्लीकेटर या फोटोस्टैट (Photographic Duplicator or the Photostat)—यह एक प्रकार की मशीन है जिसके द्वारा पत्रों, मानचित्रों, आलेखों (Drawing), मसविदों, अनुबन्धों, बन्धक पत्रों (Mortgages), आदेशों, बीजकों, प्रमाणपत्रों आदि की फोटोग्राफ के जरिये प्रतिलिपि ली जाती है। यह मशीन बड़े कैमरे (Camera) के समान होती है जिसका निर्माण इस प्रकार होता है कि किसी भी संवेदक (Sensitive) कागज पर सीधे फोटो आ जाय और तत्पश्चात् मशीन में ही डेवलपिंग प्रक्रिया के बाद तैयार प्रतिलिपि मिल जाती है। कैमरे के लेन्स के ठीक नीचे ही तथा मशीन के ढांचे से संयुक्त एक शीशे का सिरा (Glass Top Copy) या वस्तु धारक (Subjectholder) होता है।

जिस चीज की तस्वीर लेनी होती है, उसे शीशे के नीचे रख दिया जाता है। चूंकि उसमें स्वचालित फोकसिंग (Automatic Focussing) का प्रबन्ध रहता है, अत. यन्त्रचालक के लिए किसी खास कुशलता की आवश्यकता नहीं होती। डेवलपिंग भी आप से आप हो जाता है। संवेदनशील कागज (Sensitised Paper) मशीन के अन्दर लम्बी लपेट (Continuous Roll) के रूप में लगा होता है और उसमे प्रकाश कोष्ठ (Exposing Chamber) के जरिये डाला जाता है। साथ ही डेवलपिंग तथा फिक्सिंग विलयन भी उसमें डाल दिया जाता है। इसके बाद अभीष्ट लम्बाई के बराबर इसे काट लिया जाता है।

पता लिखने की मशीन (Addressing Machine)—ये मशीन प्रस्तुत प्लेटो तथा स्टेन्सिल के लिफाफो, लपेट कागजों (Wrappers) या लेबलो पर पता लिखने के लिए बड़ी उपयोगी होती हैं। इन मशीनों के उपयोग से, उस अवस्था में जब एक ही प्रकार के लोगों को बार बार पत्र भेजना हो और बड़ी तादाद में भेजना हो, समय की बडी बचत होती है। इन मशीनो का उपयोग सूची, अभिलेख (Record), खाता पृष्ठ, लाभांश अधिपत्र, वेतन सूची (Pay Roll) अशधारी सूची या नामो की कोई तालिका, यथा ग्राहकों की सूची, तैयार करने में किया जाता है। पता लिखने की मशीनो में 'रोनियो' तथा 'एड्रेसोग्राफ' सर्वोत्तम हैं। एड्रेसोग्राफ में धातु के उठे प्लेट (Metal Embossed Plate) तथा रोनियो में रेशेदार स्टेन्सिल (Fibre Stencil) का उपयोग किया जाता है। इस विभिन्नता के अतिरिक्त सचालन सम्बन्धी व्यापक सिद्धान्त के सम्बन्ध में दोनों एक हैं। रोनियो विशेषतया बड़ी-बड़ी कम्पनियों मे एड्रेसोग्राफ से ज्यादा लोकप्रिय है।

तालिका बनाने की तथा आगणन की मशीन (Tabulating & Calculating Machine)—समय व्यय तथा श्रम की दृष्टि से, दफ्तर के कार्यों में तालिका बनाने, हिसाब लगाने (Calculating) तथा लेखाकन (Accounting) की मशीनों के द्वारा सबसे अधिक बचत हुई है। तालिका मशीन दो प्रकार की होती है। पहली तथा सर्वोत्तम मशीन वह है जिसमे पंच कार्ड (Punch Card) या तालिका कार्ड (Tabulating Card) आधार होता है। दूसरे प्रकार की मशीन में चाबिया होती हैं, जो रूप में कैश रजिस्टर की तरह होती है और जिन्हे दबाने पर मुद्रित चीज तैयार हो जाती है। दोनो तरह की मशीनें दो अलग-अलग कार्यों के लिए प्रयुक्त की जाती है, यथा सांख्यिक तथा विश्लेषणात्मक कार्य तथा सामान्य एवं लागत हिसाब कार्य, बिक्री के क्षेत्र में विक्रेताओं के द्वारा मूल्य सारणियों के अनुरूप, विक्रय-क्षेत्र के अनुरूप, विक्रय माल के वर्गों के अनुरूप, लाभ सारणी के अनुरूप तथा की गयी बिक्री के अनुरूप, विक्रय का विश्लेषण, साथ, वर्गीकरण आदि कतिपय कार्य हैं, जिनके लिए इस मशीन का उपयोग होता है। जीवन बीमा कम्पनिया इस प्रकार की मशीन का उपयोग शुद्ध रूप से सांख्यिक कार्यों में विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करती हैं। इधर सालों से टेबुलेटिंग मशीन का उपयोग सामान्यतया लागत हिसाब के क्षेत्र में पर्याप्ततः बढ़ गया है।

आगणन मशीनें (Calculating Machines)—विभिन्न प्रकार की आगणन मशीनें मिलती हैं, जिनके द्वारा विशेषतया प्रशिक्षित कोई भी मनुष्य बड़ी शीघ्रता से जोड़ने, घटाने, गुणा करने तथा भाग करने का कार्य कर सकता है। जोड़ने की मशीनें दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। (क) असूचीकरण कोटि (Non-listing Type) अथवा सूचीकरण कोटि (Listing Type), (ख) पूर्ण अथवा स्टेण्डर्ड की बोर्ड कोटि (Full or Standard Key Board Type); (ग) दस कुंजी कोटि (Ten Key Type), (घ) हाथ लिवर कोटि (Hand Lever Type), (च) स्वचालित विद्युत कोटि (Automatic Electric Type)। बाजार में बहुत सी ऐसी मशीनें मिलती हैं, जिनमें इन कोटियों का मिश्रण होता है। उनका नीचे वर्णन किया जाता है —

असूचीकरण कोटि की मशीन सर्वाधिक सरल, सीधी, जोड़ने की मशीन है। सात से लेकर सत्तर तक कालम वाली मशीन मिल सकती है। सूचीकरण कोटि की मशीन का सचालन सिद्धान्त वही है, जो ऊपर वर्णित मशीनों का सचालन सिद्धान्त है। अन्तर केवल इतना है कि प्रत्येक सख्या फीते (Tape) पर लिखी पूर्ण की-बोर्ड कोटि की होती हैं और उन सख्याओं का जोड़ भी लिखा होता है। प्रत्येक जोड़ने की मशीन या की-बोर्ड कोटि ही होती है। पुनः प्रत्येक जोड़ की मशीन या तो हाथ लीवर किस्म की होती है अथवा स्वचालित विद्युत किस्म की। रेमिंगटन (Remington) तथा बरोज (Burroughs) दो सर्वोत्तम किस्म की मशीनें हैं।

काम्पटोमीटर (Comptometer) बहुत प्रकार के आगणन करता है। यह पूर्णों को, दशमलवों, भिन्नो, सभी प्रकार की करेन्सियों, भागों तथा मापों (Weights & Measures) आदि को जोड़ता है, घटाता है, गुणा करता है तथा विभाजित करता है। यह जोड़ने का काम तो मस्तिष्क की अपेक्षा दुगनी तेजी से तथा गुणा, भाग करने का काम दस गुनी तेजी से करता है और घटाने का काम तो प्रायः तत्क्षण करता है।

बिल बनाने की मशीन (Billing Machine)—आधुनिक बिलिंग मशीन या बिल बनाने की मशीन टाइपराइटर तथा आगणन मशीन का मिश्रण है। बिलिंग मशीन के अनेकानेक लाभ तथा उपयोग हैं। प्रपत्रों (Forms) को उचित क्रम में रख दिया जाए तो एक बार लिखने पर १८ प्रतिलिपियां तैयार की जा सकती हैं और इस प्रकार टाइपराइटर के प्रयुक्त किये जाने पर किसी बिल की बार-बार प्रतिलिपि करने की परेशानी से छुट्टी मिल जाती है। आगणन बिल्कुल ठीक होता है, क्योंकि वह यन्त्र द्वारा किया जाता है। बिल मशीनों में कुछ ऐसा यन्त्र होता है कि वह प्रविष्टि सम्बन्धी गल्तियों के होने पर मशीन को आप से आप बन्द कर देता है। इस प्रकार की मशीनों की जो विभिन्न प्रकार की कोटियां होती है, उनमें वह कोटि, जो लिखने का काम करती है, चारों प्रकार के आगणन कर लेती है तथा इस प्रकार की मशीन के जरिये एक ही बार में कई प्रतियां निकाली जा सकती हैं।

इसके जरिए विश्लेषणात्मक तथा वर्गीकरण कार्य भी किया जा सकता है तथा इस प्रकार की मशीन सर्वोत्तम होती है।

बही लेखन मशीन (Book-keeping Machine)—ये मशीनें बिल मशीनों की तरह होती हैं, क्योंकि ये भी टाइपराइटर और आगणन मशीन का मिश्रण है। वस्तुतः दोनों एक मशीन में ही संयुक्त कर दी जाती हैं। जिन अभिलेखों के लिए प्रायः अभिलेखन मशीन व्यवहार की जाती है, वे ये हैं : क्रय रोजनामचा (Purchase Journal), वितरण रोजनामचा (Distribution Journal), विक्रय रोजनामचा (Sales Journal), विक्रय व लागत रोजनामचा (Cost & Sales Journal), प्राप्त नगदी रोजनामचा (Cash Received Journal), सामान्य रोजनामचा (General Journal), प्राप्य खाता रोजनामचा (Accounts Receivable Journal) ग्राहक विवरण (Customers Statement), विप्रेषण पत्र (Remittance Advice), प्रूफ रोजनामचा (Proof Journal), लागत पत्र (Costs Sheets), भाण्डार अभिलेख (Stores Record), माल सूची अभिलेख (Inventory Record), वेतन सूची अभिलेख (Pay Roll Record)। इन मशीनों के कई प्रकार मिलते हैं, जिनमें बरोज, रेमिंगटन, नेशनल, इलियट फीशर, स्मिथ प्रीमियर, मनुस्ट्रैन्ड विख्यात हैं। ये मशीन विभिन्न किस्मों में अलग-अलग ढंग की होती हैं। साधारण स्वचालित बही लेखन मशीन हो सकती है जिनके जरिये खतियान (Ledger Posting) तथा विवरण लेखन (Statement) दोनों कार्य किये जा सकते हैं। अथवा ये विद्युत् संचालित टाइपराइटर लेखाकन मशीन (Typewriter Accounting Machine) हो सकती है, जो उस अवस्था में सभी लेखाकन (Accounting) कार्य के लिए व्यवहृत की जा सकती है, जहां टाइपलिखित ब्योरे (Detail) की आवश्यकता है। यह मशीन एक संचालन में कई प्रपत्रों को प्रविष्ट करती है और स्वचालित रीति में पूर्ण विराम आदि लगा देती है, उन्हें तालिकाबद्ध कर देती है, तथा तिथि भी डाल देती है। ज्यों-ज्यों मद (Item) की प्रविष्टि होती है, त्यों-त्यों अलग प्रपत्र या अवेक्षण पत्र (Sheet) पर उसका उल्लेख होता जाता है। इसमें अन्त परीक्षा (Cross Check) की सुविधा प्राप्त होती है और इसे दैनिक तथा विभागीय सन्तुलन (Sectional Balancing) के लिए व्यवहृत किया जाता है।

उचित कार्यालय यन्त्रों के उपयोग से होने वाले लाभ के अतिरिक्त बही लेखन उद्योग ने आधुनिक बही लेखन तथा कार्यालय व्यवस्था को प्रमुख सहायता प्रदान की है और वह सहायता है महीने तथा वर्ष के अन्त में बही लेखकों तथा लिपिकों द्वारा अतिरिक्त घड़ियों में काम करने की मनहूसियत का लगभग अन्त हो जाना। इन मशीनों द्वारा यह सम्भव हो सका है कि बही लेखकों की प्रविष्टियां अद्यतन रखी जाय

इस प्रकार यह भी सम्भव हो सका है कि जब आवश्यकता हो तब विवरण तैयार कर लिया जाय। शुद्धता, चालू तथा बाह्य रूप को छोड़ भी दें तो इस प्रकार दैनिक नियन्त्रण की सुविधा ही वहीं लेखन मशीन के उत्तरोत्तर बढ़ते उपयोग को उचित ठहराती है।

रोकड़ पञ्जी तथा सिक्का सभाल यन्त्र (Cash Register and Coin-handling Devices)—रोकड़ पञ्जी मुद्रित तथा अमुद्रित दोनों प्रकार की होती हैं, तथा यान्त्रिक सचालन की दृष्टि से चाबी वाली तथा लीवर वाली दोनों प्रकार की होती हैं। मुद्रित किस्म वाली निम्नलिखित चार में मॉडलों किसी एक मॉडल की हो सकती है।

योग मुद्रक में (Total Printer) में योग अभिलेख (Total Record) की व्यवस्था होती है जो किसी भी समय कागज के टुकड़े पर छापा जा सकता है। कुल बिक्री (Total Sales) के अतिरिक्त कागज के टुकड़े पर तिथि लेन-देन की संख्या, 'No sale' चाबी जितनी बार व्यवहृत की गई, उसकी संख्या, जोड़, तथा आगमन यन्त्र जितनी बार शून्य पर लगाया गया इसकी संख्या तथा मशीन की संख्या भी मुद्रित हो जाती है। शाम को मुद्रित कागज को दैनिक व्यवस्था के स्थायी अभिलेख के रूप में फाइल किया जा सकता है। विस्तार मुद्रक (Detail Printer) में फीते (Strip) पर प्रत्येक मद की बिक्री, सौदे की प्रकृति, विक्रेता के हस्ताक्षर अथवा विभागीय चिह्न होता है। विस्तार तथा रसीद मुद्रक (The Detail and Receipt Printer) में रसीद मुद्रक यन्त्र लगा होता है जो ग्राहक के लिए टिकट तथा रसीद निर्गमित करता है। विस्तार योग-मुद्रक बिक्री की मदों को मुद्रित करता है, तथा उन्हें जोड़ता है और योग का उल्लेख करता है। इस पञ्जी में विस्तृत अभिलेख होता है तथा यह रसीदें निर्गमित करती है, जिसमें मदवार बिक्री तथा बिक्री का योग दिया रहता है।

सिक्का सभाल यंत्र (Coin-handling machine) में तीन भाग होते हैं। मशीन के सिरे पर रेजगारी परात या ट्रे, अथवा पेटिका जिसमें सभी प्रकार की रेजगारी रखी जाती है, की बोर्ड जिसमें चाबियां होती हैं, रेजगारी की प्रत्येक इकाई के लिए एक कतार, जिसे दबाने पर इच्छित संख्या में रेजगारी निकल आती है, और सिक्का सरणि, जिसमें होकर सिक्के गिरते हैं, होते हैं। सिक्का सभाल यन्त्र (Coin handling Machine) तीन प्रकार के होते हैं, यथा सिक्का विभाजक (Coin Seperator), जो मिली-जुली रेजगारी को अलग-अलग करता है, सिक्का गणक तथा बन्धाई मशीन (Coin counting & Packing Machine), जो सिक्कों की गिनती करती है और उन्हें लपेटती है। यह एक बार में एक तरह के सिक्के गिनती और लपेटती है—सिक्का विभाजक व गणक, जो सिक्कों की एक ही बार में गिनती भी करती है, उन्हें अलग-अलग भी करती है तथा लपेटती भी है।

समय मुद्रक मशीनें (Time Recording Machine)—समय मुद्रक मशीनें सामान्यतः दो प्रकार की होती हैं। एक वे जिनमें कार्ड या कागज डाल

कार्ड की तरह घुसा दिया जाता है और दूसरी वे जिनमें अन्दर के ड्रम के चारों ओर लपेटे कागज पर समय अंकित कर दिया जाता है, जैसा कि प्रवेश तथा प्रस्थान अभिलेख करने वाले ड्रम किस्म के रेकर्ड पर होता है। समय मुद्रक यंत्र के प्रमुख उपयोग ये हैं। प्रवेश व प्रस्थान या उपस्थिति अभिलेख, कार्य अभिलेख तथा समय मुद्रण (Time-recording)। पहले प्रकार की मशीन की व्यवस्था में कर्मचारी (Employee) दिन में प्राय चार बार अपने समय का अंकन करता है—जब वह प्रातःकाल पहुँचता है, जब वह भोजन के लिए दोपहर का प्रस्थान करता है, जब भोजन से लौटकर वापस आता है और जब वह सध्या को प्रस्थान करता है। कार्यांश (जाब) मुद्रक का प्रधान उपयोग फैक्ट्री में होता है जहा यह जानना आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक मजदूर ने प्रत्येक काम के सम्पादन में कितना समय लिया। आने वाली डाक तथा अन्य कागजात पर विभागों द्वारा सम्पूर्ण कम्पनी की ओर से मुद्रा लगाने में समय मुद्रा का उपयोग किया जाता है।

अन्य कार्यालय मशीनें तथा विविध साधन (Other Office Machines & Sundry Devices)—उपर्युक्त प्रधान मशीनों तथा उपकरणों के अतिरिक्त, प्रत्येक कार्यालय में विभिन्न यंत्रों का उपयोग किया जाता है, विशेषतया बचत तथा चाल के लिए। डाक विभाग में इन मशीनों में इनके नाम लिए जा सकते हैं गोंद लगाने की मशीन (Gumming Machine) जिससे आध इंच चौड़ाई तथा किसी भी लम्बाई का बड़ा गोंद लगा कागज सफाई से फाड़ तथा भिगो दिया जाता है जिससे उसे फ्लैप तथा पार्सल में लगाया जा सके। चपड़ा लगाने की मशीन (Sealing Machine) पत्रों तथा पार्सलों पर सफाई तथा तेजी से चपड़ा लगाती है। टिकट लगाने की मशीन (Stamp Fixing Machine) टिकटों की गिनती करती है तथा उन्हें चिपकाती है। ये टिकटें गोल प्लेट (Roll) के रूप में खरीदकर मशीन में डाल दी जाती हैं। टिकट छापने की मशीन (Franking Machine) एक उपयोगी मशीन है, जो समय की बचत करती है। यह मशीन लिफाफों तथा अन्य डाक के पार्सलों पर टिकट छाप देती है। मोड़ने की मशीन (Folding Machine) गश्ती पत्रों तथा अन्य कागजों की बड़ी संख्या में समान आकार में मोड़ने के काम आती है। स्टेपलिंग मशीनें पत्रों और अन्य कागजों को एक जगह जोड़ने के काम आती है। स्वचालित संख्यांकन मशीन (Automatic Numbering Machine) पत्रों व बीजकों, लाभांश अधिपत्रों आदि पर संख्या देने के लिए व्यवहृत की जाती हैं। इस मशीन को लगातार एक ही संख्या को, अथवा क्रमिक संख्या (Consecutive Numbers) को, अथवा एक संख्या को कई बार छापने के लिए समायोजित किया जा सकता है। इस कार्य के बाद इसे पुनः शून्य पर लगा दिया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त बहुतेरे अन्य यन्त्र हैं, लेकिन स्थानाभाव के कारण उनके नाम ही गिना दिये जाते हैं - Cheque Protectors, Writers Certifiers, Calculation Rulers, Coupon Printing Machine,

Eylet Fasteners, Paper-cutting Machine आदि ।

इनमें भीतरी सम्पर्क की कतिपय विधियों की चर्चा की जा सकती है । इन विधियों की आवश्यकता प्रत्येक बड़े कार्यालय में होती है । घंटी तो सबसे छोटा यन्त्र है, जिसम बटन दबाने का अर्थ है कि अपेक्षित व्यक्ति की आवश्यकता है । परामर्श अथवा विचार-विनिमय के लिए टेलीफोन प्रणाली का प्रत्येक कार्यालय में उपयोग किया जाता है, ताकि कार्यशाला के समय की बचत हो । भवन के विभिन्न भागों में लेख्यों (Documents) के यातायात के लिए न्यूमेटिक नली (Penumatic) का अक्सर उपयोग किया जाता है । सम्वाद वहन की दूसरी विधि है, ट्यूब टेलीराइटर (Tube Telewriter) अथवा टेलीप्रिंटर, जिसके जरिए लिखित या मुद्रित सवादों को टेलीफोन या टेलीग्राफ लाइन के जरिए, जो भी उपलब्ध हो, लगभग उसी क्षण स्थानान्तरित किया जा सकता है ।

अध्याय १३

व्यवसाय संयोजन

(Business Combination)

पिछले ५० सालों में व्यवसाय-क्षेत्र में दो ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिन्होंने नियन्त्रण की तथा नियन्त्रणकर्त्ता की शक्ति को दृष्टि से इसे बहुत महत्वपूर्ण रूप दे दिया है। पहली घटना है निगमित प्रकार के कारबार की प्रधानता। दूसरी मुख्य घटना, जिसने धन के अत्यधिक केन्द्रीकरण को (जिसके परिणामस्वरूप कभी-कभी एकाधिकार स्थापित हो गया है), बढ़ावा दिया है, पहली घटना पर निर्भर है। यह है एक सारे उद्योग के लिए या राष्ट्रव्यापी आधार पर नीति का निर्माण और शक्ति का प्रयोग। यह पूंजीपति के उपक्रम का, अपनी आकांक्षाओं पर लगने वाली प्रतियोगितामूलक रुकावटों को विध्वस्त करने का सबसे शक्तिशाली तरीका है, क्योंकि इससे 'लाभ' की मात्रा में कमी करने के लिए पड़ने वाला दबाव कम हो जाता है और 'हानियों' के मौके घट जाते हैं। असल में यह व्यवसायियों के पारस्परिक साहचर्य का ही आगे बढ़ा हुआ रूप है जिसकी परिणति संयोजनों (Combinations) में होती है—ये संयोजन संयुक्त स्कंध कम्पनी से अगला कदम हैं। इसलिए व्यवसाय संगठन के विकासोन्मुख प्रक्रम में भागीदारी और संयुक्त स्कंध कम्पनी के बाद संयोजनों को रखना चाहिए। संयोजनों के अनेक रूप हैं—ये इस रूप में भी हो सकते हैं कि थोड़े से स्थानीय दूकानदारों ने बिना लिखा यह समझौता कर लिया हो कि एक दूसरे से बिना सलाह किये कीमतें कम न करेंगे और यह किसी उत्पादन-कार्य के सारे क्षेत्र में काम करने वाली व्यवसाय कोठियों के अत्यधिक समामेलन या सायुज्यन के रूप में भी हो सकता है।

आजकल उत्पादन क्षेत्र का शायद ही कोई हिस्सा ऐसा हो जिसमें कार्य करने वाली फर्मों में इनमें से किसी न किसी प्रकार का समझौता न पाया जाता हो, पर इन समझौतों का सीमाविस्तार और प्राधिकार बहुत भिन्न-भिन्न होते हैं। निःसंदेह, औद्योगिक इकाई के आकार का बहुत प्रभाव पड़ता है—थोड़ी सी बड़ी फर्में अधिक आसानी से संयोजित हो सकती हैं, बहुत सारी छोटी-छोटी देश भर में बिखरी हुई फर्में उतनी आसानी से संयोजित नहीं हो सकतीं। विभिन्न प्रकार के संयोजनों का वर्णन करने से पहले, उनके निर्माण के प्रेरक कारणों और परिस्थितियों का वर्णन करने से बात अधिक अच्छी तरह समझ में आ जाएगी।

संयोजक आन्दोलन के कारण, अवस्थाएं या अवसर—जिन बलों के परिणामस्वरूप संयोजन आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ था, वे बड़े जटिल हैं और उन्हें सीधे

लाभदायक रीति से नहीं चला सकते थे, और कार्यवाहक इस कारण कि वे अपनी वस्तुओं के लिए ग्राहक तलाश नहीं कर सकते थे। नवम अवतनीय मशीनों का उपयोग करके और उनमें सुधार करके, प्रत्येक नयी फर्म, जो आकार में पुरानी फर्मों से बड़ी होती थी, पुरानी फर्मों में उत्कृष्ट सिद्ध होती थी और इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक यह यत्न करता था कि मैं कीमत सस्ती रख कर लगातार माल बेच सकूं। पुराने उत्पादक पिछले वर्षों के लाभ से और नयी मशीनें लगाते थे, और इस प्रकार हर बार अपने उपक्रम का आकार बड़ा कर लेते थे और प्रतियोगिता का अधिक प्रखर बना देते थे। "प्रतियोगिता के इस तरह घोर हो जाने से, जो आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की एक सार्वत्रिक घटना है, संयोजनों के निर्माण की नींव पड़ी।"

प्रतिष्ठित या क्लासिकल (Classical) अर्थशास्त्री भी अबाध प्रतियोगिता में आस्था रखते थे और इसे बढ़ावा देते थे। किसी भी प्रकार का संयोजन बुरा समझा जाता था। उनकी दृष्टि में प्रतियोगिता वह नैसर्गिक नियम था जो मानव जाति के लाभ के लिए परिचालित होता था। पर उनकी यह सिद्ध करने की अभिलाषा ने कि "अबाध प्रतियोगिता से ही अधिकतम उपयोगिता प्राप्त होती है", उनमें यह गलत विश्वास पैदा कर दिया कि बाजार की स्थिति में गति तर्कानुसारी व्यक्तियों के कार्य से आती है और ये लोग प्रतियोगिता के नैसर्गिक नियम का "नैसर्गिक" रीति से अनुसरण करेंगे। असल में जो हुआ वह यह था कि औद्योगिक उपक्रम और वाणिज्यिक कोठियां ग्राहकों को आकृष्ट करने के लिए बार-बार कीमतों में कमी, और गला-काट प्रतियोगिता करने लगीं, और यह तब तक चलता रहा जब तक सबके सब वित्तीय विनाश के तट पर न आ गये। इस प्रकार, प्रतियोगिता, जो व्यापार का जीवन बतायी जाती है, बहुत अधिक दूर तक जाकर संयोजनों के आरम्भ और वृद्धि का एक बहुत प्रबल साधन बन गयी, क्योंकि इसका एकमात्र इलाज यही था कि उत्पादकों और व्यापारियों में किसी ऐसे रूप में सहयोग होना चाहिए जिससे कीमतें एक सी कायम रखी जा सकें। यदि सबका जीवन बचाना है तो प्रत्येक का कुछ अंश साझे के खाते में डालना चाहिए।

प्रातीतिक दृष्टि से (Subjectively), जैसा कि लीफमैन ने बताया है, संयोजनों का विकास पूंजी-जोखिम और लाभ के बीच बहुत विषमता होते जाने के कारण हुआ। कारण, कि घोर प्रतियोगिता के दो प्रभाव होते थे। एक ओर तो पूंजी-जोखिम बढ़ती जाती थी और दूसरी ओर लाभ कम होता जाता था। पर बृहत्परिमाण उत्पादन या विकास संयोजनों के निर्माण की एक सहायक परिस्थिति बन गयी। संख्या में कम, पर आकार में बड़ी फर्में, विशेष रूप से रेलवे सुविधाएं, बहुत विस्तृत हो जाने पर, बहुत सी छोटी-छोटी फर्मों की अपेक्षा अधिक आसानी से रख सकती थी। प्रतियोगी फर्मों की संख्या में कमी के साथ यह तथ्य भी मिल गया कि प्रतियोगी एक दूसरे से व्यक्तिगत रूप से सुपरिचित थे, और वे अपनी व्यापार सम्बन्धी समस्याओं की परस्पर चर्चा किया करते थे, जिससे सामूहिक कार्यवाही के लिए अवसर बन गया। इसलिए, संयोजन आन्दोलन उन परिस्थितियों का परिणाम है जो उन्नीसवीं शती के अन्तिम

चरण में और उसके बाद विद्यमान रही हैं। सयोजन के लिए उद्दीपन तो सदा मौजूद था। इसका अवसर प्रतियोगी फर्मों की सख्या में कमी, परिवहन सुविधाओं में वृद्धि और समागम में बढोतरी का परिणाम था। हेनी इन दशा को "बैंकर्निंग अवस्थाएं" या सकेन-कारी अवस्थाएं कहता है।

एक और सकेतकारी अवस्था यह सभवता थी कि अति-पूजीकरण से लाभ होगा। पूजी को "सींचकर" और "जहा पहले एक अश (शेयर) लगता था, वहा दो लगाकर, बहुत अधिक लाभ उठाना सभव था।" परिकल्पन (Speculation) की ओर कीमतो की सह्या वृद्धि की अवधियों में, सयोजन निर्माण के लिए उत्तेजन मिलता है, क्योकि कभी-कभी उद्यमपति प्रतियोगिता को कम करने और अपनी बिक्री कीमत कच्चे सामान की बढती हुई कीमतो और मजदूरियों के साथ यथासभव शीघ्र समजित करने के लिए भरसक यत्न करते हैं।

तटकरों (Tariff) का प्रभाव—विभिन्न देशो की तटकरनीतियो ने सयोजन के निर्माण की सुविधाएं पैदा कर दीं। तटकरो के प्रचलित हो जाने से सरक्षित उद्योगो का कीमत सघ (कार्टल) आदि बनाने का सामर्थ्य बहुत बढ गया क्योंकि उनके लिए बाजार को एकलित करना (Isolate) करना और उस पर एकाधिकार करना सम्भव हो गया। एकाधिकार बनाने के लिए वहा प्रबलतम उद्दीपन होता है जहा उद्योग की कोई शाखा सारे बाजार को अकेले समरित कर सकती हो, पर तटकर सरक्षण का पूरा लाभ कीमत सघ बनाकर ही उठा सकती हो। भारत का चीनी उद्योग और जर्मनी का लोहा उद्योग इसके उदाहरण हैं। कुछ लोग तो यहा तक कहते हैं कि सब सयोजनो का जनक सरक्षणात्मक तटकर ही है। पर यह कहना अतिशयोक्ति है कि तटकर ही सयोजन का मुख्य कारण है क्योकि अनेक प्रकार के सयोजन बिना तटकरों के पैदा हुए और बढे है, जैसे ब्रिटेन में। सरक्षण सयोजन के जन्म और वृद्धि में उन जगह सुविधा कर सकता है जहा व्यवसायों को प्रभावित: सयोजित करने के लिए परमावश्यक कारक और बल स्वतन्त्र रूप से विद्यमान हो।

वृहत्परिमाण सगठन के लाभ—हम पहले ही यह विचार कर चुके हैं कि बृहत्-परिमाण सगठन किस प्रकार उत्पादन, प्रबन्ध, वित्तीय प्रशासन और विपणन या बाजार-दारी में बहुत बचत कराता है।[1] समेकन या इकट्ठे करने की विधि का आश्रय बृहत्-परिमाण परिचालन के लाभ उठाने के लिए ही लिया गया था। न केवल चालू लागतों—"कारबार करने के चालू परिव्ययों—को कम करने के लिए, बल्कि भविष्यत् लागतो—"कारबार में बने रहने के परिव्ययों"—को भी न्यूनतम करने के लिए ही उद्योगपतियों ने सयोजन का आश्रय लिया। क्षैतिज समेकन और शीर्ष समेकन के रूप में वृहत्परिमाण परिचालन भविष्य की अनिश्चितता और जोखिम का सामना करने का एक प्रभावी साधन हो गया। आम तौर से सयोजन का प्रेरक बल "लाभ" (Profit)—अन्त में कुछ बचा लेने—को समझा जाता है पर असल में "हानि से बच जाने"—अन्त में पूजी नाश

---

1. देखो पृष्ठ ४३–४८।

को रोकने—के लिए सयोजन किये जाते है। और इसी प्रकार सयोजन सफल उपक्रमो के रूप मे, न केवल अपनी भविष्य की लागतो की व्यवस्था करते है, बल्कि वे कम सफल उपक्रमो की जोखिम कम करने में भी मदद देते है। दूसरे शब्दो मे, वे समष्टि (सयोजन) (Combine) के एक अवयव के रूप मे अन्य उपक्रमो द्वारा भविष्य म उठायी जाने वाली हानि का कुछ हिस्सा भी उठाते है ।

व्यापार-चक्र—माग की घटबढ से, जो आर्थिक अवस्थाओ की परिवर्तिता (Variability) या व्यापार-चक्र की नियत आवृत्ति के कारण होती है, केन्द्रीकरण की दिशा मे गति बढ जाती है । व्यापार-चक्र का प्रभाव दो तरह का होता है। प्रथम तो, "मदी (Depression) के दिनो में कमजोरो की समाप्ति का क्रम अधिक तीव्र हो जाता है और अदक्ष फर्मो को दक्ष फर्मे अधिक तेजी से आत्मसात् करती है, अथवा अदक्ष फर्मे सारा कुछ खो बैठती है। इसके विपरीत, समृद्धि के दिनो म किसी विशेष क्षेत्र के दुर्बल सदस्य भी जीवित रह सकते है। यदि आर्थिक अवस्थाए सदा अच्छी या बुरी रहे तो फर्मो का खात्मा कम हो और बडी फर्मो की विशेष स्थिति जाती रहे तथा काम अधिक अच्छी तरह चले, पर यह होता नही। बुरे वक्त आते ही है और कमजोर कारखाने ताकतवर कारखानो की आड मे आश्रय लेते है। दूसरा प्रभाव मनोवैज्ञानिक है। कारबार की जोखिम अभी उग्र रूप धारण भी नही करती कि उसका सामना करने के उपाय किये जाने लगते है।"[1] ऐसा करने का तर्कसगत मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि एक तो धधा की आवृत्ति दीर्घावधि (Long-period) जोखिम है जो अपने विरुद्ध सगठन के लिए मैदान तैयार करा देती है और उत्पादको की स्वतन्त्रता में कमी होने के एतराज को व्यर्थ कर देती है, और दूसरे, बाजार की खराब हालत का अल्पावधि (Short-period) दबाव इस दिशा म एक सहायक तथ्य हो जाता है ।" जोखिम निवारण एक प्रतिरक्षात्मक शस्त्र है, इसलिए सयोजन आदोलन समृद्धि के दिनो से सबसे अधिक जोरदार प्रतीत होता है, और मदी के दिनो मे इसम बहुत शिथिलता दिखायी देती है। इसके अलावा, सयोजन एक प्रकार का उपक्रम (Enterprise) है और उपक्रम, अपने सब पहलुओ की दृष्टि से, अच्छे व्यापार के दिनो म सबसे अधिक मूल्य होता है ।

परीक्षणात्मक आर्थिक नीति—परीक्षणात्मक अर्थव्यवस्था मे अस्थिरता-(Instability) पैदा होती है । यह चलार्थ या करेसी, व्यापार, राजकोषीय (Fiscal) और मजदूरी सम्बन्धी नीतियो आदि के लगातार परिवर्तनो से प्रभावित होती है, और चलार्थ आदि की अस्थिरता ने व्यष्टि फर्म के योजना-निर्माण में अनिश्चितता का अश बहुत बढा दिया है । जोखिम पहले से बहुत बढ गयी है। आर्थिक नीति की इस अस्थिरता ने भी आर्थिक सकेन्द्रण (Concentration) को बढावा दिया है। जोखिम जितनी अधिक हुई, बडी व्यापार-सस्थाए (Concerns) विशेषकर वे व्यापार सस्थाए जिनम अनेक उद्योग या उसी उद्योग या व्यापार के विभिन्न

1 Macgregor, Introduction to Liefman's Cartels etc., p XXV

हिस्से समाविष्ट हों, बनाने के लिए उद्दीपन भी उतना ही अधिक मिला। आर्थिक नीति के इन परिवर्त्तनों के कारण उत्पन्न अनिश्चितता फर्मों को उत्पादन के अन्य क्षेत्रों की फर्मों में हिस्सेदारी करने या उन्हें खरीदने के लिए प्रोत्साहित करती है। आर्थिक नीति ने जिन अनेक रीतियों से औद्योगिक सकेन्द्रण को बढ़ाया है,यह उनमें से एक है।

पेटेंट या एकस्व विधियां (Patent Laws)—एकस्व विधियों ने सकेन्द्रण को बहुत बढ़ावा दिया है। एकस्वों ने व्यष्टि फर्म को एकाधिकारी की स्थिति तो दे ही दी है, पर इससे भी बड़ी बात यह है कि उन्होंने कीमत सघों या व्यापार-सस्थाओं के निर्माण को स्थायित्व प्रदान कर दी है। असली एकस्व कीमतसघों या एकस्व न्यासों के अलावा, अनुज्ञप्तियों (Licence) के विनिमय ने साधारणतया कीमत सघों के निर्माण म सुविधा कर दी है, और बहुत से कीमत सघ, इसी तथ्य के कारण बने हुए हैं कि सघ छोड़ने वाले सदस्यों का कुछ एकस्वों पर अधिकार समाप्त हो जाएगा। इसके अतिरिक्त, उन व्यापार-सस्थाओं के निर्माण पर एकस्वों का निर्णायक प्रभाव पड़ा है जिनका उद्देश्य एकस्व अधिकारों का प्रयोग करना और बाहरी आदमियों को रोकना है।

व्यष्टिगत योग्यता—कीन्ड[1] ने यह सुझाव पश किया है कि एक या कई आदमियों की सगठन-योग्यता, कुशल प्रतिभा या वैयक्तिक महत्वाकांक्षा भी कुछ व्यवसाय-सयोजनों के निर्माण का आंशिक कारण रही है। व्यवसाय बुद्धि की दुर्लभता के कारण भी शक्ति उन थोड़े से हाथों में केन्द्रित हो गयी जिनमें व्यावसायिक अन्तर्दृष्टि, व्यवसाय बुद्धि, और व्यावसायिक साहस मौजूद था।" इस प्रकार उद्योग के टैक्निकल या प्राविधिक और प्रशासनीय विकास में जो अन्तर रहा वह भी सयोजन आंदोलन को बढ़ावा देने वाला एक कारण बना।

महाकाय की पूजा—उन्नीसवीं शती के मध्यभाग के साथ महाकाय की पूजा (Cult of the Colossal) का प्रादुर्भाव हुआ। इसने अठारहवीं शताब्दी के प्रबल प्रभाव को जितना अधिक दूर किया, उतना ही आकार की, शक्ति की और अविराम व्यस्तता, निष्फल उत्तेजन तथा विशाल आयामों की मादकता ग्रहण कर ली। इसने मात्रा के बड़प्पन को काफी पासपोर्ट समझ लिया, यान्त्रिक सगठन और केन्द्रीकरण आम चीज हो गए, महाकाय, अति-अलकारमय और विपुलाकार का फैशन चल पड़ा था। महाकाय की पूजा का अर्थ था सिर्फ "बड़प्पन" के आगे झुकना; इसका मतलब यह था कि जो बाहर से छोटा दीखता है उसमें नफरत; यह शक्ति और एकत्व की पूजा थी। सक्रिय जीवन के सब क्षेत्रों में अतिशय (Superlative) की इच्छा पैदा हो गयी थी। इसी काल से, "ग्रांड आर्मी, "ग्रांड ड्यूक", "ग्रेट पावर्स" आदि शब्दों में बड़े के वाचक विशेषणों का आरम्भ हुआ, और ये लोगों के सम्मान की आकांक्षा करने लगे। उस जमाने की इस शैली के अनुसार ही इसी मात्रा में आबादी की अपूर्व वृद्धि, महाकाय उद्योग, एकाधिकारित्व और प्राविधिक गतिमत्ता (Technical dynamism) पैदा हुई। सम्पत्ति पवित्र समझी

1 The Revolution of Industrial Organisation, p 81

जाने लगी, इससे शोभा और मान मिलने लगा और प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगी। इससे अन्य मनुष्यों पर सपत्ति वाले को अधिकार मिलने लगा, मनुष्य के पास जितनी अधिक सम्पत्ति होती थी, वह उतना ही आदरणीय या बडा हो जाता था। समेकन या सयोजन की विभिन्न रीतियो से अनेक व्यवसायो के नियत्रण के केंद्रण से शक्ति में वृद्धि हो गयी और इसलिए सयोजन की होड होने लगी।[1]

सयोजनों के प्ररूप—हेनी लिखता है कि 'सयोजित होने का अर्थ है समष्टि का एक अवयव बन जाना, और सयोजन का अर्थ सिर्फ यह है कि किसी साझे प्रयोजन की पूर्ति के लिए एक समष्टि या समूह बनाने के वास्ते व्यक्तियो का ऐक्य।" इसलिए, यथार्थत दो या अधिक व्यक्तियो के साहचर्य या इकट्ठे होने को सयोजन कहते है। इस दृष्टि से देखने पर, एक भागीदारी भी, जो साझा व्यवसाय करने के लिए की जाती है, सयोजन का एक प्ररूप है। पर यहा हमारा प्रयोजन औद्योगिक इकाइयो से है, जो एक साझे प्रयोजन—अर्थात् "महाकाय व्यवसाय" द्वारा प्रतियोगिता में कमी—की सिद्धि के लिए साधारण साहचर्य द्वारा या समेकन द्वारा एक साथ मिल जाती हैं। जैसी इकाइयों को एकत्र करना हो, उनके अनुसार सयोजना के चार मुख्य प्ररूप हैं, अर्थात् क्षैतिज, शीर्ष, वृत्तीय या भुजीय और विकर्णीय।

क्षैतिज, समातर, इकाई, या व्यापार सयोजन वहा होता है जहा वही व्यापार या उत्पादन कार्य करने वाली इकाइयो को एक प्रबन्ध के अधीन कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि कई सीमेंट फैक्टरियों को एक प्रबन्ध के अधीन सयोजित कर दिया जाए तो क्षैतिज सयोजन होता है। उसी प्रकार की कई इकाइयों का ऐक्य उसी धरातल, अवस्था या प्रक्रम पर होता है। क्षैतिज सयोजना में प्रतियोगिता की समाप्ति और बृहत्परिमाण सगठन के लाभो की वास्तविक सिद्धि होने में सुविधा होती है। शीर्ष, प्रक्रम, अनुक्रम (Sequence) या उद्योग (उद्योग का समेकन) सयोजन तब होता है जब किसी एक उद्योग की उत्पादन की विभिन्न उत्तरोत्तर अवस्थाओं को एक प्रबन्ध के अधीन सगठित कर दिया जाता है। समेकन उसी उद्योग की बिलकुल पहली अर्थात् कच्चे सामान की स्थिति से लेकर वितरण अवस्था तक हो सकता है। टाटा आयरन वर्क्स, जो लोहे की कच्ची धात की खानो, ब्लास्ट भट्टियो, इस्पात कारखानो, फिनिशिंग कारखानों, कोक भट्टियो, व कोयलाखानो का मालिक है, शीर्ष सयोजन या समेकन का अच्छा उदाहरण है। शीर्ष समेकन से कोष्टागारण या सग्रह, विक्रय, क्रय और परिवहन में बचत होती है। भुजीय, वृत्तीय, मिश्रित या पूरक (Complementary) सयोजन वे है जिनमें सम्बन्धित या कभी-कभी सर्वथा भिन्न प्रकार की औद्योगिक इकाइया इकट्ठी हो जाती है। विकर्णीय सयोजन वहा होता है जहा सहायक सेवाए, जैसे मरम्मत के कारखाने, व वितरक सेवाए भी उत्पादन के मुख्य कार्य के साथ-साथ की जाती है। इस प्रकार इन सेवाओ के लिए दूसरो पर निर्भर नहीं होना पडता और चाल तथा निरतरता सुनिश्चित हो जाती है।

1 Rostle, The Social Crisis of our time, p 62

संयोजनों के रूप

प्रतियोगिता कम करने और या वृहत्परिमाण संगठन के लाभ प्राप्त करने के लिए जो अनेक तरीके निकाले गये हैं, वे अपने विकास के क्रम से निम्नलिखित हैं—

१. अनौपचारिक समझौते
२ औपचारिक समुच्चयन (Pooling) समझौते,
३ कीमत संघ (Cartels),
४ न्यासी विधि,
५ हितों के सस्वामित्व की विधि,
६ धारक (Holding) कम्पनी विधि,
७ संपिंडन (Consolidation),
८. व्यापार-संघ,

पर इन शब्दों के प्रयोग में बड़ा विभ्रम पाया जाता है और यदि हम हेनी द्वारा दिये हुए एक वर्गीकरण को ही अपना लें तो अच्छा रहे। उसने सब रूपों को दो मुख्य वर्गों में समूहित किया। सरल संयोजन, और संयुक्त संयोजन। सरल संयोजन नैसर्गिक व्यक्तियों (Natural Persons) का सीधा संयोजन या साहचर्य है, जैसा कि भागीदारी में होता है, और इस पर पहले पूर्णतया विचार किया जा चुका है। दूसरे समूह, अर्थात् संयुक्त संयोजनों, में ऊपर दिये हुए आठों वर्गों का समावेश हो जाता है। इसलिए इस योजना के अनुसार संयोजनों का वर्गीकरण कुछ-कुछ इस प्रकार होगा—

१. सरल साहचर्य (Simple Association)
क व्यापार संघ
ख कार्मिक संघ या ट्रेड यूनियनें
ग वाणिज्य मंडल या चैम्बर आफ कामर्स
घ अनौपचारिक समझौते।
२ संधान या फेडरेशन
क विक्रय संघ या पूल
ख कीमत संघ या कार्टेल।
३ संपिंडन (Consolidation)
क आंशिक संपिंडन।
(१) न्यास
(२) हितों का सस्वामित्व: (१) अंशधारण या शेयरहोल्डिंग (२) अंतर्बद्ध निदेशना (Interlocked Directorate), (३) समूह हित, अर्थात् प्रबंध अभिकर्त्ता या मैनेजिंग एजेंट।
(३) धारक कम्पनी: (१) शुद्ध, (२) परिचालन (आपरेटिंग), (३) जनक, (४) संतति, (५) प्राथमिक, (६) मध्यवर्ती।

ख. पूर्ण संविलयन
(१) समामेलन (Amalgamation)
(२) संविलयन (Merger)

सरल साहचर्य

व्यापार संघ—उद्योगपति, व्यापारी या बागान-मालिक (Planter) साझे हितों की सिद्धि के लिए बहुधा मिलकर अपने व्यापार संघ बना लेते हैं। व्यापार संघ किसी विशेष व्यापार या उद्योग के हितों की देख-रेख के लिए बनाये जाते हैं, और स्थानीय या वर्ग के आधार पर होते हैं। इनके उदाहरण हैं बम्बई मिल मालिक संघ, अहमदाबाद टैक्सटाइल मिल मालिक संघ, ईस्ट इंडिया काटन असोसियेशन, बंगाल मिल एण्ड आर्ट मिल ओनर्स असोसियेशन, यूनाइटेड प्लांटर्स असोसियेशन, कैलकटा ट्रेड असोसियेशन, मद्रास ट्रेड्स असोसियेशन आदि। इन संघों की अनेक बार बैठकें होती हैं और ये उनमें साझे हित की बातों, यथा कच्चा सामान, मजदूरों की कमी, परिवहन की समस्याओं, राज्य की नीति, आदि पर विचार करते हैं। उनका लक्ष्य यह होता है कि सदस्यों में परस्पर मैत्रीपूर्ण व्यवहार को बढ़ावा मिले और प्रतिनिधित्व आदि द्वारा उनके हितों की रक्षा हो।

कार्मिक संघ या ट्रेड यूनियनें—कार्मिक संघ या ट्रेड यूनियन शब्द आम तौर पर मजदूरों के ऐक्य या संघ का वाचक है जो उनकी सपणन शक्ति (Bargaining Power) को दृढ़ करके उनके हितों की देखभाल के लिए बनाया जाता है। पर भारतीय कार्मिक संघ अधिनियम के अनुसार, कार्मिक संघ या ट्रेड यूनियन "वह संयोजन है जो मजदूरों और मालिकों के, मजदूर-मजदूर के, या मालिक मालिक के सम्बन्धों को विनियमित करने के प्रयोजन से, या किसी व्यापार अथवा व्यवसाय पर निर्बंधक शर्तें लगाने के लिए बनाया जाता है।" इंडियन जूट मिल्स एसोसियेशन मालिकों की "ट्रेड यूनियन" का उदाहरण है। व्यापारियों के संघ, मित्र-मंडल, और इसी तरह के अन्य संयोजन भी अपने आपको ट्रेड यूनियनों के रूप में रजिस्टर करा सकते हैं। ठीक-ठीक देखें तो ट्रेड यूनियन या कार्मिक संघ कर्मचारियों का एक संगठन है जो उनकी समस्याओं को हल करने का एक प्रबल साधन है। यूनियन उनकी आय बढ़ाने के निमित्त ऊँची मजदूरियों के लिए तथा उस आय को सुनिश्चित करने के लिए, कार्य करने के नियम बनाती है। यह अग्रता (Seniority), नवीकरण के विनियमन (Regulation of Innovation), बेकार सदस्यों की सहायता, वार्षिक मजदूरी, काम पर निर्बंधन, काम के समय के विनियमन आदि द्वारा उनकी रक्षा करने का यत्न करती है। इन सब कार्यों में यूनियन कुछ सफलता के साथ यह आग्रह करती है कि मजदूरी का आय का अधिकार है, कि उनकी मजदूरी उनकी आवश्यकता की पूर्ति करने वाली होनी चाहिए, और कि मजदूरी की दर सिर्फ काम की कीमत या लागत का हिसाब लगाने की रीति से कुछ अधिक चीज है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन—यह सगठन १९१९ में वर्साई की सन्धि के भाग १३ द्वारा उसके "श्रम" शीर्षक के अधीन बनाया गया था। इस सगठन को जन्म देने वाले सिद्धान्त ये थे. (१) सार्वत्रिक शान्ति तभी कायम रह सकती है जब वह न्यायोचित श्रमिक अवस्थाओं की व्यवस्था द्वारा सामाजिक न्याय पर आधारित हो, (२) श्रमिक अवस्थाओं का अन्तर्राष्ट्रीय विनियमन, (३) काम करने के अधिकतम दैनिक व साप्ताहिक घंटों की स्थापना, बेकारी का निवारण, पर्याप्त जीवन-योग्य मजदूरी की व्यवस्था तथा अपने रोजगार के कारण होने वाली चोट से मजदूर की रक्षा, बच्चों, किशोरों, स्त्रियों आदि की रक्षा। इस सगठन में दो अंग हैं (१) सदस्यों के प्रतिनिधियों का वृहत्सम्मेलन, (२) एक शासन-निकाय द्वारा नियन्त्रित एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय। सम्मेलन की बैठक समय-समय पर होती हैं, पर प्रतिवर्ष कम से कम एक बार तो होती ही है। इसमें प्रत्येक सदस्य राज्य के चार प्रतिनिधि होते हैं—दो सरकारी प्रतिनिधि तथा एक-एक मालिकों और मजदूरों का प्रतिनिधि। सम्मेलन की सिफारिशें और अभिसमय सदस्य राष्ट्रों का अंगीकार करते होते हैं। यदि कोई सदस्य इन अभिसमयों को अंगीकार तथा अनुसमर्थन न करे तो अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय का शासन निकाय उस मामले को सभालता है। पृच्छा आयोग (Commission of Inquiries) बैठाया जा सकता है, या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से राय ली जा सकती है। यह प्रसन्नता की बात है कि, अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य मडल के असदृश, इस सगठन को सद्भावना और पारस्परिक विश्वास तथा न्याय को बढ़ाने के अपने उद्देश्य में बड़ी सफलता मिली है।

वाणिज्य मडल—ये व्यवसायियों के सघ हैं जो अपने सदस्यों के लाभ के लिए तथा अपने नगर या जिले के व्यवसायी-वर्ग के लाभ के लिये कार्य करते हैं। अन्य वाणिज्य मडलों के साथ सहयोग करके वे देश के सारे वाणिज्यिक समाज की इच्छाओं और आवश्यकताओं के विषय में भी आवाज उठाते हैं। भारत और इगलैण्ड में वाणिज्य मडल व्यवसायियों का स्वेच्छया निर्मित सघ होता है और इसका राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता। पर कुछ देशों में, उदाहरण के लिए फ्रांस में, वाणिज्य मडल अर्ध-सरकारी निकाय होते हैं जिनमें वाणिज्यिक समाज के और सरकार के प्रतिनिधियों की कुछ-कुछ निश्चित सख्या होती है। इन वाणिज्य मडलों का वाणिज्य मत्रालय से प्रायः निकट सम्पर्क होता है, और इन्हें वाणिज्यिक महत्व के सरकारी उपक्रमों, यथा पोतगाहों, जहाजी घाटों, बेअर हाउसों आदि का परिचालन सौंप दिया जाता है और इन्हें अपने क्षेत्राधिकार में वाणिज्यिक समाज पर कर लगाने की शक्ति होती है।

लदन चेम्बर आफ कामर्स इस प्रकार के सघ का अच्छा उदाहरण है और किसी वाणिज्य मडल के कार्यों को समझने के लिए इसके उद्देश्यों पर विचार करना अच्छा रहेगा। इसके कार्य ये हैं :

१ लन्दन के व्यापार, वाणिज्य, नौवहन (Shipping) और निर्मितियों को बढ़ावा देना तथा ब्रिटेन के स्वदेशी, औपनिवेशिक तथा विदेशी व्यापारों को

आगे बढाना।

२. व्यापार वाणिज्य नौवहन तथा अन्य निर्मितियो से सम्बन्धित सांख्यिकीय तथा अन्य जानकारी एकत्र करना और अलग-अलग छाटना (Dissimilation)।

३ उपर्युक्त हितो को प्रभावित करने वाले विधानात्मक या अन्य उपायो (Measures) को प्रोत्साहित या समर्थित करना या उनका विरोध करना।

४ व्यापार, वाणिज्य या निर्मिति में पैदा होने वाले विवादो को मध्यस्थ-निर्णय द्वारा निपटाना

५ व्यापार, वाणिज्य या निर्मितियो के विस्तार में सहायक या उपर्युक्त उद्देश्यो की पूर्ति मे प्रासगिक अन्य कार्य करना।

भारत में वाणिज्य मडल—भारत मे आधुनिक वाणिज्य का निर्माण पश्चिम के व्यापारियो ने किया और यह बहुत समय उन ही के हाथो में रहा। उन्होने इसकी रक्षा के लिए वाणिज्य मडल तथा अन्य अनेक ऐसी सस्थाए बनायी। पर हाल के वर्षों में भारतीयो ने इस वाणिज्यिक जीवन में बहुत भाग लिया है और वह प्रतिदिन बढ रहा है। उनके भाग लेने की मात्रा देश के विभिन्न भागो में विभिन्न मूल-वशो की प्रवृत्तियो और प्रतिभा के अनुसार बहुत भिन्न-भिन है। उदाहरण के लिए, बम्बई भारत के औद्योगिक और वाणिज्यिक पुनरुज्जीवन में अग्रणी रहा है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और अन्य महत्वपूर्ण केन्द्रो में वाणिज्य मडलो की स्थापना हुई है। वाणिज्य मडल समय-समय पर सरकार को भारत की वाणिज्यिक व औद्योगिक उन्नति को प्रभावित करने वाली समस्याओ का ज्ञान कराते रहते है, और गैर-सरकारी मत को सगठित करके तथा वाणिज्यिक भावना को निरूपित करके महत्वपूर्ण कार्य करते है, जिसका महत्व उस अभिज्ञान से प्रकट होता है, जो उन्हे राज्य से, उनकी प्रतिष्ठा और परम्परा के अनुसार भिन्न-भिन्न मात्रा मे, प्राप्त होता है। वे विभिन्न केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय निकायो में अपने प्रतिनिधि चुनकर भेज सकते है। ये प्रतिनिधि गैर-सरकारी होने के कारण, विधान मडल के समक्ष प्रस्तुत किसी विधान या विषय पर कोई भी रुख अपना सकते है। मडलो का प्रतिनिधित्व पोर्ट ट्रस्ट, इम्प्रूवमट ट्रस्ट आदि कल्प-सरकारी (Quasi-Government) सस्थाओ मे भी होता है। केन्द्रीय और राज्य सरकार व्यापार, वाणिज्य और उद्योग को प्रभावित करने वाले कदम उठाने से पहले प्रमुख वाणिज्य मडलो और सघो की राय पूछती है, और उनकी सलाह पर आदर के साथ विचार किया जाता है।

ये वाणिज्य मडल प्रान्तीय या स्थानीय है और या वे व्यापक या अखिल भारतीय है। राज्यवर्ती मडलो और सघो का मुख्य सम्बन्ध राज्य के वाणिज्य और उद्योग की बेहतरी और बढोतरी से होता है। राज्यवर्ती वाणिज्य मडलो में बगाल चैम्बर आफ कामर्स, बगाल नेशनल चैम्बर आफ कामर्स, मारवाडी चैम्बर आफ कामर्स, बबई चैम्बर आफ कामर्स है। अखिल भारतीय वाणिज्य मडलो की सख्या १५ है। एसोसियेटेड चेम्बर आफ कामर्स, जिसमे देश के विविध भागो के १५ वाणिज्य-मडल है, सारे

भारत में योरोपीय वाणिज्यिक हितों की रक्षा और सुसंगठन की दृष्टि से १९२० में बनायी गयी थी। फेडरेशन आफ इन्डियन चेम्बर्स आफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री, जो १९२६ में स्थापित हुआ था, भारत के वाणिज्यिक और औद्योगिक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला केन्द्रीय संगठन है। फेडरेशन का मुख्य उद्देश्य अन्तर्देशीय और अन्यदेशीय व्यापार, परिवहन, उद्योग और निर्मितियों तथा वित्त में भारतीय व्यवसाय की अभिवृद्धि करना है। इसका मुख्य कार्यालय नयी दिल्ली में है, और ५० से अधिक मंडल और संघ इसके सदस्य हैं। आल-इंडिया आर्गनाइजेशन आफ इंडस्ट्रियल एम्प्लायर्स की स्थापना १९३२ में हुई थी और यह उपर्युक्त फेडरेशन से सम्बन्धित है। इसका उद्देश्य उद्योग को प्रभावित करने वाले कानूनों को प्रोत्साहित या निरुत्साहित करके औद्योगिक उन्नति को बढ़ावा देना है। उपर्युक्त वाणिज्य मंडलों और संघों के अलावा कुछ और भी महत्त्वपूर्ण संस्थाएं हैं, अर्थात् इंडियन चेम्बर आफ कामर्स, कलकत्ता, इंडियन कौलियरी ओनर्स असोसियेशन, कलकत्ता, इण्डियन टी असोसियेशन, इंडियन सेन्ट्रल काटन कमिटी, इंडियन माइनिंग असोसियेशन, इण्डियन माइनिंग फेडरेशन, माइनिंग एण्ड जियोलोजिकल इन्स्टीट्यूट आफ इंडिया, वाइन, स्पिरिट एण्ड बीअर असोसियेशन आफ इण्डिया, आल-इंडिया मैन्यूफैक्चरर्स असोसियेशन।

इंटरनेशनल चेंबर आफ कामर्स या अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य मंडल—इस मंडल की स्थापना बेल्जियम, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली और यूनाइटेड स्टेट्स के मुख्य व्यावसायिक हितों की एक बैठक में १९२० में हुई थी और बाद में ४० अन्य देश इसमें शामिल हो गये। इसकी स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की उन्नति करने, तथा व्यापार निर्बन्धों के प्रभावों को कम करने या हटाने के लिये की गयी थी। इस वाणिज्य मंडल का प्रबन्ध एक परिषद् करती है जिसके सदस्य विभिन्न देशों की राष्ट्रीय समितियों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। महासचिव एक अध्यक्ष और एक छोटी-सी कार्यकारिणी समिति के अधीन रहकर परिषद के निश्चयों को कार्यान्वित करता है। इसका मुख्यालय पेरिस में है। यह प्रति दूसरे वर्ष किसी सदस्य देश में एक सम्मेलन करती है जिसमें विभिन्न देशों के प्रतिनिधि हिस्सा लेते हैं। जो देश सदस्य बनना चाहे, उसमें एक राष्ट्रीय समिति बनायी जाती है जिसमें देश के औद्योगिक, वाणिज्यिक, वित्तीय और परिवहन हितों के प्रतिनिधि होते हैं। राष्ट्रीय समितियां एक ओर परिषद् के, तथा दूसरी ओर, उस उस देश के वाणिज्यिक सदस्यों के, बीच जोड़ने वाली कड़ी का काम करती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य मंडल ने विभिन्न देशों के व्यापारियों के आपसी विवादों को निपटाने में सुविधा करने के लिए एक मध्यस्थ न्यायालय स्थापित किया है। अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य मंडल की भारतीय राष्ट्रीय समिति १९२८ में उन्हीं उद्देश्यों की सिद्धि के लिए स्थापित की गयी थी जिनके लिए अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य मंडल बनाया गया था। इसका मुख्य कार्यालय नयी दिल्ली में है।

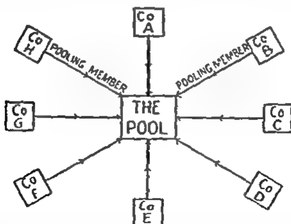
अनौपचारिक समझौते (Informal Agreements)—सरल साहचर्य के एक और प्रकार ने यह रूप धारण किया कि प्रतियोगी उपक्रमों ने निर्मित

पदार्थों पर की गयी सेवाओं की कीमतों को प्रत्यक्षत नियंत्रित करने के प्रयोजन से आपस में समझौते कर लिये। सरल समझौतों में दोनों पक्ष एक-दूसरे से वचन-बद्ध हो जाते हैं। उन्हें कभी-कभी "कार्यवाहक समझौते", "भद्र पुरुषों के समझौते", "कीमत सयोजन", "खुला कीमत संघ" आदि कहते हैं। इस समझौते में हिस्सा लेने वाले सब व्यक्ति या इकाइया, अपना पृथक अस्तित्व कायम रखते हुए अपने वायदों का पालन करने के लिए पाबन्द होते हैं। यहा की हुई जबान लिखित समझौते से अधिक महत्त्वपूर्ण है। ये समझौते मुख्यत चार रूपों में होते हैं—बिक्री की शर्तें, कीमत विनियमन, बाजार का विभाजन, और उत्पाद (Out-put) का विनियमन। इनमें से पहली चीज ग्राहकों को दिये जाने वाले उधार (प्रत्यय–Credit) की शर्तों, संविदा (Contract) के रूप या डिस्काउन्ट के बारे में होती है। कीमत विनियमन में एक कीमत या कीमत की निम्नतम सतह निश्चित कर दी जाती है जिससे नीचे प्रतियोगियों को नहीं बेचना चाहिए। इसमें डिस्काउंट देने का प्रतिबंध करके एक-दूसरे से नीचे दाम में बेचने पर भी रोक लगायी जाती है। इसमें न तो निर्माण में और न विपणन में ही कोई वास्तविक बचत होती है, क्योंकि यह तो एक निश्चित कीमत से नीचे न बेचने का समझौता मात्र है। समझौते में तय कीमत स्वभावत उस कीमत से ऊंची होती है जो प्रतियोगिता होने पर आती। परिणामत इससे अदक्ष फर्मों का सरक्षण होने लगता है, और अधिक दक्ष फर्में अपनी दक्षता का फल नहीं प्राप्त कर पाती। तो भी, जहा तक समझौते का सावधानी से पालन किया जाए वहा तक, कुछ अवस्थाओं में इसके परिणामस्वरूप प्रतियोगिता कीमत से हटकर क्वालिटी में होने लगती है। पर, प्राय, प्रतिकूल परिस्थितियों में यह समझौता टिक नहीं पाता। जब माग या उत्पादन क्षमता कम होती है तब समझौता करने वाले अधिक डिस्काउन्ट देकर, या समझौते में न आने वाली वस्तुएं सस्ती बेचकर, या दर्जन में १३ वस्तुएं देने आदि की नयी गणित प्रचलित करके समझौता भंग करते हैं। समझौते को सब सदस्यों पर लागू करने की कठिनाई इस रूप की सबसे बड़ी कमजोरी है, क्योंकि इस तरह का समझौता व्यापार का निरोधक होने के कारण न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता।

समझौते का तीसरा रूप—वह रूप, जिसमें बाजार उत्पादकों में बाट लिया जाता है, भी मितव्ययिता की दृष्टि से कुछ प्रभावी नहीं होता। प्रत्येक सदस्य अपने साथी के बाजार में न घुसने की प्रतिज्ञा करता है। शुरू में यह प्रतीत हो सकता है कि बाजार के इस प्रकार के आवंटन से विपणन की लागत कम हो जानी होगी, पर वास्तव में यह कम नहीं होती, क्योंकि दक्ष फर्म अदक्ष फर्म के बाजार में बेच सकती है और इस प्रकार उसे खतम कर सकती है। बाजार का क्षेत्रीय विभाजन निर्माण उद्योग में पसन्द नहीं किया जाता क्योंकि उत्पाद का बाजार स्थान-सीमित नहीं होता। समझौते के चौथे रूप में उत्पाद के विनियमन की व्यवस्था होती है। इसका मतलब यह है कि उत्पाद पर निर्बन्धन लगाकर कीमतें ऊंची रखी जाएं और इस प्रकार आमदनी बढ़ायी जाए। उत्पाद को, माग के अनुसार उत्पादन करके या काम के घंटे कम करके, निर्बन्धित किया जा सकता है।

संघान (Federation)

समुच्चयन समझौते—(Pooling Agreements) —शिथिल और ऊपरी होने से, सरल समझौते के निष्फल हो जाने पर समुच्चयन समझौते किये गये जिनमें कुछ सफलता हुई। समुच्चय, अर्थात् विक्रय संघ, में कीमत निर्धारित करने वाले कुछ घटक समुच्चयित किये जाते हैं पर विभिन्न संगठनों का अपना अस्तित्व बना रहता है। हेनी ने औद्योगिक समुच्चय या विक्रय संघ की परिभाषा यह की है, "व्यवसाय इकाइयों द्वारा स्थापित वह व्यवसाय संगठन, जिसके सदस्य कीमत बनाने वाले प्रक्रम के किसी घटक को एक साझे पुंज में समुच्चयित करके और उस पुंज को इकाइयों में बाँट कर कीमत पर कुछ नियंत्रण रखने का यत्न करते हैं।" इसमें संभरण पर कुछ न कुछ नियंत्रण किया जाता है, और समुच्चय के प्रबन्ध के अनुसार कोटा बहुत प्रत्यक्ष रूप से प्रयुक्त किया जाता है। यह कीमत-निर्धारक घटकों, यथा माल के संभरण या बाजार क्षेत्र, को सिर्फ छलसाधित (Manipulate) करके अनुकूल कीमतें कायम रखने का यत्न किया जाता है। सरल समझौते में कीमत सिर्फ निश्चित कर दी जाती है और वह इसे, कम में न बेचने का समझौता करके कायम रखना चाहता है; पर समुच्चय या विक्रय संघ कीमत नियंत्रित करने के तंत्र की व्यवस्था भी करता है। समुच्चयन समझौता सदा एकसी ही वस्तु बनाने और बेचने वाले लोगों द्वारा किया जाता है। निम्नलिखित रेखाचित्र विक्रय संघ समझौता करने वाले सदस्यों का पारस्परिक सम्बन्ध प्रदर्शित करता है।



समुच्चयों या विक्रय संघों को विभिन्न प्रकारों में बाँटा जा सकता है, जैसे उत्पाद या यातायात समुच्चय, बाजार या क्षेत्रीय समुच्चय, आय या लाभ समुच्चय, आदि।

उत्पाद समुच्चय—उत्पाद समुच्चय उसी उद्योग के सब या प्रमुख निर्माताओं द्वारा किया जाता है जो अपने उत्पादों को एक काल्पनिक पुंज या समुच्चय के रूप में संयोजित करने का समझौता कर लेते हैं और इस समुच्चय को किसी स्वीकृत आधार पर

आपस मे बाट लेते है। यह मुख्यत "अति-उत्पादन" (Over-production) से बचने के लिये अपनाया जाता है। प्रत्येक सदस्य को उत्पादन का एक मासिक प्रतिवेदन देना पडता है जिसका बटन के साथ मिलान किया जाता है। जो सदस्य बटित मात्रा मे अधिक उत्पादन करता पाया जाता है, उस पर जुर्माना किया जाता है। इस समुच्चय का नियम यह है कि सदस्य सब बात गोपनीय रखते हैं। इस समुच्चयन का लाभ यह है कि इससे अधिक बिक्री के लिए कम कीमत पर नही बेचा जा सकता। इसकी हानि यह है कि यह अदक्षता पैदा करता है, और प्रत्येक को पुरानी फर्मो के स्तर पर लाने की बनी-बनायी विधि को प्रमापित करके प्रगति को रोकता है।

यातायात समुच्चय—यातायात समुच्चय का सबसे अच्छा उदाहरण "शिपिंग कान्फ्रेंस है।" जिन विशिष्ट परिस्थितियो मे समुद्री वाहनो को काम करना पड़ता है उनके परिणामस्वरूप उनमे प्राय बडी तीव्र और विनाशकारी प्रतियोगिता पैदा हो जाती है। इस तरह की प्रतियोगिता के दुष्परिणामो से बचने के लिए जहाज चलाने वालो, विशेषकर लाइनरो म समझौते करके ऊची दर कायम रखने का यत्न किया जाता है। शिपिंग कान्फ्रेंस शिपिंग कम्पनियो का एक सयोजन है, जो न्यूनाधिक बद या सवृत (Closed) होता है। यह सयोजन किसी मार्गविशेष पर व्यापार करने में प्रतियोगिता को रोकने या विनियमित करने के प्रयोजन से बनाया जाता है, अर्थात् विविध कम्पनिया आपस में जो समझौता करती हैं, वह कुछ निश्चित क्षेत्रो के भीतर या विशिष्ट बदरगाहो के बीच मे होने वाले व्यापार पर लागू होता है। एक स्टीमशिप कम्पनी कई कान्फरेसो की सदस्य हो सकती है, पर एक कान्फरेंस म यह जो वचन देती है वह दूसरी मे दिये हुए वचन से सर्वथा स्वतन्त्र होता है। इस प्रकार मेल शिपिंग कम्पनियो का सब कामो के लिये मेल नही होता, बल्कि उनके एक निश्चित क्षेत्र मे काम करने के बारे मे समझौता होता है। वे एक सी भाडा-दरें तय कर देते है, और या तो गतव्य बदरगाहो (Ports of Call) को बाटकर, या यात्रा पर निर्बन्धन लगाकर, या कुछ जहाजो द्वारा ले जाये जाने वाले माल की मात्रा तय करके यातायात का बटवारा कर लेते है। उदाहरण के लिए, उसी बन्दरगाह से चलने वाली दो या अधिक जहाजी कम्पनिया यात्रा पर रवाना होने की अलग-अलग तारीख बाटकर खुली प्रतियोगिता को समाप्त,या कम से कम,कम तो कर ही सकती है। इस प्रकार दो कम्पनिया एक ही दिन यात्रा के लिए एक-दूसरे से होड नही लगाती। कुछ अवस्थाओ मे भाडे की कुल कमाई, या उसका एक हिस्सा समुच्चयित कर लिया जाता है और उसे किसी पूर्व-निर्धारित आधार पर बाट लिया जाता है। इस प्रकार, दर कम करने का प्रबलतम उद्दीपन हट जाता है। इस तरह की व्यवस्था को कभी-कभी मनीपूल या धनसचय समुच्चय कहते हैं। नये प्रतियोगियो को व्यापार से बाहर रखने का एक सबसे प्रभावी तरीका स्थगित अवहार पद्धति (Deferred Rebate System) कहलाता है। इस पद्धति से, शिपिंग कान्फ्रेंसे प्राय एकाधिकारी और बहुधा समाज-विरोधी सगठन बन जाती है। ये इस तरह काम करती है—कम्पनिया प्रपको (Shippers) को सूचना या सर्कुलर भेजकर उन्हे सूचित करती है कि

यदि कुछ निश्चित अवधि (प्राय: छह मास) के अन्त में वे कान्फ्रेंस के जहाजों के अलावा और किसी जहाज से माल नहीं भेजेंगे तो उन्हें उनके उस अवधि में अदा किये हुए कुल भाड़े का कुछ हिस्सा (प्राय: १० प्रतिशत) क्रेडिट कर दिया जाएगा, और यदि वे इसके बाद भी कुछ निश्चित समय (प्राय: छह मास) कान्फरेंस से बाहर के किसी जहाज से माल न भेजेंगे तो वह धन उन्हें अदा कर दिया जाएगा। रेलों का यातायात समुच्चय इस तरह किया जा सकता है कि प्रतियोगिता वाले दो या अधिक स्थानों के बीच में होने वाले यातायात की प्राप्तियों को समुच्चयित कर लिया जाए और जहां प्रतियोगिता नहीं है, वहां उन्हें अपनी-अपनी गाड़ियां स्वतन्त्र रूप से चलाने की छूट हो। प्राप्तियों को विभाजित करने से पहले, प्रत्येक सदस्य को खर्च चलाने के लिए कुछ न्यूनतम राशि ले लेने दी जाती है। मुख्य उद्देश्य यह है कि दोहरी गाड़ियां न चलें और व्यर्थ की प्रतियोगिता न हो।

बाजार समुच्चय या क्षेत्रीय बटन—कीमतें कायम रखने का एक और तरीका यह है कि बाजार को समुच्चयित कर लिया जाए और उसे संयोजन के सदस्यों में विभाजित कर लिया जाए। एक दृष्टि से, इस तरह प्रत्येक सदस्य पर कुछ भार पहुंचता निश्चित हो जाता है और इसलिए इस तरह के समुच्चय को कीमत निर्धारण के भाग वाले पहलू को प्रभावित करने का यत्न माना जा सकता है। पर इस उद्देश्य का एक हिस्सा यह है कि दूसरे विभागों के सदस्यों को उनके क्षेत्रों में सीमित करके कुछ विभागों में माल के संभरण को निर्विघ्न कर दिया जाए। क्षेत्र या बाजार का समुच्चयन प्रत्यक्ष नामोल्लेख द्वारा अथवा अप्रत्यक्ष तरीकों से किया जाता है। तय की गयी कीमतें प्रतियोगिता की कीमतों से ऊपर होती हैं, जिससे बंटिती (Allottee) को मिले हुए क्षेत्र में बहुत अधिक माल बेचकर उसके लिए अधिकतम शुद्ध प्रतिफल पाना संभव हो जाता है। इस तरह के समुच्चय अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक फैल सकते हैं और विभिन्न देश पारस्परिक प्रतियोगिता को नियन्त्रित करने के लिये ऐसे ही तरीके अपना सकते हैं। बाजार को इन तीन रीतियों से बांटा जा सकता है—(क) ग्राहकों द्वारा, (ख) माल द्वारा, या (ग) क्षेत्र द्वारा। क्षेत्र के फिर दो उपविभाग किये जा सकते हैं - "पे टेरिटरी" अर्थात् वह क्षेत्र जिस पर समझौता लागू होता है और "फ्री टेरिटरी" अर्थात् वह क्षेत्र जिस पर समझौता लागू नहीं होता। समुच्चय के अन्तर्गत क्षेत्र में ली जाने वाली कीमत का स्तर "बुनियादी कीमत" के रूप में तय कर दिया जाता है, और इसके लिए एक स्थान को 'बुनियाद-बिन्दु' (Basing Point) बना दिया जाता है। इस तरह तय की गयी कीमत का उद्देश्य अधिक लाभ-प्राप्ति होता है। अन्य किसी बिन्दु पर कीमत उतनी तय की जाती है जो बुनियादी बिन्दु कीमत तथा इस बिन्दु से उस बिन्दु की भाड़ा दर के जोड़ के बराबर होती है।

आय तथा लाभ समुच्चय—उत्पाद समुच्चय तथा बाजार समुच्चय दोनों ही दो दिशाओं में निष्प्रभाव सिद्ध हुए। अति-उत्पादन हो रहा था, और इसलिए समुच्चयन समझौतों की अवहेलना के लिए बड़ा प्रलोभन था; दूसरी ओर, गाहक इसे नापसन्द

करते थे क्योंकि इससे उनकी यथेच्छ खरीदने की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती थी। तब आय समुच्चय बनाये गये जिनका आशय यह था कि ग्राहको को माल चुनने का मौका मिले और प्रत्येक को कुछ लाभ हो जाये। इस समुच्चय मे, गाहको को माल देने के सभरणा के ठेको पर ली जाने वाली कीमत एक केन्द्रीय बोर्ड द्वारा तय कर दी जाती है, जिसमे वस्तु बनाने वाले सदस्यो के प्रतिनिधि होते हैं। सविदा या ठेका प्राप्त करने के लिए बाई द्वारा तय की हुई कीमत से बडी राशि के लिए बोलिया बोली जाती है। ठेका सबमे ऊची बोली वाले को मिलता है। बोर्ड द्वारा तय की गयी कीमत और ठेका लेने वाले सदस्य द्वारा बोली गयी ऊची कीमत म जो अतर होता है, वह समुच्चय में जाता है। यह बाद म समुच्चय के हिस्सेदारो को, उनकी उत्पादक क्षमता के अनुपात में बाट दिया जाता है। सदस्य उत्पादन के खर्च पूरे करने के लिए काफी बुनियादी कीमत अपने पास रख लेते हैं और इस तथा विक्रय कीमत के बीच का अन्तर समुच्चय म डाल दिया जाता है। कुछ अवस्थाओ में, कीमतें और उत्पाद पहले ही तय कर दिये जाते हैं, विभिन्न सदस्यो को निश्चित कोटे दे दिये जाते है, और खर्च के लिए स्वीकृत एक निश्चित राशि से अधिक सारी आय समुच्चय म दे दी जाती है। इस प्रकार आय समुच्चयो में नियत्रण का अन्तिम आधार उत्पाद या सभरण है।

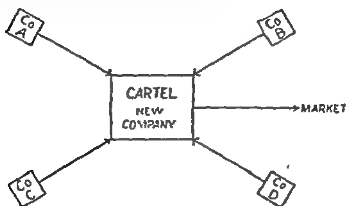
समुच्चय समझौतो के लाभ ये हैं (क) निर्माण की सुविधा, (ख) अति-पूजीकरण (Over capitalisation) का भय नही रहता, क्योकि सयोजन शिथिल होता है, और यह स्थायी एकाधिकारी सगठन के बिना ही कीमत-सबधी जोड-तोड करने मात्र के लिये किया जाता है, और (ग) भार यानी दोहरे भाडे नही पडते, विशेषकर क्षेत्र समुच्चय में। इसकी हानिया ये हैं (क) लाभ में वृद्धि के लिए दक्ष प्रबन्ध का स्थान उत्पाद में कमी और कीमतो सबधी जोड-तोड ले लेते हैं और इस प्रकार स्वयकर्तृत्व (Initiative) कम हो जाता है और (ख) समुच्चय सम्बन्धी समझौतो की अप्रवर्तनीयता (Unenforceability)—सदस्यो के अलग हो जाने या सहयोग करने म उनकी अनिच्छा के कारण स्थायित्व का अभाव रहता है।

कोष्ठसघ (कार्टल) या बिक्री सघ—बहुत सी अवस्थाओ में समुच्चयन समझौते अपनी अप्रवर्तनीयता के कारण निष्फल रहे। सदस्य बहुधा अपनी नियत राशि से अधिक उत्पादन कर लेते थे। इस कठिनाई को दूर करने के लिए अनेक तरह के बिक्री सघ या सुनिश्चित ढग के समुच्चय शुरू किये गये। ये सघ जर्मनी म कार्टलो या कीमत सघो के नाम से शुरू हुए, यद्यपि समुच्चयो के ढग के शिथिल प्रकार के समझौते भी कार्टल कहलाते थे। इस विभ्रम के कारण ही उपर्युक्त प्रकार के समुच्चय समझौतो को जर्मन लेखक यथा वौन बेकेरेथ, राबर्ट लीफमेन और एच० मुल्लेनसीफन, आम तौर म कार्टल के नाम म लिख देते हैं। इस प्रकार जब ये लेखक कार्टल को "बाजार पर एकाधिकार करने के लिए एक ही प्ररूप के स्वतन्त्र उपक्रमो या उनके सघो के बीच स्वैच्छिक समझौता"[1] बताते हैं तब वे अपनी परिभाषा में कार्टल खास या सिंडीकेट

1 See Liefman, op cit p 7

(अभिपद) और शिथिल समझौते, दोनों को समाविष्ट कर लेते हैं। स्पष्ट है कि परिभाषा में सारभूत बात बाजार पर एकाधिकार करना या प्रभुत्व प्राप्त करना है। इनके अनुसार, छोटे कार्टेल प्रादेशिक या क्षेत्रीय नियंत्रण, कीमत-स्थिरण, उत्पादन और कोटे तय कर देना, टेंडरिंग या कोटेशन या लाभ वितरण आदि का रूप ले सकते हैं। विभ्रम से बचने के लिए, यहाँ कार्टेल शब्द का प्रयोग सिर्फ घनिष्ठ प्रकार के संयोजन के लिए किया गया है जिसमें फर्म में एक आन्तरिक परिवर्तन हो जाता है, और इसे प्राय सिंडीकेट (अभिपद) कार्टेल कहा जाता है।

कार्टेल या सिंडीकेट



इस प्रकार का कार्टेल या सिंडीकेट मात्र एक विक्रय अभिकरण है जो अपनी सदस्य निर्माता फर्मों की ओर से काम करता है। कुछ उत्पादक इकट्ठे हो जाते हैं और प्राय. संयुक्त स्कन्ध कम्पनी के रूप में एक संघ बना लेते हैं जिसके द्वारा वे अपनी वस्तुएं बेच सकें। यही संघ कार्टेल है। सब सदस्य उस कार्टेल (नयी कम्पनी) से यह समझौता करते हैं कि वे कुछ समय तक अपना सारा माल इसी कम्पनी को बेचेंगे। इसके बाद कार्टेल माल बाजार में बेचता है। यद्यपि उत्पादकों को उत्पाद की क्वालिटी के अनुसार अलग-अलग कीमतें दी जाती हैं, पर उन कीमतों का प्रमाण क्वालिटी के लिए निश्चित बुनियादी कीमत के साथ पहले से सम्मत अनुपात होता है। कार्टेल वह कीमत लेता है जो बाजार सहन कर सके और विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न कीमतें लेता है। जब बाजार उतना सारा माल पचा लेता है जितना सदस्य भरित कर सकते हैं, तब आर्डरों का, सदस्यों की उत्पादन क्षमताओं के अनुसार उनमें राशन कर दिया जाता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि कार्टेल वितरण का सिर्फ कार्य पूरा करता है, पर अलग-अलग निर्माता के भीतरी प्रबन्ध में दखल नहीं देता। कार्टेल आंशिक या पूर्ण एकाधिकार की स्थिति में विपणन के सब कार्य करता है, जिनमें जोखिम भी शामिल है, पर इसका लक्ष्य अपने लिए कोई नफा कमाना नहीं है। जो कुछ लाभ होता है वह सदस्यों में बांट दिया जाता है और यदि हानि हो तो उसमें भी वे हिस्सेदार होते हैं। हमारे देश में

इस प्रकार के कार्टेल या सिंडीकेट का सबसे अच्छा उदाहरण इंडियन शुगर सिंडीकेट लिमिटेड है जो अब विघटित कर दी गयी है। सीमेंट मार्केटिंग कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड इसका एक और उदाहरण है।

संगठन के रूप में कार्टेल सदस्यों के लिए काफी लाभदायक और बचत कराने वाला है। इस पद्धति में उत्पादन की लागत निकालने के लिए न्यूनतम राशि मिलने की गारण्टी हो जाती है। यह अलग-अलग फर्म के लाभों पर कोई प्रत्यक्ष सीमा या रोक नहीं लगाती। यदि बाजार ऊंची कीमत "सहन कर ले" तो ऊंची कीमत ली जाएगी और इसके परिणामस्वरूप या तो वितरण के लिए बहुत लाभ प्राप्त होगा और या बुनियादी कीमत ऊंची की जाएगी। इसके अलावा, निर्माण लागत कम करने के लिए किया गया प्रत्येक सफल प्रयत्न उस फर्म के लाभ में उतनी ही वृद्धि करने वाला सिद्ध होगा। इस प्रकार कार्टेल पद्धति में, बनाने और बेचने के कार्य पृथक्-पृथक् कर दिये जाते हैं और निर्माता को बनाने पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का मौका मिलता है। इस तरह कार्टेल सारे व्यापार के लिए एक सी बाजार अवस्थाएं बना देते हैं, इसके अलावा, निर्माण अर्ध प्रतियोगिता की अवस्था में किया जाता है, और बिक्री करने पर कार्टेल का एकाधिकार होता है। वस्तु बेचने में बहुत काफी मितव्ययिता हो जाती है क्योंकि अब प्रतियोगिता-परक विज्ञापन की आवश्यकता नहीं रहती और इतने बड़े पैमाने पर रचनात्मक विज्ञापन करना सम्भव होता है जितने तक एक-दूसरी से प्रतियोगिता करने वाली फर्में नहीं पहुंच सकती। सबंधित वस्तुएं एक ही अभिकरण द्वारा बेचने में भी उन वस्तुओं को प्रत्येक फर्म द्वारा अलग-अलग बेचने की अपेक्षा कम लागत आती है। उद्योग और उसके वास्तविक तथा संभावित बाजारों से सम्बन्धित आंकड़ों के संग्रह और वितरण का दक्षता पर प्रभाव पड़ता है। इन वास्तविक बचतों के अलावा, एकाधिकार के कारण होने वाले बिक्री के लाभ भी होते हैं। दूसरी ओर, कार्टेल पद्धति कम दक्ष फर्म को बनाये रखकर और इसे अधिक दक्ष फर्म से, जो अपना कोटा बढ़ाना चाहती है, पेंशन पाने का अवसर देकर उद्योग को प्रगतिहीन बनाने लगती है। यह अनुकूल व्यापार के दिनों में अस्वास्थ्यकर प्रसार को उद्दीपित करता है क्योंकि इसके घटकों को यह निश्चय होता है कि प्रतिकूल व्यापार के दिनों में यह उन्हें काम दे सकता है। इसके अलावा, कार्टेल मांग को स्थिर (Stabilise) नहीं कर सके। तथ्य तो यह है कि हमारी सारी आर्थिक प्रणाली में, जिसमें अत्यधिक विशेषीकरण और प्रत्यय की प्रत्यास्थता (Extreme specialisation and elasticity of credit) होती है, व्यापारिक घटबढ़ की जड़ इतनी गहरी गयी होती है कि थोड़े से कार्टेल उसे खत्म नहीं कर सकते। समझौते के ढंग का कार्टेल, समुच्चय की तरह, प्रभावहीन होता है, पर अपने उन्नत रूप—सिंडीकेट—में भी यह इतना दुर्बल होता है कि प्रभावी नियंत्रण नहीं कर सकता, विशेषकर तब जब कोटे बेचने-खरीदने योग्य आस्तियां हो, इस कठिनाई को हल करने के लिए एक और तरह का संयोजन बनाया गया जो उत्पादन के मूलस्रोत पर नियंत्रण कर सकता था—यह ट्रस्ट या न्यास कहलाता

है। पर न्यासों का वर्णन करने से पहले एक और तरह के संयोजन पर विचार कर लेना अच्छा होगा जिनका कार्टेल से फर्क करने में भूल हो जाती है अर्थात् कौर्नर और रिंग (Corner and Ring)।

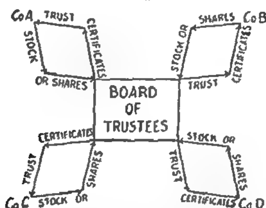
कौर्नर और रिंग या हस्तेकरण और गुट्—कौर्नर या रिंग कोई संयोजन नहीं है, बल्कि अवाछनीय कार्यों द्वारा बहुत अधिक लाभ हासिल करने का एक तरीका है। कौर्नर तब होता है जब किसी बाजार की सब वस्तुएं, उन पर एकाधिकार करने के उद्देश्य से खरीद ली जाती है। यह कोई संघ नहीं है बल्कि एक व्यापारिक चाल है जो एक अकेला व्यापारी भी चल सकता है। पता चलता है कि कौर्नर प्राचीन काल तथा मध्ययुग में भी होते थे और वे आजकल भी आम होते हैं। रिंग या गुट् मिलकर कौर्नर या हस्तेकरण करने के उद्देश्य से बनाया गया कुछ व्यक्तियों का संघ है यद्यपि आम बोलचाल में इस शब्द का प्रयोग कार्टेल के अर्थ में किया जाता है। इस प्रकार गुट् या रिंग स्वतन्त्र उपक्रमियों के बीच कोई समझौता नहीं है जैसा कि कार्टेल होता है बल्कि मिलकर व्यवसाय करने वाला एक संयुक्त उपक्रम है। इसका लक्ष्य यह होता है कि सब वस्तुओं को रोक कर दुर्लभता पैदा कर दी जाए जिससे कीमत चढ़े, जिससे ऊंची कीमत पर यह बेच सके और लाभ उठा सके। गुट् अत्यधिक परिकल्पनात्मक (Speculative) उपक्रम है और इसका कीमत, उत्पादन और सभरण के विनियमन से कोई सम्बन्ध नहीं, जो कार्टेल का कार्य है। किसी पदार्थ का सारा या बहुत सारा स्टाक एक या थोड़े से व्यक्तियों के समूह के हाथ में जमा हो जाना और उस बाजार से हटा लेना व्यापार के उद्देश्य से सर्वथा विरुद्ध है—व्यापार का उद्देश्य है वस्तुओं का वितरण। इसके अतिरिक्त, क्योंकि गुट् सारी वस्तुओं पर नियंत्रण, अन्य सब ग्राहकों से ऊंची बोली बोलकर और उत्पादकों को उनकी मुहमांगी कीमत चुकाकर, प्राप्त करता है, और क्योंकि यह जितनी बड़ी जोखिम उठाता है उसकी क्षतिपूर्ति के लिए इन ऊंची कीमतों पर बहुत ऊंचे लाभ उसे प्राप्त करने है, इसलिए यह वस्तुओं को उपभोक्ता के लिए अवश्यमेव बहुत महगा बना देता है। दुर्लभता के दिनों में, जैसे युद्धकाल में, स्वार्थी व्यापारी बहुत ऊंचे लाभ उठाने के लिए हस्तेकरण या कार्नरिंग करते हैं। इन सब कारणों से कौर्नरों और गुटों को बहुत बुरा समझना चाहिए।

आंशिक संपिंडन

न्यास या ट्रस्ट—संगठन के एक प्रकार के रूप में, संधान या फेडरेशन में घनिष्ठ संयोजन की अपेक्षा कुछ लाभ तो थे, पर इसमें संचालक और प्रबन्ध की अस्थिरता तथा अपूर्ण सकेन्द्रण की बड़ी भारी कमजोरी थी। इसका इलाज था संपिंडन—पहले आंशिक संपिंडन और बाद में पूर्ण संपिंडन—जिससे सायुज्जन (Fusion) हो गया। इस प्रकार का पहला उपाय न्यास या ट्रस्ट था जो शुरू में यूनाइटेड स्टेट्स में बना (यद्यपि अन्य देशों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं)। यह कह देना उचित है कि "ट्रस्ट" शब्द का प्रयोग साधारण व्यवहार में सब प्रकार के विभिन्न बड़े एकाधिकारी संयोजनों के लिए होने लगा है; पर एक विशिष्ट व्यावसायिक रूप में इसका एक

सुनिश्चित अर्थ है, और यहा उसका प्रयोग उस विशेष रूप के लिये ही किया गया है। इसलिए अपने मूल और वास्तविक अर्थ मे एक संयोजन न्यास की परिभाषा यह की गयी है कि "व्यवसाय संगठन का वह रूप जो अस्थायी संपिडन के जरिये स्थापित किया जाता है, जिसमे घटक संगठन के स्टाक-होल्डर (या शेयर होल्डर), एक न्यास समझौते के अधीन, अपने निधिपत्रो की नियत्रक मात्रा (या शेयर सख्या) एक न्यासी मडल को हस्तातरित कर देते है और इसके बदले में उन्हे न्यास-प्रमाणपत्र (Trust Certificates) मिलते है। ये प्रमाणपत्र संयोजन की आय मे उनका साम्यपूर्ण (Equitable) हित प्रदर्शित करते है।" इस परिभाषा को निम्न चित्र द्वारा निरूपित किया गया है।

न्यास



इस चित्र से प्रकट होता है कि न्यासी विधि से कोई न्यास तथा न्यासी मडल किस तरह बनाया जाता है और न्यास मे शामिल होने वाले सब व्यावसायिक उपक्रम, यदि वे पहले कारपोरेशन या निगम (संयुक्त स्कन्ध कम्पनी) नही है, निगमित हो जाते है। A, B, C, आदि कम्पनियो के शेयरहोल्डरो के शेयर न्यास म न्यासी मडल को सौप दिये गये और जिसने उनके बदले म ट्रस्ट सर्टिफिकेट या न्यास प्रमाण पत्र निर्गमित कर दिये। इस पर न्यासी मडल को स्टाक के स्वामित्व के कारण मिलने वाले मतदान-अधिकार प्राप्त हो गये और उन्हे असली स्वामियो के हित की दृष्टि स सदस्य कम्पनियो का व्यवसाय चलाना पडा—असली स्वामियो को पहले की तरह लाभाश के रूप मे लाभ बटता रहा। मतदान शक्ति के स्वामित्व द्वारा घटक कम्पनियो की नीतियो के नियत्रण का उपयोग करके, और स्टाक के स्वामित्व (Title) के स्थानान्तरण के कारण, सम्बन्ध बधनकारी (Binding) हो गया और इस प्रकार नाममात्र का स्वामित्व और प्रभावी नियत्रण थोडे स शक्तिशाली न्यासियो क हाथो म आने से अभीष्ट ध्येय की सिद्धि हो गयी। स्टैन्डर्ड आयल ने न्यास का परीक्षणात्मक उपयोग सबसे पहले किया और स्टैन्डर्ड आयल ट्रस्ट जौन डी० राकफेलर ने १८७९ म बनाया जिसका यूनाइटेड स्टेट्स की शोधन (Refining) क्षमता के ९५ प्रतिशत पर नियत्रण

हो गया। इन तथा चीनी व ह्विस्की न्यासों को इतनी अधिक सफलता मिली कि बहुत से न्यास बन गये और न्यास पद्धति पिछली शती के आठवें दशक में यूनाइटेड स्टेट्स में व्यावसायिक फर्मों को संयोजित करने की एक महत्त्वपूर्ण विधि हो गयी।

मतदाता न्यास (Voting Trust) सामान्य न्यास के एक रूप-भेद के रूप में यूनाइटेड स्टेट्स में प्रचलित हुआ। इस प्रकार के न्यास में स्टाक के कम से कम बहुमत के धारक मतदान के लिए अपने स्टाक न्यासियों को सौंप देते हैं, और अपने स्वत्वों को बेचने तथा लाभांश प्राप्त करने के अधिकार अपने पास कायम रखते हैं। इस तरह का न्यास यह सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया था कि किसी स्टाक होल्डर के स्टाक बेच डालने से स्वीकृत नीति में कोई बाधा न पड़े। प्योर आयल कम्पनी (Pure Oil Company), जो यूनाइटेड स्टेट्स में १८९५ में बनी थी, मतदाता न्यास का बहुत अच्छा उदाहरण है। इस कम्पनी की उप-विधियों के एक उपबन्ध में मतदाता न्यास के लक्ष्य स्पष्ट किये गये हैं। यह उपबन्ध इस प्रकार है "कम्पनी के सब शेयरों का अधिकांश एक स्थायी न्यास के रूप में धारित होगा—यह न्यास सब शेयर-होल्डरों द्वारा धारित होगा—जिससे कम्पनी पर व्यापार नियंत्रण हो सके तथा सब सम्बन्धित व्यक्तियों के हितों और रक्षा की दृष्टि से कम्पनी का व्यवसाय चलाने के लिए, स्वीकृत नीति को ईमानदारी से कायम रखा जा सके। इस प्रकार धारित शेयर न्यास अश या ट्रस्ट शेयर कहलायेंगे।" शुरू में ये न्यास भी शेरमन एंटि-ट्रस्ट एक्ट, १८९०, के अधीन अवैध माने जाते थे, पर Alderman V Alderman, 1935 के फैसले के बाद, वे वैध घोषित कर दिये गये हैं, बशर्ते कि वे निगम के लाभ के लिए ईमानदारी से बनाये गये हों। उनसे प्रबन्ध और नियंत्रण एकीकृत हो जाता है जो कम्पनी के आरम्भिक दिनों में इतना आवश्यक होता है।

व्यवसाय संगठन के रूप में न्यास से स्थिरता और स्थायित्व प्राप्त होती थी और संचालन तथा प्रबन्ध का केन्द्रीकरण हो जाता था, जिससे बृहत्परिमाण परिचालन के लाभ प्राप्त होते थे। उत्पाद और विपणन पर पूर्ण नियंत्रण होने के कारण यह, कार्टेल की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह कीमतों और उत्पाद को विनियमित कर सकता था। उन्हें एक केन्द्रीय संस्थान में स्थापित करके दोहरे भाड़ों से भी बचा जा सकता था और प्रबन्धकीय तथा लिपिक खर्चों में भी बचत की जा सकती थी। प्रमापीकरण का लाभ उठाया जा सकता था और विभिन्न इकाइयों की दक्षता देखने की तुलनात्मक लागत की पद्धति लागू करके लाभ उठाया जा सकता था। अन्ततः, वे "पूंजी के अभूतपूर्व परिमाण को संयोजन के प्रयोजनों के लिए प्रभावी रूप से काम में ला सकते थे।"

न्यास की असमर्थताएं और उन पर आक्षेप बहुत सारे थे। न्यास बनाना अधिक कठिन था, और व्यवहार में, सदस्यों को इनके कारखानों (प्लांटों) के मूल्यांकन के बारे में संतुष्ट करना कठिन सिद्ध होता था। एक बार बन जाने पर न्यास आसानी से बदला नहीं जा सकता था। बहुत बार प्रारम्भकर्ता (Promoters) महत्त्वपूर्ण तथ्यों को गलत रूप में पेश करके या छिपाकर अपने लिये बहुत लाभ प्राप्त कर लेते थे।

एक और खतरा अतिपूंजीकरण का था। वे कुछ बाजारों में प्रतिस्पर्धियों की प्रतियोगिता समाप्त करने के लिए अधिमान्य (Preferential) कीमतों के आर्थिक हथियार का उपयोग करके समाज-विरोधी हो जाते थे, और प्रतियोगिता-रहित स्थानों में कीमतें बहुत ऊंचे स्तरों पर कायम रखते थे। न्यायालय उन्हें वैध नहीं मानते थे और अन्त में १८९० में वे अवैध घोषित कर दिये गये। परिणामतः बहुत से न्यास धारक कम्पनियों में रूपांतरित कर दिये गये, कुछ अवस्थाओं में, स्वतन्त्र इकाइयों का नियन्त्रण अन्तर्बद्ध निदेशनालयों (Interlocked Directorates) की पद्धति या हितों के सस्वामित्व (Community of Interests) द्वारा किया जाता था।

हितों का संस्वामित्व (Community of Interests)—जब न्यास अवैध घोषित कर दिये गये और उन्हें विघटित कर देना पड़ा, तब उन विशाल व्यवसायों को, जो इस तरह बनाये गये थे, नष्ट होने से बचाने के लिए उनके स्थान पर किसी नये प्रकार का संगठन बनाना आवश्यक हो गया। तब संयोजन का वह प्ररूप बनाया गया जिसे हितों का सस्वामित्व कहते हैं। इसकी परिभाषा यह की जा सकती है कि यह शेयर होल्डरों या संचालकों या दोनों की वैयक्तिक वचनबद्धता पर आधारित होता है, और इसमें अनेक उपक्रमों की नीतियाँ, सबके लाभ के लिए, किसी औपचारिक-नियन्त्रण तन्त्र के बिना, निर्धारित की जाती हैं। हितों के सस्वामित्व दो प्रकार के हैं—एक में तो सिर्फ स्वामित्व संयुक्त होता है और दूसरे में स्वामित्व तथा संचालन दोनों संयुक्त होते हैं। दूसरा प्रकार अधिक स्थिर और प्रभावी होता है।

पहले प्रकार का हित-सस्वामित्व (अर्थात् संयुक्त स्वामित्व) तब बनता है जब कई कम्पनियों के स्टाक या शेयर कुछ ऐसे व्यक्तिसमूहों के पास होते हैं जिनके हितों में घनिष्ट सम्बंध होता है। इस प्रकार, इस समूह के सदस्यों के कुछ हित साझे होते हैं जिनके कारण वे कई कम्पनियों के संचालकों के बारे में परामर्श करते हैं और एक बात पर सहमत हो जाते हैं—ये संचालक निश्चय ही, मिल-जुलकर काम करेंगे। अहमदाबाद मिल उद्योग इस प्रकार के हित-सस्वामित्व का बहुत अच्छा उदाहरण है। हित-सस्वामित्व और संचालन की संयुक्तता इंटरलौकिंग डाइरेक्टोरेट या अन्तर्बद्ध संचालनालय से बनती है। इस प्रकार का हित-सस्वामित्व उस उद्योग में होता है जिसमें समन्वय का और कोई चिह्न नहीं होता और विशेष रूप से यह उस निर्माण व्यवसाय में आम तौर से होता है जिसके घटक अनेक प्लांटों के स्वामी अलग-अलग होते हैं—ये प्लांट प्रायः एक ही जगह होते हैं, उदाहरण के लिये, वहां जहां एक दर्जन या अधिक प्लांट एक ही वस्तु बनाते हों। ऐसी अवस्था में, कुछ थोड़े से प्रमुख निर्माता, जो उद्योग के नेता माने जाने वाले लोग होते हैं, कई प्रतियोगी फैक्टरियों के संचालक होंगे। इन प्रतियोगी संगठनों में उनका अंश थोड़ा ही होगा और इसलिए वे सारे उद्योग के कल्याण की बात सोचते हैं, सिर्फ एक फैक्टरी के नहीं। इन लोगों के प्रभाव के जरिये नगर या बस्ती के सब उत्पादकों में किसी न किसी प्रकार का सामंजस्य पैदा हो जाता है। किसी

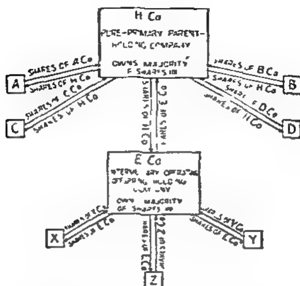
भी अर्थ में यह नहीं कहा जा सकता कि परिचालक प्लांटों का सपिंडन हो जाता है, पर उनमें एक वास्तविक सहकारिता-युक्त एकता होती है। तो भी प्रत्येक इकाई का प्रबन्ध स्वतन्त्र और बेरुकावट होता है। पर भारत में, जैसा कि अभी बताया जाएगा, अन्तर्बंधक सचालनाल्य सगठन के लिए अन्य स्थानों की अपेक्षा सबसे अधिक क्षेत्र है, क्योंकि इसमें देश के विभिन्न भागों में स्थित विभिन्न उद्योगों का समावेश होता है। मुख्यत प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली के कारण अन्तर्बंधक सचालनालय योजना का व्यापक उपयोग हुआ है।

सनारो या धारक कम्पनी (Holding Company)—क्योंकि इन न्यासी या हित-स्वस्वामित्व के उपायों में से कोई भी असली अर्थ में संयोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सका, इसलिए एक और रूप, अर्थात् धारक कम्पनी का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार, व्यवसाय सगठन के रूप में धारक कम्पनी "अन्य कम्पनियों के स्टाक की नियन्त्रक मात्रा का स्वामित्व प्राप्त करके उन्हें संयोजित करने के प्रयोजन से" बनायी जाती है। कानून की दृष्टि से, धारक कम्पनी वह है जो उपसहायक (Subsidiary) कम्पनियों के अधिकतर मत-युक्त शेयर सीधे या अपने नामजद व्यक्ति द्वारा धारण करती है, या सचालकों के अधिकांश को नियुक्त करने की शक्ति रखती है। इस प्रकार यदि कम्पनी क की आस्तियां सारी या अशत कम्पनी ख के शेयरों के रूप में हैं, जिसमें (१) कम्पनी क द्वारा धारित शेयरों की राशि कम्पनी ख की निर्गमित शेयर पूंजी के ५० प्रतिशत से अधिक है, या (२) वह राशि इतनी अधिक है कि इसके कारण कम्पनी क को कम्पनी ख में ५० प्रतिशत से अधिक मतदान शक्ति प्राप्त है, अथवा (३) कम्पनी क को कम्पनी ख के अधिकतर सचालक नियुक्त करने का अधिकार है, तो कम्पनी क धारक कम्पनी है और कम्पनी ख उपसहायक कम्पनी है। किसी धारक कम्पनी की उपसहायक कम्पनियां कितनी भी हो सकती हैं, और कोई उपसहायक कम्पनी किसी दूसरी कम्पनी या कम्पनियों की धारक कम्पनी हो सकती है। धारक कम्पनी अन्य कम्पनियों के शेयर धारण करने के लिए नयी बनायी गयी हो सकती है या यह पहले से मौजूद हो सकती है, जिस अन्य कम्पनियों के शेयर धारण करने की शक्ति हो और वह उनके शेयर धारण करने लगे। कम्पनी अपने शेयरों के बदले में या अन्य रीति से खरीद कर शेयर प्राप्त करती है। उपसहायक कम्पनियां अपने ही नामों से कार्य करती रहकर अपनी स्वतन्त्रता और कानूनी अस्तित्व बनाये रखती हैं, पर धारक कम्पनी के अफसर उनका प्रभावी रूप से प्रबन्ध करते हैं। धारक कम्पनी के सचालक उनके स्टाकों या शेयरों अथवा उनके एक नियन्त्रणकारी भाग पर वोट देते हैं और इस प्रकार उनके सचालक निर्वाचित करते हैं। इस प्रकार संयोजक प्लांट धारक कम्पनी से, जिसके सचालक मडल में प्राय वही लोग होते हैं जो इसकी प्रत्येक उपसहायक कम्पनी के सचालक मडल में होते हैं, नियन्त्रण में दृढ़ता से बंधे रहते हैं। धारक कम्पनी और इसकी उपसहायक कम्पनियां एक सा या अलग-अलग तरह का व्यवसाय करती हो सकती हैं अथवा यह भी संभव है कि वे और कुछ भी न करती हों, सिर्फ इसकी उपसहायक कम्प-

नियों में शेयर धारण करती हो।

स्पष्ट है कि धारक कम्पनिया, जिन अवस्थाओं में वे बनाई जाती हैं उन अवस्थाओं के अनुसार, विभिन्न प्रकार की होती हैं। जहा कोई कम्पनी पहले से मौजूद हो और उसके बाद उपसहायक कम्पनियां सगठित करे और नियत्रणकारी शेयर धारण करे और वहा वह जनक धारक कम्पनी (पेरेन्ट होल्डिंग कम्पनी) कहलाती है। जब कई कम्पनिया इकट्ठी मिलकर एक ऐसी नई कम्पनी शुरू करती है जो इन मिलने वाली कम्पनियो मे बहुमत धारण करती है तब यह सपिंडित (कॉन्सोलीडेटेड)या सतति सधारक कम्पनी (आफस्प्रिंग होल्डिंग कम्पनी) कहलाती है। धारक कम्पनिया शुद्ध (प्योर) या परिचालक (ओपरेशन) या मिश्रित होती है। शुद्ध धारक कम्पनी वह होती है जो स्वय उत्पादन के किसी प्राविधिक प्रक्रम में नही लगती और सिर्फ परिचालक कम्पनियो के शेयर धारण करती है। परिचालक या मिश्रित धारक कम्पनी वह है जो उपसहायक कम्पनियो के शेयर भी धारण करती है और एक प्लाट भी परिचालित करती है। प्राथमिक धारक कम्पनी या प्राइमरी होल्डिंग कम्पनी वह होती है जो सयोजन सगठन के प्रधान के रूप म या इसमे पहले या उसके ऊपर मौजूद होती है। मध्यवर्ती धारक कम्पनी या इन्टरमीडियरी होल्डिंग कम्पनी उपसहायक कम्पनी की धारक कम्पनी होती है। पर यह स्वय किसी अन्य धारक कम्पनी द्वारा नियत्रित होती है। ये सब धारक कम्पनिया उपसहायक या सम्बन्धित कम्पनियो को नियत्रित करने के प्रयोजन से बनाई जाती है। और इसलिए इन्हे "नियत्रण-धारक कम्पनिया" (कन्ट्रोल होल्डिंग कम्पनीज) कहा जा सकता है। असली धारक कम्पनिया ये ही है यद्यपि कुछ अन्य ऐसे ही सगठनो को, जिनका लक्ष्य नियत्रण बिल्कुल नही होता बल्कि जो अन्य कम्पनियो को वित्तपोषित करके लाभ उठाना चाहती हैं, कभी-कभी धारक कम्पनिया कह दिया जाता है। उदाहरण के लिये, वह कम्पनी जिसका मुख्य कार्य प्रवर्तन, अभिगोपन या पुन सगठन द्वारा अन्य कम्पनियो के परिचालन को वित्तपोषित करके लाभ कमाना है। कभी-कभी वित्तधारक कम्पनी (फिनान्स होल्डिंग कम्पनी) कहलाती है। इसके अलावा वह, कम्पनी, जिसका प्रयोजन आय तथा लागपुल एप्रेसियेशन (Long pull appreciation) के खातिर अन्य कम्पनियो की प्रतिभुतिया धारण करना होता है, उसे नियोजन धारक कम्पनी (Investment Holding Company) कहा जाता है, यद्यपि यह एक नियोजन कम्पनी हो सकती है जिसका एकमात्र उद्देश्य शेयर धारण करना है, नियत्रण करना नही। तथ्य तो यह है कि यह हानि की जोखिम से बचने के लिये पूंजियों का वैविध्यकरण करना चाहती है। कम्पनी अधिनियम मे भी यही उपबन्ध किया गया है कि जब वित्तीय अथवा विनियोग कम्पनी, अर्थात् जिस कम्पनी का प्रधान व्यवसाय रुपये उधार देना, तथा अश, स्कन्ध, ऋणपत्र अथवा अन्य प्रतिभूतियो की अवाप्ति और धारण है, वह केवल इस कारण सधारी कम्पनी नही हो सकती कि इसकी आस्तियो का एक अश किसी अन्य कम्पनी

५१ प्रतिशत या इससे अधिक अंशों के रूप में हैं। निम्नलिखित चित्र में उपर्युक्त विभिन्न प्रकार की सधारी कम्पनियाँ स्पष्ट हो जाती हैं।



जहाँ एक कम्पनी H, जो पहले से चालू है, यह निश्चय करती है कि वही या दूसरा व्यवसाय करने वाली चार कम्पनियों पर नियन्त्रण रखा जाय, तब वह A, B, C तथा D कम्पनियों में से प्रत्येक के बहुसंख्यक अंश खरीद लेती है, और ये कम्पनियाँ इस कम्पनी की उपसहायक (Subsidiaries) हो जाती हैं। इस प्रकार H कम्पनी चारों कम्पनियों की सधारी हो जाती है और इसके संचालक प्रत्येक उपसहायक कम्पनी के संचालक स्वयं नियुक्त करेंगे। इस तरह हालाँकि सहायक अथवा नियन्त्रित कम्पनियाँ नाम के लिए स्वतन्त्र हैं तथा अपने नाम से व्यवसाय का संचालन करती हैं, पर उनकी असली बागडोर सधारी कम्पनी के संचालकों अथवा अफसरों के हाथ में रहती है। H कम्पनी जनक (Parent) कम्पनी है, क्योंकि यह कम्पनी पहले से विद्यमान है, यह प्राथमिक कम्पनी है क्योंकि इसके ऊपर कोई अन्य कम्पनी नहीं है, यह शुद्ध सधारी कम्पनी है क्योंकि यह अपनी उपसहायक कम्पनियों का संचालन नहीं करती। मान लीजिए कि X Y Z ये तीन कम्पनियाँ हैं जो एक दूसरे के साथ प्रतियोगिता करती हैं और वे एक सधारी कम्पनी E संगठित करने का निश्चय करती हैं, जो स्वयं कार्यशील होगी। ऐसा करने के लिए उपर्युक्त प्रक्रिया का ही अनुसरण किया जायगा, और E कम्पनी X Y Z उपसहायक कम्पनियों की सन्तति परिचालक सधारी कम्पनी (Offspring operating Holding Company) होगी। इसके पश्चात् H कम्पनी E कम्पनी में नियन्त्रक अंश धारण करती है, और फलतः E कम्पनी अब H कम्पनी की

उपसहायक कम्पनी हो जाती है और इस प्रकार एक मध्यवर्ती सधारी कम्पनी हो जाती है। परिणामत A, B, C, D, E, X, Y और Z कम्पनियां H कम्पनी की उपसहायक कम्पनियां हो जाती हैं। इस प्रकार, सधारी कम्पनियां इसी तरह के पिरामीडीकरण (Pyramiding) की प्रक्रिया द्वारा अनेक कम्पनियों पर नियंत्रण कर सकती है।

सधारी कम्पनी अन्य रूपों के मुकाबिले में अनेक दृष्टियों से लाभदायक है। संपिडन प्ररूप के जितने भी संयोजन हैं, उनमें सधारी कम्पनी का संगठन सबसे अधिक सहज है। इस प्रकार के संयोजन का निर्माण इस कारण सहज हो जाता है कि सधारित होने वाले प्रत्येक कम्पनी के कुल स्कन्धों की थोड़ी सी मात्रा खरीदने से बहुत अधिक परिमाण में नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। इसके निर्माण के लिये उपसहायक कम्पनियों के अंशधारियों की सम्मति की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि इसके प्रवर्तक उपसहायक कम्पनियों के अंश खुले बाजार में खरीद सकते हैं और इस प्रकार के अंशों की नियंत्रक (Controlling) संख्या प्राप्त कर लेते हैं। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार के संयोजन की अवस्था में, प्रतियोगिता को उन्मूलित करने के उद्देश्य से विक्रय क्षेत्रों का बटवारा ज्यादा आसानी से किया जा सकता है। एक ओर तो कीमत सम्बन्धी प्रतियोगिता का मूलोच्छेदन बिल्कुल निश्चित है, और दूसरी ओर, अकेले तथा अप्रतियोगी प्लांटों के संचालन में मितव्ययिता प्राप्त की जा सकती है। तीसरी बात यह है कि उसमें केन्द्रीभूत नियंत्रण सम्भव होता है और साथ ही, इसके सदस्य व्यवसाय अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखते हैं, जिससे अंशों के पुनर्विनिमय मात्र से विसंगठन (De organisation) किया जा सकता है। इस प्रकार, संयोजन तथा बड़े पैमाने के संगठन के सारे लाभ, और विशेषकर वे लाभ, जो शीर्ष समेकन में उपलब्ध हैं, सधारी कम्पनी संगठन द्वारा, न्यूनतम पूंजी लगाकर तथा न्यूनतम संगठन सम्बन्धी प्रक्रिया के जरिये प्राप्त हो जाते हैं।

इस दृष्टि से, सधारी कम्पनी संगठन पूर्ण संपिडन (Complete Consolidation) से उत्कृष्ट कोटि का है क्योंकि संपूर्ण संपिडन की अवस्था में पृथक्-पृथक् कम्पनियों तथा उनके अंशों का परित्याग कर दिया जाता है, जिसमें व्यवसाय नीति का स्थानीय परिस्थितियों से समायोजित करना तथा उन नेताओं की, जिन्होंने संगठन को मूलत निर्मित किया था, सक्रिय सेवाओं का आकृष्ट करना तथा अधीनस्थ करना कठिन हो जाता है। घटक कम्पनियां द्वारा अर्जित ख्याति बनी रह जाती है, क्योंकि सधारी कम्पनी को इस ख्याति में बाधा नहीं डालनी पड़ती। सधारी कम्पनी को एक अतिरिक्त लाभ यह है कि यह एकाधिकार के प्रति जनता के विरोध से बचती है क्योंकि इसका एकाधिकार जाहिर नहीं होता। सधारी कम्पनी का एक और बड़ा लाभ यह है कि नियंत्रण के केन्द्रीकरण के साथ-साथ पूंजी के उपयोग में बहुत बड़ी मितव्ययिता प्राप्त की जा सकती है क्योंकि थोड़े से छोटे-छोटे अंश अपेक्षया बहुत बड़ी पूंजी का नियंत्रण करेंगे।

साहसिक या उद्यमी (Entrepreneur) की दृष्टि से, सधारी कम्पनी

में संयुक्त स्कन्ध कम्पनी के सारे दोष विद्यमान रहते हैं। सबसे बड़ी आपत्ति तो यह है कि यह बिना उत्तरदायित्व दिये शक्ति प्रदान करती है, और सधारित कम्पनियों की संख्या जितनी अधिक होती है और नियन्त्रण जितना ही अधिक केन्द्रीभूत होता है, शक्ति उतनी ही अधिक होती है और उत्तरदायित्व बहुत कम होता है। परिणामत पिरामीडीय प्रबन्ध के कारण दायित्व (Liability) तथा उत्तरदायित्व के बहुत कम हो जाने से कपट तथा निगम वित्तों (Incorporate finances) व नोनियों की भीतरी गोटेबाजी का भय पैदा हो जाता है। अनिपजीकरण का खतरा भी होता है जिसमे कपट को राह मिलती है। वित्तीय गोटबाजी (Financial Manipulation) तथा कपटपूर्ण कार्य, जो उप-सहायक कम्पनिया के लिये घातक हैं प्राय पाये गये हैं। १५ जनवरी १९३७ के पूर्व, सधारी कम्पनिया आम तौर से उपसहायक कम्पनियों के लाभ हड़प जाती थी तथा अपनी हानिया उनके मत्थ मढ़ देती थीं।

उपर्युक्त तथा एेसी ही आपत्ति-योग्य कार्यो की रोकथाम करने के लिए सन् १९३६ ई० मे कम्पनी अधिनियम में एक नयी धारा १३२ जोड़ी गयी, जिसके अनुसार उप-सहायक कम्पनियों के मामलो को अधिक खोलकर बताना आवश्यक था। इसमें ऐसी व्यवस्था थी कि सहायक कम्पनियों का विगत अकेक्षित चिट्ठा (Balance Sheet) तथा लाभालाभ खाता और अकेक्षक की रिपोर्ट सधारी कम्पनी के चिट्ठे के साथ अनिवार्यत संयुक्त होनी चाहिए—इसके साथ, उन व्यक्तियों द्वारा दिया गया एक वक्तव्य भी होना चाहिए जिन्होने चिट्ठे को हस्ताक्षरित तथा प्रमाणित किया है। इस वक्तव्य में यह स्पष्ट होना चाहिए कि सधारी कम्पनी के खातो के प्रयोजन के लिए सहायक कम्पनियों के लाभ व हानि के खाते किस प्रकार डाले गये हैं और, खास कर कैसे तथा किस परिमाण में (१) उपसहायक कम्पनियों के खाता अथवा सधारी कम्पनी के खाते में या तो दोनो खातो में किसी एक उपसहायक कम्पनी की हानियों के लिये व्यवस्था की गयी है तथा (२) सधारी कम्पनी के सचालकों द्वारा, सधारी कम्पनी के प्रकाशित हिसाब में लाभ-हानि के हिसाब लगाने के वास्ते उपसहायक कम्पनी की हानिया किस तरह डाली गयी है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि किसी भी विवरण (Statement) में विशेषरूप से किसी सहायक कम्पनी की लाभ-हानि की वास्तविक राशि का उल्लेख किया जाय, या यह बताया जाए कि लाभ अथवा हानि के किसी भाग की वास्तविक रकम किस विशेष रीति से डाली गयी है। जो निजी कम्पनिया किसी लोक कम्पनी की उपसहायक कम्पनी हैं, वे उन उन्मुक्तियों (Exemptions) से वंचित रहती हैं जो निजी कम्पनी को प्राप्त हैं। वस्तुत, वे लोक कम्पनियो की तरह समझी जाती हैं।

न्यास तथा सधारी कम्पनी के बीच अतर—ढांचे की दृष्टि से सधारी कम्पनी न्यास के समान होती है तथा कार्य की दृष्टि से भी यह वही उद्देश्य सिद्ध करती है। किन्तु दोनों रूप में कुछ उल्लेखनीय अन्तर हैं। वे अन्तर ये हैं—

१ न्यासी मडल के स्थान पर, सधारी कम्पनी में सयुक्त स्कन्ध कम्पनी को

तरह सचालक होते हैं जो उस व्यवसाय के प्रबन्ध में सीधी दिलचस्पी लेते हैं।

२ न्यास म व्यवसाय का नियन्त्रण न्यासी करते हैं क्योंकि अशों का अभिहित स्वामित्व सम्बन्ध कम्पनियों के अशधारियों द्वारा न्यासियों के हाथ हस्तातरित कर दिया जाता है, लेकिन सधारी कम्पनी के अशधारी सयोजित कम्पनी के प्रबन्ध के लिए सचालक स्वय चुनते हैं।

३ न्यास म अशधारी अपने अशों को न्यासी के हाथ समर्पित कर देते हैं जो अमानत के रूप म उनके निमित्त उन्हें अपने पास रखते हैं, और इस प्रकार अशधारी न्यास करार के हितग्राही (Beneficiaries) होते हैं। सधारी कम्पनी की अवस्था में, अश विधित प्राधिकृत परिमित कम्पनी द्वारा प्रत्यामृत होते हैं, उस कम्पनी को परिमित कम्पनी होने के कारण ऐसा करने की शक्ति होती है।

४ न्यास समझौते म, एक सघानीय सम्बन्ध (Federate Relationship) का विकास हुआ था जिसमें सम्मिलित होने वाले पक्ष नाममात्र को अपनी पृथक् स्थिति बनाये रखते थे, लेकिन सधारी कम्पनी नामत एक उत्तरदायी कम्पनी है जो खुले बाजार म अश खरीदती है तथा राज्य के द्वारा अधिकृत कार्य करती है।

५ वैधता की दृष्टि से, न्यास सम्बन्धी समझौता व्यक्तिगत न्यासियों के साहचर्य (Association) तथा एक कम्पनी-समूह के बीच होता है, जो कम्पनिया ध्वनितार्थत अपनी स्वायत्तता छोड देती है और इस प्रकार शक्ति-बाह्य (Ultra vires) कार्य करती है। सधारी कम्पनी, जो स्कन्ध खरीदती और बेचती है, अपने अधिकार-पत्र (Charter) की परिधि के अन्तर्गत है, क्योंकि वह पृथक् पृथक् अशधारी से व्यवहार करती है। इसलिए जहा तक रूप का सवाल है, न्यास अवैध (Illegal) है और सधारी कम्पनी वैध है।

पूर्ण सपिडन (Complete Consolidation)—जब मिलने वाली कम्पनियों की सम्पदाओं को पूर्णत खरीदकर एक इकाई रूप में पूर्णतया सायुज्यित (Fused) कर दिया जाता है, तब पूर्ण सपिडन (Complete Consolidation) होता है। यह एक ऐसा ऐक्य है जिसम अग सायुज्यित हो जाते हैं और अपना पृथक अस्तित्व, कम से कम सचालन कार्य के लिए, खो देते हैं, और यह विनय द्वारा अस्तित्व म आता है। सपिडन समामेलन (Amalgamation) अथवा सविलयन (Merger) का रूप ग्रहण कर सकता है।

समामेलन तब होता है जब दो या दो से अधिक कम्पनिया एक तीसरी नयी कम्पनी सगठित करती है, जिसके साथ वे समामेलित होना चाहती हैं। ये कम्पनिया अपना पृथक् अस्तित्व खो देती हैं, अर्थात् दो कम्पनिया, क तथा ख, ग कम्पनी के नाम से सयुक्त हो जाती हैं तथा क तथा ख कम्पनिया के रूप म अपना अस्तित्व खो देती हैं। ये दो कम्पनिया चाहे तो पुरानी दो कम्पनियो के नाम अपना सकती हैं, अर्थात् क और ख कम्पनिया नयी कम्पनी को ग नाम देने के बजाय इसे क एण्ड ख कम्पनी के नाम

से पुकार सकती हैं, जिसका साफ यह अर्थ हुआ कि क एण्ड ख कम्पनी नयी कम्पनी हुई। वृहत व्यवसाय को वृहत्तर तथा साधारण फर्म को वृहत्तर एकीभूत फर्म बनाने के लिये साधन के रूप में समामेलन का प्रभाव बड़ा असाधारण होता है। सविलयन (Merger) संपिंडन का वह रूप है जिसमें पहले से मौजूद एक कम्पनी अन्य सब कम्पनियों को आत्मसात कर लेती है और प्रत्येक सविलीन कम्पनी व्यवसाय इकाई के रूप में अपना पृथक् अस्तित्व खो देती है, चाहे कम्पनियों द्वारा संचालित किये जाने वाले प्लांटों का अलग-अलग संचालन जारी रहे। उदाहरणत, किसी एक रेलवे प्रणाली को मुख्य लाइन शाखाओं तथा विस्तारों (Branches and Extensions) को आत्मसात् कर ले सकती है, जिसका परिणाम यह होगा कि शाखा कम्पनियां पृथक् संगठन के रूप में समाप्त हो जाएगी तथा मुख्य लाइन पहले की भांति चालू रह सकती है। सविलयन को प्राय कन्सर्न (Concern) कहा जाता है। वास्तविकता तो यह है कि कन्सर्न की परिभाषा इस प्रकार की गयी है— कन्सर्न फर्मों का किसी एक इकाई में उत्पादन, प्रविधि (Technique), प्रशासन (Administration), व्यापार (Trading) (विशेषतया) वित्त के प्रयोजन के लिए सविलयन।" जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इन रूपों का निर्माण कम्पनी अधिनियम के अधीन, विशेष संकल्प तथा न्यायालय के सम्मोदन द्वारा किया जा सकता है। संपिंडन की योजना न्यायालय के सामने प्रस्तुत की जाती है और जब या जिस रूप में न्यायालय द्वारा सम्मोदित की जाय, उस रूप में अपनायी जाती है। इसके बाद घटक कम्पनियों के अंशधारी एक सहमत आधार पर नयी कम्पनी के अंशधारी बन जाते हैं, और इसी प्रकार उनके उत्तमर्ण नयी कम्पनी के उत्तमर्ण बन जाते हैं।

सधारी कम्पनी तथा पूर्ण संपिंडन में अन्तर—सधारी कम्पनी संयुक्त कम्पनियों का पृथक् अस्तित्व बनाये रखती है तथा उनके अंशों को खरीदकर उन पर नियन्त्रण रखती है। यह औपचारिक रूप से तथा सीधे रूप से उनकी (संयुक्त कम्पनियों की) ओर से कार्य नहीं कर सकती, बल्कि उन कम्पनियों के संचालकों के जरिये ही कार्य कर सकती है। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, यह केवल एक आंशिक अथवा अस्थायी संपिंडन है। सायुज्यन अथवा पूर्ण संपिंडन में विभिन्न इकाइयां पृथक् तथा स्वतन्त्र नहीं रह जातीं; वे सायुज्यित हो जाती हैं और एक बन जाती हैं। उनको नियन्त्रित करने का प्रश्न नहीं रहता, क्योंकि वे सब अब एक बन गयी हैं।

सधारी कम्पनी की अवस्था में, संयोजन में जो सम्बन्ध स्थापित होता है, वह उपसहायक कम्पनियों के एक-एक अंशधारी तथा सधारी कम्पनी के बीच होता है। सच्ची बात तो यह है कि सधारी कम्पनी तथा उपसहायक कम्पनी सापेक्ष शब्द हैं, और ये उन कम्पनियों के बीच का सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिये व्यवहृत किये जाते हैं, जिसमें एक कम्पनी दूसरी कम्पनी में बहुसंख्यक मतदाता अंशों का स्वामित्व रखती है। पूर्ण संपिंडन में सम्बन्ध कम्पनियों के बीच होता है, और इसलिए मिलने वाली कम्प-

नियों के सब अंशधारियों के, जिनमें वे मतभेद रखने वाले अंशधारी भी शामिल हैं, जिन्हें अल्पसंख्यक होने के नाते अपना अंश हस्तान्तरित करने के लिये मजबूर होना पड़ता है, हित इकट्ठे और एक में हो जाते हैं। किन्तु सधारी कम्पनी संगठन की अवस्था में, दो वर्गों के अंशधारियों में हित-संघर्ष का खतरा होता है—एक वर्ग में वे लोग हैं जो संयोजन में सम्मिलित होते हैं, और दूसरे में वे हैं जो इसमें सम्मिलित नहीं होते। पूर्ण संपिंडन में ऐसा नहीं होता।

सधारी कम्पनी के मुकाबले में पूर्ण संपिंडन के लाभ ये हैं—सधारी कम्पनी में होने वाले उत्तरदायित्व तथा दायित्व की कमी का स्थान पूर्ण संपिंडन में एकीकृत तथा केन्द्रीभूत प्रबन्ध ले लेता है, जिससे अनावश्यक अफसर नहीं रखने पड़ते, तथा अन्य व्यय, जो अनेक कार्यालयों तथा स्वतन्त्र रकार्डों की व्यवस्था के लिए आवश्यक होते हैं, समाप्त हो जाते हैं (२) हितों का ऐक्य, जिसका परिणाम होता है वृहत्तर विश्वास, सधारी कम्पनी को गठित करने वाली घटक कम्पनियों के मामले में अनुचित गठबन्धनों की सम्भावना खतम कर देता है। (३) यदि पूर्ण संपिंडन उचित रूप से निर्मित किया गया हो तो इसकी कानूनी स्थिति सधारी कम्पनी की कानूनी स्थिति से अधिक सुरक्षित होती है, (४) जहां तक जनता के प्रति अथवा अंशधारियों के प्रति भी उत्तरदायित्व का प्रश्न है, पूर्ण संपिंडन सधारी कम्पनी से निश्चित रूप से उत्कृष्ट है, इसका कारण यह है कि सधारी कम्पनी से सम्पूर्ण शक्ति थोड़े से लोगों के हाथों में आ जाती है पर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व बहुत से व्यक्तियों में बंट जाता है; (५) मायुज्यन की अपेक्षा सधारी कम्पनी में अन्तक्षेत्रीय नियन्त्रण का भय अधिक रहता है; (६) चूंकि पूर्ण संपिंडन का निर्माण उतनी आसानी से नहीं होता जितनी आसानी से सधारी कम्पनी का, अतः इसमें एकाधिकार (Monopoly) होने का, जो सम्पूर्ण उद्योग को आवृत कर ले, वैसा मौका अधिक नहीं है। "मुस्थित राजनीति प्रत्याभूति सधारण की अपेक्षा समामलन या संविलयन द्वारा पूर्ण संपिंडन को प्रोत्साहित करेगी और अन्ततोगत्वा विधिमगत वैयष्टिक हित इसी दिशा में है।"

पूर्ण संपिंडन से, सधारी कम्पनी में सहजरूप से विद्यमान कुछ सुविधाएं खतम हो जाती हैं, अर्थात् (१) अन्य कम्पनियों के अंशों को बिल्कुल खरीद लेने के लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता है; (२) घटक कम्पनियों के अंशधारियों की बहुत बड़ी संख्या (तीन-चौथाई) की सम्मति आवश्यक है; (३) पूर्ण संपिंडन की हालत में, *सायुज्यित फर्मों के द्वारा अर्जित ख्याति तथा बहुत ही अधिक व्यय पर प्राप्त एकस्वों* (Patents) का परित्याग अनिवार्य है, जबकि सधारी कम्पनी में वे सुरक्षित रखे जा सकते थे, (४) सधारी कम्पनी में व्यवसाय के क्षेत्रीय विभाजन की सम्भावना रहती है, पूर्ण संपिंडन से वह सर्वथा नष्ट हो जाती है, (५) यदि आवश्यक हो तो संपिंडन का तोड़ना कठिन है क्योंकि स्वामित्व पूर्णतया हस्तान्तरित हो जाता है, एक स्कन्ध के अंश का दूसरे से विनिमय मात्र नहीं होता, (६) सधारी कम्पनी के असदृश, जिसमें पुन

समायोजन (Readjustment) सरल होता है, मादुज्जन का प्रथम परिणाम, स्कन्ध तथा बन्धपत्रों (Bonds) के लिये अतिशय भुगतान के कारण, अतिपूंजीकरण हो सकता है और तब इसका दूसरा परिणाम पूंजीकरण की सारहीनता हो सकती है, क्योंकि सपिंडन में उन बहुतेरी सम्पत्तियों (Properties) का, जिनके ऊपर पूंजी निर्गमित की गयी थी, अपना पृथक् अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

सपिंडन बनाम कार्टेल (Consolidation Vs Cartel)—प्रारम्भ में ही यह जान लेना आवश्यक है कि यहाँ सपिंडन शब्द आंशिक सपिंडन तथा पूर्ण सपिंडन दोनों के अर्थ में व्यवहृत किया गया है, अर्थात् न्यास, सहकारी कम्पनी, सादुज्जन तथा समामेलन, सभी सपिंडन शब्द के अन्तर्गत आते हैं। उत्पादक संघ या कार्टेल तथा सपिंडन दोनों का उद्देश्य है एकाधिकार। संगठन विधि की दृष्टि से भी दोनों में समानता है क्योंकि दोनों का आधार है सदस्यों की पारस्परिक सहमति। लेकिन दोनों के बीच समानता की यहीं इतिश्री हो जाती है। सपिंडन में आंशिक अथवा शारीरवत् (Organic) परिवर्तन की उत्पत्ति होती है, लेकिन इसके विपरीत उत्पादक संघ में, जो एक सघान (Federation) है, हितों का सादुज्जन होता है। उत्पादक संघ व्यक्तिगत नियोक्ता की आन्तरिक व्यवस्था से छेड़खानी नहीं करता। यह वस्तुतः एक विक्रय अभिकरण है, जो मिलनशील फर्मों के निमित्त कार्य करता है। विभिन्न इकाइयों के स्कन्ध तथा प्रबन्ध संचालन का स्वामित्व साझे रूप से थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में होता है, जो उन इकाइयों पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं, तथा उनकी नीति का निर्धारण करते हैं। माल बनाने तथा माल बेचने का कार्य एक दूसरे से भिन्न कर दिये जाते हैं तथा वृहत् माप उत्पादन व संगठन के लाभों को प्राप्त करना सम्भव है। कार्टेल या उत्पादक संघ आनुबन्धिक (Contracting) संघ हैं, लेकिन न्यास, सहकारी कम्पनियाँ, सादुज्जन अथवा समामेलन वित्तीय पूंजीकरण संघ हैं, जिसका आधार है स्वामित्व। न्यासी (Trustees) करीब करीब अपने द्वारा धारण किये गये अंशों के स्वामी ही हैं और वे प्रतिनियोक्ता की हैसियत से कार्य करते हैं, अभिकर्ता या सेवक की हैसियत से नहीं।

इसके विपरीत, तीन कारणों से कार्टेल सपिंडन से अच्छा समझा जाता है। प्रथम कारण तो यह है कि कार्टेल अतिपूंजीकरण जोखिम से आक्रान्त नहीं हो सकता, लेकिन उस स्थिति में जब पूंजी तरलीकृत हो जाती है, सपिंडन का परिणाम अति-पूंजीकरण हो सकता है। दूसरा कारण यह है कि चूंकि कार्टेल के सदस्य फर्म अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखते हैं, अतः उनकी वित्तीय तथा प्रबन्धीय स्वतन्त्रता भी अक्षुण्ण रहती है। लेकिन इसके विपरीत, सपिंडन का नियन्त्रण प्रधान कार्यालय में होता है; फैक्टरियों के प्रबन्धकर्त्ता अधीनस्थ (Subordinate) होते हैं, जिनके लिये अपने स्वामियों का आज्ञापालन अनिवार्य है। तीसरा कारण यह है कि सपिंडन की तरह कार्टेल का मार्गसूत्र किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के हाथ में नहीं होता। ऐसा कहा जाता है कि सपिंडन की सबसे बड़ी दुर्बलता यही है। इस विषय में अन्धविश्वास

का प्रतिपादन करना गलत होगा, लेकिन यह कहा जा सकता है कि सम्पिडन का प्रवर्तन करना आसान है, पर इसके जीवन-क्रम पर नियत्रण रखना कठिन है। बडे-बडे व्यवसायी न्यास की स्थापना कर सकते हैं, तथा इनकी भलीभांति व्यवस्था कर सकते हैं, लेकिन ऐसा हो सकता है, और जैसा कि सामान्यतया होता भी है, कि उनके स्थान पर वैसे व्यक्ति आ जाय जिनकी दीक्षा जीवन के भिन्न क्षेत्रो मे हुई हो और सम्भवत उनमे उन प्रखर गुणो की कमी हो जिनके कारण वे अपने क्षेत्र म अद्वितीय प्रमाणित हुए हो। यह उक्ति सभी प्रकार के सपिण्डनो मे प्रयुक्त होती है। अधिकार के केन्द्रीकरण की माप जितनी ही अधिक होगी, गलतियो की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। न्यास म, या अन्य किसी केन्द्रीकृत सगठन मे, चोटी पर की गयी गलती समस्त सगठन म व्याप्त हो सकती है, भयकर भूल का परिणाम वर्णनातीत हानि व क्लेश हो सकता है।

भारतवर्ष में सयोजन—भारतवर्ष मे सयोजन आन्दोलन पश्चिमी देशो के मुकाबले म बहुत पिछडी अवस्था मे है। वास्तविकता तो यह है कि इस दिशा मे शायद ही कोई आन्दोलन हुआ हो, इसका कारण यह है कि हमारे देश में उद्योगीकृत देशो की भाति परिस्थितियो के अनुसार इक्के-दुक्के ममामेलन या सविलयन के अतिरिक्त कोई विकासीय उन्नयन (Evolutionary Development) हुआ ही नही। प्रथम विश्व युद्ध से पहले सयोजन आदोलन नही के बराबर था। यह अवस्था होने के ये कारण थ। ब्रिटिश शासको ने भारत मे ब्रिटिश हितो के लिए अनुकूल परिस्थि-तिया पैदा करके उन्हे वे सुविधाए प्राप्त करा दी थी जो सयोजन से हुआ करती है। इन विदेशी कम्पनियो को अपने-अपने व्यवसाय मे प्राय एकाधिकार प्राप्त था। कोई प्रतियोगिता नही थी और इसलिए सयोजन भी नही थे। पर प्रथम विश्वयुद्ध के बाद असहयोग आन्दोलन के परिणामस्वरूप भारतीय पूजी उद्योगो मे बडी मात्रा मे आने लगी, और प्रतियोगिता काफी तीव्र हो गयी। पर उसमे पश्चिमी ढग के सयोजन नही पैदा हुए, और सयोजन के विभिन्न रूपो में वित्तीय एकीकरण या ऐक्य करने वाले रूप सबसे अधिक उल्लेखनीय है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के सयोग का उद्देश्य रहा है आर्थिक इकाई के बजाय किसी ऐसी वित्तीय इकाई की स्थापना, जो समान वित्तीय नीति का अनुकरण करे, जिसका तात्पर्य है एक व्यवसाय। उन कम्पनियो मे, जो हित-समूह के रूप में समन्वित (Coordinated) हो गयी है, जैसे सर्वनिष्ठ (Common) प्रबन्ध-अभिकर्त्ता, अन्तर्बद्ध सचालकत्व (Interlocked Directorate) अथवा कम्पनियो का सचालन, ऊपर से ऐसा प्रतीत होता है कि फर्मो का अपना सचालक मडल होता है, जो प्राविधिक तथा अन्य विषयो के सम्बन्ध में नीति का निर्माण करता है, लेकिन व्यवहारत एकीकृत नियत्रण का सम्बन्ध वित्तीय प्रबन्ध से होता है। इस दृष्टि से, बिना किसी डर के यह कहा जा सकता है कि भारतीय उद्योग म एकीकरण का प्राथमिक उद्देश्य गलाकाट प्रतियोगिता को उन्मूलित करने के बजाय एकाधिकारिक नियन्त्रण (Monopolistic Control) की स्थापना रहा है; ऐसा होने का अतिरिक्त कारण है सरक्षणात्मक शुल्को (Protective Duties)

का अस्तित्व।

इस देश में संयोजन आन्दोलन की धीमी प्रगति तथा इसकी वर्तमान दिशा के कई कारण है। इसका मौलिक कारण है प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली का होना। जैसा कि अन्यत्र कहा भी जा चुका है, प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली का परिणाम हुआ है समान क्षेत्र (Same Line) में वित्तीय समेकन (Financial Integration), जैसा कि बम्बई तथा अहमदाबाद के सूती मिलो के क्षेत्र में है, और एक प्रबन्ध अभिकर्त्ता के अधीन विभिन्न क्षेत्रो मे, उदाहरण के लिये, ऐन्ड्रयू यूल एण्ड कॉ०, ११ पाट मिलो, १४ चाय बागो, १० कोयला कम्पनियो, २ चीनी मिल तथा ९ विविध कम्पनियो का प्रबन्ध करते है, ताता सन्स लिमिटेड, ४ सूती मिलो, १ लोहा व इस्पात फैक्टरी, १ इंजीनियरिंग रसायन तथा २ विविध कम्पनियो का प्रबन्ध करते हैं, इसी प्रकार अनेक उदाहरण है। प्रथम कोटि का समेकन कुछ हद तक क्षैतिज संयोग के समान है, तथा द्वितीय कोटि का समेकन समूह-हित की कोटि का है। चूंकि अधिकांश अवस्थाओ में संयोग की मितव्ययिताओं या आर्थिक लाभ प्रबन्ध अभिकरण प्रणाली के जरिये समूह व्यवस्था तथा वित्तीय समेकन के द्वारा प्राप्त हो गया है, अत, बाजाब्ता संयोजन की आवश्यकता का अनुभव ही नही हुआ है। संयोजन आन्दोलन की धीमी प्रगति का दूसरा कारण यह है कि भारतीय स्वभाव से ही व्यष्टिवादी होते हैं, और यही कारण है कि जहा केवल सहयोग बहुत अधिक सहायक प्रमाणित होता, वहा निहित स्वार्थवादियों ने बहुतेरे प्रस्तावित संयोजनो को निष्फल कर दिया है। तृतीय कारण यह है कि हम लोगों का औद्योगिक विकास अब भी सक्रमण की अवस्था में है, जिसका परिणाम यह है कि संयोजन आन्दोलन की ओर बढने के लिए शायद ही कोई प्रेरणा मिली हो। इसके अलावा, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सन् १९२१ ईस्वी के पूर्व तक उन्मुक्त विदेशी प्रतियोगिता ने इस आन्दोलन की प्रगति के पथ मे भारी रुकावट का कार्य किया है। अन्त मे, संयोजन आन्दोलन की सुविधादायक शक्तियो में एक हमारे देश मे उपलब्ध नही हो रही है, क्योंकि प्रतिद्वंद्वी मिलों तथा फैक्टरियों की संख्या इतनी अधिक रही है कि उनमे किसी भी प्रकार का संयोजन सम्भव हो ही नही सका है।

उपर्युक्त कारणों के बावजूद, जिन्होने भारतवर्ष मे किसी भी प्रकार के संयोजन आन्दोलन में बहुत बडी रोक का कार्य किया है, गत शताब्दी के आखिरी चरण में निरन्तर औद्योगिक कठिनाइयो ने हमारे देश के उद्योगपतियों को सहयोग की उपादेयता का सबक पढा दिया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि अनेक प्रकार के संयोजनो का उद्भव हुआ है। हमारे देश में सामान्य साहचर्यों या सघो के अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं। ये सब, जैसा कि हम पहले देख चुके है, इतने ढीले होते है कि अधिक उपयोगी नही हो सकते। हमारे देश में कार्टेलो के भी कुछ उदाहरण है, जैसे सूगर सिंडीकेट जो अब समाप्त हो गयी है, पर हितो के सस्वामित्व (Community of Interests सघारी कम्पनी तथा कुछ हद तक समामेलन तथा सविलयन के उदाहरण अधिक हैं। इनका सक्षिप्त वर्णन अप्रासगिक नहीं होगा।

विक्रय संघ या पूल तथा उत्पादक संघ या कार्टेल (Pools and Cartels)—वैसे विक्रय संघों तथा उत्पादक संघों के उदाहरण कम हैं, जो प्रभावोत्पादक प्रमाणित हुए हैं। इनमें से पहला इंडियन जूट मिल्स एसोसियेशन, जिसका निर्माणकाल सन् १८०६ ई० है, सामान्य संघ (Simple Association), उत्पादन पूल (Out-put Pool) तथा उत्पादक संघ (Cartel) की विचित्र मिलावट है। यह पाट मिल स्वामियों का एक संघ है जो ९५ प्रतिशत व्यापार का प्रतिनिधित्व करता है, तथा जो पाट मिलों की सम्पूर्ण संख्या के ८८ प्रतिशत को आवृत करता है। इसका पंजीयन ट्रेड यूनियन (या श्रमिक संघ) के रूप में हुआ था, यह काम के घण्टे सीमित करके तथा कतिपय प्रतिशत करघे बन्द करके उत्पादन संग्रह के रूप में कार्य करता है। कभी-कभी यह ७५ सदस्य मिलों के माल का केन्द्रीय रूप से वितरण करके कार्टेल या उत्पादक संघ का भी कार्य करता है। सीमेंट उद्योग में संयोजन-सम्बन्धी सर्वप्रथम प्रयास उन्नीसवीं सदी के दूसरी दशाब्द के प्रारम्भ में हुआ, जिसके फलस्वरूप इण्डियन सीमेंट मैन्युफैक्चर्स एसोसियेशन की स्थापना हुई। सन् १९३० में सीमेंट मार्केटिंग आफ इण्डिया का निर्माण हुआ, जिसका उद्देश्य था सभी कम्पनियों के माल के वितरण का नियन्त्रित करना। किन्तु यह कार्टेल अथवा अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल नहीं हुआ। और सन् १९३७ में एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनीज लिमिटेड के रूप में पूर्ण संविलन अथवा सायुज्यन की स्थापना हुई। ए सी सी में ११ सीमेंट कम्पनियाँ एक हो गयीं जिनके नाम ये हैं—इण्डियन, कटनी, बुंदी पोर्टलैण्ड, सी पी, आन्ध्रा, ग्वालियर, पंजाब पोर्टलैण्ड, यूनाइटेड, शाहाबाद, कोयम्बटूर तथा देवार खण्ड। सायुज्यन के थोड़े दिनों बाद डालमिया ने दृढ़ प्रतियोगिता के रूप में क्षेत्र में प्रवेश किया तथा इससे जिस गलाकाट प्रतियोगिता का श्रीगणेश हुआ, उसका अन्त करने के लिए एक समझौता किया गया, जिसके अनुसार ए सी सी तथा डालमिया के विक्रय क्षेत्रों का बटवारा कर दिया गया। युद्ध के कारण सीमेंट की बड़ी कमी हो गयी और उसके बाद देश का विभाजन हुआ जिसमें लाखों व्यक्ति विस्थापित हो गये। विस्थापित लोगों का पुनर्वास सीमेंट उपयोग की अतिशय उत्पादन-क्षमता (Excess Production Capacity) पर, जिसके सम्बन्ध में ए सी सी के अध्यक्ष द्वारा भय प्रदर्शित किया गया था, बहुत बड़ी रोक का काम कर रहा है।

भारतवर्ष के चीनी उद्योग में एक प्रकार के समेकन, विशेषकर शीर्ष समेकन की प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है। कुछ कम्पनियाँ, यथा रामपुर की बुलन्द तथा रजा चीनी की मिलें, चीनी निर्माण के अतिरिक्त ईख के फार्म तथा छोटे रेलवे का भी स्वामित्व करती हैं। कतिपय चीनी की मिलें भट्टीखाना तथा कनफेक्शनरिया—मिठाई निर्माणशाला—भी सचालित करती हैं। इस सम्बन्ध में कानपुर शुगर मिल्स लिमिटेड, डेक्कन एण्ड सूगर अबकारी कम्पनी लिमिटेड उल्लेखनीय उदाहरण हैं। यह उद्योग मुख्यतः उत्तरप्रदेश तथा बिहार में केन्द्रीभूत है, तथा सन् १९३१ ई० में सात वर्षों के लिए संरक्षण मिलने के बाद इन जगहों में चीनी मिलों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गयी।

चीनी मिलों की संख्या में आशातीत वृद्धि की झलक साफ-साफ मिल जाती है, यह संख्या १९२९-३० म ३० थी और बढ़कर सन् १९३४-३५ ई० में १३० हो गयी। मुख्यत अन्तरिक प्रतिस्पर्धा के कारण, लेकिन अशत जावा से प्रतिस्पर्धा के कारण सूगर मिल ओनर्स एसोसियेशन ने केन्द्रीकृत विक्रय की एक योजना बनायी, और सन् १९३७ ई० मे सूगर सिन्डीकेट का निर्माण हुआ जिसम ९२ चीनी की मिल सम्मिलित हुई। सिन्डीकेट ने लगभग एक वर्ष तक सतोषजनक रीति से कार्य किया और परिणामस्वरूप कीमतो में पर्याप्त वृद्धि हुई, लेकिन चकि सिन्डीकेट न चीनी की बुनियादी कीमत पर्याप्त ऊची सीमा पर रखी, अत चीनी का उत्पादन असाधारण रूप से अधिक हुआ। सिन्डीकेट सन् १९४० ई० म कीमत कम करने के लिए बाध्य हुआ। सन् १९४३ ई० म जब चीनी की कीमत पर नियत्रण जारी हुआ तब सिन्डीकेट का कार्य स्थगित हो गया लेकिन जब सन् १९४७ ई० के नवम्बर म चीनी की कीमत पर से नियत्रण हट गया, तब सिन्डीकेट न अपना कार्य पुन आरम्भ कर दिया। किन्तु सन् १९४९ ई० म चीनी के लिए भयकर हाय-तोबा मची और कुछ लोगो के मतानुसार तो वह एक चीनी काड था, जिसका परिणाम यह हुआ कि सिन्डीकेट तथा चीनी सम्बन्धी सरकारी नीति की बड़ी कटी भर्त्सना की गयी। इन घटनाओ का परिणाम यह हुआ कि सन् १९५० ई० में सिन्डीकेट को भग कर दिया गया और चीनी पर आशिक नियत्रण जारी हुआ। कागज मिल उद्योग में हम स्वच्छिक विक्रय समझौते का दूसरा उदाहरण मिलता है, जिसका उद्देश्य है कीमत निर्धारण तथा केन्द्रीय व राज्य सरकारो के साथ, जो सम्पूर्ण कागज उत्पादन का २५ प्रतिशत खरीद लेती है, आवटन सम्बन्धी अनुबन्ध करना। यद्यपि ये समझौते स्वच्छिक (Voluntary) है, फिर भी वे पर्याप्त सफल रहे हैं क्योकि कागज मिलो की संख्या बहुत ही कम है। सत्य तो यह है कि अभी हाल तक केवल तीन मिल—टीटागढ़ पेपर मिल्स कम्पनी लिमिटेड, इडियन पेपर मिल्स कम्पनी तथा बगाल पेपर मिल्स कम्पनी, ही मैदान म थी और लगभग एकाधिपत्य सा था। इन तीन मिलो ने मिलकर इडियन पेपर मेकर्स एसोसियेशन का निर्माण किया और एक दूसरे के साथ मिलकर काम करने लगीं। नयी मिलें, जो इधर हाल में बनी हैं, एसोसियेशन में सम्मिलित हो गयी है, अथवा इसके साथ मिलकर काम करती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कागज की कीमत का स्तर आयात किये गये कागज की कीमत से थोडा कम रहा है तथा कीमत निर्धारित स्तर से कम करने पर रोक लग गयी है।

किरासिन (Kerosene) विक्रय सघ, जिसका नियत्रण बर्मा आयल कम्पनी करती है, बर्मा आयल कम्पनी, रायल डच शेल ग्रूप, ब्रिटिश बर्मा पेट्रोलियम कम्पनी तथा आसाम आयल कम्पनी के द्वारा बनाया गया है। समझौते के अनुसार प्रत्येक सदस्य कम्पनी के उत्पादन का एक निश्चित अनुपात एक निर्धारित कीमत पर बेचेगा, और यह कीमत दूसरे की बिक्री पर निर्धारित की जायगी। इस कीमत का आधार अमेरिकी गल्फपोर्ट की F O B चालू कीमत है, जिसमें यातायात व्यय, आयात कर, १० प्रतिशत लाभ तथा भडार व्यय जोड दिये जाते है। यह सघ सम्पूर्ण तेल बाजार पर नियत्रण रखता है जिसका परिणाम यह है स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी

भी सघ की नीमन का अनुकरण करती है।

ब्रिटिश स्टीम नेविगेशन कम्पनी लिमिटेड तथा सिंधिया स्टीम नेविगेशन कम्पनी लिमिटेड के बीच जो समझौता हुआ है, वह नौवहन चक्र अथवा समामेलन का उदाहरण है।

सधारी कम्पनियां—जब तक हम असाधारण अथवा प्रबन्ध अभिकर्त्ता के जरिये समूह नियन्त्रण को इसी श्रेणी मे नहीं सम्मिलित कर लेते, तब तक सधारी कम्पनी सगठन भी हमारे देश में महत्वपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त करता। किन्तु सधारी कम्पनी सगठन के कतिपय उदाहरण मिलते हैं, जिनम कुछ नीचे उद्धृत किये जाते हैं। कोयला खदान कम्पनियो के बीच इधर हाल में असाधारण प्रबन्ध के कई उदाहरण मिलते हैं, जैसे, बैरकपुर कोल कम्पनी लिमिटेड, लोयाबाद कोक मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड के समस्त अशा का तथा मिनुआ—झरिया—इलेक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी लिमिटेड के अधिकाश अशा का स्वामित्व धारण करती है। इसी भांति, इक्विटेबल कोल कम्पनी लिमिटेड अलदीप कोल कम्पनी के बहुमख्यक अशा का स्वामित्व करती है। सीमेंट उद्योग को लिया जाय तो ए० सी० सी० पटियाला सीमेंट कम्पनी लिमिटेड के अधिकाश अशो तथा सीमेंट मारकेटिंग कम्पनी आफ इडिया लिमिटेड के समस्त अशा को धारण करती है। पैरी एण्ड कम्पनी मोफस्सिल वेअरहाउस एड ट्रेडिंग कम्पनी लि० मे सारी अशपूजी की स्वामी है। शॉ वालेस एण्ड कम्पनी लिमिटेड के कुछ चाय, सूती मिल, आटा मिल और कोयला खान कम्पनियो मे ९९ प्रतिशत स्वहित (intesest) है, और उसने एटलस फर्टिलाइजर्स लिमिटेड, इडो एग्रीकल्चर लिमिटेड और ब्रिटिश फर्टिलाइजर्स लिमिटेड मे प्राय सारी अशपूजी दी है। दी एस्टेट्स लिमिटेड ब्रुकबौंड इडिया लिमिटेड की उपसहायक है और यह ब्रुक बॉड एस्टेट्स इडिया लिमिटेड की प्रबन्ध-अभिकर्त्ता है। यद्यपि विनियोग प्रन्यास, आवश्यक रूप म सधारी कम्पनी नहीं होते क्योंकि वे इस उद्देश्य से निर्मित किये गये हैं कि वे अपने कोष विभिन्न कम्पनियो में विनियुक्त कर, लेकिन वे उन कम्पनियो पर नियन्त्रण रखने म सफल नहीं हो सके हैं, क्योंकि अधिकाश औद्योगिक कम्पनियो पर, और विशेषतया सूती, पाट तथा इजीनियरिंग उद्योगो पर प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का पूर्ण तथा वास्तविक नियन्त्रण होता है।

समामेलन तथा सविलयन—हमारे देश म पूर्ण सविलयन के बहुत से उदाहरण नहीं मिलते, और एकाध जो उल्लेखनीय है, उनकी उत्पत्ति प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के द्वारा, जो सम्मिलित कम्पनियों की व्यवस्था करते थे, लाये गये दबाव के द्वारा हुई है। उदाहरणत, सविलयन की उत्पत्ति क्षैतिज अथवा शीर्ष समेकन के द्वारा होती है, भारतवर्ष म कतिपय समामेलन पूर्णत विभिन्न व्यवसायों के बीच हुआ है, केवल प्रबन्ध अभिकर्त्ता ही उनको जोडने वाले थे। उदाहरण के लिये, ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन का निर्माण सन् १९२० ई० म हुआ जिसका उद्देश्य था ६ भिन्न-भिन्न कम्पनियो को, जो विभिन्न मालों का निर्माण करती थी, ग्रहण करना ये ६ कम्पनियां है कानपुर वुलन मिल्स लिमिटेड, कानपुर काटन मिल्स लिमिटेड, न्यू इगरटन वुलन मिल्स लिमिटेड,

नौर्थ वेस्ट टेनरी कम्पनी लिमिटेड, क्पर एलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, तथा इम्पायर इजीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड। कारपोरेशन ४ सहायक कम्पनियों को भी नियंत्रित करता था, चूंकि इसने बेग सदरलैण्ड कंपनी में भी नियन्त्रक हितों को खरीद लिया। सन् १९४६ ई० में दैल्वाकार ट्रस्ट ने दूसरे ट्रस्ट बेग सदरलैण्ड एण्ड कम्पनी लिमिटेड को अधीनस्थ कर लिया जो स्वय १० बडी-बडी कम्पनियों को नियंत्रित करती थी। एक बडे ट्रस्ट के द्वारा छोटे ट्रस्ट को सविलीन करने का दूसरा बडा उदाहरण है सन् १९४७ ई० में मैक्नमोड कम्पनी के द्वारा बेग डनलप एण्ड कम्पनी के विस्तृत हित का खरीद लिया जाना। दूसरी ओर शायद सबसे बडा उदाहरण जो हमारे देश में सपिंडन का मिलना है वह है एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनी, जो, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, ११ सीमेंट कम्पनियों के सविलयन के उपरान्त निर्मित हुई थी। सीमेंट एजेन्सीज लिमिटेड इसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता हैं। कोयला उद्योग की ओर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि इस क्षेत्र में सपिंडन का सर्वाधिक अवसर मिलता है क्योंकि उत्पादन पर स्वैच्छिक प्रतिबन्ध तथा सहमति की प्राप्ति न्यूनतम कीमत के लिए सफल प्रमाणित नही हो सकी है क्योंकि कोयले के व्यवसायी सुनिश्चित पारस्परिक लाभ के लिये भी सयुक्त नहीं हो सकते।[1] सन् १८२३ ई० में कोयला कम्पनियां बराकर कोल कम्पनी के साथ सम्मिश्रित हो गयी तथा १ इसके द्वारा खरीद ली गयी। न्यू बीरभूम कोल कम्पनी लिमिटेड ने सन् १९२० ई० में दामुदा कोल कम्पनी लिमिटेड को तथा सन् १९३२ ई० में न्यू कन्दा कोल कम्पनी लिमिटेड को खरीद लिया। सूती वस्त्र उद्योग में कोई उल्लेखनीय सयोग नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि मिलों की सख्या बहुत अधिक है—४०० से भी अधिक मिलें हैं। बंकिघम कर्नाटिक मिल तीन मिलों का समामेलन है। जब अहमदाबाद मैन्युफैक्चरिंग एण्ड कैलिको प्रिण्टिंग कम्पनी लिमिटेड ने अहमदाबाद जुबिली स्पिनिंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड को खरीद लिया, तब एक सायुज्यन (Fusion) की उत्पत्ति हुई। दूसरे सपिंडन की उत्पत्ति उस समय हुई, जब कोराल मिल्स, टिनावेली मिल्स तथा पाण्डियन मिल्स विभिन्न निधियों में मदुरा मिल्स कम्पनी लिमिटेड के साथ मिल गयीं। शीर्ष समेकन के अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जब उपर्युक्त अहमदाबाद मिलों की भांति कताई तथा बुनाई मिलों ने एक नियत्रण तथा स्वामित्व के अन्तर्गत अपने कार्यों को सयुक्त कर दिया है। इन कतिपय उदाहरणों के अतिरिक्त सूती मिल उद्योग ने सयोजन आन्दोलन की ओर कोई प्रवृत्ति नहीं दिखायी है। लकाशायर काटन कारपोरेशन की भांति सन् १९३० ई० में ३४ मिलों ने एक महत्त्वाकांक्षी योजना का निर्माण किया था लेकिन यह योजना विफल रही। दियासलाई उद्योग में वेस्टर्न इण्डियन मैच कम्पनी, जो विम्को के नाम से प्रख्यात है, एक शक्तिशाली सयोजन है, जो एक दर्जन फैक्टरियों का स्वामित्व करती है और साथ-साथ अनेक भारतीय फैक्टरियों पर प्रभावशाली नियत्रण रखती है। १९५२ में इडियन कोआपरेटिव नैविगेशन एण्ड ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड और रत्नागार स्टीम नैविगेशन कम्पनी लिमि-

1 Report of the Coal Enquiry Committee, 1937.

टेड वावे स्टीम नेविगेशन कम्पनी मे विलीन हो गयी। १९५३ में, इस्पात कम्पनियो का सुविदित सविलयन हुआ। जिन तथ्यो के परिणामस्वरूप यह सविलयन हुआ, वे ये हैं: इडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी १९१८ मे रजिस्टर हुई थी और १९३६ म इसने बगाल आयरन कम्पनी लिमिटेड को अपने म मिला लिया। १९३७ में इसने अपना लोहा स्टील कारपोरेशन आफ बगाल को बेचकर शीर्ष समेकन विधि का सहारा लिया। इसका मतलब यह हुआ कि स्टील कारपोरेशन इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी द्वारा दिये गये लोहे और गैस, पानी, भाप और बिजली आदि अन्य सेवाओं से इस्पात बनाए। इण्डियन आयरन ने स्टील कारपोरेशन के बहुत से साधारण अश भी ले लिये। १ जनवरी १९५३ से स्टील कारपोरेशन इडियन आयरन में सविलीन हो गया है।

अधिकोषण (Banking) तथा अभिगोपन (Insurance) कम्पनियां —

अधिकोषण तथा अभिगोपन के क्षेत्र म भी बहुत अधिक सायुज्यन या समामेलन नहीं हुए हैं। अधिकोषण मे इगलैण्ड की भांति यहा पाच बडे बैंक सेंट्रल बैंक आफ इडिया, दि बैंक आफ इडिया, पजाब नेशनल बैंक, इलाहाबाद बैंक तथा बैंक आफ बडौदा हैं, लेकिन इगलैंड के विपरीत, जहा सायुज्यनो के परिणामस्वरूप आकार-वृद्धि हुई है, भारतवर्ष में ये बैंक केवल इसलिए बडे हैं कि ससाधनो का केन्द्रीभवन इनके हाथो मे हुआ है। इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य बैंक हैं, जिनकी सख्या में १९३८–४५ के युद्ध में बहुत अधिक वृद्धि हुई। इगलैण्ड में तो सायुज्यन आदोलन ने अक्षम इकाइयों को बाहर फेंक दिया, लेकिन भारतवर्ष मे युद्धोत्तरकाल मे सवर्धन-क्रिया देश-विभाजन तक जारी रही। पर विभाजन ने वृद्धि पर रोक लगा दी। किन्तु फिर भी सायुज्यन के उदाहरण बिल्कुल मिले ही नही, ऐसी बात नही है। कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। सन् १९२३ ई० में सेन्ट्रल बैंक ने ताता इण्डस्ट्रियल बैंक को सविलीन कर लिया तथा लायड्स बैंक ने ईस्टर्न बिजनेस आफ काक्स एण्ड कम्पनी तथा हेरी एस किंग एण्ड कम्पनी को सविलीन कर लिया। पी० एण्ड ओ० बैंकिंग कारपोरेशन ने, जो चार्टर्ड बैंक आफ इडिया, आस्ट्रेलिया एण्ड चाइना द्वारा ली गई है, इलाहाबाद बैंक का खरीद लिया। सन् १९५१ ई० मे भारत बैंक पजाब नेशनल बैंक मे समामेलित हो गया।

अभिगोपन व्यवसाय में सपिडन की दृष्टि मे स्थिति अच्छा है। बहुत सी बीमा कम्पनिया मिलकर एक हो गयी हैं, ताकि उनकी स्थिति दृढ हो जाय। ऐसा होना अभिगोपन अधिनियम १९३८ के स्वीकृत हो जाने के बाद आवश्यक हो गया। अधिनियम की व्यवस्था के अनुसार, प्रत्येक बीमा कम्पनी के लिए रिजर्व बैंक के यहा पर्याप्त राशि जमा करना अनिवार्य हो गया है, उदाहरण के लिये, जो कम्पनी जीवन बीमा का व्यवसाय करती है, उसके लिये २,००,००० रुपये जमा रखना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त, उसके लिये कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करना भी अनिवार्य है। बहुत सी कम्पनियां, जो सन् १९३० के वर्षों में पजीयित हुई थी, इस स्थिति में नहीं थी कि अकेले उपर्युक्त राशि जमा कर सकें अत वे या तो अन्य कम्पनियो के साथ समामेलित अथवा सायुज्यित हो गयी। सायुज्यन के केवल थोडे से उदाहरण यहा दिये जाते हैं। जातीय इन्श्योरेन्स सोसाइटी लिमिटेड, कलकत्ता, ग्रेट ओरिएन्ट, लाहौर, प्राविडेन्शियल इन्श्योरेंस, अलीगढ,

प्रबन्ध अभिकर्ता या समूह का नाम	जूट	कोयला	चाय काफी रबड़	परिवहन	बिजली	लोहा इंजि० इस्पात	चीनी	रुई	प्रकीर्ण	कुल योग
एण्ड्रू यूल एण्ड को० लि०	१०	१०	१९	२	२	—	१	—	९	५३
बर्ड एण्ड कं० लि० और एफ० डब्लू० हिलगर्स एण्ड कं० लि०	९	१२	—	१	१	३	—	—	२०	४६
बेग डनलप एण्ड कं० लि० और मैक्लिमड एण्ड कं० लि०	१०	—	१७	६	—	१	—	—	२	३६
बेग सदरलैंड एण्ड कं० लि०	—	—	—	—	—	१	६	२	१	१०
ब्रकन ब्रदर्स एण्ड कं० लि०	१	—	२८	—	—	—	—	—	१	३०
गिलैंडर्स अर्बुथनाट एण्ड कं० लि०	२	१	७	५	—	—	—	—	४	१९
जार्डीन हैंडर्सन लि०	६	१	८	—	—	—	—	—	१	१६
मैक्नील एण्ड कं०	२	५	१०	—	—	१	—	—	३	२१
आक्टेवियस स्टील एण्ड कं० लि०	—	१	१६	—	१०	—	—	—	—	२७
मार्टिन बर्न लि०	—	—	—	८	९	५	—	—	४	२६
बिरला ब्रदर्स लि० और कासन एजेंट्स लि०	१	—	१	२	—	४	५	७	१५	३५
डालमिया जैन एण्ड कं० लि०	—	२	—	३	—	२	४	२	१८	३१
करमचन्द थापर एण्ड ब्रदर्स लि०	—	९	—	—	—	२	५	२	११	२८
जे० के० लि०	१	—	—	—	—	३	१	३	८	१६
नरोत्तम मोरारजी एण्ड कं० और वालचन्द एण्ड कं० लि०	—	—	—	१३	—	९	२	—	—	२४
टाटा सन्स लि०	—	—	—	३	४	५	—	६	१०	२६
टामस ए० बी० एण्ड कं० लि०	—	—	११	—	—	२	—	—	४	१७
योग	४२	४१	११७	४३	२६	३७	२४	२०	१११	४६१

यूनिटी इंश्योरेंस, लाहौर, ग्लोरी आफ इंडिया, लाहौर, ग्रेट इंडिया, कलकत्ता, हिन्दुस्तान बीमा, लाहौर, नागपुर इंश्योरेंस कम्पनी नागपुर, फारवर्ड इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड बम्बई, फेडरल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड, दिल्ली के साथ सायुज्यित हो गयी, तथा विक्ट्री इन्श्योरेंस लाहौर, फ्रंटियर इंश्योरेंस पेशावर, मीनाक्षी इंश्योरेंस, मद्रास, सनशाइन इन्श्योरेंस लाहौर के साथ सायुज्यित हो गयी।

हितो का सस्वामित्व (Community of Interest)—इस प्रकार का संयोजन हमारे देश में सबसे अधिक प्रचलित है जिसके मुख्य दो रूप हैं : (क) प्रबन्ध अभिकर्ताओं के जरिये हितों का अन्तर्बंधन (Interlocking) अथवा वित्तीय तथा प्रबन्धकीय समेकन (Financial and Managerial Integration) तथा (ख) सचालकों के जरिये अन्तर्बंधन। प्रथम कोटि के हितों के सस्वामित्व का विवेचन पीछे किया जा चुका है। लेकिन वित्तीय तथा प्रबन्धकीय समेकन के कतिपय सर्वाधिक उल्लेखनीय उदाहरणों का विवरण पिछले पृष्ठ पर दी गयी तालिका में दिया जाता है। इस तालिका का उद्देश्य इस कथन की पुष्टि करना है कि भारतवर्ष में प्रबन्ध अभिकर्त्ता के जरिये हितों का अन्तर्बन्धन संयोजन का सबसे अधिक प्रचलित रूप है।

तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि वित्तीय तथा प्रबन्धकीय समेकन उस स्थिति में हो सकता है, जब एक प्रबन्ध अभिकर्त्ता फर्म या तो एक ही प्रकार की व्यवसाय इकाइयों का प्रबन्ध तथा नियन्त्रण करती है, अथवा विभिन्न क्षेत्रीय व्यवसायों का। इस प्रकार की प्रणाली के गुण-दोषों पर हम पीछे उस समय विचार कर चुके हैं जब प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के प्रभाव पर विचार कर रहे थे। वित्तीय तथा प्रबन्धकीय समन्वय की प्रवृत्ति बढ़ती पर है, तथा प्रबन्ध अभिकर्त्ता सम्पूर्ण देश में फैले सभी प्रकार के उद्योगों में अपना जाल फैला रहे हैं। यूरोपीय प्रबन्ध अभिकर्त्ता फर्मों के अतिरिक्त भारतीय कोटि या भी जैसे ताता, बिरला, डालमिया, सिहानिया, थापरबन्धु, वालचन्द तथा अन्य, फैलकर देत्याकार रूप धारण करती जा रही है तथा राष्ट्र की उत्पादन क्षमता के वृहत् अंश को नियंत्रित तथा निर्देशित कर रही है।

व्यवसाय सगठन के विद्यार्थियों के लिए दूसरी दिलचस्प घटना इधर कुछेक वर्षों मे भारतीय उद्योगपतियों द्वारा विदेशी फर्मों तथा हितों का खरीद लिया जाना है। कुछ हालतों में तो ऐसा हुआ है कि विदेशी फर्म बिल्कुल खरीद लिये गये हैं, जैसे गोवन ब्रदर्स लिमिटेड का डालमिया जैन ऐण्ड कम्पनी लिमिटेड के द्वारा खरीद लिया जाना, और हर हालत में निदेशनालय (Directorate) ने विदेशी फर्मों के बहुत बड़े अंश को खरीद लिया है। उदाहरण के लिए, सन् १९३९ ई० में जहाँ १० कोयला, १३ पाट, ५ इंजीनियरिंग तथा १४ विविध कम्पनियों में क्रमशः ३६, ४९, ६ तथा ५३ यूरोपीय सचालक थे और भारतीय सचालक एक भी नहीं था, लेकिन सन् १९४९ ई० में इन कम्पनियों में भारतीय तथा यूरोपीय सचालकों का अनुपात क्रमशः इस प्रकार हो गया, १० तथा २८, १९ तथा ४४, ३ तथा ११ और ३० तथा ३७।

समक्रिया (Alliances)—एक और घटना जो इस प्रवृत्ति के

वस्तुतः प्रतिकूल पड़ती हैं, समंजो या कार्यशील साझेदारी (Working Partnership) का निर्माण है जो भारतीय तथा विदेशी उद्योगपतियों बीच हुआ है और जिसका रूप "इंडियन लिमिटेड" है। नफील्ड-बिरला मोटर डील जो एक वित्तीय सविलयन है, सन् १९४५ ई० में कार्यान्वित हुआ, जिसका उद्देश्य था भारत में मोटर गाड़ियों का निर्माण। इस डील का अनुसरण अनेक मोटर वालों ने किया है जैसे अशोक मोटर लिमिटेड का आस्टिन मोटर से सम्बन्ध हो जाना जिसका उद्देश्य है मोटर गाड़ियों तथा ट्रकों का निर्माण। सिरसिल्क (Sirsilk) लिमिटेड अग्रेजी फर्म टेनसिल्स में संयुक्त कर दी गयी है। सन् १९५१ ई० में हिन्दुस्तान मिलिंगटन ग्लास वर्क्स लिमिटेड के रूप में भारतीय तथा अंग्रेजी शीशा निर्माताओं के बीच एक पूर्ण ऐक्य स्थापित हो गया। भारतीय अमेरिकी सौदे (Deal) के कतिपय उदाहरण हैं। प्रीमियर आटोमोबाइल वर्क्स वालचन्द हीराचन्द तथा क्रिस्लर कारपोरेशन के बीच हुए समझौते का परिणाम है। नेशनल रेयन कारपोरेशन लिमिटेड का स्कनेंडा रेयन कारपोरेशन तथा लॉकवुड ग्रीन एण्ड कम्पनी से घनिष्ट सम्बन्ध है। स्टुडेबेकर-बिरला डील भारतीय-अमेरिकी सम्बन्ध का दूसरा उदाहरण है। १९५३ में इडा-जापानी वैकुअम बॉटल्स कम्पनी लिमिटेड, भारत में वैकुअम कुप्पिया (Vacuum flask) बनाने के लिए निर्मित हुई, जिसमें भारतीय साझी मेसर्स लक्ष्मीनारायण एण्ड कम्पनी,जौनपुर, थे। १९५४ में कुछ महत्त्वपूर्ण सम्मेत्रिया हुईं। वोल्टास लिमिटेड का निर्माण हुआ जिसमें ५५ प्रतिशत पूंजी टाटाओं ने और ४५ प्रतिशत पूंजी वोल्कार्ट ब्रदर्स ने लगाकर वोल्कार्ट ब्रदर्स के महत्त्वपूर्ण इंजीनियरिंग कार्यों को सभाल लिया, जर्मन कार-निर्माता मेसर्स डेंबर-बेन्ज ट्रक निर्माण के लिए टाटा लोकोमोटिव एंड इंजीनियरिंग कम्पनी में ८० लाख रुपये लगाने को तैयार हो गये। अतुल प्राडक्ट्स लिमिटेड और आई० सी० आई० लिमिटेड बराबर के साझी होकर डेट ग्रीन और इसके मध्यवर्ती पदार्थों के निर्माण के लिए एक कम्पनी बनाने पर सहामत हुए गये। हाल में ही, केन्द्रीय सरकार ने भारत में इस्पात के उत्पादन के लिए दो जर्मन फर्मों डेमाग और क्रप्स के संयोजन के साथ समझौता किया है।

अंतर्बद्ध निदेश (Interlocking directorate)— निदेशकों के जरिये अन्तर्बन्धन अन्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में अधिक प्रचलित है। अभी हाल में प्रो० सारजेन्ट फ्लोरेन्स ने अमेरिका में अनेकों कम्पनियों के २१५७ निदेशनाल्यों का एक सर्वे किया है। उन्हें पता चला है कि केवल १३८ निदेशकों के हाथ में (कुल का ६० प्रतिशत) १० से अधिक निदेशकत्व थे, २९८ निदेशको के हाथ में ६ से १० निदेशकत्व थे, ३०३ निदेशकों के हाथ में २ से ३ निदेशकत्व तथा ९१० निदेशकों के हाथ (कुल का ४२ प्रतिशत) एक निदेशकत्व था। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह पाया गया कि २०० बृहत्तम अवित्तीय तथा ५० वृहत्तम वित्तीय कारपोरेशनों में केवल १ निदेशक के हाथ में ९ निदेशकत्व थे, १९ के हाथ में ६ से ८ निदेशकत्व थे,

१९ के हाथ में ५ निर्देशकत्व थे, ४८ के हाथ में ४, १०२ के हाथ में ३ तथा ३०१ के हाथ मे २ निर्देशकत्व थे। भारत में १५ से २० निर्देशकत्व का होना सामान्य बात है और ३० या उससे अधिक, कतिपय हालतो में ५०, निर्देशकत्वो का होना भी असाधारण बात नही है।

इतनी अधिक कम्पनियो के लिए एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता होने के कारण नामांकित निर्देशक का होना प्राय सबसे अधिक प्रचलन में है। उस स्थिति में जब सबका एक प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही होता, या प्रबन्ध अभिकर्त्ता बिल्कुल नही होता तब निर्देशक प्राय सर्वनिष्ठ होते हैं, जैसा कि हम अधिकोपण तथा अभिगोपन कम्पनियों में पाते है। सन् १९५०-५१ से सम्बद्ध कतिपय आकडो से, बहुसख्यक (Multiple) तथा अन्तर्बद्ध निर्देशकत्व के जरिये विभिन्न कम्पनियो की अन्तर्बद्धता की प्रकृति तथा परिमाण के बारे में पता लग जायगा। नौ प्रमुख परिवारों के हाथो म भारतीय उद्योगो के ९०० निर्देशकत्व अथवा साझदारिया थी। सिहानिया ब्रदर्स के हाथा में १०७ निर्देशकत्व थे, डालमिया जैन के हाथा में १०५ रइया ब्रदर्स के हाथा म ८०, बिरला ब्रदर्स के हाथा में ६०७, गोइनका तथा पोद्दार ब्रदर्स में प्रत्येक के हाथा म ५५, तथा बागर, जातिया तथा थापर ब्रदर्स के हाथो में सब मिलाकर १४ निर्देशकत्व थे।

बहुसख्यक सचालकत्व (Multiple Dirctorship) भारतीय औद्योगिक प्रणाली की कई प्रमुख विशेषताओ में से एक है, यह बात निम्नलिखित आकडो के जरिये जो व्यक्तिगत उद्योगो के बारे में है, साफ प्रकट होती है। पाट मिल उद्योग में २२० व्यक्तिया के हाथा म १६४ निर्देशकत्व हैं। इनमें १० व्यक्तियो के पास १०९ निर्देशकत्व हैं और केवल एच० मी० बाटर्स महोदय के हाथ में २३ निर्देशकत्व हैं। सूती मिल उद्योग में १५० निर्देशकत्वो का वितरण इस प्रकार है, १ व्यक्ति ११ कम्पनियो का निर्देशक है २ म स प्रत्येक ९ कम्पनियो का, ३ में से प्रत्येक ७ कम्पनियो का, ३ में से प्रत्येक ६ का ६ म स प्रत्येक ५ का, ८ में से प्रत्येक ४ का। सर पुरुषोत्तम टाकुरदास इन निर्देशकों में म प्रथम हैं जिनके हाथ म १२ कम्पनियो का निर्देशन है। चीनी उद्योग में यह प्रवृत्ति उतनी प्रमुख नही है। एक व्यक्ति के हाथ म ६ निर्देशकत्व हैं, ५ में से प्रत्येक के हाथ म ४ तथा ७ में से प्रत्येक के हाथ में ३ निर्देशकत्व है। बहुसख्यक निर्देशकत्व कोयला उद्योग बिल्कुल सामान्य है। १९ व्यक्तियो के हाथ में २८० निर्देशकत्व हैं जिनम से ५० व्यक्तिया के अधीन ४० निर्देशकत्व हैं। विद्युत तथा इजीनियरिंग कम्पनिया में एक व्यक्ति के हाथ में निर्देशकत्व तथा ७ में से प्रत्येक के हाथ में ८, १३ में से प्रत्येक के हाथ में ३, ३५ में से प्रत्येक के हाथ में २ निर्देशकत्व थे। श्री अशोक मेहता के कथनानुसार, चाय उद्योग में ३ व्यक्तियो के हाथ में ७० निर्देशकत्व से इनको लेकर १२० व्यक्तियो के हाथ में १८४ निर्देशकत्व थे। यदि हम उपर्युक्त को जोड़ ले तो ६६ व्यक्तिया के हाथ म ३८९ निर्देशकत्व थे।

भारतीय उद्योग में इसी प्रकार का एक वृहत्तर विकास हुआ है। वह विकास

है अन्तर्बद्धना-प्रधान (Interlocking) निर्देशकत्व। इसके अतिरिक्त, बहुतेरे स्वतन्त्र प्रत्यक्ष नामधारी ट्रस्ट, सर्वनिष्ठ या सामान्य निर्देशकों के द्वारा एक दूसरे से आबद्ध कर दिये गये हैं। अन्तर्बद्धना प्रधान निर्देशकत्व से न केवल थोड़े से लोगों के हाथों में स्वामित्व तथा नियन्त्रण केन्द्रीभूत हो जाता है, बल्कि इससे समन्वित इकाइयों के बीच मेल तथा सहयोग की वृद्धि होती है। एक ही उदाहरण से यह बात साफ हो जायगी। श्री एच० सी० वाटर्स महोदय के जिम्मे प्रमुख अंग्रेजी प्रबन्ध अभिकर्त्ता फर्मों के द्वारा प्रवर्तित बहुतेरी कम्पनियों का निर्देशन है, जैसे एन्ड्रू यूल में १, मैकिम-थोडस में ९, मार्टिन्स में २, बर्ड में ११, गिलैन्डर्स में ३, हेल्जर्स में ३, जारडाइन हेन्डर्सन में ८, शावालिस में २, मैक्नील्स में ४ तथा अन्य में १३। शायद ही ऐसा कोई अंग्रेजी ट्रस्ट होगा जिसमें वाटर्स महोदय के रुपये नहीं लगे हों। थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में शक्ति का केन्द्रीभवन होना इस बात से भी प्रमाणित हो जाता है कि हमारे देश के ६९० महत्वपूर्ण औद्योगिक व्यवसायों का प्रबन्ध १३०० निर्देशकत्वों के द्वारा होता है। ये निर्देशकत्व १०५ व्यक्तियों के हाथों में हैं। लेकिन इन निर्देशकत्वों में ८६० केवल ३० व्यक्तियों के हाथों में हैं, तथा शेष ८४० बाकी ७५ निर्देशकों के बीच वितरित हैं। इस पिरामिड की चोटी पर १० व्यक्ति हैं, जिनके अधीन ४०० निर्देशकत्व हैं— ये हमारी औद्योगिक अर्थव्यवस्था के भाग्य-नियन्त्रक हैं। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास तथा एच० सी० वाटर्स दोनों पचास-पचास कम्पनियों के निर्देशक मंडल में हैं। फिर हम यह पाते हैं कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता के लगभग ४० फर्म २५० करोड़ की पूंजी तथा ४०० करोड़ रुपये की आस्तियों पर नियन्त्रण करते हैं। केवल टाटा ५७ करोड़ की पूंजी तथा ८० करोड़ रुपये की आस्ति पर नियन्त्रण करते हैं। इसी कारण इन औद्योगिक नेताओं से राज्य के प्रभावित होने का और फलतः राज्य के द्वारा प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध कदम उठाये जाने का खतरा है।

कम्पनी अधिनियम १९५६ ने प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा अन्तर्बद्ध निदेशनालयों और अन्तर्बद्ध स्वहितों की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोकने का यत्न किया है। भविष्य में व्यष्टि को ही सचालक बनने दिया जाएगा और उसे २० से अधिक लोक कम्पनियों का सचालक नहीं बनने दिया जाएगा। इसी प्रकार, कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता १० से अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध अभिकर्त्ता नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचालकों की कुल संख्या ५ से अनधिक होने पर एक, और अधिक होने पर दो, ही सचालक नियुक्त कर सकेगा।

संयोजन संगठन की मितव्ययिताएं (*Economies of Combination Organisations*)—संयोजन से जो मितव्ययिताएं उपलब्ध हैं, वे दो प्रकार की हैं, वे मितव्ययिताएं जो व्यवसाय के आकार के कारण प्राप्त होती हैं, तथा वे मितव्ययिताएं जो एकाधिकार के कारण प्राप्त होती हैं। पहली तो मुख्यतः आन्तरिक तथा बाह्य मितव्ययिताएं हैं, अथवा वृहत् माप संगठन से प्राप्त होने वाले विभिन्न लाभ हैं, जिन पर हमने अध्याय ३ में पूरे तौर से विचार किया

है। बाह्य बचत या आर्थिक लाभ तो उद्योग की सभी फर्मों को उपलब्ध है लेकिन आन्तरिक बचत बिलकुल वैयक्तिक प्रकृति की होती है। ये बचतें विशेषीकरण (Specialisation) तथा प्रमापीकरण से प्राप्त होती हैं; दोहरे भाडे के कारण बचत, प्रबन्ध लागत में कमी, अक्षम इकाइयों तथा अलाभकर विकास योजना को समाप्त कर देने, एकस्वों (Patents) तथा संगठन के गुप्त रहस्यों को संगृहीत करने तथा तुलनात्मक लेखांकन प्रणाली (Comparative Accounting System) को प्रारम्भ करने के कारण बचतें होती हैं। ये बचतें या मितव्ययिताएं व्यवसाय के आकार के कारण प्राप्त होती हैं, न कि एकाधिपत्य के कारण, और हो सकता है कि ये बचत एकाधिपत्य की अवस्था पहुंचने के पहले चरम बिन्दु पर पहुंच जाय। बाजारदारी (या मालविक्रय) के क्षेत्र में जो बचतें होती हैं, वे अंशतः व्यवसाय के आकार और अंशतः एकाधिपत्य के कारण होती हैं, एकाधिपत्य के कारण इसलिए होती हैं कि प्रतियोगितात्मक विज्ञापन का उन्मूलन हो जाता है। एक दूसरे प्रकार का आर्थिक लाभ और होता है। उसे न तो व्यावसायिक आकार के कारण हुआ कहा जा सकता और न एकाधिपत्य के कारण, लेकिन तब भी उसका सम्बन्ध एकाधिकारिक नियन्त्रण से है। एक एकाधिपति फर्म इस स्थिति में है कि वह प्रतिद्वन्द्वी फर्मों से अधिक सफलता से पूर्ति को माग से समायोजित कर सके। तेजी तथा ऊंची कीमतों के समय इस बात की सम्भावना रहती है कि प्रतिद्वन्द्वी फर्मों का कुल उत्पादन समाज की वास्तविक माग से अधिक हो जाय, जिसका परिणाम होगा सामयिक अत्युत्पादन, मूल्यों का निम्नस्तर तथा बेकारी। इस प्रकार उस उद्योग को, जिसका संगठन प्रतियोगिता मूलक रीति से हुआ है, स्थायी स्थापन व्यय का आवश्यकता से अधिक भारी बोझ वहन करना पडता है, और परिणामतः पूंजीगत व्यय का खासा हिस्सा बरबाद हो जाता है। एकाधिकारिक फर्म ट्रस्ट की समस्या इससे आसान है। उसे बाजार की सम्पूर्ण माग का केवल अनुमान लगाना पडता है और इस प्रकार प्रतियोगितात्मक उद्योग की पृथक्-पृथक् फर्मों की अपेक्षा, जिन्हें अपनी मागों का अन्दाज करना पडता है, उसके द्वारा गलती किये जाने की सम्भावना कम है। सम्पूर्ण प्रगति से सम्पूर्ण मांग को बारीक ढंग से समायोजित करना पर्याप्त महत्वपूर्ण आर्थिक कार्य है। लेकिन इन लाभों के अतिरिक्त जो समान आकार वाली सभी फर्मों को समान रीति से प्राप्य हैं, कुछ ऐसे आर्थिक लाभ हैं जो नितान्त रूप से केवल एकाधिकार को ही प्राप्त होते हैं।

जब कोई आदर्शाकार फर्म (optimum firm) सम्पूर्ण मांग से भी अधिक उत्पादन कर सकती है तब वह एकाधिकार उत्पादन का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है। यही कारण है कि सबसे अधिक लोकोपयोगी उपक्रम (*Public Utilities*) एकाधिकार की प्रवृत्ति रखता है। जो एकाधिकार अच्छी रीति से समन्वित है, वह अपने प्लांटों को अधिक क्षमता के साथ सचालित कर सकता है, तथा बढी हुई मांग की पूर्ति करने के लिये नयी मशीनों को अधिक तत्परता के साथ चालू कर सकता है। अपूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में प्लांटों का पूरी क्षमता के साथ सचा-

त्रेता है। वह अपनी मोल करने की शक्ति को बहुत बढ़ा सकता है। लेकिन एकाधिकारी को प्राप्त होने वाला यह लाभ न केवल उपभोक्ताओं के लिए, वल्कि प्राथमिक माल या सामग्री के उत्पादन-कर्त्ता के लिये भी हानिप्रद प्रमाणित हो सकता है। हमारे कृषक, जो साधारणतः लघुमात्रा में उत्पादन करते हैं, अपने अज्ञान तथा मोल भाव सम्बन्धी निम्न शक्ति के कारण बहुत हानि उठाते हैं। जहां तक बाजार सम्बन्धी आर्थिक लाभ का प्रश्न है, इस कथन की पुनरावृत्ति की जा सकती है कि फर्मों के समूह को यह सर्वदा प्राप्त होगा। एकाधिकार के लिए, बाजार में माल को प्रत्यक्ष बेचना तथा मध्यस्थ व्यापारियों को उन्मूलित करना सम्भव है। इस प्रकार की बिक्री का परिणाम न केवल सस्ती बिक्री होता है, वरन अधिक कुशल बिक्री भी होता है। इसका कारण यह है कि माल ऐसे विक्रेताओं द्वारा खुदरा व्यापारियों के हाथ बेचा जाता है, जिनके पास बिक्री के लिये अन्य कोटि का माल नहीं है। अतः उन्हें जो भी लाभ अर्जित करना है, वह एक ही प्रकार के माल की बिक्री से सम्भव है। माल-निर्माताओं तथा खुदरा विक्रेताओं के बीच जो घना सम्पर्क होता है, उससे एक समन्वित विक्रयनीति का विकास होता है जिसके अनुसार खुदरिया प्रदर्शन पेटिका के द्वारा निर्माता की सहायता करता है और निर्माता विशिष्ट तथा स्थानीय विज्ञापन के जरिये खुदरिये की सहायता करता है। लेकिन, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, एकाधिकार का लाभ बाजार व्यय को कम करने में है, क्योंकि इससे उसी प्रकार के बहुत से मालों की प्रतियोगिता में एक अमुक प्रकार के माल की बिक्री सम्बन्धी कठिनाई दूर हो जाती है।

इन आर्थिक लाभों के विपरीत वे हानियां हैं जो उस समय उत्पन्न होती हैं जब व्यवसाय का आकार प्रबन्धाधिकारियों के कुशल प्रबन्ध सामर्थ्य की सीमा को पार कर जाता है अथवा जब वृहदाकार संगठन में कठोरता तथा लोचहीनता प्रविष्ट कर जाती हैं जिस के कारण बदलती परिस्थिति के अनुसार निरन्तर तथा सफल अनुकूलन (Adaptation) पर रोक लग जाती है, नौकरशाही प्रशासन की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। दुर्बल उत्पादकों के उन्मूलन का परिणाम सम्भवतः निरंकुश शोषण होगा, जो उपभोक्ताओं तथा श्रमिकों की कठिनाइयों का कारण होगा। विस्तार की भूख से "संचय की प्रवृत्ति", (Tendency to accumulate) अधिकार की कामना तथा अवैयक्तिक पूंजीवाद (Impersonal Capitlism) की उत्पत्ति होती है। संयोजन का प्रभाव उपभोक्ताओं पर बुरा होगा या भला, यह संयोजन के उद्देश्य पर निर्भर करता है।

संयोजन का उद्देश्य लाभ में वृद्धि हो सकता है जो प्रत्यक्षतः उपभोक्ताओं के हितों के विपरीत होगा, अथवा इसका उद्देश्य पूंजी सम्बन्धी जोखिम को कम करना हो सकता है, जो उत्पादकों को इस बात के लिए प्रेरित करेगा कि वे उत्पादक तथा बाजार-दारी के स्रोतों को एक सा बनाये रखें, और इस प्रकार उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों के लिए लाभप्रद होगा। लेकिन उत्पादकों का एकाधिकार संगठन सब मिलाकर उत्पादकों के लिए हानिप्रद ही है। स्वार्थी व्यक्ति, जिन्हें एकाधिकार प्राप्त होता है, समाज

नियुक्ति की है। कर वसूली तथा राज्य व्यय की प्रणाली भी देशवासियों पर आर्थिक प्रभाव डालती है। सरकारी भण्डार की खरीद सरकार के हाथ में एक महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा राष्ट्रीय उद्योग को विकसित किया जा सकता है। राज्यवाद की स्पष्ट घोषणा के बिना ही कतिपय देशों में राज्य के हस्तक्षेप का विचार वहां की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक संस्थाओं में शनैः-शनैः परिव्याप्त हो गया है, और इसके विपरीत कुछ देश ऐसे हैं जिनमें प्रत्यक्ष राज्य-स्वामित्व तथा नियन्त्रण है। आदर्श चाहे जो हो, पर इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि राज्य का हस्तक्षेप एक वास्तविकता हो गया है। कुछ ऐसे उद्योग हैं जो एकाधिकार में परिणत हो जाने की प्रवृत्ति रखते हैं तथा सर्वाधिक समान (Homogeneous) अथवा प्रमापित (Standardised) वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। ऐसे उद्योगों का सर्वोत्कृष्ट सचालन लोक प्राधिकरण (Public Authorities) कर सकते हैं, या कम से कम उनका सचालन राज्य नियन्त्रण के अन्तर्गत हो सकता है। वस्तुत: इन दिनों ऐसे उद्योगों पर नगरपालिका स्वामित्व या राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति जोरों पर है। सन् १९३४ ई० में स्थापित लन्दन ट्रान्सपोर्ट बोर्ड, सन् १९४८ ई० में स्थापित देहली ट्रान्सपोर्ट अथारिटी, देहली वाटर एण्ड सीवेज बोर्ड तथा देहली एलेक्ट्रिक पावर बोर्ड इसके उदाहरण हैं।

कल्याण पर बल (Stress on Welfare)—१९१७ की राज्य क्रान्ति ने रूस में निजी उद्योग का अन्त कर दिया। लेकिन अन्य देशों में भी धन के अधिक न्यायोचित वितरण पर विचार किया जाने लगा। अधिकांश पश्चिमी देशों में आयकर, विलास सामग्रियों पर कर तथा मृत्यु कर लगाये गये। फलत: अमीर व्यक्तियों की आय राज्य द्वारा ली जाने लगी तथा राज्य द्वारा वह प्राप्त धन सामान्य लोगों के कल्याण पर खर्च किया जाने लगा। लार्ड कीन्स ने इस बात पर जोर दिया कि पूर्ण रोजगार (Full Employment) बनाये रखने के लिए धन का साम्यपूर्ण (Equitable) वितरण आवश्यक है, क्योंकि तभी उपभोग की समर्थता (Propensity to consume) इतनी पर्याप्त होगी कि विनियोग की आवश्यकता होगी। इसके उपरान्त आर्थिक मामले में सरकारी हस्तक्षेप अधिक प्रमुख हो गया और आज जो देश लोगों के लाभ की ओर अपनी आर्थिक प्रणाली को मोड़ने का प्रयत्न करते हैं, वे कल्याणकारी राज्य (Welfare State) कहलाते हैं। कल्याणकारी राज्य का सबसे प्रमुख उदाहरण ग्रेट ब्रिटेन है, और विशेषतया सन् १९४५ ई० के बाद से, जबकि मजदूर सरकार ने सम्पूर्ण यातायात प्रणाली, चिकित्सा-सेवाओं (Medical Services) तथा कोयला, लोहा व इस्पात उद्योग को भी राष्ट्रीयकृत कर लिया। इसके अतिरिक्त, सर्वांगीण सामाजिक कल्याण की योजना शुरू की गई, जिसका आशय यह था कि प्रत्येक इंग्लैण्ड-निवासी को सर्वकाल के लिये उचित चिकित्सा, बेकारी भत्ता, वृद्धावस्था पेंशन (Old Age Pension) आदि के सम्बन्ध में आश्वस्त कर दिया जाये। समस्त आर्थिक कार्य पर नियंत्रण तथा

निरीक्षण रखा जाता है ताकि सामान्य कल्याण का अभिवर्द्धन हो। अनुदार दल (Conservative Party) के सत्तारूढ़ होने के उपरान्त भी नियमित योजना-निष्ठ अर्थप्रणाली देश की प्रमुखता है। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका खानगी उद्योग का गढ़ बना हुआ है, हालांकि वहां भी अब यह सोचा जाने लगा है कि खानगी उद्योग (Private Enterprise) आखिरी मंजिल नहीं है, बल्कि वह सामाजिक कल्याण का एक साधन है। चक्का पूरा घूम चुका है। आर्थिक उदारतावाद मर चुका है। राज्य पुनः आर्थिक कार्यों का निर्देशक तथा नियमक है।

राज्य तथा व्यापार

बहुत अर्से से सरकार ने व्यापार-अभिवर्द्धन की दिशा में क्रियात्मक रुचि दिखाई है। किन्तु प्रारम्भ में व्यापार तथा उद्योग के सम्बन्ध में सरकार की नीति अ-हस्तक्षेप की नीति थी। मोटे तौर पर उद्योग और व्यापार दोनों की ओर सरकार का दृष्टिकोण लगभग समान रहा है, और अब भी हाल में इन दिशाओं में नियमन की मात्रा में वृद्धि हुई है। व्यापार-वर्द्धन के प्रारम्भिक रूप में हम यह पाते हैं कि विशेष कारपोरेशनों, तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की गयी जिसका उद्देश्य था विदेशों से व्यापार करना। सभी देशों की सरकार ने व्यापार के द्रुत विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों की सृष्टि का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से स्थायी मुद्रा प्रणाली का महत्व बहुत अधिक है। स्वर्णमान (Gold Standard) के विफल हो जाने के उपरान्त "प्रबन्धित चलार्थ प्रणाली" (Managed Currency System) प्रयुक्त होने लगा। मुद्रा अधिकारियों ने सबक सीख लिया है और अब इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि मुद्रा की आन्तरिक क्रय शक्ति तथा इसका बाह्य-मूल्य दोनों कायम रहे। परक्राम्य सलेख (Negotiable Instruments), साझेदारी, संयुक्त स्कन्ध कम्पनी सम्बन्धी विधियां (Laws) को अधिनियमित करना, इसका एक और उपाय रहा है। व्यापार सम्बन्धी अधिकारों का वैधानिक संरक्षण व्यापार वर्द्धन की दिशा में दूसरा महत्वपूर्ण कदम है। कुछ देशों ने निर्मिति-विधियों को संरक्षण प्रदान किया है और कुछ देशों ने निर्मित माल को ही सुरक्षित कर दिया है। एकस्वों (Patents) के संरक्षण ने, विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में, व्यापार तथा उद्योग के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। निर्मिति-कर्त्ताओं की सफलताओं के अनुचित शोषण को रोकने, प्राविधिक पूर्णता का अभिवर्द्धन करने, रुचि की उन्नति करने, तथा व्यापार-चिह्नों के अनुकरण द्वारा प्रतिद्वन्द्वियों की ख्याति का अनुचित लाभ उठाने को रोकने के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष कर्तव्य के अतिरिक्त यह आधुनिक खानगी व्यापार-वर्द्धन के लिए सबल सहायक भी है।[1]

सरकार की यातायात नीति को भी व्यापार-वर्द्धन के कार्यों के लिए प्रयुक्त किया गया है। दक्खिन अफ्रीका की रेलें द्वितीय विश्व युद्ध के पहले कोयले के निर्यात पर विशेष प्रकार की छूट दिया करती थीं। सन् १९१४ ई० के पहले भारतीय

1 Von Becherath.

रेले बन्दरगाहो पर पहुँचने और उनसे चलने वाले माल तथा अन्य स्थानो पर पहुँचने या उनसे चलने वाले मालो के बीच अन्तर मानती थी, जिसका उद्देश्य था कच्चे मालो के निर्यात तथा अग्रेजी निर्मित वस्तुओ के आयात को प्रोत्साहन प्रदान करना। सचार के साधनो में विकास का तथा व्यापारिक सूचनाओ के सग्रह का उसके वितरण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा है। बहुतेरे देशो मे स्टाक एक्सचेजो, जिन्स विनिमयो (Produce Exchanges), विनिमय विपत्रो व मुद्रा बाजार के विकास के सम्बन्ध में सरकारी प्रोत्साहन भी व्यापार-वर्द्धन के लिए महत्त्वपूर्ण कारक रहा है। सरकार ने निर्मित मालो एव उपज का प्रमापीकरण तथा वर्गीकरण करने के लिए कदम उठाया है। विभिन्न देशो में व्यापार दूतो (Trade Consuls) तथा व्यापार आयुक्तो (Trade Commissoners) की नियुक्ति विदेशी व्यापारो की अभिवृद्धि की दिशा में दूसरा कदम है। बहुतेरी अवस्था मे सरकार ने मालो के प्रकार तथा वितरण नार-मियो में विद्यमान अनुपयुक्तताओ को दूर करने के लिए वैज्ञानिकीकरण आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया है। युद्ध-जनित परिस्थितियो के दबाव में, जिनके परिणामस्वरूप बहुत-सी आवश्यक वस्तुओ का अभाव हो गया, सरकार उनके वितरण को नियत्रित तथा निर्देशित करने को बाध्य हो गई थी। व्यापार के कार्यकलाप पर यह भयकर आघात था। खान-पान तथा वस्त्र की तरह न केवल मालो का परिमाणिक वितरण नियन्त्रित था, बल्कि उनकी कीमत, परिमाण तथा प्रकार, सब नियत्रित थे। इस दिशा में प्राथ-मिकता (Priorities) तथा राशन की प्रणाली अपनाई गई है।

कल्याणकारी राज्य को यह देखना पडता है कि लोगो को माल तथा सेवाएं कम तथा उचित मूल्य पर प्राप्त हो जायें, तथा दुर्लभ वस्तुएँ समाज के सभी वर्ग के लोगो के बीच न्यायोचित रीति से वितरित हो। अब निरकुश "कीमत अर्थ-नीति," नही चलने दी जा सकती और आवश्यक वस्तुएँ नियत्रित हो जाती है। उद्योग के राष्ट्रीयकरण की तरह अधिक माग वाली व तुओ के राजकीय व्यापार का समर्थन किया गया है। व्यावहारिक कठिनाइयो के कारण भारत मे राजकीय व्यापार का विचार इस दिशा में स्वीकृत नही किया जा सकता। यद्यपि युद्ध के दिनो में और उनके बाद सरकार ने अनाज और अन्य आवश्यक वस्तुएँ खरीदी, और राशनिंग दूकानो द्वारा जनता को बाटी।

भारतवर्ष में तत्सम्बन्धी स्थिति

प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व मुक्त व्यापार (Free Trade) तथा तटस्थता की नीति के दर्शन का आश्रय लेते हुए भारत सरकार ने मुख्यत इस उद्देश्य से हस्तक्षेप किया कि कि देश ग्रेट ब्रिटेन के लिए कच्चे मालो का पूर्ति-कर्ता तथा सस्ते मशीन-निर्मित मालो के लिए उपभोग बाजार हो जाए। किन्तु ऐसी नीति के बावजूद भारत में मुख्यत अग्रेजी व्यापारी कोठियो, तथा तदुपरान्त बम्बई के पारसियो तथा भाटियो के प्रयत्नो के फलस्वरूप, औद्योगिक हलचल की जड जमने लगी। लेकिन

प्राविधिक शिक्षा के लिए मुश्किल से ही कोई सुविधा उपलब्ध थी। अत इस देश के बाहर से आयात किये गये प्राविधिक विशेषज्ञो पर निर्भर रहना पडता था और कालान्तर में इन विशेषज्ञो का स्थान भारतीय विशेषज्ञ नही ले पाते। सच्ची बात तो यह है कि भारत के औद्योगिक विकास के सम्बन्ध मे राज्य की कोई निश्चित नीति नही थी। सन् १९०५ ई० में उद्योगो को सगठित करने और सहायता प्रदान करने के लिए जिस इम्पीरियल डिपार्टमेण्ट आफ इण्डस्ट्रीज एण्ड कामर्स की स्थापना की गयी थी, वह सन् १९१० ई० में लार्ड मार्ले द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस दिशा में राज्य का कार्य ठप्प पड गया। भारतवर्ष में प्रथम फैक्ट्री कानून मुख्यत लकाशायर तथा डडी के दबाव के कारण स्वीकृत हुआ।

युद्धों के बीच का काल—भारत मे विचारशील लोगो ने औद्योगिक विकास के प्रति सरकारी उदासीनता के सिद्धान्त को कभी भी नही माना और विशेषकर उस स्थिति मे जबकि उन्होने देखा कि जर्मनी, जापान तथा अमेरिका की सरकारे वे सारे कार्य कर रही हैं जो इस सम्बन्ध मे करणीय हैं। औद्योगिक आयोग ने सन् १९१८ ई० के अपने प्रतिवेदन मे सरकार से यह आग्रह किया कि प्राविधिक शिक्षा, खोज आदि की व्यवस्था द्वारा सरकार को भारतवर्ष में उद्योगो के विकास के लिए कदम उठाना चाहिए।

भारतवर्ष को राजकोषीय स्वायत्तता का दिया जाना एक आगे का कदम था, तथा राजकोष आयोग ने, जिसकी नियुक्ति सन् १९२१ में हुई, औद्योगिक विकास की अपर्याप्तता को दृष्टिगत किया तथा एक नीति की सिफारिश की, जिसे विभेदक सरक्षण (Discriminating Protection) कहते हैं। कई उद्योगो को सरक्षित किया गया। सूती, लोहा व इस्पात, कागज, दियासलाई, तथा चीनी उद्योग इसके उदाहरण हैं। सन् १९४९ ई० के राजकोष आयोग का मत था कि सरक्षण से मुख्य लाभ ये हुए —(१) सन् १९३० ई० की मन्दी मे सरक्षित उद्योग अपेक्षत अप्रभावित रहे, (२) उत्पादन मे स्थायित्व तथा वैविध्यकरण (Diversification), (३) कुल औद्योगिक जनसख्या मे पर्याप्त वृद्धि।

सरक्षित उद्योग काफी सफल रहे तथा देशी बाजार के अधिकाश पर कब्जा कर सके तथा द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त उन्हे और सरक्षण की आवश्यकता नही हुई। कतिपय लाभप्रद प्रभावो को छोडकर, अब भी हम लोगो के औद्योगिक विकास में बहुत बडी कमी है, जिसका अधिकाश दोष सरकार को ही देना चाहिए, क्योकि सरकार ने इस समय मे रुकावट प्रधान तथा दुर्बल नीति का अनुसरण किया है।" हम लोगो के विचार में यदि विश्व घटक और अधिक अनुकूल होते तथा सरक्षण की नीति अधिक व्यापक आधार पर होती और यदि यह राष्ट्रीय भावनाओ के अनुकूल सावैधानिक वातावरण मे अधिक उदारता के साथ कार्यान्वित की जाती तो हम लोगो के औद्योगिक विकास में जो खाइया रह गई हैं, उनकी सख्या और थोडी होती"[1]

1. Fiscal Commission (1949) Report, page 86

भण्डार क्रय आयोग कमेटी (Stores Purchase Committee) की सिफारिशों पर भारतीय भण्डार विभाग (Indian Stores Department) की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य था सरकारी विभाग तथा रेलों के द्वारा भण्डार की खरीद को नियन्त्रित करना। सन् १९२७ ई० में सरकार ने घोषणा की : "भारतीय सरकार की नीति है लोक सेवाओं के लिए भण्डार का क्रय इस प्रकार करना कि मितव्ययिता तथा दक्षता के अधीन रहते हुए यह देश के उद्योग को प्रोत्साहन दे सके"। औद्योगिक भण्डार विभाग मानदण्ड (Standard) को लागू करने तथा उसे बनाये रखने में भी समर्थ हो सका। पर अन्य विषयों में भण्डार क्रय नीति उद्देश्य की प्राप्ति में बहुत अधिक सफल न हो सकी। अच्छा तो यह होता कि इसका उपयोग प्रत्याभूत प्रणाली के अन्तर्गत नये उद्योग प्रारम्भ करने में किया जाता।

औद्योगिक वित्त के क्षेत्र में सन् १९३३ ई० में चलार्थ तथा उधार को नियमित करने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को स्थापित करने के अलावा सरकार मुश्किल से ही कुछ और कर सकी। हमारे उद्योग को दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन वित्त के अभाव में बहुत क्षति उठानी पड़ी है। सेंट्रल बैंकिंग इन्क्वारी कमेटी के प्रतिवेदन पर सरकार ने जो कार्य किया, वह प्रभावहीन रहा। यदि प्रबन्ध अभिकर्ता न होते तो हमारे उद्योग विलीन हो जाते। अन्तर्युद्ध काल में मालिकों तथा मजदूरों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की दिशा में भी सरकार के कार्य प्रशंसनीय नहीं रहे। संक्षेप में, इस क्षेत्र में भारत की सरकार अन्य सरकारों से बहुत पीछे रही। किन्तु एक दृष्टि से भारत की सरकार इंग्लैण्ड की सरकार से आगे बढ़ गई। बहुत ही प्रारम्भ में रेलों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। आल-इण्डिया रेडियो शुरू से ही एक राष्ट्रीय उद्योग रहा है। डाक, तार तथा टेलीफोन को सरकार ने सचालित किया है। बन्दरगाहों का प्रशासन बन्दरगाह न्यास (Port Trust) के द्वारा होता है। विद्युत उत्पादन तथा वितरण मुख्यतः निजी उद्योगियों के हाथ में छोड़ दिया गया जिस पर सर्वदा की भांति सरकारी नियन्त्रण रहता है। जल का नगरपालिकाकरण कर दिया गया है। वस्तुतः लोक उपयोगिता उद्योग (Public utilities) के क्षेत्र में भारतीय सरकार अन्य देशों की सरकारों से पीछे नहीं रही है।

द्वितीय युद्ध तथा उत्तरकाल—द्वितीय युद्ध में प्रथम युद्ध की अपेक्षा औद्योगिक मालों की माग बहुत हुई। जैसे ही यह प्रतीत हुआ कि युद्ध अर्से तक होगा, सरकार भारतीय अर्थ-व्यवस्था को नियन्त्रित करने लगी। आवश्यक कच्चे माल तथा निर्मित मालों की कीमतें तथा उनका वितरण नियन्त्रित किया गया। सरकार ने मालों की खरीद के सम्बन्ध में जो अनुबन्ध किया, उसके फलस्वरूप बहुत से छोटे-छोटे कारखानों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला। सरकार ने उनको वित्तीय सहायता दी तथा उन्हें बाहर से मशीन निर्यात करने में सहायता दी। फिर भी दी जाने वाली सहायता सगठित रूप में न थी, क्योंकि हिन्दुस्तान को उसमें स्थायी लाभ नहीं प्राप्त हुए हैं, और युद्ध की समाप्ति पर उन उद्योगों को बरबाद होने के लिए छोड़ दिया गया। पूंजी निर्गमन नियन्त्रण का प्रभाव हानिकारक हुआ क्योंकि इसने शान्तिकालीन उद्योगों

में पूजी के प्रवाह को रोका है। जब यह स्मरण किया जाता है कि लैंड-लीज या 'उधार-पट्टा' प्रोग्राम का इंजिन निर्माण, बुनियादी रसायन उद्योग की नई फैक्टरियों के निर्माण या पोत निर्माण क्षेत्र के सृजन के लिए उपयोग नहीं किया गया तब यह नतीजा निकालने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि सरकार ने भारत के उद्योग को विकसित करने का इरादा कभी किया ही नहीं। यह याद करना उचित होगा कि जब भारत सरकार ने सन् १९२४ ई० में भारतीय रेलों का राष्ट्रीयकरण करने का निश्चय किया, तब इसने अजमेर तथा जमालपुर में दो रेल इंजन फैक्टरियों को बन्द कर दिया, जिसका साफ उद्देश्य था भारतीय रेलों को पूर्णतया ब्रिटेन की पूर्ति पर निर्भर बनाना। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि युद्ध काल में कार्याधिक्य से दबी रेलें युद्धोत्तर काल में कनाडा, इंग्लैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से इंजन आयात द्वारा ही पूर्ण विनाश से बचाई जा सकी। सन्तोष का विषय है कि राष्ट्रीय सरकार ने अब एक लोकोमोटिव फैक्टरी की स्थापना की है जो इंजन बना रही है और यह आशा की जाती है कि एक या दो वर्षों में यह १५० या २०० इंजिनों का निर्माण करेगी। ३०० इंजिनों का लक्ष्य रखा गया है।

युद्ध में संरक्षण की नीति जारी रखी गयी, और उन उद्योगों को भी संरक्षण मिलता रहा, जिनको इसकी आवश्यकता नहीं थी, तथा नये उद्योग को इस शर्त पर, कि यदि वे दृढ़ता के साथ संगठित किये गये तो संरक्षण दिया जाएगा, संरक्षण का वचन दिया गया। सन् १९४५ ई० में सरकार ने दीर्घकालीन नीति के निर्मित होने तक एक आन्तरित टैरिफ बोर्ड की नियुक्ति की घोषणा की जिसका उद्देश्य था संरक्षण अथवा सरकारी सहायता चाहने वाले विभिन्न उद्योगों के अधिकारों की छानबीन करना। संरक्षण की शर्तें पहले की अपेक्षा अधिक औदार्यपूर्ण तथा युक्तिसंगत थी और पांच वर्षों में ९० जांच (Enquiry) की गईं, जबकि पूर्ववर्ती बोर्ड द्वारा सन् १९२३ तथा १९३९ के बीच ५० जांच की गई थी। युद्धोत्तर काल में योजनाकरण तथा विकास विभाग (Department of Planning & Development) की स्थापना हुई, जो विभिन्न पहलुओं के विषय में सूचनाएं संगृहीत करने तथा समिति प्रतिवेदन (Panel Report) निर्मित करने के बाद समाप्त हो गया।

स्वतन्त्र भारत की नीति—"एक दशाब्दी से अधिक समय से भारतीय अर्थव्यवस्था पर अभूतपूर्व तनाव पड़ता रहा। युद्ध के कारण जनता से प्राप्य धन बहुत खींचा गया और उसके स्फीतिकारक परिणामों को कंट्रोल या नियन्त्रणों द्वारा कुछ ही दूर तक कम किया जा सकता था। युद्ध की समाप्ति और स्वाधीनता की प्राप्ति के बीच के दो वर्षों में जो असामान्य राजनीतिक अवस्थाएँ रहीं, और विभाजन के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में जो विशृंखलता पैदा हुई, उससे अर्थव्यवस्था में और भी असंतुलन पैदा हो गया, और आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई।"[1] एक अत्यधिक गरीब मुल्क में आर्थिक स्थिति इस तरह खराब हो जाने से बड़ा खतरा था। वस्तुओं की दृष्टि से (In real terms), १९४८ में भारत की राष्ट्रीय आय

१. योजना आयोग, प्रथम पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ, ११–१२।

प्रायः वही थी जो मंदी के दिनों में थी। यदि आर्थिक अवस्था को सुधारना था तो स्वभावतः सरकार को चुस्ती से काम करने की जरूरत थी। सरकार इण्डियन नेशनल कांग्रेस की पुरानी घोषणाओं से भी बंधी हुई थी। राज्य की जिम्मेदारियां भारत के संविधान में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में गिनाई गई हैं। प्रासंगिक अनुच्छेद ये हैं —

"३८ राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक कार्यसाधक रूप में, स्थापना और संरक्षण करके लोक-कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।

"३९ राज्य अपनी नीति का विशेषतया ऐसा संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से—

(क) सामान्य रूप से नर और नारी सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो,

(ख) समुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो,

(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी केन्द्रण न हो,

(घ) पुरुषों और स्त्रियों, दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो,

(ग) श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो तथा आर्थिक व्यवस्था से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों।

(च) शैशव और किशोरावस्था का शोषण तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण हो।"

योजना कमीशन के शब्दों में निदेशक तत्वों में एक ऐसी आर्थिक और सामाजिक अवस्था की तस्वीर खींची गई है जो सब नागरिकों के लिए अवसर की समता, सामाजिक न्याय, काम करने के अधिकार, पर्याप्त मजदूरी के अधिकार और कुछ सामाजिक सुरक्षा पर आधारित होगी। राज्य ने अपनी जिम्मेवारी का अर्थ देश की भौतिक सम्पत्ति को बढ़ाने की जिम्मेवारी समझा है। इसने यह समझ लिया है कि सिर्फ मौजूदा सम्पत्ति के पुनर्वितरण से जनता की अवस्था में कोई सुधार नहीं हो सकता। उत्पादनों में वृद्धि न होने पर भारत में गरीबी हमेशा की तरह बनी रहेगी। कुछ लोग बड़े पैमाने पर उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का पक्ष लेते हैं। उदाहरण के लिए, प्राफसर के० टी० शाह[१] इस आधार पर राष्ट्रीयकरण को उचित समझते हैं :

(क) स्वामित्व और प्रबन्ध का राष्ट्रीयकरण होने पर उद्योगों को चलाने में अधिक समन्वय और अधिक मितव्ययिता हो सकेगी;

(ख) सब उद्योगों का देश भर में वितरण या फैल जाना जिससे प्रत्येक

---

१. भारत सरकार के सलाहकार योजना मण्डल की रिपोर्ट, पृष्ठ ४७

प्रदेश के स्थानीय मजदूर को अधिक से अधिक रोजगार मिलने में और स्थानीय भौतिक साधनों के उपयोग में सुविधा हो जाए, बहुत अधिक आसान और अधिक वास्तविक हो जाएगा,

(ग) ऐसे राष्ट्रीयकृत कारखानों के लाभ से होने वाली बचत सरकारी कोषों में जाएगी और इस प्रकार वित्तीय साधनों में ऐसी वृद्धि करेगी जो कर के जरिये नहीं हो सकती।

(घ) राष्ट्रीयकृत उद्योगों, सेवाओं (Services) या उपयोगिताओं (utilities) का संचालन मुख्यतः सारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सहायता और सेवा करने के लिए होगा, मालिक के लिए नफा कमाने को नहीं, जैसा कि निजी उद्योगों की अवस्था में अनिवार्यतः होता है, और

(ङ) समाजीकृत उत्पादन के अधीन ही सब वयस्क मजदूरों को उस-उस की अभिरुचि और प्रशिक्षण के ठीक-ठीक अनुसार भरसक अधिकतम रोजगार मिल सकता है।

ब्रिटिश मजदूर दल ने निम्नलिखित रूप में राष्ट्रीयकरण का समर्थन किया:

"लोक स्वामित्व यह निश्चित करने का एक साधन है कि एकाधिकार व्यवसाय जनता का शोषण न कर सके। निजी एकाधिकारियों के हाथों में अपने अन्य सभी मनुष्यों के सुख और भाग्य के विषय में बहुत अधिक शक्ति होती है। जहां एकाधिकार अनिवार्य है, वहां लोक स्वामित्व होना चाहिए।

"लोक स्वामित्व उन बुनियादी उद्योगों और सेवाओं को नियन्त्रित करने का साधन है, जिन पर समुदाय का आर्थिक जीवन और कल्याण निर्भर है। इनका नियन्त्रण निजी मालिकों के समूह के हाथों में छोड़ना निरापद नहीं जो समुदाय के प्रति उत्तरदायी नहीं।

"लोक स्वामित्व उन उद्योगों को चलाने का एक तरीका है जिनमें अदक्षता रहती है और जिनमें सुधार करने के लिए निजी मालिकों में इच्छा या सामर्थ्य का अभाव होता है।"

उपर्युक्त सिद्धान्तों की रोशनी में भारत में हाल में किये गये राष्ट्रीयकरण के उदाहरणों की विवेचना करना उचित होगा। वायु मार्गों या एयरवेज का राष्ट्रीयकरण इनके संचालन के वैज्ञानिकीकरण के वास्ते किया गया है। बहुत सारी निजी कम्पनियां थीं, जिनका बहुत-सा सामर्थ्य काम में नहीं आ सकता था जिसमें हानियां होती थीं। जीवन-बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण मुख्यतः इस कारण किया गया है कि धन का गलत प्रयोग किया जा रहा था और जीवन बीमा कम्पनियों के साधनों को योजना-बद्ध विकास की दिशा में ले जाना था। इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण देहाती क्षेत्रों में बैंकिंग और उधार की सुविधाएँ पहुंचाने की दृष्टि से किया गया था। यह काम किसी निजी बैंक द्वारा नहीं किया जा सकता, क्योंकि हानियों की जोखिम है। स्टेट बैंक आफ इण्डिया को पांच वर्ष के भीतर ४०० शाखाएं खोलने का कार्य भार सौंपा

गया है और यह अब तक ऐसी १८४ शाखाएं खोल भी चुका है।

राष्ट्रीयकरण के विरोध की युक्तियों का सक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है (१) इसमें अत्यधिक नियन्त्रण हो जाता है, (२) इसमें अदक्षता पैदा होती है, (३) किसी वर्तमान उद्योग के राष्ट्रीयकरण के लिए अपेक्षित साधनों का अधिक अच्छा उपयोग नए उद्योग शुरू करके किया जा सकता है। पहली युक्ति में कुछ सचाई है। लोकतन्त्रीय देश अपने सब कार्यों में अतिनियन्त्रण पसन्द नहीं करते पर दूसरी ओर यह भी देखना है कि समुदाय के निर्धन वर्गों को शीघ्र आराम प्राप्त कराया जाए और तब राष्ट्रीयकरण लोकतन्त्रीय प्रक्रियाओं के साथ मिलकर जबरदस्ती काम के बजाय स्वेच्छया सहयोग प्राप्त करता है। जहां तक दूसरी युक्ति का सम्बन्ध है यह सत्य है कि राष्ट्रीयकृत उपक्रम ऐसे वेतनभोगी अफसरों द्वारा चलाए जाते हैं जिनमें लाभ की प्रेरणा का अभाव सम्भव है, परन्तु आधुनिक स्कन्ध कम्पनी भी वैसे ही वेतनभोगी अफसरों द्वारा चलाई जाती है। सचालक बीच-बीच में अपनी बैठकें करके उस पर देखरेख रखते हैं। इसलिए इस युक्ति में विशेष बल नहीं है कि राष्ट्रीयकृत कारखाना निजी स्वामित्व वाले कारखाने की अपेक्षा अधिक अदक्षता से चलाये जाने की सम्भावना है, क्योंकि उसमें लाभ की प्रेरणा नहीं। किसी सयुक्त स्कन्ध कम्पनी के स्वामित्व में चलने वाला बड़ा कारबार अनिवार्यतः वैसा ही नौकरशाही होगा, जैसा कोई राष्ट्रीयकृत उपक्रम, और इसलिए इस आधार पर राष्ट्रीयकरण निजी स्वामित्व से घटिया नहीं।

जब हम दक्षता की बात करते हैं, तब प्रायः हमारा मतलब उत्पादन की लागत की दृष्टि से होने वाली दक्षता से ही होता है, परन्तु समुदाय की दृष्टि से वास्तविक दक्षता का अर्थ प्रोफेसर फ्लोरेन्स के शब्दों में निम्नलिखित है

(१) मनुष्य की आवश्यकताओं, अभावों और स्वाभाविक मांगों की क्रमशः पूर्ति—उसकी कृत्रिम रूप से बनाई हुई मांगों की नहीं (केक और शराब से पहले रोटी और मक्खन)।

(२) मांगें ऐसी कीमत पर पूरी की जाएं कि लाभ की न्यूनतम मात्रा रखते हुए उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक सन्तोष हो जाए। कीमतें लागत के अधिक से अधिक निकट होनी चाहिए।

(३) जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए, सक्षेप में कहा जाए तो लोकतन्त्र का, जिम्मेदारी और सन्तुष्टि से अधिकतर प्रसार होना चाहिए।

(४) और दक्षता प्रति इकाई उत्पादन पर न्यूनतम लागत के रूप में मापी जाए।

इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त कसौटियों के आधार पर लोक स्वामित्व का पलड़ा निजी स्वामित्व की अपेक्षा भारी है तो भी यह निश्चय करने के लिए कि राष्ट्रीयकृत उद्योग अधिक से अधिक दक्षता से चलाये जायेंगे, प्रोफेसर सार्जेंट फ्लोरेंस ने सिफारिश की है कि निम्नलिखित विशेषताओं वाले उद्योगों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए—

(क) रोजाना के ढंग का प्रशासन।

(ख) पूंजी संभार और विशेषज्ञों के लिए बहुत धन लगाने की आवश्यकता।

(ग) बड़ा आकार, और

(घ) उद्योगों के मौजूदा पूंजीवादी प्रबन्ध की अदक्षता।

यह याद रखना चाहिए कि उद्योगों के राष्ट्रीयकरण मात्र से समृद्धि हो जाने की संभावना नहीं है। उद्योगों का उचित प्रबन्ध परमावश्यक है। अब तक प्राप्त अनुभव से यह निष्कर्ष निकलता प्रतीत होता है कि सरकारी कारखाने का प्रबन्ध इतनी दक्षता से नहीं होता जितनी निजी कारखाना का होता है। ऊपर बताए गए 'ग' और 'घ' कारण दोनों परस्पर-विरोधी हैं, और पूर्ण रोजगार तथा उद्योगों का उचित प्रादेशिक वितरण हो सकना समुचित योजना निर्माण पर निर्भर है। तो भी स्वाधीनता के बाद कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया है। उत्तर प्रदेश, मद्रास और दिल्ली आदि बहुत से राज्यों म राज्य सरकारों ने मोटर परिवहन का राष्ट्रीयकरण कर दिया है। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया या भारत के रक्षित बैंक का राष्ट्रीयकरण भी हो चुका है। रेलवे-डाक और तार तथा आकाशवाणी या आल इण्डिया रेडियो पहले ही भारत सरकार के स्वामित्व और संचालन में हैं पर भारत सरकार ने यह समझ लिया है कि भारत के जो थोड़े से वित्तीय संसाधन हैं, उन्हे मौजूदा औद्योगिक कारखानों को अवाप्त करने में बरबाद करना बुद्धिमत्ता नहीं। इसका लक्ष्य सरकारी संसाधनों का उपयोग सम्पत्ति उत्पादन के नए साधन पैदा करने में करना है। यदि हम स्वामित्व-हरण की नीति (policy of expropriation) ही न अपना ले तो यह युक्ति मान्य है। राष्ट्रीयकरण के बारे में अपना अभिप्राय और उद्योगों के सम्बन्ध में अन्य मामला पर अपना रुख स्पष्ट करने के लिए भारत सरकार ने अप्रैल १९४८ में एक वक्तव्य दिया दिया था। उसका जो सारांश राजकोष आयोग (Fiscal Commission) (१९४९) के प्रतिवेदन म दिया गया है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है —

प्रथम, यह वक्तव्य राष्ट्र के "ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना" के संकल्प से आरम्भ होता है "जिसम सब लोगों को न्याय और अवसर की समता सुनिश्चित रूप से प्राप्त होगी।" दूसरे, यह कहता है कि सारा प्रयत्न कम से कम समय म रहन-सहन का स्तर काफी ऊँचा करने की दिशा म होना चाहिए। तीसरे, इस संकल्प में मिली-जुली अर्थव्यवस्था की तस्वीर रखी गई है। एक क्षेत्र निजी उद्योगों के लिए रख दिया गया है और दूसरा लोक स्वामित्व के लिए सुरक्षित है। भारत सरकार "अनुभव करती है कि भविष्य में कुछ समय तक राज्य जिन क्षेत्रों में वह पहले से कार्य कर रहा है उनमें ही अपने मौजूदा क्रियाकलाप को बढ़ाकर और अन्य क्षेत्रों म उत्पादन के नए कारखानों पर ध्यान देकर राष्ट्रीय धन की वृद्धि में अधिक शीघ्र हिस्सा ले सकता है, मौजूदा कारखानों को अवाप्त और संचालित करके नहीं। इस बीच निजी उद्योगों को जो उचित रीति से संचालित और विनियमित होंगे, बड़ा महत्वपूर्ण कार्य करना है .. किसी भी मौजूदा कारखाने को अवाप्त करने का राज्य का सहज अधिकार

तो सदा बना रहेगा, और जब कभी लोक-हित की दृष्टि से अपेक्षित होगा, तब उसका प्रयोग भी किया जाएगा। पर सरकार ने इन क्षेत्रों में दस वर्ष के लिए मौजूदा कारखानों को उन्नति करने का अवसर देने का निश्चय किया है। इस अवधि में उन्हे दक्ष सचालन और युक्ति-युक्त प्रसार के लिए सब सुविधाएँ दी जायेगी। इस अवधि के अन्त में सारे मामले पर फिर विचार होगा और उस समय मौजूदा परिस्थितियों के अनुसार निश्चय किया जाएगा। यदि यह फैसला किया गया कि कोई कारखाना राज्य को अपने स्वामित्व में ले लेना चाहिए तो सविधान द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों का पालन किया जाएगा, और प्रतिकर या मुआवजा न्यायसगत और साम्यपूर्ण (Equitable) आधार पर दिया जाएगा। साधारणतः राज्य के कारखानों का प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार के सांविधिक नियत्रण के अधीन लोक निगमों (Public corporations) के द्वारा होगा—केन्द्रीय सरकार इसके लिए आवश्यक शक्तियां ग्रहण कर लेगी। कोयला, लोहा, और इस्पात, विमान निर्माण, जहाज बनाना, टैलीफोन, टैलीग्राफ और बेतार के तार के उपकरणों (सुनने के रेडियो को छोड़कर) का निर्माण और खनिज तेलों से सम्बन्धित क्षेत्र के अलावा शेष औद्योगिक क्षेत्र निजी उद्योगों के लिए, चाहे वे एक व्यक्ति के हों या सहकारी, सामान्यतः खुला होगा। राज्य इस क्षेत्र में भी उत्तरोत्तर अधिक हिस्सा लेगा और जहा-कहीं निजी कारखानों में किसी उद्योग की प्रगति सन्तोषजनक नहीं होगी, वहा हस्तक्षेप करने में भी सकोच न करेगा।"

इसके अलावा १८ उद्योगों की एक सूची दी गई है। वे इस कारण "केन्द्रीय विनियमन और नियन्त्रण" के अधीन होंगे कि "उनके स्थान का निश्चय अखिल भारतीय महत्त्व के कारणों के आधार पर होना चाहिए, "या उन में बहुत अधिक धन लगाने की, और बहुत ऊँचे दरजे के प्राविधिक कौशल की आवश्यकता है।" चौथे सकल्प में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योगों के बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान पर बल दिया गया है, "क्योंकि वे अकेले आदमी के, गाव के या सहकारी उपक्रम के लिए क्षेत्र प्रस्तुत करते हैं और विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए एक रास्ता बताते हैं। सकल्प में, जहा अवस्थाओं के अनुसार सभव हो वहा, बड़े उद्योगों को विकेन्द्रित करने की वाछनीयता पर भी बल दिया गया है। पाचवें सकल्प में प्रबन्धकों और श्रमिकों के बीच अच्छे सम्बन्धों के लिए सामाजिक न्याय और अच्छी श्रमिक दशाओं को नीति की एक परमावश्यक आधार बताया गया है। छठे, सरकार की तट-कर (Tariff) नीति की चर्चा की गई है। यह "ऐसी बनायी जाएगी कि अनुचित विदेशी प्रतिस्पर्द्धा न हो सके और उपभोक्ता पर अनुचित बोझ डाले बिना भारत के ससाधनों का उपयोग बढ सके। सातवें, विदेशी पूजी के बारे में नीति इन शब्दों में स्पष्ट की गई है कि "भारत सरकार उद्योग सम्मेलन के इस विचार से सहमत है कि यह तो ठीक है कि विदेशी पूजी और कारखानेदारों का विशेष रूप से औद्योगिक टैक्नीक और ज्ञान की दृष्टि से शामिल होना देश के द्रुत उद्योगीकरण के लिए मूल्यवान होगा, पर यह आवश्यक है कि वे जिन शर्तों पर भारतीय उद्योगों में हिस्सा ले सकते हैं, वे राष्ट्रीय हित की दृष्टि से सावधानी से विनियमित होनी चाहिएँ। इस

प्रयोजन के लिए उचित कानून बनाया जाएगा। इस कानून में विदेशी पूजी और प्रबन्ध के उद्योग मे शामिल होने के हर मामले की केन्द्रीय सरकार द्वारा जाच और अनुमोदन की व्यवस्था होगी। सामान्यतया यह उपबन्ध होगा कि स्वामित्व में मुख्य स्वहित और प्रभावी नियत्रण हमेशा भारतीय हाथो में रहे। पर आपवादिक मामलो म ऐसी रीति से काय करने की शक्ति सरकार ग्रहण करेगी जिससे राष्ट्रीय हित का सम्पादन होता हो। पर सब जगह अन्ततोगत्वा विदेशी विशेषज्ञो का स्थान लेने के प्रयोजन के लिए उपयुक्त भारतीय कर्मचारियो के प्रशिक्षण पर बल दिया जाएगा।"

प्रधानमत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने विदेशी पूजी के बारे म इस वक्तव्य का स्पष्टीकरण करते हुए ६ अप्रैल १९४९ को ससद मे कहा—"पहली बात यह है कि मैं यह बता देना चाहता हूँ कि सरकार सब कारखानो म, चाहे वे भारतीय हो या विदेशी यह आशा करेगी कि वे सरकारी औद्योगिक नीति की साधारण अपेक्षाओ के अनुरूप हो। जहा तक मौजूदा विदेशी हितो का सम्बन्ध है, उन पर सरकार कोई ऐसी पाबन्दिया या शर्तें लगाना नही चाहती जो वैसे ही भारतीय कारखानों पर नही लगायी जा सकती। सरकार अपनी नीति भी ऐसी बनाएगी कि और अधिक विदेशी पूजी लाना के लिए लाभदायक शर्तो पर भारत मे लाई जा सके। दूसरे, विदेशी हितो को सिर्फ उन विनियमो के अधीन रहते हुए, जो सब पर लागू होगे, लाभ कमाने दिया जाएगा। लाभ का रुपया अपने देश भजने के लिए जो सुविधाएँ आज मौजूद है, उनके जारी रहने म हम कोई कठिनाई दिखाई नहीं देती, और जो विदेशी पूजी लगी हुई है, उसे निकालने पर कोई पाबन्दी लगाने का सरकार का इरादा नही है। पर धन स्वदेश भेजने की सुविधा स्वभावत विदेशी विनिमय की स्थिति पर निर्भर होगी। पर यदि सरकार ने किसी विदेशी कम्पनी पर अनिवार्यत अधिकार किया तो उसके आगम का स्वदेश भेजने के लिए वह तत्सगत सुविधाएँ देगी। तीसरे, यदि और जब विदेशी कम्पनियों पर अनिवार्यत. अधिकार किया जाएगा, तो और तब न्यायसगत और साम्यपूर्ण आधार पर प्रतिकर दिया जाएगा, जैसा कि सरकार की नीति के वक्तव्य म पहले ही एलान किया जा चुका है . भारत सरकार भारत म मौजूद ब्रिटिश या अन्य अभारतीय हितो को किसी भी तरह हानि नहीं पहुँचाना चाहती और भारत की अर्थव्यवस्था के विकास म रचनात्मक और सहकारी रूप म उनके हिस्सा लेने का खुशी म स्वागत करेगी।"

नीति के वक्तव्य से यह बात स्पष्ट है कि सरकार का एकमात्र आशय भारत में उत्पादन साधनो की वृद्धि करना है। राष्ट्रीयकरण या निजी उद्योगो के चलते रहने के बारे म फैसला देश म सम्पत्ति की वृद्धि के सवाल के आधार पर ही किया जाएगा। जहा तक हो सकेगा सरकार के मानवीय और वित्तीय दोनों प्रकार के समाधनो का उपयोग मौजूदा कारखानों को खरीदने के बजाय, नये कारखाने खोलने म किया जाएगा। इस प्रकार हम देखते है कि सरकार ने सिंदरी म खाद फैक्टरी, चित्तरजन में इजन फैक्टरी और बगलौर म टेलीफोन निर्माण फैक्टरी और एक मशीनी औजार कारपोरेशन बनाया है। सरकार अपने ससाधनो का मुख्य हिस्सा अनेक नदी घाटी

योजनाओं में लगा रही है जिसमें सिंचाई और बिजली दोनों उपलब्ध हो सकें।

प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने ३० अप्रैल १९५६ को लोकसभा में भारत सरकार की नयी उद्योग नीति की घोषणा की। आपने बताया कि उद्योगों को तीन भागों में विभाजित किया जाएगा (१) वे उद्योग जिनका भविष्य में सरकार ही विकास करेगी। वक्तव्य की अनुसूची 'क' में ऐसे सत्रह उद्योग गिनाये गये हैं, जिनमें शस्त्रास्त्र तथा सुरक्षा, परमाणु शक्ति, लोहा व इस्पात, मशीनी औजार, मशीन बनाने के कारखाने, बिजली का सामान, कोयला, खनिज तेल, कच्चा लोहा, तांबा आदि निकालना, और शोधन, परमाणु शक्ति खनिज हवाई जहाज का सामान, वायु यातायात, रेल यातायात, जहाजरानी टेलीफोन, बेतार का तार, और बिजली है। (२) वे उद्योग जो धीरे-धीरे सरकार के अधीन होंगे। ये अनुसूची 'ख' में गिनाये गये हैं। (३) शेष उद्योग।

भारतीय उद्योगों को बढ़ाना देश के लिए सरकार ने जो कार्य किये हैं उनमें मालिकों और मजदूरों के बीच अच्छे सम्बन्ध बनाने के लिए किये गए सरकार के प्रयत्नों का जिक्र किया जा सकता है। सरकार ने मध्यस्थता (Mediation) या विवाचन यानी पंचनिर्णय (Arbitration) द्वारा विवादों के निपटारे की व्यवस्था की है, और हड़तालें या तालेबन्दियां रोकने के लिए स विधिक उपबन्ध किये हैं। मजदूरों को सुनिश्चित रूप में उचित लाभ प्राप्त कराने के लिए सरकार ने श्रम कल्याण का कार्यक्रम आरम्भ किया है। कोयला खानों में सरकार के तत्वावधान में मजदूरों को भविष्य निधि (Provident Fund) की सुविधाएँ दे दी गयी हैं। १९५२ के कानून ने इस योजना को ६ और उद्योगों पर लागू कर दिया है। एक न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पास किया जा चुका है और वह लागू है, जिसके द्वारा राज्य सरकारें कुछ उद्योगों के लिए न्यूनतम मजदूरी तय कर सकती हैं। लाभ में हिस्सा बांटने के महत्त्वपूर्ण सवाल पर मालिकों और मजदूरों में कोई समझौता नहीं हो सका है। यह सवाल अभी सरकार के विचाराधीन है। उन मजदूरों को सहायता देने के लिए, जो रोगी हो जाते हैं या दुर्घटनाओं से घायल हो जाते हैं, कर्मचारी राज्य बीमा निगम (Employees State Insurance Corporation) स्थापित किया गया है। यह निगम मालिकों और मजदूरों, दोनों, से संगृहीत निधि के द्वारा काम करेगा। कानून बनाने के बाद पिछले तीन वर्षों में बार-बार मुल्तवी किये जाने के पश्चात् दिल्ली और कानपुर में पथप्रदर्शक योजना शुरू की गई है। आशा है कि शेष सब राज्यों में यह योजना शीघ्र लागू की जाएगी। फैक्टरी कानून भी अति कठोर कर दिया गया है, पर इस सब के बावजूद यह याद रखना चाहिए कि श्रम-कल्याण सुनिश्चित रूप में प्राप्त कराने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। तो भी सरकार को औद्योगिक विवादों से होने वाली हानि को कम करने में कुछ दूर तक सफलता मिली है। १९४७ में नष्ट हुए मनुष्य दिनों की संख्या १,६५,६२,६६६ थी, १९४९ में यह संख्या ६६,००,५९५ और १९५० में १,२८,०६०७०४ थी और १९५१

में सिर्फ ३८,१८,९८२ तथा १९५२ में ३३,३६,९६१ मनुष्य-दिन नष्ट हुए थे। १९५३ और १९५४ के लिए ये अक क्रमश ३३,८२,००० और ३७,७२,६३० थे। यहा औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) बनाने का उल्लेख भी करना उचित होगा, जिसके बारे में विस्तार से अन्यत्र विचार किया जा चुका है।

सरकार ने उद्योगो को तर्कसगत कीमतो पर कच्चे सामान का पर्याप्त सभरण और समुचित वितरण करने की जिम्मेवारी अपने ऊपर ली है। विभाजन और रुपये के अव-मूल्यन (Devaluation) के बाद देश के दो प्रमुख उद्योगो, अर्थात् सूती वस्त्र और जूट, को कच्चे माल की प्राप्ति के बारे में बडी कठिनाई हो गई है। इन दोनो सामानो का भीतरी उत्पादन कुछ समय तक नियन्त्रित था, पर अब सिर्फ रुई नियत्रित है। राज्य ने इन दोनो वस्तुओ का उत्पादन बढाने की कोशिश की है। हाल की खबरो के अनुसार, भारत को, जिसे कुल ५०,००,००० गाठ जूट की आवश्यकता रहती है, पाकिस्तान से बहुत थोडी मात्रा लेनी होगी। रुई का उत्पादन, जो १९४८ में २२,००,००० गाठ था, १९५३–५४ में बढकर लगभग ४०,००,००० गाठ हो गया है। भारत को लगभग ५०,००,००० गाठ की आवश्यकता होती है। अन्य उद्योगो में भी कच्चे सामान की कमी को दूर करने के लिए ऐसा ही प्रयत्न किया गया है।

घरेलू उद्योगो को बढावा देने का एक बहुत अच्छा तरीका सरकार और अन्य सम्बन्धित प्राधिकरणो द्वारा स्टोर की खरीद का उचित सगठन है। भारतीय स्टोर खरीद विभाग, जो अब सभरणो और यापनो का महानिदेशनालय (Director-ate-general of Supplies and Disposals) कहलाता है, भारतीय उद्योगो को बढावा देने के लिए शुरू किया गया था। स्टोर खरीद कमेटी ने जिसने १९५५ में अपना प्रतिवेदन दिया था, यह सिफारिश की थी कि १५% और कई जगह २५% कीमत अधिक होने पर भारतीय माल खरीदा जाए और कुछ अवस्थाओ में क्वालिटी का बन्धन ढीला कर दिया जाए, और विदेशो से मगाये जाने वाले इडेटो की अच्छी तरह जाच होनी चाहिए।

औद्योगिक विकास को बढावा देने के लिए परिवहन की स्थिति सुधारने का भी यत्न किया गया है। युद्ध और विभाजन के परिणामस्वरूप भारतीय रेलो की आव-श्यकता बहुत गिर गई थी। हर आदमी परिवहन की कठिनाई की बात करता था। मुख्यत विश्व बैंक से प्राप्त हुई वित्तीय सहायता के द्वारा भारतीय रेलें काफी सख्या में इजन आयात करने में सफल हुई है। मालगाडी के डिब्बे भी अधिक सख्या में आये हैं, प्रशासनीय ढाचे की ओर माल गाडी के डिब्बो के आयात की स्थिति को सुधारने से परिवहन की रुकावट करीब-करीब खत्म हो गई है। सरकार ने रेल विकास का एक बडा कार्यक्रम बनाया है। छ मडलो में रेलो के पुन वर्गीकरण से और भी अधिक दक्षता आने की आशा है।

कुटीर उद्योगो की ओर सरकार का जो ध्यान है, उसका मतलब भी अधिकतम उत्पादकता के लक्ष्य पर पहुँचना ही है। सरकार ने उद्योग और वाणिज्य मत्रालय में

कुटीर उद्योगों का महानिदेशनालय (Directorate-general) स्थापित किया है। हमारे कुटीर उद्योगों के माल की माग बढ़ाने के लिए हमारे विदेशस्थ दूतावासों में शो रूम रखे जाते है। दिल्ली में स्थित कुटीर उद्योग प्रदर्शनिया शो रूम और वितरण केन्द्र के रूप में काम करती है। सरकार ने हाथ करघा उद्योग को सहायता देने के लिए मिल निर्मित कपडे पर ३ पाई प्रति गज उपकर (Cess) लगाया है। अब भारत मे बनाई जाने वाली धोतियों म से ४०% हाथ करघा उद्योग के लिए सुरक्षित है। अब कर्वे कमेटी ने सिफारिश की है कि मिलो का वस्त्र उत्पादन मौजूद स्तर पर ही रोक दिया जाए और कपडे का और अधिक उत्पादन हाथकरघा तथा बिजली करघा उद्योग के लिए सुरक्षित कर देना चाहिए। सरकार ने यह सिफारिश स्वीकार कर ली है। सरकार दस्तकार के प्रशिक्षण के लिए और नयी तथा सादी मशीनें प्रचलित कराने के लिए सुविधाएँ देने की दृष्टि से कुछ यत्न कर रही है। इस काम के लिए जापानी टैकनीशियन बुलाए गये हैं, पर योजना कमीशन के अनुसार, पहला काम यह है कि कुटीर उद्योगों के विकास में दिलचस्पी रखने वाले गैर-सरकारी अभिकरणों और ग्राम सगठनों से सहयोग करते हुए औद्योगिक सहकारी सोसाइटियां सगठित करने और उन्हें सहायता देने के लिए सरकार के प्रशासनीय तंत्र को मजबूत किया जाए। आयोग ने प्रथम पचवर्षीय योजना मे कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योगो पर २७ करोड रुपये खर्च करने की व्यवस्था की थी। दूसरी योजना में इसके लिए २०० करोड रुपये रखे गये है। प्रधान मंत्री ने घोषित किया है कि यदि उद्योग ने अच्छी प्रगति की तो धन के कारण कोई रुकावट न पड़ने दी जाएगी। नदी बहु-प्रयोजन परियोजनाएँ कुटीर उद्योगो के लिए बडी उन्नतिकारक होने की सभावना है, क्योंकि बिजली का बहुत मात्रा में प्राप्त होना उनके विकास मे बडा सहायक हो सकता है।

सरकार की सरक्षण नीति भी देश मे द्रुत औद्योगिक विकास करने की दृष्टि से बनाई गई है और विभेदक सरक्षण (Discriminating Protection) की पुरानी नीति त्याग दी गई है। १९४९ के राजकोषीय आयोग ने कहा था "आजकल तटकर सरक्षण को मुख्यत एक साध्य का साधन समझा जाता है—इसे नीति का एक ऐसा उपकरण माना जाता है, जिसका प्रयोग सरकार को देश के आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने में अवश्य करना चाहिए। उद्योगो का सरक्षण आर्थिक विकास की किसी सर्वांगीण योजना मे सम्बन्धित होना चाहिए; अन्यथा भारो का असमान वितरण और उद्योगों की असमन्वित वृद्धि हो जाएगी"। आयोग ने सिफारिश की है कि प्रतिरक्षा और सामरिक महत्व के अन्य उद्योग उन सरक्षणों और सहायता से, जिनकी आवश्यकता हो, "राष्ट्रीय दृष्टि से स्थापित किये जाने चाहिएँ और चलाए जाने चाहिए, चाहे कितनी भी लागत आए"। बुनियादी उद्योगों के सरक्षण पर तटकर प्राधिकरण (Tariff authority) विचार करेगा। वह (१) सरक्षण या सहायता देने के लिए शर्तें निर्धारित करेगा और (२) समय-समय पर यह विचार करेगा कि इन शर्तों का उद्योगो द्वारा कहा तक पालन किया गया है या कहा तक पालन किया जा रहा है। अन्य उद्योगों के लिए सरक्षण या सहायता की कसौटी यह है—"उद्योग को जो आर्थिक

सुविधाएँ हैं, या उपलब्ध हैं और तर्कसंगत समय के भीतर उसके इतना अधिक विकसित होने से, जिससे वह बिना संरक्षण या सहायता के सफलतापूर्वक चल सके, जो वास्तविक या सम्भाव्य लागत होने की सम्भावना है, उसका ध्यान करते हुए, और या यदि वह कोई ऐसा उद्योग है, जिसे राष्ट्रीय हित की दृष्टि से संरक्षण या सहायता देना वाञ्छनीय है तो इसके प्रत्यक्ष और परोक्ष लाभों का ध्यान रखते हुए कि देश को ऐसे संरक्षण या सहायता की सम्भाव्य लागत बहुत अधिक न हो जाय।" सरकार ने यह सिफारिश स्वीकार कर ली है और एक स्थायी तटकर आयोग बना दिया है।

सरकारी नियंत्रण—सरकार निजी उद्योगों को एक ऐसे नमूने के रूप में ढालने के लिए जो बहुत धीरे-धीरे बन रहा है, अर्थात् मंगलकारी राज्य के नमूने में ढालने के लिए उन्हें नियंत्रित और विनियमित करने की कोशिश कर रही है। इस नीति को अमल में लाने में चाहे जो दोष हों, पर वह नीति यह है कि निजी उद्योग तब ही रहेगा जब वह समाज को लाभ पहुँचाए। यह दृष्टिकोण योजना आयोग की स्थापना से और उद्योग (विकास और नियमन) अधिनियम के बनने से स्पष्ट है। अब भारत में मुक्त व्यापार (Laissez Faire) यानी यथेच्छकारिता का कोई स्थान नहीं है। निजी कारखानों के लिए जगह है, पर वह उसी अवस्था में है, जब वे राज्य की आर्थिक नीति के अनुगामी बनकर चलें। जैसा कि योजना आयोग ने कहा है, निजी उद्योगों की प्रणाली को, जैसी वह अब है, उसमें बहुत भिन्न होना पड़ेगा, उद्योग को न केवल सामाजिक नीति के उद्देश्य स्वीकार करने होंगे, बल्कि मजदूर, रुपया लगाने वाले और उपभोक्ता के प्रति अपने कर्तव्य भी उठाने होंगे। "यह परमावश्यक है कि निजी उद्योग राज्य की सामाजिक और आर्थिक नीति के अनुरूप रहकर चलें, अपनी पूरी जिम्मेदारियाँ पहचानें और नियंत्रण और विनियमन का उन कार्यों में, जो आवश्यक समझे जाएँ, लागू करने में सहयोग करें।" अब योजना निर्माण आम बात है, और उचित हो है कि इस विषय पर एक अलग अध्याय रखा जाए।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि निजी कम्पनियाँ राष्ट्रीय योजना के अनुसार चलें और वे "कल्याण-राज्य" के अवधारण के कारण उन पर जो नयी जिम्मेदारियाँ आ गयी हैं, उनके अनुसार ही कार्य करें, सरकार ने १९४९ में उद्योग (विकास और नियंत्रण) विधेयक पेश किया था। इस पर बड़ा विवाद हुआ और उद्योगपतियों ने इसका जोर-शोर से विरोध किया, पर योजना आयोग ने विधेयक का समर्थन किया और सरकार से इसे तुरन्त पास करने का अनुरोध किया। यह विधेयक अक्तूबर १९५१ में पास हुआ। मई १९५२ में अधिनियम संशोधित किया गया। अधिनियम में नई औद्योगिक इकाइयों के लिए और मौजूदा यंत्रों में बहुत अधिक विस्तार करने के लिये लाइसेंस यानी अनुज्ञप्ति की व्यवस्था की गयी है। अनुज्ञप्तियाँ देते हुए सरकार आवश्यक समझे तो वह कारखाना लगाने की जगह उसके न्यूनतम आकार आदि के बारे में शर्तें लगा सकती है। अधिनियम में उसके अन्तर्गत आने वाले ४३ उद्योगों में से प्रत्येक के लिए विकास परिषदों की स्थापना का भी उपबन्ध किया गया है, जिसमें उद्योग, श्रम और उपभोक्ताओं के प्रतिनिधि और टेक्निकल प्रबन्ध की देखभाल कर सकने वाले

लोग होंगे । योजना आयोग के शब्दों में, विकास परिषदों को निम्नलिखित कार्य करना है : (१) मौजूदा सामर्थ्य का अधिकतम उपयोग कराने के लिए उत्पादन के लक्ष्य तय करना, (२) बर्बादी रोकने, अधिकतम उत्पादन कराने, क्वालिटी सुधारने और लागत कम करने की दृष्टि से दक्षता के बारे में सुझाव देना, (३) उद्योग के, खासकर अदक्ष कारखानों के, संचालन में सुधार के लिए उपाय सुझाना, और (४) वितरण और बिक्री की ऐसी प्रणाली निकालना जिससे उपभोक्ता की सन्तुष्टि हो सके । उद्योग और वाणिज्य मंत्री के शब्दों में "विकास परिषद् निजी उद्योगों की परिचारिकाएँ" होंगी । इनमें समन्वय लाने के लिए एक केन्द्रीय सलाहकार परिषद् बनायी जाएगी । यह परिषद् एक ऐसे न्यायानिकरण का कार्य भी करेगी जो सरकार के कार्य की जांच कर सके। केन्द्रीय सरकार को कुछ विनिर्दिष्ट उद्योगों की या उन उद्योगों के कारखानों की जांच करने का भी अधिकार है (क) जिनके उत्पादन में कमी हो जाए, माल की क्वालिटी गिर जाए, माल की कीमत चढ़ जाए या जिनमें इन दिशाओं की ओर झुकाव दिखाई देता हो, (ख) जो राष्ट्रीय महत्त्व के साधनों का उपयोग कर रहे हैं, और (ग) जिनका प्रबन्ध ऐसी रीति से किया जाता है, जिससे अंशधारियों या उपभोक्ताओं के हितों की हानि होने की सम्भावना है । ऐसी जांच का परिणाम प्राप्त होने पर त्रुटियों को दूर करने के लिए उद्योगों या कारखानों को हिदायत दी जा सकती है. सरकार को वे कारखाने अपने प्रबन्ध में लेने की शक्ति है जो प्रबन्ध और नीतियों में सुधार सम्बन्धी सरकारी हिदायतों का पालन न करें । आपातिकाल में सरकार बिना सूचना दिये कार्यवाही कर सकती है और किसी कारखाने को अपने अधिकार में ले सकती है । कुछ अवस्थाओं में निर्मित वस्तुओं के मूल्य का दो आना प्रतिशत से अनधिक उपकर लगाया जा सकता है । मौजूदा कारखानों को भी सरकार के यहां पञ्जीकृत करना होगा । भारत में बर्मा शैल, स्टैण्डर्ड वैकुअम और काल्टैक्स द्वारा स्थापित किये जाने वाले तीन शोधनालय (Refineries) इस कानून के अधीन नहीं होंगे । योजना आयोग और उद्योग (विकास और नियन्त्रण) अधिनियम बनाकर भारत एक मनोरंजक प्रयोग शुरू कर रहा है । सरकारी और निजी दोनों प्रकार के कारखाने सरकार के अधीन एक सुनिर्दिष्ट क्षेत्र में कार्य करते हुए समुदाय के अधिकतम लाभ के लिए साथ-साथ रहेंगे । राष्ट्रीयकरण या निजी उद्योगों के अस्तित्व को अपने आप में कोई उद्देश्य न माना जाएगा, बल्कि समाज-कल्याण के साधनमात्र समझा जाएगा । इधर सरकारी कारखाने बढ़ रहे हैं और इस सवाल पर विचार हो रहा है कि सार्वजनिक कारखानों को कैसे, अच्छे से अच्छे ढंग से चलाया जा सकता है।

लोक निगम
(Public Corporation)

सरकारी कारखानों के प्रबन्ध के तीन तरीके हैं, नामतः (१) विभागीय प्रबन्ध, (२) संयुक्त स्कन्ध कम्पनी का प्रबन्ध, या (३) स्वायत्त लोक निगम । श्री ए. डी. गोरवाला, जिन्हें सरकार ने इस विषय पर रिपोर्ट देने के लिए कहा था,

राजकीय कारखानो के प्रबन्ध के लिए स्वायत्त लोक निगम को सबसे अधिक सन्तोष-कारक विधि समझते हैं, क्योकि इसके मुख्य लाभ ये हैं कि (क) इसमें सरकारी प्रशासन में स्वभावत होने वाली अनम्यता और देरदार नही होती और निजी उद्योग की नम्यता और कार्य-साधकता बनी रहती है। (ख) सरकारी अफसरो का कारखाने के भीतरी प्रबन्ध मे दखल नही होता, (ग) यह ससदीय नियत्रण के और मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के ढाचे के भीतर काम करता है और इस प्रकार इसमें राष्ट्रीय नीति का चलना सुनिश्चित हो जाता है। अधिकतर देशो मे राजकीय कारखानो के लिए लोक निगम सर्वोत्तम प्रशासनीय तत्र माना जाने लगा है और भारत सरकार ने भी कह दिया है कि "राजकीय कारखाना का प्रबन्ध आम तौर से लोक निगमो द्वारा होगा।"

राजकीय कारखानो के प्रबन्ध के रूप में लोक निगम का स्वरूप साफ-साफ समझ लेने के लिए शुरु म ही यह जाच कर लेना अच्छा होगा कि क्या राष्ट्रीयकरण, जिसमें राज्य का स्वामित्व और राज्य का प्रबन्ध, ये दोनो शामिल है, निजी उपक्रम की अपेक्षा आवश्यक रूप से अधिक अच्छा है। निजी सम्पत्ति का इतिहास द्वारा समर्थित औचित्य यही रहा है कि यह उत्तरदायित्व डालती है और अत्याचार के विरुद्ध रक्षा करती है, पर आदमी इसका उपयोग जिम्मेदारी से छूटने और निरकुश शक्तियां प्राप्त करने में करने लगा है। क्योकि लोगो ने अपनी सम्पत्ति का दुरुपयोग किया है इसलिए यह कहा जाने लगा है कि इसे सर्वथा खत्म कर देना चाहिए। पूजीवादी उत्पादन के कुवितरण और अमानवीय दशाओ से पैदा हुई प्रतिक्रिया के रूप में यह पुरानी माग फिर दोहराई जा रही है कि उत्पादन उपयोग के लिए होना चाहिए, नफे के लिए नही। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह कहा जा रहा है कि निजी सम्पत्ति व्यष्टि से समुदाय के पास पहुँच जाए और इसका नियत्रण पूजीपति सचालको के हाथ से निकलकर राज्य की नौकरशाही के हाथ में पहुंच जाए। यह आशा की जाती है कि राज्य पूजीपति का कार्य अपने ऊपर लेकर समाज को व्यष्टिवाद के दुरुपयोगो से बचाएगा।

पर यह प्रश्न उचित होगा कि क्या राज्य सिर्फ एक अमूर्त विचार ही नहीं है? क्या इसकी सर्वोच्चता का प्रयोग व्यक्तियो द्वारा ही नही होता? यदि राज्य सर्व-शक्तिमान् होगा तो जो व्यष्टि इसके प्राधिकार का प्रयोग करता है, उसे भी सर्वशक्ति-मान बनाना होगा। यह तर्क किया जा सकता है कि राज्य पर जनता के निर्वाचित प्रति-निधियों का नियत्रण होगा और इसलिए वह उनके लाभ के लिए कार्य करेगा। पर अनियन्त्रित शक्ति उन व्यक्तियो के हाथो मे पहुँच सकती है, जो ऐसी स्थितियो मे हो, कि निर्वाचको को प्रेरणा देकर या धोखा देकर इस ताकत को अपने हाथ म ले ले। "यह कोई दलीय गुट (Party Caucus) हो सकता है या वह कोई लोकप्रिय डिक्टेटर हो सकता है।" यह वही पूजीपति भी हो सकता है जिसे राज्य की नयी शक्ति दबाना चाहती थी। अन्ततोगत्वा, राज्य का अफसर ही सब मामलो के ऊपर होगा। जन-साधारण की दृष्टि म सरकारी अफसर इसी कारण कम अत्याचारी नही हो जाता, क्योकि उसे 'जनता द्वारा दिया गया प्राधिकार" प्राप्त है पर इन बातो

का यह मतलब नहीं समझना चाहिए कि हम राष्ट्रीयकरण या उद्योगों पर राजकीय स्वामित्व के विरोधी हैं। हम पूरी तरह मानते हैं कि आधुनिक समाज बहुत दूर तक नियमन के युग में पहुंच गया है, और इसमें योजना निर्माण है भी और रहेगा भी। जो बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं है, वह यह है कि हस्तक्षेप और बाध्यता (Constraint) के नये उपकरणों का स्वरूप और दिशा क्या होगी। "पूंजीवाद" की बाजार अर्थ-व्यवस्था (Market Economy) के मुकाबले में योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था लाने को आज सब लोग आधुनिक अर्थप्रणाली में अपरिहार्य मानते हैं। जिस बात पर आपत्ति है, वह है योजना निर्माण की विधि और प्रयोजन। बाजार अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर एकाधिपत्य (Monopolism) को स्थापित करने के लिए योजना निर्माण निश्चित रूप से अवांछनीय है। 'विशेषाधिकार', दोहन बाजार की अनम्यता, आर्थिक प्रक्रम की विकृति, पूंजी का रुक जाना, शक्ति का केन्द्रण, औद्योगिक सामन्तवाद, संभरण और उत्पादन का अवरोध, गहरी बेरोजगारी हो जाना, रहन-सहन की लागत ऊँची हो जाना और सामाजिक विषमताओं का बढ़ जाना, आर्थिक अनुशासन का अभाव, राज्य और लोकमत पर अनियन्त्रित दबाव, उद्योग का एक ऐसे सीमित क्लब में रूपान्तर जो नए सदस्य लेने में इन्कार करता है, ये सब चीजें तथा और बहुत सी बातें एकाधिपत्य की बुराइयां हैं"। संगठन का ब्यूरो वाला रूप भी, जिसमें अफसरशाही और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की उत्पादन-क्षमता स्थिर हो जाती है, इन बुराइयों का पर्याप्त इलाज नहीं। यह योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के बजाय नौकरशाही या फौजी अर्थ व्यवस्था, लोकतन्त्रीय योजना निर्माण की बजाए सर्वाधिकारवादी योजना निर्माण हो जाएगा। हमारे सामने मुक्त व्यापार यानी यथेच्छकारिता और फौजी अर्थ-व्यवस्था, ये दो ही मार्ग नहीं हैं, पर हमारे सामने तीसरा रास्ता भी है और वह है मुसंगत राजकीय हस्तक्षेप, जिसमें राज्य का स्वामित्व होगा पर राज्य का प्रबन्ध न होगा। दोनों मार्ग उनसे पैदा होने वाली बुराइयों के कारण अस्वीकार्य हैं और तीसरा रास्ता जो मध्य मार्ग है, अनेक देशों के अनुभव पर आधारित है, जिन्होंने हाल के वर्षों में आर्थिक और सांस्कृतिक बुराइयों के समुचित इलाज के लिए इसका अवलम्बन किया है।

तीसरे मार्ग का लक्ष्य यह है कि आर्थिक प्रक्रम के "राजनैतिकरण" (Politicalisation) या राज्यवाद (Statism) की सब की सब गुंजाइशों को रोक दिया जाए। सर्वाधिकारवादी अर्थ-व्यवस्था या राज्यवाद के अधीन, वे सब चीजें जो अब तक निजी साहस और निजी विधि (Private law) के आर्थिक क्षेत्र में आती थीं, अब राजनैतिक क्षेत्र में चली जाती हैं—बाजार एक सरकारी अभिकरण बन जाता है, प्रत्येक खरीद एक राजकीय व्यवहार हो जाता है, निजी विधि लोकविधि (Public law) बन जाती है। "सेवा का स्थान सरकारी कर्मचारियों का काम ले लेता है। कीमत के क्षेत्र को आज्ञप्तियों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर छोटे-छोटे पदों और सरकारी नौकरियों के लिए राज्य में प्रभाव और शक्ति प्राप्त करने का संघर्ष आ जाता है। कच्चे सामान का संभरण अब राज्य की सर्वोच्चता का एक अवधारण बन जाता है। व्यवसाय

सम्बन्धी विनिश्चय जब सरकारी कानूनों का रूप ले लेते हैं, जिनके पीछे दण्ड विधि (Penal Law) की शक्ति होती है। विदेशी चलार्थ सम्बन्धी लेन-देन मृत्यु दण्ड से दण्डनीय अपराध बन जाता है। लोकतंत्रीय शासक "बाजार" के स्थान पर निरंकुश शासक "राज्य" आ जाता है।

दूसरी ओर, सफलता का पूंजीवादी मानदण्ड लाभकारकता है। और यदि व्यय आय के बराबर ही न रह सके, तो अन्त में पूंजी नष्ट हो जाएगी और दिवालियापन आ खड़ा होगा। निजी उद्योग में लाभ की इच्छा प्रधान, बल्कि एकमात्र, इच्छा होती है। राजकीय उद्योगों में लाभ का पैमाना खत्म हो जाता है और राष्ट्रीयकृत उद्योग में यह आशा की जाती है कि वह लोकहित के कार्य करेगा और व्यक्ति को अपने मूल अधिकारों का उपभोग करने देगा। तो भी इस अर्थ में राष्ट्रीयकरण कि स्वामित्व का निजी मालिकों से राज्य को हस्तान्तर मात्र हो जाए, काफी नहीं है और शायद इससे भी बुरा है। इसमें निजी लाभ से उत्पादन को मिलने वाला उद्दीपन जाता रहता है और यह उसके स्थान पर आवश्यक रूप से या स्वतः कोई व्यवस्था नहीं करता। लाभ की भावना के स्थान पर अन्त में "जन-सेवा" की भावना लाने से समस्या का समाधान होगा, पर इसे राज्य के स्वामित्व में चल रहे उद्योगों में लगे हुए सब आदमियों में यत्न-पूर्वक प्रविष्ट करना होगा। राज्य स्वामित्व को सफल होना है, तो इसे निजी उद्योगों की न्यूनता पूरी करनी होगी। इसे न केवल वस्तुओं का उत्पादन करना होगा, बल्कि वह दक्षता और मितव्ययिता से करना होगा, इसलिए हम जिस चीज की आवश्यकता है, वह है राष्ट्रीय या राष्ट्रीयकृत उद्योग के लिए प्रशासनीय तंत्र, जो इस प्रचलित दलील का उचित समाधान कर सके कि लाभ की भावना और प्रतिस्पर्धा की भावना का अभाव सरकारी विभागों में होने वाली लापरवाही पैदा करता है। वह तंत्र लोक निगम के रूप में प्राप्त हो सकता है। लोक निगम में एक और भावना होती है, और वह है जन सेवा की भावना। लार्ड रीथ ने लिखा है—"लोक-सेवा वार्षिक बैठकों में अंशधारियों के प्रति तो उत्तरदायी न होगी, पर उस पर संसद में और अन्य स्थानों पर प्रकट किये जाने वाले लोकमत का लगातार और प्रगाढ़ प्रभाव पड़ेगा।" लार्ड रीथ को लोक निगमों में, अतीत काल की यथेच्छकारिता में होने वाली उदारता के स्थान पर किसी प्रकार के योजना निर्माण को स्थापित करने का साधन दिखाई देता है, और उन्हें १९२७ से १९३८ तक ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन के महानिदेशक के रूप में, तथा इम्पीरियल एयरवेज जिन दिनों लोक निगम के रूप में आया उन दिनों इसके सभापति के रूप में अपने अनुभव से इस बात का ज्ञान हुआ होगा। निजी उद्योग में आस्था रखते हुए भी वे उन सेवाओं के राजकीय स्वामित्व या नियन्त्रण की व्यवस्था करने के लिए, जिनमें निजी उद्यम ने सार्वजनिक हित-साधन में अपनी विफलता प्रदर्शित की, लोक निगम की आवश्यकता मानने लगे थे। निजी उद्योग ने, जिसमें "नाकाफी एकीकरण" होता है, सामाजिक कुपोषण को जन्म दिया है। सर्वाधिकारवादी ढंग के राज्यवाद का, जिसमें "अत्यधिक एकीकरण" होता है, सामाजिक अतिभोजन (Social overfeeding) के रूप में परिणत हो जाना जरूरी हो जाता

है। इसलिए दोनों चरमपन्थों से बचने के लिए राष्ट्रीय या राष्ट्रीयकृत उद्योगों विशेषकर लोकोपयोगी उद्योगों का संचालन एक अर्द्ध-स्वतन्त्र स्व-स्वायत्त निकाय—लोक निगम—को सौंप दिया जाना चाहिए।

प्रशासनीय तन्त्र के रूप में लोक निगम निजी उद्योगों के लाभों से युक्त है, पर इसमें राज्य की जिम्मेदारी नहीं रहती और वाणिज्य कार्यों में नम्यता का अभाव कर यह नौकरशाही के खतरा से बचा रहता है, इसमें प्रशासन में स्वतन्त्रता रहती है, प्रबन्ध में लचीलापन रहता है, वित्त की स्वायत्तता रहती है और सरकारी हस्तक्षेप से यह मुक्त रहता है। संक्षेप में इसे 'निगमीय स्वतन्त्रता' (Corporate freedom) रहती है और इस प्रकार राष्ट्रीय स्वामित्व के ढांचे में, यह सरकार की शक्ति से, संगठन और निजी उद्योग की नम्यता से युक्त होता है। लोक निगम सामूहिकवाद (Collectivism) के ऊपर से आने वाले आदेशों के स्थान पर आर्थिक इच्छा की स्वायत्तता को लाता है। यह एक उपयोगी और आकर्षक प्रशासनीय उपाय है, जिसका ब्रिटेन और अमेरिका में अलग-अलग समय पर सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है। राजकीय उपक्रम में सरकारी प्रशासन की कुछ आन्तरिक विशेषताओं के कारण कुछ त्रुटियां मानी जाती हैं। कहा जाता है कि उसे कल्पनाहीन लोक सेवा आयोग द्वारा राजनीतिज्ञों द्वारा छांटे हुए कर्मचारियों से काम चलाने की परेशानी उठानी पड़ती है। उधर सरकारी लाल फीता तंग करता है। सरकारी लेखा परीक्षक रुकावटें डालता है। विनियोग (Apropriations) बनाने हों, तो संसद की सन्तुष्टि करने की आवश्यकता रहती है और राजनैतिक हस्तक्षेप की सम्भावना तो हमेशा ही रहती है। लोक निगम लोक-सेवा आयोग और काम-दिलाऊ आदमियों से बचकर अपना प्रशासनीय पिरामिड खड़ा कर सकता है। यह प्रशासनीय या प्रादेशिक विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वायत्तता के लिए बहुत अवसर प्रदान करता है। सुरक्षित विभागीय ढांचे में प्रत्येक आदेश के लिए नई दिल्ली में सभी मुख्यालय के कार्यालय का मुंह देखना पड़ता है। पर निगमित निकाय अपना मुख्य कार्यालय अपने कार्यक्षेत्र में रख सकता है।

पर यह कह देना उचित होगा कि "लोक निगम" शब्द प्रशासनीय अभिकरण के एक प्ररूप का नाम है और इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसे सब निगमों में ऊपर वर्णित विशेषताएँ होती हैं। प्रत्येक लोक-निगम की प्रकृति का निर्धारण विधान-मण्डल द्वारा किया जाता है, जो इसे इसके कार्य के लिए उपयुक्त विशेषताओं से युक्त करता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, लोक निगमों का उपयोग अमेरिकन सरकार ने और ब्रिटिश सरकार ने पिछले ४० वर्षों में किया है, और भारत सरकार ने अलग-अलग प्रयोजनों के लिए एक दूसरे से बहुत भिन्न अधिकार पत्र देकर पिछले पांच वर्षों में उनकी स्थापना की है, और अधिकारियों ने उनके साथ एक ही-सा व्यवहार नहीं किया है। यद्यपि लोक निगमों की संरचना और विशेषताएँ उन औद्योगिक वायु मंडल के अनुसार अलग-अलग रही हैं, जिनमें वे बनाये गये, पर उन में निर्दिष्ट अधिकतर गुण लोक निगमों के लाक्षणिक गुण हो सकते थे, और प्रायः हुए हैं,

उन सब में सामान्य चीज वह लक्ष्य था, जिसे रखकर सरकारी कार्य के प्रशासनीय साधन के रूप में लोक निगम बनाए गए और उनका कार्य सरकारी विभागों को नहीं सौंप दिया गया। नि सन्देह वह लक्ष्य प्रबन्ध की नम्यता और स्वतन्त्रता है।

इसलिए मोटे तौर से लोक निगम उस निगमित निकाय को कह सकते हैं, जिसे विधान मण्डल बनाता है और जिसकी शक्तियां और कार्य सुनिर्दिष्ट होते हैं और जो वित्तीय दृष्टि से स्वतन्त्र होता है—उसे किसी विनिर्दिष्ट क्षेत्र में या औद्योगिक या वाणिज्य कार्य के किसी विशिष्ट प्ररूप पर सुस्पष्ट एकाधिकार होता है। इसका प्रशासन एक मण्डल द्वारा किया जाता है, जिसे लोक प्राधिकरण (Public Authority) नियुक्त करता है और यह उसके प्रति ही उत्तरदायी होता है। इसकी पूंजी सरचना और वित्तीय परिचालन वैसे ही होते हैं, जैसे किसी लोक कम्पनी के, पर इसके अंशधारियों के रूप में कोई हित नहीं रहते और वे मताधिकार तथा मण्डल की नियुक्तियां करने की शक्ति से वंचित होते हैं। अमेरिका में टैनैसी वैली अथारिटी या टी वी ए और भारत में हाल में बनाया गया दामोदर घाटी कारपोरेशन विशिष्ट प्रदेशों के लिए स्थापित किये गए लोक निगमों के उदाहरण हैं। ब्रिटेन के पी एल ए, बी बी सी, सी ई बी, एल पी टी बी और भारत का औद्योगिक वित्त निगम विशिष्ट औद्योगिक कार्यों के लिए स्थापित किये गये निगमों के उदाहरण हैं। इस बात को दोहरा देने में भी कोई हर्ज नहीं कि लोक निगम सिर्फ एक साधन और तन्त्र है, यह सर्वाधिकारवादी या कम्युनिस्ट राज्यों में उपयोगी हो सकता है, जैसा कि रूस के ट्रस्टों, हर्मन गोएरिंग वर्क और दक्षिण मचूरियन कम्पनी से प्रमाणित होता है, पर जो देश लोकतन्त्र को अच्छी तरह चलाने पर तुला हो, जैसा करना भारत का लक्ष्य है, उसे उस क्षेत्र को सीमित करने पर आग्रह करना पड़ेगा, जिसके भीतर सरकार एक मात्र पूंजी लगाने वाली बन जाती है। टी वी ए में जो स्वायत्तता है, और जो दामोदर घाटी कारपोरेशन में भी रखी गयी है, वह ब्रिटिश निगमों में बहुत अधिक मात्रा में है। उदाहरण के लिए, युद्ध-काल में ब्रिटिश सरकार ने बी बी सी को उसकी नीतियों के नियमण में बहुत काफी स्वतन्त्रता दे रखी थी। इस तरह लोक निगम ने वह काम किया है, जो और कोई संस्था नहीं कर सकती। इसने न केवल सरकार के कार्यों में परिवर्तन कर दिया है, बल्कि सरकारी प्रशासन की भीतरी रचना भी बदल दी है।

सचालक मंडल—लोक निगम की सफलता में इस बात का बड़ा महत्त्व है कि मण्डल के सदस्य कौन हैं। मण्डल कार्य के आधार पर या बिना कार्य के आधार पर बना हो सकता है। इसमें सारा समय देने वाले सदस्य या आंशिक समय देने वाले सदस्य हो सकते हैं, या कुछ सारा समय देने वाले और कुछ आंशिक समय देने वाले सदस्य हो सकते हैं। चाहे जो रूप हो, पर चुनाव और नियुक्ति का तरीका बहुत महत्व की चीज है। मण्डल की नियुक्तियां योग्यता के आधार पर होनी चाहिए। हर एक काम के लिए सर्वोत्तम आदमी प्राप्त करने का लक्ष्य रखना चाहिए। प्रतिनिधित्व के आधार पर नियुक्ति या चुनाव का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। उद्योग का लोक हित की दृष्टि से दक्षतापूर्वक संचालन करने की क्षमता और योग्यता ही कसौटी होनी चाहिए। लोक-हित

का अर्थ जनता का हित है, और जनता का अर्थ सब मनुष्य, नर-नारी और बच्चे हैं—जनता का अर्थ उनके मजदूरी कमाने वाले, रुपये लगाने वाले, मतदाता या उपभोक्ता आदि सम्प्रदाय रूपों में नहीं है। सद्भावनापूर्ण व्यक्तियों को, जो सहयोगियों के साथ मिलकर चल सकें और जिनमें पर्याप्त सहानुभूति के साथ न्याय की भावना हो, कार्य-भार सौंपा जाना चाहिए, पर मण्डल के सदस्यों का चुनाव, खासकर तब जब वह कार्य के आधार पर बना हुआ मण्डल (Functional Board) होता है, एक कठिन समस्या है, क्योंकि दुर्लभ गुणों से युक्त व्यक्तियों का चुनाव करना है। इस समस्या के दो पहलू हैं। यदि हम समापति एक बहुत ऊँचे व्यक्तित्व के आदमी को चुन लें, जिसमें सफलता के लिए आवश्यक बहुत से गुण मौजूद हों, और अन्य व्यक्ति मध्यम दर्जे के रखें, तो हमें जी-हजूर तो मिल जाएंगे पर सहकारी नहीं मिलेंगे। दूसरी ओर, यदि हम एक सी शक्ति और सूझ वाले आदमी चुन लें पर उनमें समझौते और समायोजन की भावना न हो, तो यदि उनके मतभेदों को निपटाने के लिए कोई प्रधान व्यक्ति नहीं होगा, तो उनमें आपसी ईर्ष्याएं और मतभेद सदा बने रहेंगे।

आम तौर पर निजी उद्योगों में सफलता पाए हुए व्यक्ति को लोक-निगमों के सचालन के लिए चुनने की आम प्रवृत्ति है। पर सदा यह अनुभव नहीं किया जाता कि जो आदमी निरे व्यक्तित्व के जोर से और अपनी एकाकी सत्ता के जोर पर सफल हुआ है, और इस प्रकार आत्म-निरीक्षण का अभ्यासी है, वह ऐसी स्थिति में सफल न हो सकेगा, जिसमें समझौते, मेल-मिलाप, समायोजन, अनुकूलनीयता और दूसरे की बात मान लेने के लिए तैयार रहना आवश्यक है। कभी-कभी उसका निर्णय गलत भी हो सकता है। इसके अलावा, मण्डल का प्रत्येक सदस्य प्रबल सामाजिक चेतना से युक्त होना चाहिए और उसका स्वभाव विभाजित प्राधिकार का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त होना चाहिए।

यदि यह फैसला किया जाए कि मण्डल कार्य के आधार पर नहीं होगा, तो इसके एकदम नीचे निगम को वैसे ही विभागों में संगठित करना होगा, जिन पर पूर्णतः जिम्मेवार प्रबन्धाधिकारियों का नियंत्रण रहेगा। टी वी ए के अनुभव से हमें यह शिक्षा मिलती है कि सचालक मण्डल को सिर्फ नीति-निर्माण करना चाहिए और यद्यपि उसे प्रबन्ध के ऊपर पूर्ण देख-भाल और अन्तिम नियन्त्रण रखना चाहिए, पर उसे रोजाना के प्रशासनीय कार्यों में दस्तन्दाजी नहीं करनी चाहिए। ऐसी व्यवस्था में महाप्रबन्धक या प्रबन्ध सचालक को संगठन के सब कामों पर पूर्ण प्रशासनीय नियन्त्रण दे देना चाहिए। वह मुख्य प्रबन्धाधिकारी होगा, जिसे सब विभाग और उनके प्रशासनीय अफसर अपने कार्य की रिपोर्ट देंगे। वह सचालक मण्डल की बैठकों की कार्य-सूची तैयार करके, मण्डल-कार्यवाही के लिए विषय प्रस्तुत करके, निगम के क्रिया-कलापों के बारे में मण्डल को जानकारी देकर, मण्डल द्वारा मांगी गई विशेष रिपोर्ट तैयार करके और निगम के कार्यों के बारे में सिफारिशें करके मण्डल की सहायता करेगा। मण्डल के निश्चय कर लेने और नीतियां बना लेने के बाद महा-प्रबन्धक का काम है कि वह उनकी सूचना प्रशासनीय संगठन को दे।

प्रबन्ध—इसमें हम प्रबन्ध के बुनियादी सवाल पर आ जाते हैं। यदि यह सच है कि मुख्य बात प्रबन्ध का आचार और सद्भावना है तो राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीयकृत उद्योग उसी सीमा तक सहयोग प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं, जहां तक वे निजी उद्योग की अवस्थाओं में काम संभालने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सहानुभूति और कल्पनापूर्ण अन्तर्दृष्टि के व्यक्तियों को ऊँचे पदों पर नियुक्त करें। यदि यह मान लिया जाए कि निजी मालिकों पर हृदयहीनता का सन्देह किया जाता है, तो निरे स्वामित्व के परिवर्तन से सन्देह का निराकरण नहीं हो सकता। यदि नया राजकीय प्रबन्ध यह सिद्ध नहीं कर देता कि उसे सब प्रकार के मजदूरों के प्रति वस्तुत सहानुभूति है, तो वह शीघ्र ही कठिनाई में पड़ जाएगा। राज्य के स्वामित्व का मामला आदमी को और भी अधिक बारीकी से यह सोचने के लिए मजबूर करता है कि आशय शब्द का क्या अर्थ है। निःसन्देह लोक निगम जैसा निकाय अपने कर्मचारियों को लाभ ही पहुँचाना चाहता है। इसकी घोषित नीति उनके साथ न्यायसंगत व्यवहार करने की है, और निःसन्देह इसके अनेक प्रबन्ध अधिकारी इस नीति को अमल में लाने का यत्न करते हुए प्रतीत होते हैं। पर इतना ही काफी नहीं। उन्हें अपनी ओर से सामाजिक कल्याण के लिए सक्रिय दिलचस्पी होनी चाहिए। मजदूर यह अनुभव करना चाहते हैं कि वे इस बात पर ध्यान दें और गहराई से ध्यान दें कि मजदूरों के साथ कैसा व्यवहार किया जा रहा है। यह बात राजकीय कारखानों में और भी अधिक सच है।

प्रमुख राजपदों पर काम करने वाले व्यक्तियों को बहुत बड़ी-बड़ी तनख्वाहें देने का फैशन हो गया है, जिसका यह परिणाम हुआ है कि ये ऊँचे वेतन पाने वाले लोग अपने सहयोगियों और मजदूरों की तुलना में बहुत अधिक शक्ति और शान पा जाते हैं (रास्मन)। बहुधा वे निरंकुश हो जाते हैं और इस प्रकार मजदूरों और अन्य लोगों को निरन्तर कष्ट पहुँचाते हैं। प्रायः वे जानबूझकर उतना कष्ट नहीं पहुँचाते जितना अपनी उपेक्षा और उदासीनता से पहुँचाते हैं जिससे मजदूरों में 'मूक गुस्ताखी' पैदा हो जाती है। इसलिए लोगों को निजी उद्योगों से हटाकर लोक निगमों में नियुक्त कर देना और प्रायः मोटी-मोटी तनख्वाहों पर नियुक्त कर देना मुसीबत मोल लेना है। ये लोग ऐसी स्थितियां पैदा कर देते हैं जिनमें मजदूर—सही या गलत—यह मानने लगें, कि उन्हें मजदूरों में कोई दिलचस्पी नहीं है। वे इस कारण ऐसा व्यवहार करने लगते हैं, क्योंकि राज्य की नौकरी उन्हें अंशधारियों के प्रति, जो लाभांश मांगते हैं, सर्वोच्च जिम्मेदारी से मुक्त कर देती है, और यह स्वतः यह गारंटी नहीं करती कि वे मनुष्यों के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक अन्तर्दृष्टि और सहानुभूति से व्यवहार करेंगे। सच बात तो यह है कि राज्य की सेवा से उन्हें शिथिलता और आलस्य का लाइसेंस मिल गया मालूम होता है। इसलिए राजकीय प्रबन्ध का काम ऐसे व्यक्तियों को सौंपना चाहिए जो इंजीनियर या वित्तपोषक या वकील या सरकारी अफसर की बजाय सामाजिक वैज्ञानिक हों।

इकाई के उचित प्रशासन के लिए संस्था बना देना ही काफी नहीं। जिम्मेदारी उचित ढंग से बटी हुई होनी चाहिए और मूलभूत और उत्तरदायिता उस परिणामों से देखी जाएगी, व्यापक होनी चाहिए, अर्थात् विकेन्द्रीकरण भी होना चाहिए। विकेन्द्रीकरण शब्द का प्रयोग प्राय भौगोलिक विकिरण के लिए किया जाता है। पर ये दोनों चीजें एक नहीं हैं। जिन संगठनों में अनेक प्रकार के काम नहीं हैं और बराबर एक ही काम की आवृत्ति नहीं होती उनमें भौगोलिक विकिरण परमावश्यक है, क्योंकि इससे विकेन्द्रीकरण में सुविधा होती है। उदाहरण के लिए, दामोदर घाटी कारपोरेशन या टेनेसी वैली अथारिटी जैसी संगठन में भौगोलिक विकिरण के अर्थ में विकेन्द्रीकरण परमावश्यक है। इसमें स्थानीय प्रबन्धकर्ताओं को काम करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। उचित रीति से ममतामय हुआ प्रबन्धक दूरस्थ प्रधान अधिकारी की अपेक्षा बहुत अच्छा रहेगा। ऐसी अवस्था में केन्द्रीकृत प्राधिकरण का विकेन्द्रीकृत प्रशासन न केवल लक्ष्य है बल्कि भार आवश्यकता है। जिन संगठनों में पुनरावर्ती विस्तार (Repetitive extension) होता है जैसे औद्योगिक वित्त निगम या डाकखाना या रेलवे बोर्ड या रिजर्व बैंक भी, उनमें केन्द्रीयकरण की ओर झुकाव रहना चाहिए। सूझ-बूझ और जिम्मेवारी को व्यापक करने के अर्थ में विकेन्द्रीकरण भूगोल में नहीं पैदा होता, बल्कि मन की एक प्रवृत्ति में पैदा होता है, और यह सब प्रकार के क्रियाकलापों में अवश्य रहना चाहिए। इसमें मशीनी दृष्टिकोण के बजाय मानवीय दृष्टिकोण पैदा होता है। इस अर्थ में बहुत अधिक केन्द्रीकरण का परिणाम यह होगा कि उच्च पदाधिकारियों की संख्या बढ़ जाएगी। संचार मार्गों में रुकावट आ जाती है, और फैसले करने में देर लगती है। इसमें भी बुरी बात यह है कि इसके परिणामस्वरूप कागजों के आधार पर फैसले किए जाने लगते हैं, जिससे मानवीयता कम हो जाती है। मनुष्य की मनुष्य के प्रति अमानवीयता की बहुत कुछ व्याख्या इस बात से होती है। निःसन्देह केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति इस ख्याल के कारण है कि प्रबन्ध के लिए मस्तिष्क उदार-सम्पन्नता और प्रबन्ध की क्षमता भारत में बड़ी सीमित वस्तुएँ हैं। निजी उद्योगों में जिनमें "पुत्रों" या विश्वस्त व्यक्तियों को ही प्राय बुद्धि का भण्डार समझा जाता है, यह आशा की जा सकती है, पर राजकीय उद्योगों की अवस्था में इस कल्पना का कोई स्थान नहीं है। अगर आदमी जरा दूर भी देखे, तो योग्यता की कोई कमी नहीं होगी। लोक-निगम एक कल्पनायुक्त परीक्षण है। यह प्रेम-सम्बन्ध पैदा करने में सफल हो सकता है, यदि इसकी जिम्मेवारी उन लोगों को सौंपी जाए, जिनमें हर तरह के मजदूर के सम्पूर्ण मानवीय अंग का सहयोग लेने की तीव्र अभिलाषा हो, जिनका मस्तिष्क उदार-सम्पन्न हो, हृदय सहानुभूति-युक्त हो और न्याय काम करने में समर्थ हो। औद्योगिक रूप में कहें तो सबके संयुक्त प्रयत्न से सबका लाभ होगा, और हमें आजादी का सबसे अधिक आश्चर्य-जनक उपहार प्राप्त होगा—भारत औद्योगिक, बौद्धिक और शारीरिक सब दृष्टियों से सर्वोत्तम कोटि का राष्ट्र होगा।

बात समाप्त करने से पहले उन कुछ प्रमुख योजनाओं का उल्लेख कर देना

उचित होगा, जिन पर इस समय काम हो रहा है। १९५१ मे भारत के विभिन्न भागो मे १३५ परियोजनाएँ चल रही थी, जिनमें से १२ मुख्य परियोजनाएँ हैं। इन प्रमुख परियोजनाओ मे से ८ बहुप्रयोजन योजनाएँ हैं, तीन बिजली योजनाएँ है और १ सिंचाई योजना है। प्रमुख योजनाओ मे से बिहार की दामोदर घाटी योजना, पजाब की भाखडा-नागल योजना, उडीसा की हीराकुण्ड योजना, मद्रास की तुगभद्रा योजना और मद्रास तथा उडीसा के नीचे की सीमा पर मचकुण्ड जल-विद्युत योजना तथा पश्चिमी बगाल की मयूराक्षी योजना का उल्लेख करना उचित होगा। दामोदर घाटी परियोजना भारत मे ऐसा एक ही उदाहरण है, जिसमें किसी अधिनियम द्वारा लोक निगम के रूप मे राज्य का कोई उपक्रम स्थापित किया गया है, और इस पर अन्य परियोजनाओ की अपेक्षा अधिक विस्तृत विचार करने की आवश्यकता है। अत इसकी चर्चा सबसे अन्त मे की जाएगी।

भाखडा-नागल परियोजना—पजाब की इस परियोजना में भाखडा के पास अम्बाला जिले मे रोपड से लगभग ५० मील पर सतलुज नदी के आर-पार ६८० फुट ऊँचा बाध बनाया जा रहा है। इसकी नीव अप्रैल १९५१ में रखी गई थी, और राज्य सरकार इसे जल्दी से जल्दी पूरा करना चाहती है और १९६० से पहले ही पूरा कर लेना चाहती है, बशर्ते कि केन्द्र से आवश्यक सामान और धन आता रहे। परियोजना का नागल वाला भाग पूरा हो गया है और उससे लाभ उठाया जाने लगा है। अब भाखडा बाध अपने निर्माण की अन्तिम अवस्था मे आ गया है। यह बाध नीव से ६८० फुट ऊँचा जाएगा, जिसमे ५६ मील लम्बी और लगभग ३ मील चौडी एक झील बन जाएगी। भाखडा बाध से लगभग ८ मील नीचे नागल बाध बनाया गया है। सारी परियोजना प्रतिवर्ष ३६ लाख एकड क्षेत्र की सिंचाई करेगी जिसमे १३ लाख टन अतिरिक्त अनाज और ८ लाख गाठ रुई का उत्पादन होगा। यह परियोजना ४० हजार किलोवाट बिजली भी पैदा करेगी, जो पजाब, पेप्सू, राजस्थान, दिल्ली और उत्तरप्रदेश में काम आएगी। इस परियोजना के पूरा हो जाने पर पजाब फिर हमारा अनाज भण्डार बन जाने की आशा है। इससे राज्य के उद्योगीकरण को भी उद्दीपन मिलेगा। इस परियोजना पर १३० करोड रुपये खर्च होने की सम्भावना है।

हीराकुण्ड परियोजना—उडीसा की यह परियोजना महानदी पर बनाये जाने वाले बाधों मे से पहली है। क्रमश इसके पूरा होने पर इस परियोजना से ३२१००० किलोवाट बिजली पैदा होने की और १० लाख एकड से अधिक भूमि की सिंचाई होने की आशा है। इस परियोजना के निर्माण की दिशा मे एक महत्वपूर्ण कदम १९५० मे नदी पर बनाया गया रेल-रोड पुल था, और बाध निर्माण १९५१ मे भी अच्छी तरह होता रहा। इस पर कुल ५५ करोड रुपये खर्च आने का अनुमान है।

तुगभद्रा परियोजना—यह परियोजना मद्रास और हैदराबाद दोनो को लाभ पहुँचाएगी। बेलारी जिले मे मल्लपुरम के निकट तुगभद्रा नदी पर बाध बनाया जाएगा। यहा से दो नहरे निकलेंगी। एक मद्रास की तरफ होगी, जो २५५ मील लम्बी होगी और ३ लाख एकड की सिंचाई करेगी। हैदराबाद की तरफ की नहर ४१९००० एकड

की सिंचाई करेगी। इस परियोजना से १,५५,५००० किलोवाट बिजली पैदा होगी और इसके परिणामस्वरूप २१,०००० टन अतिरिक्त अनाज का उत्पादन होगा। इस परियोजना पर ८ करोड़ रुपये लागत आने का अनुमान है।

मचकुण्ड योजना—मचकुण्ड जल-विद्युत योजना में मचकुण्ड नदी के पानी को नियन्त्रित करने की योजना है। यह नदी मद्रास और उड़ीसा की सीमा बनाती है। बिजली पैदा करने की जगह डडमा जलप्रपात पर है जो सड़क द्वारा विशाखापटनम से लगभग १०७ मील है। इस परियोजना को मद्रास और उड़ीसा मिलकर पूरा कर रहे हैं और पूंजी उद्व्यय तथा उत्पादित बिजली में उनका हिस्सा ७ और ३ के अनुपात में होगा।

मयूराक्षी जल-भण्डार परियोजना—पश्चिमी बंगाल की इस परियोजना पर साढ़े पन्द्रह करोड़ रुपया खर्च आने का अन्दाज था। इससे १७० हजार एकड़ जमीन को सारे साल सिंचाई हो सकेगी और ३६ लाख टन अतिरिक्त अनाज पैदा होगा। यह इतनी जल-विद्युत भी पैदा करेगी, जितनी आसपास के देहाती क्षेत्रों की प्रकाश व्यवस्था के लिए काफी होगी और बाढ़ को नियन्त्रित करके ६ लाख एकड़ भूमि को हर साल जलमग्न होने से बचाएगी।

दामोदर घाटी कारपोरेशन की चर्चा करने के पहले कुछ अन्य योजनाओं का उल्लेख कर देना उचित होगा, नामतः उत्तर प्रदेश की शारदा विद्युत योजना, मध्य भारत और राजस्थान की चम्बल सिंचाई व शक्ति योजना, मध्य प्रदेश की लखावली सिंचाई बिजली योजना। ११३ करोड़ रुपये की कोसी योजना, जो ६ भागों में विभाजित की गई है, को पहली किश्त १९५१ में मंजूर की गई थी। पहली अवस्था में ११ करोड़ रुपये खर्च होने का तखमीना है, जिसमें से ७ करोड़ रुपए नेपाल सरकार देगी। इस परियोजना से बिहार और नेपाल में कुल ४० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी और १० लाख किलोवाट जल विद्युत शक्ति पैदा होगी।

दामोदर घाटी कार्पोरेशन

दामोदर घाटी एक बहुत बड़ा नदीक्षेत्र है। इसमें बिहार और बंगाल के कुछ-कुछ हिस्से शामिल हैं और इसका क्षेत्रफल ८५००० वर्गमील है। दामोदर नदी आकार में छोटी है, तो भी इसका जल मार्ग ३३६ मील है। यह विनाश करने में दैत्य के समान है और इसी कारण इस पश्चिमी बंगाल में "दुख नदी" कहते हैं। दामोदर घाटी परियोजना, जो अमेरिका की टैनेसी वैली अथारिटी के नमूने पर बनाई गई है, दामोदर नदी को काम में जोतकर घाटी को धन और समृद्धि वाले क्षेत्र के रूप में परिवर्तित करने का लक्ष्य रखती है। यह परियोजना जुलाई १९४८ से, जबकि दामोदर घाटी कारपोरेशन संसद के एक अधिनियम द्वारा स्थापित किया गया था, चल रही है। उस योजना में ८ बांध हैं, जिनके साथ जल-विद्युत स्टेशन हैं, दो सहायक कारखाने हैं, जिनकी कार्य क्षमता २४० हजार किलोवाट है, और एक और थर्मल पावर स्टेशन है

जिसकी क्षमता २ लाख किलोवाट है। राष्ट्रीय और राष्ट्रीयकृत उद्योग चलाने के लिए बनाये गए एक अधिकरण के रूप में लोक निगम पर विचार करते हुए यह बताया गया था कि इस विशेष अधिकरण की विस्तृत शक्तियाँ अविभाजित जिम्मेदारी और साथ ही लाल फीते तथा अनम्यता से मुक्त होनी चाहिए। इसमें साहस और सूझ-बूझ की भावना होनी चाहिए और इसके तरीके लोकतन्त्रीय होने चाहिएँ। दामोदर घाटी कार्पोरेशन अधिनियम ने ऐसे ही अधिकरण का उपबंध किया है। इस निगम का प्रबन्ध तीन सदस्यों के एक मंडल के हाथ में है, जिनमें से दो राज्य सरकारों से परामर्श करके नियुक्त किये जाते हैं। विद्युत मंत्री ने विधेयक पर विचार के समय संसद को यह विश्वास दिलाया था कि "नियुक्तियाँ सिर्फ योग्यता के आधार पर की जाएगी, जिसमें सिर्फ वे लोग निगम में नियुक्त हों, जो सच्चे और ईमानदार, स्वतन्त्र निर्णय की शक्ति वाले, आधुनिक वैज्ञानिक आधारों पर भारत में आर्थिक विकास की स्पष्ट अवधारणा रखने वाले और मनुष्यों तथा घटनाचक्र का काफी विस्तृत अनुभव रखने हुए हों। निगम की सहायता के लिए एक सचिव और एक वित्तीय सलाहकार हैं। अधिनियम में अधिकतम स्वायत्तता की व्यवस्था की गई है। बस केन्द्रीय सरकार को नीति-सम्बन्धी मामलों में हिदायतें देने का अधिकार है। पर व्यवहार में निगम की स्वायत्तता कुछ सरकारी क्षेत्रों की आँख की किरकिरी बन गई प्रतीत होती है।" असल में सरकार ने हिदायतें देने की असीमित शक्ति हासिल कर ली है, जिससे स्वायत्तता खत्म हो जाती है। निगम के कार्य-संचालन के इस पहलू पर श्री गोरवाला ने इतना अच्छा विचार किया है कि उसका विस्तृत उद्धरण देना उचित होगा। आपने लिखा है "निगम का इतिहास कुछ ऐसी अशोभाजनक घटनाओं की शृंखला बन गया प्रतीत होता है, जिनमें निगम को अपनी बहुत सी शक्ति उसकी स्वायत्तता कायम रखने का प्रयत्न करने में लगानी पड़ी है। और सरकार के कुछ क्षेत्रों को अपनी शक्ति निगम को सचिवालय के अधीनस्थ विभाग की स्थिति में लाने का प्रयत्न करने में लगानी पड़ी है। बजट अनुदान, विदेशी विनिमय का बँटन, इन सब बातों पर विवाद का अवसर आया है ... मालूम हुआ है कि हाल में ही यह निश्चय किया गया है कि इसके मुख्य इंजीनियर द्वारा तैयार की गयी और इसके सलाहकार इंजीनियरों द्वारा अनुमोदित जो तीन विशेष योग्यता वाले व्यक्ति हैं, योजनाएँ तीनों जिम्मेदार सरकारों के इंजीनियरिंग विभागों द्वारा फिर जाँची जाएँगी। अगर इस बात का उदाहरण देखना हो, कि किसी लोक निगम से कैसा व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए तो यह बात उसे पेश करती है। अगर सरकार का यह विचार है कि उसने निगम बनाकर भूल की है, और वह विभागों द्वारा काम करना पसन्द करेगी, तो सबसे अच्छा यह है कि वह उस अधिनियम का निरसन (Repeal) कर दे। अगर उसका यह विचार है कि निगम ने जो काम करना है, उसके लिए इसके मौजूदा कर्मचारी ठीक नहीं, तो इसे उनकी जगह दूसरे आदमी रख देने चाहिएँ। मतलब यह है कि निगम बनाने, और फिर उसे सचिवालय के अधीन प्रशासनीय विभाग की तरह समझने में कोई तुक नहीं है।

अध्याय : : १६

लोकोपयोगी उद्योग

अर्थ और क्षेत्र—लोकोपयोगी उद्योग गैस, पानी, बिजली, नगरीय यात्री परिवहन आदि उन उद्योगों या सेवाओं के लिए एक व्यापक नाम है, जिनमें "जनता की दिलचस्पी" इस कारण बहुत होती है कि ये ऐसे आवश्यक अपरिहार्य एकाधिकार या अर्ध-एकाधिकार हैं, जिन पर लोक-हित के लिए राजकीय विनियमन अधिक मात्रा में होता है, और उनको उचित रीति से कार्य करने में सुविधा देने के लिए विशेष अधिकार दिये जाते हैं। कानूनी दृष्टि में लोकोपयोगी उद्योग का एक विशिष्ट वर्ग है, जो रूढ़ि विधि के *"लोकहित के सिद्धान्त"* पर आधारित है। रूढ़ि विधि के विकास के आरम्भिक दिनों में कुछ पेशों को अलग करके उन पर विशेष अधिकार और कर्त्तव्य डाल दिये गये थे। विशेष रूप से कर्तव्य पर बल दिया गया था, जो मुक्त व्यापार या यथेच्छाकारिता का विचार प्रचलित होने के बाद भी और व्यापार के सरकार द्वारा अनियन्त्रण पर इतने बल देने के बाद भी जारी रहा। लोकहित का सिद्धान्त लोकोपयोगिता से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है कि दोनों पदावलियों को प्राय समार्थक माना जाता है। लोकोपयोगिता फर्म उन सीमाओं के कारण जो क्रेताओं के साथ व्यवहार की स्वतन्त्रता पर सरकार लगा देती है, अन्य कारबार से आसानी से अलग पहिचाना जाता है। पर इन पाबन्दियों से उन्हें कुछ लाभ भी होता है, क्योंकि उपयोगिता कम्पनियां अपनी वस्तुओं और सेवाओं के लिए अन्य कम्पनियों की अपेक्षा अधिक आसानी से प्रतियोगिताहीन बाजार प्राप्त कर सकती हैं। एकाधिकार होने के कारण ये कम्पनियां अपने लेखाकर्मों, वित्तों, उपार्जनों, कीमतों और सेवानीतियों पर राजकीय नियन्त्रण के अधीन होती हैं। अधिकतर विनियमन तर्कसंगत उपार्जनों और कीमतों के विषय में किया जाता है। विक्रेता या क्रेता कोई भी वे कीमतें नहीं पा सकते, जो वे चाहते हैं। विक्रेताओं के एकाधिकार के कारण बहुत ऊंची कीमतें नहीं मिल सकतीं और क्रेता उतनी कम कीमतें करने का आग्रह नहीं कर सकते। जितनी पर विक्रेता न टिक सके। कीमत के नियन्त्रण के साथ-साथ उत्पादन पर नियन्त्रण भी किया जाता है। उदाहरण के लिए, उपयोगिता कम्पनी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निर्धारित कीमतों पर बिना भेद-भाव के सब ग्राहकों की सेवा करे। उपयोगिता कम्पनी को अपनी एकाधिकार की शक्तियों का दुरुपयोग नहीं करने दिया जाता, और उससे यह आशा की जाती है कि वह अपने कारखाने की क्षमतापर्यन्त सेवा करे, जो ग्राहक आयें उनकी सेवा करे, और सेवा को निश्चित, तर्कसंगत कीमत पर करे।

लोकोपयोगिता कम्पनियों की आर्थिक विशेषताएं—लोकोपयोगिता कम्पनियों में कुछ विशेष लाक्षणिक बातें होती हैं, जो उनमें अन्य उद्योगों से भेद करती हैं पर यह स्मरण रखना चाहिए कि बहुत अधिक यथार्थ भेद करना सम्भव नहीं है, और न इसका यत्न किया जाता है क्योंकि कभी-कभी गैर-उपयोगिता उद्योगों में लोकोपयोगिता उद्योगों की सब या लगभग सब आर्थिक विशेषताएं दिखाई देती हैं । यहां यह बताने की आवश्यकता है कि लोकोपयोगिता उद्योग में आमतौर पर ये विशेषताएं होती हैं और अन्य उद्योगों में ये हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकती हैं । इसलिए लोकोपयोगिताओं की दो आधारभूत आर्थिक विशेषताएं हैं नामतः (१) आवश्यकता और (२) एकाधिकार या एकाधिकार की या अपर्याप्त प्रतिस्पर्द्धा की ओर झुकाव । इनमें उनकी प्रविधियों का स्थानीय रूप, विनियमन और विशेष रियायतें तथा साधारण लागत और मांग की विशेषताएं और जोड़ी जा सकती हैं ।

आवश्यकता—प्रथम तो लोकोपयोगिताएं आवश्यक या अपरिहार्य वस्तुएं या सेवाओं की व्यवस्था करती हैं, जिनका बाजार में अबाधित प्रवाह होना आवश्यक है । कोई सेवा या वस्तु इसलिए आवश्यक या अपरिहार्य है, क्योंकि इसकी नित्यप्रति आवश्यकता है और समुदाय का बहुत बड़ा भाग उसे काम में लाता है । उदाहरण के लिए, पानी, गैस, बिजली, नगरीय परिवहन ।

एकाधिकार या अपर्याप्त प्रतिस्पर्धा—लोकोपयोगी उद्योग आमतौर से एकाधिकारी या सिर्फ नाममात्र के लिए प्रतियोगिता वाली अवस्थाओं में अपनी वस्तुएं और सेवाएं उत्पादित करते और बेचते हैं । एकाधिकार के कई प्रभेद हैं । पहला है स्वाभाविक एकाधिकार जो उपयोगिता उद्योगों का सामान्य लक्षण है । इस शब्द से यह ध्वनित होता है कि बाजार में लोकोपयोगिता सेवा का नियन्त्रण किसी प्रकार "स्वाभाविक रूप से या सहज एकाधिकारी होता है, और अविनियमित कम्पनियों की प्रतिस्पर्धी मयोजन द्वारा अनिवार्यतः स्थापना हो जाती है और जिस बाजार में कभी कई कम्पनियां थीं, उस पर अन्त में एक कम्पनी छा जाती है । इसलिए एकाधिकार लोक-हित के सिद्धान्त के अनुसार विशेष रियायत देने और विनियमन लागू करने से पैदा होता है। सेवा के सम्भरण या अवस्थापन में स्वाभाविक परिसीमन के आधार पर भी एकाधिकार होता है, उदाहरण के लिए, किसी समुदाय के पानी प्राप्त करने के एकमात्र स्रोत को नियन्त्रित करने वाली कम्पनी या नगरपालिका को सम्भरण का एकाधिकार प्राप्त हो जाता है । यही अधिकार बिजली प्राधिकरण या नगरीय परिवहन निगम को भी प्राप्त होता है । इनकी विशेषता यह है कि इनका कारबार स्थानीय कारखानों में और क्षेत्र की दृष्टि से सीमित बाजार में होता है, और इसी तरह के दूसरे कारखाने या सम्भरण-व्यवस्था अपव्ययपूर्ण और अन्ततः उपभोक्ताओं के लिए बोझ होगी । कुछ उपयोगिताएं ऐसी सेवाएं करती हैं, जिनमें स्थान का बन्धन होता है, जैसे टेलीफोन । माल के सचालन और सम्भरण के अभाव तथा प्रतिस्पर्धी सचार सेवाओं के कारण पैदा हो सकने वाले भ्रम के खतरे से इनमें से प्रत्येक को अपना एकाधिकार मिल जाता है । एकाधिकार के इन सब कारणों से

अधिक महत्त्वपूर्ण आर्थिक एकाधिकार की अवस्था है । निर्माण की लागत, लगाई गई पूंजी के मुकाबले में थोड़ी आमदनी, आदर्श लोड घटक की अशक्तता और आवश्यकता से पहले निर्माण करने की कानूनी आवश्यकता, इन सब इकट्ठी बातों के कारण उपयोगिता की सचालन की लागत लगातार कम होने लगती है। ऐसी स्थिति अनिवार्यत प्रतियोगिता को बिल्कुल अस्थायी बना देती है, और अन्त में सरकारी हस्तक्षेप न होने पर भी संयोजन और एकाधिकार हो जाता है।

विनियमन और रियायत—क्योंकि लोकोपयोगिता उद्योग को लोक हित की स्थिति प्राप्त होती है और परिणामत इस का अधिकतम सामाजिक लाभ की दृष्टि से कार्य करना अपेक्षित होता है, इसलिए इस पर गैर-उपयोगिता एकाधिकार उद्योग की अपेक्षा अधिक कठोर विनियमन किया जाता है । एक ओर तो राजकीय विनियमन तर्कसगत कीमत पर अच्छी क्वालिटी का नियमित संभरण सुनिश्चित बनाने के लिए किया जाता है, और दूसरी ओर सार्वजनिक सुविधाओं में बाधा डालने के उनके अधिकार को विनियमित करने में और सार्वजनिक जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करने में इसका उपयोग किया जाता है ।

लोकोपयोगिता की एक और विशेषता यह है कि उसके कारबार आरम्भ करने से पहले सरकार को उसे विशेष रियायत देनी होगी, क्योंकि अपने कार्यों की उचित पूर्ति के लिए उसे सार्वजनिक सुविधाओं में बाधा डालनी होगी, यथा ट्राम की लाइन डालने के लिए या पानी के लिए नल या गन्दगी के लिए बड़े नल डालने के लिए सड़कों को खोदना और तोड़ना होगा, तथा व्यष्टिगत सम्पत्ति के अबाध उपभोग में बाधा डालनी होगी । कीमत का नियन्त्रण इसलिए किया जाता है कि समुदाय के सब लोग सेवा का उपयोग कर सकें और भेद-भाव तथा अनुचित-तरजीह न हो सके, यो तब हो सकती है, जब कोई लोचहीन माग वाली उपयोगिता सेवा अविनियमित हो। लोकोपयोगिता उद्योगों के लाभ इस तरह विनियमित किए जाते हैं, कि उनमें कुछ पूंजी पर एक विनिर्दिष्ट तर्कसगत लाभ मिल जाए। और यदि कुछ बच रहे तो वह बाद को कीमतों में कमी करके उपभोक्ताओं को लौटा दिया जाए । जब तक उपयोगिता उद्योग का स्वामित्व और प्रबन्ध निजी उद्योगपति के हाथ में है, तब तक समुदाय के हित की दृष्टि से इस का विनियमन और नियन्त्रण आवश्यक है। राष्ट्रीयकरण हो जाने पर यह अपने सचालन और प्रभाव की दृष्टि से लोकतनीय होना चाहिए ।

लागत और माग—लोकोपयोगिता उद्योगों में मशीनों और साज-सज्जा में स्थायी पूंजी तो बहुत लगानी पड़ती है, और पूंजी का टर्न-ओवर बहुत कम होता है । परिणामत प्लांट में बहुत रुपया लगाने वाली अन्य फर्मों की तरह उपयोगिता कम्पनियों में भी पूंजी प्रतिस्थापन (Capital substitution) की दर हल्की होती है । इसलिए बेसमझी से धन का लगाना उनके लिए विनाशकारी है । उनके पास प्लांट क्षमता इतनी काफी होनी है—या यों कहिए कि होने की आशा की जाती है—कि वे उन सब उपभोक्ताओं की सेवा कर सकें, जो मौजूदा कीमतों पर खरीदने के इच्छुक

है । पर इसमें भी बड़ी बात यह है कि उनके पास कुछ अप्रयुक्त क्षमता भी अवश्य रहनी चाहिए, जिससे वे किसी-किसी समय होने वाली बहुत अधिक माग (Peak demand) पूरी कर सकें, क्योंकि उपयोगिता सेवा संग्रह-योग्य नहीं होती। क्योंकि उपभोक्ताओं की मांगें किसी खास समय के लिए होती हैं, इसलिए आवश्यक रूप से उनके पास अधिकतम माग के समयों के अलावा और समय कुछ अप्रयुक्त क्षमता रहती होगी । उपयोगिता सेवा की माग की प्रकृति ही ऐसी है कि वह प्रत्यक्ष और व्युत्पादित (Derived) दोनों प्रकार की होती है और इसी तरह यह प्रत्यास्थ (Elastic) और अप्रत्यास्थ (Inelastic) दोनों प्रकार की हो सकती है । प्रत्यक्ष माग का अर्थ है, सीधे उपभोग के लिए सेवा लेना । उदाहरण के लिए, रोशनी के लिए बिजली और दैनिक उपयोग के लिए पानी । परोक्ष माग का सम्बन्ध सेवा के उस उपयोग से है जो माल उत्पादन के लिए किया जाता है। व्युत्पादित माग प्रत्यास्थ और अप्रत्यास्थ दोनों तरह की होने लगेगी । यदि बिजली का कोई स्थानापन्न सुलभ होगा, तो—और बिजली की लागत कुल लागत का मुख्य भाग है—वहा यह प्रत्यास्थ होगी । उपयोगिता उद्योग की प्रत्यक्ष माग सेवा की कीमत और सेवाओं की आय इन दोनों दृष्टियों से अप्रत्यास्थ होने लगती है। ऐसा जिन उपयोगिता सेवाओं का उपयोग करने के अभ्यस्त हो जाते हैं, उनके उपभोग को वे तब भी नहीं छोड़ना चाहते, जब उनकी कीमतें बढ़ जाएँ, या आमदनियां घट जाएँ और अन्य कम जरूरी चीजों पर अपना खर्च कम करने को तयार हो जाते हैं ।

लोकोपयोगिताओं के अधिकार और कर्तव्य—लोकोपयोगिताओं के कुछ विशेष कानूनी कर्तव्य और विशेषाधिकार होते हैं, जो अविनियमित उद्योगों को नहीं होते । संविदीय बन्धनों की पूर्ति करना और उसकी पूर्ति की माग करने का अधिकार व्यापारी का साधारणतया कर्तव्य और अधिकार है । जब तक वह धोखा नहीं देता या प्रतियोगिता को रोकने का षड्यन्त्र नहीं करता, तब तक जितना कम या अधिक वह ले सके, उतनी कीमत ले सकता है, और समाज को सामान्यतः इस बात से कोई मतलब नहीं कि वह कमाता है या खोता है, पर सब कारबारों पर लगाई गई इन निषेधात्मक पाबन्दियों के अतिरिक्त, उपयोगिताओं ने अपने ऊपर कुछ विधिरूप कर्तव्य और अधिकार डाल रखे हैं।

कर्तव्य—पहला कर्तव्य यह है कि जो लोग सेवा पाने के लिए प्रार्थना-पत्र दें, उन सबकी मूलवश, आर्थिक और सामाजिक स्थिति या अन्य भेदभाव का बिना ख्याल किए सेवा की जाए। दूसरी बात यह है कि उपयोगिता या लोक हित में युक्त उद्योग को, यदि माग की दृष्टि से उचित हो, तो उत्पादन और सेवा का अपना सारा सामर्थ्य प्रयोग में लाना चाहिए । दूसरे शब्दों में, लोकोपयोगिता उद्योगों को तुरन्त सेवा के लिए तैयार रहना चाहिए । तीसरी बात यह है कि उन्हें सुरक्षायुक्त और पर्याप्त सेवा करनी चाहिए । यदि उपयोगिताओं को पर्याप्त सेवा करने दी जाए तो उसकी स्थानापन्न सेवा सन्तोषजनक रूप में और अविलम्ब न मिल सकने के कारण उपभोक्ता बड़ी लाचार स्थिति में हो जायेंगे । इसी कारण बिजली की वोल्टेज,

नगरीय परिवहन के लिए बसों के समय, बिजली और टेलीफोन सम्बन्धी के लिए चाज सम्बन्धी अपेक्षाएँ विनियमों द्वारा निश्चित हैं। और इनमें से प्रत्येक सेवा अधिक से अधिक सुरक्षित सामान के द्वारा सम्भरित की जानी चाहिए। चौथी बात यह है कि अनुचित भेद-भाव या अनुचित तरजीह नहीं दी जानी चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि दर निर्धारण के लिए ग्राहकों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ तो यह है कि वर्गीकरण तर्कसगत होना चाहिए। अन्तिम बात यह है कि वह अपनी सेवा के लिए तर्कसगत कीमत से अधिक नहीं माग सकती।

अधिकार—यह सर्वथा उचित है कि यदि उपयोगिताओं का ये कर्तव्य पूरे करने है, तो उन्हे कुछ ऐसे विशेष अधिकार होने चाहिएँ जो अन्य व्यवसायों को नहीं होते। उनका पहला अधिकार है "तर्कसगत दर" लेना। तर्कसगत दर वह है जिसमें राज्य और मितव्ययी प्रबन्ध के अधीन सब सचालन व्यय आ जाते हैं, और लगाई गई पूजी पर उचित दर पर कुछ लाभ भी मिल जाता है। नैतिक तथा आर्थिक आधारों पर भी यह उचित है क्योंकि यदि उपयोगिताएँ एकाधिकार में होने वाले लाभ नहीं ले सकती, तो उन्हे यह न्यूनतम उचित लाभ प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। अन्तत उन्हे तर्कसगत नियमों और विनियमों के अधीन सेवा करने का विशेषाधिकार होता है। इनमें सामान्यत इस तरह की चीजें शामिल हैं, जैसे दफ्तर के घण्टे, शीघ्र अदायगी की छूट, मीटर पढ़ना और जाच करना, सेवा निक्षेप (Service deposits) 'सर्वोपरि अधिकार" (Eminent domain) यानी जिसमें उपकरण आदि लगाने के लिए सड़कों और मकानों का उपयोग करने की शक्ति मिल जाती है। इन विनियमों का मतलब उपयोगिता सेवा का सरक्षण करना और इस प्रकार इसके अधिकतर ग्राहकों की रक्षा करना है।

सगठन की समस्याएं

मोटे तौर पर कहा जाए तो किसी कारबार का सगठन परम्परागत रीतियों में से किसी एक से किया जा सकता है। यह एक आदमी के स्वामित्व में हो सकता है, साझेदारी हो सकता है, सयुक्त स्कन्ध कम्पनी हो सकता है, या राजकीय कारबार हो सकता है। विभिन्न आकार के कारबारों के लिए विभिन्न प्ररूपों की उपयुक्तता पर हम पहले विचार कर चुके हैं, पर लोकोपयोगिता की अवस्था में आकार सम्बन्धी चुनाव का क्षेत्र सीमित है। मशीनों और साज-सज्जा में असाधारण रूप से भारी आरम्भिक नियोजन के कारण, और इस कारण कि सारे क्षेत्र को एक ही इकाई से सेवा देनी है उपयोगिता उपक्रम का आकार बड़ा होना जरूरी है। कारखाने के स्थान निश्चय की समस्या अन्य उद्योगों की अपेक्षा इसमें सीधी है, क्योंकि इसका निश्चय मुख्यत सेवा पाने वाले क्षेत्र और विनियम के अनुसार किया जाएगा। अधिकतर कारबार के विस्तार उपयोगिताओं को नई पूजी की बहुत बड़ी मात्रा प्राप्त करनी होगी। पर वित्त-सचय की समस्या इतनी आवश्यक होते हुए भी अत्यधिक कठिन है। इसका कारण यह है कि कोई कारबार चलाने से बहुत पहले मशीनें और साज-सज्जा पूरी तरह से

लगा देने होंगे, जिनका परिणाम यह है कि बहुत बड़ी राशियां खर्च करनी होंगी और फिर भी कारबार के आरम्भिक वर्षों में किसी तर्कसंगत लाभ की आशा नहीं की जा सकती।

उपयोगिता सेवाओं की बिक्री से सम्बन्धित समस्याएं बहुत अधिक नहीं हैं, क्योंकि साधारणतया यह मान लिया जाता है कि इन सेवाओं की आवश्यकता खुद अपनी बिक्री कर लेगी। यद्यपि विपणन या मार्केटिंग सम्बन्धी साधारण सिद्धान्त लोकोपयोगिताओं पर भी लागू होते हैं, तो भी उपयोगिता विपणन के क्षेत्र में कुछ विशेष समस्याएं भी हैं, जो इस सेवा की विशेष प्रकृति का परिणाम हैं। यहां इन विशेष समस्याओं पर ही विचार किया गया है। हम पहले देख चुके हैं कि उपयोगिता सेवा या सेवा-वस्तु कुछ सीमाओं से आगे संग्रह-योग्य नहीं होती और एक इकाई सब अन्य इकाइयों से भिन्न होती है। दूसरी बात यह है कि सेवा या सेवा-वस्तु उपयोग करने वाले के परिसर (Premises) पर या के निकट अर्पित की जाती है। बस और टैलीग्राफ कम्पनियों के अलावा और सब उपयोगिताएं अपनी सेवाओं को अपने उपकरणों द्वारा उपयोग कर्ता के परिसर तक पहुंचा देती हैं। इस प्रकार, उपयोगिताएँ आवश्यक रूप से सीधे और घर-घर जाकर बिक्री करती हैं, और ग्राहकों को इस विशेष सम्बन्ध को स्वीकार करना होगा, चाहे वे इसे पसन्द करें या न करें। ग्राहक के साथ इस बार-बार होने वाले सम्पर्क में अधिक सौजन्य और अधिक दक्ष सेवा की अपेक्षा होती है। बस सर्विस के मामले में यह सम्पर्क दिन में कई बार हो सकता है। ग्राहक-कर्मचारी सम्पर्क किस क्वालिटी का है, यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है, तो भी यह उपयोगिता इस सम्पर्क के महत्व को समझने में सबसे पीछे है। इन विशेषताओं के अलावा, लोकोपयोगिताएँ बिक्री में अधिक सुविधाएँ पेश करती हैं। एकाधिकार होने के कारण उन्हें अपनी बिक्री की विधि और कीमत निर्धारण की कीमतों में मजबूरन परिवर्तन करने का कोई खतरा नहीं होता। साथ ही, उनका कीमत-निर्धारण लागत से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। यदि लागत कम हो जाती है तो प्लाट क्षमता का अधिक उपयोग हो सकता है, प्रति इकाई लागत में कमी हो जाती है, और इस तरह लागत की कमी का कुछ भाग कीमतों के रूप में उपभोक्ता को दे दिया जाता है। एक बात यह है कि बिक्री प्रत्यक्ष और प्रमापित तथा नकद होने के कारण बिक्री का प्रबन्ध एक बंधा हुआ रूप ले लेता है। साथ ही उत्पादक और उपभोक्ता के बीच में कोई बिचौलिये नहीं होते। विज्ञापन और बिक्री कला द्वारा मांग पैदा करने की आवश्यकता सबसे कम होती है।

स्वामित्व और प्रबन्ध

पूर्ववर्ती अध्याय में निजी और लोक उपक्रमों का विश्लेषण करने का यत्न किया गया था और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि क्योंकि उद्योगों के राष्ट्रीयकरण से निजी लाभ के स्थान पर लोक-सेवा आ जाती है, इसलिए निजी स्वामित्व के स्थान पर लोक स्वामित्व आ जाना चाहिए। लोकोपयोगिताओं को, जो लोक हित के लिए होती हैं, लोक स्वामित्व में लेने का पक्ष अन्य उद्योगों की अपेक्षा अधिक प्रबल है। वे समुदाय की

बुनियादी और अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, और उनका इनके आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कल्याण पर गहरा प्रभाव होता है। जहां तक सेवा की दक्षता का सम्बन्ध है, जितनी कठिनाइयां निजी कारखानों के दक्षतापूर्वक चलाने में है, उतनी ही लोक उपक्रम को चलाने में भी हैं। पर सामाजिक और नैतिक आधार पर जीवन की आवश्यकता को एक निजी कम्पनी के हाथ में छोड़ देना वांछनीय नहीं। चाहे इसका सचालन कितनी भी सावधानी से किया जाता हो। निजी-उपक्रमों के स्वामित्व में चलने वाली उपयोगिताओं का विनियमन निष्फल सिद्ध हुआ है। बहुत अधिक लाभ बटोरे गए हैं, और बहुतों के सिर पर बहुत थोड़े आदमियों ने लाभ उठाया है। इस प्रकार, लोकोपयोगिता के इस अवधारणा की नींव ही हिल जाती है कि यह लोक हित से परिव्याप्त है और उसे अधिकतम सामाजिक और सार्व हित के लिए कार्य करना चाहिए। इस कारण और पहले अध्याय में वर्णित अन्य बहुत से कारणों से यह बिल्कुल आवश्यक है कि उपयोगिताओं पर राज्य का स्वामित्व हो।

लोकस्वामित्व तीन अभिकरणों द्वारा या उनके किसी संयोजन द्वारा किया जा सकता है (१) केन्द्रीय सरकार, (२) राज्य सरकार, (३) नगरपालिकाएँ। लोको-पयोगिता पर लोकस्वामित्व के बारे में सब सहमत हैं, पर इस बारे में मतभेद है कि इसका प्रबन्ध और सचालन एक सरकारी विभाग के रूप में हो, या म्युनिसिपल कौंसिल द्वारा उपसमितियों के जरिये हो। हम पहले विकल्प के खतरों पर विचार कर चुके हैं, और म्युनिसिपल सचालन की दुर्बलताओं का उल्लेख यहां करेंगे।

पिछले पचास वर्षों या इससे अधिक काल में सब जगह म्युनिसिपैलिटियों ने पानी, बिजली, गैस और नगरीय परिवहन सम्बन्धी लोकोपयोगिताएँ शुरू की या बनी-बनाई लोकोपयोगिताओं को अपने अधिकार में ले लिया। म्युनिसिपैलिटी के स्वामित्व वाली सेवाएँ आम तौर से समितियों के जरिये स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा चलाई जाती हैं और स्थायी अफसर उपक्रम के काम के लिए इन समितियों के सामने उत्तर-दायी होते हैं। इन सेवाओं से प्राप्त राजस्व म्युनिसिपल हिसाब में जाता है। अधिक बचने वाली राशि स्थानीय कर कम करने में और विकास में तथा उपभोक्ता को जाने वाली सेवा को सुधार करने में प्रयुक्त की जा सकती है। पूंजी व्यय के लिए ऋण लेकर निधि प्राप्ति की जा सकती है पर सामान्य नीति यह रहती चाहिए कि ऋण जितनी जल्दी सम्भव होगा चुका दिया जाएगा, और इसके लिए उपक्रम पर प्रभार्य निक्षेप निधियां बनाई जायगी। बहुत सी म्युनिसिपैलिटियों पर कोई ऋण नहीं है, और इससे करदाता को लाभ होता है। म्युनिसिपल सचालन की मुख्य त्रुटि यह है कि यह म्युनिसिपल कमेटी के क्षेत्र तक ही सीमित रह सकता है। आधुनिक मशीनी उन्नति को देखते हुए लोकोपयोगिताओं का स्थानीय प्राधिकरण तक सीमित रहना प्राय अपव्ययी होता है, और यथासम्भव सर्वोत्तम सेवा किये जाने को रोकता है। साथ ही उस विषय को न समझने वाली समितियां उसके सचालन और देखभाल का का काम ठीक तरह से नहीं कर सकती। कभी-कभी भौगोलिक या किसी कार्य विशेष

अध्याय : : १७

योजना-निर्माण और भारतीय योजनाएं

इस सदी की चौथी दशाब्दी में यह आम प्रश्न था कि योजना होनी चाहिए या नहीं। आज सब लोग यह मानते हैं कि योजना होनी ही चाहिए। आज आम आदमी योजनाहीन कार्य को नापसन्द करता है, क्योंकि उसने यह समझ लिया है कि यदि आर्थिक प्रकार के हर काम में गड़बड़ को रोकना है तो योजना निर्माण आवश्यक है। सचाई तो यह है कि योजना निर्माण हमारे सबके जीवन का हिस्सा है। गृहिणी अपने खर्च की योजना बनाती है, और अपना समय अलग-अलग काम के लिए निश्चित करती है। इसी प्रकार व्यापारी अपने समय और साधनों की योजना बनाता है। अन्य क्षेत्रों में भी योजना निर्माण से बेहद परेशानी बच जाती है। उदाहरण के लिए, अनियंत्रित यातायात से यातायात का अवरोध और दुर्घटनाएँ ही होंगी। "योजना हीन" पूंजीवाद के बड़े से बड़े समर्थक भी अपने कार्यों की योजना बनाते हैं। क्योंकि आधुनिक उत्पादन और विपणन या बाजारदारी में वास्तविक काम से पहले बहुत सा स्टाफ-कार्य और विचार करना पड़ता है।

योजना-निर्माण का अर्थ और प्रयोजन—जी डी एच कोल[1] के अनुसार, "आर्थिक योजना सारत उत्पादन के साधनों का ठीक वितरण सुनिश्चित करने की योजना होती है।" लियोनल राबिन्स[2] का विचार है कि "योजना बनाने का मतलब है, प्रयोजन से कार्य करना, चुनना, यह चुनाव ही आर्थिक कार्य का सार-भाग है। बार्बरा वूटन[3] योजना निर्माण की यह परिभाषा करता है कि "किसी लोक प्राधिकार, अर्थात् सरकारी संगठन द्वारा जानबूझकर और समझते हुए आर्थिक पूर्वता का चुनाव करना" कार्ल लंडेवर कहता है कि "योजना निर्माण की यह परिभाषा की जा सकती है कि किसी सामुदायिक अंग द्वारा आर्थिक क्रियाकलाप का ऐसी योजना द्वारा पथ-प्रदर्शन जो मात्रा के रूप में और गुणदृष्टि के रूप में उस उत्पादन कार्य का वर्णन करती है, जो निर्दिष्ट भविष्यत काल में किया जाना है।" लैण्डेवर इसका अर्थ और अधिक स्पष्ट करते हुए कहता है कि "योजना निर्माण का अर्थ

---

१ प्रिंसिपल्स आफ इकनामिक प्लानिंग, पृष्ठ ३३।

१ इकनामिक प्लैनिंग एण्ड इण्टरनेशनल आर्डर, पृष्ठ ४।

२ फ्रीडम अण्डर प्लैनिंग, पृष्ठ १३।

३ थ्योरी आफ नेशनल इकनामिक प्लैनिंग।

है, स्वतः होने वाले समन्वय के स्थान पर, जो बाजार में होता है, सचेत प्रयास द्वारा समन्वय और यह सचेत प्रयास समाज के किसी अंश द्वारा किया जाता है।" परिभाषा और उसके स्पष्टीकरण में सचेत प्रयत्न पर बल दिया गया है, क्योंकि मानवीय क्रियाएं अचेत अवचेतन या सचेत होती हैं और सामान्यतः हमारे अधिकतर काम सचेत नहीं होते। उदाहरण के लिए, सांस लेना सामान्यतः एक अचेत कार्यवाही है। पर दमे के रोगी या जहरीली गैस के शिकार लोगों को पता चलता है कि प्रत्येक सांस तकलीफ के साथ आता हुआ अनुभव हो रहा है पर योगी को अपने प्राणों पर अधिकार होता है। योगी की तरह जो योजना के अनुसार सांस लेता है और उसके परिणाम प्राप्त करता है आर्थिक योजना बनाने वाले को भी उत्पादन कार्य इस तरह चुनने चाहिए कि उन्हें उपलब्ध साधनों का पूरा-पूरा लाभ मिले और परस्परविरोधी आवश्यकताएं न हों जिससे तरक्की की स्थिर गति हो सके।

राष्ट्रीय योजना निर्माण समिति ने, जो नेशनल कांग्रेस ने १९३७ में श्री जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में बनाई थी यह बात कही थी "लोकतंत्रीय प्रणाली में योजना निर्माण की यह परिभाषा की जा सकती है कि राष्ट्र की प्रतिनिधि संस्थाओं द्वारा निर्धारित विशेष उद्देश्यों के ठीक-ठीक अनुसार, निस्वार्थ विशेषज्ञों द्वारा उपभोग, उत्पादन, पूंजी नियोजन, व्यापार और आय वितरण का टैक्नीकल समन्वय। इस योजना निर्माण पर सिर्फ अर्थशास्त्र की और रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने की दृष्टि से विचार नहीं करना है, बल्कि इसमें सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों और जीवन के मानवीय पहलुओं का समावेश भी होना चाहिए। योजना आयोग की दृष्टि से और भारत में सहकारी राज्य के स्वीकृत आदर्श के अनुसार लोकतंत्रीय राज्य में योजना निर्माण एक ऐसी सामाजिक और विकास की प्रक्रिया है, जिसमें अतः प्रत्येक नागरिक को जीवन-स्तर ऊँचा करने और अधिक सम्पन्न और विशिष्टतापूर्ण जीवन के नये अवसर लाने में हिस्सा लेने का मौका मिलना चाहिए। राष्ट्रीय योजना भारत में जिस रूप में समझी जाती है, उस रूप में यह समुदाय के प्रयोजन की बुनियादी एकता की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। संक्षेप में, योजना-निर्माण एक सामूहिक कार्य है (पर यह आवश्यक नहीं कि यह सामूहिकतावादी प्रकार का हो) और समुदाय द्वारा जनता के सामान्य हित की वृद्धि के लिए देश के भौतिक साधनों के स्वामित्व और नियंत्रण का ऐसे ढंग से वितरण करके कि वह जनता के लिए कल्याणकारी हो, और आर्थिक प्रणाली को इस प्रकार दिशा देकर कि इससे सम्पत्ति और आर्थिक शक्ति थोड़े से लोगों के हाथ में जमा न हो जाए, व्यक्तियों के क्रियाकलाप को नियमित करना है।[1]

योजना निर्माण का लक्ष्य समुदाय की उत्पादन की शक्तियों का स्थिर,

---

१. भारत के संविधान के अनुच्छेद ३६ से ५१ में राज्य की नीति के निदेशक तत्व देखिए।

निरंतर और पूरा उपयोग करना और इस प्रकार बेरोजगारी को दूर करना और भविष्य म दूर रखना (जो स्वतन्त्र उद्यम की देन है) मनुष्य के आर्थिक वातावरण को अपने अधीन करना आर्थिक समस्याओं को व्यवस्थित योजना निर्माण द्वारा वैज्ञानिक ढग से चलाना सब लोगों को अधिक भौतिक सुविधाएं देना और अंतत मानसिक शांति पैदा करना व्यक्ति को परेशान करने वाले आर्थिक उतार चढाव से बचाना और विषमता के स्थूल रूपों को कम करना है। अल्प विकसित अर्थ व्यवस्था म जैसी कि हमारी है एक ओर तो काम म न लायी गयी प्राकृतिक सम्पदाएँ होती है और दूसरी ओर उपयोग म न लाया गयी या कम उपयोग म लायी गयी मनुष्य-शक्ति होती है। यह साधारणतया प्रविधि या टैक्नीक को परिवर्तन हीनता के कारण और कुछ ऐसे सामाजिक व आर्थिक कारको के कारण होती है जो अर्थ-व्यवस्था के गतिशील बलों को अपने रूप म आने म रोकते है। उचित विकास के लिए सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक सम्बन्धों का नया ढांचा आवश्यक है। अधिक अच्छी आर्थिक व्यवस्था के लिए योजना बनाते हुए विकास कार्य के आर्थिक और सामाजिक पहलुओं का घनिष्ठ आपसी सम्बन्ध हमेशा ध्यान म रखना पडता है। तात्कालिक समस्याओं पर तो जमकर प्रयत्न की आवश्यकता होती ही है पर योजना निर्माण म आवश्यकता यह है कि समुदाय सामाजिक प्रक्रिया को एक अखण्ड समष्टि समझे और कुछ निश्चित कार्य इस प्रक्रिया को ठीक रूप म अभीष्ट मार्ग पर चलाने के लिए आवश्यक काय करे। योजना निर्माण में वे उद्देश्य स्पष्ट रूप म स्वीकार करने पडते है जिनकी दृष्टि से अंतिम नीतियां बनायी जाती है। इसमे निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मार्ग भी तय करना पडता है। योजना निर्माण सारत समस्याओं का बुद्धिमत्ता हल निकालने का साधना और साध्यों म समन्वय करने का एक प्रयत्न है। इस प्रकार यह प्रचलित विधिया से भिन्न है जिनम काम शुरू कर दिया जाता है और फिर उसके गलत होने पर उसम सुधार किया जाता है। योजना निर्माण के इस प्रयोजन को देखते हुए हमने नेशनल कांग्रेस द्वारा १९५५ म अपनी आवडी अधिवेशन म दिये गये तत्त्व का अनुसरण करते हुए निश्चय किया है कि सरकार का विकास कार्य लोकतन्त्रीय प्रक्रम द्वारा समाज के समाजवादी रूप की स्थापना की दिशा म होगा।

योजना निर्माण में प्रगति—कुछ समय पहले तक योजना निर्माण के साथ समाजवाद या कम्युनिज्म यानी साम्यवाद की ध्वनि रहती थी। समाजवादी और और कम्युनिस्ट ही इस शब्द और इस विचार के एकाधिकारी समझे जाते थे पर दो विश्व युद्धों के बीच के प्रचार काल म पूंजीवाद ने भी योजना निर्माण के विचार म स्वाभाविक रूप से निहित युक्तियुक्त लाभों को अपना लिया। फैसिस्ट देशों ने (उदाहरण के लिए, जर्मनी और इटली) जो पूंजीवादी व समाजवादी या साम्यवादी समूहों (सोवियत संघ) के प्रचार को निष्फल कर दिया क्योंकि इन्होंने स्वयं एक आर्थिक योजना बनायी। इस शताब्दी के चौथे दशक म प्रेजिडेंट रूजवेल्ट की न्यू डील अर्थात् नयी व्यवस्था आर्थिक योजना का प्रतिपादन करने वाला नारा था। पांचवीं दशाब्दी

में भारत के पूँजीपतियों ने बम्बई योजना के नाम से एक योजना बनायी और उनके बाद जल्दी-जल्दी मुकाबले में दो योजनाएँ, अर्थात् जनता की योजना और गांधीवादी योजनाएँ, पेश हुई। १९४५ में युद्ध समाप्त होने के बाद से प्रत्येक देश ने कोई न कोई योजना बनाई, जिसका यह परिणाम हुआ है कि अब योजना निर्माण शब्द अकेले उग्र वाम पक्षियों की ही सम्पत्ति नहीं रहा है। यह विचार नया होने हुए भी दूर-दूर तक पहुँच चुका है। हर कोई या लगभग हर कोई इसके पक्ष में है।

यह पूछा जा सकता है, कि योजना निर्माण इतने आदर और फैशन की चीज क्यों बन गया। निश्चित रूप से उसका एक कारण यह है कि सोवियत संघ को १९२८ के बाद बनायी गयी उसकी पंचवर्षीय योजनाओं में भारी सफलता मिली "रूसी उत्पादन बहुत थोड़े समय में बहुत अधिक बढ़ गया, जबकि अमेरिकन अर्थ-यन्त्र अभी मरता-पड़ता हो चल रहा था, और ब्रिटिश तथा फ्रेंच प्रणालियाँ ठप हो रही थी। उस समय जिज्ञासु लोग पश्चिम की ओर देखने के बजाए, जैसा कि वे तीसरे दशक में करते थे, अब पूर्व की ओर देखने लगे। कोई अन्य देश एक पिछड़े हुए कृषि प्रधान राज्य से इतने शीघ्र एक आधुनिक औद्योगिक शक्ति में रूपान्तरित नहीं हुआ था।[1] पूँजीवाद की, विशेष रूप से चौथे दशक में, असफलता ने योजना निर्माण में और दिलचस्पी बढ़ी। एकाधिकार और उत्पादन पर रोक, तटकरों, मजदूरों और उपभोक्ताओं के शोषण ने अच्छी तरह साबित कर दिया कि एडम स्मिथ का 'अदृश्य हाथ' उपक्रमी और समाज के हितों में समन्वय नहीं कर सका था। युद्ध के दिनों में जब समाधनों को सभाल कर रखने और उन्हें अलग अलग कामों के लिए बाटने की आवश्यकता सिर पर आ गई, तब प्लानिंग और भी अधिक लोकप्रिय हो गया। अन्तिम बात यह है कि विनष्ट की गयी पूँजीगत वस्तुओं के स्थान पर और वस्तुएँ लाने के लिए, मशीनों के सधारण से अपटूडेट होने के लिए, विदेशी विनिमय की कमी के कारण उसका राशन करने के लिए और उपभोग के लिए उपलब्ध सीमित मात्रा के उचित वितरण के लिए युद्धोत्तर काल में योजना बनाना आवश्यक हो गया। भारत में योजना निर्माण देश में ससाधनों का अच्छी तरह उपयोग करके, उत्पादन बढ़ाकर, और सब लोगों को समुदाय की सेवा में रोजगार पाने का अवसर देकर जनता के रहन-सहन के स्तर में द्रुत वृद्धि करने के लिए सविधान के निदेशक तत्वों की पूर्ति का सबसे अधिक प्रभावी उपाय मालूम हुआ।[2]

योजना निर्माण के आलोचक

कुछ लोग योजना निर्माण की वृद्धि पर चिन्ता प्रकट कर रहे हैं, और कुछ लोग इसे "हमारे युग की महान् सर्वरोगहरऔषिधि" या आधुनिक आर्थिक सगठन का अपरिहार्य भाग मान रहे हैं। प्रोफेसर ह्यक के विचार के अनुसार, योजना निर्माण

१. हैरिस—इकनामिक प्लैनिंग, पृष्ठ १

1 First five year plan, p. 1

गुलामी का रास्ता है, जैसा कि जर्मन और इटालियन अनुभव से प्रमाणित होता है। उनकी दृष्टि में योजना निर्माण और स्वाधीनता दोनों साथ नहीं हो सकते और वे यह अनुभव करते हैं कि पूरी तरह नियन्त्रित समाज में पहले कहीं रक्षा नहीं जा सकता।[1] दर्गसन[2], पिगर्सन, मायसिज, हैल्म और बर्न[3] को पूरी तरह योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था में (उदाहरण के लिए सोवियत संघ) स्वतन्त्रता की बड़ी हानि, प्रयास के उद्दीपन का अभाव, उपभोक्ता की सर्वोच्चता का त्याग और सारे समुदाय को नियन्त्रित करने में किसी भी केन्द्रीय अभिकरण की सहज असमर्थता दिखाई देती है। प्रोफेसर ज्यूक्स[4] का विचार है कि मनुष्य की दयनीयता की गहराई और केन्द्रत आयोजित अर्थव्यवस्था सदा साथ रहती हैं। आपका सुझाव है कि योजना-निर्माण अन्त में प्रत्येक आदमी को शून्य बना देता है, जैसा कि रूस में है, जहां आजादी और स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था जिसे कहते हैं, यह ज्ञान ही पूरी तरह साफ कर दिया गया। लोकतन्त्र देशों में भी इसकी हानियों पर बिना विचार किये इसका जाल फैलाया जा रहा है। ये सब लेखक और उनके जैसे और बहुत-सों को योजना निर्माण और योजना निर्माताओं पर सन्देह है, उनकी दृष्टि में योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में न्याय का अस्तित्व नहीं रहता। योजना-निर्माताओं को आज की अपेक्षा सुदूर कल का ध्यान होता है, और वे दूसरों को त्याग के लिए मजबूर कर देते हैं। वे कल की 'मिठाई' का वायदा करते हैं, और आज की रोटी की परवाह नहीं करते, रोटी और मक्खन की तो बात ही छोड़िये एल्डस हक्सले ने तो अपने निराले ढंग से कहा है,[5] "बड़े और अच्छे भविष्य में विश्वास आज की आजादी का सबसे प्रबल दुश्मन है, क्योंकि शासक लोग अपनी प्रजा पर सर्वथा काल्पनिक फलों के लिए भयंकर अत्याचार करना उचित अनुभव करते हैं क्योंकि उनसे सुदूर भविष्य में किसी समय वे काल्पनिक फल प्राप्त होंगे स्पष्ट है कि ये दलील योजना निर्माण के सैद्धान्तिक रूप पर आधारित हैं। यहां भी सुदूर भविष्य वर्तमान बन गया है और अब फल काल्पनिक नहीं रहे, बल्कि वास्तविक हो गये हैं, जैसा कि रूस की उन्नति से प्रकट हो गया है।

प्रोफेसर हयेक और अन्य योजना-विरोधियों ने योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था में आदमी की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाने की बात कहते हुए तर्क की एक आरम्भिक भूल की है, क्योंकि दो बातों की सहवर्तिता, अर्थात् जर्मनी में योजना निर्माण और फासिज्म का एक समय होना यह सिद्ध नहीं करता कि योजना निर्माण से फासिज्म पैदा हुआ। सामान्य आदमी को अपनी स्थिति के बारे में निश्चिन्तता की जो आवश्यकता थी, उसी का नाजी तानाशाही ने अपनी चतुराई से लाभ उठाया। आर्थिक और आत्मिक

1 The road to serfdom
2 Socialist Economics.
3 Collectivist Economic planning
4 Ordeal of planning.
5 Science, Liberty and Peace, p 27.

अनिश्चितता के बाद जर्मनी के लिए यह विचार कुछ आराम देने वाला था कि उन्हें मालूम है कि वे कहा खड़े है, चाहे वे, जैसा कि घटनाओ ने सिद्ध किया, बन्धनो में ही पड गये। निःसन्देह रूस में, जहा योजना निर्माण का पूरा विकास हुआ है, 'आजादी' अधिकतर नष्ट हो गयी, तो भी यह बात स्पष्ट नही है कि विकृत आजादी को गरीबी का परिणाम माना जाए या योजना निर्माण का, जिसे गरीबी और विनाश ने अनिवार्य बना दिया। इसमें बडा सन्देह है कि यदि सोवियत सघ में प्रति व्यक्ति उतनी आय होती, जितनी अमेरिका में है, तो वह आजादी पर इतनी अधिक रोक लगाता इसके अलावा, रूस में व्यक्ति की आजादी को कभी भी महत्व नही दिया गया और इस लिए क्रान्ति ने इस बात मे कोई कमी नही की प्रसन्नता की बात है कि कुछ समय से सोवियत सघ ने अपने कठोर रवैये म परिवर्तन कर लिया है।

लार्ड बेवरिज,[1] 'बारबरा वटन'[2] कार्ल लैंडेवर,[3] वेव्रम[4] आर एच टानी,[5] स्टैफर्ड क्रिप्स,[6] और अन्य समाजवादी तथा हमारा योजना आयोग एक ऐसी योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की बात सोचते है जिसमें मनुष्य की आवश्यक आजादी बनी रहेगी। उदाहरण के लिए, युद्धोत्तर ब्रिटेन म योजना निर्माण काफी अगली सीढी तक पहुँच गया था, पर आवश्यक आजादी कायम रही। उस देश में व्यक्ति के मनचाहे जीवन में कुछ सीमा से आगे दखलन्दाजी नही हो सकती, यद्यपि लोग समुदाय के लिए, अपने अन्य साथियो के लिए, बहुत कुछ त्याग करने को सदा तैयार रहते है। भारत की अवस्था सोवियत सघ और ब्रिटेन के बीच में है। हमारे यहा व्यक्ति की स्वतन्त्रता और साथ ही व्यक्ति की सरकार पर निर्भरता की परम्परा रही है। यहा व्यक्ति को बोलने और काम करने की आजादी देते हुए भी नग्न व्यक्तिवाद को नियन्त्रित करने की आवश्यकता है जिससे जनसाधारण का कल्याण हो। भारत का लक्ष्य यह बताया गया है (और आशा है कि यह अन्तिम और अपरिवर्तनीय होगा) कि लोकतन्त्रीय प्रक्रिया द्वारा समाज के समाजवादी ढाचे का विकास।

जहा लोकतन्त्रीय योजना निर्माण होता है, जैसा कि भारत और ब्रिटेन में वहा कोई कारण नही कि उपभोक्ता की तथाकथित सर्वोच्चता और व्यक्ति की आजादी में कमी की जाए, सच तो यह है कि योजनाहीन समाज में औसत नागरिक उपभोक्ता की सर्वोच्चता से कोई नाता नही रखता, क्योंकि उसे यह पता नही चलता कि वह यह अधिकार भोग रहा है। इसके अलावा, स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता की सर्वोच्चता कल्पनामात्र है और यह दलील देना बेकार है कि योजना-

1 Full Employment in Free Society.
2. Freedom under Planning
3. Theory of economic planning
4. The decay of Capitalist civilization.
5. The sickness of an acquisitive society.
6. Towards Christian democracy.

बद्ध अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की आजादी खत्म हो जाएगी। स्वतन्त्र उद्यम म उपभोग की सारी प्रवृत्ति और स्वरूप उपभोक्ताओं द्वारा निश्चित किये जाते हैं, उन लोगो द्वारा नहीं, जो वास्तव मे मे वस्तुएँ उपयोग म लाते है, जो आधुनिक उद्योग प्रस्तुत करता है। ट्रेड मार्क, विज्ञापन और उत्पादन मे कमी और इस सबसे बढकर उत्पादकों और व्यापारियो के नीचे संयोजन उपभोक्ता की सर्वोच्चता छीन लेते है। गर्दन-काट प्रतियोगिता से बचने का नाम लेकर कीमतें ऊँची रखने के लिए बाजार बाट लिये जाते है। सीधी भाषा म कहे तो नमरण और माग की खीचतान में बाधा डाल दी जाती है। आज के आर्थिक जीवन म स्वतन्त्र प्रतियोगिता, जो उपभोक्ताओ की रक्षक है, अपवाद है, नियम नहीं, सच तो यह है कि यह खत्म हो चुकी है। आज कहीं स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था नहीं है। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि समाजवादी यह मानते है कि बाजार की अर्थव्यवस्था बुनियादी तौर मे अनैतिक है। वे कहते है कि लाभ का प्रेरक भाव, स्वार्थ, महत्वृत्ति और धन की अन्धी पूजा को जन्म देता है। आय की विषमता समुदायो को एक दूसरे से सहानुभूति न करने वाले सम्प्रदायो मे बाट देती है, और शोषण को जन्म देती है। प्रतियोगिता मे बेइमानी और धोखेबाजिया होती है, और उत्पादको को मजबूरन रद्दी और मिलावटी वस्तुएँ रखनी पडती है, और इसके बाद इसके स्थान पर एकाधिकार आ बैठता है। बडे व्यवसायी बाजार का शोषण करते है। पर बडे व्यवसायी सार्वजनिक जीवन को और सविधान मडलो को भ्रष्ट कर देते है। धनियों द्वारा धन-दौलत का आडम्बर और तडक-भडक कला में सुरुचि और विवेक नष्ट कर देते है। धनी लोग शासक वर्ग बन जाते है। शेष लोग आर्थिक आवश्यकता के कारण उनके गुलाम रहते है। मनुष्य अपने लिए जिन अन्यायो की सृष्टि करते है, उन्हें राज्य द्वारा ही लोकतन्त्रीय योजना निर्माण द्वारा हटाया जा सकता है।

योजना-निर्माण की आवश्यकता—आज की दुनिया इतनी तेजी से बदल रही है कि छोटे-मोटे परिवर्तनो की बात सोचना ही काफी नहीं है। एक अल्प-विकसित देश, जिसने बहुत दिन तक अल्प विकास के दुष्परिणाम भोगे है, अनिवार्यत तेजी से और बहुत सी दिशाओ म प्रगति करना चाहता है। ऐसा योजना निर्माण में ही होना सम्भव है। विस्तृत सामाजिक उद्देश्यो की सिद्धि के लिए स्वतन्त्र उपक्रम पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। सरकार की ओर से कार्यपरता ही आवश्यक है। मालिक और मजदूर अपना-अपना लाभ अधिक करने की कोशिश में वही उत्पादन करने है, जिसमे लाभ की सभावना हो। पर यदि वे गलत हिसाब लगा बैठे या माग के अनुसार चलने से इन्कार करें, या यदि वे अदक्ष हो तो अदृश्य हाथ (invisible hand) उन्हें तुरन्त खत्म कर देता है। इसी प्रकार राज्य द्वारा या मजदूरो के संयोजनों द्वारा अधिक मजदूरी पाने के लिए दस्तन्दाजी भी निष्फल है। आर्थिक नियम इन कार्मो का बदला बेरोजगारी और पूजी के मूल्य म कमी द्वारा लेते है। इसलिए स्वतन्त्र आर्थिक प्रणाली में वैयक्तिक आदमी को बड भारी लाभ की सम्भावना दिखाकर ही उसमे पूजी लगवायी जा सकती है। काफी बचत की प्रेरणा

देने के लिए आमदनी की विषमता आवश्यक है। योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था स्वतन्त्र उपक्रम में न केवल इस कारण बढ़कर है कि इसमें सबको रोजगार मिलने का निश्चय होता है, बल्कि इस कारण भी कि इसमें सामाजिक रूप से बचाने और पूंजी लगाने का काम हो सकता है और उसके लिए धनिक वर्गों को प्रलोभन देने की आवश्यकता नहीं। जानबूझकर योजनाबद्ध और नियन्त्रित प्रणाली में, जैसा कि युद्ध में होता है, आमदनी की विषमता वास्तविक कार्यपूर्ति के असली अन्तर तक ही होगी। और यह सम्पत्ति के आरम्भिक वितरण की विषमता के कारण उतनी नहीं होगी। जब एक बार लाभ का प्रेरक भाव दूर करके उसके स्थान पर राज्य वित्त और राज्य नियन्त्रण ले आया जाएगा, तब आमदनी अधिक अच्छा वितरण किया जा सकता है।

सबको रोजगार, या इस दिशा में स्थिर प्रवृत्ति, व्यष्टिवादी प्रणाली के परित्याग से सर्वथा असंगत है। औद्योगिक दृष्टि से बहुत आगे बढ़े हुए देशों में भी सारे माल बेरोजगारी की लम्बी-लम्बी कतारें रहती हैं। मौसमी बेरोजगारी और थोड़ा रोजगार करने वालों की तो बात ही क्या, जिनकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। ऐसे राज्य में योजना निर्माण जरूरी है। लोकतन्त्रीय योजना निर्माण में सबको रोजगार देने के लिए विशेष रूप से मनुष्य, शक्ति पर वैसा नियन्त्रण नहीं करना होगा। जैसा रूस या जर्मनी में किया गया था। व्यक्तिगत पूंजीवादी प्रणाली भी बिना अनिवार्यता के काम नहीं करती। कीमत और लागत के सम्बन्ध, जो बाजार के तन्त्र में होते हैं, मालिकों को दिवाले द्वारा और मजदूरों को बेरोजगारी द्वारा वे परिवर्तन करने को मजबूर करते हैं, जिन्हें वे अन्यथा न अपनाते। बिल्कुल गरीबी का भय ही मांग के अनुसार उत्पादन की दिशा बनाती है। स्वतन्त्र अर्थ व्यवस्था के विचार प्रायः औद्योगिक विकास को बेढंगा बना देते हैं। योजना निर्माण इस समस्या को अधिक सफलता से संभाल सकता है। फिर, उपभोक्ताओं की अलग-अलग इच्छाओं की तृप्ति योजनाओं का एक मात्र बुनियादी तत्व नहीं है। लोकतन्त्र में शिक्षा के लक्ष्य सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित होते हैं जिन्हें अनिश्वर नागरिक वैयक्तिक रूप की अपेक्षा समुदाय के सदस्यों के रूप में अधिक महत्व देते हैं। उचित आचार शास्त्र की दृष्टि से योजना बद्ध अर्थ-व्यवस्था प्रतिस्पर्द्धा वाली प्रणाली की अपेक्षा अधिक सन्तोषजनक होती है। इससे यह सम्भावना पैदा होती है, कि आर्थिक सम्बन्ध मनुष्य मात्र की बन्धुता के विचार से अधिक मेल खाते हैं, और कि बहुधा हानियां और लाभ वैयक्तिक गुण या दोष पर निर्भर होते। केन्द्रीय योजना निर्माण के कारण लोग अपनी इच्छा से श्रमदान, भूमिदान और सम्पत्तिदान करते हैं।

योजना निर्माण से इसी तरह के विशेष सुधार करने में भी सुविधा हो जाती है, जो योजना निर्माता करना चाहता है। भारत में समाजवादी ढंग के समाज का विकास केन्द्रीय योजना निर्माण द्वारा ही हो सकता है। योजना निर्माण से आर्थिक विषमताओं के कम करने का रास्ता खुल जाता है। योजना आयोग ने लिखा है, "मौजूदा अवस्थाओं में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा गरीबी के

कारण और आमदनी सम्पत्ति और अवसर की विषमताओं के कारण पैदा होते हैं। स्पष्ट है कि मौजूद धन को नये सिर से बाँटकर गरीबी को दूर नहीं किया जा सकता। और सिर्फ उत्पादन बढ़ाने का लक्ष्य रखने वाला कार्यक्रम भी मौजूदा विषमताओं को नहीं हटा सकता। इन दोनों दिशाओं में एक साथ प्रगति से वे अवस्थाएँ पैदा हो सकती हैं, जिनमें समुदाय अपनी उन्नति के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न करे मौजूदा सामाजिक आर्थिक ढाँचे में आर्थिक क्रियाकलाप के मार्ग-परिवर्तन मात्र काफी नहीं। ढाँचे का दुबारा बनाना होगा, जिससे वह इन बुनियादी आवश्यकताओं को उत्तरोत्तर अधिक पूरा कर सके, जो भोजन करने के अधिकार, पर्याप्त आमदनी के अधिकार, शिक्षा के अधिकार और बुढ़ापे, बीमारी और अन्य असमर्थताओं के विरुद्ध बीमे का अधिकार की माँगों के रूप में प्रकट होती हैं। योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था ही लोकतन्त्रीय तरीकों द्वारा इन लक्ष्यों को सिद्ध करने में सहायक हो सकती है। इस प्रकार योजना निर्माण व्यक्तियों के आर्थिक जीवन और राजनैतिक लोकतन्त्र में पैदा होने वाली विषमताओं को दूर करने की समस्या हल करने में सहायता देता है। भारत के लिए समय का बड़ा महत्त्व है। हमारा धन और जीवन-स्तर यथासम्भव कम से कम समय में काफी अधिक बढ़ जाना चाहिए। उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, सिनेमा हॉल बनाने की बात सोचने से पहले हमें विद्यालय और औषधालय बनाने हैं। मिठाई और पूरी से पहले हमें रोटी-दाल की व्यवस्था करनी है। स्वतन्त्र उपक्रम इस विपरीत दिशा में कार्य करेगा। यह किसी-किसी वर्ग के एकाधिकार को बढ़ावा देगा। कोई केन्द्रीय प्राधिकरण ही साधनों का प्रवाह उपयुक्त मार्ग में कर सकता है।

योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था की दूर की कमजोरियों में, नियन्त्रण करने के लिए बनाये जाने वाले लोकतन्त्र की लागत, और संगठन के 'बृहत्' होने के कारण अदक्षता पैदा हो जाने का भय है। योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था में बहुत बड़ी नौकरशाही चाहिए, जैसी कि हर बड़े संगठन में होना आवश्यक है, चाहे वह स्वतन्त्र उपक्रम के रूप में चलाया जाए। और उसकी मनुष्य शक्ति की माँग पर रोक लगाने की सम्भावनाएँ बहुत कम हैं। एक अखण्ड योजना के भीतर काम करने वाला प्रत्येक सरकारी विभाग यह देखता है कि इस योजना के प्रत्येक स्तर पर सलाह की आवश्यकता होती है। इसमें दुनिया की हर बात के 'विशेषज्ञ' इकट्ठे होने लगते हैं। यह सुविदित है कि निजी व्यवहार में कारपोरेशन जितना बड़ा होगा। प्रशासनीय अफसरों व मजदूरों का अनुपात भी उतना ही बड़ा होगा। योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था इस प्रश्न को और आगे बढ़ा देती है। विभाग डाइरेक्टर कर्मचारी रखना चाहता है। प्रत्येक सलाहकार एक उपसचालक चाहता है, इत्यादि। रोग की सम्भावनाओं और त्रुटियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अतिरिक्त कर्मचारियों की माँग की जाएगी। ऊपर से देखने से यह माँग उचित है, जिसका विरोध करना कठिन है। इधर अफसरों की नियुक्ति को नियन्त्रित करने वाला राजकीय विभाग मित-व्ययिता लागू करना चाहेगा, जो भारत जैसे बड़े देश में असम्भव कार्य है। तब

बड़े नौकर तन्त्र होने के आर्थिक परिणाम स्पष्ट ही हैं। उपरिव्यय बहुत बड़े हो जाते हैं, और उन्हें उत्पादन की उन वस्तुओं पर नहीं डाला जा सकता, जिनमें वे हुए हैं। परिणाम होगा प्रयास का कुवितरण और अन्त में अदक्षता। कोशिश यह होनी चाहिए कि नौकरतन्त्र छोटे से छोटा रहे, और अफसरों की संख्या अनावश्यक रूप से न बढ़े यह बात समझ में आने वाली है, कि आधुनिक सरकारें, जिन्हें युद्ध काल में और उसके बाद बड़े-बड़े संगठनों का प्रबन्ध करने का बहुत अनुभव हो गया है, योजना बद्ध अर्थ व्यवस्था को चलाने के प्रयत्नों में सफल होंगी। फिर देश के साधनों के व्यवस्थित प्रयोग से होने वाले लाभ उस अदक्षता की तुलना में बहुत अधिक होंगे जो केन्द्रीय नियन्त्रण और संचालन होने के समय अस्थायी रूप से पैदा होगी।

पर आजकल कुछ मूल्यों की बड़ी जरूरत समझी जा रही है, और उनके बारे में बड़ी चेतना और आग्रह है। आर्थिक उन्नति का अर्थ भौतिक वस्तुओं के उत्पादन के लिए एक साधन खड़ा कर देने से कुछ अधिक है—इसमें सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था होनी चाहिए। जन-सामान्य को अधिक अवसर मिलने चाहिएँ और सबको समाज सम्यता और न्याय की प्राप्ति होनी चाहिए। मुक्त या बाधाहीन व्यापार की प्राप्ति होनी चाहिए व्यापार की प्रणाली में यह कार्य सिद्ध होना असंभव है। सारे समुदाय के आर्थिक क्रिया-कलापों का लगातार और सचेत सामूहिक निर्धारण करने के अर्थ में योजना निर्माण परमावश्यक है, जो व्यक्तियों के प्रयत्नों को दिशा, उद्दीपन और सहायता दे।

सफल योजना-निर्माण के लिए आवश्यक बातें—विफलता से बचने के लिए कुछ बुनियादी और आवश्यक शर्तों का होना जरूरी है। इसलिए योजना आयोग ने सफल योजना निर्माण के लिए आवश्यक राजनैतिक और प्रशासनीय शर्तों पर बल दिया है। ये निम्नलिखित हैं —

(क) समुदाय में नीति के लक्ष्यों के बारे में बहुत कुछ सर्वैक्य।

(ख) राज्य के हाथ में कार्यसाधक शक्ति, जो नागरिकों के सक्रिय सहयोग पर आधारित हो, और उन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उस शक्ति का सचाई और दृढ़ संकल्प के साथ प्रयोग, और

(ग) दक्ष प्रशासनीय व्यवस्था, जिसमें आवश्यक सामर्थ्य और योग्यता वाले कर्मचारी हों।

सर्वाधिकारवादी देशों में यह मसला आसान है। लक्ष्य का निश्चय शासकों द्वारा किया जाता है और जनता को उस लक्ष्य के लिए काम करने को मजबूर किया जा सकता है। *लोकतन्त्र में, जहां सरकार को जनता के समर्थन पर निर्भर होना* पड़ता है, उद्देश्य का निश्चय समुदाय द्वारा किया जाता है। साध्यों और साधनों के बारे में समुदाय की एकता ही योजना और उसके निष्पादन के पीछे असली बल होनी है। उदाहरण के लिए फ्रांस में मतदाताओं ने किसी एक पार्टी के कार्यक्रम को स्पष्ट रूप से पसन्द नहीं किया है। इसका परिणाम अस्थिरता इसलिए लोकतन्त्र में सफल योजना निर्माण के लिए एक पार्टी को जनता का प्रचुर समर्थन प्राप्त होना चाहिए

कारण कि उद्देश्य बना लेना आसान है, और उन उद्देश्यों से जनता के समर्थन न होने पर उससे उनके लिए काम कराना कठिन है। किसी योजना की सफलता बहुत हद तक सरकारी यन्त्र की दक्षता और ईमानदारी पर निर्भर होती है। स्वयं लक्ष्य पर नहीं। इसलिए अन्त में हम यह कह सकते हैं कि उद्देश्य जनता के बड़े बहुमत को स्वीकार होना चाहिए। सरकार जनता के समर्थन के आधार पर शक्तिशाली और उद्देश्य सिद्धि के लिए काम करने में समर्थ होनी चाहिए। सौभाग्य से भारत में संविधान में ही उद्देश्य लिख दिया गया है, और उस सबने स्वीकार कर लिया है। इसे सरकार की १९५५ में की गई समाजवादी ढंग के समाज बनाने की नीति से और प्रमुखता मिल गई। समाजवाद शब्द से बचते हुए, क्योंकि इसका अर्थ होगा किताबों में लिखे हुए सिद्धान्तों के अनुसार चलना, प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने यह प्रस्ताव किया था कि हमारा लक्ष्य किसी खास राजनैतिक विचार या वाद से बिना बंधे समाज को ऊँचा उठाना होना चाहिए।

योजना निर्माण की सफलता के लिए एक विस्तृत और अन्तिम उद्देश्य के अलावा अधिक सुनिश्चित और तात्कालिक लक्ष्य भी होने चाहिएँ। जैसे युद्ध के दिनों में युद्ध जीतना उद्देश्य होता है, वैसे ही शान्तिकाल में किसी योजना का उद्देश्य बहुत से उद्देश्यों में से एक या दो हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्रत्येक को रोजगार, सामाजिक सुरक्षा और जीवन स्तर ऊँचा करना। ये सब प्रशंसनीय और उचित उद्देश्य हैं। पर ये सब एक साथ पूरे करना सम्भव नहीं। सामान्यतया कृषि और उद्योग का विकास करने के आपेक्षिक महत्व के बारे में मतभेद है। उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग खोले जायें, या बुनियादी उद्योग अथवा कुटीर और छोटे उद्योग खोले जाएँ या मिल उद्योग, अधिक और अच्छी शिक्षा या सामाजिक सेवाएँ प्रदान करने की आवश्यकता का उद्योग स्थापित करने या फौज खड़ी करने की आवश्यकता से विरोध होता है। यदि ससाधन असीमित हों तो एक साथ सब उद्देश्यों की ओर बढ़ा जा सकता है। पर यदि ससाधन सीमित हों तो योजना निर्माण की आवश्यकता ही नहीं। जब तक ससाधन अल्प हैं, तब तक पहले-पीछे का निश्चय करना ही होगा। उदाहरण के लिए, रूस में शुरू की सब योजनाओं का उद्देश्य भारी उद्योग खड़े करना था, जिसका यह परिणाम हुआ कि उपभोक्ता वस्तुओं की बड़ी कमी रही। पर उस उद्देश्य की बुद्धिमत्ता दूसरे विश्व युद्ध में सामने आ गई। मुख्यत रूस के शस्त्रास्त्रों के उत्पादन और युद्ध के अन्य साधनों ने ही हिटलर को, शुरू में खूब सफलताएँ होने के बाद, रूस से खदेड़ दिया।

इसलिए अल्प ससाधनों का सावधानी से हिसाब लगाना बहुत महत्त्वपूर्ण है। युद्ध और स्वाधीनता के तुरन्त बाद बनाई गई बड़ी-बड़ी योजनाएँ छोड़ दी गईं, क्योंकि यह स्पष्ट था कि उन पर अमल करने के लिए धन नहीं है। यह सही है कि कुछ हद तक धन की कमी को 'हीनार्थ वित्तपोषण' (Deficit Financing) द्वारा, अर्थात् देश के केन्द्रीय बैंकों से सरकार के ऋण लेने के द्वारा पूरा किया जा सकता है। पर असीमित और लगातार हीनार्थ वित्तपोषण से

कीमतें चढ़ती ही जायेंगी और इनका प्रयोजन नष्ट हो जाएगा। हीनार्थ वित्त प्रबंध तो ही वांछनीय है यदि तर्कसम्मत रूप से यह निश्चय हो कि कीमतें नहीं चढ़ेंगी। कीमतों का चढ़ना या तो उत्पादन में या भण्डारण में वृद्धि करके, अथवा कीमतों और वितरण पर इस प्रकार के नियन्त्रण द्वारा रोका जा सकता है। हीनार्थ वित्तप्रबंध को सीमा में रखने का अर्थ यह है कि योजना पूरी करने के लिए आवश्यक धन अधिकांश जनता की चालू आमदनी में से आना चाहिए चाहे वह सरकार द्वारा लिये गये करों के जरिए प्राप्त हो, अथवा किसी रूप में बचत द्वारा आए। इस बात से योजना पर जनता के सहयोग लेने की आवश्यकता पता चलती है। लोग इसी कार्य के लिए धन बचायें और त्याग करना जो उन्हें स्वीकार होगा। इतना ही (शायद इस से भी अधिक) महत्व की बात मार्गदर्शन और भौतिक समाधान है। किसी नये औद्योगिक का उत्पादन सामर्थ्य को मनुष्यों और स्थान, सीमेंट और कोयला आदि भौतिक वस्तुओं द्वारा ही भरा किया जा सकता है। आधुनिक संगठन इतना जटिल है कि दो-एक वस्तुओं की कमी से भी तरक्की रुक सकती है। समयनाश और धन की बरबादी से बचने के लिए प्रशिक्षित कुशल और अनुभवी कर्मचारी आसानी से मिल सकने चाहिए। कुछ हद तक विदेशी सहायता इन कमियों को पूरा कर सकती है, पर यदि किसी देश को बिना कष्ट के और पर्याप्त उन्नति करनी है तो अन्तत उसे अपने ही साधनों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

किसी योजना को सफलतापूर्वक पूरा करने में इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि लोगों के किसी समूह का और सारे समाज का भविष्य का व्यवहार पहले से नहीं जाना जा सकता। योजना लचीली होनी चाहिए और उसमें ऐसे-ऐसे हेर फेर किये जा सकने चाहिए जो पहले से न सोची गई परिस्थितियों के कारण आवश्यक हो जायें। श्री जवाहरलाल नेहरू ने मार्च १९५६ में फेडरेशन आफ इण्डियन चेम्बर्स आफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज के सामने बोलते हुए इस बात पर बल दिया था कि ऐसे युग में जो "गुणात्मक दृष्टि से (Qualitatively) अतीत काल से लगातार अधिक भिन्न होता जाता है," हमें अपने सोचने में लचक रखनी चाहिए। पर लचक सिर्फ नारा न बन जाना चाहिए, और "लचीले विचार" पदावली का उपयोग नीति सम्बन्धी आकस्मिक परिवर्तनों का बहाना न बन जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, स्वयं योजना के निष्पादन का अर्थ यह होगा कि आर्थिक प्रणाली में गम्भीर परिवर्तन आ जायेंगे। योजना को पहले से इन परिवर्तनों का ध्यान करके उनके लिए आवश्यक व्यवस्था करनी चाहिए। उदाहरण के लिए, अधिक और अच्छी शिक्षा का अर्थ यह होगा कि यदि रोजगार के अवसरों में उतनी ही वृद्धि न हुई तो शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ जायेगी। यदि यह नहीं होता है तो समाज की योजना निर्माण का आधार ही कमजोर हो जाएगा, क्योंकि शिक्षित बेकारी की समस्या एक विस्फोटक वस्तु है। इसके लिए समन्वित (integrated) कार्यक्रम की आवश्यकता है। वस्तुओं का उत्पादन बढ़ने के बाद उसी अनुपात में परिवहन की सुविधाएं बढ़नी

चाहिए, जिससे वस्तुएँ उपभोग के स्थान पर अवश्य पहुँच सकें। परिवहन की रुकावटें किसी योजना को आसानी से छत्म-खत्म कर सकती हैं।

सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि एक केन्द्रीय प्राधिकरण हो, जो योजना बनाए और जिसे उसे कार्यान्वित करने के लिए काफी शक्ति हो। प्राधिकरण को योजना और उसके कार्यों के लिए सर्वथा उत्साहपूर्ण सहयोग प्राप्त होना चाहिए। लोगों को यह विचार स्वीकार कर लेना चाहिए कि योजना में उन्हें भी कुछ त्याग करना होगा, और यह त्याग उसके फल की दृष्टि से करना सर्वथा उचित होगा। तब जनता की शक्ति को अभीष्ट कार्यक्षेत्र में लाना होगा। और दूसरे क्षेत्र को जो आवश्यक समझा जाता है, छोड़ना होगा। ऐसा हो सकता है कि हम योजना को स्वीकार कर लें, पर बाद में मिलीजुली और केन्द्रीयकृत कार्यवाही के अनुसार अपने आपको बदलने के लिए तय्यार नहीं। इस तरह का खतरा भारत में मौजूद है, अलग-अलग राज्यों को स्वायत्तता प्राप्त है, और वे सांविधानिक दृष्टि से केन्द्रीय सरकार के बहुत से निर्देशों का पालन करने से इनकार कर सकते हैं। सौभाग्य से सब राज्य सरकारें उसी दल के हाथ में हैं, जिसका केन्द्र में शासन है और मिलकर परामर्शों द्वारा मतभेदों को दूर कर लिया जाता है।

भारतीय योजनाएं

यह कहा जा सकता है कि भारत के आर्थिक योजना निर्माण के बीज १९३१ में नेशनल कांग्रेस के कराची अधिवेशन ने बोए थे। कांग्रेस ने "महत्त्वपूर्ण और बुनियादी उद्योगों" के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में विचार प्रकट किया था। १९३८ में श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति बनाई गई, जिसने कुछ महत्त्वपूर्ण रिपोर्टें तय्यार कीं। युद्धकाल में योजना निर्माण की ओर सरकार और जनता दोनों का ध्यान गया। युद्ध समाप्त होने से पहले भारत सरकार ने एक योजना विभाग बनाया। प्रसिद्ध एटलांटिक चार्टर ने अभाव और भय मुक्ति को भी संयुक्त राष्ट्र संघ का एक लक्ष्य घोषित किया। भारत सरकार ने भी यह घोषणा की कि इस पृष्ठ भूमि में "भारत को अपनी युद्ध-पूर्व की नीतियों पर फिर से विचार करना होगा और पिछले कुछ दशकों में की गई प्रगति का तख्मीना लगाना होगा। और इस पुनर्विलोकन के प्रकाश में ऐसी नीतियों की रूप-रेखा बनानी होगी, जिनका लक्ष्य आर्थिक और सामाजिक कार्यों के सब क्षेत्र में संगठित विकास होगा।" विकास अफसरों की नियुक्ति और पेनल रिपोर्टें निकालने के अलावा कोई तत्व की बात नहीं हुई। १९४७ में स्वाधीन होने के बाद योजना निर्माण एक ज्वलन्त प्रश्न बन गया। संविधान के अनुच्छेद ३८ और ३९ के अनुसार सरकार का कर्तव्य था कि वह सबको आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त कराने के लिए काम करे। हम पहले यह देख चुके हैं कि निदेशक सिद्धान्तों में ऐसे आर्थिक और सामाजिक ढांचे की कल्पना की गई है, जो सब नागरिकों के लिए अवसर की समता, सामाजिक न्याय, काम करने के अधिकार, पर्याप्त मजदूरी के अधिकार और कुछ

सामाजिक सुरक्षा परजाधारित हो । नेशनल कांग्रेस के अवडी अधिवेशन के बाद से योजना निर्माण का उद्देश्य सब ने यह मान लिया है कि "लोकतंत्रीय समाधनों से समाज के समाजवादी ढांचे की स्थापना ।"

मार्च १९५० में योजना आयोग स्थापित करके एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। संविधान में विहित सिद्धान्तों की पूर्ति की दृष्टि से योजना आयोग से कहा गया कि वह :—

१ देश के भौतिक, पूंजी सम्बन्धी और मानवीय संसाधनों का, जिसमें टैक्नीकल लोग भी शामिल हैं, निर्धारण करे और इनम से उन संसाधनों को बढ़ाने की संभावनाओं पर विचार कर, जो राष्ट्र की आवश्यकताओं की दृष्टि से न्यून हैं।

२ देश के संसाधनों के सबसे अधिक प्रभावी और सन्तुलित उपयोग की योजना बनाए।

३ पहले-पीछे का निश्चय करके यह निर्देश करे कि किस क्रम से योजना को कार्यान्वित किया जाए और प्रत्येक अवस्था की उचित पूर्ति के लिए धन देने का प्रस्ताव करे।

४ वे बातें बताए जिनसे आर्थिक विकास में बाधा पड़ती है, और वे अवस्थाएँ बताए, जो चालू सामाजिक और राजनैतिक स्थिति को देखते हुए योजना के सफल निष्पादन के लिए स्थापित करनी आवश्यक हैं।

५ योजना के प्रत्येक अवस्था के सफल पूर्ति के लिए आवश्यक व्यवस्था का स्वरूप निश्चित करे।

६. समय-समय पर योजना की प्रत्येक अवस्था को कार्यान्वित करने में होने वाली प्रगति की सूचना दे, और यदि कोई नीति या कार्य सम्बन्धी प्रयत्न करने आवश्यक प्रतीत हों तो उनकी सिफारिश करे।

७ ऐसी अन्तरिम या सहायक सिफारिश करे, जो उसे अपने को सौंपे गये कर्तव्यों के निर्वाह में सुविधा करने के लिए उचित प्रतीत हो, या मौजूदा आर्थिक अवस्थाओं में प्रचलित नीतियां, कार्यों और विकास कार्य-क्रमों पर विचार करने पर अथवा उन समस्याओं की जांच करने पर, जो केन्द्रीय या राज्य सरकारों द्वारा सलाह के लिए उसके पास भेजे जाएँ, उचित प्रतीत हों।

योजना आयोग की स्थिति बहुत ऊंची है—वह इस दृष्टि से केन्द्रीय सरकार के बाद आता है। इसके अध्यक्ष प्रधान मंत्री हैं। यद्यपि वास्तविक अधिकार योजना आयोग के उपसभापति श्री वी टी कृष्णमाचार्य के हाथों में है। श्री चिन्तामन देशमुख और श्री गुलजारीलाल नन्दा दोनों मंत्री भी उसके सदस्य हैं। इस ढांचे से योजना के निर्माण में सरकार के दृष्टिकोण पर विचार होना सुनिश्चित हो जाता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास परिषद है, जिसमें केन्द्रीय मंत्री और राज्यों के मुख्य मंत्री हैं। योजनाओं पर यह परिषद और अर्थशास्त्रियों की एक समिति विचार करती है। योजना का प्रारूप लोकमत जानने के लिए प्रकाशित किया जाता है। इसके बाद प्रारूप संसद में आता है, और इसके बाद योजना अन्तिम रूप ले लेती है। राज्यों

पर असर डालने वाले सब मामलों में राज्यों से नियमित रूप से परामर्श किया जाता है। योजना अन्तिम रूप से तय्यार हो जाने के बाद योजना आयोग इसे कार्यान्वित करने के लिए सरकार के पास भेज देता है। योजना आयोग योजना की प्रगति पर सदा दृष्टि रखता है और उसमें हुई प्रगति पर प्रति छ मास में रिपोर्ट देता है।

पहली पचवर्षीय योजना का आरम्भ १ अप्रैल १९५१ मे हुआ था और इसका समय ३१ मार्च १९५६ को पूरा हो गया। दूसरी पचवर्षीय योजना १ अप्रैल १९५६ से शुरू हुई। दोनों योजनाएँ इस दीर्घकालिक उद्देश्य के अखण्ड भाग हैं कि १९५१ से आरम्भ करके २७ वर्षों में जनता का मौजूदा जीवन स्तर दुगना हो जाना चाहिए इससे पता चलता है कि देश के सामने अनेक योजनाएँ आयेंगी।

पहली पचवर्षीय योजना

पहली पचवर्षीय योजना उस समय सोची गई थी, जब भारतीय अर्थ-व्यवस्था बड़ी कठिनाइयों में से गुजर रही थी। युद्धकालीन कमिया और युद्धोत्तर काल की कठिनाइया विभाजन से और बढ़ गई थीं जिसने हमारे दो महत्वपूर्ण उद्योगों—कपड़ा और जूट—को कच्चे सामान से अनिवार्यतः वचित कर दिया। अनाज की गम्भीर कमी थी, अरबो रुपये का विदेशी विनिमय अनाज मगवाने में प्रयुक्त हो रहा था। भयकर दुर्भिक्ष घटते-घटते बाल्बाल बच गया था। कपडे की बडी कमी थी और इसी तरह सीमेंट और इस्पात दुर्लभ थे। रेल नये डिब्बो के न आने से परेशान थी, और परिवहन का अभाव भारतीय अर्थव्यवस्था के मार्ग म गम्भीर रुकावट था। कीमतें चढ रही थी और थोक कीमत का निर्देशाक १९३९ की अपेक्षा ४०० प्रतिशत था औद्योगिक उत्पादन गिर रहा था। परिणाम यह था कि आबादी में वृद्धि के साथ जीवन स्तर तेजी से गिर रहा था। बडी गम्भीर स्थिति पैदा हो गई थी और चारो ओर असन्तोष छाया हुआ था। इस पृष्ठभूमि मे पहली पचवर्षीय योजना का निर्माण हुआ। इसका एक मुख्य उद्देश्य रहन-सहन के स्तर की गिरावट को रोकना था। इन गम्भीर समस्याओं को हल करने के लिए योजना की आवश्यकता थी। पर धन सीमित मात्रा में ही था और कर या बचत द्वारा भी सीमित मात्रा मे ही धन इकट्ठा किया जा सकता था। इसलिए एक छोटी योजना बनाने के सिवाय और कोई चारा न था।

पहला स्थान कृषि को दिया गया था जिसमें सिंचाई और शक्ति भी शामिल थी। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि अनाज और कच्चे सामान का अधिक उत्पादन हमारे उद्योग को चलता रखने के लिए बहुत आवश्यक था। कृषि भारत की अर्थ व्यवस्था की बुनियाद है। और यदि यह पर्याप्त सबल न हो तो कोई भी प्रगति सभव नहीं हो सकती। यदि अनाज बहुत सस्ता न हो, और यदि आवश्यक कच्चा सामान बहुत मात्रा में प्राप्त न हो तो भारत के लिए जल्दी ही उद्योगों का विस्तार करना असम्भव है। उद्योग खेती के बिना बहुत दूर नहीं चल सकते, और खेती उद्योग के बिना। योजना आयोग ने कहा था कि अनाज और उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे

मानाज के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुए बिना औद्योगिक विकास की ऊँची गति कायम रखना असम्भव है। इसलिए उद्योग के विकास में राज्य का कार्य, बिजली और परिवहन के विकास को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में सीमित ही था। परिवहन में भी मुख्य लक्ष्य यह था कि परिवहन प्रणाली को फिर से समर्थ बना दिया जाए और यह नहीं था कि इसमें बहुत अधिक विस्तार किया जाए। इसी प्रकार सामाजिक सेवाओं में भी सीमित पैसा लगाया गया। निम्नलिखित अंकों से यह प्रकट होगा कि विकास के विभिन्न क्षेत्रों में कुल परियोजित उद्व्यय (Total projected outlay) कितना था—

	करोड़ रुपये	कुल का प्रतिशत
खेती और सामुदायिक विकास	३५७	१७५
सिंचाई	१६८	८१
बहु-प्रयोजन सिंचाई और शक्ति परियोजनाएं	२६६	१२९
शक्ति (बिजली)	१२७	१
	९१८	४४६
परिवहन और सञ्चार	४९७	२४०
उद्योग	१७३	८४
सामाजिक सेवाएँ	३४०	१६४
पुनर्वास	८५	४१
अन्य	५२	२५
कुल योग	२०६९	१०००

कुल २०६९ करोड़ रुपए का उद्व्यय सरकारी क्षेत्र का था। निजी उद्योगों के लिए भी कुछ लक्ष्य बनाए गये थे जिनकी पूर्ति निजी क्षेत्र को अपना पैसा लगाकर करनी थी। निजी क्षेत्र में औद्योगिक विस्तार के लिए आवश्यक कुल पूंजी नियोजन २३३ करोड़ रुपया आंका गया। इस क्षेत्र में मुख्य चीजें ये थीं—लोहा और इस्पात ४३ करोड़; पेट्रोलियम शोधन कारखाने, ६४ करोड़; सीमेण्ट, १४.५ करोड़; अलुमिनियम, ९ करोड़, खाद भारी रसद्रव्य और पावर अल्कोहल, १२ करोड़; और निजी क्षेत्र में अतिरिक्त बिजली १३ करोड़। सरकारी क्षेत्र में और पर ९३ करोड़ रुपये का व्यय, कई जरूरी योजनाओं को पूरा करने के लिए रखा गया था। जैसे चितरंजन इंजन फैक्टरी, मशीनी औजार फैक्टरी सवारी गाड़ी के लिए डिब्बे की फैक्टरी, सिंदरी के खाद के कारखाने का विस्तार और इस्पात का एक नया कारखाना।

कुल २०६९ करोड़ रुपये का उद्व्यय अलग-अलग राज्यों में इस तरह बांटा गया था :—

	करोड रुपये
केन्द्रीय सरकार	१२४० ५४
आसाम	१७ ४९
विहार	५७ २९
बम्बई	१४ ४४
मध्य प्रदेश	४३ ०८
मद्रास	१४० ८४
उडीसा	१७ ८४
पजाव	२० २१
उत्तर प्रदेश	९७ ८३
पश्चिमी वगाल	६९ १०
हैदराबाद	४१ ५५
मध्य भारत	२२ ४२
मैसूर	३ ६०
पेप्सू	८ १४
राजस्थान	१५ ८१
सौराष्ट्र	२० ४१
त्रिवाकुर-कोचीन	२७ ३२
जम्मू और कश्मीर	१३ ००
भाग 'ग' के राज्य	३१ ८७

योजना का वित्तीय आधार निम्न प्रकार था—

	केन्द्रीय सरकार	राज्य (जम्मू कश्मीर सहित)	कुल योग
आयोजित उद्व्यय	१२४१	८२८	२०६९
वजटीय ससाधन	३३०	४०८	७३८
(१) चालू राजस्वो में वचत	३९६	१२४	५२०
(२) पूजी प्राप्तिया (सचितिया में से लिए गए धन को छोडकर	२२९	२२९	. .
(३) भीतरी अन्त सरकारीय हस्तान्तर (अर्थात् केन्द्रीय सहायता)			
विदेशी ससाधन जो प्राप्त हो चुके है ।	१५६		१५६
कुल योग	६५३	७६१	१४१४

योजना आयोग ने लिखा था, "जैसा कि योजना के वित्तीय समाधनो के अन्दाजे म दिखाया गया है, सरकारी विकास कार्यक्रमो के लिए शेष ६५५ करोड रुपये या तो और अधिक वाह्री ससाधनो से, अथवा भीतरी करो द्वारा और उधार लेकर तथा हीनार्थ वित्तपोषण (Deficit Financing) द्वारा प्राप्त करने होंगे ।" ३०० करोड रुपये के लगभग हीनार्थ वित्तपोषण सोचा गया था ।

वाद में फरवरी १९५४ मे वित्त मत्री ने घोषित किया था कि पहली पच-

वर्तमान योजना पर २९७ करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि खर्च की जाएगी। इसका उद्देश्य मुख्यतः बढ़ती हुई बेकारी को दूर करना आग एक अध्यापक वाले विद्यालय खोलना था।

लक्ष्य और सफलताएं—निम्नलिखित तालिका में ३१ मार्च १९५४ तक मुख्य लक्ष्य और उनकी सफलता दिखाई गई है। (इसी तिथि तक आंकड़े मिलते हैं)

पहली पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और सफलताएं

		१९५०–५१ आधार वर्ष	१९५५–५६ तक वृद्धि (योजना लक्ष्य)	१९५३–५४ में अधिक सफलता	सफलता योजना लक्ष्य की कितने प्रतिशत
१	कृषि उत्पादन				
	अनाज (दस लाख टनों में)	५४०*	७६	११४	१५००
	रुई (लाख गांठ)	२९.७	१२.६	९.६	७६.७
	जूट (लाख गांठ)	३२.८	२०.९	—१.५	——
	गुड़ (लाख टन)	५६.२	७.०	—१०.०	——
२.	बिजली (दस लाख किलोवाट)	२.३	१.३	०.५	४१.७
३.	सिंचाई (लाख एकड़)	५००	१९.७	७.५	३८१
४.	औद्योगिक उत्पादन				
	सिनिशड इस्पात (लाख टन)	९.८	६.७	१.०	१४.९
	सीमेंट (लाख टन)	२६.९	२१.१	१३.४	६३.५
	अमोनियम सल्फेट (हजार टन)	४६	४०४	२६१	६४.६
	इंजन	७	१४३	७९	५५ २
	जूट वस्तुएं (हजार टन)	८९२	३०८	—२८	——
	मिल वस्त्र (१० लाख गज)	३७१८	९८२	११८८	१२०.९
	साइकिल (हजार)	१०१	४२९	१८८	४३.८
	समुद्रीय नौवहन (हजार G R T)	२१७	१६५	१०२	६१.८
५.	राष्ट्रीय राजपथ (हजार मील)	११.९	०.६	०.३	५००
६.	शिक्षा और स्वास्थ्य				
	प्राथमिक विद्यालय (हजार)	१७३	३८	१६	४२.१
	जूनियर बेसिक स्कूल (हजार)	३६०	९५	२२	२३ २
	चिकित्सालय (हजार बिस्तर)	१०६५	१०७	४८	४४८

* आधार वर्ष १९४९–५० है। † १९५७–५८ तक प्रारंभ लक्ष्य

वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में कहा था कि पहली पचवर्षीय योजना सन्तोषजनक रीति से पूरी हो रही है। कुल व्यय में कुछ कमी रह जाना शायद अनिवार्य था, यद्यपि कुछ मदों में व्यय लक्ष्य की अपेक्षा अधिक हुआ है। उदाहरण के लिए, रेलों ने पांच वर्षों में ४३२ करोड रुपये खर्च किये हैं जबकि उनका लक्ष्य लगभग ४०० करोड रुपये था।

पहली पचवर्षीय योजना के परिणामों का मूल्यांकन करते समय योजना आयोग ने दूसरी पचवर्षीय योजना के प्रारूप म इस प्रकार कहा है।

"प्रथम योजना के उद्दीपन की अर्थ-व्यवस्था पर अच्छी प्रतिक्रिया हुई है। कृषि और औद्योगिक उत्पादन में प्रचुर वृद्धि हुई है। कीमतें एक युक्तिसंगत सतह पर आ गई है। देश की विदेश खाते लगभग सन्तुलित है प्रथम योजना मे रखे गये महत्वपूर्ण लक्ष्य पूरे हो गये हैं। उन में से कुछ में तो अधिक उत्पादन हुआ। इन पांच वर्षों में लगभग १ करोड ७० लाख जमीन में सिंचाई होने लगी है, और बिजली पैदा करने के लिए कारखानों का सामर्थ्य २३ लाख किलोवाट से बढकर ३४ लाख किलोवाट हो गया। रेलों के पुनर्वास में बहुत प्रगति हुई है, और निजी क्षेत्रों में बहुत से औद्योगिक कारखानों ने उत्पादन शुरू कर दिया है। दूसरी ओर, योजना में लोहे और इस्पात का एक नया कारखाना खोलने की जो व्यवस्था थी वह बहुत थोडी दूर तक चल सकी है। और सामुदायिक परियोजनाओं, शिक्षा, ग्रामोद्योगों और छोटे उद्योगों आदि के व्यय में कमी रही है। कुल मिलाकर, इसमें कोई सन्देह नहीं कि अर्थव्यवस्था को बडा बल मिला है। योजना ने दीर्घकाल से गतिहीन चली आती हुई स्थिति मे एक नया गतिमान तत्व प्रविष्ट कर दिया है। इसलिए ५ वर्ष में राष्ट्रीय आय अनुमानत लगभग १८ प्रतिशत बढी है। यद्यपि शुरू में लगभग ११ प्रतिशत की आशा थी। सरकारी क्षेत्र म १९५५–५६ में विकास व्यय १९५१–५२ की सतह से ढाई गुना ऊपर था। निजी क्षेत्र में प्राय आशा के अनुसार पूजी लगी है। यह सब विकास अर्थ व्यवस्था में बिना अत्यधिक दबाव पडे या असन्तुलन पैदा हुआ है। योजना में जनता से बहुत सहयोग और सहायता मिली।"

दूसरी पचवर्षीय योजना

पहली पचवर्षीय योजना पूरी हो जाने पर खेती को सबसे पहला स्थान देने की आवश्यकता नहीं रही। यद्यपि अभी बहुत समय तक खेती के विकास पर बहुत व्यय करना होगा। दूसरी पचवर्षीय योजना म मुख्य बल उद्योग और परिवहन के विकास पर है। "योजना का मुख्य उद्देश्य आर्थिक वृद्धि (Economic growth) है, जिसका अर्थ है उत्पादन करने के सामर्थ्य में बढोतरी, न कि उत्पादन म, इस प्रक्रम में मानवीय योग्यता और कौशल का विकास भौतिक समावनों को संचार से कम महत्व का नहीं। विकास के लिए नई विधियों को अपनाना और समाज के संस्थापक ढाचे को नया रूप देना और शक्तिशाली बनाना भी आवश्यक है। दूसरी पचवर्षीय योजना को उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को बढाना है, और सरचनात्मक परिवर्तन

के प्रश्न को आगे चलाता है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य ये हैं—

(क) राष्ट्रीय आय में मोटी वृद्धि, जिससे देश में रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो। यह आशा है कि योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय २५ प्रतिशत तक बढ़ जायगी। राष्ट्रीय आय, जो १९५५-५६ में १०,८०० करोड़ रुपए है बढ़कर १९६०-६१ में लगभग १३,४८० करोड़ रुपये हो जाने की आशा है। इसका अर्थ यह होगा कि प्रति व्यक्ति आय में १८ प्रतिशत की वृद्धि (१९५५-५६ में २८० से १९६०-६१

विकास के मुख्य शीर्षकों के अनुसार योजना उद्व्यय

		प्रथम पंचवर्षीय योजना		दूसरी पंचवर्षीय योजना	
		कुल व्यय करोड़ रु०	प्रतिशत	कुल व्यय करोड़ रु०	प्रतिशत
१	खेती और सामुदायिक विकास	३७२	१६	५६५	१२
२	सिंचाई और शक्ति	६६१	२८	८९८	१८
३	उद्योग और खनिज :				
	बड़े पैमाने के उद्योग, वैज्ञानिक गवेषणा और खनिज	१४९	६	६९१	१४
	ग्राम उद्योग और छोटेपैमाने के उद्योग	३०	१	२००	४
४	परिवहन और संचार :				
	रेलवे	२६८	११	९००	१९
	सड़क और सड़क परिवहन योजनाएं	१४६	६	२६५	६
	जहाजरानी, बन्दरगाह आदि	५८	२	१००	२
	डाक, तार और ब्राडकास्टिंग, नागरिक उड्डयन आदि	८४	४	११९	२
५	सामाजिक सेवाएं				
	शिक्षा	१६९	७	३२०	७
	स्वास्थ्य	१४०	६	२६७	६
	श्रम और श्रमकल्याण आदि	२९	१	१४९	३
	मकान निर्माण	६३	३	१२०	२
	पुनर्वास	१३६	६	९०	२
६	फुटकर	४१	२	११६	२
	कुल योग	२३५६	१००	४८००	१००

में ३३०), जबकि पहली योजना की अवधि में बढोतरी १० प्रतिशत (२२५ रुपये से २८० रुपये) हुई है।

(ख) द्रुत उद्योगीकरण जिसमे बुनियादी और भारी उद्योगो के विकास पर बल दिया जाएगा।

(ग) रोजगार के अवसरो का बड़ा विस्तार। कृषि के अलावा अन्य क्षेत्रों में ८० लाख व्यक्तियो को अतिरिक्त रोजगार मिलने की सम्भावना है, जबकि कृषि सम्बन्धी विकास कम रोजी पाने वालो की अवस्था मे काफी सुधार करेगा।

(घ) आय और धन सम्पत्ति में विषमताओं को कम करना और आर्थिक शक्ति का सम वितरण। यह बात ध्यान देने योग्य है कि ये सब लक्ष्य परस्पर सम्बन्धित हैं। पृष्ठ ४६३ पर दी गई तालिका म विभिन्न शीर्षको के नीचे व्यय दिखाए गये है। तुलना के लिए पहली योजना सम्बन्धी तालिका भी दी गई है।

उपर्युक्त तालिका से यह प्रकट होगा कि यद्यपि पहली योजना की तुलना में पूर्वताएँ (Priorities) बदल गई है, तो भी खेती और सिंचाई तथा बिजली पर अधिक धन खर्च किया जाएगा। इन दो शीर्षको का योग दूसरी योजना में १४६३ करोड रुपये है, जबकि यह पहली योजना में १०४३ करोड रुपये थे। ऊपर योजना की जो रूप रेखा दी गई है, वह सिर्फ सरकारी क्षेत्र की है। निजी क्षेत्र में दूसरी योजना म २३०० करोड रुपये लगाने की आशा की जाती है। ७१०० करोड रुपए के इस पूजी नियोजन का अर्थ यह होगा कि इस समय पूजी नियोजन का जो स्तर राष्ट्रीय आय का ७ प्रतिशत है, वह १९६०–६१ तक १२ प्रतिशत हो जाएगा।

दूसरी पचवर्षीय योजना के लिए वित्तीय ससाधनों का मोटा तख्मीना इस प्रकार है —

	करोड़ रुपये	
चालू राजस्वों से बचत		
(क) करो के मौजूदा स्तर पर	३५०	
(ख) अतिरिक्त कर	४५०	
	——	८००
जनता से उधार		
(क) बाजार ऋण	७००	
(ख) छोटी बचत	५००	
	——	१२००
अन्य बजटीय स्रोत		
(क) विकास कार्यक्रम में रेलवे का अंशदान	१५०	
(ख) भविष्य निधि और अन्य निक्षेप	२५०	
	——	४००

विदेशी सहायता	८००
हीनार्थ वित्तपोषण	१२००
शेष कमी	४००
	४८००

इसमें कोई सन्देह नहीं कि दूसरी योजना पहली योजना की अपेक्षा अधिक बडा लक्ष्य लेकर चली है। कुछ लोगों को इस कारण इसकी व्यवहार्यता मे सन्देह है कि सारी योजना ऐसी बातो पर निर्भर है जैसे विदेशी सहायता, हीनार्थ वित्तपोषण और 'शेष कमी'। यह तर्क पेश किया जाता है कि योजना म जितने बडे हीनार्थ वित्तपोषण की बात सोची गई है, उससे कीमते चढना और मुद्रास्फीति होना अवश्यम्भावी है। अतीत काल में हीनार्थ वित्त पोषण के कोई गम्भीर परिणाम नहीं होते थे। पर कुछ समय से थोक और अनाज की कीमत चढ रही है। निजी क्षेत्र ने भी इस आधार पर योजना की आलोचना की है कि निजी क्षेत्र का अधिक कार्य नही दिया गया। दूसरी ओर, योजना-निर्माताओं को विश्वास है कि जनता का सहयोग मिलने पर योजना को सफलता के साथ पूरा किया जा सकता है। उनकी दृष्टि में अनाज की कीमतो में हाल म हुई वृद्धि १९५५ मे कृषि पदार्थों की कीमतो मे, हुई गम्भीर गिरावट में सुधार मात्र है। थोक कीमतो के निम्नलिखित निर्देशांकों मे यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

१९३९=१००

वर्ष		सब वस्तुएँ	खेती की वस्तुएँ	निर्मितियां
	१९५२–५३	३८० ६	४४८	३७१ २
	१९५३–५४	३९७ ५	४७९	३६७ ४
	१९५४–५५	३७७ ४	४४२	३७७ २
अप्रैल	१९५५	३४५ ४	३६३	३७७ १
मई	१९५५	३४२ ०	३५७	३७४ ६
जून	१९५५	३४२ ५	३६०	३७० ०
जुलाई	१९५५	३५५ ६	३९२	३७० ९
अगस्त	१९५५	३५७ २	३९८	३७१ ७
सितम्बर	१९५५	३५४ २	३९६	३६८ ८
अक्तूबर	१९५५	३५७ २	३९६	३७१ २
नवम्बर	१९५५	३६५ ०	४०५	३७३ ३
दिसम्बर	१९५५	३६८ ४	४२१	३७३ ०

उपर्युक्त तालिका से पता चलता है कि १९५२–५३ के मध्य कृषि वस्तुओं की कीमत तो ५ प्रतिशत घटी, और निर्मित वस्तुओं की कीमत बढी। १९५३–५४ और १९५४–५५ में किसानों के लिए स्थिति और बिगडी। मई १९५५ तक

खेती की वस्तुओ की कीमते तेजी से गिर रही थी, पर निर्मित वस्तुओ की थोक कीमते स्थिर थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस अवधि मे खेती-पेशा लोगो को कीमतो मे गिरावट से बडा नुकसान हुआ। पिछले कुछ महीनो में स्थिति कुछ दूर तक सुधरी है। *पहली योजना में हीनार्थ वित्तपोषण से कीमतो का फुलाव हुआ नही कहा जा सकता।* तथ्य तो यह है कि निर्मित वस्तुओ की कीमत म थोडी गिरावट हुई। अनाज की कीमतो म सितम्बर १९५५ के बाद कुछ बढोतरी हुई, पर वह बाढ के कारण हुई बतायी जा सकती है, जो देश भर मे सितम्बर–अक्तूबर के महीने म आई थी। यह निष्कर्ष निश्चिन्त होकर निकाला जा सकता है कि अभी तक ऐसा कोई सकेत नही मिला है कि *अर्थव्यवस्था का हीनार्थ वित्तपोषण को सहने का सामर्थ्य पूर्ण हो गया। सावधानी और देखरेख द्वारा मुद्रास्फीति से पूरी तरह बचा जा सकता है।* दूसरी योजना के बडे परिणाम के पक्ष मे एक युक्ति यह है कि आर्थिक विकास के मामले म हम बहुत फूक-फूक कर कदम नही रख सकते। हिम्मत और मनस्विता से आगे बढना अच्छा है, डर के मारे खडे रहना अच्छा नही।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे प्रस्थापित मुख्य लक्ष्य इस प्रकार है—

वस्तु	इकाई	उत्पादन			१९५५-५६ की अपेक्षा प्रतिशत वृद्धि
		१९५०-५१ म	१९५५-५६ मे	१९६०-६१ मे	
अनाज	१० लाख टन	५४०	६५०	७५०	१५
रुई	१० " गाठ	२९	४२	५५	३१
तिल्हन	१० " टन	५१	५५	७०	२७
जूट	१० " गाठ	३३	४०	५०	२५
सिचाई वाला क्षेत्र	१० ' एकड	५००	६७०	८८०	३१
बिजली	१० ' किलो	२३	३४	६८	१००
लोह की खनिज	१० लाख टन	३०	४३	१२५	१९१
कोयला	१० लाख टन	३२३	३६८	६००	६३
निर्मित इस्पात	१० लाख टन	११	१३	४३	२३१
एलुमिनियम	१० लाख टन	३७	७५	२५०	२२३
मशीनी औजार	लाख रुपये	३१८	७५०	३०००	३००
सीमट चीनी सूती वस्त्र और कागज की मशीनरी	लाख रुपये	——	५३५०	२८०००	४२३
आटोमोबाइल	अदद	१६५००	२३०००	५७०००	१४७
इजन	अदद	३	१७०	३००	७६
टक्टर	अदद	——	——	१६०००	——
सीमेण्ट	१० लाख टन	२७	४८	१००	१०८

खाद	हजार टन	१०	४८०	२२००	३५८
सल्फ्यूरिक एसिड या गंधक का तेजाब	हजार टन	९९	१६०	४५०	१७१
सोडा एश	हजार टन	४१	८०	२५०	२१३
कास्टिक सोडा	हजार टन	११	३५	१२०	२४३
द्रव पेट्रोलियम की वस्तुएँ	दस लाख गैलन	—	७५०	८९५	२०
बिजली के ट्रान्सफारमर	'000KVA	१३९	५२०	८८०	६९
बिजली के केबल (ACSR कण्डक्टर)	टन	१४८०	९०००	१५०००	६५
कागज और गत्ता	हजार टन	११४	१८०	३५०	९४
साइकिल	हजार	१०१	५००	१०००	१००
सिलाई मशीनें	हजार	३३	९०	२२०	१४४
बिजली के पंखे	हजार	१९४	२७५	४५०	६४
रेल्वे बोझा	१० लाख टन	—	१२०	१६२	३५
सड़कें	हजार मील	१०८९	११५०	१२४६	९
नौवहन या जहाजरानी	लाख GRT	३९	६०	९०	३३

दूसरी पंचवर्षीय योजना की ऊपर दी गई रूपरेखा लोकमत जानने के लिए प्रस्तुत की गई है। कुछ ही दिनों में यह अन्तिम रूप में आ जाएगी और इसको विस्तार से प्रकाशित किया जाएगा। हमारे प्रयोजन के लिए, इसमें अगले ५ सालों के बाद जिस आकार और तरह की सफलता की आशा की जाती है, उसका काफी स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है। पहली योजना की सफल परिणति से यह बात सिद्ध हो गई है कि 'भरसक की विजय' के नियम की जगह सहयोग के नियम ने ले ली है। पिछले कुछ वर्षों में जहां कहीं जनता से सहयोग मांगा गया, वहां उसने उत्सुकता के साथ सहयोग दिया है। यह सन्तोष की बात है कि राष्ट्रीय विस्तार सेवा और सामुदायिक योजना क्षेत्रों में सरकारी खर्च की लगभग ३१ करोड़ रुपये की राशि के मुकाबले में स्वेच्छा से दिए गये सहयोग की कीमत १९ करोड़ रुपये से अधिक आंकी गई है। श्रमदान में और सामाजिक कल्याण विस्तार योजनाओं तथा अन्य स्वेच्छापूर्ण

संगठनों में जनता ने उनकी सफल परिसमाप्ति में हिस्सा लेने की इच्छा और उत्साह प्रदर्शित किया है। आशा है कि और बड़े लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए जनता दूसरी योजना को पहली की अपेक्षा अधिक सफल बनाने के लिए और अधिक उत्साह और प्रबलता से काम करेगी। भारत कठोर परिश्रम द्वारा ही आर्थिक पिछड़ेपन की दलदल से निकल सकता है। जड़ता के स्थान पर स्फूर्ति, परवशता के स्थान पर आत्म विश्वास, भावों के उफान के स्थान पर आत्म नियन्त्रण, स्वार्थ के स्थान पर सामाजिक जिम्मेवारी और बेईमानी के स्थान पर ईमानदारी लानी जरूरी है। अधिक बड़े सामाजिक कल्याण का यही बड़ा और सच्चा रास्ता है। इसी तरह हम सब स्वस्थ और अदम्य जीवन शक्ति वाले सामाजिक संगठन को मजबूत बुनियाद पर खड़ा कर सकेंगे।

अध्याय :: १८

वैज्ञानिक प्रबन्ध

अर्थ और क्षेत्र—वैज्ञानिक प्रबन्ध का अर्थ यह है कि व्यवसाय संगठनों में दक्षताविधियों का प्रयोग किया जावे। इसके लिए सारे क्रियाकलाप को ध्यान में रखा जाता है और प्रत्येक अवस्था में 'सर्वोत्तम' का ध्येय बनाकर परिणामों को देखा और लिखा जाता है, इसके बाद उन परिणामों को अधिक से अधिक लोगों को बताया जाता है, ताकि हरेक को यह पता चल जाए कि क्या लिखा गया है, और ताकि प्रत्येक कर्मकार के कौशल, अनुभव और प्रेक्षण उसके सहकर्मियों तथा सारे व्यवसाय के लिए सुलभ हो जाएं, और शिक्षात्मक विधियां और आदर्श भी अपनाये जाते हैं। पर्सन के अनुसार, "'वैज्ञानिक प्रबन्ध' शब्द, सप्रयोजन सामूहिक प्रयास में, संगठन और प्रक्रिया के उस रूप का वाचक है जो वैज्ञानिक अनुसंधान और विश्लेषण के क्रम से बने सिद्धान्तों पर आधारित है, न कि रूढ़ि पर, या आनुभविक रीति से अथवा आकस्मिक रूप से निर्धारित नीतियों पर।" इसलिए यह "नियमों की एक श्रेणी है—जिसमें भौतिक और प्रशासनीय तन्त्रों और विशिष्ट प्रबन्ध व्यवस्था में प्रयुक्त होने वाली उपयुक्त पदावली भी प्रयुक्त होती है—जिन्हें उत्पादन के नियन्त्रण-क्रमों में एक नयी दृढ़ता लाने के लिए, एक पद्धति के रूप में बद्ध करके कार्यान्वित किया जाता है।" (जोन्स)। संक्षेप में, वैज्ञानिक प्रबन्ध इस बात को यथार्थ रूप से जानने की कला है कि क्या करना है और उसे करने का सर्वोत्तम तरीका क्या है। इस पद्धति में कार्य-विधि को वैज्ञानिक ढंग से सोचा जाता है, कर्मकार वैज्ञानिक ढंग से छांटा जाता है और उस कार्य को पूरा करने के लिये उसे प्रशिक्षित किया जाता है, और अधिकतम दक्षता की चाल वैज्ञानिक ढंग से तय की जाती है। सच तो यह है कि यह एक ऐसा क्रम है जिसमें कौशल, प्रबन्धक-वर्ग से कर्मकार को प्राप्त कराया जाता है, इस तरह के परिवर्तन के लिए, आदर्श अफसर वह है जो स्वयं काम करके दिखा सके।

शुरू में इस विधि का विकास इंजीनियरी उद्योगों के लिए हुआ था, क्योंकि इसके जन्मदाता फ्रेडरिक टेलर का सम्बन्ध इन उद्योगों से था, परन्तु शीघ्र ही इसे प्रायः सब निर्माणशालाओं ने अपना लिया था। अब यह सब प्रकार के व्यवसायकार्यों पर लागू की जाती है। तथ्य तो यह है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध के नाम से प्रसिद्ध नियम-संहिता सब आर्थिक और सामाजिक क्रियाकलापों पर लागू की जा सकती है। टेलर ने लिखा है; "इसे हमारे घर के प्रबन्ध में, छोटे-बड़े व्यापारियों के व्यवसाय में, चर्चों, लोकोपकारी संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और सरकारी विभागों के प्रबन्ध में लागू किया जा सकता है।" तथ्य तो यह है कि पिछले तीन दशाब्दियों में व्यवसायों का वैज्ञानिक

दृष्टि में औसतन ५० प्रतिशत दक्षता भी नहीं है। इजनों के एक बड़े भारी कारखाने में कार्य की व्यवस्थित प्रभावी और मितव्ययी प्रगति के लिए ७५ प्रतिशत मशीनों का स्थान बदलना पड़ा। इस तथा अन्य खराबे (Wastage) के रुक जाने से उत्पादन दुगना हो गया और मजदूरी की लागत कम हो गई। ।" टेलर ने देखा कि बैथलहम स्टील कम्पनी के यार्ड में नियुक्त अकुशल श्रमिक की श्रम दक्षता २८ प्रतिशत थी और इमरसन ने एक नींव की खुदाई करने वाले मजदूरों की टोली के काम का अध्ययन करके देखा कि उनकी दक्षता केवल १८ प्रतिशत थी।

डा० जोंस[*] ने लिखा है "पथ-परिष्कारकों ने देखा कि (क) धंधे और रूढ़ि द्वारा निर्दिष्ट विधियां और उनको करने के प्रचलित तरीके स्थूल और अपव्ययी थे, (ख) कि अधिकतर औजार और उपकरण बड़ी लापरवाही से काम में लाए जाते थे (ग) कि सब जगह कारीगर वे काम कर रहे थे जिनके लिए वे उपयुक्त नहीं थे और वे अधिकांशतः न तो यह बात जानते थे और न यह जानते थे कि वे किस काम के लिये उपयुक्त हैं, (घ) न तो कारीगर और न प्रबन्धक (मैनेजर) ही यह जानता था कि किसी काम को करने में कितना समय लगना चाहिए और किसी प्रथम कोटि के आदमी को एक दिन में कितना काम कर सकना चाहिए, (ङ) जिन अवस्थाओं में काम होना था, उन्हें कभी भी इतना निश्चित नहीं किया गया कि यह पता चलता रह सके कि कोई काम असफल हुआ तो वह कारीगर के कारण हुआ या किसी ऐसी अवस्था के कारण, जिस पर उसका काबू नहीं था, (च) अधिकांशतः प्रबन्धक काम में होने वाली देरी और काम करने वालों को प्रतिदिन होने वाली परेशानियों की, जो अनुपयुक्त अवस्थाओं के कारण पैदा होती थी, जिम्मेवारी अनुभव नहीं करते थे।" तीस वर्ष तक इन पथ-परिष्कारकों ने इन समस्याओं का अध्ययन किया और उन सबने यह निष्कर्ष निकाला कि वैज्ञानिक नियंत्रण द्वारा जो दक्षता प्राप्त हो सकती है, उसकी तुलना में देश के उद्योगों की तत्कालीन दक्षता लगभग ५० प्रतिशत थी।

डा० टेलर ने कारखाने के प्रबन्ध में कई जगह अपने सिद्धान्तों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। उनकी दो प्रसिद्ध सफलताएं बैथलहम स्टील कम्पनी में कच्चे लोहे को सम्भालने और उठाने के तरीके के सम्बन्ध में थी। अपने अनुसंधानों में टेलर ने देखा कि एक प्रथम कोटि के आदमी को प्रतिदिन ४८ टन लोहा सम्भाल सकना चाहिए परन्तु औसत सिर्फ १२॥ टन दैनिक था। समस्या यह थी कि मजदूरों से बिना झगड़ा किये, बल्कि और उन्हें सन्तुष्ट करके, अधिक काम कैसे निकलवाया जाय। एक ऐसा मजदूर छांटा गया जो दिन के अन्त में भी वैसा ही तरोताजा दिखाई देता था, जैसा दिन के शुरू में और जो मितव्ययी तथा धन कमाने को उत्सुक था। वह यह नहीं जानता था कि मैं प्रथम कोटि का आदमी, अर्थात् ४८ टन लाद कर १.८५ डालर कमा सकने वाला हूं। टेलर ने उससे कहा कि जब तुमसे विश्राम के लिये कहा जाए, तब विश्राम करो, और जब काम के लिये कहा जाये, तब काम करो। उस प्रथम कोटि के आदमी को

[*] एडमिनिस्ट्रेशन आफ इंडस्ट्रियल एंटरप्राइजेज, पृ० २८०।

मजदूरी कमाने में सफलता हुई। पर यदि वह अन्धाधुन्ध काम करता जाता तो वह दोपहर से पहिले ही थककर चकनाचूर हो जाता। उस मनुष्य की सारे दिन की गतिविधियों का समय तब तक के लिये निश्चित हो जाने से, जब तक उस ठीक समय पर काम करने की आदत न पड़ जाय, वह दक्ष हो गया और वह मजदूर प्रतिदिन कुल ४८ टन काम करने लगा। एक और मनोरंजक तथ्य यह मालूम हुआ कि ८ में से ७ मजदूर अनुपयुक्त थे। वे अपने लिये गलत काम पर नियुक्त थे। उनमें से प्रायः सबको उसी कारखाने में अधिक उपयुक्त काम पर लगाया गया। फावड़े वाले के उदाहरण से वैज्ञानिक प्रबन्ध का एक और पहलू सामने आता है और वह है अवस्थाओं का समंजन (Adjustment)। यह देखा गया कि एक प्रथम कोटि के फावड़े वाले के लिये सबसे उपयुक्त भार २१ पौंड था। फावड़े काम के अनुसार अलग अलग तरह के होते थे। हर एक आदमी के अपना फावड़ा रखने के चलन को खतम कर दिया गया और प्रत्येक आदमी को पहले से तैयार किया हुआ ठीक औजार दिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि थोड़ा बोझ उठाने का मामला खत्म हो गया।

आवश्यक विशेषताएं और धारणाएं—इसलिए टेलर की सम्मति में प्रबन्धकर्ता के तीन मुख्य कर्तव्य हैं (१) प्रत्येक मनुष्य के काम के लिए जैसे चाहे वैसे काम करने के बजाए एक 'वैज्ञानिक आधार' का विकास करना, (२) बजाय इसके कि मजदूर स्वयं अपना काम चुने या उसे बिना सोचे किसी काम में लगा दिया जाये, चाहे वह इसके लिए उपयुक्त हो या न हो, मजदूरों को छांटना और प्रशिक्षित करना, (३) मजदूरों के साथ सच्चे नेतृत्व की भावना से सहयोग करना, क्योंकि उद्योग एक मिलजुल कर किया जाने वाला काम है, किसी से जबरदस्ती कराया जाने वाला काम नहीं। टेलर का विचार है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध में सबसे मुख्य बात यह है कि काम योजनाबद्ध रीति से किया जाये। प्रत्येक व्यक्ति के कार्य की योजना एक दिन पहिले से बना ली जाये। इसका अर्थ है कि एक नया कार्यालय बनाया जाए और इसके अपने कर्मचारी हों। पर इससे दक्षता प्राप्त होती है। प्रत्येक व्यक्ति को उसका काम निर्दिष्ट करने वाली एक पर्ची मिल जाती है, जिस पर उसके काम का समय और निश्चित विधि लिखी रहती है। यदि वह इसे पूरा कर ले तो उसे अपनी समय मजदूरी पर दक्षता बोनस मिलता है। फोरमैन और सुपरवाइजर सहयोग करने के लिए और आवश्यकता पड़ने पर पथ प्रदर्शन करने के लिये होते हैं, पर वे मजदूरों को हांकने के लिए नहीं होते। इस प्रकार, वैज्ञानिक प्रबन्ध का लक्ष्य विवेकहीन विधियों के स्थान पर वैज्ञानिक विधियों का सम्प्रयोग है, असामंजस्य के स्थान पर सामंजस्य का वायुमंडल बनाना, उत्पादन को अधिक से अधिक बढ़ाना, व्यष्टिवाद के स्थान पर सहयोग को प्रतिष्ठित करना और प्रत्येक आदमी को उसकी अधिकतम व्यक्तिगत दक्षता और समृद्धि के बिन्दु तक उन्नत करना है। टेलर ने आगे लिखा है कि इसका परिणाम यह होता है कि मालिक और मजदूर, दोनों को अधिकतम समृद्धि प्राप्त होती है, क्योंकि उत्पादन बढ़ जाता है और लागत कम हो जाती है, और पारस्परिक प्रेम पैदा होता है जिसे वह

शायद सबसे बड़ा लाभ समझता है। विस्तृत दृष्टि से देखें तो इससे सारे संसार को पहिले से अधिक लाभ होता है।

इसलिए वैज्ञानिक प्रबन्ध के लक्ष्य और धारणाएं अनेक और विविध हैं और डा० जोन्स के शब्दों में उन्हें संक्षेप में निम्न प्रकार रखा जा सकता है (१) विशेषज्ञों के दल विद्यमान होने से कारखाने के प्रबन्ध की सब शाखाओं में, अधिक उच्चकोटि की श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिए, प्रशिक्षित मस्तिष्क मिल जाते हैं। (२) यह उपस्कर (Equipment), औजारों, वस्तुओं, कार्य की दशाओं और कार्य की विधियों में सुधार करता है, और उनका प्रमाप (Standard) कायम रखता है, (३) यह अभिन्यास (ले-आउट), मार्ग निश्चय (रूटिंग), समय-क्रम (शेड्यूलिंग), नामपद्धति, खरीद, संग्रह, और लेखे में प्राय पूरी तरह परिवर्तन कर देता है, और उन्हें सुधारता है, (४) नियमन करने वाले अभिकरणों में अधिक सह-सम्बन्ध होने से कार्य अधिक सुचारु रूप से चलता है और किसी कार्य में देरी, गलती, दुर्घटना या उपेक्षा नहीं होती, (५) इसके सत्वर कार्य करने से समयपर हिदायत मिल जाती है, निरन्तर पथ-प्रदर्शन होता रहता है, तात्कालिक लक्ष्य बनते रहते हैं और तुरन्त पुरस्कार मिलता रहता है, (६) यह तथ्य और सिद्धान्त की खोज करता है, जिससे विवेकहीन शासन खत्म होने की प्रवृत्ति रहती है, (७) इसमें विशेषज्ञ कार्यकर्ताओं के पारस्परिक निकट सम्बन्ध के द्वारा वैयक्तिक आदेशों का क्षेत्र कम हो जाता है (८) तत्काल-तैयार और पूरे अभिलेखों से प्रकाशन और प्रचार हो पाता है, और वे एक प्रकार की युक्ति-सभा बन जाते हैं, (९) प्रथा, अनुमान, और विवेकहीन आदेश का स्थान परिशुद्ध ज्ञान ले लेता है और इस तरह मजदूर काम से बचने, या काम टालने, अथवा बहुत तेज काम करने, और थकान से सुरक्षित रहता है, (१०) ऊंचे दर्जे के प्रमापों से, जो इसकी खास विशेषता है, छटकर मजदूर अपने लिये सर्वोत्तम काम पर पहुच जाते हैं और सबके सब शिक्षित और ऊर्जामय हो जाते हैं, (११) सारे कार्य में ऊंचा प्रमाप कायम रखकर प्रबन्ध और आदमियों के लिये मजदूरी बढाने, काम के घंटे कम करने, लाभ में वृद्धि करने और उपभोक्ता के लिए कीमत कम करने का यह एक सम्भव साधन बन जाता है। (१२) अन्तत, अर्थशास्त्रीय विचारणा की एक शाखा के रूप में, वैज्ञानिक प्रबन्ध, उत्पादन के कारकों पर विश्लेषण की वैज्ञानिक विधि का सम्प्रयोग करने पर नया बल देता है, और उस पर भरोसा करता है। यह भरोसा इस विश्वास के कारण कायम रहता है कि उत्पादन की वृद्धि के द्वारा ही सब वर्गों को अधिक समृद्धि प्राप्त हो सकती है, जिससे इस वृद्धि के जरिये श्रम और पूंजी के हितों का सामंजस्य हो सके।

वैज्ञानिक प्रबंध के कुछ पहलू

अच्छी तरह व्याख्या के लिए वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों को, कुछ पहलुओं या भागों में समूहबद्ध किया जा सकता है। सबसे पहले तो संगठित जीवन का पहलू है जो प्रबन्ध और कर्मचार दोनों की मानसिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप पैदा होता है।

दूसरा पहलू कार्य की दशाओं के प्रमापन, साधारण प्रशासनीय संगठन के सुधार तथा रूपभेद, औजारों और उपस्कर के प्रमापन, कार्य-सचालन के प्रमापन, और मजदूरों के चुनाव से सम्बन्ध रखता है।

(1) मानसिक क्रान्ति—वैज्ञानिक प्रबन्ध का एक पहलू संगठित जीवन और इस आदर्श का परिज्ञान है कि मनुष्य का जीवन कुछ ऊंचा कार्य करने और उत्पादन करने के लिए है। एक व्यवसाय एकाकी संगठन है। जब लक्ष्य स्पष्ट हो और इस बात को अच्छी तरह समझ लिया जाए कि संगठन का अर्थ यह है कि उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कारखाने के सारे जीवन में सौहार्दपूर्ण सामंजस्य और एकात्मता हो, तब एक आदर्श विद्यमान है। यदि हम इस आदर्श की गहराई में प्रवेश करें, तो हम यह अनुभव हो जायेगा कि उद्योग में प्राय वस्तुत विरोधी तत्व, न तो श्रम और पूंजी है, और न कर्मकार और प्रबन्ध, बल्कि एक ओर कुछ स्वेच्छाचार, और दूसरी ओर, इससे बनी धारणाओं से उत्पन्न असंताप है। रूढिगत विचार, संक्षेप में, यह है कि एक आदमी के पास कुछ रुपया है, जो वह ऐसी चीज बनाने के लिए, जिसे बेचकर वह अपनी व्यक्तिगत धन-दौलत बढ़ा सके, दूसरे को मजदूरी के रूप में देता है, (मजदूरी प्राय सिर्फ उतनी देता है जितनी उसे लाचार होकर देनी पड़ती है)। इस परम्परागत विचार ने पूंजी और श्रम को पारस्परिक विरोधी हितों वाले पक्षों में लाकर खड़ा कर दिया है। प्रबन्ध और कर्मकार दोनों को इस आधारभूत सत्य को ठीक-ठीक समझ लेना चाहिए कि उनमें कोई जीवन का विरोध नहीं और उनके जीवन-सम्बन्धी हितों का सामंजस्य हो जाना चाहिए। वैज्ञानिक प्रबन्ध को, भावना और शब्द, दोनों से लागू करना चाहिए, जिसमें प्रत्येक पक्ष के कार्य करने से दोनों को और सारे समाज को लाभ हो। प्रबन्ध को उचित व्यवहार करना चाहिए जिसमें मानवीय अंश भी है, अर्थात् मजदूरों की वास्तविक परवाह करना, उनकी कार्य-दशाओं का विचार करते हुए कुछ कल्पना-शक्ति का उपयोग करना, न्याय-संगत होने की इच्छा रखना और यह अनुभव करना कि औद्योगिक उपक्रमों में मुख्य वस्तु आदमी है, धन नहीं। दूसरी ओर, कर्मकारों को इस भावना से काम करना चाहिए कि वे उद्योग में पूरे हिस्सेदार हैं, इस भावना से नहीं कि वे किसी मालिक के इतने घंटे के नौकर हैं। संक्षेप में, वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग करने के लिए, दोनों को ईमानदारी से अपना अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए।

प्रमापीकरण (Standardisation) —जो प्रबन्धक वैज्ञानिक प्रबन्ध को सफल बनाने का संकल्प किये हुए है, उसे उस सब उपस्कर और सेवाओं को, जिनका उपयोग कर्मकार अपने काम की पूर्ति में करता है, सुधारना और प्रमापित करना चाहिए। इसका कारण यह है कि यदि प्रबन्ध अपना प्रमाप कायम न रखे तो कर्मकार भी अपना प्रमाप कायम नहीं रख सकता। इसलिए कारखाने का आरम्भिक प्रमापीकरण अवश्य करना चाहिए जिससे क्रिया और उत्पादन की एकरूपता सुनिश्चित हो जाये। मशीनरी के प्रमापित हो जाने के बाद, उस प्रमापन

को कायम रखने की समुचित पद्धति सोचनी चाहिए। फिर कार्य करने वाले विभागों का भौतिक अभिन्यास और उनके उत्पादन-सामर्थ्य की उचित दशा पर विचार करना चाहिए। इसके बाद योजना-कक्ष में निर्माण के पथ-प्रदर्शन के लिए आवश्यक सब आलेख, विस्तृत विवरण और नमूने इकट्ठे करने की दृष्टि से, कम्पनी के उत्पादों का अध्ययन करना चाहिए। इसके बाद मार्ग-निश्चय (रूटिंग), कार्य के क्रम, चाल, समजन और और जितना काम किया जा सकता है उसकी मात्रा, का निश्चय किया जाना है, ताकि कार्य तमल्लो से सौंपा जा सके। इसके लिये पटो (बेल्ट) के प्रमापन और निरीक्षण तथा मरम्मत की पद्धति का विकास करना आवश्यक है, जिससे उपर्युक्त तनाव का निश्चय रहे और ब्रेकडाउन न हो सके। साधारण प्रशासनीय सगठन इसके अनेक उपविभागों और अफसरों के कार्य-विभाजन का निश्चय करके उन्हें लिख लेना चाहिए।

औजार और उपस्कर—पुरानी कहावत है कि नाच न जाने आगन टेढ़ा, अर्थात् काम न जानने वाला आदमी औजारों का दोष निकालता है। परन्तु कोई भी कर्मकार तब तक अपना काम दक्षता से नहीं कर सकता, जब तक उसके औजार और उपस्कर कार्य के लिए उपयुक्त न हों और न तब तक उत्पादन में एकरूपता आ सकती है और न उन परिणामों को कायम रखा जा सकता है, जब तक उन्हें प्रमापित न किया गया हो। कार्य में दक्षता लाने के लिए आवश्यक है कि विविध मशीनों का उत्पादन-सामर्थ्य सतुलित हो और उनका कार्य एक समान हो। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए टेलर ने एक औजार कक्ष (टूल रूम) बनाने का प्रतिपादन किया है जिसने से सब मजदूरों को अपने काम के लिए सर्वोत्तम उच्चकोटि के औजार दिये जायें। उचित औजार बाटने की सुविधा के लिए उन पर स्मृति-सहायक चिन्ह होने चाहिए। इसी प्रकार मशीनों के हिस्सों, कच्ची सामग्री, प्रदायों आदि पर भी निशान होने चाहिए। इसलिए औजारों का स्थापन, उनकी पर्याप्त प्राप्ति का प्रश्न, उनकी मरम्मत और तेज करना और उनकी उपयुक्तता विशेषज्ञों के हाथ में होनी चाहिए, जो इन कार्यों में व्यवस्था और विज्ञान को लागू कर सकें।

मशीनों की चाल—मशीनों में परस्पर पर्याप्त सतुलन कायम रखने के लिए, जिससे अधिकतम कार्य हो सके, यह आवश्यक है कि सब शक्ति-चालित यन्त्रों की उचित चाल निश्चित की जाये। यह कोई आसान काम नहीं परन्तु विशेषज्ञ इंजीनियर एक सर्पिका नियम (स्लाइड रूल) की सहायता से, जो अब पूर्ण हो गया है, परिशुद्ध रूप से किसी मशीन की चाल निश्चित कर सकते हैं। इसके लिये लम्बे परीक्षण और गणित का अच्छा ज्ञान आवश्यक है, पर एक बार निश्चित हो जाने पर इस चाल को एक ऐसी अधिकतम लाभदायक चाल के रूप में प्रमाप बनाया जा सकता है जिसे भविष्य में सूत्र की तरह लागू किया जा सके। जो औजार काम आते हैं, उनकी सख्या के आधार पर एक ऐसा सर्पिका नियम बनाया जा सकता है जो प्रत्येक तरह की मशीन के लिए उपयुक्त हो।

परिचालन (आपरेशन) और मार्ग का प्रमापन—इसमें उत्पादन का प्राय सारा क्षेत्र आ जाता है। प्रत्येक व्यक्ति विधि और कार्यक्रम के अनुसार काम करता है, जिससे दक्षता बढ़ जाती है, समय-हानि और थकान कम हो जाती है, और गड़बड़ी नहीं होती। मार्ग निश्चय का अर्थ है सामग्री के, एक प्रक्रम से दूसरे प्रक्रम में, या एक हाथ से दूसरे हाथ में, व्यवस्थित रूप से पहुंचने की योजना बनाना, और यह योजना, वर्क्स में उत्पादन समय-सारणियां (टाइम टेबिलों) के रूप में किया जाता है, जिससे कच्चे सामान से लेकर तैयार माल तक अनेक कारखानों में से गुजरने वाला सामान, बिना अनावश्यक देर के या किसी विशेष मशीन पर बिना भीड़-भाड़ किये, पार हो जाये। मार्ग-निश्चय करने वाले अफसर या क्लर्क को, जितने कार्य होने हैं, उनकी संख्या, किस्म और क्रम का निश्चय करना पड़ता है। वह एक चार्ट या मार्ग-पत्र तैयार करता है जिस पर वह सामग्री का अंतिम स्थान तक पहुंचने का सारा मार्ग रेखाचित्र द्वारा निर्दिष्ट करता है, और समय, अध्ययन तथा अनुदेश पत्र वाले क्लर्क की सहायता से विभिन्न स्थानों या मशीनों पर मजदूर नियुक्त कर देता है। जब ये सब कागजात तैयार हो जाते हैं तब काम शुरू करने का आदेश दिया जाता है। इसके बाद बिक्री और स्टाक की दृष्टि से समंजन किये जाते हैं, जिससे यह निश्चित हो जायें कि सब मशीनें और कारखाने लगातार कार्य में लगे रहेंगे। इसके लिये काम का एक समय-क्रम बनाया जाता है, जिसमें आर्डर यथासम्भव सर्वोत्तम क्रम में समंजित किये जाते हैं। उत्पादन-प्रबन्धक या क्लर्क समय-क्रम के अनुसार कार्य कराता है। मार्ग निश्चय और कार्य के क्रम वाले नियंत्रण फार्मों की सहायता से, जो पहिले ही बहुत सावधानी से तैयार किये जाते हैं, ठीक सामग्री, औजार, उपस्कर और अनुदेश, नियमित रूप से ठीक समय पर ठीक आदमी के पास पहुंचाये जा सकते हैं। इस प्रकार प्रमापीकरण में लगाया हुआ धन और अनेक सेवा विभागों का कार्य लगातार ऊंचे दर्जे का उत्पादन प्राप्त कराता है और इस तरह लाभदायक सिद्ध होता है।

कर्मचारी का चुनाव—प्रबन्ध का प्राथमिक कर्तव्य है कि मजदूरी की लागत कम से कम रखे और साथ ही उत्पादन कार्य करने के लिए पर्याप्त और सक्षम मनुष्य शक्ति प्राप्त कर ले। कर्मचारी चुनने का प्रक्रम यह है कि यह निश्चय किया जाय कि कौन प्रार्थी उस कार्य के लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। पुराने ढंग के कारखानों में यह अब भी फोरमैन और सुपरवाइजर का काम है, परन्तु वैज्ञानिक प्रबन्ध में, कर्मचारी छांटने वाले विभाग चुनाव करते हैं, जिससे अयोग्य व्यक्ति भरती न हो सके। वे चुनाव पद और पथ-प्रदर्शन या समंजन के सिलसिले में कई तरह की व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षाएं लेते हैं। इससे सही ढंग के आदमी का चुनाव निश्चित हो जाता है, जो जल्द ही [illegible] कर्मचारी बन जायगा। उसे 'जल्दी करो' कहने की आवश्यकता नहीं होगी। कार्य के प्रमापन के परिणामस्वरूप, काम सरलतम और सुन्दरतम रीति से किया जाता है। कारीगरों का ठीक चुनाव होने पर एक के बाद दूसरा कार्य वे ही लोग करते हैं जो बौद्धिक और शारीरिक दृष्टि से इसके लिए उपयुक्त

होते हैं। अगर कर्मकारों का चुनाव सावधानी से न किया गया हो तो काम का समय-क्रम निश्चित करना बिल्कुल निरर्थक है। "समय-क्रम मनुष्य के अनुकूल होना चाहिए और मनुष्य समय-क्रम के अनुकूल।" यदि कर्मकारों के चुनाव में काफी सावधानी बरती जाय तो उत्पादन बहुत बढ़ जाए और काफी सस्ता हो जाए।

प्रमापीकृत कार्य-भार—अगला कदम है कार्यभारों (tasks) का प्रमापीकरण, अर्थात् एक निश्चित समय में किये जाने वाले काम की मात्रा प्रबन्धक द्वारा, निर्धारित समय-क्रम के अनुसार उत्पादित की जाने वाली मात्रा के रूप में, पहले ही सप्ताह के उत्पादन की योजना बनाते समय निश्चित कर दी जाती है। उदाहरण के लिए किसी सूत रंगाई के कार्य में यह पहले से निश्चित कर दिया जायगा कि प्रत्येक पाली में कितना सूत रंगना है —यह मात्रा रंगे जाने वाले सूत की किस्म और रंग के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है। प्रत्येक पाली एक निश्चित उत्पादन के लिए जिम्मेवार होती है और पाली में कार्य -विभाजन पाली का फोरमैन प्रति सप्ताह कर देता है। प्रत्येक पाली पर यह जिम्मेवारी होती है कि वह सारी मशीनों तथा चालू काम को ऐसी अवस्था में छोड़े जिससे अगली पाली को उत्पादन पूरा करने में सहायता मिले। पहली और पिछली पालियों के इस सहयोग से कारखाने और मजदूरों, दोनों को लाभ होता है, क्योंकि सारे उत्पादन और मजदूरी का समुच्चय (पूलिंग) किया जाता है। इन परिस्थितियों में प्रबन्धक का, लोगों को काम करने के लिए कहने की जरा भी आवश्यकता नहीं। प्रत्येक व्यक्ति काम का बोझ अधिक होने पर दूसरे की सहायता करेगा। अगर आरम्भिक अनुसन्धान के परिणामस्वरूप श्रम की बचत करने वाली नई मशीन लगाना आवश्यक हो जाय तो इसका कार्य-सचालन मजदूरों को स्पष्ट कर देना चाहिए और तदनुसार नई शर्तें कर लेनी चाहिए। साधारणतया, नये प्रक्रम तब तक समय दर के आधार पर चलाने चाहिए, जब तक उनमें पूर्णता न आ जाये और कार्य के उचित आधार का निश्चय करने के लिए लागत के बारे में मजदूरों के प्रतिनिधियों से बात कर लेनी चाहिए। कार्यभारों के प्रमापीकरण को पूरी तरह लागू करने के लिए अनन्त ज्ञान की आवश्यकता है। यदि लक्ष्य दक्षता है तो प्रमापों पर सावधानी से विचार करके उनका निश्चय कर लेना चाहिए।

समय अध्ययन—जब कारखाने का और इसके लिए काम करने वाले सब सेवा अभिकरणों का प्रमापीकरण इस तरह हो जाए, कि मशीनों की चाल और काम का अनुक्रम पता चल जाय, तब समय अध्ययनों के द्वारा मानवीय सकार्य या परिचालन (Operation) की उचित चाल निश्चित कर लेनी चाहिए। समय अध्ययन यह मानकर होता है कि प्रत्येक काम बहुत से अवयवों (elements) या अवयव-समूहों का बना हुआ है और कि एक कर्मकार उस कार्यांश (job) को करने में सञ्चलनों (movements) के अवयवों का उपयोग करता है। इसलिए समय अध्ययन काम के प्रत्येक अवयव का समय निश्चित करके किये जाते हैं। अवयवों के समय-निर्धारण के लिए एक विराम घड़ी (स्टौप

वाच) प्रयुक्त की जाती है और अटक-खटका (स्नैप बैक) विधि सुविधा-जनक होती है। जब प्रत्येक अशक पूरा होता है, तब घडी देख ली जाती है और समय एक कागज पर नोट कर लिया जाता है, और फिर घडी की सुई शून्य पर ले आयी जाती है। प्रत्येक अशक का समय अनेक बार नापना चाहिए, जिससे उपयुक्त समय के बारे में ठोस राय बनाई जा सके। समय अध्ययन के एक विशेषज्ञ, मैरिक, के अनुसार, यदि अशक-सकार्य मे काफी लम्बा समय लगता हो, और काम एक समान गति से हो रहा हो, तो थोडे से पूर्ण परीक्षण ही काफी होंगे। दूसरी ओर, यदि अशक-सकार्य बहुत छोटे हो और यदि किसी कारण उत्तरोत्तर अशक-सकार्य एक समान दर पर न हो रहे हो, तो बहुत से परीक्षण करना आवश्यक होगा।" सकर्त्ता (आपरेटर) ने जो यत्न किया है, उसका मूल्याकन भी अध्ययन के समय ही करना चाहिए। प्रयास दर देखने से प्रकट होगा कि प्रयास प्रतिदिन, और सुबह से रात तक भी, बदलता रहता है। कुछ अशक नियत (कॉंस्टेंट) होंगे, अर्थात् उन्हे पूरा करने मे प्रत्येक बार उतना ही समय लगेगा और कुछ परिवर्ती (Variable) होंगे जिनमे अलग-अलग समय लगेंगे। जब किसी कार्य-भार के अशको का अध्ययन किया जाता है, और उनका समय अलग-अलग देखा जाता है, तब गणना द्वारा प्राप्त प्रमापो को अशक प्रमाप (element Standard) कहते हैं और प्रत्येक अशक के लिए अभिलिखित समय को वास्तविक (Actual) कहते हैं। सकर्त्ता की दक्षता निकाली जाती है, और इसके बाद निम्नलिखित रीति से अशक प्रमापो की गणना की जाती है।

वास्तविक × निर्धारण गुणक + छूट = अशक प्रमाप।

सकर्त्ता का निर्धारण, कार्यभार को पूरा करने मे उसकी प्रेक्षित दक्षता की दृष्टि से किया जाता है। निर्धारण मे चाल की निरन्तरता, प्रदर्शित प्रयास (effart) और सचलनों की सुमगति देखी जायेगी। इस जानकारी के आधार पर निर्धारण गुणक निश्चित किया जायगा। इसे औसत या प्रतिनिधि सकर्त्ता की दक्षता की प्रतिशतकता के रूप में प्रकट किया जा सकता है, जिससे पता चलता है कि कोई भी सकर्त्ता अपने साथी मजदूरो की तुलना मे कितना अच्छा है। उदाहरण के लिए, ७० प्रतिशत दक्षता का अर्थ यह है कि एक औसत या प्रतिनिधि (सर्वोत्तम नहीं) सकर्त्ता को एक दूसरे सकर्त्ता द्वारा किये जा रहे काम को पूरा करने मे सिर्फ ७० प्रतिशत समय लगेगा। ११० के निर्धारण का यह अर्थ होगा कि किसी दिये हुए काम के करने मे एक प्रतिनिधि कार्यकर्त्ता को प्रेक्षित कार्यकर्त्ता से १० प्रतिशत अधिक समय लगेगा। समय प्रमापो की गणना मे अपवाद रूप मे तेज या सुस्त मजदूर की अपेक्षा प्रतिनिधि (भूयिष्ट —modal) कार्यकर्त्ता का उपयोग करना ही उचित है। जो छूट जोडी जाती है, वह थकान, मजदूरो की निजी आवश्यकताओ, सामग्रियो की श्रेणी की विभिन्नता और उपस्कर की दशा के भेद, तथा इस तथ्य के कारण जोडी जाती है कि सब आदमी सर्वोत्तम आदमी के तुल्य नहीं होते। इस प्रकार, छूट का मतलब यह है कि इसके अन्तर्गत उन सब न नापे जा सकने योग्य और अप्रमाप्य अशको को ले लिया जाय, जो समय पर प्रभाव डालते हैं।

छूट की मात्रा कार्य की प्रकृति, बीच में आवश्यक अवकाश, और शक्ति, उपस्कर, औजारों आदि पर प्राप्त किये गये नियंत्रण की मात्रा के साथ बदलती रहेगी। डा० टेलर ने, जिनका लक्ष्य उच्चकोटि की कार्यपूर्ति था और जो कार्यभार समयों (task times) का निर्धारण सावधानी से करते थे, २० प्रतिशत से २७ प्रतिशत छूट को सन्तोषजनक पाया।

अब हम प्रमाप समय की गणना करने के लिए तैयार हैं, जो वेतन और बोनस की दरों का आधार होगा। प्रत्येक कार्यांश के लिए परीक्षणों की कई श्रेणियां होती हैं, और इनमें से निम्नतम या उच्चतम या मध्यम समय, या श्रेणी, का भूयिष्ठ या मध्यमान लिया जा सकता है। कुछ लोग निम्नतम समय की सिफारिश करते हैं, क्योंकि इससे जानबूझ कर काम से बचने की कोशिश की गुंजायश नहीं रहती। सम्भव है कि यह बात ठीक हो परन्तु न्यूनतम समय को हमेशा नियमित प्रयत्न का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता। यह अधिक अच्छा है कि प्रत्येक कार्यांश में उच्चतम और निम्नतम समयों को छोड़ दिया जाये और शेष समयों का मध्यमान ले लिया जाय। इससे दोनों अतियों के दुष्प्रभाव से बचा जा सकेगा, और हम औसत समय मिल जायेगा। समजित (adjusted) समय जिसमें कार्यकर्ता को सामान्य परिस्थितियों में कार्य पूरा कर लेना चाहिए, निकालने के लिए इस प्रकार प्राप्त औसत को निर्धारण गुणक से गुणा कर देना चाहिए।

उदाहरण के लिए, यदि कोई कार्य करने में, एक कार्यकर्ता को औसत समय ४० मिनट लगता है, और वह ७० प्रतिशत दक्ष सिद्ध होता है, तो जितने समय में उसे यह काम करना चाहिए वह ०.७० × ४० या २८ मिनट होगा। ये २८ मिनट समजित समय या उस समय को निरूपित करते हैं जो एक प्रतिनिधि कार्यकर्ता को लगेगा। छूटें इस समजित समय में जोड़ दी जाती हैं और हम प्रमाप समय मिल जाता है। जो काम किया जा रहा है, उस तरह के काम की प्रचलित दर और प्रमाप समय को मिलाकर उनसे अभीष्ट काम की मजदूरी की दर निकाली जाती है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।‡

कल्पना करो कि किसी कार्य के तीन पृथक् अंशकों के लिए निम्नलिखित समय अध्ययन किये गये—

अंशक	१	३०	२२	२४	२५	३७	२९	३०	३५	३८	३१
अंशक	२	३१	२८	२७	२४	२५	३१	३०	३३	२९	३२
अंशक	३	२८	२७	२१	३०	४१	३३	३९	३१	३२	२८

इनमें से अधोरेखित समयों को छोड़ दिया जाता है क्योंकि औसत निकालने की दृष्टि से वे अत्यधिक ऊंचे या अत्यधिक नीचे हैं।

‡ नोल्स और टॉमसन, इन्डस्ट्रियल मैनेजमेन्ट, पृष्ठ ३८४।

इनके औसत निम्नलिखित होंगे —

अवयव १	२९.१४ मिनट
अवयव २	२८.५५ मिनट
अवयव ३	२९.८६ मिनट
कुल समय	८७.५५ मिनट

कल्पना करो कि निर्धारण गुणक ११० प्रतिशत है।

समजित समय ८७.५५ × ११० = ९६.३१ मिनट

जो छूटें जोड़नी हैं, उनका अभिलेख और हिसाब अलग कर लिया जाता है।

छूट का नाम	समजित समय का प्रतिशत	कुल समय चक्र	अतिरिक्त समय
व्यक्तिगत	२	९६.३१ =	१.९२
तैयारी	५	९६.३१ =	४.८२
श्रान्ति	५	९६.३१ =	४.८२
		कुल	११.५६

प्रमाप समय = ९६.३१ + ११.५६ = १०७.८७ या १०८ मिनट।

यह कहा जा सकता है कि दिन का काम निर्धारित करने के साधन के रूप में, समय अध्ययन बहुत परिशुद्ध नहीं होता पर इसमें परम्परा और अफवाह की अनिश्चितता के स्थान पर एक नियात्मक और वैज्ञानिक विधि प्राप्त हो जाती है। मजदूर भी समय अध्ययनों पर आधारित मजदूरी की दरों को हमेशा पसन्द नहीं करते, क्योंकि वे उन्हें सच्चा नहीं समझते। वे 'विराम घड़ी टैक्नीशियनों' को और तथाकथित विशेषज्ञों को सदेह की दृष्टि से देखते हैं—ये लोग ऐसी दर निकालते हैं जो मजदूरों के लिए न्याय्य होने के बजाय प्रबन्ध अधिकारियों को प्रसन्न करने वाली होती हैं। गिल्ब्रैथ ने अपना एक प्रमाप, अधिक परिशुद्ध विधियों के आधार पर निकाला था। उन्होंने परिशुद्ध समय न्यास (Time data) निकालने के लिए सूक्ष्मकालमापी (माइक्रोक्रोनोमीटर) का उपयोग किया था। पर अधिकतर कारखानों लिए यह बहुत अधिक व्ययसाध्य है। विराम घड़ी, सावधानी से उपयोग करने पर, बहुत अच्छी तरह कार्य सिद्ध कर सकती है।

गति अध्ययन (Motion Studies)—मानवीय गतियां शरीर के भागों द्वारा की जाती हैं। ये भाग विशेष कार्यभारों को तब ही सबसे अधिक दक्षता से करते हैं, जब वे कौशल प्राप्त कर चुके हों और न्यूनतम श्रान्ति में कार्य करना सीख चुके हों। मानवीय गतियों के अध्ययन में, श्रमन कौशल की प्राप्ति और शारीरिक व मानसिक श्रान्ति के निराकरण, इन दोनों को मिलाकर, विचार किया जाता है। गति अध्ययन के प्रमुख प्रतिपादक फ्रैंक गिल्ब्रेथ ने इसे निम्नलिखित रीति से परिभाषित किया है

"गति अध्ययन अनावश्यक, कु-निर्दिष्ट और अदक्ष गतियों के उपयोग से पैदा होने वाली हानियों को लुप्त करने का विज्ञान है। गति अध्ययन का ध्येय श्रम की न्यूनतम हानि वाली रीतियों की योजना सोचना और उसका उपयोग करना है।" इसलिए गति अध्ययन का ध्येय है अनुपयोगी गतियों को रोकना और समय तथा ऊर्जा की बचत करना। यह गतियों को अधिक से अधिक मितव्ययी क्रम से जोड़ने का यत्न करता है, जिससे एक सचलन का अन्त, जहां तक हो सके, अगले का आरम्भ-बिन्दु बन जाय, और ताल पैदा हो जाय। जब राज से, एक-एक ईंट दीवार पर रखने के बजाय एक साथ २५ ईंट उठाने के लिए कहा जाता है, तब बहुत से प्रभावहीन सचलनों के स्थान पर थोड़े से प्रभावी सचलन रख दिये जाते हैं। परन्तु गति अध्ययन अपने आपमें कोई साध्य नहीं, यह तो उत्पादन वृद्धि, यन्त्र संगठन में पहले से अधिक दक्षता, मानवीय श्रान्ति में कमी और उत्पादन की लागत में कमी का साधन है।

श्रान्ति अध्ययन (Fatigue study)—डा० स्टेनले केंट ने श्रान्ति की परिभाषा यह की है—'जीवपिंड की दक्षता में कमी हो जाना, जो श्रम के बाद होता है और अंशतः इस पर निर्भर करता है।" आस्टन ने इसकी परिभाषा यह की है—"कार्य की क्षमता का घट जाना जो कार्य की अधिकता या विश्राम की कमी से होता है और जिसे कार्यकर्ता मन्दता की लाक्षणिक अनुभूति से पहचानता है। यह संनियता के उन परिणामों का कुल योग है, जो कार्य करने की क्षमता में कमी के रूप में दिखाई देते हैं।" यह ध्यान देने की बात है कि श्रान्ति अधिक कार्य करने को नहीं कहते, बल्कि यह एक ऐसा सुरक्षा का उपाय है जो अत्यधिक कार्य को रोकता है, अर्थात् जब श्रान्ति के चिन्ह दिखाई पड़ें, तब मजदूर को अत्यधिक तनाव से बचाने के लिए काम रोक देना चाहिए। यदि काम न रोका जायगा तो वह मजदूर के लिए, मालिक के लिए, और समाज के लिए अत्यधिक महंगा सिद्ध होगा। श्रान्ति के कारण हैं काम का लम्बा समय, गलत ढंग के पर्यवेक्षण में काम करने का निरन्तर बोझ और शारीरिक स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रतिकूल अवस्थाओं में कार्य करने का तनाव।

श्रान्ति के, जो शक्तिहीनता की पूर्वज, एक सुरक्षा उपाय या एक खतरे का संकेत है, और हल्की श्रान्ति के चिन्ह या लक्षण ये हैं कि काम में, मांसपेशियों को अपने आदेशानुसार चलाने का सामर्थ्य कम हो जाता है, स्पर्श अनुभूतिशीलता घट जाती है, कनिकाएं शिथिल पड़ जाती हैं, और इसलिए चेहरा सुस्त हो जाता है और वाहिनी त्वचा प्रतिक्रिया की (रिक्शन की परीक्षा) गति बढ़ जाती है। विचार प्रतिपादन शिथिल हो जाता है, हस्तलेख बड़ा-बड़ा और अनिश्चित हो जाता है और शरीर के साधारण सचलनों में समन्वय का अभाव और भद्दापन तथा अपर्याप्तता दिखाई देती है। श्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्पादन गिर जाता है, काम की किस्म घटिया हो जाती है, दुर्घटनाएं बढ़ जाती हैं, मिजाज बिगड़ जाता है और काम खराब हो जाता है।

श्रान्ति के उपचार और नियन्त्रण—इसके उपचार दो प्रकार के हैं—या तो कर्म-

कार उन्हें स्वय अपने ऊपर लागू करता है और या प्रबन्ध श्रान्ति रोकने के लिए व उपचार सोचता है। कारखाने का प्रबन्धक या समय अध्ययन करने वाला श्रम के कार्य की मात्रा, अनुपस्थिति, बिगडे हुए काम के अभिलेखा, और कर्मचारियों द्वारा इजाजत से या बिना इजाजत के किये गये विश्राम के काल (जो स्नानघरों में जाने या काम से बचने के रूप में होते हैं), उत्पादन के अभिलेखो (विशेषकर दिन के अन्तिम भाग और सप्ताह के अन्तिम दिनों में), और कार्यभारों के प्रति तथा प्रबन्ध अधिकारियो के प्रति कर्मचारी के साधारण रवैये से माप सकता है। दिन के घंटों तथा सप्ताह के दिनों के हिसाब से वर्गीकृत दुर्घटना अभिलेख विशेष अर्थपूर्ण होते हैं। श्रान्ति के बाद पुन-स्वस्थता कई कारकों पर निर्भर है। मध्यम श्रान्ति शीघ्र और पूर्ण रूप से उतर जाती है, परन्तु अधिक श्रान्ति धीरे धीरे उतरती है और ज्यों ज्यों उमर बढती है, त्यों त्यों अधिकाधिक अधूरी उतरती है। इस प्रकार ऊर्जा की पुन प्राप्ति, कर्मकार के शरीर और समर्थता, उसके भोजन और पाचन शक्ति, उसके विश्राम कालों की संख्या, लम्बाई और स्वरूप तथा उसके कार्य की निरन्तरता पर निर्भर है। इनमें से तीसरी चीज अर्थात् उपयुक्त विश्राम कालों की व्यवस्था पर प्रबन्धक का सीधा नियन्त्रण होता है। अन्य तीन पर इसका अप्रत्यक्ष नियन्त्रण होता है। उत्तम काम-दशाएं होने से, कर्मकार के शरीर और समर्थता पर निश्चय ही बहुत प्रभाव पडता है। काफी और अच्छी तरह फैला हुआ प्रकाश और वायु संचरण की ऐसी व्यवस्था, जिसमें वातावरण तरो-ताजा और शक्तिदायक बना रहे, मानव यन्त्र को अच्छी तरह कार्य समर्थ बनाये रखने के लिए आवश्यक है। काम से ध्यान हटाने वाले शोर और कम्पन, स्नायु तन्त्र को परिश्रान्त कर देते हैं, क्योंकि श्रान्ति के लक्षण स्नायविक लक्षण हैं, जिनमें श्रान्ति शीघ्र आती है। दुर्घटना का भय कर्मकार के जीवन में चिन्ता का एक मुख्य कारण है और परेशानी पैदा करता है। कपडे सुविधाजनक, और रख-रखाव की दृष्टि से काफी ढीले परन्तु इतना सुथरा होना चाहिए कि यन्त्रों के चलते हुए भागों में फसने की गुंजायश न रहे।

कारखाने में भोजन बनाने और खाने की व्यवस्था का पाचन शक्ति पर प्रभाव पडता है। प्राय जब कोई आदमी परिश्रान्त होने की शिकायत करता है। तब उसकी परिश्रान्ति का कारण असल में काम नहीं होता। शायद वह अपने समय के विभाजन में उचित सतुलन न रख रहा हो, या स्वास्थ्य के नियमों के प्रतिकूल जीवन बिता रहा हो। शक्ति उचित आहार, और अति भोजन, जल्दी-जल्दी भोजन या अनुपयुक्त भोजन से बचने पर निर्भर है, तथा आमोद-प्रमोद की प्राप्ति, गहरे सांस, उचित आसन और सोने के कमरे पर निर्भर है। घर में रहने की अवस्थाओं का कारखाने में होने वाली श्रान्ति पर बहुत प्रभाव पडता है। दस में से नौ बार श्रान्ति के पीछे घर की अनुपयुक्त अवस्थाओं, चिन्ता, धन-नाश, रोग विशेष, अनियमित समय तक काम करने या बाहरी कार्यों के अनुचित बोझ का किस्सा होता है। कर्मकार के स्वास्थ्य और साधारण दक्षता पर प्रभाव डालने वाली एक और चीज काम की घटबढ होती है—कभी काम बहुत अधिक होता

हैं और कभी निकम्मे बैठना पड़ता है। कार्य की चाल, औसत या कोई उचित चाल होनी चाहिए। जहां तक संभव हो, ओवरटाइम से बचना चाहिए, क्योंकि दिन भर के काम से भारी परिश्रान्ति शरीर को इससे हानि पहुंचेगी। परीक्षणों से यह पता चला है कि ज्यों-ज्यों श्रान्ति बढ़ती है, त्यों-त्यों प्रयास भी बढ़ता जाता है। देर-देर तक ओवरटाइम करने वाला कर्मकार प्रतिदिन बिना तरोताजा हुए अपने काम पर आता है। "पूरी तरह न उतरी हुई थकान एक ऐसा ऋण है जो चक्रवृद्धि ब्याज से चुकाना पड़ता है।"

एक और तथ्य, जिसे प्रबन्धक और फोरमैन भुला देते हैं, यह है कि हमारी मानवीय शक्ति, रुक-रुक कर बढ़ती है। जब लगातार बोझ पड़ता है और विश्राम के लिए कारखाने की ओर से कोई व्यवस्था नहीं की जाती, तब कर्मकारों को एक-न-एक बहाना बनाकर एक-न-एक धोखे से विश्राम करना पड़ता है। स्वयं प्रयुक्त इलाज, प्रतिरक्षात्मक शिथिलीकरण का अधिकतर मजदूरों द्वारा अपने काम की दृष्टि से किया हुआ स्वाभाविक समंजन है। उदाहरण के लिए, भारी शारीरिक श्रम के काम में विश्रामकाल आवश्यक है, और जो समय की हानि प्रतीत होती है, वह बहुधा आवश्यक विश्राम काल होता है। सब पक्षों के लिए अधिक सुखद और अच्छी बात यह है कि विश्राम का काल निश्चित कर दिया जाए जिससे ऐसा मौका न आये कि कोई फोरमैन, जिसे जल्दी से कर्मकारों को हांकने का काम सौंप दिया गया है, अप्रिय कहा-सुनी करे। विश्राम काल कारखाने की ओर से निश्चित किया जाना चाहिए, जैसा कि टेलर ने कच्चा लोहा उठाने वालों के लिए किया था। विश्राम काल के उपयोग के बारे में ब्रिटिश औद्योगिक श्रान्ति गवेषणा मंडल ने लिखा है "जब विश्राम के लिए रुका जाय तो यह महत्वपूर्ण बात है कि आसन बदल लिया जाए, चाहे विश्राम काल एक ही मिनट का हो। कहने का अभिप्राय यह है कि जो लोग खड़े होकर काम करते हैं, उन्हें अधिक आरामदेह जगह बैठ जाना चाहिए और जो लोग बैठकर काम करते हैं उन्हें खड़े हो जाना चाहिए और अगर बिना किसी विशेष असुविधा के, वे घूम सकें तो और भी अच्छा है। इससे श्रान्त मांसपेशियों में रक्तसंचार बढ़ जाता है, और श्रान्ति घट जाती है।"

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, दिन के पिछले भाग में और सप्ताह के अन्तिम हिस्से में उत्पादन घट जाता है। अगर काम का समय कम कर दिया जाए तो अन्त में काम की गति इतनी बढ़ जायेगी कि समय की कमी की पूर्ति हो जाए और सम्भवतः इससे उत्पादन बढ़ जाएगा।

एकरसता (Monotony)—श्रान्ति के प्रश्न के साथ बिल्कुल जुड़ा हुआ प्रश्न एकरसता का है जिसे 'एक थकाने वाली एकरूपता" कहकर परिभाषित किया गया है। इसमें भी मनोवैज्ञानिक कारक अधिक महत्वपूर्ण है। कारण यह कि कुछ लोगों का शरीर ही ऐसा होता है कि वे अदल-बदल वाले की अपेक्षा निश्चित काम अधिक पसन्द करते हैं। मशीनों का उपयोग करते हुए एकरसता से बचा नहीं जा सकता। स्तम्भित करने वाली द्रुत गति से चलती हुई मशीनों को देख-

रेख निश्चित ही नीरस होगी। कुछ कार्यभारों को बारबार करके आदमी ऊब या उकता जाता है, या अन्य रीतियों से, उस कार्य के प्रति उसकी रुचि घटती हुई दिखायी देती है, अथवा आदमी को थकान भी अनुभव होती है और उसके साथ-साथ वह "परिवर्तन के खातिर" कुछ और करना चाहता है। यह उकताहट की अनुभूति के अर्थ में थकान है। कुछ कुछ समय बाद कार्यभार में परिवर्तन करने के अच्छे परिणाम निकले हैं। यह उपचार न केवल कर्मकार के दृष्टिकोण को विस्तृत कर देता है, बल्कि उसे एक कार्यभार से दूसरे कार्यभार को उठाने योग्य भी बना देता है, और उसकी औद्योगिक दक्षता बढ़ा देता है। दूसरे, यदि उसे पहले उचित शिक्षा मिली हो और काम के स्थान पर ही उसे उचित बात समझा दी गयी हो, तो वह अपने काम में बौद्धिक (या बुद्धिपूर्वक) दिलचस्पी लेने लगता है। इसमें काम में व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ने योग्य परिस्थिति हो जाती है और कर्मकार काम के अपने हिस्से को सम्पूर्ण काम से सम्बंधित करना सीख सकता है और यह सोचकर आनन्द अनुभव कर सकता है कि मैंने कोई उपयोगी वस्तु बनाई। कर्मकारों में सामूहिक कार्य की भावना पैदा की जानी चाहिए, जिससे एक आदमी, जो आजकल की एक फैक्टरी में, वर्षानुवर्ष, सिर्फ एक पहिया बनाता है वह, यदि उसकी शिक्षा ने उसे ठीक तरह तैयार किया है तो, पुराने जमाने के उस घड़ी-साज की अपेक्षा, जो एक घड़ी को शुरू से आखीर तक बनाता था, अधिक पूर्ण जीवन अनुभव कर सके। घड़ी के एक पहिये को मनोरंजक बनाने के लिए, इसको सारे उत्पाद के साथ सम्बन्ध बनाया जाना चाहिए। नीरसता तब भी घट जायेगी जब कर्मकार यह अनुभव करे कि विचारपूर्वक काम करता है, न कि स्वयंचालित यन्त्रों की तरह। एक और प्राकृतिक उपचार है—काम के घंटों में कमी करना। इसे पहले ही लागू किया जा रहा है। एक और बहुत महत्वपूर्ण उपाय, जो असल में उपचारात्मक की अपेक्षा निवारणात्मक अधिक है, यह है कि कर्मकारों को उनके कार्यभारों के लिए, उनके शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य के अनुसार अधिक सावधानी से छांटा जाय। सूक्ष्म प्रेक्षणों से प्रमाणित होता है कि एकरसता कुछ लोगों के लिए बहुत नीरस होती है, पर अन्यों के लिए उतनी नहीं होती। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से यह पता चला है कि जो लोग पुनरावृत्ति का दमन है, वे इससे सबसे अधिक नफरत करते हैं और जो लोग एक जैसे अनुभवों को बहुत अधिक देखते हैं वे वे हैं जो कुछ मिलाकर पुनरावृत्ति को पसन्द करते हैं। मिस्टर आगडन ने सुझाया है कि दो बातों से मजदूर को बचाना चाहिए, एक, तीव्र आवृत्ति और बहुत नियमित रूप से होने वाली आवृत्ति के संयोग से विरसता की भावना में रहना, और दूसरे "काम को बुद्धिपूर्वक या लगन के साथ न करने के कारण दिलचस्पी का अभाव।"

अनुकृत्यकारिता (Functionalisation)—वैज्ञानिक प्रबन्ध जिस प्रकार के नियन्त्रण को लागू करने की कल्पना करता है, उसमें कृत्यों का वृहदन यानी विस्तार हो जाता है। सब अवस्थाओं को प्रमापों के अनुसार रखने और विस्तृत सूचनाएं इकट्ठी करने और मजदूरों को बताने के लिए कर्मचारियों में बहुत

वृद्धि करना आवश्यक है। इसलिए टेलर ने विभागिक ढंग के संगठन के बजाय अनुकृत्यकारी ढंग के संगठन का सुझाव रखा। इससे मैनेजर और फोरमैन के कंधों से बडा भारी बोझ हट गया। कारखाने के एकमात्र प्रशासनीय अभिकरण के रूप में सिर्फ एक फोरमैन के बजाय कृत्यकारी फोरमैन नियुक्त किये जाते हैं। इससे फोरमैन अपनी कुछ जिम्मेवारियों से मुक्त हो जाता है और वह भार योजनाकक्ष के कर्मचारियों पर आ पडता है परन्तु उस पर बहुत से ऐसे कृत्य, जिन्हें पहले कर्मकार उदासीन भाव से करते थे, आ पडते हैं और नये कृत्य बढ़ जाते हैं। अन्तिम परिणाम यह होता है कि अब वह पहले की अपेक्षा अधिक फोरमैन बन जाता है। उसके काम की पूर्ति के लिए कृत्यकारी आधार पर नये कर्मचारी रखे जाते हैं। साधारणतया कारखाना नियन्त्रण के कृत्यों का इस तरह वर्गीकरण किया जा सकता है कार्यारंभ के लिए सुविधाएं इकट्ठी करना, उत्पादन के लिए मजदूरों और मशीनों के वास्तविक संचालन की देख-रेख करना, श्रेष्ठता (क्वालिटी) बनाये रखना, उपस्कर की मरम्मत कराते रहना और अनुशासन [illegible]यम रखना।

योजना कक्ष—नये कृत्यों और कर्त्तव्यों को संभालने के लिए जो केन्द्रीय अभिकरण बनाया जाता है, उसे योजना कक्ष कहते हैं। यह ऐसा स्थान है जिसमें ऊपर से मुख्य अधिकारियों के और नीचे से फोरमैन तथा मजदूरों के कृत्य आ जाते हैं। यह कार्यालय कारखाने के प्रक्रमों के लिए वही कार्य करता है जो स्थापत्य के लिए मसविदा विभाग (drafting department) या इंजीनियरी विभाग करता है। कहा गया है कि "मसविदा विभाग स्थापत्य का योजना-कक्ष है, और योजना-कक्ष उत्पादन का मसविदा विभाग है।" योजनाकक्ष में मार्ग निश्चय, काम का क्रम, अनुदेश पत्रों का तैयार करना, समय अध्ययन अभिलेखों और मशीन चाल अभिलेखों के संकलन, स्टोर अभिलेखों के हिसाब के संधारण, और लागत लेखा अभिलेखों के संधारण, के कृत्यों को समाविष्ट किया जा सकता है। टेलर ने लिखा है "एक योजना विभाग स्थापित कर देने से सिर्फ यह होता है कि योजना बनाने का कार्य और अन्य बहुत सा विभागीय काम थोडे से आदमियों में, जो इस कार्यभार के लिए समर्थ होते हैं, और अपने विशेष कार्यों में प्रशिक्षित होते हैं, केन्द्रित हो जाता है और अब यह कार्य पहले की तरह ऊंचे वेतन पाने वाले मिस्त्री, जो अपने धंधे के योग्य होते हैं पर पढ़ने लिखने के इस काम के योग्य नहीं होते, नहीं करते।"

सब जगहों पर कोई प्रमाप कर्मचारी रखने की सिफारिश नहीं की जा सकती। टेलर अनुकृत्यकारिता की एक योजना बहुधा सुझाता था जिसमें निम्नलिखित कर्मचारी थे —

एक प्रारम्भिक योजना कक्ष के लिए

१ काम का क्रम और मार्ग संभालने वाला क्लर्क, जो अनुदेशों के आधार पर मजदूरों और कारखाने के अफसरों के लिए दिन में किये जाने वाले काम का क्रम निर्दिष्ट करने वाली सूचियां तैयार करता है और कारखाने में काम के मार्ग का निश्चय करता है।

२ एक अनुदेश पत्र क्लर्क, जो मार्ग में दी हुई जानकारी का अध्ययन करके प्रत्येक कार्यांग के लिए विस्तृत आदेश, एक अनुदेश पत्र पर लिख देता है, जिस पर काम करने की रीति और समय पूरी तरह लिखा रहता है।

३ एक समय और लागत क्लर्क, जो मजदूरों से समय अभिलेख प्राप्त करता है, अर्जित मजदूरी और प्रीमियम का हिसाब करता है और लागत-सम्बन्धी विविध हिसाब लागत लेखा विभाग को भेजता है।

४ कारखाने का अनुशासन अधिकारी, जो अवज्ञा और अनुपस्थिति के मामले देखता है और पर्यवेक्षण तथा कारखानगी की शक्ति का उपयोग करता है। वह छोटे रूप में कारखाने के मैनेजर जैसा होता है।

कारखाने के लिए

१ एक टोली नायक, जो तब तक का काम देखता है जब तक सामान मशीन में नहीं डाला जाता और मजदूरों को यह भी बताता है कि आवश्यक सहायता का अच्छे से अच्छा और कम से कम समय में प्रयोग किया जाय।

२ एक चाल अधिकारी, जो यह देखता है कि उचित औजार और उपस्कर पहुँच जाएं और अनुदेश पत्र के अनुदेशों के अनुसार, सबसे ठीक चाल और प्रदाय (फीड) कायम रहे।

३ एक निरीक्षक, जिस पर वस्तु की श्रेष्ठता की जिम्मेवारी है।

४ एक मरम्मत अधिकारी जिसका काम यह देखना है कि मशीनों की मरम्मत होती रहे और प्रत्येक मजदूर अपनी मशीन को जंग आदि से मुक्त रखे और इसे नियमित रूप से तेल देता रहे।

वैज्ञानिक प्रबन्ध में मजदूरी—मजदूरी समस्या पर एक बाद के अध्याय में विचार किया जायगा। यहां पर वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिलसिले में प्रयुक्त होने वाली मजदूरी भुगतान की तीन प्रसिद्ध योजनाओं का उल्लेख करना काफी होगा। वे ये हैं (१) टेलर का डिफरेन्शल या भिन्नक श्रान्ति दर, (२) गेन्ट की बोनस सहित कार्यभार की पद्धति, (३) इमरसन की दक्षता मजदूरी। मजदूरी अदायगी की अनेक रीतियों पर पूरा विचार करते समय, इनमें से प्रत्येक पर अलग-अलग विचार किया जाएगा।

वैज्ञानिक प्रबन्ध का विरोध

उद्योगों में वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू करने के स्पष्ट लाभ होते हुए भी इसकी, जिसे किसी समय टेलरवाद (टेलरिज्म) कहते थे, कई आधारों पर आलोचना की गई है। इसका मुख्य लक्ष्य मनोविज्ञान का उपयोग करना बताया जाता है ताकि न्यूनतम मानव ऊर्जा व्यय करके अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके। पर मनोवैज्ञानिक देखता है कि यह मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया पैदा करने में असफल है— कारखानेदार, जिसके लिए यह उत्पादन बढ़ाना चाहता है, इसके प्रति उदासीन है और मजदूर, जिन्हें इससे बहुत तरह का लाभ बताया जाता है, इसका विरोध करते हैं। इस पद्धति का

इधर-उधर की उलझनों में अलग करना और इनके पक्ष और विपक्ष का पर्याप्त रूप से मूल्य-निर्धारण करना तथा नकली और असली में विभेद करना आसान काम नहीं है। यहां इसे लागू करने में दिलचस्पी रखने वाले तीनों पक्षों —कारखानेदार, मजदूर और औद्योगिक मनोविज्ञान विशारद—के विचारों की संक्षेप में समीक्षा की जायेगी।

कारखानेदारों की आपत्तियाँ—अधिकतर कारखानेदार अत्यधिक व्यय के आधार पर इसे लागू करने में आपत्ति करते हैं। प्रारम्भिक प्रमापीकरण के लिए आवश्यक पुनर्गठन बहुत अधिक खर्चीला है, और इसी तरह समय और गति अध्ययन भी। जिन की मशीनों पर काम निरन्तर बदलता रहता है और छोटे कार्यादेश होते हैं उन पर तो यह खर्च किया ही नहीं जा सकता, पर कारखानेदारों की उदासीनता इस भावना पर आधारित है कि धन से सब समस्याएं हल हो जाती हैं और कि खर्च बचाने का अर्थ है लागत कम करना। ऐसे कारखानेदारों में दूरदृष्टि का अभाव होता है और वे बड़ा भारी खर्च करके अपनी लागत कम रखते हैं। वे जीवन के इस मूल नियम को नहीं समझ पाते कि सिर्फ धन की बात सोचते रहकर आप धनी नहीं हो सकते। उनकी एक और आपत्ति यह है कि इस पद्धति को शुरू करने के लिए आवश्यक आकस्मिक परिवर्तन काम की वर्तमान अवस्था को नष्ट कर देंगे और इस प्रकार उनका अपना ध्येय ही नष्ट हो जायगा। यह परिवर्तन क्रमशः और थोड़ा-थोड़ा करके किया जा सकता है। आपत्ति का आधारभूत कारण यह है कि सारे ही कारखानेदार परिवर्तन को नापसंद करते हैं। तीसरी आपत्ति योजना कक्ष और इसके साथ होने वाले अन्य आडम्बर के विषय में है। कहा जाता है कि इससे लागत बढ़ जाती है, विशेषकर इस कारण कि इसमें अनुत्पादक लोग नियुक्त किये जाते हैं, जिनके वेतन ऊपरी व्यय में वृद्धि कर देते हैं। यह तर्क दिया जाता है कि मंदी के जमाने में मजदूरों की संख्या घटाना तो सम्भव है परन्तु इन क्लर्कों और अधिकारियों को हटाने से दक्षता पर अवश्य बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस बात में सचाई है। परन्तु वैज्ञानिक प्रबन्ध के लागू करने से होने वाली बचत से इसकी आसानी से पूर्ति हो सकती है और मन्दी के समय में भी कारखाना अपने प्रतिस्पर्धियों के साथ सफलता के साथ मुकाबला कर सकता है।

मजदूरों का विरोध—संगठित श्रमिकों के नेताओं ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के विरुद्ध सबसे अधिक शोर मचाया है। श्रमिकों की मुख्य आपत्तियां निम्नलिखित हैं —

(१) मुख्य आपत्ति यह है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध प्रक्रमों के उपविभाजन और प्रमापीकरण द्वारा मजदूर के स्वयकर्तृत्व (Initiative) को नष्ट कर देता है, उसके हस्तकौशल को समाप्त कर देता है, नीरसता पैदा करता है, ज्ञान का एकाधिकार कायम करता है और मजदूर को एक यांत्रिक आटोमेटन बना देता है। यह सच है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध एक औसत मजदूर के बहुत से काम जो पहले वह स्वयं करता था, पूरे करके उसके क्रियाकलाप की सीमाओं को कम कर देता है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि औसत मजदूर की पहली अवस्था उत्पादक स्वयकर्तृत्व की अवस्था थी। साधारण कारखाने में आम तौर से मजदूरों को उनकी योग्यता से छोटे

कामों में लगाया जाता है। इसका यह परिणाम होता है कि यह विचार उनके मन में घूमता रहता है और उत्पादन कम होता है। दक्षता वाले कारखाने में लक्ष्य यह रहता है कि वे जिस काम के योग्य हैं, उन्हें उस ऊंचे से ऊंचे काम पर रखा जाय। इसके अलावा, कार्यकर्त्ताओं का शिक्षकों के एक समूह से घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है, जो उन्हें प्रशिक्षण विद्यालय की तरह सर्वोत्तम विधि समझाते और करके दिखलाते हैं। यह कहना गलत न होगा कि उत्पादन की अन्य पद्धतियों की अपेक्षा वैज्ञानिक प्रबंध के सिलसिले में अधिक सोचना आवश्यक है और अधिक ही सोचा जाता है। मजदूर का ध्यान अपने कार्यभार की ओर अधिक तेजी से खिंचता है। उसके मन में इसके लिए एक नया सम्मान पैदा हो जाता है और यह निश्चित हो जाता है कि उसकी दिलचस्पी बढ़ती जायगी क्योंकि वैज्ञानिक प्रबन्ध में प्रमाप स्थिर नहीं, बल्कि प्रगामी होते हैं।

२ श्रमिक नेताओं का वैज्ञानिक प्रबन्ध पर दूसरा ऐतराज यह है कि यह अप्रजातन्त्रीय है, क्योंकि इसमें कृत्यकारी अफसरों का निरंकुश नियन्त्रण होता है और मजदूर की दिलचस्पी और जिम्मेवारी कम हो जाती है। कहा जाता है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध मजदूर को औचित्य के सम्बन्ध में मालिक की धारणा स्वीकार करने के लिए बाधित करता है और मजदूरी पर लगाने, कार्य भार को जमाने, मजदूरी की दर निर्धारित करने, या नौकरी की साधारण दशाएं निश्चित करने में मजदूर की कोई आवाज नहीं रहने देता। यह मानना पड़ेगा कि इस मामले में टेलर की विधि सचमुच आक्षेप-योग्य थी। इसमें औद्योगिक निर्देशन और पर्यवेक्षण की ऐसी पद्धति कायम हो जाती थी जो मजदूरों पर सख्त नियन्त्रण लागू कर देती थी, जिसमें उन्हें बिना विचार या सवाल जवाब किये ऊपर के आदेशों का पालन करना होता था। परन्तु टेलर पद्धति की सोपान-तन्त्रीय योजना के स्थान पर कृत्यकारी प्रबन्ध लागू कर देने से विभिन्न कृत्य करने वाले विभागों में अधिक समन्वय पैदा करने में सफलता हुई। प्रबन्ध सम्बन्धी या प्राविधिक (टैक्नीकल) दक्षता के ऊँचे प्रमापों में से किसी पर आपत्ति उठाने की गुंजाइश नहीं, परन्तु उसकी यह मांग सही है कि अपने कार्यभार, कार्य की दशाओं और अपने सहकर्मियों की पदोन्नति-पदावनति से सम्बद्ध मामलों में उससे सलाह ली जानी चाहिए। तो भी प्रत्येक मालिक का, जो सब शर्तों को, चाहे वे युक्तियुक्त हों या अयुक्त हैं बिना ननुनच के स्वीकार नहीं कर लेता, अलोकतन्त्रीय, निरंकुश, हृदयहीन, मनमानी करने वाला और मजदूर के उचित अधिकार का अपहर्ता कहा दिया जाता है। असल में विरोध का आधिक कारण यांत्रिक दिनक्रम (routine) के विरुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया और अंशतः इस तथ्य के कारण है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध पूंजी-पति द्वारा प्रस्तावित सुधार है। हाल के वर्षों में मजदूर का सहयोग प्राप्त करने के लिए और उसे यह अनुभव कराने के लिए कि वह कारखाने में हिस्सेदार है कुछ प्रयत्न हुए हैं।

३ इस पर अन्याय्यता के आधार पर भी आपत्ति की गई है, क्योंकि इसके लागू होने के परिणामस्वरूप होने वाली लाभ-वृद्धि का मुख्य अंश पूंजी को जाएगा। चाहे मजदूरी कितनी भी बढ़ जाए और प्रीमियम बोनस देने के विभिन्न रूपों के साथ

मजदूरी कम करने की चालाकियां भी चलती रहती हैं। संक्षेप में मजदूरों को यह भय है कि यह अन्वारम्भ, मजदूर की हानि की दृष्टि से प्रयुक्त किया जा सकता है और इसमें इनके उद्घोषित सिद्धान्तों और आचारों के दुरुपयोग के विरुद्ध कोई गारण्टी नहीं। इस पद्धति में चाल बढ़ाई जाती है और मजदूरों को हांका जाता है कि इससे मजदूरों पर स्नायविक दबाव पड़ता है। इस दलील में सचाई है, क्योंकि दक्ष अभिकरण उपयोग की तरह दुरुपयोग में भी दक्ष हो सकते हैं। पर यह मानना पड़ेगा कि दुरुपयोग का भय *वैज्ञानिक प्रबन्ध के विरुद्ध तर्क नहीं है, बल्कि वैज्ञानिक प्रबन्ध को लागू करने में प्रबन्ध आवश्यक है और क्षुद्र स्वार्थ के ध्येय से अपनायी गयी कोई भी पद्धति बुरी है।*

४. एक और आपत्ति इस तथ्य के आधार पर है कि इसमें मजदूरी की बचत करने वाले उपाय अपनाने के परिणामस्वरूप मजदूर बेकार हो जाते हैं। *निःसन्देह इससे कुछ बेकारी हो जाती है पर वह अस्थायी ढंग की होती है। मजदूर की मांग कोई स्थिर नहीं है, क्योंकि आर्थिक प्रक्रिया सदा प्रगामी और गतिशील होने के कारण मजदूर की मांग पैदा करती रहती है।*

५. *विरोध का अन्तिम और सम्भाव्यतः असली कारण यह है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध कारखाने में मजदूरों के लिए सन्तोषजनक अवस्थाएँ पैदा करके उस सीमा तक इन मजदूरों पर श्रमिक नेताओं का प्रभाव कम कर देता है। मजदूरों के दल में संगठन और हितों की एकता की भावना कम हो जाती है क्योंकि सन्तुष्ट मजदूरों को सामूहिक सौदेबाजी के द्वारा अपने नेताओं से किसी सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। जब एक बार यह अनुभव कर लिया जाएगा कि ट्रेड यूनियन का जो लक्ष्य है वह बिना संघर्ष या विद्रोह के प्राप्त किया जा सकता है, तब ये ऐतराज समाप्त हो जायेंगे।*

मनोवैज्ञानिकों का दृष्टिकोण— वैज्ञानिक प्रबन्ध का मुख्य ध्येय यह रहा है कि मनोवैज्ञानिक का ऐसा "व्यावहारिक प्रयोग किया जाय जिससे मानव ऊर्जा के न्यूनतम व्यय से अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके।" यह सच है कि "दक्षता विधियों ने शारीरिक श्रान्ति को समाप्त कर दिया और उस सीमा तक मजदूर की अवस्था को सुधारा है, परन्तु प्रायः उन्हें ऐसे ढंग से लागू किया गया कि उससे मजदूर पर और अधिक स्नायविक तनाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक परखों को मर्जी से लागू करना भी ठीक नहीं, क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति में भेद होता है और भेद पर ध्यान न देने से गलत परिणाम निकलता है। उदाहरण के लिए, गिल्ब्रथों ने अनुभव से देखा कि विराम घड़ी द्वारा समय अध्ययन के जो अंक प्राप्त होते हैं, वे पूर्णतया परिशुद्ध नहीं होते, क्योंकि घड़ी इतनी तेज चलती है कि उसमें पूर्णतया परिशुद्ध परीक्षण नहीं हो सकता। उन्होंने यह भी देखा कि किसी स्थान (डैटा) का अभिलेख करने में त्रुटि हो सकती है और यह निश्चय करना कि कौन से समय चुने जाएँ, अधिकतर अपने अपने विवेक का प्रश्न है। इसलिए उन्होंने अपने प्रमाप, "काम करने की एक मात्र सर्वोत्तम रीति," को लागू करने का प्रतिपादन किया। यह प्रमाप फ्रैंक गिल्ब्रेथ द्वारा बनाये गये एक क्रोनोमाइक्रोग्राफ यानी कालचक्र-लिखित्र के उपयोग पर आधारित

था। पहले सूक्ष्म-कालमापी, यानी माइक्रो-क्रोनोमीटर और चलचित्रों के उपयोग द्वारा परिशुद्ध समय-याम अभिलिखित करने के लिए सूक्ष्मगति (माइक्रो-मोशन) की इस विधि का निर्देश किया जा चुका है। मनोविज्ञान-वेत्ताओं के आक्षेपों के अलावा, यह विधि आधुनिक उद्योग में सरल प्रक्रिया की अपेक्षा करने वाले बहुत बड़े कार्य के लिए बहुत खर्चीला सिद्ध हुई है। "एकमात्र सर्वोत्तम रीति" के विषय में यह कह देना ठीक होगा कि यह न मान लेना चाहिए कि कोई एक ऐसी आदर्श विधि है जो एक प्रमाप चाल और एक प्रमाप गति से निरूपित हो सकती है, क्योंकि यह स्मरण रखना रखना चाहिए कि मजदूर मजदूर में विधि और ताल की दृष्टि से, जो या तो उनके लिए "स्वाभाविक" होते हैं और या उन्हें उनकी आदत पड़ जाती है, बड़े व्यक्तिगत भेद होते हैं। 'एक मात्र सर्वोत्तम रीति' के सिद्धान्त की सबसे अधिक अधिकार-पूर्ण आलोचना एक अत्यन्त प्रमुख औद्योगिक मनोविज्ञान-वेत्ता डा० सी० एस० मायर्स के द्वारा में पेश की जा सकती है। आपने लिखा है —"मुख्यतः औद्योगिक मनोविज्ञान वेत्ताओं के बढ़ते हुए प्रभाव और उन द्वारा की गई गवेषणाओं से अब यह स्पष्ट हो गया है कि काम करने की कोई एक मात्र सर्वोत्तम रीति नहीं, कि विभिन्न मजदूरों के लिए विभिन्न शैलियाँ उपयुक्त होती हैं और कि प्रशिक्षण के सिद्धान्तों का आधार यह होना चाहिए कि मजदूर को निश्चित रूप से बुरी आदत ग्रहण करने से रोका जाय, यह नहीं कि उस एक समान विधि, जो शायद उसके लिए अनुपयुक्त हो, अपनाने के लिए बाधित किया जाए।" "अगर मशीनी अध्ययन के परिणामस्वरूप काम का यंत्रीकरण और मजदूर का प्रमापीकरण हो जाता हो, तो दूसरी अवस्था पहली से बुरी है और उन क्रियाविधियों से, जो मानवीय अंश की इतनी बुरी तरह उपेक्षा करती हैं, दक्षता में कोई वृद्धि नहीं होती।

वैज्ञानिक प्रबन्ध और इसकी विधियों की, विशेषकर मजदूरों के सिलसिले में, प्रो० सारजंट फ्लोरेंस ने जो आलोचना की है, वह मनोरंजक भी है, और शिक्षाप्रद भी। आपने लिखा है कि मुख्य में वैज्ञानिक प्रबन्ध का लक्ष्य और विधियाँ दक्षता वृद्धि के लिए बनाए गए थे पर उनके लागू किए जाने पर इस आन्दोलन के व्याख्याता यह दावा कर रहे हैं कि इस औद्योगिक मजदूर की हालत सुधर गई। पर "विशेषज्ञ" मजदूर समस्या का समाधान में असमर्थ है और अपने अज्ञान के कारण उन समस्याओं का हल करने का दावा करते हैं जिन्हें आज कोई भी सामाजिक विज्ञान सम्भवतः हल नहीं कर सकता, और दूसरी बात यह है कि जहाँ कहीं वैज्ञानिक परिणाम सम्भव हैं, वहाँ वैज्ञानिक प्रबन्ध स्वतः वैज्ञानिक नहीं रहता। इसलिए आपका कहना है कि (१) जहाँ वैज्ञानिक समाधान असम्भव है वहाँ वैज्ञानिक प्रबन्ध बड़े-बड़े अतिरंजित दावे करता है प्रायः वैज्ञानिक प्रबन्ध के परिणामस्वरूप मजदूरियाँ निश्चित रूप से बढ़ी हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि यह वृद्धि किसी स्वतः प्रवर्त्तमान वैज्ञानिक नियम के

१ दि न्यू रोड टु इंडस्ट्रियलिज़्म, पृष्ठ ३८।
२ ए बी ब्राउन, दि मशीन एण्ड दि वर्कर पृष्ठ १३९।

कारण हुई। प्रबन्ध बोनस तैयार करता है और प्रायः कुछ ऐसी धारणा के आधार पर करता है कि किसी विशेष श्रेणी के मजदूर को क्या मिलना चाहिए। डा० टेलर के सिद्धान्तों में उनके मदों में यह बात स्पष्ट की गई है। एक जगह यह बताया गया है कि यह निश्चय करने के लिए कि सब बातों पर विचार करने के बाद वास्तव में कितना क्षतिपूर्ति मनुष्य के सच्चे और सर्वोच्च हित के लिए है सावधानी से, निष्पक्ष भाव से, बहुत से परामर्श किए गए थे। विचार तो अच्छा है पर इसे विज्ञान नहीं कह सकते। (२) जहाँ वैज्ञानिक समाधान सम्भव है, वहाँ वैज्ञानिक प्रबन्ध काफी वैज्ञानिक नहीं रहता। डा० टेलर का दावा है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध मजदूरों को अत्यधिक थकान तथा स्नायविक तथा शारीरिक परिस्थिति में बचाता है परन्तु निम्नलिखित तथ्यों से निष्कर्ष निकलता है कि मानवीय श्रम का वैज्ञानिक दृष्टि से जरा भी अध्ययन नहीं किया गया। (क) समय अध्ययन प्रायः सहगामी गति अध्ययन के बिना ही कर लिया गया, (ख) अतिथकान का खतरा इस विचित्र ढंग के कारण बढ़ जाता है कि मजदूरों के एक समूह का कार्य-भार सबसे अधिक अनुकूल परिस्थितियों में सबसे अधिक तेज अभिलेख के आधार पर किया जाता है। (ग) कर्मचारियों को छाटने, प्रशिक्षित करने और उद्दीप्त करने की ओर वैज्ञानिक ध्यान नहीं दिया गया, जिसका टेलर ने शुरू में प्रतिपादन किया। व्यवहार में यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध, उद्योग में मानवीय कार्य की दक्षता की ओर उतना ध्यान नहीं देता जितना कि उसने भौतिक कारकों की दक्षता पर दिया है। जहाँ तक इंजीनियरिंग उपयोगिता का प्रश्न है, वैज्ञानिक प्रबन्ध की नकल्पना का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इसने भौतिक दक्षता को बहुत बढ़ा दिया और यह वृद्धि उन बातों की ओर सचेत रहकर ध्यान देने से हुई है, जिसमें मानवीय कारक अधिकाधिक अन्तर्ग्रस्त है। परन्तु इसमें आगे इसके दावे विज्ञान के क्षेत्र से बाहर हैं अथवा मानवीय आधार पर गड़े हैं। आर्थिक जगत और मानवीय कारक वैज्ञानिक प्रबन्ध के दर्शन की कल्पना की उड़ान में भी, अधिक जटिल है। अन्त में, प्रोफेसर फ्लोरेन्स ने लिखा है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध एक सुधार अवश्य है, पर जिस रूप में इस पर वस्तुतः अमल हो रहा है, उस रूप में यह कोई नयी चीज नहीं है, बल्कि "हाथ की बुद्धिमत्ता" के नये क्षेत्र में विक्टोरियन दक्षता को लागू करता है। यह उद्योग के भारत निरंकुश नियन्त्रण में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता, और न यह उद्योग की मजदूर समस्याओं पर वैज्ञानिक गवेषणा को वस्तुतः लागू करता है।

विभिन्न आपत्तियों की जाँच करने से यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध पर उतना आक्षेप नहीं किया जा सकता जितना उसे अमल में लाने के तरीकों पर। खुशी की बात है कि हाल के वर्षों में टेलर-शास्त्र की रीतियों को अधिक बुद्धिमत्ता से लागू करके "वैज्ञानिक प्रबन्ध में औद्योगिक मनोविज्ञान और कायिकी (फिजिओलोजी) को समाविष्ट करके और श्रम तथा प्रबन्ध के कृत्यों और पारस्परिक सम्बन्धों में दोनों पक्षों में अधिक सौहार्द के द्वारा इन में से बहुत से आक्षेप दूर कर दिये गये। दोनों पक्षों में सामंजस्य और पारस्परिक सद्भाव की कल्पना है और यह अनुभव किया गया है

कि सामूहिक सौदेबाजी, जो वैज्ञानिक प्रबन्ध का एक हिस्सा है, मजदूर को नये रूप में जल्दी काम कराने की विधि द्वारा शोषित करने की इच्छा के विरुद्ध सबसे अधिक सुनिश्चित गारंटी है। सिद्धान्त के रूप में वैज्ञानिक प्रबन्ध अच्छी चीज है पर यदि इसे उद्योग में सफलतापूर्वक लागू करना है तो इसमें सब कर्मचारियों का पूरा सहयोग होना चाहिए।

अध्याय :: १६

वैज्ञानिकीकरण

(Ritionalesation)

अर्थ और क्षेत्र—वैज्ञानिकीकरण या रैशनलाइजेशन एक बेडौल शब्द है, जो पहले महायुद्ध के बाद जर्मनी में प्रयुक्त होता था। यह शब्द अर्थशास्त्र-सम्बन्धी साहित्य में चारों तरफ गूंज रहा है। यह शब्द 'समामेलन (एमल्गमेशन) और सीमित चक्र (प्राइमरिंग) आदि बहुत पुराने औद्योगिक तरीकों का दिया हुआ एक सुन्दर नाम," "एकाधिकार को छिपाने के लिए एक आडम्बरपूर्ण शब्द" बताया जाता है।

इस आन्दोलन के बारे में औसत आदमी का यह विचार है कि यह उन कई सारी सम्बन्धित प्रवृत्तियों की परिणति को निरूपित करता प्रतीत होता है जो प्रथम महायुद्ध के शीघ्र बाद औद्योगिक क्षेत्र में तीव्र हो गई थी। इन प्रवृत्तियों में से कुछ ये थी—अव्यवस्थित प्रतियोगिता के स्थान पर औद्योगिक सम्मिलन के अनेक रूपों में प्रयोगकरण की वृद्धि और वैज्ञानिक प्रबन्ध तथा दक्षता विधियों की वृद्धि। थोड़े से शब्दों में यह बता देना कि रैशनलाइजेशन या वैज्ञानिकीकरण का क्या अर्थ है, कोई हँसी-खेल नहीं। इस तरह के जटिल प्रश्न में ऐसे विविध कारक हैं जो प्रत्येक उद्योग में और उस उद्योग की हरेक शाखा में एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि उन्हें सबको किसी एक सिद्धान्त के नीचे ले आना कठिन है। इसके अलावा, इस शब्द का अर्थ अपने शुरू के अर्थ की अपेक्षा बहुत अधिक व्यापक हो गया प्रतीत होता है।

रैशनलाईजेशन शब्द जर्मन भाषा के रैशनलीसियेरंग शब्द से निकला है। जिसका जर्मनी में सबसे पहले प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद प्रयोग हुआ था।

शुरू में यह शब्द एक अधिक सुनिश्चित और सीमित लक्ष्य का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त हुआ था और यह लक्ष्य युद्धोत्तर-कालीन परिस्थितियों,-विशेषकर रुहर की परिस्थितियों के कारण बना था। वह लक्ष्य यह था कि कुछ औद्योगिक कारखानों के उत्पादन का शमन कर दिया जाय, अर्थात् उनकी सीमा निश्चित कर दी जाय, और साथ ही लागत में कमी कर दी जाय, पर अब यह शब्द उस बहुत अधिक व्यापक नीति का वाचक हो गया है जिसे संसार भर के उद्योगपति अपना रहे हैं। जिनीवा में १९२६-१९२७ में हुए विश्व आर्थिक सम्मेलन में रैशनलाईजेशन या वैज्ञानिकीकरण की इस परिभाषा की गई थी कि प्रयास या सामग्री की हानि को न्यूनतम रखने के उद्देश्य से अपनाई गई प्रविधि और संगठन की विधियाँ वैज्ञानिकीकरण के अन्तर्गत आती हैं। श्रम के वैज्ञानिक संगठन प्रश्नों के सरलीकरण और परिवहन तथा विपणन (मार-

वेटिंग) की व्यवस्था म सुधार भी इसम शामिल है। वैज्ञानिकीकरण जिस आधारभूत बात को प्रगट करता है वह यह है कि यह हानि या विरोधन, उत्पादन पर रोक और उत्पादन तथा उत्पादकों की अधिकता को घटाना मात्र है, अर्थात् जान-बूझकर योजना द्वारा इस या उस एक-दो कारखाना की नहीं, बल्कि प्रत्येक उद्योग और उद्योग समूह की, या औद्योगिक उत्पादन के सारे क्षेत्र म लागत को व्यवस्थित रीति से घटाना और कुल उत्पादन को बढ़ाना तथा जो कुछ उत्पादन हो, उसका बुद्धिपूर्वक वितरण। इस प्रकार प्राफेसर प्रायेम कहते हैं कि वैज्ञानिकीकरण का लक्ष्य एक उद्योग के सब कारखाना म किसी तरह की मयुक्त कार्यवाही के द्वारा वैज्ञानिक और युक्तियुक्त रीति म बरबादी और अदक्षता को दूर करना है। इसम विज्ञान वह है जिसका वैज्ञानिक प्रबन्ध म उपयोग किया जाता है और युक्ति का सम्बन्ध इस बात से है कि कच्चे माल और तैयार वस्तु के बीच के विभिन्न प्रक्रमों म सम्बन्धित अनेक कारखानों को शीर्षत (वर्टिकली) एक कर दिया जाता है अथवा उसी प्रक्रम में लगे हुए कई कारखानों को क्षैतिजत एक कर दिया जाता है। इसलिए वैज्ञानिकीकरण के दो पहलू हैं, एक भीतरी और एक बाहरी। जब इसे बाहर से लागू किया जाता है तब इसका अर्थ यह होता है कि कमजोर और अदक्ष एकको को खत्म करने की दृष्टि से कम मूल्यों पर योजनाबद्ध वितरण करने और कच्चे सामान तथा प्रौद्योगिक गवेषणा के समुच्चय की दृष्टि से बहुत सारे स्वतन्त्र और विविध प्रकार के कारखानों को सजीव एकता में बाँध देना। भीतर की ओर से लागू करने म इसका अर्थ है एकीकृत एकको के अन्दर वैज्ञानिक प्रबन्ध का विस्तार। अतः वैज्ञानिकीकरण या रैशनलाईजेशन का अर्थ सिर्फ रैशनिंग या मात्रा-निश्चय ही नहीं है, बल्कि उद्योगों के प्रति रैशनलाईजेशन या युक्तियुक्त होना अर्थात् इन सब अवस्थाओं में युक्ति को लागू करना है।

तो "उद्योग का वैज्ञानिकीकरण उत्पादन के साधनों और उपयोग के सम्भाव्य साधनों का सामंजस्य करने का प्रयत्न है और मूल्यों को ऐसे ढंग से विनियमित करने का एक यत्न है जिसमें ऊँचे पहाड़ की चढ़ाई रेखाओं के समान उठने और गिरने बजाय मूल्यों का एक काफी समतल मार्ग बन जाय जिस पर व्यापार और वाणिज्य चल सके।"[1] रैशनलाईजेशन का जो सबसे अधिक व्यापक और सबसे अधिक स्वीकृत अर्थ है, उसमें इसे इस तरह परिभाषित किया जा सकता है कि उत्पादन की और उत्पादन के वितरण की विधियों का ऐसी रीति से जान-बूझकर पुनः अनुस्थापन करना कि इससे अधिकतम आर्थिक और सामाजिक लाभ प्राप्त हों। इसके साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक योजना निर्माण, असामंजस्य और आर्थिक सन्तुलन की सम्भावनाओं में कमी और आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था की पुनः स्थापना भी होती है। इस आन्दोलन की मूल अवधारणा यह है कि मशीन, सामग्री, श्रम या यान्त्रिक प्रक्रम, इन सब में अनावश्यक अधिकता को खत्म कर दिया जाय। इसलिए सबको

१ माड, इकानमी एण्ड पोलीटिक्स, पृष्ठ २११।

मिलाकर विचार करें तो यह प्रत्येक उद्योग को सबसे अधिक आधारभूत और सबसे अधिक फलप्रद आर्थिक उपाय, अर्थात् श्रम के विभाजन का अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। बजाय इसके कि अपने-अपने पृथक् संगठन वाली बीसों स्वतन्त्र फैक्टरियाँ हों, जो बहुत तरह की वस्तुएँ बनाती हों, वैज्ञानिकीकृत उद्योग का आदर्श यह है कि एक केन्द्र से नियन्त्रित थोड़े से बड़े-बड़े कारखाने हों, जिनमें से प्रत्येक कारखाना अपनी पूरी क्षमता से काम करता हुआ यथासम्भव वे थोड़ी सी वस्तुएँ बनाता रहे जिनके लिए वह सबसे उपयुक्त है। इस प्रकार के संगठन से जो बचत होगी, वह अलग-अलग उद्योग में बहुत भिन्न-भिन्न होगी। उन उत्पादनों में सबसे अधिक बचत होगी जिनमें बहुत सारी स्थिर पूँजी काम आती है और जो एक सी वस्तुएँ बनाते हैं, जिन्हें आसानी से प्रमापित किया जा सकता है। पर बचत की बात कम या अधिक दूर तक औद्योगिक कार्य के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में लागू हो सकती है।

वैज्ञानिकीकरण और वैज्ञानिक प्रबन्ध—एक समय वैज्ञानिकीकरण शब्द वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों के प्रयोग को सूचित करने के लिए ही प्रयोग किया जाता था, परन्तु अब दोनों शब्दों में भेद समझा जाने लगा है। वैज्ञानिकीकरण बहुत अधिक व्यापक शब्द है जिसमें वैज्ञानिक प्रबन्ध तथा और बहुत सी बातों का समावेश होता है। डा० सी० एस० मायर्स[1] ने इस भेद को बड़े प्रशंसनीय ढंग से प्रस्तुत किया है। आपने लिखा है —"इस प्रकार वैज्ञानिकीकरण के अन्तर्गत वह चीज भी है, जिसे एक व्यवसाय में वैज्ञानिक प्रबन्ध, अर्थात् श्रम और प्रबन्ध का वैज्ञानिक संगठन कहते हैं। पर इसका क्षेत्र और अधिक विस्तृत है—इसमें न केवल एक कारखाने के अलग-अलग कर्मचारियों या विभागों में, बल्कि निकट-सम्बन्धित या सम्मिलित कारखानों में भी, निकटतर सहयोग होता है। दूसरे, वैज्ञानिक प्रबन्ध वर्तमान उत्पादनों की दक्षता बढ़ाने में ही व्यस्त रहता है, जबकि वैज्ञानिकीकरण किसी एक प्रकार की बहुत सी आवश्यक किस्मों के सरलीकरण और इसी प्रकार गुट्ट (कम्बाइन) के भीतर सामान, यथा, उत्पादों और उनके पैकिंग के प्रमापीकरण की ओर भी विशेष रूप से ध्यान देता है।" तीसरी बात यह है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध मुख्यतः श्रमिकों के प्रबन्ध और दक्षता से सम्बन्ध रखता है, जबकि वैज्ञानिकीकरण के अन्तर्गत वित्तपोषण, उत्पादन और वितरण तथा परिवहन, विज्ञापन और विक्रय के खर्च आदि सब कार्य आ जाते हैं। चौथे, वैज्ञानिकीकरण में विभिन्न इकाइयों का एकीकरण आवश्यक है पर वैज्ञानिक प्रबन्ध का इससे कुछ वास्ता नहीं। पाँचवीं बात, जो ऊपर वाली बात से ही निकलती है, यह है कि वैज्ञानिकीकरण का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य, जिससे एक स्वतन्त्र कारखाने में होने वाले वैज्ञानिक प्रबन्ध का कुछ सम्बन्ध नहीं, यह है कि हानिकर प्रतियोगिता को खत्म किया जाय और इसके लिए वह कमजोर कारखानों को खरीदकर बाद में बन्द करके खत्म कर देना है। किसी वस्तु विशेष के उत्पादन की मात्रा गुट्ट के प्रत्येक सदस्य के लिए

1 बिजनेस रैशनलाईजेशन, पृष्ठ २०—२२।

निश्चित कर देता है। वस्तु-विशेष के लिए प्रत्येक सदस्य कारखाने का क्षेत्र निश्चित कर देता है, और इस प्रकार मुकाबले की बिक्री से होने वाली हानि को रोक देता है, गुट्ट के किसी माल उत्पाद को बेचने के लिए कीमत निश्चित करता है और इसके लिए लागत लगाने की सम्मिलित पद्धति, कच्चा सामान खरीदने की साझी व्यवस्था और गुट्ट का माल बेचने का इकट्ठा प्रबन्ध करता है। यदि कोई हानि हो तो उसे सारे गुट्ट पर फैलाता है और प्राविधिक, वाणिज्यिक तथा आर्थिक गवेषणा के परिणामों का मिलकर लाभ उठाने की व्यवस्था करता है। "अन्तिम बात यह है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध एक ही एकक के भीतर क्रिया के एकीकरण, भेद और सूत्रबद्धता से वास्ता रखता है पर वैज्ञानिकीकरण एक गुट्ट के भीतर ये सब चीजें भी करता है और इससे आगे, यह सब तरह के मजदूरों की सन्तुष्टि, रोजगार की स्थिरता, उपभोक्ता की आवश्यकताओं और अन्त में सारे समाज की असुविधाओं पर विचार करता है—उपभोक्ता को भी यह नीची कीमत पर उसकी आवश्यकता के लिए उपयुक्त वस्तुएँ प्राप्त कराता है और समाज को अधिक आर्थिक स्थिरता तथा जीवन की दशाओं का अधिक ऊँचा स्तर प्रदान करता है।

इसके प्रयोग की क्रमिक अवस्थाएं—वैज्ञानिकीकरण के वास्तविक प्रयोग में तीन क्रमिक अवस्थाएँ हैं—१ योजना-निर्माण, २ पुनर्विन्यास, ३ विकास। योजना-निर्माण का पहला कदम बाजार का ठीक-ठीक सर्वेक्षण करना है, जिसके अन्तर्गत वर्तमान बाजार का सिंहावलोकन, सम्भावित बाजारों, और वितरण के मार्गों का तखमीना लगाना पड़ता है। इस सर्वेक्षण से यह निश्चय करना सम्भव हो जाएगा कि क्या उत्पादन किया जाय और गुट्ट के विभिन्न एककों में से कौन उत्पादन करे, क्या मूल्य रखे जाएँ, और किन मार्गों का उपयोग किया जाय। एक बार बिक्री का कार्यक्रम तय हो जाने के बाद वैज्ञानिकीकृत एकक में उत्पादन की योजना तैयार करने में कोई कठिनाई न होनी चाहिए। सारत इसमें वही बात होती है, जो एक वैयक्तिक व्यवसाय में, अन्तर सिर्फ इतना है कि इसमें बहुत बड़े पैमाने पर काम होता है। उत्पादन, यन्त्र, श्रम, कच्चा सामान, शक्ति, पर्यवेक्षण और निरीक्षण, इन सबकी मात्रा निर्धारित करके उनकी शुद्धता की जाँच करने के लिए और तुलना की दृष्टि से, वित्त की एक सामान्य इकाई के रूप में ले आना चाहिए। इसके लिए एक व्यापार कार्यक्रम बनाया जाता है जो बिक्री कार्यक्रम और उत्पादन कार्यक्रम अमल में लाने पर सम्भावित वित्तीय परिणाम पहले ही बता देता है।

दूसरी अवस्था है पुनर्विन्यास जिसमें प्रमापीकरण और सरलीकरण होता है। पुनर्विन्यास उपस्कर (एक्विपमेंट) और यन्त्रों तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए उनके प्रमापीकरण से सम्बन्ध रखता है। यह वस्तुओं की किस्मों के सरलीकरण और घटाने से भी सम्बन्ध रखता है। संक्षेप में, यह अतिरेक का समापन करने से सम्बन्ध रखता है। निर्माता के लिए इसका अर्थ है अधिक उत्पादकता और कौशल, कम अरबादी और कार्यकर्ताओं को आसानी से प्रवीणता की प्राप्ति, सामान और खाली

पुर्जों में कम पूंजी बधनी है, लागत लगाने की पद्धति सरल होजाती है और मौसमी परिवर्तन के प्रभाव कम हो जाते हैं। तो भी वैज्ञानिकीकरण म यह आवश्यक है कि किसी एकक को एक उत्पादक एकक के रूप में सोचने से पहले विपणन एकक के रूप म उसकी योजना बनायी जाए। इसके विपरीत क्रम तभी उचित हो सकता है जब या तो राज्य पूरी तरह समाजीकृत हो और या युद्ध की अवस्था हो—पहली अवस्था में तो उत्पादन राज्य के लिए होता है, और दूसरी अवस्था म यह राज्य के एक विभाग द्वारा दिये हुए एक ठेके के आधीन किया जाता है।

तीसरी अवस्था म विशेषीकरण या उपविभागीकरण (मैकनाइजेशन), जो वस्तुत प्रमापीकरण का तर्कसंगत परिणाम है, के विस्तार द्वारा योजना का विकास होता है। इसमें पहले से अधिक यंत्रीकरण करना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप अब उत्पादन के छोटे से छोटे प्रक्रम के लिए भी मशीनों का उपयोग किया जा सकता है। वे बहुत अधिक चाल और दक्षता से काम कर सकती हैं। साधन वास्तव म उत्पादक हो जाते है। बढ़ी हुई उत्पादकता उत्पादक साधनों को मुक्त कर देती है। यह "पूंजी प्रतिकल्प" के रूप में नहीं, बल्कि "पूंजी के प्रतिकल्प" के रूप म कार्य करती है। यह असली बचत है। यह चार प्रकार से आर्थिक दृष्टि से प्रभावकारी हो सकती है। कारखाना इस प्रकार मुक्त पूंजी को, उसी तरह की अन्य वस्तुएं बनाने म लगा सकता है, कारखाना उत्पादन में वृद्धि करके या बिना वृद्धि किये, कीमत म कमी कर सकता है, यह वास्तविक मजदूरी बढ़ा सकता है, अन्त मे, यह मुक्त साधनों को लाभ के रूप में दिखा सकता है और उनका वितरण कर सकता है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि वैज्ञानिकीकरण *का अर्थ उत्तरोत्तर अधिक यंत्रीकरण नहीं है, और न प्रगाढ़ीकरण (इंटेंसिफिकेशन) है*। कभी मशीनों के स्थान पर बहुत आदमी लगाकर वैज्ञानिकीकरण करना भी सम्भव है। प्रगाढ़ीकरण तत्वत वैज्ञानिकीकरण से भिन्न चीज है। वैज्ञानिकीकरण का अर्थ है आधुनिकीकरण और मशीनों तथा मजदूरों का तर्कसंगत मार्ग-प्रदर्शन, दूसरी ओर प्रगाढ़ीकरण में पुरानी मशीनों को नया किया जाता है, और इसके बाद मजदूरों को क्षति पहुंचा कर भी स्पीडिंग अप के द्वारा तेज चाल करने का यत्न किया जाता है जिसम मजदूर का और अन्ततोगत्वा समाज की हानि होती है।

इसलिए सच्चे अर्थों में वैज्ञानिकीकरण अपने शुद्ध स्वार्थपूर्ण प्रौद्योगिक और वाणिज्यिक पहलुओं से व्यवसाय पर विचार करने के बजाय, इस पर व्यापक आर्थिक, सामाजिक और साधारणतया मानवीय पहलुओं म भी विचार करता है। इन सब पहलुओं के बिना यह व्यवसायिक मामलों का कूट वैज्ञानिकीकरण (स्यूडो-रेशनलाईजेशन)[1] है।

वैज्ञानिकीकरण के सफल प्रयोग के लिए बड़े पैमाने के उत्पादन को बड़े पैमाने के उपयोग से सन्तुलित करना चाहिए। सच तो यह है कि वैज्ञानिकीकरण का मुख्य

१. मायर्स, पूर्वोक्त पुस्तक में पृष्ठ २२।

प्रयोजन बरबादी को खत्म करना है, जिससे उत्पादन सस्ता हो जाय और साथ ही सम्भरण और माग को लगातार सतुलित रखा जाय।

वैज्ञानिकीकरण और राष्ट्रीयकरण—इन दोनो शब्दों का अर्थ और क्षेत्र एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। राष्ट्रीयकरण एक नीति है, जबकि वैज्ञानिकीकरण एक प्रक्रम है, यद्यपि दोनो को, विभिन्न सिद्धान्तो वाले लोग, हमारी सब आर्थिक बुराइयो को दूर करने वाले जादुई इलाज के रूप म पेश करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो वैज्ञानिकीकरण का प्रयोग अनेक देशो म हानिकारक प्रतियोगिता को खत्म करके और उद्योग को तर्कसगत आधारो पर सगठित करके निजी कारखाना का नष्ट होने से बचाने के लिए किया गया है। उधर निजी उद्योग द्वारा किये जा रहे अपनी शक्ति के दुरुपयोग के कारण, दूसरो ने उसके इलाज के रूप म राष्ट्रीयकरण का सुझाव रखा। इस प्रकार वैज्ञानिकीकरण का लक्ष्य निजी उद्योगो की बुराइयो को हटाना है, जबकि राष्ट्रीयकरण इसे सर्वथा समाप्त कर देता है। अगर राष्ट्रीयकरण अनावश्यक अतिरेक को हटाकर दक्षता बढाना है तो यह वैज्ञानिकीकरण का एक साधन बन जाता है क्योंकि वैज्ञानिकीकरण राजकीय कारखानो के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि निजी कारखानो के लिए। निजी और राजकीय, दोनों क्षेत्रो म, बडे पैमाने के प्रबन्ध म, प्रमापीकरण, प्रबन्ध सम्बन्धी विज्ञान, मजदूरो का सगठन और प्रौद्योगिक प्रगति म मजदूरो का ज्ञानयुक्त सहयोग आवश्यक है। सिर्फ राष्ट्रीयकरण से वैज्ञानिकीकरण नही हो जायगा। राष्ट्रीयकृत उद्योगो को भी वैज्ञानिक रीति से चलाना आवश्यक है।

लाभ—वैज्ञानिकीकरण के पक्षपाती इसके बहुत से लाभ बताते हैं। वैज्ञानिकीकरण से दिखाई देने वाले लाभ निम्नलिखित बताये जा सकते हैं

समामेलनो द्वारा वैज्ञानिकीकरण अलाभकर प्रतियोगिता को समाप्त कर देता है और इस प्रकार उद्योग म स्थिरता लाता है। यह व्यापार-चक्र के अनिवार्य प्रतीत होने वाले उतारो-चढावो के कारण बार बार होने वाले सकटो के प्रभाव को कम करने के लिए सम्भरण को माग के अनुकूल करने का अवसर प्रदान करता है।

इसके द्वारा उत्पादन यथासम्भव अधिक दक्ष एकको म केन्द्रित हो जाता है, जो निरन्तर काम करते रह सकते हैं और इस प्रकार बडे पैमाने के काम म होने वाली सब बचत हो पाती है। ठीक ढग से वैज्ञानिकीकृत गुट्ट म उसके घटक कारखानो को, जब जो चाहें, जितना चाहे, उत्पादन करने और बेचने की इजाजत नही होती। योजनाबद्ध उत्पादन म अति-उत्पादन और उसके परिणामस्वरूप उससे होने वाली हानि नही होती।

निर्माण कार्य के उपविभागीकरण का भी ऐसा ही परिणाम होता है। उदाहरण के लिए मि० फोर्ड सिर्फ फोर्ड कार ही नही बनाते, बल्कि विलास-पूर्ण लिंकन कार और मामूली ट्रैक्टर भी बनाते हैं। परन्तु वह उन्हे अलग-अलग कारखानो म बनाते हैं। उनका हाईलैण्ड पार्क (डिट्रोइट) का कारखाना सिर्फ फोर्ड मोटर ही बनाता है। इसी प्रकार जनरल मोटर्स बहुत तरह के माडल बनाते हैं। परन्तु प्रत्येक माडल अलग कारखाने में

बनाते हैं। इस प्रकार जनरल मोटर्स ग्राहक को बहुत सी चीजें पेश कर सकते हैं। पर साथ ही उनका प्रत्येक कारखाना, जो जनरल मोटर्स के गुट्ट में है, एक या दो-एक माडलों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकता है। उत्पादन में उपविभागीकरण और प्रमापीकरण, और विपणन में मिलकर काम करना ही यहां मुख्य लक्ष्य होता है।

एक और लाभ सामान के सरलीकरण और प्रमापीकरण से होता है। सिर्फ थोड़े से प्ररूपों का उत्पादन किया जाता है। निकम्मों या अनावश्यक प्ररूपों को छोड़ दिया जाता है। उत्पादन का जटिल संगठन कम हो जाता है। प्रविधि में, अर्थात मशीनों के निर्माण और सगठन में, इस प्रकार सुधार करना सम्भव हो जाता है, और एक बार फिर उत्पादन विधियों में सुधार होता है और लागत कम हो जाती है। निर्माता के लिए इन सुधारों का अर्थ है उत्पादकता और कौशल में वृद्धि, बरबादी में कमी, और कार्यकर्त्ताओं की दक्षता में वृद्धि। सुदराफरोश को भी लाभ होता है क्योंकि अब वह थोड़ा माल ले जा सकता है। उसके लिए माल के नष्ट हो जाने या पुराना पड़ जाने का खतरा कम हो जाता है। बेचने का काम आसान हो जाता है और पूंजी का खर्च घटाना सम्भव हो जाता है। उपभोक्ता के लिए विचारपूर्वक किये हुए सरलीकरण से चीज की श्रेष्ठता में सुधार और विक्रय कीमतों में कमी और इसलिए क्रय शक्ति में वृद्धि हो जाती है।

जब एक ही गुट्ट के अनेक कारखाने, जो अनुप्रस्थत एकीकृत होते हैं, एक सी वस्तुएं बनाते हैं, तब वैज्ञानिकीकरण उनके अलग-अलग बिक्री क्षेत्र बांट देता है, और इस प्रकार दोहरी-तिहरी बिक्री से होने वाली अनावश्यक बरबादी को खत्म कर देता है। परिवहन और विज्ञापन की व्यवस्था सांझी होती है, जिससे वितरण की लागत कम हो जाती है।

वैज्ञानिकीकरण विनियत वितरण तथा मांग में होने वाले विभेद की पूर्वसूचना द्वारा बाजार को स्थिर भी रखता है।

केन्द्रीकृत और विनियमित बिक्री के साथ सम्बद्ध है केन्द्रीकृत खरीद। सामान, ईंधन, स्टोर आदि की खरीद एक ही अभिकरण में केन्द्रित करके बहुत भारी बचत की जा सकती है। केन्द्रीय खरीद की व्यवस्था में हर कारखाने का अलग अलग खरीदने वाला कर्मचारी वर्ग नहीं रखना पड़ता और केन्द्रीकृत बिक्री में अनावश्यक दलाल नहीं होते। इन सब कार्यों में होने वाली बचत बहुधा बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है।

वित्त के केन्द्रीयकरण से, जो वैज्ञानिकीकरण के कारण होना सम्भव हो जाता है, कोई लाभ होते हैं। स्वभावतः एक बड़े एकक की साख बहुत अधिक होती है और अन्य बातें समान होने पर भी बहुत सारे प्रतिस्पर्धी विरोधी एककों की साख उतनी नहीं हो सकती।

वैज्ञानिकीकरण का एक और लाभ यह है कि इसके होने पर ऐसी रीति से केन्द्रीकृत और साधन-सम्पन्न गवेषणा हो सकती है जैसी लघु एकक पद्धति में व्यवहार्य नहीं। गवेषणा न केवल यांत्रिक, रासायनिक और भौतिक समस्याओं के विषय में होती

हैं, बल्कि मनोवैज्ञानिक प्रश्नों के बारे में भी होती है, जो वैज्ञानिक प्रबन्ध में सारी प्रगति का आधार है। सूचनाओं के केन्द्रीयकरण से विपणन गवेषणा (मारकेट रिसर्च) में भी बहुत सुविधा हो जाती है।

श्रम के दृष्टिकोण से भी वैज्ञानिकीकरण के अनेक लाभ होते हैं। इसके अन्तर्गत औसत दृष्टि से कार्य की अधिक अच्छी दशाएँ और सब प्रकार के मंगल कार्यों के और अधिक अवसर प्राप्त होते हैं, जिनका आर्थिक मूल्य बहुत ज्यादा होता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों के लागू होने से ये अवस्थाएँ सुनिश्चित हो जाती हैं, जिनमें श्रम की अधिकतम दक्षता पैदा होती है। वैज्ञानिक प्रबन्ध प्रगतिशील श्रम नीति अपनाने की भी प्रेरणा देता है।

इन लाभों के अलावा, वैज्ञानिकीकरण प्रत्येक उद्योग के लिए एक नीति निर्धारित करना सम्भव बना देता है। यह उद्योग को सैकड़ों प्रतियोगिताओं के विभिन्न पारस्परिक विरोधी विचारों के अनुसार अंधेरे में इधर-उधर भटकने के बजाय उद्योग को बुद्धियुक्त और तर्कसंगत रीति से संगठित होने का मौका देता है।

स्वर्गीय लार्ड मेल्चेट का कहना था कि इसके चार लाभ हैं—(१) यह पूंजीव्यय का वैज्ञानिक बटवारा करा देता है और नये यंत्रों तथा आधुनिकतम उपस्कर के वित्तपोषण में सहायक होता है। (२) इसमें विशेषीकरण को प्रोत्साहन मिलता है, अदक्ष कारखाने बन्द हो जाते हैं, प्रबन्ध का और वाणिज्यिक प्रचार, बिक्री तथा अन्य खर्चों का संकेन्द्रण हो जाता है। (३) इससे बरबादी और एक ही काम का दो बार होना, उदाहरण के लिए, स्टाक का द्विगुणन, वस्तुओं के आकार और रूप में अनावश्यक विविधताएँ या एक ही चीज के बारे में कई जगह गवेषणा, रुक जाता है। (४) बाजारों और मूल्यों की घट-बढ़ के दुष्परिणामों से बचाता है और कच्चा सामान खरीदने तथा तैयार माल बाजार में लाने की व्यवस्थित पद्धति को बढ़ावा देकर यह आर्थिक आवश्यकताओं और सम्भरणों के, संसार भर की दृष्टि से, समालोचन की सुविधा प्रस्तुत करता है।

वैज्ञानिकीकरण के खतरे—वैज्ञानिकीकरण कीमतों और बिक्री के नियंत्रण, या बड़े पैमाने के उत्पादन द्वारा प्रतियोगिता की समाप्ति करके, उत्पादन के सरलीकरण और प्रमापीकरण द्वारा तथा संगठन में समेकन और विशेषीकरण लाकर साधारण रूप से निर्माताओं और व्यवसाय-कर्त्ताओं को अनेक लाभ पहुँचाता है, परन्तु जब यह समझ लिया जाता है कि राष्ट्र के संचालकों की वित्तीय सफलता ही सफल वैज्ञानिकीकरण की एक मात्र कसौटी नहीं है, बल्कि कर्मचारी, उपभोक्ता और सारे समाज के हितों और मंगल को भी मुख्यता दी जानी चाहिए, तब हमारे सामने वैज्ञानिकीकरण के अयुक्तियुक्त प्रयोग का खतरा आ जाता है।

पहली बात तो यह कि व्यवसाय एकक के बड़ा हो जाने से एक छोटे क्षेत्र में तो बहुत हद तक प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है पर इसमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता तीव्र भी हो सकती है। तेल (पेट्रोल) उद्योग इसका एक सुपरिचित उदाहरण है,

ढग की हो। वैज्ञानिकीकरण तीन तरह से रोजगार को कम करता है—(१) अनुत्पादक कारखानों को बन्द करके और उनका उत्पादन अन्य केन्द्रो को सौंप कर; (२) उत्पादन के नियन्त्रण और कारखानों के आधुनिकीकरण द्वारा और (३) उन कर्मचारियो और आदमियो को हटाने के द्वारा, जिनकी आवश्यकता सिर्फ आन्तरिक प्रतियोगिता के कारण हुई थी, परन्तु कर्मचारियो के हटाने का प्रश्न इसलिए भी पैदा हो सकता है कि या तो मजदूरो की कुल संख्या में कमी करनी हो और या अकुशल के स्थान पर कुशल मजदूर अथवा स्त्री मजदूरों के स्थान पर पुरुष मजदूर रखने हों। कम से कम कुछ समय के लिए तो बेकारी की समस्या बढ़ेगी ही, यद्यपि बेकार होने और दूसरे कामो म खप जाने की दरो म अन्तर हो जाने के कारण बहुत समय तक स्थिति अस्पष्ट रहेगी। इसके अलावा, अगर मजदूर को अन्त मे दूसरी जगह काम म लगा लिया जाय तो भी बहुधा बाद वाले काम में मजदूरी कम होती है और वह पहले वाले काम से कम सन्तोषकारक होता है। यह वैज्ञानिकीकरण का एक गम्भीर परिणाम है, चाहे मजदूर के लिए नई माग पैदा हो रही हो, यद्यपि यह ठीक है कि भवन-निर्माण और उपस्कर उद्योगो को इससे स्पष्ट प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए "योजनाबद्ध बेकारी" से हानि उठाने वालो के साथ परिस्थितियो के अनुसार, उदारता से व्यवहार करना चाहिए। रोजगार दफ्तर (एम्प्लायमेण्ट एक्सचेंज) इस दिशा मे उपयोगी कार्य कर रहे हैं और सबके वास्ते अधिकतम जीवन स्तर की व्यवस्था करने के लिए बेकारी बीमे को वैज्ञानिकीकरण कार्यक्रम का अग बनाया जा सकता है। अन्य दो आपत्तियो के बारे में वही बात यहा लागू होती है, जो वैज्ञानिक प्रबन्ध पर उठाई गई आपत्तियो के जवाब में कही गई है। टेलर यह सदा आग्रह करता था कि सच्चा वैज्ञानिक प्रबन्ध न तो मजदूर को हाकता है, और न उससे अत्यधिक काम लेता है, लेकिन कठिनाई यह है कि कारखानेदार मानवीय कारक की उपेक्षा करने लगते है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि वैज्ञानिकीकरण या वैज्ञानिक प्रबन्ध पर कोई आपत्ति नही है, बल्कि उनके अयुक्त और अवैज्ञानिक प्रयोग पर आपत्ति है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ ने वैज्ञानिकीकरण का नहीं, बल्कि पूजीवादी पद्धति में इससे पैदा होने वाले दुरुपयोगो का विरोध किया, और इन्टरनैशनल फैडरेशन आफ ट्रेड यूनियन्स (ट्रेड यूनियनो के अन्तर्राष्ट्रीय सघ) तथा लेबर एण्ड सोशलिस्ट इन्टरनैशनल (श्रमिक और समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय सघ) के एक सयुक्त आयोग ने सर्वसम्मति से एक सकल्प स्वीकृत किया था, जिसमे व बात बताई गई थी जिनके होने पर वैज्ञानिकीकरण को बेकारी और अनिवार्य के जनक से कल्याण के स्थान म बदला जा सकता है। सकल्प में निम्न बाते कही गई हैं—

(४) "वैज्ञानिकीकरण सिर्फ कारखानेदारो का ही मामला नही है, क्योंकि इसके लागू होने पर किसी भी समय मजदूरो को हटाने का प्रश्न पैदा हो सकता है। इसलिए रोजगार की विधियो या अवस्थाओ या मजदूरो के वितरण में प्रस्तावित परिवर्तनो के सम्बन्ध म सलाह देने का ट्रेड यूनियनो का अधिकार माना जाना चाहिए

और इसकी व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे मजदूरों के हितों की रक्षा हो सके, और वैज्ञानिकीकरण की किसी ऐसी योजना को रोका जा सके जो मजदूरों के शोषण को बढाती हो। (२) रोजगार पर वैज्ञानिकीकरण के दुष्प्रभाव को यथासम्भव कम करने के लिए और परिवर्तनों को सुविधा के साथ लागू करने के लिए सुधरी हुई टेकनीक और सगठन से होने वाले फायदे तत्काल उपलब्ध होने चाहिएँ, और काम के घण्टे कम कर देने चाहिएँ तथा मजदूरों की वास्तविक मजदूरी बढा देनी चाहिए। बीमा पद्धति से या अन्य रीतियों से, समय की शर्त बिना लगाये उन लोगों को पर्याप्त बेकारी सहायता मिलनी चाहिए जिन्हें रोजगार से हटा दिया गया है। (४) उद्योग अपने यन्त्रों और उपस्कर के परिचालन तथा परिष्कार को आवश्यक समझता है। इसलिए बहुत सी फर्में न केवल घिसाई (डिप्रेसिएशन) के लिए, बल्कि पुराने यन्त्रों के घिसने के पहले ही, इनके स्थान पर अधिक आधुनिक ढग के यन्त्र लगाने के लिए भी धन जमा करती हैं। यह आवश्यक है कि उद्योग के मानवीय अश की ओर भी उतना ही ध्यान दिया जाए जितना वह यन्त्र और उपस्कर की ओर देता है और प्राविधिक प्रगति से मजदूरों पर मुसीबत नहीं आनी चाहिए। मानव श्रम के स्थान पर मशीनरी लगाने से उत्पन्न कठिनाई को दूर करने के लिए उद्योग को यथासम्भव सारी वित्तीय जिम्मेवारी उठानी चाहिए। (५) अन्तिम बात यह है कि सरकारों को बेरोजगार हुए मजदूरों को कम से कम ऐसा काम दिलाने के लिए, जैसा वे पहले कर रहे थे या दूसरे रोजगार में उन्हें जमा देने के लिए, अपने सब साधनों का पूरा-पूरा उपयोग करना चाहिए।"[1]

वैज्ञानिकीकरण और भारतीय उद्योग—यह आन्दोलन प्राय सब पश्चिमी देशों में फैल गया, यद्यपि हर जगह इसका क्षेत्र और आकृति अलग-अलग हैं। हमारे देश में वैज्ञानिकीकरण की नीति, जिसमें अधिकतम आर्थिक और सामाजिक लाभ के लिए उत्पादन और वितरण की विधियों का पुनर्गठन करना होता है, कहीं-कहीं को छोड़कर, अब तक नहीं अपनाई गई और न निकट भविष्य में इसके अपनाये जाने का कोई मौका है, यद्यपि यहां की अवस्था वही है जो जर्मनी में पहले विश्व के बाद वाले मुद्रास्फीति के काल में थी, और हमारी अर्थ व्यवस्था को पुन बसाने की आवश्यकता है, तो भी यहां सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता अनुभव नहीं की जा रही है।

हमारे सब उद्योगों—कोयला, सूती वस्त्र, चीनी, जूट—में कम-अधिक मात्रा में एक ही बीमारी दिखाई दे रही है, अर्थात् परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बनने में असमर्थता और इसका मुख्य कारण है सहयोग का अभाव। मैनेजिंग एजेण्टों के प्रबल व्यक्तिवाद और उनकी उपाय-सम्पन्नता ने भूतकाल में उन्हें असाधारण तौर से "सफल" बनाया है। परन्तु युद्ध के कारण और इसके अकस्मात् बन्द होने से प्रचण्ड विक्षोभों और विभाजन के तत्काल बाद अभूतपूर्व उथल-पुथल ने कुछ निर्माताओं को

[1] लेबर एण्ड सोशलिस्ट इन्टरनेशनल की चौथी कांग्रेस की रिपोर्ट और कार्यवाही (वियेना, १९३२)

सगठित होने की आवश्यकता महसूस कराई। परन्तु दुर्भाग्य से हमारे देश में वैज्ञानिकीकरण का अर्थ ऊँची कीमतें कायम रखने और मजदूरों का शोषण जारी रखने के लिए गुट बनाना ही समझा गया। इसलिए हमारे देश में इस "कूट-वैज्ञानिकीकरण" को लागू करने पर मुख्य आपत्ति एकाधिकार शक्ति के आधार पर की गई है। यह सच है कि ए० सी० सी०, उपभोक्ता को बिना विशेष हानि पहुँचाये, संयुक्त सफल कार्यवाही का उज्ज्वल उदाहरण है, परन्तु इण्डियन शुगर सिन्डीकेट के दुष्कर्मों की याद अभी इतनी ताजी है कि भारतीय व्यवसाय पर विचार करते हुए उसे नजरन्दाज या आसानी से विस्मृत नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह है कि हमारे देश में बड़े पैमाने पर खपत तब तक नहीं की जा सकती जब तक नियन्त्रित खपत लागू न कर दी जाय और एक लोकतन्त्रीय तथा मंगलकारी राज्य में यह बात सोची भी नहीं जा सकती। वैज्ञानिकीकरण सिर्फ वहां आवश्यक होता है, जहां अधिक उत्पादन-क्षमता और कम मांग का सामंजस्य करने के लिए अतिरेक को हटाना हो। भारत में अति-उत्पादन की अवस्था कभी भी पैदा नहीं हुई, फिर आज की तो बात ही क्या। तथ्य यह है कि मांग की पूर्ति करने के लिए उत्पादन काफी नहीं और जो कुछ उत्पादन होता है, वह वस्तु की श्रेष्ठता का विचार किये बिना, सब खप जाता है। सीमेण्ट और लोहा तथा इस्पात उद्योग पहले ही "वैज्ञानिकीकृत" हैं, क्योंकि ए० सी० सी० और टिस्को (TISCO) उत्पादन के क्रमशः ८० और ७० प्रतिशत को मात्रा को नियन्त्रित करते हैं। कपड़ा, जूट, चीनी, और कोयला खानों में भी उत्पादन की पुरानी विधियां अभी चालू हैं, और इनमें नई टैक्नीकल विधियों को लागू किया जा सकता है। हमारी कोयला खानों के विस्तृत यन्त्रीकरण और शेष उद्योग को शीघ्र आधुनिकीकरण की आवश्यकता है।

वैज्ञानिकीकरण के लिए विशेष रूप से वस्त्र उद्योग में जो प्रयत्न किये गये हैं, उनका परिणाम यह हुआ है कि मजदूरों की संख्या घट गई है और काम अधिक प्रगाढ़ हो गया है। उदाहरण के लिए, बम्बई की मिलों में कताई खाते में एक आदमी के जिम्मे रिंग के दो पार्श्व कर दिये गए हैं, और बुनाई खाते में एक आदमी से दो, तीन, चार या इससे भी अधिक करघों को देखने के लिए कहा गया। १९४६ की रिपोर्ट में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं, जिनमें मजदूरों का काम बढ़ाया गया। परन्तु मजदूरी उसी अनुपात से नहीं बढ़ाई गई। इसी प्रकार, अहमदाबाद में मजदूर का काम दुगना हो गया पर इस प्रगाढ़ीकरण की क्षतिपूर्ति सिर्फ इसमें आधी मिली। इस तरह के उदाहरणों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि वैज्ञानिकीकरण की मांग प्रबन्ध की अदक्षता को छिपाने के लिए और उपभोक्ता से महंगाना दाम वसूल करने के लिए की जाती है, क्योंकि अपनी वर्तमान मनोवृत्ति होते हुए हमारे उद्योगपति कभी भी वैज्ञानिकीकरण का तर्कसंगत उपयोग नहीं करेंगे। इसलिए राज्य का हस्तक्षेप होना आवश्यक है। औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक (इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स बिल) में यह उपबन्ध किया गया है कि वैज्ञानिकीकरण के परिणामस्वरूप होने वाली छटनी की प्रस्थापनाओं पर औद्योगिक न्यायाधिकरण विचार कर सकेंगे।

भारत में वैज्ञानिकीकरण लागू करने के मार्ग में एक बाधा यह है कि टैक्नीकल

सुधार, वैज्ञानिक प्रबन्ध और श्रम की बचत करने वाले उपायो को लागू करने वाले क्षेत्र सीमित हैं। हमारी समस्या यह नही है कि कम मनुष्यो से कैसे काम चलाया जाए, बल्कि यह है कि लाखो मनुष्यो को रोजगार कैसे दिया जाय। दूसरी बात यह है कि नवीनतम मशीनो का उपयोग, जो इस कार्यक्रम का एक आवश्यक भाग है, हम अधिक दूर तक नही कर सकते, क्योकि हमे यन्त्रो के लिए विदेशा पर निर्भर रहना पडता है। सस्ता और अकुशल मजदूर वैज्ञानिकीकरण के मार्ग में एक और बाधा है। इस अन्तिम बाधा को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि हृदय-परिवर्तन हो, और वैज्ञानिकीकरण को लाभदायक रीति से लागू किया जाए। इससे यह प्रतीत होगा कि पुनर्गठन या तो राष्ट्रीयकरण द्वारा और या योजनापूर्वक समूहो का विकास करने की राष्ट्रीय-नीति से ही पुराने यन्त्रो को हटाने, और उत्पादन की कला तथा वितरण की विधियो के लिए अपेक्षित पूजी प्राप्त हो सकती है। रिजर्व बैंक और जाएन्ट स्टाक बैंको को इस काम में सहायता करनी चाहिए। यह कार्य इतना भारी है कि शुरू मे प्रगति अवश्य मन्द होगी, पर यह पहला ही तो कदम है, और एक बार उद्योग के पाव तर्कसगत मार्ग पर अच्छी तरह जम जाने पर अन्तिम ध्येय की प्राप्ति मे कोई सन्देह नही रहेगा।

इति

अध्याय : : २०

प्रवन्ध और नियंत्रण

प्लाट की स्थापना और आदर्श साज-सामान की व्यवस्था से औद्योगिक प्रबन्ध की लगभग आधी समस्या हल हो जाती है। पर प्लाट का अच्छा प्रबन्ध तभी हो सकता है, जब उसमें सन्तोषजनक सगठन बना दिया जाए, या दूसरे शब्दो में एक ढाचा बना दिया जाए, जो ईंटो और मसाले का, लकडी और लोहे का नही, बल्कि मनुष्यो का होगा। लोग इस निर्माण कार्य की ईंटे हैं, उनकी निष्ठा नीव है और उनकी सहयोग पूर्ण भावना वह गारा है, जो इस सरचना को दृढ़ता और प्राण देता है—इस प्रसग मे सगठन शब्द एक प्रक्रम और परिणाम दोनो को सूचित करता है। सगठन का प्रक्रम एक सगठन को जन्म देता है अर्थात् एक प्रशासनीय सरचना पैदा करता है। और जो व्यक्ति इस प्रक्रम को करता है, वह "सगठनकर्त्ता" या "प्रशासक" कहलाता है। मुख्य प्रबन्धाधिकारी का मुख्य काम यह है कि वह मनुष्यो को काम के कुछ हिस्से के साथ इस तरह जोड दे कि सारा काम परस्पर अनुकूल रहता हुआ चले, क्योकि कोई कारबार, चाहे वह पहले से चला हुआ भी हो, अपने आप चलता हुआ नहीं रह सकता। जैसे रुकते हुए लोहे के चक्कर को चलता रखने के लिए बार-बार चोट लगानी पडती है, और ठीक दिशा म रखना पडता है, उसी प्रकार कारबार को भी तेजी देनी पडती है। जैसे वह लोहे का चक्कर जो धीमा हो गया है, और इधर उधर को गिर रहा है साव-धानी से चलता रखा जा सकता है, वैसे ही जो कारबार बुरी तरह से बिगड गया है, उसे बहुत अधिक ध्यान और उद्दीपन की आवश्यकता होती है। प्राय किसी अच्छे बने हुए कारबार को उसकी ओर उचित ध्यान देकर ठीक तरह चलते रखना सरल होता है। और निर्देशन के अभाव म जब वह इधर-उधर गिरने लगता है, तब उसे उद्दीपन देना कठिन होता है। इसलिए कारबार को समावस्था म रखने के लिए यह आवश्यक है कि 'ऊपर के प्रबन्धकर्त्ता' उसे पर्याप्त उद्दीपन और निर्देशन दे और सम्भव अवसरो तथा खतरे के सकेतो को दूर से ही देख ले। प्राय अपर्याप्त पूजी वाली, निर्माण की बहुत कम सुविधाओं वाली, नाकाफी कर्मचारियो वाली कम्पनियां ऊपर से सुविधाओं से युक्त दिखाई देने वाली कम्पनियो की अपेक्षा अधिक अच्छी सिद्ध हुई हैं। यह हाल योग्य प्रबन्ध-धाधिकारियो की दूरदृष्टि के कारण ही हो सकी है।

कोई सगठन या प्रशासनीय ढाचा अपने आप में कोई लक्ष्य नही है। ऊपरी ढाचा तो काम में सुविधा पैदा करने के लिए है। यह तो कार्य का एक औजार है, या बल के प्रवाह को नियन्त्रित करने के लिए निश्चित किया हुआ मार्ग है, और यह कार्य उप-भोक्ताओं की आवश्यकता-पूर्ति के लिए वस्तुएँ तथा सेवाएँ बनाने का एक साधन है।

संगठन के सब अभिकरण और प्रशासनीय कार्य की सब रीतियाँ अन्त में इसी कसौटी पर कसी जायेंगी कि वे उत्पादन में कहाँ तक सफल हैं। इसलिए संगठन आरम्भ करने से पहले नीतियाँ स्पष्ट रूप से बना लेना जरूरी है। क्योंकि संगठन किसी योजना की सिद्धि के लिए मनुष्यों का एक साहचर्य है, इसलिए इस समष्टि का दक्षता-पूर्वक कार्य करना इस बात पर निर्भर है कि इसका छोटे-से छोटा हिस्सा और कार्य समजित हो। इसलिए संगठन में अफसरों और अन्य कर्मचारियों को मानव-स्वभाव की दृष्टि से सावधानी से उचित जगह पर लगाना चाहिए। उनके लक्ष्य अधिक से अधिक सीधे रूप में और दक्षता से तब ही पूरे होते हैं जब प्रत्येक घटक सांझे लक्ष्य के लिए संयुक्त कार्यवाही में और सब घटकों के साथ समजित हो। जैसे मन शरीर को चलाता है, वैसे ही प्रबन्ध वह ओजस्वी घटक है जो संगठन को शक्ति देता है, संचालित करता है, और नियन्त्रण में रखता है। यह एक सर्वांगीण और सर्वस्पर्शी कार्यवाही है जो बहुत सी इकाइयों को समष्टि में बाँधती है और अनेक मानवीय योग्यताओं को मिलाकर एक शक्तिशाली उपकरण बना देती है। यह एक हिस्से का दूसरे हिस्से से, एक विभाग का दूसरे विभाग से, इस तरह मेल बिठा देता है कि सारा जटिल तन्त्र सधा हो जाए। और वह बिना रुकावट चलने वाला यन्त्र बन जाए।

संगठन और विकास के क्रमिक कार्य—आम तौर पर संगठन शुरू में बहुत छोटे होते हैं और प्रत्येक ढाँचा विकास के इसी रास्ते पर चलता है। सबसे पहले कुछ लोगों का साहचर्य होता है। जिन लोगों के हित सांझे होते हैं, वे सांझे उद्देश्यों की सिद्धि के लिए आपस में इकट्ठे होते हैं। वे सांझे हित सांझी समझ और कार्यों में संयुक्त जिम्मेदारी के सूत्र से परस्पर बंधे रहते हैं। अगला कदम है काम का विभाजन। सब समूह यह देखते हैं कि यदि विभिन्न सदस्यों में काम बाँट लिया जाए तो हम अपने ध्येय की ओर तेजी से बढ़ सकते हैं और इससे कई आदमी एक ही काम में नहीं लगे रहते, और वे गलत दिशा में काम करने से बचे रहते हैं। व्यवसाय संगठन में यह चीज विभाग निर्माण का और विभिन्न कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ विभिन्न लोगों को सौंप सौंपे जाने का रूप ले लेती है। तीसरे नम्बर पर प्राधिकार का प्रत्यायोजन (Delegation of Authority) आता है, जो उपर्युक्त काम का स्वाभाविक परिणाम है। सहचारी समूह के कार्यों को अलग-अलग करने पर यह आवश्यक हो जाता है कि उनको कार्य करने के लिए प्राधिकार हो। प्राधिकार कुछ खास व्यक्तियों में निहित होता है, और उन्हें उसका प्रयोग सब सम्बन्धित व्यक्तियों के अधिकतम लाभ के लिए करना है। इस अवस्था में उन लोगों में विभेद किया जाता है जो समूह के कार्यों को निदेश देते हैं और जो उनका अनुसरण करते हैं। प्राधिकार और जिम्मेदारी की पंक्तियाँ इस प्रकार बनाई जाती हैं कि उस कार्य की परिपूर्ति हो सके, जो समूह के लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक-एक विभाग को करना है। सैनिक लाइन या विभागीय प्रकार का संगठन प्रारम्भिक है। इसके बाद नेता या ऐसे व्यक्ति ढूँढ निकालने का प्रश्न आता है जो समूह की आवश्य-कताओं को पहले से समझ सकें, और उन्हें पूरा करने की क्षमता प्रदर्शित करें। विभिन्न प्रकार के कार्यों से विभिन्न प्रकार के नेता पैदा होते हैं। इसलिए प्रत्येक समूह कार्य के लिए

कोई न कोई नेता होना चाहिए और मुख्यत उसे ही सगठन की समस्याएँ सौंपी जाती है। व्यवसाय के उपक्रम मे वह नेता औपचारिक सगठन शुरू करता है। जैसे-जैसे सगठन का आकार और सकुलता (Complexity) बढते जाते हैं, वैसे-वैसे यह जाहिर हो जाता है, कि कुछ कार्य ऐसे हैं, जो सारे समूह पर या उसके नेताओ पर नहीं छोडे जा सकते और उनके लिए विशेष ध्यान और अनुसंधान आवश्यक है। परिणाम यह होता है कि कुछ लोग सलाहकार या विशेषज्ञ नियुक्त किये जाते हैं, ताकि सारी सभव जानकारी सब सम्बन्धित लोगो को मिल सके, और उनके लिए उपयोगी हो सके।

लाइन तथा स्टाफ सगठन—इसी सिद्धान्त के आधार पर कुछ व्यक्तियों को स्टाफ के रूप मे विशेष समस्याओ के बारे मे सलाह देने का काम सौंप देने से विशेषज्ञ का विकास होता है। समूह-नेताओ को सलाह के लिए उन पर अधिकाधिक निर्भर होना पडता है। विशेषीकरण (Specialization) मे प्राधिकार का विभाजन हो जाता है, क्योंकि जैसे जैसे सगठन बढता है, और विशेष समस्याए बढती जाती है, वैसे-वैसे नेताओ को विशेष समस्याओ को सुलझाने का काम अनेक विशेषज्ञों को सौपना पडता है। सगठित कारबार में समूह साहचर्य कार्यानुसार विभाजन (Functional division) का रूप ले लेता है—उनके अध्यक्षों को अपने-अपने क्षेत्र की सब समस्याओ पर बिना यह सोचे कि वे सगठन में किस जगह पैदा होती हैं, प्राधिकार सौंप दिया जाता है। बहुत से व्यक्तियो म प्राधिकार के विभाजन और विशेषीकृत कार्यों का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि समजन की आवश्यकता पैदा हो जाती है। समजन इसलिए आवश्यक है कि सगठन के सब भाग लक्ष्य की ओर, बिना एक दूसरे से टकराये, बढते रहे और यह निश्चित हो जाए कि नेता सगठन के प्रयोजनों को ही न भूल जाएँ। सबसे अच्छी तरह समजित सगठन वह है जिसमे प्रबन्ध की दक्षता ऊँची हो।

सगठन के सिद्धान्त—जब कोई सगठन अस्तित्व में आता है, तब इसकी पहली कसौटी यह है कि यह अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति मे कितनी अच्छी तरह सहायता करता है। पर सगठन की किसी प्रणाली की सुस्थितता या कार्यसाधकता का तखमीना किन उपायों से लगाया जा सकता है? कोई सगठन सुस्थित है या असुस्थित, यह इस बात पर निर्भर है कि वह लक्ष्य कितनी दक्षता से प्राप्त कर सकता है और ये लक्ष्य सारे उपक्रम के अन्तिम उद्देश्य से सम्बन्धित होने हैं।

दक्ष सगठन के निम्नलिखित सिद्धान्त सुस्थित सगठन पैदा करते हैं

१. सुनिश्चितता (Definiteness)—प्रत्येक आवश्यक क्रिया कारबार के मुख्य उद्देश्य की सिद्धि में सहायक होनी चाहिए और उसमें मजदूर को कम से कम प्रयास और अधिक से अधिक कार्यसाधकता मिलनी चाहिए। कार्य का निष्पादन अनावश्यक रूप से जटिल, घुमावदार या विशृङ्खलित नहीं होना चाहिए।

२ सतुलन—पर इस कसौटी को किसी एक ही क्रिया पर लागू करना काफी नही वही सगठन सुस्थित होता है, जिसम उपक्रम की सब क्रियाए एक साथ इन्हीं अव-

स्थाओं में की जाती है। अगर किसी संगठन का प्रत्येक भाग सुस्थिर नहीं है तो वह संगठन भी सुस्थिर नहीं हो सकता। और विलोमत, यदि सारा संगठन सुस्थित न हो तो उसका प्रत्येक अलग-अलग भाग भी सुस्थिति नहीं हो सकता। इसलिए कारबार की प्रत्येक शाखा समान रूप से कार्यभावक होनी चाहिए और समष्टि की योजना के अनुरूप रहनी चाहिए। इसे संगठन का संतुलन कहते हैं।

३ समंजन (Co-ordination)—संगठन में उसके काम की प्रत्येक शाखा का पूर्ण समंजन हो सकना चाहिए। प्रत्येक इकाई के, चाहे वह बड़ी हो या छोटी, काम की परिपूर्ति आर्थिक दृष्टि से सदा सम्बन्धित इकाइयों से जुड़ी हुई होनी चाहिए और समष्टि मुख्य नीतियों के अनुसार चलनी चाहिए। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए संगठन का नियन्त्रण केन्द्रीय नियंत्रण होना चाहिए और इसके लिए सब इकाइयों को परस्पर बंधा होना चाहिए।

४ नम्यता (Flexibility)—संगठन में कर्मचारी-विशेष या विधियों में चाहे जो परिवर्तन होते रहें, पर उनके बावजूद, संगठन में बिना अस्त-व्यस्तता पैदा किये वृद्धि और प्रसार हो सकना चाहिए। संगठन-निर्माता सिर्फ आज या कल के लिए निर्माण नहीं कर सकता। उसे ऐसी रचना करनी है, जो वर्षों टिक सके। उसे कार्यपूर्ति के लिए निर्माण करना होगा।

५ दक्षता—सारी उपलब्ध "मानव शक्ति" का ऐसा सर्वोत्तम और अधिकतम उपयोग होना चाहिए कि यथासम्भव अधिकतम परिचलन-दक्षता कायम रहे। संगठन के परिचालक घटक मनुष्य हैं। संगठन करने की कला यह है कि उन मनुष्यों को ढांचे में ऐसे स्थान पर रखा जाए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति उस सारे काम में उससे जो कुछ अपेक्षित है, वह स्थिरतापूर्वक करता रहे। संक्षेप में संगठन में दक्षता यह है कि अधिकतम प्रबुद्ध नीति अपनायी जाए, जिससे लोग, जो संगठन के घटक हैं, पूरे दिल से, झगड़े या ईर्ष्या या दबाये जाने की भावना के बिना, काम करें।

कारबार की नीति (Business policy)—तो, इस लक्ष्य को रखकर हमें संगठन का निर्माण करना है। पर इसका सफलतापूर्वक रूपायण कर सकने से पहले हमें उद्देश्य तय और सुनिर्दिष्ट कर लेने चाहिए। कारबार की कोई नीति अवश्य होनी चाहिए, अर्थात् वैज्ञानिक रूप से निर्धारित की हुई एक योजना होनी चाहिए, जिसमें उद्देश्य निर्दिष्ट हों और जिसमें अपनी योजना वाली विधियों के बारे में निर्देश हो। वेबस्टर रोबिन्सन ने नीति की परिभाषा इन शब्दों में की है "नीति परिशुद्धतः निर्धारित निदेशक नियन्त्रण है, जो सुनिश्चित और पर्याप्त ज्ञान पर आधारित है, और जो कारबार लक्ष्य और उनकी सिद्धि के लिए अपनाये जाने वाले उपायों का निर्देश करता है, नीतियों से ही वह आधार बनता है, जिस पर कारबार का भवन खड़ा किया जाता है, और नीतियां ही वह आधार होती हैं, जिस पर इनकी कार्यपूर्ति का निर्देशन और नियन्त्रण टिकता है—"इसलिए नीतियां गम्भीर गवेषणा के परिणामों पर रचनात्मक विचार का परिणाम होनी चाहिए, और फिर यह भी महत्वपूर्ण बात है कि यह ठीक-ठीक निश्चय कर दिया जा सके कि नीति बनाने के लिए कौन जिम्मेदार है, जिन विषयों

के बारे में नीतियां बनाना आवश्यक है, उनको यथासम्भव रूप से निर्दिष्ट कर दिया जाए, कोई बात जिस रूप में प्रकट की जाएगी, वह रूप प्रकट कर दिया जाए, जिससे वह स्पष्ट सुबोध और पूर्ण हो सके, और इच्छा के अनुसार कार्यान्वित की जा सके।

स्पष्टतः नीति-निर्धारण की जिम्मेवारी उन लोगों पर है, जो किसी कारबार का निदेशन या संचालन करते हैं। नीतियां वे संकेत हैं, जो प्रबन्ध अधिकारियों को अभीष्ट लक्ष्य की ओर जाने का निर्देश करते हैं। इसलिए जरूरी है कि वे ऊपर से आवें। ये नीचे से नहीं आ सकतीं। यह जिम्मेवारी निचले अधिकारियों को नहीं सौंपी जा सकती। कानूनी दृष्टि से संचालक मण्डल "नीति सम्बन्धी मामलों" से सम्बन्ध रखता है, और वित्त, उत्पादन, बिक्री, विज्ञापन, गवेषणा, श्रम और संगठन के सम्बन्ध में नीतियां निर्धारित करने की जिम्मेवारी संचालकों पर ही है। संचालकों से यह आशा की जाती है कि उन्हें मिलकर कारबार के संगठन की प्रत्येक शाखा के बारे में काफी जानकारी है, और वे प्रबन्ध कर्मचारियों का पथ-प्रदर्शन करने के लिए समझदारी से नीतियों की योजना बनाने की आलोचना करने और नीतियों का निर्माण करने में समर्थ हैं। संचालकों को यह भी देखना चाहिए कि इस प्रकार बनाई गई नीतियां पर्याप्त रूप में अमल में लाई जा सकें, और कि कम्पनी में प्रशिक्षित, दक्ष और प्रगतिशील प्रबन्धक हों। उन्हें बीच में यह देखने का यत्न भी करना चाहिए कि तय की गई नीति को कहां तक अमल में लाया जा रहा है, और वह कहां तक सफल हो रही है।

पर विभिन्न कम्पनियों में एक दूसरे से बहुत भिन्न चलन हैं। कुछ में संचालक लोग कुछ ऊपरी काम करने और बैठकों में जाने के अलावा कुछ भी नहीं करते, कुछ कम्पनियों में वे वित्तीय और साधारण नीति के निर्धारण में अपना बहुत कुछ प्रभाव डालकर अपने अधिकारों और जिम्मेवारियों का प्रयोग करते हैं। पर प्रायः संचालक अपने काम के लिए भी प्रबन्धकों पर ही भरोसा करते हैं, जो करना उचित नहीं। मण्डल अपने सदस्यों में से एक या अधिक सदस्य को प्रबन्ध संचालक नियुक्त कर सकता है, या एक महा-प्रबन्धक यानी जनरल मैनेजर नियुक्त कर सकता है, जो संचालक हो। भारत में प्रबन्ध अभिकर्ता यानी मैनेजिंग एजेंट होने के कारण महाप्रबन्धक इस दिशा में अपनी बहुत कुछ शक्ति खो देता है, क्योंकि प्रबन्ध अभिकर्ता एक ओर तो प्रशासन और निदेशन के कार्य करता है, और दूसरी ओर प्रबन्ध के काम करता है। प्रबन्ध अभिकर्ता नीति बनाते हैं और संचालक उस पर अनुमति देते हैं, और उसके बाद प्रबन्धकर्ताओं से उस नीति पर अमल कराते हैं। सच तो यह है कि वे सोचने का काम भी करते हैं, और करने का काम भी। जहां वे एक से अधिक उपक्रम को नियन्त्रित करते हैं, वहां महाप्रबन्धक प्रबन्धाधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाता है, जो प्रशासन और प्रबन्ध इन दोनों के बीचोंबीच है। वह विमर्शात्मक और कार्यात्मक कामों के बीच में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, और एक की बात दूसरे को समझाता है। उसका मुख्य काम यह है कि अपने पास मौजूद साधनों का इस तरह समन्वित और निर्दिष्ट करे कि संचालकों या प्रबन्ध अभिकर्ताओं ने जो उद्देश्य निश्चित किये हैं, वे व्यवहारतः पूरे हो जावें। किसी भी संगठन में उसका पद

सबसे अधिक महत्व का है, इसलिए उसमें बहुत अधिक योग्यता होनी चाहिए। उसे अपने को बताई गई नीति का काम के वास्तविक कार्यक्रम में अर्थ लगा सकना चाहिए। इसके लिए उसमें अच्छे व्यवसायों के वे सब गुण होने चाहिएँ, जिनकी पहले चर्चा की जा चुकी है।

प्रशासनीय पिरामिड—किसी प्रशासनीय संगठन का लक्ष्य यह है कि किसी उपक्रम में अन्तर्ग्रस्त व्यष्टियों के मध्य सम्बन्धों की ऐसी शृंखला स्थापित कर दी जाए, कि एक मात्र कार्य को पूरा करने में बिना किसी संघर्ष के मिलकर कार्य करना सम्भव हो। उसमें विचार का संगठन हो जाना चाहिए ताकि संकल्प का संगठन हो सके। किसी भी औद्योगिक उपक्रम के लिए ऐसे बहुत से काम हैं जो विशेष ज्ञान से सम्पन्न प्रबन्धकों और उपप्रबन्धकों को, आपस में हितों का, प्राधिकार का और काम का कोई संघर्ष हुए बिना, पूरा करना है, और किसी जगह अधिकार का वह पर्याप्त स्रोत है जो इन कार्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक अधिकार दे सकता है। इस प्राधिकार के जोर पर आदेश दिये जाते हैं और आदेश पाने वालों को जिम्मेवारी मिल जाती है। इसलिए प्राधिकार और जिम्मेवारी बराबर होनी चाहिए। मुख्य प्रबन्धाधिकारी या जनरल मैनेजर का प्राधिकार "व्यापक" होता है, क्योंकि उसका सम्बन्ध व्यापक परियोजनाएं बनाने और व्यापक परिणामों का मूल्य निर्धारण करने से होता है। ज्यों-ज्यों प्रबन्धक, उपप्रबन्धक और फोरमैन आदि अधीनस्थ अधिकारी आते हैं, त्यों-त्यों अधिकार व्यापक से विशेष होता जाता है, और इसलिए वह अधिक नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार, यदि हम चाहते हैं कि प्राधिकार का उत्पादन के अन्तिम कार्यों के नियंत्रण में काफी बारीकी से प्रयोग हो तो यह आवश्यक है कि एक के नीचे दूसरा करके बहुत सारे पद बनाए जाएँ और प्रबन्ध से सम्बन्धित कार्यों का अनुविभाजन और विशेषीकरण कर दिया जाए। सामान्य से विशेष की ओर आते हुए प्रत्येक पग पर, निचले पद पर ऊपर के पद की अपेक्षा अधिक कर्मचारियों की आवश्यकता है।

बड़े और छोटे कर्मचारियों के मध्य अनुपात उच्च प्रबन्ध सम्बन्धी पदों पर १ : ५ से १ : ४ तक, और सबसे नीचे पदों पर १ : २५ या १ : २० तक हो सकता है। इस प्रकार फोरमैन के नीचे २० से २५ तक आदमी हो सकते हैं। और एक प्रबन्धक के नीचे ४ से ५ तक उपप्रबन्धक हो सकते हैं। इस तरह अच्छे आकार के कारबार में १ जनरल मैनेजर होगा और ५ मैनेजर होंगे, जिनमें से प्रत्येक उत्पादन, बिक्री, वित्त, साधारण प्रशासन कार्य, और कर्मचारी वर्ग का अध्यक्ष होगा। इस प्रकार जनरल मैनेजर के कार्यालय से सम्बन्ध रखने वाले ५ अफसर कारबार की सब शाखाओं का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लेते हैं, और उनमें से प्रत्येक को अपने नियन्त्रण के अधीन कार्यों की दिशा में पूर्ण प्राधिकार दिया जाता है, और वे वित्तीय परिणामों के लिए जिम्मेवार ठहराये जाते हैं। इसलिए प्रशासनीय कर्मचारी वर्ग की संख्या ऊपर के पद वालों की संख्या से नीचे की अलग-अलग अनुपात में बढ़ती है। इस प्रशासनीय ढांचे को एक पिरामिड के सदृश समझा जा सकता है, जिसमें मनुष्यों की निचली सतह संख्या में

में ऊपर वाली सतह अधिक फैली हुई है, यह एक ऐसा सोपान-तन्त्र है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने से ऊँचे और नीचे के प्रति कर्तव्य के बन्धनों द्वारा अपने स्थान में स्थिर है। ये सम्बन्ध चित्र रूप में दिखाये जा सकते हैं, जिसे उद्योगपति अथवा संगठन चार्ट या प्रशासन चार्ट कहते हैं।

संगठन चार्ट और पदनाम—विभिन्न व्यक्तियों के, जिन्हें अलग अलग काम सौंपे जाते हैं, पदनामों को सावधानी से समझना चाहिए। ऐसे पदनाम, जैसे उत्पादन प्रबन्धक, कारखाना प्रबन्धक, फैक्टरी प्रबन्धक, प्लाण्ट अधीक्षक, जनरल फोरमैन, फोरमैन, सुपरवाइजर और विभागाध्यक्ष स्पष्ट कर देने चाहिए और सारे संगठन के साथ उनके उचित सम्बन्ध को निर्दिष्ट कर देना चाहिए। इसके अलावा, विभिन्न स्थानों पर मजदूरों द्वारा किये जाने वाले कार्यों का अध्ययन करना चाहिए, और उनके पदनाम सावधानी से छाटने चाहिए। संगठन के अच्छी तरह चलने में जितने कारक सदा बदलते वाले पदनाम है, उतनी और कोई वस्तु नहीं। पदनाम यह सूचित करते हैं कि उनका कौन से काम से सम्बन्ध है। वे संगठन से बाहर के लोगों के लिए सहायक होने चाहिए और उनसे प्रक्रिया की प्रणाली बन जानी चाहिए। इससे स्वभावतः यह अर्थ निकलता है, कि किसी संगठन में कोई व्यक्ति जो पदनाम धारण करता है, वह उसकी योग्यता का संकेत करता है पदनाम देकर प्रबन्ध अधिकारी एक व्यक्ति पर एक लेबल लगा देता है, जिससे यह सूचित होता है कि वह व्यक्ति कुछ जिम्मेवारियाँ उठाने में समर्थ है। और इसलिए उसमे एक विशेष प्रकार की योग्यता है। जिम्मेवारी और योग्यता साथ साथ रहती है और अधीनस्थ लोगों को यह आशा करने का अधिकार है कि उनसे ऊपर के व्यक्तियों के पदनाम यह प्रकट करते है कि ये व्यक्ति उन्हें दिये गये मान के पात्र हैं। उन लोगों को पदनाम देना, जो उसके पात्र नहीं, उनके साथ बेरहमी करना है, और जिन्होंने उनके नीचे काम करना है, उनके साथ अन्याय है। संगठन के आयोजनों को विफल करने का यह निश्चित मार्ग है। पृष्ठ ५१३ पर एक काल्पनिक निर्मिति व्यवसाय के स्टाफ का सोपानीय प्रणाली का संगठन चार्ट दिया गया है।

संगठन चार्ट के सिद्धान्त या प्राधिकार के मार्ग—संगठन के कुछ सिद्धान्त हैं, जो खास तौर से चार्ट में दिखाई गई नियन्त्रण की प्रक्रियाओं के बारे में है। संगठन के सम्बन्ध में इन सिद्धान्तों का प्रामाणिक प्रयोग बना रहना चाहिए। सिद्धान्त ये हैं—

१ **उच्च प्रबन्ध अधिकारियों को अधीनस्थ कर्मचारियों से व्यवहार करने में प्राधिकार के मार्ग का पालन करना चाहिए।** बुद्धिपूर्वक बनाए गए संगठन में उच्च प्रबन्धाधिकारियों से लेकर उस व्यक्ति तक, जो प्रत्यक्ष कार्य के लिए अन्ततोगत्वा जिम्मेवार है, अलग मार्ग होना चाहिए और उसी तरह का अलग मार्ग जिम्मेवारी का होना चाहिए, जो नीचे से ऊपर को चले। मुख्य अधिकारियों को, और उन लोगों को जो पिरामिड के शीर्ष पर हैं आदेश या हिदायतें देने के लिए या जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने निकटतम अधीनस्थ की उपेक्षा करके न चलना चाहिए। उन्हें चार्ट में दिखाए गये ढंग से सस्थापित सचार मार्गों पर ही चलना चाहिए। जिन व्यक्तियों की उपेक्षा की

सगठन चार्ट का नमूना

अशधारी

सचालक मडल

प्रबन्ध अभिकर्ता

जनरल मैनेजर <— { औद्योगिक इजीनियर, गवेषणा और डिजाइन स्टाफ, योजना और परिव्यय स्टाफ, आदि }

- बिक्री प्रबन्धक
  - बिक्री क्षेत्र प्रबधक
    - सेल्समैन
  - विज्ञापन प्रबन्धक
  - निर्यात
    - विदेशस्थ एजेंट
- कारखाना प्रबधक
  - उत्पादन अध्यक्ष
    - फोरमैन
      - मजदूर
  - उत्पादन अध्यक्ष
    - फोरमैन
      - म०
    - फोरमैन
      - म०
  - उत्पादन अध्यक्ष
- सचिव
  - वित्त
  - लेखा
  - क्रय
- लेबर आफिसर या कर्मचारी प्रबन्धक ——> समय और गति अध्ययन स्टाफ
  - मजदूरी विभाग
  - भर्ती विभाग
  - प्रशिक्षण विभाग

जाती ह, वे अपने को अपमानित अनुभव करते है। जो मुख्य अधिकारी ऐसा करते हैं वे अधीनस्थ अधिकारियो को उनके नीचे काम करने वाले लोगों के काम के लिए जिम्मेवार नही ठहरा सकते।

२ **अधीनस्थ कर्मचारियो को अपने से ऊपर वाले अधिकारियो से व्यवहार करते हुए प्राधिकार के मार्गों का पालन करना चाहिए।** सामान्य अवस्थाओं में आदेश निश्चित मार्गों पर एक-एक कदम चलता हुआ ऊपर से नीचे पहुँचना चाहिए, और इसी प्रकार रिपोर्ट एक एक कदम चलती हुई नीचे से ऊपर पहुँचनी चाहिए। इस नियम का पालन न करने से सन्देह और ईर्ष्या पैदा होती है, और अनिष्ठा का जन्म होता है।

३ **सगठन चार्ट को पदों के मार्ग निर्दिष्ट कर देने चाहिए।** सगठन चार्ट में एक ही स्तर पर ऐसे पदो को न रखना चाहिए, जिनमें जिम्मेवारिया या प्राधिकार समान हो। इससे विवाद और झगडेबाजी पैदा होती है। उदाहरणार्थ, सहायक कारखाना मैनेजर को, चाहे वह प्रबन्ध सचालक या प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पुत्र हो, कारखाना प्रबन्धक या बिक्री प्रबन्धक के सिर पर बैठाने से जरूर गडबडी पैदा होगी।

४ **एक ही प्राधिकार या जिम्मेवारी दो या अधिक व्यक्तियो पर नहीं होनी चाहिए।** कहने का अभिप्राय यह है कि वही कर्त्तव्य दो बार नहीं सौंपा जाना चाहिए और किसी व्यक्ति को दो अफसरों के प्रति एक-सा जिम्मेवार होने का काम करने को मजबूर न करना चाहिए।

५ **किसी एक स्थान पर कर्तव्य का अनुचित केन्द्रण न होने देना चाहिए।** सारे सगठन की क्षमता के अनुसार कार्यभार डालने का पूरा यत्न करना चाहिए। सब आदमियो को उनका काम बता दिया जाना चाहिए, और जिनके साथ उन्हें सम्पर्क में आना है, उनके साथ उनके प्रशासनीय सम्बन्ध भी समझा दिए जाने चाहिए।

६ **सगठन का सतुलन व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।** सगठन चार्ट या योजना में व्यक्तितत्व की परवाह न करनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति आशा के अनुरूप काम नहीं कर सकता, चाहे वह मुख्य प्रबन्ध अधिकारी का पुत्र या सम्बन्धी ही हो, तो उसे बदल ही देना चाहिए, और सगठन के ढाचे का सतुलन न बिगाडना चाहिए।

६ **सगठन सरल और नम्य होना चाहिए।** सगठन का ढाचा ऐसा बनाना चाहिए कि उद्योग के घटने-बढने या रूप-परिवर्तन करने पर आवश्यकता के अनुसार इसमें परिवर्तन किया जा सके।

सगठन के प्ररूप

सगठन की लगभग उतनी ही किस्में है, जितनी कि औद्योगिक फर्म है। एक आदमी के कारबार में सबके सब काम मालिक करता है और उसमें सगठन चार्ट की कोई आवश्यकता नहीं रहती। साझेदारी में वरिष्ठ साझेदार अकेला अथवा एक या अधिक अन्य साझियों की सहायता से सब काम करता है। कारबार के इन दो प्ररूपो में

कोई प्रशासनीय समस्याएं नहीं आती। ज्यों-ज्यों कारबार फैलता है, त्यों-त्यों प्रशासन निजी मामले की सीमाओं से बाहर निकल जाता है और विभिन्न कार्य विशेषीकृत हो जाते हैं, जो विशेष रूप से योग्यता-प्राप्त व्यक्तियों को सौंपे जाते हैं। यहां आकर किसी न किसी तरह का ढांचा सोचना पड़ता है। जो प्ररूप प्रचलित हैं, वे निम्नलिखित तीन प्ररूपों में से एक या उनके किसी संयोजन में आ जाते हैं। वे प्ररूप ये हैं —

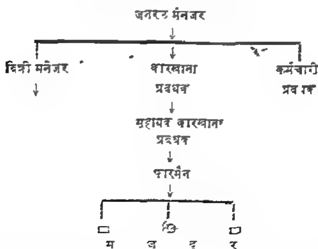
१ विभागीय रूप।
२ लाइन और स्टाफ प्रणाली।
३ कार्यात्मक योजना (Functional Plan)

विभागीय रूप—संगठन के इस प्ररूप को प्राय "सैनिक" या "परम्परागत", या "सोपानीय" कहा जाता है, क्योंकि इसमें प्राधिकार या जिम्मेवारी का मार्ग उस मार्ग के सदृश होता है, जो सेना में या चर्च में अपनाया जाता है। यह सबसे पुराना और सबसे सरल रूप है। इसका सारतत्व यह है कि कारबार का प्रत्येक भाग या इकाई आत्म-निर्भर होती है। कारबार के सब कार्य तीन प्रमुख समूहों —वित्त, उत्पादन, बिक्री— में विभाजित किए जाते हैं। फिर इनमें से प्रत्येक को कुछ आत्म-निर्भर विभागों में आगे विभाजित कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, उत्पादन विभाग को पुर्जे बनाने, जोड़ने आदि परिचालन विभागों में बांट देना चाहिए। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष अपने काम पर असर डालने वाली प्रत्येक बात के लिए जिम्मेवार है। काम का क्षेत्र सीमित है—पर क्षेत्र के भीतर जिम्मेवारी असीमित है। कोई कार्यकर्ता अफसरों के अधीन नहीं है। प्रत्येक विभाग अपना माल खुद खरीदता है, अपनी वस्तुओं का उत्पादन खुद करता है, अपने मजदूर खुद लगाता है, अपनी मजदूरियां खुद बांटता है, अपने अभिलेख खुद रखता है, उत्पादन और लागत के अपने प्रमाप खुद तय करता है, और अपना लाभ खुद कमाता है। इसी प्रकार, एक भट्टी पर फोरमैन मजदूरी की दर नियत कर सकता है, नये आदमियों को प्रशिक्षित कर सकता है, काम की क्वालिटी की देख-भाल कर सकता है, योजना का चलता रख सकता है, और मशीनों की चाल और कार्य की मात्रा निर्धारित कर सकता है। इसमें एक सन्तोष देने वाली पूर्णता होती है। यह प्रत्येक विभागीय अध्यक्ष को अपने विभाग का सर्वेसर्वा बना देती है। और यह एक अच्छी प्रणाली है, बशर्ते कि सर्वेसर्वा अच्छा हो। सफलता एक ही व्यक्ति की योग्यता पर निर्भर है, जो सब दृष्टियों से दक्ष होना चाहिए। पर इन शर्तों को पूरा करने वाले लोग दुर्लभ हैं।

प्राधिकार का मार्ग या लाइन सीधी गणित के हिसाब से चलती जाती है। लाइन शब्द सैनिक प्रशासन में से लिया गया है और उसके उल्लेख द्वारा ही इसे स्पष्ट किया जा सकता है। मुख्य सेनापति की तुलना सर्वोच्च प्रबन्धक से की जाएगी। इसको देश की सारी सेना पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त है। देश लेफ्टीनेंट-जनरलों के अधीन बहुत सी क्षेत्रीय कमानों में विभाजित है। प्रत्येक क्षेत्र में ब्रिगेडियर-जनरल के अधीन ब्रिगेड हैं। प्रत्येक ब्रिगेड रेजीमेण्टों में विभाजित है, जिनके अध्यक्ष कर्नल हैं।

प्रत्येक रेजीमेन्ट बटालियनों में बटी हुई है, जिनके अध्यक्ष मेजर हैं। प्रत्येक बटालियन कम्पनियों में बटी हुई है, जिनके अध्यक्ष कैप्टिन हैं। प्रत्येक कम्पनी आगे फिर बटी हुई है, और इस तरह, अन्त में एक कारपोरल के अधीन एक दस्ता है। पदोन्नति ऊपर की ओर एक-एक कदम होती है। प्राइवेट कारपोरल बनने की आशा कर सकता है, सार्जेंट लेफ्टीनेंट बनने की, कैप्टेन मेजर बनने की और कर्नल जनरल बनने की आशा कर सकता है। कारखार में भी यही ढांचा अपनाया जाता है। पहले जनरल मैनेजर होता है जिसके नीचे चार या पांच मैनेजर रहते हैं। प्रत्येक मैनेजर के नीचे चार-पांच सब-मैनेजर होते हैं। और इसी तरह अन्त में फोरमैन होते हैं, जिनमें से प्रत्येक के नीचे २०-२५-४० या ६० आदमी काम करते हैं। छोटे कारखार में, जिसके लिए विभागीय योजना सबसे अधिक उपयुक्त है मुख्य अधिकारी मालिक ही सकता है, जो प्राय हर काम करता है। सारा अधिकार सीधे उसी से चलता है, जैसे पत्ते की शिराएं वृन्त में एकत्र होती है, और बहुत सं पर्णवृन्त उपशाखा में, और बहुत सी उपशाखाएं तथा शाखाएं तन में इकट्ठी होती है। ये प्राय वही काम करती हैं, जो इस प्रणाली के अधीन किसी कम्पनी में काम करने वाले व्यक्तियों द्वारा किये जाते हैं। इस प्रणाली को "सैनिक प्रणाली" भी कहते हैं। इस प्रणालीमें मुखिया पर बहुत बड़ी जिम्मेवारी आ जाती है, जो प्राय उसकी शक्ति से अधिक होती है, जितनी वह उठा नहीं सकता। यह योजना आम तौर से सरकारी विभागों में अपनाई जाती है।

विभागीय और लाइन ढांचा



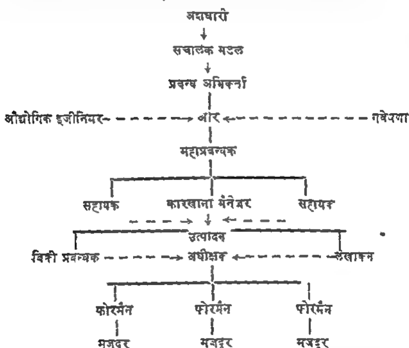
यह प्रणाली निम्नलिखित स्थानों पर सफलतापूर्वक अपनाई जा सकती है : (१) जहां कारबार अपेक्षया थोड़ा हो और अधीन कर्मचारी तथा मजदूर बहुत अधिक न हों। (२) सतत-प्रक्रम उद्योगों में—चीनी, तेल रिफाइनिंग आदि विशेषकर उद्योगों में भी और क्वारी जैसे सन्निष्कर्षणात्मक उद्योगों में भी। (३) जहां बहुत से

उपक्रम आसानी से या सरलता से निर्देशित किये जाते हैं, अर्थात् काम प्राय रोजाना के ढग का हो। (४) जहा मशीनरी पूर्णत स्वचालित (automatic) हो जिसके कारण फोरमैन की बुद्धि लगाने की गुजाइश नहीं, और (५) जहा श्रम और प्रबन्ध की आपसी समस्याए हल करना कठिन नहीं। इस प्रणाली के मुख्य लाभ ये हैं (१) यह चलाने म सरल है। (२) यह मितव्ययी और कार्यसाधक है, क्योंकि इसमें जल्दी निश्चय और कार्यसाधक समजन हो पाता है क्योंकि विभाग सम्बन्धी सब कार्य एक आदमी के हाथ म है। (३) यह कार्यों की पूर्ति की जिम्मेवारी सुनिश्चित रीति से कुछ व्यक्तियों पर डालती है।

जो उद्योग मजदूरों की हाशियारी और योग्यता पर निर्भर होता है, वह इस प्रणाली को नहीं अपना सकता उदाहरणार्थ वह उद्योग जिसमे रुक-रुक कर काम होता है, जैसे मोटर निर्माण क्योंकि इस प्रणाली का सरल रूप और काम का एक आदमी के हाथ में इकट्ठा कर देने की इसकी प्रवृत्ति उसे इस काम के लिए उपयुक्त नहीं रहने देती। आजकल उद्योग के विभिन्न कार्य जैसे खरीदना सवारण (maintenance), और परिव्यय नियन्त्रण, इतने जटिल और टैक्नीकल हो गये हैं, कि एक आदमी सबका विशेषज्ञ नहीं हो सकता। इसलिए इस प्रणाली के दोष ये हैं —(१) यह प्रबन्ध की एकतन्त्रीय प्रणाली पर आधारित है और इसलिए कारबार एक आदमी के मनमाने फैसलों के अधीन हो जाता है। (२) काम किसी वैज्ञानिक योजना के अनुसार बाटने के बजाय मैनेजर की सनक के अनुसार बाट दिया जाएगा। (३) यह प्रगति को और कारखाने के अच्छी तरह काम करने को रोकती है। (४) फोरमैनों को इतना काम करना होता है, कि वे सुधार की ओर उतनी जल्दी ध्यान नहीं दे सकते, जितनी जल्दी देना चाहिए (५) इसमे अच्छे कर्मचारियों को इनाम देने और निकम्मे को सजा देने का कोई उपाय नहीं है। (६) इसमें अपनों के पक्षपात को बढावा मिलने की सम्भावना है। हर निरकुश अधिकारी के चारों ओर बहुत से खुशामदी और नौकरी तलाश करने वाले इकट्ठे हो जाते हैं। तरक्की खुशामद के आधार पर होने लगती है। और नौकरी की सुरक्षा तभी हो पाती है जब जी-हुजूरी की जाय, और सबसे बडी बात यह है कि (७) बडी कम्पनियों में इसे लागू करने से प्रबन्ध में बहुत गडबडी हुए बिना नहीं रह सकती, और आजकल अधिकतर उत्पादन बडे पैमाने पर होता है। प्रोफेसर सार्जेन्ट फ्लारेंस ने इस प्रणाली की सहज "अदक्षताओं" को तीन शीर्षकों के नीचे इकट्ठा किया है —(क) सही जानकारी प्राप्त कर सकने और उनके अनुसार कार्य कर सकने में विफलता, (ख) लालफीताशाही और नौकरशाही, (ग) विशेषज्ञों के विशेषीकृत कौशल का अभाव [illegible] आदेश तो सोपानीय प्रणाली म नीचे को चलते हैं, और जानकारी नीचे से ऊपर को आती हुई समझी जाती है। पर वास्तविक व्यवहार में आदेश तो दिये जाते हैं, पर कार्य क्षेत्र से सीधा सम्पर्क रखने वाले छोटे कर्मचारियों द्वारा दी गई जानकारी को "इस कारण उडा कर दी जाती है कि वह एक छोटे कर्मचारी ने दी है" लाल फीता और नौकरशाही के परिणामस्वरूप औपचारिक बातों को इतनी कठोरता से लागू किया जाता है कि नियम नौकर के बजाय मालिक बन जाते हैं, और

गवेपणा और रूपाकणो का विशेपज्ञ और कानूनी तथा वित्तीय सलाहकार स्टाफ है, जो उत्पादन और बिक्री के काम करने म कोई प्रत्यक्ष या कार्यपालक हिस्सा नही लेते। यह प्रणाली मानव प्राणियो म वर्गीकरण करने वाले प्रमुख कारको में से है। एक ओर ता काम करने वाले आदमी, अर्थात् नेता प्रबन्धाधिकारो, यानी लाइन है, और दूसरी ओर विचारक है, जो "क्यो" और "कैसे" से अधिक वास्ता रखते है, और करने से कम, जैसे वैज्ञानिक योजना निर्माता सगठनकर्त्ता, इजीनियर, रूपाकणकार, वकील, परिव्यय-गणक, अर्थात् स्टाफ। इस मात्रा तक यह प्रणाली पूर्णत सुस्थित है।

लाइन और स्टाफ चार्ट



अनटूटी रेखाए सीधी "लाइन" की सूचक है और टूटी रेखाए स्टाफ की।

कार्यात्मक योजना (Functional plan)—अनुकृत्यकरण (Functionalisation) लाइन और स्टाफ का परिवर्धन है। इसकी बुनियादी अवधारणा यह है कि सगठन के कुछ भाग कृत्यो और टेक्नीक के आधार पर होने चाहिए। इसलिए यह विभागीय विचार का उल्ट है, क्योकि यह उत्पादनो और क्षेत्रो का विचार नही करता। टेलर तथा अन्य लेखको ने इसको वैज्ञानिक प्रबन्ध की योजना के एक भाग के रूप में प्रतिपादन किया था। इस योजना में सब या कई विभागो के साझे विनिर्दिष्ट कृत्य ऐसे व्यक्ति के सुपुर्द किये जाते है, जो अपने विशिष्ट कृत्य के लिए विशेष योग्यता रखता है, और एक विभाग मे सब बातो की ओर ध्यान देने के बजाय वह एक बात पर

ध्यान देता है। यह योजना श्रम-विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित है, यह कर्मचारियों को खास तौर से प्रबन्धात्मक कृत्यों के अनुसार अलग-अलग कर देती है, अर्थात् लेखाकन, परिव्यय नियन्त्रण, बजट निर्माण, खरीद, गवेषणा, निर्मिति कार्य, उत्पादन नियन्त्रण, संधारण और परिवहन में बाँट देती है। लाइन और स्टाफ संगठन के अधीन स्टाफ का कार्य विनिर्दिष्ट प्रबन्धकीय कृत्य नहीं समझा जाता। पर कार्यात्मक योजना में विशेषज्ञ निरे सलाहकार ही नहीं रहते—वे एक एक टेक्नीक के, जो कारखाने के कई विभागों में एक सी होती है, अध्यक्ष हो जाते हैं। अब कर्मचारी किसी एक बौस के नीचे नहीं रहता, बल्कि अपने काम की आवश्यकता के अनुसार बहुत-से बौसों के नीचे रहता है। प्रत्येक फोरमैन अपनी लाइन में एक प्राधिकारी समझा जाता है। पर जिस काम में वह विशेषज्ञ है, उससे आगे उसे कोई अधिकार नहीं। टेलर के अनुसार इस कार्यात्मक संगठन का यह मतलब है कि 'प्रबन्ध का काम ऐसे तरीके से बाँट दिया जाए, कि सहायक सुपरिन्टेन्डेण्ट और उससे नीचे के प्रत्येक व्यक्ति को यथासम्भव कम से कम कृत्य करने पड़ें'। इसलिए यह योजना आधुनिक उद्योग की आवश्यकता पूरी कर देती है, और इस आक्षेप का परिहार करती है कि उत्पादन सुपरवाइजर आदमी छाँटने, प्रशिक्षण, परिव्यय-नियन्त्रण और प्रबन्धकीय कृत्यों के विशेषज्ञ नहीं हो सकते। यह प्रणाली थोड़े से पदार्थ बनाने वाली फैक्ट्री के लिए, और उस फैक्ट्री के लिए जिसमें विशेषीकरण बहुत जटिल नहीं होता, उदाहरणार्थ, जूता निर्माण में, सबसे अधिक सफल सिद्ध हुई है।

लाभ—कार्यात्मक संगठन के बहुत से लाभ हैं। (१) आदमी अपना सारा समय एक काम करने में लगाता है, इसके परिणामस्वरूप विशेषीकरण और दक्षता पैदा होती है। (२) प्रत्येक व्यक्ति अपनी अधिक से अधिक कोशिश करता है क्योंकि वह अपनी अधिकतम योग्यताओं के अनुसार चलता है। (३) इसमें मजदूर को अपने काम के बारे में सब तरफ से अध्ययन करने का और सुधार सुझाने का मौका मिलता है। (४) यह संगठन की वृद्धि में रुकावट नहीं डालता, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने विशेष क्षेत्र में उन्नति करता है। उदाहरण के लिए, क्रेता ४० चीज खरीदे या ४०,०००, उसे इससे कुछ मतलब नहीं। उसे तो एक काम करना है और एक ही काम पर नियन्त्रण रखना है। (५) और विशेषीकरण द्वारा बहुत बड़े उत्पादन में सहायता करता है।

इसके दोष ये हैं —(१) नियन्त्रण की प्रक्रियाओं की दृष्टि से यह भ्रम में डालने वाली है। यदि इस योजना को बहुत आगे तक बढ़ाया जाए, तो सब गड़बड़ हो जाए। (२) इससे एक ही काम पर कई प्राधिकारी हो जाते हैं और सुनिश्चितता और जिम्मेवारी के निश्चित मार्ग का अभाव होने लगता है। यह इसकी सबसे बड़ी हानियों में से है क्योंकि इसमें जिम्मेवारी एक से दूसरे पर हटने लगती और विभाजित होने लगती है, हालांकि अभिप्राय इसके प्रतिकूल था। (३) इसमें अनुदेशपत्र (Instruction card) भरने और सब आदेशों तथा विस्तृत बातों को लिखने में लिखाई का काम बहुत हो जाता है। यह बोझीली है और अमल में लाने में कठिन है, क्योंकि यह नियन्त्रण का

अधिक विभाजन कर देती है। (५) यह काम का सरलता से समजन नहीं होने देती और इसकी सफलता मुख्यत: प्रतिभाशाली नेतृत्व पर निर्भर है जो आधुनिक व्यवसाय में हमेशा नहीं मिल पाता।

मानव सादृश्य[1]—व्यवसाय इकाई को मानवीय प्रयास के एक सकुल सगठन के रूप में देखें, तो स्पष्टत: ऊपर वर्णित सगठन प्रणालियो में सर्वोत्तम लाइन और स्टाफ प्रणाली है। विभागीय योजना में नियन्त्रण अत्यधिक केन्द्रित हो जाता है। कार्यात्मक प्रणाली नियन्त्रण को इतना अधिक विभाजित कर देती है कि बड़े पैमाने पर अच्छा काम नहीं हो सकता। काम और नियंत्रण के विभाजन और केन्द्रण में ठीक सतुलन के सबसे अधिक निकट पहुँचने वाली लाइन और स्टाफ प्रणाली ही है। विश्व के महान् निर्माता ने भी अपनी कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने—मानव शरीर का निर्माण लाइन और स्टाफ योजना के आधार पर ही किया है। मानव शरीर का सगठन अब योजना की दृष्टि से इतना आदर्श है, और कठिनतम अवस्थाओ में काम करने में इतना निर्दोष है, कि जब से इसका सगठन हुआ है, तब से इसमें जरा भी परिवर्तन नहीं किया गया। शरीर का प्रत्येक अग कुशल कार्यकर्ता है, जो वह काम करता है,जिसे करने केलिए वह रखा गया है। मस्तिष्क सोचता है और स्नायु-मण्डल रोजाना के काम की देख-भाल करता है। सबसे पहले प्रमस्तिष्क (Cerebrum) या जनरल मैनेजर का दफ्तर है,जिसकी दिमागमें सबसे ऊपर स्थिति है। यह प्रज्ञा (Intelligence), विचार, तर्क, निर्णय का केन्द्र है। इसके ठीक नीचे निमस्तिष्क (Cerebellum) या वर्क्स मैनेजर का दफ्तर है। इसे कभी कभी छोटा दिमाग कहते हैं। यह शरीर की इच्छायत्त पेशियो (Voluntary muscles) को नियमित करता है और हमारे शरीर के सब सचलनों का जिम्मेवार है। इसके ठीक नीचे मस्तिष्कपुच्छ या मेरकन्द (Medulla oblongata or Bulb) या मस्तिष्क का सबसे पिछला हिस्सा है, जिसमें नित्य के कार्यों का अध्यक्ष है जो बहुत महत्वपूर्ण अधिकारी है, क्योंकि वह दिमाग को मेरुरज्जु (Spinal chord) से जोड़ता है। ये तीनो कम्पनी के मुख्य स्टाफ अफसर है, पर इनमें से प्रत्येक के नीचे बहुत से कार्यकर्ता रहते हैं। मेरुरज्जु इन अनेक अधीनस्थ अफसरो के मध्य प्राधिकार की सयोजक शृखला है। इसके जरिए स्मृति, वाणी, टांगों, नितम्बों और पाद सचलनों, सिर के सचलनों, कैमरा चित्र (आख), आदि के प्रतिक्षेप केन्द्र (Reflex Centres) या विभागीय प्रवन्धक अपने निकटतम अध्यक्ष, मस्तिष्क, के सम्पर्क में रहते हैं। इसी के जरिये नैत्यिक विभागो के प्रबन्धक (शरीर के विभिन्न भाग) अपने ऊपर के अधिकारी, मस्तिष्क-पुच्छ, के आदेशो का पालन करते हैं। प्रत्येक कार्य के प्रबन्धक के दो अधीनस्थ अफसर होते हैं,जो उसके आदेशानुसार काम करते हैं। इनमें एक जानकारी प्राप्त करने में कुशल होता है, और वह सवेदनो (Sensations) के रूप में जानकारी अभिलिखित और सगृहीत करता है और दूसरा टोली का नेता या कार्यवाही विभाग का फोरमैन होता है, जो अपने विभाग

1. J H. Deventer, quoted by L. C. Marshall, Business Administration.

प्रबन्धक के आदेशों का— ये आदेश जानकारी विशेषज्ञ द्वारा प्राप्त की गई जानकारी के आधार पर होते हैं—पालन करता है। इस प्रकार, यह पूरी तरह लाइन और स्टाफ संगठन है, जो इतनी दूर तक इस रूप में ले जाया गया है, जितना हम और कहीं नहीं देखते। विशेषज्ञों की जहां आवश्यकता है,वहां उनमें कोई कमी नहीं छोड़ी गई है, और प्रत्येक का अपना पूरा काम सम्भालने के लिए बाधित किया जाता है, और इस प्रकार जनरल मैनेजर (प्रमसिपल)बड़ी बातें सोचने के लिए स्वतन्त्र हो जाता है। इस तरह लाइन और स्टाफ, जो दो स्तरों का संगठन है, और जिसमें सारा काम दो स्तरों— सृजनात्मक स्तर और नैत्यिक स्तर—में विभाजित हो जाता है, विभागीय और क्रियात्मक प्रणाली की अदक्षताओं को रोकता है,सृजनात्मक स्तर पर मौलिक विचार करता है,और नैत्यिक या कार्य स्तर पर काम कराता है। यह कहा गया है कि "नैत्यिक कार्य उद्योग रूपी जहाज को तैरता रखता है, पर सृजनात्मक विचार वह प्रेरक शक्ति है, जो इसे आगे बढ़ाती है।" इन दोनों एक दूसरे से भिन्न कार्यों का विकास अधिकतम सफलता प्राप्त करने के लिए परम आवश्यक है।

समितियों द्वारा समजन(Co-ordination through Committees)—स्टाफ प्रणाली जब लाइन प्रणाली के साथ काम में लाई जाती है,तब वह निरे लाइन संगठन की अदक्षता को दूर करती है। यह कार्यात्मक प्रणाली में स्वाभाविक रूप से होने वाली समजन की कमी को दूर करती है। पर इतनी बात काफी नहीं। किसी भी संगठन में उद्देश्य यह होता है कि विकेन्द्रीकरण और केन्द्रीयकरण हो, तथा विशेषीकरण और समजन हो। समजन सीधे या समजनकारी समितियों के द्वारा हो सकता है। सीधा समजन विभिन्न कृत्यकारियों (Functionaries) और स्टाफ सलाहकारों के मध्य सीधे वैयक्तिक सम्पर्क द्वारा हो सकता है,जिससे वे परस्पर एक दूसरे को प्रभावित कर सकें। समिति प्रणाली, जिसमें जनरल मैनेजर समजन करने वाली कड़ी के रूप में काम करता है, उसी स्तर के कई प्रबन्धकर्ताओं (उदाहरण के लिए, बिक्री प्रबन्धक और उत्पादन प्रबन्धक) तथा सलाहकार स्टाफ और प्रबन्धक अफसरों के प्रयत्नों को एक दूसरे के अनुकूल बनाने के लिए उपयोगी साधन है। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि स्टाफ प्रणाली में यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि व "दफ्तर में बैठे हुए लाइन अफसरों और कार्यकर्ताओं को, जो असली मोर्चे पर काम कर रहे हैं, परेशान करने के लिए तरह-तरह के कागजी आयोजन करते रहें।"

किसी औद्योगिक फर्म में यह बात जानने के लिए प्रबन्ध अधिकारी स्टाफ योजनाओं की अपना समझें,और उनके साथ एकात्मता अनुभव करें,तथा स्टाफ अफसर प्रबन्ध अधिकारियों के काम को समझें, और एकात्मता अनुभव करें। समितियां किस तरह काम कर सकती हैं, यह समझने के लिए मैनुफैक्चरिंग कमेटी पर संक्षेप में विचार करना उचित होगा। हम ऊपर देख चुके हैं कि बड़े पैमाने के किसी संगठन में कोई अकेला मैनेजर बिक्री मैनेजर, कारखाना मैनेजर, सचिव, इन्जीनियर या जैसा—कारखाने की सारी निर्माण सम्बन्धी नीति के बारे में सलाह नहीं दे सकता, पर यदि पांचों आदमी एक मैनु-

वर्किंग कमेटी में इकट्ठे कर दिये जायें, तो पाचों महत्त्वपूर्ण विभागों की ओर से एक एक प्रतिनिधि हो जाएगा। वे लोग बराबरी के तौर पर योजनाओं में और उन्हें कार्यान्वित करने में आनेवाली कठिनाइयों पर विचार कर सकेंगे। ऐसे विचार-विमर्श का आवश्यक परिणाम यह होगा कि कमेटी जनरल मैनेजर के जरिये, जो इसका सभापति होगा, कारखाने की निर्माण नीति बड़ी अच्छी तरह से निर्धारित कर सकती है और उस पर अमल किया जा सकेगा। ऐसी कमेटी का नाम स्वभावत कारखाने के निर्माण कार्य, वस्तुओं के स्वरूप और आकार, प्रक्रमों या वस्तुओं की संख्या, स्टाक के लिए या अन्य प्रयोजन के लिए दिए गये आदेशों के अनुमोदन सारे निर्माण सम्बन्धी व्यय के अनुमोदन और मितव्ययिता की सिफारिशों पर विचार करना होगा। इसके सामने जो रिपोर्ट पेश की जाएगी, उसमें लाभ-हानि का हिसाब, स्टाक और बिक्री की रिपोर्ट और ऐसे ही साधारण वक्तव्य शामिल होंगे।

अच्छी कमेटी में कई स्वाभाविक गुण हैं (१) यह अमर्त्त रूप से कार्य करती है, और आम तौर पर इसका फैसला पेश किए गए तथ्यों पर निर्भर होता है।

(२) इसकी बैठकों से ऊंचे तथा अलग-अलग स्तरों के लोगों में आपसी समझ-बूझ बढ़ती है। कमेटी का वातावरण ही ऐसा होता है कि सब लोग छोटी-छोटी बातों को भूलने और मामले के गुण और दोष के अनुसार ही कार्य करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

(३) काम और योजनाओं में दिलचस्पी पैदा हो जाती है, और सब सदस्यों का अधिकतम प्रयत्न इकट्ठा हो जाता है, जिससे सामूहिक भावना में वृद्धि होती है। पारस्परिक अविश्वास और ईर्ष्या हट जाती है, क्योंकि लोग एक दूसरे को अधिक अच्छी तरह जान जाते हैं, और एक दूसरे के स्वभाव की अच्छाइयां पहचानने लगते हैं।

(४) किसी सदस्य के गलतबयानी करने पर उस पर स्वभावत आपत्ति उठाई जाएगी।

इतने लाभों के बावजूद कमेटियों में नई समस्याएं पैदा होने की सम्भावना रहती है। लम्बी-लम्बी चर्चाओं में, जो कभी-कभी अनावश्यक होती हैं, बहुत समय नष्ट होने का डर रहता है। फैसले बहुत धीरे-धीरे किये जाने की सम्भावना रहती है, और यदि समिति के सदस्यों की संख्या बहुत हो, तब तो विचार-विमर्श बहुत घटिया दरजे का होता है। कभी-कभी चतुराई के अभाव के कारण गोपनीयता को हानि पहुंचती है। इसीलिए यह उचित जान पड़ता है कि कमेटी की सदस्य संख्या कम रखी जाए, जिससे दक्ष विचार विमर्श हो सके। ५ आदमियों की कमेटी काफी बड़ी या अनुकूलतम मानी जाती है, और इससे अधिक संख्या होने पर दक्षता को हानि पहुंचती है।

निष्कर्ष—संगठन की कोई भी प्रणाली हो, पर अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि ऊपर वाले और नीचे वालों में सही ढंग का सम्पर्क हो सके, ऊपर वाले और नीचे वाले में सबसे महत्त्वपूर्ण सम्पर्क आदेश देने से स्थापित होता है—

—यह आदेश "मुख्य अधिकारी की इच्छा की अभिव्यक्ति होता है, जो नीचे वालों को बताई जाती है।" इस आदेश में वह अपने मन और अपनी योग्यता का प्रदर्शन करता है। वह प्रदर्शन के लिए सामने आता है। लोग उसे देखकर अपनी धारणाएँ बनाएँगे। किसी संगठन में सब कार्य आदेशों पर ही हो सकते हैं और होने चाहिए। आदेशों की प्रतिक्रिया वैसी ही होने लगती है। यह आदेश को प्रतिबिम्बित करती है क्योंकि आदेश की बुद्धि सम्बन्धी और स्वभाव सम्बन्धी विशेषताएं वस्तुओं के रूप में प्रबल प्रतिक्रिया पैदा करने लगती हैं। आदेश देने में तत्परता, स्पष्टता और पूर्णता का यह प्रभाव होता है कि वे कार्य-पूर्ति में तत्परता, परिशुद्धता और पूर्णता का नमूना बन जाती हैं। इसलिए आदेश संख्या में कम, स्पष्ट, संक्षिप्त, परन्तु तत्परतापूर्ण प्रचलित रूप में, उचित स्वर में, उचित क्षेत्र के भीतर और पर्याप्त रूप से सप्रमाण होने चाहिए। यदि प्रबन्ध विभाग इन नियमों का पालन करे तो मुख्यालय और कार्यकर्त्ताओं के मध्य संघर्ष के अवसर कम हो जाते हैं, और अच्छे कर्तव्यानुराग (Morale) की अवस्था पैदा हो जाती है। कर्तव्यानुराग वह आत्मा है जो किसी संगठन के ढाँचे को प्राणवान बनाती है। यह विश्वास, निष्ठा और सहयोग से बनती है। 'जब कोई समूह अपने नेताओं को समर्थ और विचारशील, अपनी विधियों को दक्ष, अपनी नीति को शोभन और अपने अन्तिम लक्ष्य को सही तथा उपादेय मानता है तब कर्त्तव्यानुराग का जन्म होता है। इसमें हर चीज—प्रशासन, आदेश, पुरस्कार कार्यभार, नेता और कार्यकर्त्ता—आ जाती है। यह अन्तिम निर्णय सब रचनात्मक बातों का जोड़ और उसमें से ऋणात्मक बातें घटा देने के बाद आने वाला परिणाम है। सब कर्मचारी मेधावी नेतृत्व चाहते हैं, और उसका सम्मान करते हैं। पुराने ढाँचे के सुपरवाइजर की जगह ऐसा नेता लेता जा रहा है जो अन्य व्यक्तियों को प्रेरणा देकर उनसे काम करा सकता है। सब आदमी अपने लिए महत्व प्राप्त करना चाहते हैं। वे अपने काम की प्रशंसा तथा प्रतिदिन के सम्बन्धों में सौजन्य और आदर चाहते हैं। लोग उन आदमियों के साथ अधिक से अधिक दक्षता से और प्रसन्नता से काम करते हैं, जिनका स्वभाव प्रसन्न, रवैया सहयोगिता-पूर्ण और दूसरों के प्रति सहिष्णुता तथा सम्मान का भाव होता है। प्राय यह देखा जाता है कि अधीनस्थ कर्मचारियों में अपने ऊपर के अफसरों की प्रवृत्तियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं। इसलिए मुख्य प्रबन्धाधिकारियों को इस पुरानी कहावत को सदा स्मरण रखना चाहिए कि कसैले पानी के एक घड़े की अपेक्षा शहद की एक बूंद पर अधिक मक्खियाँ जमा होती हैं। अन्त में यह फिर कह देना उचित होगा कि ऊँचे अधिकारियों का काम यह है कि नीचे की विभिन्न इकाइयों में सन्तुलन कायम रखें। इनका काम यह नहीं है कि वे हर इकाई के प्रशासन की कोशिश करें। जब तक मशीन ठीक तरह काम करती रहे तब तक आपको उसमें कोई छेड़छाड़ न करनी चाहिए। कुछ मुख्य अधिकारी सारा यश स्वयं ले लेना चाहते हैं और वे नीचे के कर्मचारियों को इतने निकट नहीं जाने देते कि अपना कुछ काम उन्हें करने दें। वे अनावश्यक रूप से नीचे वालों के काम में दखल देते हैं, और इस तरह उनके दिल में जलन पैदा करते हैं। कुछ लोग अपने नीचे वालों पर अनुचित ब्यौरे का काम भी डाल देते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि वे न तो खुद अपना काम कर सकते हैं, और न नीचे वाले विश्वास के साथ

अपना काम कर सकता है। सफल अधिकारी वह है, जो न केवल किसी काम को अच्छी तरह करता है, बल्कि यह भी जानता है कि इसे कैसे कराया जाए।[1]

ऊपरी प्रबन्ध का नियंत्रण

प्रबन्ध की कठिन समस्याओं में से एक समस्या यह है कि अधिकार उन्हें दिया जाए जो इसका प्रयोग करने में समर्थ हों, और फिर भी नियंत्रण उनके हाथों में कायम रखा जाए, जो अन्ततोगत्वा उत्तरदायी हैं। नियंत्रण की परिभाषा यह की जा सकती है कि 'किसी संगठन के परिचालन के वास्तविक परिणामों को उन परिणामों की तुलना में, जो उस सारे संगठन के लिए या उसके अनेक भागों के लिए आयोजित थे, मापने का और उसके अनुसार निर्देशन तथा कार्यवाही का सतत प्रक्रम (Continuous process)'[2]। प्रबन्ध का प्रयोजन किसी लक्ष्य की प्राप्ति में सूत्रबद्धता है। नियंत्रण का, जो स्वयं एक प्रक्रम है, सबसे अधिक सम्बन्ध पूर्वकथन, उद्देश्य के निर्धारण, योजना-निर्माण, उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो कुछ आवश्यक है उसे स्थापित करने, परिचालन, योजना को कार्यरूप देने और लेखांकन, तथा संचालन के परिणामस्वरूप आस्तियों और दायित्वों में होने वाले परिवर्तनों को दर्ज करने से है। प्रबन्ध में अन्य भी प्रक्रम हैं, जो उद्देश्य की सिद्धि से सम्बन्ध रखते हैं। इसके उदाहरण हैं नेतृत्व और सूत्रबद्धता। नियंत्रण, जो प्रबन्ध का प्रक्रम है, प्रभावी रूप से किसी संगठन ढांचे के द्वारा ही, अर्थात् व्यक्तियों द्वारा जिनमें से प्रत्येक पर अपनी अपनी जिम्मेवारियां हैं, प्रयुक्त किया जा सकता है, और लेखांकन, परिव्यय निर्धारण और अभिलेखन आदि का प्रयोजन जानकारी देना है, जो विनिश्चय या कार्यवाही करने में पथप्रदर्शन करे। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि प्रबन्ध की जानकारी प्रबन्ध की कार्यवाही नहीं है। इसलिए लेखांकन, परिव्यय निर्धारण, अभिलेखन, आदि, नियंत्रण नहीं है, बल्कि नियंत्रण के साधन हैं।

प्रबन्ध के बुनियादी प्रक्रम के रूप में नियंत्रण या नियंत्रण-कार्य के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्व हैं —

१. उद्देश्य—जो करना अभीष्ट है, अभिलषित अंतिम परिणाम।

२. प्रक्रिया।

(क) योजना—यह कैसे और कब किया जाना है।

(ख) संगठन—कौन जिम्मेवार है।

(ग) प्रमाप—अच्छी कार्यपूर्ति किस किस बात के होने पर होगी।

३. मूल्यांकन (Appraisal)—यह कितनी अच्छी तरह किया गया; यह निश्चय करने के लिये कि प्रक्रिया, जैसे हम चाहते थे वैसे ही, कार्य कर रही है और अभीष्ट परिणाम पैदा कर रही है, जांच करना।

ऊपर के पृष्ठों में हम प्रबन्ध और प्रशासन, अर्थात् सर्वोपरि प्रबन्ध के कार्यों पर विचार कर चुके हैं। वे कार्य करने के अलावा, सर्वोपरि प्रबन्ध को इन कार्यों पर नियंत्रण भी करना पड़ता है। अच्छे नियंत्रण के लिए नियंत्रण की उचित प्रक्रिया बना

1. Brech, The Principles and Practice of Management.

देनी चाहिए, पर यह समझने के लिए कि ये दोनो कर्त्तव्य कैसे अच्छी तरह पूरे किये जा सकते है, यहा उन बातो को दुहरा देना उचित होगा कि सर्वोपरि प्रबन्ध में कौन कौन कार्य होते हैं और इसका क्या कार्य है। सर्वोपरि प्रबन्ध के तीन स्पष्ट और पृथक् किये जाने वाले क्षेत्र या स्तर होते है। वे कार्यो की दृष्टि से और दृष्टिकोण, अपेक्षित पृष्ठभूमि और उत्तरदायी कर्मचारियो के अनुभव की दृष्टि से, भिन्न भिन्न होते है। ये तीन क्षेत्र निम्नलिखित रीति से दिखाये जा सकते हैं।

क्षेत्र १ : निदेशन या सचालन—न्यासि व या विधायक कार्य
(Trusteeship or Legislative Function)

सचालक मडल—प्रति पखवाडे, प्रति मास या तीन मास में एक बार बैठक होती है, अशधारियो के हित का प्रतिनिधान, रक्षा और अभिवर्द्धन करता है,

(क) बुनियादी नीतिया और व्यवसाय की माटी रूपरेखा निश्चित करता है।

(ख) आखिरी परिणामा का समालोचन और मूल्याकन करना है।

(ग) कम्पनी के विधिगत वचनो की पूर्ति कराता है।

(घ) अशधारियो के वित्तीय हितो पर नजर रखना है।

क्षेत्र २ : साधारण प्रबन्ध—प्रशासनीय कार्य

मुख्य कार्यपाल—प्रबन्ध सचालक या महाप्रबन्धक सर्वोपरि पर्यवेक्षण की आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग विभागीय कार्यपालो के साथ अनौपचारिक रूप से परामर्श करता है। सारी जिम्मेदारी उसकी होती है।

(क) योजना बनाना-सार कारबार का निदेशन सूत्रबद्ध करना और नियमित करना।

(ख) उद्देश्यो का निर्धारण और परिचालन रीतिया निश्चित करना।

(ग) मडल द्वारा दिये गये प्राधिकार के भीतर रहते हुए परिणाम प्राप्त करना

(घ) कम्पनी सगठन की एक सुदृढ और प्रभावी योजना बनाए रखना, जिसमें कार्य, जिम्मेवारिया और प्राधिकार की सीमाए स्पष्ट रूप से अलग-अलग हो और उचित रीति से बटी हुई हो।

(ङ) प्रबन्ध के सब पदो पर पूरी तरह अर्हता-प्राप्त कर्मचारी बनाए रखना।

(च) पूजी-व्यय, परिचालन-व्यय और परिणाम मनुष्य शक्ति, मजदूरी, वेतन, उत्पादन और कीमत आदि साधारण कार्यो पर नियत्रण की प्रभावी पद्धति बनाए रखना।

(छ) जिन मामलो पर मडल की कार्यवाही आवश्यक है, उन्हे उसके सामने रखना ।

(ज) विभागीय परिपूर्ति और परिणामो का मूल्याकन।

क्षेत्र ३ : कृत्यात्मक (Functional) प्रबन्ध—विभागीय प्रबन्ध कृत्य

विभागाध्यक्ष, जिनमें सब कार्यपाल शामिल है, चाहे उनका पद को भी हो, जो अपने-अपने विभागो या प्रविभाग या उपविभाग के लिए महाप्रबन्धक के प्रति

सीधे उत्तरदायी हैं; उदाहरण के लिए, कारखाना प्रबन्धक, बिक्री प्रबन्धक, कर्मचारी प्रबन्धक, लेखापाल, आदि। ये लोग अपने-अपने विभाग के सफल कार्य के लिए महा-प्रबन्धक के प्रति पूरी तरह उत्तरदायी होते हैं। उन्हें सारी कम्पनी के हित की बजाय विभागीय हित की सीधी चिन्ता होती है।

(क) कारखाना प्रबन्धक योजनाबद्ध लागत पर योजनाबद्ध उत्पादन के लिए उत्तरदायी है, जिसके साथ एक क्रय अधिकारी होता है जो कच्चे सामान को योजनाबद्ध लागत पर, योजनाबद्ध उत्पादन हो सकने के लिए उचित समय पर काफी मात्रा में, कच्चा सामान और अन्य सरम्मत आदि का सामान प्राप्त करने के लिए जिम्मेवार होता है।

(ख) बिक्री प्रबन्धक जो योजनाबद्ध उत्पादन को योजनाबद्ध बिक्री कीमत पर बेचने के लिए जिम्मेवार होता है।

(ग) प्राविधिक गवेषणा और परिवर्द्धन प्रबन्धक, जो कारखाना प्रबन्धक और बिक्री प्रबन्धकों को प्राविधिक सेवा देने और परिचालनों में सातत्य के लिए प्राविधिक आधार प्रस्तुत करने के लिए जिम्मेवार होता है।

(घ) कर्मचारी प्रबन्धक उपक्रम में कर्मचारियों सम्बन्धी नीति लागू करने या लागू कराने के लिए जिम्मेवार होता है।

(ङ) लेखापाल उपक्रम के कारबार और सौन्दरी परिचालन व्यवहारों के लिए जिम्मेवार होता है।

विभागाध्यक्षों के नीचे उनके सहायक होते हैं पर वे प्रबन्ध क्षेत्र में नहीं आते। सर्वोपरि प्रबन्ध में सचालक मंडल तथा प्रबन्ध सचालक या महाप्रबन्धक तथा विविध विभागीय प्रबन्धक आते हैं। विभागाध्यक्षों के सहायक विभागीय परिचालन के विविध विभागों के लिए विभागीय कार्यपालों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इनके नीचे क्षेत्र प्रबन्धक होता है जो दिए हुए काम को करने के लिए उत्तरदायी होता है।

इस सारांश में उस ढंग कार्यपाल के कर्तव्यों में योजना निर्माण के अंश पर बल दिया गया है। नियंत्रण का प्रयोजन संगठन कार्य की जाँच रखना, और यह देखना है कि निर्धारित योजनाएं और हिदायतें सही तौर से समझी गई और ठीक तौर से कार्यान्वित की गई। यह कार्य प्रबन्धक-वर्ग सूचना के नियंत्रण द्वारा कर सकता है। नियंत्रण तभी अपना प्रयोजन पूरा कर सकता है जब वह यथार्थ, प्रभावी और सांगोपांग (Thorough) हो। इस नियम के न होने पर नियंत्रण व्यर्थ और काम निष्फल हो जाएगा। संगठन में कोई व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जिसे यह फैसला करने का सदस्य उपर अधिकार हो कि प्राधिकार को सीमाओं का उल्लंघन नहीं हुआ। यह इस कारण आवश्यक नहीं कि अधीन कर्मचारी को किसी भी नई परिस्थिति को सही तौर से हल करने की योग्यता में संशय है, बल्कि इस कारण आवश्यक है कि कुल जिम्मेवारी मुख्य कार्यपाल की है और वह उसे दूसरों को नहीं सौंप सकता। विभागाध्यक्षों को अपने-अपने विभाग चलाने में पूर्ण नियंत्रण प्राप्त होता है, पर प्रबन्ध सचालक को सर्वोपरि नियंत्रण होता है। संगठन में सर्वोपरि नियंत्रण का क्षेत्र (१) वित्त, (२) उत्पादन, (३) क्वालिटी या श्रेष्ठता और वितरण

पर होता है, जिसके अलग-अलग क्षेत्र और उपक्षेत्र है। दूसरे शब्दो मे कहे तो नियत्रण निम्नलिखित पर आवश्यक है —

नीतिया, परिचालन की दर, सगठन, महत्त्वपूर्ण कर्मचारियो की क्वालिटी, मजदूरी, वेतन, परिव्यय, विक्रिया और मनुष्यशक्ति, पूजी व्यय, उत्पादन की किस्म (Line of product), गवेषणा और परिवर्द्धन तथा सर्वोपरि परिपूर्ति।

नियत्रण का अर्थ

इसलिए नियत्रण का अर्थ और प्रयोजन यह है—

१ निम्नलिखित को दृष्टि में रखते हुए, जो काम किया जाना है उसका यथार्थ ज्ञान

(क) मात्रा, (ख) क्वालिटी या श्रेष्ठता, (ग) उपलब्ध समय।

२ उस कार्य को करने के लिए निम्नलिखित की दृष्टि में कौन-कौन से समाधन उपलब्ध हैं

(क) कर्मचारी वर्ग (ख) कच्चा सामान (ग) अन्य सुविधाए

३ यह जानना कि कार्य

(क) उपलब्ध समाधन से

(ख) उपलब्ध समय के भीतर

(ग) युक्तिसगत लागत पर

(घ) क्वालिटी या श्रेष्ठता के अपेक्षित प्रमाप के ठीक-ठीक अनुसार किया गया है, या किया जा रहा है।

४ किसी विलम्ब, रुकावट या परिवर्तन के विषय मे निम्नलिखित बातो की दृष्टि से अविलम्ब जानना

(क) क्या हुआ, (ख) कारण, (ग) उपचार।

५ निम्नलिखित बातो की दृष्टि से यह जानना कि इन रुकावटो को दूर करने के लिए क्या किया जा रहा है

(क) इसे कौन कर रहा है, (ख) यह कैसे किया जा रहा है, (ग) इस पर क्या लागत आ रही है, (घ) यह कब पूरा होगा।

६ पूरे किये हुए काम के बारे मे निम्नलिखित बातें जानना.

(क) सम्पन्न करने का समय,

(ख) क्वालिटी या श्रेष्ठता,

(ग) अन्तिम लागत।

७ यह जानना कि इनकी पुनरावृत्ति रोकने के लिए किये गये उपाय

(क) किस प्रकार, (ख) किस द्वारा, (ग) किस लागत पर, (घ) बीच-बीच मे निरीक्षण की क्या व्यवस्था करके किये गए है।*

---

* Adapted from Davis and Stetson, Office Administration.

नियंत्रण के अवयव—प्रत्येक प्रबन्ध संबंधी समस्या में अनेक तत्व और अवस्थाएं होती हैं जिनमें से कुछ वाञ्छनीय होती हैं और कुछ ऐसी होती हैं जिन्हें प्रबन्धक दूर कर देना या दूर रखना चाहता है। इसलिए नियंत्रण कुछ कारणों को इस दृष्टि से जानबूझकर निदेशित या प्रभावित करने का नाम है कि कुछ अभीष्ट परिणाम पैदा हों। नियंत्रण के ६ अवयव हैं, अर्थात् प्राधिकार और ज्ञान, पथप्रदर्शन और निदेशन, मरोड़ (Constraint) और अवरोध (Restraint)। नियंत्रण करने की स्थिति में होने के लिए प्रबन्धक को यह पता होना चाहिए कि

(१) स्थिति क्या है,

(२) यह क्या होनी चाहिए,

(३) यह कैसे सही की जा सकती है, और

(४) उसे उपयुक्त कार्य करने का अधिकार होना चाहिए।

इसलिए नियंत्रण कर सकने के लिए प्रबन्धक को अपने संचार मार्ग (Lines of Communications) सुस्थापित, खुले, और काम करते हुए रखने चाहिए। उसे तथ्यों का सामना करना चाहिए। उसे अपने निश्चयों को कार्यरूप देने की योग्यता, इच्छा और साहस होना चाहिए। विभागाध्यक्ष को यह पता होना चाहिए कि उसके विभाग से किस काम की आशा की जाती है, और उस काम को करने के लिए उसे कौन-सी सुविधाएं प्राप्त हैं। इसके बाद उसे मजदूरों को संगठित करना चाहिए और काम उनमें उचित रीति से बांट देना चाहिए। उसे उन्हें काम करने की सर्वोत्तम विधियां बतानी चाहिए, और यह देखना चाहिए कि काम उसकी हिदायत के अनुसार ही किया जाए। उसे काम की श्रेष्ठता प्रमाप के स्तर पर रखनी चाहिए और उत्पादन समय-तालिका के अनुसार रखना चाहिए।

नियंत्रण कैसे किया जाए:—

कोई प्रबन्धक या विभागाध्यक्ष निम्नलिखित क्रम से स्थिति का विश्लेषण करके परिचालन, नैत्यिकी (Routine) या कृत्य पर नियंत्रण कर सकता है :

(१) काम की परिपूर्ति में जो मंजिलें हैं, उनकी रूपरेखा बनाना।

(२) योजनाओं को मार्ग से इधर-उधर होने से रोकने के लिए जिस-जिस बिन्दु पर नियंत्रण की आवश्यकता है, उस उस बिन्दु को अंकित करना। यह सोचना कि यदि नियंत्रण न हो तो क्या होगा, जैसे अप्राधिकृत कार्य।

(३) जिस जिस बिन्दु पर नियंत्रण अपेक्षित है, उस उस बिन्दु पर नियंत्रण तन्त्र स्थापित करना। नियंत्रण का तन्त्र वह उपाय साधन या प्रक्रिया है जो कार्यपालक को उस कार्य के विषय में जानकारी देती रहती है, जिसके लिए वह जिम्मेवार है और इससे उसे यह निश्चय हो जाता है कि उसकी योजनाएं और नीतियां समयतालिका के अनुसार चल रही हैं।

(४) किसी आदमी को यह देखने की जिम्मेवारी सौंप देना कि नियंत्रण तन्त्र सही रूप से कार्य करते हैं और यह निश्चय करना कि वह उसकी जिम्मेवारी समझता है।

प्रबन्धक कैसे नियन्त्रण करता है[x]

१ नियन्त्रण तन्त्र का प्रयोजन, सब कार्यभारो की,

(क) योजना के क्रम से

(ख) समय तालिका के अनुसार

(ग) ठीक विनिर्दिष्ट रीति से

(घ) उस व्यक्ति या व्यक्तियो द्वारा, जिसे या जिन्हें वह सौपा गया है, पूर्ति को सुनिश्चित बनाना है ।

२ प्रबन्धक को यह देखना चाहिए कि

(क) काम के प्रवाह में बाधा न पडे

(ख) प्रत्येक कर्तव्य उचित क्रम म पूरा किया जाए

(ग) काम समय तालिका के अनुसार समाप्त कर दिया जाए

३ प्रबन्धक को यह पता होना चाहिए कि

(क) प्रत्येक कार्य का उत्तरदायित्व कैसे दिया जाता है ।

(ख) प्रत्येक कार्य के लिए कौन उत्तरदायी है ।

(ग) अभीष्ट परिणाम प्राप्त करने के लिए कौन से साधन उपलब्ध हैं ।

(घ) यदि कोई विभाग या काम का हिस्सा समय तालिका से पीछे है तो स्थिति को ठीक समय पर कैसे सही कर दिया जाए ।

४ काम समय तालिका से पीछे होने के ये कारण हो सकते हैं ।

(क) काम के परिमाण में आकस्मिक और अप्रत्याशित वृद्धि

(ख) जिन कर्मचारियो को काम सौपा गया या उनकी अनुपस्थिति

(ग) फलहीन कार्य

(घ) निष्प्रभाव पर्यवेक्षण

५ प्रबन्धक को प्रत्येक विभाग के बारे में प्रतिदिन ये बातें मालूम होनी चाहिए.

(क) प्राप्त काम का परिमाण

(ख) पूरा किये गये काम की मात्रा

(ग) यदि कुछ काम बच गया हो तो उसकी मात्रा

(घ) काम बच आने के कारण ।

नियन्त्रण के साधन—आधुनिक प्रबन्धकर्ता को नियन्त्रण के ये साधन प्राप्त हैं ·

(क) आयव्ययकीय या बजट सम्बन्धी नियन्त्रण

(ख) परिव्यय नियन्त्रण

(ग) वित्तीय नियन्त्रण

(घ) सांख्यिकीय नियन्त्रण

(ङ.) काम का माप और उत्पादन नियन्त्रण

(च) क्वालिटी या श्रेष्ठता का नियन्त्रण और लेख्यबन्धन (Document-

---

[x] See Robinson--Business Organisation and Practice pp 189 95

ation)।

इनमे से कुछ के बारे म हम अगले अध्यायो मे विस्तार से बताएगे, पर सक्षिप्त टिप्पणिया यहा देना अनुचित न होगा।

आयव्ययकीय नियत्रण से विविध विभागो के बारे मे आकडे मिल जाएगे।

परिव्यय नियत्रण से आपको व्यय की सीमा निर्धारित करने का और यह देखने का कि उसका उल्लघन न हो मौका मिलेगा।

वित्तीय नियत्रण से धन मुट्ठी मे रहेगा।

साख्यिकीय नियत्रण स यह सुनिश्चित हो जाता है कि आकडे ठीक समय पर दिये जाते है।

काम का माप और उत्पादन नियत्रण आपको काम के मूल्यो को जाच करने का अवसर देता है।

क्वालिटी या श्रेष्ठता नियत्रण से यह निश्चित हो जाता है कि प्रमाप कायम रहेगे।

लेख्यबन्धन से यह निश्चित हो जाता है कि आपको जब और जैसी जानकारी चाहिए, वह उपयोगी रूप मे मिल सके।

अत मे यह दुहरा देना उचित होगा कि प्रभावी नियत्रण से सगठन दक्ष, उत्पादन-सामर्थ्य प्रभावशील और परेशानियो से रहित, और कर्मचारी सुखी और सतुष्ट होते है।

अध्याय : : २१

उत्पादन का और लागत का नियंत्रण

उत्पादन का नियंत्रण—कारखाने के संगठन और मजदूरों के प्रबन्ध में व्यवसाय संगठन और प्रबन्ध की केवल आधी समस्याएं आती हैं। प्रबन्धकर्ता को किसी की समस्या का सामना करने से पहले उन समस्याओं को देखना पड़ता है, जो कारखाना लगाने, उसमें प्रशासन करने, कार्य कराने और उत्पादन के नियंत्रण के सिलसिले में पैदा होती हैं। किसी भी चीज का प्रत्येक कारक—श्रम, कच्चा सामान, यंत्र आदि उपस्कर और उत्पाद—पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उत्पादन नियंत्रण का। व्यवसाय की बहुत सी बरबादी, बहुत सी हानि और असफलताओं का कारण इसकी कमी या प्रभावहीनता होती है। उत्पादन को ऐसे ढंग से नियंत्रित करने की समस्या, जिससे अपेक्षित वस्तु सबसे सस्ते और सबसे अच्छी विधि से बनाई जा सके, यह होगी कि उत्पादित वस्तु अपेक्षित श्रेष्ठता की हो, और यह बात भी मैन्यूफैक्चरिंग यानी निर्माण व्यवसाय के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि वह अभीष्ट समय में बना ली जाय।

परिभाषा और क्षेत्र—"उत्पादन नियंत्रण" शब्द की न कोई स्पष्ट परिभाषा है, और न उसकी कोई सुनिर्दिष्ट या सुनिश्चित सीमा है। इसके क्षेत्र के विषय में बहुत अधिक विभ्रम है। ठीक-ठीक देखा जाय तो उत्पादन के अन्तर्गत वे सब प्रक्रम आ जाते हैं, जिनसे कच्चे सामान को ग्राहक के लेने योग्य अवस्था में पहुंचाया जाता है। विस्तृत अर्थ में, यह और मैन्यूफैक्चरिंग, यानी निर्माण, पर्यायवाचक हैं। इस अर्थ में नियंत्रण का अर्थ है प्रबन्ध। नियंत्रण करने का अर्थ है संचालन या संयमित करना। इस प्रकार इस अर्थ में प्रयोग करने पर उत्पादन नियंत्रण का अर्थ निर्माण का प्रबन्ध हो सकता है, पर यह परिभाषा बहुत व्यापक होगी, क्योंकि इसके अन्तर्गत न केवल श्रेष्ठता नियंत्रण, बल्कि लागत और विधियों का नियंत्रण भी आ जाता है, जिस पर अलग विचार करने की आवश्यकता है। उत्पादन नियंत्रण का सम्बन्ध मुख्यतः निर्माण यानी मैन्यूफैक्चर के समय पहलू से है, और इसके साथ स्थान पहलू तथा मात्रा या आयतन पहलू भी जुड़ जाता है। तो भी इसे उन कारकों पर ही विशेष केन्द्रित करना चाहिए जिनके निर्माण में समय अवयव (element) की आवश्यकता पड़ती है। ब्रिटिश स्टैन्डर्ड्स इन्स्टीट्यूट ने उत्पादन नियंत्रण के घटक ये सिद्धान्त बताये हैं (१) उत्पादन की योजना या योजना-निर्माण (प्लानिंग), (२) समयक्रम निर्धारण (शेड्यूलिंग) (३) मशीन और श्रमिक को उपयोग में लाना या कृत्यप्रेषण (डिस्पैचिंग), (४) स्टाक का नियंत्रण, (५) निर्माण के क्रम का नियंत्रण या मार्ग निश्चय (रूटिंग), और (७) प्रगति (प्राग्रेस)। इस संस्था के अनुसार, उपर्युक्त छह सिद्धान्त या कारक मिलाकर उत्पादन नियंत्रण कहलाते हैं। इसलिए उत्पादन नियंत्रण

उस निदेशक या संचालक अभिकरण को कह सकते हैं, जिसका प्रयोजन उन कारखानों में, जिनमें उत्पादन पृथक्-पृथक् सक्रार्यों (ऑपरेशन्स) में विभाजित होता है, उन सक्रार्यों को, योजना, समयक्रम निर्धारण, निरीक्षण, मार्ग-निश्चय, कृत्यप्रेषण या डिस्पैचिंग और प्रेक्षण के कार्य करते हुए, ठीक श्रेष्ठता की वस्तुएं अभीष्ट मात्रा में ठीक समय और स्थान पर उत्पादन करने की दृष्टि से, अधिक से अधिक प्रभावी रूप में समन्वित करना है।

उत्पादन नियंत्रण में दोमुखी समस्या जाती है। एक ओर तो इसमें योजना-निर्माण का अंग होना आवश्यक है, जो सक्रार्यों की लम्बी शृंखला के प्रत्येक कदम को पहले से देख सके और ऐसी व्यवस्था कर सके जिससे सब कार्य ठीक स्थान और ठीक समय पर न्यूनतम प्रयास और अधिकतम दक्षता से सिद्ध हो सकें। दूसरी ओर, नियंत्रण व्यवस्था यह देखने के लिए आवश्यक है कि जो योजनाएं बनाई जायं उनको वास्तव में कार्यान्वित किया जाय। योजना निर्माण का लक्ष्य यह है कि पहले ही से यह निश्चय कर लिया जाय कि क्या काम करना है, कैसे करना है, कहां करना है और कब करना है। इस विश्लेषण के परिणामस्वरूप जो निश्चय होते हैं, वे ऐसी रीति से निर्दिष्ट किये जाते हैं जिससे उन्हें ठीक स्थान और ठीक समय पर कराने के लिए नैत्यिक व्यवस्था ही काफी हो। नियंत्रण का कार्य यह है कि योजना निर्माण द्वारा पहले से निश्चित की गई इन प्रक्रियाओं को कार्यान्वित करे और प्रगति का प्रेक्षण, निरीक्षण और अभिलेखन (रिकार्डिंग) करे, ताकि योजना द्वारा निर्धारित तथा वास्तविक परिणामों में लगातार तुलना होती रह सके।

उत्पादन योजना या योजना निर्माण औद्योगिक प्रबन्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। इसका बुनियादी विचार यह है कि सारी फैक्टरी में किया जाने वाला कार्य पहले से तय कर दिया जाय। यह एक सुनिश्चित समय-सारणी है जिसके अनुसार विभागों तथा व्यक्तियों को कार्य करना है। इसे लिख लेना चाहिए और एक आदर्श व्यवस्था के रूप में चलाना चाहिए, और इसके अन्तर्गत उत्पादन चार्ट, लक्ष्य तिथि चार्ट और समय चक्र चार्ट भी होने चाहिए। समयक्रम निर्धारण उत्पादन नियंत्रण का एक और बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू है। ठीक-ठीक कहा जाय तो समयक्रम एक सूची है। भाण्डारों की, सम्पूर्ण मात्रा की और इसी तरह अन्य चीजों की अनुसूचियां होती हैं। जब यह शब्द मैन्यूफैक्चरिंग के सिलसिले में जोड़ा जाता है तब प्रायः एक निश्चित किये हुए क्रम में और कभी-कभी निर्धारित समय के अन्दर बनाये जाने वाले हिस्सों की सूची का वाचक होता है। यह वह साधन है जिसके द्वारा उत्पादन योजना को शुरू कराने और सब अवस्थाओं में उसे पूरा कराने की दृष्टि से, वह सब सम्बन्धित व्यक्तियों के सामने प्रस्तुत की जाती है। इसके द्वारा सब कार्यों एक तर्कसंगत समय-सारणी में भर दिये जाते हैं ताकि मैन्यूफैक्चरिंग के सिलसिले में होने वाले प्रत्येक सक्रार्य या घटना का आपेक्षिक समय पहले से तय हो जाय। मार्ग निश्चय योजनाबद्ध उत्पादन का एक अंग है। इसमें कारखाने में उत्पादन के सरकने का रास्ता निश्चित हो जाता है। मार्ग का आशय वह रास्ता है जिस पर वस्तु को निर्माण के लिए गुजरना होता है। योजना विभाग एक मार्ग-पत्रक तैयार कर देता है जिसके अनुसार कार्य मार्ग पर चलना है। कृत्यप्रेषण या डिस्पैचिंग भी उत्पादन नियंत्रण

का एक तत्त्व है। डिस्पैचिंग या प्रेषण का शब्दार्थ है किसी चीज को चला देना और उसे किसी लक्ष्य की ओर भेजना। कारखाने की भाषा में, यह प्राय. काम निश्चित स्थानों पर सौंपने की विधि या प्रक्रम का, तथा जहाँ आवश्यक हो वहाँ, इसकी प्रगति को बढ़ाने या घटाने का वाचक है। यही इसकी सीमा है। यह देखता है कि सामान काम की ठीक जगह पर पहुँच जाय, सकार्य-विशेष के लिए सही स्थान पर औजार तैयार हों, अभिलेख बना लिये जाय और काम मार्ग-सम्बन्धी आदेशों के अनुसार चलता रहे। यह योजना-निर्माण और सकर्ता के बीच सम्पर्क है। डिस्पैचिंग या कृत्यप्रेषण उस भौतिक कार्य को कराता है जो समयक्रम द्वारा निश्चित किया गया है। प्रगति वह साधन है जिससे उत्पादन योजना की पूर्ति को समन्वित किया जाता है, जिससे यह पता चले कि योजना से हम कितनी दूर हैं, और जहाँ तक सम्भव हो, इस दूरी को घटाया जाय। दूसरे शब्दों में वह तो प्रगति प्रबन्ध का काम है जिस पर यह जिम्मेवारी है कि काम, उत्पादन कार्यक्रम से निर्धारित रूप में, विविध प्रक्रमों में से गुजरता जाये।

उत्पादन नियंत्रण का लक्ष्य यह है कि उपलब्ध क्षमता के अनुसार यथासम्भव अच्छी सेवा की जाये और साथ ही लागत यथासम्भव कम से कम रहे। यह इन दो कारकों को ऐसी अच्छी तरह सन्तुलित करता है कि एक के लाभ से दूसरे की हानि नहीं होती। परन्तु उत्पादन नियंत्रण तभी सफल हो सकता है जब वह बहुत व्यापक हो और अन्तिम परिणामों को प्रभावित करने वाला हर कारक उसके अन्तर्गत हो। उसमें (क) योजना निर्माण के लिए आवश्यक पर्याप्त विस्तृत जानकारी जमा करने के लिए, (ख) काम शुरू करने तथा कार्यपूर्ति के लिए आवश्यक पूर्ण, निर्दोष और विस्तृत जानकारी देने के लिए, तथा (ग) चालू और पिछली कार्यपूर्ति के अभिलेखों का प्रबन्ध करने के लिए ठीक तरह की पद्धति, फार्म और क्लर्क-कार्य की पर्याप्त मात्रा में व्यवस्था होनी चाहिए। अभिलेख शीघ्र, पर्याप्त और उपयोग-योग्य होने चाहिए। एक-एक काम दो-दो बार हो जाने से और दफ्तरशाही से बचना चाहिए। इसके अलावा पर्याप्त अधिकारों से सम्पन्न समर्थ नौकर रखने चाहिए। अन्तिम बात यह है कि सारे संगठन में—मालिक से लेकर मजदूर तक—उचित भावना पैदा करनी चाहिए।

उत्पादन के प्ररूप—उत्पादन की परिभाषा इस रूप में की जा सकती है कि कच्चे सामान को निर्मित वस्तुओं का रूप देने का संगठित कार्य। इस अर्थ में कच्चे सामान के अन्तर्गत घास-फूस से लेकर बिजली की मोटर तक कोई भी चीज हो सकती है। एक उद्योग की निर्मित वस्तु बहुधा दूसरे का कच्चा सामान होती है। इसलिए उत्पादन के अन्तर्गत सब निर्माणीय और निस्सारक (Extractive) उद्योग आते हैं। उत्पादन नियंत्रण पर विचार करते हुए उत्पादन के सब प्ररूपों पर लागू होने वाले सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। पर इन सिद्धान्तों को उत्पादन के प्रत्येक प्ररूप की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित करना होगा। इसलिए यहाँ उत्पादन के उन तीन प्ररूपों पर ध्यान देना आवश्यक है जो खानें और उत्खनि (Mines and quarries), कृषि और मछली पालन, भवन-निर्माण और सिविल इंजीनियरिंग, परिवहन, गोदी और लोकोपयोगिता तथा निर्माण आदि उद्योगों के विभिन्न समूहों में से प्रत्येक में पाये जाते हैं। वे तीन प्ररूप ये हैं :

(१) कार्यश उत्पादन (Job Production), जो प्रायः छोटे पैमाने पर किया जाता है।

(२) घान उत्पादन (Batch Production), जो प्रायः मध्यम पैमाने पर किया जाता है।

(३) प्रवाह या पुंज उत्पादन जो प्रायः बड़े पैमाने पर किया जाता है।

कार्यश उत्पादन किसी ग्राहक की अपनी आवश्यकता के अनुसार अकेली-अकेली वस्तुएं बनाने से सम्बन्ध रखता है। प्रत्येक कार्यश का आदेश बिलकुल अलग होता है और उसके दो बार रहने की कोई सम्भावना नहीं रहती। कोई दो पदार्थ बिल्कुल एक से नहीं होते और किसी एक ही वस्तु की ढेर तक माग प्रायः नहीं होती। कार्यश उत्पादन उत्व-नियों द्वारा वास्तुकला के विशेष काम के लिये किया जाता है, भवन-निर्माण और सिविल इंजीनियरिंग द्वारा पुलों और पृथक् पृथक् मकान पर किया जाता है तथा निर्मिति उद्योग द्वारा विशेष प्रयोजन वाली मशीनों और प्राटोटाइप के काम के लिए किया जाता है। सब परिचालकों में कुशलता का स्तर बहुत ऊंचा होना चाहिए।

घान उत्पादन उन कम्पनियों में होता है जिनमें एक समय में वस्तुओं या हिस्सों (Parts) का एक घान या मात्रा बनाई जाती है पर जहा किसी हिस्से या वस्तु का उत्पादन बिना रुके नहीं होता यह तब होता है जब बहुत तरह की निर्मित वस्तुएं रखनी पड़ती हैं और जब आदेश विविध होते हैं और काफी बड़ी मात्राओं के लिए होते हैं। घान उत्पादन के लिए सबसे अधिक आम कारण विभिन्न वस्तुओं और नमूनों में मानक हिस्सों का उपयोग है। उत्पादन का यह प्ररूप उद्योग में होता है। इसके लिए साधारण प्रयोजन वाले साज-सामान और मशीनी उपकरणों के संगठन में नम्यता की और फोरमैन तथा कार्यपाल के स्तर पर ऊंचे दर्जे की दक्षता का आवश्यकता होती है। सभव है कि सब आपरेटरों की कुशलता उतनी ऊंची न हो जितनी कार्यश उत्पादन वाली फैक्टरियों में, और हो सकता है कि उपकरण व्यवस्था (Tooling) इतनी जटिल न हो जितनी पुंज उत्पादन में, पर उपकरणों और कार्यांशों को जमाने में और किसी कार्यांश को करने की सबसे अधिक प्रभावी विधि का शीघ्र निश्चय करने में ऊंचे दर्जे की कुशलता की आवश्यकता होती है सब उद्योगों में उत्पादन के इस प्ररूप पर नियन्त्रण करना ही सबसे अधिक कठिन होता है। सामान्य खदान (mining), सरकारी भवनों की रखभाल, मुर्गी पालन, सब तरह का परिवहन, और सब निर्मित वस्तुएं और अधिकतर इंजीनियरिंग और उपभोग सामग्री बनाने वाले उद्योग उत्पादन के इस प्ररूप का उपयोग करते हैं।

प्रवाह या पुंज उत्पादन सामान्यतः बड़े पैमाने की इकाइयों तक सीमित है। इस प्ररूप में बिल्कुल उसी प्रकार की वस्तुओं या हिस्सों का सतत (बिना रुके) उत्पादन होता है—इसमें सब परिचालन ठीक उसी क्रम से होते हैं और सब विधायन इकाइयां (Processing units) (मशीन, प्लाट या परिचालन) सदा उसी परिचालन में लगे रहते हैं। पुंज उत्पादन के परिणामस्वरूप एक-प्रयोजनी मशीनों का विकास हुआ है और वह इन पर ही निर्भर है। बहुधा केवल एक वस्तु या केवल एक या शायद दो या तीन

नमूने या कोटिया बनाई जाती है और उत्पादन दर ऊची होती है। पुज उत्पादन बृहत प्रक्रम उद्योगो मे जैसे आटा मिल, चीनी शोधन, तेल शोधन, और उन फैक्टरियो मे, जो कार, वैकुअम क्लीनर, प्रशीतक या रैफ्रिजरेटर, टेलीफोन, बिजली के लट्ट आदि मानक वस्तुए बनाती है, बहुत उन्नत अवस्था मे पहुच चुका है। पुज उत्पादन पैमाने पर काम करने वाली फैक्टरिया प्राय बडी होती है और उनमें हजारा मजदूर काम करते है। नियत्रण की बहुत सी समस्या इकाइयो के आकार से, और उसके परिणामस्वरूप ऊचे प्रबन्ध-कर्त्ताओं और आपरेटरो में सम्पर्क की कमी, तथा कार्माशो के कौशलहीन हो जाने से, जिसके परिणामस्वरूप उनमें दिलचस्पी नही होती, पैदा होती है।

किसी फैक्टरी का कार्माश उत्पादन से थान उत्पादन में परिवर्द्धन स्वभावत होता है और इससे आम तौर पर कोई बडी समस्याए नहीं पैदा होती। यह प्राय जब बारबार बढ जाता है और ग्राहको की आवश्यकताए बढ जाती है, तब टर्न-ओवर के परिमाण मे क्रमिक वृद्धि का या पुर्जो के प्रमापीकरण के उपयोग का तर्कसंगत परिणाम है, पर पुंज उत्पादन की विधियो के प्रयोग का फैसला ही, खासकर उस अवस्था में जब इसका प्रयोग उचित समय से पहले कर दिया जाए, खतरनाक होता है। हो सकता है कि फैशन बदल जाए और सब योजनाए धरी रह जाए। फैसला सोचा-विचारा हुआ और सचालक मडल द्वारा ऊची नीति के रूप मे किया गया होना चाहिए।

काम की नाप और क्वालिटी पर नियत्रण

काम के नापने का प्रयोजन—मजदूरो को कम प्रयास से अधिक उत्पादन करने के लिए प्रेरणा देने वाले उद्दीपको (Incentives) को वैज्ञानिक प्रबन्ध के हिस्से के रूप मे परखा गया है। उद्दीपक अपने ढगसे सब बहुत अच्छे है पर यदि उन्हे उद्दीपक भुगतान के लिए युक्तियुक्त आधार बनना है और मालिक और मजदूर दोनो के लिए हितकारी सिद्ध होना है तो उन पर कठोर नियत्रण होना चाहिए। इस नियत्रण को कायम करने के लिए ही काम के अध्ययन और काम की नाप के विज्ञान का विकास हुआ है। पुराने ढगके समय अध्ययन, काम अध्ययन, गति अध्ययन और निर्मित वस्तुओ का निरीक्षण-इन सबमें अपनी अपनी अच्छाइया और कमजोरिया थी। इन कमजोरियो को हटाने और अच्छाइयो को कायम रखने के लिए ही प्रबन्ध के उस उपकरण की, जो काम की नाप कहलाता है, इसकी उपयोगिता है। इसका प्रयोजन निर्मिति चक्र के प्रत्येक परिचालन के लिए स्थिर प्रमाप कायम करना है, जिससे मुकाबला करके दक्षता नापने और अतिदक्ष मजदूर को पुरस्कार देने के प्रयोजन के लिए वास्तविक उत्पादन नापा जा सकता है। ऐसा करने मे हमे समय और गति अध्ययन, काम अध्ययन, और किसी निश्चित वस्तु के लिए श्रेष्ठता (क्वालिटी) की निश्चित प्रमाप की प्रवृत्तियो पर भी विचार करना चाहिए।

काम अध्ययन और योजनाकरण विधियाँ—क्योंकि यह दक्षता के नापने का अध्ययन है, इसलिए आपका अपने अध्ययन मे दक्ष होना भी आवश्यक है। निर्मित की जाने वाली विविध वस्तुओ के अध्ययन मे निम्नलिखित का ब्योरा दिया जाना चाहिए

(क) निर्मिति के प्रक्रम (Processes),
(ख) प्रक्रमो के क्रम,

(ग) विधायन (Processing) में सुधार,
(घ) उत्पादन प्रवाह
 (१) भीतर जाना (Feeding-in)
 (२) बाहर आना (Feeding-out)
(ट) उत्पादन प्रवाह में सुधार
(च) क्वालिटी नियंत्रण
 (१) उत्पादन की क्रमिक अवस्थाओं में
 (२) अन्तिम संचयन में (Assembling)

निर्मिति का प्रक्रम सबसे महत्वपूर्ण है। इसका निर्धारण करने के लिए निर्मिति के प्रत्येक परिचालन पर विचार करना होगा, चाहे वह कितना भी तुच्छ प्रतीत होता हो।

प्रक्रमों के क्रम का सावधानी से अध्ययन करने पर कारबार की कुल दक्षता का पता लग सकता है। मनुष्य आदत से चलते हैं और आदत जब एक बार बन जाती है, तब उन्हें हटाना कठिन हो जाता है। जब उत्पादन शुरू होता है, तब कोई व्यक्ति परिचालनों का एक क्रम निश्चित कर देता है, और प्रवृत्ति यह होती है कि अज्ञात की खोज करने के बजाए ज्ञात को जारी रखा जाए। सावधानी से परीक्षा करके यह निश्चय किया जा सकता है कि वह क्रम सचमुच ही सर्वोत्तम है या नहीं, और उसे बनाये रखने या परिवर्तित करने का निश्चय हमेशा के लिए एक बार किया जा सकता है।

विधायन में सुधार चतुर व्यक्ति के लिए बहुत अधिक बड़ा क्षेत्र प्रस्तुत करते हैं। उन्हीं में भविष्य की उन्नति की आशा निहित है।

उत्पादन प्रवाह दक्षता का सबसे बड़ा चोर है क्योंकि इसके प्रभाव संचयी (Cumulative) होते हैं, और उन्हें बहुत बार उपेक्षित कर दिया जाता है। कई बार आपरेटर को पुर्जे नहीं मिल पाते और विधायित पुर्जे अगले प्रविभाग (section) में नहीं पहुंचाए जाते। कभी-कभी बिलकुल अनावश्यक प्रकार के संचलन (Movements) निरयकार्यों में घुस आते हैं और यदि उन्हें न रोका जाए तो उत्पादन का समय बहुत बढ़ जाता है और कुशाग्र-बुद्धि प्रेक्षक को इन सब बातों का उपचार कर देना चाहिए।

उत्पादन प्रवाह में सुधार उपर्युक्त अनेक कमजोरियों के पता लगने पर स्वयं हो जाएंगे। इसके अतिरिक्त, जब पुराने विचारों को साफ कर दिया जाएगा, तब नए विचार सामने आएंगे। क्वालिटी नियंत्रण विशेष रूप से वहां परम आवश्यक है जहां बोनस या उत्पादन के उद्दीपक की कोई प्रणाली प्रचलित है। आपरेटरों की प्रवृत्ति यह होती है कि निर्मित वस्तु की अवस्था की बिना परवाह किए वे दिए हुए समय में अधिक से अधिक काम पूरा कर देते हैं। क्वालिटी नियंत्रण इसको रोक सकता है और रोकता है और इस तरह कारबार को बहुत लाभ होता है।

नापने की विधि—यह मुख्यतः उत्पादन की विधियों, और उनके प्रयोग के समय उनकी उपयुक्तता पर निर्भर है। विधि चाहे कोई भी अपनाई जाए, पर यह याद रखना अच्छा होगा कि परिणामों का सबसे अच्छा प्रयोग प्रमापों के स्थिर करने के द्वारा

होगा। इसके लिए निम्नलिखित बातो से मार्ग का सकेत मिल सकता है :

(क) माप की इकाई का निर्धारण, अर्थात् एक इकाई, दर्जन या तोल। यह पहला आवश्यक तत्त्व है, जैसा कि निम्नलिखित बातो से पता चलेगा।

(ख) माप की निश्चित इकाई के लिए कच्चे सामान की ठीक मात्रा का निर्धारण। इस मात्रा म बरबादी और बेकार जाने वाले अश की भी गुजाइश रखी जाती है। यह भी अच्छा होगा कि इन सम्भावी हानियो म से प्रत्येक के लिए आपकी गणना म ली गई ठीक राशिया आप स्पष्ट कर दे। इससे आपको प्रमाप परिवर्तनो (Standard Variations) के स्पष्ट करने म मदद मिलेगी।

(ग) उत्पादन क्रम मे प्रत्येक परिचालन के लिये दिया गया ठीक-ठीक और स्पष्टत बताया गया समय। इस दिये हुए समय की गणना करने के कई तरीके है। पर सबसे अधिक प्रचलित तरीका विराम घडी (Stop watch) द्वारा है।

(घ) कार्याश का स्पष्ट मूल्याकन, और प्रमाप से आगे सुधार करने पर बोनस या उद्दीपक की दरें निश्चित कर देना।

एक बार सारा ब्योरा तय हो जाने के बाद हम समय, सामग्री और परिपूर्ति के ऐसे प्रमाप तय कर सकते है जिन्हे नापने के प्रयोजनो के लिए पैमाने के रूप मे इस्तेमाल किया जा सकता है। 'प्रमाप परिपूर्ति' क्या है, यह जरा टेढा सवाल है। कुछ लोग प्रमाप उसे बताएगे जो 'उत्पादन की औसत मात्रा किसी दिये हुए समय में किसी औसत मजदूर से करने की आशा की जाती है'। कुछ लोग इसे 'कार्यपूर्ति का वह प्रमाप बताते है जिसे प्राप्त करना असम्भव है पर जो आगे बढने के लिए प्रेरणा देता है'। दोनो विचार अव्यावहारिक है। ठीक रास्ता इन दोनो के कही बीच म है। प्रमापो का समझदारी से उपयोग करने से उत्पादकता (Productivity) को नापना सम्भव है।

क्वालिटी नियत्रण

क्वालिटी नियत्रण प्रमाप क्वालिटी से विचलन को नापने की साख्यिकीय विधि है, और इसमे नमूने की परख एक चार्ट पर अभिलिखित की जाती है, जो तुरन्त यह बता देता है कि काम कब पहले से अनुमोदित सीमाओ से बाहर किया जा रहा है। यह उन सब अवस्थाओ में लागू हो सकता है जिनमे सीमाए निकाली जा सकती है और सतत निर्माता के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। इसमें यह अच्छाई है कि इस पर लागत कम आती है और यह क्वालिटी की गिरावट की सूचना जल्दी ही दे देता है। यह प्रक्रिया नमूनो की परीक्षा के परिणामो पर सम्भाव्यता का सिद्धान्त (Theory of probability) लागू करके पुज उत्पादित वस्तुओ के नियत्रण में प्रयुक्त की जाती है। इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि परीक्षा मशीन के निकट और वस्तुओ के उत्पादन के बाद यथासम्भव जल्दी से जल्दी की जाती है जिसका नतीजा यह होता है कि परिणामो से उत्पादन प्रक्रम म विद्यमान प्रवृत्तियो का सीधा सकेत मिल जाता है और अत्यधिक भूल होने से पहले सुधार किया जा सकता है और इस प्रकार अनावश्यक बरबादी से बचा जा सकता है। नियत्रण या तो नमूना मे पायी जाने वाली त्रुटियो

की प्रतिशतकता पर, अथवा नमूनों के अलग-अलग भागों के अभिलिखित माप पर आधारित किया जा सकता है। दोनों ही अवस्थाओं में अभीष्ट आमाना (Ganges) की संख्या में बहुत बचत हो जाती है। यह दावा किया जाता है कि क्वालिटी नियंत्रण के ठीक उपयोग से १०० प्रतिशत आमान (Gauging) के बराबर सही परिणाम प्राप्त हो सकता है बशर्ते कि आमान के मनन परिचालन में भ्रान्ति के कारण होने वाली मानवीय भूल की सम्भावनाओं की ओर उचित ध्यान दिया जाए।[1]

जो कुछ कहा जा चुका है उसमें यह स्पष्ट हो जाएगा कि क्वालिटी की परिशुद्धता और फिनिश या परिरूपण (Finish) आपेक्षिक होते हैं। क्रियात्मक निर्माण के अर्थों में कोई निरपेक्ष माप नहीं है। इंजीनियर के लिए डेडसाइज (dead size) का अर्थ वह आकार है जो वह अपने माइक्रोमीटर या सूक्ष्म मापक से परिशुद्धता से माप सकता है, उदाहरण के लिए, इंच के दस हजारवें हिस्से तक (0001)। इसलिए कोई प्रमाप तय करने में इतना ही काफी नहीं है कि लम्बाई, ताप आदि की एक इकाई बता दी जाए, बल्कि प्रमाप ऊपरी और निचली सीमाओं के मध्य अनुज्ञात परिणमन (Permissible Variation) के रूप में प्रकट किया जाए। पर यदि सामान्यतया उपयोग में आने वाले उपकरणों, यथा फुटा या तौल के लिए सामान्य तराजू, से प्राप्त परिशुद्धता काफी हो तो इसकी आवश्यकता नहीं। प्रमाप विशिष्टियों में या आलेखों पर (In specifications or on drawings) लिखित रूप में निश्चित किये जाने चाहिए। निरीक्षण सिर्फ नकारात्मक (Negative) न होना चाहिए, बल्कि इसे उत्पादन की क्वालिटी का नियन्त्रण करना चाहिए। निरीक्षण अभिलेखन और सुधारने का काम वास्तविक संगठन, स्पष्टतः उत्पादित वस्तु, निर्माण के प्रकार और पैमाने के रूप के अनुसार बहुत अलग-अलग होगा। शस्त्रास्त्रों के और विमान के निर्माण में सब जगह १०० प्रतिशत निरीक्षण किया जाता है। पहियेदार ठेलों और कृषि की मशीनों आदि के निर्माण में इतने कठोर निरीक्षण की आवश्यकता नहीं होती। रासायनिक प्रक्रम उद्योग में सर्वथा भिन्न प्रकार का निरीक्षण अपेक्षित होता है। जहाँ यथातथ्य (Precision) आवश्यक होता है, वहाँ १०० प्रतिशत निरीक्षण अभीष्ट है। अन्य अवस्था में नमूना निरीक्षण ही पर्याप्त सिद्ध होगा। नमूने कुछ-कुछ समय बाद कई बार लेने चाहिए ताकि प्रतिशतकता की जाँच ठीक-ठीक हो सके। पर अनियमित अवधियों पर और किसी-किसी घान (Batch) पर आकस्मिक जाँच भी होनी चाहिए।

निरीक्षण केन्द्रीकृत या निकटस्थ निरीक्षण (Floor inspection) हो सकता है। केन्द्रीकृत निरीक्षण में एक विभाग का सारा काम निरीक्षण विभाग को भेज दिया जाता है, या उसे अगले परिचालन में पहुँचने से पहले एक निरीक्षण कक्ष में से गुजारा जाता है। दूसरी विधि में निरीक्षक निरीक्षण के स्थान पर जाते हैं, और

1 Institution of Mechanical Engineering proceedings, 1947, Vol. 1.7.

मशीन या बेंच पर निरीक्षण करते हैं। यह निश्चय करने में कि कौन सी विधि अपनाई जाए, दोनों के अपने-अपने लाभों का ध्यान रखना चाहिए। केन्द्रीकृत निरीक्षण सरल होता है, और उसमें अधिक अच्छा पर्यवेक्षण हो सकता है। इसमें श्रम का विभाजन हो सकता है, जिससे कम दक्ष श्रमिक की नियुक्ति हो सकती है। यह अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है, और इसमे बाधा कम पडती है। कारखाने साफ-सुथरे रहते हैं और इसलिए काम के प्रवाह का नियंत्रण करना आसान होता है। मजदूरी देने के लिए अधिक परिशुद्ध जाच सम्भव होती है और गलत परिणाम निकलने का मौका कम होता है। इसमें प्रगति करना अधिक आसान होता है और नष्ट या चुराये गये काम और छिपाई गई बरबादी से होने वाली हानियां न्यूनतम होती हैं।

निकटस्थ निरीक्षण में उठा-धरी का काम बहुत कम होता है, और निरीक्षण विभाग में समय लगने के कारण होने वाला विलम्ब कम होता है। मार्गस्थ काम की मात्रा घट जाती है, और उत्पादन चक्र का समय छोटा हो जाता है। त्रुटियां तुरन्त दूर की जा सकती हैं, और इस कार्य के लिए जिम्मेदार आपरेटर उन्हें खुद सुधार सकता है। निरीक्षक त्रुटिपूर्ण काम रोकने के उद्देश्य से आपरेटर के सलाहकार के रूप में काम कर सकता है।

परिव्यय या लागत और लागत नियंत्रण

औसत लागत (Average Cost)—व्यापारिक कारबार में, जिस में वस्तुएं लगभग उसी रूप में बेची जाती हैं, जिस रूप में खरीदी गई थीं, लागत का आसानी से पता रहता है। विक्रय मूल्य निश्चय करना आसान रहता है, क्योंकि क्रय मूल्य में उतने प्रतिशत जोड़ दिया, जितने से ऊपरी खर्चे, जो प्रायः पता होते हैं, और नियत होते हैं, और लाभ का उचित अंश निकल आया। छोटे निर्माणीय कारबार में भी फर्म को सिर्फ अपने वार्षिक हिसाब किताब पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसमें वह अपने सारे साल की कुल आय और कुल व्यय की तुलना करके तब वास्तविक वित्तीय स्थिति का अन्दाजा लगाती है। दूसरे शब्दों में, वह वर्ष भर के लाभ का पता लगाने के लिए लाभ और हानि लेखा (प्रौफिट एण्ड लौस एकाउन्ट) बनाकर सन्तुष्ट हो जाएगी। इसके बाद वह बैलेन्स शीट या स्थिति विवरण तैयार करेगी जिसमें फर्म की उस समय की पूंजी तथा कुल व्यय, जो निर्मित वस्तु की कुछ मात्रा बेचने में आई लागत का सूचक होगा, दिखाया जाएगा। कुल व्यय को कुल उत्पादन की मात्रा से भाग देकर फर्म प्रति इकाई औसत लागत निकाल सकती है। एक बड़ी निर्माता फर्म भी इतने ही से सन्तुष्ट हो सकती है, पर इस औसत लागत से फर्म को अपने प्रति दिन के नीति निर्धारण कार्य में या अपने ग्राहकों के विशेष आदेशों के सम्बन्ध में कोई सहायता नहीं मिलती और बड़ी फर्मों को तो और भी कम मिलती है। यह सच है कि औसत लागत का बड़ा महत्व है। पर इसका ज्ञान बहुत देर से, खर्चा किए जाने के बाद होता है। किसी भी फर्म को यह अवश्य पता होना चाहिए कि एक वस्तु बनाने पर कितना खर्च आया है परन्तु यह कार्य बड़ा जटिल है। कुछ लागत उत्पादन के साथ प्रत्यक्ष रूप में बदलती रहती है, जबकि कुछ और लागत लगभग निश्चित होती है, और इसलिए किसी विशेष वस्तु के जिम्मे उसे डालना कठिन होता है। विभिन्न लागतों को ठीक-ठीक विभाजित करने के लिए लागत लगाने

(परिव्ययन) और परिव्यय लेखांकन की दक्ष पद्धति का निर्माण करना आवश्यक है। शुरू में ही यह कह देना उचित होगा कि आम धारणा के विपरीत, परिव्ययन का उपयोग केवल कीमत-स्थिरण (Price-fixing) और कीमत-कथन (Quotation) तक ही सीमित न रखना चाहिए, बल्कि उन बातों पर भी लागू करना चाहिए जो उन स्थानों की ओर ध्यान आकर्षित करे, जहाँ अदक्षता हो रही है, जिससे उन्हें शीघ्र ही सुधार दिया जाय।

कीमत मूलतः संभरण और माँग की खींचतान से निर्धारित होती है, और वह बाजार की अवस्थाओं की गवेषणा करके तय करनी चाहिए। लागत लगाने, यानी परिव्ययन, से यह पता चल सकता है, कि फर्म किस सीमा तक साधारण प्रतियोगिता-जनित दबाव से दूर है, और यह भी पता चल सकेगा कि यदि कोई सुधार करने की आवश्यकता है तो वह किस दिशा में किया जाए। इसके अलावा, फर्मों को लाभ कमाने या हानि से बचने की चिन्ता अधिक रहती है, कीमतों की कम। क्योंकि लाभ किसी वस्तु की लागत और कीमत इन दोनों का कार्य है, इसलिए लागत के लेखे से फर्म को अपनी लागत नियन्त्रित करने और दक्षता नापने में मदद मिलेगी। बाजार की अवस्थाओं की पर्याप्त जानकारी के अभाव में, लागत या परिव्यय का, कीमत निश्चित करने में, उपयोग करना उचित है। लागत या परिव्यय का हिसाब लगाने का लक्ष्य यह है कि वित्तीय अभिलेखों के विश्लेषण की एक ऐसी पद्धति बनाई जाय, जिसमें सब खर्चों को विभाजित करके उस-उस काम में और प्रक्रम पर बाँट दिया जाय, जिस पर वह हुआ है।

परिव्ययन के लक्ष्य (Aims of Costing)—परिव्ययन का अभिप्राय अलग-अलग परिस्थितियों में बहुत अलग-अलग होता है। परिव्ययन का हिसाब लगाने की कोई एक पूर्व निश्चित रीति नहीं है और प्रत्येक कारबार को अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार अपनी विशेष योजना तय करनी चाहिए। इसलिए कारबार की आवश्यकताओं के अनुकूल परिव्यय लेखा होना चाहिए, न कि परिव्यय लेखे के अनुकूल कारबार। मोटे तौर से परिव्ययन के लक्ष्य निम्न प्रकार बताये जा सकते हैं—(१) माँग और संभरण की अवस्थाओं के अधीन विक्रय का नियमन, (२) अनुचित रूप से नीची कीमत बनाकर हानि से बचने के लिए, और आवश्यक रूप से ऊँची कीमतें बनाकर कारबार खोने से बचने के लिए हिसाब लगाने में परिशुद्धता लागू करना (३) यह पता लगाना कि किस समूह की वस्तुएँ लाभ करने वाली हैं, और किस की नहीं; (४) यह देखना कि क्या कोई वस्तु उत्पादित करने में जो लागत आती है, उससे कम कीमत में वह खरीदी जा सकती है, (५) प्रमाप निश्चित करना, जिनके साथ-साथ वास्तविक क्रियाकलापों की तुलना करके अच्छे उपकरणों की अच्छाई और अदक्ष कारीगरी तथा प्रबन्ध का पता चल सके, (६) लागत के प्रत्येक अंश के महत्त्व की मात्रा का निर्धारण और विशेष रूप से यह देखना कि बचत किस जगह की जा सकती है, और (७) वित्तीय अभिलेखों को निश्चित तथा लाभ-हानि पटनाड़ की व्यवस्था।

परिव्यय के मुख्य अवयव—किसी निर्माण करने वाले कारखाने को उत्पादन के लिए तैयार रखने और उसके भीतर उत्पादन कार्य वस्तुतः करने में जो अनेक खर्च

होते हैं, उनको तीन मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है। उनमें से पहला उस सामान का खर्च जिससे वह वस्तु बनती है। दूसरा वह श्रम है, जो उस सामान पर प्रत्यक्ष प्रयुक्त होता है। तीसरे समूह में उद्व्यय (आउटले) की वे सब शेष रकम आ जाती है, जो किसी सीधी और सुनिश्चित रीति से उत्पादित वस्तु की किसी एक इकाई के उत्पादन पर नहीं लागू होती। पहले और दूसरे प्रकार के खर्चों की गणना आसानी से की जा सकती है। ये मिलाकर मुख्य परिव्यय (प्राइम कौस्ट) कहलाते हैं तीसरा समूह फैक्टरी भार या उपरिव्यय या पूरक परिव्यय या सिर्फ "व्यय" कहलाता है। किसी वस्तु के निर्माण में प्रयुक्त कच्चे सामान और काम पर प्रायः कारबार चलाने के कुल खर्चे के दो-तिहाई से अधिक खर्च नहीं होता, और बहुत बार वह कुल खर्च का ५० प्रतिशत तक होता है। तो अब मुख्य समस्या यह है कि शेष परिव्ययों और व्ययों को एक-एक उत्पाद पर या एक-एक प्रक्रम पर कैसे बाँटा जाय कि कुल परिव्यय का परिशुद्ध ज्ञान हो सके।

दूसरे शब्दों में कहें, तो व्यय को दो मुख्य वर्गों—प्रत्यक्ष और परोक्ष—में बाँटा जा सकता है। प्रत्यक्ष व्ययों में (क) प्रत्यक्ष सामान, (ख) प्रत्यक्ष श्रम, और (ग) प्रत्यक्ष व्यय शामिल हैं। अप्रत्यक्ष व्यय वे हैं, जिनके बारे में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वे इस कार्यादेश या प्रक्रम विशेष का व्यय हैं। ऐसे व्ययों का लाभ, जो कुछ काम हो रहा है, उस सब को पहुँचता है। अप्रत्यक्ष व्ययों में (क) कारखाने या फैक्टरी के व्यय अथवा कारखाने या फैक्टरी के अधिव्यय (ओनकौस्ट), (ख) दफ्तर और प्रशासन सम्बन्धी व्यय, (ग) विक्रय और वितरण सम्बन्धी व्यय आते हैं। निम्न चार्ट में परिव्यय दिखाया गया है।

परिव्यय के अवयव

प्रत्यक्ष — सामान, श्रम, व्यय	मुख्य परिव्यय
काम के व्यय (Work expenses)	कारखाना या फैक्टरी के परिव्यय या निर्माण परिव्यय
अप्रत्यक्ष — दफ्तर और प्रशासन के व्यय	उत्पादन का परिव्यय या कारखाना अधिव्यय
विक्रय और वितरण के व्यय शुद्ध लाभ या शुद्ध हानि	बिक्री का परिव्यय विक्रय मूल्य

परिव्यय के अवयवों और विक्रय मूल्य का सम्बन्ध निम्नलिखित विश्लेषणात्मक

चित्र से भी समझा जा सकता है —

विक्रय मूल्य का विश्लेषण

प्रत्यक्ष या उत्पादक सामान	+ प्रत्यक्ष या उत्पादक श्रम + प्रभार्य या प्रत्यक्ष व्यय	= मुख्य परिव्यय
मुख्य परिव्यय	+ कारखाने के व्यय या फैक्टरी के व्यय या कारखाना अधिव्यय	= कारखाने का परिव्यय या फैक्टरी परिव्यय
फैक्टरी परिव्यय या कारखाने का परिव्यय	+ प्रशासनीय व्यय	= उत्पादन का परिव्यय या स्थूल (ग्रौस) परिव्यय या दफ्तर परिव्यय
उत्पादन का परिव्यय या स्थूल परिव्यय या दफ्तर परिव्यय	+ विक्रय और वितरण के व्यय	= कुल परिव्यय या विक्रय परिव्यय
कुल परिव्यय या विक्रय परिव्यय	+ लाभ	= विक्रय मूल्य

उत्पादन के परिव्यय, जिससे विक्रय मूल्य का निर्धारण होता है, के अंगभूत निर्माण

परिव्यय का गठन

प्रत्यक्ष श्रम
प्रत्यक्ष सामान
फैक्टरी व्यय
मुख्य परिव्यय
विक्रय व्यय
प्रशासनीय व्यय
साधारण व्यय
फैक्टरी परिव्यय
शुद्ध लाभ
कुल परिव्यय
विक्रय मूल्य

विभिन्न परिव्ययों को उपर वाले चित्र में दिखाई गई रीति से मुख्य परिव्यय से कुल परिव्यय तक एक एक कदम बढ़ते हुए प्रकट किया जा सकता है।

प्रत्यक्ष सामान परिव्यय—परिव्यय का सबसे अधिक प्रत्यक्ष और विनिर्दिष्ट आरम्भ तब होता है, जब वह कच्चा सामान खरीदा जाता है जिससे तैयार माल बनता है। जब सामान किसी एक ही कार्यांश में काम आता है, कार्यांश का अर्थ है उत्पादक कार्यों की वह शृंखला जो एक इकाई या एक थान या प्रचय (tot) की पूर्ति पर समाप्त होती है—और जब प्रत्येक कार्यांश के सिलसिले में प्रयुक्त सामान को मात्रा नापना सरल होता है, तब इस सामान का परिव्यय प्रत्यक्ष सामान परिव्यय के रूप में सीधे डाला जा सकता है। आरम्भिक परिव्यय उसे माना जा सकता है, जो वास्तविक क्रय मूल्य या अन्तिम मूल्य या औसत मूल्य हो। निर्धारित परिव्यय में भाड़ा, ल्दाई और सभालन, रखन तथा निर्गम (इशू) के व्यय भी शामिल हो सकते हैं। इन व्ययों को कार्यांश के लिए प्रत्येक बार लिये गए सामान पर अलग-अलग बांटना कठिन है और इसलिए इस फैक्टरी व्यय का हिस्सा माना जाएगा। सामान के परिव्यय की नियमित पड़ताल रखने के लिए खरीदन और संग्रह करन (स्टोर-कीपिंग) की उचित पद्धति बना देना आवश्यक है। अधिकतर तैयार वस्तुओं में कच्चे सामान तथा अन्य वस्तुओं (अप्रत्यक्ष सामान) का मूल्य प्रचुर होता है और उन्हें खरीदने या सग्रह करने म अदक्षता होने पर उत्पादन परिव्यय बहुत कुछ बढ़ जाएगा। इस दृष्टि से दक्षता इस बात म है, कि बिना बहुत अधिक माल जमा किये और बिना बहुत ऊँचा दाम दिये, फैक्टरी की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकी। उत्पाद और सामान सग्रह के समय खराब न होना चाहिए। आर्डर देने, वस्तुएँ लेने, उन्हें संगृहीत करन और निर्गमित (इशू) करन और उनके परिव्यय का हिसाब लगाने के लिए पर्याप्त नैत्यिक व्यवस्था आवश्यक है। संगृहीत सामान की ठीक-ठीक लैजर या खाता बही रखनी चाहिए, जिसमें बढ़ा हुआ माल, आर्डर दिया हुआ माल, और रक्षित (रिजर्व) माल, उसकी कीमत और प्राप्तियां तथा निर्गमों के विवरण दिखाये जाने चाहिए। प्राप्तियों की कीमत लगाते हुए बीजक कीमत म प्रभार (Charge) अर्थात् लाने आदि के खर्चे जोड़ देने चाहिए। विभिन्न कार्यांशों के लिए दिये गये सामान का हिसाब कई तरह लगाया जाता है। पहली रीति के अनुसार, जिसमें सबसे पहले प्राप्त हुआ सामान सबसे पहले दिया जाता है, निर्गमित सामान की कीमत उन वास्तविक कीमतों म लगानी चाहिए जिस पर वह खरीदा गया है। संग्रह स्थान (स्टोर एकाउन्ट) की चीज क्रमानुसार के अनुसार निकाली जाती हैं। जहां ५०० और ३०० इकाइयों के दो समूह २) रु० और २रु० २ आना प्रति इकाई के हिसाब म प्राप्त हुए हों, और ६०० इकाई का निर्गमन किया जाए, वहां कार्यांश को २ रु० प्रति इकाई की ५०० इकाइयां और २ रु० २ आना इकाई की १०० इकाइयों म बांट दिया जायगा, और २ रु० २ आना प्रति इकाई की २०० इकाई स्टॉक म रह जावगी। इस पद्धति म परिव्यय का ठीक ठीक ध्यान रखा जा सकता है। परन्तु प्रत्येक निर्गम पर जो गणनाएँ करनी पड़ती हैं, उनके कारण गल्तियां की गुंजाइश बढ़ जाती है।

का हिस्सा बनता है।

यह जानने के लिए कि प्रत्येक मजदूर ने किसी विशेष कार्यांश पर कितना समय लगाया है, प्रत्येक मजदूर को एक कार्यांश पत्रक (जौब कार्ड) दिया जाता है, जिस पर उसके किये हुए कार्य का ब्योरा लिखा जाता है। पत्रक पर उल्लिखित कार्यांशो को विकलन यानी खर्च के खाते (डेबिट साइड) में रखा जाता है, और उस कार्यांश पर मजदूर द्वारा व्यय किये हुए समय की मजदूरी को आकलन खाते म, यानी जमा की तरफ रखा जाता है। यह बात सिर्फ 'समय मजदूरो' के बारे में लागू होती है। "अदद मजदूरो' के मामले मे प्रत्येक कार्यांश या वस्तु का श्रम या व्यय निश्चित कर दिया जाता है। समय मजदूरो की अवस्था म निकम्मेपन के समय का भी हिस्सा लगाना पडता है। प्रत्येक मजदूर को फैक्टरी के दरवाजे से अपने विभाग तक पहुँचने में कुछ समय लगता है। शाम को वह जरा पहले चलता है, ताकि गेट पर ठीक समय पर पहुँचे। अन्दर आने और बाहर जाने का समय लिखवान मे भी कुछ समय लग जाता है। मजदूर एक काम खतम करके अगला काम खतम करने में भी कुछ समय लगाता है। समय की इस तरह की हानियो को सामान्य निकम्मा समय कहते है, और इस समय की मजदूरी उत्पादन परिव्यय मे जोड दी जाती है। असामान्य निकम्मा समय और सामान का असामान्य अपव्यय परिव्यय का अश नही है, बल्कि उसे हानि और लाभ लेखे में डालना पडता है। असामान्य निकम्मा समय मशीनो के खराब हो जाने, बिजली बिगड जाने या कच्चे सामान की कमी हो जाने, आदि, से होना है।

प्रत्यक्ष व्यय—उपर्युक्त प्रत्यक्ष सामान और प्रत्यक्ष श्रम व्ययो के अतिरिक्त कुछ और भी खर्चे है, जिन्हे किसी कार्यांश या प्रक्रम का अपना खर्च बताया जा सकता है। ये व्यय प्राय निम्नलिखित होते है—(क) विशेष मशीनरी या प्लाट किराये पर लेना, (ख) कार्यांश के सिलसिले म व्यापारिक व्यय, (ग) विशेष प्रतिकृतियो और उपकरणो का परिव्यय, (घ) वास्तुविद (आर्किटैक्ट) और इजीनियर की फीस, (ङ) ड्राइग आफिस यानी आलेख कार्यालय का खर्च, अगर राशि बहुत अधिक हो, (च) किसी विशेष कार्यांश के लिए प्रयोगो का व्यय, और (छ) जहा उपयुक्त श्रेष्ठता का माल बनने से पहले नई परीक्षण करने पडते है, वहा उस त्रुटिपूर्ण काम का परिव्यय। अगर, जैसा कि प्राय होता है, पुनरावृत्ति कार्य (रैपैटीशन वर्क) की बहुत बडी मात्राऐं उत्पादित करने वाला प्रबन्ध बहुत बार रूपाकण (डिजाइन) बार-बार बदलना आवश्यक समझता है, और ऐसा करके विद्यमान तैयार हिस्सो को नष्ट कर देता है, तो इन नष्ट किये हुए हिस्सो की कीमत नई वस्तुओ के उत्पादन परिव्यय का हिस्सा होगी।

अप्रत्यक्ष व्यय—क्योकि उत्पादन जारी रहने के समय भी उत्पादन का परिव्यय सकलित करना परमावश्यक है, इसलिए अप्रत्यक्ष व्ययो का अनुमान करना आवश्यक है। वास्तविक आकडे बहुत देर में मिलते है, और वे परिव्यय का हिसाब लगाने की दृष्टि से बिल्कुल व्यर्थ है। अप्रत्यक्ष व्ययो का अनुमान हो जाने के बाद यह समस्या रहती है कि उन्ह सब कार्यांशो पर ठीक-ठीक ढग से बाट दिया जाए। स्पष्ट है कि यह वितरण तब ही हो सकता है, जब हम उस विशिष्ट अवधि में फैक्टरी के कुल उत्पादन को जानते है।

प्रथम दृष्ट्या उस अवधि के उत्पादन का हिसाब लगाना और उस उत्पादन पर कुल अप्रत्यक्ष व्ययों को बाट देना ठीक प्रतीत होता है। इस प्रकार सारे व्यय उत्पादन परिव्यय के खाते में डाल दिये जायेंगे, परन्तु जब हम ऐसे प्लांटो का हिसाब करते हैं, जो किसी कारण से (उदाहरण के लिए, मन्दी के कारण) निकम्मे रहते हैं, या अर्धन निकम्मे रहते हैं, तब यह पद्धति दोषपूर्ण सिद्ध होती है। अर्धनिकम्मे कालों से उत्पादन का परिव्यय बढ़ जायगा, क्योंकि मोटे तौर से अप्रत्यक्ष व्यय की वही राशि थोड़े उत्पादन पर वितरित हो जाएगी। सवरण स्कन्ध (क्लोजिंग स्टौक) का मूल्य (वैल्यू) बढ़ जायगा, परन्तु मन्दी के दिनों में या उसके कारण कीमत (प्राइस) में तदनुकूल वृद्धि नहीं होगी। इसके अलावा, इस आधार पर बनाये गये हिसाब में कुल हानि तो दिखाई देगी पर उसका कारण नहीं मालूम होगा। दूसरी ओर, यदि सामान्य उत्पादन का आधार अपनाया जाय, अर्थात् अप्रत्यक्ष व्ययों को यह मानकर बाट दिया जाय कि प्लांट अपनी सामान्य क्षमता के अनुरूप चलेगा, तो निकम्मेपन के दिनों में अप्रत्यक्ष व्ययों का कुछ अंश बिना वसूल हुए रह जाएगा। उदाहरण के लिए यदि अप्रत्यक्ष व्यय ५० हजार रु० हो और सामान्य उत्पादन २५ हजार वस्तुएँ हो, परन्तु वास्तविक उत्पादन केवल १० हजार वस्तुएँ हो तो, प्रत्येक वस्तु के परिव्यय में २ रुपये अप्रत्यक्ष व्यय के जोड़े जायेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि अप्रत्यक्ष व्यय के सिर्फ २० हजार रुपये (१० हजार × २) उत्पादन के जिम्मे पड़ेंगे। शेष ३० हजार रुपये निकम्मी क्षमता के कारण हानि में चले जायेंगे। इस आधार पर उत्पादन परिव्यय सिर्फ उत्पादन में परिवर्तन होने के कारण समय-समय पर बदलता नहीं है। अगर उत्पादन के परिव्यय में कोई हेर-फेर होगा तो यह फैक्टरी की क्षमता में परिवर्तन का सूचक होगा।

कारखाना या फैक्टरी व्यय या अधिव्यय—कारखाना व्यय (वर्क्स ऐक्स-पैन्सिज),फैक्टरी अधिव्यय, पूरक परिव्यय, स्थायी प्रभार, उपरि प्रभार आदि विभिन्न शब्द उन परिव्ययों के लिए प्रयुक्त होते हैं, जो उत्पादन की वृद्धि या कमी की दृष्टि से अपेक्षया 'स्थिर' होते हैं। उन्हें उत्पादन की किसी विशेष इकाई पर नहीं डाला जा सकता, क्योंकि यदि वे इकाइयां न उत्पादित की जायें, तो भी व्यय बने रहेंगे, पर जब वस्तुएँ उत्पादित की जायेंगी तब वे उत्पादन के परिव्यय का हिस्सा बन जायेंगे। उनमें कारखाने के प्रबन्ध और प्रशासन से सम्बद्ध व्यय भी शामिल हैं। कारखाने के परिव्यय या उपरि प्रभारों में जो व्यय प्रायः शामिल किये जाते हैं, वे अप्रत्यक्ष सामान और अप्रत्यक्ष श्रम हैं, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है। अन्य चीजें हैं भाप और बिजली, फैक्टरी में ताप का प्रबन्ध, रोशनी, किराया, बीमा, पानी, मरम्मत तथा पुरानी की जगह नई वस्तुएँ लाना, स्टेशनरी, कारखानों के भवनों का, प्लांट और औजारों का मूल्य ह्रास या अवक्षयण (डिप्रीसिएशन), सामान का अपव्यय, कारखाने का प्रशासन, और प्रबन्ध आदि। अगर ऐसे सुनिर्दिष्ट विभाग स्थापित हों कि सारी फैक्टरी के लिए किए गये पूरक परिव्ययों का हिस्सा विभिन्न विभागों पर डाला जा सके, तो अधिव्यय निकालने का काम आसान हो जाता है। किराया और कर, फर्श के क्षेत्र के आधार पर बाटने

चाहिए, बिजली और शक्ति मोटर संख्या के अनुसार, तेल, अवव्यय, मशीनों की संख्या के अनुसार, कैन्टीन या चाय घर का व्यय किसी विभाग के मजदूरों की कुल संख्या के अनुसार और कारखाने के मैनेजर का वेतन प्रत्येक विभाग में लगने वाले समय के अनुसार बाटना चाहिए।

महीने का हिसाब, या तो उसमें पिछले महीने के काम के आधार पर, अथवा पिछले वर्ष के उसी महीने के आधार पर, या उस समय तक हुए औसत परिव्यय के आधार पर लगाया जा सकता है। हिसाब लगाते हुए उस महीने में वर्तमान नये कारक का हिसाब भी लगा लेना चाहिए। यह भी ध्यान देने की बात है कि सारे अप्रत्यक्ष व्यय पूर्णत 'स्थिर' नहीं होते। उनमें से कुछ उत्पादन के साथ घटते-बढ़ते रहते हैं। कारखाने के मैनेजर और अधीक्षक कर्मचारियों के वेतन, किराया और कर आदि के व्यय उतने के उतने ही रहते हैं, चाहे उत्पादन उस महीने में कम हो या अधिक। परन्तु बिजली अवक्षयण, मरम्मत आदि के व्यय कुछ सीमा तक उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ चलते हैं, और इन्हें परिवर्ती व्यय कहते हैं। हिसाब, तथ्यात्मक सूचना के अलावा, सुविचारित निर्णय के आधार पर लगाने चाहिए। खर्चों को विभागों के अनुसार विभाजित करने के अलावा, इन्हें विभिन्न मशीनों के अनुसार भी बाटना चाहिए। प्रत्येक मशीन की अवक्षयण दर अलग होगी, मरम्मत का हिसाब अलग होगा, और बिजली के खर्च की दर भी अलग होगी। इन परिवर्ती व्ययों की गणना करके उसे मशीन के सारे जीवन के कार्य काल पर फैलाया जा सकता है, और हम यह जान सकते हैं, कि उस मशीन को चलाने पर प्रति घण्टा क्या परिव्यय पड़ता है। हम यह भी निकाल सकते हैं, कि किसी निश्चित अवधि, जैसे एक वर्ष, में मशीन पर स्थिर व्यय का कितना अंश पड़ता है। *इस राशि को मशीन के एक वर्ष के आगणित कार्य से भाग करके हम मशीन के प्रति* घण्टा चलाने पर पड़ने वाले 'कारखाना व्यय" (स्थिर) का पता लगा सकते हैं। दोनों घण्टा दरों (स्थिर और परिवर्ती) का जोड़ मशीन घण्टा दर है। यह हर मशीन के लिए अलग-अलग होगी। किसी कार्यांश में विभिन्न मशीनों पर लगने वाले समय का अभिलेख रखकर हम उन कार्यांश के परिव्यय में, कारखाना व्यय में उस कार्यांश का परिव्यय हिस्सा जोड़ सकते हैं—किसी कार्यांश के खाते में डाला जाने वाला कारखाना व्यय का यह हिस्सा कारखाना अधिव्यय कहलाता है।

कार्यांशों पर कारखाना अधिव्यय डालने की मशीन घण्टा दर विधि सिर्फ उस विभाग में उपयोगी होती है, जिसमें काम का मुख्यांश मशीन द्वारा होता है। जहां हस्तश्रम प्रमुख होता है वहां हम मशीन घण्टा दर या श्रम घण्टा दर के सदृश गति से इसकी गणना कर सकते हैं। यह दर प्रत्येक मजदूर के लिए उसके कौशल और शक्ति चालित औजारों या अन्य कारणों से महंगे औजारों की आवश्यकता के अनुसार भिन्न भिन्न होगी। जहां सामग्री का परिव्यय कुल परिव्यय का प्रधान अंश होता है, और जहां सिर्फ एक वस्तु का उत्पादन होता है, वहां कारखाना अधिव्यय डालने के लिए सामग्री पर कोई सरल अनुपात रख लेना ही काफी होगा।

परन्तु कारखाना व्यय के रूप में प्राप्त कुल राशि सामग्री के परिव्यय पर निर्भर होगी। यह विधि सिर्फ तब उपयोगी है, जब द्रव्यों की कीमत घटती-बढ़ती न हो। अगर कुल परिव्यय में मुख्य माँग श्रम का हो, और सिर्फ एक वस्तु बनाई जानी हो, तो सीधे श्रम परिव्यय का कुछ प्रतिशत, उत्पादन परिव्यय पर कारखाना अधिव्यय का भार डालने के लिए काफी होगा।

प्रति घण्टा उपरिव्यय दरें (मशीन घण्टा दरें या मनुष्य घण्टा दरें) वस्तुओं के निर्माण के समय उनपर आनुमानिक उपरिव्यय लगाने का एक सुविधाजनक तरीका है। किसी निर्माता विभाग के लिए प्रति घण्टा उपरिव्यय दर निकालने के लिए रीति यह है :

विभाग पर कुल उपरिव्यय

शुद्ध परिचालन काल = प्रति घण्टा उपरिव्यय दर (प्र० उ० द०)

शुद्ध परिचालन काल = म० मा० × घ० मा० — नि० स० छू०

शुद्ध परिचालन काल निकालने की रीति निम्नलिखित है —

कुल उत्पादक घण्टे (मनुष्य या मशीन)	
अवधि में कार्य के दिन	३००
प्रति दिन के काम घण्टे	८
प्रत्येक इकाई (मनुष्य या मशीन) का	
काम का कुल समय, (घ० मा०)	२४००
उत्पादन केन्द्र में इकाइयों (मनुष्य या मशीन)	
की संख्या से समय, स० मा०	२००
विभाग में कुल मशीन घण्टे या मनुष्य घण्टे	४,८०,०००
घटाया निकम्मा समय छूट, नि० स० छू०	४८,०००
शुद्ध परिचालन काल (या कुल उत्पादन समय)	४,३२,०००

अगर ४३२००० मनुष्य घण्टा या मशीन घण्टों वाले विभाग का आगणित उपरिव्यय १,५०,००० रुपये हो, तो प्रति घण्टा उपरिव्यय दर (प्र० उ० द०) १,५०,०००/४,३२,००० या ३४७२ रुपये होगी। इस संख्या का अर्थ यह है कि इस विभाग में बनाई गई वस्तु पर श्रम और सामग्री के परिव्यय के अलावा या जितनी देर वह विभाग में रही, उसके प्रत्येक घण्टे पर ३४७ रुपये उपरिव्यय पड़ा। कुल फैक्टरी परिव्यय (बिक्री और प्रशासनीय व्यय छोड़कर) यह होगा —

	रु०	आ०	पा०
कच्चा सामान परिव्यय (कल्पित)	३	०	०
श्रम परिव्यय (कल्पित)	३	■	०
उपरिव्यय			
८ घण्टे, दर ३४७२ रुपया	२	१२	२
विभाग का कुल व्यय	८	१२	२

दफ्तर व्यय साधारणतया निश्चित ही होते हैं, और वे समय-समय पर परि-

वर्तित नही होते। उत्पादन के परिव्यय पर दफ्तर व्यय का भार डालने के लिए कारखाना परिव्यय की कुछ प्रतिशतकता कर देना काफी है।

प्रशासनीय और बिक्री व्यय—नयावयिन प्रशासनीय उपरिव्यय, जो फैक्टरी उपरिव्ययों से भिन्न है, प्लाट के निर्माता विभाग के परिचालन व्यय का हिस्सा नहीं होते, पर कारबार को चलाने के लिए व आवश्यक है। उनमें पैकिंग, जहाज व्यय, शो रूम का खर्च, कमीशन, सेल्समैन का वेतन विज्ञापन और सर्वोपरि साधारण प्रबन्ध के खर्च समाविष्ट है। कमीशन बिक्री मूल्य पर निर्भर है और चीज-चीज पर अलग-अलग होता है, पैकिंग भी चीज-चीज पर अलग-अलग होती है, और पैकिंग का प्रति इकाई खर्च उसमें लगे व्यय और श्रम के खर्च का हिसाब करके निकाला जा सकता है। बचे हुए माल को जितनी दूर सफर करना पड़ता है, इसकी औसत दूरी भी निकाली जा सकती है और प्रति इकाई महसूल का पता चल सकता है। स्पष्ट है कि प्रति इकाई पैकिंग, महसूल और कमीशन का हिसाब लगाया जा सकता है, और इन्हे उन अन्य व्ययो के साथ न मिलाना चाहिए, जो उस फर्म की सब वस्तुओ पर सामान्य रूप म पड़ते हैं। इन व्ययों म विज्ञापन, बिक्री कर्मचारियों की तनख्वाह और सफर के खर्च तथा शो-रूम के खर्च शामिल है। इन सामान्य व्ययो की कुल राशि को उन्हे बेचने म होने वाले प्रयास के अनुसार, अर्थात् पुराने अनुभव के आधार,पर, बाट देना चाहिए।

परिव्यय पत्र म विक्रय और वितरण क व्यय इस प्रकार रख जा सकते हैं —

		रु०	आ०	पा०
कारखाना परिव्यय		४	८	०
विक्रय व्यय (जो हिसाब इकाइयो पर पड़ते है) कुल ३०,००० रुपये, इस उत्पाद या इकाई का ⅓, अथवा १०००० निर्मित इकाइयो मे १०००० रुपये को भाग देने पर			प्रति इकाई	
		१	०	०
			प्रति इकाई	
पैकिंग प्रति इकाई	०।४।–			
महसूल प्रति इकाई	०।२।–			
कमीशन विक्रय मूल्य का २½ प्रतिशत	०।४।–			
		०	१३	०
			प्रति इकाई	
परिव्यय		६	५	०
			प्रति इकाई	

सीमान्त परिव्ययन (Marginal Costing)—ऊपर बताया जा चुका है कि कुछ परिव्यय स्थिर और कुछ परिवर्तित होते हैं, परन्तु हमने अपनी गणनाओ म परिवर्त्ती तथा स्थिर दोनो प्रकार के व्ययों को समाविष्ट किया है। हम बता चुके हैं कि परिवर्त्ती

परिव्ययों की कुल राशि उत्पादन की वृद्धि या कमी के साथ बढ़ती और घटती रहती है, और स्थिर परिव्यय पर उत्पादन की वृद्धि या कमी का कोई प्रभाव नहीं होता, अथवा बहुत कम होता है। स्थिर परिव्यय में अप्रत्यक्ष व्यय (विक्रय, दफ्तर और कारखाना व्ययों) का वह अंश होता है, जो करना ही पड़ता है, चाहे उत्पादन हो रहा हो, या न हो रहा हो। इसके अतिरिक्त, स्थायी कर्मचारियों के वेतन, मकान, किराया, टैक्स, दफ्तर व्यय आदि आयेंगे। कुछ फर्में सिर्फ परिवर्ती व्ययों का परिव्यय पत्र बनाती हैं, अर्थात् वे परिव्यय में स्थिर व्ययों को शामिल नहीं करती। इस प्रकार व्यय-निर्धारण को सीमान्त परिव्ययन या मार्जिनल कौस्टिंग कहते हैं। इससे यह पता चलता है कि यदि एक और इकाई का उत्पादन करना हो तो कितना धन और खर्च करना होगा। इस तरह जो परिव्यय आयेगा उससे और विक्रय मूल्य के अन्तर से, पहले तो स्थिर अप्रत्यक्ष व्ययों की पूर्ति होगी और फिर फर्म कुछ लाभ उठा सकेगी। उदाहरण के लिए, यदि परिवर्ती परिव्यय ७½ रुपये प्रति इकाई और विक्रय मूल्य १० रुपये है और स्थिर व्यय २५००० रुपये हो तो फर्म को अपने सारे स्थिर व्ययों की पूर्ति के लिए १०,००० वस्तुएँ बनानी आवश्यक हैं, १०,००० × २½ रुपया = २५००० रु०)। १०००० इकाइयों के बाद बेची जाने वाली प्रत्येक इकाई पर २½ रुपया शुद्ध लाभ होगा।

यह पद्धति मंदी के दिनों में, जब मूल्य परिव्यय से नीचे रखने पड़ते हैं, उपयोगी होती है। जब तक मूल्य परिवर्ती परिव्यय से ऊपर होंगे, तब तक फर्म अपनी हानि को कम रखने में समर्थ होगी। इससे फर्म को निकम्मे समय का परिव्यय भी मालूम हो जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में अगर फर्म की सामान्य क्षमता २०,००० वस्तुएं हो तो इसे सामान्यतया २५००० रुपये शुद्ध लाभ होना चाहिए (१०००० × २½ रुपया, १०००० वस्तुएँ स्थिर अप्रत्यक्ष व्ययों की पूर्ति के लिए अपेक्षित होंगी)। अगर किसी कारण उत्पादन सिर्फ ८००० इकाई हो तो फर्म को ५००० रुपये की हानि होगी।

[२५०००—(८००० × २½ रु०)]

फर्म को ३०,०००० रुपये की हानि होनी है, अर्थात् २५००० रुपये प्रत्याशित लाभ और ५००० रुपये वास्तविक हानि का जोड़, परन्तु यह पद्धति सामान्य अवस्थाओं में उपयोगी नहीं होती, जबकि कुल परिव्यय जानना अपेक्षित होता है।

सामान्य दर (Normal Rate)—कुल परिव्यय का हिसाब लगाने में मशीन या मनुष्य घण्टा या दोनों की कुल मजदूरी लेना भी अधिक अच्छा होगा जो कि कई निर्माण अवधियों के परिचालन पर आधारित हो। उत्पादक काम की मात्रा व्यवसाय चक्र और वेचने की सफलता के परिवर्तनों के अनुसार प्रति मास और प्रति वर्ष घटती-बढ़ती रहती है। इसलिए प्रभार वितरण के लिए किसी विशेष अवधि को सामान्य या औसत अवधि नहीं माना जा सकता। शुद्ध परिचालन या उत्पादन समयों का उपयोग करके, जो कई निर्माण अवधियों में फैले हुए परिचालनों को निरूपित करते हैं, ऐसी प्रति घण्टा उपरिव्यय दरों पर पहुंचना सम्भव हो जाता है जो अच्छे और बुरे समयों में व्यवसाय के उतार और चढ़ाव में उपयोगी हों। क्योंकि ये दरें, व्यवसाय की

सामान्य सम्भावनाओं पर आधारित होती है, इसलिए इन्हें प्राय सामान्य दर कहा जाता है। उत्पादन व्ययों में परिवर्तन होने से सामान्य दरों में परिवर्तन नहीं होता। उत्पादन पर जो प्रतिघण्टा उपरिव्यय डाला जाता है, वह कई अवधियों में एक नियत अंक पर रखा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी अवधि में किसी निर्माता विभाग के लिए उत्पादक समय की सामान्य सम्भावना १०००० घंटे हो, और उपरिव्यय ५००० रुपये हो तो प्रति घण्टा उपरिव्यय दर (प्र० उ० द०) आठ आना प्रति मनुष्य घण्टा या मशीन घण्टा होगी। जब भविष्य में किसी समय विभाग बारह हजार घण्टे काम करेगा, तब तक प्रत्येक उत्पादक घण्टे पर परिव्यय अब भी आठ आना की दर से ही निर्मित वस्तुओं पर पड़ेगा। इसी प्रकार, यदि किसी समय उत्पादक काल आठ घण्टे रह जाये तब भी प्रति घण्टा ऊपरी व्यय की दर वही, अर्थात् आठ आना लगाई जाएगी। यह बात नीचे के चित्र में प्रदर्शित की गई है।

	वास्तविक मशीन घंटे १	वास्तविक[1] उपरिव्यय २	सामान्य प्रति घंटा उपरिव्यय दर ३	सामान्य उपव्यय लागत (१×३) ४	शेष ५
१	१०,०००	५,००० रुपया	८ आना	५००० रुपया,	सामान्य
२	१२,०००	५,५०० रुपया	८ आना	६,००० रुपया	+ रुपया ५००
३	८,०००	४,२०० रुपया	८ आना	४,००० रुपया	— रुपया २००

इस चित्र में परिचालन काल जिन अवधियों में सामान्य से ऊपर था, उनमें बनाई गई और बेची गई वस्तुएँ उपरिव्यय लेखे में धनात्मक शेष (Positive Balance) प्रस्तुत करती हैं, और यह शेष उत्पादन के घण्टे कम हो जाने पर बचने वाले ऋणात्मक शेष से काफी अधिक है। सामान्य दरों के ये लाभ हैं —(१) इससे, जहां तक उपरिव्यय का सम्बन्ध है, निर्माण के परिव्यय में एकरूपता आ जाती है, (२) इससे उपरिव्यय के बार-बार वितरण की आवश्यकता नहीं रहती। उपरिव्यय स्वभावतः निर्माण कार्य के समाप्त हो जाने के बाद निकाले जा सकते हैं, और वे मूल्य-निर्धारण में सहायक नहीं होते। (३) इससे वर्ष-वर्ष में उपरिव्यय में बहुत अधिक विभेद के कारण होने वाली कीमतों की घट-बढ़ कम हो जाती है।

परिव्यय लेखांकन बनाम साधारण लेखांकन—परिव्यय लेखांकन और बही लेखन, तथा लेखांकन (जिसे कभी-कभी स्वामित्व लेखांकन कहते हैं) दो पृथक् कार्य हैं। लेखांकन बैलेन्स शीट या स्थिति विवरण द्वारा सम्पत्ति और इस पर स्वामियों के स्वत्व को प्रगट करता है। व्यापार, लाभ और हानि तथा आगम लेखे, संक्षिप्त रूप में एक कालावधि की प्राप्तियों और व्ययों, लाभ और हानि तथा लाभ की प्रवृत्ति को प्रगट करते हैं।

[1] वास्तविक खर्चे पर आधारित। देखो नोल्स और टामसन, पृष्ठ ७१०।

इसमें अन्य पक्षों के समक्ष होने वाले वित्तीय सम्बन्धों के अभिलेख रहते हैं। इनसे भीतरी और बाहरी धोखे पर निगाह रहती है, और यह अन्य प्रमाणों के अलावा एक और प्रमाण है, जिससे सिद्ध होता है कि सम्पत्ति पर स्वामित्व किसका है। इनसे पूंजी निधि की चालू और स्थिर आस्तियों के विविध रूपों के बीच आनुपातिक वितरण पैदा होता है और यह बार-बार की सुस्थिति या असुस्थिति की दृष्टि से उसकी अवस्था ज्ञात कराता है। दूसरी ओर, परिव्यय लेखाकन का लक्ष्य यह है कि किसी वस्तु या सेवा की एक इकाई के उत्पादन से सम्बन्धित उद्व्यय की छोटी बड़ी सब मदों का इकट्ठा कर दिया जाये। यह व्ययों की घटबढ़ के कारणों का प्रकट करता है, और लाभ के असली क्षेत्र का निर्देश कराता है। यह संगठन की दुर्बलताओं का पकड़कर प्रशासनीय और उत्पादक व्ययों की दक्षता का ज्ञान कराता है, और इस प्रकार उत्पादकों को परिचालन दक्षता की दिशा में प्रेरित करता है। लेखाकन सिर्फ शुरू के अंकों को लेता है, विकलन और आकलन (डेबिट और क्रेडिट) के रूप में अपने न्यास (डैटा) का सन्तुलन करता है, और इसका आदर्श रूप वह है जिसमें एक एक पाई तक सन्तुलन रहता है। इसके विपरीत, परिव्यय लेखाकन तख़मीनों और आंकलनों का अच्छी तरह उपयोग करता है, और जितना यह सग्रह करता है, उसे कभी कम और कभी अधिक वितरित करता रहता है। स्वामित्व लेखाकन बहुत पुराने समय से चला आता है जबकि परिव्यय लेखाकन हाल में ही शुरू हुआ है। यह एक तो वित्तदाता का विशेष उपकरण है और दूसरे उत्पादन इजीनियर या कारखाना मैनेजर के रोजमर्रा के काम का साधन है। लक्ष्य और रीतियों के इन अन्तरों के बावजूद, इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है, और दक्षता का लक्ष्य रखकर चलने वाले प्रत्येक संगठन में उनम पूर्ण समन्वय होना चाहिए। इस प्रकार समन्वित होने पर वे एक दूसरे के सहायक होते हैं। परिव्यय पद्धति से स्वामित्व लेखे की कुछ वस्तुओं का अधिक गहरा अध्ययन हो जाता है और स्वामित्व लेखे विस्तृत सर्वेक्षण का कार्य करते हैं, जिनसे यह निश्चित हो जाता है कि सब उचित खर्च परिव्यय में शामिल कर लिये गये।

अध्याय :: २२

बजट और बजटीय नियन्त्रण

बजट (आयव्ययक) द्वारा वित्तीय नियन्त्रण का उपयोग सरकारी प्रबन्ध के क्षेत्र में तो बहुत समय से हो रहा है, परन्तु व्यवसाय प्रशासन में एक साधन के रूप में इस विचार का उपयोग अभी हाल में शुरू हुआ है। वैसे, आयव्ययक और अभिलेख प्राय प्रत्येक व्यवसाय सगठन मे रखे जाते हैं। अभिलेखो से भूतकाल के कार्य का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। आय-व्ययक द्वारा भविष्य के कार्यों की योजना बनाई जाती है। अच्छे प्रबन्ध के लिए पिछले कार्य और व्यावसायिक निर्णयशक्ति पर आधारित व्यवस्थित योजना-निर्माण मे बढकर महत्वपूर्ण और कोई चीज नही है।

व्यवसाय का आय-व्ययक—प्रबन्ध की माप करने मे सबसे अधिक काम मे आने वाला पैमाना लाभ है। अधिक लाभ का अर्थ है अधिक अच्छा प्रबन्ध। सारी कम्पनी में तथा प्रत्येक विभाग में लाभ का निर्धारण करने और प्रबन्ध की पटुता नापने का एक उत्तम तरीका बजट द्वारा है। यह ध्यान रखना चाहिए कि व्यवसायिक बजट एक-एक वित्तीय उपकरण से कुछ अधिक है, क्योकि यह उत्पादन की मात्राओ और परिचालनो से भी सम्बन्ध रखता है। तथा इसलिए जिस अवधि के लिए यह बनाया जाता है, उसके व्यावसायिक कार्यकलाप का एक पूरा कार्यक्रम होता है। एक वाक्य में कहे तो आय-व्ययक बनाने का अर्थ है किसी व्यवसाय के कार्य सचालन की योजना बनाना, जैसा कि प्रोफेसर सैंटर्स ने लिखा है "बजट का सारांश यह है कि किसी निश्चित अवधि के लिए परिचालनो की विस्तृत योजना बनाई जाय, और उसके बाद अभिलेखो की व्यवस्था की जाय, जिससे योजना पर अकुश रखा जाय।"[1]

यह बात व्यवसाय के सर्वोपरि आयोजन और प्रत्येक विभाग मे परिचालनो के विस्तृत आयोजन पर भी लागू होती है।

आय-व्ययक का आयोजन अगली आय-व्ययक अवधि, मान लीजिए कि बारह मास, मे व्यवसाय द्वारा प्राप्त किया जाने वाला एक उद्देश्य निश्चित करने से होता है। यह उद्देश्य कोई लाभ की मात्रा या कोई बिक्री की मात्रा या कोई निश्चित उत्पादन हो सकता है। अगला काम यह है, जिसे प्रबन्धाधिकारी कर सकते हैं, कि मुख्य लक्ष्य को कुछ हिस्सो मे बाट लिया जाए, और कार्यक्रम को प्रत्येक माग के लिए कई हिस्सो में विभाजित कर

1 Cost Accounting for Control, p. 430

लिया जाए, और प्रत्येक विभाग को कार्यक्रम में उनका हिस्सा सौंप दिया जाए। अगला कार्य यह है, कि वे साधन जुटाये जायें, जिनसे उस उद्देश्य की सिद्धि हो सके, और और परिणामों को नाप लिया जाए। तुलना के प्रयोजन के लिए इनका अभिलेख रखा जाता है।

आय-व्यय तैयार करना उचित नियन्त्रण के लिए। हले में योजना बनाने का प्रगाढ़ प्रक्रम (Intensive process) है। पिछले अनुभव से यह जाना जाता है, कि वृद्धि की सामान्य दर क्या रहती है और भविष्य का अध्ययन साधारण और विशेष व्यावसायिक अनुसूचकों द्वारा किया जाता है। किसी निश्चित भविष्य को लक्ष्य में रखकर काम करने का परिणाम यह होता है कि स्टौक या संगृहीत वस्तुओं का नियन्त्रण अधिक अच्छा हो सकता है, क्योंकि आवश्यकताओं का पहले पता चल जाता है और कम कीमत के समय वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं। वित्तपोषण भी अधिक आसान हो जाता है, क्योंकि उधार लेन के लिए परिपालन की अवधि का अधिक अच्छी तरह ज्ञान हो जाता है। समय-समय पर होने वाली विभिन्नताओं के अध्ययन से उत्पादन को नियमित करना सम्भव हो जाता है, क्योंकि जब चालू आवश्यकताएं कम हों, तब उत्पादन संग्रह के लिए कर लिया जाता है। मशीनरी को एक-समान चलाने में बहुत से परिव्यय कम हो जाते हैं। बेकारी घट जाती है, मजदूर काम छोड़कर नहीं भागते और अच्छी किस्म के कर्मचारी काम के लिए मिलते हैं, तथा ग्राहकों को माल अधिक तत्परता से मिलना सुनिश्चित हो जाता है। बजट को उनके अवयवों में विभाजित करने के साथ-साथ यह विश्लेषण प्रस्थापित योजना के पूरा करने की समस्या को भी छोटे-छोटे हिस्सों में विभाजित कर देता है, क्योंकि कार्यक्रम थोड़ी-थोड़ी अवधियों की एक शृंखला में विभाजित हो जाता है। इसलिए प्रयास भी छोटे-छोटे हिस्सों में बांटा जाता है और इस प्रकार एक तात्कालिक और निश्चित लक्ष्य निगाह में रहता है। प्रत्येक अफसर सन्तोष के साथ यह अनुभव करता है कि मैं अपने काम की प्रगति को ठीक-ठीक जानता हूँ और शेष काम से भी परिचित हूँ। इस प्रकार आयव्ययक के ढांचे और क्षेत्र के भीतर अधिक अधिकार अधिकारियों को दिये जा सकते हैं, और स्वयंकर्तृत्व तथा स्वनिर्णय के उपयोग की अधिक स्वाधीनता रहती है।

आयव्ययकों का वर्गीकरण—अधिकतर व्यावसायिक संगठन इतने बड़े होते हैं, कि उनमें सारे व्यवसाय का एक आयव्ययक में विस्तृत आयोजन नहीं हो सकता। यह आवश्यक हो जाता है कि एक सर्वांगीण आयव्ययक बनाया जाए, जिसमें सब योजनाएं *संक्षेप में सन्निविष्ट हों, और जिनसे यह प्रकट हो कि वे योजनाएं सारे व्यवसाय को* किस तरह प्रभावित करती हैं, और ब्योरे की बातें अनेक विशिष्ट आयव्ययकों में डाल दी जाएं। दूसरे शब्दों में, सारे व्यवसाय का आयव्ययक उन तखमीनों को मिलाकर बन जाता है, जो कि भिन्न-भिन्न विभागों द्वारा बनाये जाते हैं। वस्तुतः यह व्यवसाय के प्रत्येक मुख्य विभाग के आय व्ययकों का कुल योग होता है, और प्रायः इसके साथ वे सहायक आयव्ययक भी रहते हैं। आयव्ययकों का मुख्य वर्गीकरण निम्न है—

(१) बिक्री आयव्ययक
(२) उत्पादन आयव्ययक
(३) वित्तीय आयव्ययक
(४) निर्माण क्षमता आयव्ययक, जो निम्नलिखित आयव्ययकों से बना होता है —
(क) भौतिक सम्पत्ति आयव्ययक
(ख) कच्चा माल आयव्ययक
(ग) प्रदाय (Supply) आयव्ययक
(घ) श्रम आयव्ययक
(ङ) गवेषणा आयव्ययक

विभागीय आयव्ययकों में, जो उपर्युक्त मुख्य आयव्ययकों के अधीन होते हैं, कई विभिन्न आयव्ययकों के कुछ हिस्से मिले होते हैं, उदाहरण के लिए, उत्पादन विभागीय आयव्ययक में प्रायः श्रम, कच्चा सामान, प्रदाय और गवेषणा सम्मिलित होंगे। प्रत्येक मुख्य आयव्ययक पर नीचे विचार किया जाता है।

बिक्री आयव्ययक—उत्पादन की किसी भी योजना को शुरू करते हुए, पहले यह हिसाब लगाना आवश्यक है कि बाजार में कितनी माग होगी। इस बात पर और सब बात निर्भर है, अर्थात् यह कि मशीन का आकार क्या हो, कितने श्रम की आवश्यकता होगी और सामान का कितना संग्रह होना चाहिए। दूसरी बात यह कि नकद प्राप्ति का प्राथमिक स्रोत बिक्री ही है, इसलिए बिक्री का यह तखमीना वित्तीय योजना-निर्माण की आधारशिला है। पर यह तभी प्रभावी हो सकता है, जब बिक्री का तखमीना कुछ बुनियादी शर्तों को पूरा करे। यह ऐसा होना चाहिए कि फैक्टरियों के विभागों में श्रम खर्च से और संतुलित उत्पादन होता रहे, इसमें इतनी काफी बिक्री होती रहनी चाहिए, कि व्यवसाय की न्यूनतम वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति हो सके, यह ऐसी होनी चाहिए कि उपभोक्ताओं और वितरकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा मिल सके। बिक्री का हिसाब लगाने में दो प्रकार के लोगों से राय लेनी होगी। एक तो सेल्समैनों से, जो वस्तुएं बेचने का काम करते हैं, और दूसरे बिक्री-प्रबन्धकों तथा अन्य प्रमुख अधिकारियों से, जिन पर व्यवसाय की विपणन (Marketing) नीति बनाने और उसे कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी होती है। तखमीना को अन्तरिम रूप देने में पिछले परिणामों की प्रवृत्ति का, जो अभिलेखों से पता चलती है, विश्लेषण करके भविष्य की सम्भावनाओं का निर्माण उसके ही आधार पर करना चाहिए। इसके लिए बाजार गवेषणा (Market Research) का पूरा कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता होगी।[1]

उत्पादन आयव्ययक—बिक्री तखमीने से यह पता चल जाएगा कि समय-समय पर विभिन्न उत्पादों की कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी। उत्पादन आयव्ययक का प्रयोजन यह है कि बिक्री विभाग की माग पूरी करने के लिए निर्मित माल

१ इस पर अध्याय २७ में पूरी तरह विचार किया गया है।

बना सकता है। कच्चे सामान का आय-व्यय वह साधन है, जिससे क्रय विभाग ऐसी योजनाएँ बना सकता है कि सामान उस समय तक प्राप्त हो सके, जिस समय उत्पादन के लिए उसकी आवश्यकता हो। बड़े पैमाने के उत्पादन और सतत क्रम उद्योगों में कच्चे माल के संग्रह की योजना पहले से बनाना आसान है। कच्चे सामान सम्बन्धी समस्या पर अगले अध्याय में विचार किया जायगा।

प्रदाय (Supply) आय-व्ययक—प्रदायों की आवश्यकता निर्माण को जारी रखने के लिए होती है, परन्तु वे निर्मित वस्तु का हिस्सा नहीं बनते। प्रदाय फैक्टरी में निर्माण कार्यों में खर्च होते हैं, और नये प्रदाय लगातार मिलते रहने चाहिए। इसका एक सामान्य उदाहरण तेल है, जो मशीनों का स्नेहन करने के लिए आवश्यक होता है। प्रदाय आयव्ययक नियमित प्रदाय के लिए आवश्यक व्यवस्था करता है।

श्रम आय व्ययक—श्रम बजट निर्माता के पास अपने व्यवसाय के लिए मजदूरों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए। लोग आवश्यकता के समय सुलभ होने चाहिए। इन मनुष्यों में कार्यपूर्ति के लिए आवश्यक कौशल होना चाहिए और उनकी सेवाओं का दाम चुकाने की व्यवस्था होनी चाहिए। सामूहिक रूप से उन्हें फोरमैन तथा एक दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिए। श्रम बजट में इस कारण कुछ जटिलता होती है कि आदमियों को उनके लिए तत्काल काम न होने पर बरखास्त कर देना हमेशा अच्छी नीति नहीं, और इसलिए भी कि उनके होने मात्र के कारण प्रबन्धकों, उनके नहाने धोने की जगह, तथा कैन्टीन आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। जहाँ मजदूरों को, किये जाने वाले काम को बिना सोचे, नौकर रखे रहना पड़ता है, वहाँ उत्पादक और निकम्मे समय का श्रम आयव्ययक अनावर नियन्त्रण के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है। आय-व्ययकों से श्रम के उत्पादक और निकम्मे समय के आपेक्षिक परिव्ययों की तुलना करना आसान हो जाता है।

गवेषणा आय-व्ययक—उत्पादन के उपकरणों और निर्माण क्रमों को अद्यतनीन रखने के लिए आवश्यक है कि आय का कुछ हिस्सा गवेषणा में खर्च किया जाए। गवेषणा और उन्नति पर होने वाला व्यय एक प्रकार का बीमा है। इस व्यय का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह नहीं है कि कितनी राशि व्यय की जाती है, बल्कि यह है कि उस राशि का क्या उपयोग किया जाता है। एक ही समय में बहुत सी योजनाएँ हाथ में न लेनी चाहिएँ।

आय-व्ययक समन्वय—आय-व्ययक निर्माण एक सहकारी कार्य है, जिसमें विभिन्न भागों के बीच उचित संतुलन रखना पड़ता है। बहुत से असमन्वित विभागीय आय-व्ययकों से, जो विभिन्न धारणाओं पर आधारित हैं, कोई लाभ नहीं है। जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, किसी एक भाग का आकार या उसकी कार्यपूर्ति सफलता या विफलता की जरा भी सूचक नहीं। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यवसाय के पास बहुत सारे आर्डर आते हों, पर उन्हें पूरा करने के लिए उनके पास वस्तुएँ न हों तो वे सफल नहीं कहलायेंगे। इसी प्रकार, श्रम सम्भरण और सामान सम्भरण में आवश्यक संतुलन रहना चाहिए। दोनों चीजें एक ही समय में उचित अनुपात में रहनी चाहिए। इसलिए आय-

व्यय निर्माण में एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि कारबार के विभिन्न विभागों में उचित सम्बन्ध बना रहे। यह सम्भव नहीं है कि कारबार के एक हिस्से के लिए आय-व्यय बना लिया जाय, और शेष के लिए न बनाया जाए। उदाहरण के लिए, उत्पादन विभाग के कार्यों का आय-व्यय बनाये बिना बिक्री आय-व्यय नहीं बनाया जा सकता। धन-संग्रह और क्रय के विभागों की योजना जाने बिना रोकड़ बजट नहीं बनाया जा सकता। इन सब में समन्वय होना चाहिए, जिसके लिए एक विशेष आय-व्यय अधिकारी रखा जा सकता है, जो सीधे उच्च अधिकारियों को रिपोर्ट दे। यदि ऐसा न किया गया तो विभागाध्यक्ष आय-व्यय के महत्व को नहीं समझेंगे और इस काम में उतना समय और ध्यान नहीं देंगे, जितना इसके लिए देना चाहिए। बड़े कारबार में एक आय-व्यय समिति बना देनी चाहिए और इसके सदस्य मुख्य प्रबन्धाधिकारी, जैसे बिक्री उत्पादन, लेखाकन, गवेषणा और वित्त आदि के प्रतिनिधि होंगे। इस प्रकार के गोलमेज सम्मेलन में प्रत्येक प्रबन्ध अधिकारी को, जो अपने विभाग का तखमीना प्रस्तुत करता है, आलोचना का सामना करना होगा, और तर्कसंगत युक्ति द्वारा अपने अंकों को उचित सिद्ध करना होगा। सच्य तो यह है कि आय-व्यय निर्माण कारबार की अनेक शाखाओं की योजनाओं को समन्वित करता है, जैसे खरीद और बिक्री, निर्माण और बिक्री, विकास और पूंजी आवश्यकता, और यह समन्वय वह व्यवसाय के मार्ग को निर्देशित या कार्य प्रभावित करने वाले अनेक व्यक्तियों के परामर्श द्वारा करता है। इसके अलावा, यह परामर्श सिर्फ अपने विवेक या धारणाओं के आधार पर नहीं होता, बल्कि विश्लेषण द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर बनाए गए ठोस और स्पष्ट इरादों के आधार पर होता है। आय-व्ययकों का साधारण सम्बन्ध निम्नलिखित रेखा-चित्र से प्रकट होता है।



यह चित्र सरल रेखाओं के बजाय वृत्त के रूप में बनाया गया है, क्योंकि किसी एक बिन्दु से शुरू करना और इस तरह योजनाएं बनाना कि उनमें दूसरे बिन्दुओं पर बनाई गई योजना एक घटक न हो, असम्भव है—प्रत्येक विभागीय आय-व्ययक दूसरों को प्रभावित करेगा भी और उनसे प्रभावित होगा भी, इसलिए आवश्यक है कि चित्र में दिखाया गया प्रत्येक आय-व्ययक अपने दानों ओर के हिस्सों के बीच में सन्तुलन कायम रखने का लक्ष्य रखे। उदाहरण के लिए, उत्पादन आयव्ययक को बिक्री के आर्डरों और निर्मित वस्तुओं में सन्तुलन कायम रखना चाहिए। यदि मुख्य आय-व्ययकों में से कोई भी अपना सन्तुलन कायम न रख सके, तो व्यवसाय को उसी प्रकार खतरा रहता है जिस प्रकार उस आदमी को, जिसके शरीर के एक अंग, यथा आमाशय अथवा फेफड़े को उसकी आवश्यकता से कम या अधिक वस्तु मिले। आय-व्ययक के मुख्य वर्गीकरण, जिन चीजों को उन्हें नियन्त्रित करना चाहिए व, और जिन चीजों को उन्हें सन्तुलित करना चाहिए वे नीचे स्पष्ट की गई हैं। ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक आय-व्ययक अपने से ऊपर वाले आय-व्ययक द्वारा नियन्त्रित वस्तु और अपने से नीचे वाले आय व्ययक द्वारा नियन्त्रित वस्तु के बीच एक सतुलन होना चाहिए।[1]

वित्तीय आय-व्ययक रोकड़ का नियन्त्रित करता है और आय तथा व्यय का सन्तुलित करता है।

व्यय आय-व्ययक व्यय का नियन्त्रित करता है और रोकड़ तथा निर्माण-क्षमता को सतुलित करता है।

निर्माण क्षमता आय व्ययक निर्माण सामर्थ्य—श्रम, कच्चा सामान, प्रदाय, भौतिक सम्पत्ति—का नियन्त्रित करता है और व्यादत्त तथा उत्पादन का सन्तुलित करता है।

उत्पादन आय-व्ययक तैयार माल के संग्रह का नियन्त्रित करता है, और निर्माण तथा बिक्री का सन्तुलित करता है।

बिक्री आयव्ययक आय का नियन्त्रित करता है और तय्यार माल तथा रोकड़ का सन्तुलित करता है।

आय व्ययकों को लागू करना—आय-व्ययकीय नियन्त्रण का जारी करना प्राय एक दीर्घकालीन कार्य है। आय-व्ययक बनाने में सम्बन्धित अनेक समस्याओं के अलावा लेखाकर्म में अनुकूलन और रूपभेद करने पड़ते हैं। श्री मैडर ने इस दिशा में निम्न क्रम सुझाया है—

(१) आय-व्ययकों का सगठन के स्थापित चार्ट में तथा चली आती हुई नीतियों से सम्बद्ध करना।

(२) उसी के अनुसार व्यय उत्तरदायित्व लेखा वर्गीकरण करना।

(३) कार्यपूर्ति उत्तरदायित्व का समय क्रम निश्चित करना।

---

[1] नाल्म और टामसन में अनुकूलित, पुस्तक उपर्युक्त, पृष्ठ १६–१७

(४) आय-व्ययक कार्यक्रम तैयार करना ।

(५) आय-व्ययक सम्बन्धी तुलनाओं के लिए आवश्यक लेखा प्रस्तुति का रूप निर्धारित करना ।

और बहुत से मामलों की तरह क्रमिक कार्य सदा श्रेष्ठ है। आय-व्ययक नियंत्रण के सफल सचालन के लिए पुनः विभाग को कुछ समय तक आवश्यकता है। व्यय और कार्यपूर्ति के नियन्त्रण पर पहली प्रतिक्रिया उत्साहवर्धक होने की सम्भावना नहीं। आय-व्ययक नियन्त्रण धीरे-धीरे जारी करने के लिए व्यय का और आय का "ब्लॉक" करना पड़ेगा। अधिक अच्छा यह है कि धीरे धीरे आगे बढ़ा जाय, और नियन्त्रण सम्बन्धी बहुत भारी जानकारी एक ही समय में लागू करने का यत्न न किया जाय। कोई ऐसे निश्चित नियम नहीं है, जो सब कम्पनियों पर लागू किये जाय। परन्तु आय-व्ययकों को लचीला रखते हुए कुछ नियमन बना लेना चाहिए। आय-व्ययक इतने सख्त न हो कि आय-व्ययकों की अवधि में कोई सनजन न किया जा सके। आवश्यक की अवधि के आरम्भ में उस अवधि के लिए आय-व्ययक बनाये जाते हैं, और उस अवधि के समाप्त होने पर वास्तविक कार्यपूर्ति से उसकी तुलना की जाती है, और नये आय-व्ययक बनाये जाते हैं, तथा यह चक्र चलता रहता है। यद्यपि आय-व्ययकों में निकट सम्बन्ध होता है पर तो भी अच्छा यह है कि एक समय में एक आय-व्ययक बनाया जाए और इसलिए यह आवश्यक है कि किसी जगह रुककर एक आय-व्ययक, बिना यह जाने कि दूसरे आय-व्ययकों में क्या होगा, आरम्भ किया जाय। बाद में जब और आय-व्ययक भी पूरे हो जायगे तब सम्भव है कि पहले आय-व्ययक में कुछ संशोधन करना पड़े। प्रायः उत्तम रीति यह है कि विक्रय आय-व्यय का प्रारम्भिक तखमीना किया जाय और बिक्री की इस अनुमानित मात्रा के चारों ओर शेष संगठन की योजना बनाई जाय।

समाप्त करने से पहले यह कह देना उचित होगा कि आय-व्ययक स्पष्ट चिन्तन में सहायक होना चाहिए, न कि कठोर नियंत्रण का साधन। यह व्यवसाय प्रबन्ध में सहज ज्ञान (Intuition) के स्थान पर यथार्थ मानों को लाने का प्रयत्न है। इससे प्रबन्ध की आवश्यकता कम नहीं हो जाती। आय-व्ययक निर्माण एक प्रकार की भविष्यवाणी है और क्योंकि कोई भी पूर्ण परिशुद्धता के साथ भविष्य की बात नहीं जान सकता, इसलिए इसमें कुछ न कुछ अनिश्चित आश्चर्य की बात होनी अनिवार्य है। प्रायः बहुत अधिक बारीकियों में जाना और आय-व्ययकों का बहुत सख्ती से अनुसरण करना उचित नहीं होता और आय-व्यय के निर्माण को अच्छे प्रबन्ध और नियंत्रण का एक साधन बनाना चाहिए।

अध्याय :: २३

क्रयण और संग्रहण

क्रयण और संग्रहण (Purchasing and Storekeeping) क्रयण या खरीदना रोजाना का काम है, और इसमें व्यवसाय कोठियों का तथा अन्तिम उपभोक्ता का बहुत-सा समय लग जाता है। अन्तिम उपभोक्ता, जैसी कि कहावत भी है, कोई विशेषज्ञ खरीदार नहीं होता, परन्तु व्यावसायिक क्रेताओं में भी, यद्यपि वे कुशल और अनुभवी होते हैं, गलतियाँ होती रहती हैं। त्रुटिपूर्ण खरीद से कच्चे सामान, स्टोर, सामग्री और तैयार वस्तु का परिव्यय ऊँचा हो जाता है। बहुत बार यह अनुभव नहीं किया जाता कि कुल परिव्यय में सबसे बड़ा अकेला हिस्सा प्रायः इन्हीं का होता है, और यह हिस्सा कुल विक्रय मान का औसतन ३० से ५० प्रतिशत होता है। इसलिए स्पष्ट यह महत्वपूर्ण है कि खरीदने का काम ऐसे ठीक तरीके से हो, जैसे संगठन का कोई और कार्य।

क्रेताओं के चार प्रकार हैं—

(१) औद्योगिक क्रेता, जो कच्चा सामान, स्टोर और निर्माताओं के लिए आवश्यक सामग्री खरीदते हैं,

(२) थोक बिक्री के लिए खरीदने वाले,

(३) खुदरा बिक्री के लिए खरीदने वाले,

(४) खुदरा दुकानों से खरीदने वाले अन्तिम उपभोक्ता।

डाक्टर वाल्टर ने औद्योगिक क्रयण की परिभाषा यह की है कि किसी वस्तु के निर्माण में काम आने वाले उचित सामान, मशीनरी, उपस्कर और प्रदाय या स्टोर को खरीदकर प्राप्त करना—यह खरीद उचित समय पर उचित मात्रा में और उचित-श्रेष्ठता को ध्यान में रखकर अभीष्ट श्रेष्ठता के लिए आवश्यक न्यूनतम मूल्य पर की जाती है। आधुनिक क्रयण तथ्यों के आधार पर यथार्थ खरीद है। वास्तव में यह भी विशेष निपुणता का कार्य है, जिसके लिए प्राविधिक प्रशिक्षण और दृष्टिकोण की अपेक्षा वाणिज्यिक दृष्टिकोण की अधिक आवश्यकता है।

वैज्ञानिक क्रयण के उद्देश्य इस प्रकार बताये जा सकते हैं—

(१) निश्चित श्रेष्ठता के सामान की निश्चित मात्रा "सर्वोत्तम" मूल्य पर (आवश्यक नहीं कि यह न्यूनतम मूल्य हो) प्राप्त करना।

(२) उत्पादन के लिए, और जिन प्रयोजनों के लिए उनकी आवश्यकता है उनके लिए सर्वोत्तम सामान प्राप्त करना।

(३) समय की उपयोगिता का ध्यान रखते हुए उत्पादन विभाग की माँग से काफी पहले खरीद लेना, जिससे कच्चे सामान की कमी के कारण काम में विलम्ब न हो।

(४) न तो इतनी मात्रा खरीदना कि माल बहुत अधिक हो जावे, और पूँजी रुकी पड़ी रहे और न इतनी कम कि उत्पादन के लिए नियमित सम्भरण न हो सके।

(५) पर्याप्त कच्चे सामान के चुनाव द्वारा श्रेष्ठता और वितरण की दृष्टि से निर्मित वस्तु का सुधार।

क्रयण विभाग का बुनियादी काम खरीदना है, जिसका अर्थ यह है कि खुले बाजार में जाना, यह देखना कि मानक वस्तु किस न्यूनतम मूल्य पर मिल रही है, और ऐसे सम्भरणकर्ता को छाँटना जो उस मूल्य पर सामान दे सकता हो। यह काम सामान्य मान्यता के क्लर्क आदि का है। वैज्ञानिक या प्रभावी क्रयण सिर्फ खरीद से कुछ अधिक है। यह प्रबन्धकों का कार्य है, जिसमें उत्पादन, वितरण आदि अन्य कार्य करने वालों का सहयोग होना आवश्यक है। इसलिए क्रेता सिर्फ खरीदने की दृष्टि से नहीं सोचता। कुछ समय तो वह ऐसे सोचता है, जैसे उत्पादन कर रहा है, और अधिकतर समय वह ऐसे सोचता है कि वह बिक्री विभाग का प्रबन्धक हो। अपने विविध प्रकार के चिन्तन में वह ऐसी रीतियाँ सोचता है, जिनसे क्रयण व्यवसाय के प्रत्येक अंग के लिए अधिक से अधिक सहायक हो। प्रभावी क्रयण के लिए निम्न कार्य करने चाहिए—(१) जितने सामान की आवश्यकता हो, उसके स्वरूप और मात्रा का यथार्थ निश्चय करना, जो यथार्थ विवरणों (Specifications) पर आश्रित हो तो अधिक अच्छा है।

(२) बाजार और भरोसे योग्य सम्भरण स्रोतों को छाँटना और उन्नत करना, इन स्रोतों से बातचीत करना, प्रस्तावों का विश्लेषण करना, बेचने वाले का चुनाव, और यथार्थ आदेश देना।

(३) आदेश के बाद उसका अनुवर्तन करना, मार्ग-निश्चय करना (रूटिंग), वस्तुओं को प्राप्त करना, बीजकों की जाँच करना, और वस्तुओं का निरीक्षण करना।

(४) वस्तुओं को नष्ट होने से बचाने के लिए संग्रह करना और जब उनकी आवश्यकता हो, तब उन्हें आसानी से सुलभ बनाना।

(५) संग्रह वस्तुओं के लिए नियन्त्रण की पद्धति, और संग्रह वस्तु (स्टॉक) लेखांकन पद्धति, जिसमें परिव्यय लेखांकन और मूल्य निर्धारण के लिए, निर्मित वस्तु की प्रत्येक इकाई पर कच्चे सामान के परिव्यय का ठीक-ठीक भार डाला जा सके।

(६) उत्पादन केन्द्रों से और उत्पादन केन्द्रों तक टेली कन्वेयर से कच्चे सामान के आने-जाने को विनियमित करने के लिए आन्तरिक यातायात व्यवस्था।

(७) जहाज पर चढ़ाना, पैकिंग और क्रेटिंग, ढुलाई (कार्टिंग) तथा ग्राहकों को माल भेजना।

(८) उपर्युक्त सब कार्यों को पूरी तरह लिखित नियन्त्रण में रखना, जिसमें

ऊपर के अफसर सहूलियत से जाच-पडताल कर सकें।

श्रेष्ठता या किस्म (Quality) का निर्धारण—बहुत हद तक निर्माता जो वस्तु बनाते है, उसी के आधार पर अपनी खरीदी हुई वस्तुओं की किस्म निर्धारित करते हैं। किस्म म वस्तु के द्रव्य, कारीगरी, श्रेणी (ग्रेड), आकार, रूपाकृति, रग और नमूने आदि पर विचार किया जाता है। यद्यपि बहुत कलापूर्ण वस्तुएँ मुख्यत उत्पादक दस्तकार के कौशल पर निर्भर होता है, तो भी कच्चे सामान पर न्यूनतम श्रेष्ठता अवश्य निश्चित कर लेनी चाहिए। इस दिशा म पहला कदम यह है कि अभीष्ट वस्तु के स्वरूप और मात्रा का ठीक-ठीक विवरण तैयार किया जाय, जो उत्पादन नियन्त्रण विभाग म किया जा सकता है। सामान और निर्मित वस्तु की श्रेष्ठता निर्धारित करने के लिए सामान का यथार्थ और सही विवरण बनाना चाहिए।

यह आवश्यक है कि जो सामान निर्मिति के विक्रय की दृष्टि से निर्मिति वस्तु के लिए सबसे अच्छा हो, वह शुरू म ही प्राप्त कर लिया जाय। कच्चे सामान की श्रेष्ठता का दृढता से नियन्त्रण करने से, कच्चे सामान के अपव्यय, श्रम और उपरिव्यय म कमी हो जाती है। बिगडे हुए काम के कारण एक समान और तीव्र गति से निर्माण कार्य होने मे सुविधा हो जाती है। बिक्री प्रतिरोध और बिक्री परिव्यय कम हो जाते हैं। क्रयण का दक्ष प्रश्न न्यूनतम बाजार मूल्य पर खरीद लेने मात्र से कुछ ज्यादा चीज है। यह "सर्वोत्तम" मूल्य पर उपयुक्त कच्चे सामान को छाटना है।

मात्राओं का निर्धारण—खरीदी जाने वाली उचित मात्रा का निर्धारण योजना बिक्री पद्धति पर निर्भर है। जहा सारा या अधिकतर उत्पादन पहले से प्राप्त आदेशों पर ही किया जाता है, और संग्रह के लिए उत्पादन की कोई आवश्यकता नहीं होती, वहा कच्चे सामान की खरीद तब तक के लिए स्थगित कर देनी चाहिए जब तक आदेश प्राप्त न हो जाय। परन्तु व्यवहार म निर्मित वस्तु देने मे विलम्ब से बचने के लिए उत्पादन पहले ही करके कुछ माल जमा रखा जाता है। ऐसी अवस्था म खरीदी जाने वाली मात्रा का निश्चय मुख्यत इस बात पर निर्भर है कि आप कितनी वस्तु संग्रह रखना चाहते हैं।

सम्भरण स्रोतों का निर्धारण—श्रेष्ठता की आवश्यकता निश्चित हो जाने पर और विवरणों (स्पेसिफिकेशन) का ठीक-ठीक पता चल जाने पर तथा उसे सरल रूप म ले आने के बाद अगला काम यह है कि निम्नलिखित रीतियों से सम्भरण के अभीष्ट स्रोतों का निश्चय किया जाए—

(१) क्रयण अभिलेख, जो वस्तुओं और सम्भरणकर्त्ताओं के हिसाब से वर्गीकृत हों, और मूल्य, श्रेष्ठता, बिक्री की शर्तों, माल देने की तिथि आदि के अनुसार उपविभाजित हों,

(२) सूचीपत्र, जो निर्मित वस्तुओं की दृष्टि से वर्गीकृत और व्यतिदेशित (क्रास-इन्डेक्सड) तथा किसी और विभाग की दृष्टि म, जो अभीष्ट सामान के क्रय के लिए आवश्यक हो, व्यतिदेशित हो। सम्भव है कि सामान के सम्भरण के पुराने स्रोत प्राप्त हों, परन्तु खरीदने म नये स्रोतों के विकास पर

निरन्तर सोचना प्रायः अधिक अच्छा समझा जाता है। जाच के आधार पर विश्वसनीय सिद्ध होने वाले सम्भरण स्रोतों में से ही मूल्य सूची मांगनी चाहिए। इस प्रकार प्राप्त मूल्य सूचियों का विश्लेषण करके विभिन्न वस्तु के लिए ठीक मूल्य का निर्धारण करना चाहिए। ठीक मूल्य वह है, जो सामान का "उचित" या "सर्वोत्तम" मूल्य हो (आवश्यक नहीं कि यह निम्नतम हो)।

माल मिलने की तारीख का सम्भरणकर्त्ता के चुनाव पर असर पड़ता है। उदाहरण के लिए,यदि कारबार बहुत तेज है और बहुत से आर्डर आए पड़े हैं,तो खरीदार जल्दी माल देने वाले को अधिक मूल्य भी अदा कर सकता है। बट्टा या डिस्काउन्ट व धन चुकाने की अवधि भी यह निश्चय करने में सहायक होती है कि किस से खरीदा जाए। सम्भरणकर्त्ता की विश्वसनीयता और जिम्मेदारी उसे अपनाने में एक और महत्वपूर्ण कारण होता है। संविदा की शर्तों का पालन करने में विक्रेता की ईमानदारी तत्परतापूर्वक माल पहुंचाना और नमूना की प्रचलित कोटियों के ठीक-ठीक अनुसार माल देने की ख्याति उसके अपनाये जाने में सबसे महत्वपूर्ण कारक होती है। सम्भरणकर्त्ताओं की वितरण-नीतियां क्रेताओं पर प्रबल प्रभाव डालती हैं। बहुत से निर्माता उन सम्भरण-कर्त्ताओं को सामान का आदेश देना पसन्द नहीं करते, जो क्रेता की इच्छा होने पर आर्डर का रद्द कराना स्वीकार नहीं करते।

आर्डर या आदेश—सर्वोत्तम मूल्य निश्चित हो जाने और अन्य शर्तें तय हो जाने पर आदेश दिया जाता है। आदेश एक कानूनी संविदा है और यह सावधानी से और सरल से सरल रूप में लिखना चाहिए, जिसमें यह ठीक-ठीक पता चलता हो कि क्रेता तथा विक्रेता को क्या करना है। अधिकतर संविदाओं में एक क्रयादेश और उसकी स्वीकृति होती है। क्रयादेश के मुख्य भाग ये हैं —

(१) क्रम संख्या।
(२) भेजने की तारीख
(३) संविदा करने वाले पक्षों के नाम व पते।
(४) आदेशित सामान की श्रेष्ठता और वर्णन
(५) माल देने की तारीख
(६) जहाज सम्बन्धी हिदायतें
(७) मूल्य
(८) भुगतान की शर्तें।

यदि आदेश विस्तृत स्पेसिफिकेशनों के आधार पर हो, तो वे स्पेसिफिकेशन संविदा या क्रयादेश में शामिल या विशेष रूप से निर्दिष्ट होने चाहिए।

जब क्रयादेश दिया जा चुके, तब क्रेता को यह देखते रहना चाहिए कि वह तत्परता से पूरा किया जाए, छोटे से छोटे या न्यूनतम व्यय वाले मार्ग से आये और निर्धारित तिथि तक मिल जाय। आदेश की कापी प्रतियां तैयार करनी चाहिएं — दो कापियां क्रय विभाग के लिए, एक कापी संग्रह विभाग के लिए, एक उन विभाग के लिए जिन्हें उस

वस्तु की आवश्यकता थी, और एक प्राप्तकर्ता विभाग के लिए। प्राप्तकर्ता वाली विभागीय प्रति में आदेश की मात्रा का उल्लेख होना अच्छा है, जिससे जब माल प्राप्त हो, तब ठीक-ठीक राशियो और मात्राओ की जाच हो सके, और आदेशित राशियों तथा मात्राओ को बिना देखे ठीक-ठीक हिसाब हो सके। इसके बाद क्रेता प्राप्त राशि और आदेशित राशि का मिलान करता है और यदि दोना राशिया ब्योरे की प्रत्येक बात म एक सी हा तो आदेश भुगतान के लिए मजूर कर दिया जाता है।

क्रयनीतियां—क्रेता ने जो महत्वपूर्ण नीतिया निश्चित करनी है, उनम से एक है आदेश के आकार के बारे मे, अर्थात् किसी एक समय म कितना सामान खरीदा जाए। किसी समयावधि में खरीदी जाने वाली कुल मात्रा उस अवधि की अनुमानित बिक्री से निकाली जाती है। कुछ अवस्थाओ मे कोई आदेश विक्रेता द्वारा तभी स्वीकार किया जाता है, जब माल की कुछ न्यूनतम मात्रा अवश्य ली जाए, जिससे नीचे का आदेश स्वीकार नही किया जाता। परन्तु साधारणतया, अधिकतर निर्माता अपने आदेश का आकार निश्चित करने के लिए स्वतन्त्र होते है, और उन्हे बडे आदेश प्रपुज (Bulk) क्रयादेश के लाभ तथा हानियो और छोटे आदशो (अल्प मात्रा के क्रय) के लाभ और हानियो मे सतुलन करना चाहिए।

बडे पैमाने की खरीद में कई स्पष्ट लाभ है। बहुत से विक्रेता बडे आदेशो के लिए विशेष मूल्य रखते है। अन्य लाभ ये है—बहुत काफी माल सग्रह होने से यह चिन्ता नही रहती कि रेलवे हडतालो या अन्य सप्लाई सम्बन्धी रुकावटो के कारण काम रोकना पडेगा, भाडे, ढुलाई और प्राप्ति व्ययो म बडे आदेश में बचत रहती है। छोटे-छोटे आदेश बार-बार दिये जा सकते है, क्योकि उनका अर्थ है, माल म कम पूजी का लगना, भौतिक बिगाड तथा शैली के पुराने पड जाने का मौका कम हो जाना, अधिकतम मूल्य पर लदान कराने और कम बिक्री वाले मौसम के शुरू मे बहुत माल बचे रहने के जोखिम का कम हो जाना। बडे पैमाने पर खरीदन का अधिकतम लाभ, जो अधिकतम माल सग्रह और द्रुत विक्रय के साथ सुसगत हो, तभी उठाया जा सकता है, जब कुछ थोडी-सी वस्तुओ पर उपभोग को प्रमापित कर दिया जाए।

नि सन्देह क्रय नीति उत्पादन नीति का हिस्सा है, अथवा इसी से पैदा होती है, और निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ही बनाई जाती है। उदाहरण के लिए, कार्यक्रम के अनुसार, वर्ष मे किसी समय कम और किसी समय अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। परन्तु क्रय नीति यह हो सकती है कि सम्भरणकर्ता की सुविधा की दृष्टि से सार साल नियमित माल लिया जाए और नीचे मूल्य का लाभ उठाकर कम माग के दिनो म माल जमा कर लिया जाय।

क्रय सम्बन्धी चलन—सम्भरण की निरन्तरता उतनी महत्वपूर्ण है, जितना परिव्यय। *सच तो यह है कि बडे पैमाने के उत्पादन म यह परमावश्यक है।* *विभाजन* के बाद के दिनो में जो लोग निर्माण उद्योगो मे सम्बन्धित थ, उन्हे इसका अनेक बार और कई बार अनुभव हुआ। कच्चे सामान की कमी का अर्थ था काम रुक जाना, जिससे थकने

के लिए अधिक मूल्य देकर और स्रोतों से माल मंगाया गया। सामान्य दिनों में तथा कठिनाई के दिनों में कच्चे सामान की उचित मूल्य पर नियमित प्राप्ति होना परमावश्यक है। क्रयनीति या प्रक्रिया के तीन मोटे प्रकार निम्नलिखित हैं—

(१) बाजार की चालू अवस्था के विरुद्ध खरीदना—आम तौर पर चालू काम के लिए माल खरीदा जाता है। प्रति दिन, प्रति सप्ताह, या प्रतिमास जितना सामान चाहिए, वह सारा या उसका कुछ हिस्सा खरीदना क्रेताओं की इच्छा पर होता है। साधारणतया जब आवश्यकता होती है, तब खुले बाजार में माल खरीदा जाता है, अथवा निकट भविष्य में माल मिलने की संविदा करके माल खरीदा जाता है। इस नीति की सफलता क्रेता के बाजार सम्बन्धी ज्ञान पर और सम्भरणकर्ताओं की सद्-भावनाओं पर निर्भर है—जिस विक्रेता का अपने सम्भरणकर्ता—चाहे वह उत्पादक हो, दलाल हो, आढ़तिया हो या व्यापारी हो—की सद्भावना प्राप्त रहती है और जो बहुत जगह से थोड़ा-थोड़ा खरीदने के बजाय श्रेष्ठ सम्भरणकर्ताओं से माल खरीदता है, उसे यह पता चलेगा कि कमी का खतरा होने पर उसके सम्भरणकर्ता अपनी संविदा पूरी करेंगे। वे उसे मूल्य बढ़ने से पूर्व ही मूल्य वृद्धि की सूचना दे देंगे, जिससे वह माल जमा कर सके, अथवा वास्तविक कमी के दिनों में यह यत्न करेंगे कि उसे आवश्यक सामान मिलता रहे।

(२) संविदा करके खरीदना—प्रायः कच्चे सामान की पर्याप्त उपलब्धि इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण होती है कि क्रेता अपने बाजार सम्बन्धी ज्ञान पर सम्भरण सम्बन्धी कम्पनियों पर भरोसा नहीं कर सकता। ऐसी अवस्थाओं में वह अपनी साल भर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, अथवा यह शर्त लगाकर कि उचित अवधि से पहले सूचना देकर आदेश में परिवर्तन या उसे रद्द किया जा सकता है, अनिश्चित अवधि के लिए या पर्याप्त सामान खरीदकर वह भविष्य की डिलीवरी के लिए संविदा कर सकता है। इसका यह लाभ है कि उपभोक्ता को माल जमा करने की आवश्यकता नहीं रहती, और सम्भरणकर्ता को कुछ स्थायिता प्राप्त हो जाती है। आटा मिलें प्रायः भविष्य की डिलीवरी के लिए खरीदती हैं, या मौसम के शुरू में खरीदती हैं, जिससे गेहूँ के मूल्य में बाद में होने वाली वृद्धि से बची रहें। अर्द्ध-निर्मित उत्पादित वस्तुएं, जैसे मोटर कार सम्बन्धी वस्तुएँ और पुर्जे भी सामान्यतः पहले ही संविदा द्वारा खरीदे जाते हैं। साथ-साथ डिलीवरी के सौदे भी आम तौर पर किये जाते हैं। कोयला एक वर्ष या इससे अधिक तक चलने वाली संविदा से खरीदा जा सकता है और सम्भरणकर्ता नियमित समयान्तर पर निर्धारित मात्रा देते रहना स्वीकार करता है।

(३) सौदेबाजी के आधार पर खरीदना—इस नीति में काफी समय के लिए आवश्यक मात्रा एक समय में खरीद ली जाती है, और उसे कब्जे में ले लिया जाता है। ऐसा प्रायः रुई, ऊन, आदि मुख्य (Staple) वस्तुओं के बारे में और प्रमुख प्रक्रम उद्योगों (Major Process Industries) के बारे में किया जाता है, जैसे सूती और ऊनी कपड़ा मिलें। इसमें बड़ी मात्रा की खरीद के कारण बहुत लाभ होता है, और कमी पड़ने

की चिन्ता नहीं रहती, परन्तु इसमें वित्तीय जोखिम बहुत है, विशेषकर वहां जहां कम्पनी उत्पादित माल की बिक्री के लिए संविदा न कर चुकी हो। यह संविदा भारत सट्टे के ढंग की है। यह जोखिम "हैजिंग" से कम हो जाती है, बशर्ते कि वायदे के सौदों का संगठित बाजार हो।

जब सामान फैक्टरी पर आ जाय, तब इसे उन स्थानों पर भेज दिया जाय, जहां यह काम आता है, या संग्रहागार में रख देना चाहिए। यदि संग्रहागार में रखा जाय तो एक स्थायी संग्रह पञ्जिका में उसकी मात्रा लिख दी जाती है, और क्रय या उत्पादन विभाग इस पंजिका की जांच पड़ताल करता है। संग्रह सम्बन्धी अभिलेख हर समय यह बता सकते हैं कि संग्रहागार में कितना सामान है, और साथ ही उत्पादन की आवश्यकताओं को अच्छी तरह पूरा कर सकते हैं। जब सामान ठीक प्राप्त हो, स्पेसिफिकेशन के साथ उसका मिलान कर लिया जाए और उसके गुण की परख कर ली जाय, तब अभिलेख पूरे कर दिये जाते हैं, और खरीद के बट्टे का लाभ उठाने के लिए यथासमय जल्दी से जल्दी सामान का मूल्य चुका दिया जाता है। जब सामान का मूल्य चुका दिया जाता है, तब क्रेता को यह देखते रहना होता है कि खरीदा हुआ माल उस प्रयोजन को पूरा करता है या नहीं, जिसके लिए वह खरीदा गया था और अपनी जांच का परिणाम लिख लिया जाता है। इस प्रकार खरीदने की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है।

थोक खरीद का चलन—थोक दूकानदार खुदरा दूकानदार के सम्भरणकर्ता होते हैं। उन्हें वे वस्तुएँ खरीदनी हैं, जिन्हें खुदराफरोश चाहता है, और ऐसे मूल्य पर खरीदनी हैं, कि खुदराफरोश द्वारा वे ऐसे मूल्यों पर बेची जा सकें कि अपने को कुछ लाभ बच रहे। थोक दूकानदार बहुत से निर्माताओं से खरीद सकते हैं। क्योंकि उनका लाभ का अंश सामान्यतया बहुत थोड़ा होता है,इसलिए खरीदनेमें होने वाली गलतियां खतरनाक सिद्ध होती हैं। औद्योगिक क्रयण की तरह यहां भी खरीदने वाला कुशल होना चाहिए। इसे पता होना चाहिए कि मुझे क्या चीज लेनी है और किस मूल्य पर लेनी है। इसकी समस्याओं का हल औद्योगिक क्रेताकी समस्याओं की अपेक्षा अधिक कठिन है। उसे निरन्तर उपभोक्ता मांग की अनिश्चितता की चिन्ता रहती है, जो खुदराफरोशों की क्रय नीति से प्रकट होती है। थोक विक्रेता को फैशन सम्बन्धी प्रवृत्तियों,खरीदने की आदतों, मूल्यों-स्तरों पर उपभोक्ता की प्रतिक्रियाओं और विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की लोकप्रियता में वृद्धि और ह्रास को देखने के लिए खुदरा इकाई की चालू खरीद की जांच करनी पड़ती है।

थोक खरीदार की एक प्रमुख समस्या है, माल का नियन्त्रण या तालिका। अपने खुदरा ग्राहक के लिए सम्भरणकर्त्ता का कार्य करते हुए उसके पास बेचने के लिए पर्याप्त सामान होना चाहिए, अन्यथा वह अपना कार्य सन्तोषजनक रीति से नहीं कर सकता। परन्तु यदि वह बहुत माल जमा कर ले तो मूल्य परिवर्तन, शैली परिवर्तन और माल के खराब हो जाने का खतरा है जिससे उसका सामान्य लाभ खतरे में पड़ जाता है। उचित मात्रा का निर्धारण भविष्य की बिक्री के अनुमानों पर आधारित योजनाबद्ध बिक्री पर निर्भर है। बिक्री का अनुमान या तो बेची जाने वाली वस्तु की संख्याओं के रूप में

अर्थात् दर्जन, सैंकड़े, मन, सेर, पौंड आदि और या पहले धन के मूल्य के रूप में किया जा सकता है। धन के रूप में योजनाबद्ध बिक्री को प्रकट करना विविध वस्तुओं वाली दुकान की कुल सम्भावित बिक्री का निर्देश करने के लिए एक सुविधाजनक सामान्य रूप है। थोक खरीदार को एक सुविधा है, जो खुदरा और खरीदार को नहीं है। वह बहुत से खुदरा खरीदारों को माल भेजता है। यदि उससे खरीदने में गल्ती हो जाय तो उसे काफी निश्चय होता है कि मैं इसे रियायती दाम पर बेच ले सकता हूँ।

खुदरा खरीद का चलन—खुदरा दूकानदार का मुख्य कार्य यह है कि वह अपने ग्राहकों की सुविधा के लिए अनेक प्रकार की वस्तुएँ इकट्ठी करे। ठीक प्रकार से खरीदने के लिए उसे उपभोक्ता माग का विश्लेषण और निर्धारण करना चाहिए। मौजूदा माग पूरी करने के लिए वस्तुए खरीदने में कोई बड़ी जोखिम नहीं है, परन्तु फैशन की वस्तुएँ बेचने में खुदराफरोश को जोखिम उठानी पड़ती है। उसे उपभोक्ता मागों का पहले से अन्दाजा लगा लेना चाहिए। स्त्रियों की साड़िया और कुर्तियों के टुकड़े खरीदने वाले के सामने इस तरह की परिस्थिति आती है। मिलें, आने वाले मौसम के लिए कुछ शैलिया और डिजाइन या रूपाकण पेश करती हैं। ये शैलिया और रूपाकण नये होते हैं। अब तक ये उसके नगर की दूकानों में नहीं आये थे। उसके ग्राहक ये नये फैशन अभी नहीं पहन रहे, या निर्माता अपने नमूनों में उन्हें प्रदर्शित कर रहे हैं। क्रेता जानता है कि प्रस्तुत किये गये सब रूपाकण और सब शैलिया पसन्द नहीं की जायेंगी। सिर्फ थोड़े से ही फैशन चलेंगे। अब वह इनमें से कौन-सी शैलिया खरीदे। प्रत्येक शैली या रूपाकण की कितनी साड़िया ले, प्रत्येक रग की कितनी ले, काम की हुई ले या सादी। उसके अभिलेख ग्राहक के पसन्द के बारे में कुछ भी नहीं बता सकते। उसे अपना चुनाव विभिन्न शैलियों की सम्भावित लोकप्रियता के बारे में अपने अन्दाजे से ही करना पड़ता है। यदि वह ठीक शैलिया ठीक मात्रा में और ठीक रग में अच्छी तरह खरीद ले तो उसका मौसम सफल रहेगा। यदि वह रद्दी ढग से, गलत शैली, रग या मात्रा में खरीद करता है तो वह नुकसान उठायेगा। उसे अपनी साड़िया और सामान बेचने के लिए दाम बहुत कम करने पड़ेंगे। खुदरा बिक्री के लिए खरीदने वाले को यह जोखिम उठानी पड़ती है। उसे निरन्तर अपने प्रतिस्पर्द्धियों पर आख रखनी होगी, और यह देखना होगा कि लोकप्रियता की उच्चतम सीमा समाप्त होने से पहले ही उसका सारा माल बिक जाए। परन्तु उसे यह सावधानी भी रखनी होगी कि जब लोकप्रिय वस्तु की माग हो, तब उसका सारा माल खतम हो चुका हो।

खरीदने की कला—जो बातें औद्योगिक क्रयण के सिलसिले में कही गयी हैं, वे सब की सब खुदरा और थोक की खरीद की नीति के चलन में भी लागू होती हैं। वस्तुएँ खरीदने की कला में व्यवसाय समस्या के सब प्रमुख अग आ जाते हैं। खरीदने की सफलता ही बेचने की सफलता है। खरीदने में असफल रहने से नफा कमाना असम्भव हो जाता है। एक पुरानी कहावत है कि ठीक तरह खरीदी गई वस्तुएँ आधी तो उसी समय बिक जाती हैं, और यह कहावत बहुत हद तक आज भी ठीक बैठती है। सफलतापूर्वक खरीदने

में निम्नलिखित बातें सहायक हो सकती हैं। खुदरा दूकान या थोक दूकान के लिए होशियारी से खरीदने वाला रुपये, और बेची हुई इकाइयों के रूप में बिक्री के अभिलेख रखता है। उदाहरण के लिए, जूते की दूकान के लिए खरीदने वाला ऐसे बिक्री अभिलेख रखता है, जिनसे उसे बीच-बीच में यह पता चलता रहे, कि कितने जोड़े, कितने मूल्य पर, किस शैली, रंग, द्रव्य और आकार के बिके। ये अभिलेख निरन्तर रखे जाते हैं, जिससे खरीदने वाला बहुत पुराने अभिलेखों की हाल के अभिलेखों से तुलना कर सके।

खरीदने में सहायता के लिए वांट स्लिप (नहीं–पर्ची) का उपयोग भी किया जाता है। दूकान पर बिक्री करने वालों से कह दिया जाता है कि जो माल ग्राहक मांगता है, यदि वह दूकान में नहीं है, तो वह नोट कर लिया जाए। इन सूचनाओं की जांच करके क्रेता यह निश्चय कर सकता है कि ग्राहक कौन सी वस्तु मांगता है। वांट स्लिपों के साथ-साथ माल के सम्बन्ध में ठीक-ठीक आंकड़े भी होने चाहिए, जिससे क्रेता को हर समय यह पता चल सकता है, कि उसके पास क्या माल है। इस तरह उसे न केवल यह पता चल जाता है कि उपभोक्ता क्या चीज खरीद रहा है, बल्कि यह भी मालूम हो जाता है कि वह क्या चीज नहीं खरीद रहा। थोक दूकानदार को भी, जो हजारों विभिन्न वस्तुओं का क्रय-विक्रय करता है, द्रुत बिक्री सुनिश्चित करने के लिए इसी प्रकार के विस्तृत अभिलेख रखने चाहिए। पिछले अध्याय में आय-व्ययक निर्माण की जो चर्चा की गई है, वह भी कुशल खरीद में सहायक होती है। आय-व्ययक का बुद्धिमत्ता से उपयोग किया जाय तो वे चेतावनी-संकेत का कार्य करते हैं। इन सब सहायक बातों के होते हुए भी खरीदना एक ऐसी समस्या है, जो मुख्यतः व्यक्ति की निर्णय-शक्ति से हल होती है। आखिरकार उपभोक्ता की मांग एक अनिश्चित चीज है—वह घटती-बढ़ती रहती है। उपर्युक्त बातों से सहायता तो मिल सकती है, पर यदि किसी चतुर नेता का पथ प्रदर्शन न हो और सिर्फ उनका ही उपयोग किया जाए, तो सफल क्रय नहीं हो सकेगा।[1]

संग्रहागारण (स्टोर-कीपिंग)

आधुनिक उद्योग में संग्रहागारण का जो महत्व है, उसको यथोचित रीति से समझा नहीं गया। उत्पादक विभाग तो साज-सामान से लैस होते हैं, और संग्रह-रक्षक कम रोशनी वाली छोटी-छोटी रद्दी जगहों में छिपे हुए होते हैं, और उन्हें आम तौर पर कम वेतन दिया जाता है। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि माल की हानि, गलत निर्गमों, माल की अप्रत्याशित समाप्ति और गलत वाउचरों के कारण उत्पादन में सदा विलम्ब होता रहता है और उत्पादन कर्मचारी परेशान रहते हैं। पर्याप्त और दक्ष कार्य के लिए यह जिम्मेवारी ऐसे योग्य व्यक्तियों को सौंपनी चाहिए जो गिनती में चाहे थोड़े हों, परन्तु स्वच्छता और सफाई पसन्द करते हों, उनकी स्मरण-शक्ति अच्छी हो, और सामान्य रूप से समझदार हों। उन्हें अंकों का भी अच्छा अभ्यास हो। कुछ समय से प्रभावी संग्रहरक्षण के लिए पत्रक देखनाओं, (कार्ड इण्डेक्स माल नियन्त्रण प्रणालियों और वस्तु पिटकों (गुड्स बिन्स) का उपयोग हो रहा है, परन्तु पत्रक देखनाएं

---

१ देखो माडर्न मार्केटिंग (बारकर और एनस्टीन)

उन्हें संग्रह-रक्षा का स्थान नहीं ले सकती। वे स्वयं काम नहीं करतीं, बल्कि उनका उपयोग करना पड़ता है।

संग्रह विभाग के कार्य निम्नलिखित रीति से बताये जा सकते हैं।

(१) सामान को प्राप्त करना, संग्रह करना और उसकी हिफाजत करना,

(२) निर्माता और सिविल विभागों द्वारा अपेक्षित संग्रह वस्तुएँ ठीक मात्रा में निर्गमित करना,

(३) संग्रह के अभिलेख रखना जिनसे हर समय यह पता चल सके कि कितना माल हाथ में है या प्रत्याशित है कितना निर्गमित किया जा चुका या सरक्षित है, और यह जानकारी वस्तुओं तथा आदेश संख्याओं के आधार पर वर्गीकृत होनी चाहिए।

(४) प्रत्येक वस्तु की निम्नतम मात्रा निश्चित करके जब और माल की आवश्यकता हो तब उसकी ठीक समय पर सूचना देना और क्रय अर्थना (पर्चेजिंग रिक्विजीशन) निर्गमित करना,

जो वस्तुएँ, औजार प्रदाय, और उपस्कर बाहर से रेल, नाव, मोटर या आदमी द्वारा अथवा और किसी रीति से कारखाने में आते हैं, वे प्राप्ति विभाग को दिये जाते हैं और यदि उन वस्तुओं के नाप या महत्वकायता के कारण ऐसा करना सम्भव न हो तो इस विभाग को उनके पहुँचने की सूचना दे दी जाती है और वे इस विभाग की किताबों में चढ़ा ली जाती हैं। साधारणतया प्राप्ति विभाग को वस्तुओं की मात्रा गिनती, तौल या अन्य तरह से नापनी पड़ती है, और पूर्व सूचना पत्र (एडवाइस नोट) तथा अर्पण पत्र (डिलीवरी नोट) में लिखित मात्रा और वर्णन से उसका मिलान करना पड़ता है। पूर्व सूचनापत्र और अर्पण पत्रों की पद्धति आजकल प्रायः सब जगह प्रचलित है। पूर्व सूचना पत्र सम्भरणकर्ता डाक से भेजता है, और ग्राहक को यह सूचित करता है कि मैंने वस्तु भेज दी है। यह पत्र आम तौर पर वस्तुओं से बहुत पहले पहुँच जाता है। प्राप्तकर्ता को पूर्व सूचना पत्र प्राप्त होते ही उस आदेश की प्रति से इसका मिलान करना चाहिए जो क्रय विभाग ने आदेश देते समय प्राप्तकर्ता कार्यालय में भेजी थी।

आदेश और पूर्व सूचना पत्र में कोई असंगति हो तो वास्तविक वस्तुओं की प्राप्ति की प्रतीक्षा किये बिना क्रय विभाग को या और भी अच्छा हो कि सीधे सम्भरण-कर्ता को तत्काल सूचना देनी चाहिए, और उसकी एक प्रति क्रय विभाग को भेज देनी चाहिए। पूर्व सूचना पत्र का यह मिलान बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यदि माल भेजने में कोई भूल हुई है तो इस तरह बहुत सी परेशानी, खर्च और समय से बचा जा सकता है। अर्पण पत्र, जो वस्तुओं के साथ होना चाहिए, आम तौर से सब मामलों में सूचना पत्र की कार्बन प्रति होता है और इसका पूर्व सूचना पत्र से मिलान करना चाहिए, तथा असंगति की सूचना क्रय विभाग को देनी चाहिए और सम्भरणकर्ता के साथ निपटने का काम उनके ही जिम्मे छोड़ देना चाहिए।*

---

* Meyenberg. Industrial Administration and Management, p 153

आदर्श अवस्थाओ में सामान के प्राप्त होने ही उसे सीधे तैयार माल के रूप मे ले आया जाएगा। परन्तु ये अवस्थाएं लाना प्राय असम्भव है, यद्यपि कुछ सरल निरन्तर उद्योगों में इन अवस्थाओ के निकट पहुँचा जा सकता है। अधिकतर निर्माण उद्योगो में कच्चा सामान विभिन्न समयों पर विभिन्न मात्राओं में काम आता है, और इसी प्रकार बिक्री भी एक एक कर तथा विभिन्न प्रकार से होती है। इन कारणो से कि अधिक मात्रा होने पर नय और परिवहन में सुविधा होती है, इन बदलती हुई मांगो की दृष्टि से व्यवस्था होनी चाहिए। जहा बिक्री बदलती रहती है, और माल बिक्री से पहले ही बनाना पड़ता है, वहा भी ग्राहकों को ठीक समय पर माल प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए तैयार माल ले जाने की वैसी ही व्यवस्था करनी चाहिए। जो कारखाने सिर्फ आर्डर पर माल तैयार करते हैं, जैसे जहाज निर्माता कम्पनी, उनमें इस अन्तिम बात का विशेष महत्व नहीं। इस प्रकार प्राप्तकर्त्ता विभाग और उत्पादन के बीच संग्रह की एक प्रणाली बनाने के लिए कारण यह है कि अधिकतर अवस्थाओं म पर्याप्त संग्रह प्रणाली होने पर ही कच्चा सामान बडी मात्रा में और ऐसे ढंग से खरीदा जा सकता है, कि संग्रह सम्बन्धी विनियोग पर कोई हानि न उठानी पड़े। दूसरी बात यह कि यह निश्चित हो जाता है, कि निर्माण विभाग को कच्चे सामान की जिस समय आवश्यकता हो, वह उसी समय मिल सके। संग्रहण का आदर्श यह है कि यथासम्भव कम से कम सामान रखा जाय, परन्तु यह इतना अवश्य हो कि उत्पादन की आवश्यकता पूरी हो सके। जो वस्तु अनिर्मित सामान के बारे म है, वही निर्मित वस्तुओं मे लागू होती है। निर्मित वस्तु का संग्रह यथासम्भव कम से कम होना चाहिए, पर इतना अवश्य होना चाहिए कि बिक्री की मांग पूरी हो जाय। संग्रह पद्धति बनाने का तीसरा कारण यह है कि आर्थिक स्थाति का पूरा-पूरा पुनर्विलोकन करना और प्रभावी उत्पादन नियन्त्रण करना सम्भव होता है। ये तीन चीजें—मात्रा, समय और परिव्यय—बहुत महत्वपूर्ण हैं और प्रबन्ध को यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी गलतियां न हो सकें, जिनसे सारी कम्पनी को हानि पहुँचे।

संग्रह और स्कन्ध-रक्षण (Stock-keeping) की दृष्टि से चार चीजों का प्रबन्ध करना होता है—

(१) कच्चा सामान, जो निर्माण प्रक्रम द्वारा, सीधे वस्तुओं में रूपान्तरित कर दिया गया और यह तैयार माल बनता है। (२) प्रदाय या अप्रत्यक्ष सामान, जो उत्पादन में काम में लाया जाता है। (३) औजार और उपस्कर, और (४) तैयार माल या बिक्री योग्य वस्तु। यह भेद करना परिव्यय की दृष्टि से बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण है। आम तौर से कच्चे सामान को स्टोर या आगार भाड कहते हैं। जहा पर यह रखा जाता है, उसे संग्रहागार या कोष्ठागार कहते हैं। जहां प्रदाय रखे जाते हैं, उस स्थान को भी इसी नाम से पुकारते हैं। यह कज अन्दर आने वाले सामान और प्रदायों तथा काम फैक्टरी के बीच भण्डार का काम करता है और बदलती हुई मांग और सम्भरण का समकरण करता रहता है। बाहर भेजने के लिए तैयार निर्मित वस्तु स्कन्ध

स्थिति का पर्यवेक्षण नहीं हो सकेगा। न व्यवस्थित रूप से बही-लेखन हो सकेगा और न लाभ-हानि का लेखा बन सकता है। परन्तु जहां टैक्नीकल कारणों से कोष्ठागार को मांगे हुए से अधिक देना पड़ता है, वहां एक वापसी-पत्र द्वारा इस अधिक की वापिसी भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है।

इन अभियाचना पत्रों में आगे उस सामान का मूल्य निर्धारण किया जाता है, जिसके लिए ये वाउचर है। ऐसा करने की अनेक रीतियां प्रचलित हैं, और मेथेनगर्ग के अनुसार वे ये हैं —(क) यदि सामान बाहर से मंगाया गया हो तो वाउचर के अनुसार उस सामान का वास्तविक मूल्य लेना चाहिए और यदि वह सामान कारखाने में बनाया या रूपान्तरित किया गया है, तो गणना द्वारा मूल्य निर्धारण करना चाहिए। (ख) बाजार मूल्य का निश्चय करना, (ग) एक ऐसा प्रमाप मान, जो कुछ समय या शायद एक व्यावसायिक वर्ष के लिए अपरिवर्तनीय हो, निश्चित कर देना चाहिए, या (घ) प्रत्यर्पण मूल्य (रिफण्ड प्राइम) का उपयोग करना चाहिए। तथापि कुछ अवस्थाओं में अन्य रीतियों का उपयोग लाभदायक है। चाहे जो रीति हो, सही परिणाम प्राप्त करने के लिए पहले तो अभियाचना और प्रत्यावर्तन (या वापिसी) पत्र ठीक-ठीक लिखे जाने चाहिए, और बाद में फार्मों का ठीक-ठीक उपयोग करना चाहिए। स्कन्ध संग्रह थोड़ा, परन्तु आवश्यकता की पूर्ति की दृष्टि से पर्याप्त रखने के लिए और सामान का विक्रय अधिकतम रखने के लिए प्रबन्ध की दृष्टि से मुख्य बुनियादी अभिलेख शेष भाण्ड अभिलेख (बैलेन्स आफ स्टोर्स रिकार्ड) है। यह अभिलेख आदेशित, प्राप्त, निर्गमित, शेष, अभिभाजित, और उपयोज्य राशि की सूचना देता है, अर्थात् कोष्ठागार की स्थिति का पूरा चित्र उपस्थित करता है। कोष्ठागार का एक और महत्त्वपूर्ण अभिलेख बिनटैग है, जिसकी पहले चर्चा कर चुके हैं, जो वास्तविक सामान रखते समय बिन या शैल्फ पर लगाया जाता है।

कोष्ठागार का संगठन—कारखाने के संगठन में कोष्ठागार की स्थिति के बारे में अनेक परस्पर विरोधी विचार हैं, और कोष्ठागारिक के कर्त्तव्यों के बारे में और इस में कि वह किसके प्रति जिम्मेवार होना चाहिए, बहुत कुछ अव्यवस्थित विचार प्रचलित है। कुछ लोगों की मान्यता है कि कोष्ठागारिक को सामान की देखभाल के अलावा स्कन्ध सम्बन्धी सब लेख भी रखने चाहिए। सामान का आर्डर या आदेश देने की जिम्मेवारी भी उस पर होनी चाहिए। यह भी माना जाता है कि वह, कोष्ठागारिक के प्रति, सेक्रेटरी के प्रति या लेखाध्यक्ष के प्रति या उत्पादन नियंत्रक के प्रति अथवा कोष्ठागार के अलग-अलग विभाग विभागीय फोरमैनों के प्रति जिम्मेवार होने चाहिए और व्यवहार में ये सब व्यवस्थाएं चलती हैं। कोष्ठागारिक का कार्य स्कन्ध को संभालना, उसे प्राप्त करना और निर्गमित करना और बीच के समय में उसे साफ-सुथरे तरीके से न्यूनतम स्थान में और न्यूनतम परिश्रम से संगृहीत करना है। यह एक शारीरिक काम है। अभिलेख रखना उसका काम नहीं। वह स्कन्ध अभिलेखन का हिस्सा है और स्कन्ध अभिलेखन उत्पादन आयोजन का हिस्सा है। उत्पादन आयोजन को अपने कार्य में सफलता के लिए स्कन्ध

स्कंध की नवीनतम जानकारी मिलनी चाहिए और उत्पादन कार्यक्रम बनाने में उसे स्कन्ध अभिलेख की सहायता तत्काल मिलनी चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब अभिलेख उत्पादन कार्यालय में हो। कोष्ठागार का प्रबन्ध उत्पादन से सर्वथा स्वतन्त्र रहना चाहिए, परन्तु मुख्य कोष्ठागारिक और उत्पादन या प्रबन्धक कारखाना प्रबन्धक के बीच निकट सम्बन्ध परमावश्यक है।

कोष्ठागार संगठन और उसके प्रति दिन के कार्य संचालन को अच्छी तरह समझने के लिए यह विचार करना लाभदायक होगा कि कोष्ठागार का कारखाने के अन्य विभागों से किस तरह सम्बन्ध होता है। मेयेलबर्ग ने एक सामान के कोष्ठागार में आने और कोष्ठागार से जाने का और इसमें जो लेखन कार्य करना पड़ता है, उसका एक मनोरंजक उदाहरण दिया है।

सामान की प्राप्ति—जिस समय सामान कारखाने में आता है उस समय प्राप्त कर्ता कार्यालय (डिपो) उपयुक्त छपे हुए फार्मों पर प्राप्ति की सात प्रतियां बनाता है। ३ और ४ नम्बर की प्रतियां प्रारम्भिक प्रतियां कहलाती हैं, और ५, ६ तथा ७ निश्चित प्रतियां कहलाती हैं। प्रति १ शीघ्र सूचना के लिए क्रय विभाग को भेजी जाती है। इसके बाद यह प्रति और सम्भरण कर्ता का बीजक लेखा विभाग को भेजा जाता है जो बीजक रख लेता है, और प्रति १ फाइल के लिए क्रय विभाग को वापिस कर देता है। प्रति २ भाड-नियन्त्रक को, आदेश देने वाले विभाग की शीघ्र जानकारी के लिए भेजी जाती है। प्रति ३ और ४ प्राविधिक निरीक्षण विभाग को भेजी जाती है, जो प्रति ३ अपनी फाइल के लिए रख लेता है, और आवश्यक परीक्षाएं करके तथा उनका परिणाम प्रति ४ पर दर्ज करके यह प्रतिश्रय विभाग को भेज देता है। क्रय विभाग यह निश्चित करता है कि वह माल स्वीकार किया जाए या नहीं और प्रति चार पर अपना निश्चय लिख देता है, और इसे प्राप्तकर्ता विभाग को लौटा देता है। यहां प्रति ४ और ५ इकट्ठी करके सम्भरणकर्ता के बीजक के साथ उनकी तुलना करके क्रय विभाग को भेज दी जाती हैं। इसके बाद प्रति १ और ५ तथा बीजक लेखा विभाग को भेज दिये जाते हैं जो १, ४ और ५ नम्बर की रसीदें क्रय विभाग की फाइल में दाखिल कर देता है। प्रति ६ तथा बीजक की एक प्रति कोष्ठागार नियन्त्रक को, और प्रति ७ कोष्ठागार को भेज दी जाती है।

कोई प्रत्यावर्तन, अर्थात् क्रेता द्वारा लौटाई हुई वस्तुएँ, ऐसे ही समझी जाती हैं, जैसे नया सामान। इन अवस्थाओं में प्राप्त कार्यालय में संग्रह करना बहुत महत्वपूर्ण है, और यदि सम्भव हो तो इस पद्धति को जारी रखना चाहिए जिससे वापिस आई वस्तुएँ, कोष्ठागार में जाने से पहले, उनका अच्छी तरह निरीक्षण हो सके।

कोष्ठागार से सामान का निर्गम—कोष्ठागार में अनियाचित सामान दो तरह का हो सकता है—सुरक्षित स्कन्ध और उपलभ्य स्कन्ध—और कोष्ठागार की बहियों में इसे पृथक्-पृथक् रखने की आवश्यकता हो सकती है। सुरक्षित स्कन्ध वह है जिसके लिए आर्डर पहले ही प्राप्त हो चुके हैं और जिन पर अभी काम शुरू नहीं हुआ। यह हमेशा प्रत्यक्ष

कच्चा सामान होता है। उपयोज्य स्कन्ध, जैसा कि इसके नाम से ही पता चलता है, सुरक्षित स्कन्ध नहीं है, और वह अभियाचन पर निर्गमित नहीं किया जा सकता। यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सामान हो सकता है। ये दोनों प्रकार के सामान एक ही तरह से एक ही तरह के अलग-अलग रंगों के फार्मों के अभियाचना पत्रों द्वारा कोष्ठागार से मगाये जाते हैं। प्रत्यक्ष सामान के अभियाचना-पत्र योजना विभाग द्वारा और अप्रत्यक्ष सामान के उपभोक्ता विभाग (कन्ज्यूमिंग डिपार्टमेण्ट) द्वारा बनाये जाते हैं। एक मूल और एक प्रति होती है, जिन पर एक ही संख्या रहती है, जिससे सब पत्रों को पहिचाना और नियन्त्रित किया जा सके।

योजना विभाग अभियाचना पत्र बनाता है, और मूल तथा प्रति दोनों कारखाने को भेज देता है, और वहा से वे दोनों कोष्ठागार को भेज दिये जाते हैं। कोष्ठागार से अभियाचना पत्र की प्रति और मागा गया सामान जाते हैं, तथा मूल अभियाचना पत्र कोष्ठागार नियन्त्रक को भेज दिया जाता है। उत्पादन नियन्त्रण विभाग में सब आवश्यक बातें एक पत्रक देखना पद्धति में दर्ज कर दी जाती हैं। यह पत्रक देखना पद्धति, कोष्ठागार से निर्गमित प्रत्येक सामान के बारे में सूचना की कुजी है, और इसलिए इसे बहुत सावधानी से रखना चाहिए। निर्गमित माल के मूल्य निर्धारण और अभियाचना पत्र तथा पत्र देखना में मूल्य दर्ज करने के बाद साराश तैयार किया जाता है, और उसकी दो प्रतिया बनाई जाती हैं। यह निर्गमित की गई वस्तुओं की संख्या के अनुसार दैनिक या साप्ताहिक साराश हो सकता है और इसके बाद अभियाचना पत्र के मूल रूप और साराश की दोनों प्रतिया मूल्य निर्धारण विभाग में आती हैं, जहां उनकी जाच की जाती है, गलतिया सुधारी जाती हैं और त्रुटियों की पूर्ति की जाती है। अभियाचना पत्रों की वर्तमान संख्या से त्रुटियों का पता चल जाता है। जब साराश की प्रति सही मान ली जाती है, तब यह रसीद के रूप में उत्पादन नियन्त्रक को भेज दी जाती है और एक छोटे प्रमाणक या वाउचर से लेखा विभाग को यह पता चल जाता है कि साराश में कौन-कौन से अक लेने आवश्यक हैं। इस प्रकार लेखा विभाग को लेखों में चढ़ाने के लिए दैनिक-साप्ताहिक अक मिलते रहते हैं।

समाप्त करने से पहले यह दोहरा देना उचित होगा कि स्टाक नये माल का आदेश देने से पहले कभी भी पूरी तरह खत्म नहीं होने देना चाहिए। दूसरी ओर हाथ में और आगे आने वाला माल भी इतना अधिक नहीं होना चाहिए कि वह प्रयोग में आने से पहले बिगड़ जाए। स्टाक का ध्यान रखने का एक सन्तोषजनक तरीका यह है कि कुछ निश्चित मात्राएँ न्यूनतम के रूप में तय कर दी जाएं और नये माल का आदेश देने से पहले मौजूदा स्टाक उस न्यूनतम से नीचे न जाना चाहिए। स्टाक खत्म न होने देने के लिए एक प्रभावी तरीका यह है कि यह निर्गमित मध्यान्तरों पर रिजर्व में अलग रख दिया जाए और वह आदेश देने के बाद ही काम में लाया जाए। दूसरा तरीका यह है कि स्टाक अभिलेख ऐसे कार्डों पर रखे जाये जिनसे प्राप्त मात्राओं और निर्गमित मात्राओं का पता चलता रहे। प्रति छ मास में या प्रति वर्ष एक सूची बना

ली जाती है। शाश्वत सूची, जिसका सरलतम रूप स्टाक अभिलेख कार्ड है, जिस पर प्राप्तियां, निर्गम और शेष दिखाये होते हैं, तभी कुछ मूल्य रखती है जब उसे सब समय बिलकुल अद्यतन यानी अप्टूडेट रखा जाए। यह अन्तिम विधि उचित स्टाक नियन्त्रण करने के लिए सारतः सर्वोत्तम है।

अध्याय : : २४

श्रम प्रबन्ध

(Labour Management)

जब से उत्पादन की फक्टरी पद्धति प्रचलित हुई है, तभी से मैनेजरों ने अपना बहुत सा समय और प्रयास निर्माण करने वाले प्लाट के भौतिक गठन म लगाया। १९वी शताब्दी मे औसत मालिक लागत कम करने के लिए अपना सारा ध्यान प्रबन्ध और यन्त्रो पर केन्द्रित करता था, और मनुष्य शक्ति को अपेक्षया सस्ती वस्तु समझा जाता था, जिसे मालिक ऐसी चीज बनाने के लिए खरीद और नियुक्त कर सकता है, जिसे वह बेच सके और इस प्रकार अपनी निजी दौलत बढा सके। उत्पादन का असली प्रेरक भाव ही यह प्रतीत होता था कि थोडे से विशिष्ट व्यक्तियों को लाभ हो जाय। उस सारी व्यवस्था म जन साधारण का कोई स्थान नही रहा प्रतीत होता। १९ वी शताब्दी के अन्तिम भाग मे कुछ अधिक साहसी मालिको का ध्यान मानवीय अश की ओर गया, जो उत्पादन म सबसे महत्वपूर्ण कारक है। हाल के वर्षो मे उच्च पदस्थ प्रबन्धको और प्रबुद्ध कारखानेदारो को यह अधिकाधिक स्पष्ट हो गया कि पूर्णतया दक्ष निर्माणशाला मे मनुष्य शक्ति के प्रबन्ध की ओर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। जमाना बदल गया है। आज भी दुनिया म, जनसाधारण जनसाधारण के लिए उत्पादन करता है, यद्यपि हमारे देश में इस बात को, जिसे औद्योगिक शान्ति की दृष्टि से अनुभव करना परमावश्यक है,पूरी तरह अनुभव नही किया जाता। समझदार प्रबन्ध यह अनुभव करेगा कि श्रम की स्थिति पूजी के समकक्ष है, और समुदाय की समृद्धि की हमारी सब आशाएँ उद्योग के तीनो अगो—मनुष्य शक्ति, प्रबन्ध और मशीनो पर, आधारित है।

यह देखकर प्रसन्नता होती है कि कुछ भारतीय कारखानेदार यह अनुभव करने लगे है कि श्रम प्रबन्ध व्यावसायिक प्रबन्ध और प्रशासन का चौथा मुख्य विभाग बन गया है, और यह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना वित्त, निर्माण, और बिक्री। इसलिए श्रमिक प्रबन्धक या जिसे भारत म लेबर आफिसर (श्रम अधिकारी) कहते है, का पद अन्य उच्च अधिकारियो के बराबर होना चाहिए जो सीधे जनरल मैनेजर के पर्यवेक्षण म काम करते है, और उसके प्रति जिम्मेवार होते है। श्रम अधिकारी उन सब नीतियो को निर्धारित करने और नियन्त्रित करने का मुख्य साधन होना चाहिए, जो मजदूरो का ठीक प्रमाप पर रखने के लिए अपनायी जाय। वह मजदूरो और मालिको के बीच अच्छे सम्बन्ध कायम रखने के लिए यत्न करने वाला केन्द्रीय अधिकारी है। इसलिए श्रम अधिकारी उन कारको से परिचित होना चाहिए जिन के होने पर काम

मजदूर के लिए तुष्टिकारक होना है, और काम की टैकनीकल अवस्थाओं या मजदूर की सामाजिक अवस्थाओं से उत्पन्न होने वाली रुकावटों और बाधाओं से भी उसे परिचित होना चाहिए। हेनरीद मान ने अपनी पुस्तक डेर काफ अम डो आरबीट्सफ्राइड, (जिसका अंग्रेजी में जाय इन वर्क नाम से अनुवाद हुआ है), में इन बातों का विश्लेषण किया है, जो संक्षेप में यहां बताना उचित होगा। काम में खुशी पैदा करने वाले प्राथमिक कारकों में वह सक्रियता, खेल, रचनात्मक कौतूहल, आत्म-विश्वास, अधिकारात्मकता और संघर्ष भावना से सम्बद्ध आवेगों का उल्लेख करता है। इनके साथ यूथचारिता (ग्रिगेरियसनेस), दूसरा पर प्रभुत्व और दूसरों की अधीनता, सौन्दर्य भावना की तृप्ति, स्वहित, सामाजिक लाभ और सामाजिक कर्तव्य की भावना को वह अतिरिक्त कारक बताता है।

सन्तुष्टि के मार्ग की टैकनिकल बाधाओं में वह बहुत लम्बे-चौड़े प्रक्रम वाले कार्य, एक ही बात को बार-बार दुहराने के काम, थकान्ति, कारखानों की बुरी अवस्थाएँ जैसे दोषपूर्ण संवातन (वेन्टीलेशन) या स्वच्छता, खतरा, शोर, दोषपूर्ण प्रकाश, व्यवस्था, धूल और कुरूपता, गिनाता है। इनके साथ वह श्रम की असन्तोषजनक अवस्थाओं में उत्पन्न होने वाली बाधाओं, जैसे काम के समय की दीर्घता, अन्यायपूर्ण मजदूरी प्रणाली, जल्दी-जल्दी काम करना और दमनात्मक अनुशासन, और कारखाने से बाहर की असन्तोष जनक अवस्थाओं में उत्पन्न होने वाली बाधाएँ, जैसे रोजगार की और इसलिए जीविका की अनिश्चितता, जीवन के रहन-सहन की अस्वास्थ्यकर अवस्थाएँ, कुपोषण, समाज में नीची स्थिति और हाथ से काम करने वाले मजदूर की परम्परागत हीनता भी जोड़ देता है। इसे विद्या के क्षेत्र में आम तौर से 'श्रम समस्या' कहते हैं। कारखानेदार के लिए यह स्पष्ट रूप से प्रबन्ध की समस्या है। श्रम अधिकारी यानी लेबर आफिसर को मालिक के प्रतिनिधि के रूप में उन अनेक विधियों का उपयोग करना चाहिए, जो इस समस्या को सुलझाने के लिए औद्योगिक मनोविज्ञान ने निकाली हैं। इस प्रकार निकाली गई विधियां निम्नलिखित हैं —

(१) व्यावसायिक चुनाव —ठीक काम के लिए ठीक आदमी का चुनाव।

(२) व्यावसायिक पथ-प्रदर्शन—मजदूर का उचित पथ-प्रदर्शन और स्थान-निर्धारण।

(३) व्यावसायिक प्रशिक्षण।

(४) उपयुक्त कार्य-दशाएं बनाना और कायम रखना।

(५) मजदूरों की रोग और दुर्घटनाओं से रक्षा।

(६) तर्कसंगत मजदूरी नीति—पर्याप्त मजदूरी निश्चित करना।

(७) अधिक अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध—ऐसे उपाय करना जिनसे मजदूरों की इच्छाओं का आदर हो सके।

(८) साधारणतया मजदूर को एक संकीर्ण और अपर्याप्त जीवन से बाहर निकालने में मदद करना।

औद्योगिक मनोविज्ञान—मालिक के उपर्युक्त कार्य म कोई नयी चीज नही। एकमात्र नयी बात यही है कि अब वे एक ऐसे व्यक्ति के अधीन एकत्र कर दिये जाते है, जिसका औद्योगिक मनोविज्ञान की शाखाओ के रूप मे प्रयुक्त होने वाली प्रविधियो पर अच्छा अधिकार है। औद्योगिक मनोविज्ञान का अर्थ है मनोविज्ञान को उद्योग पर लागू करना। मनोविज्ञान का शब्दार्थ है मन का विज्ञान, अर्थात् मन और उसके कार्यो के बारे म परिशुद्ध और व्यवस्थित ज्ञान। परन्तु व्यावहारिक प्रयोजनो के लिए प्रतीति (परसेप्शन), ध्यान, स्मृति, इच्छा और सकल्प आदि मानसिक प्रक्रमो का ज्ञान जीवित शरीर के कार्यिकीय (फिजिआलौजिकल) अध्ययन के बिना अधूरा है। इसलिए हमारे अध्ययन के प्रयोजन के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि शरीर और मन के निकट सम्बन्ध को अनुभव किया जाए, क्योकि सब औद्योगिक प्रक्रम शारीरिक सचलनो से ही किये जाते है। उद्योग सामाजिक जीवन का वह हिस्सा है जिसका कार्य सभ्य पुरुष के जीवन के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुएँ प्रदान करना है। सारे समाज की दृष्टि से देखें तो उद्योग का लक्ष्य है अधिक से अधिक मितव्ययी तरीके से वस्तुएँ प्राप्त करना। मनोविज्ञान इस लक्ष्य की सिद्धि का प्रयत्न करता है और औद्योगिक मनोविज्ञान कहलाता है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक मनोविज्ञान का तात्कालिक लक्ष्य यह है कि प्राकृतिक योग्यता के आधार पर ठीक कार्य के लिए ठीक आदमी प्राप्त करने में मनोविज्ञान का उपयोग किया जाय। इसी प्रकार काम की अच्छी विधियो का निर्माण करने म मानवीय ऊर्जा या प्रयास के किसी व्यय से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने म और इसके बाद वितरण पर न्यूनतम खर्च करके, विज्ञापन और बिक्री करने म मनोविज्ञान के उपयोग द्वारा ठीक काम के लिए ठीक आदमी तलाश किया जा सके। इसलिए हम कह सकते है कि औद्योगिक मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसका लक्ष्य मालिक की दृष्टि मे लागत को बिना बढाये, बल्कि यदि सम्भव हो तो इसे कम करके, उत्पादन बढाना, और मजदूर की दृष्टि से एक निश्चित मात्रा पैदा करने या उसे और बढाने मे होने वाले प्रयास मे कमी करना है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि हाल के वर्षों में बहुत से कारखानो म पाच दिन का सप्ताह कर दिया गया है, क्योकि मनोवैज्ञानिक प्रमाणो से यह निश्चय हो गया कि इसका अर्थ है उत्पादन म वृद्धि और साथ ही साथ मजदूर के सुख और सुविधाओ म बढोतरी।

यह बडी महत्वपूर्ण बात है कि उद्योग म, मनोविज्ञान शास्त्री के प्रभाव म, तथा उस "दक्षता व्यापारी" के प्रभाव म, जो औद्योगिक कार्यो का सिर्फ उत्पादन बढाने और इस प्रकार शेयर होल्डरो का नफा बढाने की दृष्टि से अध्ययन करता है, भेद किया जाय। निःसन्देह मनोविज्ञान शास्त्री भी दक्षता म वृद्धि करना चाहता है परन्तु मुख्यत मजदूर दृष्टिकोण से। यह सब से अधिक सस्थापित मनोवैज्ञानिक उपकल्पनाओं म से है, कि सच्ची दक्षता मजदूर की सुख-सुविधा और कल्याण पर ही आधारित है। इसलिए औद्योगिक मनोविज्ञान का कार्य-त्वरण (स्पीडिंग अप) के साथ नही मिलाना चाहिए। वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। इनम से पहली चीज वाछनीय

है, और पिछली विशेषकर मजदूर के लिए बुरी है। कार्यतत्परण में सवल्प को कोई प्रलोभन देकर, कार्यकर्त्ताओं को, दिये हुए समय म कर्जा की अधिकतम तर्कसगत मात्रा से अधिक व्यय करने के लिए प्रेरित किया जाता है। दूसरी ओर, औद्योगिक मनोविज्ञान बरबादी को घटाकर या मजदूरों के गलत चुनाव, काम की दोष-पूर्ण विधियों, औद्योगिक श्रान्ति आदि अदक्षता के कारण उत्पन्न हानियों को दूर करके दक्षता वृद्धि में सहायता करता है। इन तथा अन्य कमियों को दूर करने के लिए और इस प्रकार औद्योगिक दक्षता के कारण होने वाली बरबादी को कम करने के लिए औद्योगिक मनोविज्ञान का उपयोग निम्नलिखित रीतियों से किया जाता है।

व्यावसायिक चुनाव—कर्मचारियों सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मजदूर का चुनाव करने म दो बुनियादी कार्य करने पड़ते हैं (१) समरण स्रोतों से लाभ उठाना और (२) ससाधित उम्मीदवारों म से छटाई करना। मनुष्य-शक्ति प्राप्त करने के लिए समरण स्रोत वर्तमान और भूतपूर्व कर्मचारी, तथा सरकारी और निजी रोजगार दिलाने वाले कार्यालय, विज्ञापन, स्कूल और कालेज तथा आकस्मिक प्रार्थी हैं। क्योंकि भारत में मजदूरों की मात्रा सदा प्रचुर रही है, इसलिए प्रत्येक उद्योग ने वैज्ञानिक चुनाव की विधियों की ओर बिना ध्यान दिये गांव से अपने मजदूर भर्ती किये हैं। कारखानेदार की निगाह में इतना ही काफी रहा है कि हरेक काम के लिए एक आदमी हो। उसने कभी गम्भीरता से यह नहीं सोचा कि उपयुक्ततम आदमी ही रखा जाय। भिन्न उद्योग में नयी भर्ती अब भी जॉबरों के हाथ में है। इस प्रकार नियुक्त मजदूरों को अपनी तरक्की तथा नौकरी की स्थायिता के लिए जाबरों की सद्भावना पर निर्भर रहना पड़ता है। सिर्फ बदली मजदूरों की भर्ती में, विशेष कर बम्बई और अहमदाबाद में कुछ श्रम अधिकारियों के प्रयत्न से थोड़ा सुधार हुआ है। शेष बगों (प्लान्टेशन्स), खानों और बड़े सरकारी कारखानों के लिए मजदूरों की भर्ती ठेकेदारों और मेजरमिस्त्रियों के द्वारा होती है, जिससे बहुत सी बुराइयां पैदा होती हैं। ठेके पर काम करने वाले मजदूरों की अवस्था और भी बुरी है।

परन्तु पिछले कुछ वर्षों में काफी परिवर्तन हुआ है। जुलाई १९४५ में श्रम-मत्रालय के अधीन राष्ट्रीय रोजगार सेवा (नेशनल इम्प्लायमेण्ट सर्विस) की स्थापना मजदूरों की भर्ती की विधियों को सुधारने की दिशा म पहला महत्वपूर्ण कदम रहा है। शुरू में इसकी स्थापना भूतपूर्व सैनिकों और पदमुक्त युद्ध-कर्मचारियों को फिर से जमाने के लिए की गई थी, पर अब यह सब प्रकार के रोजगार तलाश करने वालों की सहायता करती है। इस प्रकार की सेवा की उपयोगिता बड़ी आसानी से समझ में आ सकती है, क्योंकि इससे उपलब्ध मजदूरों के बारे म जितनी अधिक जानकारी मिल सकती है उतनी किसी अकेले कारखानेदार को नहीं मिल सकती। इस सेवा से, जिसे मनुष्य-शक्ति के बारे में बड़ा विस्तृत ज्ञान होता है, बहुत भारी लाभ पहुँच रहा है, और सरकारी विभाग और निजी कारखानेदार इसका मनुष्य शक्ति बैंक के रूप म अधिकाधिक उपयोग कर रहे हैं। इम्प्लायमेण्ट एक्सचेंजों के कार्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होरही

निम्नलिखित तालिका से पता चलता है कि रोजगार दफ्तर स्वाधीनता के बाद से कितनी उपयोगी सेवा कर रहे हैं ।

रोजगार सेवा के आंकडे[1]

अवधि	अवधि के अंत में रोजगार दफ्तरो की संख्या	अवधि मे नाम लिखाने वालो की संख्या	अवधि मे कितने प्रार्थियो को रोजगार दिलाया गया	अवधि के अन्त मे कितने प्रार्थियो के नाम चालू रजिस्टर मे थे	इन दफ्तरो से प्रतिमास कितने मालिको ने लाभ उठाया	अवधि में कितने खाली स्थानो की सूचना दी गयी	अवधि के अंत में कितने खाली स्थानो के बारे मे बातचीत चल रही थी
१	२	३	४	५	६	७	८
१५ अगस्त १९४७ से ३१ दिसम्बर १९४७ तक	७५	२०७८३८	६१७२९	२३६७३४	२८७९	१७८९२	६८७५६
१९४८	७७	८७०९०४	२,६०,०८८	२३९०३३	३४२०	३८०८८५	५५१३१
१९४९	१०९	१०६६३५१	२५६८०९	२७४३३५	४४८३	३६२०११	२९२९२
१९५०	१२३	१२१०३५८	३३११९३	३३०७४३	५५६६	४१९३०७	२८१८९
१९५१	१२६	१३७५३५१	४१६८५८	३,२८,७१९	६३६४	४८६५३४	२१७६६
१९५२	१३१	१४७६६९९	३५७८२८	४३७५७१	६०२३	४२९५५१	२२८७३
१९५३	१२६	१४०८८००	१८५४४३	५२२३६०	४३२०	२५६७०३	२०९१४
१९५४	१२८	१४६५४९७	१,६२,४५१	६०९७८०	४७५१	२३९८७५	२१२८५
१ जनवरी १९५५ ३० सितम्बर	१३०	११८४८२३	१२४६०१	६९३७७५	४८६७	२०३०९५	२९९१६

1. Source Indian Labour Gazette, 1955.

है । केन्द्रीय सरकार का कोई विभाग किसी खाली स्थान को सीधे भरती द्वारा तब तक नहीं भर सकता जब तक इम्प्लायमेण्ट एक्सचेंज यह प्रमाणित न कर दे कि उनके पास उस कार्य के लिए किसी उपयुक्त व्यक्ति का नाम दर्ज नहीं है। (तालिका पृष्ठ५८२पर)

निजी उद्योगो में रोजगार दफ्तर का उपयोग कम से कम १९५१ तक बहुत बढ गया, पर १९५१ के बाद सूचित किये जाने वाले खाली स्थानों की सख्या घटने लगी, यहा तक कि १९५४ में यह २,३९,८७५ रह गयी और जनवरी सितम्बर १९५५ में २०३०९५ रह गयी, जबकि १९५१ म यह सबसे अधिक अर्थात्४,८६,५३४थी। रोजगार के लिए लिखाए गये नामो की सख्या बढती गयी है। जबकि नियुक्तिया कम होती गयी हैं, जिसका परिणाम यह हुआ है कि रोजगार की स्थिति, खासकर निजी क्षेत्र में, बिगडती गई। चालू रजिस्टर (Live Register) के आजीविका सम्बन्धी विश्लेषण से पता चलता है कि सितम्बर १९५४ के अन्त में रोजगार तलाश करने वालो की कुल सख्या में २९ ०%क्लर्क कार्य करने वाले लोग थे,१० १%टैक्नीकल आदमी थे, ३ ३% अध्यापक थे और ५१ १% अकुशल मजदूर और ६ ५% अन्य लोग थे। अलग-अलग वर्गों म पजीयित प्रत्येक सौ प्रार्थिया म से सिर्फ ५ ७ टैक्नीकल कार्य थे, १ ७ क्लर्क कार्य थे, ३ ४ एसे कार्य थे जिनमें कुशलता की आवश्यकता नही और ५.२ अन्य प्रकार के कार्य थे। सितम्बर १९५५ के अन्त में काम के लिए प्रार्थना-पत्र देने वालो की कुल सख्या में से० ८ प्रतिशत औद्योगिक पर्यवेक्षण सेवाओ के लिए थे। ८ २ प्रतिशत कुशल और अर्ध-कुशल मजदूर थे, २९ ४ प्रतिशत लिपिक मजदूर थे, ३ ५ प्रतिशत अध्यापक ४९ १ अकुशल मजदूर थे और ९ प्रतिशत अन्य लोग थे। सब राज्यो से मिली रिपोर्टो से प्रकट होता है, कि सामुदायिक परियोजनाओ (Community projects) और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओ (National Extension Services) के क्षेत्रो को छोडकर अन्य क्षेत्रो में बेरोजगारी बढी है। प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तरो पर मजदूरो को इधर से उधर जाने में सुविधा करने के लिए जो व्यवस्था की गयी थी, उसमें काफी सफलता हुई है।

भेंट (Interview)—किसी भावी उम्मीदवार के रोजगार के लिए उपस्थित होने के बाद, रोजगार विभाग दूसरा कदम यह उठाता है कि उम्मीदवार को देखकर और उसके पास जो प्रमाणपत्र आदि हो, उनकी जाच करके प्रार्थी के सामर्थ्य का अन्दाजा करके चुनाव करे। प्रत्येक भेंट स्पष्ट और मैत्री रीति से की जानी चाहिए। यह बात दोनों पक्षों पर लागू होती है। भेंट बहुत जल्दी में नही होनी चाहिए, बल्कि इतनी लम्बी होनी चाहिए कि उम्मीदवार अपनी स्वाभाविक अवस्था में हो जाय, जिससे वह अपने तथा अपने पुराने रोजगार के बारे में बातचीत करके अपना स्वाभाविक रूप प्रकट कर सके। कई बार किसी उम्मीदवार का ठीक अन्दाजा करने के लिए एक और भेंट आवश्यक होती है। भेंट में यह जानकारी भी दी जानी चाहिए कि प्रार्थी ने क्या और किस कम्पनी में काम करना है। भेंट के बाद कार्यकर्ता को सगठन में स्थान देने के लिए उसकी कुछ

मानसिक और व्यापारिक परीक्षाएँ होंगी। इस कार्य के लिए जो परीक्षाएँ उपयोगी सिद्ध हुई हैं, वे ये हैं । **बुद्धि परीक्षा**—जिसमें बुद्धि या पठन-पाठन की अभियोग्यता मापी जाती है, उम्मीदवार की विभिन्न कार्यों में रुचि-अरुचि जाँचने के लिए अभिरुचि परीक्षा, बुद्धि से असम्बन्धित कई जन्मजात योग्यताएँ नापने के उद्देश्य से की जाने वाली अभियोग्यता परीक्षा और व्यक्ति के सामाजिक जीवन, पारिवारिक सम्बन्धों, भावना सम्बन्धी प्रक्रिया आदि से सम्बन्ध रखने वाली व्यक्तित्व परीक्षाएँ आदि। मानसिक परीक्षाएँ हो जाने के बाद उम्मीदवार की धंधा परीक्षाएँ करनी चाहिएँ। इस प्रयोजन के लिए श्रमिकों का कार्यों के अनुसार वर्गबद्ध किया जाता है, और प्रत्येक कार्य में उनको विशेषज्ञ, कुशल, शिक्षार्थी, और नौसिखुओं के रूप में अलग-अलग कोटि में रखा जाता है। नौसिखुआ वह होता है जिसे वह कार्य बिल्कुल नहीं आता। शिक्षार्थी वह है जो उस कार्य के कुछ मूल तत्व जानता है पर इतना कुशल नहीं है कि उसे कोई महत्वपूर्ण काम सौंप दिया जाय। कुशल कार्यकर्त्ता उस धन्धे को करने वाले लोगों द्वारा किया जाने वाला प्रायः प्रत्येक काम पूरा करने की क्षमता रखता है। विशेषज्ञ उस धन्धे के किसी भी काम को अधिक शीघ्रता और अधिक कुशलता से पूरा कर सकता है। ये धंधा परीक्षाएँ मौखिक प्रश्नों के रूप में, या कार्य करने के रूप में, अथवा दोनों के रूप में हो सकती हैं। पर यह कह देना उचित होगा कि चुनाव में मनोवैज्ञानिक विधियों और परीक्षाओं पर, जिनकी संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है, और जिनमें से अधिकतर की उपयोगिता संदिग्ध है, बहुत अधिक भरोसा न करना चाहिए। हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि वे सब विधियाँ निरुपयोगी हैं, परन्तु उन्हें चुनाव की समस्या का सर्वांगपूर्ण हल न समझना चाहिए।

यदि भेंट तथा विविध परीक्षाओं के परिणाम-स्वरूप उम्मीदवार स्वीकृत हो जाय, तो उसे रोजगार देने में अगला कदम होगा कि उसे पूरी डाक्टरी जाँच के लिए फैक्टरी के डाक्टर के पास भेजा जाय। डाक्टरी जाँच से कारखानेदार और उम्मीदवार दोनों का लाभ है। उम्मीदवार को अपने शरीर की वास्तविक अवस्था का पता चल जाता है और डाक्टर की सलाह उसे अपनी कमियों को दूर करने का मौका देती है। उसे अपनी शारीरिक दशा के अनुकूल काम मिल सकता है, और इस प्रकार कुछ ही दिनों में स्वास्थ्य नष्ट कर लेने के बजाय वह दृढ़ एवं स्वस्थ मनुष्य के रूप में अपनी जीविका कमा सकता है। कारखानेदार का यह लाभ होता है कि शरीर से समर्थ लोग अपने उपयुक्त काम पर नियुक्त होते हैं। इससे श्रमिक काम छोड़कर कम भागता है, सन्तोष बढ़ता है, और समय कम नष्ट होता है। फैक्टरी में जिस तरह का काम है, उसके लिए समर्थ और असमर्थ श्रमिकों को अलग-अलग कर लिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप फैक्टरी में ऐसे स्वस्थ मजदूरों का जमाव हो जाता है जिनमें प्रबन्ध के प्रति सद्भावना हो जाती है। श्रमिकों के साधारण शरीर की परीक्षा करनी चाहिए और विकलताएँ नोट कर लेनी चाहिए। कर्मचारियों को आँख के संकट से बचाने के लिए उनकी दृष्टि शक्ति की परीक्षा करनी चाहिए। यदि उम्मीदवार मुँह से साँस लेता है तो उसे ऐसी जगह रखना चाहिए जहाँ धूल न हो। हृदय के रोगों, और तपेदिक, प्लूरिसी

ब्रोन्काइटिस और दमे के लिए उसकी छाती की जाँच करनी चाहिए। निचले अंगों की, विशेषकर भारी काम करने में पूरी तरह परीक्षा करनी चाहिए। चपटे पाँवों और मस्त जोड़ों की विशेष रूप से जाँच करनी चाहिए। चपटा पाँव अत्यधिक थकान का एक कारण होता है और इसलिए चपटे पाँव वाले व्यक्ति को ऐसा काम देना चाहिए जो बैठकर किया जा सके। जाँच के बाद उसके परिणाम उम्मीदवार को बता देने चाहिए और उसे यह सलाह दे देनी चाहिए कि कौन-कौन से काम उसके लिए सुरक्षित हैं, और उसे अपने स्वास्थ्य के लिए क्या-क्या कदम उठाने चाहिएँ।

व्यावसायिक पथ-प्रदर्शन—किसी कार्य के लिए ठीक आदमियों का चुनाव दक्ष कार्यकर्ताओं की प्राप्ति की दिशा में पहला कदम है। नौकरी में रख लेने के बाद नये आदमी को काम सौंपने के मामले में सजगता और समझदारी से काम लेना चाहिए। उसे यह निश्चय करने में सहायता और पथप्रदर्शन की आवश्यकता है कि उसके सामने जितने काम हैं, उनमें से किसको वह अच्छी तरह कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि नये आदमियों को उनकी योग्यताओं और प्रवृत्तियों के अनुसार ऐसे ढंग से बाँट दिया जाए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी सबसे अधिक दिलचस्पी के काम में पहुँच जाए। व्यावसायिक पथप्रदर्शन का आधारभूत विचार यह है कि नवयुवक कार्यकर्ता को उसके काम के चुनाव के बारे में विशेषज्ञ की सलाह मिल सके। यदि इसे सफलता-पूर्वक लागू न किया गया तो उसके दुष्परिणाम बड़े महत्वपूर्ण होंगे। वैयक्तिक असन्तोष और औद्योगिक अशान्ति तभी पैदा होती है जब व्यक्तियों को अपनी योग्यता के अनुसार पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता। अरुचिकर और अनुपयुक्त काम में अपना जीवन बिताने से मनुष्य का मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। बुद्धिमत्तापूर्ण व्यावसायिक पथ-प्रदर्शन सामाजिक शान्ति कायम रखने में महत्वपूर्ण योग देता है। व्यावसायिक चुनाव और पथ-प्रदर्शन को लागू करने से औद्योगिक थकान कम हो जाती है, उत्पादन बढ़ जाता है, श्रमिकों का पलायन (टर्न-ओवर) घट जाता है और औद्योगिक दुर्घटनाओं की संख्या कम हो जाती है।

आधुनिक उद्योग इस बात के महत्व को अधिकाधिक समझ रहा है कि प्रत्येक कार्य पर उस व्यक्ति को रखा जाय जो न केवल उस कार्य को कर सकता हो, बल्कि उसकी प्रकृति भी उस कार्य के अनुकूल हो। कार्यकर्ताओं के स्थान निश्चित करने में तभी सफलता हो सकती है, जब प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे काम पर रखा जाय जिसे करने की क्षमता उसमें विद्यमान है, और वह कार्य करने की पर्याप्त और विशिष्ट प्रशिक्षा उसे दी जाय। अगर वह कार्य उसकी क्षमता से अधिक कठिन है, या उसे पर्याप्त प्रशिक्षा नहीं मिली, तो इसका परिणाम होता है विभ्रम, कम उत्पादन और कार्यकर्ता या मशीन को हानि पहुँचाने की सम्भावना। अगर काम बहुत आसान है तो उसमें आदमी ऊब जाता है। उसका मन इधर-उधर घूमता है और वह दिवास्वप्न देखता है और इसके साथ उसके हृदय में असन्तोष बना रहता है। मनुष्य का सबसे बड़ा अनु-कूलन और सन्तुष्टि तब होती है, जब उसे अपनी सारी शक्ति, उत्साह और योग्यता के

निकलने का रास्ता मिल जाए। अगर उसके कार्य के लिए उन योग्यताओं की आवश्यकता हो जो उसमें नही हैं और जिनका वह विकास नही कर सकता तो वह सदा असफलता की निराशा अनुभव करता रहता है। इसके विपरीत, यदि उस कार्य मे उसकी योग्यता का थोडा सा अश व्यय होता हो तो वह आत्माभिव्यक्ति के और साधन निकाल लेता है, जो अनुचित आलोचना या किसी मानसिक रोग का रूप ले लेते हैं। प्रत्येक पद पर ऐसे व्यक्ति को रखना चाहिए जो उस पद को चाहता हो और जो यह समझता हो कि मै और जो पद पा सकता हूँ उससे यहा अधिक अच्छी अवस्था मे हूँ। बेमौज् और असन्तुष्ट लोग बोझ होते हैं। प्रत्येक पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करना अधिक अच्छा है, जो उस पद के लिए योग्य मात्र हो। ऐसे व्यक्ति को उस पद पर नियुक्त करना उचित नही जिसे अधिक अच्छे पद पर नियुक्त करना होगा। परन्तु रोजगार का प्रक्रम पद पर नियुक्त करने के साथ ही समाप्त नही हो जाता। कार्यकर्त्ता के कार्य को देखते रहना और उसकी प्रगति की रिपोर्ट प्राप्त करना आवश्यक है। विशेष रूप से नये कार्यकर्त्ता द्वारा किये गये कार्य की श्रेष्ठता, बिगडी हुई चीजो की मात्रा और भूलो की, जिनके परिणामस्वरूप नुकसान हुआ हो, जाच करना लाभदायक है। यह जाच लगभग एक महीने जारी रखनी चाहिए, और यदि इतने समय बाद कार्यकर्त्ता का काम सन्तोषजनक मालूम हो तो उसे पक्का कर देना चाहिए। इसके बाद उसकी सेवा का नियमित अभिलेख रखना चाहिए। इसमे विभिन्न परीक्षाओ का परिणाम, दैनिक प्रगति, उसकी मासिक उपस्थिति, और उसके वेतनक्रम, पदोन्नति आदि का उल्लेख होना चाहिए।

व्यावसायिक प्रशिक्षण—प्रशिक्षण सुप्रबन्ध का मूलाधार यह है कि कर्मचारियो को व्यवस्थित रूप से प्रशिक्षित किया जाय। तभी वे अपना-अपना काम अच्छी तरह से कर सकते हैं। चाहे आपने कितनी ही सावधानी से आदमियो का चुनाव किया हो या उनमें अपने अपने काम के लिए कितनी ही योग्यता हो, पर यदि उन्हे सन्तोषजनक रीति से अपना कार्य पूरा करना है तो बाकायदा प्रशिक्षण आवश्यक है। नये कार्यकर्त्ताओ को शुरू से सही ढग से काम करने की शिक्षा मिलनी चाहिए। ऐसा उपाय भी होना चाहिए कि नई विधियो का विकास होने पर वे पुराने कर्मचारियो को सिखाई जा सकें। प्रशिक्षण कार्यक्रम से प्रबन्ध को अपनी नीतियो को सावधानी और स्पष्टता से समझने का मौका मिलता है। कर्मचारियो की छोटी-छोटी शिकायतो के कारण पैदा हुई गलत धारणाओ के स्थान पर सीधी, सही, जानकारी प्राप्त होती है। प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि मजदूरो के पलायन मे कमी हो जाती है, काम कम खराब होता है, सामान और उपस्कर की कम हानि पहुँचती है और श्रेष्ठता तथा मात्रा म सुधार हो जाता है। सबसे बडी बात यह है कि सद्भावना पैदा हो जाती है और अन्तिम विश्लेषण किया जाय तो यह अनुभव होता है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रबन्ध के रुख का परिचायक होता है।

प्रशिक्षण की ये चार विधिया बहुत अधिक प्रचलित हुई हैं—(१) कार्य-

करते समय प्रशिक्षण, (२) प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षण, (३) अनुभवी कार्यकर्ता द्वारा प्रशिक्षण और (४) पर्यवेक्षण द्वारा प्रशिक्षण। जब कर्मचारियों को कार्य करते समय प्रशिक्षित किया जाता है, तब उन्हें वास्तविक उत्पादन की अवस्थाओं और आवश्यकताओं का अनुभव होता है। इनसे प्रशिक्षण काल के बाद वे प्रशिक्षण विद्यालय या केन्द्र की अवस्थाओं में वास्तविक अवस्थाओं के उत्पादन का सामंजस्य करने से बच जाते हैं। इसके अलावा, प्रशिक्षार्थी अपने प्रतिदिन के कार्य में लागू होने हुए नियम, कार्यविधियां आदि, आसानी से सीख लेता है। प्रबन्ध प्रशिक्षार्थी की योग्यता का अन्दाजा कर सकता है। प्रशिक्षण विद्यालय या केन्द्र सरकार द्वारा या अन्य राजकीय संस्थाओं द्वारा भावी कार्यकर्ताओं को विशिष्ट धन्धों के प्रशिक्षण देने के लिए खोले जाते हैं। प्रशिक्षण अनुभवी साथी कार्यकर्ताओं द्वारा भी दिया जा सकता है। इस तरह का प्रशिक्षण वहां विशेष रूप से ठीक रहता है जहां अनुभवी कार्यकर्ताओं की सहायकों की आवश्यकता हो। यह उन विभागों में भी ठीक रहता है, जिनमें कार्यों की एक श्रेणी को पूरा करने के लिए कार्यकर्ताओं को एक के बाद दूसरे कार्यांश (जॉब) पर जाना पड़ता है। पर्यवेक्षण द्वारा प्रशिक्षण में प्रशिक्षार्थियों को अपने अफसरों से परिचित होने का मौका मिल जाता है और पर्यवेक्षकों को कार्यांश की पूर्ति की दृष्टि से प्रशिक्षार्थियों की योग्यता की जांच करने का अच्छा मौका मिलता है। एप्रेंटिस ट्रेनिंग या प्रशिक्षार्थी प्रशिक्षण का लक्ष्य सब कार्यों में कुशल कारीगर बनाना है। प्रशिक्षार्थी-प्रशिक्षण का मुख्य भाग अपने स्थान पर उत्पादन कार्य करते हुए प्राप्त किया जाता है। प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को पूर्व निर्धारित समयक्रम के अनुसार एक कार्यक्रम दे दिया जाता है। संतुलित कार्यक्रम से उसे धन्धे का दक्ष प्रशिक्षण मिल जाता है और प्रशिक्षार्थी को एक जिम्मेवार कार्यकर्ता और इसके बाद सुपरवाइजर (पर्यवेक्षक) बनने का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए काफी समय मिल जाता है।

आजकल शिल्पिक तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की समस्याओं की ओर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर काफी ध्यान दिया जा रहा है। भारत में व्यावसायिक प्रशिक्षण की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि निरक्षरता प्रायः सर्वत्र विद्यमान है, परन्तु हाल में कुछ म्युनिसिपैलिटियों और कारखानों ने प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध किया और स्वतन्त्रता के बाद से प्रौढ़ शिक्षा की ओर साक्षरों का ध्यान खींचा है। यद्यपि कुछ कारखानेदारों और रेलवे वर्कशापों में कुशल कार्यों के लिए प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था है परन्तु भारत-व्यापी पैमाने पर बनाई गई प्रशिक्षण की एकमात्र समन्वित योजना वह है जिसका सूत्रपात श्रम मंत्रालय ने पुनर्वास और रोजगार के महानिदेशक के आधीन किया है। इसके अलावा, देश में विशेष रूप से उद्योगों के लिए मजदूरों को प्रशिक्षित करने तथा पुराने मजदूरों को पुनः शिक्षा (रिफ्रेशर कोर्स) देने के वास्ते शिल्पिक शिक्षालयों की बहुत कमी है।

शिक्षा मंत्रालय द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार १९५० में भारत में ११२ इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिक संस्थाएँ थीं, जिनमें विभिन्न स्तरों, अर्थात् डिगरी

डिप्लोमा और स्नातकोत्तर पढ़ाई के शिल्पिक प्रशिक्षण की सुविधा थी। इन संस्थाओं में इस समय इंजीनियरिंग विषयों के लिए ७२०० तथा प्रौद्योगिक विषयों के लिए लगभग १७०० छात्र प्रति वर्ष भरती होते हैं, और करीब ३००० इंजीनियर और लगभग ७८० प्रौद्योगिक (टैक्नालॉजिस्ट) पढ़कर निकलते हैं। शिक्षकों की कमी दूर करने के लिए मध्य प्रदेश में कोनी-बिलासपुर में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की गई थी जो अच्छी प्रगति कर रही है। इस संस्था में केन्द्रीय और राज्य सरकारों, गैर-सरकारी संस्थाओं तथा कारखानों के भेजे हुए व्यक्तियों तथा सीधे प्रार्थनापत्र देने वाले व्यक्तियों को प्रविष्ट किया जाता है। शिल्पिक शिक्षा की अखिल भारतीय परिषद ने देश में चार प्रादेशिक ऊँचे दर्जे की प्रौद्योगिक संस्थाएँ स्थापित करने की सिफारिश की थी, जिनमें से प्रत्येक दो हजार पूर्व-स्नातकों (अन्डर-ग्रेजुएट) और एक हजार स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को इन्जीनियरिंग और टैक्नोलोजी की विविध शाखाओं का प्रशिक्षण दे सके। इन चार संस्थाओं में से एक, अर्थात् इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ टैक्नोलोजी, खड़गपुर में बनाई जा चुकी है। कारखाने अपने निजी प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं के अलावा एम्प्लायमेण्ट एक्सचेंजों की मारफत भी कुशल कर्मचारी और शिल्पी प्राप्त कर सकते हैं।

कार्यांश (जॉब) की परिभाषा और मूल्यांकन—अब तक हमने कर्मचारी नियुक्त करने के प्रसंग में उम्मीदवार को कार्यांश में ठीक से जमाने के लिए उसके अध्ययन और प्रशिक्षण की ही ओर ध्यान दिया है। परन्तु कार्यभार (टास्क) के लिए उपयुक्त व्यक्ति छाँटते हुए यह जानना परमावश्यक है कि जो पद भरना है, वह क्या है। प्रत्येक काम या उसके उपविभाग का, प्रमापीकृत "ट्रेड स्पेसिफिकेशन्स" के आधार पर कोई असंदिग्ध नाम होना चाहिए। इससे गड़बड़ी नहीं होगी। क्योंकि रोजगार सेवा अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही है, इसलिए प्रमाप नामों का एक नियमित सन्दर्भ तैयार किया जाना चाहिए। इसके बिना यह गुंजाइश है कि मैकेनिकल ड्राफ्ट्समैन को मशीन डिजाइनर के नाम पर भर्ती किया जाय, या फिटर अथवा एसेम्बलर को एक अर्धकुशल मशीनिस्ट की जगह रख दिया जाय, इत्यादि। कार्यांशों की परिभाषाएँ तैयार करने के बाद, अगला कदम यह है कि कार्यांश का विश्लेषण किया जाय और इस विश्लेषण के आधार पर काम के स्वरूप के विवरण का खाना, तथा कर्मचारी को जिन अवस्थाओं में काम करना होगा उनकी रूपरेखा, तैयार की जाय। इसके बाद कार्यांश के मूल्यांकन का नम्बर आता है। प्रत्येक कार्यांश का आपेक्षिक मूल्य निर्धारित करने के लिए विशिष्ट योजनाबद्ध प्रक्रिया के अनुसार कार्यांश के निर्धारण को कार्यांश मूल्यांकन कहते हैं। कार्यांश के मूल्यांकन के सिद्धान्त सब प्रकार के कर्मचारियों, कार्यकर्त्ताओं तथा प्रबन्ध अधिकारियों पर लागू किये जा सकते हैं। वे छोटे-बड़े सब तरह के कारखानों पर लागू किये जा सकते हैं। कार्यांश मूल्यांकन का एकमात्र प्रयोजन यह है कि जिन विभिन्न इकाइयों और संस्थाओं ने विभाजित किया है उनके सब कर्मचारियों के लिए उनकी आपेक्षिक कठिनता के अनुसार उन्हें वेतन मिले। उदाहरण

के लिए, एक मशीनिस्ट और एक इलेक्ट्रीशियन के कार्य सर्वथा भिन्न प्रतीत हो सकते हैं। अगर उनमें एक ही कठिनाई हो और एक से ही कौशल, प्रयास और बुद्धि की आवश्यकता हो तो दोनों को एक ही दर से अदायगी की जायगी। कार्यांश मूल्यांकन से अनेक तरह से लाभ होता है और कार्यांश मूल्यांकन की योजना चलती होने पर दरों में असंगति कम हो जाती है, और मजदूरी का सारा ढांचा एकीकृत हो जाता है। नाल्स और टोम्सन के अनुसार[1] 'कार्यांश मूल्यांकन से बहुत सी बुराइयां दूर करने में सहायता होती है जो प्रायः गलत मजदूरी और वेतन की पद्धतियों से पैदा हो जाती हैं। ये निम्नलिखित हैं—(१) उन व्यक्तियों को ऊँची मजदूरियां और वेतन देना जो ऐसे पदों पर हैं जिन पर विशेष कौशल, प्रयत्न और जिम्मेदारी की आवश्यकता नहीं होती, (२) नए कार्यकर्ताओं को उनके काम की तुलना में कम धन देना, (३) एक व्यक्तियों को तरक्की देना जो उसके पात्र नहीं, (४) वेतन दर और वेतन वृद्धि योग्यता के बजाय वरिष्ठता (सीनियारिटी) के आधार पर निश्चित करना, (५) एक जैसे अथवा निकट-सम्बद्ध कार्यांशों या पदों के लिए बहुत अलग-अलग मजदूरी देना, (६) मूलवंश, लिंग, धर्म या राजनीतिक विभिन्नताओं के कारण असमान मजदूरी और वेतन देना।

गुण-निर्धारण (मैरिट-रेटिंग)—गुणनिर्धारण किसी कर्मचारी के सुपरवाइजर या अन्य अर्हतायुक्त व्यक्ति द्वारा, जो कर्मचारी की कार्य-पूर्ति से परिचित है, उसके व्यवस्थित मूल्यांकन को कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह वह पद्धति है जिसमें कर्मचारियों की वैयक्तिक भिन्नताओं में कोई वर्गीकरण ढूंढने का यत्न किया जाता है। वे जो कार्य करते हैं, उनकी दृष्टि से उनके व्यक्तित्वों की आपेक्षिक श्रेष्ठता का पता लगाने की यह एक रीति है, जबकि कार्यांश मूल्यांकन स्वयं कार्यांश का विश्लेषण है, जिसमें यह पता लगाया जाता है कि जो व्यक्ति इस कार्य को करे, उसमें कौन-कौन सी विशेषताएँ होनी चाहिएँ, अर्थात् सारे कार्यक्रम में अन्य कार्यांशों की तुलना में इसकी आपेक्षिक अर्हता क्या है। गुण-निर्धारण से, किए जाने वाले कार्यांशों तथा उन्हें करने में यत्नशील व्यक्तियों के बारे में अधिक जानकारी हो जाती है। जिन कर्मचारियों का गुण-निर्धारण किया जाता है वे निर्धारण कार्यक्रम को प्रतियोगिता की भावना से स्वीकार करते हैं, और इस प्रकार अच्छा कार्य करने के लिए एक और प्रेरणा हो जाती है। उन लोगों का भी, जिनकी उत्पादकता प्रमाप तक नहीं पहुँचती, पता चल जाता है और उन्हें बदल दिया जाता है। निश्चित प्रमापों के रूप में कर्मचारियों के मूल्यांकन और तुलना से विशेष योग्यता वाले व्यक्ति प्रकाश में आते हैं। इससे पदोन्नति और तबादले के लिए चुनाव में सुविधा होती है।

पदोन्नति और स्थानान्तरण (Promotions and Transfers)

पदोन्नति और नियुक्ति का आधारभूत सिद्धान्त, जिसे प्रत्येक मालिक को ध्यान में रखना चाहिए यह है कि जितना धन वह खर्च करना चाहता है, उतने में

1. इंडस्ट्रियल मैनेजमेंट, पृष्ठ ३८७।

वापस ले ले, इत्यादि। पर दूसरा मानवीय पहलू भी है और वह यह कि कर्मचारी प्रबन्धक या उसका सहायक उस कर्मचारी से सीधे मिले। कुछ ही समय पूर्व, कर्मचारियो को एक दिन के नोटिस पर या बिना ही नोटिस दिये निकाल दिया जा सकता था, और मालिक उस व्यक्ति की सुरक्षा नष्ट हो जाने से, उसे होने वाली क्षति या फैक्टरी के अन्य कर्मचारियो के हौसले या समाज पर पडने वाले प्रभाव की कोई परवाह न करता था। परन्तु आजकल कर्मचारियो सम्बन्धी नीति होने के कारण, प्राय अनुचित बरखास्तगी नहीं हो पाती। कर्मचारी प्रबन्धक यह देखता है कि कर्मचारी की अनुचित बरखास्तगी न हो सके, और उसे हटाने से पहले अपनी स्थिति स्पष्ट करने का उचित मौका दिया जाय। उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जाने वाला कर्मचारी यह अनुभव करे कि मेरे साथ न्याय हुआ है। वह यह न अनुभव करे कि उसके साथ अन्याय हुआ है, और उसके पुराने साथियो म कोई ऐसा असन्तोष न हो जिसे वे अनुचित समझते हो। दूसरी ओर सम्भव है कि कर्मचारी काम की दशाओ या अनुचित व्यवहार के कारण असन्तुष्ट होकर अथवा विवाह करने के लिए उस जिले मे बाहर चले जाने के कारण, या किसी अन्य उचित कारण से काम छोड रहा हो। जहा किसी कार्यकर्त्ता के काम छोड जाने से असन्तोष ध्वनित होता है, वहा कर्मचारी अफसर को यह देखना चाहिए कि सगठन या पर्यवेक्षण की कमी दूर हो जाय और अगर सम्भव हो तो अच्छा कर्मचारी काम छोडकर न जाय।

अनुबन्ध (कन्ट्रैक्ट) के पूरा हो जाने के कारण या अन्य बाहरी आर्थिक परिस्थितियो के कारण कार्यकर्त्ताओ का अतिरेक हो जाना सम्भव है, और उस समय प्राय सब से बाद म काम पर लगे कर्मचारियो की छटनी आवश्यक हो जाती है। यदि यह छटनी बडे पैमाने पर होनी है तो विस्तृत कार्यो की पहले ही सावधानी से योजना बनाना आवश्यक है। प्रत्येक अवस्था म कर्मचारियो को पर्याप्त दिनो का नोटिस या नोटिस के बदले म वेतन दे दिया जाना चाहिए जिससे उन्हे दूसरा रोजगार तलाश करने का मौका मिल सके। कारखाने के प्रमुख कर्मचारियो (फोरमैनो या हेड जौबरो) को बुलाकर शुरू मे ही सेवामुक्ति के कारण समझा देने चाहिएँ। साधारणतया "पीछे आये पहले जाये' के सिद्धान्त पर अमल होना चाहिए।

अशिष्ट आचरण के कारण बरखास्तगी सदा किसी निश्चित साक्ष्य के आधार पर होनी चाहिए, चाहे वह नियमो का भग हो, या दो कर्मचारियो में झगडा हो। कर्मचारी प्रबन्धक को कार्यमुक्त करने का आदेश देने से पहले मामले की जाच अवश्य करनी चाहिए। कर्मचारी को अपना पक्ष पेश करने का काफी मौका मिलना चाहिए। यदि भावना प्रधान-मामलो म, जिनमे शराब पीने की अवस्था भी है, घटना वाले दिन ही फैसला करने की अपेक्षा अगले दिन तक प्रतीक्षा करना अधिक अच्छा है। जो लोग घटना का विवरण देगे, वे ठडे, शान्त और स्वस्थ-चित्त होने पर जो किस्सा बयान करेगे, वह विक्षुब्ध चित्तता के समय वाले किस्से मे सर्वथा भिन्न होगा।

असन्तोषजनक काम के कारण तब कर्मचारी को बरखास्त करना पडता है,

जब किसी विभाग से उसकी शिकायतें प्राप्त हों। इस तरह के मामलों में कर्मचारी अक्सर प्राय उस आदमी को बुलाकर उससे यह कहता है कि तुम्हारा काम बहुत दिनों से असन्तोषजनक है और तुम्हें कई बार चेतावनी दी गई, फिर भी काम में कोई सुधार नहीं हुआ, और अन्त में यह अनुभव किया गया है कि तुम्हें कार्यमुक्त कर दिया जाय। पर यदि कर्मचारी विरोध प्रदर्शित करे और कुछ तथ्यों को गलत बताये तो जिस व्यक्ति ने आरोप लगाये हैं, उसे कर्मचारी के सामने वे आरोप दुहराने चाहिए। दोनों ओर के तथ्य सुनकर अन्तिम निर्णय करना कर्मचारी प्रबन्धक का काम है। परन्तु कर्मचारी से यह मनवा लेना अधिक अच्छा है कि उसका कार्य असन्तोषजनक रहा है और क्योंकि उसने कोई सुधार नहीं किया, इसलिए उसे कार्यमुक्त कर देना सर्वथा न्यायसंगत है। जिस व्यक्ति को कार्यमुक्त करना हो उसे नोटिस काल में कार्य करने के लिए कह कर अपने तथा और सबके लिए परेशानी पैदा करने की अपेक्षा उसे नोटिस काल का वेतन दे देना अधिक अच्छा है। परन्तु जब यह सम्बन्ध समाप्त होना ही है तो उसे मित्रतापूर्ण ढंग से कार्यमुक्त करने की कोशिश करनी चाहिए। उसके प्रति विद्वेष, उपहास या कठोरता दिखाने की आवश्यकता नहीं। यदि उसे एक कम्पनी में सफलता नहीं हुई तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसे अगली कम्पनी में खूब सफलता नहीं होगी, बल्कि और जगह उपयुक्त काम प्राप्त करने में उसकी मदद करनी चाहिए।

श्रमदक्षता (Labour Efficiency)

जिस कम्पनी की कीमतें बहुत ऊँची होती हैं, उसे या तो कीमतें कम करनी होंगी और या ग्राहक से मिलने से कारबार छोड़ना होगा। कीमतें कम करने का अर्थ लागत में कमी करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि मजदूरों की दक्षता बढ़ाने के द्वारा प्राय सबसे अधिक प्रभावी रीति से होती है। अभिप्राय यह है कि यदि किसी व्यक्ति को इस तरह काम करने में प्रशिक्षित किया जाए कि समय या शक्ति का अपव्यय न हो, तो वह उतने ही या उससे कम समय में परिश्रान्ति में वृद्धि हुए बिना अधिक और अच्छा काम कर सकता है, वह अधिक दक्ष है। पर यह विचार करने से पहले कि मजदूरों की दक्षता वृद्धि से लागत में कमी क्यों और कैसे हो सकती, हम पहले दक्षता का अर्थ और इसकी माप तय कर लें।

प्राय दक्षता का प्रयोग वस्तु की लागत का हिसाब बिना लगाए उसकी मात्रा या क्वालिटी बताने के लिए किया जाता है। पुन दक्षता का प्रयोग कभी-कभी मानवीय जीवपिण्ड के किसी सहज (Inherent) गुण को बताने के लिए किया जाता है, पर कारबार में दक्षता उस सम्बन्ध को कहते हैं जो वस्तु का लागत से होता है। इसलिए इस अर्थ में दक्षता किसी निश्चित प्रमाप लागत पर प्राप्त होने वाली वस्तु की मात्रा और क्वालिटी को बताती है। "बिल्कुल यथार्थ रूप में कहें", प्रोफेसर फ्लोरेंस कहते हैं, "तो दक्षता वस्तु उत्पादन की लागत के अधिक या कम होने के अनुसार अधिक या कम कही जाती है, और क्योंकि इस अनुपात में हर (denominator) भी उतना ही बदल सकता है, जितना अंश (Numerator), इसलिए दक्षता उस लागत को भी प्रकट कर सकती है, जिस पर कोई उत्पादन का दिया हुआ प्रमाप प्राप्त

हुआ पर दक्षता बताने की इस उल्टी विधि को हम मितव्ययिता (Economy) कहते हैं। तो भी मूलत दोनो का एक ही अर्थ है। दक्षता उसी लागत पर वस्तु को बढा देती है, और मितव्ययिता उसी वस्तु के लिए लागत कम कर देती है। यदि लागत ऊची हो गयी हो, और उत्पादन में उतनी ही वृद्धि न हुई हो तो यह अपव्यय (waste) और यदि वस्तु में कमी हो गयी हैं, और लागत मे उसके अनुरूप कमी नही हुई तो यह हानि (loss) है। अपव्यय और हानिया दोनो ही अनुत्पादक परिव्यय और दक्षता का रूप हे।

किसी व्यवसाय उपक्रम में उत्पादन के किसी भी कारक पर लागत पड सकती है। पर यहा हमे उन लागतो म, जो मुख्यत सारे कारबार पर पडती हैं, अर्थात् जो प्राय धन के रूप मे मापी जा सकती है, और उस लागत मे, जो अकेले मानवीय कारक पर पडती है,—वह कभी-कभी धन के रूप में मापी जा सकती है पर जब नही मापी जा सकती तब भी यह वास्तविक ही होती है—अन्तर करने की आवश्यकता है। मापे जा सकने वाले मानवीय परिव्ययो म थकान और ऊबने के सवेदन है, औद्योगिक और दुर्घटना, रोग या अधपेट भोजन से होने वाले शारीरिक कष्ट, दुर्घटना के भय से परेशानी तथा हमारी आर्थिक असुरक्षा आदि के सवेदन हैं, जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है। धन के रूप मे मापे जा सकने योग्य परिव्यय अनुपस्थिति के कारण, और जहा खण्ड मजदूरी (Wages) दी जाती हैं, वहा न्यून या त्रुटिपूर्ण उत्पादन से कमाई मे होने वाली कमी, और टर्न ओवर यानीप्रतिस्थापन (काम छोडकर जाने वाले मजदूरो के स्थान पर नये मजदूर रखना), ले आफ यानी अस्थायी बरखास्तगी या छटनी के कारण होने वाली बेरोजगारी के दिनो की कमाई की हानि और दुर्घटनाओ तथा रोगो के इलाज म किया जाने वाला वास्तविक व्यय हान है। मजदूरो के प्रतिस्थापन, गैरहाजिरी, न्यून और त्रुटिपूर्ण उत्पादन दुघटना और रोग के कारण, धन के रूप म दक्षता की लागत स्पष्ट ही है। पर सब श्रमिक हानियो मे होने वाले इन परिव्ययो म दो तत्वो का उल्लेख करना उचित होगा। इनम से एक तो उस 'मरम्मत" (Repair) के व्यय है, जो मनुष्य की जगह दूसरा मनुष्य रखने या उनकी उत्पादकता पुन स्थापित करने म होते है, और दूसरे वे व्यय हैं जो प्रति दी हुई वस्तु पर अधिक प्रभार (मुख्यत उपरिव्यय) होते है, जो तब तक जारी रहेंगे, जब तक आदमी पूरी तरह बदल नही दिये जाते या पुन स्थापित नही कर दिये जाते। परिव्यय के ये दो अवयव—मरम्मत और अतिरिक्त प्रभार—एक निश्चित तरीके म एक दूसरे से सम्बन्धित हे। कुल परिव्यय, प्रत्यक्ष परिव्यय श्रम और सामान और परोक्ष व्यय-उपरिव्यय—से बना होता हैं, और यदि मरम्मत वाले अवयव म व्यय निश्चित कर दिया जाए, तो अतिरिक्त उपरिव्यय का खर्च अन्त म कुल परिव्यय म वृद्धि कर देगा। उदाहरण के लिए, यदि उत्पादन का बहुत सा हिस्सा खराब हो जाए और मजदूर को अधिक अच्छे काम की शिक्षा देने के लिए कोई यत्न न किया जाए तो प्रशिक्षण और पर्यवेक्षण का परिव्यय तो अवश्य बच गया होगा, पर जो वस्तु नष्ट हो गई है, उसमे लगे हुए सामान और

श्रम के अतिरिक्त प्रकार का व्यय और त्रुटिपूर्ण वस्तु बनाने में लगे हुए साज-सामान का अतिरिक्त उपरिव्यय तो खर्च में आ ही गया होगा। पुन, यदि अनुपस्थिति का अनिमित न रखा जाए, और खाली जगह की पूर्ति के लिए कोई संचिति (Reserve) अलग पास न हो तो कुछ प्रत्यक्ष व्यय बच जाते हैं। पर बेकार साज-सामान से उपरिव्यय की हानि बहुत बढ़ जाएगी। बहुत से उपरिव्यय स्थिर होते हैं चाहे वस्तु की मात्रा कितनी भी हो जिसका मतलब यह हुआ कि जितना कम उत्पादन होगा उपरिव्यय का भार वस्तु पर उतना ही अधिक पड़ेगा। यदि अदक्षता परिव्ययों का सामना कर दिया जाए और उनके कारण दूर कर दिए जाएं तो श्रम की दक्षता बढ़ जाएगी जिसके परिणामस्वरूप परिव्यय कम हो जायगा और लाभ बढ़ जाएगा। आइए, इस पर कुछ उदाहरणों की सहायता से विचार किया जाए।

मोटे तौर से यह तो परिव्ययों में सामान श्रम और उपरिव्यय आते हैं। मान लीजिए कि उपरिव्यय कुछ रुपये प्रति घण्टा है अर्थात् यदि ८ रुपये प्रतिदिन प्रति मजदूर उपरिव्यय का ८ घण्टों में बांट दिया जाए तो प्रति घंटा उपरिव्यय १ रुपया है यह मोटी बात है। मान लीजिए कि यह प्रति घण्टा उपरिव्यय स्थिर है। मान लीजिए कि किसी एक मजदूर का उत्पादन ८ इकाई प्रति घण्टा है उसे एक रुपया प्रति घण्टा दिया जाता है और सामान पर ४ आना प्रति इकाई परिव्यय आता है तो प्रति इकाई कुल परिव्यय यह है :

	रु० आ० पा०
सामान	०—४—०
श्रम (एक रुपया पर ८ इकाई)	०—२—०
उपरिव्यय (एक रुपये पर ८ इकाई)	०—२—०
प्रति इकाई परिव्यय	०—८—०

यदि मजदूर की क्षमता सौ प्रतिशत बढ़ जाए, तो वह एक घण्टे में ८ के बजाए १६ इकाई निकालता है। उससे श्रम का परिव्यय एक आना प्रति इकाई रह गया।

	रु० आ० पा०
सामान	०—४—०
श्रम (एक रुपया १६ इकाई) ..	०—१—०
उपरिव्यय (एक रुपये पर १६ इकाई)	०—१—०
प्रति इकाई परिव्यय	०—६—०

यदि मजदूर का वेतन बढ़ाकर एक रुपया आठ आना प्रति घण्टा कर दिया जाए, तो परिव्यय पर उसका यह प्रभाव होगा।

	रु० आ० पा०
सामान	०—४—०
श्रम (डेढ़ रुपये में १६ इकाई) . .	०—१—६
उपरिव्यय (१ रुपये में १६ इकाई)	०—१—०
प्रति इकाई परिव्यय	०—६—६

यद्यपि मजदूर को उस समय से अधिक पैसा मिल रहा है 'जिस समय कुल लागत प्रति इकाई ८ आने थी, पर प्रति इकाई कुल परिव्यय अब सिर्फ साढे छ आने है, जिससे बिक्री कीमत में कमी करना और इस प्रकार अधिक ग्राहक खीचना सम्भव हो सकता है। इसका अर्थ है अधिक व्यवसाय और उसका अर्थ है अधिक नौकरिया।

यहां कोई विचारशील आदमी यह प्रश्न उठा सकता है "यदि मजदूर ने *उत्पादन दुगना कर दिया है, तो क्या उसकी मजदूरी दुगनी नही होनी चाहिए ?* यह प्रश्न इस विश्वास पर आधारित है कि अब मजदूर पहले से दुगना तेज काम कर रहा है, यह बात सही नही है, क्योकि दक्षता वृद्धि का अर्थ है, या तो उसी उर्जा (Energy) से अधिक उत्पादन अथवा कम उर्जा से उतना ही उत्पादन। इस बात को ध्यान में रखने पर एक उचित प्रश्न यह होगा "दक्षता में वृद्धि किसके कारण हुई—मजदूर के या प्रबन्ध के ?' दूसरे शब्दो मे, यदि प्रबन्ध ने मजदूर को अधिक दक्ष विधिया न बताई होती तो क्या उसे अधिक दक्ष विधियो का प्रयोग करना आ जाता, इसलिए दक्षता वृद्धि से होने वाले लाभ मे क्या प्रबन्ध को हिस्सा नही मिलना चाहिए।

अधिकतर उद्योगो मे श्रम परिव्यय कुल व्यय का बहुत बडा हिस्सा होता है, और यह स्पष्ट है, जैसा कि पिछले दृष्टान्तो में बताया गया है कि श्रम परिव्यय म थोडी भी बचत से लाभ मे बहुत वृद्धि हो जाएगी। प्रतिशतकता के रूप म वृद्धि श्रम परिव्यय मे होने वाली प्रतिशतकता की कमी की अपेक्षा बहुत अधिक होगी। निम्नलिखित दो उदाहरणो पर विचार कीजिए

	कार्याश १	कार्याश २
सामान	१०–०–०	१०–०–०
श्रम	१५–०–०	१४–०–०
उपरिव्यय	५–०–०	५–०–०
कुल परिव्यय	३०–०–०	२९–०–०
बिक्री कीमत	३५–०–०	३५–०–०
लाभ	५–०–०	६–०–०

कार्याश २ मे मजदूरी १ रुपया कम है, और परिणामत लाभ १ रुपया अधिक है। श्रम परिव्यय मे सुधार मजदूरी पर ६ ६६ प्रतिशत है, पर लाभ म वृद्धि २० प्रतिशत है। याद रखना चाहिए कि यहा मजदूर को दी जाने वाली मजदूरी की तुलना नहीं की जा रही, बल्कि काम की प्रति इकाई पर मजदूरी की तुलना की जा रही है।

इसलिए श्रम दक्षता म वृद्धि का अर्थ है समय की प्रति इकाई पर अधिक वस्तुओ का उत्पादन या उत्पादन की प्रति इकाई पर कम समय, जैसा कि ऊपर बता चुके है। श्रम दक्षता मे वृद्धि से प्रति इकाई श्रम परिव्यय मे कमी के अलावा एक और भी महत्वपूर्ण बचत होती है। व्यवसायी कम्पनी के व्यय का बडा हिस्सा स्थिर होता है, अर्थात् यह उत्पादन के अधिक या कम होने से बदलता नही। अधिक उत्पादन होने पर *उत्पादन की प्रति इकाई पर ये स्थिर व्यय कम हो जाते है। मान लीजिए कि किसी*

फैक्टरी में एक महीने में मजदूरी की रकम १,००,००० रुपये है और स्थिर व्ययों या उपरिव्ययों की रकम ६०,००० रुपये है। यदि किसी महीने में उत्पादित इकाइयों की कुल संख्या १०,००० है तो मजदूरी प्रति इकाई १० रु० होगी और स्थिर व्यय प्रति इकाई ६ रु० होगा, जिससे कुल राशि १६ रुपये होगी। यदि अगले महीने उत्पादन १२००० इकाई हो जाए, तो मजदूरी प्रति इकाई रु० ८.३३ होगी और स्थिर व्यय ५ रु० होंगे, कुल राशि रु० १३.३३ होगी, अर्थात् पिछले महीने से रु० २.६७ की बचत होगी।

दक्षता का मापना—जैसा कि इस प्रसंग के आरम्भ में स्पष्ट किया गया है, दक्षता निम्नलिखित दो रीतियों में से किसी एक से मापी जा सकती है —

(क) उत्पादन की प्रति इकाई पर श्रम परिव्यय। यह धन के रूप में प्रकट किया जा सकता है। ऊपर दिये गए उदाहरण में, कार्यांश १ में लगे १५ रु० की तुलना में कार्यांश २ में १४ रु० का श्रम लगता है। पर इस विधि को लागू करने में कुछ कठिनाइयां हैं। यदि मजदूरी की दरें बदल जाएं तो वह परिवर्तन प्रति इकाई परिवर्तित परिव्यय में दिखाई देगा। पर यह एक बाहरी कारक होगा, जो दक्षता के स्तर में होने वाले परिवर्तनों को प्रतिबिंबित नहीं करेगा। साथ ही, यदि (समझौते द्वारा या विधि द्वारा) काम के घण्टे परिवर्तित हो जाते हैं, तो कुल उत्पादन तदनुसार कम या अधिक हो जाएगा और इसलिए श्रम परिव्यय, दक्षता को बिना प्रभावित किए, परिवर्तित हो जाएंगे। खण्ड आधार पर काम करने वाले मजदूरों की अवस्था में प्रति इकाई श्रम परिव्यय समझौते द्वारा या विधि द्वारा ही बदल सकता है, अन्य किसी तरह नहीं और इसलिए श्रम दक्षता की तुलना करने के प्रयोजनों के लिए यह विधि अधिक मूल्यवान नहीं होगी।

(ख) प्रति मनुष्य-दिन या मनुष्य-घंटे उत्पादन। इस विधि में एक दिन या एक घण्टे काम करने वाले प्रति मनुष्य के हिसाब से उत्पादन नापा जाता है। मान लीजिए कि किसी फैक्टरी में १०० मजदूर काम करते हैं। वे एक महीने में २५ दिन (२५०० मनुष्य दिन) काम करते हैं। यदि कुल उत्पादन ५००० इकाई हो तो हम कह सकते हैं कि उत्पादन ५ इकाई प्रति मनुष्य-दिन है। इस प्रकार हम प्रति मनुष्य-घण्टे उत्पादन नाप सकते हैं। यह विधि बिल्कुल ठीक है क्योंकि यह उन परिवर्तनों से स्वतन्त्र है, जिनका श्रम दक्षता से दूर का सम्बन्ध है। प्रति मनुष्य-दिन या मनुष्य-घण्टे उत्पादन श्रम दक्षता में परिवर्तन होने के कारण ही परिवर्तित होगा। यह विधि खण्ड आधार (Piece basis) पर काम करने वाले मजदूरों पर लाभदायक रूप से लागू की जा सकती है, पर अनेक तरह की वस्तुएं पैदा करने वाली फैक्टरी पर इसे लागू करने में कठिनाई पैदा होती है। उदाहरण के लिए, एक सामान्य लैम्प शेड के प्रति मनुष्य-घण्टा उत्पादन की तुलना फैंसी लैम्प शेडों के प्रति मनुष्य-घण्टा उत्पादन से करने पर ठीक परिणाम नहीं निकल सकते। ऐसी वस्तुओं को एक सामान्य पैमाने पर लाना होगा। इसके लिए प्रत्येक वस्तु के वास्ते प्रमाप मनुष्य-घण्टे स्थिर किये गए हैं। सामान्य लैम्प शेड के बनाने में दो घण्टे लग सकते हैं, और किसी खास तरह का फैन्सी लैम्प शेड बनाने में १० घण्टे लग सकते हैं। (दे अर मेसन, अनु-

भव और परीक्षणों से निकाले जा सकते हैं) । यदि ५,००० सामान्य लैम्प शेड बनाए जाते हैं, तो कुल प्रमाप श्रम घण्टे १०,००० हैं,और यदि सिर्फ ५०० फैन्सी लैम्प शेड बनाए जाते हैं, तो प्रमाप श्रम घण्टे ५००० होंगे, और इनकी कुल संख्या १५००० हो जाएगी । यदि वास्तव में १५००० घण्टे ही लगे हैं, तो दक्षता एक है, यदि वास्तव में १०००० घण्टे लगे हैं, तो दक्षता १.५ है, और यदि वास्तव में २०,००० घण्टे लगे हैं, तो दक्षता .७५ है । दक्षता पूरी १ या इससे ऊँची रखने का लक्ष्य होना चाहिए ।

जब प्रबुद्ध प्रबन्धक विज्ञान इतना परिवर्धित नहीं हुआ था, जितना यह अब है, तब कुछ प्रबन्धकर्त्ता यह सोचते थे कि परिव्यय कम करने का उपाय मजदूरी में कमी कर देना है । यह सच है कि मजदूरी में कमी से परिव्यय में कमी हो जाएगी और कीमत कम करना सम्भव होगा । पर यह अस्थायी रूप से ही सम्भव होगा । उतना ही पैसा हासिल करने के लिए मजदूर को अपना उत्पादन बढ़ाना होगा, और इसके लिए वह प्रायः अधिक तेज काम करेगा । पर यह आवश्यक नहीं कि वह अधिक दक्षता से भी काम करेगा । समझदार मालिक मजदूरी कम करने की बजाए दक्षता बढ़ाएगा जिससे उसके मजदूर सन्तुष्ट और निष्ठावान रहें ।

अब हम दक्षता और दक्ष मजदूर तथा दक्ष प्रबन्धक की परिभाषा अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं । दक्ष मजदूर वह है, जो आवश्यक गतियों से अपने-आपको थकाता नहीं, और फिर भी पूरे दिन का काम निकालता है । दक्ष प्रबन्धक वह है,जो स्थान, समय, ऊर्जा और सामान (Space, time energy, materials--S-T-E-M) का अपव्यय नहीं होने देता । वह जहां कहीं और जिस भी रूप में अपव्यय देखता है उसे दूर करता है । दक्षता अपव्यय को खत्म करती है, और अपव्यय का अर्थ है किसी चीज का अनावश्यक व्यय । दक्षता को स्थान, समय, ऊर्जा, सामान, धन और परिणाम को प्रभावित करने वाली प्रत्येक वस्तु के अनुपात में प्राप्त परिणाम कहा जा सकता है । जो कुछ शुरू में कहा गया था उसे दोहरायें तो किसी व्यय पर उत्पादन जितना अधिक है, सामान्यतः वहां दक्षता उतनी ही अधिक है । इससे हम उन कारकों पर विचार करना पड़ता है, जो श्रम दक्षता के सहायक हैं ।

श्रम दक्षता के कारक—(१) मजदूरी अच्छी मजदूरी मजदूर को शिष्ट जीवन स्तर रखने के योग्य बनाती है । यह मजदूर को अच्छा काम करने के योग्य बनाती है । जो आदमी आधे पेट खाता है, गंदी बस्तियों में रहता है, और जो अपने बच्चों की शिक्षा या चिकित्सा की व्यवस्था करने में असमर्थ है, वह दक्ष नहीं हो सकता । यूरोपीय मजदूर और भारतीय मजदूर की दक्षता में बहुत बड़ा अन्तर होने का एक आधारभूत कारण यह है कि उन दोनों के रहन-सहन के स्तर में बड़ी विषमता है । इसके अतिरिक्त, यदि कोई व्यक्ति रहन-सहन के ऊँचे स्तर पर रह चुका है, तो वह इस बनाए रखने का यत्न करेगा । पर उस व्यक्ति की दक्षता में सुधार की कोई आशा नहीं है, जिसकी आकांक्षा बिल्कुल नष्ट हो चुकी है । मजदूरी चूंकि किये हुए काम का पुरस्कार है, इसलिए मिलने वाली मजदूरी की राशि काम के लिए प्रबल उद्दीपक या (श्रम मजदूरों की

अवस्थाओं में) निरीक्षण के रूप में निश्चित रूप से कार्य करती है। कम मजदूरी पाने वाला मजदूर खुशी से काम नहीं कर सकता। उसका रुख भाड़े के टट्टू के समान होगा। दूसरी ओर अच्छा पैसा पाने वाला आदमी अपने काम में अवश्य उत्साह दिखाएगा।

(२) यन्त्रीकरण की मात्रा (Degree of mechanisation)—मजदूरों के दो समूहों (Sets) की तुलना करने में उपलब्ध पूंजी सज्जा पर भी विचार करना होगा। उदाहरण के लिए, भारत में खानों से कोयला निकालने का काम अब भी अधिकतर हाथ से किया जाता है, जबकि यूनाइटेड स्टेट्स में प्रायः सारा कोयला यन्त्रों द्वारा निकाला जाता है। उपकरण और सज्जा जितने अच्छे होंगे, दक्षता उतनी ही ऊँची होगी।

(३) काम की अवस्थाएँ—कोई आदमी जिन अवस्थाओं में काम करता है, उनका उसकी दक्षता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। सफाई, पर्याप्त वायु संचार, अच्छी प्रकाश-व्यवस्था और उचित ताप का महत्व कुछ समय से अनुभव किया जा रहा है। काम का सुनिश्चित रूप से सुखकर स्वस्थ वायुमण्डल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि ठण्डी और सूखी हवा निश्चित रूप से आती रहे। फैक्टरी में अच्छे प्रकाश की व्यवस्था के दो लाभ होते हैं। साफ दिखाई देने से उत्पादन को लाभ होता है, और आदमी पर जो प्रभाव होता है, उससे उसके कर्मण्यानुराग को लाभ पहुँचता है। कम रोशनी या गलत रोशनी से जितना चिड़चिड़ापन पैदा होता है उतना और किसी तरह नहीं होता। भीड़-भाड़ को दूर रखना चाहिए। वायुमण्डल को धूल और धुएँ से मुक्त रखना चाहिए।

वैज्ञानिक ढंग से निर्धारित काम के और विश्राम के घण्टे भी दक्षता बढ़ाते हैं। काम के कम घण्टे प्रति घण्टा उत्पादन बढ़ा देते हैं, क्योंकि अधिक अवकाश अधिक अच्छे स्वास्थ्य और कम बीमारी में सहायक का काम करते हैं। विश्राम सम्बन्धी आवश्यकता का वैज्ञानिक अध्ययन करके मजदूर सारे दिन अपने काम दक्षता के ऊँचे स्तर पर कर सकता है। काम की गति बढ़ जाने से, जो अक्सर दक्षता-विशेषज्ञों के काम के कारण बढ़ती है, मजदूर पर अतिरिक्त बोझ पड़ता है। उत्पादन की यान्त्रिक प्रणाली के द्वारा मजदूरों की चाल बढ़ जाती है, और उन्हें ज्यादा मेहनत पड़ती है। मजदूरों की शारीरिक परिश्रान्ति और स्नायविक थकान आधुनिक उद्योग की चाल और बोझ के कारण ही है। औद्योगिक परिश्रान्ति के निवारण और मानव ऊर्जा और सामर्थ्य की रक्षा से दक्षता बढ़ती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि उत्पादन अधिकतम करने के लिए अधिकतम चाल नहीं चाहिए, बल्कि अनुकूलतम (Optimum) चाल—अधिकतम उत्पादन वाली चाल—चाहिए।

(४) प्रबन्ध की दक्षता—यह स्पष्ट है कि सम्भरण में रुकावट या बिजली रुक जाने से उत्पादन बहुत कम हो जाएगा। ये प्रबन्ध विभाग की जिम्मेदारियाँ हैं। इनके अलावा भी, प्रबन्ध के क्षेत्र में किसी कमजोरी, जैसे योजना का अभाव या नियन्त्रण का अभाव, से भी उत्पादन कम हो जाएगा।

(५) मनोवैज्ञानिक प्रभाव—सब मानव प्राणियों की तरह मजदूर में भी अपनी सहज वृत्तियाँ और भावनाएँ होती हैं। औरों की तरह मजदूर में भी सम्पत्ति-धारण

(Possession) की महज वृत्ति होती है। उसकी नौकरी ही उसकी सम्पत्ति है। उसको यह ज्ञान होना कि यह बनी रहेगी, उसे बहुत दूर तक सन्तुष्ट रखेगा। इस भय के कारण कि उसकी नौकरी जाती रहेगी, वह अपनी नौकरी बनाए रखने के लिए शोभन-अशोभन सब प्रकार के उपाय करेगा। मजदूर में भी सब मानव प्राणियों की गरिमा होती है। वह भी बराबरी के आधार पर व्यवहार पसंद करता है। वह चाहता है कि विचार के समय उसका दृष्टिकोण भी पूछा जाए। वह अधीनता नापसन्द करता है, और इस बात से घृणा करता है कि कोई उससे अपने माल-असबाब जैसा व्यवहार करे। दुर्भाग्य से, आधुनिक फैक्टरियों में मजदूरों को उत्साहमय करने वाली कोई चीज नहीं है—प्रायः कोई भी चीज ऐसी नहीं जिसे मजदूर अपनी कह सके। इसलिए मजदूर की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि और भी महत्वपूर्ण है। इस प्रसंग में यह कह देना उचित होगा कि यद्यपि श्रम दक्षता में मजदूरी सबसे महत्वपूर्ण अकेला कारक है, तो भी अकेली मजदूरी जिसके साथ-साथ अच्छा व्यवहार न हो, किसी कर्मचारी को खुशी से काम करने वाला मजदूर नहीं बना सकती।

(६) प्रकीर्ण (Miscellanious)—ऊपर बताए गए कारकों और अन्य जलवायु आदि स्पष्ट कारकों के अतिरिक्त, हमें श्रमिक संघों के नेतृत्व, सामान्य कर्तव्यानुराग और विद्यमान राजनैतिक स्थिति के महत्व पर भी ध्यान देना चाहिए। युद्ध के परिणामस्वरूप सर्वत्र जिम्मेवारी की भावना कम हो गई है। भारत में श्रमिक संघ या ट्रेड यूनियनें राजनीतिज्ञों के हाथों में रही हैं। इन कारकों ने कुछ दूर तक दक्षता में कमी कराई है। युद्ध काल के इस अनुभव ने भी कि धनी और अधिक धनी हो गए तथा गरीब और गरीब हो गए, मजदूरों को विक्षुब्ध और इसलिए कम दक्ष बनाया।

भारत की स्थिति

युद्ध काल में और उसके अविलम्ब बाद भारतीय मजदूर की दक्षता में कमी हुई है। १९४९ में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड की वार्षिक बृहत सभा में भाषण करते हुए इसके सभापति ने कहा था कि प्रति टन इस्पात पर श्रम परिव्यय, जो १९३९-४० में प्रायः ३१.५४ रुपये था, १९४८–४९ में ९२.८ रुपये हो गया। स्टील का प्रति कर्मचारी उत्पादन १९३९–४० में २४.३६ टन था, १९४८–४९ में १६.३० टन रह गया। इसी प्रकार की बातें, खदान कम्पनियों के सभापति ने भी कही थी, पर दक्षता की इस गिरावट का सारा दोष मजदूर पर डालना उचित नहीं। सबको पता है कि युद्ध काल में पुरानी मशीनों को बदलने में जो कमी रही, और मशीनों की दक्षता में जो गिरावट हुई, उसके कारण श्रम की दक्षता में गिरावट आनी ही थी। इसके अलावा, युद्धकाल में और उसके अविलम्ब बाद, आर्थिक और राजनैतिक अवस्थाएँ अस्तव्यस्त थीं, और आम जनता के साथ-साथ मजदूरों में भी कुछ जिम्मेदारी की भावनाओं में कमी होनी जरूरी थी। मालिक की बढ़ती हुई दौलत ने निश्चित रूप से उन्हें परेशान किया। पर दक्षता में कमी होने का मुख्य कारण रहन-सहन के स्तर में कमी होना था। भारत में युद्धकाल में मजदूरियां इतनी ऊँची कभी नहीं हुईं, जितने रहन-सहन के बढ़ते हुए परिव्ययों की

कमी पूरी हो जाए। रहन-सहन के परिव्यय ने कुछ हद तक वास्तविक चित्र को छिपाया, क्योंकि वह परिव्यय-निर्धारण कीमतों के आधार पर निकाला जाता था। कलकत्ता के एम्प्लायर्स एसोसियेशन ने अपनी पुस्तक, इण्डस्ट्रियल लेबर इन इण्डिया में निम्नलिखित आंकड़े दिये हैं :

वास्तविक कमाई (१९३९—१००)

१९४४ . . .	८१	१९४९ . . .	१०३
१९४५ . . .	८५	१९५० . . .	१००
१९४६ . .	८२	१९५१ . . .	१०३
१९४७ . . .	८९	१९५३ . . .	११४
१९४८ . . .	९५	१९५४ . . .	११४ (अस्थायी)

यह स्पष्ट है कि १९४८ तक मजदूरियां वस्तुओं और धन के रूप में १९३९ के रहन-सहन के स्तर से भी नीची थीं। इससे श्रम उत्पादन होना अनिवार्य था।

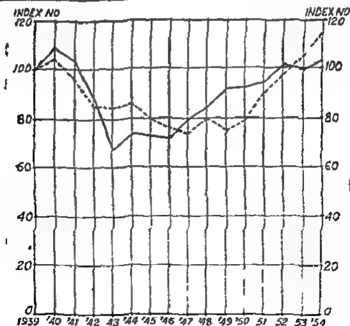
यह देखकर प्रसन्नता होती है कि कुछ समय से भारत में मजदूरों की दक्षता बढ़ रही है। सेन्सस आफ मैनुफैक्चर्स में से लिए गए निम्नलिखित आंकड़ों से इस बात का पता चलता है —

	१९४०	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१	१९५२
(१) उत्पादनों और उत्पादों का मूल्य (करोड़ रुपये)	७४३·६१	९५३·६५	९७६·०७	१०२८·०१	१३०६·८६	११८३·९७
(२) कीमत वृद्धि की दृष्टि से सख्या १ को सही करने पर	७४३·६१	७८९·२९	८०५·१५	८३१·७३	९३२·२७	९१३·४९
(३) काम में लगे हुए व्यक्तियों की संख्या (७,०००)	१६,३३	१७,०४	१६,८९	१६,३२	१६,३१	१६,४८
(४) काम पर लगे हुए प्रतिव्यक्ति पर उत्पादनों का मूल्य (१९४७ की कीमतों पर) (२÷३)	४,५५५	५,६३१	५,७७८	५,०९७	५,७१०	५,५४१
(५) १९४७ की तुलना में प्रतिशत वृद्धि	—	२३	४१	११·८	२५·४	२१·७

भारत में फैक्टरी मजदूरों की उत्पादकता और उनके वास्तविक अर्जनों की जो देशनाएं (Indices) श्रम मन्त्रालय के श्रम विभाग ने तैयार की हैं, उनसे उनके आपसी सम्बन्ध और श्रम दक्षता का अधिक अच्छा चित्र सामने आता है। निम्नलिखित सारणी और चार्ट में वास्तविक अर्जनों और उत्पादकता की देशनाओं में, एक दूसरे की दृष्टि से, प्रवृत्ति का पता चलता है।

वास्तविक अर्जनो और उत्पादकता की देशनाएं

वर्ष	वास्तविक अर्जनो की देशना	उत्पादकता की देशना
१९३९	१०० ०	१०० ०
१९४०	१०८ ६	१०४ २
१९४१	१०३ ७	९४ ८
१९४२	८९ ०	८५ ३
१९४३	६७ ०	८४ ५
१९४४	७५ १	८६ ३
१९४५	७४ ९	७९ ५
१९४६	७३ २	७४ ७
१९४७	७८ ४	७२ ५
१९४८	८४ ४	७९ ४
१९४९	९१ ७	७५ ६
१९५०	९० १	७८ ८
१९५१	९३ २	८८ ७
१९५२	१०१ ८	९७ ४
१९५३	९९ ९	१०५ ८
१९५४	१०२ ७	११३ ०



नीची लागत पर उत्पादन चाहता है, मजदूर अपने कार्य से पर्याप्त लाभ चाहता है। मज-दूरो की दक्षता बढाकर दोनो उद्देश्य सिद्ध किए जा सकते हैं। इसका यह अर्थ नही कि उन्हें हाका जाए। इसका अर्थ यह है कि ऐसी परिस्थिति पैदा की जाए कि मजदूर कम प्रयास और कम समय में अधिक काम कर सके, और काम करना उसके लिए आनन्ददायक हो जाए। ऐसा कैसे किया जा सकता है ? अगले अध्याय में इस प्रश्न का उत्तर देने का यत्न किया गया है।

अध्याय : : २५

औद्योगिक सम्बन्ध

प्रबन्ध में, सब मानवीय सम्बन्धों म से सबसे अधिक मानवीय कर्मचारियों की औद्योगिक सम्बन्धों की समस्या है। यह इस कारण ऐसी है, क्योंकि यह हमारी अव्यवस्था के सामने सबसे कठिन गुत्थी है। पिछले अध्याय म हम देख चुके हैं कि सामाजिक और साम्पत्तिक प्रगति की बाधाओं के कारण औद्योगिक मजदूर की आकांक्षा तिरस्कृत होती है। इस तिरस्कार से औद्योगिक असन्तोष पैदा होता है। इस असन्तोष को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाने—प्रबन्धकों और मजदूरों के मध्य मेल-मिलाप स्थापित करने—के लिए यत्न किया जाए।

"औद्योगिक सम्बन्ध" सबसे अधिक व्यापक शब्द है। यह प्रबन्ध और अलग-अलग कर्मचारियों के सम्बन्धों का वर्णन करता है, और उस रूप में यह कर्मचारी प्रबन्ध या प्रशासन कहलाता है। इसके अन्दर प्रबन्ध और श्रमिक संघों के आपसी सम्बन्ध भी आते हैं, और इसे श्रम सम्बन्ध कहा जाता है। असल में औद्योगिक सम्बन्ध कारखाने के सब प्रकार के सम्बन्धों का सम्मिलित रूप है। औद्योगिक सम्बन्ध और कर्मचारी प्रबन्ध का कर्तव्यानुराग (मोरेल) से निकट सम्बन्ध है, क्योंकि कर्तव्यानुराग अधिक होने पर औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे होते हैं, और यह उत्तम कर्मचारी प्रबन्ध से पैदा होता है। इनका एक चक्र चलता है पर वह शुभ चक्र है। सम्मिलित परामर्श और अनुशासन वे नाम हैं, जिनके चारों ओर यह चक्र घूमता है। इसलिए उच्च कर्तव्यानुराग, अनुशासन और सम्मिलित परामर्श अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाते हैं।

कर्तव्यानुराग (मोरेल)—कर्तव्यानुराग किसी समूह या संगठन के कार्यों और प्रयोजनों में उत्साह से सहयोग करने की तत्परता को कह सकते हैं। यह एक मानसिक प्रक्रम है, जो प्रायः बहुत सूक्ष्म होता है, पर एक बार शुरू हो जाने पर सारे समूह में प्रविष्ट हो जाता है, जिससे ऐसी मति पैदा हो जाती है कि सबका एक सामान्य भाव रहता है। उच्च कर्तव्यानुराग में कार्य उत्तम और मितव्ययितायुक्त होता है। प्रत्येक कार्यकर्ता को यह स्पष्ट रूप से निश्चय होता है कि इस संगठन में प्रत्येक चीज ठीक होगी, जिससे एक ऐसा नैतिक बल पैदा हो जाता है कि सब लोग साझे लाभ के लिए काम करते हैं। वह वस्तुतः उनके सामर्थ्य, विश्वसनीयता, आत्मगौरव, विश्वास और अनुरक्ति का परिचायक होता है। कर्तव्यानुराग शब्द का युद्ध के सिलसिले में बहुत प्रयोग होता है। हम कहा करते हैं कि उच्च कर्तव्यानुराग वाली एक टुकड़ी, जिसकी संख्या प्रतिपक्षियों की संख्या से कम थी, हीन कर्तव्यानुराग वाले शत्रु को पीछे ढकेल

कर आगे बढ़ गई। ऐसा होना सम्भव है, क्योंकि प्रत्येक सैनिक और अफसर कष्ट सहने को तैयार है, निष्ठावान है और व्यक्तिगत स्वार्थ और अभिमान को गौण करने को तैयार है। उसम खतरे को देखकर भय के बजाय और पक्का संकल्प पैदा हो जाता है। वह वास्तविक आघात को अनुभव करता है, और इसका सामना करने को खड़ा हो जाता है तथा बिना अगर-मगर के, करने या मरने को तैयार रहता है। मन और चरित्र के गुण मिलाकर कर्तव्यानुराग शब्द में अभिहित होते हैं। संगठन नामधारी किसी भी ढाँचे में उच्च कर्तव्यानुराग परमावश्यक है। किसी समूह म कर्तव्यानुराग है या नहीं, यह बात व्यक्तियों के मनोभावों में अच्छी तरह जानी जा सकती है, उदाहरण के लिए, जब कार्यकर्त्ताओं का कोई समूह अपने नेताओं का सक्षम और विचार-पूर्वक काम करने वाला, उनकी विधियों को दक्ष, उनकी नीति को उचित तथा उनके अन्तिम लक्ष्य को सही और प्राप्तव्य मानता हो—उसमें उनके मन में एक थरथराहट पैदा हो जाती हो—तब इसमें ऊँचे दरजे का कर्तव्यानुराग प्रकट होता है।

कर्तव्यानुराग की वृद्धि करना प्रबन्ध का प्राथमिक कर्तव्य है, पर यह स्मरण रखना चाहिए कि कर्तव्यानुराग की वृद्धि करने का काम उद्योग म कोई नई घटना नहीं। सिर्फ इतनी बात है कि दस्तकारी के जमाने की अपेक्षा अब यह कहीं अधिक आवश्यक है। उन दिनों भी कार्यकर्ता को प्रोत्साहित किया जाता था कि वह वस्तु के बनाने में, जिसे देखकर मालिक मजदूरी अदा करेगा और नफा कमायेगा, अपने ज्ञान और कौशल का प्रयोग करके अधिक से अधिक बढ़िया चीज तैयार करे, पर उस समय के और आजकल के मनोभावों म बड़ा भारी अन्तर है। उस समय दस्तकार जानता था कि मैं किस के लिए बना रहा हूँ, क्या बना रहा हूँ, मालिक इस पर क्या लेगा, सामान पर कितना खर्च आयेगा, यह सामान कहाँ से आयगा और उसके लिए अपनी कारीगरी दिखाने का पूरा मौका था। यह उसकी बनाई हुई चीज थी और उस पर उसे अभिमान था। उसे इससे पूरी सन्तुष्टि होती थी और उसके मन म एक अभिमान की भावना होती थी। इस प्रकार उसका कर्तव्यानुराग ऊँचा था। आजकल की फैक्टरियों म मजदूर किसी वस्तु का सिर्फ एक अंश बनाता है। वह निर्माण के न पहले वाले अंश देखता है और न बाद के। उत्पादित वस्तु उसकी नहीं। उसे उपभोक्ता का पता नहीं और शायद ही ऐसा मौका हो कि वह उस उत्पादित वस्तु को काम में आता हुआ देखे। उसे नहीं मालूम कि कम्पनी के मालिक कौन हैं, और शायद मुख्य प्रबन्धाधिकारियों में से भी वह बहुत कम को जानता है। उसे कम्पनी की नीतियों के बारे में शायद ही कभी बताया जाता हो और इसकी वित्तीय अवस्था के बारे में तो उसे कुछ भी नहीं बताया जाता, यद्यपि कम्पनी के असफल होने की अवस्था में शेयरहोल्डर की अपेक्षा उस पर कहीं ज्यादा मुसीबत आयेगी। उसकी दृष्टि में आधुनिक प्रबन्ध के दो मुख्य रूप हैं—निरंकुश अधिकार और मजदूरी। कार्य की सफलता और उसके परिणामस्वरूप होने वाले सन्तोष म, जिससे उसे दृढ़ संकल्प के साथ काम करने की प्रेरणा मिले, उसे कोई दिलचस्पी नहीं। मनुष्य प्रकृति से सहयोग-पसन्द है, पर आधुनिक उद्योग ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जिसमें संघर्षण

स्थायी है। इसका आंशिक कारण यह तथ्य है कि मौजूदा औद्योगिक संगठन ने मजदूरों और मालिकों के बीच की वैयक्तिक कड़ी को तोड़ दिया है। प्रोफेसर सारजेन्ट फ्लोरेंस ने लिखा है—"कार्य का उद्दीपन, अर्थात् कम से कम लागत पर उत्पादन को बढ़ाने या कायम रखने को मजदूर की तत्परता, शुरू में ही अवरुद्ध हो जाती है, जब वह यह देखता है कि मैं तो सिर्फ नौकर हूँ और अपने श्रम से उत्पन्न वस्तु में मेरा कोई अधिकार नहीं।" साधारणतया यह सच है कि कोई कर्मचारी स्वामित्व से जितना अधिक दूर हो जायगा, औद्योगिक संगठन की दक्षता के प्रति वह उतना ही उदासीन हो जायेगा और वह उतना ही आदतों, प्रथाओं और रूढ़ियों और परम्पराओं से चिपटेगा। कर्मचारी की मालिक के साथ बन्धुता और सामाजिक समता की भावना और उसकी अपनी गरिमा तथा आत्म-सम्मान की भावना फर्म के बड़ा होने के साथ कम हो जाती है। वह फर्म के और अपने हितों को एक समझना छोड़ता जाता है। किसी बड़ी फर्म में यह भावना नहीं रहती कि हम सब उसी नाव में हैं, और साधारण कर्मचारी उस कारबार में अपने हितों के अभाव को तथा मालिक के हित के अभाव को एक ही बात नहीं समझते। फर्म को और अपने-आपको एक समझने के लिए कोई कारण अनुभव नहीं होता। लालफीताशाही और दफ्तरशाही सामूहिक भावना को दुर्बल कर देती है। *मनोवैज्ञानिक दुश्चिन्ता या निम्न कर्तव्यानुराग छा जाता है। उसे सदा स्मरण रखना चाहिए कि संगठन लोग ही है, उसे इस सीधी-सादी बात को कभी न भूलना चाहिए, उसे संगठन के प्राण, अर्थात् इसके मानव प्राणियों पर, जिनकी अनेक प्रकार की भावनाएं और मांगें हैं पर 'काम के प्रवाह' को अपेक्षा अधिक बल देना चाहिए।*

एक हजार या अधिक कार्यकर्ताओं वाले संगठन में निर्व्यक्तिकरण (डिपरसोनैलाईजेशन) का प्रक्रम प्रायः पूर्ण हो जाता है और मनोवैज्ञानिक दुश्चिन्ता को दूर करने या कर्तव्यानुराग बढ़ाने की दिशा में प्रबन्ध की जिम्मेवारी बहुत अधिक बढ़ जाती है। कर्मचारी अफसर के सामने उन बातों को खोज निकालने की समस्या रहती है, जिनसे संगठन सुखी और सफल बना रहे। उसे मानव प्रकृति का ज्ञान होना चाहिए, जो मानवीय क्रियाओं के प्रेरक भावों का समुच्चय है। यह प्रक्रिया-जनित और सहज क्रियाओं का, वंशानुगत और अर्जित स्वभावों का, वैयक्तिक और सामूहिक परम्पराओं का *अजीब मिश्रण है*[१]। मनुष्य, अगर सम्भव हो तो, अपनी इच्छाओं को सीधे ही पूरा करना चाहता है, पर जब सीधे पूरा करना असम्भव हो या परोक्ष रीति अधिक आसान हो, तब वह प्रायः परोक्ष रीति अपनाता है। इसी कारण लोग काम करते हैं। काम से लोगों को धन कमाने का अवसर मिलता है, और विनिमय द्वारा वे जो चाहें खरीद सकते हैं। इस तरह वे अपनी इच्छाओं और अभिलाषाओं की पूर्ति कर सकते हैं। परन्तु धन सम्बन्धी या धन से प्राप्त होने वाले सुखों सम्बन्धी उद्दीपनों के अलावा एक दर्जन मनोवैज्ञानिक या धनेतर उद्दीपक या कारक हैं, जिन पर वह

१. आर० टी० लिविंगस्टन, दि इंजीनियरिंग आफ आरगेनाईजेशन एण्ड मैनेजमेण्ट, पृष्ठ २२।

विचार कर सकता है और जिनके आधार पर वह किसी फैक्टरी या दफ्तर में अपने कार्य का मूल्यांकन करता है।

कार्य के उद्दीपन

उद्दीपन कार्य के प्रोत्साहन को कहते हैं इससे वह प्रेरणा प्राप्त होती है जो कोई लक्ष्य पूरा करने के लिए आवश्यक प्रयास के वास्ते अधिकतर लोगों को देने की आवश्यकता होती है। इसका मूल्य इस तथ्य म निहित है कि कोई आदमी बिना उद्दीपक के कभी कोई काम नहीं करता। लोग सामान्यतया वही तक काम करते हैं जहा तक वे करना ठीक समझते हैं, और उसके बाद यदि और उद्दीपन न हो तो वे रुक जाते हैं। धन या पुरस्कार की आशा एक प्रबल उद्दीपक है पर यह एकमात्र उद्दीपक नहीं है। काय सिद्धि का अभिमान, प्रशसा या पदोन्नति की आशा आनन्ददायक अवस्थाओ म काम करने का सतोष और बहुत से अन्य धनेतर उद्दीपक प्राय अकेले धन की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होते है। तो भी ऐसा बहुत कम होता है कि किसी व्यक्ति को अपने कार्य से पूरा सन्तोष हो। सक्षेप म यह कहा जा सकता है कि मजदूर निम्न बाते चाहता है —

(१) उचित मजदूरी और काम के घण्टे।
(२) भय का अभाव।
(३) कार्यकाल की निश्चिन्तता।
(४) व्यक्ति के रूप म अपने अस्तित्व की स्वीकृति।
(५) अपनी उन्नति का अवसर।
(६) योग्य पर्यवेक्षण (नेतृत्व)।
(७) न्याय या उचित व्यवहार।
(८) व्यक्तिगत फलोत्पादकता—सामाजिक प्रतिष्ठा।
(९) जानना और समझना।
(१०) काम का कर डालना (सृजनात्मक प्रवृत्ति)।
(११) उत्पादित वस्तु आदि का अभिमान।
(१२) पारस्परिक हित के मामलो में अपनी आवाज।

मजदूरी—उचित मजदूरी और काम के घटो की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि मजदूरो को उचित दिन के काम के स्वरूप के बारे म बडी तीव्र भावना होती है। आज का मजदूर वह मजदूरी प्राप्त करना चाहता है जो (१) उसके मालिक और श्रमिक सघ के बीच राष्ट्रीय आधार पर तय हो जाय, (२) और जो उसके परिवार के उचित निवाह के लिए जिसके अन्तर्गत मनोरजन और बचत भी है पर्याप्त हो। यह आवश्यक नहीं कि वह शुरू म सबसे अधिक मजदूरी देने वाले मालिक के यहा ही काम करे, बल्कि उसे अपने भविष्य की, और अपने निजी प्रयास के परिणामस्वरूप अधिक मजदूरी कमाने का अवसर पाने की अधिक चिन्ता होती है। अच्छे मालिक

बोनस की कमाई के अवसर को बहुत महत्वपूर्ण समझते हैं। मजदूरी अच्छी मिलने पर फैक्टरी में भी मुख रहता है।

परन्तु यह स्मरण रहना चाहिए कि काम के लिए धन ही एकमात्र उद्दीपन नहीं, यद्यपि कुछ मालिक अब भी इसे सबसे बड़ा उद्दीपक मानते हैं। उनके अनुसार, धन उद्दीपन या तो धनात्मक अर्थात् किये हुए काम की मजदूरी के रूप में धन की प्राप्ति, अथवा ऋणात्मक, अर्थात् काम न कर सकने पर दण्ड के रूप में कटौती होना है। ऋणात्मक या दण्डात्मक उद्दीपन विधान द्वारा नियन्त्रित कर दिया गया है। उदाहरण के लिए, मजदूरी अदायगी अधिनियम, १९३६, जुर्माने आदि के रूप में मनमानी कटौती को रोकता है। धनात्मक वित्तीय उद्दीपन का अर्थ यह है कि मानवीय व्यवहार सरल है, और "अधिक धन, तो अधिक उत्पादन" के सदृश अनुपातों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, तथापि ऐसा कोई सरल अनुपात नहीं है। धन एक दर्जन प्रेरक कारकों म से एक है। सच है कि धन बड़ा प्रबल उद्दीपक है और इसका कारण यह है कि मानवीय प्रेरक भावों और सन्तुष्टि को धन का रूप दे दिया गया है। कोई भी आदमी धन को धन की वजह से नहीं चाहता। लोग इसे इसलिए चाहते हैं, क्योंकि यह उनकी वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है। ये आवश्यकताएँ धनेतर उद्दीपक हैं। धन एक साधन है, साध्य नहीं, इसलिए जब मालिक ऊँची मजदूरी की माग के बढ जाने का रोना रोते है, तब वे यह भूल जाते हैं कि ये मागें उन्होंने ही पैदा की हैं। वे परस्पर-विरोधी नीति पर चलते हैं, क्योंकि वे अपनी वस्तुएँ बेचना चाहते हैं। इसलिए वे लोगों को धन के रूप में सन्तुष्टि प्राप्त करना सिखाते हैं। इससे स्वभावत अधिक मजदूरी की माग पैदा होती है, जिसका वे तब विरोध करते हैं। लोगों को यह सिखाया गया है कि धन ही सुख का मूल है। इसलिए जब वे अपने जीवनों में कोई कमी अनुभव करते हैं, तब वे स्वभावत और धन मागते हैं। पर दुर्भाग्य से धन की माग में यह तो पता चलता है कि वे कुछ चाहते हैं, परन्तु यह नहीं पता चलता कि वे क्या चाहते हैं। इसलिए जब कोई कारखानेदार यह कहता है कि सब लोग धन चाहते हैं, और इसलिए यदि मैं यह सिद्ध कर दू कि अलग-अलग कार्य की दरों या समान दरों से उन्हें धन मिलेगा, तो उन्हें सन्तुष्ट हो जाना चाहिए, तब उसका व्यवहार तर्कसंगत नहीं है। वह मनुष्यों के सारे व्यवहार का कारण एक ही बात को बता रहा है, जबकि लोग अपना व्यवहार निश्चित करने से पहले अपनी सारी परिस्थिति का अन्दाजा करते हैं।

यह बड़ी मनोरंजक बात है कि भारतीय मजदूर में नकद धन का उद्दीपन उतना प्रबल नहीं, जितना ब्रिटिश या अमेरिकन मजदूरों में। "भारतीय मजदूर को बहुधा औसत अमेरिकन मजदूर की अपेक्षा धन का ध्यान कम होता है। कम मजदूरी के बावजूद, वह खाली समय को और अपने गौरव को अधिक महत्व देता है।"[1] सिर्फ एक प्रेरक भाव, अर्थात् धन उद्दीपक को इतना अधिक महत्व देने की व्यर्थता

१. इन्वेस्टमेंट इन इण्डिया, अमेरिकन वाणिज्य विभाग द्वारा प्रकाशित (१९५३), पृष्ठ ८७३।

भारत में श्रम उत्पादकता की वर्तमान परम्परा से और भी स्पष्ट हो जाती है। पिछले लगभग दस वर्षों मे मजदूरी तो चढ गई, लेकिन श्रम की उत्पादकता कम हो गई। कुछ प्रमुख उद्योगो मे उत्पादकता में ४ से ३५ प्रतिशत तक गिरावट आ गई है। इससे प्रकट होता है कि धन के अलावा कुछ और भी चीजे है, जो मनुष्य के शक्ति-व्यय को प्रभावित करती है।

भय—सबसे पुराना और सब से सार्वत्रिक उद्दीपन भय है। यह भय जो प्रत्येक मानवीय शिशु मे उसके तीन महीने का होने से पहले ही दृष्टिगोचर होने लगता है, तब अपना कार्य करता है, जब काम के समेकन, मगल या सातत्य को खतरा हो। खतरे के समय मनुष्य अस्थायी रूप से मेहनत करने लगता है। भय एक आश्चर्यजनक रूप से प्रभावी उद्दीपन है, और उद्योग में पहले इसका बहुत बडा योगदान रहा। भय से प्रभावित होकर मजदूर जोर-शोर से काम करते है, पर उत्साह से नही। इसके उपयोग का अर्थ है विरोध और इससे शीघ्र ही विरोध पैदा हो जाता है। यह शत्रुता भावना (एनमिटी कौम्प्लैक्स) का आधार है। भय से प्रेरित सहयोग तब तक ही रहता है, जब तक दण्ड या बरखास्तगी का खतरा बना रहे। परन्तु यह धीरे-धीरे रोष में, रोष प्रतिशोध में, और प्रतिशोध जगल के न्याय मे परिवर्तित होने लगता है। मानवीय भय शब्दो द्वारा एक मन से दूसरे मन मे पहुँचाया जा सकता है। यह सासर्गिक होता है और गडबड पैदा करता है।

सुरक्षा—कर्मचारी की एक सबसे महत्वपूर्ण इच्छा यह रहती है कि वह अपने काम की सुरक्षा अनुभव कर सके। प्रत्येक महीने के अन्त मे वह यह जान सके कि उसे एक निश्चित आमदनी है, एक ऐसा आधार है, जिस पर वह अपने भविष्य का निर्माण कर सकता है, जिसके चारो ओर वह अपने घर, अपने बच्चो के पालन-पोषण और अपने सामाजिक जीवन को स्थापित कर सकता है। बहुत से कर्मचारी थोडे-थोडे समय के लिए मिलने वाली अधिक मजदूरी के काम की अपेक्षा स्थिर काम को अधिक पसन्द करते हैं।

अपने अस्तित्व की स्वीकृति—मजदूरो की जिस माग की सबसे अधिक उपेक्षा हुई है और जिसे सबसे अधिक गलत रूप में समझा गया है, वह है उसकी व्यक्ति के रूप में स्वीकृति या पहिचान। मजदूर यह चाहता है कि उसके कामों को मान्यता मिले। इस प्रकार, मशीन टेन्डर अपनी मशीन की, दफ्तर में काम करने वाला आदमी अपनी मेज की बात सोचता है। बहुत बार किसी मशीन या बैठने की जगह पर नाम-पट्टी लगा देने से ही कर्मचारी के साथ सम्बन्ध बहुत सुधर जायेंगे। इसी चीज का एक और पहलू यह है कि औसत कर्मचारी मुख्य प्रबन्धक द्वारा पहिचाना जाता है। उसका एक शब्द ही इसके लिए काफी होगा।

अवसर—प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति का अवसर चाहता है। हो सकता है कि वह ऐसा अवसर आने पर इससे लाभ न उठाये, पर वह कम से कम, अवसर अवश्य

चाहता है। सम्भव है कि कुछ लोग जो अपने धन्धे में कुशल हैं अपने सामान्य काम पर रहना ही पसन्द करें। वे अतिरिक्त जिम्मेवारी लेने की अनिच्छा के कारण ऊँचे पद पर जाने से इनकार कर दें। पर सार बहुत से ऐसे लोग हैं जिनके लिए दायित्व वृद्धि का अवसर और क्षेत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है और यदि उनके पदोन्नति के अवसर को मनमाने तौर से अवरुद्ध कर दिया जाए तो उनका कर्तव्यानुराग नष्ट हो जाता है।

नेतृत्व—मुख्य पथप्रदर्शन की इच्छा के दो पहलू हैं पहला तो यह सुविदित इच्छा कि कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसके निश्चयों और आग्रह पर निर्भर हुआ जा सके और जिनके निर्णय शक्ति आदर योग्य हो। प्रायः उसकी क्षमता और ज्ञान के कारण उसका विश्वास किया जाता है। परन्तु वह अपने कार्यों द्वारा भी आदर का पात्र हो सकता है। मुख्य प्रबन्धाधिकारी—मैनेजिंग डायरेक्टर या जनरल मैनेजर—औद्योगिक कारखाने रूपी जहाज का कप्तान है और उसे ही आदर्श पेश करना चाहिए। उसके ढंग के अनुसार दूसरे अपना ढंग बनायेंगे और छोटे से छोटा सुपरवाइजर उसके ही कार्यों का अनुकरण करेगा। वह लोगों से जिस प्रकार का व्यवहार करेगा, उसी प्रकार सारी कम्पनी में आपसी सम्बन्धों का ढर्रा बन जायगा। कर्मचारियों के लिए उसकी आदर भावना प्रत्येक समस्या में उसकी दिलचस्पी फैक्टरी में से गुजरते हुए दो मीठे शब्द इन सब बातों से जो एक ढर्रा बनता है वह सारे संगठन में मालिक-मजदूर सम्बन्धों का तल में सुधार देगा। मजदूर अपने कठिनाइयों की चिन्ता करने लगता है परन्तु यदि सफलता के लिए वे आवश्यक हैं तो एक ऐसे नेता के लिए जो मजदूरों को अपने आपको मित्र मानता है वह खुशी से उन्हें सहन करने को तैयार होगा। कर्तव्यानुराग को ऊँचा या नीचा करने वाले कारक के रूप में उच्च-पदस्थ व्यक्तियों के प्रभाव का महत्त्व बहुत अधिक है।

न्याय—आधुनिक श्रमिक न्याय और उचित व्यवहार की माँग करता है। कार्य और मजदूरी में समगति होनी चाहिए। पारस्परिक सम्बन्ध एक दूसरे के विश्वास और आदर पर बनाया जाना चाहिए और प्रबन्ध को किसी भी मूल्य पर निरे तात्कालिक लाभ की अपेक्षा कोई और बड़ी बात सोचना चाहिए। मनमाने काम, कुविचारित कार्रवाइयाँ अब सहन नहीं की जाती। और खुशी की बात है कि प्रबन्धकों ने नियमों के कथित भंग या आदतानुसार काम करने से इन्कार पर अधिक सहिष्णुता की नीति की उपयोगिता को समझ लिया है।

प्रतिष्ठा—शायद हर आदमी जो बात सबसे अधिक तीव्रता से चाहता है वह है अपने उपयोगी होने की भावना। उदाहरण के लिए, कर्मचारी यह अनुभव करना चाहता है कि वह जो कुछ कर रहा है वह सचमुच करने योग्य है और कि अपने फोरमैन और मैनेजर की निगाह में उसे काम तथा संगठन की प्रगति में महत्त्वपूर्ण और दायित्वपूर्ण योगदान करने वाला समझा जाय। वह अपने कौशल, अपने काम, अपनी प्रतिष्ठा, और यदि वह सुपरवाइजर है तो अपनी जिम्मेवारी में, किसी और को नहीं

घुमने देता । उसकी इस अभिलाषा की मान्यता कर्त्तव्यानुराग में एक महत्वपूर्ण कारक हो सकती है । किसी कर्मचारी को अपना जितना अधिक महत्व अनुभव होगा, उसके उतना ही अधिक अच्छा काम करने की सम्भावना है । किसी राष्ट्र निर्माण के कार्य क्रम में किसी कारखाने को उत्पादन का कोई महत्वपूर्ण काम सौंपा जा सकता है। कारखाना यह नारा अपना सकता है—"यह सब मुझ पर निर्भर है।" कर्मचारी जब एक बार राष्ट्रीय आवश्यकता के प्रति सचेत हो जायंगे, तब वे अपना कार्य करेंगे और अधिकतम उत्पादन करेंगे और अधिक से अधिक तेजी से अधिक से अधिक अच्छी रीति से अपना काम करेंगे। इस अभिमान की भावना से कि प्रत्येक व्यक्ति का महत्व है, और कि कम्पनी कसौटी पर है, और भारत की समृद्धि बहुत हद तक इस बात पर निर्भर है कि हम इस समय क्या करते हैं, प्राय असम्भव काम भी पूरा हो जायगा।

जानना—मनुष्य की एक स्वाभाविक विशेषता है कौतूहल। वह न केवल 'क्या' बल्कि 'क्यों' और 'कैसे' भी जानना चाहता है । इसलिए कर्तव्यानुराग बढाने का एक बहुत उत्तम तरीका है कि प्रबन्ध जानकारी देता रहे । जानकारी होने से सहयोग बढता है, क्योंकि एक तो कर्मचारी वर्तमान गतिविधि से परिचित हो जाता है । दूसरे, इसमें काम में हिस्सेदार होने की भावना को प्रोत्साहन मिलता है। परन्तु जानकारी सिर्फ शब्दों का ही नाम नहीं । यही बात महत्वपूर्ण नहीं कि क्या कहा गया, बल्कि यह भी महत्वपूर्ण है कि कैसे कहा गया। सम्भव है कि शब्दों में कोई आपत्तिजनक चीज न हो परन्तु लहजे या चेहरे से चोट पहुँचे।

सृजनात्मक प्रेरणा—मनुष्य में सृजनात्मक प्रेरणा बडी प्रबल है । असल में यह बच्चों में भी बडी प्रबल है, और इस बात का जानकर मकैनो आदि खिलौने बनाने वालों ने लाभ उठाया । सृजनात्मक भावना मनुष्य के काम में प्रकट की जा सकती है, और सचाई तो यह है कि प्रकट की जानी चाहिए, और प्राय प्रकट की जाती है । इस भावना के साथ पूर्णता का विचार भी होता है । इस प्रकार बनाई गई वस्तु सदा निर्भर करने योग्य होती है, वह अच्छी होती है । जो मालिक चाहता है कि उसके कर्मचारी निष्ठावान, सुसतुष्ट और ऊँचे कर्तव्यानुराग वाले हों, वह ऐसी परिस्थितियां पैदा करता है जिनमें मजदूर अपनी योग्यता का परिचय दे सके ।

काम, वस्तु और अपनी कम्पनी पर अभिमान—काम का अभिमान पैदा करना, एक बहुत उपयोगी साधन है, विशेष कर तब जब इसके साथ कम्पनी की नीति योजनाओं और प्रगति और समस्याओं की पूरी जानकारी भी दी जाए । सुपरवाइजर अपने कर्मचारियों के काम का अभिमान बढा सकता है, उन्हें ठीक जगह पर रख सकता है, उन्हें तैयार माल में अपने हिस्से का अनुभव करा सकता है, और उन्हें यह अनुभव करा सकता है कि अन्त में वस्तु कैसी होगी। कर्मचारी अनुभव करना चाहता है कि जिस फर्म में मैं काम करता हूँ, वह अच्छी है । वह अपने मित्रों व साथियों से बातचीत करते हुए यह बताना चाहता है कि इस कम्पनी में और जगह की अपेक्षा अच्छा काम है। परन्तु यह अभिमान वास्तविकता पर आधारित होना चाहिए ।

इनका एक परिणाम यह होगा कि मजदूर में अधिक रचनात्मक प्रवृत्ति पैदा होगी, वह चीजों को बरबाद होने से बचायेगा। बाहर जाते समय रोशनी और पंखे को बन्द कर देगा, काम समाप्त हो जाने पर कील, पेंच आदि छोटी-छोटी चीजें स्टोर में वापिस कर देगा। ऐसी छोटी-छोटी चीजों की संख्या बहुत हो जाती है और हानि तथा लाभ लेखे के दायीं ओर काफी असर पड़ जाता है। इसके व्यापक परिणाम हैं कर्तव्यानुराग और उत्पादकता में वृद्धि।

पारस्परिक मामलों में आवाज—'क्योंकि हम कहते हैं, इसलिए ऐसा करो,' इस तरह के दिन अब लद गये। आजकल नेताओं और अनुयायियों के बीच का अन्तर कम और कम होता जाता है। आजकल ऊँची स्थिति परिस्थितियों, अवसर और भाग्य का, तथा इनके होने पर इनका लाभ उठाने ही का नाम है। परिणाम यह है कि ऊपर से नीचे तक सब मजदूर उन मामलों में अपनी आवाज चाहते हैं, जिन्हें करने के लिए वे अपने आपको सक्षम समझते हैं और जो प्रत्यक्ष रूप से या एक मात्र अधिकार या स्वामित्व का मामला नहीं। इन मामलों में भी समझदार प्रबन्ध अधिकारी बात सुनने को तैयार रहते हैं, क्योंकि मजदूरों के सृजनात्मक आवेगों को रोकने की यह एक उत्तम रीति है।

सुझाव योजना—मजदूरों की दिलचस्पी बढ़ाने का एक तरीका है सुझाव योजना। बहुधा अपना दिन का काम करते हुए कर्मचारियों के दिमाग में काम करने या किये जा सकने के बारे में बड़े-बड़े अच्छे विचार होते हैं। प्रायः ये विचार बड़े उपयोगी होते हैं, और यदि उन्हें पेश करने का मौका मिले तो बड़े मूल्यवान सुधार किये जा सकते हैं। पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण स्वयं कर्मचारियों पर इनका भावनात्मक प्रभाव है। उनके लिए इस योजना का सबसे पहला और मुख्य अर्थ यह है कि कम्पनी उन्हें जानती है और उनके योगदान में दिलचस्पी रखती है। इस योजना के चलाने का प्रचलित तरीका यह है कि प्रत्येक विभाग या सेक्शन में सुझाव बक्स रख दिये जाते हैं, और यह ऐलान कर दिया जाता है कि मौलिक और उपयोगी या काम में लाये जा सकने वाले विचारों पर पुरस्कार दिये जायेंगे। लेखक ने मिडलैंड फैक्टरियों (इंग्लैण्ड) के अपने दौरे में देखा कि कई फर्म एक केन्द्रीय स्थान पर स्थायी बक्स रखती हैं और उसकी ओर ध्यान खींचने के लिए उसे हर महीने एक नये रंग में रंग देती हैं। जय इंजीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड के चेयरमैन सर श्रीराम ने लेखक को हाल में ही सूचित किया है कि कम्पनी ने सुझाव योजना का तजुर्बा किया है जिसमें उसे बड़ी सफलता हुई है, यहाँ तक कि कर्मचारियों द्वारा दिये गए कई सुझाव बड़े मूल्यवान् सिद्ध हुए हैं।

सुझाव योजना प्रायः पाँच-छः व्यक्तियों की एक समिति के अधीन होती है। ये लोग कारखाने के विभिन्न विभागों के प्रतिनिधि होते हैं और पेश किये गये विचारों का मूल्यांकन करने में समर्थ और इस प्रकार पुरस्कार की सिफारिश करने में समर्थ होते हैं। किसी योजना की सफलता के लिए आवश्यक है कि तत्परतापूर्वक कार्य हो, क्योंकि यदि विचारों के पेश किये जाने और उन पर सोच-विचार किये जाने के बीच में महीनों गुजर जाएँ तो वे विचार निर्जीव हो जाते हैं। ठीक प्रबन्ध न होने पर योजना

कर्तव्यानुराग कम करती है।

मजदूरो के प्रतिनिधियो को सचालक बोर्ड मे रखने से भी अच्छे सम्बन्ध पैदा होने मे बडी मदद मिलती है। योग्य मजदूरो की सलाह से और उनके सहयोग की चेतना से भी, जो 'एक के साथ सब' और 'सब के साथ एक' की भावना होती है, और जिम्मेवारी तथा सचालन मे हिस्सा लेने की भावना से होती है, बहुत लाभ हो सकता है। मजदूर को उन कामो मे अधिक आनन्द आयगा जिनके सचालन मे प्रबन्ध की दृष्टि से उसका कुछ नियन्त्रण हो।

सम्मिलित परामर्श[1]—सम्मिलित परामर्श उन महत्वपूर्ण योजनाओ में है, जिनके द्वारा प्रबन्ध अपने कमचारियो का कारखाने के कार्यों और प्रयोजनो में जिम्मेदार और पूरा हिस्सेदार बनाने की कोशिश करता है। सम्मिलित उत्पादन समिति (जो सलाह देती है और परामर्श करती है) जो प्रबन्ध और कर्मचारियो की प्रतिनिधि होती है, कारखाने आम कठिनाइयो और समस्याओ के आपसी विचार-विनिमय और उत्पादन की तथा उत्पादकता की विधियो मे सुधार करने मे सफलता हुई है। सम्मिलित उत्पादक समितियो द्वारा सम्मिलित परामर्श का प्रयोजन उन वर्क्स कमेटियो के प्रयोजन से सर्वथा भिन्न है जो औद्योगिक विवाद अधिनियम, १९४७ के आधीन स्थापित करनी आवश्यक है। इनमे और वर्क्स कमेटियो म यह भेद है कि कारखाने के विविध विभागो मे विचारो और सूचनाओ के विनिमय का और समूचन बढाने का साधन है। इसका उस विचार से कोई सम्बन्ध नही कि प्रबन्ध और कर्मचारी इन दोनो पक्षो की वर्क्स कमेटी जैसी किसी सम्मिलित कमेटी मे एक जगह बैठाया जाय, या उनका विरोध भाव कम किया जाये। कारखाने म कोई पक्ष विपक्ष नही होते। वहा कार्यों, जिम्मेवारियो और और कार्य भार के भेद तो होते हैं, पर उन सबका लक्ष्य एक ही होता है। इस सम्मिलित समिति का काम कार्य सम्बन्धी इस अन्तर को कम करना है, स्वार्थ के या लक्ष्य के अन्तर को कम करना नही। इसलिए यदि किसी योजना को सफल बनाना है तो इसे सच्चे हृदय से "सम्मिलित परामर्श" शब्दो की सच्ची भावना को हृदय मे धारण करते हुए क्रियान्वित करना चाहिए। सम्मिलित परामर्श के समय खुलकर और आजादी से बातचीत होनी चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह प्रबन्ध का प्रतिनिधि हो और चाहे वह कर्मचारी का प्रतिनिधि हो, सच्चे हृदय से बात कहनी चाहिए। मजदूरो को उपहासास्पद और लम्बी चौडी मार्गें पेश नही करनी चाहिए, और प्रबन्ध को बताई गई न्यूनताओ को पूरा करने के लिए झगडे बहाने न बनाने चाहिएँ। जहा सिर्फ ऊपर से ही अच्छे इरादे प्रदर्शित किये जाते हैं, वहा दो चार बैठको से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी, समय बरबाद होगा, मिजाज बिगडेगे, निराशा पैदा होगी, और सन्देहो का जन्म होगा, जिन्हे दूर करने में अनेक वर्ष लगेगे।

किसी कमेटी की सख्या और कार्यों का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि उच्च

---

१ इस नियम के अधिक विवेचन के लिए देखो दि प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस आफ मैनेजमेंट (१९५३), सम्पादक—ई० एफ० एल० ब्रैक।

प्रबन्ध अधिकारी इसकी ओर प्राय बहुत कम ध्यान देते हैं। कमेटी की सख्या कारखाने के आकार और प्रकार पर, तथा उसके कार्यों और प्रयोजनो पर निर्भर है। विचारणीय विषय अनेक और विभिन्न हो सकते हैं, परन्तु मजदूरी और बोनस सम्बन्धी प्रश्नों को प्राय अलग कर दिया जाता है। एल० टच ने सम्मिलित परामर्श समितियो में प्राय आने वाले मामले ये बताये हैं (१) गैरहाजिरी और देर से आना, (२) दुर्घटना रोकना, (३) समय, श्रम, और सामान की बरबादी को रोकना, (४) कैन्टीन, (५) छुट्टियों की व्यवस्था, (६) काम के नियम बनाना और सशोधित करना, (७) काम के घटो, बीच की छुट्टी और समय दर्ज करने आदि का काम, (८) शारीरिक कल्याण सम्बन्धी प्रश्न, (९) प्रबन्ध और मजदूरो के बीच अनुशासन और शिष्टाचार के प्रश्न, (१०) मजदूरो को रखने की शर्तें, (११) मजदूरो का प्रशिक्षण आदि, (१२) पुस्तकालय, भाषण और उद्योग का सामाजिक पहलू, (१३) सुझावो और विधियो की परख तथा कारखाने का सुधार, (१४) मनोरजन और खेल, (१५) उत्पादन म सुधार, (१६) कल्याण निधि, खेल-कूद निधि, आदि, (१७) शिकायत। औद्योगिक सम्बन्ध के इस पहलू को समाप्त करने से पहले इस बात पर बल देना उचित होगा कि सम्मिलित परामर्श का उद्देश्य यह है कि फैक्टरी के अन्दर पक्ष-विपक्ष म विभाजन न हो, बल्कि सब मजदूर और प्रबन्ध एक साथ मिलकर काम करने वाले दल के रूप म एक हो जाय।

अनुशासन—उपयोगी और सुखी जीवन के लिए अनुशासन परमावश्यक है। यह बात व्यक्ति पर तथा समूह पर एक ही तरह लागू होती है और फैक्टरी इसका एक अच्छा उदाहरण है। इसलिए, अगर कारखाने म अव्यवस्था के स्थान पर व्यवस्था कायम रखनी है, तो अनुशासन आवश्यक है। इससे अधिकतम उत्पादन में सहायता मिलती है। कर्तव्यानुराग और अनुशासन को पृथक् नही किया जा सकता। अगर कर्तव्यानुराग अच्छा है तो अनुशासन भी अच्छा होगा। जो प्रबन्धक अच्छा कर्तव्यानुराग, ठीक भावना और काम करने वाले व्यक्तियों के ठीक मनोभाव निर्माण करने और कायम रखने वाली इन सब प्रत्यक्ष और परोक्ष बातो में समझदारी से चलता है, उसे अनुशासन कायम रखने म कोई कठिनाई नही होगी।

अनुशासन तीन प्रकार का है —

(१) सैनिक ढग का सख्त नियत्रण वाला अनुशासन,
(२) पथ-प्रदर्शन और शिक्षण करने वाला अनुशासन,
(३) स्वय आरोपित अनुशासन,

सैनिक ढग का अनुशासन न तो आवश्यक है और न उद्योग को स्वीकार है। सख्त नियत्रण से मनुष्य आटोमैटन, अर्थात यत्र की तरह काम करने वाला हो जाता है और आटोमैटन न तो सोच सकता है और न वह निश्चित काम से ज्यादा कुछ कर सकता है। अच्छा सैनिक वह है जो बिना अगर-मगर के आदेश का पालन करता है। समय-समय पर फैक्टरी मजदूर के लिए बिना अगर-मगर के आदेश पालन करना आवश्यक हो सकता है, परन्तु किसी आदेश का, चाहे वह समझदारी का हो या नासमझी का, अनायुक्त मान

ऐना, किसी अच्छे मजदूर या समुदाय के बुद्धिमान सदस्य का चिह्न नहीं है। आखिरकार सेना एक चीज है और उद्योग बिलकुल दूसरी चीज है। भय के द्वारा अनुशासन प्राप्त करना कार्य संचालन की कोई सफल नीति नहीं, क्योंकि इसका सारे कारखाने के कर्त्तव्यानुराग पर हानिकर प्रभाव होता है। विक्षुब्ध होकर दंड दे देना हमेशा खतरनाक होता है और वह कर्त्तव्यविमुखता के लिए उचित दंड की सीमा से बाहर ही जाता है।

किसी भी संगठन में नियम आवश्यक हैं, क्योंकि वे सरल और स्पष्ट रूप से पथप्रदर्शन और शिक्षण करते हैं, अथवा उन्हें ऐसा करना चाहिए। किताबी नियम, प्रशासनीय चार्ट, कार्यांशों (जॉब) की स्पष्ट परिभाषा, ये सब किसी संगठन के व्यवस्थित और प्रभावीरीति से कार्य करने में सहायता देने वाले आवश्यक और महत्त्वपूर्ण भाग हैं। वे विश्वास, निदेशन और व्यवस्था की भावना तथा सुरक्षा की भावना, जो युक्तियुक्त व्यवहार और दक्षता के लिए इतनी आवश्यक हैं, स्थापित करके अनुशासन लागू करने में सहायता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। अधिकतर अनुशासनहीनता का कारण साधारणतया विश्वास की कमी, असुरक्षा और इसके साथ होने वाली शिकायत की भावना होना है। सबसे बड़ी बात यह है कि अनुशासन शिक्षात्मक होना चाहिए "कि दंड किसी भी रूप में किसी साध्य का साधन होना चाहिए, अन्यथा यह पूर्णतया अनुचित है।" मनमाने वैयक्तिक निश्चयों से अनुशासन की समस्या कभी हल नहीं होती और उनसे हमेशा बचना चाहिए। मनुष्य का अधिकार है कि उसका फैसला ठंडे दिमाग से किया जाय। अगर दंड देना आवश्यक हो, तो वह ऐसे वातावरण में, जहां प्रत्येक व्यक्ति शान्त और संयत हो, सब तथ्यों की परीक्षा करने के बाद दिया जाना चाहिए।

जिन्हें "अयुक्त सामूहिक अरुचियां" कहते हैं, वे अनुशासनहीनता वाली परिस्थिति में शायद सबसे अधिक खतरनाक तत्त्व हैं। ट्रेड यूनियन नेता मैनेजर को अच्छा आदमी समझता हो सकता है, परन्तु प्रबन्ध के प्रति परम्परागत घृणा होती है। इस कारण यह परमावश्यक है कि फैक्टरी में सम्मिलित परामर्श खुले विचार-विनिमय और आदेशों के निर्व्यक्तीकरण, आदि सब संभव उपायों से अच्छे व्यक्तिगत सम्बन्धों को बढ़ाया जाय और कायम रखा जाये। विरोध जो, अनुशासनहीनता की जड़ है, हमेशा आवश्यक रूप से कार्यनाशक नहीं होता। यह प्रगामी भी हो सकती है। इसका प्रगामी होना प्रबन्ध के रवैये पर और इस बात पर निर्भर है कि मैनेजर में परस्पर-विरोधी शक्तियों को भावनायुक्त के बजाय युक्तियुक्त कार्य से सम्भालने की योग्यता है या नहीं, और उसमें निष्पक्ष भाव से, परिस्थिति के अच्छे और बुरे तत्त्वों को पहचानने की योग्यता है या नहीं। विरोध को उपयोगी बनाने का तरीका यह है कि इसे बुद्धिपूर्वक सुलझाया जाय। इसकी एक निश्चित विधि यह है कि शिकायतें पेश हों और उनका सही और न्याय रीति से, घपलेबाज या संदिग्ध समझौते द्वारा नहीं, बल्कि दृष्टिकोणों के "समेकन" की किसी रचनात्मक विधि द्वारा–जिसके अनुभव से दोनों पक्ष लाभ उठायें, और दोनों पक्ष यह अनुभव करें कि न्याय हुआ है—निर्णय करके उपयुक्त व्यवस्था प्रचलित की जाए और अधिक ब्यौरे में जाये बिना यह कह देना काफी होगा कि न्याय के निम्नलिखित मूल सिद्धान्त अनुशासन

कायम रखने में सहायक हो सकते हैं।

१ अनुशासन का अर्थ है स्वीकृत नियमों के अनुसार सामान्यतया सुसंगत व्यवहार। इसलिए नियम ऐसे होने चाहिए कि जिन्हें उनका पालन करना है, उनके लिये वे सुबोध और स्वीकार्य हों। इस कारण अनुशासन के नियमों का निश्चय उनके साथ परामर्श करके करना चाहिए जिन पर ये लागू होने हैं।

२ नियमों का पालन न करने का दंड व्यक्तिगत पक्षपात के बिना और ऐसी रीति से मिलना चाहिए जिससे अन्त में नियम भंग करने वाले को लाभ पहुंचे।

३ एक सर्वथा स्वतन्त्र न्यायाधिकरण के सामने अपील करने का अधिकार होना चाहिए। यह न्याय का मूलाधार है।

स्वयं आरोपित अनुशासन अनुशासन का सबसे ऊंचा रूप है और इसे बढ़ावा देना चाहिए। इसमें सब लोग विनियमित, अर्थात् स्वयं विनियमित, होते हैं, और सब लोग बल होते हैं। यह ऊंचे दर्जे के नेतृत्व के परिणामस्वरूप होता है। यह वहां उन्नत होता है जहां न्याय और औचित्य तथा गहरी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली सब चीजों के लिए सजीव चिन्ता रहती है। इसमें एक आदमी को दूसरे आदमी को आदेश देने के स्थान पर वे नियम आ जाते हैं, जिनका सब पालन करते हैं, क्योंकि वे पारस्परिक व्यवहार के नियम हैं। अनुशासन मूलतः अच्छे मानवीय सम्बन्धों का मामला है। यह आत्मसम्मान का, अपने काम में अभिमान का, काम के गौरव और अपने प्रति अपने कारखाने के प्रति और सारे समाज के प्रति सदा जिम्मेवारी अनुभव करने का मामला है। काम जीवित रहने के साधन के बजाय उसका साध्य बन जाता है। मैनेजर को निरन्तर यत्न द्वारा और अपने आचरण तथा अन्य पर्यवेक्षण कार्यकर्ताओं के आचरण के ऊंचे आदर्शों के द्वारा इसी के लिए कोशिश करनी पड़ती है। उससे सब मामलों में ऊंचे नैतिक आदर्शों और उच्च व्यावसायिक आचरणों के ऊंचे आदर्श की आशा की जाती है, जिससे वह सन्देह की सीमा से बाहर रहे।

संक्षेप में, अनुशासन की आधुनिक अवधारणा भय और धमकियों या सत्ता का अनुशासन नहीं, बल्कि अच्छे नेताओं द्वारा अपना आदर्श प्रस्तुत करके आरोपित किया गया आत्मानुशासन है। सच्चा अनुशासन शिक्षात्मक होता है। इस मामले को बुद्धिपूर्वक हल करने का यह तरीका है कि शिक्षा देने के प्रति लोगों के रवैये को सजग प्रयत्न द्वारा बदला जाय। इसे तब किया जा सकता है जब आदेशों में से व्यक्तित्व का अंश निकाल दिया जाय। मैनेजर अपनी ओर से उत्पादन कार्यक्रम में परिवर्तन करने का आदेश नहीं देता, बल्कि "परिस्थिति के नियम" अर्थात् अच्छे उत्पादन की स्पष्टता के कारण परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार एक व्यक्ति दूसरे से आदेश नहीं ले रहा, बल्कि दोनों परिस्थिति के नियम से, जिसके साथ कोई तर्क नहीं हो सकता और इसलिए कोई प्रतिक्रिया या रोष या संघर्ष भी नहीं होता, आदेश लेते हैं। इससे आदेशों को पालन करने की इच्छा और सद्भाव पैदा हो जाता है, क्योंकि हिस्सेदार होने की और जिम्मेवारी की भावना उन सब लोगों में हो जाती है।

औद्योगिक अशान्ति

पूर्ववर्ती पैरे मे यह दिखाने का यत्न किया गया है कि प्रबन्ध के ठीक अध्ययन की वस्तु मनुष्य है, कि मानवीय आवश्यकताओ की सतुष्टि ही प्रत्येक आर्थिक उपक्रम का लक्ष्य है । जब कभी इनमे से कुछ या दोनो की उपेक्षा की जाती है, तब औद्योगिक सम्बन्धो मे तनाव पैदा होने लगता है, जिसका अत औद्योगिक अशान्ति या सघर्ष के रूप म होता है। जब कभी मजदूरो द्वारा अपने अभावो और आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सक्रिय प्रयत्न किये जाते है और वे उनमे असफल हो जाते है, तब निराशा पैदा होती है। यदि निराशा को रोका न जाये तो प्राय चार परिणाम होते है, अर्थात् आनामक का प्रदर्शन, वापिसी और अयुक्त व्यवहार जिसम रचनात्मक के बजाय विनाशक काम किये जाते है, निराशापूर्ण अवस्था मे 'थक जाना" और इस प्रकार उदासीन हो जाना। इसमे एक विषम चक्र बन जाता है। यूनियन के रूप मे सगठित मजदूर जब बार-बार अधिक धन की माग करने आते है, तभी निराश रहते है। प्रबन्ध, कर्मचारियो सम्बन्धी और समस्या पैदा कर लेता है और तब निश्चय के साथ कहता है कि काम का एकमात्र उद्दीपन मजदूरी है। अधिक मजदूरी की माग वास्तव मे निराशा की भावना को दूर करने का एक प्रयत्न है। कुछ लोग इस निराशा को औद्योगिक अशाति का मूल कारण समझते है परन्तु बात इतनी सीधी-सादी नही है। औद्योगिक सघर्ष के कारणो के दो वर्ग है—एक अप्रत्यक्ष, दूसरे प्रत्यक्ष ।

अप्रत्यक्ष कारणो का मानव प्रकृति के अध्ययन से निकट सम्बन्ध होता है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करना चाहता है परन्तु इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह जो मार्ग अपनाता है, वह जटिल है, अर्थात् तर्क, भावना और सहज बुद्धि द्वारा अनुशासित है। प्राय वह मार्ग बाहर वाले को युक्तिहीन और तर्कहीन प्रतीत हो सकता है, परन्तु उस व्यक्ति की दृष्टि म यह पूर्णतया युक्तियुक्त और तर्कसगत होता है। कुछ समय पहले दिल्ली में एक बडे बैंक के कर्मचारियो ने (प्रबन्ध के कथनानुसार) सिर्फ इस कारण अकस्मात् हडताल कर दी, जो हफ्तो चली, कि एक क्लर्क का छुट्टी का प्रार्थना-पत्र अस्वीकृत कर दिया गया था। "तथ्यो' और "भावनाओ" के बीच का अन्तर ध्यान से देखने से मनोरजन भी होता है, और शिक्षा भी मिलती है। इस प्रकार इस तथ्य म कि ताप ११० अश है, और इस भावना म कि कोई व्यक्ति गर्मी महसूस करता है कि नही, बहुत वास्तविक अन्तर है।

इस प्रकार तथ्य मे और तथ्य के प्रति किसी व्यक्ति के मनोभाव म बहुत वास्तविक अन्तर है, जैसा कि ऊपर वाले हडताली बैंक कर्मचारियो के कार्य से प्रदर्शित होता है। सम्भव है कि यह सिद्ध किया जा सके कि कुछ कार्य या कर्मो की शृखला तर्करहित और निरर्थक है परन्तु इसका आवश्यक रूप से यह अर्थ नही कि कोई व्यक्ति उनके प्रति अपना मनोभाव बदल दे। तथ्य महत्त्वपूर्ण है परन्तु व्यक्ति का उनके प्रति जो मनोभाव है उस पर भी विचार किया जाना चाहिए। उनके प्रति व्यक्ति का मनोभाव सदा एक सा नही होता

यह उनकी साधारण मानसिक अवस्था के अनुसार बदलता रहता है। विभिन्न व्यक्तियों के उसी तथ्य के प्रति विभिन्न मनोभाव होते हैं। इसलिए मानव व्यवहार के साथ बर्ताव करते हुए (और यह एक स्थायी प्रश्न है) प्रबन्ध को यह समझ रखना चाहिए कि हम भावनाओं के साथ बर्ताव कर रहे हैं।

औद्योगिक विवादों के प्रत्यक्ष कारण—औद्योगिक विवादों के सम्भव कारण ये हो सकते हैं

(१) उद्योग की समृद्धि के नाम पर या रहन-सहन के खर्च में वृद्धि होने पर मजदूरी वृद्धि की माग,

(२) काम के समय में कमी और छुट्टियों में वृद्धि की माग।

(३) किसी बरखास्त कर्मचारी की पुन नियुक्ति की माग

(४) छुट्टी के नियमों में अधिक सुविधा की माग

(५) प्रबन्ध में मजदूरों के प्रतिनिधित्व की माग

(६) किसी ट्रेड यूनियन की मान्यता की माग;

(८) मजदूरों के उद्योग के लाभ में हिस्सा बटाने की इच्छा या फैक्टरी में या उसके बाहर अधिक सुख-सुविधाएं प्राप्त करने की इच्छा।

(९) दूसरे कारखानों या उद्योगों में हड़ताल करने वालों से सहायता।

(१०) सामान्य आन्दोलन या असन्तोष पैदा करने वाले राजनैतिक कारण।

अधिकतर विवाद साधारणतया, मजदूरी, भत्ते, बोनस और कर्मचारियों सम्बन्धी मामलों के बारे में होते हैं। इनके बाद उपविवादों का नम्बर आता है, जो काम के घण्टों की साधारण दशाओं, ट्रेड यूनियन की मान्यता आदि के विषय में होते हैं। भारत में, औद्योगिक अशान्ति या औद्योगिक शान्ति की समस्या की विशालता, विशेषकर दूसरे विश्व युद्ध के बाद के काल में, के ज्ञान के लिए पृष्ठ ६२० पर दी गयी दो सारणियां देखिए, जिनमें १९३९ और १९५५ के बीच के काल में हुए औद्योगिक विवादों के आकड़े हैं।

१९२१ से १९३९ तक बीस वर्ष की अवधि में भारत में विवादों की कुल संख्या ३४९५ थी, जबकि १९४६ से १९४८ तक के तीन वर्षों में विवादों की संख्या ४६९९ थी, यद्यपि १९४९ और १९५० में यह संख्या घटकर क्रमश ९२० और ८१४ हो गई थी, पर १९५१ में यह बढ़कर १०७१ हो गई, और १९५२ में फिर घटकर ९६३ रह गयी—जबकि इसमें कम मजदूर और कम मनुष्य दिन अन्तर्ग्रस्त हुए। १९५३ में गिरकर यह संख्या फिर ७७२ हो गई, पर १९५४ में यह बढ़कर ८४० और १९५५में ९६२ हो गई।

१९४६–५१ की अवधि में हुए कुल ९८५० श्रम विवादों में से लगभग एक तिहाई मजदूरी और भत्तों के बारे में, २०% बोनस के बारे में, २५% सेवा-मुक्ति, बर्खास्तगी, विशेष वर्ग के आपरेटरों की नियुक्ति आदि कर्मचारियों सम्बन्धी प्रश्नों के बारे में, २% छटनी के बारे में, १०% काम के घण्टों या अवकाश और छुट्टी के बारे में, और

औद्योगिक विवादों की संख्या प्रदर्शित करने वाली सारणी*

वर्ष	विवादों की संख्या	ग्रस्त मजदूरों की संख्या	उस अवधि में नष्ट हुए मनुष्य-दिनों की कुल संख्या
१९३९	४०६	४०९१८९	४९९२७९५
१९४०	३२२	४५२५३९	७५७७२८१
१९४१	३५९	२९१०५६	३३३०५०३
१९४२	६९४	७७२६५३	५७७९९६५
१९४३	७१६	५२५०८८	२३४२२८७
१९४४	६५८	५५००१५	३४४७३०६
१९४५	८२०	७४७५३०	४०५४४९९
१९४६	१६२९	१९६१९४८	१२७१७०६२
१९४७	१८११	१८४०७८४	१६५६२६६६
१९४८	१२५९	१०५९१२०	७८३७१७३
१९४९	९२०	६८५४५७	६६००५९४
१९५०	८१४	७१९८८३	१२८०६७०४
१९५१	१०७१	६९१३२१	३८१८९२८
१९५२	९६३	८०९२४२	३३३६९६१
१९५३	७७२	४६६६०७	३३८२६०८
१९५४	८४०	४७७१८३	३३७२६३०
१९५५	९६२	५६६३४९	४१२५६८५

औद्योगिक विवाद कारणवार, सितम्बर १९५५*

कारण	विवादों की संख्या	ग्रस्त मजदूरों की संख्या	नष्ट मनुष्य दिनों की संख्या
मजदूरी और भत्ते	२०	२५१३	४२९४
बोनस	३	२८१	२८१
कर्मचारी नियुक्ति	१३	२८३८	४३८२
छटनी	६	२८३	३५२९
छुट्टी और काम के घण्टे	५	३२२६	९९९
अन्य	११	६६६९	१५८७९
अज्ञात	५	८५५	९१८४
कुल	६१	१६४६५	३८६४८

*इण्डियन लेबर गजट, १९५५

३० %अन्य कारणों से, जैसे काम की व्यवस्था, नियम और अनुशासन, ट्रेड यूनियनों की मान्यता,आदि सहानुभूतिक हड़ताल आदिमें,पैदा हुए। हाल के विवादों के ताजे आंकडों से भी यही अवस्था दृष्टिगोचर होती है। सितम्बर १९५५ में हुए कुल ६१ विवादों में से २१ (३३%) मजदूरी और भत्तों के, ३ (५%)बोनस के, १३(२१%)नियुक्ति सम्बन्धी मामला के, (७%)छटनी के, ५ (८%) छुट्टी और काम के घण्टों के, और ११(८%) अन्य बातों के बारे में थे, और ५ विवादों के बारे में कुछ पता नहीं चला। विवाद का सबसे महत्वपूर्ण कारण अब भी मजदूरी ही है। यद्यपि हाल के वर्षों में कर्मचारी सम्बन्धी मामले भी अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। इसके अन्तर्गत छटनी, सेवामुक्ति और बरखास्तगी, व्यक्तियों के आचरण आदि से सम्बद्ध विवाद हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में द्वितीय महायुद्ध के बाद अकस्मात अत्यधिक अशान्ति के मुख्य कारण ये थे (१) कीमतों के स्तर में रहन-महन के खर्च की निर्देशांक संख्या से सूचित रहन-सहन की लागत की अपेक्षा अधिक वृद्धि हो गई थी। असल में रहन-सहन का खर्च उतने से बहुत ऊपर था, जितना सरकारी निर्देशांक अंक से सूचित होता था, और इसलिए मजदूरों की आय में जो वृद्धि हुई, उसने उनके अनुरूप क्षतिपूर्ति न हुई। इसलिए अधिक मजदूरी और भत्तों की मांग बढ़ती चली गई। (२) ज्यों-ज्यों समृद्धि में वृद्धि स्थायी होती गई, त्यों-त्यों यह मांग बढ़ती गई, कि मालिक को रहन सहन का अतिरिक्त खर्चा उठाना चाहिए जो वह अपने नफे में बिना कोई विशेष कमी हुए अच्छी तरह उठा सकता है। (३) मजदूर युद्ध के दिनों में अत्यधिक काम करने से थके हुए थे। उन्हें अपनी अवस्था में सुधार के कोई चिन्ह नहीं दिखाई दिये। (४) विभाजन और साम्प्रदायिक उपद्रवों के बाद जो आम विक्षोभ और अव्यवस्था फैली उसने औद्योगिक अशान्ति को बहुत सहारा दिया। (५) बहुत से मालिकों ने जो झूठा भय पैदा करके अपनी जिम्मेवारियों से बच निकलना चाहते थे, जानबूझकर जो उदासीनता प्रदर्शित की, वह औद्योगिक अशान्ति का एक मुख्य कारक बन गया। पर पिछले दिनों टैक्सटाइल लेबर एसोसिएशन और अहमदाबाद मिल औनर्स एसोसिएशन में बोनस तथा विवादों के निपटारे के बारे में स्वेच्छया समझौते हुए हैं। १२ मार्च १९५६ को श्री जे० आर० डी० टाटा ने ऐलान किया है कि मजदूरों को लाभ तथा प्रबन्ध में उचित हिस्सा दिया जाएगा। कानपुर की कुछ मिलों ने भी ऐसे ही ऐलान किये हैं। प्रतीत होता है कि कुछ हृदय-परिवर्तन हो रहा है, जो एक शुभ चिन्ह है।

भारतीय श्रमिक विद्रोही हो गया था। सारे देश में फैले हुए असन्तोष के परिणामस्वरूप हड़तालें होने लगी, और कुछ जगह अपनी शिकायतों को दूर कराने के लिए हिंसा का भी आश्रय लिया गया। यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि हड़तालों और तालेबन्दियों का अर्थ है, राष्ट्रीय धन की हानि, जिनसे राष्ट्र उन वस्तुओं से वंचित हो जाता है, जिनकी पहले ही कमी है। सिर्फ एक उदाहरण देना काफी होगा। १९४८ में बम्बई वाली हड़ताल सिर्फ दस दिन चली और इसने देश को २० करोड़ गज कपड़े से वंचित कर दिया और इसके अलावा श्रमिकों को साढ़े चार लाख रुपये की मजदूरी की

हानि हुई। तो भी यह विवाद कानम में और वह भी मजदूरों के एक बहुत छोटे हिस्से ड्राअर्स इन (कपड़ा बनाते समय सजावट के लिए धागे खींचने वाले) के बारे में था। आज हम देखते हैं कि "आकस्मिक हड़ताल", "अन्दर रहो हड़ताल", "सहानुभूतिक हड़ताल" आदि होती हैं। इसके अलावा, जिस व्यवस्था में कार्य की दशाओं का निर्धारण भाग और मशरण के नियम के अनुसार होता है, उसमें औद्योगिक हड़ताल और वर्ग युद्ध और बढ़ने की सम्भावनाएं विद्यमान हैं। इस नियम का मालिक-मजदूर सम्बन्धों पर लागू होने वाले उसूलों से कोई सम्बन्ध नहीं। ट्रेड यूनियन इसके लागू करने का विरोध करती है। धन की क्रय शक्ति के सिद्धान्त का ट्रेड यूनियन वादियों के पन्थ में कोई स्थान नहीं। मजदूर आखिर सुविधाएँ, काम की अच्छी दशाएँ और रहन-सहन का उचित स्तर चाहता है। यदि सुविधाएँ मिल जाएं तो मजदूर "हम काम के लिए नहीं जीते, जीने के लिए काम करते हैं" इस नये धर्म सन्देश को सुनने के लिए तैयार हो जाएगा, और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुर्बानी करने को तत्पर होगा।

यह हमारे देश के औद्योगिक इतिहास में परीक्षा का समय है, और राज्य, मालिक तथा मजदूर सबको मिलकर औद्योगिक शान्ति कायम रखने के लिए एक नीति बनानी चाहिए। पश्चिमी देशों में मजदूर और प्रबन्ध के बीच सहयोग और मेल स्थापित करने में सम्मिलित परामर्श को बड़ी सफलता मिली। भारत में दिसम्बर १९४७ में एक कोशिश की गई थी, जब दिल्ली भारतीय उद्योग सम्मेलन ने सर्वसम्मति से औद्योगिक शान्ति के सिद्धान्त निरूपित करने वाला प्रस्ताव स्वीकार किया था। मालिकों और मजदूरों दोनों के प्रतिनिधियों ने मिलकर काम करने तथा कानूनी व्यवस्था की सहायता से अपने विवाद न्यायसंगत और शान्तिपूर्ण रीति से हल करने की प्रतिज्ञा की थी। यह सुलह देश के औद्योगिक जीवन में एक नये मोड़ की सूचक प्रतीत होती थी। सुलह के शीघ्र बाद हड़तालों और तालाबन्दियों की संख्या बहुत कम हो गई थी, परन्तु कुछ ही दिनों में औद्योगिक अशान्ति फिर बढ़ने लगी, और जैसा कि उपर्युक्त सारणियों के आंकड़ों से स्पष्ट है, विवादों की संख्या १९४८ वाली संख्या से कम होने पर भी अभी बहुत बड़ी है। प्रतीत होता है कि सम्मेलन में दोनों पक्ष मुख्यतः प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के आकर्षक व्यक्तित्व के कारण वचनबद्ध हो गये। स्वभावतः, उनके मानसिक दृष्टिकोणों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था।

इसी बीच राज्य ने अपनी ओर से औद्योगिक विवाद अधिनियम, १९४७, के रूप में नया विधान प्रस्तुत किया, जिसमें कई नये उपबन्ध थे, और फैक्टरीज ऐक्ट १९४८ प्रस्तुत किया, जिसमें मजदूरों के कल्याण और सवेतन छुट्टी देने आदि के बारे में बहुत से नये उपबन्ध हैं। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, १९४८ अनेक विभिन्न प्रकार की फैक्टरियों में निर्वाह योग्य मजदूरी सुनिश्चित रूप से दिलाने में बहुत सहायक है। ट्रेड यूनियन ऐक्ट में कई नये उपबन्ध उद्योग में लोकतन्त्र की भावना का प्रवेश कराते हैं। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, १९४८ सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में एक बहुत बड़ा कदम है, और प्रोवीडेण्ट फण्ड ऐक्ट (भविष्य निधि अधिनियम) १९५२ के रूप में प्रस्तुत नये

विधान में सुधारों के लिए व्यवस्था की गई है। औद्योगिक विवाद अधिनियम विवादों के रोकने और तय करने के लिए कारखानों के दो नये संगठनों, अर्थात् कारखाना कमेटियों और औद्योगिक अदालतों की स्थापना का प्रबन्ध करता है। यह सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं में सब विवादों में समझौते को अनिवार्य, और अन्य उद्योगों में ऐच्छिक बनाकर की सेवाओं में नई दिशा देने का काम करता है। यह अधिनियम समझौते और न्याय-निर्णय की कार्यविधि चालू होने के दिनों में हड़ताल और तालेबन्दियों पर पाबन्दी लगाता है, और इन कार्यविधियों के फैसलों और पंचाटों को सरकार अनिवार्य लागू कर सकती है। परन्तु पूंजी और श्रम में वास्तविक सामञ्जस्य पैदा करने के लिए सिर्फ कानून काफी नहीं है। स्वामित्व के न्यासविपत्व की धारणा के स्थान पर सम्मिलित परामर्श होना चाहिए। प्रबन्ध और श्रम के बीच दैनिक सम्पर्क में एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने के लिए, मामूली कठिनाइयों को, जो यदि बढ़ती रहें, तो भयंकर रूप धारण कर सकती हैं, हल करने का उत्तम मौका मिलता है। श्रम और प्रबन्ध को आधी-आधी दूर तक आगे बढ़कर मिलना चाहिए और मध्य मार्ग पर चलना चाहिए। साधारणतया मजदूरों के मन में "स्वाभाविक अधिकारों" की भावना घर कर जाती है, जिनके कारण वे काल्पनिक भयों से चिन्तित रहते हैं, परन्तु ट्रेड यूनियन नेताओं को उन्हें यह पाठ पढ़ाना चाहिए कि उनका जैसे अपने प्रति कर्तव्य है, वैसे राष्ट्र के प्रति भी कर्तव्य है। औद्योगिक सम्बन्धों को नये ढंग से विन्यस्त करना चाहिए, जिसमें पूंजी प्रबन्ध और श्रम बराबर के हिस्सेदार हैं, और अपने अपने कार्यों के अनुसार, अधिकारों जिम्मेवारियों और पुरस्कारों के हकदार हैं। जिन्होंने नई विधियों की परीक्षा की है, उन्होंने देखा है कि उत्पादन बढ़ जाता है, विवाद कम हो जाता है, मूल्यवान समय बच जाता है, और कारखाने का सारा स्वर ही बदल जाता है। मजदूरों में चुस्ती लाने का एक बहुत प्रभावी तरीका यह है कि कल्याण कार्य के रूप में उन्हें धनेतर उद्दीपक प्रदान किया जाए।

कल्याण कार्य—प्रचलित प्रयोग में कल्याण कार्य का अर्थ है मालिक द्वारा अपने मजदूरों की दशा सुधारने के लिए स्वेच्छया किया गया प्रयत्न। इसी कार्य में मानवीय कारक अपने सही प्रकाश में आता है, क्योंकि चाहे हम इस तथ्य से बचने की कितनी भी कोशिश करें, पर हम इससे बच नहीं सकते, कि मजदूर की सबसे मूल्यवान निधि उसका स्वास्थ्य, शक्ति और बुद्धि है, और उसके कार्यव्यस्त जीवन की दीर्घता और रोग का निवारण ऐसी समस्याएं हैं, जो प्रत्येक मालिक पर असर डालती हैं। इस तथ्य को सब लोग स्वीकार करते हैं। परन्तु फिर भी बहुत से ऐसे कारखानेदार हैं, जिन्होंने अपने प्रबुद्ध साथियों के अच्छे उदाहरण का अनुकरण नहीं किया। ऐसे मालिकों को जागृत करने के लिए राज्य ने स्वास्थ्य और सुरक्षा के बारे में न्यूनतम कर्तव्य निश्चित कर दिये हैं और धुलाई की सुविधा, प्राथमिक उपचार के उपकरणों, उपाहारगृहों, विश्राम घरों, बाल घरों आदि विशिष्ट कल्याण की विशेष व्यवस्था की है। पांच सौ या इससे अधिक मजदूरों को काम पर लगाने वाली प्रत्येक फैक्टरी को कल्याण अधिकारी (वेल्फेयर

अफ्सर) नियुक्त करने पड़ते हैं, और कल्याण व्यवस्थाओं के प्रबन्ध में मजदूरों के प्रतिनिधियों को साथ रखना पड़ता है। श्रम कल्याण के लिए कानून बनाने के अलावा भारत सरकार ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद में श्रम कल्याण योजनाओं को आगे बढ़ाने में सक्रिय दिलचस्पी लेना शुरू किया। केन्द्रीय सरकार के लगभग २०० कारखाने हैं, जिनमें श्रम कल्याण निधियाँ चल रही हैं, और १९५४ के अन्त में इसकी कुल राशि दस लाख रुपये थी। निजी कारखानेदारों को भी कल्याण ट्रस्ट निधियाँ स्थापित करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है, पर यदि स्वेच्छया करने की प्रेरणा विफल रहे तो श्रम स्थायी समिति का सुझाव है, कि कारखानेदारों को कानून द्वारा ये निधियाँ स्थापित करने को बाधित किया जाए।

विभिन्न राज्य सरकारें भी कल्याण केन्द्र स्थापित करके मजदूरों के कल्याण में सक्रिय दिलचस्पी ले रही हैं। उदाहरण के लिए, बम्बई सरकार ने ५८, बिहार ने ४, उत्तर प्रदेश ने ४६ और पश्चिमी बंगाल में २८ कल्याण केन्द्र स्थापित किये। अन्य राज्यों ने या तो केन्द्र स्थापित किये, या उनकी योजना बनाई। इन केन्द्रों की स्थापना में राज्य सरकारों के मुख्य उद्देश्य ये हैं—

(१) मजदूरों को ट्रेड यूनियन और श्रम समस्याओं की शिक्षा,

(२) बच्चों और बड़ों को प्रायमिक शिक्षा की सुविधा देना,

(३) घर के अन्दर के और घर के बाहर के खेलों, गोष्ठियों, सिनेमा चित्रों प्रदर्शनियों, व्यायामशालाओं, अखाड़ों फव्वारा-स्नानों आदि के रूप में मनोरंजन की सुविधा देना;

(४) मजदूरों को चिकित्सा की सुविधाएँ देना।

केन्द्रीय और राज्य सरकारें जो कुछ कर रही हैं, उसके अलावा कारखानेदारों को मजदूर और उसके परिवार पर आने वाली मुसीबतों और आपत्तियों को दूर करने के लिए सुविधाएँ देने की दृष्टि से स्वयं कार्य करना चाहिए। इनमें से कुछ कार्य इस रूप में किये जा सकते हैं।

मजदूर के मन में बेकारी का भय सदा विद्यमान रहता है। वह अपने कार्यकाल की सुरक्षा या स्थायी रोजगार चाहता है। यदि कोई ऐसी व्यवस्था सोची जा सके, जिसमें स्वीकृत नियमों के अनुसार, कुछ वर्षों की सेवा के बाद रिटायर होने की उमर तक स्थायी रोजगार की गारण्टी हो तो इस भय को कुछ दूर किया जा सकता है, औद्योगिक अनुशासन बनाया जा सकता है और औद्योगिक सम्बन्धों को एक नये आधार पर लाया जा सकता है।

दुर्घटनाएं और उनका निवारण—१९४७ में २६,२७,८३१ औद्योगिक मजदूरों में ६८,३६२ नष्ट-समय दुर्घटनाएँ हुईं। इनमें से ४७४ घातक, १०,१०७ गम्भीर, ५७७८१ मामूली थीं, जिनमें भारी हानि हुई। फैक्टरीज एक्ट में बड़े ऊँचे दरजे की सुरक्षा व्यवस्था रखी गयी है, और मालिक के लिए यह देखना आवश्यक है कि मजदूर सुरक्षा साधनों का उपयोग करें। यदि मजदूर सुरक्षा साधनों का उपयोग न करें, तो उन

भी कैद या जुर्माना या दोनो को सजा दी जा सकती है। दुर्घटना निवारण भी उसी तरह प्रबन्ध का कर्त्तव्य है, जैसे लागत में कमी करना। मैनुफैक्चरिंग में होने वाली अधिकतर दुर्घटनाएं मशीन गार्डों की कमी से नहीं होती, बल्कि मनुष्य की भूल से होती हैं। आठ हजार मजदूरों वाली मिल में अनुसन्धान करने के परिणामस्वरूप लेखक ने देखा कि अनिवार्य परिस्थितियां, अर्थात् सच्चे अर्थ में दुर्घटनाएं, कुल दुर्घटनाओं का उन्नीस प्रतिशत थीं, जबकि मनुष्य—अर्थात् असावधानी, अनुभवहीनता, पर्यवेक्षण की कमी आदि—शेष ८१ प्रतिशत दुर्घटनाओं का कारण था। यह भी मालूम हुआ कि खतरनाक उमर १७ से २३ तक और ५० से ऊपर है। अविवाहित व्यक्ति विवाहितों की अपेक्षा अधिक घायल होते हैं, और कुशल की अपेक्षा अकुशल। पूछे जाने पर घायल व्यक्तियों ने दुर्घटनाओं के लिए अपने भाग्य को दोषी ठहराया। एक सुरक्षा आन्दोलन शुरू किया गया, और पर्यवेक्षण कार्यकर्ताओं के सहयोग से एक सप्ताह के भीतर उल्लेखनीय परिणाम प्राप्त हुए। इस आन्दोलन से पहले प्रतिदिन औसतन एक दुर्घटना होती थी और पहला सुरक्षा आन्दोलन शुरू करने के बाद तीन महीने तक मिल में कोई दुर्घटना नहीं हुई। इसलिए यहां यह कह देना उचित होगा कि सुरक्षा कार्य मालिक के लिए, अपने कर्मचारियों की समितियां बनाने और उन्हें दोनों के लाभ की दृष्टि से प्रबन्ध के साथ मिलकर काम करने की आदत डालने का सबसे उत्तम अवसर है।

डाक्टरी सहायता—औद्योगिक मजदूरों में रोग का अनुपात बहुत अधिक है, जिससे काम के समय की हानि होती है। मजदूर को अपने प्रति निष्ठावान बनाने के लिए डाक्टरी सलाह और डाक्टरी सहायता मुख्य कल्याण कार्य है, परन्तु डाक्टरी सहायता फैक्टरी में ही समाप्त नहीं हो जानी चाहिए—यह मजदूर के घर तक पहुँचनी चाहिए। मजदूर की दक्षता फैक्टरी की तरह घर की अवस्थाएँ खराब होने से भी घट जाती है। जो आदमी अपनी तपेदिक की बीमार पत्नी की देखभाल में, या बीमार बच्चों की देखभाल करने में रातों जागता है, उससे गल्ती होने की अधिक सम्भावना है। वह इंजन चलाने या मशीन चलाने के लिए ठीक आदमी नहीं। घर पर जाने वाली नर्स या कल्याण कार्यकर्त्री बच्चे की जान बचा सकती है, या बच्चों को खिलाने, पिलाने और उनकी देखभाल करने में माता को निर्देश दे सकती है, कर्त्तव्य-विमुखता के कारणभूत कष्ट का पता लगा सकती है, अनुपस्थिति कम कर सकती है, सफाई, मजोदगी और बचत के पाठ पढ़ा सकती है, और साधारणतया कष्टपीड़ित परिवार की मित्र सिद्ध हो सकती है। वह घर का सारा वातावरण बदल सकती है, और मालिक के प्रति मजदूर में स्थायी विश्वास पैदा कर सकती है। देश में कई बड़ी फैक्टरियों ने डाक्टरी सहायता और सुविधाओं की व्यवस्था की है, और उनमें से कुछ ने नर्सें तथा स्वास्थ्य-निरीक्षक भी नियुक्त किये हैं।

कानूनी और वित्तीय सहायता—मजदूरों को परेशानी और पूर्ण अस्तव्यस्तता से बचाने के लिए कानूनी और वित्तीय कठिनाइयों में उन्हें सहायता देने की व्यवस्था करनी चाहिए। उच्च कर्त्तव्यानुराग रखने के लिए और मजदूर को बाहर अनु-

परिस्थिति से बचाने के लिए कुछ रुपये खर्च कर देना अच्छा है, जो कम्पनी को उसके मामले में अपने कानूनी सलाहकार या उसकी ओर से विशेष रूप से समझाकर भेजे गये व्यक्ति से उस मामले को करने में देने पड़ेंगे।

मजदूरों को धन उधार देने की समस्या जरा मुश्किल है, और साथ ही ऐसी है, जिसे काफी कुशलता से हल करने की आवश्यकता है। मजदूर मुसीबत के समय के लिए शायद ही कभी कुछ बचा सकता हो। जब जरूरत आ पड़ती है, तब बहुत सा रुपया प्राप्त करने की समस्या भी बड़ी कठिन होती है। शायद कभी महाजन के पास जाने से समस्या हल हो जाय, पर यह सौदा बड़ा महंगा पड़ता है। ब्याज की दर प्रायः इतनी ऊँची होती है कि कर्जदार मूलधन मुश्किल से ही चुका पाता है, और ब्याज जमा होते-होते कुल ऋण इतना अधिक हो जाता है, कि वह स्थायी बोझ बन जाता है। मजदूर को महाजन के चंगुल से बचाने के लिए मालिक को जरूरत के समय अपने कर्मचारियों को रुपया उधार देने की व्यवस्था करनी चाहिए। ऋण दो प्रकार के हैं, एक तो छोटी-छोटी रकमें, जो अर्जित मजदूरी की मात्रा से पेशगी दी जा सकती है। मैनेजर को इस तरह की प्रार्थना आसानी से स्वीकार कर लेनी चाहिए, बशर्ते कि उसे वह आवश्यकता सही मालूम हो। दूसरे, बड़ी राशि १००) रुपये, या २००) रुपये जरूरी घरेलू आवश्यकता के लिए अपेक्षित हो सकती है। इस तरह का ऋण किसी जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा तथ्यों की जांच के बाद दिया जा सकता है, और ऋण की राशि का उल्लेख करते हुए उचित विवरण तथा इसके चुकाने का आधार लिख देना चाहिए। इकरारनामे पर स्टाम्प लगाकर उसकी एक प्रति कर्मचारी को दे देनी चाहिए और उसमें यह लिखवा लेना चाहिए कि ऋण चुकता न होने तक उसके वेतन में से एक निश्चित राशि काटी जाती रहे। ब्याज की दर नाममात्र होनी चाहिए, और ऋण की बात गुप्त रखनी चाहिए।

इन मामलों के अलावा कर्मचारी-अधिकारी को निम्नलिखित मामलों में रचनात्मक पथप्रदर्शन और सहायता करनी चाहिए :

कारखाने और घर के बीच परिवहन की सुविधाएं। इसके लिए निवास-स्थानों और परिवहन के उपलब्ध साधनों की आवश्यकताओं का अध्ययन, तथा स्थानीय परिवहन अधिकारियों से सहयोग करना होता है।

काम करने से अतिरिक्त समय में स्थानीय प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र, सायंकालीन कक्षाओं, फर्म द्वारा आयोजित कक्षाओं और भाषणों द्वारा शिक्षा की सुविधाएं।

जहां स्वयं मांग हो, वहां मनोरंजन की और सामाजिक सुविधाओं, सम्मिलनों और मनोरंजन का आयोजन किया जा सकता है। शौकिया कामों तथा दस्तकारियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

मुसीबत के समय मजदूर और उसके परिवारों की सहायता। इसके लिए पारस्परिक सहायता केन्द्र स्थापित किये जा सकते हैं।

रिटायर होने के बाद पेन्शन की योजना भी लागू करनी चाहिए, जिससे

मजदूर रिटायर होने के बाद अपने रहन-सहन का वह स्तर कायम रख सके, जो वह नौकरी के समय रखता था और जो उसकी स्थिति के अनुरूप है।

औद्योगिक गृह-निर्माण—भारत में गृह-निर्माण की अवस्थाओं के बारे में जितना कम कहा जाय, उतना ही अच्छा है। लगभग सब औद्योगिक कारखाने अपने मजदूरों के कुछ अंश के लिए मकानों की व्यवस्था करते हैं, और यद्यपि विभिन्न स्थानों के अनुसार दशाओं की भिन्नता होनी अनिवार्य है, पर साधारणतया ये मकान पशु-घरों से अच्छे नहीं। मद्रास के चेरी बम्बई के चाल कलकत्ते की बस्तियां और कानपुर के अहाते, जिनमें दस फुट लम्बा दस फुट चौड़ा सिर्फ एक कमरा होता है जिसमें परिवार के दस या अधिक आदमी रहते हैं, सभ्यता के नाम पर कलंक हैं, और इन्हें प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, जला डालना चाहिए। यदि आवास की व्यवस्था और रहन-सहन की अवस्थायें अच्छी हों, तो अच्छे दरजे के मजदूर काम पर आयगे और वे सन्तुष्ट तथा स्थायी होंगे।

भारत सरकार ने १९५० में एक औद्योगिक आवास योजना चालू की थी। वित्तीय वर्ष १९५०–५१ में यह योजना सिर्फ भाग 'क' राज्यों में लागू थी, और उन्हें एक करोड़ रुपये की राशि कर्ज के रूप में दी गई थी। १९५१–५२ में वह भाग 'ख' और 'ग' राज्यों में (जम्मू और कश्मीर को छोड़कर) भी लागू की गई, और इसमें इन राज्यों को १.६८ करोड़ रुपया ऋण देने की व्यवस्था की गयी। १९५०–५१ में इन लेने वाले राज्यों द्वारा केन्द्रीय ऋणों से बनाये गये मकानों की संख्या २४८१ थी और १९५१–५२ में १५०० थी। ये ऋण बिना ब्याज के थे और निर्माण के कुल व्यय का दो-तिहाई अंश पूरा करते थे। शेष भाग राज्य सरकार या श्रमिकों के कारखानेदारों को लगाना था। क्वार्टर सरकार द्वारा स्वीकृत प्रमाप के बनते थे, और मजदूरों से उनकी आय का १०% या निर्माण व्यय का दो प्रतिशत, इन दोनों में जो कम हो उससे अधिक किराया नहीं लिया जाता था। १९५४ तक १५८८७ मकान बनाये गये थे और अक्तूबर १९५२ तथा मार्च १९५५ के मध्य ७.७६ करोड़ रुपये के ऋण तथा ७.१ करोड़ रुपये की सहायता से ५४०३० मकान बनाये गये थे।

पहली पंचवर्षीय योजना में आवास के लिए ३८½ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। सितम्बर १९५२ से राज्य सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना चालू की गई। इस योजना के अधीन भारत सरकार ने सहायता और ऋण स्वीकार किये। राज्य-सरकारें मकानों के व्यय का ५०% सहायता के रूप में और इतना ही ऋण के रूप में ले सकती हैं। पर उत्तर भारत के नगरों में एक मकान पर अधिकतम व्यय २३०० रुपये और बम्बई तथा कलकत्ता में ४५०० रुपये से अधिक न होना चाहिए। इस योजना के अधीन मालिकों और मजदूरों के बीच सहकारी समितियां भी ७५०० रु० तक सहायता ले सकती हैं। इसके अलावा मालिकों को खर्च का साढ़े सैंतीस प्रतिशत तक और मजदूरों की सहकारिता समितियों को ५० प्रतिशत तक ऋण भी मिल सकता है, जो वार्षिक किस्तों में १५ वर्षों में चुकाना होगा। दिसम्बर १९५३ तक ३६९ लाख रुपये

ऋण के रूप में और ३४३ लाख रुपये सहायता के रूप में सरकारों को २४१३० क्वार्टर बनवाने के लिए देने स्वीकृत किये गये, और देश के विभिन्न नगरो में ४६६८ क्वार्टर बनाने के लिए कारखानेदारो को ३७ २६ लाख रुपये देने स्वीकृत हुए।[1]

दूसरी पचवर्षीय योजना में ५० करोड रुपये की लागत से १,४२,००० औद्योगिक मकान सरकारी आर्थिक सहायता द्वारा बनाने का लक्ष्य रखा गया है। सरकारी सहायता प्राप्त औद्योगिक भवन निर्माण योजना के कार्य पर पुनर्विचार किया जा रहा है, क्योंकि प्रचुर सहायता तथा ऋण और अन्य सुविधाओं के बावजूद मालिकों ने इसमे बहुत दिलचस्पी नही दिखाई। द्वितीय योजना में गन्दी बस्तियां समाप्त करने का कार्यक्रम भी रखा गया है।

अब तक जो कार्य किया गया है, वह आवास समस्या के बहुत थोड़े अंश को हल करता है। देश के महत्वपूर्ण नगरो में अब भी गन्दी बस्तियां भरी पडी हैं, पर मार्च १९५४ में संसद में केन्द्रीय आवास मंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य के अनुसार प्रगति सन्तोषजनक है।

अन्त में यह कह देना उचित होगा कि अब तक इस दिशा में जो कुछ किया गया है, वह अनिच्छा से और अनुग्रह की भावना से किया गया है। कोई सेवा की वास्तविक भावना या साझे काम में सहकारिता की भावना इसमें नहीं रही। प्रबन्ध ने प्राय इतनी अशोभा के साथ काम किया है, कि मजदूरों में विश्वास की अपेक्षा सन्देह अधिक पैदा हुआ है। बहुत से कारखानेदार यह अनुभव नहीं करते, कि कल्याण आन्दोलन पूर्णतया क्रियात्मक आन्दोलन है। यह कारखानेदार का काम है, और उसे अपनी ओर से करना है। यह कोई धर्मार्थ काम नहीं है। यदि एक आधुनिक कम्पनी अपने विशाल भौतिक साधनो और अपने कर्मचारियों और मजदूरों की योग्यता द्वारा बाजार के लिए वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में इतनी सफल हो सकती है, तो उसे अपने निजी सदस्यों के लिए सेवा—जीवन के बड़े दुर्भाग्य और सकटों से रक्षा—के उत्पादन में दक्ष क्यों न होना चाहिए। हम भारतवासी भाग्यशाली हैं, कि यहां अब तक कोई सर्वहारा वर्ग नहीं पैदा हुआ, जैसा औद्योगिक दृष्टि से आगे बढ़े हुए कुछ देशों में है। इसलिए हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है, कि ऐसे ढंग से उद्योगीकरण बढ़े, कि इस प्रक्रम में सर्वहारा वर्ग न पैदा हो। पर यह समझ लेना चाहिए कि औद्योगिक अर्थ व्यवस्था में मजदूर एक पूंजी साधन है—वह एक मनुष्य है, और उससे एक ऐसे मनुष्य जैसा ही व्यवहार होना चाहिए, जो जीवन की उन सब अच्छी वस्तुओं का हकदार है जो पूंजी के नियंत्रक के पास हैं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर इतना कहने में सब बात आ गई कि संगठन एक जीवन का मामला है, और जीवन का अर्थ है एकीकरण न कि, विरोध।

1 प्रोग्रेस आफ द प्लैन, जनवरी १९५४, पृष्ठ ९७

अध्याय : : २६

मजदूरी देने की विधियां

श्रम और प्रबन्ध में पैदा होने वाले अन्य प्रश्नों के महत्व के बावजूद सबसे महत्वपूर्ण मामला मजदूरी ही है। यह औद्योगिक प्रबन्ध की सबसे अधिक विवादास्पद समस्या है। मजदूरी तय करने की बातचीत के परिणाम पर मालिक की लागत और मजदूर की आय निर्भर है। मनुष्य के बुद्धि-कौशल का यह दुःखद परिचय है कि मजदूरी देने की कोई ऐसी विधि नहीं निकाली जा सकी, जो श्रम और प्रबन्ध दोनों को स्वीकार्य हो, परन्तु एक तर्कसंगत मजदूरी नीति से मजदूर को कारबार-चक्र (बिजनिस साइकल) का वह अधिक से अधिक वेतन मिलना चाहिए, जो इस कारबार-चक्र पर सम्भव अधिकतम रोजगार के साथ संगत हो। इससे कारखानेदार पर वेतन का इतना और पहले से जाना जा सकने वाला बोझ पड़ना चाहिए, जिसमें, उस चक्र में श्रम लागत की नम्यता और खर्च किये गये प्रत्येक मजदूरी रुपये की दक्षता का मेल हो सके। इससे अर्थ-व्यवस्था को अधिकतम स्थायिता प्राप्त होनी चाहिए। अन्त में, मजदूरियां शुद्ध खींच-तान से नहीं तय की जा सकती। मजदूरी निर्धारण की दो स्पष्ट अवस्थाएं हैं मजदूरी के बोझ और अन्य प्रासंगिक कारकों के बारे में सौदेबाजी, और सुनिश्चित मजदूरी दर का निर्धारण। सारे उद्योग के लिए किये जाने वाले निर्धारण से मजदूरी बोझ का पता चलता है और किसी एक कारखाने से मजदूरी दर का पता चलता है। साधारणतया मजदूरी सम्बन्धी सब बातचीत मजदूरी दर के बारे में होती है, परन्तु कारखाना वास्तव में प्रति घण्टा या प्रति वस्तु मजदूरी दर में दिलचस्पी नहीं रखता वह तो उत्पादन की प्रति इकाई पर पड़ने वाली मजदूरी की लागत में दिलचस्पी रखता है। मजदूर भी प्रति घंटा या प्रति वस्तु मजदूरी की लागत में दिलचस्पी नहीं रखता, वह अपने आपमें दिलचस्पी रखता है। इसलिए समाज, प्रबन्ध, और यूनियनों के लिये प्रमुख प्रश्न यह है कि उत्पादन पर मजदूरी का बोझ क्या पड़ेगा। कुल व्यय का कितना हिस्सा श्रम पर व्यय होगा? कुल आय में से श्रमिक को कितनी आय होगी? इस प्रकार मजदूरी दर का प्रश्न सबसे अन्त में सोचने का है, सबसे पहले नहीं। क्योंकि सब मजदूरी वार्ताओं का लक्ष्य समझौता है, इसलिए वार्ता में प्रथमतः वे बातें आयेंगी जो मजदूरी भार के निर्धारण में प्रासंगिक हैं।

मजदूरी को प्रभावित करने वाले कारक—मजदूरी को प्रभावित करने वाले कारक दो प्रकार के हैं: एक वे जो साधारण मजदूरी स्तर को प्रभावित करते हैं, और दूसरे वे जो एक कारखाने में विभिन्न कार्यों की मजदूरी दरों को प्रभावित करते हैं।

साधारण मजदूरी स्तरो पर आम तौर से माग और सम्भरण, सरकारी मजदूरी नियनणो, प्रचलित मजदूरी, रहन-सहन के खर्च, मजदूरो की कमाई मे प्रादेशिक और औद्योगिक अन्तर, संगठित श्रम की शक्ति और उत्पादन की लागत से प्रभाव पडता है। कारखाने के अन्दर मजदूरी दरो को प्रभावित करने वाले कारको म, उद्दीपन बनाम प्रति घटा मजदूरी वाले कार्यांश, गैर-वित्तीय उद्दीपन, कम्पनी की नीति, सम्भरण और माग, सामूहिक सौदेबाजी से हुआ समझौता और कार्यांश मूल्याकन है। माग और सम्भरण के नियम का मजदूरी के स्तर पर उल्लेखनीय प्रभाव पडा है, परन्तु कुछ समय से प्रबन्ध और श्रम आधारभूत कारक के रूप म इस "नियम" का उत्तरोत्तर कम सहारा लेते रहे है। मजदूरो की कमी होने पर बहुत ऊची मजदूरी देने से लागत कम रखने म कठिनाई होती, है और फिर जब इस तरह मजदूरी घटाना आवश्यक हो जाता है तब और झगडा पैदा होता है। विलामन, मजदूरो की प्रचुरता होने पर कम वेतन देने से होने वाले कर्मचारियो के असतोष और दबे हुए क्षाभ के रूप मे जो गुप्त लागत आती है वह अन्ततोगत्वा मजदूरी म होने वाली बचत की तुलना म कही अधिक होती है। सरकारी कार्यवाही न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८, से प्रकट होती है, जिसमें विशिष्ट उद्योगो द्वारा कुछ न्यूनतम मजदूरिया देने का उपबन्ध है। चालू मजदूरी वह मजदूरी है जो इस बस्ती म प्रचलित होती है, परन्तु कुछ कम्पनिया समाज म मजदूरो की सद्भावना जारी रखने के लिए उससे अधिक मजदूरी देती है। बहुत सी कम्पनियो ने रहन-सहन के खर्च या अधिक यथार्थत कहा जाय तो मजदूरी की क्रय शक्ति को प्रभावित करने वाले रहन-सहन के खर्च के परिवर्तनो का उपयोग करके लाभ उठाया है। सुसगठित मजदूर, जो समर्थ नेताओ के नेतृत्व म काम करते है, यूनियन और प्रबन्ध की बातचीत द्वारा ऊची मजदूरी प्राप्त कर सकते है। विक्रय मूल्य की तुलना म उत्पादन की जो लागत होती है वह कारोबार चालू रखने की इच्छा वाली किसी कम्पनी द्वारा दी जा सकने वाली मजदूरी की अधिकतम सीमा निर्धारित कर देती है। कोई कम्पनी उस वस्तु के लिए, जो उसे प्रतिस्पर्द्धा या अधिकतम मूल्य निर्धारण के कारण एक रुपये में बेचनी पडेगी, मजदूरी पर सवा रुपया खर्च कराने वाली मजदूरी नीति पर बहुत देर नहीं चल सकती। यह सीमा निर्धारण करने वाला कारक इतना स्पष्ट है कि बहुत बार उपर्युक्त कारको म से एक या दो की दृष्टि से मजदूरी तय करते हुए लोग इसे नजरन्दाज कर देते है।

पर इस बात पर तो समझौता हो सकता है कि मजदूरी तय करते हुए किन-किन कारको पर विचार किया जाय, लेकिन इस बात पर समझौता होना कठिन है कि इन कारको का निवचन और महत्त्व-निर्धारण कैसे किया जाय। यह सच है कि यूनियन के "क्रय शक्ति" सिद्धान्त तथा मालिको के "पूजी सचय" सिद्धान्त म समझौता होने की आशा नही की जा सकती। सामजस्य स्थापित करने के लिये बार्ता ठोस आधारो पर होनी चाहिए, सिद्धान्तो पर नही। इससे वातावरण बदल जायगा और सहयोग की प्रेरणा मिलेगी। आज दोनो पक्ष विवाद-युद्ध का निर्णय करने के लिए मिलते

हैं। दोनों पक्ष तात्कालिक लाभ प्राप्त करने के लिए आधारभूत नीति के बारे में तर्क का उपयोग या दुरुपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, यूनियन ज़ोर-शोर से यह कहेगी कि जब तक रहन-सहन के खर्च की दशना (इंडैक्स) बढ़ रही है तब तक मजदूरी के प्रसंग में सबसे मुख्य बात रहन-सहन का खर्च है। उतने ही ज़ोर-शोर से वह यह भी कहेगी कि ज्योंही देशना नीचे आने लगेगी त्योंही मजदूरी से इसका कोई वास्ता नहीं रहता। प्रबन्ध १९३० आदि के, और हाल के मंदी के बाद मार्च और अप्रैल १९५७ के दिनों की, "देने में असमर्थता" पर बल देगा और १९४० के खूब कारोबार के दिनों में उसका जिक्र सुनना नहीं चाहता। एक-दूसरे को छकाने के इस मामले का हल करने के लिए बातचीत, मजदूरी बोझ से सीधा सम्बन्ध रखने वाले कारकों पर केन्द्रित होनी चाहिए, जिससे मजदूरी के बारे में दूरकालिक आर्थिक नीति तात्कालिक लाभ उठाने की प्रवृत्ति पर रोक लगा दे।

सामूहिक सौदेबाजी की इस अवधारणा से कारखाने का निश्चित भविष्य वाले मजदूरी बोझ का पता चल सकता है जिसकी उसे उतनी ही अधिक आवश्यकता है जितनी मजदूर को निश्चित भविष्य वाली आमदनी की। ट्रेड यूनियन के लिए यह और भी अधिक महत्व की बात है। इससे ट्रेड यूनियन को इस उद्योग के सारे क्षेत्र में, जिसमें उसका एक बैंक तथा महत्वपूर्ण कार्य है, सार्थक रूप से अपना प्रतिरूप कायम रखने का मौका मिलेगा। साधारण समझौते के लिए उचित स्तर सारा उद्योग है, पर वास्तविक मजदूरी दरों और मजदूरी सविदाओं के बारे में सौदेबाजी करने के लिए उचित स्तर अलग-अलग कारखाना है। यह बात तब विशेष रूप से सही है जब हम निश्चित-भविष्य आय की और रोजगार योजनाएं तथा लाभ के हिस्सा बटाने की योजना, या आवश्यक रूप से कारखाने-कारखाने में भिन्न होती है, स्वीकार करने वाले हैं—और बड़े सर्वाध रीति से सगठित कारखानों में इकाई-इकाई में भिन्नता होती है। मजदूरी नीति सम्बन्धी वार्ता में यूनियन और प्रबन्ध में चार प्रश्नों पर विरोधी विचार होंगे। पहला प्रश्न यह है कि मुख्य बात उत्पादन है या आय। "पूंजी सचय" सिद्धान्त और "क्रय शक्ति के अभाव" के सिद्धान्त के पक्षपातियों में यह विवाद तर्क की दृष्टि से उतना ही निरर्थक है जितना यह विवाद कि मुर्गी पहले हुई या अंडा, परन्तु राजनैतिक दृष्टि से यह दोनों पक्षों के लक्ष्यों, प्रयोजनों, और जिम्मेदारियों के बीच विद्यमान आधारभूत भेदों को स्पष्ट रूप में प्रकट कर देता है। इसलिए इसका सामूहिक सौदेबाजी से गहरा सम्बन्ध है। दूसरा आधारभूत प्रश्न यह है कि किसी कारखाने की "औसत से ऊपर" या "औसत से नीचे" उत्पादक दक्षता तथा इसके मजदूरी बोझ में क्या अनुपात हो। यदि कोई कम्पनी उस उद्योग के औसत से काफी कम दक्षता की दर पर कार्य करती है तो प्रबन्ध अवश्य यह कहेगा कि यदि इसका कारण मजदूर की निम्न उत्पादकता भी नहीं है तो इसका कारण आर्थिक परिस्थितियां हैं, न कि प्रबन्ध की अक्षमता। प्रायः निश्चित ही है कि प्रबन्ध निम्न उत्पादक दक्षता को औसत से कम मजदूरी भार के लिए प्रबल तर्क समझेगा। दूसरी ओर, यदि उत्पादन औसत से ऊंचा है तो निश्चित रूप से यूनियन यह कहेगी कि इसमें मजदूरों की अधिक उत्पादकता

प्रगट होती है, जो "औसत से ऊपर" मजदूरी दरों में दिखाई देनी चाहिए। तीसरा प्रश्न भी उत्पादकता की समस्या में से ही पैदा होता है। उत्पादकता वृद्धि का लाभ किसे मिलना चाहिए? *यूनियन कहेगी कि सारा लाभ ऊंची मजदूरी दरों के रूप में मजदूर* को मिलना चाहिए। प्रबन्ध यह कहेगा कि सारा लाभ या कम से कम इसका बहुत बड़ा हिस्सा कारखाने और उपभोक्ता के बीच में बट जाना चाहिए, अर्थात् अधिक लाभ और सस्ते मूल्यों के रूप में वितरित हो जाना चाहिए। सम्भवतः मतभेद का सबसे अधिक कठिन मुद्दा यह होगा कि बढ़ी हुई उत्पादकता का लाभ मजदूर को कब मिलना चाहिए। क्या मजदूरी चढ़ने से पहले उत्पादकता बढ़ जानी चाहिए, अथवा कारखाने की उत्पादकता बढ़ने से पहले और रुपया लगाना चाहिए? यूनियन कहेगी कि मजदूरों का अधिक वेतन देने से पहले उनसे अधिक उत्पादन की आशा करने का मतलब यह है कि आप आर्थिक प्रगति का बोझ उन कन्धों पर रखते हैं जो इसे उठाने में सबसे कम समर्थ हैं। प्रबन्ध यह कहेगा कि मजदूरी बढ़ाना तो एक जूआ है जिसका खतरा कोई भी नहीं उठा सकता और मजदूर तो उठा ही नहीं सकते। दोनों पक्षों की बातों में कुछ जान है, पर इसी कारण तो इस विषय पर विवाद इतना गरम होने की सम्भावना है। तथ्य यह है कि कुछ सबसे अधिक कठिन और सबसे अधिक कटु विवादों का आधार यही प्रश्न है, पर यदि सामूहिक सौदेबाजी इन प्रश्नों का ध्यान में रख सके, तो एक ऐसी तर्कसंगत मजदूरी नीति की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम उठाया गया होगा जो कारखाने के हितों, मजदूर के हितों, यूनियन के हितों और अर्थव्यवस्था तथा *समाज के हितों में सामंजस्य कर सके। क्योंकि मतभेद है, इसलिए मजदूरी और मजदूरी* की दर का तर्कसंगत आधार सोचना परमावश्यक है।

मजदूरी और मजदूरी की दर का आधार

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मजदूर के पारिश्रमिक की समस्या वास्तव में इस बात को उचित रूप से निकाल सकने की समस्या है कि श्रमिक का मूल्य क्या है, अथवा एक सुदिन के काम के लिए एक सुदिन की मजदूरी क्या हो। परन्तु काम किये जाने के समय काम की कीमत निश्चित करना या मजदूर की कीमत निश्चित करना बड़ा कठिन है। पर, मजदूर को मजदूरी तो देनी ही होगी। इसलिए काम के लिए तत्काल मजदूरी देने की समस्या यह जानने की समस्या रह जाती है कि सम्भवतः वह काम कितने मूल्य का है। मजदूर को मिलने वाली कुल मजदूरी मजदूरी के आधार और दर के गुणनफल के बराबर होती है। मजदूरी का आधार उसके *काम का कुछ माप है, जैसे कितनी वस्तुएं बनाईं या कितने घंटे काम किया। दर उसकी* कीमत को कहते हैं जो मजदूरी के आधार के रूप में चुने गये माप की इकाइयों के *रूप में हों।' उदाहरण के लिए, यदि किसी मजदूर को समय के आधार पर ४ आने* प्रति घंटा की दर से मजदूरी दी जाती है, और वह आठ घंटे काम करता है तो उसकी कुल मजदूरी २ रुपये हुई। इसी तरह यदि किसी आदमी को मात्रा के आधार पर ३ पाई प्रति अदद मजदूरी मिलती है और वह दो सौ वस्तुएं बनाता है तो उसकी कुल

मजदूरी ३ रुपये २ आने हुई। मजदूरी पर विचार करते हुए दोनों कारकों—मजदूरी का आधार और मजदूरी की दर—पर विचार करना चाहिए। पहले मजदूरी का आधार चुनना चाहिए, क्योंकि दर मजदूरी के आधार के रूप में, अर्थात् प्रति घंटा कितने आने या प्रति अदद कितने पाई बताई जाती है। मजदूरी का आधार चुना जाने पर दर को इस तरह समंजित किया जा सकता है कि कुल मजदूरी किसी अभीष्ट अङ्क के बराबर हो जाये।

मजदूरी देने के मूल आधार केवल दो हैं (१) काम के समय के आधार पर और (२) उत्पादन के आधार पर। इन दोनों सिद्धान्तों के अनेक प्रकार के रूपभेद और मिश्रण अवश्य मिलते हैं पर ये दोनों सिद्धान्त मूलतः पृथक् हैं। तथापि सारभूत पृथकता के बावजूद समय-मजदूरी और अदद मजदूरी पद्धतियों का एक साझा आधार है। समय कार्य पद्धति भी उत्पादन से सर्वथा असम्बद्ध नहीं होती, क्योंकि मालिक जिस मजदूर को काम पर लगाता है उससे काम की कुछ निश्चित मात्रा की आशा करता है और यदि उतना कार्य न हो तो वह उसे काम से हटा देता है। उत्पादन के आधार पर मजदूरी भी समय प्रभाव से सर्वथा असम्बद्ध नहीं होती क्योंकि अदद मूल्य बहुत हद तक सदा उस आय के आधार पर निर्धारित होते हैं, जो, वह काम करने वाले मजदूर का सामान्य जीवन-स्तर होती है। इस सर्वोपरि विचार की परिधि में, दोनों पद्धतियाँ और उनके भेद पृथक्-पृथक् होते हैं और उन पर नीचे विचार किया जायगा।

समय-मजदूरी पद्धति—इस पद्धति में मजदूरी का आधार समय को बनाया जाता है। यह मजदूरी की प्राचीनतम पद्धति है और इसमें मजदूर को एक निश्चित समय के लिए एक निश्चित धन दिया जाता है। मजदूर को अपने काम करने के एक निश्चित समय के लिए एक निश्चित धनराशि मिलने की गारंटी होती है। दर इसने आने या रुपये प्रति घंटा, दिन, सप्ताह, पखवारा या महीना कही जा सकती है। किसी निश्चित दर की सबसे निचली सीमा अक्षमता का वह बिन्दु है जिस पर नौकरी से हटा दिया जाता है और ऊपरी सीमा श्रेष्ठता का वह बिन्दु है जिस पर पदोन्नति द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। इन सीमाओं के भीतर समय दर केवल मजदूर के समय के बदले में धन देती है, उसके किये हुए कार्य की मात्रा का कोई हिसाब नहीं करती। मजदूरी की अदायगी, जैसा आपस में तय हो जाय, उसके अनुसार दिन, सप्ताह, पखवारे या महीने के अन्त में की जा सकती है, परन्तु दो मजदूरी कालों के बीच में एक महीने से अधिक समय नहीं गुजरना चाहिए। (धारा ४, मजदूरी अदायगी अधिनियम, १९३६)

लाभ—(१) समय मजदूरी पद्धति का सबसे बड़ा गुण इसकी सरलता है। कोई आदमी, किसी काम में जो समय लगाता है उसे नापना आसान है। (२) यदि दरें काम पर खर्च किये गये समय की कीमत को प्रकट करती हों तो यह पद्धति बहुत संतोषजनक है। (३) यह मजदूर को उसकी आमदनी में आकस्मिक कमी से बचाती है या व्यक्तिगत दक्षता में अस्थायी कमी, जो अनिवार्य दुर्घटना या रोग या बाहरी कामों में उत्पन्न अशान्ति के परिणामस्वरूप पैदा हो सकती है, के कारण होने वाली कमी

से मजदूर को बचाती है। मजदूर स्थिर आमदनी का निश्चय हो जाने के कारण अपने खर्च को अपनी आय के साथ समजित कर सकता है और एक निश्चित स्तर कायम रख सकता है। (४) समय दर से काम सावधानी से हो सकता है क्योंकि मजदूर बिना कोई हानि उठाये अपना कौशल दिखा सकता है और एक निर्दोष वस्तु बनाने का आनन्द ले सकता है। (५) काम की श्रेष्ठता में कमी नहीं होती क्योंकि मजदूरों को उत्पादन बढ़ाने की जल्दी नहीं होती। (६) इसी से यह बात निकलती है कि मशीनों को रद्दी ढंग से काम में नहीं लाया जाता, जो मालिक के लिये स्पष्ट लाभ है। (७) इस पद्धति में अन्य पद्धतियों की अपेक्षा प्रशासन सम्बन्धी ध्यान कम देना पड़ता है और मजदूर देरी तथा कार्य-भंग (ब्रेक डाउन) होते रहने से सन्तुष्ट रहते हैं।) (८) क्योंकि हिसाब लगाना सरल होता है, इसलिए ट्रेड यूनियन, इस पद्धति को पसन्द करती हैं। इसके अलावा, इसमें प्रत्येक मजदूरों-समूह के भीतर हितों की एकता पैदा हो जाती है क्योंकि प्रमाप मजदूरी सदा दी जाती है और इसके आधार पर आसानी से समझ में आने वाली समझौते की बातचीत की जा सकती है। (९) जहां समय के आधार पर अदायगी होती है, वहां कुशल और प्रशिक्षित कर्मचारियों को उस समय भी रखने की आवश्यकता होती है जब उन्हें पूरी चाल पर कार्यव्यस्त रखने के लिए काफी काम न हो। मजदूर को इस आधार पर पैसा दिया जाता है कि वह दीर्घकालिक दृष्टि से कम्पनी के लिए कितना मूल्यवान् है, इस आधार पर नहीं कि उसने किसी समय विशेष में जो काम किया, उसका क्या मूल्य है। उसे उसी तरह समझा जाता है जैसे किसी अर्ध-स्थायी सम्पत्ति को। जैसे कोई मशीनरी अपनी पूरी क्षमता से प्रयोग की जाये या न की जाये, और चाहे वह स्थायी रूप से टूट भी जाये, पर उसके वित्तीय व्यय—उपरि-व्यय—किये ही जाते हैं। इसी प्रकार, मजदूर को इस आधार पर मजदूरी दी जाती है कि वह दीर्घकाल की दृष्टि से कम्पनी के लिए कितना मूल्यवान है। यह मजदूर को उसकी आमदनी में आकस्मिक कमी होने से बचाती है और कम्पनी को मन्दे के दिनों में एक मूल्यवान सम्पत्ति—कुशल मजदूर—की हानि से बचाती है। प्रबन्ध अधिकारियों और विशेष कौशल या मूल्यवान् ज्ञान वाले व्यक्तियों को समय के आधार पर वेतन देने और अच्छे या बुरे समय में उन्हें नौकरी पर बनाये रखने का यह भी एक कारण है। इसलिए विशेष प्रकार के, या करने में कठिन कामों में यही एकमात्र सम्भव पद्धति प्रतीत होती है, क्योंकि तब तक काम का हिसाब लगाना सम्भव नहीं होगा जब तक काम पूरा न हो जाये। (१०) इसी बात को आगे सोचें तो यह स्पष्ट है कि समय आधार अप्रमापित अवस्थाओं, न दोहराये जाने वाले कामों और उन अनेक प्रकार के कामों में, जिन्हें नापा या गिना नहीं जा सकता, ही उपयुक्त हैं। (११) समय के आधार पर अदायगी सबसे अधिक वाञ्छनीय है, बशर्ते कि इसे काम की आवश्यकता का सावधानी से निर्धारण करने के बाद और इन निश्चित आवश्यकताओं की दृष्टि से मजदूर के कार्य को नाप कर ही प्रयुक्त किया जाये। इसके लिए, कार्यादा मूल्यांकन और गुण निर्धारण को लागू करना होगा। (१२) समझौता (कंसिलिएशन) बोर्डों

या औद्योगिक अधिकरणों के निर्णयों के अन्तिम परिणाम, फर्मों के स्पष्ट ऐलान में बहुत बढ़ जाते हैं।

हानियां.—(१) समय मजदूरी पर मुख्य आक्षेप यह है कि वह "बढ़िया आदमी को दबा देती है", क्योंकि कठोर परिश्रम के लिए कोई उद्दीपन नहीं होता और अच्छे और बुरे दोनों मजदूरों को एक सा वेतन दिया जाता है। समय अपने-आप में प्रयास या परिणामों को नहीं नापता। वह तो केवल काम पर आदमी की उपस्थिति को नापता है। किये हुए काम का मूल्य उस दर में दिखाई देना चाहिए जो उसके समय के लिए उसे दी जाती है। परन्तु दरें स्थिर सी हो जाती हैं। जब वे एक बार स्थिर हो जाती हैं तो फिर वे उसी अवस्था में रहने लगती हैं। दरों का निर्धारण मुख्य रूप में निगाह और मोलेवाजी से होता है। और कुछ-कुछ काल बाद समंजन करने में जो प्रयास होता है वह उन्हें नियत रखना है। परिणामतः प्रत्येक मजदूर यह अनुभव करता है कि किसी दूसरे मजदूर की अपेक्षा अधिक मेहनत से कार्य करना निष्फल है, क्योंकि मेरे अतिरिक्त प्रयासों के बदले में मुझे तत्काल कोई लाभ नहीं होगा। जब तक वे अपने कामों पर केवल उपस्थित रहते हैं तब तक उनकी मजदूरियां उतनी होती हैं। वे आराम-पसन्द होने लगते हैं। इससे कर्तव्यानुराग में कमी होती है और अच्छा मजदूर घटिया होने लगता है। (२) जब तक मजदूरी मिलना सुनिश्चित है और अधिक परिश्रम करने के लिए कोई उद्दीपन नहीं है तब यह पद्धति अदक्षता को पुरस्कृत करने वाली हो जाती है। तथ्य तो यह है कि समय-आधार अच्छे कार्यकर्ता को पुरस्कृत और बुरे को दण्डित करने की कोई व्यवस्था नहीं करता। (३) जब काम की मात्रा निश्चित हो और उसके बाद कर्मचारी को हटा दिया जाता हो, तब समय के आधार पर अदायगी काम को यथासम्भव लम्बा करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती है, जिससे कमाई अधिक हो। जब हटाये जाने का भय नहीं होता, तब भी मजदूर आम तौर पर काम से बचते हैं। (४) क्योंकि यह पद्धति मजदूरों को कठिन परिश्रम करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करती, इसलिए उन्हें कार्यव्यस्त रखना फोरमैनों और सुपरवाइजरों की जिम्मेदारी हो जाती है। फोरमैन को पुलिस वाले की तरह कार्य करना पड़ता है। उसे यह देखते रहना होता है कि वे कार्य-व्यस्त रहें और उन्हें यह बताना होता है कि वे कैसे और क्या करें। (५) इन सब कारकों का परिणाम यह होता है कि दबी हुई योग्यता उत्पादन के बजाय विरोधी कार्यों के रूप में प्रगट होने लगती है, क्योंकि इसमें योग्य आदमियों में अपने को क्षति होने की भावना पैदा हो जाती है। (६) फ्लोरेन्स ने लिखा है, "अदायगी की दिन-कार्य विधि में बहुत से मनुष्य ऐसे कार्य करते रहते हैं जिनके लिए उनमें न दिलचस्पी है और न योग्यता, जबकि दूसरे कामों में वे बहुत आगे बढ़ सकते हैं....."। (७) क्योंकि प्रबन्ध मजदूरों को एक ही गति से सदा नहीं हांक सकता, इसलिए मजदूरी लागत का एक अनिश्चित अंश बन जाती है। इसका कारण यह है कि यद्यपि इस पद्धति में उत्पादन की प्रति घंटा लागत नियत है पर तो भी अदद लागत बदलती रहेगी क्योंकि यदि काम द्रुतगति से किया जावे तो लागत प्रति अदद कम होगी और यदि

काम धीरे-धीरे किया जाय तो यह अधिक होगी। (८) व्यक्तिगत चरित्र और कार्य को बिना सोचे, लोगों को वर्गों में समूहबद्ध कर कर देने के परिणामस्वरूप मालिक-मजदूर झगड़े पैदा होते हैं।

श्रेणी-बन्धन पद्धति (ग्रेडिंग सिस्टम)—समय दर पद्धति में सुधार करने के लिए यह सुझाया जाता है कि मालिक को विभिन्न कार्यों को करने के लिए आवश्यक कौशल और अनुभव के अनुसार, सामान्य मजदूरी के आधार पर अपने कर्मचारियों को श्रेणी-बद्ध अदायगी करनी चाहिए। इसे करने की पद्धति को श्रेणी बन्धन-पद्धति कहते हैं। इसे बिर्रामिघम के पीतल व्यापारियों ने सफलतापूर्वक लागू किया है और श्री सी० एल० गुडरिच ने लेबर अखबार में इसका वर्णन इस प्रकार किया है : "वहा पीतल मजदूरों की राष्ट्रीय यूनियन की कार्यकारिणी प्रत्येक मजदूर को उसकी योग्यता के अनुसार श्रेणी बद्ध करती है और उसे अनेक विभिन्न वर्गों में, जिनमें से प्रत्येक की न्यूनतम मजदूरी सामूहिक सौदेबाजी, द्वारा तय होती है, रखती है। यदि कोई मालिक किसी मजदूर की योग्यता पर आपत्ति उठाये तो म्यूनिसिपल पीतल कार्य विद्यालय के प्रबन्धक उस काम के विभिन्न प्रनमों के बारे में उसकी प्रायोगिक परीक्षा लेते हैं।"

अदद-मजदूरी पद्धति—समय-मजदूरी के मुकाबले में यह पद्धति चाल को मजदूरी का आधार बनाती है। क्योंकि समय-मजदूरी से काम से बचने की प्रवृत्ति पैदा होने लगती है। इसलिए अदद दर पद्धति, जो मजदूरी देने की दूसरी प्राचीनतम पद्धति है, शुरू की जाती है। मजदूरी देने की अदद-दर योजना इस विचार पर आधारित है कि मजदूरों को काम करने के लिए रखा जाता है, खड़े रहने के लिए नहीं, और इसलिए उनकी मजदूरी काम की उस मात्रा पर आधारित होती है जो वे एक निश्चित अवधि में, जिसे वेतनावधि कहते हैं, सन्तोषजनक रीति से पूरा कर ले। इसलिए मजदूर को, जिस चाल से वह कार्य करता है उसके अनुसार, प्रतिदिन या प्रति सप्ताह किये गये काम की चाल के आधार पर, केवल मात्रा के आधार पर नहीं, मजदूरी दी जाती "इस योजना में मजदूरों को जो निश्चित अवस्थाओं में और निश्चित मशीनों से कार्य करते है, उनके ठोस उत्पादन के ठीक अनुपात में मजदूरी मिलती है, . मजदूर को घूर्ण (मोमेंट) के दृष्टिकोण से उसके उत्पादन के अनुक्रमानुपात में मजदूरी मिलती है—मात्रा की प्रति-इकाई पर मिलने वाली वास्तविक मजदूरी की मात्रा उसकी उन सेवाओं के सीमांत (मार्जिनल) मान के लगभग बराबर होती है, जो वह इस उत्पादन के करने में मशीन की सहायता करने में करता है।" इस पद्धति में मजदूर अपना ही समय बचाता या खोता है। यदि वह थोड़े समय में कार्य कर लेता है, अर्थात् अधिक चाल से काम करता है तो उसे किये हुए कार्य का कम पुरस्कार नहीं मिलता और बचे हुए समय में वह और कमाई कर लेता है। यदि वह अधिक समय लगाये तो उसकी मजदूरी समय मजदूरी से कम भी हो सकती है। मजदूर तो अपना ही समय खोता या बचाता है और मालिक इन कार्य होने में इस कारण लाभ में रहता है कि प्रत्येक अदद या कार्य पर पड़ने वाला फैक्टरी भार घट जाता है। "जहां कामचोरी

(मॉनीटरिंग) पकड़ना कठिन होता है, जैसे ढलाई में, जहां चाल अमायारण रूप में महत्वपूर्ण होती है, जैसे रेल-रोड मरम्मत कारखानों में, जहां काम मालिक के बार-बार में बहुत दूर होता है और जहां कार्यभारों की पृथकता के कारण एक कार्यांश के मूल्य का हिसाब लगाना सरल होता है वहां मालिक अदद-दर पसन्द करते हैं।" यह पद्धति उन कार्यों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है जिनमें बार बार वही काम करना होता है और उन कारखानों के लिए अच्छी है जहां कार्यांशों की अवस्थाओं में ऐसा स्थिर परिवर्तन नहीं होता और मजदूर काम की विधियों में कोई खास सुधार करने में असमर्थ होता है। यह उन व्यवसायों के लिए बहुत उपयुक्त है, "जो पहले बेचते हैं और फिर बनाते हैं।" कोयला खानों, सूती वस्त्र उद्योगों, जूता फैक्टरियों आदि में यह पद्धति सफलता से लागू की गई है।

लाभ—(१) इस पद्धति का मुख्य लाभ यह है कि क्योंकि भुगतान परिणाम या दक्षता के आधार पर होता है, इसलिए इसमें गुण की मान्यता मिलती है। (२) औसत से अच्छा काम करने में समर्थ व्यक्तियों की संचित उत्पादक शक्ति का बाजार मिल जाता है। (३) इसमें स्वेच्छया किये गये प्रयत्न को प्रोत्साहन मिलता है, जिससे कार्य के प्रति रुचि और उत्साह का वातावरण बनता है—समय दर पद्धति में मजदूरों को, "हांकना" पड़ता है। (४) जो लोग अपनी अवस्था से सन्तुष्ट नहीं और उसे सुधारना चाहते हैं, उन्हें यह पद्धति आकर्षित करती है और इस प्रकार मजदूरों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है, तथा नियुक्ति-प्रबन्धक का काम करती है। (५) न केवल उत्पादन और मजदूरी बढ़ जाते हैं बल्कि उत्पादन की विधियों में भी सुधार हो जाता है, क्योंकि मजदूर त्रुटिहीन सामान और बिलकुल ठीक हालत में मशीनरी चाहता है। (६) कुल लागत घट जाती है, क्योंकि प्रत्यक्ष श्रम लागत तो कार्यपूर्ति की प्रत्येक चाल पर स्थिर रहती है, और प्रति घंटा किये गये कार्य की मात्रा में वृद्धि हो जाती है जिससे मशीन और प्रबन्ध के कारण पड़ने वाला प्रति घंटा भार कम हो जाता है। (७) उत्पादन या कार्यांश की प्रत्येक इकाई पर प्रत्यक्ष श्रम लागत एक स्थिर मात्रा हो जाती है, जो लागत सम्बन्धी गणनाओं में उपयोग के लिए विश्वसनीय हो जाती है।

हानियां—(१) इतने लाभों और इसके व्यापक उपयोग के बावजूद अधिक-तर उद्योगों में यह पद्धति असफल रही। जब समय दर के स्थान में अदद दर शुरू की गयी तब इसके प्रभाव में मजदूरों ने अपनी आय और उत्पादन बढ़ाया। मालिकों ने यह मानकर कि मजदूर बहुत धन कमा रहे हैं, दर में प्राय कटौती कर दी या थोड़ा-थोड़ा करके अनेक बार में इसे घटा दिया, जिसे मजदूरों ने नापसन्द किया क्योंकि वे कटौतियों को समझौते का भंग समझते हैं। (२) इसमें प्रबन्धक और मजदूरों के बीच विरोध और आर्थिक युद्ध शुरू हो जाता है। (३) इसमें कामचोरी को बढ़ावा मिलता है और "पाखंड और धोखे की एक पद्धति" पैदा हो जाती है क्योंकि मजदूर और कटौतियों से बचने के लिए पहले से कम उत्पादन शुरू कर देते हैं। वे कभी-कभी अपनी अधिकतम क्षमता का तिहाई या चौथाई उत्पादन करते हैं और अपने मालिकों को उनकी

हर इच्छा का विरोध करने वाला अपना शत्रु भी समझने है।" (४) अधिक चाल मजदूर के लिए हानिकारक होती है क्योंकि उन्हें मशीनों और उपस्कर पर अधिक सावधान रहना पड़ना है। अधिक चाल मानव ऊर्जा की दृष्टि से महंगी है। (५) चाल पर आधारित भुगतान से काम की अधिकता के लिए तो उद्दीपन मिलता है पर इससे श्रेष्ठता और विवेक की ओर ध्यान नहीं रहता। (६) इसमें सुपरवाइजरों को काम का अधिक सावधानी से निरीक्षण करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि इस पद्धति में मात्रा के मुकाबले में श्रेष्ठता की उपेक्षा हो जाती है। समय आधार वाली पद्धति में सुपरवाइजरों को चाल बढ़वाना आवश्यक था चाल वाली पद्धति में उन्हें श्रेष्ठता प्रमाप कायम रखना आवश्यक हो जाता है। (७) सीधा अदद कार्य या स्थिर अदद दर में दिन की पूरी मजदूरी की गारंटी नहीं होती जिससे कभी-कभी मजदूर को निर्वाह के स्तर से कम कमाई भी हो सकती है। कमाई की घटबढ़ से मजदूर को सदा चिन्ता और परेशानी बनी रहती है। भारत में अधिक आमदनी से अनुपस्थिति बढ़ने की सम्भावना भी रहती है।

अदद दर में वृद्धि—सीधी अदद मजदूरी या स्थिर अदद दर से, आमदनी में वृद्धि काम की वृद्धि के अनुक्रमानुपात में होती है, पर वह प्रयास की वृद्धि की समानुपाती नहीं होती। जब-जब चाल में वृद्धि होती है तब तब अधिक प्रयास की आवश्यकता होती है जिससे बढ़ी हुई आमदनी चाल के अनुपात में अधिक ऊर्जा के व्यय से उत्पन्न होती है, उदाहरण के लिए, जो पहलवान १३ सेकंड में १०० गज दौड़ता है, वह परिश्रम से अभ्यास द्वारा अपना समय घटा कर १२ सेकंड कर सकता है, पर १० सेकंड वाले आदमी के लिए अपना समय घटाकर ९ सेकंड करना प्रायः असम्भव है। इसलिए यह सम्भव नहीं है कि कुल आमदनी प्रयास और चाल, दोनों के साथ अनुक्रमानुपात में बढ़ती रहे। वर्धिष्णु और कुशल कार्यकर्ताओं को इसमें लाभ है कि उनकी दर चाल की वृद्धि के साथ बढ़ती जाय, जिससे कुल आमदनी प्रयास की समानुपाती होने लगे। इसलिए औसत या घटिया मजदूर ऐसी दरों को स्वभावतया नापसन्द करेंगे क्योंकि इनसे उनकी आमदनी और कुशल मजदूरों की आमदनी में बहुत अन्तर आ जाता है। बढ़ती हुई अदद दर प्रबन्ध के लिए उस समय लाभदायक होती है जब वस्तु की मांग औसत उत्पादन से अधिक हो। श्रम को अधिक तेज काम करने के लिए प्रोत्साहित करके मशीन की उत्पादन क्षमता, भौतिक सम्पत्ति में और धन लगाये बिना ही बढ़ाई जा सकती है। कुल उत्पादन की अधिक मात्रा प्राप्त करने के लिए प्रति इकाई काम की लागत बढ़ा ली जाती है।

अदद दरें घटाना—दरों को चाल की वृद्धि के साथ-साथ घटा देना भी सम्भव है। अगर कोई आदमी अधिक तेज कार्य करता है तो वह मजदूरी भी अधिक पाता है पर उसकी मजदूरी उतनी नहीं बढ़ती जितनी उसकी चाल बढ़ती है। इसलिए दर घटाने का कोई औचित्य नहीं है। कुछ चालाक मालिक श्रम की लागत कम करने और साथ ही मजदूरों से अधिक तेज काम कराने के लिए इसे भुगतान की अनेक जटिल विधियों

की आड में छिपा देते हैं। यह भी एक कारण है जिससे मजदूर यूनियनें चाल पर आधारित भुगतान की विधि का विरोध करती हैं।

मजदूरी भुगतान की उद्दीपन योजनाएं—मजदूरी भुगतान के आधार के रूप में समय और चाल के जो आपेक्षिक लाभ हैं, उनसे दोनों पक्षों में ऐसा समझौता करने का विचार पैदा होता है जिसमें दोनों की अच्छी बात आ जाय। जो पद्धतियां ऐसा करने का यत्न करती हैं उन्हें उद्दीपन योजनाएं कहते हैं और ऐसी बहुत सी योजनाएं प्रचलित हैं। जो उद्दीपन पद्धतियां उद्योग में विभिन्न रूपों में और विभिन्न नामों से प्रचलित हैं, वे शुरू में *वैज्ञानिक प्रबन्ध की दिशा में किये गये प्रयत्नों का परिणाम हैं।* जिस समय, "कार्य पूर्ति" के प्रमाप, "गति और समय अध्ययन", "कार्यांश विश्लेषण", "कार्यांश मूल्यांकन", "गुण निर्धारण" आदि पदावलियां प्रचलित हुई, उससे पहले इंगलैण्ड और यूरोप में मजदूरी भुगतान की ऐसी पद्धतियों का उपयोग करके, जिनमें उत्पादकता को पुरस्कृत किया जाता था, श्रम की चाल बढ़ाने के प्रयास किये गये। आज कल भुगतान के आधार का उल्लेख प्रव्याजि (प्रीमियम), समय बचत, बोनस, दक्षता *आदि शब्दों से किया जाता है, पर इन सब शब्दों से यह तथ्य नहीं छिपने देना चाहिए कि सब अवस्थाओं में भुगतान का आधार वास्तव में समय और चाल दोनों हैं।* उद्दीपन योजनाओं के विभिन्न प्ररूपों के उदाहरणों पर नीचे विचार किया जाता है।

***टोव या ऋण पद्धति*—इस विधि में समय और अदद दरों को मिला दिया गया।** इस पद्धति में पूरे सप्ताह के काम के लिए न्यूनतम साप्ताहिक मजदूरी की गारंटी होती है और साथ ही इस आधार पर एक अदद दर भी निर्धारित कर दी जाती है कि मजदूर अपनी न्यूनतम मजदूरी कमाने लायक उद्योग करेगा। यदि अदद के आधार पर गणना करने पर मजदूरी समय दर की अपेक्षा अधिक बैठती हो तो मजदूर को अधिक दिया जाता है। यदि अदद-दर मजदूरी समय-दर कमाई से कम हो तो उसे तब भी साप्ताहिक मजदूरी मिलेगी, परन्तु इस शर्त पर मिलेगी कि उसे अपनी बाद की कमाई की मजदूरी में से इस अधिकता को चुकाना पड़ेगा। कुछ उद्योगों में यह पद्धति उपयुक्त सिद्ध हुई। परन्तु इसमें मुख्य दोष यह है कि यह केवल तब सफल हो सकती है जब दर अत्यधिक वैज्ञानिक आधार पर हो और ईमानदारी से तय की गई हो। मान लीजिए कि एक मजदूर से अपनी न्यूनतम मजदूरी ६०) रु० कमाने के लिए सप्ताह में कम से कम १० अदद कार्य करने की आशा की जाती है। अदद दर ६ रुपया प्रति इकाई निश्चित की गई है। अगर मजदूर सप्ताह में १२ इकाई उत्पादन करता है तो उसे ७२ रु० मिलेगा। दूसरी ओर, यदि वह केवल ९ इकाई उत्पादन करता है तो उसे तब भी उसकी न्यूनतम साप्ताहिक मजदूरी ६० रु० मिलेगी, परन्तु अदद दर के आधार पर उसकी कमाई केवल ५४ रु० होनी चाहिए थी। ये अतिरिक्त ६ रु० उसके नाम डाल दिये जायेंगे जो उसकी बाद की कमाई में से काट लिये जायेंगे। इस योजना में अधिक उत्पादन के प्रेरक के रूप में मिलने वाली अतिरिक्त मजदूरी का सारा लाभ मजदूर को मिलता है और तब भी मजदूरी के आधार का निश्चय करने में एकमात्र

कारक चालू नहीं है—मजदूर की आमदनी उसके काम के घंटों की संख्या और उसके काम की चाल, इन दोनों से निर्धारित होती है। इस तथ्य ने कुछ ऐसी विधियों को जन्म दिया है जिनमें बचत का कुछ अंश मालिक को मिलता है ताकि मालिक और मजदूर के हित इकट्ठे बने रहें, और इन विधियों को कभी-कभी "नफे की हिस्सा-बाँट योजनाएं" कहते हैं।

हैल्से या वेइर प्रव्याजि योजना—हैल्से योजना भुगतान के समय और चाल आधारों का सरल संयोग है। मजदूर को जितने समय वह काम करता है उस भर का, प्रति घंटे की दर से भुगतान किया जाता है। उत्पादन की चाल या मात्रा प्रमाप भी, उसके पिछले काम करने के औसत समय के आधार पर बनाये जाते हैं और यदि उसकी चाल प्रतिदिन की मात्रा की दृष्टि से प्रमाप चाल से बढ़ जाय तो इस तरह बचाये हुए समय के लिए उसे अलग भुगतान किया जाता है। यह भुगतान घंटा दर के नाप से बचे हुए समय के मूल्य का कुछ प्रतिशत (३० से ५० प्रतिशत) होता है। इस प्रकार उसकी कुल मजदूरी वह राशि होती है जो काम के घंटों के समय में प्रति घंटा दर के हिसाब से गारण्टी की हुई मजदूरी में, प्रतिघंटा मजदूरी की पूर्व-निर्धारित प्रतिशतकता (३० से ५० प्रतिशत) और तेज काम करके उस द्वारा बचाये हुए समय का गुणनफल जोड़ने से आती है। श्री हैल्से का कथन है कि अगर कार्यभार कठिन है और वैज्ञानिक आधार पर उसकी दर तय की गई है तो ५० प्रतिशत बोनस दिया जा सकता है, पर जब पिछले दिनों के काम के या अदद काम के अभिलेख काम में लाए जायें तब ३० प्रतिशत ही पर्याप्त है। बचाए हुए समय के, मोटे तौर से, यह परिभाषा की जाती है कि प्रमाप चाल पर काम करने में जो समय लगेगा (जिसे "प्रमाप समय" कहते हैं) उसके, और प्रमाप की अपेक्षा अधिक तेज चाल से काम करने में वास्तव में जो समय लगा है, उसके अन्तर को 'बचाया हुआ समय' कहते हैं। प्रमाप-समय प्रति अदद प्रमाप समय को पूरे किये हुए अददों की संख्या से गुणा करके निकाला जाता है, उदाहरण के लिए, अगर प्रमाप समय एक घंटा है और एक मजदूर आठ घंटे के दिन में दस इकाइयां पूरी कर लेता है तो बचाया हुआ समय दो घंटे है। "प्रमाप" मजदूर को दस इकाइयां पूरा करने में जो आठ घंटे में पूरी हुई है, दो घंटे और लगते। इस प्रकार बचाई हुई मजदूरी बचाये हुए समय तथा प्रति घंटा मजदूरी दर के गुणनफल के बराबर है। इस योजना को ५०–५० या विभाजित बोनस योजना भी कहते हैं। इंगलैण्ड में वेइर पद्धति जो इस योजना के समान ही है, अधिक प्रचलित है। इसका यह नाम इसलिए पड़ा है क्योंकि यह पहले क्लाइड नदी पर स्थित वेइर इंजीनियरिंग वर्क्स, कैथकार्ट में काम लाई गई थी।

अगर किसी मजदूर को, जिसे एक रुपया प्रति घंटा मजदूरी दी जाती है, दस घंटे का कार्यभार दिया जाता है, और वह इसे आठ घंटे में पूरा कर लेता है तथा बोनस बचाए हुए समय का ५० प्रतिशत है तो उसकी कुल कमाई यह होगी.
(समय × प्रतिघंटा दर) + (बोनस × बचाया हुआ समय × प्रति घंटा दर), अर्थात्

८×१ रु० + ½×२×१ रु० = ९ रु० : इससे प्रति घंटा दर १ रुपया २ आना पड़ती है। प्रव्याजि (प्रीमियम) प्रत्येक कार्यांश पर अलग अलग निकाला जाता है जिससे एक कार्यांश पर असफलता होने पर दूसरे में कमाये हुए प्रीमियम की हानि नहीं उठानी पड़ती। इस योजना को मानना प्रत्येक मजदूर के लिए ऐच्छिक होता है। इस योजना में दिन-मजदूरी से यह अन्तर है कि मजदूरों को अतिरिक्त उत्पादन का अतिरिक्त पैसा मिल जाता है। अदद-काम से इसमें यह अन्तर है कि किसी दिए हुए समय के भीतर काम की मात्रा ज्यों-ज्यों बढ़ती है त्यों-त्यों मजदूरी की दर कम होती जाती है। इसलिए नतीजा यह है कि बचाये हुए समय की भरपाई एक नीची अदद दर है जो मजदूर अपनी प्रतिघंटा कमाई के अतिरिक्त पाता है, पर वह तब तक नहीं शुरू होती, जब तक प्रमाप चालू न हो जाय। इस अदद दर को छिपाने के लिए 'बचाये हुए समय" शब्द का प्रयोग किया जाता है जिससे यह मजदूरों के लिए, जो तेज-कटाई (स्पीड-अप) पर आपत्ति करते हैं, अधिक आकर्षक हो जाय।

हैल्से योजना के लाभ ये हैं (१) इसे शुरू करना आसान है क्योंकि इसके लिए पहले के औसत उत्पादन (परफॉर्मेंस) के अलावा और कोई आरम्भिक अध्ययन नहीं करना पड़ता। (२) बचाये हुए समय के लाभ का प्रबन्ध और मजदूरों में बाँट कर यह बोनस दर को स्थायी कर देता है क्योंकि दोनों पक्ष इससे लाभ उठाते हैं। (३) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह योजना महत्वपूर्ण है। मजदूर को जो कुछ लाभ होता है, उससे वह सन्तुष्ट हो जाता है, यद्यपि बचाये हुए समय का कुछ हिस्सा मालिक को मिल जाता है। इस योजना की हानि यह है कि इसमें यह कमजोरी है कि यह अवैज्ञानिक रीति से निर्धारित किये हुए प्रमाप समय के आधार पर सीधी अदद दर अपनाती है। यह नये प्रमाप बनाने के बजाय पिछले कार्य पर निर्भर रहती है। बचाये हुए समय के लाभ का प्रबन्ध और मजदूरों के बीच बाँटने के औचित्य पर आपत्ति की गई है। मजदूर कुछ कामों को जोर-शोर से करके प्रीमियम प्राप्त कर ले और अन्य काम पर आराम करने के लिए कामचोरी करे क्योंकि उसे दिन की मजदूरी मिलने की गारंटी तो है ही, तो वह मालिक का छला सकता है। प्रशासन के दृष्टिकोण से यह नीति बहुत जाने की नीति है क्योंकि इस योजना में एक निश्चित प्रमाप पहुँच जाने के बाद अधिक उत्पादन करने या न करने का निश्चय करना केवल मजदूर पर छोड़ दिया जाता है।

रोवन प्रीमियम योजना—हैल्से पद्धति का थोड़ा सा परिवर्तित रूप रोवन योजना है। हैल्से योजना की तरह इसमें भी कार्य और प्रबन्ध की पहले की अवस्थाओं को वैसा ही रहने दिया जाता है। प्रमाप समय अनुभव पर आधारित होते हैं। जो लोग प्रमाप तक नहीं पहुँच सकते, उन्हें समय मजदूरी मिलने की गारण्टी होती है। हैल्से पद्धति की तरह रोवन योजना का मुख्य लक्ष्य यह है कि मजदूर समय की बचत करके जो कमाई कर सकता है, उसकी सीमा बाँधकर प्रीमियम दर स्थायी कर दी जाये। यह योजना बोनस निर्धारित करने की दृष्टि से हैल्से योजना से भिन्न है। संक्षेप में, इस

योजना में पारिश्रमिक का नियम यह है कि जितना समय लगता है उसकी मजदूरी उतने ही प्रतिशत बढ जाती है, जितने प्रतिशत कमी उस काम के लिए निर्धारित समय में होती है। इस प्रकार यदि कोई मजदूर समय में २५ प्रतिशत कमी कर देता है तो मजदूरी २५ प्रतिशत बढ जाती है। बीजगणित द्वारा बोनस या प्रीमियम निम्नलिखित रीति से निकाला जा सकता है —

$$\text{प्रीमियम} = \frac{\text{बचाया हुआ समय}}{\text{दिया गया समय}} \times \text{लगा हुआ समय} \times \text{दर प्रति घंटा}$$

यही उदाहरण लेते हुए, जहा दिया हुआ या प्रमाप समय १० घंटे है और प्रति घंटा दर १ रुपया है और मजदूर आठ घंटे में काम पूरा करके दो घंटे बचा लेता है, यहा प्रीमियम, $\frac{२}{१०} \times ८ \times १ = \frac{८}{५} = १६$ होगा और आठ घंटे के दिन की कुल मजदूरी लगा हुआ समय + बोनस अथवा ८ + १६ = ९६ रु० होगी। दूसरी तरह कहें तो प्रीमियम की राशि और लगे हुए समय में पडने वाली सामान्य मजदूरी में वही अनुपात होता है जो बचाये हुए समय और दिये हुए पूरे समय के बीच होता है।

हैल्से योजना और रोवन योजना का भेद नीचे लिखी सरल रीति से ऊपर वाले ही अक लेते हुए इस तरह प्रदर्शित किया जा सकता है —

हैल्से योजना	रु० आ० पा०
लगा हुआ समय ८ घंटे (दर १ रु० प्रति घंटा)	८—०—०
दिया हुआ समय १० घंटे	
ऋण लगा हुआ समय ८ घंटे	
बचाया हुआ समय २ घंटे	
बचाये हुए समय का ५० प्रतिशत १ घंटा (दर १ रु० प्रति घंटा)	१—०—०
९ घंटे (दर १ रु० प्रति घंटा)	९—०—०
मजदूर को जो मजदूरी पडी —दिये हुए समय का २० प्रतिशत	
मालिक का बची हुई राशि लगे हुए समय का २० प्रतिशत	१—०—०
रोवन योजना	
दिया हुआ समय १० घंटे	
लगा हुआ समय ८ घंटे मजदूरी	८—०—०
बचा हुआ समय २ घंटे	
बोनस	१—६—५
मजदूर को जो मजदूरी पडी	०—६—५
मालिक का बची हुई राशि १० घंटे	०—९—७

$\frac{१}{२}$ बचत तक रोवन पद्धति हैल्से पद्धति की अपेक्षा अधिक उदार है। उसके बाद यह कम उदार है। इसके अलावा, रोवन योजना में जो अधिकतम राशि मजदूर कमा सकता है, वह गारटी की हुई मजदूरी का दुगना है जो मनुष्य के लिए कर सकना

इन योजना मे नियत्रणो और दक्षता-मापक साधनो की उन्नति आसानी से हो सकती है। इसमे एक बार प्रमाप या शून्य प्रतिशत बोनस बिन्दु आ जाने पर एक नियत (कान्स्टैण्ट) इकाई लागत हो जाती है और इसलिए यह लागत का हिसाब लगाने (परिव्यय-इ वाकन) और बजट (आय-व्यय के) तथा औचित्य और न्याय के दृष्टिकोण से सबसे अधिक उपयुक्त है।

बेडो योजना या अक योजना—जब उसी फैक्टरी मे विभिन्न प्रकार के कामो के लिए उद्दीपन योजनाए लागू की जाती है, तब सब कार्यांशो के लिए तुलनीय प्रमाप बनाने पडते है। प्रबध को यह देखना पडता है कि बोनस या प्रीमियम कमाने म एक विभाग के मजदूरो को आसानी और दूसरा को कठिनाई न हो। जहा विभागो म मजदूरो की अदला-बदली आवश्यक होती है, वहा मजदूरी पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि स्थान परिवर्तन या शिफ्टो के कारण कोई मजदूर नुकसान में न रहे। इसलिए यह परमावश्यक है कि जिन प्रमापो पर एक ही दर से पैसा दिया जाता है उनको प्राप्त करना एक सा कठिन होना चाहिए और कार्यभार की कठिनाई को नापने के लिए एक साझा पमाना (डिनोमिनेटर) होना चाहिए। बैडो योजना यह कार्य करने का यत्न करती है। इस योजनाम एक अक या बैडो, जो सक्षेप म "B" कहा जाता है, वह कार्य कहलाता है जो एक आदमी को एक मिनट मे पूरा कर लेना चाहिए। अब कार्यांश की कठिनाई इसकी "B" सख्या के रूप म नापी जाती है। सावधानी से समय अध्ययन किया जाता है, और "B" म साधारण विश्राम और श्रान्ति की गजाइश रक्खी जाती है ताकि प्रमाप सामान्य हो और ऐसा न हो जिसे केवल कोई-कोई मजदूर प्राप्त कर सकते हो। कार्यांश की कठिनाई उसको दिए हुए "B" की सख्याओ स नापी जाती है और प्रमाप समय म प्रत्येक "B" के लिए एक मिनट रखा जाता है। मजदूरी की दर को भी मिनट आधार पर ले आते है और कार्यभार की परिभाषा ६० × B घटे होती है। इस प्रकार ८ घटे के प्रति दिन म ४८० B होती है और अगर मजदूर दिन म ४८० B पूरी कर ले तो वह प्रमाप पर पहुच जाता है। प्रमाप से नीचे प्रति घटा गारण्टी की हुई मजदूरी मिलती है। प्रमाप से ऊपर उस प्रीमियम मिलता है जो प्राय बचाये हुए समय का ७५ प्रतिशत होता है। प्रत्येक मजदूर द्वारा उत्पादित अको या B की सख्या, और जो कुछ उसने कमाया है, उसकी मात्रा प्रतिदिन लिखा दी जाती है, जिससे प्रत्येक मजदूर यह देख सके कि कल उसने क्या कमाया था। बैडो योजना की विभेदक विशेषता यह है कि यह सारी फैक्टरी म तुलनीय प्रमापो की व्यवस्था करती है। एक उदाहरण मे इस योजना को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। जहा ८ घटे के *दिन के लिए प्रमाप ४८० B (६० × ८) हो, प्रति B प्रमाप दर एक पाई हो और* एक मजदूर दिन म ६०० B पूरी कर द और प्रीमियम की प्रतिशतता ७५ प्रतिशत हो तो उसकी कुल मजदूरी यह होगी

(प्रमाप B × दर) + (प्रीमियम %) × (वास्तविक—प्रमाप) × दर
४८० × १ पाई + ०७५ × ६००—४८० × १ पाई
= रु० २/८/– –/७/६ = रु० २/१५/६

नापे हुए दिन का काम—१९३० की मंदी के दिनों में मजदूर यूनियनें उद्दीपन योजनाओं का साधारण रूप से विरोध करती थीं। इस योजना ने, जिसके कई रूप हैं, अनेक उद्दीपन योजनाओं का स्थान ग्रहण किया है। प्रमाप उसी तरह तय किये जाते हैं जैसे किसी उद्दीपन योजना में पर उन्हें लागू दूसरे रूप में किया जाता है। यह रूप यह है कि पहले कार्यांश की आधार दर दर ढांचे के सिद्धान्तों के अनुसार तय की जाती है। इसके बाद दक्षता के विभिन्न स्तरों पर, प्रायः १०० प्रतिशत आधार पर अनुक्रमानुपात में ऊंची प्रति घंटा दरें तय की जाती हैं। प्रमाप के आधार पर मजदूर का काम दक्षता के रूप में प्रतिदिन परिवर्तित कर दिया जाता है और कारखाने में बोर्ड पर लगा दिया जाता है। जब वह किसी निश्चित अवधि की, जो प्रायः तीन महीने होती है, कोई निश्चित दक्षता प्राप्त कर लेता है, तब उसके अनुसार उसकी आधार दर बढ़ जाती है और यह अगले तीन मास तक प्रभावी होती है। इसके बाद अगले तीन महीने की अवधि में वह जो दक्षता प्राप्त करता है, वह अगली तिमाही की प्रतिघंटा दर का आधार बनती है। उदाहरण के लिए, मान लो कि किसी कार्यांश की बाबा आधार दर १२ आ० है। नापे हुए दिन के काम की योजना के अनुसार हम यह हिसाब लगायेंगे कि अगर किसी मजदूर की औसत दक्षता ७५ प्रतिशत है तो वह १२ आ० की आधार दर कमाता है। इसके बाद हम इस तरह हिसाब रख सकते हैं ८१ २५ प्रतिशत दक्षता १३ आ० प्रति घंटे के बराबर है, ८७ ५ प्रतिशत दक्षता १४ आ० प्रति घंटे के बराबर है ९३ ९ प्रतिशत दक्षता १५ आ० प्रति घंटे के बराबर है, १०० प्रतिशत दक्षता १ रु० प्रति घंटे के बराबर है, इत्यादि। यह योजना शुरू करने के समय किसी मजदूर की दक्षता पहले उस महीने की किसी आधार दर के लिए ७५ प्रतिशत या १२ आ० है, तो, यदि उस तिमाही में वह ९३ ९ प्रतिशत औसत दक्षता प्राप्त कर ले तो उसे अगले तीन महीने १५ आना प्रति घंटे की दर से मजदूरी मिलेगी। यदि इस तिमाही में उसकी दक्षता घटकर ८७ ५ प्रतिशत हो जाये तो अगली तिमाही में उसकी मजदूरी की दर घटाकर १४ आना कर दी जायगी।

इस योजना में यह जो कमी करने वाली बात थी, उसने ही सबसे अधिक परेशानी पैदा की और मुख्यतः इसी के कारण इस योजना की उद्दीपन सम्बन्धी विशेषता नष्ट हो गई। दूसरे शब्दों में, यह तब तक काफी अच्छी तरह चलती थी, जब तक मजदूर की दक्षता स्थिर या बढ़ती रहे, जब उसकी दक्षता रद्दी माल के कारण कम होती थी तब वहम और मतभेद पैदा होते थे। यदि मजदूरी बढ़ाने वाले कारक के साथ घटाने वाले कारक को पूरी तरह लागू न किया जाये तो यह योजना प्रायः स्थायी रूप से मजदूरी बढ़ाने का, चाहे उसके लिए अपेक्षित स्थिर उत्पादन हो या न हो, साधन मात्र बन जाती थी। यह स्पष्ट है कि इस तरह की किसी योजना में अगर उत्पादन का स्तर सन्तोष-

जनक रखना है तो पर्यवेक्षण अधिकारियो पर बहुत बोझ आ जाता है । यद्यपि उद्दीपन योजना के रूप म यह पद्धति उपयोगी सिद्ध नहीं हुई, पर नियत्रण तत्र के रूप मे यह बहुत वाछनीय है ।

वैज्ञानिक प्रबन्ध में उद्दीपन योजनाएं

टेलर की भिन्नक अदद दर—यह पद्धति अब प्राय काम नहीं आती, परन्तु इसका उल्लेख इसलिए किया जाता है कि इसके आधारभूत सिद्धान्त का पता चल जाये और इसलिए भी कि इसे उस व्यक्ति ने शुरू किया था जो वैज्ञानिक प्रबन्ध का आविष्कारक माना जाता है । इस पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि कम उत्पादन के लिए नीची अदद दर और अधिक उत्पादन के लिए ऊची अदद दर दी जाए । सादी दिन-दर और अदद-दर योजनाओ में यह निश्चय करने का यत्न नही किया जाता था कि एक सुदिन का काम कितना होना चाहिए। टेलर इस धारणा से चला कि समय अध्ययन के द्वारा कार्यपूर्ति का सर्वथा परिशुद्ध प्रमाप निश्चित किया जा सकता है और कार्य की दशाओ को प्रमापित करके तथा सावधानी से शिक्षा देकर मजदूर को इस दिये हुए प्रमाप तक पहुचाना सम्भव है । मजदूरो को कार्यपूर्ति के प्रमाप तक पहुचने का प्रोत्साहन देने के लिए टेलर ने दो अदद-दरे निश्चित की, जिससे यदि कोई मजदूर प्रमाप कायभार पूरा करता है या उससे अधिक काम करता है तो उसे ऊची अदद दर ही दी जाती है, और अगर वह प्रमाप तक नही पहुच पाता तो उसे नीची अदद दर दी जाती है । इस प्रकार, यदि प्रमाप उत्पादन १० इकाई प्रतिदिन तय किया गया है तो इतने या उससे अधिक उत्पादन के लिए प्रति इकाई दर १ रु० हो सकती है, पर प्रमाप (१० इकाई) से कम उत्पादन के लिए यह दर १२ आ० प्रति इकाई हो सकती है—१० इकाई उत्पादन करने वाले मजदूर को १० रु० मिलेंगे । ११ इकाई उत्पादन करने वाले को ११ रुपये मिलेंगे इत्यादि, परन्तु ९ इकाई उत्पादन करने वाले को १२ आने प्रति इकाई की दर से ६ रु० १२ आ० मिलगे और ८ इकाई उत्पादन करने वाले को ६ रु० मिलेंगे इत्यादि ।

अधिक उद्योग या अधिक प्रवीणता के लिए पुरस्कृत करके और मदता या अदक्षता को दडित करके यह पद्धति अधिकतम उत्पादन की दिशा मे बहुत उद्दीपन प्रदान करती है । हैल्से और रोवन योजनाओ से इसमें यह भेद है कि इस पद्धति म यदि मजदूर प्रमाप पर पहुच जाये या उससे बढ जाये तो उससे प्रमाप कार्यपूर्ति की प्राप्ति के बाद उत्पादन जितना अधिक होता है, उसके प्रत्येक अदद पर न केवल ऊची अदद दर, बल्कि पूरी अदद दर मिलती है, उसका कुछ अशमात्र नही । इस योजना म मजदूर को दिन की मजदूरी की गारटी नही होती क्योंकि प्रमाप से कम काम करने पर उसे इतनी नीची दर पर भुगतान किया जायगा कि वह दिन की मजदूरी नहीं कमा सकता । प्रमाप और उत्कृष्ट मजदूरो के लिए दर उस पेशे की औसत दर से ३० से १०० प्रतिशत तक ऊची तय की जाती है । इससे उत्कृष्ट मजदूर काम पर आते है, और उन्हे अधिक से अधिक

कार्य करने का प्रोत्साहन मिलता है। यह पद्धति दो चीजों का मेल है, एक तो यह योग्यता की कसौटी है, और दूसरे, सफल मजदूर को इसमें और सब पद्धतियों की अपेक्षा अधिक पारिश्रमिक मिल सकता है । यह न केवल अच्छे मजदूर को अधिक मजदूरी कमाने का मौका देती है, अपितु प्रबन्ध भी उत्पादन की वृद्धि और प्रति इकाई उत्पादन की लागत में कमी से लाभ उठाता है। यह योजना निश्चित रूप से मानती है कि कम मजदूरी का अर्थ सस्ता उत्पादन नहीं है। पर इस पद्धति में कुछ सहज सीमाएं हैं। इसे लागू करना कठिन है और इसमें दिन की न्यूनतम मजदूरी की कोई गारंटी नहीं। जिस बिन्दु पर प्रमाप कार्यभार निर्धारित होता है, उस पर दर का परिवर्तन अत्यधिक आकस्मिक है जिसका यह परिणाम होता है कि जो आदमी प्रमाप सीमा से थोड़ा ही पीछे रह जाता है, उसे उस आदमी की अपेक्षा बहुत कम मजदूरी मिलती है जो उस सीमा पर पहुंच भर पाता है। इससे मजदूरों में बदमजगी पैदा होने की सम्भावना रहती है। एक प्रमाप निश्चित करने के लिए मजदूर की कार्यक्षमता को नापना मालिक के हाथ में एक बड़ी भारी शक्ति है जिसका दुरुपयोग भी हो सकता है। सम्भव है कि प्रमाप बहुत ऊंचा तय कर दिया जाय।

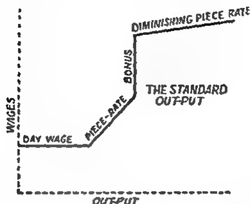
मेरिक गुणित अदद दर—टेलर की योजना के आकस्मिक परिवर्तन वाले दोष को इस पद्धति में दो के स्थान पर तीन क्रमबद्ध अदद दरें रखकर सुधारने का यत्न किया जाता है। टेलर योजना की अन्य सब बातें इसमें रहती हैं। वे तीन दरें ये हैं : पहली प्रमाप कार्यभार उत्पादन के ८३ प्रतिशत पर, दूसरी कार्यभार बिन्दु या प्रमाप पर, और तीसरी प्रमाप से ऊपर होती हैं। इसलिए यह योजना मजदूरों को तीन सामान्य वर्गों में बांट देती है, अर्थात् नये मजदूर, औसत मजदूर और प्रथम कोटि के आदमी, और उन्हें उनके अनुसार ही पैसा देती है—इस प्रकार यह योजना टेलर की सीधी अदद दर की कठोरता को कम कर देती है।

गैन्ट की कार्यभार और बोनस पद्धति—यह योजना भी आरम्भिक अनुसंधान द्वारा प्रमापित अवस्थाओं की स्थापना को मानकर चलती है और सावधानी से किये हुए समय अध्ययन पर आधारित है। हैल्से योजना की तरह यह योजना भी धीरे काम करने वाले मजदूरों को प्रति घंटे की दर से और तेज मजदूरों को अदद दर से मजदूरी देती है और इसके अलावा टेलर योजना के अनुसार प्रमाप तक पहुंचने में समर्थ और उसमें असमर्थ मजदूरों में निश्चित भेद करती है। टेलर योजना के असदृश, यह सब मजदूरों को प्रति घंटा दर (दिन मजदूरी) की गारंटी देती है। उस योजना में एक निश्चित कार्यभार पर, जो प्रथम कोटि की कार्यपूर्ति को निर्धारित करता है, प्रमाप बनाया जाता है। गैन्ट लिखते हैं "अगर कोई आदमी आदेशों के अनुसार चले और अपने लिए निर्धारित खास काम कर ले, जो उसका दिन भर का उचित कार्यभार है, तो उसे दिन दर के अलावा, जो हर सूरत में मिलती है, एक निश्चित बोनस भी दिया जाता है, पर अगर दिन के अन्त में वह काम पूरा न कर सके तो उसे बोनस नहीं मिलता, बस केवल दिन की मजदूरी मिलती है।" इस प्रकार जो लोग

प्रमाप पर पहुचते या उससे आगे बढ जाते है, उनकी मजदूरी किये हुए कार्यभार के लिए प्रमाप के रूप मे स्वीकृत समय की दिन मजदूरी तथा उस समय की एक स्वीकृत प्रतिशतता—जो २० से ३५प्रतिशत तक होती है—जिसका हिसाब दिन दर से लगाया जाता है, उसमें बोनस के रूप मे जोड दी जाती है। शुरू मे यह पद्धति जिस रूप म बनाई गई थी, उसमें यह भी व्यवस्था थी कि बचाए हुए समय के मूल्य के वितरण म मजदूरो और कम्पनी के साथ-साथ फोरमैन को भी हिस्सा मिलना चाहिए। यह इसलिए किया गया था ताकि फोरमैन धीमे काम करने वाले मजदूरो को काम तेज करने म मदद दे और इस प्रकार भौतिक सम्पत्ति के क्षमता उपयोग (कैपेसिटी यूटि-लिजेशन) में वृद्धि हो सके। कुछ कारखानो में यह व्यवस्था है कि अगर किसी फोरमैन के अधीन काम करने वाले सब व्यक्ति प्रमाप पर पहुच जाये तो उसे अतिरिक्त बोनस मिलता है। मान लीजिए कि एक कारखाने में दिन दर १ रु० प्रति घंटा है और बोनस प्रमाप समय का २५ प्रतिशत है। अगर कोई मजदूर ८ घटे के काम को १० घटे में करे तो उसे उस काम के लिए १० घटे की समय दर अर्थात् १० रु० मिलेगी। जो मजदूर ८ घटे मे उस काम को पूरा कर लेता है उसे ८ घटे की दिन दर और ८ घटे का २५ प्रतिशत, यानी १० घटे की कुल मजदूरी अर्थात् १० रु० मिलेगे। अगर कोई मजदूर ६ घटे में काम पूरा कर ले तो भी उसे ८ घटे की मजदूरी मिलेगी क्योकि कार्यभार को पूरा करने के लिए यही प्रमाप निर्धारित किया गया है और ८ घटे का २५ प्रतिशत भी मिलेगा, जिससे उसकी कुल मजदूरी १० रुपये हो जायगी। इस प्रकार समय मे होने वाली प्रत्येक कमी का अर्थ है कमाई में प्रगामी वृद्धि। इस कारण गैन्ट पद्धति को, "प्रगामी दर" पद्धति भी कहते है। स्पष्ट है कि अगर ८ घटे के एक दिन की दर ८ रु० है तो सबसे धीरे काम करने वाले या अध प्रमाप मजदूर (जिसने उपर्युक्त उदाहरण मे ८ घटे का काम १० घटे मे किया है) को १२ आ० ९॥ पा० प्रति घटे की दर से मजदूरी मिलेगी, अर्थात् ८ घटे के दिन मे ६ रु० ६ आना ५ पाई मजदूरी मिलेगी प्रमाप मजदूर को ८ घटे के दिन के १० रु० अर्थात् सवा रु० प्रति घटे की दर से मजदूरी मिलेगी और उपरि प्रमाप मजदूर को, जो ६ घटे में अपना काम पूरा कर लेता है, भी १० रु० मिलेगा, और ८ घटे के दिन की मजदूरी १३ रु० ५ आ० ४ पा० अथवा १ रु० १० आ० ८ पा० प्रति घटा की दर पर होगी। इससे स्पष्ट है कि यह पद्धति अध प्रमाप मजदूर के लिए दिन मजदूरी है और प्रमाप तथा उपरि-प्रमाप मजदूर के लिए अदद दर है।

दिन मजदूरी प्रथम दर है, चाहे उत्पादन कितना ही थोड़ा हो। इसमे आगे मजदूरी अदद दर मे बढती है और प्रमाप पर पहुच जाती है। प्रमाप पर पहुचने पर बोनस दिया जाता है। प्रमाप से आगे अदद दर घटती जाती है। यह बड़ी महत्वपूर्ण चीज है क्योंकि इसमे एक निश्चित बिन्दु से अधिक, जो वैज्ञानिक रीति से प्रमाप के रूप म स्थिर किया गया है, असीमित तेजी करने म रुकावट पड जाती है। स्वभावत यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या इस मजदूरी योजना से दक्षता प्रमाप से नीचे वाले मजदूर

निम्नलिखित चक्र में वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत मिलने वाली मजदूरी योजना का सारांश दिखाया गया है।



को निर्वाह योग्य मजदूरी मिल जाती है यदि नहीं मिलती तो प्रमाप बिन्दु पर मजदूरी का एकदम बढ़ जाना उचित नहीं जचता, क्योंकि इससे, उदाहरण के लिए, जरा अधिक दक्ष तथा सिर्फ दक्ष मजदूर के बीच में बहुत अन्तर पड़ जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए दक्षता पुरस्कार इमर्सन योजना की तरह यहा भी ६२.५ प्रतिशत या ६६.७ प्रतिशत से अथवा ७५ या ८० प्रतिशत से भी शुरू किया जाता है।

इमर्सन दक्षता योजना—टेलर और गैन्ट योजनाओं की तरह इमर्सन दक्षता योजना में भी कारखाने की अवस्थाओं का प्रमापीकरण और सावधानी से समय अध्ययन करके कार्यभार का निर्धारण किया जाता है। यह कार्यभार प्रथम कोटि के मजदूर के लिए, जो १०० प्रतिशत दक्ष कहलाता है, पूरा और उचित कार्य भार होता है। इस प्रमाप की प्राप्ति के लिए गैन्ट पद्धति की तरह यहा भी बहुत अधिक बोनस प्रस्तुत किया जाता है परन्तु इस प्रमाप पर पहुचने से पहले छोटे क्रमबद्ध बोनस कमाये जा सकते हैं और इस तरह यह हैल्से योजना से इस दृष्टि से मिलता है। गैन्ट योजना की तरह इसमें भी मजदूर को जब तक काम पर रखा जाता है तब तक उसके काम का हिसाब किये बिना दिन मजदूरी की गारंटी होती है। इस योजना की खास विशेषता यह है कि इसमें कार्यपूर्ति में सुधार के साथ दिन दर से अदद दर में संक्रमण बहुत धीरे-धीरे होता है। पारिश्रमिक दक्षता के आधार पर तय किया जाता है। मजदूर की दक्षता वह अनुपात है जो निर्धारित समय तथा इसको काम करने में लगे समय के बीच, अर्थात् उसके पूरा किये हुए कार्यांशों के प्रमाप घंटे के, और उसने घड़ी के हिसाब से जो घंटे लगाये, उनके बीच होता है। जो मजदूर ६६.७ प्रतिशत दक्षता से कम प्राप्त करते हैं, उन्हें बिना बोनस के दैनिक मजदूरी दर दी जाती है। इससे ऊपर अधिक उत्पादन के लिए एक निश्चित अनुपात से प्रगामी पैमाने से बोनस दिया जाता है। उदाहरण के लिए, जब दक्षता ८० प्रतिशत हो तब

बोनस ४ प्रतिशत और जब यह ९० प्रतिशत हो तब बोनस १० प्रतिशत और १०० प्रतिशत दक्षता पर २० प्रतिशत बोनस दिन मजदूरी में जोड़ दिया जाता है—इस तरह ९० प्रतिशत और १०० प्रतिशत के बीच दक्षता वृद्धि से बोनस दुगना हो जाता है। १०० प्रतिशत से ऊपर दक्षता पर मजदूर को प्रयुक्त समय की तथा बचाये हुए समय की मजदूरियां मिलती हैं, अर्थात् अदद दर और प्रयुक्त समय की मजदूरी का २० प्रतिशत। उदाहरण के लिए, जब उत्पादन प्रमाप (१०० प्रतिशत दक्षता) ८०० इकाई है, तब ४०० इकाई उत्पादन करने वाले मजदूर की दक्षता ५० प्रतिशत है और उसे दैनिक मजदूरी दर मिलेगी। यदि वह ६०० इकाई उत्पादन करे तो उसकी दक्षता ७५ प्रतिशत होगी और उसे उसकी दैनिक मजदूरी दर तथा १ प्रतिशत और मिलेगा। यदि वह ७५० इकाई उत्पादन करता है तो उसकी दक्षता ९३.७५ प्रतिशत होगी और उसे उसकी दैनिक मजदूरी तथा १४ प्रतिशत और मिलेगा तथा ८०० इकाई उत्पादन पर उसकी दक्षता १०० प्रतिशत है और उसे उसकी दैनिक मजदूरी तथा २० प्रतिशत और मिलेगा और यदि वह ८८० इकाई उत्पादन करता है तो उसकी दक्षता ११० प्रतिशत होगी और उसे उसकी दैनिक मजदूरी तथा २० प्रतिशत और मिलेगा, इत्यादि।

सहकारी उत्पादन बोनस योजनाएं

प्रत्येक मजदूर की दक्षता निर्धारित करना और उसे इस प्रकार बोनस देना सदा सम्भव नहीं होता। कुछ तरह के कामों में विभाजन नहीं किया जा सकता और इसलिए अधिक उत्पादन का लक्ष्य, जो व्यक्तिगत अदद दर से प्राप्त होता है, समूह के आधार पर करने का यत्न किया जाता है। बहुत सी अवस्थाओं में सामूहिक बोनस अदायगी से प्रबन्ध और मजदूर यूनियन में अधिक सहयोग पैदा हो जाता है और "हिस्सेदारी के सिद्धान्त" (प्रिंसिपल आफ पार्टिसिपेशन) का उपयोग बढ़ता है। समूह बोनस पद्धतियां व्यक्तिगत पद्धतियों की अपेक्षा सरलता से लागू की जा सकती हैं पर वे केवल कुछ अवस्थाओं में लागू हो सकती हैं। अनेक समूह या सहकारी बोनस योजनाओं में से केवल चार की रूपरेखा यहां दी जायगी। इनमें से पहली योजना है समूह संह-कर्म (ग्रुप टीम वर्क), जिसमें कई मजदूरों को इकट्ठे काम करने को कहा जाता है और उन्हें एक इकाई के आधार पर मजदूरी दी जाती है। क्योंकि मजदूर दल ही आधार पर सहयोग करते हैं, इसलिए उनकी सप्ताह की या महीने की कुल मजदूरी समूह के सब सदस्यों में बराबर बांट दी जाती है। उनकी साप्ताहिक या मासिक मजदूरी से जितना काम अधिक होता है, उसकी कुल कीमत किसी ऐसे पूर्व-निर्धारित आधार पर जो सबको स्वीकार्य हो, उनमें बांट दी जाती है। दूसरी योजना प्रीस्टमैन बोनस पद्धति है। यह इकाई घंटों के रूप में श्रम के मान पर आधारित है। जहां व्यक्तिगत मजदूरी दरों के रूप में बोनस अदायगी की गणना की जाती है, वहां वह को छोड़कर अन्यत्र लागत या कीमत या मजदूरों का हिस्सा नहीं लगाती। प्रीस्टमैन कारखाने में पहले, पिछले १२ महीनों में उत्पादित टन-संख्या तथा काम के कुल घंटों की संख्या और

श्र उत्ता ग्राहकों क विचित्रताएं प्रबन्धक, कठिनाइयां आदि। इस बैठक क कार्यवाही कारखान के प्रत्यक व्यक्ति को दी जाती है और महत्वपूर्ण मद्दों पर और विचार होता है। नाइन क समय शाम को यूनियन की बैठक म इन पर विचार विनिमय चलता है। इसका परिणाम है काय करन की सर्जव एकता।

स्लाइडिंग स्केल या सर्पी अनुमाप—यह मजदूरी देने की एक और ऐसी योजना है जिससे मजदूरों म यह भावना पैदा की जा सके कि उन्हें कारखाने की समृद्धि म हिस्सेदार माना जाता है और इसलिए उन्हें इसे समृद्ध करन का यत्न करना चाहिए। सर्पी अनुमाप पद्धति प्राय सामूहिक सौदेबाजी के परिणामो पर आधारित होती है। इसमें मजदूरियां इस तरह समजित की जाती ह कि वे उद्योग मे सम्बद्ध होती हैं और सामान्य उत्पादित वस्तुओं के औसत विक्रय मूल्य के साथ अपन आप उठती और गिरती रहगी। आधारभूत विचार यह है कि जब कीमत अच्छी मिल रही हो, तब मजदूरी अच्छी होनी चाहिए और मूल्य कम होन पर मजदूरी भी कम हो जानी चाहिए। प्रमाप मजदूरी और प्रमाप मूल्य बीच-बीच म नय तय किय जाते रहे। इस पद्धति के य लाभ बताये जाते ह। निश्चित अवधियों के भीतर मजदूरियों के बारे म विवाद नहीं होता। मालिकों और मजदूरों म सहभागिता (को-पार्टनरशिप) और पारस्परिक हित की भावना बढ़ती है। मालिकों को उत्पादन की लागत म मजदूरी के अश का हिसाब लगाना आसान हो जाता है और इस प्रकार वे थोडी निश्चितता की भावना के साथ दीर्घकालिक करार कर सकते ह। मजदूरी दरों म परिवर्तन आकस्मिक नहीं होते बल्कि क्रमश और थोडा थोडा करके होते ह। इस पद्धति म मजदूरों को मालिकों की बहियों की बिल्कुल ठीक ठीक सूचना मिल जाती है। क्योंकि वे स्वय एक लेखा परीक्षक (आडीटर) नियुक्त करते ह। उनकी मजदूरियां व्यापार की बदलती हुई अवस्थाओं के अनुसार फौरन अपन आप बदल जाती ह।

इसके बहुत से लाभों के बावजूद और बहुत समय से प्रचलित होन हुए भी यह पद्धति अधिक व्यापक नहीं हुई। इसकी कुछ सहज हानियां य बताई जाती ह—यह बात न्यायसंगत नहीं समझी जा सकती कि मजदूरियां माल की कीमतों के साथ साथ बढ़ती या घटती रहे। अगर कीमतों म बहुत अधिक अतर होता हो तो यह पद्धति मजदूरी के मामले म सट्टा करना होगा। कीमत सभरण और माग का परिणाम है और इस पर मजदूर का कोई नियन्त्रण नहीं। मालिक की मजदूरी देन की योग्यता का एकमात्र सूचक वस्तु की विक्रय कीमत नहीं है। यह पद्धति हल्के व्यापार के दिनों म प्रबन्ध को कम कीमत पर बचन के लिए प्रोत्साहित करती ह। घटती-बढ़ती कीमतों के दिनों म बहुत विभिन्न मजदूरियां दी जाती ह। इससे औद्योगिक अशान्ति पैदा होती है। उपभोक्ता के दृष्टिकोण से इस पद्धति का दुरुपयोग किया जा सकता है क्योंकि कीमतों को आवश्यकता म अधिक ऊचा ले जाया जा सकता है जिससे मालिक और मजदूर दोनों को लाभ हो। अगर, एकाधिकार की अवस्था हो तो उपभोक्ता का और अधिक सफलता से शोषण किया जा सकता है।

निर्वाह मजदूरी की लागत—समय बीतने के साथ-साथ, विशेष कर प्रथम महायुद्ध के दिनो मे और उसके बाद जब कीमतें एकदम बहुत ऊँची चली गयी थी (सबसे ऊँचा स्तर १९२० मे था) और मजदूरी की क्रय-शक्ति बहुत गिर गयी थी, तब मजदूरियो को रहन-सहन की लागत के साथ सीधे सह-सम्बद्ध कर दिया गया था। इस योजना की बुनियाद म मुख्य सिद्धान्त यह था कि मजदूरी की दर मे होने वाली वृद्धि या कमी से रहन-सहन की लागत की देसना या सूचक सख्या में निश्चित चढाव या गिरावट होगी। परन्तु भारत जैसे देश मे, जहा विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध नही है, इस पद्धति को काम मे लाना कठिन है। इसका एक रूपान्तर महगी भत्तो के रूप मे हमारे देश में सफलता के साथ काम मे लाया गया। कुछ ही समय से भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय के श्रम ब्यूरो ने मजदूरो के रहन-सहन की लागत की सूचक-सख्या प्रकाशित करनी शुरू की जो मजदूर परिवारो के उपभोग म आने वाली महत्वपूर्ण वस्तुओ के १९४४ वाले वर्ष के औसत मूल्यो पर आधारित है। इस पद्धति मे वही त्रुटिया है जो मापित दिन काम योजना मे, जिसमे रहन-सहन की लागत कम होने पर मजदूरी की दर गिरा दी जानी है। इसे उद्दीपन योजना के रूप म काम म नही लाया जा सकता और इसके विपरीत दर कम करने पर असन्तोष पैदा होने की सभावना है जिससे अशान्ति फैलती और हड़ताले होती है।

लाभ में हिस्सा बटाना और श्रम की सहभागिता—अनेक उद्दीपन योजनाओ और उनके विभिन्न रूपों के बावजूद मालिको और मजदूरो म मनभेद रहते आये है और बहुत जगह वे बढ रहे है। प्रबन्ध और मजदूरो में बढते हुए मतभेदो के कारण जिनमे हड़ताले और तालेबन्दिया होती है, और परिणामत राष्ट्रो की अर्थ-व्यवस्थाओ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, बहुत से समाज-सुधारको और औद्योगिक प्रशासन मे दिलचस्पी रखने वाले व्यक्तियो ने विरोध को कम करने के उपाय सोचे। आजकल के औद्योगिक कलह की परेशानियो को कम करने मे सहायक उपायो के रूप मे लाभ में हिस्सा बटाने और श्रम सहभागिता का सफलता से उपयोग किया गया है। आशा की जाती है कि उनसे श्रमिक का वह अभिमान, जो साधारणतया नष्ट हो गया प्रतीत होता है, फिर पैदा हो हो जायगा। वह सहयोगी भावना फिर पैदा हो जायेगी जो उत्पादक तथा सफल उपक्रम के लिए इतनी आवश्यक है और कारबार में कर्मचारियो की दिलचस्पी बढ जायगी और कुछ हद तक उनके मन में यह भावना पैदा हो जायगी कि वे उद्योग और एक प्रकार से स्वय पूजीपतियो के सहभागी है।

लाभ-भाजन (प्रोफिट-शेअरिंग)—"लाभ-भाजन उस स्वेच्छा से किये गये समझौते को कहते है, जिससे कर्मचारी को लाभ का एक हिस्सा मिलता है, जो लाभ होने से बहुत पहले तय कर दिया जाता है" (हैनरी आर सीगर, प्रिंसिपल आफ इकोनोमिक्स, पृष्ठ ५८१)। ब्रिटेन के लाभ-भाजन और सहभागिता प्रतिवेदन १९२० मे "लाभ भाजन" शब्द उन अवस्थाओ पर लागू होने वाला बताया गया है, जिनमें कोई मालिक अपने कर्मचारियो के साथ यह समझौता कर लेता है कि उन्हे अपनी

मजदूरियों के अलावा, उनके श्रम आर्थिक पारिश्रमिक के रूप में कारखाने के उस हिस्से के नफे में से, जिस पर लाभ-भाजन योजना लागू है, पहले से निश्चित एक अंश मिलेगा। पेरिस में १८९९ में लाभ-भाजन के बारे में हुई अन्तर्राष्ट्रीय काँग्रेस ने इसकी यह परिभाषा की थी कि "वह समझौता (औपचारिक या अनौपचारिक) जो स्वेच्छा से किया गया हो, और जिसके अनुसार कर्मचारियों को लाभ होने में पहले से निश्चित किया हुआ लाभ का हिस्सा मिलता है।" यूनाइटेड स्टेट्स में १९३९ में सीनेट की एक कमेटी ने इसकी यह परिभाषा की थी कि, "कर्मचारियों को लाभ पहुँचाने वाली वे सब योजनाएँ जिन पर मालिक कोई खर्च करता है।" यह अन्तिम परिभाषा प्रचलित प्रयोग के अधिक निकट है, क्योंकि बोनस, जैसे भारत में दिये जा रहे हैं, लाभ के आधार पर दिये जाते हैं। हाल के वर्षों में कुछ लेखकों ने कल्याण तथा स्टॉक शेयरिंग (स्कन्ध-भाजन) को भी लाभ भाजन के अन्तर्गत रखा है। और कुछ लेखक प्रचलित मजदूरी दर से ऊपर जो कुछ भी दिया जाता है, उसे लाभ-भाजन मानते हैं। लाभ-भाजन उद्दीपन योजनाओं के साथ-साथ अपनाया जा सकता है और प्रायः अपनाया जाता है, पर इसे और उन्हें अलग-अलग समझना चाहिए और दोनों में विभ्रम न होना चाहिए। यथार्थ रूप से वह तो लाभ भाजन मजदूरों की अदायगी की पद्धति ही नहीं। यह तो किसी भी आधारभूत योजना में जोड़ा हुआ एक नया जोड़ है। दूसरी ओर, मजदूर को अपनी मजदूरी के अलावा लाभ के हिस्से के रूप में जो कुछ मिलता है, वह उस लाभ से सर्वथा अलग है, जो मजदूर को उसी कारखाने में निवेशक (इन्वेस्टर) के रूप में मिलता है। यह बात कि हिस्सा पहले ही निश्चित कर दिया जाय, लाभ-भाजन योजनाओं की एक सारभूत विशेषता समझी जाती है। (यदि लाभ हो तो उसमें) हिस्सा मिलने का निश्चय काम के लिए उद्दीपन समझा जाता है।

लाभ-भाजन की पहली योजना वह प्रतीत होती है जो फ्रांस में १८२० में अपनाई गई थी, जिसमें कारबार के लाभ का कुछ हिस्सा चुने हुए कर्मचारियों को उनकी कमाई के अनुपात से प्रतिवर्ष बाँट दिया जाता था। बाद में ग्रेट ब्रिटेन में बहुत सी योजनाएँ लागू हुईं और लाभ-भाजन सहकारिता आन्दोलन का एक हिस्सा बन गया। यूनाइटेड स्टेट्स में ये १८७० के बाद शुरू हुईं और उसके बाद कुछ समय बाद जर्मनी में चालू हुईं। इस शताब्दी के आरम्भ तक लाभ-भाजन की ओर ध्यान जाने लगा था और संगठित श्रमिकों द्वारा उसका विरोध होने लगा था। प्रथम विश्व युद्ध के दिनों में सब जगह लाभ भाजन पर अधिक बल दिया गया। पर उस युद्ध के बाद वाली शताब्दी में लाभ भाजन की अपेक्षा कर्मचारियों को शेयर होल्डर (अंशधारी) बनाने की योजनाओं पर अधिक बल दिया जाने लगा, जिससे कर्मचारियों में कारबार की सफलता में दिलचस्पी पैदा हुई। १९३० के बाद के मंदी के वर्षों में ये योजनाएं अधिकतर त्याग दी गई और लाभ-भाजन का फिर थोड़ा-सा उद्धार हुआ। भारत में, "उत्पादित वस्तु में हिस्सा बाँटने" के रूप में लाभ-भाजन स्मरणातीत काल से मौजूद है। खेती की बटाई पद्धति, जिसमें भूस्वामी और भाटकी (टैनेन्ट) उत्पादित वस्तु को आधा बाँट लेते हैं, इसी पद्धति का

अवशेष है। औद्योगिक क्षेत्र में लाभ-भाजन को तब मुख्यता मिली जब राष्ट्रीय सरकार ने द्वितीय विश्व युद्ध के तत्काल बाद देश में फैली हुई अत्यधिक औद्योगिक अशान्ति को दूर करने का निश्चय किया। परन्तु भारत में लाभ-भाजन के उपयोग पर एक और खण्ड में विचार किया जाएगा।

लाभ-भाजन के प्ररूप—मोटे तौर से लाभ-भाजन की योजनाओं को लाभ में हिस्सा देने की विधि के अनुसार तीन साधारण वर्गों में बांटा जा सकता है (१) लाभ ज्यों ही होता है, मजदूरों को दे दिया जाता है—नकद वितरण, (२) बचत (सेविंग्स) या निक्षेप लेख (डिपोजिट एकाउण्ट) में जमा करा देना जो कुछ समय पहले सूचना देकर निकाला जा सकता है। इन दो प्ररूपों को चालू वितरण या अन्यासी (नौन-ट्रस्टीड) प्ररूप कहते हैं; (३) लाभ किसी भविष्य या नियत सेवा अर्थात् निधि (सुपर एनुएशन फण्ड) में जमा कर दिया जाता है या कारखाने की पूंजी में लगा दिया जाता है, और या इन दोनों विधियों को मिला दिया जाता है। इस प्ररूप की योजना को स्थगित वितरण या न्यासी रूप कहते हैं। साधारणतया मजदूर नकद वितरण को सबसे अधिक पसन्द करता है, और नकद वितरण की योजनाएँ बहुत अधिक प्रचलित हैं। जिन उद्योगों में मजदूर की उत्पादकता लागत का महत्वपूर्ण घटक है, उनमें लाभ-भाजन योजनाएं खूब चलती प्रतीत होती है। लाभ अच्छा हो तो भी इन योजनाओं को लागू करने की गुंजाइश अधिक होती है। इनकी सफलता के लिए एक परम आवश्यक बात यह है कि कर्मचारियों को लाभ में हिस्सा देने के सिद्धान्त में विश्वास होना चाहिए। एक प्रधान या बुनियादी मजदूरी तय कर देनी चाहिए। जो कारबार की सब सम्भावित अवस्थाओं में चलती रह सके और इस प्रधान मजदूरी के अलावा लाभ-भाजन की कोई योजना बनाकर मजदूरी की कमी पूरी करनी चाहिए। सिद्धान्तत, ऐसी योजना से मजदूरी का ढांचा कम्पनी को दे सकने की योग्यता से अधिक दृढ़ता से बंध जायगा। आशा की जाती है कि इससे मजदूरी वृद्धि की माग अधिकतर समाप्त हो जायगी। और पिछली दशाब्दि की मजदूर अशान्ति समाप्त हो जायगी। यदि लाभ-भाजन की किसी योजना को सफल होना हो तो उसे यथासम्भव सब कर्मचारियों पर लागू करना चाहिए और सेवा काल की लम्बाई या अस्थायिता के कारण किसी पर कोई रोक न लगानी चाहिए। दूसरा प्रश्न यह है कि लाभ का कितना हिस्सा कर्मचारियों में बाटा जाय, और इसे भी सावधानी से हल करना चाहिए तीसरा सवाल यह है कि प्रत्येक कर्मचारी को मिलने वाली राशि कैसे निर्धारित की जाय।

यह निर्धारित करने के लिए कि लाभ का कितना हिस्सा बाटा जाय, तीन मुख्य विधियां हैं —(१) योजना में पहले यह तय कर लिया जाय, कि कर निकालने से पहले या बाद या लगाई हुई पूंजी पर न्यायसंगत प्रतिफल (रिटर्न) निकाल देने के बाद या लाभांश की राशि घटा देने के बाद, बचे हुए लाभ का कितने प्रतिशत बाटा जायगा। (२) दूसरी रीति यह है कि प्रबन्ध अपने विवेक या स्वेच्छा से प्रतिवर्ष यह निश्चित करता है, कि लाभ का कितना अंश कर्मचारियों में बाटा जाय। तीसरी मुख्य विधि में

सुधार और इस प्रकार कर्तव्यानुराग में वृद्धि। यह दावा किया जाता है कि यदि इस योजना को सच्चे दिल से, सरल रूप में और ईमानदारी से चलाया जाये तो मजदूर और प्रबंध के सबंध बहुत दृढ़ हो जाते हैं। इसमें कर्मचारियों में निष्ठा की स्थापना और परिवर्धन होता है और इसका कारण सिर्फ यह नहीं है कि इससे आय में वृद्धि होती है बल्कि यह भी है कि इससे यह सूचित होता है कि प्रबंध मजदूरों के प्रति अपना कर्तव्य-पालन करने का यत्न कर रहा है। (२) मिल कर काम करने की प्रवृत्ति तथा सहयोग में वृद्धि। प्रबंध और मजदूरों का लक्ष्य एक होने से सहयोग में वृद्धि और हितों की एकता हो जाती है। (३) कम्पनी के कल्याण में अभिरुचि बढ़ जाती है। लाभ, भाजन सामूहिक आधार पर होने के कारण सब मजदूरों की ओर से स्थिरतापूर्वक काम करने को प्रोत्साहित किया जाता है। निकम्मे लोग अप्रिय हो जाते हैं। मजदूरों का रवैया तत्परतापूर्ण और शिक्षोन्मुख हो जाता है जिससे स्वस्थ लोकमत पैदा हो पाता है और शिथिलता दूर भागने लगती है। मजदूर जिम्मेदारी की भावना अनुभव करता है क्योंकि वह कम्पनी की समृद्धि, में अभिरुचि रखता है। (४) उत्पादकता और दक्षता में वृद्धि। मजदूर लाभ में हिस्सा मिलने के कारण अधिक प्रयास करता है, क्योंकि लाभ उसके प्रयास के अनुसार ही अधिक या कम होगा। क्योंकि बरबादी और हानि न होने का अर्थ है लाभ में वृद्धि, इसलिए मजदूर औजारों, मशीनों और सामान की अधिक परवाह करते हैं, जिससे पर्यवेक्षण और नियंत्रण की लागत में कमी हो जाती है। ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें कुल दक्षता १० प्रतिशत बढ़ गई और रद्दी सामान ५० प्रतिशत कम होने लगा। इस तरह मजदूर की कमाई बढ़ने लगती है और मालिक का लाभ अधिक हो जाता है। (५) मजदूरों के पलायन (टर्न-ओवर) में कमी हो जाती है। लाभ-भाजन का उद्देश्य है मजदूरों को अधिक आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना। मालिक को यह निश्चय हो सकता है कि मजदूर पर भरोसा किया जा सकता है, और वह स्थिर रूप से रहेगा क्योंकि मजदूर इस कथन की सचाई अनुभव कर चुका है कि लुढ़कते हुए पत्थर पर कोई नहीं जमती। (६) अच्छी कोटि के मजदूर आते हैं। जिम्मेदारी और औचित्य की भावना वाले लोग ईमानदारी से काम करते हैं और मालिक की समस्याओं को समझते हैं तथा साथी मजदूरों के रवैये को बदलकर सब को लाभ पहुंचाते हैं। श्रम विवादों में कमी। सब मिलाकर लाभ-भाजन मजदूरी की मांग और श्रमिक अशांति को समाप्त कर देता है और उत्पादन तथा मजदूरी बढ़ाता है जो सब चीजें, अन्ततोगत्वा समाज के लिए लाभदायक हैं। (८) कम्पनी की वित्तीय स्थिति और मजदूरों के प्रतिफल में अच्छा संबंध हो जाता है। हाल के वर्षों में लाभ-भाजन की योजनाएं इस उद्देश्य से बनाई गई हैं कि मजदूरों का कुल प्रतिफल कारबार के उतार-चढ़ाव के साथ बढ़ता रहे।

हानियां—इन लाभों के मुकाबले में लाभ-भाजन की बहुत सी त्रुटियां और दोष बताये गये हैं। कुछ लोग कहते हैं कि लाभ-भाजन सिद्धान्त रूप में तो बहुत

बढ़िया है पर व्यवहार में बहुत असन्तोषजनक है। (१) लाभ भाजन की योजनाएं लाभ पर ही निर्भर हैं। इसलिए वे लाभ के समय की योजनाएं हैं। समृद्धि और बहुत अधिक लाभ के दिनों में बहुत सी नयी योजनाएं अपनायी जायेंगी और मंदी या गिरावट के दिनों में इस से उल्टा हाल होगा। (२) यह योजना अच्छी तरह जमे हुए और सफल व्यवसायों के लिए ही उपयुक्त है जो पहले से निर्धारित लाभ का कोई तर्क संगत हिसाब लगा सकते हैं। ऐसी कोई योजना नहीं बनाई गई और न बनाई जानी चाहिये जो दोनों दशाओं में लागू होती हो और हानि-भाजन को भी लागू करती हो। (३) लाभभाजन का एक और बड़ा भारी दोष यह है कि यह प्रयास और पुरस्कार के बीच कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं रखता। पुरस्कार व्यक्तिगत दक्षता पर आधारित नहीं है बल्कि यह सामूहिक रूप से सब श्रमिकों को दिया जाता है, (४) लाभ-भाजन में पुरस्कार इतनी देर बाद मिलता है कि उससे कर्मचारियों के अतिरिक्त प्रयास को पूरी तरह प्रभावी बनाने में कोई प्रेरणा नहीं मिलती। अनिश्चिय और लम्बा व्यवधान मजदूर को दबाते हैं। (५) लाभ भाजन बहुधा मनमाने आधार पर मिलता है जो प्रायः वेतन का कुछ प्रतिशत होता है और इससे अच्छे मजदूर को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। अधिकतर अवस्थाओं में लाभ बहुत थोड़ा होता है, और व्यक्ति का हिस्सा उपेक्षणीय होता है, हालांकि कुल लाभ का बहुत बड़ा हिस्सा बांट दिया गया होगा। (६) योजनाएं बहुत जटिल होने लगती हैं। और मजदूरों के या यूनियनों के रवैये और सुझावों के बिना ही बना ली जाती है। लाभ का ठीक ठीक निर्धारण अपने-आप में एक समस्या है और वितरण के समय बहुत वादविवाद पैदा हुए हैं। (७) इस योजना के अधीन मिलने वाले हिस्से को प्रथा और अधिकार मान लिया जाता है और उसमें कोई कमी करने पर या सर्वथा न देने पर असन्तोष पैदा होना आवश्यक है। (८) लाभ-भाजन का लक्ष्य यद्यपि संगठन और एकता है, पर तो भी मजदूर यूनियनें इसका विरोध करती हैं, क्योंकि टौसिंग के अनुसार, ''इससे मजदूर अपने निकट के साथियों में ही मुख्य दिलचस्पी रखने लगता है और उस धन्धे या बस्ती के मजदूरों में दिलचस्पी नहीं रखता''।

अंत में, यह बात पुनः दोहराई जा सकती है कि लाभ-भाजन योजनाएं अपने आप में कोई साध्य नहीं हैं और केवल उनसे मजदूरों और प्रबन्ध के बीच अच्छे संबंध नहीं बन सकते। वे औद्योगिक लोकतन्त्र की एक उपयोगी सहायक हैं, पर वे किसी भी अर्थ में इसकी स्थान पूर्ति नहीं कर सकती। लाभ-भाजन औद्योगिक कर्तव्यानुराग बढ़ाने में सिर्फ सहायक हो सकता है वह कर्तव्यानुराग का उत्पादक नहीं हो सकता। जब तक मालिक और मजदूरों में संबंध अच्छे हैं, जब तक पहले ही उद्योग के प्रयोजन के बारे में दोनों पक्षों में सद्भाव विद्यमान है और उसका प्रयोजन है और उस प्रयोजन के प्रति दोनों पक्ष निष्ठावान् हैं, तब तक लाभ-भाजन साझे हित की एक स्वाभाविक और तर्क-संगत अभिव्यक्ति है। यदि इन परिस्थितियों में (अर्थात् जब कर्तव्यानुराग अच्छा है तब) ऐसे कारणों से लाभ कम हो जाय जो

कम्पनी के नियन्त्रण से बाहर है, तो मजदूरों को बोनस की स्थायी हानि को दार्शनिक की भांति देखना चाहिये और फर्म के प्रति उसकी निष्ठा यथापूर्व रहनी चाहिये, पर जहां किसी कारण से प्रबंध और मजदूरों में गुप्त अविश्वास या सन्देह होता है वहां लाभ-भाजन की योजना लागू करने से न केवल सामन्जस्य नहीं पैदा होता बल्कि उससे और संघर्ष तथा अविश्वास पैदा होता है। उस समय जबकि मजदूरों की निष्ठा की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, अर्थात जब कारोबार में कठिनाइयाँ आती हैं और लाभ हानि में परिवर्तित हो जाता है, तब बोनस बन्द हो जाने से मजदूरों में विरोध फैल जाता है और बहुत गड़बड़ होती है।

लाभ भाजन योजनाओं की कमजोरी यह है कि उनके कारण लाभ को ही मालिक और मजदूर को मिलाने वाली कड़ी माना जाने लगता है जबकि लाभ को एक साझे कार्य में सेवा का स्वाभाविक परिणाम समझना चाहिये। न कि सार्वभौमिक या अनिवार्य परिणाम। तो, उचित नियम यह प्रतीत होता है कि लाभ-भाजन की योजना कभी भी प्रच्छन्न आशय से न लागू की जाय। यदि इसे मजदूर को अतिरिक्त पारितोषिक देने की एक रीति समझा जाये तो ठीक है पर उसकी निष्ठा प्राप्त करने के साधन या एक उद्दीपन के रूप में इसके असफल सिद्ध होने की सम्भावना है। क्योंकि यह मजदूरों का ध्यान गलत जगह केन्द्रित करती है। ठीक तरह समझा जाये तो लाभ-भाजन अपने आप में मजदूर और उसकी फर्म में मेल मिलाप स्थापित करने का पर्याप्त साधन नहीं है। इसके लिए मजदूर को मालिक के साथ मिलकर परामर्श का अवसर देकर जिम्मेवारी और नियन्त्रण का कुछ हिस्सा उसे देकर और इस प्रकार उद्योग में संयुक्त प्रयोजन की भावना पैदा करके, जैसा कि अन्यत्र बता चुके हैं, अन्य रीतियों से यत्न करना चाहिये। यह तभी सचमुच उपयोगी हो सकता है जब यह तीन डण्डों वाली मजदूरी की सीढ़ी का अन्तिम डण्डा हो, अर्थात् प्रत्येक मजदूर को एक स्थिर न्यूनतम समय मजदूरी और फिर एक उद्दीपक या खण्ड-कर्म बोनस और अन्त में, यदि कम्पनी को वार्षिक लाभ हो, तो उसका हिस्सा, मिले क्योंकि अकेले लाभ-भाजन में इतनी सारी कमजोरियाँ हैं और क्योंकि पूंजी विभाजन के अभाव में यह मजदूरों को गुमराह करता है और उनमें गलत भावना पैदा कर देता है, इसलिए उचित यह है कि लाभ भाजन और मजदूर सहभागिता एक साथ होनी चाहिए।

मजदूर सहभागिता—प्रमुख लाभ-भाजक कम्पनियों के अनुभव से यह प्रतीत होता है कि यह योजना तभी सफल होती है जब इसके साथ कम्पनी के मजदूरों के शेयर रखने की भी व्यवस्था हो। मजदूरों की सहभागिता के उद्देश्य इस प्रकार वर्णित किये जा सकते हैं "सहभागिता यह कहती है कि सब मजदूर कुछ सीमा तक, जिस कारोबार में वे नौकर हैं उसके लाभ, पूंजी और नियन्त्रण में हिस्सा लेंगे। इस बात को अधिक विस्तार से इस तरह कहा जा सकता है कि मजदूर को उसके काम की प्रमाप मजदूरी के अलावा कारोबार के आखिरी लाभ या उत्पादन

की बचत का कुछ हिस्सा मिलेगा; कि मजदूर अपने लाभ के हिस्से को, जिस कारोबार में वह काम करता है उसकी पूंजी में जमा करेगा; कि मजदूर अंश पूंजी अर्जित करके और इस प्रकार अंशधारी (शेयर होल्डर) के सामान्य अधिकार और जिम्मेदारियाँ प्राप्त करके अथवा मजदूरों की एक ऐसी सहभागिता समिति का निर्माण करके, जिसकी भीतरी कारबार में आवाज हो, कारबार के नियंत्रण में हिस्सेदार अवश्य बने।" इस पद्धति के परिणामस्वरूप मजदूर कारबार के अंश-स्वामी हो जाते हैं—उन्हें लाभ में उनका हिस्सा पूंजी के रूप में मिलता है और इस प्रकार वे कारखाने की समृद्धि की दृष्टि से अधिकाधिक प्रयास करने को प्रेरित होते हैं। इस योजना में वही परिकल्पन (सट्टे) वाला दोष है जो लाभ-भाजन में था। यह एक स्वयं तथ्य है कि परिकल्पन (सट्टा) थोड़ी पूंजी लगाने वाले के लिए अनुपयुक्त है। कारबार के लाभ काल्पनिक होते हैं और मजदूर, जिसकी आमदनी थोड़ी है, इस घटती-बढ़ती आमदनी से अपने खर्चे का समन्वय नहीं कर सकता।

भारत में लाभ-भाजन की योजना—दिसम्बर १९४७ में जो दिल्ली उद्योग-सम्मेलन हुआ था, उसमें देश के औद्योगिक संबंधों में सुधार करने का निश्चय किया गया था। भारत सरकार ने अपने अप्रैल १९४८ के औद्योगिक नीति सम्बन्धी संकल्प के नौवें पैरे में यह ऐलान किया था कि वह एक केन्द्रीय मंत्रणादात्री परिषद् बनायेगी जो निम्नलिखित बातों के निर्धारण के लिए सिद्धांत तय करके सरकार के पास भेजेगी। (क) मजदूरों को उचित मजदूरी, (ख) पूंजी पर उचित प्रतिफल या रिटर्न, (ग) कारखाने के प्रतिपालन और प्रसार के लिए तर्कसंगत रक्षित धन, (घ) अतिरिक्त लाभ में मजदूर का हिस्सा—अतिरिक्त लाभ का हिसाब सर्पी अनुमाप (स्लाइडिंग स्केल) से, जो सामान्यतया उत्पादन के अनुसार बदलता रहेगा, ख और ग का धन निकाल देने के बाद लगाया जायगा। १४ व्यक्तियों की एक विशेषज्ञ समिति, जिसमें आधे सरकारी और आधे गैर सरकारी सदस्य थे, मई १९४८ में नियुक्त की गई, जिसने सितम्बर १९४८ में अपना प्रतिवेदन दिया। लाभ-भाजन सम्बन्धी समिति ने यह सिफारिश की कि शुरू में निम्नलिखित उद्योगों में पांच वर्ष की अवधि तक लाभ-भाजन का प्रयोग करके देखा जाय, अर्थात् सूती वस्त्र, जूट, इस्पात (मुख्य उत्पादक), सीमेंट, टायर निर्माण और सिगरेट निर्माण। समिति, लाभ में मजदूर का हिस्सा निर्धारित करने के लिए सर्पी अनुमाप को व्यावहारिक विधि नहीं समझती। उसने लिखा है, "उद्योग में जो लाभ होता है वह श्रम के अलावा और बहुत से कारकों पर निर्भर है और उस सीमा तक उसका जो कुछ मजदूर करते हैं या नहीं करते हैं उससे कोई खास सम्बन्ध नहीं। संभव है कि किसी कारखाने में जिसमें मजदूरों ने पूरे जोर शोर से काम किया है, किन्हीं अन्य कारणों से कुछ भी लाभ न हो सके, या मजदूरों की शिथिलता के बावजूद बहुत लाभ हो जाय। कुल उत्पादन को किसी एक सामान्य इकाई के रूप में नापना बड़ा कठिन काम है······वार्षिक उत्पादन का कोई एक सामान्य (नौर्म) तय कर देना और भी कठिन

है······सभव है कि अनचाही बाधाएं आ जायें जिनके लिए कोई भी जिम्मेदार नही ···।" समिति के अनुसार, पूंजी पर उचित प्रत्यावर्तन (रिटर्न) वह न्यूनतम प्रत्यावर्तन होगा, जो और अधिक पूंजी नियोजन को प्रोत्साहित करे। मजदूरो का हिस्सा कारखाने के अतिरिक्त लाभ का आधा रखने की सिफारिश की गई। एक-एक मजदूर का हिस्सा उनकी १२ मास की कुल कमाई में से महगाई और उसे प्राप्त हुए कोई और बोनस निकालकर बची हुई राशि के अनुपात मे होगा। यदि किसी मजदूर का हिस्सा उसकी प्रधान मजदूरी के २५ प्रतिशत से अधिक हो तो उसे यह २५ प्रतिशत तो नकद मिलेगा और शेष उसकी भविष्य निधि या अन्य खाते में जमा कर दिया जायगा।

समिति ने अपनी सिफारिश की जोखिम को समझते हुए यह सुझाया है कि लाभ भाजन इकाईवार होना चाहिए, जिससे मजदूर कारखाने की समृद्धि में प्रत्यक्ष दिलचस्पी रख सके, पर क्योकि मजदूर यूनियनें एक उद्योग के आधार पर बनी हुई है, इसलिए इकाई-वार योजना उस ढांचे को भग करती है और इससे औद्योगिक अशान्ति की सम्भावना है। समिति की राय में लाभ-भाजन को इन तीन महत्वपूर्ण दृष्टिकोणो से देखना चाहिये (१) उत्पादन के उद्दीपक के रूप में, (२) औद्योगिक शांति रखने के साधन के रूप में और (३) प्रबध में मजदूरो को हिस्सा देने की दिशा में प्रगति के रूप में। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, लाभ-भाजन नि:सन्देह औद्योगिक लोकतन्त्र की दिशा में एक कदम है, पर उसमें बहुत सी त्रुटियां है जिन पर पहले विचार किया जा चुका है। इन तथा अन्य बहुत से कारणों से इग्लैंड और यूनाइटेड स्टेटस जैसे देशो में, जहां बहुत समय तक इसका प्रयोग किया गया है, लाभ-भाजन का इतिहास बड़ा रग बिरगा रहा है। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को, जिसने पहली बार १९३७ में लाभ-भाजन योजना शुरू की थी, बहुत सुखद अनुभव नही हुआ। उनकी योजना में अवक्षयण (डिप्रेसियेशन), कर और प्रिफरेंस शेयर होल्डरो के लाभांश की राशि घटाने के बाद बचे हुए शुद्ध लाभ का २२½ प्रतिशत बोनस के रूप में देने की उदार व्यवस्था है, और तो भी मजदूरो की उत्पादकता घट गई। इस गिरावट के कई कारण हो सकते है पर इस निष्कर्ष पर तो पहुचना ही पड़ता है कि लाभ भाजन की उत्पादकता बढ़ाने का मूल लक्ष्य सिद्ध नही हुआ।

न्यूनतम मजदूरी

सविदा या अनुबध (कान्ट्रैक्ट) की स्वतन्त्रता एक मूल अधिकार मानी गई है और साधारण सिद्धान्त के रूप में यह है भी वैसी ही, परन्तु एक उत्कृष्ट स्वार्थ—जनसाधारण की सुख-सुविधा-परिरक्षक या पुलिस शक्ति के प्रयोग द्वारा अपना अकुश रख सकता है। इसी आधार पर, बहुत से मामलो में विधान मण्डलो ने मालिको और मजदूरो के आपस में अपने सबन्धो की शर्तें तय कर लेने के साधारण अधिकार में दखल दिया है, बहुत से हस्तक्षेपो में से एक वह विधान है जो मजदूरी भुगतान की शर्तें निर्धारित करता है, या न्यूनतम मजदूरी दर तय

करता है। न्यूनतम मजदूरी आन्दोलन के कारण ये थे संसार में विभिन्न उद्योगों में मजदूरों की बड़ी बुरी दशा थी। मजदूरियां अनुचित रूप से कम थीं। कुछ फर्में मजदूरों की कमजोर स्थिति का अनुचित लाभ उठाती थीं और उन उद्योगों में साधारणतया स्वीकृत और दी जाने वाली मजदूरियों से बहुत कम मजदूरी तय कर देती थीं। दूसरी ओर, विधान द्वारा सामाजिक और आर्थिक तन्त्र को इस तरह समन्वित करने के यत्न किये गए जिससे मजदूर की कम से कम न्यूनतम मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति अवश्य हो सके। उसे नौकरी की सुरक्षा प्राप्त हो, बेकारी के दिनों में उसे दूसरा काम मिलने की, और काम करने में अक्षम होने पर उसके भरण पोषण की व्यवस्था हो।

यह कहा जा सकता है कि सारे संसार में न्यूनतम मजदूरी के बीज १८९१ में स्वर्गीय पोप लियो १३वें द्वारा जारी किए गए मैनिफेस्टो द्वारा बोये गये, जिसमें उसने घोषणा की थी "आत्मसंरक्षण वास्तव में हर किसी का कर्तव्य है और इस कर्तव्य को पूरा न करना अपराध है। इससे आवश्यक रूप से यह अधिकार पैदा होता है कि व वस्तुएं प्राप्त की जायें जिनसे जीवन कायम रहता है और गरीब लोग मजदूरी पर काम करने के अलावा और किसी रीति से उन्हें नहीं प्राप्त कर सकते। हम मान लेते हैं कि मजदूर और उसका मालिक बिना रुकावट समझौते कर सकते हैं, विशेष रूप से मजदूरी की मात्रा के बारे में। तो भी प्राकृतिक न्याय का एक बुनियादी सिद्धान्त है जो सविदा करने वाले पक्षों की स्वतन्त्र अभिलाषाओं से अधिक बड़ा और अधिक पुराना है, और वह यह है कि मजदूरी इतनी काफी होनी चाहिए कि एक मितव्ययी और स्थिर बुद्धि मजदूर अपना भरण पोषण कर सके क्योंकि अगर मजदूर अपनी आवश्यकताओं से बाधित होकर या और भी अधिक मुसीबत के भय से प्रभावित होकर इस कारण अधिक कठोर शर्तें स्वीकार कर लेता है जो वह निश्चित रूप से अनिच्छा से ही स्वीकार करेगा कि मालिक या ठेकेदार उस बात पर आग्रह करता है तो वह बल का शिकार हो जाता है जिसे न्याय निंदनीय समझता है" (ऐवोल्यूशन आफ इन्डस्ट्रियल औरगेनाइजेशन में शील्डस द्वारा उद्धृत)। १९२८ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने न्यूनतम मजदूरी के बारे में एक प्रारूप अभिसमय (draft convention) स्वीकार किया था जिसके अनुसार उस अभिसमय का अनुसमर्थन करने वाले, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के लिए आवश्यक था कि वह ऐसी व्यवस्था करे जिनसे कुछ विशेष धन्धों में, जिनमें सामूहिक समझौतों द्वारा या अन्य रीतियों से मजदूरियों को सफलतापूर्वक नियन्त्रित करने की व्यवस्था नहीं है, या मजदूरियां बहुत ही कम हैं, नियुक्त मजदूरों के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें तय की जा सकें। भारत सरकार ने इस अभिसमय का समर्थन नहीं किया, पर समय-समय पर नियुक्त किए गये आयोगों और समितियों ने इस प्रश्न पर विचार किया। श्रम विषयक शाही आयोग ने यह सिफारिश की कि न्यूनतम मजदूरी तय कर

की सम्भावनाओं की जाँच की जाय। १९३७ में कांग्रेसी मंडल बन जाने से इस आन्दोलन को तीव्र प्रगति मिली। बम्बई सूती मिल श्रम जाँच समिति १९३७-४०, कानपुर श्रम जाँच समिति, १९३८, बिहार श्रम जाँच समिति, १९३८-४०, इन सबने न्यूनतम मजदूरी के बारे में कानून बनाने के प्रश्न पर ध्यान दिया और न्यूनतम वेतन तय कर देने की सिफारिश की। इंडियन नेशनल कांग्रेस ने १९४५ में जारी किए गए अपने चुनाव घोषणा पत्र में न्यूनतम मजदूरी की आवश्यकता को स्वीकार किया। तब से केन्द्रीय वेतन आयोग औद्योगिक न्यायालय और अन्य समितियाँ—ये सब न्यूनतम मजदूरी तय करने के बारे में एकमत हैं।

न्यूनतम मजदूरी तय करना—न्यूनतम मजदूरी तय करना कोई आसान काम नहीं। न्यूनतम मजदूरी उस मजदूरी को कहते हैं जो एक मितव्ययी और स्थिर बुद्धि मजदूर की आवश्यक व न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफी हो। आधार तय करने में प्राय: दो सिद्धान्त अपनाए जाते हैं निर्वाह मजदूरी का सिद्धान्त और उचित मजदूरी का सिद्धान्त। मजदूर को निर्वाह योग्य मजदूरी, और साथ ही न्यायसंगत और उचित मजदूरी मिलने का निश्चय कराना परमावश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति सबसे अच्छी तरह इस प्रकार हो सकती है कि पहले एक निर्वाहयोग्य या प्रधान मजदूरी की घोषणा कर दी जाय और इसके बाद इसके आधार पर अनेक कामों और कौशल श्रेणियों की न्यूनतम दरों का जटिल ढांचा खड़ा किया जाय। मजदूर के लिए निर्वाह-योग्य मजदूरी इतनी होनी चाहिए कि उसमें न केवल अपने लिए भरण-पोषण का व्यय आ जाय, बल्कि अपने परिवार के पालन, अर्थात् उसके भोजन, वस्त्र मकान, शिक्षा और उसके रहन-सहन के स्तर के कारण प्राप्त विशेष अधिकारों का खर्च भी आ जाय और इसके बाद कुछ बच भी जाय। दूसरे शब्दों में इसमें उसे और उसके परिवार को एक सभ्य जीवन बिताने का तर्कसंगत स्तर प्राप्त होना चाहिए, पर क्योंकि कीमत स्तर के उतार-चढ़ाव के साथ विभिन्न वस्तुओं के खर्च घटते-बढ़ते रहने की सम्भावना है इसलिए। उचित यह है कि मजदूरी तय करने से पहले रहन-सहन के खर्च में होने वाले परिवर्तनों पर पूरा-पूरा विचार कर लिया जाय। प्रधान मजदूरी तय करने में इस बात पर भी विचार कर लेना चाहिए कि परिवार कितना बड़ा है। एक औसत परिवार, जिसमें पति-पत्नी और चार बच्चे हैं, और उनकी आवश्यकताएं रहन-सहन के स्तर का हिसाब लगाने के लिए न्यूनतम आधार मानने चाहिए। एक वयस्क मजदूर की भोजन, कपड़े और मकान की न्यून से न्यून आवश्यकता प्रतिदिन क्रमश: २४०० से ३००० इकाई प्रति कलरीमान (कैलोरीफिक वैल्यू) ३० गज प्रति वर्ष और १०० वर्ग फीट लगाई गई हैं। अर्थशास्त्रियों ने भारत के विभिन्न केन्द्रों में सभ्य जीवन के स्तर का खर्च ३० रु० से ४५ रु० तक प्रति व्यक्ति प्रति मास लगाया है। विभिन्न कामों और कौशल की श्रेणियों के लिए न्यूनतम दर के ऊपरी ढांचे का निर्माण, साधारण आर्थिक अवस्थाएं और उद्योग का मजदूरी दे सकने का सामर्थ्य,

देखकर बनाना चाहिए । जिन मजदूरी दरो से मजदूरी की लागत कुल लागत की ५५ प्रतिशत हो जाय, उन्हें अच्छी तरह उचित दर माना जा सकता है । भारत सरकार द्वारा नियुक्त उचित मजदूरी समिति ने यह सिफारिश की थी कि न्यूनतम मजदूरी उचित मजदूरी की निचली सीमा होनी चाहिए और ऊपरी सीमा वह होगी जो उद्योग में देने का सामर्थ्य हैं । इन दो सीमाओ के बीच में समिति ने यह सुझाव रक्खा कि उचित मजदूरी (क) श्रम की उत्पादकता, (ख) उसी या पडोसी वस्तुओ में उसी या वैसे ही काम की मजदूरी की प्रचलित दर, (ग) राष्ट्रीय आय क स्तर और उसके वितरण तथा देश की अर्थव्यवस्था में उस मजदूरी के स्थान पर निर्भर होनी चाहिए । समिति की सिफारिशे इन उपर्युक्त आवश्यकताओ के अनुरूप ही थी । उचित मजदूरी विधेयक संसद में लम्बित हैं, और इसके पास हो जाने पर निर्वाह योग्य मजदूरी, जिसका भारतीय संविधान में वचन दिया गया है, सुनिश्चित रूप से मिल सकेगी । इस बीच न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८ में कुछ खास रोजगारो में न्यूनतम मजदूरी देने की व्यवस्था की गई ।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, १९४८—यह अधिनियम केन्द्रीय और राज्य सरकारो को अनुसूचित रोजगारो में मजदूरी की न्यूनतम दर तय करने और उसे बीच-बीच में बदलने की शक्ति देता है । जिन उद्योगो में न्यूनतम मजदूरी स्थिर और पुनरीक्षित । (रिवाइज) करने का सिद्धान्त सबसे पहले लागू होगा, वे ये है ऊनी कालीन बुनाई या शाल बुनाई, चावल, आटा या दाल मिल, तम्बाकू और बीडी बनाई, बागान या प्लान्टेशन, तेल मिलें, सडक निर्माण या भवन निर्माण कार्य, पत्थर तोडना या पत्थर पीसना, लाख निर्माण, अभरक का कारखाना, सार्वजनिक मोटर परिवहन, चमडा कमाने और चमडे का सामान बनाने के कारखाने, बडे खेतो या फार्मों के मजदूर गव्यशाला या डेरी और अन्य । केन्द्रीय और राज्य सरकारें इस सूची में और नाम जोड सकती है । राज्य सरकारो को न्यूनतम मजदूरी तय करने के लिए मनणादाता बोर्ड नियुक्त करने होगें और एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड होगा जो साधारणतया मजदूरी तय करने के मामलो में और राज्य मनणादाता बोर्डो के काम का समन्वय करने के लिए सलाह देगा ।इन सब निकायो म मालिको और मजदूरों क प्रतिनिधि बराबर सख्या म होगें और कुछ स्वतन्त्र सदस्य होगें जिनकी सख्या कुल सदस्यो के एक तिहाई से अधिक नहीं होगी । केन्द्रीय मनणादाता बोर्ड में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो, मालिकों और मजदूरो के प्रतिनिधि हैं । विभिन्न राज्य सरकारो ने अनुसूचित रोजगारो में नियुक्त व्यक्तियों पर लागू होने वाले रहन-सहन के व्यय के सूचक अको को समय समय पर निश्चित करने के लिए, और यदि कोई सुविधाएं दी गई हो तो उनका नकदी के रूप म हिसाब लगाने के लिए "सक्षम अधिकारी" नियुक्त किए हैं ।

केन्द्रीय सलाहकार मण्डल ने राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी, क्षेत्रो के अनुसार, १ रु० प्रति दिन से लेकर २ रु० प्रतिदिन तक तय की हैं । अनेक राज्य सरकारो ने

अनुसूचित रोजगारो में लगे हुए मजदूरो की न्यूनतम मजदूरी की दरें तय कर दी है। विभिन्न उद्योगो की दरें नीचे दी गई हैं।

चावल, आटा और दाल मिलो में दर दिल्ली में १ रु० १३ आ० ६ पा० से लेकर मद्रास में १२ आने तक है; तेल मिलो में यह पजाब में १रु० १२ आ० से लेकर मद्रास, मैसूर और उत्तर प्रदेश में १रु० तक हैं, सडक निर्माण और भवन निर्माण कार्यो में बम्बई मे १ रु० १२ आ० से २ रु० ६ आ० तक और उडीसा में १३ आ० से १ रु० तक हैं; पत्थर तोडने के काम में भी दरें ऐसी ही हैं; टैनरी और लैदर फैक्टरियो में २ रु० ६ आ० को उच्चतम दर बिहार में हैं और निम्नतम दर १ रु० उत्तर प्रदेश और हैदराबाद में है, मोटर परिवहन (अकुशल) में पश्चिमी बगाल में १ रु० ९ आ० १० पा० और कुर्ग में ११ आ० ५ पा० हैं, कडक्टरो को पश्चिमी बगाल में २ रु० १४ आ० से ३ रु० तक और मध्य प्रदेश में १ रु० ४ आ० तक मिलते है; तम्बाकू में दर बम्बई में २ रु० और उत्तर प्रदेश में १ रु० हैं अभरक की खानो में बिहार में १ रु० ५ आ० ९ पा० और मद्रास में १ रु० दरें हैं। लाख निर्माण में १ रु० ४ आने की उच्चतम दर बिहार में और १९$\frac{1}{2}$ आने की निम्नतम दर मध्यप्रदेश में है; रोपवनो (Plantations) में ट्रावनकोर-कोचीन में १ रु० ९ आ० और पजाब में ११ आने की दरें हैं, सीमेंट; कांच और पोटरी में १ रु० ६ आ० की दर सिर्फ मध्यप्रदेश में तय की गई है; दरी बनाने या शाल बुनने के काम में बिहार में १ रु० १२ आ०; मद्रास में १ रु० पजाब में १ रु० ८ आ० और राज स्थान में १ रु० २ आ० की दरें है; खेती में निम्नलिखित दरें हैं; बिहार—फसल का चौदहवां हिस्सा या प्रतिदिन ३ सेर धान और आधा सेर मूडी, बम्बई—९ आने से १२ आने तक प्रतिदिन और मुफ्त भोजन, मध्य प्रदेश—१० आने से १ रु० तक दैनिक और मुफ्त भोजन;

उडीसा १० आने से १२ आने तक प्रतिदिन, पजाब १ रु० से २$\frac{1}{2}$ रु० तक प्रतिदिन; उत्तर प्रदेश १ रु० से २$\frac{1}{2}$ रु० तक प्रतिदिन, पश्चिमी बगाल १$\frac{1}{2}$ रु० से २$\frac{1}{2}$ रु० तक प्रतिदिन; हैदराबाद १२ आ० से १ रु० तक, मैसूर १४ आ० से १ रु० तक; आध्र १$\frac{1}{2}$ रु० से ३ रु० तक प्रतिदिन; अजमेर १२ आने से १ रु० तक; कुर्ग १ रु० ५ आने; दिल्ली १$\frac{1}{2}$ रु० से २ रु० तक; त्रिपुरा १ रु० २ आने तथा प्रतिदिन ३ भोजन से लेकर २ रु० प्रतिदिन तक।

ओटोमोबाइल इजिनियरिंग, जिसमें मोटरो की सर्विसिंग और मरम्मत भी शामिल हैं, में सिर्फ दिल्ली मे दरें तय की गई हैं और वे १ रु० प्रतिदिन या ६० रु० प्रतिमास हैं। अकेले अजमेर में टैक्सटाइल में न्यूनतम दर प्रति मास ३० रु० और महगाई भत्ता २६ रु० हैं। सौराष्ट्र में नमक (Salt pan) में दो रु० प्रतिदिन और दिल्ली म मैंटल वर्किंग कारखानो के लिए ३५ रु० प्रति मास और फौउन्ड्री के लिए ३८ रु० से ४० रु० तक प्रतिमास की दरें हैं।

मजदूरी और कमाई—निम्नलिखित सारांश से भारत के कुछ महत्वपूर्ण

उद्योगो मे मजदूरो की मजदूरी और कमाई का कुछ ज्ञान हो जाता है। विविध केन्द्रो में, सूती मिल उद्योग में न्यूनतम प्रधान मजदूरी की दरें ये हैं : बम्बई नगर और उपनगरो कानपुर तथा दिल्ली में ३० रु० प्रतिमास, अहमदाबाद में २८ रु० प्रतिमास, शोलापुर, मध्य प्रदेश, मद्रास राज्य, भोपाल और मध्य भारत में २६ रु० और गडग, सूरत तथा सौराष्ट्र में २१ रु० प्रति मास। अन्य स्थानो पर वहाँ के अलग-अलग रहन-सहन के खर्च के अनुसार दरें हैं। पश्चिमी बगाल को छोडकर जहाँ महगाई ३०) प्रतिमास की समान दर (Flat rate) से दी जाती है, अन्य सूती मिल उद्योग के सब महत्वपूर्ण केन्द्रो में इसकी दर रहन-सहन की लागत की दशाना (सूचक सख्या) से बधी हुई है, उदाहरण के लिए, बम्बई की सूती मिलें बम्बई के रहन-सहन की लागत की सूचक सख्या में १०५ से ऊपर होनेवाली वृद्धि के प्रत्येक बिन्दु पर प्रति दिन १·९ पा० की दर से देती हैं, और अहमदाबाद की मिलें निर्वाह व्यय का सूचक सख्या में ७३ से ऊपर होने वाली वृद्धि के प्रत्येक बिन्दु पर प्रतिदिन २·८४ पा० की दर से देते है। दिल्ली में बडी मिलें १९४४ को १०० मान कर निर्वाह व्यय की सूचक सख्या से बधे हुए हिसाब से महगाई देती है। पहले २० बिन्दु की वृद्धि पर ४४ रु० १२ आ०, और इसके बाद ५·२७ पा० प्रतिदिन प्रति बिन्दु की दर है। अब कुछ वर्षों से उद्योग में मजदूरो को वार्षिक लाभ पर बोनस देने की प्रथा चल रही है। यह बोनस प्राप्ति साधारणतया हाजिरी, प्रबंध हडतालो में हिस्सा न लेना आदि कुछ बातो पर निर्भर है। बम्बई में बोनस १९४९ में मजदूरी का छठा हिस्सा था। मद्रास में मजदूरी का १५ प्रतिशत और दिल्ली में प्रधान (बेसिक) कमाई के प्रति रुपये पर ४ आ० था, इत्यादि।

जूट मिल उद्योग में न्यूनतम प्रधान मजदूरी २६ रु० प्रति मास है, और पश्चिमी बगाल में ३२ रु० ८ आ० तथा बिहार में ३७ रु० ६ आ० महगाई है। ऊनी मिल उद्योग में विभिन्न केन्द्रो में न्यूनतम प्रधान मजदूरी में बहुत भिन्नता है। उदाहरण के लिए, बम्बई में वे २४ रु० से ३४ रु० २ आ० तक प्रतिमास है और उत्तर प्रदेश में १९ रु० से ३० रु० प्रतिमास तक। बगलोर में न्यूनतम मजदूरी दर पुरुषो के लिए १४ आ० ६ पा० प्रतिदिन और स्त्रियो के लिए ११ आ० ६ पा० प्रतिदिन है, जबकि पजाब मे दैनिक न्यूनतम मजदूरी १ रु० है। महगाई बम्बई में ५५ और ६७ के बीच में, पजाब में ३४, उत्तर प्रदेश में ५५ रु० और मैसूर में ३३ रु० है। बोनस प्रधान कमाई के आठवें हिस्से से छठे हिस्से तक के बीच में है। रेशम मिल उद्योग में प्रधान मजदूरी सूती मिलो की अपेक्षा बहुत कम है। मैसूर में वे ६ आ० से १ रु० ८ आ० तक प्रति दिन के बीच में है। कश्मीर में ६ आ० प्रतिदिन और मद्रास में ४ आ० प्रतिदिन की दर है जबकि पश्चिमी बगाल में (सब कुछ मिलाकर) २० रु० से २५ रु० तक प्रतिमास है। बम्बई नगर में महगाई निर्वाह व्यय के सूचक अक के साथ बधी हुई है और अन्य स्थानो में यह अलग-अलग केन्द्रो में अलग-अलग है।

सीमेंट उद्योग में प्रधान मजदूरी में कोई एकरूपता नही। ए. सी. सी. द्वारा नियमित सब कारखानो में न्यूनतम कुशल मजदूरो को १२ आ० प्रतिदिन की एक समान न्यूनतम प्रधान मजदूरी दी जाती है। जयन्ती के डालमिया नगर वाले कारखाने में २१ रु० प्रति मास दिया जाता है और विजयवाडा के कारखाने में प्रतिदिन की सचित मजदूरी १ रु० ८ आ० होती है। महगाई निर्वाह व्यय की सूचक सख्या से बधी हुई है। कागज मिल उद्योग में भी प्रधान मजदूरी की दर कारखाने-कारखाने में अलग-अलग है। बम्बई राज्य में यह ८ आ० प्रतिदिन से २५ रु० प्रतिमास तक है। उत्तर प्रदेश में यह ७ आ० प्रतिदिन से ५५ रु० प्रतिमास तक है। पश्चिमी बगाल में ३० रु० प्रतिमास से १ रु० ० आ० ९ पा० प्रतिदिन तक है। पश्चिमी बगाल में महगाई प्रधान मजदूरी के १५ प्रतिशत से लेकर ३० रु० प्रतिमास तक है। उत्तर प्रदेश और बम्बई के कारखानो में महगाई निर्वाह व्यय की सूचक सख्या से बधी हुई है। केमिकल या रसायनिक उद्योग में न्यूनतम कुशल मजदूर को पश्चिमी बगाल में २७ रु० से ३५ रु० प्रतिमास तक, बम्बई राज्य में २२ रु० से ३२ रु०८ आ० प्रति मास तक और मद्रास में १ रु० से १ रु०२ आ०६ पा० प्रतिदिन तक न्यूनतम प्रधान मजदूरी मिलती है। उत्तर प्रदेश और बिहार में चीनी मिलो के मजदूरो को सब कुछ मिलाकर ५५ रु० प्रतिमास मिलता है। चीनी मिलो में मद्रास में ८ रु० १२ आ० से १९ रु० ८ आ० तक प्रतिमास न्यूनतम प्रधान मजदूरी है। और बम्बई में ६ आ० प्रतिदिन से १२ आ० प्रतिदिन तक। उत्तर प्रदेश और बिहार के कारखानों में महगाई अलग नही दी जाती जबकि अन्य केन्द्रो में यह निर्वाह व्यय की सूचक सख्या से जुडी हुई है।

अध्याय २७

वस्तुओं और सेवाओं का विपणन

(Marketing of Goods and Services)

विपणन कार्य—विपणन अर्थात् खरीद और बिक्री का सारभूत कार्य यह है कि वस्तुओं या सेवाओं के स्वामित्व को उस राशि के बदले में हस्तान्तरित कर देना जो इसको समतुल्य या बराबर समझी जाती है। सीधे व्यापार के सरलतम रूपों में आने वाली विपणन समस्याएँ सीधी सादी होती हैं। वस्तुएँ बनते ही बेच दी जाती हैं। उत्पादक और उपभोक्ता बिक्री के बिन्दु पर मिलते हैं और व्यवहारों से दोनों पक्षों को अधिकतम सन्तोष प्राप्त होता है। बिक्री के अधिक जटिल रूपों में, जिनमें उत्पादक और उपभोक्ता मिलते नहीं, स्वामित्व का परिवर्तन करना, जो विपणन का मुख्य कार्य था, अब विपणन प्रक्रम का एकमात्र आवश्यक गुण नहीं रहता। बिक्री करने से पहले, अर्थात् खरीदने और बेचने वाले को व्यापार करने की इच्छा से एक जगह लाने से पहले, और बहुत से कार्य करने पड़ते हैं। ये लोग या तो प्रत्यक्ष सम्पर्क करते हैं या अप्रत्यक्ष या कृत्रिम सम्पर्क करते हैं। प्रत्यक्ष सम्पर्क में वे दोनों एक जगह इकट्ठे होते हैं और आमने सामने सौदा करते हैं। आजकल अप्रत्यक्ष सम्पर्क सबसे अधिक प्रचलित है और इसमें खरीदने वाला और बेचने वाला प्रधान स्वामियों के रूप में अपना विनिमय करते हैं। परन्तु यह सारा कार्य वे दूसरों की मदद से करते हैं, जो उनकी तरफ से अभिकर्ता या बिचौदियों के रूप में काम करते हैं। कृत्रिम सम्पर्क विज्ञापन के जरिये स्थापित होता है। ये सब कार्य, जो समतुल्य राशि के बदले वस्तुओं का विनिमय करने के प्रधान कार्य में आवश्यक सहायक हैं, प्रासंगिक या पूरक कार्य कहलाते हैं, या सिर्फ विपणन के काम ही कहलाते हैं। विपणन कार्यों को निम्नलिखित रूप से समूहबद्ध किया सकता है।

क—भाण्ड सम्बन्धी कार्य

(१) खरीदना—(क) आवश्यकताओं का निर्धारण, (ख) विक्रेता की खोज या सम्भरण स्रोत की खोज, (ग) मूल्य तथा अन्य शर्तें तय करना, (घ) स्वत्व का हस्तांतरण, (ङ) भुगतान या उधार की व्यवस्था।

(२) एकत्र करना या इसका विलोम यानी वितरण।

(३) प्रमापीकरण और श्रेणीनिर्धारण।

(४) संग्रहण या स्कन्धरक्षण—समय उपयोगिता की सृष्टि।

(५) परिवहन या स्थान उपयोगिता की सृष्टि।

(६) विभाजन, पैकिंग, पैकेजिंग और विधायन (प्रोसेसिंग)

ख—सहायक या साधारण व्यावसायिक कार्य

(७) वित्त व्यवस्था।

(८) जोखिम उठाना—बीमा या वायदे का व्यापार।

(९) अभिलेखन।

ग—बिक्री कार्य

(१०) बेचना, (क) माँग पैदा करना, (ख) क्रेता ढूँढना, (ग) क्रेता को वस्तु के उपयोग के बारे में सलाह देना, (घ) मूल्य तथा अन्य शर्तें तय करना, (ङ) स्वत्व का हस्तांतरण, (च) प्रत्यय (Credit) पर दिए हुए माल का धन इकट्ठा करना या प्रत्यय का फैलाव।

कभी-कभी भांड सम्बन्धी तथा बिक्री कार्यों को विपणन का प्रारम्भिक कार्य कहा जा सकता है,और साधारण व्यावसायिक कार्यों को सहायक कार्य कहा जा सकता है। विपणन की प्रक्रिया जो इन सब कार्यों से मिलकर बनी है, व्यावसायिक कार्य की वह अवस्था है जिसमें वस्तुओं और सेवाओं तथा अधिकारों के हस्तांतरण द्वारा मानवीय अभीच्छाओं (wants) की पूर्ति की जाती है। संक्षेप में यह वह साधन है जिसके द्वारा उत्पादक या विक्रेता अपनी अतिरिक्त वस्तु निपटाता है और उपभोक्ता या क्रेता अपनी कमियों की पूर्ति करता है। खरीदना, बेचना और प्रमापीकरण स्वामित्व के परिवर्तन से सम्बन्ध रखते हैं (धारण उपयोगिता) परिवहन, संग्रह, श्रेणीनिर्धारण, विभाजन, पैकिंग और एकत्र करण (assembling) का सम्बन्ध वस्तुओं की शारीरिक उठा धरी से है, अर्थात् स्थान और समय उपयोगिता का सृजन। इन सब कार्यों पर निम्नलिखित अनुच्छेदों में विचार किया गया है।

खरीदना—विपणन के क्रय सम्बन्धी कार्य विक्रय सम्बन्धी प्रयासों के पूरक हैं। क्रय के अन्दर अपनी आवश्यकता का निर्धारण, सम्भरण स्रोत का खोजना, व्यावसायिक सम्बन्धों का बनाना, कीमता और शर्तों का निश्चय करना और स्वत्व का विक्रेता से क्रेता का हस्तान्तरण शामिल है। क्रयण एक महत्वपूर्ण कार्य है, और इसमें व्यवसाय संस्थाओं और अन्तिम उपभोक्ताओं का बहुत सा समय लगता है। बड़ी व्यवसाय संस्थाओं में पृथक क्रयण विभाग होता है। बहुतों में क्रेता, सहायक क्रेता और लिपिकों का बहुत बड़ा कर्मचारी वर्ग रहता है। छोटा खुदरा फरोश अपना बहुत सा समय थोक विक्रेताओं और निर्माताओं के सेल्समैनों के साथ मिलने में खर्च करता है। डिपार्टमेंटल स्टोरों में क्रयण इतना महत्वपूर्ण होता है कि डिपार्टमेंट के मेनेजर को क्रेता कहा जाता है। गृहस्थ उपभोक्ता अपना बहुत सा समय सौदा खरीदने में खर्च करता है। भोजन आदि बहुत सी वस्तुएँ खरीदने में क्रेता का बहुत सा समय लग जाता है। खरीदने का अन्तिम प्रयोजन

यह है कि वस्तुओं को, उत्पादन में या व्यक्तिगत उपभोग में, जहाँ तत्काल उपयोग के लिए उन की आवश्यकता है, इकट्ठा किया जाय, परन्तु इससे पर्याप्त और मितव्ययी विपणन में भी सुविधा होती है।

वस्तुएँ चार प्रकार से खरीदी या बेची जाती हैं अर्थात् निरीक्षण द्वारा नमूने द्वारा, वर्णन द्वारा, और श्रेणीनिर्धारण द्वारा। निरीक्षण द्वारा खरीद तब की जाती है जब क्रेता यह निश्चय करने के लिए कि ये वस्तुएँ मेरी आवश्यकता पूरी करने के लिए उचित गुण और उपयोगिता वाली हैं उनकी परीक्षा कर चुकता है। यह खरीदने का सब से पुराना प्रकार है और अब भी खुदरा और थोक व्यवहार में बहुत अधिक प्रचलित है। नमूने द्वारा खरीद तब की जाती है जब खरीदनेवाला वस्तु के एक नमूने को परख लेता है और यह बात मान ली जाती है कि सारी वस्तु उस ही क्वालिटी की होगी जिसका यह नमूना है। नमूने द्वारा बिक्री इसलिए की जाती है कि खरीदनेवाले को सारा सामान देखने की जरूरत न हो। सौदा कार्यालयों में, विनिमय स्थानों और वास्तविक वस्तु से दूर स्थानों में संपादित किया जा सकता है। वर्णन द्वारा खरीद तब की जाती है जब ग्राहक सूचीपत्र से परख करता है या किसी अन्य साधन से वस्तु का वर्णन जान लेता है। ग्राहक को विक्रेता की ईमानदारी में विश्वास होना चाहिए, अथवा वह वर्णन किसी निष्पक्ष विशेषज्ञ अथवा सरकारी निरीक्षक द्वारा किया होना चाहिए। वर्णन द्वारा बिक्री में नमूना का खर्चा बच जाता है और इसका उपयोग वहाँ हो सकता है जहाँ नमूना पेश करना अव्यवहार्य है। श्रेणीनिर्धारण द्वारा खरीद तब की जाती है जब ग्राहक किसी सुनिश्चित वस्तु की निश्चित कोटि की निश्चित मात्रा खरीदता है, जैसे मिडलिंग काटन, ग्रेड ए दूध आदि। यह खरीद तार, टेलीफोन, या डाक द्वारा या जबानी कहकर की जा सकती है और खरीदने और बेचने वालों को वस्तुएँ देखने की आवश्यकता नहीं होती। यह बिक्री उन्हीं वस्तुओं की हो सकती है जो निश्चित रूप में प्रमापित हो चुकी हैं। उदाहरण के लिए एक मार्केट श्रेणीनिर्धारण द्वारा खरीद मुख्यतः वायदा व्यापार का आधार होता है।

वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में प्रायः बेचने वाला खरीदने वाले को ढूंढता है, पर इस चलन के बावजूद खरीदने वाले प्रायः सम्भरण स्रोतों की तलाश में घूमते हैं। उदाहरण के लिए, सूती निर्माता और थोक फरोश ऐसे विक्रेताओं की तलाश में बहुत सा समय और ऊंचा खर्च करते हैं जो अभीष्ट वस्तु दे सकें, या अभीष्ट शर्तों पर नियमित रूप से माल दे सकें। अंतिम उपभोक्ता खुदरा दूकानों पर जाते हैं और काफी समय लगाकर उन विक्रेताओं को ढूंढते हैं जिन के पास उनकी मनचाही, वस्तुएँ हैं। विक्रेता से मिलकर ग्राहक या ग्राहक से मिलकर विक्रेता, अथवा वे दोनों पत्र-व्यवहार द्वारा सम्बन्ध बना सकते हैं। सम्बन्ध बनाने में एक प्रत्ययत्न (लाइन आफ क्रेडिट) स्थापित करना प्रायः बहुत महत्वपूर्ण होता है। कई बार क्रयण और एकत्रकरण (*Assembling*) में विभ्रम हो जाता है परन्तु एकत्रकरण का अर्थ

हैं वस्तुओं को भौतिक दृष्टि से एक जगह जमा करना, जिससे वस्तुओं के छोटे-छोटे समूह बाहर भेजने या बिक्री के लिए एक स्थान पर इकट्ठे हो जावें। जब दूकानदार अपने ग्राहकों की आवश्यकता पूर्ति के लिए अनेक प्रकार की वस्तुएँ इकट्ठी करता है और एक ही वस्तु की बहुत अधिक मात्रा नहीं रखता, तब यह कार्य एकत्रीकरण के बजाय चयन है। एकत्रीकरण चयण नहीं है और न यह बाजार का स्थिर कार्य है क्योंकि इसका महत्व कृषि उत्पादन और अन्य कच्चे सामान में ही है। 'आर्डनिंग' उन लोगों के लिए वस्तुओं को एकत्र करता है, जो उन्हें खरीदना चाहते हैं। ठीक ठीक कहा जाय तो वह केता नहीं एकत्र कर्ता है।

एकत्रकरण—एकत्रकरण का अर्थ है कि कहीं भेजने, बिक्री या निर्माण काय के लिए बहुत सा माल एक जगह जमा करना। यह एक सी वस्तुओं की अधिक मात्रा प्राप्त करने के लिए वस्तुओं को एक जगह इकट्ठा करने का भौतिक कार्य है एकत्रकरण का कृषि वस्तुओं के विपणन में। जो आमतौर पर दूर-दूर तक फैले हुए क्षेत्रों में बहुत से उत्पादकों द्वारा थोड़ी थोड़ी मात्रा में उत्पन्न की जाती है, बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। कच्चे सामान का एक जगह इकट्ठा करना आवश्यक है, क्योंकि निर्माताओं को उसकी बहुत अधिक मात्रा की आवश्यकता है, और उन्हें प्रमापित माल की नियमित मात्रा की आवश्यकता होती है। एकत्रकरण से दोनों बातें सुनिश्चित हो जाती हैं। इससे बड़े पैमाने पर श्रेणीनिर्धारण में सुविधा होती है और इसका यह लाभ है कि निर्माता जो क्वालिटी चाहें खरीद सकता है। वित्त व्यवस्था में भी सुविधा होती है क्योंकि बड़े पैमाने पर वित्त व्यवस्था करने का काम सरल हो जाता है। सौदों की कुल संख्या कम हो जाती है और वस्तुएँ बड़े-बड़े शहरों में बहुत सन्तोषजनक अवस्थाओं में संगृहीत होती हैं, जहाँ वित्त व्यवस्थापक उनका अच्छा नियंत्रण और निरीक्षण कर सकते हैं।

प्रमापीकरण और श्रेणीकरण—श्रेणीकरण का अर्थ है वस्तुओं को छाँटकर ऐसे समूहों में बाँटना जिनमें वे किस्म, आकार और क्वालिटी में प्राय एक से हों। प्रमापीकरण का अर्थ है इन श्रेणियों को स्थायी बना देना। निरीक्षण का अर्थ है यह निश्चय करने के लिए वस्तुओं के समूहों की परीक्षा करना कि वे किस प्रमाप के अनुरूप हैं। श्रेणीकरण विविध क्वालिटी और आकार की वस्तुओं को कुछ पूर्वनिर्धारित क्वालिटी प्रमापों के अनुरूप समूहों में विभाजित करने का साधन मात्र है, अथवा यह निश्चय करने का साधन है कि एक सी, परन्तु अब तक अज्ञात, क्वालिटी की वस्तुएँ किस प्रमाप के अनुरूप हैं। जब उत्पादन के समय वस्तुएँ प्रमापित न हों और जब यह पता नहीं होता कि वे किस प्रमाप के अनुरूप हैं, तब श्रेणीकरण या वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है। इन प्रयासों का उद्देश्य यह है कि वस्तुओं को एक ऐसे सामान्य प्रमापित नाम या श्रेणी में रक्खा जा सके जिसे खरीदने वाला और बेचने वाला, दोनों समझ कर प्रयोग में ला सकें। श्रेणीकरण आकार, रंग, बाह्यरूप, रासायनिक अन्तर्वस्तु, सामर्थ्य, आकृति, आपेक्षिक गुरुत्व, विजातीय द्रव्य की मात्रा,

नमी की मात्रा, पक्वता, मिठास, या रेशे की लम्बाई आदि पर आधारित हो सकती है। एक श्रेणी के साथ एकरूपता की धारणा होती है, अर्थात् विभिन्न विक्रेताओं से विभिन्न नगरों में खरीदी हुई वस्तुएँ एक ही क्वालिटी की हों। इसलिए प्रमाप या श्रेणी का भाव यह अर्थ होता है कि वे वस्तुएँ चाहे किसी भी उत्पादक ने बनाई हों पर एक ही क्वालिटी की होंगी। उदाहरण के लिए, अंगूरों का वर्गीकरण करने के लिए एक ही किस्म के अंगूरों का आकार, भार, रंग, सुगंध और कलंक-हीनता की दृष्टि से अलग-अलग श्रेणियों में छाँट लिया जाता है। यह श्रेष्ठता कारकों या प्रमापों के आपेक्षिक महत्व को सूचित करते हैं।

अंगूरों का श्रेणीकरण

श्रेष्ठता कारक			थक (प्रतिशत)
गुच्छे का रूप	..	...	१०
गुच्छे का आकार	...	...	१५
बेरियों (फलों) का आकार	.	...	१०
दृढ़ता	...	...	५
रंग	. .	...	१०
मोमाभा (ब्लूम)	...	...	५
सुगंध	...	...	२५
कलंकहीनता	...	...	२०

एक और उदाहरण लीजिए। अंडों का श्रेणीकरण, भार, बाह्यरूप और अन्दर की क्वालिटी के आधार पर किया जाता है। सुविधा के लिए एगमार्क सविवरण (स्पेसिफिकेशन) किया जाता है। भार की दृष्टि से १¾ औंस न्यूनतम भार वाले मुर्गी के अंडे 'विशेष' कहलाते हैं। ए श्रेणी वाले का भार १⅞ औंस, बी श्रेणी वाले का १½ औंस और सी श्रेणी वाले का १⅜ औंस होता है। इसके अतिरिक्त, अंडे किसी भी सूरत में धब्बेदार नहीं होने चाहिए और दरारों से रहित होने चाहिएँ। छिलका साफ, धब्बों से रहित, अच्छा सामान्य वजन और आकृति वाला होना चाहिए। अन्तर्वस्तु कलंकहीन होनी चाहिए। पीला अंश (योक) केन्द्र में और पारभासक होना चाहिए, और उसकी रूपरेखा बहुत हल्की होनी चाहिए, स्पष्ट नहीं, तथा वह चलिष्णु होना चाहिए। सफेदी पारभासक और साफ होनी चाहिए और वायुस्थान गहराई में १ इंच के ⅛ से अधिक न होना चाहिए।

छाप या चिह्न लगाना—इन श्रेणीकरणों के अलावा उत्पादक लोग अपने-अपने अलग प्रकार बना लेते हैं, जिन्हें छाप या ब्रान्ड कहते हैं। छाप लगाना वस्तु के साथ उत्पादक के नाम को एक कर देने की प्रक्रिया है। इसके लिए वस्तु या डिब्बे पर शब्दों के रूप में बाजारी नाम या छाप या मार्का लगा दिया जाता है। उपभोक्ता वस्तुओं

---

१. अंगूरों और अंडों के विपणन पर प्रतिवेदन

और उपस्कर में आमतौर पर छाप या मार्का लगा दिया जाता है। छाप या मार्के से यह मालूम होता है कि यह वस्तु स्थायी रूप से उसी क्वालिटी की है, अथवा उसकी क्वालिटी में सुधार हुआ होगा। छाप का चुनाव करना प्रायः बड़ा कठिन होता है। बहुत बार उत्पादक उपयुक्त मार्का सुझाने वाले लोगों के लिए इनाम रखते हैं। साधारणतया छाप का नाम या रूपांकण छाँटने में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए। नाम या शब्द सरल और बोलने में आसान होना चाहिए, जिससे कि उसे याद किया जा सके। नाम या रूपांकण में अपनी कुछ ऐसी विशेषता होनी चाहिए, कि किसी और नाम या रूपांकण से विभ्रम न पैदा हो। इसकी नकल करना आसान न होना चाहिए। इससे अच्छी क्वालिटी की ध्वनि निकलनी चाहिए और इसे बार-बार बदलना नहीं चाहिए।

श्रेणीकरण और छापा लगाने के लाभ—(१) बिक्री के तरीके प्रमापीकरण और श्रेणीकरण या छापा लगाने पर निर्भर हैं। जो वस्तुएँ उन सब दृष्टियों से प्रमापीकृत होती हैं जिन्हें क्रेता महत्वपूर्ण समझते हैं, वे नमूने श्रेणी, वर्णन या प्रतीक के आधार पर बेची जा सकती हैं। इससे खरीद और बिक्री बहुत सरल हो जाती है।

(२) सुनिश्चित प्रमापों के अनुसार श्रेणीकरण से विपणन की लागत कम हो जाती है और इस का अर्थ उत्पादक के लिये अधिक मूल्य और उपभोक्ता के लिए कम मूल्य है।

(३) श्रेणीकृत वस्तुएँ जोखिम कम हो जाने और आवश्यक सौदे में रुपया लगाने में अधिक आसानी हो जाने के कारण सस्ती बेची जा सकती हैं। परिवहन और सग्रह लागत में कमी, माग पैदा करने की लागत में कमी और खरीद और बिक्री करने में खरीदने और बेचने वाले के समय में बचत के कारण भी वस्तुएँ सस्ती बेची जा सकती हैं।

(४) प्रमाप वस्तुएँ अप्रमापित वस्तुओं की अपेक्षा अधिक दूर-दूर तक बिकती हैं।

(५) श्रेणीकरण से वायदे की डिलिवरी का सौदा भी हो सकता है जिससे हेजिंग (व्रतिपणन) सौदे आसानी से हो सकते हैं।

(६) क्योंकि प्रमापित वस्तुओं की क्वालिटी और मूल्य ज्ञात होते हैं इसलिए उन पर धन उधार लेने की इच्छा वाला मालिक उन्हें सार्वजनिक कोष्ठागारों में सग्रहीत कर सकता है और कोष्ठागार की रसीद ऋण के परितुलन के लिए बैंक में जमा कर सकता है। बैंक प्रायः इन वस्तुओं के लगभग पूरे रूप बाजार मूल्य का धन उधार दे सकते हैं। इस प्रकार मालिक अपनी वस्तुओं को तब तक रख सकते हैं, जब तक कि उनका अधिक मूल्य न पा सकें। अधिकतर अण्डे शीत सग्रह या कोल्ड स्टोरेज में इस तरह महीनों रक्खे रहते हैं।

(७) श्रेणीकरण से परिवहन और सग्रह के परिव्यय कम हो जाते हैं।

घटिया या न बिक सकने योग्य वस्तुएँ छोड दी जाती हैं और इस तरह उपभोक्ता की नापसन्द वस्तुओ पर परिवहन या संग्रह का खर्च नही पडता।

(८) श्रेणीकरण के विकास से बाजार विस्तृत हो जाता है और बाजार के सम्बन्ध में परिशुद्ध ज्ञान फैलने में सुविधा होती है।

(९) श्रेणीकरण से उत्पादन प्ररूपो की अधिक एकरूपता हो जाती है और किस्मो तथा व्यापारिक वर्णनो के असदृश रूपो की संख्या कम हो जाती है।

(१०) श्रेणीकरण और प्रमापीकरण से पूलिंग सम्भव हो जाता है। क्योंकि छोटी-छोटी संख्या में बेचना लाभदायक नहीं है, इसलिए एक श्रेणी की वस्तुएँ इकट्ठी कर के बडे पैमाने की बिक्री का लाभ उठाया जा सकता है।

(११) श्रेणीकरण से अधिक न्यायसगत कार्य होता है। उस किसान को जो अप्रमाणित वस्तु बेचता है, ठीक मूल्य नही मिलता, परन्तु श्रेणीकरण द्वारा सब कृषक अपनी-अपनी वस्तु का पूरा मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

श्रेणीकरण या छाप लगाना, खुदरा और थोक दोनो व्यापारो में महत्व-पूर्ण होता जाता है। प्रमापित डिब्बो में बंधे जाने वाले सामान की संख्या द्रुत गति से बढ रही है, और खुदराफरोश की स्थिति उत्पादकों के विस्तृत विज्ञापन से पैदा होने वाली माग को पूरा करने वाले अभिकर्त्ता की सी होती जा रही है। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह है कि उपभोक्ता को कम मूल्य देना पडता है, क्योंकि निरी-क्षणो की संख्या और परिणामत निरीक्षणो की लागत कम हो जाती है। व्हाईटहेड के शब्दो में "उपभोक्ता की दृष्टि में छाप या मार्क का अर्थ है विश्वसनीयता, प्रमापी-करण, क्वालिटी तथा अन्य अमूर्त विचार, जिनके बारे में वह खरीदने के पहले निश्चित हो जाता है, परन्तु इसका आर्थिक अभिप्राय यह है कि यह प्रतियोगिता को एक निश्चित नाम दे देता है। छाप या मार्का उपभोक्ता को एक प्रमाप का निश्चय कराता है पर व्यापारी के लिए वह जरा पुराने और एक भिन्न अर्थ में एक प्रमाप को निरूपित करता है। यह वह झंडा है जिससे वह अपने और अपने प्रति-योगियो के दलो को पहचानता है। छाप निरी सेवा नहीं है, बल्कि उपभोक्ता के लिए एक हिफ़ाजत है......यह वह अनिवार्य तत्त्व है जिसमें से प्रतियोगिता बहुत आसानी से कार्य कर सकती है और विज्ञापन करने की बढती हुई प्रभावी शक्ति का उपयोग कर सकती है।

संवेष्टन और पुट्ठी बनाना (पैकिंग एंड पैकेजिंग)—पैकिंग का अर्थ यह है कि वस्तुओं के परिवहन या संग्रहण के लिए आवश्यक संवेष्टन और क्रेटिंग किया जाय। बहुतसी वस्तुएँ रखने के लिए या ग्राहको को देने के लिए पैक की जाती हैं। द्रव पदार्थ ढोने बोतलो या पीपो में रखने पडते हैं। महाकाय वस्त्र, आदि, दबा कर गाठें बाध दी

1. The Administration of Marketing and Selling, Pp. 14-15.

जाती हैं। सारी वस्तुओं को उठा धरी या स्थानान्तरण के समय रक्षा के लिए पेटा में बन्द किया जाता है। वस्तुएँ दुकानदारों को देने के लिए पेटियों में रखी जाती हैं और खुदराफरोश अन्तिम उपभोक्ता को देने के लिए कागज की थैलियों में बाँध देते हैं। मगर वस्तुएँ प्राय विशेष धारकों में सवेष्टित की जाती हैं। पैकेजिंग या पुड़ी बनाने का अर्थ यह है कि अन्तिम उपभोक्ता के देने के लिए वस्तुएँ छोटे छोटे पात्रों, यथा पेटियों, बोतलों तथा पीपों में रखी जायें। हाल में पुड़ीबन्द वस्तुओं की बिक्री में बहुत उन्नति हुई है। ये वस्तुएँ ऐसे ढंग से बनाई जा सकती हैं कि उत्पादक का नाम अंतिम उपभोक्ता के पास पहुँचायें और इस तरह उत्पादक सीधे उपभोक्ता के सामने अपने माल के प्रचार का मौका प्राप्त करे। इसके अलावा, पुड़ीबंद वस्तुएँ, जो किसी खास छाप या मार्के के से बकती हैं, उसी तरह की बिना पुड़ी बंधी हुई वस्तु की अपेक्षा अधिक मूल्य में बिक सकती हैं। इसलिए छाप वाली वस्तुएँ हमेशा बहुत अच्छी तरह पुड़ी बन्द होती हैं। ऐसा इस कारण होता है कि इस तरह की बहुत सी वस्तुएँ लेने में ग्राहक पर बाह्य रूप और रूपाभा (फिनिश) का बहुत प्रभाव पड़ता है, अधिकतर खुदरा वस्तुएँ पहले अपनी पुड़ी से पहिचानी जाती हैं और इसके बाद वस्तु के बाह्य रूप और रूपाभा से। यह सामान्य बात है कि छापों के नाम का उपयोग बहुत बढ़ जाने के परिणामस्वरूप पुड़ियों के उपयोग में बहुत वृद्धि हो गई। छाप या मार्का खुली चीजों, जैसे चाय, काफी आदि, पर बहुत आसानी से नहीं लगाया जा सकता जिससे जो निर्माता अपनी वस्तु के साथ अपने आपको अभिन्न करना चाहता है, उसके लिए यह प्राय अनिवार्य हो जाता है कि वह अपनी वस्तुओं की बिक्री के लिए उसे इकाई के रूप में पैक करे। पुड़ी के उपयोग से वस्तु को कुछ महत्व भी प्राप्त हो जाता है जो उन वस्तुओं को प्राप्त नहीं होता जिन्हें खुदराफरोश बिक्री के समय बाँधता है। यदि मैं वस्तुएँ खुली बेची जाय तो खुदराफरोश का वचन ही छाप, वर्रान्टी, और मूल्य की गारन्टी होता है। पैकेजिंग या पुड़ीबंदी से इन वस्तुओं को एक पृथक व्यक्तित्व प्राप्त हो जाता है। सच तो यह है कि पुड़ी, जिसमें सब तरह के डिब्बे आदि शामिल हैं, का ग्राहक, के पास पहला खुदानुमा रूप पहुँचाने का महत्व इतना अधिक है कि बहुत सी फर्में इसे विज्ञापन के साधन के रूप में प्रयुक्त करती हैं। वे इसके हवारोक होने, आसानी से उठाये जा सकने या स्वास्थ्य सम्बन्धी गुणों की ओर ध्यान खींचती हैं।

कोष्ठागारण या संग्रह

कोष्ठागारण या संग्रहण से समय उपयोगिता की सृष्टि होती है। बहुत सी वस्तुएँ नियमित रूप से तथा उपभोग के स्थान पर नहीं पैदा होतीं और वे उत्पादन के समय से लेकर तब तक संगृहीत रहनी चाहिए जब तक उपभोक्ता को उनकी आवश्यकता नहीं क्योंकि वे तभी मानवीय आवश्यकता की पूर्ति कर सकती हैं। जो वस्तुएँ उपभोक्ता से दूर उत्पादित होती हैं, उनको उपभोक्ता के पास पहुँचाना पड़ता है। सम्भरण एकसा होता रहे इसके लिए इन वस्तुओं का संग्रह उपभोक्ता के निकट होना चाहिए, जिससे परिवहन सम्बन्धी

विलम्ब या अनिश्चितता का मौका न रहे और उसे उचित आर्थिक इकाइयों में ला रहना चाहिए। बहुत सी कृषिक वस्तुएँ जो एक ऋतु में पैदा होती हैं, उपभोक्ता को सारे साल लगभग एक से रूप में मिलती रहती हैं। अनाज, रुई, तम्बाकू, और चीनी इसके उदाहरण हैं। ये चीजें कई वर्ष तक रक्खी रहने पर भी खराब नहीं होतीं। दूसरी ओर, शीत संग्रह से मक्खन, अन्डा और फल जैसी नश्वर वस्तुएँ, संगृहीत रहती हैं जिससे वे लगभग नियमित रूप से बाजार में लाई जाती रह। अन्य वस्तुएँ, जैसे आलू, मटर, गिलास, खुबानी, और नाशपाती का संग्रहण कुछ अधिक अनुकूल नहीं पड़ता। इन वस्तुओं को डिब्बाबन्दी द्वारा या सुखा कर उपभोक्ता की बाद की आवश्यकता के लिए संगृहीत किया जाता है। कुछ वस्तुओं की माँग अनियमित रहती है। इस अवस्था में शीत संग्रह से लाभ उठाया जा सकता है, जिससे उत्पादन अधिक नियमित रह सके। अधिकतर आभूषण, फ़ैंसी चीजें, बर्तन और खिलौने दिवाली, क्रिसमस आदि विशेष अवसरों पर खरीदे जाते हैं। यदि इस तरह की वस्तुएँ बनाने वाली फैक्टरियाँ सारे साल चलाई जायें तो कम बिक्री के महीनों में उत्पादित माल को तब तक के लिए संगृहीत करना होगा जब तक कि उपभोक्ता को उनकी आवश्यकता न हो। संग्रह में खर्च होता है, परन्तु यह खर्च प्रायः उस अतिरिक्त लागत से कम होता है जो मकान, मशीनरी और श्रम लगाकर आवश्यकतानुसार मौसमी वस्तुएँ बनाने में व्यय होता है। इसके अलावा आग, बाढ़, हड़ताल, सर्दी या तूफान से उत्पादन और परिवहन में बाधा पड़ सकती है। संग्रहण इन जोखिमों से बचाता है।

बरफ के द्वारा और बाद में अमोनिया तथा अन्य रासायनिक द्रव्यों द्वारा प्रशीतन (रेफ्रिजरेशन) के विकास ने बहुत सी नश्वर वस्तुओं के विपणन में क्रान्ति करदी है, और माल सारे साल मिलता रहता है। उत्पादकों को अधिक माँग पूरी करने का मौका मिलता है क्योंकि अब उन्हें सिर्फ उतना ही उत्पादन नहीं करना है जितना मौसम में निकल जाय, और मूल्य स्थिर हो जाते हैं, परन्तु शीत- संग्रह में रखे हुए खाद्य पदार्थों को कुछ लोग अभी अच्छा नहीं समझते। कुछ लोगों का ख्याल है (यद्यपि वह गलत है) कि संग्रह के समय क्वालिटी गिर जाती है। क्वालिटी अधिकतर इस बात पर निर्भर है कि शुरू में वस्तुएँ किस अवस्था में थीं, शीत संग्रह में वे किस तरह रक्खी गईं, और शीत संग्रह से निकलने के बाद उन्हें किस तरह उठाया-रक्खा गया, इस बात पर नहीं कि वे कितनी देर शीत-घर में रक्खी गईं। शीत संग्रह के दिनों में वस्तुएँ अपनी वह क्वालिटी कायम रखती हैं जो शीत संग्रह से पहले उनमें थीं और जब वह शीतघर से बाहर आती हैं तब वे बहुत तेजी से बिगड़ती हैं। उदाहरण के लिए, गर्मियों में जो मक्खन बिल्कुल ठीक हालत में शीत संग्रह से निकाला जाता है, वह ताजे मक्खन की अपेक्षा बहुत जल्दी सड़ जाता है।

संग्रह की सुविधाएँ—वस्तुओं को दक्षतापूर्वक बेच सकने के लिए इस बात

का बड़ा महत्व है कि संग्रह को पर्याप्त सुविधाएं सुलभ हों, पर्याप्त स्थान, उचित अव-स्थिति और ताप, सर्दी, गर्मी, शुष्कता, कृमि, आग और चोरी से वस्तुओं को बचाने के लिए पर्याप्त व्यवस्था सुलभ होनी चाहिए। वेयर हाउस ऐसी जगह होना चाहिए और ऐसा बना हुआ होना चाहिए कि वस्तुएं न्यूनतम खर्च से प्राप्त की जा सकें और भेजी जा सकें। प्रायः वाछनीय होता है कि वेयर हाउस जहाँ बहुत सारी वस्तुएं जमा होनी हैं, आवश्यकता के अनुसार रेलवे साइडिंग या पोतगाह पर होना चाहिए। इसमें ट्रकों के माल लादने और उतारने के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए पर यह मुख्य सड़क के निकट होना चाहिए। वस्तुएं उठाने की सुविधाएं, उदाहरण के लिए, एलिवेटर, पावर ट्रक, लिफ्ट, टक, क्रेन आदि महत्वपूर्ण हैं। वस्तुएं उत्पादन के स्थान पर, अर्थात् खेत पर, मिल में या फैक्टरी में और या जहाज पर लादने की जगह संगृहीत की जा सकती हैं, या बड़े प्राथमिक और जौबिंग बाजारों में या स्थानीय दूकानदारों और खुदराफरोशों की दूकानों में या उपभोक्ताओं के घरों में या उपभोक्ताओं के प्लाटों में जमा की जा सकती हैं। वेयर हाउस का स्थान निश्चित करने से पहले कई बातों पर विचार करना होगा। उठा धरी और बीमे की लागत कम रखने में और वस्तुओं की उचित रक्षा और देखभाल करने में वस्तुओं के परिवहन की सुविधाओं का बड़ा महत्व है। यदि और बातें समान हों तो वस्तुओं का संग्रह वहाँ करना चाहिए, जहाँ अधिकतम सुविधाएं सुलभ हों। वाहनों पर भार एकसा करने के लिए प्रायः यह अच्छा होता है कि मौसम के समय उत्पादित वस्तुओं को उत्पादन के स्थान पर ही संगृहीत किया जाय जिससे सारे वर्ष एक चाल से माल बाजार को भेजा जा सके। इस का अर्थ यह होता है कि कृषिक वस्तुएं प्राथमिक या उपभोक्ता बाजारों के बजाय खेत पर या माल भेजने के स्थानीय केन्द्रों पर संगृहीत करनी चाहिए। दूसरी ओर मौसम पर उपभोग में आने वाली वस्तुएं उपभोग केन्द्र के निकट संगृहीत करनी चाहिए जिससे परिवहन साधनों पर भार कम पड़े। कभी-कभी वस्तुओं को उनके निर्मित रूप के बजाय अनिर्मित अवस्था में संगृहीत करना सस्ता बैठता है। वस्तुओं के निर्माण, परिवहन और बिक्री से उनका मूल्य बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप संग्रह में अधिक धन रुक जाता है। कच्चे सामान में वस्तु के बेफैशन होने का जोखिम भी कम हो जाता है।

वेयरहाउसों के प्ररूप—वेयरहाउसों के दो मुख्य वर्ग किये जाते हैं - १—संगृहीत वस्तुओं के प्ररूप के अनुसार, २—स्वामित्व के अनुसार। संगृहीत वस्तुओं के अनुसार वेयर हाउस को कच्चे सामान का वेयर हाउस या तय्यार माल का वेयर-हाउस कहा जाता है। इस तरह के कुछ वेयर हाउस पटसन के वेयर हाउस, कम्-मुद्रा के वेयर हाउस, टिम्बर या इमारती लकड़ी के वेयर हाउस, हार्ड वेयर के वेयर हाउस, फर्नीचर के वेयर हाउस कहलाते हैं। स्वामित्व के अनुसार वेयर हाउस (१) निजी (२) सार्वजनिक, या (३) सरकार द्वारा अनुज्ञप्त या बंधपत्रित वेयर हाउस हो सकता है।

निजी और सार्वजनिक वेयर हाउस—निजी वेयर हाउस वस्तुओं के मालिक का होता है, जो प्राय थोकफरोश होता है और अपनी वस्तुएं वहां संगृहीत करता है। सार्वजनिक वेयर हाउस डौक संस्था, माल भरवाने वाले (फार्वर्डिंग फर्म्स), या किसी भी व्यक्ति का हो सकता है। इस प्रकार का वेयर हाउस नफे पर दूसरे लोगों की वस्तुएँ संगृहीत करने के प्रयोजन से बनी हुई विधि के अनुसार ही संचालित होता है। बहुत बार ऊपर से माल तब जहाज घाट पर पहुँचता है जब जाने वाले जहाज पर उसके लिए जगह ढूंढना मुश्किल होता है। कभी कभी समुद्र से आता हुआ माल बन्दरगाह पर तब पहुँचता है जब आयातक को उसे अपने कब्जे में लेने की सुविधा नहीं होती। इस काल में ये वस्तुएँ कहीं न कहीं रखनी होंगी। इसी प्रकार व्यापार में भी उनके बनाये जाने और काम में लाये जाने के बीच के समय उन्हें रखना पड़ता है। इस तरह की सब वस्तुओं के संग्रह की सुविधा सार्वजनिक वेयर हाउसों में होती है। कानून में सार्वजनिक वेयर हाउस के मालिक और वस्तुओं के मालिक का सम्बन्ध एक ओर तो अभिकर्ता जैसा और दूसरा स्थान मालिक (लैंडलार्ड) जैसा होता है, अर्थात् वह वस्तुओं का बेली या संरक्षक होता है। उसे उन वस्तुओं की वैसी ही रक्षा करनी चाहिए जैसी एक समझदार आदमी अपनी वस्तुओं की करता है। क्योंकि उसकी जिम्मेवारी इससे अधिक नहीं है, इसलिए प्रायः वस्तुओं का बीमा मालिक कराता है। वेयर हाउस वाले ने तो वस्तुएँ मालिक को वस्तुओं के रूप में लौटानी है। स्थान मालिक के रूप में वह वस्तुएं हटाई जाने से पहले भाटक वसूल करने का अधिकारी है। दूसरे शब्दों में उसका वस्तुओं पर धारणाधिकार (लियन) है।

सार्वजनिक वेयर हाउस व्यापार में बड़ी उपयोगी सेवा करते हैं। वे अच्छे बने हुए होते हैं। उनमें कृमिनाशक छिड़कने का प्रबन्ध होता है, और चौबीसों घन्टे नौकर देखभाल रखते हैं। इसके बाद बीमे की कोई आवश्यकता नहीं रहती। दूसरी बात यह है कि उनके यहाँ रेल और रोड दोनों से आने और जाने वाले माल की उत्तम सुविधाएँ होती हैं। जो निर्माता इनका उपयोग करता है, उसे अपना मकान बनाने में अपनी पूँजी नहीं लगानी पड़ती और न दूसरों के मकान ठेके पर लेने पड़ते हैं। वह सिर्फ उतनी जगह का पैसा देता है जितनी जगह इस्तेमाल करता है। सार्वजनिक वेयर हाउसों में संगृहीत सामान पर निजी वेयर हाउसों में संगृहीत सामान की अपेक्षा अधिक आसानी से रुपया मिल जाता है। सार्वजनिक वेयर हाउसों की रसीद बैंकों या वित्त कम्पनियों से रुपया उधार लेने के लिए बहुत बढ़िया परितुलक (Collateral) प्रतिभूति है। सार्वजनिक वेयरहाउस उस व्यक्ति की आवश्यकताओं के लिए विशेष रूप से अनुकूल है जो क्षेत्रीय वस्तु संग्रह रखना चाहता है, और जिसके पास विभिन्न संग्रह केन्द्रों में इतनी वस्तुएँ नहीं हैं कि उनका अपने वेयर हाउस बनवाना या अपने कर्मचारी रखना उचित हो। सार्वजनिक वेयर हाउस के द्वारा छोटे विक्रेता भी क्षेत्रीय वस्तुएं

संग्रह कर सकते हैं। प्रतियोगिता वाले बाजारों में यह बात बहुत महत्वपूर्ण है।

बंधपत्रित वेयर हाउस—बंधपत्रित वेयर हाउस वह होता है जिसके पास सीमा शुल्क के भुगतान से पहले आयात वस्तुओं को संग्रह करने के लिए स्वीकार करने का लाइसेन्स होता है। बंधपत्रित वेयर हाउस में अपनी चीजें जमा करके आयातक को बिना ही शुल्क चुकाए उनपर नियंत्रण हो जाता है। वह थोड़ी-थोड़ी वस्तुओं का शुल्क चुका कर उन्हें बेच सकता है और पूरा शुल्क एक साथ देने से बच सकता है। पुनर्निर्यात में भी वस्तुओं को लाइसेंस या अनुज्ञप्ति वाले वेयर हाउस में जमा होने दिया जाता है क्योंकि इसमें शुल्क के भुगतान और फिर पुनर्निर्यात के समय उसकी वापसी का दोहरा काम, और इस तरह वापसी तक बड़ी-बड़ी धनराशियां का बंद पड़े रहना बच जाता है। इन वेयर हाउसों में कुछ ऐसे काम करने दिये जाते हैं जो वस्तुओं को उपभोग या पुनर्निर्यात के लिए उपयुक्त बनाने को आवश्यक होते हैं। उदाहरण के लिए, चाय की कई किस्मों को मिलाया जा सकता है, और उसे पुड़ियों में बंद किया जा सकता है, द्रव पदार्थों को बोतलों या अन्य पात्रों आदि में बंद किया जा सकता है। स्वदेशनिर्मित वस्तुएँ भी, जिन पर उत्पादन शुल्क लगता है, उदाहरण के लिए, बीयर, दियासलाइयाँ, सिगरेट, पेटेन्ट दवाइयाँ आदि तब तक बंधपत्रित वेयर हाउस में जमा की जा सकती हैं, जब तक उनकी जरूरत न पड़े। इन सब अवस्था में शुल्क का भुगतान स्थगित हो जाता है। वेयर हाउस वाले को एक बंधपत्र भरना पड़ता है कि मैं सीमाशुल्क अधिकारियों की सम्मति के बिना वस्तुएँ न हटाने दूँगा। बंधपत्रित वेयर हाउसों की वस्तुओं पर सीमा शुल्क अधिकारियों का सख्त पर्यवेक्षण रहता है और मालिक को वस्तुओं को हाथ लगाने से पहले सीमा शुल्क अधिकारियों की इजाजत लेनी पड़ती है।

बीमा

निजी जीवन की तरह व्यापार में भी सब तरह के जोखिम आते हैं। सौभाग्य से व्यवसाय के अधिकतर जोखिम अपेक्षया दूरस्थ होते हैं, परन्तु इससे उनसे होने वाली हानि कम नहीं होजाती। कोई भी आदमी आसानी से झूठी निश्चिंतता का आनन्द ले सकता है और यह सोच सकता है कि यह बात मेरे साथ नहीं हो सकती, पर सब दूरदर्शी आदमी अपने या अपने नियंत्रण वाले व्यवसाय के प्रत्येक सम्भव जोखिम पर बड़ी सावधानी से विचार करते हैं और यह सोचते हैं कि वे इनमें से हर जोखिम को आने से किस तरह रोक सकते हैं या इसके प्रभावों को कैसे कम कर सकते हैं। बीमा व्यवसाय का एक आवश्यक अंग हो गया है। इसके बिना समुद्र या जमीन पर कोई वाहन नहीं चलता, कोई मकान नहीं बनाया जाता, और न कोई पहिया घूमता है। कोई भी बुद्धिमान आदमी अपने बीमें में बचत नहीं करता। बीमें को वह व्यवस्था कहा जा सकता है। जो दूरदर्शी आदमी बनसोची या अनिवार्य हानि या दुर्भाग्य के विरुद्ध करता है, यह जोखिम को फैला कर कम कर देने का वाणिज्यिक रूप है। हानि के जोखिम को कई व्यक्तियों पर फैला दिया जाता है और यदि वह दुर्घटना हो भी जाय, जिससे सम्पत्ति का मालिक

अपने को बचाना चाहता है तो उनमें से प्रत्येक व्यक्ति उस हानि का एक अंश उठाने के लिए तैयार होता है। जो व्यक्ति यह जोखिम ग्रहण करता है उसे बीमा-कर्ता कहते हैं, और वह यह कार्य कुछ धनराशि के बदले में करता है जिसे प्रीमियम या प्रव्याजि कहते हैं। इसके परिणामस्वरूप जो लोग बीमे के अनुबंध में आते हैं और बीमाकृत कहाते हैं, उन्हें हानि होने पर एक बीमा निधि से, जिसमें उन्होंने तथा अन्यों ने अंशदान किया है, क्षतिपूर्ति दी जाती है इसलिए बीमे को कभी-कभी जोखिम फैलाने का सहकारी तरीका कहते हैं।

कुछ मूल सिद्धान्तों के आधार पर होते हैं जिनका सख्ती से पालन करना चाहिए, जिनमें से पहला सिद्धान्त है सद्भाव। बीमाकृत और बीमाकर्ता के बीच अत्यधिक सद्भाव और स्पष्टवादिता होनी चाहिए। जिसका बीमा किया जा रहा है उसके बारे में सारी बातें तथा सब परिस्थितियाँ ठीक-ठीक बता देनी चाहिए, जिससे बीमा करने वाले को अपने जोखिम के सीमाविस्तार का पता लग जाय और उसे यह मालूम हो जाय कि इसका बीमा करने का मूल्य क्या लेना चाहिए। किसी प्रासंगिक बात का न बताना या किसी महत्वपूर्ण तथ्य की गलतबयानी, गम्भीर बात है, क्योंकि इससे बीमाकर्ता को एक कानूनी आधार मिल जाता है जिसपर वह अनुबन्ध को शून्य करार दे सकता है। बीमाकृत का बीमे के विषयभूत व्यक्ति या वस्तु में बीमायोग्य स्वत्व होना चाहिए। या तो वह इसके कुछ अंश का या सर्वांश का स्वामी होना चाहिए, अथवा उसकी ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि इस क्षति पहुँचने से उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। बीमायोग्य स्वत्व विषयवस्तु में धन सम्बन्धी स्वत्व होना चाहिए। बीमे का अनुबन्ध मात्र क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध है और जीवन बीमे तथा दुर्घटना बीमे को छोड़कर शेष अवस्थाओं में बीमाकर्ता बीमाकृत को उतनी क्षतिपूर्ति करने का अनुबंध करता है जितनी उन घटनाओं के घटने से वास्तव में हानि हो जिन पर बीमाकर्ता का दायित्व शुरू होता है। इस सिद्धान्त के कारण बीमाकृत अपने अहित का लाभ नहीं उठा सकता। इसके अलावा, बीमाकृत सम्पत्ति को कुछ नुकसान पहुँच जाने पर यह आवश्यक है कि बीमाकृत अबीमाकृत की तरह व्यवहार करे और अपनी सम्पत्ति के बचाने का पूरा यत्न करे। उसे इस उद्देश्य से वे सब काम करने चाहिए जिन्हें वह दूरदर्शितापूर्ण समझता है, और यदि उसकी सम्पत्ति पर खतरा आजाये तो उसे अपनी हानि को कम से कम रखने के लिये, और जो कुछ बच रहे उसकी रक्षा के लिए निरन्तर यत्न करना चाहिए। आग और समुद्री बीमें की अवस्था क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त से प्रतिनिवेशन का सिद्धांत (डॉक्ट्रिन आफ सब्रोगेशन) आजाता है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी बीमाकृत व्यक्ति का किसी अभिगोपक (अन्डरराइटर) ने क्षतिपूरण किया हुआ हो तो किसी सम्भावित पक्ष से वसूली करने सम्बन्धी उस के अधिकार स्वतः अभिगोपक या बीमाकर्ता के पास पहुँच जाते हैं। आसन्न कारण या कौजा प्रोक्सिमा का सिद्धान्त बीमें पर लागू होता है। जब कोई परिणाम दो या अधिक कारणों से पैदा हुआ हो, तब हमें

संयुक्त कारण देखना पड़ता है, चाहे परिणाम दूरस्थ कारण के बिना होना असम्भव था।

समुद्री बीमे के अलावा, अन्य बीमे का अनुबंध मौखिक या लिखित हो सकता है। परन्तु चलन यह है कि बीमे के सब अनुबंध एक लेख्य में समाविष्ट होते हैं जिसे बीमापत्र या पालिसी कहते हैं। समुद्री बीमे को कानूनन एक बीमापत्र में समाविष्ट करना होगा, अन्यथा यह शून्य होगा। बीमापत्र एक प्रवर्तनीय मुद्रांकित लेख्य है जिस पर बीमाकर्त्ताओं के हस्ताक्षर होते हैं। इस पर बीमा पत्रधारक और बीमाकर्त्ता के नाम स्पष्टतः और परिशुद्धत लिखे रहते हैं। बीमाकृत सपत्ति का वर्णन और मूल्य, उठाय गये जोखिम, बीमा काल की अवधि और अनुबंध से सम्बंधित सब शर्तें उस पर लिखी रहती हैं।

समुद्री बीमा—समुद्री बीमा, जो बीमे का सबसे पुराना रूप है और जो अपने वर्तमान रूप में ७०० से अधिक वर्षों से चला आता है, व्यापारियों को समुद्र के खतरों से होने वाली हानियों से बचाता है, और किसी देश के समुद्री व्यापार का महत्व मुख्यत इसी बात पर आधारित है कि इस प्रकार के व्यवसाय में निपुण लोग उसे कितनी अधिक निरापदता प्रदान कर सकते हैं। पिछली दो शताब्दियों में समुद्री बीमा समुद्री व्यापार के साथ-साथ चला है और इस व्यापार की मात्रा में क्रमिक वृद्धि के साथ समुद्री बीमे के महत्व में भी उसी अनुपात से वृद्धि होती रही।

मालिक या विषयवस्तु में बीमायोग्य स्वत्व रखने वाला कोई और व्यक्ति जिन सकटों में क्षतिपूर्ति चाहता है, उनमें से मुख्य ये हैं - सम्पूर्ण हानि, जो वास्तविक सम्पूर्ण हानि या व्यवहारतः सम्पूर्ण हानि (कन्स्ट्रक्टिव टोटल लौस) हो सकती है, तथा आंशिक हानियां जो विशेष जहाजी हानि (पर्टिकुलर एवरेज लौस) या साधारण जहाजी हानि हो सकती है। वास्तविक सम्पूर्ण हानि वहां होती है, जहां बीमाकृत विषयवस्तु नष्ट हो जाय, या इतनी क्षतिग्रस्त हो जाय कि वह बीमाकृत प्रकार की न रहे, अथवा जहां बीमाकृत के हाथ से वह वस्तु बिल्कुल जाती रहे। व्यवहारत सम्पूर्ण हानि वहां होती है जहां बीमाकृत विषय-वस्तु वास्तविक सम्पूर्ण हानि अनिवार्य प्रतीत होने के कारण तर्क-सगत आधार पर परित्यक्त करदी जाय, अथवा जहां इसे इसके मूल्य से अधिक खर्च किये बिना वास्तविक सम्पूर्ण हानि से न बचाया जा सकता हो।

विशेष जहाजी हानि शब्द उस आंशिक क्षति या हानि पर लागू होता है जो बीमारक्षित सकट के द्वारा अकस्मात हो जाय। जो क्षति होती है उसकी पूर्ति वह पक्ष करता है जिसे हानि होती है, सब पक्ष नहीं करते, जैसा कि साधारण जहाजी हानि में होता है। विशेष जहाजी हानि सिर्फ अभिगोपकों द्वारा देय होती है और हानि की पूर्ति सिर्फ तब की जाती है जब यह वास्तव में हो गई हो। यदि कोई जहाज अचानक क्षतिग्रस्त हो जाय और उसकी मरम्मत न की गई हो और वह

फिर पूर्णत नष्ट हो जाय तब बीमाकृत विशेष जहाजी हानि के लिए दावा नहीं कर सकता। यदि उसने मरम्मत करा ली होती तो उसे विशेष जहाजी हानि और सम्पूर्ण हानि, दोनों की क्षतिपूर्ति मिलती। जब किसी अवसर पर जहाज और माल दोनों संकट में हो और स्वेच्छया क्षति या हानि उठाई जाय तब इसे साधारण जहाजी हानि कहते हैं। साधारण जहाजी हानि व्यय के भी होते हैं, जो सारे उपक्रम, अर्थात् जहाज, माल, और/या भाड़े के लाभ के लिए खतरे के समय किये जाते हैं। साधारण जहाजी हानि कार्य अनेक प्रकार के हैं, परन्तु उनमें से तीन बहुत अधिक किये जाते हैं, अर्थात् संकट के समय जहाज को तैरने में अधिक समर्थ बनाने के लिए माल को समुद्र में फेंक देना, किसी खतरनाक स्थान से जहाज को निकालने में क्षतिग्रस्त हुई मरम्मत और आश्रयभूत बन्दरगाह के खर्च। साधारण जहाजी हानि या क्षति या तो अकेले जहाज की ओर या माल और भाड़े की होती है। विशेष जहाजी हानि और साधारण जहाजी हानि में मुख्य भेद यह है कि विशेष जहाजी हानि आकस्मिक होती है और साधारण जहाजी हानि में यह स्वेच्छया और जान-बूझकर की जाती है,और तब की जाती है जब सारा उपक्रम संकट में हो।

समुद्री हानि की अवस्था में दावे का भुगतान करने से पहले यह सिद्ध करना आवश्यक है कि बीमाकृत का विषय-वस्तु में बीमायोग्य स्वत्व था, कि हानि लगभग उसी संकट से हुई है जिसका बीमा कराया गया था। समुद्र यात्रा के बीमापत्र की अवस्था में यह सिद्ध करना होगा कि जहाज यात्रा के शुरू में समुद्र-यात्रा के योग्य था और जहाँ यात्रा कई मंजिलों में हुई हो, वहाँ यह सिद्ध करना होगा कि प्रत्येक मंजिल के शुरू में वह यात्रा के योग्य था, यात्रा सब दृष्टियों से वैध थी और जहाज के पास सब सरकारी लेख्य ठीक-ठीक रीति से थे। यात्रा में कोई युक्तिसंगत हेर फेर या परिवर्तन नहीं हुआ, हानि स्वयं बीमाकृत के जान-बूझ कर किये गये दुष्कार्य या बकार्य से नहीं हुई।

अग्नि बीमा—अग्नि बीमा, जिसे 'वाणिज्य की दासी' कहते हैं, पूँजी की रक्षा से सम्बन्ध रखता है। फैक्टरियों, वेयरहाउस, संग्रहागार, दूकानों आदि को हमेशा आग का संकट रहता है। इनकी परिरक्षा के लिए आग बीमा परमआवश्यक है। हम ऊपर देख चुके हैं कि बीमे का आधार क्षतिपूर्ति या हानिरक्षा है, परन्तु अग्निबीमे के सिलसिले में यह सिद्धान्त विशेष महत्वपूर्ण है। कुछ अन्य प्रकार के बीमों में वास्तविक हानि से अधिक के लिए न्यायसंगत दावा करना सम्भव है, परन्तु साधारण आग-बीमापत्र इसे असम्भव कर देते हैं और इसका परिणाम स्वरूप बहुत से बीमाकृत व्यक्तियों और बीमा कम्पनियों के बीच बड़ी गलतफहमी हो जाती है और वह बीमाकृतों के रोषपूर्ण विरोधों के रूप में बहुधा प्रकट होती है। ऐसे हजारों रुष्ट व्यक्ति होंगे जिन्होंने किसी न किसी समय ऐसी शिकायत की होगी कि हमें आग लगने के पहले की स्थिति में नहीं लाया गया, पर तो भी इन अधिकतर दुर्भाग्यग्रस्त व्यक्तियों का कहना गलत है। इनमें से अधिकतर शिकायतें हानि के

नम वितरण वाले खंड (एवरेज क्लाज) के लागू होने के परिणामस्वरूप पैदा होती हैं। बीमा न केवल पूंजी की वास्तविक हानि की पूर्ति करता है, वरन यह बहुत हद तक हानि की सम्भावना को कम करने में और इस प्रकार पूंजी के संरक्षण में भी मदद करता है। यह काम उन लोगों को दंडित करके, जो अपनी सम्पत्ति को अनावश्यक जोखिम में रखते हैं और उन लोगों को प्रोत्साहित करके, जो हानि से बचने के लिए पूरी सतर्कता बरतते हैं किया जाता है। यह काम इस तरह भी किया जाता है, कि यदि सम्पत्ति का मान या मूल्य कम लगाया गया हो तो बीमापत्र में हानि समवितरण वाला खंड डाल कर आनुपातिक हानि बीमाकृत पर डाल दी जाती है।

आग से होने वाली हानि की अवस्था में अपने दावे को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि आग से हुई हानि की तुरन्त सूचना दी जाय, जिससे बीमा-कर्ता अपने हितों की रक्षा और हानि की घटना तथा उसकी मात्रा का निश्चय करने के लिए फौरन कदम उठा सके। यह उल्लेखनीय बात है कि अग्नि सम्बन्धी बीमापत्र बीमा कर्ताओं की सम्मति के बिना अभिहस्तांकनीय नहीं होते, यद्यपि बीमाकृत ऐसे बीमापत्रों के आगम अभिहस्तांकित कर सकता है। अग्नि बीमा की एक शाखा, जो व्यवसायों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, और लाभों की हानि या आनुषंगिक हानि बीमा (Consequential Loss Insurance) कहलाती है, जिसका वर्तमान रूप बीसवीं सदी की पैदावार है। संक्षेप में, यह बीमा बीमाकृत को लाभों की उस हानि से बचाने के उद्देश्य से है जो उसे आग के कारण काम रुक जाने से हुई है। इसलिए इसकी उपयोगिता स्पष्ट है। आमतौर पर बीमापत्र निम्न-लिखित हानियों से रक्षा करता है (क) शुद्ध लाभ की हानि, (ख) स्थायी प्रभारों के भुगतान, उदाहरण के लिए ऋण पत्रों और बंधकों पर ब्याज, संचालकों की फीस भाड़ा, स्थानीय कर, स्थायी कर्मचारियों के वेतन, दक्ष अधिकारियों की भृति या मजदूरी और विज्ञापन, तथा (ग) कार्य संचालन की लागत में वृद्धि, उदाहरण के लिए, अस्थायी मकानों का किराये पर लेना, अन्य फर्मों द्वारा अतिरिक्त लागत पर पूरे किये गये आर्डर और अतिरिक्त विज्ञापन।

जीवन बीमा—जीवन बीमा उस अनुबंध को कह सकते हैं जिसमें बीमाकर्ता कुछ प्रीमियम लेकर बीमाकृत को या उस व्यक्ति को जिसके लाभ के लिए बीमापत्र लिया गया है, मानवीय जीवन की अवधि में सम्भाव्य किसी विशेष घटना के होने पर उल्लिखित धनराशि देना स्वीकार करता है। उदाहरण के लिए, पूर्ण जीवन बीमे में बीमापत्र का धन बीमाकृत की मृत्यु पर दिया जाता है और नीति बीमापत्र (एन्डोमेन्ट पालिसी) में धनराशि कुछ उल्लिखित वर्ष के बाद तक बीमाकृत के जीवित रहने पर, अथवा यदि वह पहले मर जाय तो उसकी मृत्यु पर देय होती है। जीवन बीमे के सबसे महत्वपूर्ण उपयोग अपने आश्रितों और बुढ़ापे की व्यवस्था करना, साझेदारों की मृत्यु पर पूंजी लौटाने की व्यवस्था करना, ऋण के

लिए परितुल्य प्रतिमूर्ति, बच्चों को शिक्षित करने या उन्हें वृत्ति या व्यवसायमें जमाने के लिए निधि बनाना, पुत्री के विवाह आदि और मृत्यु पर लगने वाले करों, तथा शुल्कोंके भुगतान की व्यवस्था करना है। इसके द्वारा किसी मैनेजिंग डाइरेक्टर या अन्य विशेषज्ञ या ऋणी की मृत्यु से होने वाली धन सम्बन्धी हानि से भी बचा जा सकता है। जीवन बीमा और सब प्रकार के बीमो से इस प्रकार भिन्न है कि जिन सम्भाव्यताओं पर यह निर्भर है। उनकी ठीक-ठीक गणना की जा सकती है और मानवीय मृत्यु एक ऐसी घटना है जो अन्तत अवश्य होती है। जीवन बीमे के बारे में एकमात्र अनिश्चित बात यह है कि मृत्यु कब होगी। परिणामत जीवन बीमापत्र एक ऐसा अनुबंध है, जिसका अवसान ज्यों-ज्यों समीप आता जाता है त्यों त्यों इसका मूल्य बढ़ता जाता है। यह हानि रक्षा की संविदा नहीं है। जीवन बीमे का आधार वह सम्ख्यात्मक जानकारी है, जो मानव जीवन की सम्भाव्य अवधि के बारे में हमारे पास मौजूद है और इन आकडों से प्राप्त जानकारी को धन की ब्याज कमाने की शक्ति के साथ मिलाकर हम यह निकालते हैं कि किसी व्यक्ति के जीवन का बीमा करने के लिए कितना धन देना आवश्यक होगा। सख्यात्मक सारणी को मृत्यु सारिणी कहते हैं और जो प्रीमियम लिए जाते हैं, वे सम्भाव्यता के नियम पर आधारित होते हैं। यह नियम बीमे की सब शाखाओं के मूलभूत सिद्धांत, औसत के सिद्धान्त, से निकट सम्बन्ध रखता है।

बीमायोग्य स्वत्व—जीवन बीमे की संविदा (Contract) के लिए आवश्यक है कि बीमाकृत का, उस जीवन में जिसका बीमा किया जाता है, संविदा करने के समय बीमायोग्य स्वत्व होना चाहिये। तीन अवस्थाओं में बीमायोग्य स्वत्व स्वत मान लिया जाता है, अर्थात् (क) अपने जीवन में (ख) पति का पत्नी के जीवन में, (ग) पत्नी का पति के जीवन में। कोई अन्य सम्बन्ध अपने आप कोई बीमायोग्य स्वत्व नहीं पैदा करता, और अन्य सम्बन्धियों के बारे में यह सिद्ध कर देना चाहिए कि (क) दूसरे के जीवन पर बीमा करने वाला व्यक्ति दूसरे से इस तरह सम्बन्धित है कि वह उसमें अपने भरण-पोषण का कानून द्वारा प्रवर्तनीय (enforceable) दावा रखता है, या (ख) जिसके जीवन का बीमा किया गया है, वह व्यक्ति वस्तुत उस रिश्तेदार का भरण पोषण करता है। सिर्फ स्वाभाविक प्रेम और अनुराग से बीमायोग्य स्वत्व नहीं बनता। जो व्यक्ति सम्बन्धी नहीं है, उसके बारे में साधारण नियम यह बताया जा सकता है कि जो कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के जीवन में धन सम्बन्धी स्वत्व रखता है उसका इतनी दूर तक बीमायोग्य स्वत्व है।

बीमापत्र—समाज की अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न करते हुए जीवन बीमे ने अनेक रूप धारण कर लिये हैं। सबसे पहले तो पूर्ण आयु बीमापत्र होता है, जो बीमाकृत की मृत्यु पर ही परिपक्व होता है, चाहे मृत्यु कभी भी हो। यह बीमे का सब से सस्ता और सब से सीधा रूप है। सारे जीवन के लिए एक प्रीमियम तय कर लिया जाता है और आयु भर वार्षिक प्रीमियम वही रहता

है, हालांकि बीमाकर्त्ता को हानि की जोखिम लगातार बढती जाती है और अन्त में हानि प्राय: निश्चित हो जाती है। जीवन बीमे और अन्य प्रकार के बीमो में यह एक बहुत बडा भेद है। अन्य प्रकार के बीमो में जोखिम की वृद्धि के साथ प्रीमियम बढ़ता जाता है, परन्तु इस का यह अर्थ नही कि सब के लिए दर वही होती है क्योकि दर प्रस्थापक (प्रोपोजर) के संकट और स्वास्थ्य पर निर्भर है। इस दृष्टि-कोण से बीमा कराने वालो को कई वर्गों में बांटा जाता है, जैसे प्रथम कोटि का जीवन या द्वितीय कोटि का जीवन। दूसरा प्रकार नौधि बीमापत्र (एंडोमेंट पालिसी) है जिसका प्रचार हाल के वर्षों में बढ गया है। इसमें बीमाकृत राशि कुछ निश्चित वर्षों की समाप्ति पर दी जाती है, बशर्ते कि बीमापत्र-धारक उस निश्चित अवधि के बाद तक जीवित रहे, और यदि वह पहले मर जाता है तो उसकी मृत्यु पर ही वह राशि दे दी जाती है। इस बीमापत्र में जीवन बीमे और बचत बैंक के लाभ मिल जाते है, यदि ठीक उमर में और अच्छी कम्पनी से लिया जाय तो यह बीमापत्र अवधि समाप्त होने पर २ से ४½ प्रतिशत तक वाला नियोजन (इन्वेस्टमेन्ट) होता है और यदि आय कर की छूट को भी जोडा जाय तो ६ प्रतिशत हो जाता है, तीसरी बात यह है कि संयुक्त बीमापत्र भी जारी किये जाते है जिनमें बीमाकृत की राशि दोनों जीवनो में से पहले की मृत्यु पर दी जाती है। अन्तिम उत्तरजीविता बीमापत्र भी जारी किये जाते है, जिनमें बीमे की राशि दोनो जीवनो में से अन्तिम या उत्तरजीवितो की मृत्यु पर दी जाती है। साझेदारी बीमा एक संयुक्त बीमा है जिसमें बीमा की राशि बीमाकृतो में से किसी एक की मृत्यु पर सह-बीमाकृत को दे दी जाती है। इसके प्रीमियम साझेदारी वाले व्यवसाय में से दिये जाते है और खर्चे में गिने जाते है और बीमाकर्त्ता से प्राप्त होने वाला धन मृतक की पूंजी चुकाने के काम में आता है। दो संयुक्त जीवनो वाले बीमापत्र का प्रीमियम उसी उम्र के एक प्रीमियम से स्वभावत: अधिक होता है और तीन प्रीमियम पर और भी अधिक होगा, क्योकि शीघ्र दावे की सम्भाव्यता और भी बढ जाती है। बीमापत्र लाभ सहित या लाभ-रहित हो सकता है। लाभ-सहित बीमा पत्र में वास्तविक लाभ निश्चित रूप से निकाला जाता है, और इसका एक हिस्सा बीमाकृत की सम्पत्ति हो जाता है और बोनस के रूप में उसके खाते में जमा कर दिया जाता है। कुछ कम्पनियाँ इसे प्रतिवर्ष नकद बाँट देती है, और कुछ कम्पनियाँ प्रीमियम को घटाने में इसका उपयोग करती है, परन्तु सबसे अधिक प्रचलित तरीका यही है कि वह धन बीमाकृत राशि में जोड़ दिया जाता है।

अभ्यर्पण मूल्य (सरेंडर वैल्यू)—किसी जीवन बीमे का अभ्यर्पण मूल्य वह राशि है जो बीमाकर्त्ता उस संविदा की पूर्ण अदायगी करने के लिए अदा करने को तैय्यार है, बशर्ते कि बीमाकृत अपना बीमापत्र अभ्यर्पित करना चाहता हो और इस पर अपने दावे का परिसमन, अर्थात् समाप्ति, करदे। अभ्यर्पण मूल्य अदा

किये हुए वास्तविक प्रीमियमो पर आधारित होता है और प्रीमियम की प्रत्येक अदायगी के साथ मूल्य बढ जाता है।

बीमापत्रो पर ऋण—जहाँ बीमापत्र का एक अध्यर्पण मूल्य होता है वहाँ इसका एक ऋण मूल्य भी होता है और बीमा कम्पनिया अध्यर्पण मूल्य का ९५ प्रतिशत उधार देती है और शेष ५ प्रतिशत पहले साल के ब्याज के लिए रख लेती है। बीमा कम्पनियो का जीवन बीमो की जमानत पर ऋण देना सबसे अच्छा नियोजन है, क्योकि इसमें रुपया जाते रहने का कोई खतरा नही रहता।

अदा शुदा बीमापत्र का मूल्य—किसी बीमापत्र का अदाशुदा मूल्य वह राशि है जो उस अवस्था में आएगी जब कोई बीमाकृत अपनी सविदा का ऐसे ढंग से पुनर्गठन कराना चाहे कि उस और कोई प्रीमियम न देना पडे। अदाशुदा बीमापत्र की राशि उस घटना के होने पर देय होती है जिसके विरुद्ध बीमा किया गया था।

अभिहस्तांकन (Assignment)—जीवन बीमापत्र अभियोज्यदावे के रूप में बेरोकटोक अभिहस्तांकनीय होते है। वे बेचे जा सकते है, बधक रक्खे जा सकते है, परिशोधित किये जा सकते है, बशर्ते कि बीमा कपनी को ऐसे अभिहस्तांकन की लिखित सूचना दी जाय जिसमे कम्पनी के विरुद्ध अभिहस्तांकिती (Assignee) का स्वत्व प्रभावी हो जाय। यदि लिखित सूचना न दी जाय और अभिहस्तांकन के बाद कम्पनी अभिहस्तांकक को अभिहस्तांकिती की जानकारी में कुछ भुगतान कर दे तो कम्पनी परिरक्षित हो जायगी।

दावे—दावे मृत्यु के कारण या बीमा पत्र के परिपक्व हो जाने पर पैदा होते है, और घटना का प्रमाण मिल जाने पर तथा बीमा पत्र के धन पर दावेदार का स्वत्व सत्यापित (Verified) हो जाने पर देय होते है।

मनोनीत व्यक्ति (Nominee)—जीवन बीमे की मुख्य प्रेरणा व्यक्ति की यह प्रशसनीय इच्छा है कि वह अपनी मृत्यु हो जाने की अवस्था में अपने आश्रितो के लिए कुछ धन की व्यवस्था कर दे। क्योकि वह जीवन बीमापत्र किसी के लाभ के लिए लेता है, अत वह प्राय उसका नाम बीमापत्र पर लिख देता है या इस उस पर पृष्ठांकित (एडोस) कर देता है जिससे बीमापत्र धारक की मृत्यु के बाद बीमाकृत राशि उसे मिल सके। इस प्रकार जिसका नाम लिखा जाता है उसे मनोनीत व्यक्ति या हितग्राही (बेनेफिशरी) कहते है। बीमाकृत बीमापत्र की कालपूर्ति से पहले, निर्दिष्ट नाम को रद्द कर सकता है या बदल सकता है। यदि बीमापत्र की कालपूर्ति बीमापत्र धारक के जीवन काल में हो जाए तो धन उसे ही मिलेगा, पर उसकी मृत्यु पर धन मनोनीत व्यक्ति को मिलेगा।

व्यापार का वित्त पोषण

विभिन्न देशो में भीतरी व्यापार के लिए वित्त व्यवस्था करने की विधियाँ अलग अलग है। भारतीय व्यापार का अधिकाश महाजनी स्वदेशी पद्धति से और थोडा सा आधुनिक या पश्चिमी पद्धति से वित्तपोषित

से मिल सकने वाली धनराशि से भी अधिक धन प्रतिभूति रहित हुण्डियों पर ले सकती हैं। वहन पत्रों (बिल्स आफ लेडिंग) पर भी कभी-कभी अल्पकालिक ऋण प्राप्त किया जाता है। कम्पनी के पास जो पण्य होता है, वह भी कभी-कभी ऋण के लिए प्रतिभूति के रूप में होता है। स्कन्ध पर भी अल्पकालिक प्रभार (फ्लोटिंग चार्ज) लगाया जा सकता है। बैंक ओवरड्राफ्ट या अधिविकर्ष भी करने देते हैं और उपयुक्त प्रतिभूति पर ओपन कैश क्रेडिट अकाउन्ट चलने देते हैं। कभी-कभी कम्पनियाँ वित्तीय दिवालियेपन को टालने या रोकने के लिए आवश्यक धन प्राप्त करने के वास्ते अपने ओपन बुक अकाउन्ट बेच देती हैं, इसे प्राप्य लेखों का अभिहस्ताकन, हाईपोथिकेटिंग, या प्लेजिंग कहते हैं। इस तरह के ऋण साधारण वाणिज्यिक बैंकों से नहीं मिला करते। ये वित्त-कम्पनियों से प्रचलित की अपेक्षा कुछ ऊँची ब्याज दरों पर लेने पड़ते हैं।

अन्तर्देशीय विप्रेषण (रेमीटेन्स)—अन्तर्देशीय विप्रेषण के पाँच प्ररूप हैं। (१) हुंडी या चेक द्वारा विप्रेषण। (२) रिजर्व बैंक और इम्पीरियल बैंक तथा बैंक ड्राफ्टों द्वारा हस्तांतरण। (३) सरकारी खजाने (ट्रेजरी) द्वारा हस्तांतरण (४) रेल, रोड या विमान से रुपये भेजना। (५) डाकखाने द्वारा विप्रेषण। इन सब विधियों से धन की तरलता बढ़ने में मदद मिलती है और अलग-अलग स्थानों पर दरें कम-अधिक होने में रुकावट होती है। भारत में हुण्डियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर धन भेजने का बहुत प्रचलित तरीका रही हैं। हुंडी धारक या उत्तमर्ण, सकारने वाले (द्रायी) के अभिकर्ता से या बट्टा देकर महाजन या बैंकर से या इसके अंकित मूल्य (फेसवेल्यू) में से इसकी अवधि का ब्याज या बट्टा कम कराके शेष धन में बैंकर को बेचकर, भुगतान प्राप्त कर सकता है। रिजर्व बैंक तार द्वारा स्थानांतरण करके और भुगतान कर सस्ती सुविधाएँ प्रदान करता है। इम्पीरियल बैंक डिमान्ड ड्राफ्ट (अधियाचन विकर्ष) खरीदता है और ड्राफ्ट तथा तार द्वारा स्थानांतरण से भुगतान करता है। संयुक्त स्कन्ध बैंक बैंकरों के ड्राफ्ट निर्गमित करते हैं। बजाय इसके कि उत्तमर्ण स्वयं अधमर्ण के नाम हुंडी ले, सम्भव है कि अधमर्ण अपने बैंक से एक ड्राफ्ट खरीद ले और चढ़े हुए ऋण के निपटारे के लिए वह उत्तमर्ण को भेज दे। इस तरह का ड्राफ्ट हुंडी या विनिमय विपत्र का रूप लेता है, जिसमें निर्गमित करने वाला बैंक उत्तमर्ण के नगर की अपनी शाखा या प्रतिनिधि के नाम लिखता है और उत्तमर्ण अपने नगर की उस शाखा से अपनी राशि का भुगतान प्राप्त कर सकता है। यद्यपि उपर्युक्त विधियों ने रेल, या सड़क से रुपये भेजने की रीति को बहुत कम कर दिया है, परन्तु कपास और जूट के क्षेत्रों में कपास और जूट खरीदने के लिए अब भी बहुत सा रुपया भेजा जाता है क्योंकि किसान नोटों के मुकाबिले में अब रुपये अधिक पसन्द करता है।

छोटी-छोटी रकमें डाकखानों द्वारा भेजी जाती हैं। किसी व्यक्ति विशेष को भुगतान करने के लिए पोस्टल आर्डर एक सुविधाजनक रूप है जो स्वयं डाकखाने

के नाम ही होते हैं। इनमें कुछ प्रभार (चार्ज) देना पड़ता है जिसे पाउंडेज कहते हैं जो आर्डर के मूल्य के के अनुसार अलग-अलग होता है यह आर्डर आठ आने की राशियों से लेकर १०) रु० तक के होते हैं। यदि राशियाँ आठ आने के गुणज से अधिक हों तो सात आने के मूल्य तक के टिकट लगाकर वे पूरी की जा सकती हैं। पोस्टल आर्डर में प्राप्तकर्ता का नाम तथा जिस डाकखाने में वह आर्डर चुकाया जाना है उसका नाम भरकर तथा चेक की तरह उन्हें क्रास करके सुरक्षित किया जा सकता है। ये सावधानियाँ बर्ती जायें तो पोस्टल आर्डर विप्रेषण का सस्ता और काफी सुरक्षित तरीका है क्योंकि यह परक्राम्य (नेगोशिएबल) नहीं होता। मनीआर्डर एक और तरीका है, जो भारत में पोस्टल आर्डर से अधिक प्रचलित है। यह एक डाकखाने का दूसरे डाकखाने के नाम आदेश है, जिसमें दूसरे डाकखाने से यह कहा जाता है कि वह अमुक व्यक्ति को इतना धन दे दे। धन भेजने वाले को कमीशन देना पड़ता है जिसकी मात्रा विप्रेषित राशि के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है।

आधुनिक बैंक के कार्य—बीमे और परिवहन की तरह बैंक भी व्यापार और उद्योग की बड़ी उपयोगी सेवा करते हैं। भारत में उद्योगों को वित्तपोषित करने में वाणिज्यिक बैंकों ने जो भाग लिया है, उस पर पूर्ववर्ती अध्याय में विचार किया गया था। स्थान की कमी से उनके कार्यों पर विस्तृत विचार नहीं किया जा सकता। इतना ही काफी है कि आधुनिक संयुक्त स्कन्ध बैंक के मुख्य कार्यों की रूपरेखा दे दी जाय। यह इन बैंकों को निम्न समूहों में रक्खा जा सकता है—

(क) निक्षेपों की प्राप्ति

(१) चालू खाते में निक्षेप की प्राप्ति—इनमें धन माँगने पर लौटाना पड़ता है और प्राय ग्राहक द्वारा खाते के नाम लिखे गए चेक के जरिये, जो या तो वह अपने पक्ष म या किसी तीसरे व्यक्ति के पक्ष में लिखता है, निकाला जाता है। इस तरह के खाते पर प्राय कुछ ब्याज नहीं लिया जाता।

(२) स्थिर निक्षेप लेखे में निक्षेप की प्राप्ति—इसमें धन निक्षेप की पूर्व स्वीकृत अवधि के समाप्त होने पर ही लौटाया जाता है। इन खातों पर ब्याज बैंक दर तथा निक्षेप की अवधि के आधार पर बनने वाली दर से दिया जाता है। धन पूर्व स्वीकृति अवधि से पहले नहीं निकाला जा सकता पर उसकी जमानत पर ऋण लिया जा सकता है।

(३) सेविंग्स बैंक खाते में निक्षेप—यह थोड़े आमदनी वाले लोगों की आवश्यकता पूरी करते हैं और डाकखाने के सेविंग्स बैंक खातों के अनुकरण पर चलाये जाते हैं। सामान्यतया ५) रुपये से लेखा खोला जा सकता और रुपया सप्ताह में एक या दो बार तथा एक निश्चित राशि तक, जो एक बार में प्राय २५०) रुपये तक और कुल ५००) रुपये तक होती है, निकाला जा सकता है।

(४) होमसेफ अकाउन्ट में निक्षेप—"होमसेफ" या घर तिजोरियाँ थोड़ी-

थोड़ी नकद बचत के लिए ग्राहक को मुफ्त दी जाती है और उनका धन, इच्छा होने पर, सेविंग्स अकाउन्ट में जमा कराया जा सकता है।

ख—अनुमोदित पद्धति से ऋण और ओवरड्राफ्ट देना

ग—जमापत्र (क्रेडिट इस्ट्रूमेन्ट) खरीदकर परोक्ष रीति से अनुग्रह करना

—उदाहरण के लिए, विनिमय विपत्रों को बट्टे पर ले लेना।

घ—अभिकरण सेवाएँ

ऊपर वर्णित मुख्य कार्यों के अतिरिक्त आधुनिक बैंक अपने ग्राहकों की सुविधा के लिए बहुत से सेवा कार्य करता है। बैंक अपने साधारण कार्य द्वारा जो सेवाएँ (अभिकरण) करता है उन्हें इस प्रकार वर्गबद्ध किया जा सकता है।

(१) चेकों, विपत्रों, लाभांशों (डिवीडेंड) और अन्य लिखतों (इस्ट्रूमेंट) की वसूली और भुगतान।

(२) निधि पत्रों (स्टाक), अंशों (शेयर) और अन्य प्रतिभूतियों की खरीद और बिक्री।

(३) न्यासधारी (ट्रस्टी) या निष्पादक (एक्जीक्यूटर) के रूप में कार्य करना।

(४) पूंजी जमा करने में कम्पनियों की सहायता करना।

(५) स्थायी आदेशों का पालन करना, जैसे समय-समय पर चन्दा भेजना, बीमे का प्रीमियम भेजना और इसी प्रकार के नियमित रूप से किये जाने वाले आवर्ती भुगतान ग्राहकों की ओर से करना।

(६) एक शाखा या बैंक से दूसरे को स्थानान्तरण। ग्राहक बैंक की किसी भी शाखा पर या किसी अभिकर्त्ता बैंक में अपने नाम जमा कराने के लिए रुपया दे सकता है, अथवा रुपया किसी से अपने लिए जमा करा सकता है। ऐसी व्यवस्था भी की जा सकती है कि वह बैंक की किसी शाखा में जमा किये हुए अपने रुपये को चेक द्वारा किसी और आफिस या अभिकरण से ले सकता है।

ङ—प्रकीर्ण सेवाएं और वैदेशिक व्यापार का वित्त पोषण

बैंक जो अन्य कारबार करता है उसके अंतर्गत ये चीजें हैं—

(१) बहुमूल्य वस्तुओं को सुरक्षित रखना, आदि।

(२) सुरक्षा के लिए जमा कराई गई प्रतिभूतियों का प्रबन्ध।

(३) नाइट सेफ रखना।

(४) ग्राहकों की ओर से विनिमय विपत्र स्वीकार करना।

(५) वैयक्तिक और वाणिज्यिक प्रत्यय पत्र (लेटर्स आफ क्रेडिट) जारी करना।

(६) विदेशी विनिमय का कारबार करके वैदेशिक व्यापार में सहायता करना।

(७) निर्देश के रूप में कार्य करना और व्यापार सूचनाएँ, आकड़े, आदि देना;

च—नोटों का निर्गम—भारत में यह अधिकार सिर्फ रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया को है। और कोई बैंक नोटो का निर्गम नहीं कर सकता।

परिवहन

परिवहन व्यक्तियों और वस्तुओं को उन स्थानों से हटाकर, जहाँ वे कम उपयोगी हैं, वहाँ पहुँचाने को कहते हैं जहा वे अधिक उपयोगी हों। आर्थिक प्रगति के लिए प्रभावी परिवहन अपरिहार्य है। कोई भी राष्ट्र वस्तुओं और व्यक्तियों को स्थानान्तरित करने की पर्याप्त सुविधाओं के बिना अधिक उन्नति नहीं कर सकता। भारत जैसे विविध साधनों वाले विस्तृत देश में परिवहन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। परिवहन के सब साधन—रेल, मार्ग, राजपथ जलमार्ग और वायुमार्ग—मिलकर हमारी सम्पत्ति का बहुत बड़ा हिस्सा हैं, और प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से लाखों व्यक्तियों को रोजगार देते हैं और राष्ट्रीय आय में महत्वपूर्ण प्रदान करते हैं।

परिष्कृत परिवहन के परिणाम[1]—परिवहन में मुख्यत दो दिशाओं में सुधार हुआ, अर्थात् इकाई लागत में कमी और चाल, सुरक्षा तथा लचीलेपन में वृद्धि। इस सुधार का परिणाम सुविधा से तीन शीर्षकों के नीचे रक्खा जा सकता, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक। आर्थिक परिणाम परिवहन में इकाई लागत में कमी के कारण हैं जिससे सवारियों और वस्तुओं के लिए एक निश्चित दूरी कम खर्च से पार करना सम्भव हो जाता है। सवारियों को शौकिया यात्रा और वस्तुओं के उत्पादन करने में सुविधा हो जाती है। वस्तुओं की दृष्टि से इसके चार महत्वपूर्ण प्रभाव होते हैं।

आर्थिक परिणाम—आज उपभोक्ता ऐसी अनेक वस्तुओं से लाभ उठाते हैं जो अनेक कारणों से उनके आस-पास नहीं उत्पादित हो सकती। ये वस्तुएँ उन वस्तुओं के बदले में प्राप्त की जा सकती हैं, जो उस जगह पैदा होती हैं और यह विनिमय सस्ते परिवहन द्वारा सभव हो सकता है। जिन समुदायों के पास सस्ता परिवहन नहीं है, उन्हें अधिकतर आत्मनिर्भर होना पड़ेगा और क्योंकि बहुत सी महत्वपूर्ण वस्तुएँ सभी जगह पैदा हो सकती हैं, इसलिए ऐसे समुदाय वैविध्यपूर्ण उपभोग के लाभों से वंचित रहते हैं। वस्तुओं के फैल जाने का एक परिणाम यह होता है कि *वे विभिन्न बाजारों में एक-सी मात्रा में पहुँच जाती हैं। वस्तुएँ जहाँ अधिक मात्रा* में है, वहाँ से वे माँग के अनुसार, वहा को चलने लगती हैं, जहाँ वस्तुएँ कम हो। परिवहन जितना सस्ता होगा, स्थानांतरण उतना ही आसान होगा और इसलिए माल उतना ही अधिक एक-सी मात्रा में पहुँच जायेगा। कृषि में जहाँ उत्पादन को नियंत्रित करना कठिन होता है, इसीलिए सस्ता परिवहन विशेष रूप से लाभकारक होता हैं।

1. See Bingham, Transportation, Finance and Practice.

यह दुर्भिक्षों को कम कर देता है और अति उत्पादन से होने वाली बरबादी को भी कम कर देता है। यह मूल्यों को एकसार और स्थिर भी कर देता है क्योंकि परिवहन जितना सस्ता होगा, बाजार उतना ही विस्तृत होगा और बाजार जितना विस्तृत होगा, मूल्य की घट बढ़ में अन्तर उतना ही कम होगा।

सस्ते परिवहन का महत्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि इससे उपभोक्ता को वस्तु की लागत कम पड़ती है। यह कमी प्रतियोगिता के तीव्र हो जाने से, जो परिवहन में सुधार के कारण कभी-कभी हो जाती है, हो सकती है। पर इसका मुख्य कारण यह है कि वस्तुओं के उत्पादन की लागत कम हो जाती है। बड़े पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहित करके परिष्कृत परिवहन अन्ततोगत्वा प्रतियोगिता के बजाय इजारे या एकाधिकार को पैदा करता है परन्तु कुछ उद्योग बड़े पैमाने के उत्पादन के लिए अनुकूल नहीं हैं, और इन उदाहरणों की प्रवृत्ति यह है कि खरीदने और बेचने वालों की संख्या बाजार में बढ़ जाता है। मूल्य की कमी का अर्थ है उत्पादन की लागत में कमी और उत्पादन की लागत में कमी सस्ते तथा पर्याप्त परिवहन से हो सकती है। परिष्कृत परिवहन दो तरह से उत्पादन की लागत कम करने में सहायता करता है श्रम के भौगोलिक विभाजन को आसान करके, और बड़े पैमाने के उत्पादन को उत्साहित करके। परिणामतः विशेषीकरण (स्पेशलाइजेशन) और स्थानसीमन (लोकेलाईजेशन) हो जाता है।

औद्योगिक स्थाननिर्धारण पर और किसी कारक की अपेक्षा परिवहन का अधिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि परिवहन की लागत उत्पादक कार्य की स्थिति को प्रभावित करने वाला एक स्वतन्त्र कारक ही नहीं है, अपितु यह बाजार, कच्चे सामान, ईंधन या शक्ति से समीपता आदि अन्य स्थान निश्चायक कारकों का भी एक अंग है। बड़े पैमाने का उत्पादन विशेषीकरण की ही तरह बाजार के सीमा-विस्तार पर और अतएव दक्ष परिवहन पर निर्भर है। सम्भवतः यह सच है कि परिष्कृत परिवहन द्वारा बाजार का विस्तृत हो जाना बड़े पैमाने की ओर बढ़ने का बुनियादी कारण है। किसी प्लांट के बिल्कुल निकट की माँग इतनी काफी नहीं हो सकती कि वह उस प्लांट के सारे उत्पादन का उपयोग करले। न उस स्थान पर कच्चा सामान ही इतनी अधिक मात्रा में मिल सकता है, उदाहरण के लिए, यूनाइटेड स्टेट्स या ब्रिटेन अपने मोटर गाड़ी उद्योग का माल विदेशों में बेचते हैं और उसका कच्चा सामान दुनिया भरके स्थानों से प्राप्त करते हैं। दक्ष परिवहन से बड़े-बड़े उपक्रमों का प्रबन्ध करना सरल हो जाता है, क्योंकि इससे वस्तुओं का सचलन होने लगता है और यात्रा या डाक द्वारा सस्त और द्रुत संचार की सुविधा हो जाती है।

अन्तिम बात यह है कि परिष्कृत परिवहन न केवल माल के उत्पादन को प्रभावित करता है, बल्कि उसके कार्यात्मक वितरण को भी प्रभावित करता है।

तर्कसंगत भाटक और इसलिए जमीने के मूल्यों से इसका सम्बन्ध विशेष रूप से अर्थपूर्ण है। क्योंकि भाटक के निर्धारण में स्थान एक महत्वपूर्ण कारक है और क्योंकि दूरी मुख्यतः सचलन की लागत और समय का मामला है, मीलो का नहीं, इसलिए यह स्पष्ट है कि परिवहन में सुधार होने से समाज की कुल आय के उस हिस्से पर प्रभाव पड़ता है जो भू-स्वामियों को मिलता है—भाटक का बटवारा नये सिरे से हो जाता है। जब किसी वस्तु का उत्पादन बढ़ाना हो तब अन्य परिस्थितियों में कुछ भूमियो का भाटक घट जाता है और अन्यो का बढ़ जाता है। स्वाभाविक कारकों के वे स्वामी, जिन्हें बाजार की दृष्टि से अधिक अच्छा स्थान प्राप्त है और इसलिए जिन्हें अधिक भाटक प्राप्त होता है, देखते हैं कि परिवहन के सुधार के बाद उनकी आमदनी कम हो जाती है और बाजार से दूर वाले लोगों के नीचे भाटक बढ़ जाते हैं। मोटरो के आविष्कार ने उपनगरो में भाटक और जमीनो की कीमतें बढ़ा दी।

सामाजिक परिणाम—सुधरे हुए परिवहन से बहुत गहरा सामाजिक परिणाम होता है। एक तो यह आबादी की सघनता और फैलाव का निर्धारण करता है। मोटरो और बसो ने लोगो के आने-जाने का प्रबन्ध करके उन्हे उपनगरीय समाजो में प्रविष्ट होने में सुविधा प्रदान की है, जहाँ खास शहर की अपेक्षा जीवन अधिक आकर्षक बताया जाता है। दूसरी बात यह है कि अच्छे परिवहन से रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाता है और जीवन की रीति बदल जाती है। हमारा मकान का स्वरूप, पहनने का ढग, मनोरजन और यहाँ तक कि भोजन भी सुधर जाता है। उपजीविका, आदत और विचार पद्धति पर बड़ी जल्दी प्रभाव पड़ता है। मोटर, विमान और रेलगाडी के प्रचलित हो जाने से जीवन की गति द्रुत हो गई। कुछ ही घण्टो में महाद्वीपो को लाघ जाने से समय और दूरी की एक नई धारणा बन गई है। तीसरी बात यह है कि दक्ष परिवहन सस्कृति और वृद्धि को बढाता है। जीवनधारण के लिए न्यूनतम से अधिक आय की मात्रा बढने पर खाली समय में वृद्धि हो जाती है और डाक का दूर-दूर तक वितरण तथा विस्तृत क्षेत्र में वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित होने से शिक्षा की प्रगति होती है और सुधार तथा प्रगति के लिए प्रेरणा मिलती है। सामाजिक सम्बन्धो में मोटर ने विशेष रूप से बहुत अधिक कार्य किया है। इसने सब वर्गों के नागरिकों को यात्रा की ऐसी स्वतन्त्रता प्रदान की है जैसी इससे पहले देखी-सुनी नही गई थी। इसने देहातो के अलगाव को प्राय. नष्ट कर दिया है। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि परिवहन ने जन मगल में वृद्धि की है।

राजनैतिक परिणाम—दक्ष परिवहन के दो बडे महत्वपूर्ण राजनैतिक परिणाम होते हैं। प्रथम तो यह राष्ट्रीय एकता को बढाता है। भारत, यूनाइटेड स्टेट्स या रूस जैसे देश परिवहन और सचार की पर्याप्त व्यवस्था के बिना सगठित नहीं रक्खे जा सकते। प्रभावी परिवहन व्यवस्था राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता को जन्म देती है। श्रम के भौगोलिक विभाजन को बढाकर देश के विभिन्न भागो को

आर्थिक दृष्टि से परस्पराश्रित बनाने वाला परिवहन राजनैतिक एकता को अनिवार्य कर देता है जिससे व्यापार की स्वतन्त्रता और उद्योग के प्रभावी नियम की गारण्टी हो सके। फिर, परिवहन सामाजिक समरूपता का पोषण करके राष्ट्रीय एकता कायम रखना आसान कर देता है दक्षपरिवहन का दूसरा राजनैतिक परिणाम राष्ट्रीय प्रतिरक्षा का सुदृढ हो जाना परिवहन राष्ट्रो का एकीकरण भी कर देता है, संस्थाएँ और प्रथाएँ, कानून और भाषाएँ, दुतगति से एक दूसरे को आत्मसात करते है।

आधुनिक परिवहन को तीन मुख्य प्ररूपो में बाँटा जा सकता है। स्थलीय-जलीय और आकाशीय। अन्तर्देशीय परिवहन तीन प्रकार का है—सडक, अन्तर्देशीय जल मार्ग और रेल मार्ग। भौतिक वस्तुओ या व्यक्तियो के परिवहन में दो कारक आवश्यक है। एक तो यान या स्थानान्तरण की इकाई और दूसरा वह माध्यम जिसमें या जिसपर यान चलेगा। माध्यम के अनुसार यान के प्ररूप या रूपाकार यानी डिजाइन' का चुनाव किया जाता है। माध्यम में दो वर्ग है—सार्वजनिक राजपथ या निजी राजपथ। वायु परिवहन और समुद्र परिवहन में सार्वजनिक, प्राकृतिक और मुक्त राजपथ होते है। सडक और अन्तर्देशीय राजपथ बीच की स्थिति में है।

परिवहन के विभिन्न साधनो के लाभो की तुलना

रेल मार्ग—विस्तृत स्थल भूमि पर बडी मात्रा में साधारण परिवहन की व्यवस्था करने वाला रेलमार्गो से अच्छा कोई और साधन नही। यदि बारबार पर्याप्त हो तो कुछ जलमार्गों को छोड कर, परिवहन का कोई और साधन इतना सस्ता यातायात नही करा सकता जितना रेलमार्ग, और स्थलीय परिवहन का कोई तरीका अधिक दूर तक इतनी तेजी से नही जा सकता। जहाँ जल मार्ग अधिक सस्ते भी है वहाँ भी वे कुछ ही प्रकार का सामान लात, ले जाते है। रेल मार्ग में चार विशेष लाभ है—पहला, यह जल मार्ग की अपेक्षा प्राय कम लागत पर किसी भी स्थान तक बनाई जा सकती है, हालाँकि साधारण राजपथ की अपेक्षा अधिक लागत पर बनाई जा सकती है। दूसरा, रेल मार्ग में परिवहन के किसी अन्य साधन की अपेक्षा मौसम की अदल बदल से कम बाधा पडती है। राजमार्ग या वायुमार्ग कोई भी इतने निर्भरणीय और सुरक्षित नही। तीसरे, रेलमार्ग को तेज चाल के लिये अपेक्षया कम कर्षण शक्ति की आवश्यकता होती है, क्योकि यह चिकनी पटरी के सिद्धान्त का उपयोग करता है। चौथे, रेलमार्ग बडे पैमाने पर यातायात सन्चालन के लिए बहुत अधिक अनुकूल होता है। खूब अधिक बोझ से लदे हुए डिब्बो की लम्बी गाडिया सुरक्षित चलाई जा सकती है।

रेलवे के ये लाभ सिरकी जगह, (टर्मिनस) पर किये जाने वाले कार्यो के समय और लागत के कारण नष्ट से होने लगते है। शुरू के स्टेशन पर वैगनो में माल लादना और उन्हे जोड़ना, बीच के स्थानो पर फिर जोडना और गतव्य स्थान पर अलग-अलग करना और माल उतारना पडता है। मालगाडी साधारणतया ट्रक या गाडी से धीरे चलती है और सौ मील से कम दूरियो के लिये रेल एक्सप्रेस लारी से मदगामी

है, यद्यपि १५० मील से अधिक दूरियों के लिए रेल में अधिक चलने का सामर्थ्य है। जहाँ तक सामान का सम्बन्ध है, पूरा वैगन माल २० मील से अधिक दूरी के लिए साधारणतया रेल द्वारा सस्ता भेजा जा सकता है परन्तु एक वैगन माल से कम होने पर ६० मील से सम्भवतः ११० मील से कम दूरी तक ट्रक द्वारा परिवहन अधिक सस्ता पड़ता है। एक वैगन से कम माल का वास्तविक खर्चा सड़क द्वारा सभी दूरियों से साधारणतया कम होता है। इसके अतिरिक्त रेलवे न तो मोटर की तरह लचीली है और न माल घर-घर पहुँचा सकती है। बहुत सारा सामान कम चाल से एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक पहुँचाने में भी रेलें प्राकृतिक जल मार्गों पर चलने वाले वाहनों से मुकाबला नहीं कर सकती।

जलपरिवहन—जल-परिवहन का बड़ा लाभ यह है कि बहुत बड़े-बड़े प्लवमान सामान के लिए लगभग नहीं के बराबर कर्षण शक्ति लगानी पड़ती है। बस इतना ही है कि चाल धीमी होती है। एक साधारण शक्ति इकाई थोड़े से बजड़ों पर कई माल गाड़ियों की अपेक्षा अधिक माल चला सकती है। प्राकृतिक जलमार्गों पर मार्ग की व्यवस्था करने में अपेक्षया बहुत कम पूँजी या देख रेख की लागत खर्च होती है इन कारणों से जल द्वारा परिवहन रेल परिवहन की अपेक्षा सस्ता हो जाता है परन्तु नहरों पर परिवहन की लागत अधिक पड़ती है और इसके परिणाम स्वरूप कृत्रिम जलमार्गों द्वारा परिवहन की असली लागत का बहुत बड़ा हिस्सा करदाता को उठाना पड़ता है।

सड़क परिवहन—सड़क परिवहन बहुत विविध रूपी है। यात्री वाहनों को निजी कारों, टैक्सियों और बसों में बाँटा जा सकता है। माल ढोने वाले ट्रक तीन वर्गों में आते हैं—मालिक द्वारा चलाए जाने वाले, ठेके पर चलाये जाने वाले और सामान्य वाहन। कुछ वाहन नियमित मार्गों पर चलाये जाते हैं और कुछ वाहन किराये पर कहीं भी ले जाए जा सकते हैं। कुछ वाहन सब तरह की वस्तुएँ ढोते हैं और कुछ वाहन सिर्फ विशिष्ट कार्य करते हैं। जहाँ तक यात्री परिवहन का सम्बन्ध है, सम्भवतः सड़कों द्वारा जितना यातायात होता है वह परिवहन के और सब साधनों से मिलाकर होने वाले यातायात से अधिक है। सड़क से होने वाला अधिकतर यातायात थोड़ी मात्रा में अपेक्षया कम दूरियों पर होता है, यद्यपि ताजे फल और सब्जियाँ अधिक दूरियाँ भी पार करती हैं। मोटर यान के लाभ मूलतः दो बातों पर निर्भर हैं। प्रथम तो वाहन की इकाई छोटी है और दूसरे यान अपने किसी निश्चित सड़क मार्ग पर चलने का पाबन्द नहीं। यह थोड़ा-थोड़ा माल सार्वजनिक सड़कों पर कहीं भी पहुँचा सकता है और अगर जरूरत हो तो घर-घर, चढ़ाई वाली सड़कों पर या टूटी-फूटी सड़कों पर भी जा सकता है। इस प्रकार मोटर यान बहुत अधिक लचीले और वैविध्यपूर्ण तरीके से काम कर सकता है। यह अन्य प्रकार के परिवहन साधनों को पीछे छोड़ जाता है और अन्य परिवहन साधनों से असन्तुष्ट क्षेत्रों में प्रवेश करता है और नई सेवाएँ प्रस्तुत करता है।

बस के लिये सेवा का सबसे बड़ा क्षेत्र वहाँ है जहाँ यातायात हल्का है अथवा जहाँ लचीलेपन की आवश्यकता है। ऐसी जगहों में यह रेलगाड़ी से सस्ता है, अपना मार्ग आसानी से बदल सकता है, अधिक बार आ-जा सकता है और यात्रियों की सुविधा के अनुसार उन्हें चढ़ा और उतार सकता है।

इस प्रकार मध्यम दर्जे की लम्बाई के परिवहन में बस भाप की रेलगाड़ी और उपनगरों को मिलाने वाली बिजली की रेलगाड़ी से सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकती है। जहाँ लागत और और चालकों की दृष्टि से यातायात भारी हो, वहाँ बस घाटे में रहती है। ऐसी जगह इसे रेल के लिए स्थान छोड़ना पड़ता है, जो यात्रा की मात्रा अधिक होने पर प्रति इकाई कम लागत में माल ले जाती है और साधारणतया यातायात की भीड़ से कम रुकती है। बड़ी यात्राओं में रेल बस की अपेक्षा अधिक सुखदायक है। इसके अलावा, बस को मौसम के कारण होने वाले परिवर्तनों से रुकावट और खतरे पैदा हो जाते हैं। ट्रक में कम से कम पाँच मुख्य लाभ है—पहला, ट्रक द्वारा वस्तुएँ लेजाना रेल की अपेक्षा बहुधा सस्ता पड़ता है जिसका कारण या तो यह है कि रेल का महसूल, सिरे के (टरमिनल) खर्च को मिलाकर, थोड़ी दूरियों के लिए अपेक्षया अधिक पड़ता है और या इस कारण कि ढुलाई की लागत रेल के महसूल में जोड़नी पड़ेगी। दूसरे, छोटी दूरी में ट्रक की चाल तेज होती है क्योंकि इससे ज्यादा उठा-धरी की जरूरत नहीं रहती और यह शीघ्र से शीघ्र पहुँचाने वाला मार्ग पकड़ सकता है, विशेष कर तब जबकि ट्रक ठेके पर या निजी आधार पर लिया गया हो। तीसरे, ट्रक एक घर से दूसरे घर, अन्य परिवहन की अपेक्षा अधिक आसानी से, माल पहुँचा सकता है। चौथे, ट्रक अधिक बार आ-जा सकता है यह हल्के और छोटे परिवहन के लिए बहुत अनुकूल पड़ता है। पाँचवें, रेल या जल द्वारा माल भेजने की की अपेक्षा ट्रक द्वारा माल भेजने में साधारणतया उतना अधिक पैकिंग नहीं करना पड़ता, क्योंकि उठा-धरी में भेद होता है। ताजे फल सब्जियाँ और घरेलू सामान भेजने में इसका बड़ा महत्व है।

वायुमार्ग—वायु परिवहन सब तरह के अन्तर्देशीय परिवहन के मुकाबिले में यातायात की मात्रा की दृष्टि से सब से कम महत्वपूर्ण है। जो माल परिवहित किया जाता है उसकी मात्रा न के बराबर है यद्यपि "ऑल कारगो, (All Cargo) अर्थात् सब प्रकार का माल ले जाने की व्यवस्था मौजूद है। वायु मार्ग से यात्री यातायात अधिक महत्वपूर्ण है परन्तु निर्धारित समय से चलने वाली एयरलाइना के मुसाफिरों की संख्या इस समय नगण्य है। इसके अलावा, आन्तरिक वायु याना-यात उन्हीं देशों में सम्भव है जिनमें बहुत बड़ा प्रदेश है और वाणिज्य के महत्व-पूर्ण केन्द्र हों, जैसे भारत, यूनाइटेड स्टेट्स और रूस। वायु परिवहन का प्राथमिक लाभ है चाल, दूसरा लाभ यह है कि इसमें भूमि पर होने वाली रुकावटें नहीं आतीं। यद्यपि जहाज उतरने के अड्डे और निर्धारित मार्ग निश्चित है पर तो भी वायुयानों को किसी निश्चित लाइन पर नहीं चलना पड़ता और वे नाव की

नीच में उड़ सकते हैं तथा अगम्य स्थानों पर भी पहुँच सकते हैं। वायु सेवा से तीसरा लाभ है इसकी सहूलियत। ट्रेन या जहाज की तुलना में विमान एक छोटी इकाई है और इसलिए आवश्यकतानुसार इसकी उड़ान का निश्चय करना आसान होता है।

वायु यातायात में बहुत बड़ी कमी यह है कि इस यान द्वारा बहुत अधिक भार नहीं ले जाया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि सत्रा की प्रति इकाई लागत ऊँची है। यद्यपि सुरक्षा की मात्रा लगातार ऊँची होती रही है, तो भी मौसम धन्धों, यान की रुकावटों तथा कर्मचारियों की सूझ से सुरक्षित उड़ान में बड़ी बाधा पड़ जाती है। वायु यातायात का तीसरा नुकसान — जो इसका अपपत्ति है निर्भरणीयता का अभाव है। औसतन, निश्चित उड़ानों में से लगभग १०% कभी कभी शुरू ही नहीं की जा सकती, और जो शुरू की जाती है उनमें से बहुत सारी प्रायः प्रतिकूल मौसम के कारण पूरी नहीं की जाती। चौथी हानि है वमन उगह या विमान-रोग (Air sickness) के कारण आराम का अभाव। त्रुटियाँ कुछ दूर तक सुधारी जा सकती हैं परन्तु तत्ववाहनों की अपेक्षा इनमें सुधार की गुंजायश कम है।

परिवहन की लागत

एकाधिकार और प्रतियोगिता

रेल मार्ग—रेलवे में पूँजी उद्व्यय कुल राशि की दृष्टि से और कारबार की मात्रा के अनुपात में बहुत अधिक होता है। बहुत बड़े स्थिर निवेशन से रेलवे के व्ययों में सर्वप्रथम दो विशेषताएँ आ जाती हैं। एक तो यह कि खर्चा मुख्यतः वास्तविक यातायात से स्वतन्त्र होता है अर्थात् व्यय की राशि मुख्यतः यन्त्रों के उपयोग की अपेक्षा उनकी क्षमता में निर्धारित होती है। दूसरे, सारा खर्च माल विशेष पर वैज्ञानिक रूप से नहीं बाँटा जा सकता। सिर्फ वह परिव्यय ही, जो किसी निश्चित माल के लिए अलग-अलग होता है, उसमें पैदा होता है और उसपर डाला जा सकता है। प्रथम बात को आम तौर पर इन या दो में कहा जाता है कि रेलवे के खर्च अधिकतर स्थिर या नियत होते हैं, परिवर्ती नहीं। जब खर्च नियत होता है तब उसकी मात्रा अपरिवर्तित रहती है, चाहे यातायात में कमी हो या वृद्धि। जब खर्च परिवर्ती होता है तब वह या तो यातायात के परिवर्तन के अनुपात में या उससे अनुपात से अधिक या कम अनुपात में परिवर्तित हो जाता है। कुल लागत में वृद्धि की मात्रा नियतता या परिवर्तिता पर निर्भर होगी। आम तौर से यह स्वीकार किया जाता है कि रेल के खर्च लगभग दो-तिहाई नियत और एक-तिहाई परिवर्तित होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि रेलवे के खर्च स्थिर और परिवर्ती श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं और कि स्थिर खर्च कुल खर्च का दो-तिहाई होते हैं, चाहे यातायात की मात्रा

जितनी हो। यह गणितीय दृष्टि से असम्भव है। इसका मतलब यह हो जाता है कि खर्च इस तरह बदलते हैं कि मानो वे दो-तिहाई नियत हैं। दूसरे शब्दों में लागत कारबार का एक-तिहाई बदलती है जिसके परिणामस्वरूप यातायात में १५% वृद्धि होने पर कुल खर्च १५%का सिर्फ एक-तिहाई या पाँच प्रतिशत ही होगा। इसी प्रकार यातायात में कोई कमी होने से खर्चों में तदनुसार कमी नहीं होगी। पर यह स्मरण रहना चाहिए कि खर्च कुछ दूर तक ही नियत रहते हैं। अन्ततोगत्वा अधिकतर लागतें परिवर्ती हैं, क्योंकि जो उद्व्यय बिल्कुल डूबते रहे हैं उन्हें छोड़कर और सबको कारबार की मात्रा के साथ समजित किया जा सकता है।

रेलवे के व्ययों की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता लागतों के अभिभाजन के सिलसिले में है। इस दृष्टि से देखने पर लागतों को (१) सामान्य, (कभी-कभी संयुक्त भी कहते हैं) या (२) विशेष (जिसे कभी-कभी प्रत्यक्ष या प्रधान या आउट आफ पाकिट कहते हैं), कहा जा सकता है। लागत तब सामान्य कहलाती है जब सारे के सारे कारबार के निमित्त उठाई गई हो, और जब वह किसी विशेष सेवा या सेवा के किसी विशेष वर्ग की ओर से उठाई गई हो, तब वह विशेष कहलाती है। रेलवे यातायात ऊन और मांस की तरह मिली-जुली लागत का कार-बार नहीं है, यद्यपि रेलें किसी समय कई तरह की सेवाओं की व्यवस्था करती है, जो परिणामतः बहुत सी विभिन्न वस्तुएँ होती हैं। मांस के उत्पादन का अनिवार्य अर्थ है ऊन का उत्पादन और यह संयुक्त लागत का उदाहरण है। परन्तु गेहूँ का परिवहन करने वाले के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह पत्थर के कोयले का परिवहन करे और माल ढोने का आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं कि मुसाफिर भी ढोये जायें। क्योंकि रेलों को सब प्रकार का यातायात करने में लाभ होता है और क्योंकि लागत किसी विशेष वस्तु या सेवा के लिए अलग नहीं निकाली जा सकती, इसलिए रेलवे लागत को कभी-कभी संयुक्त कह दिया जाता है, जो कहना गलत है और सामान्य लागत शब्द इसके लिए अधिक उपयुक्त है। रेलवे की वह लागत नियत होती है जो यातायात पर निर्भर नहीं है और वह सामान्य होती है जो सारे कारबार के निमित्त जाती है। परिवहन व्यय अंशतः सामान्य और अंशतः विशेष होता है। रेल महसूल तय करने में इन तथ्यों का बड़ा महत्व है।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि रेलवे आमतौर पर एक आंशिक एकाधिकार होती है। जहाँ एक लाइन लाभ पर चलती है वहाँ दो लाइनें सचालन व्यय भी नहीं निकाल सकती। प्राय सरकार दो रेलवे लाइनों में प्रतियोगिता होने देने को लोकहित के विरुद्ध समझेगी। इस प्रकार सम्भावित रेलवे प्रतियोगिता अधिकतर व्यर्थ हो जाती है। परिवहन के अन्य साधनों की दृष्टि से भी रेलें बुनियादी वस्तुओं के अधिक दूरी के यातायात के लिए अर्ध-एकाधिकार की स्थिति में हैं। एकाधिकार होने के कारण रेलवे का लक्ष्य अधिकतम शुद्ध राजस्व है,

जो इसकी अवस्था में सबसे अधिक सुविधा से इसी वसूल हो सकता है, जब एक में महसूल और भाड़े के बजाए अलग-अलग (डिफरेन्शल) महसूल और भाड़े लागू करें। यह रेलवे व्यय के स्वरूप के कारण सम्भव हो जाता है क्योंकि इसमें रेलों की आय में वृद्धि और लागत में कमी हो सकती है।

वायुमार्ग—जहाँ तक सम्पत्ति नियोजन, उपयोग में न आने वाली उत्पादक क्षमता और खर्च की स्थिरता का सम्बन्ध है, वायुयान रेल और ट्रक परिवहन के बीच में प्रतीत होते हैं। वायु मार्ग बनाने में कोई उद्व्यय नहीं होता और उतरने के अड्डों और विमान क्षेत्रों के लिए अधिकतर पूंजी जनता से मिल जाती है। परन्तु जमीन, मकानों, और इसी तरह सामग्री में नियोजन करना पड़ता है, और कारबार की मात्रा की तुलना में काफी महत्व का है। विमान, यातायात के अनुसार, संख्या में अनेक और क्षमता में विविध प्रकार के हो सकते हैं, परन्तु बहुत अधिक माल खरीदने का मतलब है आरम्भिक लागत में कमी, और अधिक खर्चीली मशीनों से परिचालन के खर्च कम हो जाते हैं। विमान परिवहन की लागत को भूमि व्ययों और उड्डयन व्ययों में बांटा जा सकता है। भूमि व्यय, जो कुल लागत का बहुत बड़ा हिस्सा होते हैं, भूमि पर की सुविधाओं में किए गए नियोजन का ब्याज विमानागारों (Hangars) और दफ्तर के स्थान का भाटक, मकानों का रख-रखाव, भूमिस्थ कर्मचारियों की भृति, यातायात और विज्ञापन के व्यय और भूमिपर विद्यमान सामग्री समाविष्ट है। थोड़ी अवधियों के लिए ये लागतें बहुधा नियत होती हैं। उड्डयन व्ययों में उड्डयन सामग्री का अवक्षयण और रख-रखाव, ईंधन, तेल, उड्डयन कर्मचारियों की भृति, प्रदाय और ऐसी ही अन्य वस्तुएं होती हैं। ये चीजें विशेष कर ईंधन, थोड़ी दूरी में भी अधिकतर परिवर्ती होती हैं, परन्तु इनमें भी काफी दूर तक स्थिरता है।

जहाँ तक इस बात का सम्बन्ध है कि मितव्ययी परिचालन के लिए बड़े प्लान्टों की आवश्यकता है, और लागत नियत होती है, परिवहन उड्डयनमें एकाधिकार और डिफरेन्शल चार्ज की प्रवृत्ति होती है। १९५३ में भारतीय वायु परिवहन सेवाओं के राष्ट्रीयकरण का एक कारण यह विचार था कि विनाशक प्रतियोगिता को सरकारी एकाधिकार स्थापित करके शमन कर दिया जाय।

जलमार्ग और राजपथ—जलवाहनों और पथ वाहनों की अधिकतर विशेषताएं लगभग एकसी हैं और दोनों प्रकारों पर एक साथ विचार किया जा सकता है। यह कह देना उचित होगा कि इन सेवाओं की प्रकृति में महत्वपूर्ण अन्तर है। एक अन्तर यह है कि जल परिवहन भौगोलिक दृष्टि से पथ परिवहन की अपेक्षा बहुत सीमित है। एक और अन्तर यह है कि जल परिवहन कुछ ही प्रकार की वस्तुओं को बड़ी मात्राओं के यातायात तक सीमित रहता है। तीसरा अन्तर यह है कि जलपर उद्योग में वाहक इकाई बड़ी होती है।

रेलो की तुलनामें जलपथ और राजपथ के यानो के लिए, जैसे कारबार की मात्रा की दृष्टि से, वैसे कुल राशि की दृष्टि से भी, बहुत कम पूंजी चाहिए। रास्ते के लिए भी कोई पूंजी लगाने की आवश्यकता नही, क्योंकि रास्ता प्रकृति या सरकार का बनाया हुआ होता है। सिरे के स्थान बने-बनाए नही होते और उनकी व्यवस्था अधिकतर जनता द्वारा या परिवहन-कर्त्ताओ द्वारा की जाती है। वाहनो को, जो मुख्य पूंजी उद्व्यय करना पड़ता है, वह जहाजो या यानो के लिए है। ये वस्तुएँ भी साधारणतया बहुत छोटे पैमाने पर चलाई जाती है। इसलिए जलपथ और सडक उद्योगो में वाहनो की क्षमता यातायात से काफी समजित होती है। यानो या वाहनो की संख्या या क्षमता माँग के अनुसार विनियमित की जा सकती है। क्योकि उपयोग में न आने वाली क्षमता अधिक नही होती, इसलिए जलपथ और राजपथ वाहनो के खर्च अधिकतर परिवर्ती होते है। इन खर्चों में इंधन और प्रदाय व भृतियाँ, चलने वाली सामग्री का अवक्षयण आते है जो सबके सब यातायात के अनुसार ही बदलते रहते है। सम्भाव्यतः माल ढोने वाले मोटर यानो के कुल सचालन व्ययो, भाडवो और करो का ⅘ हिस्सा परिवर्ती होता है।

जलपथ और राजपथ परिवहनो मे यह भी विशेषता होती है कि इनमें एकाधिकार प्रायः नहीं होता। क्योकि राजपथ और जलमार्ग सबके लिए खुले होते है और क्योकि इसके लिए थोडी पूजी की आवश्यकता होती है, इसलिए इस व्यवसाय में घुसना आसान है और परिणामत एक मार्ग पर भी प्रतियोगिता चल सकती है। परिवर्ती खर्चों और एकाधिकार के अभाव के कारण प्रभेद बहुत कम होने लगता है और प्रतियोगिता रेल यातायात की अपेक्षा कम विनाशक होती है। वाहनो के चालक अपने महसूल लागत से कम करने में हिचकते है क्योकि जितना उन्हें नफा होता है उससे ज्यादा नुकसान होता है। विनाशक प्रतियोगिता करने से अच्छा यह है कि कारबार छोड दिया जाय। कार्य बिना हानि उठाए बिल्कुल छोड दिया जा सकता है अथवा किसी और जगह ले जाया जा सकता है।

महसूल की प्रविधि (Technique)

रेलवे के महसूल और भाडे—रेलवे सेवाओ के मूल्यो में माल के महसूल मुसाफिरो के भाडे और लगेज (सामान) सबन्धी गौण प्रभारो का समावेश है। मुख्य दिलचस्पी की चीज माल का महसूल है। मुसाफिरो से सामान्यत रेलो की कुल वार्षिक सचालन आय का १० से १५०/० ही प्राप्त होता है। माल महसूल से वार्षिक सचालन आय का लगभग ⅘ प्राप्त होता है और इस महसूल का ढाचा बडे जटिल ढग का होता है। जटिलता वस्तुओ स्टेशनो और मार्गो के बाहुल्य के कारण से होती है। रेलो से ढोई जाने वाली वस्तुएँ हजारो स्थानो के बीच लाई-ले जाई जाती है। अनुचित भेदभाव को बचाने की दृष्टि से सरलीकरण के लिए वस्तुओ को

भारतीय रेलो ने १६ वर्गों में विभाजित किया है और दोनो दिशाओ मे या दो या अधिक मार्गो के लिए वे ही महसूल लिए जाते है। वर्गीकरण से यह लाभ है कि महसूलो की संख्या कम हो जाती है क्योकि एक वर्ग या उपवर्ग की सब वस्तुओ पर एक ही महसूल लगता है। इससे महसूल अनम्य (इन्फ्ले क्सिबल) भी हो जाते हैं क्योकि किसी वर्ग का महसूल बदलने का अर्थ यह है कि उस वर्ग की सब वस्तुओ का, जो कई सौ भी हो सकती है, महसूल बदलना, परन्तु सब वस्तुओ पर उस वर्ग का महसूल नही लागू होता। इसके विपरीत यातायात का बहुत बड़ा हिस्सा अनुसूचित महसूलो पर चलता है जो वर्ग महसूलो से नीचे होते हैं, और कुछ अवस्थाओ में एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक अलग-अलग महसूल लिए जाते हैं। अन्तिम प्रकार के महसूल दो स्टेशनो के विशेष घटाए हुए महसूल हैं जो प्राय परिवहन के अन्य साधनो का मुकाबला करने के लिए लागू किये जाते हैं। अधिक दूरी के प्रेषण को प्रोत्साहित करने के लिए घटते हुए (टेपरिंग या टेलिस्कोपिक) महसूल लिए जाते है जिनके अनुसार दूरी बढ़ने के साथ महसूल कम हो जाता है।

जलपथ के वाहन—जल वाहनो के महसूल ढांचे अपेक्षया सरल होने पर साधारणतया रेलो के ढांचे जैसे ही होते हैं, परन्तु सारे महसूल सिर्फ लाइनर ही प्रकाशित करते हैं। संविदा वाले वाहन सिर्फ न्यूनतम महसूल बताते हैं, यद्यपि ये भी मार्ग और सम्भरण के अनुसार बदल जाते हैं। लाइनरो के महसूल रेलवे महसूलो पर आधारित होते हैं जब कि संविदा वाले वाहनों के महसूल जलपथ सेवा की लागत और स्वरूप को अधिक ठीक-ठीक प्रकट करते हैं। इसलिए संविदा वाले महसूल साधारणतया कम होते हैं और माल की मात्रा के अनुसार बदलते रहते हैं पर न्यूनतम मात्रा, जैसे ३०० टन निश्चित होती है। लाइनर वर्ग महसूल और वस्तु महसूल दोनो प्रकाशित करते हैं। ये एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह के महसूल, या संयुक्त महसूल जैसे जल, रेल या जल-ट्रक हो सकते हैं। बन्दरगाह से बन्दरगाह के महसूल और जल-रेल, महसूल सिर्फ रेल वाले महसूलो की अपेक्षा प्राय प्रभेदित (डिफ्रेन्शियल) कम होते है, जलीय महसूल रेल महसूलो की तरह कुछ सीमा तक दूरियो के अनुसार बदलते रहते हैं। परन्तु वे रेल महसूलो की अपेक्षा दूरियो को कम महत्व देते हैं क्योकि वाहनो की लागत दूरी के साथ उतनी नही बढ़ती जितनी रेलवे कारबार में बढ़ती है।

मोटर वाहन महसूल—शुरू में मोटरो के महसूल वैयक्तिक सौदेबाजी का विषय थे, परन्तु सरकारी विनियमन के साथ-साथ ये महसूल भी महसूल तालिके के रूप में आ गये। ढांचे के अवयव वैसे ही हैं जैसे रेलवे कारबार में, पर यहाँ अधिक वर्गीकरण नही है। परन्तु प्राय पूरी लारी के लदान के महसूल रेलवे अनुसूचित महसूल जैसे ही होते हैं। साधारणतया मोटरो के महसूल रेलमार्ग और जलमार्ग की अपेक्षा दूरी से अधिक सम्बन्धित होते हैं। वाहन की लागत अधिकतर परिवर्ती होती है, मुख्यत ढुलाई के ऊपर निर्भर होती है। सिरे के व्यय कोई खास

महत्वपूर्ण नहीं होते परन्तु जहाँ वाहनों को रेलों से, विशेषकर लम्बी ढुलाई में, प्रबल प्रतियोगिता करनी पड़ती है। वहाँ महसूल कम कर दिये जाते हैं।

वायु वाहन महसूल—स्थानीय और अन्तर्राष्ट्रीय या दोनों यात्री भाड़े तथा नियम और विनियम एयरटेरिफ में प्रकाशित किए जाते हैं। रेल्वे भाड़े की तरह वे मुख्यतया दूरी के आधार पर होते हैं, यद्यपि प्रति मील महसूल, जो प्रतियोगिता को सूचित करता है, सदा एक सा नहीं होता। महसूल की मात्रा मुख्यतः रेल के पहले दर्जे के भाड़े में कुछ और खर्च जोड़ कर निकाली जाती है जिससे विमान भाड़े पहले दर्जे के भाड़े से अधिक हो जाते हैं। समय की बचत तथा अन्य कारणों की वजह से विमान वाहन महसूल बराबर किए बिना रेलों से मुकाबला कर सके हैं, भारतीय रेलों से पहला दर्जा उठाने का एक कारण यह भी था कि व्यवसायी और धनी लोग विमान यात्रा पसन्द करते हैं। माल के महसूल इतने आने पाउण्ड या हल्के सामान के लिए पाउन्ड भिन्न के रूप में बनाए जाते हैं और प्रायः सब वस्तुओं के लिए एक ही है—कोई खास वर्गीकरण नहीं है।

विशेष महसूलों के आधारस्थ सिद्धान्त

महसूलों के निर्धारण के तीन तर्क संगत उद्देश्य हैं पहला, प्रत्येक महसूल से सेवा की कुल लागत का कुछ हिस्सा निकले। दूसरा, प्रत्येक महसूल यातायात की अधिकतम आर्थिक दृष्टि से उपयोगी मात्रा को उद्दीपित करे। तीसरा, प्रत्येक महसूल से अन्य महसूलों की तुलना में लागत के उचित हिस्से की पूर्ति हो। इन प्रत्यक्ष उद्देश्यों के अलावा कुछ और भी बातें हैं जिन पर विशेष महसूल तय करते समय ध्यान देना चाहिए। ये बातें परिवहनेतर उद्देश्यों की पूर्ति से सम्बन्धित हैं जैसे परिवहन के अलावा किसी अन्य उद्योग तथा कृषि में समृद्धि को बढ़ाना, शहरी भीड़-भाड़ को कम करना, वैदेशिक व्यापार का उद्दीपन, किसी वस्तु विशेष के यातायात का नियन्त्रण और बाजार प्रतियोगिता को प्रोत्साहन।

महसूल का आधार—मोटे तौर से रेलवे महसूलों का वह आधार सबसे उत्तम है जो उस सारे यातायात को उद्दीपित करे, जिसको लाने-ले जाने से नफा हो क्योंकि यातायात अधिक होने से परिवहन की प्रति इकाई लागत कम हो जाती और इस तरह महसूलों को कम करना सरल बात हो जाती है तथा इस प्रकार सेवा की सुलभता बढ़ जाती है। (१) प्लांट के अधिक पूर्ण उपयोग के अर्थ-विधान (Economics) के कारण, और (२) बड़े पैमाने के उत्पादन के अर्थ-विधान के कारण औसत इकाई लागत कम हो जाती है। इस वृहत परिमाण उत्पादन के अर्थ विधान के कारण ही रेलवे उद्योग में वर्धमान प्रत्यावर्त्तन (रिटर्न) या घटती हुई लागत की विशेषता बताई जाती है। प्लांट जितना बड़ा होगा लागत उतनी ही कम होगी, बशर्ते कि यातायात पर्याप्त हो। प्लांट के अधिक पूर्ण उपयोग के अर्थ विधान को समझने के लिए यह याद रखना आवश्यक है कि थोड़ी अवधियों के लिए रेलवे

की कुल लागत कारबार की अपेक्षा अधिक मन्द गति से बढ़ती है। ज्यों ज्यों यातायात बढ़ता है त्यों-त्यों लागत औसत लागत प्रति टन मील (इकाई) कम हो जाती है। प्रति इकाई नियत या ऊपरी लागत की कमी प्रति इकाई परिवर्ती लागत से होने वाली वृद्धि (यदि हो तो) की मात्रा से अधिक होती है। यातायात की वृद्धि के साथ औसत लागत तब तक गिरती जायगी जब तक दक्षतम उपयोग का बिन्दु (अनुकूलतम) न आ जाय और उसके बाद यह बढ़ने लगेगी। वर्तमान प्लांट का श्रेष्ठतम उपयोग होने रहने पर भी यातायात की और अधिक मात्रा वांछनीय हो सकती है। इसका कारण वृहत परिमाण उत्पादन इकाई का अर्थ विधान है जब तक प्लांट के आकार की सीमा पर नहीं पहुँच जाते—और इन अवस्था में दूसरी लाइन बनाना बहुत अच्छा होगा— तब तक रेलवे को अधिक काम लेने में लाभ होगा। जब यातायात की मात्रा कम है तब जो उचित आकार की पद्धति होगी, वह यातायात की मात्रा अधिक होने पर श्रेष्ठतम आकार की पद्धति नहीं होगी। क्योंकि प्लांट बढ़ाने में खर्च बैठता है, इसलिए विस्तार के बाद कुछ समय तक औसत इकाई लागत में वृद्धि हो सकती है, क्योंकि शुरू होने वाला यातायात इतना काफी नहीं हो सकता कि अतिरिक्त सामग्री को पूरी तरह कार्यव्यस्त रख सके परन्तु अन्त में ज्यों-ज्यों यातायात बढ़ता जाता है त्यों-त्यों प्लांट फिर अधिकतम उपयोग के निकट पहुंच जायगा और जब यह बिन्दु आजायगा, तब औसत इकाई लागत उतनी से कम होगी जितनी यह छोटे प्लांट का पूरा उपयोग करने पर होती।

रेलों का वृहत्तन बहुधा अनेक मार्गों का रूप लेता है। बड़े प्लांट की अधिक मितव्ययिता का यह भी एक कारण है। एक रेलवे एक लाइन पर जितना यातायात करने में जो लागत उठाती है, डबल लाइन द्वारा उससे दुगुना माल ढोने में उस लागत के दुगुने से कम प्रति इकाई लागत उठाती है। एक लाइन के कार्य में स्वभावतः होने वाले विलम्ब से बचा जा सकता है। यदि मार्ग को देखते हुए तीसरी लाइन बनाना उचित हो तो उससे और भी लाभ है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि रेलवे प्लांट या परिचालन की कोई सीमा ही नहीं है। यदि ऐसा होता तो हम रेलवे परिचालन में दक्षता निरन्तर बढ़ती जाने की आशा कर सकते थे। परन्तु एक रोकने वाला कारक है बड़ी प्रणाली के प्रबन्ध की कठिनाई। समूहन (ग्रुपिंग) के कुछ आलोचकों की सम्मति में भारत में ३४ लाइनों को ६ बड़े समूहों में बाँट देने से हमारे रेलमार्गों की दक्षता कम हो गई है। जो हो, पर रेलवे मंत्री ने लोक सभा में यह स्वीकार किया था कि समूहन से रेलमार्गों की दक्षता में सुधार नहीं हुआ। निम्नलिखित कंडिकाओं में रेलवे महसूलों के विभिन्न वादों या आधारों पर विचार किया गया है।

सेवा की लागत—सेवा की लागत वाले वाद का अभिप्राय यह है कि रेलवे

प्रभारों का आधार वह लागत होनी चाहिए जो रेलवे को सेवा करने में उठानी पड़े। यह सीधी और तर्कसंगत बात मालूम पड़ती है परन्तु व्यवहार में यह सिद्धान्त अनुपयुक्त है। जब तक उपयोग में न आई हुई क्षमता विद्यमान है और प्लांट श्रेष्ठतम आकार तक नहीं पहुँचा है, तब तक औसत इकाई लागत पर पूर्णतया आधारित महसूलों से लाभकारक यातायात के आवागमन में रुकावट होगी। किसी लागत प्रमाप में कम मूल्य वाली परन्तु आकार और भार में बड़ी वस्तुओं पर महसूल बढ़ाने होंगे और ऊँचे मूल्य की वस्तुओं पर महसूल घटाने होंगे। इस प्रकार का पुनः समजन अवांछनीय होगा क्योंकि इससे यातायात की कुल मात्रा घट जायगी औसत इकाई लागत घट जायगी और कुछ अवस्थाओं में रेलों का परिचालन ही असम्भव हो जायगा। ऊँचे मूल्य की वस्तुओं के प्रेषण में वृद्धि हो जायगी। परन्तु यह वृद्धि कम मूल्य की वस्तुओं के संचलन में कमी हो जाने से होने वाली न्यूनता के मुकाबले में वृद्धि न रह जायगी। इसका कारण यह है कि ऊँची कीमत वाली वस्तुओं के परिवहन की मांग साधारणतया अधिक अप्रत्यास्थ (इनैलास्टिक) है। अप्रत्यास्थता जितनी अधिक होगी, महसूलों में परिवर्तन से यातायात की अनुक्रिया उतनी ही कम होगी। इसी प्रकार, मांग जितनी कम अप्रत्यास्थ होगी, अनुक्रिया उतनी ही अधिक होगी। इसके अलावा, सब वस्तुओं पर महसूल बराबर कर देने पर बुनियादी वस्तुओं का स्थानान्तरण कम होगा और विलास वस्तुओं का परिवहन कम होगा। कच्चा सामान या पत्थर का कोयला, जिसे निर्माण कारखानों पर पहुँचने के लिए बहुत दूरी तय करनी पड़ती है, रेल से ढोया जाना बन्द हो जायगा। दूसरे सिर्फ लागत पर आधारित महसूल देश के एकसार विकास में रुकावट डालेंगे। दूरी के अनुसार होने के कारण ये महसूल अवसर की समानता में रुकावट डालेंगे। जो उद्योग अपने बाजारों के निकट होंगे, उन्हें बहुत प्रोत्साहन मिलेगा और जो दूर के स्थानों में होंगे, वे अवरुद्ध हो जायेंगे।

यदि सिर्फ लागत पर बनाए गए महसूल लाभदायक भी होते (जो वे नहीं हैं), तो भी वे मनमानी करने के अलावा और किसी ढंग से लागू किए जा सकते। सेवा की सिर्फ आउट आफ पौकेट लागत वस्तुतः निर्धारित की जा सकती है। सिद्धान्ततः यह उस विशेष ढुलाई की विशेष लागत है जिसका महसूल बताया गया है। परन्तु खास तौर से यह सेवा की एक अधिक बड़ी इकाई, जैसे अतिरिक्त वैगन या गाड़ी की अतिरिक्त लागत है। परन्तु दोनों अवस्थाओं में महसूल ऐसे ढंग से निर्धारित करना नासमझी होगी जिसमें वे सिर्फ निर्धारणयोग्य लागत की ही पूर्ति कर सकें, क्योंकि उपयोग-रत क्षमता की अवस्थाओं में सामान्य खर्च नहीं निकलेंगे। ये खर्च किसी न किसी रीति से डालना आवश्यक है और लागत का कोई ऐसा वैज्ञानिक तरीका नहीं जिससे यह उन पर बांटा जा सके। यदि उत्पादन क्षमता यातायात से बिल्कुल समजित होती तो महसूल लागत पर तय कर दिये जाते, पर क्षमता और व्यवसाय

को सन्तुलित करना कठिन है। लागत सेवा करने से पहले ही हो जाती है जिसके कारण यह जानना कठिन है कि यातायात को विशेष इकाई के परिचालन में कितनी लागत आयेगी। यह उपपत्ति सिर्फ सम्भरण के पहलू पर बल देती है और माग के पहलू को नजरन्दाज कर देती है। यद्यपि यह निष्कर्ष निकालना तर्क सगत प्रतीत होता है कि पृथक-पृथक महसूल पूरी तरह लागत पर आधारित नही हो सकते, तो भी लागत का सिद्धान्त महसूल निर्धारित करने में दो कारणो से एक महत्वपूर्ण घटक है। प्रथम तो लागत विशेष या आउट आफ पौकेट लागत अर्थात् महसूल की निचली सीमा स्थिर कर देती है क्योंकि आउट आफ पौकेट वह लागत है जो तभी उठाई जायगी जब कोई विशेष ढुलाई हो, पर विशेष ढलाई न होने पर वह नही होगी। इसलिए स्पष्ट है कि कम खर्च डालना बुद्धिमत्ता नही। इससे तो व्यवसाय छोड देना फायदेमन्द होगा। आउट आफ पौकेट लागत से नीचे महसूल सारे समाज तथा रेलवे की दृष्टि से अलाभकर होंगे। उनके परिणाम-स्वरूप उद्योग का विकास और स्थिति अनुपयुक्त रूप से होगी, क्योंकि वस्तुएँ और सेवाएँ उत्पादन की (जिसमें परिवहन भी शामिल है) पूरी लागत से कम पर मिलेंगी। दूसरी बात यह है कि लागत विशिष्ट महसूलो को समजित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे सब महसूलो से होने वाली कुल आयका निर्धारण होता है। कुल लागत खास महसूलो को निश्चित रूप से तय नहीं करती, पर इसका उस पर प्रभाव पड़ता है।

सेवा का मूल्य—इस उपपत्ति का अर्थ यह है कि ऐसा महसूल लिया जाये जो यातायात दे सके। उदाहरण के लिए, यदि रानीगज की खानो में कोयला १०) रुपये टन है और बम्बई में रेलवे घरणस्ट (wharf) पर २०) बीस रुपये टन है तो स्पष्ट है कि कोयला व्यापारी १०) रु० टन से अधिक महसूल नही दे सकता। इस आधार पर महसूल प्रभेद के सिद्धात (Principle of discrimination) के अनुसार तय किये जाते है। वे इसलिए ऐसे तय किए जाते हैं: (१) क्योंकि प्रत्येक सेवा की माँग की प्रत्यास्थता एक सी नहीं होती, और (२) क्योंकि माँग कीमतों के एकाधिकार और स्वतन्त्रता से प्रत्यास्थता की विभिन्नताओं पर विचार करना सम्भव हो जाता है। अगर सर्विस की माँग की प्रत्यस्थता एक हो तो दरें आउट आफ पौकेट खर्चों के अन्तर की सीमा तक अलग-अलग होंगी और प्रत्येक वस्तु या ढलाई का साझी लागत में आनुपातिक हिस्सा होगा। पर सब मागें इकाई प्रत्यास्थता की नहीं होती और जिन सेवाओं में माँगें अप्रत्यास्थ होती है उनके महसूल अपेक्षया ऊँचे रक्खे जा सकते हैं और जिनमें माँगें प्रत्यास्थ है, उनमें महसूल कम होना चाहिए। माग कीमतें, की गई सेवा के मूल्य पर निर्भर होती हैं। सेवा का मूल्य प्रत्येक शिपर या प्रेषक के लिए की गई विशेष सेवा के आर्थिक परिमाण का निर्देश करता है। आवश्यक नहीं कि यह वही राशि हो जो शिपर वास्तव में देता है। यह वह राशि है जो आवश्यकता होने पर वह स्थानान्तरण से विरत हो जाने के

बजाय देना पसन्द करेगा। यथार्थ माप की दृष्टि से सेवा का मूल्य माग की अधिकतम कीमत के तुल्य है, अथवा उस उच्चतम महसूल के तुल्य है जो लेने पर यातायात की हानि न पहुँचेगी।

निरी शौकिया मुसाफिरी यात्राओ को छोड़ कर और सब परिवहन सेवाएं व्यावसायिक कारणो से खरीदी जाती हैं और जिपर जो अधिकतम महसूल अदा करेगा, वह पृथकृत लाभ की उस मात्रा पर निर्भर है, जो उस प्रेषण के परिणाम स्वरूप वसूल होने की आशा है। तत्कालिक अर्थ में यह लाभ उद्गम के स्थान और गन्तव्य स्थान पर वस्तुओ के मूल्य में जो अन्तर है उस पर निर्भर है, जैसा कि ऊपर कोयले का उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है। किसी वस्तु के लिए परिवहन की माँग इसी कारण पैदा होती है क्योंकि स्थान स्थान पर मूल्यो में अन्तर होता है। मूल्यों का अन्तर अनेक कारणों से होता है जिनमें एक कारण स्वयं परिवहन भी है। अगर रेलवे या परिवहन के अन्य किसी साधन को एकाधिकार प्राप्त हो, यदि वह सरकारी प्रतिबन्ध के बिना या सम्भावित प्रतियोगिता के भय के बिना, मुक्त रूप से अपनी सेवाओं की कीमत तय कर सके और यदि वह सब प्रेषकों के सब ढुलाई की वस्तुओ के माँग मूल्य जान सके तो इन परिस्थितियों में रेलवे सेवा के पूरे मूल्य के बराबर महसूल लेकर अधिकतम लाभ उठा सकता है। इस में अवस्था प्रत्येक वस्तु के लिए प्रत्येक प्रेषक के लिए और उसी वस्तु की विभिन्न ढुलाइयो के लिए पृथक महसूल रखना होगा। परन्तु सेवा के मूल्य का सिद्धान्त सख्ती से लागू करने के लिए आवश्यक अवस्थाएँ मौजूद नहीं हैं।

तो भी महसूल निर्धारण में सेवा के मूल्य का बड़ा महत्व है, क्योंकि इसमे महसूलो की अधिकतम सीमा निश्चित करने में सहायता मिलती है। महसूल उच्चतम माँग कीमत से नीचे हो सकता है परन्तु इससे ऊपर नहीं हो सकता। जब तक कोई यातायात होता है तब तक यह स्पष्ट है कि महसूल कुछ प्रेषकों के लिए सेवा के मूल्य से कम है। यदि यातायात नहीं होता तो यह महसूल सभी प्रेषकों के लिए सेवा के मूल्य से अधिक हो जाता। इस प्रकार सेवा का मूल्य कारबार की मात्रा से निकट सम्बन्ध रखता है। इसका दूरी से भी अनिश्चित सम्बन्ध है। सेवा की लागत दूरी की वृद्धि के साथ बढ़ जाती है, पर कोई कारण नहीं कि सेवा का मूल्य भी इसी तरह बढ़े। महसूलो में दूरी की उपेक्षा करने का एक कारण यह है कि ढुलाई की दूरी और सेवा के मूल्य में कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है।

यातायात के लिए सहा प्रभार लागू करना—यदि किसी रेलवे के महसूल और प्रभार पूरी तरह सेवा की लागत पर आधारित नहीं हो सकते तो वे उसी तरह सेवा के मूल्य पर भी आधारित नहीं हो सकते। सेवा की लागत अधिकतम महसूल का निर्धारण करती है और प्रेषक के लिए की हुई सेवा का मूल्य युक्तियुक्त महसूल या प्रभार को अधिकतम बनाता है। इसलिए रेलवे और अन्य वाहक यातायात

द्वारा सह्य प्रभार लागू करने के मार्ग पर चलते हैं। इस सिद्धांत का कई प्रकार से निर्वचन किया गया है। कभी कभी इसे बलाद्ग्रहण (extortion) का साधन कहा जाता है और कभी इसे भार कम करने का उपाय कहा जाता है। प्रत्यक्ष है कि यह गड़बड़ी इस तथ्य से पैदा होती है कि यातायात के लिए सह्य प्रभार लागू करने का सम्बन्ध सेवा के मूल्य से है और वह प्रभार एकाधिकार कीमत निर्धारण के ढंग का है। बहुत बार उस "यातायात के लिए सह्य"—जो सेवा का अधिकतम मूल्य है—समझ लिया जाता है। यातायात के लिए सह्य प्रभार लागू करने का एकाधिकार के अर्थ में यह मतलब है कि वे महसूल जिनसे अधिकतम शुद्ध फल हो। इसका यह मतलब नहीं है कि प्रत्येक ग्राहक से यथासम्भव अधिकतम पैसा अवश्य ले लिया जाय। इसके विपरीत कुछ विशिष्ट सीमा के अन्दर लागू होने वाले महसूल खास वस्तुओं या वस्तुओं की श्रेणियों के लिए होते हैं, व्यक्तियों के लिए नहीं। महसूल कुछ सम्भावित प्रेषकों की माँग कीमता से ऊपर जा सकते हैं, परन्तु महसूलों का यातायात की मात्रा पर जो प्रभाव होता है, उसे देखते हुए अधिकतम लाभ उठाने के लिए अधिकतर सेवाओं के वास्ते वे माँग कीमतों से नीचे होंगे।

अधिकतम लाभदायक महसूल सेवा की माँग की प्रत्यास्थता पर निर्भर है और प्रत्यास्थता पर एकाधिकार और प्रतियोगिता का प्रभाव पड़ता है। एकाधिकार वाले कारबार पर महसूल यह देखकर लगाये जायेंगे कि कितना महसूल लगाने से यातायात नष्ट न होगा। उनमें सबसे अधिक लाभदायक महसूल प्रथमतः वस्तु की प्रकृति के अनुसार तय होता है। प्रतियोगिता वाले कारबार में यह देखकर महसूल तय किये जायेंगे कि अधिकतम कितना महसूल लागू कर देने से यातायात की दिशा में परिवर्तन न होगा। इस प्रकार नियंत्रक कारक वह महसूल है, जो दूसरा प्रतियोगी लागू करता है।

इस सिद्धांत की एक महत्वपूर्ण आलोचना यह है कि औसत इकाई लागत से निचले महसूलों पर किया गया यातायात दूसरे यातायात पर महसूल बढ़ा देता है। दूसरे शब्दों में, कम महसूल वाला कारबार अधिक महसूल वाले के सहारे पर चलता है। यह पराश्रयी होता है यह आलोचना आवश्यक रूप से मान्य नहीं। तथ्य तो यह है कि कम महसूल वाली वस्तुएँ ऊँचे दर्जे की वस्तुओं का महसूल नीचे रखती हैं जब तक नीचे महसूल आउट आफ पौकेट खर्चों से अधिक आमदनी कराते हैं, तब तक वे रेलों के लाभ में वृद्धि करते हैं। इस लाभ के न होने पर रेलों को ऊँचे दर्जे की वस्तुओं पर महसूल बढ़ाने होंगे, अन्यथा कारबार छोड़ना पड़ेगा। रेलों के कार्य से सब जगह पर प्रकट होता है कि ऊँचे दर्जे के यातायात की अधिकतम आय भी इतनी अधिक नहीं होती कि सब खर्चे पूरे हो सकें। इसलिए यातायात के लिए सह्य प्रभार लागू करना न केवल बलाद्ग्रहण का साधन नहीं है, बल्कि दूसरी ओर यह भार कम करने का उपाय है। लागत की दृष्टि से भी यातायात द्वारा सहना वाला सिद्धांत बहुत अच्छा है बशर्ते कि कुल लाभ युक्तियुक्त स्तर

पर हो। असली लक्ष्य, अर्थात् महसूल व्यय और कारबार अधिक ध्यान में रखते हुए निचले दर्जे की वस्तुओं के लिए महसूल कम और ऊँचे दर्जे की वस्तुओं के लिए महसूल अधिक होना चाहिए, पर शर्त यह है कि यातायात की प्रत्येक वस्तु ऊपरी व्यय में कुछ हिस्सा बटाये, चहे उसकी राशि थोड़ी क्यो न हो। सब प्रेषको मे न्याय का दृष्टि से यह कह देना उचित होगा कि उन्हे सिर्फ इसी कारण ऊँचे महसूल अदा करने को बाधित न करना चाहिए क्योंकि व अदा कर देंगे। अधिक अदा करने वाले यातायात पर महसूल की ऊपरी सीमा वह लागत होनी चाहिए जो सिर्फ उस यातायात के लिए परिवहन करने पर आयेगी।

भारत में परिवहन

भारत में सड़कें और पहियेदार गाडिया चार हजार ई० पू० में भी थीं। यद्यपि स्वर्ण युग में भारत की सडकों की स्थिति ससार के अन्य देशों की अपेक्षा अच्छी थी, परन्तु मौजूदा सड़क प्रणाली आधुनिक परिस्थितियों के लिए सर्वथा अपर्याप्त है। ससार में सडको की लम्बाई दृष्टि से भारत का स्थान सबसे नीचे है। जो सडकें म्युनिसपल सडकें नहीं हैं, उनकी कुल ३,४०,००० मील लम्बाई में से सिर्फ ३३% से ऊपर पक्की हैं और ११००० मील लम्बे राष्ट्रीय राजपथ हैं। मोटर योग्य सडक की लम्बाई सिर्फ १,८१,००० मील है परन्तु आजादी के बाद सडकों के निर्माण और रख-रखाव पर अधिक ध्यान दिया गया है। पचवर्षीय योजना और राज्य सडक उन्नति योजनाओं में सड़क निर्माण पर बल दिया गया है। इस दिशा में अच्छी प्रगति हुई है यद्यपि बहुत कुछ करना बाकी है। मोटर परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया जा रहा है।

भारत की रेलवे प्रणाली, जो ३४००० मील से कुछ अधिक लम्बी है, ससार में चौथे नम्बर पर है, और एशियामें पहले नम्बर पर है। भारत में शुरू में रेल मार्ग ब्रिटिश कम्पनियों ने बनाए और वित्तपोषित किये थे और उन्हें सरकार ने पूजी-नियोजन पर ५% ब्याज तथा मुफ्त भूमि की व्यवस्था करने की गारण्टी दी थी। पिछली शताब्दी के अन्त तक गारन्टी शुदा कम्पनिया भारत सरकार पर ७६ करोड़ रुपये का भार डालती थीं, क्योंकि कम्पनियों को इतना लाभ नहीं होता था कि वे ५% का गारन्टी किया हुआ ब्याज अदा कर सकें। परिणामत एकवर्थ कमेटी की सिफारिश पर सरकार ने अपनी कम्पनियों को खरीदने की नीति को त्वरित कर दिया और १९२८ में रेलवे वित्त साधारण वित्त से पृथक कर दिया गया। दूसरे महायुद्ध के दिनों में रेलो को उनकी क्षमता से अधिक इस्तेमाल किया गया और राष्ट्रीय सरकार के हाथों में रलवे प्रणाली जीर्णावस्था में आई, परन्तु आजादी के बाद से भारतीय रेलें कोलम्बो योजना आदि अनेक योजनाओं के अधीन मिल रही वित्तीय सहायता से पुन शक्तिलाभ कर रही हैं और आशा है कि उन्हें बहुत शीघ्र ससार की रेलवे प्रणालियों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो जाएगा। महसूलों और भाडों

तथा साधारण संगठन का वैज्ञानिकीकरण कर दिया गया है। सब रेल मार्गों पर भाड़े एक से हो गए है, और एक वस्तु के लिए विभिन्न मार्गों पर महसूल की विषमता हटा दी गई है। खर्चा डालने की हूसमान (टेलिस्कोपिक) योजना को कार्यान्वित करने की दृष्टि से असन्तत दूरी प्रणाली (discontinuous milage system) को उठा दिया गया है, और अब सब रेल मार्ग एक रेलवे प्रणाली माने जाते हैं। ३४ लाइनो को मिलाकर इन छ समूहो में बाँट दिया गया है—उत्तर रेलवे, पश्चिमी रेलवे, मध्यवर्ती रेलवे, दक्षिणी रेलवे, पूर्वी रेलवे, और उत्तर पूर्वी रेलवे (हाल में ही उत्तरपूर्वी रेलवे को दो पृथक समूहो में बाँट दिया गया है)।

नौकावहन (Shipping) के क्षेत्र में भारत के पास लगभग ४००० मील लम्बी तट भूमि है और इस देश का भारत महासागर में केन्द्रीय स्थान है। भारत में पाँच प्रमुख बन्दरगाह हैं—बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कोचीन और विशाखापटनम और ३९ छोटे बन्दरगाह है जिनमें से कुछ को अब उन्नत किया जा रहा है। बम्बई का बन्दरगाह ससार के सबसे बड़े और सुरक्षित बन्दरगाहो में है। परन्तु आजादी से पहले भारतीय व्यापारिक जहाजो को तटीय व्यापार में सिर्फ २५·६% और समुद्र पार के व्यापार में २% से भी कम हिस्सा मिलता था। भारत द्वारा स्वामित्व-कृत जहाजो की स्थिति और भी खराब थी। आजादी के बाद भारतीय जहाजरानी ने अपने अतीत गौरव को पुनरुज्जीवित करना शुरू किया है और अब सरकार जहाजरानी और जहाजनिर्माण में गहरी दिलचस्पी ले रही है। दो कारपोरेशन, जिनमें ५१% शेयर सरकार के हैं, बनाये गए हैं। विशाखापटनम जहाज निर्माण याडं पर सरकार ने अधिकार कर लिया है और वह अधिकाधिक जहाजो का निर्माण करना चाहती है।

वायवीय परिवहन की उन्नति के लिए भारत विशेष रूप से उपयुक्त है। अन्त-र्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण उसकी स्थिति अद्वितीय है, क्योकि बहुत से विश्वमार्गो को इस देश से गुजरना पड़ता है। विश्वमार्गों के अलावा भारत का विस्तृत राज्य क्षेत्र वायु सेवाओ के विकास के लिए विशेष उपयुक्त है। वाणिज्य केन्द्र एक दूसरे से काफी दूरी पर है और वायु परिवहन से मूल्यवान् समय की काफी बचत हो सकती है। यह बात विचित्र लगती है परन्तु है सच, कि ससार सबसे पहली सरकारी हवाई डाक भारत में १९११ में इलाहाबाद की प्रदर्शनी के सिलसिले में लेजाई गई थी। नागरिक उड्डयन के विषय में सरकार की हाल की प्रस्थापनाओ का लक्ष्य ऐसी सेवाओ की एक प्रणाली बनाने की योजना निर्माण करना है जो सारे भारत के सामाजिक, वाणिज्यिक और औद्योगिक लाभ की दृष्टि से आधुनिक परिस्थितियों में आवश्यक है। देश के विभाजन के बाद कुछ नई कम्प-नियो को लाईसेन्स दिए गए थे और १९४९ में भारत सरकार ने टाटा सन्स लिमि-टेड के साथ मिलकर वैदेशिक सेवाओ के लिए एयर इन्डिया लिमिटेड का आरम्भ किया। दो कम्पनियो ने पूर्व की ओर भी वैदेशिक सेवाएँ शुरू की, परन्तु कोई भी

कम्पनी अपनी लागत न निकाल सकी। एक वायु परिवहन जांच समिति नियुक्त की गई जिसने सितम्बर १९५० में प्रतिवेदन दिया। समिति ने देखा कि एयर इन्डिया के अलावा और सब कम्पनियाँ हानि उठा रही हैं और सरकार द्वारा पेट्रोल के सीमा-शुल्क में दिये जाने वाले आशिक अपहार (रिबेट) को छोड दिया जाय तो इस कम्पनी को भी हानि होती। क्योंकि सरकार सब वायुमार्गों को आर्थिक सहायता दे रही थी और वित्तीय सहायता के बावजूद सब कम्पनिया हानि उठा रही थी, इसलिए सब कम्पनियो को खरीद लने का निश्चय किया गया। अत १९५३ में भारत में वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण हो गया।

अध्याय २८

वस्तुओं का वितरण

DISTRIBUTION OF GOODS

बेचना या विक्रय आधुनिक अर्थ व्यवस्था में विपणन का एक बहुत महत्वपूर्ण और व्ययसाध्य काम है। सब लोग यह अनुभव कर रहे हैं कि कम लागत पर अधिक बिक्री होनी चाहिए। वितरण की लागत में ये चीजें शामिल हैं (१) निर्माण के स्थान से वस्तुओं को उपभोग के स्थान पर पहुँचाने की लागत; (२) स्टाक को वित्तपोषित करने और एकत्र करने की लागत, और (३) बिक्री की वास्तविक लागत जिसमें बिक्री निमन्त्रण, विज्ञापन, बिक्रीवर्धन, सेल्समैन और उनका प्रशिक्षण, बाजार अनुसंधान, अभिलेख रचना और उपभोक्ताओं की सेवा की वास्तविक लागत। यह हिसाब लगाया गया है कि ये सब लागतें, उपभोक्ता वस्तु की जो कीमत देता है उसकी ५०% होती हैं। बिक्री के अन्तर्गत माँग पैदा करना, ग्राहक तलाश करना, कीमत की बात-चीत करना, और बिक्री की अन्य शर्तें भी शामिल हैं।

माँग पैदा करना—माँग पैदा करने से हमारा आशय यह है कि लोगों में वस्तुओं की अभिलाषा पैदा की जाय। अभिलाषा तभी पूर्ण हो सकती है जब उसके साथ पैसा देने का भी सामर्थ्य हो। अभिलाषा और खरीदने की सामर्थ्य मिलकर माग कहलाते हैं। सिर्फ अभिलाषा से वस्तुओं की बिक्री नहीं होती, पर तो भी इससे एक ब्राड के मुकाबिले में दूसरी ब्राड बिक सकती है, और एक चीज के मुकाबिले में दूसरी चीज बिक सकती है। दूसरी बात यह कि अगर अभिलाषा पैदा हो जाये तो आदमी उसे पूरा करने के लिए अधिक मेहनत से काम कर सकता है। इस प्रकार, अभिलाषा रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने में बड़ा प्रबल घटक है। क्यों कि हम प्रायः इतनी वस्तुएं पैदा कर सकते हैं जितनी उपभोक्ता खरीद नहीं सकते, इसलिए बेचने वाले को यह यत्न करना पड़ता है कि लोगों में उनको वस्तु के लिए इच्छा पैदा हो। बाजार में नई-नई चीजें आती हैं और क्योंकि उपभोक्ताओं को उनके बारे में कुछ मालूम नहीं, इसलिए उनकी इच्छा जागृत करने के लिए उन्हें वस्तुओं के बारे में सब बात बतानी चाहिए। हर क्षेत्र में बहुत से उत्पादक हैं और प्रत्येक को यह यत्न करना चाहिए कि लोग उनकी वस्तुओं को औरों की वस्तुओं से अधिक पसन्द करें। माँग व्यक्तिगत रूप से बिक्री करके विज्ञापन, वस्तुओं के प्रदर्शन, प्रत्यक्षीकरण (Demonstration) और साधारण शिक्षात्मक काम या प्रकाशन द्वारा पैदा की जा सकती है। परन्तु वास्तविक बिक्री करने से पहले बाजार

की स्थिति को समझ लेना सर्वथा आवश्यक है क्योंकि जोरदार बिक्रीबाजी और भ्रामक प्रचार द्वारा अनुचित बिक्री कुछ समय के लिए तो बनाई जा सकती है पर उसे देर तक कायम नहीं रखा जा सकता, क्योंकि प्रत्येक बिक्री खरीदने वाले को एक ऐसी वस्तु देती है जो उसे यह बताने लगती है कि उसने इसे खरीदने में क्या गलती की है। इस प्रकार एक ऋणात्मक विज्ञापन और ऋणात्मक विक्रयचातुर्य की ताकत पैदा हो जाती है जो अपने आप ही बिक्री में रुकावट डाल देती है। इस प्रकार की रुकावट से बचने के लिए उन कारकों का पूर्ण अध्ययन करना चाहिए जो विपणन कार्यक्रम की सफलता या विफलता का फैसला करते हैं। इस प्रकार बेचने वाले को वस्तु के गुणधर्मों और जनता की आवश्यकताओं इच्छाओं और मांगों का पूरी तरह पता होना चाहिए। उसे छिपी हुई मांग, उपभोक्ता की अभिरुचियों, आदतों और वस्तुओं के लिए पैसा खर्च करने के सामर्थ्य का पता लगाने के लिए आरम्भिक अनुसन्धान की योजना करनी चाहिए। कई बार इस आरम्भिक अनुसन्धान और बाजार गवेषणा में भ्रम हो जाता है, जो इस अनुसंधान का सिर्फ एक हिस्सा है। बाजार गवेषणा का मतलब सिर्फ बाजार का अध्ययन है और इस प्रकार बाजार के विश्लेषण से प्रकट होता है कि क्या चीजें बिकती हैं। इस प्रारम्भिक अनुसन्धान में बिक्री प्रबंधक को ये बातें जाननी होंगी।

(१) क्या चीज बेचनी है—उत्पाद विश्लेषण,
(२) किस के हाथ बेचनी है—बाजार गवेषणा या उपभोक्ता विश्लेषण,
(३) कितनी चीज बेचनी है—बिक्री आयव्ययक,
(४) किस कीमत पर बेचनी है—पूर्वानुमान और कीमत तय ,
(५) किन मार्गों से वह बेच सकेगा—व्यापारसरणियों का अध्ययन।

उत्पाद विश्लेषण—सब से पहले बिक्री प्रबंधक को यह मालूम होना चाहिए कि वह क्या चीज बेचना चाहता है। उसे अपनी वस्तु का उन सब विशेषताओं की दृष्टि से पूरा अध्ययन करना चाहिए जिनके कारण उपभोक्ता इसे उसके प्रतिस्पर्धी की अपेक्षा अधिक स्वीकार्य समझे। इस प्रकार का अध्ययन मितव्ययिता, दक्षता टिकाऊपन, सुविधा, काम में लाने की सरलता, सधानितरूप, उपयोग में आसानी से आसकना, बाह्यरूप की आकर्षकता और मरम्मत की आसानी के दृष्टिकोण से करना चाहिए। उसे यह भी मालूम होना चाहिए कि वह वस्तु आवश्यकता की चीज है या विशेषताजनक चीज है। पात्र (कंटेनर) या पुड़िया (पैकेज) के स्वरूप का भी अध्ययन करना चाहिए और प्रतिस्पर्धी की वस्तुओं से तुलना करनी चाहिए। वस्तु परिवर्तन करने की सम्भावना या कुछ वस्तुओं की जगह वैसी ही अधिक बिक सकने वाली और वस्तुएं लाने पर भी विचार करना चाहिए। उत्पाद विश्लेषण के काम को पूरा करने के लिए उपभोक्ताओं की आवश्यकता का भी अध्ययन करना चाहिए। परन्तु इस विश्लेषण को बाजार गवेषणा समझने के भ्रम में न पड़ना चाहिए क्योंकि दोनों चीजें भिन्न-भिन्न हैं। बाजार गवेषणा से यह

पता चलता है कि क्या चीज बिकती है और इसका लक्ष्य मौजूदा माँग को पूरा करना है, जब कि उपभोक्ता की आवश्यकताओं के विश्लेषण से यह पता चलता है कि क्या चीज बेची जा सकती है। उत्पाद विश्लेषण के सिलसिले में थोड़ी सी वस्तुओं या आकारों, शैलियों, रंगों, या पुड़ियों के थोड़े से क्षेत्र में उत्पादन को प्रभावित करके दक्षता बढ़ाने की सम्भावना पर भी ध्यान देना चाहिए।

बाजार गवेषणा या विश्लेषण—उत्पाद और उपभोक्ता की किस्म में बड़ा भारी सहसम्बन्ध है। किसी प्रबन्धक को अपने ग्राहकों या सम्भव ग्राहकों का काफी एक से प्रकार प्रश्नों या वर्गों में विश्लेषण करना पड़ता है और प्रत्येक प्रश्न की आपेक्षिक आवृत्ति निकालनी पड़ती है। बाजार के प्रश्न से उसे पता चल जायगा कि यह धनिक वर्ग, मध्यम वर्ग या गरीब वर्ग में से किसका है। यदि तीनों वर्गों का पता चल जाय तो प्रत्येक वर्ग की संख्या तय करने के लिए संख्यात्मक अध्ययन करना चाहिए। यह पता लगाना चाहिए कि बाजार आडम्बर प्रियलोगों का है या गवार लोगों का, इस वस्तु को कौन इस्तेमाल करता है और किसे इस वस्तु के उपयोग की आदत डाली जा सकती है। यह देखकर बाजार की सम्भावना का निश्चय करना चाहिए कि सम्भव उपभोक्ता के पास धन है या नहीं, यह वस्तु एक विशेष वर्ग को बेचने योग्य है या नहीं। यदि वस्तु में कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो इसे प्रतियोगी वस्तुओं से कोई वास्तविक प्रदान करती हैं, तो यह मालूम करना चाहिए कि यह विशेषता किस वर्ग को सबसे अधिक पसद आयेगी। सामाजिक भेदों से वस्तुओं की बिक्री पर बहुत प्रभाव पड़ता है, इसलिए लोगों के रीति-रिवाजों, पसन्दनापसन्दगी और आदतों का अध्ययन करना चाहिए। इसके बाद जलवायु-सम्बन्धी, औद्योगिक और कृषिक अवस्थाओं का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि इन तत्वों का जनता के स्वभाव पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्रदेशों के विभिन्न रूपों—नगरों, कस्बों, गाँवों—का भी बिक्री पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। एक नगर दूसरे नगर से अधिक समृद्ध हो सकता है। इसके अलावा, मुख्यतः जिस क्षेत्र में माल बेचना है, उसकी खास विशेषताओं पर भी विचार करना चाहिए। इसके बाद यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि बाजार में बच्चों, जवानों और बूढ़ों की कितनी कितनी संख्या है और यह भी देखना चाहिए कि पुरुष अधिक हैं या स्त्रियाँ, और इन सबों में बूढ़ों, जवानों और बच्चों में क्या अनुपात है। यह बात भी जानने का यत्न करना चाहिए कि क्या आमदनी में परिवर्तन से वस्तु की माँग में परिवर्तन हो जाने की सम्भावना है। फैशन के चक्र का अध्ययन भी उपयोगी होगा।

प्रधानतः बाजार गवेषणा जनता का एक विश्लेषण है और इसलिए इसमें उपभोक्ता की आदतों के अतीत काल का अध्ययन किया जाता है, जिससे यह पता चले कि मौजूदा आदतें किस कारण बनीं, वर्तमान काल में यह जानने के लिए कि लोग क्या कर रहे हैं, और भविष्य में यह पता लगाने के लिए कि क्या होने की सम्भावना है। यह अध्ययन पाँच विभिन्न दृष्टियों से किया जा सकता है, अर्थात्

सांख्यिकीय, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और मानवशास्त्रीय दृष्टियों से किया जा सकता है। वितरण की समस्या का सांख्यिकीय अध्ययन सबसे अधिक वास्तविक है और अनेक तरह से सबसे अधिक विश्वसनीय भी है। आंकडों का उपयोग (१) समय की प्रवृत्तियों को प्रकट करने के लिए, (२) सिर्फ मौजूदा अवस्थाओं का पता लगाने के लिए, (३) भविष्य की प्रवृत्ति का अनुमान करने के लिए, (४) ज्ञात कारकों के बीच की अज्ञात बातें जानने के लिए, तथा (५) एक तथ्य समूह या एक प्रवृत्ति की दूसरे तथ्य समूह या दूसरी प्रवृत्तियों से तुलना या सहसम्बन्ध करने के लिए किया जाता है, अर्थात् एक वर्ष की बिक्री से दूसरे वर्ष की बिक्री की, एक क्षेत्र की प्रति व्यक्ति बिक्री से दूसरे क्षेत्र की प्रति व्यक्ति बिक्री की तुलना, इत्यादि। आर्थिक दृष्टिकोण यह है कि यह मालूम किया जाय कि लोग एक वस्तु के लिए कितना पैसा दे सकते हैं, वे अपने धन को रहन सहन की आवश्यकताओं के लिए किस तरह बांटते हैं और उनके पास जिन्हें वे विलास वस्तुएं और आवश्यक वस्तुएँ समझते हैं, उन पर खर्च करने के लिए कितना रुपया बच रहता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का मतलब यह है कि विचारणीय बाजार के अन्तर्भूत व्यक्तियों की बुनियादी जन्मजात सहज प्रवृत्तियों और आदतों का ज्ञान-पुष्ट अध्ययन किया जाय और यह सोचा जाय कि किसी विशेष वस्तु को बेचने के लिए सबसे अधिक सफलतापूर्वक उनसे कैसे लाभ उठाया जा सकता है। विशेष रूप से ये बातें विज्ञापन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, जिसका उद्देश्य लोगों को वस्तुएँ खरीदने के लिए प्रेरित करना है। मानवशास्त्र मानव-जाति की आदतों और प्रथाओं तथा इसके परिवर्धन के इतिहास का अध्ययन है। इसका वैज्ञानिक वितरण की प्रविधि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। जातीय आदतें और प्रवृत्तियां किसी समुदाय के सामाजिक ढांचे में बड़ी गहरी गई हुई होती हैं। उनका अनुसंधान करना चाहिए।

बिक्री आयव्ययक—अगला प्रश्न यह है कि आपने कितना माल बेचना है। यह बात बहुत हद तक इसके पूर्ववर्ती दो कारकों पर निर्भर है। इसके लिए बिक्री प्रबंधक को किसी विशेष बस्ती या बाजार में मौजूद धन के वितरण पर विचार करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, उसे बाजार के आकार का पता लगाना होता है और यह देखना होता है कि मौजूदा सम्भरण सतृप्ति बिन्दु पर पहुंच गया या नहीं और क्या बाजार को और आगे बढ़ाने की सम्भावना है। यदि वस्तुएँ बढ़िया क्वालिटी की हों तो बिक्री बढ़ाने की सम्भावना हमेशा बनी रहती है। इसलिए यह आवश्यक है कि धनिक वर्ग की वस्तुएं कम मूल्यों पर निम्न और मध्यम वर्ग को बेचकर, और सम्भव हो तो क्वालिटी भी थोड़ी सी घटाकर उनका प्रचार किया जाय, क्योंकि अपनी पहले वाली सीमित बिक्री में उन्हें पहले ही समाज में स्थान प्राप्त हो चुका है और उसके कारण, बिक्री होने में बहुत मदद मिलेगी। अगला प्रश्न यह है कि अगर कोई प्रतियोगी हो तो उस पर विचार किया जाय। अन्यथा एकाधिकारी होने के कारण आपकी समस्या आसान हो गई, क्योंकि आपका बाजार पर नियन्त्रण हो

गया। खुदराफरोश का माल जमा करना भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि विक्री प्रबंधक को यह पता होना चाहिए कि खुदराफरोश फर्म की वस्तुएं किस सीमा तक वितरित करता है क्योंकि कई बार सम्भव है कि खुदराफरोश त्रुटिपूर्ण प्रबंध की कमी पूरी कर दे। जब ऊपर वाली जानकारी और इससे पहले बताई गई सूचनाएं इकट्ठी हो जायें और इनके साथ फैक्ट्री की उत्पादक क्षमता सम्बन्धी जानकारी और मिल जाय तो विक्री प्रबंधक आगामी वर्ष के लिए विक्री आयव्ययक तैयार करने के वास्ते आयव्ययक समिति के साथ विचार-विनिमय के लिए तैयार है। विचार-विनिमय के बाद आयव्ययक की मात्राएं कोटे के रूप में अलग-अलग प्रदेशों में बाँट देनी चाहिए। कोटे तै करने में सेल्समैन से राय लेना अच्छा होगा, क्योंकि उसे अपने क्षेत्र की प्रत्यक्ष जानकारी है। "कोटा तय करने से न केवल विक्री के बल का एक लक्ष्य निर्धारित करने में सहायता होती है अपितु यह कम्पनी के लिए सेल्समैन का काम जाँचने का और सेल्समैन को अपना काम जाचने का एक पैमाना भी है और कोटा तय करने का गहरा अर्थ यह तथ्य है कि कोटा तय करने वाले मैनेजर को सम्बन्धित सेल्समैन के क्षेत्र की अवस्थाओं का पता होना चाहिए। यह उसके काम के लिए एक उद्दीपन है ताकि वह अपने आदमियों के लिए बुद्धिपूर्वक एक लक्ष्य निश्चित कर सके"।

कीमत तय करना और कीमत नीति

कीमत नीति को प्रभावित करने वाले कारक—कीमत तय करना बड़ी कठिन समस्या है। क्योंकि यह बहुत पहले ही करना पड़ता है और इस पर बहुत-सी बातों का प्रभाव पड़ता है, इसलिए विक्री प्रबंधक को कीमत नीति बनाते समय और वस्तुओं की कीमत रखते हुए सब प्रकारों पर विचार करना चाहिए। बहुत से निर्धारक कारक उद्योग-उद्योग और कम्पनी-कम्पनी में अलग-अलग होते हैं। तो भी कुछ आधारभूत सिद्धान्त सब अवस्थाओं में विचारणीय होते हैं। वे सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

(१) सब वस्तुओं के खर्च और युक्तियुक्त लाभ की व्यवस्था करने के बाद उपभोक्ता को वस्तु की लागत। साधारणतया किसी भी कम्पनी का नुकसान उठाकर बेचना ठीक नहीं, यद्यपि सम्भव है कि कुछ परिस्थितियों में ऐसा करना आवश्यक हो जाय। वस्तु की विक्री कीमत में निर्माण की लागत जिसमें कच्चा सामान, श्रम और ऊपरी व्यय शामिल है, तथा प्रशासनीय और बेचने के व्यय आ जाने चाहिए। अवक्षयण (डिप्रेसिएशन), कर, ब्याज आदि के लिए पर्याप्त व्यवस्था करनी चाहिए। इसके बाद इतना काफी अन्तर रहना चाहिए कि बेचने वाले को "युक्तियुक्त" लाभ हो जाय जिसमें न केवल मालिकों की पूंजी पर उचित प्रतिफल आ जाय बल्कि उन जोखिमों की सम्पूर्ति के रूप में कुछ अतिरिक्त मात्रा भी हो जो पूंजी के स्वामियों ने उपक्रमकर्ता के रूप में उठाई हैं।

(२) दूसरी जानने योग्य बात यह है कि प्रतिस्पर्धियों ने इसी प्रकार की वस्तुओं की क्या कीमत रक्खी है, और उसे बनाने में उन्हें क्या लागत आती है। स्पष्ट रूप से इसका यह अर्थ है कि जिन अवस्थाओं में वस्तु का उत्पादन होता है, उनका ज्ञान प्राप्त किया जाय। यदि उत्पादन 'बढ़ती लागत घटती आय की' अवस्थाओं में होता है तो कीमत को यथासम्भव नीची रखकर बिक्री बढ़ाने की कोशिश करना मूर्खता होगी। दूसरी ओर, जब उत्पादन घटती लागत या बढ़ती आय की अवस्था में होता है तब कीमत में कमी करके बिक्री की मात्रा बढ़ाना निश्चित रूप से लाभदायक होगा। इन कारकों पर विचार करने से विक्रेता यह जान सकेगा कि क्या वह कारोबार कर सकता है।

(३) माँग की प्रकृति और अवस्थाओं का भी, जिनका पहले अध्ययन हो चुका है, कीमत तय करते हुए ध्यान रखना चाहिए। क्या ऐसी कीमत पर, जो कारबार को जारी रखने के लिए आवश्यक है, वस्तुओं की काफी मात्रा बेची जा सकती है? माँग का न केवल साधारण तरीके से इसकी प्रत्यास्थता या अप्रत्यास्थता के बारे में बल्कि सम्भावित ग्राहकों की विशेषताओं, व्याप्त मनोवृत्ति, रहन-सहन के स्तर, प्रथाओं और रूढ़ संस्कारों का विशेष ध्यान रखते हुए अध्ययन करना सब से अधिक महत्व की बात है। बहुत से होनहार व्यवसाय इन मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, कारकों की उपेक्षा करने से नष्ट हो गए जिनका उत्पादन की लागत या माँग और सम्भरण के अमूर्त सिद्धान्तों के प्रश्नों से कोई भी सम्बंध नहीं है।

(४) उपर्युक्त बातों से निकट सम्बंध रखने वाला प्रश्न क्वालिटी और सेवा का है। क्वालिटी का जहाँ तक किसी विशेष वस्तु से सम्बंध है वहाँ तक यह मूर्त भी हो सकती है और अमूर्त भी। उपयोगिता और टिकाऊपन की दृष्टि से मापी गयी वास्तविक क्वालिटी की अपेक्षा वस्तु के विक्रय को प्रभावित करने में यह बात कहीं अधिक प्रभावित होती है कि किसी वस्तु के बारे में लोगों के मन में क्या विचार पैदा कर दिया जाता है। बहुधा कल्पना पर डाला हुआ प्रभाव जेब से पैसा निकलवाने में सबसे अधिक प्रभावी होता है। किसी वस्तु की बिक्री के सिलसिले में की गई विशेष व्यक्तिगत सेवाएँ वह मूल्य भी प्राप्त करा सकती है जो उत्पादन की वास्तविक लागत से बहुत ज्यादा हो यह याद रखना चाहिए कि अधिकतर लोग मूल्य देखकर नहीं खरीदते। सामान्य आदमी सिर्फ वह चीज खरीदता है जिसकी उसे आवश्यकता हो। इसलिए किसी वस्तु का मूल्य कम होने से आदमी उसे नहीं खरीद लेगा। वह उसे तभी खरीदेगा, जब वह उसकी कोई आवश्यकता भी पूरी करती हो। बिना सेवा मूल्य के कीमत कोई आकर्षण नहीं, पर यदि कोई आदमी कोई वस्तु देखे जो उसके उपयोग में आ सकती है (पर तत्काल नहीं) तो उस वस्तु का कीमत उसके इसे खरीदने को प्रभावित करेगी परन्तु यह एक सीमा निर्धारक कार्य होगा, निश्चायक नहीं। कीमत के महत्व को बहुत ज्यादा नहीं समझना चाहिए।

ग्राहक इस बात को पहचानते हैं कि कम कीमत वाली घटिया क्वालिटी की वस्तु ज्ञानतोगत्वा सस्ती नहीं पड़ती। बहुत नीची कीमतों को ग्राहक प्रायः सदेह की निगाह से देखते हैं। बहुत बार ग्राहक अपना बड़प्पन दिखाने के लिए ऊँची कीमत अदा करेगा। उसका प्रेरक भाव गौरव की इच्छा है, जिसकी पूर्ति के लिए वह और पैसे खर्च करता है यह ध्यान रखना चाहिए कि कुछ हद तक एक खास प्रकार का आदमी (आडम्बर प्रेमी या समाज में अपना बड़प्पन दिखाने वाला) किसी वस्तु के लिए जितना अधिक पैसा खर्च करता है उसे उतना ही अधिक आनन्द मिलता है।

(५) उपर्युक्त बातों के अलावा तीन बातें और हैं जिन्हें कीमत निर्धारित करते हुए ध्यान रखना चाहिए। कुछ प्रकार की मौसमी वस्तुएँ ऐसी कीमतों पर भी बेची जा सकती हैं जो उत्पादन की वास्तविक लागत की तुलना में स्पष्टतः बहुत ऊँची हों। बहुत ज्यादा फैशनदार वस्तुओं पर भी यही बात लागू होती है। कभी कभी बिक्री की प्रचलित या सम्भव मात्रा भी कीमत पर असर डालती है। इसी प्रकार यदि बिक्री का रुपया देर से मिलता है तो इस तरह रुकी हुई पूँजी के ब्याज और जोखिम की पूर्ति के लिए कीमत बढ़ा देनी चाहिए।

बाजार की कीमतों की तुलना में उत्पाद की कीमत—उपर्युक्त विश्लेषण कर लेने के बाद बिक्री मैनेजर यह निश्चय करने की स्थिति में होगा कि वह (१) बाजार से नीचे, (२) बाजार दर पर, या (३) बाजार दर से ऊपर, बेचना चाहता है। पहली अवस्था में उसका उद्देश्य यह होगा कि प्रतियोगियों से कम मूल्य पर बेचा जाय और बहुत सी वस्तुएँ बेचकर थोड़े लाभ द्वारा अधिक शुद्ध प्रत्यावर्तन प्राप्त किया जाय। अगर दूसरा रास्ता अपनाया जाय तो प्रबंधक को प्रबल विज्ञापन द्वारा जोरदार बिक्री पर निर्भर होना पड़ेगा और अपने उत्पादन और वितरण की लागतों की सावधानी से जाँच करनी होगी। कोई ऐसा उपाय भी अपनाना होगा, जिससे बाजार में पहले से विद्यमान उस तरह की वस्तुओं से उसका विभेद किया जा सके। जब जान-बूझकर उसी क्वालिटी की, पहले से बाजार में विद्यमान वस्तुओं से ऊँचे मूल्यों पर वस्तुएँ बेचने का यत्न किया जाता है तब निर्माता या वितरक को किसी खास विशेषता पर जोर देना चाहिए, जिससे उसके ग्राहकों को यह अनुभव हो कि इसकी वस्तु कुछ विशेष उपयोग मूल्य प्रस्तुत करती है। क्योंकि इसका अर्थ यह है कि वह उपभोक्ता के खर्च करने के सामर्थ्य में से अधिक हिस्सा माँगता है इसलिए उसे उपभोक्ता को यह निश्चय कराना होगा कि उत्पाद के उपयोग मूल्य से उसकी कोई और दूसरी आवश्यकता भी पूरी हो जायगी। इन अवस्थाओं में विज्ञापन का खूब उपयोग करना चाहिए इसलिए कुल मिलाकर व्यवसायी अपनी वस्तुओं की अधिकतम लाभदायक कीमत रखते हुए सिर्फ माँग और सम्भरण की खींचतान की अपेक्षा उपभोक्ता के आधिक्य पर अधिक विचार करता है—वह जानता है कि ऐसे बहुत से क्रेता हैं जो बहुत ऊँची कीमत दे सकते हैं और दे देंगे, जो उस कीमत से अधिक

होगी जो सस्ते से सस्ते मूल्य पर खरीदने वाला दगा। उसे बहुत बार इन ऊँचा खरीदने वाले (इन्ट्रामारजिनल) ग्राहकों को प्रभावित करना अधिक फायदमन्द होता है बशर्ते कि प्रतियोगिता उसकी कीमतों को बलात् नीचे न कर दे।

कीमत बनाना—एक और बड़ा मनोरंजक प्रश्न यह है कि क्या सब गाहकों से एक कीमत ली जाय, या जिससे जो मिल सके वह ले ली जाय। एक सी कीमतों का इनमें से कोई भी अर्थ हो सकता है सब ग्राहकों से, उनकी स्थिति का या खरीदी गई वस्तु की क्वालिटी का ख्याल किये बिना एक सी कीमत ली जाय, यह बात किसी खास वर्ग या समूह के सब ग्राहकों पर लागू हो सकती है, उदाहरण के लिए सब थोकफरोशों को एक कीमत बताई जाती है, जो प्राय नीची होती है, और सब खुदराफरोशों को दूसरी कीमत बताई जाती है। इस एक समानता के परिणाम स्वरूप दोनों समूहों के लिए अलग अलग कीमतें हो जाती हैं। जिस क्षेत्र में माल पहुँचाना है। उसकी दृष्टि से एक समानता हो सकती है, पर यदि विभिन्न क्षेत्रों के लिए परिवहन की लागत विभिन्न हो तो अलग-अलग कीमतें लगाई जाती है। पिछली सूरत में एक समानता रखने के लिए कीमतें एफ० ओ० बी० फैक्टरी बनायी जाती है। बिक्री की शर्तें सब ग्राहकों के लिए एक सी रक्खी जा सकती है जिसमें या तो सब को नकद पैसा चुकाना होगा, और या एक सी शर्तों पर उधार दिया जायगा। एक वस्तु के बजाय विक्रेता की सब तरह की वस्तुओं को खरीदने वाले को रियायत देकर कीमतों में अन्तर किया जा सकता है। उन दूकानदारों को विशेष कीमतें बताई जा सकती है जो प्रतिस्पर्धी उत्पादक की वस्तुएँ न रखने का वचन दें। मौसम खतम हो जाने के बाद की विशेष कीमतों से एकरूपता टूट जाती है। कीमतों की एकरूपता या भेदात्मक कीमतों की समस्या का हल करने के लिए कई उपाय अपनाये गये हैं जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

सूची और बट्टा कीमत—सुविधा और विलास वस्तुओं, जैसे मोटर, रेडियो, टाइपराइटर, ग्रामोफोन, दवाइयाँ आदि, में सबसे अधिक प्रचलित तरीका यह है कि कीमतें नाममात्र की, या सूची कीमत द्वारा बतायी जाती हैं जो बहुत तरह के प्रतिशतकता बट्टों के प्रयोग से, जिन्हें मिलाकर व्यापार बट्टे कहते हैं, बदल दी जाती हैं। व्यापार बट्टा वह उपाय है जो अन्तिम ग्राहक से वस्तु की वास्तविक क्रय कीमत छिपाने के लिए प्रयुक्त होता है। इससे उपभोक्ता के लिए कोई कीमत वास्तव में बिना तय किये वस्तु की एक सी गिनी कीमत बन जाती है, पर सेल्समैनों और दूकानदारों को कीमत में फर्क करने के लिए निश्चित गुंजाइश मिल जाती है। यह तब उपयोगी होता है जब बिक्री थोकफरोश और खुदराफरोश को अलग अलग कीमतों पर की जाती है। दूसरी विधि नकद बट्टे की है। प्राय शीघ्र अदायगी पर कुछ बट्टा काट दिया जाता है। यह पद्धति वास्तव में नकद अदायगी के लिए दिया हुआ बट्टा नहीं है। बल्कि देर से होने वाले भुगतान पर प्रव्याजि (प्रीमियम) है। जो कीमत बतलाई जाती है, उसमें ब्याज और जोखिम के बदले के प्रभार भी शामिल होते हैं।

अगर नकद भुगतान किया जाय तो वे कीमत में शामिल नहीं होते। इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव तुरन्त होता है क्योंकि ग्राहक यह अनुभव करता है कि मैंने कम कीमत चुकाई।

मात्रा बट्टे (क्वांटिटी डिस्काउन्ट) प्राय यह मानकर दिए जाते हैं कि छोटे की अपेक्षा बड़े आदेश की पूर्ति में अधिक लाभ है। वास्तविक बट्टे का निर्धारण सावधानी से करना चाहिए क्योंकि किसी भी शिथिलता से विनाशक परिणाम होने की सम्भावना है, क्योंकि बिक्री की शर्तों का दुरुपयोग किया जा सकता है। जब कीमतें बेची गई मात्रा के अनुसार बदलती हैं तब शृंखलाबद्ध दूकानें या अन्य खुदराफरोश सहकारी खरीद द्वारा वह कीमत पेश कर सकते हैं जो थोक फरोश या निर्माता खुदराफरोश को पेश करता है। खुदराफरोश को मात्रा बट्टा छोड़ने के परिणामस्वरूप वह जरूरत से ज्यादा खरीदता है जिसका परिणाम बड़ा विनाशकारी होता है आपसी गलतफहमी और अनुचित भेदभाव को दूर रखने के लिए शायद यह ज्यादा अच्छा है कि मात्रा बट्टे देने से इन्कार कर दिया जाय।

कीमतों की गारंटी—कभी-कभी विशेष कर मौसमी वस्तुओं की अवस्था में बेचने वाला उपभोक्ता यह गारण्टी देता है कि आर्डर मिल जाने के बाद या वस्तुएँ बेची जाने के बाद कीमतों में कमी नहीं की जायगी—(१) तब तक कीमत में कमी न करने की गारण्टी, जब तक भविष्य में डिलिवरी के लिए प्राप्त आदेश का माल भेज न दिया जाय, (२) यह माल की डिलिवरी की तारीख तक या किसी निश्चित तारीख तक हो सकती है, (३) यह उस अवधि के लिए भी हो सकती है जिसमें साधारणतया वस्तुएँ बिक सकती हैं;-या (४) यह भी हो सकता है कि इसमें खरीदने वाले की बिक्री कीमत का जिक न हो बल्कि गारण्टी देने वाले की भविष्य की बिक्री-कीमत का जिक्र हो। इन सब अवस्थाओं में अगर कीमत कम हो जाय तो विक्रेता अवहार (रिबेट) देता है कीमत की गारण्टी के ये लाभ बताए जाते हैं—

(क) इससे बिक्री बढ़ जाती है, (ख) जो आदेश अग्रिम मिल जाते हैं उनके कारण मौसमी घट-बढ़ से बचा जा सकता है, (ग) वस्तुएँ तैयार होते ही भेजी जा सकती हैं और इस तरह वेयरहाउस का खर्च बच सकता है; (घ) अधिक बड़े आर्डर मिल सकते हैं, (ङ) प्राप्य भुगतान जल्दी हो जाता है, (च) दामों में गिरावट के समय आर्डर रद्द नहीं किये जा सकते; (छ) साधारणतया बाजार की कीमतें ऐसा करने में स्थिर हो जाती हैं। थोकफरोश और खुदराफरोश की दृष्टि से ये लाभ हैं—(१) गारंटी के कारण वे गिरती हुई कीमतों से होने वाली हानि से बच जाते हैं; (२) इससे वे अपने आर्डर काफी पहले देने का यत्न करते हैं और इस तरह माल पहुँचने में विलम्ब होने से बच जाते हैं।

(३) इस तरह थोकफरोश जोखिम में कमी हो जाने के कारण बहुत थोड़े

नफे पर वस्तुएँ ले सकता है। इससे उपभोक्ता के लिए भी कीमत कम हो जाने की सम्भावना हो जाती है।

गारन्टी शुदा कीमतो की पद्धति के विपक्ष में कुछ ये दलीलें है— (क) यह आशा करना अनुचित है कि निर्माता थोक फरोश और खुदरा फरोश की हिफाजत करे जब कि वह स्वयं ही सुरक्षित नही है, (ख) इस पद्धति से कीमतें बिल्कुल नकली ढग से ऊँची रहगी, (ग) इससे अति उत्पादन, अतिक्रयण, सट्टे के वास्ते खरीद के लिए प्रोत्साहन मिलता है (घ) इसमे लेखाकन और परिव्ययन के लिए एक बडा सिरदर्द पैदा हो जाता है। सचमुच यह निर्माण कार्यों को बहुत नियमित करने का घटिया तरीका है। अधिकतर निर्माता इस पद्धति को अच्छा नही समझते।

कीमत सधारण—सक्षेप में कीमत सधारण निर्माता द्वारा पुन बिक्री की कीमत के नियत्रण को कहते है। आज कल निर्माता उस कीमत पर प्रतिबध लगाने लगे है जिस पर खरीदने वाले (थोकफरोश या खुदराफरोश) को किसी विशेष ब्रांड, कापी राइट या प्रतिलिप्य अधिकार व्यापार चिन्ह आदि की वस्तु पुन बेचने का अधिकार है। निर्माता के दृष्टिकोण से इस चलन का खास अर्थ है। ब्रान्ड वाली वस्तुओ का बहुत अधिक विज्ञापन किया जाता है, जिससे उपयोगिता और प्रचलित कीमतो का अधिकतर ग्राहको को पता होता है। जहाँ ये वस्तुएँ कुछ कम कीमत पर मिलती है, वहाँ ग्राहक पर उनके सस्तेपन का सुनिश्चित प्रभाव पडता है। इसमे उत्पादक के कारबार को क्षति पहुँचती है। अन्तिम ग्राहक से लेने के लिए एकमी कीमत तय कर लने म ग्राहक ठगा नही जाता और आपसी दुर्भाव नही पैदा होते।

वितरण की सरणियां—उत्पादक कई सरणियो से अपना माल वितरण कर सकता है। वह थोकफरोश के जरिए बेच सकता है, जो फिर खुदराफरोश को देता है, और खुदराफरोश अन्तिम उपभोक्ता को बेचता है। यह वितरण की तथा कथित रूढ पद्धति है। दूसरी पद्धति यह है कि सीधे खुदराफरोश को बेचा जाय और वह अतिम उपभोक्ता को बेचे। वितरणनिर्माता क एजेन्ट द्वारा भी किया जा सकता है जो जौबर, थोकफरोश दलाल खुदराफरोश या अतिम उपभोक्ता को बेच सकता है। निर्माता अपनी बिक्री की दूकानें अनेक नगरो में खोलकर सीधे खुदरा बिक्री कर सकता है। अन्य व्यापारसरणियो का उपयोग करते हुए फैक्टरी स सीधे बेचना या सीधे डाक आदेश पद्धति अपनाना भी लाभदायक है। सरणी या सरणियो का चुनाव वस्तु, बाजार की अवस्थाओ, खरीदने की आदतो आदि अनेक कारको पर निर्भर है। जहाँ तक उन वस्तुओ का सम्बन्ध है, जिन्हे आम जनता अपने खर्च या उपयोग के लिए खरीदती है, अन्य बातें समान होने पर, कुछ वस्तुओं के लिए प्रचलित पद्धति यह है कि थोकफरोश के जरिये खुदराफरोश को माल बेचा जाता है। ये वस्तुएँ मुख्य उपयोग की वस्तुएँ होती है, विशेष कर वे जो

इक्ठो बहुतसी बेची जाती हैं, जो अप्रमाणित होती है, और जिनके लिए किसी श्रेणीबन्धन की आवश्यकता नहीं होती, जिन वस्तुओं के सिलसिले में किसी विशेष सेवा या प्रशिक्षण की जरूरत नहीं जिन वस्तुओं की कोई ब्राड नहीं और जिनका विज्ञापन नहीं किया जाता, जो वस्तुएँ अपने विशेष वर्ग में बहुत थोडी आवश्यकताएँ पूरी करती हैं, वे वस्तुएँ जिनकी माँग अस्थायी अनिश्चित और बिकी हुई होती हैं या जहा शैली, फैशन या मौसम में परिवर्तन की जोखिम बहुत होती है। थोकफरोश के जरिये बेचने और सीधे खुदराफरोश को न बेचने का साधारण नियम साधारणत वहाँ माना जाता है जहा खुदराफरोश का आदेश या आर्डर इतना छोटा हो कि कम लाभ में उसकी पूर्ति न की जा सके और आर्डर हासिल करने की लागत बढ जाती हो। इसमें उल्टी परिस्थितियो में बाजार से निकट सम्पर्क आवश्यक है। इसलिए अधिकतर अवस्थाओ में उत्पादक और उपभोक्ता की सहायता के लिए इन बिचौ-दियो तथा कई अन्य व्यक्तियो को बीच में आना पडता है। अगले अध्याय में वितरण की विभिन्न सरणियों और बिचौदियो पर विस्तार से विचार किया जायगा।

बेचने की कला और बिक्री प्रबन्धन—बिक्री प्रबन्धन के लिए अपने प्रारम्भिक अनुसधान पूरे कर लेने पर अगला कदम यह है कि वह अच्छे से अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए अपनी सब कीमतो को इकट्ठा करे। अब यह वास्तविक बिक्री आन्दोलन के लिए तैयार है, परन्तु इसमें सफलता के लिए यह काम उपयुक्त नीति से पूरा किया जाना चाहिए। उसे बाजार की माँग के उपयुक्त विश्वासनीय क्वालिटी वाली वस्तु पर्याप्त मात्रा में और कई रूपो में बनाने के लिए रूपांकण (Design) और निर्माण विभाग का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। बिक्री विभाग और अन्य विभागो का समन्वय, विभागाध्यक्षो की एक समिति द्वारा या इस काम के लिए नियुक्त एक विशेष अफसर द्वारा होना चाहिए। यह काम होना आसान है। परन्तु बिक्री विभाग और कारबार के अन्य विभागो तथा अन्दर के काम और बाहर का काम करने वाले कर्मचारियो में उचित सम्बन्ध स्थापित होने में कठिनाई पैदा हो सकती है। अलग-अलग विभाग अलग-अलग आदेश दे सकता है गाहक और सेल्समैन के मध्य तनातनी पैदा करने वाली कोई भी बात बेचने में कठिनाई पैदा कर सकती है और सेल्समैन या गाहक की नाराजगी का कारण बन सकती है। उदाहरण के लिए वसूली विभाग किसी गाहक को अविलम्ब भुगतान करने के लिए सख्त चिट्ठी लिख दे, जब कि दूसरे विभाग को भेजी गई वस्तुओ के बारे में शिकायत प्राप्त हो चुकी हो। कुछ फर्मे कुछ समय तक सेल्स मैनो को दफ्तर में रख कर और अन्दर के कर्मचारियो को बाहर भेज कर घनिष्ठ सहयोग लाने का यत्न करती है। एक अच्छा तरीका यह है कि कुछ निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के अन्दर सेल्समैनो और गाहको से पत्रव्यवहार करने के लिए बिक्री क्लर्क हो इस प्रकार प्रत्येक सेल्समैन और गाहक सिर्फ एक व्यक्ति से मुख्य कार्यालय में मदद की आशा कर सकता है, और गलतियो के लिए उसे जिम्मेवार ठहरा सकता है।

एक और महत्वपूर्ण चीज, जो विक्री प्रबन्धक को तय करती है इस बात से सम्बन्ध रखती है कि दूकानदार एजेन्ट, सेल्स मैन, प्रदर्शक, कनवेंसर, नमूने, खिड़की प्रदर्शन, सीधे डाक, अखबार तथा विज्ञापन के अन्य साधनों से क्या कार्य लिया जायगा। व्यवहार में अधिकतर विक्रियों में ये सब चीजें महत्वपूर्ण कार्य करती हैं और इन्हें एक दूसरे के साथ ऐसे ढंग से मिला देना चाहिए कि प्रत्येक का बल बढ़ जावे। इस उद्देश्य में सफलता के लिए बिक्री विभाग के एक अभिन्न अंग के रूप में एक विक्री प्रबंधक विभाग बनाया जाता है। सेल्समैनों द्वारा ग्राहकों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के काम के अलावा, सेल्समैनों की आवाज या व्यक्तित्व की पूर्ति के करके, अर्थात विज्ञापन द्वारा और सीधे या डाक आदेश विनय द्वारा (जिन सब पर एक बाद के अध्याय में विचार किया गया है) निर्माता को उधार के बारे में अपनी नीति तय करनी पड़ती है, और दूसरों पर चढ़ा हुआ रुपया वसूल करने की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसका विवेचन नीचे किया जाता है।

उधार और वसूली

प्रत्यय या क्रेडिट (Credit)

अर्थशास्त्र की अनेक परिभाषाओं की तरह क्रेडिट शब्द के भी अनेक अर्थ हैं परन्तु यहाँ हमारा अभिप्राय उस क्रेडिट से है जिसके द्वारा मूल्य वर्तमान काल में हस्तान्तरित कर दिया जाता है, जब कि भुगतान भविष्य में किया जाता है। तत्वत प्रत्यय (क्रेडिट) उस विश्वास या भरोसे पर होता है जो दो व्यक्तियों के बीच में पैदा हो जाता है और जिसके परिणामस्वरूप "विश्वास पर बिक्री" होती है। प्रत्यय की परिभाषा विभिन्न लेखकों ने अपने-अपने विचार के अनुसार की है। उदाहरण के लिए, एक सम्भावना के रूप में प्रत्यय यानी क्रेडिट (या साख) की परिभाषा यह की गई है "कि मांगने पर या भविष्य में किसी निश्चित तिथि पर धन या वस्तुएं चुकाने का वचन देकर वस्तुएं या सेवाएं प्राप्त करने की शक्ति अथवा किसी व्यक्ति को यह भरोसा करके वस्तुएं या सेवाएं हस्तांतरित करना कि वह भविष्य में इसके समतुल्य भुगतान करने को तैयार और समर्थ होगा"। वास्तविक रूप में प्रत्यय (साख) की परिभाषा यह की जाती है कि भविष्य में होने वाले भुगतान पर वर्तमान काल में अधिकार, अथवा भविष्य की एक सम्भाव्यता के बदले में एक वास्तविक वस्तु का देना। प्रत्यय या उधार कई प्रकार का होता है पर यहाँ हमारा मतलब वाणिज्यिक प्रत्यय या उधार से है जिसकी परिभाषा यह की जा सकती है कि भविष्य के भुगतान के बारे में वस्तुओं या सेवाओं की बिक्री, क्योंकि उधार में वस्तुओं द्वारा निरूपित और धन के रूप में अभिव्यक्त मूल्यों का विनिमय होता है इसलिए उधार वस्तुएं बेचने वाला खरीदने वाले के कारबार में अल्पकालिक नियोजन करता है। उधार उन लोगों को, जिनके पास अवसर की अपेक्षा सम्पत्ति अधिक होती है। उनकी सहायता का मौका देता है जिनके पास सम्पत्ति की अपेक्षा अवसर

अधिक है। यह उन सब से बड़े आर्थिक अभिकरणों में से एक है जिनके द्वारा योग्य आदमी अपने-कम योग्य प्रतियोगियों में से छाँटे जाते है, साधनों से युक्त किये जाते है, आर्थिक विस्तृत अवसर से युक्त किए जाते हैं, और अपने लिए, अपने सहायकों के लिए तथा सारे समाज के लिए और अधिक सेवा करने के वास्ते सहायता-युक्त किए जाते हैं। सावधानी से उधार देने का यह अर्थ है कि ईमानदार और योग्य आदमियो कारोबार के स्वामी के रूप में उत्साहित करना; तथा बेईमानी और अयोग्यता को निरुत्साहित करना"। इसलिए प्रत्यय से लोगो का नैतिक स्तर ऊंचा होता है, क्यो कि प्रत्येक का हित इसमें है कि वह अपने आप को विश्वास योग्य सिद्ध करे। लेकिन यह न तो समाज के लिए और न व्यक्ति के लिए पूरी तरह शुभ है। इसका उपयोग दुरुपयोग हो जा सकता है और दोनो में भेद करना हमेशा आसान नही होता। इसलिए उधार वस्तुए देने वाले विक्रेता को दूसरे पक्ष पर भरोसा करने और उधार के समय और मात्रा के बारे में सावधान रहना चाहिए। बहुत सी बातों पर जो उधार की नीति को प्रभावित करती हैं, नीचे विचार किया गया है। इस विचार पर पहुचने से पहले इस बात पर बल देना आवश्यक है कि उधार वसूली के सम्बन्ध मे अपनाई जाने वाली नीति सारे कारबार के अन्य कार्यों की नीति के पूर्णतया अनुरूप होनी चाहिए। थोड़ी पूंजी वाला कारबार नकद भुगतान के लिए अधिक बट्टा देकर और देर से वसूल होने हिसाबो को चुस्ती से वसूल कर के अपनी आस्तियो के द्रुत चक्रण का लक्ष्य रक्खेगा। मौसमी अनियमितता वाला उद्योग अगाऊ आर्डर की प्रेरणा करने के लिए दीर्घकालिक उधार देने को तैय्यार रहेगी। उधार को प्रभावित करने वाली बातें नीचे लिखी जाती है।

उधार या प्रत्यय की शर्तें—उधार पर बिक्री की शर्तों का प्रभाव पड़ता है। भुगतान का समय और साधारण अवस्थाए बिक्री की शर्तों को से, या अधिक ठीक पर कम प्रचलित प्रयोग करें तो उधार की शर्तों से, निर्धारित होती हैं। जब वस्तुएं उधार पर बेची जाती हैं, तब उधार के काल की लम्बाई बहुत भिन्न-भिन्न होती है। यह अवधि छ मास या एक वर्ष तक हो सकती है, पर आजकल अवधि कम रखी जाती है और आम तौर पर इसका समय तीस से साठ दिन तक होता है उधार की शर्तों को प्रभावित करने वाले अन्य कारक ये है :

(१) वस्तुए किस प्रयोजन में लगाई जायगी,

(२) वस्तु की प्रकृति, उदाहरण के लिए, नश्वर वस्तुओ पर थोड़े दिन का उधार दिया जा सकता है क्योंकि उधार का समय उस वस्तु के जीवन से अधिक नही होना चाहिए,

(३) खरीददार का चुकाने का सामर्थ्य और इच्छा,

(४) ग्राहकों का निवास-स्थान, क्योंकि ज्यादा दूरी पर रहने वाले ग्राहकों को निकट रहने वालों की अपेक्षा लम्बे समय का उधार दिया जा सकता है,

(५) शर्तों के बारे मे प्रतियोगितात्मक अवस्थाए।

(६) खरीदार के उधार में जोखिम की मात्रा—जोखिम जितना अधिक होता है, विक्रेता उसे उतने ही कम समय के लिए उठाना चाहता है,

(७) व्यवसाय चक्र—व्यवसाय चक्र में परिवर्तन के साथ उधार का काल छोटा या लम्बा होने लगता है। समृद्धि की अवधि फैलाव की अवधि है, जिसमें उधार लेना लाभदायक है और अधिक लम्बे समय के ऋण देकर बिक्री को प्रोत्साहित करना वाँछनीय है। वस्तुओ की बड़ी माँग होती है और इसलिए बिक्री बड़ी आसानी से होती है। तथ्य तो यह है कि विक्रेता का बाजार (Sellers market) हो सकता है।

इस प्रकार विक्रेता अपने इच्छानुसार शर्तें रखने की स्थिति में होता है और सम्भव है कि उसे आवश्यकता वश, अपने ही फैलाये हुए कार्यों को वित्तपोषित करने के लिए प्राप्यों (रिसीवेबल्स) मे अपना नियोजन कम करना पड़े। इसलिए जब तक क्रय को उद्दीपित किया जाता है, तब तक उधार और उसका काल और उसकी अवधि कम होंगे। जब क्रयण शिथिल पड़ जाता है, तब विक्रेता को बिक्री की मात्रा ऊँची रखने की आवश्यकता होती है और परिणामतः उधार की अवधि लम्बी हो सकती है। मन्दी के दिनों में अधिक काल का उधार दे दिया जाता है, क्योंकि अब बाजार खरीदने वाले का है और कारोबार की आवश्यकता विक्रेता को रियायत देने को बाधित करती है। अधिक लम्बे काल तब तक चलते रहते हैं जब तक चक्र अच्छी तरह मन्दी से मुक्त न हो जाय।

उधार की वसूली—उधार की वसूली व्यवसाय सगठन की सब से महत्त्वपूर्ण अवस्थाओ में से एक है। व्यवसाय में सैकड़ो सौदे होते हैं, जिनमें से प्रत्येक में तीन कार्य होते हैं—उत्पाद, विक्रय और वसूली। वसूली प्रत्येक सौदे का अन्तिम लक्ष्य है। इसलिए अच्छे व्यवसाय के लिए आवश्यक है कि न केवल वसूली की जाय बल्कि फौरन की जाय और ऐसे ढग से की जाय कि कम्पनी के बाजार को हानि न पहुँचे। यह जो दूसरी आवश्यकता है, अर्थात् ग्राहक की सद्भावना बनाये रखना, यह ही वसूली को एक कठिन समस्या बना देती है और वसूली करने में कौशल और चतुराई को परमावश्यक बना देती है। अधिकतर अवस्थाओ में यदि वसूल करने वाला सद्भावना खत्म करने को तैयार हो, तो वसूली तत्परता से की जा सकती है, पर सद्भावना को और कोई चारा न रहने पर ही खत्म करना चाहिए। अपने महत्त्व के क्रम मे गिनायें जायें तो वसूली विभाग के तीन उद्देश्य ये हैं—पहला, ऋण वसूल [illegible] दूसरा, ऋण वसूल करना और ग्राहक की सद्भावना बनाये रखना, तथा [illegible] शीघ्रता से वसूल करना और सद्भावना बनाए रखना। यदि ये [illegible] वस्तुएँ [illegible] तो उन्हें उल्टी तरफ से छोड़ते जाते हैं और कोई अन्य [illegible] उधार उन लोगों [illegible] अर्थात् ऋण वसूली के लिए सद्भावना को छोड़ दिया [illegible] सहायता का मौक

वसूली की क्रमावस्थाएँ—वसूली की प्रक्रिया वह बीजक डाक से भेजने के साथ शुरू होती है जिसमें खरीदार को ऋणग्रस्तता की ठीक मात्रा और उसके शोध्य होने की ठीक तिथि की सूचना दी जाती है। साथ ही वस्तुओं का देयक या बिल लेजर में ग्राहक के नाम चढ़ा दिया जाता है जिससे उधार और वसूली विभाग सावधानी से इस सूचना को दर्ज कर लेता है जो लेखे के जीवन में किसी भी समय उपयोगी हो सकती है। वसूली की दिशा में अगला कदम प्राय यह होता है कि ग्राहक को उसकी देयता का विवरण भेजा जाय। अगर विवरण देने से भुगतान न हो, तो उसके तुरन्त बाद उसे दृढ शब्दों में स्पष्ट पत्र भेजना चाहिए। शीघ्र कार्यवाही और अनुवर्ती पत्र से लेने वाले और देने वाले दोनों को मदद मिलती है तत्परता से हिसाब-किताब और ब्याज तथा अन्यथा रुके हुए धन के व्यावसायिक लाभ की देखभाल करने की परेशानी नहीं होती। ऋणी के व्यवसाय के प्रतिकूल परिवर्तनों के अवसर सीमा के अन्दर रहते हैं तथा ऋणी और अधिक वस्तुएँ लेने की स्थिति में रहता है। अगर कोई ग्राहक माल ले चुका है और उसपर इतना रुपया चढ़ा हुआ है जिससे ज्यादा विक्रेता नहीं चढ़ने देना चाहता तो उस ग्राहक को तब तक और माल नहीं भेजा जायगा जब तक उसका हिसाब साफ न हो। अगर उत्तमर्ण और आर्डर स्वीकार कर ने को तैयार भी हो तो भी ऋणी क्रेता प्राय उस दुकान से बचेगा जिसका रुपया उसपर चढ़ा है, और अपना आर्डर उसके प्रतिस्पर्धी को देगा। जो ऋण बहुत दिन तक टाले जाते हैं, वे बड़ी मुश्किल से अदा होते हैं। विलम्ब के काल में ऋणी दूसरे की सम्पत्ति का उपयोग करता है और यह मिथ्यास्थिति क्रमशः उसकी मूल्य सम्बन्धी समझ को नष्ट कर देती है। तत्काल भुगतान का आग्रह करना अन्त में सस्ता पड़ता है।

हुण्डी, दर्शनी हुण्डी, या प्रामिसरी नोट वसूली की क्रिया में अगला कदम है। कुछ अवस्थाओं में उत्तमर्ण हुण्डी प्राप्त करने की कोशिश करता है, परन्तु भारत में हुण्डियों का चलन बहुत आम है और इसलिए खरीदार उसकी परवाह नहीं करते। हुण्डियाँ प्राय सकार दी जाती हैं, पर यदि हुण्डी न सकारी जाये तो वसूली संकट की स्थिति में पहुँच जाती है, जहाँ आगे कदम उठाने से पहले पूरी जाँच कर लेनी चाहिए। जाँच के परिणामस्वरूप (क) या तो समय बढ़ा देना चाहिए और अगर सम्भव हो तो साथ ही आंशिक भुगतान और कुछ अवस्थाओं में अधिक अच्छी जमानत की व्यवस्था भी करनी चाहिए। आम तरीका यह है कि हुण्डी को छोटी राशियों की तीन या चार हुण्डियों में बाँट दिया जाता है, और ये राशियाँ कुछ-कुछ समय बाद देय होती हैं। (ख) यदि कोई वसूली अभिकरण सुलभ हो तो हिसाब उसे हस्तान्तरित किया जा सकता है; (ग) कागजात कानूनी कार्यवाही के लिए कानूनी परामर्शदाता को सौंप दिये जायें; और (घ) हिसाब असोध्य ऋण (बैड डेट) मान कर लाभ और हानि खाते में डाल दिया जाय। वकील के आते ही प्रेम-सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। इसलिए कागजात उसे सौंपने से पहले मुकदमे को छोड़कर वसूली के और सब यत्न कर लेने चाहिए।

अन्त में यह बात फिर कह दी जाय कि बिक्री मैनेजर का कर्तव्य कम लागत पर अधिक बिक्री कर देना है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उसे कपड़ा, मोटरकार या बीमा बेचना होगा और वह इनकी बिक्री से लाभ करना चाहता है। प्रत्येक व्यवसाय, का चाहे वह निर्माण व्यवसाय हो या वितरण व्यवसाय आधारभूत प्रयोजन यह है कि समाज की सेवा की जाय और कम्पनी की ख्याति बनाई जाय। लाभ इस कार्य का पुरस्कार मात्र है। इसी बुनियाद पर बिक्री नीति का भवन बनाना चाहिए। उसे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सामान्यतया व्यवसाय बहुत देर तक चलने के लिए बनाये जाते हैं, इसलिए उसे दक्ष और दीर्घ दृष्टि से बनाये गये संगठन की बुनियाद रखनी चाहिए।

अध्याय २६

बिचौदिये

(MIDDLEMEN)

आयोजित या यथेच्छ उपभोग—पूँजीवादी देशो में वस्तुएँ बेचने की विभिन्न रीतिया अपनाई गई हैं, क्योंकि उपभोक्ता अपनी रुचियो और निवास-स्थानों की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं और इसलिए किसी उत्पादक के पास ग्राहकों का एक मण्डल होना कठिन है। अगर उत्पादक या निर्माता एक बृहत परिमाण फर्म है तो उसने अपने उत्पादन की योजना बनाई होगी, परन्तु यदि वह एकाधिकार-सम्पन्न नहीं है तो उसके लिए उपभोग की योजना बनाना प्रायः असम्भव है, जैसा कि संगठन की तानाशाही प्रणाली में किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, सोवियत रूस में योजनाबद्ध उत्पादन उतनी महत्वपूर्ण चीज नही, जितनी योजना बद्ध उपभोग है। पूँजीवादी व्यवस्था में वस्तुएँ ऐसी कीमत पर दी जाती हैं कि सम्भरण-कर्त्ता को कुछ लाभ हो। औद्योगिक उत्पादन की सोवियत प्रणाली में कीमतें और और लाभ ही अन्तिम कसौटी नही। सोवियत प्रणाली को शैलियो और फैशनों के परिवर्तन की फिक्र नहीं करनी पड़ती, न इसे विलास वस्तुओ की थोडी मात्रा का उत्पादन करने की आवश्यकता है जो ऊँचे दाम पर बेची जा सकें। वस्तुएँ और सेवाएँ वैसे दी जाती हैं जैसे राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था की सर्वोच्च परिषद् उचित समझती हैं। परिष्कार, चमकाव या वस्तु की रूपाभा में सुधार की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है ········उत्पादन और उपभोग के क्षेत्र में यथेच्छ स्वयं कर्तृत्व के लिए परिस्थितियाँ बहुत कम अनुकूल हैं।······उत्पादन, बाजार में दिखाई देने वाली उपभोक्ताओ की इच्छाओ का बिना ध्यान किये सगठित किया जाता है। वस्तुओ की कीमतें बाजार से स्वतन्त्र रूप से रक्खी जाती हैं और माँग तथा सम्भरण में संतुलन का कोई प्रश्न नहीं होता।" इसलिए तानाशाही उपभोग आवश्यकताओ की यथेच्छ सन्तुष्टि को समाप्त कर देता है। इस तरह के वितरण का अर्थ यह है कि मनुष्य को वह भोजन—और यह बहुत बढिया हो सकता है—खाना पड़ेगा जो समाज के भोजन केन्द्र द्वारा उसके सामने प्रस्तुत किया जाय, कि उसे अपने मन पसन्द फर्नीचर का चुनाव करने का अधिकार नही, कि एक स्त्री वह टोप नही लगा सकती जो उस पर सबसे ठीक बैठता है। "जो मिले सो खाओ, और जो दिया जाय सो पहनो।' यह नियम है। स्पष्ट है कि यह उपभोग, जो उत्पादक द्वारा आयोजित है, उत्पादन के संगठन को सरल बना देता है, विपणन की आवश्यकता समाप्त कर देता है, वितरण की समस्या कम कर देता है जिससे वितरक या बिचौदिये की लागत

प्राय कुछ नहीं पड़ती परन्तु उपभोग वस्तुओं के वितरण की यह रीति मनुष्य की आत्मिक आवश्यकताओं की, जिसमें आखिरकार एक भौतिक अवसर होता है, पूर्ति को असम्भव बना देती है। यह अधिक से अधिक प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है पर अधिक ऊँची आवश्यकताओं को सन्तुष्टि यह किसी भी प्रकार नहीं कर सकती। उपभोग का आयोजन करने में निर्माता को बड़ी सुविधा हो सकती है परन्तु जब तक पूँजीवादी देशों में वर्तमान संस्थाएँ मौजूद हैं तब तक लोग उपभोग का आयोजित और निश्चित कर दिया जाना सहन नहीं करेंगे। यह मानने पर कि यथेच्छ खरीद की आदतें और यथेच्छ उपभोग जारी रहेंगे, वितरण में बहुत से बिचौलियों की सहायता लेना आवश्यक है।

जहाँ वस्तुएँ उपभोक्ता को सीधे नहीं बेची जातीं वहाँ वे बिचौलियों के जरिए वितरित की जाती हैं। सीधी बिक्री सेल्समैनों द्वारा, विज्ञापन द्वारा और डाक आदेश पद्धति से की जाती है। बिचौलियों द्वारा बिक्री थोकफरोशों और खुदराफरोशों या सिर्फ खुदरा फरोशों द्वारा की जाती है। बिचौलिये व्यावसायिक संगठन हैं जो उत्पादक और उपभोक्ता के बीच में काम करते हैं, खरीद और बिक्री में विशेष निपुण होते हैं और जो खरीद-बिक्री में सम्बन्धित और वितरण सेवाएँ करते हैं। अपने ग्राहकों की प्रकृति के अनुसार बिचौलियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(क) थोक बिचौलिया और (ख) खुदराफरोश। अगर बिचौलिये किसी व्यवसाय के स्वामी होते हैं तो वे व्यापारी बिचौलिए और यदि स्वामी नहीं होते तो वे अभिकर्त्ता (क्रयकारी) बिचौलिए होते हैं। व्यापारी न केवल वस्तुओं का स्वामित्व ग्रहण करते हैं बल्कि वितरण के अधिकतर या सब कार्य भी करते हैं। उनमें थोक और खुदराफरोश दोनों शामिल हैं। एजेण्ट या अभिकर्त्ता बिना स्वामित्व लिए सौदे करते हैं। इनके अन्तर्गत कमीशन एजेन्ट, दलाल और वे लोग होते हैं जो कमीशन एजेन्टों और दलालों का मिला जुला काम करते हैं। थोड़ा-थोड़ा माल खरीदने की आदत और बहुधा आवश्यकता बिचौलियों की सेवाओं का उपयोग आवश्यक कर देती है और वितरण की बढ़ी हुई लागत को उठाना आवश्यक कर देती है। वितरक जो कुल लाभ लेता है, वह निश्चित ही बहुत ऊँचा मालूम होता है। वितरण की लागत के सही अंक देना कठिन है, पर यूनाइटेड स्टेट्स और इंग्लैंड में लगाये गए हिसाब से पता चलता है कि पहले विश्वयुद्ध के बाद से उनमें बढ़ोतरी होती गई। स्मिथ के अनुसार, १९२४ में वितरण की धनात्मक लागत खुदरा मूल्यों का लगभग २३% थी और खुदरा वितरण की लागत वितरण की कुल लागत का ७०% थी। १९३१ में ये संख्याएँ और ऊँची हो गईं। कैडबरी ने हाल में जो हिसाब लगाया है, उससे इन निष्कर्षों की पुष्टि होती है। उसके अनुसार, युद्धकाल की अवस्थाओं में मिठाई के व्यापार में खुदरा बिक्री और थोक बिक्री की लागत कुल खुदरा कीमत का लगभग एक तिहाई थी। सरकारी कीमत नियन्त्रण से भी यही निष्कर्ष निकलता है। कीमत नियन्त्रण

में सरकार की यही समस्या रही है कि अधिकतम कीमतें और अधिकतम मेकअप किस सतह पर निश्चित किए जाएँ जिससे कम से कम दस विनरक की वितरण की लागत भी पूरी हो जाय क्योंकि प्रत्येक नियन्त्रित कीमत वाली वस्तु की एक सी कीमत रखना कठिन है और उस पालन कराना व्ययसाध्य है। उदाहरण के लिए, कपड़े के लिए, नियन्त्रित कपड़ा बेचने के लिए अधिकृत सब व्यापारियों के लिए सरकार को अधिकतम कीमत और अधिकतम अनुज्ञात भरपाई (मेकअप) भी तय करनी पड़ी। थोक फरोश को, जिस कीमत पर उसने निर्माता से खरीदा है उसमें अधिकतम तीन प्रतिशत और जोड़ने की तथा खुदराफरोश को (विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिए) थोकफरोश को चुकाई गई कीमत पर अधिकतम २५% से ४०% तक बढ़ाने की इजाजत दी गई। अनुज्ञात भरपाई का आशय वितरण की लागत की पूर्ति करना है। प्रतीत होता है कि उपभोक्ता जब एक रुपया खर्च करता है तब उसमें से ५ से ८ आने तक वितरण के खाते में जाते हैं। इन अंकों को देखकर फौरन यह प्रतीति होती है कि वितरण की रीतियाँ दक्षताहीन हैं। बाजार में खुदराफरोशों की संख्या आवश्यकता से अधिक है। इस तथ्य के कारण बहुत से लोग यह कहते हैं कि बिचौलिए बहुत ज्यादा हैं और यदि उन्हें बिलकुल समाप्त भी न किया जाय तो उनकी संख्या कम करदी जाय।

कहा जाता है कि थोक फरोश के कार्य उत्पादक और खुदराफरोश को कर लेने चाहिए और जगह जगह उत्पादक की दूकानें या सहकारी स्टोर खोलकर खुदराफरोश को हटा देना चाहिए। हाल के वर्षों में समेकन द्वारा बहुत सी अवस्थाओं को मिला देने की प्रवृत्ति बढ़ी है। निर्माता स्वतन्त्र थोक व्यापारी की सेवाओं के बिना काम चलाने के लिए थोकफरोश का काम अपने ऊपर ले लेता है। अपनी वस्तुओं को बेचने के लिए निर्माता स्वयं थोकफरोश बन जाता है और खुदराफरोश के खरीदने के लिए तैयार माल जमा रखता है, तथा थोड़े से व्यापारियों से बड़ी रकमें प्राप्त करने के बजाय यह बहुत से खुदरा ग्राहकों से थोड़ी-थोड़ी रकमें प्राप्त करता है। ऐसा प्रायः ब्रैंड वाली वस्तुओं के लिए ही होता है कि माल सीधे ही बेचा जाय, क्योंकि निर्माता जनता के लिए विस्तृत विज्ञापन कर सकता है। मोटरकार, प्याले, फर्नीचर, बिजली के फिटिंग, बूट, चाकलेट, और मुरब्बे बनाने वाले सब के सब खुदराफरोश को माल बेचते हैं। सिलाई की मशीन या टाइपराइटर बनाने वाले दवाई या मिठाई निर्माता, रंगने वाले और धुलाई वाले बहुस्थानीय (multiple) दूकानों के मालिक हो सकते हैं, जो अपनी वस्तुओं को अपने आप ही अन्तिम उपभोक्ता तक पहुंचाते हैं। बहुत से खुदराफरोशों ने एक पृथक थोक विभाग बनाकर थोक विक्रेता का व्यवसाय संभाल लिया। खुदरा विक्रेताओं ने यह देख लिया कि परिवहन में सुधार हो जाने से खरीदार पहले की अपेक्षा बड़े क्षेत्र से आ सकता है और इसके अलावा वस्तुएँ मोटरों द्वारा बहुत बड़े क्षेत्र में पहुँचाई जा सकती हैं। इसका परिणाम यह हुआ है

कि बड़े नगरो की बड़ी दूकानो में, जो अनेक तरह की वस्तुएँ बड़ी मात्रा में रख सकती हैं, बहुत वृद्धि हुई है, और आस-पास के क्षेत्र में छोटी दूकानो की संख्या उसी अनुपात से कम हो गई है। दूसरी ओर, थोक विक्रेताओ ने वह लाभ की मात्रा प्राप्त करने के लिए जो खुदराफरोशा को मिलती है, खुदरा दूकानें खोल ली।

बिचौदियो और उनके लाभ के विरुद्ध जो कुछ कहा जाता है, उस सबके बावजूद व्यवहार में से किसी तरह खतम नही हो गए हैं और आगामी बहुत वर्षों तक उनके खतम होने की सम्भावना भी नही है। खुदरा दूकान के लिए अब भी थोक फरोश को माल देने वाला मुख्य मोत तब तक वही बना रहेगा जब तक (क) सब निर्माता स्वयं थोक व्यापारी का काम न करने लगें और (ख) जब तक छोटे निर्माता को उद्योग से बिल्कुल बाहर न निकाल दिया जाय। जब तक यथेच्छ उपभोग जारी है तब तक खुदराफोश का वस्तुओ के वितरण में महत्वपूर्ण स्थान बना रहेगा। बहुत सम्भाव्यता यह है कि इनमें से कोई भी अवस्था बहुत दिनो तक नही रहेगी। कृषिक उत्पादन के क्षेत्र में थोकफरोश की सेवाएँ और भी महत्वपूर्ण है। गेहूँ, चावल, कपास, चाय, फल और ऊन के उत्पादक अकेले अकले इतने खुदरा फरोशो से सीधे सम्पर्क नही कर सकते कि जो उनका सारा माल ले लें। जहाँ वस्तु नश्वर होती है, जैसे फल सब्जियाँ, मछली, वहाँ उन्हें खरीददारो की प्रतीक्षा में यदि वे संगृहीत करना चाहें तो भी शक्तिसंग्रह का व्यवसाय अपनाये बिना संगृहीत नही कर सकते। परन्तु देखने वाले को, जो दिलचस्पी रखने वाला उपभोक्ता है, बिचौदियो की संख्या बहुत अधिक मालूम पड़ती है। पर यदि वितरण के कोई और साधन न ढूढे गए तो वर्तमान पूँजीवादी समाज में वे अवश्य बने रहेंगे। इसके अलावा, उन्हें प्राप्त होने वाली कुल मात्रा, जो २५ से ६० प्रतिशत तक होती है, सारी की सारी बिचौदिए का लाभ नही होती। खुदरा के लाभमात्रा का आधा और थोक की लाभ मात्रा का $\frac{3}{4}$ मजदूरी और तनख्वाहो में और शेष का बहुत सा हिस्सा भाड़ा, ब्याज रोशनी संधारण, बीमा और विज्ञापन में चला जाता है। जहाँ वेतनभोगी प्रबन्धक वितरक व्यवसाय को नियंत्रित करते हैं वहा अंशधारी या शेयरहोल्डर को वास्तविक लाभ के रूप में बिक्री का सिर्फ एक या दो प्रतिशत मिलता है। बिचौदियो के लाभ की मात्रा के विरुद्ध आमतौर पर जो शोर मचाया जाता है वह भ्रामक है। वास्तव में लाभमात्रा अधिक नही है और इसलिए घटायी भी नही जा सकती, बल्कि स्वयं लागत ही अधिक होती है। साधारणतया वितरक व्यापार की एक सीधी कसौटी यह होगी कि उपभोक्ता को जिस चीज की आवश्यकता है क्या वह उसे आवश्यकता के समय उसकी मनोवांछित कीमत पर इतनी थोड़ी मेहनत से मिल सकती है। इस प्रश्न का उत्तर थोक विक्रेताओ द्वारा की जाने वाली सेवाओं का विवरण पढने से मिल सकता है।

थोक विक्रेता

इस बात पर बड़ा मतभेद है कि थोक विक्रय में क्या चीज शामिल की जा सकती है। सामान्य व्यवहार में थोक विक्रय में वे सब विक्रय और प्रासंगिक कार्य शामिल हैं जिनमें क्रेता ने वस्तुएं पुन बेचनी हैं या उन्हें अपने व्यवसाय में काम लाना है, उनका भौतिक उपभोग नहीं करना। परिष्कृत प्रयोग में थोक विपणन उस कार्य को कहते हैं जो थोक विक्रेता करता है, अर्थात् व्यापारी बिचौदिया करता है—वह कार्य इसमें नहीं आता जो अभिकर्ता बिचौदिया करता है, परन्तु थोक फरोश की परिभाषा करते हुए हम यह भी कह सकते हैं कि वह व्यापारी थोक विक्रेता है जो उत्पादकों से बड़ी मात्रा में वस्तुएँ खरीदता है और थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खुदराफरोश को बेच देता है और इस प्रकार उत्पादक तथा खुदरा फरोश के बीच एक कड़ी होता है। उत्पादन और वितरण के प्रवाह में थोक विक्रेता का स्थान वस्तुओं के उत्पादक और वस्तुओं के उपभोक्ता या उपभोक्ता को वस्तुएँ पहुँचाने वाले खुदराफरोश के बीच में होता है।

थोक विक्रेता के कार्य—उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि थोक विक्रेता निर्माता, खुदराफरोश और उपभोक्ता की उपयोगी सेवा करता है। थोक विक्रेता निर्माता की चार तरह से सेवा करता है—(क) बड़े पैमाने के उत्पादन की मितव्ययिता, (ख) बड़े आर्डर देना, (ग) निर्माता के पास माल जमा होने से रोकना, (घ) निर्माता को अपने काम में विशेषता प्राप्त करने देना। निर्माता वस्तुओं की थोड़ी मात्रा सस्ती नहीं बना सकते और बड़े पैमाने का उत्पादन सबसे अधिक मितव्ययी तरीका है क्योंकि इसमें प्रक्रम प्रमापित हो जाते हैं और कार्यों की योजना एक ही बार बना ली जाती है। ऐसा करना तभी सम्भव होता है, जब थोक विक्रेता बड़ी मात्रा में खरीदने को तैयार होता है। थोक विक्रेता बनाई जाने वाली प्रत्येक प्रकार की वस्तु का बड़ा आर्डर देकर निर्माता की मदद करता है। बहुत से दूर दूर फैले हुए खुदरा दूकानदारों को माल देने के कारण उसके पास अपनी वस्तुओं के निकालने का बड़ा रास्ता होता है। इसके अलावा, वह अपने ग्राहकों की इच्छाओं को समझता और उद्दीपित करता है, वह बाजार प्राप्त करने में निर्माता की मदद करता है, वह उत्पादित की जाने वाली वस्तु की मात्रा और क्वालिटी का पूर्वानुमान करके उसके निर्धारण में निर्माता की मदद करता है। थोक विक्रेता के अभाव में निर्माता को खुदरा फरोशों से आर्डर लेने पड़ेंगे जिसमें बड़ी परेशानी और खर्च होगा और वितरण में परिवहन का बहुत व्यय उठाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, थोक विक्रेता वस्तुओं के संग्रह के लिए वेयर हाउस बनाता है, वह आयातक और निर्यातक के रूप में काम करता है और मूल्यों को स्थिर रखने में मदद करता है, क्योंकि बहुत खरीदता है। जब कीमतें नीची होती हैं, और जब वे फिर चढ़ने लगती हैं तब वह

बेचने लगता है। साधारण मांग की वस्तुएँ उपयोग के लिए आवश्यकता होने से पहले ही उत्पादित करनी होंगी। जब माँग हो, तब माल तैयार मिलना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि किसी जगह बहुत सारा माल संगृहीत रहना चाहिए। दुकानदार तो सिर्फ उतना ही माल रख सकता है जितना उसकी कुछ दिन की बिक्री के लिए काफी हो। प्रत्येक वेयरहाउस वाला ही माल संचित रखने का भार उठाता है और इसमें होने वाली कमी को लगातार पूरा करता रहता है। इस प्रकार वह निर्माता को तैयार माल हर समय संगृहीत करने से मुक्त कर देता है, और उसे अपने ही विशिष्ट काम पर ध्यान केन्द्रित करने में मदद देता है—इस तरह उसका काम बहुत कम पूँजी में चल जाता है और यदि उसे रोजाना की आवश्यकता के लिए बहुत माल जमा करना पड़ता तो उसे बहुत पूँजी लगानी पड़ती। साधारणतया निर्माता को थोकविक्रेता से बड़े परिमाण में कम प्रकार की चीजों का आर्डर मिल जाता है, जो सीधे खुदराविक्रेता से न मिलता। थोकविक्रेता खुदरा दुकान की अनेक और छोटी छोटी आवश्यकताओं को छाँटकर बड़े-बड़े आर्डर दे देता है। इस व्यवस्था से निर्माता उन वस्तुओं में निपुणता प्राप्त कर सकता है जिनका वह सबसे बढ़िया उत्पादन करता हो। इस रीति से थोक विक्रेता को ऐसे निर्माता का चुनाव करने का मौका मिल जाता है जिसने पहले इस तरह के आर्डर को सब से अच्छी तरह पूरा किया हो।

थोक विक्रेता (क) अनेक तरह का माल जमा रखकर, (ख) जरूरत के समय माल प्रस्तुत करके, (ग) उधार का समय देकर, और (घ) विशेषज्ञ के रूप में सलाह देकर, खुदरा विक्रेता की मदद करता है। खुदराफरोश को थोक फरोश के वेयर हाउस में बहुत तरह की चीजें और अनेक निर्माताओं की अनेकों प्रकार की वस्तुएँ मिल जाने से सुविधा होती है। पब्लिक की माँग बड़ी विविध होती है और अगर खुदराफरोश को इन मांगों को पूरा करना है तो उसे तरह-तरह का माल रखना चाहिए। खुदराफरोश बहुत सारे निर्माताओं से बार बार थोड़ी थोड़ी वस्तुएँ नहीं खरीद सकता, और उसे थोक व्यापारी का पल्ला पकड़ना पड़ता है। थोक व्यापारी खुदरा व्यापारी को संग्रह के खर्च से और बहुत माल रखने की जोखिम से बचा देता है। वह कीमतें स्थिर रखने में सहायक होता है। थोड़ी पूँजी वाला खुदराफरोश तरह-तरह के माल की बहुत मात्रा जमा नहीं रख सकता। इस तरह माल जमा करने में लगाई गई पूँजी तब तक बेकार पड़ी रहेगी, जब तक माल बिक न जाय और माल बिकने में बहुत समय लगेगा। सफल खुदरा फरोश की नीति यह है कि माल जल्दी निकाला जाय, एक समय में सिर्फ उतनी वस्तु रक्खी जाय जो उसके ग्राहकों की थोड़े दिनों की आवश्यकता पूरी कर सके, और हर तरह की वस्तुएँ जो खतम हो रही हों, अविलम्ब ले आयी जाएँ। थोक विक्रेता, जो वेयर हाउस में सब तरह की वस्तुओं का तैयार माल रखता है, खुदराफरोश के लिए हर समय और शीघ्रता से माल मिलने का साधन बन जाता है। निर्माता शायद खुदराफरोश

को उधार न देना चाहता हो, या न दे सकता हो । थोक विक्रेता खुदरा विक्रेता को काफी माल उधार दे सकता है । स्पष्ट है कि उस दूकानदार को, जो नन्द बचना है और तीन या चार महीने के उधार पर खरीदता है, भुगतान का मौका आने से पहले ही अपना माल बेच लेने का मौका मिल जाता है । इसका अर्थ यह हुआ कि उसका थोक-विक्रेता समय-कुसमय में तीन महीने के माल लायक पूंजी मिलने में मदद करता है । इसके अलावा, विशेष जानकार होने के कारण वह खुदरा-फरोश को मूल्यवान सहायता दे सकता है । बाजार को देखकर वह खुदरा फरोश को यह सलाह दे सकता है कि कौन वस्तुएं अच्छी बिक सकती हैं और उसके लिए कितनी वस्तुएं कितनी मात्रा में और कब खरीदना अच्छा होगा ।

थोक विक्रेता का संगठन—थोक व्यापारी बडी मात्रा में वस्तुए खरीदते हैं और उन्हें आवश्यक रूप से अपना कारबार बडे पैमाने पर चलाना पडता है । थोक विक्रेता का वेयर हाउस बहुत दृष्टियों से अनेक विभागो वाली एक बहुत बडी दूकान के सदृश होता है जिसका प्रत्येक विभाग एक विभागीय प्रबन्धक के आधीन एक पृथक इकाई होता है । विभागो के दो हिस्से होते हैं, अर्थात प्रशासनीय और कार्यपालक । प्रशासनीय कर्मचारियो का काम वित और लेखे, पत्र-व्यवहार, अभिलेख, नत्थीकरण (फाईलिंग) और सामान्य प्रशासन से सम्बन्ध रखना है । कार्यपालक विभागो की सख्या और विस्तार कारबार के आकार और प्ररूप के अनुसार अलग-अलग होते हैं, पर साधारणतया विक्रय विभाग, जिसके प्रबन्धक क्रेता भी होते हैं, प्रकाशन विभाग, वेयर हाउस जहाँ वस्तुएं सगृहीत की जाती हैं, प्रेषण विभाग जिसके अन्तर्गत बीजक विभाग भी है, और पैकिंग या सवेष्टन विभाग का समावेश होता है । क्योंकि थोक व्यापारी प्राय एकमात्र खुदरा व्यापारी से ही कारबार करता है, इसलिए उसकी दूकान के स्थान का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है । मुख्य बात यह है कि व्यापारी ग्राहक वहाँ पहुच सके और थोक विक्रेता द्वारा ली जाने वाली वस्तुएँ सुविधा से लाई जा सकें और भेजी जा सकें । बडे-बडे थोक व्यापारी साधारणतया अपना कारबार बडे-बडे नगरो और बन्दरगाह नगरों के व्यवसाय केन्द्रो में ही करते है ।

थोक विक्रेता को प्राय खुदरा विक्रेता की अपेक्षा बहुत पूंजी की आवश्यकता होती है । इसका कारण यह है कि (१) बहुत सारी पूंजी उस माल में रुकी पड़ी रहती है जो थोक विक्रेता को रखना रखना पड़ता है ; (२) कभी कभी वे उत्पादक, जिनकी वस्तुएं थोक विक्रेता अपने यहाँ रखता है, अल्प साधनो वाले होते है और बहुत बार थोक विक्रेता को उनका काम चालू रखने के लिए उन्हें अगाऊ पैसा देना पड़ता है; (३) थोक विक्रेता को खुदरा विक्रेता के हाथ माल आम तौर मे अधिक दिनो के उधार पर बेचना पडता है, जबकि उसे अपने मगाए हुए माल का भुगतान माल पहुचने के शीघ्र बाद करना पडता है । पूंजी की मात्रा कुछ हद

तक उसके संग्रह के आधार पर और कुछ हद तक खुदरा विक्रेताओं और उत्पादकों को दिए हुए उधार पर निर्भर होगी। इसलिए हमें विभिन्न प्रकार के थोक विक्रेताओं के व्यापार और पूंजी की मात्रा में बहुत अन्तर दिखाई देगा। उदाहरण के लिए, एक थोक कपड़े वाले की बहुत पूंजी उधार में फंसी होगी, थोक तम्बाकू वाले की कम।

खुदरा व्यापार

खुदराफरोश उस आर्थिक शृंखला की अन्तिम कड़ी है जिससे हमारी आवश्यकताएं आसानी और दक्षता से पूरी होती हैं। उसका यह कर्तव्य है कि उपभोक्ता की आवश्यकताओं का अध्ययन करे और उसके अनुसार थोक विक्रेता को सूचना दे। वितरण के क्षेत्र में खुदराफरोश की स्थिति महत्वपूर्ण और लाभदायक है। निर्माता के दृष्टिकोण से वह बिक्री का विशेषज्ञ है और उपभोक्ता के दृष्टिकोण से वह खरीदने और सम्भरण का एजेन्ट है। खुदराफरोश अनेक प्रकार की वस्तुएँ जिनकी उपभोक्ता को आवश्यकता होती है, अनेक स्थानों से एक सुविधाजनक स्थान पर एकत्र करके उपभोक्ता को थोड़ी थोड़ी मात्रा में जब जरूरत हो तब, और कम से कम परेशानी से खरीदने का मौका देता है, और निर्माता को माल जमा करने की तकलीफ से बचाता है। वह सामान्यतया विपणन के सब कार्य करता है, अर्थात् खरीदना, बेचना, स्थानांतरित करना, संग्रह करना, श्रेणीकरण, वित्तपोषण और जोखिम उठाना। खुदराफरोश के ये काम हैं कि वह थोड़ी मात्रा में वस्तुएं बेचता है, सुविधाजनक स्थानों में वस्तुओं का संग्रह करता है, वस्तुओं का प्रदर्शन करता है, उपभोक्ताओं की रुचियों और आदतों का अध्ययन करता है और उन्हें पूरा करने का यत्न करता है, रोजाना की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए वस्तुएँ प्राप्त करता है, उस जगह की स्थानीय आवश्यकताओं की तथा विभिन्न वर्गों और व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करता है और प्रायः उपभोक्ताओं को उधार देता है।

खरीदने और बेचने की कला—खुदराफरोश की सफलता प्रथमतः इस बात पर निर्भर है कि वह कितने ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है और कितनी वस्तुएँ नफे पर बेच सकता है। पर खुदरा व्यवसाय का असली आधार सिर्फ बेचने की होशियारी नहीं, बल्कि खरीदने की होशियारी है। सफलता के साथ बचने के लिए, उसे मात्रा, क्वालिटी और कीमत की दृष्टि से ग्राहक की मांग यथासम्भव ठीक ठीक पूरी कर सकनी चाहिए। इसके लिए ग्राहकों का और माल प्राप्ति के स्थान का ज्ञान आवश्यक है—उसे निरन्तर यह विवेक करना चाहिए कि क्या खरीदूं और कब खरीदूं और कितनी कीमत में खरीदूं। उसे फैशन और रुचि के परिवर्तनों का पहले से अनुमान करना चाहिए। क्योंकि खुदरा व्यवसाय के लिए खरीदने वाले को अपनी निर्णय बुद्धि पर निर्भर रहना पड़ता है, इसलिए उसे माल मिलने के स्थानों और बाजार की साधारण अवस्था का ठीक-ठीक पता होना

चाहिए। इसके अलावा उसे उन बहुत सारे सेल्समैनों के साथ भी व्यवहार कर सकना चाहिये जो उसे नई नई चीजें बेचने के लिये देते हैं जो शायद बाजार में न चल सकें, पर दूसरी ओर, यदि उन्हें न रक्खा जाय तो सम्भव है कि वे किसी प्रतिस्पर्धी के हाथ में पड जाय और चलने लगें। यदि यह मान लिया जाय कि उसने अपने खरीदने का काम सफलतापूर्वक कर लिया है तो स्पष्ट है कि उसकी अन्तिम सफलता उसके बेचने के काम पर निर्भर है। वह उपभोक्ता के सीधे सम्पर्क में आता है और वस्तुओं तथा सेवाओं की माग को बहुत अधिक प्रभावित करता है। उसे सभावित क्रेताओं को आकृष्ट कर सकना चाहिए और इसके बाद अपनी वस्तुओं को खरीदने के लिए उन्हें प्रेरित कर सकना चाहिए। उसे सौदा होने से पहले अपनी वस्तुओं में लोगों की दिलचस्पी पैदा कर सकना चाहिए। विज्ञापन, प्रदर्शन की रीतियां, पर्याप्त सेवा और उसकी दूकान का आकर्षक विन्यास उसके व्यवसाय को सफल बनाने में बहुत हद तक सहायक होंगे।

व्यवसाय के आकार और प्रकृति से यह निश्चय होगा कि पूजी कितनी लगाई जाय। अगर दूकान नकद बिक्री के आधार पर चलानी है तो कम पूजी की आवश्यकता होगी, और वैसा ही व्यवसाय उधार के आधार पर चलाना हो तो अधिक पूजी की आवश्यकता होगी तो भी, खुदरा फरोश को पर्याप्त वस्तुएं रखने के लिए काफी नकदी चाहिये, चाहे वह अपने थोक सम्भरण कर्ता से उधार माल न ले सकता हो। खुदराफरोश की पूजी में उसका माल, उसकी दूकान का स्थान, फर्नीचर और फिटिंग, उसकी सन्दूकची और बैंक में विद्यमान धन तथा सम्भरण कर्ता द्वारा उसे दिया गया उधार समाविष्ट होते हैं। बहुत बार खुदरा दूकान उधार ली हुई पूजी पर चलाई जाती है, पर क्योंकि इसका अर्थ यह हुआ कि व्यापारी को अपनी कीमतें रखने में ब्याज की अदायगी की व्यवस्था करनी पडती है। इस लिए इसे वित्तपोषण की कोई अच्छी रीति नहीं माना जा सकता। खुदरा दूकान के लिए इस बात का बड़ा महत्व है कि दूकान किस बस्ती में और कैसी जगह हो। बस्ती सोचे हुए व्यवसाय की प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिये।

लाभ और बिक्री कीमत—खुदराफरोश को होने वाला लाभ इतना काफी होना चाहिये कि उसकी पूजी और मेहनत का पुरस्कार मिल जाय और उसकी बिक्री कीमतें ऐसी तय होनी चाहिए जिनसे उसे युक्तिसगत लाभ प्राप्त हो जाय, पर साथ ही साथ प्रतिस्पर्धियों द्वारा रखे हुए मूल्यों का भी ध्यान रखना चाहिये। बिक्री कीमतें प्रत्येक व्यापार में भिन्न आधार पर तय की जाती हैं। जहा बिक्री द्रुत होती है, जैसे नश्वर वस्तुओं की अवस्था में, वहाँ लागत कीमत की तुलना में बिक्री कीमत उस व्यवसाय की अपेक्षा कम होगी जिसमें बिक्री की गति मन्द होगी, जैसे सर्राफ या फर्नीचर का व्यवसाय। व्यापारी को समय समय पर यह भी सोचना चाहिए कि क्या कीमत कुछ कम करने से मुझे लाभ होगा। इस तरह प्रत्येक वस्तु पर लाभ होने से, पर कीमत की कमी द्वारा बिक्री बढ़ जाने से, कुल लाभ में वृद्धि

हो जायगी। और अवस्थाओं में कीमत ऊंची रखना और विक्री की कम मात्रा से सतुष्ट रहना अधिक लाभदायक हो सकता है पर इसमें वहां ही सफलता हो सकती है जहां कम कीमत पर बिकने वाला कोई उपयुक्त दूसरी चीज न हो। खुदरा बेची जाने वाली अधिकतर वस्तुएँ प्राय निर्माता द्वारा तय की हुई प्रमाप कीमतों पर बेची जाती हैं, और जहां यह बात हो वहाँ कोई कारण नहीं कि क्यों वस्तुओं पर उनकी कीमत स्पष्ट रूप से अंकित न कर दी जाय, जिससे ग्राहक को नजर से पता चल जाय कि उसे कितने पैसे देने हैं। प्राय. कीमत इस तरह अंकित की जाती हैं जिससे वह आसानी से हटाई और मिटाई जा सके, क्योंकि ग्राहक अपनी वस्तुओं की कीमत जाहिर नहीं करना चाहते। भेंट या उपहार के लिए बेची जाने वाली वस्तुओं पर यदि उनका मूल्य अमिट रूप से अंकित हो तो वे वस्तुएँ बिक ही नहीं सकती। परिणामत ऐसी वस्तुओं पर कीमत प्राय इशारों या संकेतों में अंकित होती है। संकेतों की अनेक रीतियां अपनाई जाती हैं। वे प्राय संख्याओं या अक्षरों के बने होते हैं। जो भी रीति हो पर संकेत संक्षिप्त, सुवाच्य और भूल की गुंजायश रहित से होने चाहिए जिससे दूकान का कोई भी व्यक्ति उन्हें पहचान सके गोपनीयता के प्रश्न के अलावा संकेत पद्धति प्राय उन वस्तुओं के लिए भी प्रयुक्त होती है, जिनकी कीमतें लचीली होती हैं।

खुदरा दूकानों के प्रकार—अन्य व्यवसायों की तरह वस्तुओं की बिक्री छोटे पैमाने पर तथा बड़े पैमाने पर की जा सकती है। हमारे देश में खुदरा बिक्री छोटे पैमाने पर की जाती है जब कि यूनाइटेड स्टेट्स इंग्लैंड आदि देशों में हाल के वर्षों में बड़े पैमाने की खुदरा दूकान की ओर प्रवृत्ति हुई है यद्यपि इन देशों में भी छोटे खुदरा विक्रेताओं की प्रधानता है। छोटे पैमाने की खुदरा बिक्री (१) फेरी वाले (२) स्टाल होल्डर (३) स्वतन्त्र खुदरा दुकानदार करते हैं। बड़े पैमाने की खुदरा बिक्री *(क) बहु स्थानीय होती हैं (मल्टिपल शॉप)* (ख) शृंखला दूकान (चेन स्टोर) (ग) बहु विभागीय दूकान (डिपार्टमेंटल स्टोर) (घ) निश्चित कीमतों वाली शृंखला दूकान (ङ) डाक आदेश दूकान। (च) उपभोक्ताओं की सहकारी दूकान,(छ) सम्मिलित दूकान या सुपर-मारकेट और (ज) निर्माता द्वारा सीधी बिक्री से की जाती है।

स्वतन्त्र खुदरा दूकान—प्राय कहा गया है और यह अब भी सच है कि खुदरा बिक्री, दूकानों की कुल संख्या की दृष्टि से थोड़े साधनों वाले आदमी की चीज है। छोटी-छोटी स्वतन्त्र खुदरा दूकानें खुदरा की सबसे पुरानी और आज भी सब अधिक प्रचलित रूप वाली इकाई हैं। इस तरह की इकाई का मालिक या तो एक स्वतन्त्र व्यक्ति या हिस्सेदार या अविभक्त हिन्दू परिवार होता है। यह साधारणतया व्यक्ति की मामूली पूंजी से चलाई जाती है और परिवार के सदस्यों द्वारा उसका प्रबन्ध किया जाता है। ये दूकानें रहने के मकानों में भी होती हैं। सीमित पूंजी के और ग्राहकों की सीमित संख्या के कारण माल का संग्रह थोड़ा होता है। अपने ग्राहकों से सीधे सम्पर्क में आने के कारण खुदरा दूकानदार अपने ग्राहकों की आदतों का अधिक

आसानी से अध्ययन कर सकती है, और उनकी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। वह अपने ग्राहको की आवश्यकताओ की ओर स्वय और विस्तृत ध्यान दे सकता है, जब कि बड़े पैमाने की दूकाने ऐसा नही कर सकती। छोटी दूकान एक ही प्रकार की वस्तु का कारबार करने वाली, यथा आभूषण, पेन्ट, स्टेशनरी, आदि की दूकान, हो सकती है, अथवा यह एक साधारण दूकान हो सकती है, जिसमें अनेक प्रकार की वस्तुएँ, यथा पसारा, दवाइया, हार्डवेयर, सूखी वस्तुए (ड्राई गुड्स) हो, परन्तु विभागीय संगठन न हो, अथवा यह प्रगाढ (inotensive) जनरल स्टोर हो सकता है जो लगभग हरेक वस्तु बेचता है। यह अन्तिम प्ररूप साधारणतया भारत के गावो में पाया जाता है।

बड़े पैमाने पर खुदरा बिक्री—हाल के वर्षों में खुदरा दूकानो में बढने की प्रवृत्ति हुई है। यदि इसी चाल से विकास होता जाए तो बहुत सम्भव है कि उनकी संख्या छोटे खुदराफरोशो से अधिक हो जाय। जैसे निर्माण कम्पनिया समेकन द्वारा बड़ी इकाइयों का रूप धर लेती हैं, वैसे ही खुदरा दूकानें भी इस कार्य में विस्तार के लिए समेकन की विविध रीतियों, अर्थात् क्षैतिज, शीर्ष, भुजीय और विकर्णीय का प्रयोग कर रही हैं। क्षैतिज समेकन वहां होता है, जहां कोई कम्पनी बिक्री के लिए तैयार माल बड़ी मात्रा में खरीदती है और सामान्यतया वस्तुओ का निर्माण नहीं करती। यह कच्चे सामान से कोई वास्ता नहीं रखती। दो या अधिक दूकानें इकट्ठी मिलकर एक दूसरे में विलय द्वारा या सपिंडन (Consolidation) की किसी और रीति से बड़ी एक इकाई का रूप ले सकती हैं। शीर्षविकास तब होता है जब कोई कम्पनी न केवल उपभोक्ताओं को वस्तुएँ वितरित करती है बल्कि वस्तुओं का निर्माण भी करती है और सम्भवतः कच्चे सामान के स्रोतो का नियत्रण भी करती है। उदाहरण के लिए, लिप्टन वालो के अपने बाग हैं। वे बिक्री के लिए चाय तैयार करते हैं और अन्त में इसका वितरण भी करते हैं। भारत में बाटा वालो की अपनी चर्मसस्करणी (टैनरी) है; वे जूते बनाते हैं और दूकानो की शृंखला द्वारा उन्हें वितरित भी करते हैं। बहुस्थानीय दूकान (multiple shop) प्रणाली शीर्ष समेकन का सब से अच्छा उदाहरण है। भुजीय समेकन वहाँ होता है, जहां कोई दूकान अपने ग्राहक की पूरक सेवा करने के लिए सम्बन्धित वस्तुएँ भी रखती है। इस तरह की वस्तुओ का सर्वोत्तम उदाहरण दवाइयो की दूकान है। सम्भव है कि दवाइयो की दूकान शुरू में पेटेन्ट दवाइयों से चालू की जाय, जो बाद में नुस्खे बनाना भी शुरू करदे। इसके साथ-साथ वह स्नान की वस्तुएँ, प्रसाधन वस्तुएँ और पेटेन्ट भोजन आदि भी रख सकती हैं। विकर्णीय समेकन वहाँ होता है जहां विक्रेता वस्तुओं की बिक्री के साथ मुफ्त डिलिवरी, सूचना विभाग, लिखने और पढ़ने के कमरे, मरम्मत, बैंकिंग की सुविधा, आदि भी करता है। विकर्णीय समेकन बहु-विभागीय दुकानो में आम होता है।

बहुस्थानीय दूकान—(Multiple shop) खुदरा व्यापार की बहुस्था-

नीय दूकान पद्धति हाल में ही शुरू हुई हैं। बहुस्थानीय दूकान का मतलब यह है कि किसी एक व्यवसाय फर्म के स्वामित्व में, कई एकसी दूकानें हो। इस प्रकार यह सारत एक या दो निश्चित प्रकार की वस्तुए बेचने वाली एकसी इकाइयो का क्षैतिज सयोग है। प्रत्येक बहुस्थानीय दूकान व्यवसाय का एक मुख्य कार्यालय होता है, जहाँ से सब शाखाए नियत्रित होती हैं। मुख्य कार्यालय व्यवसाय की नाभि है, जिसके चारो ओर शाखाए बधी रहती है। मुख्य कार्यालय से आदेश और अन्य प्रभाव चलते है जो सब शाखाओ को एक सगठन में बाघे रहते है, जिसके परिणाम स्वरूप सब दूकानो में एक ही नीति और चलन होता है। मुख्य कार्यालय प्राय' शाखाओ को उनकी आवश्यकताओ के अनुसार वस्तुए भेजने के लिए समरण केन्द्र भी होता है। जहाँ शाखाए बहुत दूर-दूर तक फैली हुई हो, वहाँ जिला सभरण केन्द्र बनाए जा सकते है। मुख्य कार्यालय किसी फैक्टरी में हो सकता है, जहाँ शाखाओ में बेची जाने वाली सब वस्तुए बनाई जाती है इस तरह की बहुस्थानीय दूकान निर्माता की खुदरा दूकान कहलाती है। भारत में इस प्ररूप का सब से अच्छा उदाहरण बाटा वाले है। यह सिर्फ एक केन्द्रीय कार्यालय भी हो सकता है, जिससे बाहर के निर्माताओ को सीधे स्थानीय केन्द्रो या शाखाओं में माल भेजने के लिए, आर्डर दे दिए जाते हो। इस रूप को बिचौलिया बहुस्थानीय दूकान कहते है। फिर, मुख्य कार्यालय कोई ऐसा वेयर हाउस हो सकता है जो माल इकट्ठा और वितरित करता हो, अथवा शाखाओ की वस्तुओ का कुछ हिस्सा मुख्य कार्यालय में बनता हो और शेष बाहर से मगाया जाता हो।

जहाँ शाखाए दूर-दूर तक फैली हो, वहाँ शाखाओ के निरीक्षण की दक्ष पद्धति चालू रहनी आवश्यक है। प्रत्येक निरीक्षक के जिम्मे कई शाखाओ वाला एक जिला होना चाहिए। वह दूकानो की अवस्था, प्रदर्शन, माल और सेवाओ का पर्यवेक्षण करेगा और काम में होने वाली अनियमितताओ और कठिनाइयो का समाधान करेगा। उसका दूकान पर दौरा अनियमित ढग का होना चाहिये जिससे शाखा प्रबन्धको को यह कभी पता न चले कि इन्सपेक्टर कब आने वाले है। कभी-कभी इन्सपेक्टर नकदी की जाँच करेगा और यह देखेगा कि वह ठीक तो है, और कुछ अवधि में एकबार प्रत्येक शाखा के माल परिगणन (स्टोकटेकिंग) का अधीक्षण करेगा। जहाँ शाखाए बहुत फैली हुई नही है और इसलिए निरीक्षकों की आवश्यकता नही होती वहाँ अपनी शाखा के प्रभारी शाखा प्रबन्धक को दैनिक या साप्ताहिक रिपोर्ट अपने मुख्य कार्यालय को भेजनी पडती है। शाखा का भीतरी सगठन शाखा प्रबन्धक की जिम्मेदारी है पर सब शाखाओ के लिए साधारण रीति मुख्य कार्यालय बनाता है। जहाँ तक स्थान का सम्बन्ध है, बहुस्थानीय दूकान किसी भी काफी आबादी वाले स्थान या जिले में शाखा खोल सकती है, और इस दृष्टि से इसकी स्थिति बहुविभागीय दूकान से स्पष्टत ऊँची है। अगर ग्राहक आसानी से मिलते हो तो स्थान का कोई खास महत्व नहीं। ग्राहकों के लिए नकद बिक्री या तैयार

धन का ही नियम है। प्रतिदिन आने वाले नकद रुपये को दूकान का प्रबन्धक किसी स्थानीय बैंक में जमा करा देता है और लेखा तथा दैनिक रिपोर्ट और जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो, उनकी अर्थना (रिक्वीजीशन) मुख्य कार्यालय को भेज देता है।

लाभ—बहुस्थानीय दूकान पद्धति में वे सब फायदे हैं जो आमतौर से बड़े पैमाने के उपक्रम में होते हैं, अर्थात बड़े पैमाने पर खरीदने की बचत, केन्द्रीयकृत और अतिश नियंत्रण, तथा फर्म की विशेष लाइन का अच्छा विज्ञापन। इनके अलावा बहुस्थानीय दूकानों के कुछ अपने विशेष लाभ ये हैं—(१) किसी शाखा में माल की कमी एक शाखा से दूसरी शाखा में माल पहुंचा कर पूरी की जा सकती है। (२)बिक्री के आंकड़ों से यह पता लगाकर कि कौनसी वस्तुएं अधिक बिकती हैं, और कौनसी कम, और इसके बाद सिर्फ कम बिकने वाली वस्तुओं का ही अधिक विज्ञापन करके, माल जल्दी बेचा जा सकता है। (३) माल की जल्दी बिक्री के परिणामस्वरूप बहुस्थानीय दूकानें अपना कारबार और प्रस्पों की अपेक्षा कुछ कम लागत पर कर सकती हैं। (४) क्योंकि बिक्री नकद की जाती है, इसलिए बट्टे खाते की रकमें नहीं होतीं, और बहुत से लिपिक कर्मचारी रखने का खर्च भी नहीं पड़ता। (५) बहुस्थानीय दूकान को इस तथ्य से भी लाभ होता है कि इसकी बहुत सी शाखाएं ग्राहकों को उनके घरों से बहुत कम दूरी पर आसानी और दक्षता से माल दे सकती हैं। इसके ग्राहकों की कुल संख्या एक चीज बेचने वाली दूकान या बहुविभागीय दूकान के ग्राहकों की अपेक्षा अधिक होती है। (६) फर्म की प्रत्येक शाखा अपने आप में फर्म की दूसरी शाखाओं का विज्ञापन होती है, और जब तक, कीमत की दृष्टि से, बेची गई वस्तुओं की क्वालिटी अच्छी है तब तक इस कम्पनी कितनी ही शाखाओं को अपने नियंत्रण में रख सकती है।

परिसीमाएँ—बहुस्थानीय दूकानों में दो महत्वपूर्ण परिसीमाएं हैं। उन्हें भारी खर्चा पूरा करना पड़ता है। उनके खरीद और बिक्री कीमतों के अन्तर का मुख्यांश भीड़ वाली सड़कों पर बड़े मकानों के ऊँचे किराये देने में चला जाता है, जिनके किराये अनुपात में ऊँचे होते हैं और दूकानों का सामने वाला हिस्सा नया करने और नया सामान लेने की आरम्भिक लागत को बट्टे खाते में डालने के उपयोग में, और जहाँ सब दूकानों के लिए व्यापार नाकाफी है, वहाँ कम लाभ देने वाली शाखाओं को कायम रखने में चला जाता है। दूसरी बात यह है कि बहुत से प्रबन्धक और कर्मचारी निरन्तर पर्यवेक्षण न होने पर अपना काम करने में उतनी दिलचस्पी नहीं दिखाते जितनी मालिक दिखाते हैं।

शृंखला दूकान (Chain Store)—शृंखला दूकान खुदरा दूकानों के समूह की एक दूकान है, जो सारत उसी प्रकार की और केन्द्रीय स्वामित्व वाली होती है, अर्थात् जिनमें कार्य परिचालन कुछ हद तक एक सा होता है। यह केन्द्रित बिक्री से सम्बद्ध केन्द्रीयकृत खरीद को निर्धारित करती है। एक ही फर्म बहुत-सी खुदरा दूकानों की मालिक होती है और उन्हें एक ही रूप में चलाती है और इस

तरह बड़े पैमाने के आदेश और प्रमापित विधियो की मितव्ययिता को मिला देती है और खुदरा बिक्री के मार्ग दूर दूर तक पहुंचा देती है। शृङ्खला दूकान विविध वस्तुए बेचने वाली दूकान हो सकती है या बहुस्थानीय दूकान की तरह कुछ थोडी सी वस्तुए बेचने वाली हो सकती है। तीसरा रूप निश्चित मूल्य वाली शृङ्खला दूकान है। स्वतन्त्र दूकान की तरह शृङ्खला दूकान की सफलता भी खुदरा बिक्री के आधारभूत सिद्धान्तो के अनुसरण पर निर्भर है अर्थात् (क) सारे कर्मचारियो को वैज्ञानिक प्रशिक्षण, (ख) समझदारी से खरीदना, (ग) द्रुत बिक्री, (घ) अनुकूल स्थान, (ङ) समुदाय की पण्य सम्बन्धी आवश्यकताओ का ज्ञान, (च) कार्यपरिचालन के सब अनावश्यक खर्चो को खत्म कर देना। शृङ्खला दूकान प्रणाली से समाज को इस सीमा तक आर्थिक लाभ है कि इससे अधिक अच्छे मूल्य मिलते है। सुस्थित उधार निश्चित रूप से मिल सकता है और इसे जिस तरह की राष्ट्रीय प्ररूप की वस्तुए चाहिए उनके लिए अधिकाधिक विस्तृत होता हुआ व्यापार क्षेत्र प्राप्त करता है और अपने कर्मचारियो को सामुदायिक सेवा की और बेचने की सर्वोत्तम विधियो की शिक्षा और प्रशिक्षण देता है।

शृङ्खला दूकान का मुख्य लाभ यह है कि केन्द्रीय प्रबन्ध को यह कहने का अधिकार होता है कि सब इकाइयां प्रबुद्ध नीति और कार्यचालन की दक्ष तथा प्रमापित विधियां अपनाए। दूसरा लाभ खरीदने में है। खरीदने और माल का आर्डर देने से पहले बाजारो की अच्छी तरह छानबीन करली जाती है। इस रीति से न्यूनतम कीमतें मिल जाती है। तीसरे शृङ्खला दूकान की बेचने की नीति यह है कि सब से अधिक मांग वाली वस्तुए खूब रखली जाय और कम बिकने वाली चीजो को खत्म कर दिया जाय। इस पद्धति की कुछ परिसीमाए भी है। इनमें से पहली तो यह है कि प्रत्येक इकाई को उसकी स्थानीय परिस्थितियो के साथ समंजित करना कठिन होता है। बढिया किस्म के दूकान प्रबन्धक प्राप्त करना और साथ ही खर्चे कम रखना कठिन है। केन्द्रीयकरण के लाभ और साथ ही माग की विभिन्नता के अनुसार वस्तुओ और सेवाओ को समंजित करने की कुछ प्रबंधको की स्वतन्त्रता प्राय एक साथ नही रह सकती।

नियत कीमत शृङ्खला दूकान—नियत कीमत वाली शृङ्खला दूकानो या बहुस्थानीय विभागीय दूकानो की यूनाईटेड स्टेटस में अधिकतम उन्नति हो गई मालूम देती है। इङ्गलैंड में अभी इसका विकास हो रहा है पर हमारे देश में ऐसी कोई योजना नही। इंग्लैंड में वूल्वर्थ के तीन पेंस और छ पेंस वाले स्टोर और और अमेरिका के पांच सेंट और १० सेंट वाले स्टोर सर्वोत्तम उदाहरण है। युद्ध से पहले वूल्वर्थ की सब शाखाओ ने दूकान के सामने बडे-बडे अक्षरो में "अधिकतम कीमत छ पेंस" लिख दिया था और अमेरिका में ग्राहक अब भी "पांच और दस" की बात करते है। युद्ध के दिनो में जब कीमतें बढ गई और उपभोग वस्तुओ की

प्ररूप और कीमतों की भिन्नता की दृष्टि से बहुत सारी वस्तुएँ प्रस्तुत करके अधिक वस्तुएँ बेच लेना आसान है। किसी एक बस्ती में उसी तरह की वस्तु को खरीदने वाले बहुत से ग्राहक ढूँढना कठिन बात है। शुरू में बहुविभागीय दूकानें ऊँचे दर्जे के ग्राहकों की, जो अच्छी क्वालिटी की वस्तुएँ चाहते हैं, और जो सेवा तथा सुविधाओं की आकांक्षा रखते हैं जो छोटे खुदरा व्यापारियों के यहाँ नहीं मिल सकती, आवश्यकता-पूर्ति के लिए शुरू की गयी थी। पहले युद्ध और दूसरे युद्ध के बीच की अवधि में बहुविभागीय दूकानों को शृंखला दूकानों की तीव्र प्रतियोगिता का मुकाबला करना पड़ा और अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए उन्होंने अपनी सेवाओं का इस तरह विस्तार कर दिया, जिससे कम आमदनी वाले लोगों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, और नतीजा यह है कि आज एक बड़ी बहुविभागीय दूकान में प्रायः हर चीज बिकती मिलेगी। पश्चिमी देशों में इन दूकानों की संख्या और आकार बढ़ते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, लंदन में सेल्फरिज वालों के यहाँ एक ही भवन में ३०० से अधिक विभिन्न विभाग हैं। भारत में ऐसी बड़ी बहुविभागीय दूकानें नहीं हैं, पर आर्मी एण्ड नेवी स्टोर और व्हाइटवेज और लेडलो (जो अब उठ चुके हैं) छोटे पैमाने की दूकानों के उदाहरण हैं। क्योंकि बहुविभागीय दूकान नगर के सब क्षेत्रों से ग्राहकों को आकृष्ट करने पर निर्भर है, इसलिए यह किसी केन्द्रीय स्थान में होनी चाहिए। मकान लम्बा चौड़ा खूब सजा हुआ और प्रत्येक उद्भाव्य सुविधा, यथा लिखने का कमरा, विश्राम का कमरा सूचना विभाग, आदि से सुसज्जित होना चाहिए। बहुविभागीय दूकान का विकास क्षैतिज, भुजीय और विकर्णीय समेकन का अच्छा उदाहरण है। यह आम तौर पर एक सीमित समवाय या लिमिटेड कम्पनी के रूप में गठित होता है, जिसका नियंत्रण संचालक मंडल के हाथ में रहता है। यदि कोई प्रबन्ध संचालक हो तो वह और अन्यथा महाप्रबन्धक या जनरल मैनेजर संस्था का सर्वोच्च अधिकारी होता है और उसके नीचे प्रबन्धक होते हैं। बहुत अधिक विभागों वाले स्टोर में प्रबन्ध संचालक या महाप्रबन्धक के एकदम बाद विभागीय प्रबन्धक होते हैं। प्रविभागीय प्रबन्धक (सेक्शन मैनेजर) एक प्रविभाग का अध्यक्ष होता है—यह प्रविभाग अनेक परस्पर सम्बद्ध विभागों, यथा पण्य द्रव्य प्रविभाग, हार्डवेयर प्रविभाग, से निर्मित कारबार का एक हिस्सा होता है। प्रविभाग प्रबन्धक का कार्य यह है कि वह अपने प्रविभाग में विभिन्न विभागों के कार्यों को सहसम्बद्ध करे और वह इस काम के लिए सीधे प्रबन्ध संचालक या महाप्रबन्धक के प्रति उत्तरदायी है। प्रविभाग प्रबन्धक मिलकर एक प्रबन्ध मंडल बनाते हैं, जिसका सभापति प्रबन्ध संचालक या महा प्रबन्धक होता है। उनकी बैठक सप्ताह में एक बार होती है जिसमें प्रबन्ध सम्बन्धी मोटे प्रश्नों पर विचार होता है और सारे कारबार को चलाने के बारे में महत्वपूर्ण निश्चय किये जाते हैं।

एक प्रविभाग अनेक विभागों में विभक्त होता है, जिनमें से प्रत्येक का अध्यक्ष एक प्रबन्धक होता है। बिक्री विभाग में वह क्रेता कहलाता है और गैर-

विक्री विभाग में वह विभागीय प्रबन्धक कहलाता है। उसके आधीन प्रत्येक क्रेता के साथ कुछ सेल्समैन या विक्री सहायक होते हैं। उसका काम यह देखना है कि ये सहायक दक्ष और ग्राहकों के साथ नम्र हों। वह दिखाने के लिए माल सजाने का भी विशेषज्ञ होता है। दूकान में उसका स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है और मुख्यतः उसके ही खरीद सम्बन्धी चातुर्य और विवेक पर अन्ततोगत्वा दूकान की समृद्धि निर्भर है। बड़ी दूकानों में क्रय कार्य या सेल्समैनशिप एक ललित कला बन गई है। विभागीय प्रबन्धक अपने विभाग के शुद्ध लाभ कमाने के लिये पूरी तरह जिम्मेदार है। बहुविभागीय दूकानों द्वारा खरीदी गई वस्तुओं में से अधिकतर वस्तुओं की कीमत खरीद के समय चुका दी जाती है और आमतौर पर बिक्री नकद ही होती है परन्तु कुछ दूकानों में स्वीकृत ग्राहकों को महीने या किसी अन्य अवधि तक के लिए उधार दे दिया जाता है। बहुत सी बड़ी बहुविभागीय दूकानें आजकल किस्त योजना पर वस्तुएं बेचती हैं जिसमें ग्राहक को वस्तु फौरन मिल जाती है और दाम उसे कुछ कुछ समय बाद या किस्तों में चुकाना होता है। मोटे तौर से किस्तों में चुकाने की दो रीतियाँ हैं—एक तो अवक्रय या भाड़े पर खरीद (हायर-परचेज) और दूसरी स्थगित भुगतान (डिफर्ड पेमेंट)। इन पर आगे विचार किया गया है।

फायदे और नुकसान—बहुविभागीय दूकान बड़े पैमाने के खुदरा व्यवसाय की शायद सबसे अधिक उल्लेखनीय घटना है और इस पर बृहद् परिमाण संगठन के सब गुण और दोष लागू होते हैं लेकिन निम्नलिखित बातें विशेषरूप से लागू होती हैं। मुख्य फायदा है खरीदने में सुविधा। यह मुख्य रूप से सामान खरीदने की दूकान है। एक ही भवन में बहुत तरह की चीजें मिलती हैं और ग्राहक उसी दूकान में अपनी सब चीजें खरीद सकता है। केन्द्रीय स्थान में अवस्थित होने से ग्राहक इसकी ओर अधिक आकृष्ट होते हैं जबकि मामूली स्थिति वाली खुदरा दूकानों की ओर ग्राहक उतना नहीं जाते। वस्तुओं की विविधता ग्राहकों को आकर्षित करती है और विनम्रता तथा उचित व्यवहार नियम हैं, अपवाद नहीं। इस तरह की दूकान का रूप सेवा है। बहुत से लोगों को कई विभागों में से गुजरना पड़ता है और इसलिए उन्हें उसी भवन में वे चीजें खरीदने की प्रेरणा मिलती है जो वे बाहर खरीदते या बिल्कुल नहीं खरीदते। प्रत्येक विभाग दूसरे का विज्ञापन करता है। इसके विपरीत, जो विस्तृत सेवाएं प्रस्तुत की जाती हैं उनके कारण ऊपरी खर्च, और इसीलिए, कीमतें बढ़ने लगती हैं। इन दूकानों की स्थिति, जो निवास वाले क्षेत्रों से दूर होती है, के कारण छोटी दूकानों को फायदा रहता है जो अधिक अनुकूल स्थानों में "बाजार के पास" होती है।

डाक आदेश व्यवसाय—डाक आदेश व्यवसाय को क्रेता के दृष्टिकोण से संक्षेप में डाक द्वारा खरीदना कहा जा सकता है और यह मुख्यतः सुविधा के कारण लोगों को अच्छा लगता है। ग्राहक घर बैठा-बैठा चीजें खरीद सकता है और इस

धारणा बनाते हैं। बात को आमतौर से आकर्षक शब्दों में लिख दिया जाता है और बहुत बार वह लिखा हुआ भ्रामक भी हो सकता है। (५) बिक्री की अपील रूढ़िबद्ध होती है, और उसे आसानी से बदला नहीं जा सकता। (६) बिक्री करने या आर्डर मिलने में असफलता होने पर उसके कारण खोजना आसान नहीं।

संयुक्त दूकान या सुपर-मारकेट—अमेरिका में दोनों युद्धों के बीच के काल में खुदरा विक्रेता इकाइयों के विभिन्न प्ररूपों के बीच प्रतियोगिता ने खुदरा व्यापार इकाई के एक नये प्ररूप को जन्म दिया जिसे संयुक्त दूकान (कोम्बीनेशन स्टोर) या सुपर-मार्केट कहते हैं और जो प्रारम्भिकतया पसारे और मांस का व्यापार करते हैं, १९२९ में सुपर-मार्केट खाद्य के कुल व्यवसाय का ३६% करता था और १९३९ तक यह ५४% करने लगा। यह प्रारम्भिकतया एक बड़ी 'दाम दो माल लो' (कैश एण्ड कैरी) खाद्य दूकान है, जिसकी बिक्री एक लाख डालर वार्षिक से अधिक होती है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि व्यक्ति दूकानदारों के बिना स्वयं अपने मन की चीज ले लेता है। ग्राहक एक छोटे रास्ते से दूकान में घुसता है और वह खुली अलमारियों में से (उन चीजों को छोड़ कर जिन्हें काटने की जरूरत है), अपनी पसन्द की चीजें बिना किसी विक्रेता की सेवा के ले लेता है। वहाँ पहियेदार गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं, जिन पर वह खरीद-खरीद कर चीजें रखता जाता है और अन्त में जब वह सारी खरीद कर चुकता है तब उस थाली को जिसपर वह अपनी चीजें खरीद कर रखता गया था, उठा कर विक्रय फलक या काउन्टर पर रखता है, जहाँ एक क्लर्क सारा हिसाब लगाता है और भुगतान नकद कर दिया जाता है। अगर कोई सेवा की गई होती है तो उसके पैसे अलग लगाये जाते हैं। ये दूकानें बेचने वाले और खरीदने वाले, दोनों के लिए बड़ी फायदे की हैं। नकद भुगतान करके ग्राहक उधार के प्रभार से बच जाता है और स्वयं अपनी सेवा करके और अपनी वस्तुएँ घर ले जाकर क्लर्क तथा माल पहुँचाने का खर्च बचा लेता है। बड़ी मात्रा में खरीदने पर ग्राहक बड़ी मात्रा की खरीद से होने वाली सुपर-मार्केट की बचत में हिस्सेदार होता है। इस प्रकार वस्तुओं की लागत में कम से कम १०% की बचत आसानी से हो जाती है। और कीमत ही एकमात्र आकर्षण नहीं ग्राहक दूकान की स्वयं करने वाली विविधता को पसन्द करता है। किसी बड़ा बहुविभागीय दूकान की तुलना में जो ६०० से १००० तक वस्तुएँ रखती हैं, सुपरमार्केट २००० से भी अधिक वस्तुएँ रखते हैं और वास्तव में किसी किसी बहुत अधिक बड़ी दूकान में १००००तक वस्तुएँ होती हैं। इससे भी बड़ी बात यह है कि ग्राहक बिक्री के दबाव के अभाव को अनुभव करता है। वह यह अनुभव करता है कि मैं चीजें छाँटने में चाहे जितनी देर लगा सकता हूँ। सुपर-मार्केट की सफलता ने बहुत सी बहुविभागीय दूकानों को यह उपाय अपनाने को प्रेरित किया है। हाल में ही खाद्य पदार्थों के थोकविक्रेता सुपर मार्केट में शामिल हो गए हैं।

सीधी या घर-घर जाकर बिक्री—सीधे या घर-घर जाकर बेचना खुदरा

बिक्री का सबसे पुराना रूप है। घर-घर जाकर बेचने वाले लोगों को मंदी के बाद अर्थ-व्यवस्था के सुधार के आरम्भिक दिनों में सबसे अधिक सफलता होती दीखती है। सम्भावित ऐसा इस तथ्य के कारण है कि जब आमदनियाँ पहले बढ़ती हैं, तब ग्राहक उन विक्रेता से प्रभावित होते हैं जो उनके पास पहुँचता है जब कि वे दूकानों पर जाकर खरीदने की अपनी पुरानी आदत फिर से पकड़ भी नहीं पाये होते। सीधी बिक्री की विधियाँ मितव्ययिता-पूर्ण नहीं होतीं। डिलिवरी की दृष्टि से दूकान से बेची गई वस्तु सीधी विक्रय की विधि से खरीदी गई वस्तु की अपेक्षा कम खर्च से ग्राहक के पास पहुँचाई जाती है। उसी क्वालिटी की वस्तु यदि ठीक तरह बेची जाय तो वह घर-घर जाकर जिस कीमत पर बेची जा सकती है, उससे कम खर्च में दूकान पर बेची जा सकती है। यह विधि खुदरा बिक्रीदारी की सम्भावित सबसे कठिन विधि है। न केवल ग्राहक से मिलने में बल्कि अपनी वस्तुएँ दिखाने में और बिक्री बन्द करने में भी एक विशेष बिक्री कला की आवश्यकता है। घर-घर जाकर बेचने के लिए मध्यम आकार के और छोटे नगर ही अधिक से अधिक उत्तम हैं। स्थायी ग्राहक बनाना मुश्किल होता है।

किश्त पर बेचना

हाल के वर्षों में बड़ी दूकानों ने किश्तों के आधार पर वस्तुएँ बेचना शुरू कर दिया है। किश्त योजना, भाड़ा-खरीद या स्थगित भुगतान के रूप में हो सकती है। भाड़ा-खरीद पद्धति में ग्राहक वस्तुओं का कब्जा तुरन्त ले लेता है और निश्चित दिनों बाद एक निश्चित राशि चुकाता है। स्वामित्व अभी विक्रेता में ही निहित होता है और यदि ग्राहक कोई किश्त न दे तो विक्रेता सारी वस्तुओं पर पुनः कब्जा कर सकता है और अब तक चुकाई गई किश्तें भी जप्त कर सकता है। कानून में नियतकालिक भुगतानों को भाड़े का प्रकार माना जाता है और अगर असामी नियमित रूप से दी जाय तो भाड़ा देने वाले को पूरा भुगतान करने पर वस्तुएँ खरीदने की स्वतन्त्रता होती है। जब तक इस स्वतन्त्रता का उपयोग न किया जाय तब तक भाड़े पर ली हुई वस्तुएँ वह वापस कर सकता है। भाड़ा-खरीद समझौते का सार यह है कि इसमें खरीदने का कोई इकरार नहीं हुआ, बल्कि भाड़े पर लेने वाले को कुछ अवस्थाओं में खरीदने की, अर्थात् पूरी कीमत चुका देने पर खरीदने की स्वतन्त्रता दी गई। भाड़ा-खरीद पद्धति को कुछ साहसी खुदरा विक्रेताओं ने परिवर्तित रूप दे दिया है और वे खरीदने वाले की ओर अधिक आकर्षित करने के लिए यह सुविधा देते हैं कि वे एक निश्चित राशि जमा करने के बाद कुछ समय बाद भुगतान कर सकते हैं। वस्तुओं पर क्रेता का कब्जा हो जाने पर वे उस की सम्पत्ति हो जाती हैं विक्रेता उन वस्तुओं का कुछ हिस्सा वापस ले सकता है, जिनकी किश्त नहीं चुकाई गई है, पर जिनकी किश्त चुकाई जा चुकी, वे वस्तुएँ ग्राहक रख सकता है। परन्तु आपसी समझौते द्वारा इस व्यवस्था को बदला जा सकता है।

किश्त पद्धति के गुण और दोष—किश्तों में खरीदने की विधि में अपने लाभ हैं और यह आर्थिक दृष्टि से सुस्थित हैं बशर्ते कि इसका दुरुपयोग न किया जाय। इस पद्धति से घर पर फरनिश करना या मकान खरीदना भी स्पष्टत लाभदायक है, और इससे बचत की प्रवृत्ति पैदा होती है। पर क्रेता को शीघ्र कर्ज की सुविधा का मूल्य चुकाना पड़ता है और विक्रेता यह सुविधा देने और अतिरिक्त जोखिम उठाने का प्रतिफल चाहता है। इस पद्धति में सम्भरण कर्त्ता उपभोक्ता के लिए वही काम करता है जो थोक विक्रेता कम पूँजी वाले खुदरा विक्रेता के लिए करता है। वह वस्तुएँ उधार देकर उपभोक्ता की धन की वर्तमान कमी को पूरा कर देता है, और क्रेता इन शर्तों के कारण अपनी भविष्य की आमदनी में से बचाकर उधार चुका सकता है। विक्रेता या तो सब कीमत ऊँची रखकर, और नकद भुगतान पर बट्टा छोड़कर अथवा लागत कीमता में कुछ प्रतिशतकता जोड़कर वस्तुओं की ऊँची कीमत वसूल करता है। यदि वह लागत कीमत में कुछ जोड़ता है तो प्रतिशतकता प्राय उस अवधि के अनुसार बदलती रहती है, जिसपर किश्तों के भुगतान को फैलाया जाता है—अवधि जितनी लम्बी होगी, प्रतिशतकता उतनी ही अधिक होगी। इस अवधि का लाभ यह है कि इससे व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है। थोड़ी आमदनी वाले लोगों के लिए नकद रुपया देकर महंगी चीजें खरीदना असम्भव है। इससे ग्राहक अपनी खरीदी हुई चीज का भुगतान करने के लिए बचत भी करता है। नकद खरीद के लिए पर्याप्त रुपया होने की प्रतीक्षा में, प्रतीक्षा की अवधि इतनी लम्बी होगी कि सम्भाव्यत इसी बीच में वह अपना धन इधर-उधर कर देगा। पर इस पद्धति का नुकसान यह है कि इस में व्यक्ति बहुधा उतनी वस्तु खरीद लेता है जितनी का भुगतान करना उसके सामर्थ्य से बाहर होता है। वह अनौचित्य की सीमा तक अपनी भावी आय बंधक रख देता है। इसलिए किश्तों पर खरीदते हुए अति से बचने का यत्न करना चाहिए।

इस पद्धति की इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह भविष्य के व्यापार को पहले ही करने जैसा है और जब मन्दी आती है तब भाड़ा खरीद अनुबधों के अच्छे समय में किए गए और उन वस्तुओं से सम्बन्धित, जो पहले ही नष्ट हो चुकी हैं, बोझ के मौजूद होने से उसका प्रभाव बढ़ जाता है, पर सम्भाव्य यह है कि इस पद्धति के खतरों को बढ़ा चढ़ा कर बताया गया है। भाड़ा खरीद वित्त में बट्टे खाते का अनुपात उस अनुपात से कम होता है जो महाजनों या बैंकरों को उठाना पड़ता है। इसके अलावा पुंज उत्पादन (मास प्रोडक्शन) के लिए पुंज उपभोग की आवश्यकता है और इसे प्राप्त करने का एक हानिहीन तरीका यह है कि उपभोक्ताओं के उधार का विस्तार कर दिया जाय। यह सच कहा गया है कि उस व्यक्ति को रुपया उधार देना अधिक अच्छा कारबार है जो बिक्री के लिए उत्पादित वस्तुएँ खरीदेगा। उस फैक्टरी के निर्माण के लिए रुपया उधार देना अच्छा व्यवसाय नहीं जो अभी वस्तुओं का उत्पादन करेगी। सम्भव है कि ये वस्तुएँ

लाभ के साथ कठिनाई से बिकें या बिलकुल ही न बिकें। इस पद्धति के गुण और दोष चाहे जो भी हों, पर यह जड़ पकड़ चुकी है। इसकी सफलता उन वस्तुओं की प्रकृति पर निर्भर होती है जिन पर यह पद्धति लागू होती है। जहाँ कोई वस्तु स्थायी क्वालिटी और उपयोगिता वाली हो वहाँ यह पद्धति काफी लाभदायक होती है, पर जो वस्तुएँ अस्थायी उपयोग की होती हैं, या जो भुगतान पूरा होने से पहले उपभुक्त हो जाती हैं, वे भाड़ा-खरीद के लिए उपयुक्त नहीं। क्रेता के दृष्टिकोण से इस पद्धति से आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदना प्रशंसनीय है और सुविधा की वस्तुएँ खरीदना अव्यवहार्य है।

उपभोक्ताओं की सहकारी दुकानें—उपभोक्ताओं की सहकारी दुकानें उपभोक्ताओं द्वारा निर्वाचित स्वेच्छया बनाये हुए संगठन हैं। उनका लक्ष्य उत्पादन, थोक विक्रय और खुदरा विक्रय के कार्य करना है। सहकारी दुकानों, को सब से अधिक सफलता खुदरा दुकान के काम में हुई है। विस्तृत विवेचन के लिए "सहकारी उपक्रमों" वाला अध्याय देखना चाहिए।

अध्याय ३०

परिकल्पन (स्पेकूलेशन) और संगठित बाजार

परिकल्पन- स्पेकूलेशन शब्द लेटिन केस्पेकूलेयर शब्द से बना है जिसका अर्थ है दूर से देखना, इसलिए इसका अभिप्राय यह है कि भविष्य की घटनाओं की परिकल्पना करना। बाजार के व्यवहार के प्रसंग में इसका अर्थ है पदार्थों या प्रतिभूतियों को लाभ उठा कर, किसी और समय, प्राय उसी बाजार में वेचने या खरीद करने के उद्देश्य से, खरीद लेना या वेच देना। इसमें परिकल्पक जो वस्तुएं खरीदता या वेचता है, उनकी वर्त्तमान और भावी मूल कीमतों के अन्तर से लाभ उठाया जाता है। परिकल्पक और नियोजक में यह भेद है कि परिकल्पक मूल्यों में परिवर्तन की सम्भावना से लाभ की आशा रखता हुआ खरीदता या वेचता है। नियोजक वार्षिक आय कमाने के लिए सम्पत्ति खरीदता है। इस प्रकार परिकल्पक पूँजी की हानि की अधिक बड़ी जोखिम उठाता है, और साथ ही अधिक बड़े लाभ की आशा भी करता है। परिकल्पक व्यवसाय में निम्नलिखित एक या अधिक चीजें होती हैं।

वैध उपक्रम, जो किसी व्यवसाय, कुशल व्यक्ति द्वारा सावधानी से माँग का हिसाब लगाकर, उसकी पूर्वकल्पना करते हुए लाभ मिलने के उद्देश्य से उत्पादन करके किया जाता है। इसमें जोखिम का अंश सीमित है और अतिकुशल उपक्रमी इसे और कम कर सकता है।

वास्तविक परिकल्पन जिसमें आदमी किसी उपक्रम में धन का नियोजन करता है— इस उपक्रम के जोखिमों और विवरणों का किसी आदमी को पता नहीं चलता। उपज विनिमय स्थानों और श्रेष्ठि चत्वरों (स्टाक एक्सचेंज) के व्यापारी क्रमश जिंस (Commodities) या प्रतिभूतियों की कीमतों के चढ़ाव या उतार की सम्भावना पर परिकल्पन करते हैं। पदार्थों की अवस्था में, अगर फसलें प्रभूत होने की सम्भावना है तो वे भविष्य में कीमतों की कमी का अनुमान करके माल प्राप्त करने का अपना अधिकार वेच देते हैं। यदि फसलें हल्की होने की सम्भावना है तो वे भविष्य में कमी और ऊंची कीमतें होने की कल्पना करके यथासम्भव अधिकतम पदार्थ खरीद लेते हैं। व्यापारी के पास विशेष प्राविधिक और साधारण जानकारी होती है और वह घटनाओं व भविष्य के सम्बन्ध में अपने निर्णय के अनुसार ही परिकल्पन करता है। परन्तु उसके परिगणन गलत करने वाली इतनी बातें बीच में आ सकती है कि उसका व्यवसाय सारत परिकल्पनात्मक है — कभी

उसको बहुत लाभ भी हो सकता है और कभी इतनी हानि हो सकती है कि वह बरबाद हो जाय।

जुआ या अवैध परिकल्पन (सट्टा) मुख्यत उस कारबार को सूचित करता है जो परिकल्पको द्वारा बहुत भारी लाभ प्राप्त करने की आशा में अंधे हो कर बिना कुछ जाने किया जाता है। इन व्यवहारो में बाजार का जानबूझ कर छलसाधन (मॅनिपुलेशन), उदाहरण के लिए, बाजार हथियाना (कोरनरिंग), भी शामिल है जो बहुत चतुर पर धूर्त आपरेटरो द्वारा किया जाता है। हानि की जोखिम बहुत होती है। बहुधा सारी की सारी नियुक्त पूँजी लुप्त हो जाती है, पर मुख्य बुराई इस बात में है कि आपरेटर वास्तव में बहुत कम जोखिम उठाते हैं क्योंकि वे अधिकतर उधार ली हुई पूजी के आधार पर या बिलकुल बिना पूँजी के सट्टा करते है। इस प्रकार श्रेष्ठचत्वरो में तजडिये और मॅंदडिये आपरेटर निविष्टों और शेयरो के लिये लोगो की माँग को प्रभावित करने के उद्देश्य से कीमतो को छलसाधित करते हैं। जब कीमतें काफी बढ जाती हैं या काफी गिर जाती हैं, तब ऊंची कीमतो पर ये आपरेटर अपना माल बेच डालते हैं, या कम कीमतो पर बहुत सारा खरीद डालते हैं। इस प्रकार का व्यापार समाज के लिए हानिकारक है क्योंकि निजी नियोजक को इसकी हानि उठानी पड़ती है और कीमतो में बहुत अधिक उतार-चढाव पैदा कर दिये जाते हैं। वैध परिकल्पन कीमतो की घट-बढ को कम करने की प्रवृत्ति रखता है। सट्टा इसे सिर्फ बढाने का काम करता है।

परिकल्पन के आर्थिक प्रभाव—वैध या व्यापारिक या सगठित परिकल्पन का मौलिक परिणाम है समरण तथा माँग क सतुलन की स्थापना में सहायता करना। इस के प्रभाव से दैनिक बाजार कीमतें मौसमी बाजार कीमतो के अनुरूप होने लगती हैं और मौसमी बाजार कीमतें ऐसी होने लगती हैं जिन पर सारे मौसम का माल निकल जाय। कुछ उद्योगो में हानि की जोखिम अधिक होती है, विशेष कर उन उद्योगो में जो रुई, ऊन, गेहूँ आदि कच्चे सामान बड़ी मात्रा में उपयोग करते हैं फसलो की मात्रा और क्वालिटी हमेशा अनिश्चित और मनुष्य के काबू से बाहर की बातें हैं और कुछ-कुछ समय बाद काटी जाने वाली कच्ची उपज की प्राप्ति में प्राप्ति नियमित रूप से और लगातार नही होती, पर दूसरी ओर माँग स्थिर होती है। रुई, ऊन, और गेहू औद्योगिक कार्यो के लिए सब जगह और सब समय चाहिए। इसलिए यदि अन्य शक्तियाँ खींचतान को कम करने के लिए यत्नशील न हो तो उत्पादन के इन विभागो में कीमतो की घट-बढ चरमसीमा की ओर जाने लगेगी। ये बल अतिसगठित उपज बाजारो पर और प्रतिभूतियो की अवस्था में श्रेष्ठ चत्वरो पर अपना प्रभाव डालते हैं। क्रेता और विक्रेता बडे जानकार विचौलिये होते हैं, जिनकी जीविका लाभ का पूर्वानुमान करने से ही चलती है। वे वास्तव में

कच्चे सामान को कभी हाथ नही लगाते, बल्कि उत्पादको और निर्माताओ के बीच में मध्यवर्तियो के रूप म कार्य करते हैं। उनकी काय करने की रीति इस बात से निर्धारित होती है कि वे घटनाओ के भावी मार्ग का क्या तखमीना लगाते हैं। यदि उनके विचार से कीमतें गिरेंगी तो व भविष्य की डिलिवरी के लिए माल बेचने लगते हैं। इसके विपरीत, यदि उनको कीमतो के चढने की आशा है तो वे भविष्य की डिलिवरी के लिए माल खरीदने लगते हैं। वर्त्तमान बिक्री, कीमतो को इस समय कम करने लगती है, और इसलिए पूर्वानुमानित उतार की तीव्रता कम करने लगती है। इसी प्रकार, वर्त्तमान खरीद कीमतो को तुरन्त चढाने लगती है और इस तरह निकट भविष्य में अति तीव्र वृद्धि की गुजायश कम हो जाती है। यदि परिकल्पक का निणय सही हो तो उसकी खरीद बेच स्थिर होने लगती है और प्रच ड उतार-चढाव रुक जाते हैं। इस दृष्टि से वह मूल्यवान आर्थिक सेवा करता है और सारा समाज उससे लाभ उठाता है।

कुशल परिकल्पक माल के समकृत (equalised) वितरण में मदद करते हैं। उन्हें जो विशिष्ट जानकारी होती है वह उत्पादको के लिए बडी सहायक होती है। इससे उत्पादन की ओर रोजगार की स्थिरता सम्भव हो जाती है। और वस्तुओ के सम्भरण और उनकी माँग का समन्वय होने लगता है। अनेक देशो के सगठित बाजार विविध देशो के बीच आवश्यक पदार्थों का अधिक उपयुक्त वितरण भी होने देते है। यदि एक जगह खूब माल उपलब्ध है तो दूसरी जगह कमी होना सम्भव नही। पेशेवर परिकल्पक न केवल कीमतें कुछ कम होने पर खरीदता है और जब कीमतें ऊची होती है, तब बेचता है, बल्कि वह जिस जगह कीमतें कम होती है वहाँ से खरीद कर, अधिक कीमत वाली जगहो म भी बेचता है, और इस प्रकार एक और दूसरे स्थान के बीच कीमतो के अन्तर को कम करता है। परिकल्पन बुद्धि का भाग्य के साथ सघर्ष है और जहा तक इस बात का सम्बन्ध है कि परिकल्पक आवश्यक पदार्थों की कीमतो और सभरण क विषय में विद्यमान अनिश्चितता का कम कर देता है, वहाँ तक वह अन्य मनुष्यो की मूल्यवान सेवा करता है।

हाल के वर्षो में शीतसग्रह (Cold Storage) के विकास ने माल के वितरण को और समकृत करा दिया है, और यह बात उन सौदो के प्रभाव स होती जो सारत परिकल्पनात्मक होते हैं। फल, मांस, मछली और अडा अब अनियमित मात्रा में बाजार में नही आते। जो वस्तुएँ किसी समय बहुत यत से होती हैं, उन्ह खरीद कर व्यापारी शीतसग्रह में रख लेते हैं और कमी के समय बेचते हैं। कीमतें अधिक एकरूप होती हैं और कुछ मितव्ययी व्यापारियो के लाभ की मात्रा सभाव्यत कम हो जाती है। उन्ह जोखिम कम हो जाती है और समाज को ठीक ढग के परिकल्पन के परिणामस्वरूप, बिचौदिए की सेवाओ से कम लागत लगाकर माल मिल जाता है।

परिकल्पन से, विशेषकर विनिमय स्थानो में, व्यापारगत वस्तुओं के प्रमापन और श्रेणीकरण को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रक्रम से अनुबंधित वस्तु की क्वालिटी के बारे में सब विवाद समाप्त हो जाते हैं। परिकल्पन मुख्यत निधिपत्र बाजारो (स्टोक मारकेट) और उपज विनिमय स्थानो में होता है, जहां कीमतो से सम्बन्ध माग और बाजार को प्रभावित करने वाले अनेक कारको के बारे में अधिक से अधिक जानकारी मिल सकती है। विनिमय स्थानो का सगठन अत्यधिक विशेषीकृत और प्राविधिक कार्य है। इसमें ऐसी अवस्थाए होती है, जिनमें व्यापार की अनेक पद्धतियो द्वारा, जिनम से मुख्य वायदा व्यापार (फ्यूचर्स) है, उत्पादको को बाजार की घट बढ की बहुत सी जोखिम से मुक्त होने का मौका मिलता है। यह जोखिम केवल स्थानान्तरित हो जाती है, परन्तु हैजिग (वृतिपणन) के सौदो द्वारा एक दिशा में ली गई जोखिम को दूसरी दिशा में ली गई जोखिम से प्रतितुलित करके सर्वथा लुप्त कर दिया जाता है। हैजिग के सौदे जुआ नही है, बल्कि एक तरह का बीमा है। जो निर्माता कच्चा सामान खरीदता है वह अपनी हिफाजत कर लेता है जिसके परिणामस्वरूप कीमतो क परिवर्तनो से उस न हानि होती है और न लाभ इस तरह घटती-बढ़ती कीमतो की जोखिम से मुक्त होकर वह अपने मुख्य कार्य पर ध्यान लगा सकता है।

पशेवर परिकल्पनात्मक सौदो से जो लाभ होता है, उनके मुकाबिले में कुछ गम्भीर बुराइयो भी विचारणीय है। ये बुराइया उन्ही सुविधाओं के द्वारा पैदा होती है और बढती है। जिनसे परिकल्पन अपने अच्छे प्रभाव डाल पाता है। पहली बात यह है कि जब कोई वस्तु प्रमापित हो जाती है तब कोई भी उसका सौदा करने लगता है। इसलिए ठडे दिमाग वाले और खूब जानकारी रखने वाले उन व्यापारियो के अलावा जिनमें बाजार के प्रभाव को परखने की योग्यता होती है, सैकडो अज्ञानी और शीघ्र उत्तेजित होने वाले व्यक्ति जो एक बार विचारहीनता से काम करते है और दूसरी बार डरते रहते है, परिकल्पन करने लगते है। ये "बाहरी परिकल्पक" या "अज्ञानी" आम लोग सभी अनभ्यस्त जुआरियो की तरह सब के सब हानि उठाते है और उनमें से अधिकतर अन्त में बरबाद हो जाते है। इस तरह का परिकल्पन अधिकतर श्रेष्ठिचत्वरो पर किया जाता है और इस का कारण यह है कि व्यापारगत प्रतिभूतियो का स्वरूप समान होता है। किसी कम्पनी का शेयर या अश सर्वथा दूसरे शेयर के समान अच्छा होता है। दूसरी दिशा में अधिक गम्भीर और दूरगामी आर्थिक हानियां होती है। व्यापक परिकल्पन विशेष कर विविपत्रो और शेयरो का, औद्योगिक उतार-चढ़ाव और सकटो की तीव्रता को बढाया करता है।

सगठित बाजार

श्रेष्ठि चत्वर और उपज विनिमय स्थान विशिष्ट बाजार होते है जो एक ऐसा स्थान प्रस्तुत करते है, जहां उनके सदस्य विशेष प्रकार के पदार्थो (प्रतिभू-

तियो या उपज) को खरीद या बेच सकते हैं अथवा इस काम के लिए विशेष रूप से बनाए गये नियमों के अनुसार सौदे कर सकते हैं। इन विनिमय स्थानों में दो प्रकार के सौदे होते हैं: (१) हाजिर या नक्द, (२) वायदा। हाजिर या नक्द सौदा तत्काल पैसा चुका कर किसी पदार्थ या प्रतिभूति को खरीदने या बेचने और डिलीवरी तुरत या एक दो दिन में ले लेने को कहते हैं। वायदा व्यापार किसी भविष्य की तारीख में खरीदने या बेचने के करार को कहते हैं, जिसमें डिलिवरी लेने और भुगतान करने का काम भविष्य की किसी स्वीकृत तिथि को होता है। सारत उपज विनिमय स्थान और श्रेष्ठिचत्वर एक ही तरह संगठित होते हैं। दोनों में एक ही प्रकार से सौदे किये जाते हैं और इसी प्रकार दोनों का लक्ष्य और कार्य की रीति भी एक ही है। व्यापारगत वस्तुओं में एक ही सी विशेषताएं होती हैं, यद्यपि उनका उद्गम और प्रकृति भिन्न होती है। उपज विनिमय स्थान और श्रेष्ठिचत्वर या निधिपत्र विनिमय में मुख्य भेद दो प्रकार का है। उपज विनिमय एक ऐसा स्थान होता है, जिस पर प्राथमिक पदार्थ अर्थात् उपभोग और आगे उत्पादन के लिए अभिप्रेत और भूमि तथा पानी के तल के नीचे से निकाली जाने वाली कृषिक वस्तुओं की खरीद और बिक्री होती है, इसके विपरीत, श्रेष्ठिचत्वर या निधिपत्र विनिमय स्थान वह स्थान है जहाँ निधिपत्र, शेयर और अन्य प्रतिभूतियाँ खरीदी और बेची जाती हैं। दूसरा अन्तर इस तथ्य में निहित है कि कम से कम शुरू में, निधिपत्र विनिमय स्थान लोगों को नकदी की आवश्यकता होने पर अपने शेयर बेचकर नकद रुपया प्राप्त करने का अवसर देता था और इसका व्यापार का पहलू गौण था। उपज विनिमय स्थानों में सच्चा व्यापार हमेशा हुआ है, यद्यपि हाल में निधिपत्र विनिमय स्थानों में व्यापारिक पहलू प्रमुख हो गया।

व्यापारगत पदार्थों की विशेषतायें—सब प्रकार के पदार्थ संगठित बाजार में नहीं लाए जा सकते। वहाँ के लिए वही पदार्थ उपयुक्त है जिसमें निम्नलिखित पाँच विशेषताएँ हों—(१) यह समांग होना चाहिए जिससे क्वालिटी के बारे में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न स्थानों और समयों पर यह एक ही पदार्थ समझा जाय। (२) इसका श्रेणीकरण, तौल, माप या संख्याकन हो सकना चाहिए ताकि नमूने या वर्णन द्वारा सौदा हो सके और सब लोग इसे एक वस्तु के रूप में स्वीकार कर सकें। (३) यह टिकाऊ होना चाहिए यानी वायदे के अनुबंध की अवधि में जो एक वर्ष या इससे भी अधिक हो सकती है, खराब न होना चाहिए। (४) उस पदार्थ का व्यापार इतना और इतनी बड़ी मात्रा में होना चाहिए कि उसके लिए दी जाने वाली सुविधाओं की लागत उचित जचे। (५) इसका संगठित परिकल्पनात्मक सौदा हो सकना चाहिए। दूसरे शब्दों में, माँग में, इतनी काफी घट-बढ़ होनी चाहिए कि उत्पादन की दर में द्रुत परिवर्तनों द्वारा सम्भरण तत्काल माँग से समंजित न हो सकता हो, क्योंकि यदि शीघ्र समंजन हो सकता है तो व्यापारियों को लाभ का मौका बहुत थोड़ा है। धरती की स्वाभाविक पैदावार, जैसे अनाज, रुई,

चीनी, तिल्हन, काफी, कोको, अलोह धातुएँ, रबड, रेशम, जूट, जूट की बोरिया, बिनोले का तेल, तरे का तेल, खली, शल्कलाक्षा (Shellac), सुअर के मास के उत्पादन, काली मिर्च, ऊन, खालें, शराब, ऐल्कोहल आदि शर्तों को पूरा करते हैं और इसलिए सगठित उपज विनिमय स्थानो में इसके सौदे होते हैं, परन्तु पूर्णत या अशत निर्मित वस्तुएँ शर्तों को पूरा नही करती और इसलिए वे सगठित बाजार मे सौदे के लिए उपयुक्त नही । उनकी बहुत सी किस्में होती है और प्रत्येक किस्म इतना बडा समांग समूह नही बना सकती, जिसका पुज रूप में सौदा किया जा सके । विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतिया म (जो आम तौर से स्टॉक एक्सचेंज की प्रतिभूतियाँ कहलाती हैं) आदर्श समागता और प्रसाप होता है । इसलिए वे वायदे बाजार और परिकल्पन के लिए उपयुक्त होती हैं और इस प्रकार उन्हें निधिपत्र विनिमय स्थानो में बेचा खरीदा जा सकता है ।

श्रेष्टि चत्वर या निधिपत्र विनिमय स्थान (स्टाक एक्सचेंज)

अर्थ तथा आर्थिक कार्य—जो लोग प्रतिदिन श्रेष्ठिचत्वर पर काम करते हैं उन्हें भी इसके अर्थ की ठीक धारणा नहीं मालूम होती । कुछ लोगो की दृष्टि में यह अलीबाबा का खजाना या झटपट धनी हो जाने का स्थान है, और कुछ लोग इसे सट्टे या जुए की जगह समझते हैं । इसे ससार का बडा बाजार, राष्ट्रों की राजनीति और वित्त का स्नायुकेन्द्र और उनकी समृद्धि का पैमाना माना जाता है । इसे अथाह कूप और सब नरकों से भयकर भी बताया गया है, पर इसे ठीक-ठीक शब्दो में देश की और बाहरी दुनिया की विभिन्न कम्पनियो के निधिपत्रो और शेयरो तथा अन्य प्रतिभूतियों की बिक्री और खरीद का बाजार कहा जा सकता है । क्योंकि जिन प्रतिभूतियों का इसमें सौदा होता है वे ससार के हर भाग में सम्पत्ति को निरूपित करती है इसलिए श्रेष्ठिचत्वर को ससार का बाजार कहा गया है । श्रेष्ठिचत्वर का व्यवसाय धन बाजार के अलावा और सब बाजारो की तुलना म विविधतापूर्ण और विश्वव्यापी होता है । इसका व्यवसाय व्यवसायो का व्यवसाय है । यह राष्ट्रों की राजनीति और वित्तो का स्नायु केन्द्र है क्योंकि इसमें इतिहास का निर्माण करनेवाली सब बातें सगमित होती हैं और उनकी तत्काल अभिव्यक्ति हो जाती है । श्रेष्ठिचत्वर के बिना किसी देश का वाणिज्यिक और आर्थिक जीवन कभी उन्नत और परिष्कृत नहीं हो सकता । परोक्षत यह सस्था उद्योग और वाणिज्य के सबसे बडे सचित वस्तु दानी पूँजी की व्यवस्था करती है । यदि किसी आविष्कारक को किसी विचार *का यदि किसी निवेशक को अपनी कमाई हुई पूँजी का निवेश करना है,* विकास करना है, यदि किसी व्यापारी को व्यवसाय का विस्तार करना है । यदि किसी पदपरिष्कारक को किसी नये देश का प्रथम अनुसधान करना है, यदि किसी बैंकर को अल्प अवधि में अपनी निधि से लाभ कमाना है, यदि सरकार को कोई योजना वित्तपोषित करनी है तो ये सब के सब अन्त में श्रेष्ठिचत्वर ही पहुँचते हैं । इस अर्थ में इसे सब व्यवसायो का व्यवसाय कहा जाता है । यह

परिकल्पन और नियोजन के लिए पूंजी का अंग (व्यस्व) है। इसके सदस्यों का सब पूंजीपति नियोजकों और परिकल्पकों से निकट सम्पर्क होता है। इसके अलावा, जिन प्रतिभूतियों पर धन दिया जाता है, उनके लिए उन्मुक्त बाजार की व्यवस्था करके श्रेष्ठिचत्वर अभिदानों (Subscriptions) को आकृष्ट करता है और सच तो यह है कि जहां अन्यथा अभिदान सम्भव न होते वहां उन्हें सम्भव बना देना है। अविरसर लोगों को यदि यह निश्चय न हो कि आवश्यकता होने पर वे श्रेष्ठिचत्वर द्वारा प्रस्तुत उन्मुक्त बाजार में प्रतिभूति बेचकर इसका धन आसानी से प्राप्त कर सकते हैं तो वे अच्छी-से-अच्छी प्रतिभूतियों के लिए भी अपना पैसा देने में हिचकिचाने। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रेष्ठिचत्वर से पूंजी की चलिष्णुता बढ़ जाती है। यदि श्रेष्ठिचत्वर न हो तो सरकार को भी उधार लेना कठिन हो जाय। फौरन पूंजी न मिलने से बड़ी-बड़ी राष्ट्रीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक योजनाएं धरी रह जायेंगी। न रेलें धरती पर चल सकेंगी और जहाज समुद्र पर; उपक्रम निरुत्साहित हो जायेगा, इत्यादि। श्रेष्ठिचत्वर का संसार की समृद्धि से विशेषतया घनिष्ठ सम्बन्ध है, और उस समृद्धि के साथ-साथ इसका विकास हुआ है।

श्रेष्ठिचत्वरों का इतिहास—श्रेष्ठिचत्वरों की वृद्धि अपेक्षया हाल में ही हुई है। दो शताब्दी पहले संसार में कोई श्रेष्ठिचत्वर नहीं था, और लंदन स्टॉक एक्सचेंज, जो अपने ढंग का सबसे पहला एक्सचेंज था, सौ वर्ष पहले निरा दुधमुंहा बच्चा था। इसकी स्थापना १७७३ में हुई थी और यह शीघ्र ही संसार का वित्तीय स्नायु केन्द्र हो गया। अपने वर्तमान स्थान कैपलकोर्ट में यह १८०१ में आया और १८०२ में परिशोधन विलेख (डीड आफ सेटिलमेन्ट) के अधीन गठित हुआ। एक शताब्दी के काल में फ्रांस ने लंदन का अनुकरण किया और कुछ समय बाद जर्मनी और अमेरिका भी इस क्षेत्र में आ गए। परन्तु भारत में आधुनिक अर्थ में श्रेष्ठिचत्वर १८८० से पहले अज्ञात था और नेटिव शेयर एन्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसिएशन बाम्बे या बम्बई स्टॉक एक्सचेंज औपचारिक रूप से १८८७ में गठित हुआ। कलकत्ते में वर्तमान कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना से बहुत पहले सरकारी प्रतिभूतियों का लेन-देन होता था। प्रतिभूतियां खरीदने और बेचने का काम सार्वजनिक स्थानों में होता था, पर १९०८ में कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज एसोसिएशन के नाम से एक एसोसिएशन स्थापित किया गया। मद्रास में पहला स्टॉक एक्सचेंज १९२० में बना पर १९२३ में इसे बन्द हो जाना पड़ा फिर १९३० में मद्रास स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड के नाम से इसे पुनर्जीवित किया गया और महत्व की दृष्टि से इसका स्थान बम्बई और कलकत्ते के बाद है। १९३८ में बम्बई में इंडियन स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड के नाम से एक नया स्टॉक एक्सचेंज खोला गया जिसके संचालन मण्डल के सदस्य बड़े शक्तिशाली थे। यद्यपि सरकार ने इसे मान्यता नहीं दी है, तो भी इसमें वायदे का लेन-देन बहुत मात्रा में होता है। क्योंकि कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज सिर्फ नकद लेन-देन करने देता था, इसलिए कलकत्ते में बम्बई स्टॉक एक्सचेंज के नमूने पर वायदा

व्यापार करने के लिए १९३७ में बंगाल शेयर एण्ड स्टाक एक्सचेंज एसोसियेशन लिमिटेड नाम का एक और एसोसियेशन शुरू किया गया। विभिन्न नगरों में और भी बहुत से स्टौक एक्सचेंज हैं पर वे मुख्यत स्थानीय हैं और उनकी कार्यप्रणाली बम्बई तथा कलकत्ते के नमूने पर हैं। अहमदाबाद शेयर एन्ड स्टौक ब्रोकर्स एसोसिएशन, यू० पी० स्टौक एक्सचेंज एसोसिएशन लिमिटिड, कानपुर, हैदराबाद स्टाक एक्सचेंज लिमिटिड, और दिल्ली स्टौक एक्सचेंज का नाम उनमे उल्लेखनीय है।

गठन—भारतीय स्टौक एक्सचेंजो के गठन में साधारण समरूपता है। बम्बई स्टौक एक्सचेंज को छोडकर और सब भारतीय कम्पनी अधिनियम १९१३ के अधीन रजिस्टर्ड सीमित दायित्व कम्पनियां हैं। बम्बई स्टौक एक्सचेंज लन्दन स्टौक एक्सचेंज की तरह अनियमित, सर्वथा निजी स्वेच्छया निर्मित लाभ न करने वाला एसोसिएशन है और वह ३७ अनुच्छेदों वाले एक पार्षदविलेख (डीड आफ एसोसिएशन) तथा बम्बई सरकार द्वारा अनुमोदित और मजूर किये गये नियमो से शासित होता है। अहमदाबाद स्टौक एक्सचेंज बम्बई के नमूने पर है पर मुख्यत स्थानीय सूती मिलों के शेयरो का लेन-देन करता है। कलकत्ता एक्सचेंज की पूंजी तीन लाख रुपये है जो एक एक हजार रुपये वाले तीन सौ साधारण शेयरो में विभाजित है। कोई भी सदस्य एक से ज्यादा शेयर नही ले सकता। मद्रास स्टौक एक्सचेंज की पूंजी चवालिस हजार रुपये है, जो पाँच-पाँच सौ रुपये वाले बारह संस्थापक सदस्य शेयरो में और एक-एक हजार रुपये वाले साधारण सदस्य शेयरो में विभाजित है, और पूंजी घटाने या बढ़ाने का अधिकार इसे प्राप्त है। यू० पी० स्टौक एक्सचेंज की पूंजी ५० हजार रुपये है जो ढाई-ढाई सौ रुपये वाले दो सौ शेयरो में बटी है। हैदराबाद एक्सचेंज की पूंजी शेयरो द्वारा सीमित कोई पूंजी नही, पर प्रत्येक सदस्य ने यह वचन दिया है कि यदि उसे बन्द किया गया तो वह कम्पनी की आस्तियो में अंशदान करेगा।

भारत म प्राय प्रत्येक महत्वपूर्ण नगर में एक स्टौक एक्सचेंज है, परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान बम्बई स्टौक एक्सचेंज है। इसे एक राष्ट्रीय संस्था कहा जा सकता है यद्यपि कलकत्ता और मद्रास एक्सचेंज भी कुछ विशिष्ट प्रतिभूतियों में नियोजक जनता की उपयोगी सेवा करते हैं। क्योंकि भारत में उद्योग किसी किसी स्थान में अधिक मात्रा में हैं, इसलिए कुछ प्रकार की प्रतिभूतियो का लेन-देन खास एक्सचेंजो में स्थानबद्ध होने की प्रवृत्ति रही है। उदाहरण के लिए, बम्बई विशेष रूप स इस्पात और टैक्सटाइल शेयरो का लेन-देन करता है, यद्यपि अन्य प्रतिभूतियो का भी लेन देन वहां होता है। कलकत्ता में जूट, चाय, कोयला, और माईनिंग शेयरो का कारबार अधिक होता है। मद्रास में मुख्यत. प्लान्टेशन शेयर चलते हैं और अन्य प्रतिभूतियो के लिए वह स्थानीय बाजार है। चीनी शेयरो का कारबार कानपुर एक्सचेंज पर अधिक होता है। मद्रास और कलकत्ता

अधिकतर नियोजन के लिए है, जबकि बम्बई में परिकल्पन के लिए अधिक अच्छा क्षेत्र है।

प्रबन्ध—प्रत्येक स्टौक एक्सचेंज के कारबार का नियंत्रण एक प्रबन्ध समिति करती है जो विभिन्न एक्सचेंजों में विभिन्न नामों से पुकारी जाती है ; बम्बई स्टौक एक्सचेंज में यह गवर्निंग बोर्ड कहलाती है। मद्रास और अन्य स्थानों में इसे कौंसिल आफ मैनेजमेन्ट कहते हैं और कलकत्ता एक्सचेंज में इसका नाम कमेटी है। प्रत्येक स्टौक एक्सचेंज के कार्यसंचालन के नियम अपने-अपने हैं। कमेटियों को पर्यवेक्षण और प्रबन्ध की साधारण शक्तियां हैं पर रोजमर्रा का प्रबन्ध उपसमितियां जैसे, मध्यस्थ निर्णय समिति (आर्बिट्रेशन कमेटी), अशोधी समिति (डिफाल्टर्स कमेटी), सूचीकर्ता समिति (लिस्टिंग कमेटी), आदि करती हैं। न्यासियों का एक निकाय, जो एसोसिएशन की एक साधारण सभा द्वारा नियुक्त होता है, जैसे बम्बई में, एसोसिएशन के धन और सम्पत्ति की देख रेख करता है। लदन स्टौक एक्सचेंज में १९४५ से पहले समितियों द्वारा नियंत्रण होता था। एक प्रबन्ध समिति थी जो मालिकों की प्रतिनिधि थी और एक साधारण कार्यों के लिए समिति थी, जो सदस्यों की प्रतिनिधि थी, (शेयरहोल्डरों या मालिकों की नहीं)। १९४५ में दोनों को मिलाकर एक कौंसिल आफ स्टाक एक्सचेंज बना दी गई, जो कारबार तथा वित्त दोनों चीजों को सम्भालती है।

सदस्यता—स्टाक एक्सचेंज पर सिर्फ सदस्य ही कार-बार कर सकते हैं। गैर सदस्य को, जो इस पर प्रतिभूतियां खरीदना या बेचना चाहता है किसी सदस्य की मार्फत यह कार्य करना होगा। बाहरी लोगों का मकान में भी नहीं घुसने देते। स्टौक एक्सचेंज का सदस्य होने के लिए उसके नियमों का पालन करना पड़ता है। सदस्यता सिर्फ वयस्कों के लिए खुली है और बम्बई एक्सचेंज २१ वर्ष से कम उम्र वालों को सदस्य नहीं बनाता। दिवालिया और पागलों को सदस्य नहीं बनाया जाता सदस्यों को व्यवसाय के प्रयोजन से विज्ञापन करने की इजाजत नहीं और न वे व्यावसायिक परिपत्र जारी कर सकते हैं। सदस्य एक दूसरे के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं करते बल्कि उन्हें सब विवाद मध्यस्थ निर्णय कमेटी के पास भेजने चाहिए। सुदृढ वित्तीय स्थिति वालों को ही सदस्य बनाया जाता है। प्रत्येक स्टौक एक्सचेंज प्रवेश शुल्क और निर्धारित चन्दा अधिक रखता है। कुछ रुपया जमा भी करना पड़ता है। बम्बई स्टौक एक्सचेंज का सदस्य बनने के लिए व्यक्ति भारत का नागरिक होना चाहिए और उसे गवर्निंग बोर्ड से एक कार्ड हासिल करना चाहिए। यदि वह किसी सदस्य का पुत्र नहीं तो उसे २० हजार रुपये नकद या स्वीकृत प्रतिभूतियों के रूप में जमा कराने पड़ते हैं। कार्ड की कीमत २० हजार रुपये और ५० हजार रुपये के बीच में रही है। १९२० में इसकी कीमत ४८ हजार रुपये थी, फिर २० हजार रुपये हो गई, फिर इसके बाद चढ़कर ४० हजार रुपये हो गई। कलकत्ता

और मद्रास आदि के विभिन्न एक्सचेंजों का सदस्य होने के लिए आदमी को कम-से-कम एक शेयर जरूर खरीदना पड़ता है। प्रवेश शुल्क (उदाहरण के लिए कलकत्ता एक्सचेंज में ५ हजार रुपया) भी देना पड़ता है शेयरों का बाजार मूल्य उनके अंकित मूल्य से प्रायः बहुत ऊंचा होता है। उदाहरण के लिए, कलकत्ता एक्सचेंज के शेयर का अंकित मूल्य एक हजार रुपया है और उसका बाजार मूल्य ३० हजार रुपये के आस-पास है, और कहा जाता है कि १९४८ में यह एक लाख रुपये तक पहुँच गया था। नई सदस्यता की अवस्था में दो प्रमुख सदस्यों द्वारा सिफारिश आवश्यक है। अगर किसी सदस्य द्वारा कोई आपत्ति न उठाई जाय, और प्रार्थी अपनी वित्तीय स्थिति और बाजार के अनुभव के बारे में मैनेजिंग कमेटी को सन्तुष्ट करदे तो उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। बम्बई एक्सचेंज का कार्ड या किसी कम्पनी एक्सचेंज का शेयर कोई बेची जा सकने वाली या बन्धनबद्ध आस्ति नहीं है और न उससे सदस्य को एक्सचेंज की सम्पत्ति में स्वामित्व अधिकार मिलता है। सदस्य अपने-अपने एक्सचेंजों के नियमों के पाबन्द होते हैं। नियमों के भंग का दंड जुर्माने निलम्बन (Suspension) या निष्कासन के रूप में दिया जा सकता है। निष्कासन तब होता है, जब कोई सदस्य नैतिक भ्रष्टता वाले अपराध का दोषी हो या अदालत से दिवालिया घोषित कर दिया गया हो, या पागल हो गया हो। बाजार से बाहर या कारबार के समय से पहले या पीछे कारबार करने वाले सदस्य को जुर्माने या निलम्बन की सजा मिल सकती है। सदस्य अकेले-अकेले या साझीदार बन कर कारबार कर सकते हैं।

"पूर्ण" सदस्यों के अतिरिक्त, जिन्हें उस जगह कारबार करने के सब अधिकार और विशेष अधिकार होते हैं, कुछ अन्य व्यक्तियों को भी, जिन्हें सीमित अधिकार होते है, भवन में घुसने दिया जाता है और सदस्यों की ओर से या सदस्यों के साथ कार्य करने दिया जाता है। वे ये हैं—(१) रेमिजियर (Remisier) (२) प्राधिकृत क्लर्क या सदस्य सहायक (३) अप्राधिकृत क्लर्क या नील-बटन लड़के, (Blue-button boys) (४) तारनीवाला।

रेमिजियर—बम्बई स्टाक एक्सचेंज में रेमिजियर आधे कमीशन वाला आदमी होता है और वह किसी सदस्य की ओर से कार-बार प्राप्त करने के लिए अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है। वह जो कार-बार लाता है, उसके कमीशन में से ही उसका भुगतान किया जाता है वह व्यवहारतः उप-दलाल है। उस पर सब नियम लागू होते हैं, और उसका पारिश्रमिक उसके कार-बार पर प्राप्त हुए कमीशन के ८०% से अधिक नहीं हो सकता। सदस्य की तरह उस पर भी कोई और व्यवसाय न करने की पाबन्दी है, और उसे पांच हजार रुपये नकद या प्रतिभूतियों के रूप में जमा करने पड़ते हैं। वह सौ रुपया वार्षिक शुल्क भी देता है, और विज्ञापन नहीं कर सकता या कीमत सूची नहीं निकाल सकता।

प्राधिकृत क्लर्क (Authorised clerk)—सब स्टोक एक्सचेंजों के

सदस्यों को कुछ क्लर्क या सदस्य सहायक नियुक्त करने की इजाजत होती है। जो पने मालिकों की ओर से एक्सचेंज भवन में सौदे कर सकते हैं। बम्बई और लंदन के एक्सचेंजों में पाँच, कलकत्ता एक्सचेंज में अधिक-से-अधिक ८ और मद्रास एक्सचेंज में, जहाँ वे सदस्य-सहायक कहलाते है, ३ क्लर्क रखने की इजाजत होती है। लंदन स्टॉक एक्सचेंज मे सदस्य २ अधिकृत क्लर्क, या नीले बटन वाले लड़के, प्रवेश शुल्क और वार्षिक चन्दा देकर रख सकता है। इन क्लर्को को सौदे करने का अधिकार नहीं होता, यद्यपि वे संदेश पहुँचाने और इसी तरह के काम करने के लिए भवन में आजा सकते हैं।

तारणीवाला—बम्बई स्टॉक एक्सचेंज में सदस्यों को कमीशन ब्रोकर और तारणीवाला कहते हैं। तारणीवालों को कभी-कभी लन्दन स्टॉक एक्सचेंज के जाबरों के सदृश समझा जाता है, पर यह सादृश्य वास्तविक नहीं। तारणीवाला अपनी ही ओर से सौदे करता है, अपने ग्राहकों की ओर से नहीं, और इनमें इतना ही सादृश्य है। लन्दन के जाबर से इसमें यह भेद है कि वह प्रतिदिन सेशन की समाप्ति से पहले हमेशा अपना हिसाब नहीं तैय्यार करता और न वह कीमतें बताने के लिए वहाँ खड़ा होता है। वह कमीशन वाले दलाल के रूप में भी काम कर सकता है पर लंदन का जाबर नहीं कर सकता। तारणीवाले अपने सौदों द्वारा कुछ अधिक चलने वाली प्रतिभूतियों की कीमत स्थिर करने में थोड़ी सेवा कर सकते हैं, पर वे मुख्यत घटती बढ़ती कीमतों पर खरीद बेच किया करते है और खरीदी गई प्रतिभूतियों का भुगतान करने या बेची गई प्रतिभूतियों की डिलिवरी देने का उनका कोई इरादा नहीं होता। उनका एकमात्र उद्देश्य अपनी खरीद और बिक्री कीमतों से पैदा होने वाला लाभ प्राप्त करना है। ये नफे-नुकसान के अन्तरों का जुआ खेलते हैं। प्राय तारणी वाला "ग्राहकों के व्यवसाय के उचित निष्पादन में अनावश्यक बाधा होता है और वह लाभ सग्रह करता रहता है जो उस द्वारा उठाई जाने वाली जोखिम के मुकाबले में बहुत अधिक होता है"। यह बहुधा दलाल के मुकाबले में, यदि वह क्रेता हो तो प्रतिभूति की कीमत भी ऊँची बोली लगाता है और यदि दलाल विक्रेता हो तो तारणी वाला इसके मुकाबिले में प्रतिभूति की कीमत नीची लगाता है गैर जिम्मेदार प्रतिक्रोश (बिडिंग) और प्रस्तवन करने और फिर उससे मुकर जाने को रोकने के लिए मौरिसन कमेटी ने यह सिफारिश की थी कि बाजार में जहाँ कोई राशि न बताई जाय वहाँ निविपत्र का प्रतिकोश या प्रस्तवन दस हजार रुपये की राशि तक बंधनकारी होगा और बाजार इस राशि को निकटतम राशि तक परिगणित किया जायगा। परन्तु इस राशि का कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि तारणी वाला बहुत अधिक चलने वाले प्रतिभूतियों की इससे बहुत बडी राशियों के सौदे करता है। यह सीमा बढाकर बहुत ऊँची, जैसे ५० हजार रुपये, कर देनी चाहिए। और उसका व्यवसाय ठीक तरह निर्दिष्ट हो जाना चाहिए।

दलाल और जौबर—लदन स्टौक एक्सचेंज के सदस्य दो भागो में बटे हुए है—दलाल और जौबर। निधिपत्र दलाल (स्टाक ब्रोकर) स्टाक एक्सचेंज के सदस्य होते है, और साधारण जनता से सम्पर्क मे आते है। वे निधिपत्रो और शेयरो और अन्य प्रतिभूतियो की खरीद या बिक्री करने के लिए अपने ग्राहको के मध्यस्थ होते है और वे जौबरो से खरीद या बिक्री करते है तथा अपनी सेवाओ के लिए ग्राहको से दलाली लेते है। सामान्यतया वे अपनी ओर से सौदे नही करते। वे अपने ग्राहको और जौबरो को एक जगह लाने के लिए एक्सचेज भवन के बाहर और अन्दर काम करते है। स्टौक जौबर भवन के अन्दर वाले व्यक्ति है, जो अपनी लेन-देन वाली प्रतिभूतियो की कीमतें तय करते है और प्रतिनियोक्ताओ (Principals) के रूप में खरीदते और बेचते है। वे बाहर वालो के साथ सीधे लेन-देन नही कर सकते। जौबरो की प्रत्येक फर्म प्राय किसी विशेष शेयर समूह की विशेषज्ञ होती है और आवश्यक है कि उन्हे अपने सौदे के शेयरो के बारे में ताजी से ताजी और पूर्ण जानकारी हो, जिससे वे तदनुसार उनकी कीमतो में हेर-फेर कर सकें। उनको अपनी खरीद और बिक्री की कीमतो के अन्तर से और अपने सौदे वाली प्रतिभूतियो के सफल परिकलन से लाभ होता है। क्योकि वे प्रतिनियोक्ताओ के रूप में कार्य करते है, इसलिए जो निधिपत्र (स्टौक) वे खरीदते है, उसे रखने के लिए, और जो वह बेचते है, उसे हासिल करने के लिए उन्हे तैय्यार रहना चाहिए। वे एक तरह से निधिपत्रो और शेयरो के थोक व्यापारी है। जहाँ तक उनकी स्थिति का सम्बन्ध है दलाल और जौबर, दोनो स्टाक एक्सचेंज के सदस्यो के रूप में एक ही आधार पर है, पर शुरू में सदस्य को यह घोषित करना पड़ता है कि वह दलाल के रूप में कार्य करना चाहता है या जौबर के रूप में। वह दोनो के रूप में कार्य नही कर सकता, और एक दलाल तथा एक जौबर में साझेदारी भी नही हो सकती।

यह पृथक्ता सिर्फ लदन स्टौक एक्सचेंज में ही है, और कही नही। इस पृथक्ता का लक्ष्य यह प्रतीत होता है कि जनता को दलाल के माध्यम द्वारा प्रतिभूतियो के चतुर पर्यवर व्यापारियो से बचाया जाय। जौबर सब दृष्टियो से व्यापारी है जब कि दलाल बाहरी जनता का एजेंट है जिसके हित की रक्षा वह चतुर जौबर से करता है। समय समय पर ये सुझाव रक्खे गए है कि बम्बई स्टौक एक्सचेंज में भी इस पृथक्ता को लागू कर दिया जाय, परन्तु सर्वथा विभाजन अव्यवहार्य मालूम हुआ है क्योकि न तो एक्सचेंज की सदस्यता ही उतनी विस्तृत है, और न सौदों की सख्या ही उतनी बडी है जितनी लदन स्टौक एक्सचेंज पर।

तेजीवाला और मदीवाला (Bull and Bear)—बहुत से लोग ऐसे है जो डिलिवरी लेने का इरादा न होते हुए भी खरीदते है और बहुत से लोग माल अपने पास न होने पर भी उसे बेचते है। इन लोगो को तेजीवाला-मदी वाला कहते है। तेजी वाले वे लोग है जो कीमत वृद्धि की आशा में निधिपत्र या शेयर खरीदते है। ये लोग इस आशा से शेयर खरीद लेते है, कि कीमत ऊँची होने पर माल

कब्जे में आने से पहले उन्हें बेच लेंगे और इस तरह लाभ कमा लेंगे। वे आशावादी होते हैं। उन्हें विश्वास होता है कि कीमतें चढ़ेंगी और उन्हें संभावित विक्रेता माना जा सकता है। मंदीवाले वे लोग हैं जो निधिपत्रों या शेयरों के मूल्यों में गिरावट की आशा में उन्हें बेच देते हैं। ये वे शेयर बेचते हैं, जो इनके पास नहीं होते, पर उन्हें यह भरोसा होता है कि हम कम कीमत पर उन्हें खरीद सकेंगे। मंदी वाले निराशावादी होते हैं और उन्हें यह विश्वास होता है कि कीमतें गिरेंगी, और उन्हें संभावित क्रेता माना जा सकता है।

स्टैग या प्रव्याजिलोभी—स्टैग या प्रव्याजि लोभी उस परिकल्पक को कहते हैं जो किसी नई कम्पनी के शेयर इस दृष्टि से खरीदता है कि उन्हें एलॉट में या बटन से पहले प्रव्याजि पर अमली नियोजकों को बेचदे। वह शेयरों का वास्तविक धारक होने का कोई इरादा नहीं रखता, परन्तु वह प्रार्थनापत्र का धन इसलिए अदा करता है क्योंकि उसे आशा है कि बाजार कीमत निर्गम कीमत से ऊंची होगी। स्टैग के अस्तित्व से वह प्रतीयमान असंगति स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि निर्गम के समय मांग सम्भरण से बहुत अधिक थी, पर उसके शीघ्र बाद निर्गम की मांग में धीरे-धीरे लगातार कमी होती जाती है। यह कमी स्टैगों द्वारा जिन्होंने, नकली मांग पैदा करदी थी, धीरे धीरे स्थिर रूप से बिक्री के कारण पैदा होती है।

लेमडक या लंगड़ी बत्तख (Lame duck) अर्थात् फंसा हुआ मंदीवाला। अपनी जिम्मवारियों की पूर्ति करने में आई तात्कालिक कठिनाइयों से संघर्ष करते हुए दटीवाले को लेमडक कहते हैं। यह अवस्था वहां हो सकती है जहां वह घिर गया हो, यानी कौरनर हो गया हो, क्योंकि बाजार में शेयर प्राप्य न होने के कारण वह किसी भी कीमत पर फिर उन्हें नहीं खरीद सकता और वह जिसे शेयर बेच चुका है उसके साथ या किसी और के साथ जो इसे शेयर देदे, समझौता नहीं कर सकता।

बाहरी सौदागर—प्रतिभूतियों के सौदे करने वाले कुछ और भी व्यक्ति और फर्में हैं पर वे स्टाक एक्सचेंज के नियममें बाहर हैं और उन्हें बाहरी दलाल कहते हैं। वे अपने माल की तारीफ के विज्ञापनों से अखबार भर देते हैं और इस लिए स्टोक एक्सचेन्ज का प्रमुख पत्रों में स्थायी विज्ञापन होता है, कि स्टोक एक्सचेन्ज के सदस्यों को विज्ञापन करने की इजाजत नहीं, और कि विज्ञापनदाता स्टोक एक्सचेन्ज के सदस्य नहीं। बहुतसी बाहरी फर्में वैध व्यवसाय करती हैं, और उनकी स्थिति बहुत ऊँची है तथा उनका व्यवसाय स्टोक एक्सचेंजकी अधिकतर फर्मों के व्यवसाय के मुकाबले में बड़ा और प्रतिष्ठित है परन्तु बहुत से बदमाश और चलते-फिरते लोग भी हैं जो पब्लिक के साथ सीधे व्यवहार करके उसे ठगते हैं। ग्राहकों की हानि उनका लाभ है और ग्राहकों का लाभ भी ग्राहकों की हानि है, क्योंकि ये

व्यापारी भुगतान कर देने से इनकार कर देते हैं और यदि उन्हें अदालत में लेजाया जाय तो जुआखोरी अधिनियम (गैंबलिंग एक्ट) की आड लेते हैं। उनके बहुत से नाम हैं, जैसे शेयर पुशर यानी ग्राहकों के पास जाजा कर शेयर बेचने वाले, "बक्ट शौप" या "बक" जो एक निंदात्मक शब्द हैं, स्टौक एक्सचेंज से सम्बन्ध रखने वाले सब बाहरी दलालों पर सामान्य रूप से प्रयुक्त होता है, "अनलोडिंग शौप" जो नियोजक को आकृष्ट करती हैं; जुआखोरी की दूकाने या गेम्बलिंग शौप जो परिकल्पकों को सुविधाएँ देती हैं।

कारबार कैसे किया जाता है—क्योंकि स्टौक एक्सचेन्ज एसोसिएशन के नियमों साथ बाहरी लोग सदस्य दलालों के स्वतन्त्र रूप से कारबार नहीं कर सकते, इसलिए जो कोई आदमी स्टौक एक्सचेन्ज से खरीदना या बेचना चाहता हो, उसे अपने सौदे के लिए एक्सचेन्ज के किसी सदस्य के पास जाना पड़ेगा। सम्भावी ग्राहक को अपनी वित्तीय स्थिति और ईमानदारी के बारे में बैंक के तथा अन्य निर्देश पेश करने होंगे और दलाल के यहाँ अपना हिसाब खोलना पड़ेगा। इसके बाद ग्राहक किसी निश्चित कीमत या बाजार की सब से अच्छी कीमत पर खरीदने या बेचने का आर्डर देगा। आगे चलने से पहले अनेक प्रकार के आदेशों पर संक्षेप में विचार कर लेना अच्छा होगा। नियत आदेश (फिक्स्ड आर्डर) वह आदेश है जो या तो ग्राहक द्वारा बताई गई कीमत पर, अथवा खरीदने का आदेश हो तो उससे नीचे, और बेचने का आदेश हो तो उससे ऊपर पूरा किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, एक नियत आदेश यह हो सकता है कि "१७५० पर १० टाटा डेफर्ड खरीदो" या "१७७० पर १० टाटा डेफर्ड बेचो"। दलाल को १७५० पर या इससे नीचे खरीदना है और १७७० पर या इससे ऊपर बेचना है लेकिन दलाल नियत कीमत आदेशों को बढ़ावा नहीं देते। वे इस तरह के बदल सकने वाले रूप को अच्छा समझते हैं. उदाहरण के लिए, परिसीमा आदेश (लिमिट आर्डर) जिसमें निश्चित परिसीमायें बतादी जाती हैं, और दलाल उसके बाहर नहीं जा सकता। परिसीमा आदेश या लिमिट आर्डर इस तरह लिखा जायगा "१७५० से ऊपर न खरीदो" या "१७७० से नीचे मत बेचो"। क्योंकि दलाल ग्राहक का अभिकर्त्ता है इसलिए उससे यह आशा की जाती है कि वह नीची से नीची कीमत पर खरीदेगा और ऊँची से ऊँची कीमत पर बेचेगा। सम्भव है कि ग्राहक अपने आदेश को बहुत समय तक खुला न रक्खे: इस लिए नियत आदेश के बजाय "तत्काल या रद्द करो" का आदेश दे सकता है। इस तरह का आदेश इस ढंग से लिखा जायगा "खरीदो (या बेचो) १० टाटा डेफर्ड १७५० तत्काल या रद्द करो" और इनका यथासम्भव अच्छी से अच्छी कीमतों पर तत्काल पालन करना चाहिए, और अगर कीमतें अनुकूल होने के कारण तत्काल पालन नहीं किया जा सकता तो दलाल इसे रद्द कर देगा और ग्राहक को सूचना दे देगा। कभी-कभी ग्राहक कीमतों में भारी गिरावट या वृद्धि से अपनी रक्षा करने के लिए "स्टौप लौस आर्डर" या "हानिरोक आदेश" दे सकता है, जो इस तरह से लिखा जायगा

"खरीदो १० टाटा डेफर्ड १७५० पर स्टोप" आदेश मिलने पर दलाल तभी कार्य करेगा जब बाजार कीमत १७५० से नीचे हो, पर जब कीमत इस जगह पहुँच जाय तब उसे अवश्य कार्यवाही करनी चाहिए। जब कोई ग्राहक जिसने १० टाटा डेफर्ड १-५० म खरीदे हैं, बेचना चाहता है, तो वह अपने दलाल को बेचने का आदेश इस तरह देगा "१० टाटा डेफर्ड १७३० पर स्टोप" और इस तरह अपनी हानि २० रुपये प्रति शेयर तक सीमित कर देगा। ज्योंही कीमत १७३० पर पहुँचेगी या कम होने लगेगी त्योंही दलाल शेयर बेच देगा। हानिरोक आदेश उस समय बाजार आदेश बन जाता है जब कीमत निर्धारित अंक पर पहुँच जाती है। एक विवेकाधीन आदेश (डिस्क्रेशनरी आर्डर) जिसमें दलाल अपने विवेक के अनुसार खरीदने और बेचने को स्वतन्त्र होता है, प्रायः तब दिया जाता है जब नियोजक कुछ कम चलने वाली प्रतिभूतियाँ खरीदता बेचना है और अपने दलाल में पूर्ण विश्वास रखता है। सर्वोत्तम आदेशों (बेस्ट आर्डर) में किसी कीमत का उल्लेख नहीं होता और उन्हें उस समय उपलब्ध अच्छी से अच्छी कीमत पर अविलम्ब पूरा करना चाहिए। दलाल को विवेकाधिकार नहीं होता। ये आदेश सबसे अधिक दिये जाते हैं। सर्वोत्तम कीमत आदेश इस तरह लिखा जायगा "खरीदो (या बेचो) १० टाटा डिफर्ड सर्वोत्तम कीमत पर"। कीमत के बारे में आदेश देने के अलावा ग्राहक उस समय की भी सीमा बाँध सकता है जिसमें वह आदेश प्रवर्तन में रहेगा। जहाँ समय परिसीमा निर्धारित नहीं होती वहाँ आदेश को खुला आदेश या ओपन आर्डर कहते हैं। समय की सीमा एक दिन, एक सप्ताह, एक मास, या जब तक आदेश रद्द न किया जाय, तब तक के लिए ही सकती है। ये आदेश इस तरह लिखे जा सकते हैं "खरीदो (या बेचो) १० टाटा डेफर्ड १७५० पर"; सीमा एक दिन एक महीने या जब तक रद्द न किया जाय तब तक के लिए हो सकती है। आदेश में डिलिवरी की अवधि भी उल्लिखित हो सकती है और यह भी कि सौदा नकद डिलिवरी के लिए होगा या हिसाब में होगा। आदेश का रूप चाहे जो हो, पर यह स्पष्ट, असंदिग्ध और संक्षिप्त होना चाहिए।

जब किसी दलाल को किसी ग्राहक से कोई आदेश मिलता है, तब वह या उसका प्राधिकृत क्लर्क उन विशेष शेयरों का सौदा करने वाले एक या अधिक दलालों (लन्दन स्टॉक एक्सचेंज में, जोबरों) के पास जाता है। स्टॉक एक्सचेंज की जगह अभिस्वीकृत बाजारों में बटी रहती है, और किसी विशेष शेयर का नाम वहाँ लिखा रहता है। प्रत्येक बाजार के दलाल कारबार के लिए एक दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं। प्राधिकृत क्लर्क उससे दाम पूछता है, या अपना दाम बताता है, और जब सौदा हो जाता है, जो हमेशा जबानी होता है, तब दोनों पक्ष एक छोटे पैड पर पेंसिल से संक्षिप्त नोट लिख लेते हैं। यह पैड दो भागों में बटा होता है। एक ओर विकलन (Debit) वाले हिस्से में खरीद लिखी जाती है और दूसरी ओर आकलन (credit) वाले हिस्सों में विक्रियाँ। संख्या, प्रतिभूतियों का वर्णन,

और जिसने खरीदा या जिसे बेचा जाना है उसका नाम लिख लिया जाता है। दलाल एक कागज पर सक्षेप में सौदे का विवरण लिख कर उस कागज को एक बक्स में डाल देता है, जो इसी काम के लिए अधिकृत रूप से रक्खा जाता है, और इससे यह बात निश्चित हो जाती है कि जिस कीमत पर सौदा हुआ है, वह प्रबन्ध कमेटी द्वारा प्रकाशित कीमतों की अधिकृत सूची में, जो स्टौक एक्सचेंज दैनिक अधिकृत सूची कहलाती है, "किया गया व्यवसाय" शीर्षक के नीचे प्रकाशित होगी। शेयरों के सौदे अपने मूल्य के अनुसार और स्टौक एक्सचेंज के नियमो के द्वारा निश्चित मूल्य के अनुसार कुछ समूहों में होते हैं। सौदे उन्ही प्रतिभूतियो के हो सकते हैं, जो स्टौक एक्सचेंज में स्वीकृत की गयी हैं।

लन्दन स्टौक एक्सचेंज में दलाल और जोबर दो पृथक वर्ग होने के कारण, कीमतें बनाने के बारे में क्रिया कुछ भिन्न है। जब दलाल कीमत पूछता है, तब वह यह नही कहता कि मैं खरीदना चाहता हूं, क्योंकि इससे जौबर कीमत ऊंची बनाने लगेगा। न वह यह कहता है कि मैं बेचना चाहता हूं क्योंकि उस पर वह कीमत नीची बनाने लगेगा। वह सिर्फ भाव पूछता है। इसलिए जोबर दो कीमतें बनाता है—एक वह जिस पर वह बेचने को तैयार है और दूसरी वह जिस पर वह खरीदने को तैयार है। उदाहरण के लिए अगर कोई दलाल इम्पस अर्थात् इम्पीरियल टोबैको कम्पनी के शेयर पूछता है तो जोबर जवाब देता है कि १००० में ४ पौंड १४ शिलिंग ६ पेंस से ४ पौंड १५ शिलिंग तक। इसका अर्थ यह है कि जोबर १००० शेयर तक पहली कीमत पर खरीदने और दूसरी कीमत पर बेचने को तैयार है। अगर दलाल इससे सन्तुष्ट न हो तो वह या तो दूसरे जौबर के पास जायेगा और या वह यह कहेगा कि 'कुछ कम करो' अर्थात् खरीदने और बेचने की कीमतों का अन्तर कम करो। जोबर अपने भाव में सुधार कर सकता है और दलाल, जिसके पास अपने ग्राहक का खरीदने का आदेश मौजूद है, कहेगा "५०० लिया', जिसका अर्थ यह है कि वह जोबर से ५०० शेयर खरीदेगा। इसके बाद दोनो पक्ष उसकी सौदों वाली कापी में सौदा लिखवा देते हैं और शेष क्रिया उपर्युक्त तथा निम्नलिखित होती है।

कारबार बन्द होने पर प्राधिकृत क्लर्क अपने कार्यालयों में लौटते हैं और सौदों का विवरण अपनी सौदे की बहियों में, जो नक्द और वायदे के सौदों के लिए अलग-अलग होती है, चढ़ा लेते हैं। इसके बाद दलाल अनुबन्ध पत्र का एक रेगुलेशन फार्म तैयार करता है और वह अपने ग्राहक को भेजता है। इसमें वह प्रतिभूतियों का विवरण, कीमत, दलाल का रेगुलेशन कमीशन, टिकट (रेवेन्यू स्टाम्प) की कीमत तथा निर्गमक निकाय द्वारा लिया गया शुल्क लिखता है, और यदि सौदा नक्द न हो तो वह तारीख भी लिखता है जिस पर परिशोधन होना है, अनुबन्ध पत्र की एक प्रति दूसरे पक्ष को भेजी जाती है। अगले दिन प्रत्येक फर्म के क्लर्क एक दूसरे से मिलते हैं और अनुबन्ध-पत्रों की तुलना करते हैं तथा

अनुबन्ध-पत्रों की शुद्धता स्वीकार करते हुए, एक दूसरे की बहियों पर हस्ताक्षर कर देते हैं। यदि अभिलेखन में ईमानदारी से कोई भूल रह जाय तो उसकी हानि को दोनों पक्ष बराबर बांट लेते हैं।

नकद सौदों का परिशोधन—कुछ सौदे नकद या हाजिर डिलिवरी के आधार पर किए जाते हैं जिनमें भुगतान प्रतिभूतियां हस्तान्तरित होते ही फौरन या तीन दिन के भीतर किया जाता है। नकद सूची की प्रतिभूतियां या तो समाशोधित (क्लीयर्ड) प्रतिभूतियां होती हैं, अथवा असमाशोधित प्रतिभूतियां होती हैं।

समाशोधित प्रतिभूतियाँ समाशोधन गृहों द्वारा समाशोधित की जाती हैं, जबकि अन्य प्रतिभूतिया बिना समाशोधन गृह के दखल के, दस्ती डिलिवरी के प्रबन्ध से समाशोधित की जाती हैं। समाशोधित प्रतिभूतियों का, सौदा जो किसी कारवार के दिन किया जाता है, अगले सप्ताह गुरुवार को परिशोधित किया जाता है और इस दिन को समाशोधन का दिन कहते हैं। शनिवार को किए गए सौदे आगामी सोमवार को किये हुए माने जाते हैं। सोमवार को विक्रेता विक्रेता के समाशोधन टिकट (सैल्सं क्लीयरेंस टिकट) की दो प्रतियाँ बनाता है और क्रेता को भेजता है। क्रेता मूल प्रति रख लेता है और दूसरी प्रति बाकायदा हस्ताक्षर करके लौटा देता है। समाशोधन के दिन से पहले, बुधवार को विक्रेता समाशोधन गृह को एक समाशोधनपत्र प्रस्तुत करता है जिसमें खरीदी हुई प्रतिभूति का विवरण और चुकाया जाने वाला मूल्य विकलन की ओर तथा बेची गई प्रत्येक प्रतिभूति का हिसाब और प्राप्त किया जाने वाला धन आकलन की ओर तथा शुद्ध शेष भी दिखाये होते हैं। यदि शुद्ध विकलन शेष हो तो सदस्य उस राशि का चैक भी भेजता है और आकलन शेष होने पर समाशोधन गृह के नाम ड्राफ्ट (विकर्ष) साथ नत्थी होता है। समाशोधन के दिन बेची गई प्रतिभूतियाँ और अपेक्षित हस्तान्तर विलेख (ट्रान्सफर डीड) विक्रेता द्वारा समाशोधन गृह को सौंप दिये जाते हैं। खरीदने वाला सदस्य समाशोधन से अगले दिन समाशोधन गृह से प्रतिभूतियाँ प्राप्त करता है और स्वयं या अपने क्लर्क द्वारा रसीद पर हस्ताक्षर कर देता है।

वायदा डिलिवरी अनुबन्धों का परिशोधन—वायदे के अनुबन्धों के लिए बम्बई स्टौक एक्सचेंज साल को १२ परिशोधन अवधियों में बांटता है और लन्दन स्टौक एक्सचेंज इसे २६ भागों में बाँटता है, जिसका यह परिणाम है कि भारत में प्रतिमास परिशोधन होता है और इंग्लैंड में प्रति पखवाड़े। परिशोधन के दिन प्रबन्ध समिति तय करती है और भारत में वे प्रायः महीने के अन्तिम सप्ताह में होते हैं पर इंगलैंड में वे चार दिन होते हैं जिनमें गुरुवार भुगतान का दिन होता है। वायदे के सौदे सिर्फ चालू खाते के लिए किये जाते हैं और अगले परिशोधन पर उनका निपटारा हो जाता है, यद्यपि दो परिशोधनों के सौदे एक ही समय में करने की इजाजत होती है। परिशोधन का पहला दिन कौंटेंगो या बदली का दिन (कैरी-ओवर डे) कहलाता है, दूसरा दिन टिकट या नाम का दिन कहलाता है, तीसरा दिन मध्यवर्त्ती (मेकिंग-अप) दिन कहलाता है और अन्तिम दिन हिसाब का

या भुगतान का दिन कहलाता है। यही परिशोधन का वास्तविक दिन है जब प्रत्येक सदस्य एक चिट्ठा और अन्तरों का विवरण समाशोधन गृह को पेश करता है। भुगतान के दिन के बाद अगले दिन मध्यान्ह से पहले जो सदस्य भुगतान नहीं करता उसे अशोधी (डिफाल्टर) घोषित कर दिया जाता है। विवरण में दिखाया गया शेष सदस्य के समाशोधन गृह वाले हिसाब में विकलित या अकलित कर दिया जाता है। इस दिन बाजार वायदे के सौदों के लिए बन्द रहता है। इसके बाद सदस्यों को समाशोधन गृह से शेयर और भुगतान मिलता है।

कैरीओवर या बदली—जब कीमतें सौदा करने वालों की आशाओं के अनुसार नहीं घटती-बढ़ती, तब बदली की जाती है या सौदा अग्रेनीत किया जाता है, अथवा बदली की दलाली देकर अगले परिशोधन तक स्थगित कर दिया जाता है। (बदली जब लाइफ बुल द्वारा दी जाती है तब कोन्टैंगो दर कहलाती है और जब मंदीवाले द्वारा दी जाती है तो बैकवार्डेशन कहलाती है)। कोन्टैंगो शब्द लंदन स्टोक एक्सचेंज में सौदे को अगले हिसाब में ले जाने के लिए भी प्रयुक्त होता है और उस व्याज के लिए भी प्रयुक्त होता है जो खरीद को वित्तपोषित करने वाले व्यक्ति को दिया जाता है। बदली या कैरीओवर (अग्रेनयन) दो नये सौदों के जरिए किया जाता है तेजडिए का सौदा चालू परिशोधन के लिए बिक्री करके और अगले परिशोधन के लिए पुनः खरीद कर अग्रेनीत किया जाता है। मर्वाडिये का सौदा चालू परिशोधन के लिए खरीद कर और अगले परिशोधन के लिए पुनः बेचकर बदली या अग्रेनीत किया जाता है। परिणाम यह होता है कि मूल सौदा चालू परिशोधन के लिए पूर्ण हो जाता है, और अगले परिशोधन के लिए नई कीमत पर नया सौदा खुल जाता है। बदली करने वाला व्यक्ति उसी स्थिति में है, पर सौदा पूरा करने के लिए वित्त की आवश्यकता है। तेजडिया आपरेटर, जो प्रतिभूतियों की डिलिवरी के लिए पैसा चुकाने में असमर्थ है, बदली वाले या टेकर-इन (taker-in) के पास जाता है जो व्याज या कौंटैंगों की ऊँची दर पर रुपया उधार देता है, परन्तु खरीदने के लिए वित्त प्राप्त करने के बजाय खरीदने वाले और बेचने वाले (तेजड़िये और मंदड़िए) के बीच यह व्यवस्था की जाती है कि कैरी ओवर या बदली करा सकने वाले पक्ष को व्याज देकर वे अपने सौदे को अगले परिशोधन में अग्रेनीत करें। यह आम रिवाज है क्योंकि प्रायः तेजड़िए खरीदते समय इस आशय से नहीं खरीदते कि वे डिलिवरी लेंगे और मदडिए वह चीज बेचते है जो उनके पास है ही नहीं। अगर कोई वृद्धि न हो या तेजडिए को और अधिक वृद्धि होने की आशा हो तो वह सौदे की बदली कर लेगा और मदडिए को कौंटैंगो रेट या बदलीगला दे देगा जो हर प्रतिभूति के लिए अलग-अलग होता है। जब कोई बाजार किसी विशेष प्रतिभूति में अतिविक्रीत (ओवरसोल्ड) हो जाता है, अर्थात् प्रतिभूति के परिशोधन में तेजडियों की अपेक्षा मदडिये अधिक होते है, तब मंदड़िया बदली करने के लिए उत्सुक होगा और इस सुविधा के लिए तेजडिये को व्याज देगा जिसे विपृति या

बैकवार्डेशन कहते हैं। यह तब होता है जब कोई प्रतिभूति इतनी कम और इसी कारण अलभ्य होती है कि तेजड़ियें या क्रेता से कौंटैंगो दर प्राप्त करने के बजाय मंदड़िया या विक्रेता अनुग्रह (एकोमोडेशन) के लिए कुछ प्रतिफल देने को तैयार होता है। अगर प्रतिभूति का भुगतान करने के लिए क्रेताओं की ऋण की माग उतनी ही हो जितनी विक्रेताओं की उसी प्रतिभूति के लिए तो न तो कौन्टैंगो दर होती है और न बैकवार्डेशन या विधृति दर। उस समय समदर (ईवन रेट) होती है क्योंकि उस प्रतिभूति के क्रेताओं और विक्रेताओं को बदली के लिए कुछ भी नहीं देना पड़ता।

तेजड़िये और मंदड़िये स्टौक एक्सचेंज पर महत्वपूर्ण परिकल्पक होते हैं और वे कीमतों पर काफी प्रभाव डालते हैं। बहुत बड़े तेजड़िये लंबे या बहुत बड़े मंदड़िये लंबे के अस्तित्व का ही बाजार पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। तेजड़िया इसे कमजोर करता है और मंदड़िया इसे मजबूत करता है क्योंकि प्रत्येक तेजड़िया एक संभावी विक्रेता है और प्रत्येक मंदड़िया एक संभावी क्रेता है। जिस समय तेजड़िए खरीदते हैं, उस समय कीमतें चढ़ जाया करती हैं और जिस समय मंदड़िए बेचते हैं तब वे गिर जाया करती हैं, पर एक समय आता है जब उनके दाय, जो कितने भी सफल हों, पूर्ण करने पड़ते हैं और विरोधी दिशा में संचलन स्थिर हो जाता है। अच्छी खबर से बहुधा कीमतें बहुत गिर जाती हैं, क्योंकि इसका लाभ उठाने के लिए उत्सुक तेजड़िए बेचू हो जाते हैं। बुरी खबर का बहुधा कोई असर नहीं होता, या थोड़ी बहुत वृद्धि हो जाती है, क्योंकि मंदड़िए अपनी बेची हुई प्रतिभूतियों को फिर खरीदने का अच्छा मौका पाते हैं और इस तरह बाजार को मजबूत करते हैं। सम्भव है कि तेजड़िए बड़े प्रबल हो और सम्मिलित कार्य द्वारा, जिसे तेजड़िया का आन्दोलन (बुल कैम्पेन) कहते हैं, प्रतिभूति पर अनुकूल प्रभाव डालने वाली बातें फैलाकर जो आधी सच्ची या झूठी हो सकती हैं, कीमतों में नकली वृद्धि कर दें और इस प्रकार बाजार को रिग (rig) कर दें। नकली वृद्धि से तेजड़ियों को, जिन्होंने बहुत मात्रा में खरीद रक्खा है, बहुत हानि होने की सम्भावना है और इसलिए उन्हें अपनी स्थिति को अत्यधिक कुशलता से सभालने की जरूरत है, क्योंकि जब बेचने का समय आता है और अनलोडिंग किया जाता है तब वे डिलिवरी लेने में असमर्थ हैं और जो प्रतिभूतियां उन्होंने खरीदी हुई हैं उनका भुगतान करने में असमर्थ हैं और इसलिए जो हानि उठाकर अपना हिसाब बंद करते हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक रह जायगी। दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि मंदड़िए प्रबल हो जाय। वे सम्मिलित कार्यवाही द्वारा बाजार को रोक (बैंग) सकते हैं, 'बेयर रेड' या 'मंदड़िया का हमला' कर सकते हैं और कीमतों को इतना नीचा ला सकते हैं जितना उन प्रतिभूतियों के आन्तरिक गुणों की दृष्टि से उचित नहीं, जो उन्होंने इतनी बड़ी मात्रा में बाजार पर फेंक दी है। पर हमले के बाद मंदड़िए की हालत बहुत खतरनाक होती है। हो सकता है कि जो

निधिपत्र वेचकर उसने देने की जिम्मेवारी ली है वह निधिपत्र उसे मिलना कठिन हो जाय। कीमतें फिर चढने लगती हैं और शेयर कवरिंग या मदडियों की पुन. खरीद से ऊपर की ओर ही कीमतें बढती हैं। कभी-कभी किसी भी कीमत पर पुन खरीदना असम्भव हो जाता है। जब कोई भी निधिपत्र बाजार में उपलब्ध नही होता तब मदडिए चारो तरफ से लाचार हो जाते है, या कोर्नेर हो जाते है। यदि कोई मदडिया उस अवस्था में उस आदमी के साथ जिसे उसने प्रतिभूतियाँ वेची हैं, समझौता नही करता तो वह उस आदमी की अवस्था में जो अपना माल देने का वचन पूरा नहीं कर सकता या स्टोक एक्सचेज की परिभाषा में है कहे तो वह लेमडक लगडी बतख (शोधन में असमर्थ) है।

विकल्प सौदे या आप्शन डीलिंग्स—एक और प्रकार का व्यवसाय है जिसे कुछ लोग स्टोक एक्सचेंजो तथा कोमोडिटी एक्सचेंजो में करते हैं और ये एक्सचेंज तेजडियो और मदडियों को आजादी से परिकल्पन करने देते हैं सतर्कता से करने पर इस प्रकार के व्यवसाय से हानियाँ सीमाबद्ध हो जाती है, और चतुर आपरेटर के लिए यह बडा आकर्षण होता है। इस व्यवसाय को विकल्प सौदे या आप्शन डीलिंग्स कहते हैं, अर्थात् किसी निश्चित तारीख पर किसी निश्चित कीमत पर कोई प्रतिभूतियाँ खरीदने या वेचने का अधिकार। विकल्प तीन तरह के होते हैं, और आपरेटर उनमें से कोई एक या सब के सब प्राप्त कर सकता है। वे है पुट आप्शन या विक्रयाधिकार काल आपसन या क्रयाधिकार और पुट व काल आप्शन या डवल आप्शन। पुट आप्शन में आपरेटर कुछ शेयर एक निश्चित कीमत पर एक निश्चित तिथि पर या उससे पहले बेचने का अधिकार खरीदता है; काल आप्शन में आपरेटर एक निश्चित कीमत पर एक निश्चित तिथि तक कुछ शेयर खरीदने का अधिकार खरीदता है; पुट व काल या डबल आपशन में आपरेटर एक निश्चित कीमत पर एक निश्चित तिथि तक कुछ शेयर खरीदने या वेचने का अधिकार खरीदता है। आपरेटर विकल्प देने वाले व्यक्ति को विकल्प के लिए प्रति शेयर कुछ राशि देता है, और यह विकल्प धन या प्रव्याजि भी उस कीमत का हिसाब लगाते समय जोड लेना चाहिए, जिस पर आपरेशन नफा उठाने के लिए बद करना होगा पुट आप्शन या विक्रयाधिकार तब खरीदे जाते हैं जब यह विश्वास हो कि कीमतें गिरने की सम्भावना है और काल आपशन या क्रयाधिकार तब खरीदे जाते हैं जब यह विश्वास हो कि कीमतें चढेगी। पुट व काल आपशन या क्रय-विक्रय अधिकार बहुत अधिक मात्रा में घटने-बढने वाले शेयरो में खरीदे जाते हैं और इसकी खरीद वेच क्रयाधिकार या विक्रयाधिकार की अपेक्षा अधिक जुआ है। जब विकल्प या अधिकार को प्रयोग करने का समय आता है तब अधिकार के खरीदने वाले को यह घोषणा करनी पडती है कि वह इसे खरीदेगा या नही। यदि वह क्रयाधिकार का प्रयोग करता है तो उसे धन चुकाना होगा और शेयर लेने होंगे और यदि यह विक्रयाधिकार है तो उसे शेयर देने होंगे और धन लेना होगा।

रक्षा राशि पद्धति या कवर सिस्टम—कवर या रक्षाराशि वह धनराशि है जो कोई ग्राहक प्रति शेयर या प्रतिशतक के हिसाब से दलाल को देता है, और उसे अपनी ओर से खरीदने या बेचने की हिदायत भी देता है, जिसमें यह शर्त निहित रहती है कि यदि बाजार सौदे वाले के प्रतिकूल जा रहा हो और हानि की राशिरक्षा राशि तक पहुँच जाय, तो बिना ग्राहक से पूछताछ किए सौदा बंद कर दिया जाय। दूसरे शब्दों में, हानि की राशि कभी भी रक्षा राशि से अधिक न होनी चाहिए। इसके विपरीत, अगर सौदा लाभदायक सिद्ध हो तो ग्राहक को लाभ तथा रक्षाराशि दोनों मिल जायगे। रक्षा राशि के धन और विकल्प धन (आप्शन मनी) में कुछ भेद है। रक्षा राशि का धन लाभ सहित लौटाया जायगा जब कि विकल्प धन विकल्प देने वाले पक्ष को बेचने या खरीदने का विकल्प देने के बदले में दिया जाने वाला, प्रीमियम (प्रव्याजि) है। इसलिए उसे वही रख लेता है, चाहे विकल्पाधिकार का प्रयोग किया जाय या न किया जाय। रक्षा राशि पद्धति उसी सिद्धान्त पर आधारित है जिस पर घुडदौड के दांव लगाना।

मार्जिन ट्रेडिंग या अन्तर व्यापार—मार्जिन ट्रेडिंग दलालों से उधार लिए हुए धन से प्रतिभूतियाँ खरीदने की पद्धति को कहते हैं। यह उस खरीद के सदृश है जो बैंको और वित्तीय सस्थाओं से उधार लिये हुए धन से की जाती हैं पर सादृश्य यही खतम हो जाता है। मार्जिन ट्रेडिंग परिकल्पन का सहोदर है, क्योंकि नकद सौदे में मार्जिन की जरूरत भी पडती है। मार्जिन पर व्यापारी तभी खरीदते हैं जब वे अपने हिसाब में सौदे करते हैं और प्रतिभूतियो के मूल्य में वृद्धि की आशा करते हैं। मार्जिन पर व्यापार करने की इच्छा वाला ग्राहक अपने दलाल के पास कुछ नकद धन या प्रतिभूतियाँ जमा करके उसके साथ हिसाब खोल लेता है और इसे एक निश्चित राशि तक रखना स्वीकार करता है। मार्जिन ट्रेडिंग या अन्तर-व्यापार की पद्धति से प्राईवेट आपरेटर उतनी बडी राशियो के सौदे कर सकता है, जो यदि उसे पूरी राशि प्राप्त करनी पडती तो, उसके सामर्थ्य से बाहर होते। दलाल वित्त व्यवस्था करने या तलाश कर देने के लिए सदा तैयार रहते है, बशर्ते कि ग्राहक अन्तर जमा करादे और क्योंकि अन्तर धन की आवश्यकता सिर्फ उस सम्भव फर्क को पूरा करने के लिए होती है जो शेयरो के खरीदने और अन्त में बेचने की कीमतो के बीच हो इसलिए साधारणतया दलाल के पास ५०० रुपया जमा कर देना १०००० रुपये तक शेयर खरीदने और बेचने के लिए काफी होगा।

अन्तरपणन या आर्बिट्रेज—अन्तरपणन शब्द का अर्थ यह है कि विनिमय विपत्रों या निधिपत्रो और प्रतिभूतियो का इस प्रयोजन से पणन (traffic) कि विभिन्न देशों या बाजारो में मौजूद विभिन्न कीमतो से लाभ उठा लिया जाए। प्रतिभूतियो में अन्तरपणन तब होता है जब दो विभिन्न केन्द्रो में एक ही निधिपत्र एक साथ ऐसी कीमतो पर खरीदा और बेचा जाय जिन से आपरेटर को लाभ मालूम होता हो।

इसको स्पष्ट करने के लिए लदन स्टोक एक्सचेंज और एम्स्टर्डम स्टोक एक्सचेंज के बीच अन्तरपणन सौदे का एक उदाहरण लिया जा सकता है। अगर रौयल डच पेट्रोलियम शेयरो की कीमत ३६० फ्लोरिन प्रतिशेयर विक्रेता एम्स्टर्डम में हो और ३० पौंड प्रति शेयर, क्रेता लदन में हो, और लदन तथा एम्स्टर्डम में विनिमय दर १२.१० फ्लोरिन प्रति पौंड, विक्रेता, हो तो कोई भी आपरेटर एम्स्टर्डम में २९ पौंड १५ शिलिंग प्रति शेयर के आस-पास खरीद कर लदन में ३० पौंड प्रति शेयर बेच सकता है और लाभ उठा सकता है, बशर्ते कि अन्तर खर्चों में न निकल जाय। इस तरह के सौदे बहुत टेकिनकल होते हैं और बडी-बडी फर्मों की ओर से काम करने वाले पेशेवर आपरेटरो द्वारा ही किये जाते हैं।

असफलता—जब स्टोक एक्सचेंज का कोई सदस्य यह देखे कि मैं अपने दायित्व पूरे नही कर सकता, तब उसे तुरन्त प्रबन्ध समिति को सूचना देनी चाहिए, जो उसे अशोधी घोषित कर सकती है। सम्बद्ध व्यक्ति या फर्म की वहाँ की सदस्यता फौरन समाप्त हो जाती है और उसके कारबार को अविछन्न अभिहस्तांकिती समाप्त करता है। जब कोई सदस्य अशोधी घोषित हो जाता है, तब अन्य सदस्यों के साथ किए हुए उसके सब सौदे फौरन उसी कीमत पर वापिस आ जाते हैं, जो उसकी अशोधिता घोषित करने के समय थी। अशोधी कुछ शर्तें पूरी करने पर पुन. प्रविष्ट किया जा सकता है। पुन प्रवेश का प्रार्थना-पत्र देने पर अशोधी समिति उसके आचरण और हिसाब की जाँच पडताल करेगी और प्रबन्ध समिति से सिफारिश करेगी। यदि समिति चाहे तो वह जो शर्तें उचित समझे वे लगाकर उसे पुनः प्रविष्ट कर सकती है, पर यह तभी होगा जब उनकी राय में उसने अपने कार्य को अपने साधनो की तर्कसगत सीमा में रखा हो और उसका साधारण आचरण कलकहीन रहा हो। बम्बई स्टोक एक्सचेंज में अशोधी को तब तक पुनः प्रविष्ट नही किया जाता जब तक वह अपनी हानि की राशि पर रुपये में ६ आना से अन्यून धन ठीक-ठीक रूप में जमा न करा दे पर यदि उसकी अशोधिता का कारण उसका विचारहीन सौदा रहा हो तो उसको पुन प्रविष्ट नही किया जायेगा।

स्टाक एक्सचेंजों का नियत्रण और विनियमन—हम पहले देख चुके हैं कि परिकल्पन का लक्ष्य माग और समरण (Demand and supply) का सन्तुलन स्थापित करने में सहायता देना है यह तो ही समव है यदि परिकल्पन बंध और विनियमित हो। विलोमत, जान बूझकर किए गए छलसाधनो या गोटीबाजियों द्वारा जो जुआखोरी जैसी चीज है आपक और अवैध परिकल्पन से औद्योगिक उतार-चढ़ावा और सकटो की तीव्रता बढ जाती है। इसलिए अवाछनीय परिकल्पन को रोकन की दृष्टि से सरकार के लिए आवश्यक है कि वह स्टाक एक्सचेंजो तथा उन पर बेची खरीदी जाने वाली प्रतिभूतियो के सौदो को विनियमित करे। यह भी आवश्यक है कि प्रतिभूति खरीदने बेचने वालो को लाइसेंस देने के द्वारा स्टाक एक्सचेंजो की सीमाओ से बाहर प्रतिभूतियो की खरीद और बिक्री को विनियमित

किया जाए। १९४५ और १९४६ के मध्य स्टौक एक्सचेंजों में जो युद्धोत्तर तेजी धायी और इसके बाद जो कुछ हुआ उसने अखिल भारतीय आधार पर स्टौक एक्सचेंज सुधार शीघ्र से शीघ्र करना और आवश्यक कर दिया। तदनुसार वित्त मन्त्रालय के तत्कालीन आर्थिक सलाहकार डा० पी० जे० टामस से भारत सरकार ने इस विषय का सर्वाङ्गीण अध्ययन करने के लिए कहा डा० टामस ने वर्ष के अंत में अपनी रिपोर्ट दी और स्टाक एक्सचेंज के सुधार के लिए बहुत सी उपयोगी सिफारिशें कीं। इस रिपोर्ट पर एक उच्च शक्ति समिति ने विचार किया जिसमें केन्द्रीय वित्त और विधि मन्त्रालय रिजर्व बैंक आफ इण्डिया और बम्बई सरकार के प्रतिनिधि थे। इस समिति की सिफारिशों पर एक विधेयक का प्रारूप तैयार किया गया जो एक और समिति को सौंपा गया, जिसमें गैरसरकारी सदस्यों की अधिकता थी। इस समिति के सभापति श्री ए० डी० गोरवाला थे गोरवाला समिति ने अगस्त १९५१ में अपना प्रतिवेदन दिया और एक विधेयक का प्रारूप भी प्रस्तुत किया जो लोकमत जानने के लिए प्रसारित किया गया जनता की टीका टिप्पणियों का विश्लेषण करने के बाद प्रतिभूति संविदा (विनियमन) विधेयक (Securities Contracts (Regulation Bill) तैयार किया गया और २४ दिसम्बर १९५४ को लोकसभा में पुरःस्थापित किया गया (Introduced) बाद में यह संसद की संयुक्त प्रवर समिति को भेजा गया जिसने मार्च १९५६ के पहले सप्ताह में अपना प्रतिवेदन दिया और विधेयक में परिवर्तन करने के लिए कई सुझाव दिए।

विधेयक में विनियमन की जो योजना सोची गई है उसमें यह उपबंध है कि स्टौक एक्सचेंजों को उनके निम्नलिखित शर्तें पूरी करने पर पूर्व स्वीकृति दी जाए—(१) स्वीकृति के प्रार्थना पत्र में नियत विवरण होना चाहिए और उसके संविदाओं के विनियमन और नियन्त्रण के लिए स्टौक एक्सचेंज की उपविधियाँ (Bye-laws) और इसके गठन सम्बन्धी नियमों की एक प्रति अवश्य होनी चाहिए। यदि केन्द्रीय सरकार को यह संतोष हो जाए कि नियम और विनियम उन शर्तों के अनुरूप हैं जो उचित कारवार को सुनिश्चित करने के लिए और पैसा लगाने वालों को संरक्षण देने के लिए नियत की जाएँ और कि स्टौक एक्सचेंज केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाई जाने वाली सब शर्तों का पालन करने के लिए राजी है, तो यह स्टौक एक्सचेंज को स्वीकृति प्रदान कर सकती है। सरकार जो शर्तें नियत कर सकती है वे स्टौक एक्सचेंजों की सदस्यता की अर्हता सदस्यों के बीच संविदाओं को प्रवर्तित कराने की रीति, स्टौक एक्सचेंजों में केन्द्रीय सरकार के नामजद व्यक्तियों द्वारा उसका प्रतिनिधान और सदस्यों के हिसाब रखने तथा सनदप्राप्त लेखपालों (Chartered Accountants) द्वारा उनकी नियतकालिक लेखापरीक्षा के बारे में हो सकती हैं। संयुक्त प्रवर समिति ने यह प्रस्थापना रखी है कि सब अस्वीकृत स्टौक एक्सचेंज अवैध होंगे। समिति ने यह भी सुझाव रखा है

कि हाजिर डिलीवरी संविदाएं स्वतन्त्रतापूर्वक तो होनी चाहिए, पर सरकार को अपने पास यह शक्ति रखनी चाहिए कि जहां कोई दुरुपयोग हो वहां वह लाइसेंस देने की प्रणाली के द्वारा उन्हें विनियमित कर सके। वह चाहती है कि सरकार स्टॉक एक्सचेंज की सदस्यता के बारे में निर्णय किया करे और सरकारी नामजदों की संख्या ३० से अधिक न हो।

विधेयक में व्यापार की रीतियों या प्रथाओं पर साधारण नियन्त्रण का उपबन्ध किया गया है जो उन शक्तियों द्वारा किया जायगा जो नियम, विनियम और उप-विधियाँ मंजूर करने और उन्हें बनाने या संशोधित करने के लिए सरकार को दी जायगी असामान्य परिस्थितियों और आपाता में जिनमें स्टॉक एक्सचेंजों के काम करने पर गम्भीर असर पड़ता हो और अविलम्बनीय तथा उग्र कार्यवाही करने की आवश्यकता हो, कार्यवाही करने की शक्ति भी देता है। इस प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार किसी स्वीकृत स्टॉक एक्सचेंज के शासक निकाय को निष्प्रभाव कर सकती है, या सात दिन से अनधिक की अवधि के लिए या उससे अधिक अवधि के लिए कारबार बन्द कर सकती है पर ६ दिन से अधिक की अवधि के लिए शासक निकाय का पक्ष सुन लेने के बाद ही कारबार बन्द किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार स्टॉक एक्सचेंज के मामलों के विषय में या इसके किसी सदस्य के बारे में वह सब जानकारी मांग सकती है जो वह आवश्यक समझे और यदि आवश्यक समझे तो स्टॉक एक्सचेंज के मामलों में अनुसंधान का निदेश दे सकती है। प्रतिषिद्ध क्षेत्रों में की गयी संविदाएँ यदि वे स्वीकृत स्टॉक एक्सचेंज के सदस्यों के मध्य नहीं हैं तो, अवैध होंगी विधेयक के खण्ड १९ में प्रतिभूतियों के विकल्प सौदों का प्रतिषेध किया गया है, केन्द्रीय सरकार किन्हीं विनिर्दिष्ट प्रतिभूतियों के सौदे उनमें अवांछनीय परिकल्पन रोकने के लिए सम्बन्धित एक्सचेंज से परामर्श करने के बाद प्रतिषिद्ध कर सकती है।

संयुक्त समिति ने सुझाया है कि निरंक हस्तान्तरों का चलन (Currency of Blank transfers) ६ महीने तक सीमित कर देनी चाहिए पर हमारा यह अनुरोध है कि निरंक हस्तान्तर सर्वथा प्रतिषिद्ध होने चाहिए जैसे कि वे लंदन और न्यूयार्क में हैं। विधेयक को "प्रतिभूतियों के अवांछनीय सौदे रोकने के लिए······ बनाया गया विधेयक" बताया गया है पर इसमें प्रतिभूतियों के अवांछनीय सौदे की कोई परिभाषा या वर्णन नहीं दिया गया और न इसमें ऐसे प्रचलित प्रतिभूतियों के अवांछनीय सौदों का ही उल्लेख है जैसे 'फटका', समुच्चय कार्य (Pool operations) और हस्तेकरण या कारनरिंग इसमें कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो फटका ढंग की जुआखोरी के विनाशकारी रूप को बढ़ावा दें यद्यपि इसमें सरकार को जब आवश्यक हो तब स्टॉक एक्सचेंज का कुछ कारबार रोकने की शक्ति दी गई और वह भी स्टॉक एक्सचेंज से परामर्श करने के बाद। यदि इसका आशय अवांछनीय सौदों को रोकना है तो फटके को सबसे पहले प्रतिषिद्ध करना चाहिए क्योंकि यह सबसे बुरी प्रथा है। फटका या वायदों के व्यापार में और हाजिर सौदों में अन्तर है। हाजिर

सौदे में क्रेता को प्रतिभूतियों की कीमत देकर सविदा की तिथि के बाद तीन दिन के भीतर प्रतिभूतियो की वास्तविक डिलीवरी लेनी पडती है। इसलिए हाजिर सौदों में क्रेता अपना सौदा अपनी वित्तीय समर्थ की सीमा के अन्दर रखता है। फटका या वायदे के सौदे में आपरेटर (अपनी वित्तीय सामर्थ्य से बाहर जाकर) हजारों शेयर इस आशा में खरीदता जाता है कि वह निपटारे की १५ दिन की अवधि में उन्हें बेच देगा और अपने खरीदे हुए शेयरों के न बेचे गए अश की ही कीमत चुका देगा। यदि उसका वित्तीय सामर्थ्य इतना नही है कि वह अपनी खरीद के अनबेचे अश को कीमत चुका सके तो वह 'बदले' के प्रकार चुका कर अपनी जिम्मेदारी आगे भेज सकता है इस प्रकार फटके से अति व्यापार (over-trading) होता है जो स्टौक एक्सचेंज पर प्राय आने वाले सकटो का मुख्य कारण है कामोडिटी मार्केट या जिन्स बाजार में फटके का कोई औचित्य हो सकता है क्योकि इसमे उत्पादक अपनी भविष्य की जिम्मेवारी सतुलित कर सकता है जिन्स बाजार में इसका प्रयोजन जिन्स लेने या देने के दायित्व के सिलसिले में कीमत की जोखिम से बचना या उसे न्यूनतम करना है। स्टाक मार्केट में ऐसी कोई आवश्यकता या दायित्व नही होता स्टौक बाजार में सिवाय इसके और कोई प्रयोजन नही सिद्ध होता कि एक खास तरह के लोग अपनी जुआखोरी की इच्छा पूरी कर लें यह बुरी प्रथा भारत से बाहर किसी स्टौक एक्सचेज में नही चलने दी जाती यहाँ भी यह अभिव्यक्ततः निषिद्ध होनी चाहिए। इस सिल-सिले में गोरवाला समिति का यह उद्धरण देना उचित होगा, "जिस आदमी के पास काफी धन नही है, पर ज्ञान है और वह परिकल्पन करता है। वह आदमी सम्भावी (Prospective) दिवालिया है, जो आदमी धन और ज्ञान दोनो के अभाव में परि-कल्पन करता है वह न केवल एक खतरा है बल्कि अनुपयुक्त जगह पर काम कर रहा है, उसे कभी भी परिकल्पन नही करना चाहिए" यह निश्चित रूप से एक अवांछनीय प्रथा है और यह अवश्य निषिद्ध होनी चाहिए।

विधेयक प्रतिभूतियो सम्बन्धी व्यापार के अन्य अवांछनीय रूपों, यथा हस्तेकरण या कार्नर, समुच्चय कार्य, छलसाधन, या गोटेबाजी आदि के विषय में भी मौन है पर स्टौक एक्सचेंज पर व्यापार के अत्यधिक घृणित रूप भी प्रचलित है और स्थानों में हस्तेकरण समुच्चय कार्य और छलसाधन को रोकने के लिए अनेक उपाय किये गये है क्योंकि वे स्टाक एक्सचेंज को स्टाकों का सही और उपयुक्त मूल्यांकन करने का इसका प्राथमिक कार्य करने से रोकते है और इस प्रकार स्टौक एक्सचेंज के कार्य करने की दक्षता को विनष्ट करते है इसलिए विधेयक में इन सब 'प्रतिभूतियों के' के अवांछनीय सौदों को प्रतिषिद्ध करने के लिए विनिर्दिष्ट उपबन्ध होने चाहिए।

उपज विनिमय स्थान
(Produce Exchanges)

उपज विनिमय स्थान या प्राड्यूस एक्सचेंज (स्टौक एक्सचेंज की तरह) एक विशिष्ट सगठित बाजार है, जो एक ऐसा स्थान प्रस्तुत करता है, जहाँ उसके सदस्य

कुछ पदार्थ खरीद या बेच सकें। स्टोक एक्सचेंज की तरह प्रौड्यूस एक्सचेंज में भी कारबार कुछ नियमो के अनुसार होता है। सौदे उसी तरह होते है जिस तरह स्टोक एक्सचेंज में, इसलिए जो कुछ ऊपर कहा गया है, वह प्रौड्यूस एक्सचेंजो के सौदो पर भी उसी तरह लागू होता है। यहाँ विशेष रूप से यह विचार करने की आवश्यकता है कि भारत में किस-किस प्रकार के प्रौड्यूस एक्सचेंज है, उनका गठन कैसे है तथा हाजिर व वायदे के सौदे तथा हेजिंग कैसे होते है।

गठन—सामान्यतया ससार भर के प्रौड्यूस एक्सचेंज नियमित निकाय है। भारत में अधिकतर प्रौड्यूस एक्सचेंज प्रथमत वायदे के सौदो के लिए ही सगठित किये गये है, यद्यपि उनमें से कुछ हाजिर सौदो को भी नियत्रित करते है। भारत के सब प्रौड्यूस एक्सचेंज दो मुख्य वर्गों में आते है—एक लाभ में हिस्सा देने वाले और दूसरे लाभ में हिस्सा न देने वाले। पर दोनो प्ररूप भारतीय कम्पनी अधिनियम, १९१३, के आधीन पजीयित किये जाते है, पहले वाले धारा १३ के आधीन, और पीछे वाले धारा २६ के आधीन। प्राय सब लाभ में हिस्सा न देने वाले एसोसिएशन बन्दरगाहो पर अवस्थित है। बम्बई के ईस्ट इन्डिया काटन एसोसिएशन और मारवाडी चैम्बर आफ कामर्स इसके प्रारूपिक उदाहरण है। लाभ में हिस्सा देने वाले एसोसिएशन उत्तर में ही पाये जाते है। इन्डियन एक्सचेंज लिमिटिड अमृतसर में इसका एक बडा प्रमुख उदाहरण है। यह बात बडी महत्वपूर्ण है कि लाभ में हिस्सा न देने वाले एसोसिएशनो की स्थायिता और प्रभाव लाभ में हिस्सा देने वाले अधिकतर एसोसिएशनो की स्थायिता और प्रभाव से बहुत अधिक है। लाभ में हिस्सा न देने वाले अपने सदस्यो को दूसरो की तुलना में अधिक सुविधाएँ देते है। भारत में मेलो, बाजारो, और प्रौड्यूस एक्सचेंजो की रिपोर्ट के अनुसार, १९४३ में भारत में १८४ प्रौड्यूस एक्सचेंज थे परन्तु इनमें से १०५ पजाब में थे जिनमें से अब ७५ पाकिस्तान में है। दोनो तरह के एसोसिएशन का प्रबन्ध सचालक मडलो या समितियो के हाथ में होता है, जिनका गठन और पूँजी भिन्न-भिन्न होती है।

सदस्य—प्रौड्यूस एक्सचेंज के सदस्यो का वर्गीकरण या तो, वे जो कार्य करते है उसकी प्रकृति के आधार पर, अथवा वे जो सौदे करते है, उनके आधार पर, किया जाता है। कार्यों के आधार पर सदस्य (१) दलाल, (२) जोबर, (३) थोक विक्रेता, (४) खुदरा विक्रेता, (५) आयातक और (६) निर्यातक हो सकता है। सौदो के अनुसार सदस्य "हेजर या परिकल्पक हो सकते है। प्रौड्यूस एक्सचेंज बाहरी लोगो के प्रवेश उतनी कडाई से नही रोकते जितनी कडाई से स्टोक एक्सचेंज रोकते है।

लक्ष्य और उद्देश्य—प्रौड्यूस एक्सचेंजो के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित रूप में बताये जाते है। (१) व्यापार करने और विचार-विनिमय करने के प्रयोजन के लिए सदस्यो के मिलने को एक सुविधाजनक स्थान देना; (२) बाजार सम्बन्धी सूचना सचित और प्रचारित करना; (३) व्यापार में सुविधा पैदा करने के उद्देश्य से नियम बनाना और लागू करना; (४) श्रेणियाँ बनाना और उन्हें कायम रखना;

(५) व्यापार सम्बन्धी विवादो के मध्यस्थ निर्णय की व्यवस्था करना, (६) बाजार मूल्यो को व्यक्त करने मे सहायता करना। इन उद्देश्यो की पूर्ति का यत्न करते हुए ये प्रोड्यूस एक्सचेंज कुछ प्रत्यक्ष और परोक्ष सेवाएँ करते हैं। वे उत्पादको, वितरको, वित्त पोषको, नियोजको और उपभोक्ताओ को सतत बाजार प्रदान करते है, वे जोखिम को कम करते हैं, अर्थात् वे दो बाजारो में समानान्तर सौदो के द्वारा कीमत की सभावित घट-बढ के प्रभावो को कम करते हैं, और कभी-कभी समाप्त भी कर देते है। जोखिम के धारण अर्थात् एक प्रकार के व्यापारियो से एक विशेष प्रकार के जोखिम उठाने वालो अर्थात् परिकल्पको को जोखिम का हस्तातर सुविधा से हो जाता है। वे हेजिंग के सौदो द्वारा बीमे या सुरक्षा की एक उपयोगी विधि प्रस्तुत करते है जहाँ एक बाजार से दूसरे बाजार में स्थानातरण या अन्तर-पणन (Arbitrading) या 'हिडन' (Straddling) कीमतो को बराबर करने मे बडा प्रभावी होता है।

सौदों के प्रकार—प्रोड्यूस एक्सचेंज में दो तरह के सौदे होते है—हाजिर या नकद, और वायदे। स्टौक एक्सचेंज की तरह यहाँ भी हाजिर या नकद सौदे का मतलब नकद या थोडी अवधि में, जैसा भी एक्सचेंज का नियम हो, भुगतान करके खरीदने या बेचने को कहते है और डिलिवरी या तो फौरन और या प्राय आठ दिन के अन्दर ली जाती है। सौदे का वायदा एक निष्पादित अनुबन्ध या बिक्री है, और उसे कीमत चढने पर अन्तर ले लेने के प्रयोजन से पलटा नही जा सकता, जैसा कि वायदे के सौदे में सम्भव है, जो बेचने का इकरार मात्र है। वादे का सौदा दो पक्षो में किसी विशेष पदार्थ या श्रेणी को इस आधार पर खरीदने या बेचने का समझौता है कि डिलिवरी भविष्य में किसी निश्चित तारीख पर ली जा सकती है। नकद या हाजिर सौदा नमूने के आधार पर किया जा सकता है, पर भविष्य के सौदे में किसी प्रमापित श्रेणी का उल्लेख होना चाहिए। भविष्य का सौदा परिकल्पनात्मक अथवा हेजिंग होता है। परिकल्पनात्मक सौदा 'वायदा' 'आपदान' 'स्ट्रैडल' और 'बदला' हो सकता है। परिकल्पनात्मक सौदो पर परिकल्पन और स्टौक एक्सचेंज के सिलसिले में पहले विचार किया जा चुका है। हेजिंग पर नीचे विचार किया जाता है।

हेजिंग—प्रोड्यूस एक्सचेंज में हेजिंग के सौदे जोखिम को स्थानान्तरित करने का बहुत उपयोगी साधन है। हेजिंग उस कार्य को कहते हैं जिसमें दो विपरीत दिशाओ में सवादी प्रकृति के सौदे एक साथ किये जाते हैं—एक हाजिर बाजार में और दूसरा वायदा बाजार में। ये सौदे विपरीत इस तरह होते है कि एक में खरीद की जाती है और दूसरे में बेच, पर पण्य वस्तु की मात्रा की दृष्टि से वे सवादी होते है। इस कार्य में बराबर मात्रा की विपरीत बिक्री और खरीद की जाती है—एक हाजिर बाजार में जहा वास्तविक भौतिक पदार्थ हस्तगत किया जाता है, और दूसरी वायदा बाजार में। यदि दोनो बाजारों में कीमतें बिल्कुल समानान्तर चलें

तो एक बाजार में कीमत परिवर्तन से होने वाली हानि दूसरे से होने वाले लाभ से प्रतितुलित हो जाती है। जब इस प्रकार किया जाता है तब वायदे का व्यापार एक प्रकार का बीमा हो जाता है, जिसमें परिस्पन्दक समुदाय बीमाकर्ता होते हैं और बीमाकृत हेजरों का समुदाय होता है। हेजिंग आपरेशन विभिन्न धन्धों, यथा अनाज, रुई, बीज आदि और विभिन्न कार्य करने वालों यथा खेतिहर, व्यापारी, आयातक, निर्यातक, स्टौकिस्ट या निर्माता द्वारा अपने-आपको कीमतों की घट-बढ़ के कारण होने वाली हानियों से बचाने के लिए किये जाते हैं।

उदाहरण के लिये एक आटा मिल मालिक की स्थिति पर विचार कीजिये जो अपनी मिल के लिये कच्चे सामान के रूप में गेहूं चालू कीमत पर खरीदता है। अगर गेहूं की कीमत उसका आटा बिकने से पहले गिर जाय तो उसे आटा कम कीमत पर बेचना होगा, क्योंकि प्रायः आटे की कीमत गेहूं की कीमत के साथ गिर जाती है इसलिये इस जोखिम को हानिरहित करने के लिये आटा मिल मालिक अपनी हाजिर गेहूं खरीद को 'हेज' कर देता है और इसके लिये भविष्य में गेहूं बेचने का एक और सौदा करता है। दूसरे शब्दों में वह वायदे की बिक्री करता है। अगर, जैसा कि उसे भय था, गेहूं की कीमत उसका आटा बिकने से पहले गिर गई तो उसे आटे पर नुकसान होगा क्योंकि वह बाद की कीमतों से ऊपर भुगतान कर चुका है पर अपने वायदे के सौदे पर उसे लाभ होगा क्योंकि जब सौदे की डिलिवरी द्वारा पूर्ति का समय आयेगा तब वह हाजिर गेहूं उस कीमत से नीचे खरीद सकेगा, जो उसे अपने वायदे की बिक्री के लिये मिलनी है। इस प्रकार वह अपने वायदे के सौदे से लाभ से आटे वाले सौदे की हानि को पूरा कर लेता है। अगर कीमत ऊंची हो जाय तो वह अपने वायदे के सौदे की हानि को अपने हाजिर सौदे के लाभ से पूरा कर लेगा। हेजिंग का परिणाम यह है कि व्यापारी को अपना सामान्य व्यापार-लाभ मिलना निश्चित हो जाता है और कीमतों के परिवर्तनों के कारण होने वाले परिस्पन्दनात्मक हानि या लाभ से वह बच जाता है।

अध्याय ३१

नौवहन और वित्त (Shipping and Finance)

निर्यात और आयात का व्यापार—आधुनिक जटिलताओ और धन के उपयोग के बावजूद, व्यापार, विशेषकर प्रादेशिक व्यापार, अब भी मूलत प्राचीन काल का वस्तु विनिमय ही है। जैसे कोई व्यक्ति जो कुछ पाता है उसके बदले में उचित मूल्य देता है, उसी प्रकार राष्ट्र भी अन्ततोगत्वा अपने निर्यात से अधिक आयात नही कर सकता। पर यह आवश्यक नही कि आयात वस्तुए निर्यात वस्तुओ के बराबर हो। उदाहरण के लिए, निर्यात सेवाओ के रूप में हो सकता है, जैसे नौवहन या बीमा या छुट्टी बिताने आने वालो के लिए स्थान की व्यवस्था जिन्हे अदृश्य निर्यात (Invisible exports) कहते है—परन्तु वर्तमान प्रयोजन के लिए हमें सिर्फ मूर्त वस्तुओ के स्थानान्तरण पर विचार करना है, सेवाओ पर नही।

कुछ समय पूर्व तक आयातक मुख्यत एक व्यापारी होता था जो ऐसी वस्तुए अपने देश में लाने का काम करता था जिन्हे वह लाभ पर बेच सके। उनके अपने ही जहाज होते थे जैसे मरचेंट आफ वेनिस में एंटानियो के थे। इस प्रकार और व्यापारी थे, जो माल जहाज में भरकर ले जाते थे और उसे बेच कर विदेशी वस्तुए लेते थे। इन जहाजो को शस्त्र-सज्जित और लडने के लिए तैयार होकर जाना पडता था। विदेशी रीति-रिवाजो और भाषाओ के कारण, वास्तविक कठिनाइयाँ आती थी जिससे वैदेशिक व्यापार सिर्फ उन लोगो तक सीमित था जो इसमें विशेषता हासिल करते थे। पर आजकल विभिन्न देशो की वाणिज्यिक रीतियाँ एक जैसी है। पिछली दो शताब्दियो में वाणिज्यिक ईमानदारी का मानदड ऊँचा हो गया है। विदेशो में उपलब्ध वस्तुओ के बारे मे व्यापारिक सूचीपत्रो, अखबारो और व्यापारिक पत्रो द्वारा जानकारी मिलना आसान होगया है और इसके परिणामस्वरूप अब कोई भी व्यक्ति विदेशी व्यापारियो से पूछताछ कर सकता है और नमूने तथा तखमीने माँग सकता है। परिवहन सुविधाओ में बहुत सुधार हो गया है। इसलिए आयात और निर्यात व्यापार अबाध रूप से और दूरदूर से करना सभव और सुविधाजनक होगया है।

नियत्रण—परिवहन और सचार साधनो में सुधार होने से समय और दूरी की बाधाए तो बहुत काफी हट गई है, और वैदेशिक मुद्रा विनिमय की व्यवस्था विदेशी मुद्राओ में भुगतान की सुविधा के लिए कर दी गई है, पर आयातनिर्यात पर नये नियत्रण लागू होगए है, विशेषकर युद्ध के दिनो में, यद्यपि हिटलर ने सन

३० के आसपास ही वैदेशिक व्यापार पर कठोर नियंत्रण लागू कर दिये थे। युद्ध के दिनों में मित्र राष्ट्रों के सामने तीन समस्याएँ थीं—

(१) परमावश्यक पदार्थों की मात्रा की रक्षा,

(२) साथ ही यथासम्भव अधिकतम वैदेशिक मुद्रा प्राप्त करना,

(३) उपलब्ध वैदेशिक मुद्रा का अच्छे से अच्छा उपयोग करना।

समस्या के ठीक समाधान के लिए यह आवश्यक था कि किसी पदार्थ की जो अधिक मात्रा उपलब्ध हो उसे उन देशों में भेजा जाय जिनकी मुद्राओं की जरूरत है। यह निश्चय करना भी आवश्यक था कि सारी की सारी उपलब्ध वैदेशिक मुद्रा युद्ध सचालन में ही प्रयुक्त हो और आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं में नष्ट न हो जाए, युद्ध के बाद कुछ मुद्राओं विशेषकर डालर के भुगतान सतुलन की कठिनाइयों के कारण नियंत्रण जारी रहे। हमारे लिए यह आवश्यक था कि उन देशों को निर्यात करें, जिनकी मुद्राएं दुर्लभ थी और यह भी आवश्यक हो गया कि निर्यात से उपार्जित विदेशी मुद्रा वैयक्तिक के बजाय देश के हित की दृष्टि से काम में लाई जाय इस लिए निर्यात पर नियंत्रण इस ढंग से किया गया जिससे यह सुनिश्चित हो कि सारी उपार्जित मुद्रा केन्द्रीय बैंक—हमारे देश में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया—को समर्पित करदी जाय। इसी प्रकार आयात का भी लाइसेंस लिया जाता था, जिससे आवश्यक कच्चे सामान और सामग्री के मुकाबले में अनावश्यक सामान के निर्यात को रोका जा सके। निर्यात पर नियंत्रण का उपयोग देश में नये उद्योगों के विकास में सहायता देने के लिए भी किया गया है। परन्तु अब संसार की स्थिति सुधर जाने से नियंत्रणों में आम ढिलाई हो गई है। अधिकाधिक वस्तुएं ओ० जी० एल० (ओपन-जनरल लाइसेंस) में रक्खी गयी हैं। भारत सरकार अपनी आयात नीति छ महीने पहले घोषित कर देती है। आयात का मुख्य नियंत्रक इस नीति के अनुसार ही लाइसेंस देता है। यदि आवश्यक लाइसेंस पेश न किया जाय तो वस्तुओं को जहाज से उतारने नहीं दिया जाता है, और रिजर्व बैंक आफ इण्डिया भी उनके भुगतान के लिए विदेशी मुद्रा नहीं देता।

निर्यात और आयात के तंत्र को अच्छी तरह समझने के लिए हम किसी वस्तु की उसके निर्माता के स्थान से उसकी अंतिम मंजिल विदेशस्थ उपभोक्ता, तक उसकी यात्रा पर विचार करें। एक आदमी को उसके डाक्टर ने पोलीक्यूरीन नामक फोर्ड की दवा बताई, जो एक ब्रिटिश फर्म द्वारा तैय्यार की जाती है। इस बात की कोई संभावना नहीं, कि वह आदमी घर जाकर निर्माता को लिखे कि मुझे यह दवा भेज दो। उसके ऐसा न करने के अनेक कारण हैं। पहले तो सम्भवत वह निर्माता का पता नहीं जानता। दूसरे, यदि निर्माता का पता भी चल जाय, तो भी वह किसी विदेशस्थ नैमित्तिक ग्राहक का आर्डर पूरा करने में जो सब कार्य करने पड़ते हैं, उन्हें देखते हुए, इतनी थोड़ी मात्रा भेजने की तकलीफ नहीं उठा

येगा। तीसरे, संभव है कि उसे आयात का लाइसेंस न मिले। अंतिम पर अन्यून महत्व की बात यह है कि वह आठ या दस सप्ताह प्रतीक्षा करना पसंद नहीं करेगा उसे दवाई आनी चाहिए। स्पष्ट है कि वह अपने कैमिस्ट के यहाँ जायगा और उसे यह जानकर खुशी होगी कि इसके कैमिस्ट के पास यह अद्‌भुत दवा मौजूद है। इसके साथ ग्राहक यह जानना चाहता है कि वह दवा वहाँ कैसे आई। इस प्रश्न के दो उत्तर संभव हैं — या तो पोलीक्यूरीन की माँग पहले हुई होगी और कैमिस्ट ने उस दवा को मंगाना और रखना आवश्यक समझा होगा, अथवा निर्माता ने इस देश में माँग की संभावना समझकर यह यत्न किया होगा कि वह तथा अन्य कैमिस्ट दवा अपने यहाँ रखले। पहली अवस्था में प्रयास कैमिस्ट ने किया और आयात यंत्र को चलाया और दूसरी अवस्था में प्रयास निर्माता ने किया और अपनी दवा भारत तथा विदेशों में निर्यात करने की व्यवस्था की। यह विधि अधिक अद्यतनीय (Uptodate) है। इस विभेद को ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि दवाई की उत्पादक से निर्माता तक यात्रा हर अवस्था में अलग अलग होगी।

पहले उस अवस्था पर विचार करें जिसमें कैमिस्ट पोलीक्यूरीन की नियमित माँग देखता है और माल प्राप्त करना चाहता है। बहुत सम्भाव्य उसने किसी थोक विक्रेता को अपनी आवश्यकता की सूचना दी और अन्त में वस्तुएँ प्राप्त कर ली। होल सेलर या थोक विक्रेता जो स्वयं आयातक है, अनेक खुदरा विक्रेताओं के वैसे ही आदेश प्राप्त करके इंग्लैंड से दवाई मंगाने के लिए तीन मार्ग ग्रहण कर सकता है —

(१) वह सीधे निर्माता से सम्पर्क करता है और पोलीक्यूरीन की बहुत बड़ी मात्रा का आर्डर देता है, जिसमें से कुछ से अपने ग्राहकों की तात्कालिक आवश्यकता पूरी करेगा, और कुछ जमा कर लेगा।

(२) वह इंग्लैंड में किसी निर्यात व्यापारी से सम्पर्क करता है जो उसे ब्रिटिश वस्तुएं नियमित रूप से भेजता है। यह निर्यात व्यापारी प्रतिनिधि के रूप में दवाई भेजता है, चाहे यह उसके स्टोक में हो या वह इसे इसी काम के लिए निर्माता से खरीदे।

(३) वह ब्रिटेन में अपनी सारी खरीद करने के लिये नियुक्त आढ़ती को एक इंडेंट, अर्थात् क्रयादेश, भेजता है। तब निर्माता का निर्यात विभाग उस आढ़ती की देख रेख में भारतीय आयातक को सीधे दवा भेज देगा। भारत में अधिकतर आयातक यही तरीका काम में लाते हैं। इसका एक कारण यह है कि उपभोक्ता वस्तुओं के आयातक को सिर्फ एक फर्म द्वारा निर्मित वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती और आढ़ती यानी कमीशन बाइंग एजेंट, जो विदेशों के आर्डर संभालने

में विशेष निपुण होता है, अनेक निर्माताओं से वस्तुएँ खरीदता है और उनके उचित पैकिंग तथा परिवहन की व्यवस्था करता है। उसे खरीदी गई वस्तुओं के मूल्य पर कमीशन के ढंग से पारिश्रमिक मिलता है।

इंडेंट शब्द प्राचीन अदालती रिवाज में से आया है जिसके अनुसार दो प्रतिलिपियों के किनारे इस तरह काट दिये जाते थे जिससे उन दोनों की कटन का सादृश्य देख कर यह निश्चय हो सके कि वे दोनों एक हैं। इंडेंट का कोई निश्चित रूप नहीं है। यह निरा बिल हेडिंग भी हो सकता है और इसमें कई बड़े-बड़े कागज भी हो सकते हैं जिनका पहला पृष्ठ कानूनी दस्तावेज की तरह सावधानी से लिखा गया हो। इंडेंट बन्द या खुला होता है। यदि इसमें यह निर्देश हो कि वस्तुएँ किनसे खरीदनी हैं और किस कीमत पर तथा किस किस ग्रेड की खरीदनी हैं तो यह बन्द इंडेंट (Closed Indent) कहलाती है। पर यदि मामला आढ़तिये पर छोड़ दिया जाय और वह कई जगह से कीमतें पूछकर सर्वोत्तम कीमत पर आर्डर दे तो यह खुली इंडेंट (Open Indent) कहलाती है। आयातक को आढ़तिये की निर्यात व्यापार सम्बन्धी विशेष जानकारी का लाभ मिल जाता है। खरीदने का काम, जैसा कि हम पहले से जानते हैं एक गम्भीर मामला है जिसमें सावधानी से निर्णय करने और ज्ञान की आवश्यकता होती है। न केवल कीमतों और क्वालिटी पर विचार करना होता है, बल्कि जिस बाजार के लिये माल खरीदा जाता है, उसके लिये उपयुक्त नमूना का भी ध्यान रखना पड़ता है। इसके अलावा, यह भी प्रश्न है कि ठीक समय पर निर्माता माल भेज दे, और जहाज पर माल ले जाने के लिए उपयुक्त पैकिंग आदि का उसे अनुभव हो।

क्योंकि वस्तुओं को बड़ी-बड़ी दूरियाँ पार करनी पड़ती हैं और बहुत सी बाधाएं लांघनी हैं, जिनमें समय और धन खर्च होता है, इसलिये इंडेंट अस्पष्ट नहीं होनी चाहिये। अपेक्षित वस्तुएँ ठीक ठीक बतानी चाहियें। इंडेंट में पैकिंग, वाणिज्यिक और अन्य बीजक तैयार करने, बीमे, वस्तु की यात्रा के रास्ते, आदि के बारे में भी स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये, अन्यथा ये बातें दूसरी ओर माल भेजने वाले के ऊपर छोड़ देनी चाहियें। जो हो, निर्माता को अधिक से अधिक पूरे निर्देश मिल जाने चाहियें। इंडेंटों में प्रायः विशेष चिन्ह भी बता दिये जाते हैं जो पेटियों पर होने चाहियें, जिनसे ये पेटियाँ और पेटियों से मिल न जायं। जहाज से माल *भेजने वाला व्यापारी, जो खरीदने वाले आढ़तिये से अलग है, सम्भवतः यह* आग्रह भी करेगा कि निर्माता की पहचान कराने वाले सब निशान या लेबिल हटा दिये जायं। वह माल अपने वेयर हाउस में डिलिवर करने का आदेश देगा या पैकिंग करने वालों से ऐसा पैकिंग करने के लिये कहेगा कि माल इकट्ठा बांधा जा सके। माल खरीदने के बाद अगला काम यह होता कि प्रत्येक सम्बन्धित निर्माता को खरीद का नोट भेजकर आर्डर की पुष्टि कर दी जाय। यह सब विवरण पूर्ण

होना चाहिये, और इसमें क्वालिटी, कीमत, मार्किंग, डिलिवरी का स्थान और समय, भुगतान की शर्तें, डिस्काउंट, आदि सब बिलकुल ठीक-ठीक होने चाहिये। नीचे दिया हुआ खरीद नोट का प्रपत्र आमतौर से काम आता है।

लंदन १० दिसम्बर १९५५

श्री........स्मिथ एण्ड कम्पनी...............

हम अब निम्नलिखित वस्तुओं के समरण के लिए आपको दिये हुए अपने आदेशों की पुष्टि करते हैं।

या

हमने आज आपसे निम्नलिखित वस्तुएँ खरीदीं।

कृपया आर्डर नम्बर...............का बीजक भेजिए.................

(वस्तुएँ वर्णनानुसार)............

मार्किंग...............

कीमत...............

शर्तें ....

डिलिवरी...............

नोट—कृपया ध्यान रखिए कि डिलिवरी की ऊपर लिखी हुई तारीख अंतिम है और यदि इस तक माल न मिला तो हमें आदेश रद्द करना पड़ेगा।

वस्तुओं का पैकिंग जहाज पर चढ़ाना और बीमे की देखभाल महत्त्वपूर्ण कर्तव्य हैं, जो निर्यात व्यापारी या इंडेंट भेजने वाली फर्म को पूरे करने होते हैं। वह अपनी ही ओर से कार्य करता है इसलिए इन कार्यों में की हुई किसी भी भूल के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। यही कारण है कि सिर्फ बड़ी फर्में ही यह कार्य अपने आप करती हैं परन्तु छोटी फर्मों के लिए एक मात्र सभव तथा प्रचलित रीति यह है कि वे किसी पैक करने वाली फर्म और माल लादने तथा बीमा करने वाले एजेंटों की सेवाओं से लाभ उठाते हैं। प्रक्रिया के इस भाग की चर्चा करने से पहले हम उस अवस्था पर विचार करलें, जिसमें पोलीक्यूरीन का निर्माता मुख्य प्रयास करता है।

पोलीक्यूरीन का निर्माता सर्वसाधारण में विज्ञापन के कारण पैदा हुई दवाई की माँग का अनुमान करके तीन विधियों से इस कैमिस्ट को अपना माल रखने के लिए प्रेरित कर सकता है।

(१) निर्माता का निर्यात प्रबन्धक उस बस्ती के सब डाक्टरों, हस्पतालों और कैमिस्टों को दवाई के बारे में सूचित करता है। इसके बाद होने वाले विज्ञापन कार्य और डाक्टरों द्वारा समर्थित सिफारिश उसे यह दवा स्टॉक करने के लिए प्रेरित करेंगी।

(२) निर्माता का आयात एजेंट, जिसे भारत के लिए ऐसी वस्तुएँ बेचने का एकाधिकार है या जैसा कि आम तौर पर होता है सब विदेशी बाजारों के लिये निर्यात का एक मात्र अधिकार है आयातकों से कहता है कि अच्छी दरें प्रस्तुत करके स्थानीय केमिस्टों में इस दवा को प्रचलित करो।

(३) निर्यात प्रबन्धक या निर्यात एजेंट की पत्र व्यवहार, नमूनों आदि से जो सफलता होती है, उससे अधिक सफलता व्यक्तिगत सम्पर्क से प्राप्त होगी। इस आशा से निर्माता विदेशों में अपने घूमने वाले प्रतिनिधि भेजता है।

आदेश की स्वीकृति और उसकी पूर्ति का जिम्मा आगे बनाने से पहले इस बात पर जोर देना जरूरी है कि निर्माता, निर्यात अभिकर्त्ता या निर्यात व्यापारी को विदेशी बाजार में विज्ञापन करना चाहिए। जो वस्तुएँ बिना धूमधाम के निर्यात की जाती है, उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। निर्यात का विज्ञापन करने से पहले उस तरह की आरम्भिक जाँच कर लेनी चाहिए जिस पर वस्तुओं के विपणन के सिलसिले में हम पहले विचार कर चुके हैं। पर विदेश में विज्ञापन करते हुए बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता है। क्योंकि दूर देश के लोगों की आदतों और उनके रीति-रिवाजों का विशेष अध्ययन करना आवश्यक है। विदेशों के लिए विज्ञापन की योजना बनाते हुए निर्यातक को यह स्मरण रखना चाहिए कि वह एक से अधिक जातियों के लिए विज्ञापन कर रहा है। उदाहरण के लिए, यदि किसी चित्र में हिन्दू वेश वाले व्यक्ति का नाम अब्दुल्ला रखा गया हो तो भारत में उसका उपहास किया जाएगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए निर्यातक को आयातक की भाषा में विज्ञापन और पत्र-व्यवहार करके उसके काम को सरल बनाना चाहिए।

कीमत बनाना—निर्यात के लिए कीमत बनाते समय न केवल वस्तुओं की लागत और लाभ की मात्रा पर ही विचार करना चाहिए, बल्कि उन सब खर्चों का भी ध्यान रखना चाहिए जो माल भेजने के सिलसिले में होते हैं। इन खर्चों की मात्रा कीमत बनाते समय दी गई शर्तों पर निर्भर है। यदि वस्तुएं "लोको" (Loco) पेश की जाती हैं, अर्थात् उस जगह जहाँ से बिना पैकिंग, ढुलाई, भाड़े या बीमे के पड़ी होती हैं, तो खर्च कुछ भी नहीं होता। यदि वस्तुएं "फ्री डोमीसाइल", अर्थात् लेने वाले के घर तक सब लागत देकर प्रस्तुत की जाती हैं, तो वह खर्चा काफी होगा। इसलिए कीमत बताने में यह उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि वस्तु को कहाँ तक पहुँचाने का खर्चा कीमतों में शामिल है। आम तौर से पन्द्रह-बीस प्रामाणिक शब्द प्रचलित हैं जिनमें से प्रत्येक का अर्थ कानून द्वारा निश्चित है और खर्चीले विवादों से बचने के लिए बड़ी सावधानी और परिशुद्धता से इन शब्दों का प्रयोग करना उचित होगा।

एफ० ओ० बी० शब्द सबसे सरल और सबसे प्रचलित शब्दों में हैं। इसका शब्दार्थ है फ्री आन बोर्ड (जहाज पर तक बिना लागत) और इसमें वस्तुओं के पैकिंग, जहाजी घाट तक परिवहन, जहां जहाज घाट पर न हो, वहां लाइटरेज और लादने तथा स्टोइंग के खर्च इसके अन्तगत होते हैं। भाडा और बीमा इसमें शामिल नही होता। आयातक प्राय सीधी दरें पसद करते हैं, या इसके निकटवर्ती सी० आई० एफ० (कोस्ट, इन्शोरेंस फ्रेट अर्थात लागत, बीमा और भाडा) दर पसद करते हैं। सी० आई० एफ० कीमत वस्तुओं को डिलिवरी के बन्दरगाह तक पहुँचा देती हैं और इसम माल उतारने के बाद के आयात शुल्क, रेलवे भाडा, ढुलाई आदि शामिल नही होते। आखिरकार भाडे और बीमे की लागत का निश्चय करना आयातक की अपेक्षा प्रेषक के लिए अधिक आसान हैं, क्योंकि आयातक तो हजारो मील दूर होगा और उसके लिए सी० आई० एफ० कीमत की सुविधा इतनी स्पष्ट हैं कि आयातक के लिए एफ० ओ० बी० कीमतो की अपेक्षा सी० आई० एफ० की कीमतें हमेशा आकर्षक हैं।

सी० आई० एफ० के थोडा-थोडा भिन्न अनेक रूप कई हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं सी० आई० एफ० सी० आई० (कोस्ट यानी लागत, इंशोरेंस यानी बीमा, फ्रेट यानी भाडा, कमीशन और इंटरस्ट यानी ब्याज), सी० आई० एफ० सी० जिसमें इंटरस्ट यानी ब्याज शामिल नही हैं और सी० एफ० जिसमें सिर्फ लागत और भाडा आते है, बीमा नही आता। फ्रांको और फ्री डोमीसाईल शब्द में प्रेषिती (कन्साइनी) के द्वार तक के सब खर्च समाविष्ट करते हैं। फ्रांको डिलिवर्ड कस्टम हाउस में सी० आई० एफ० और उतारने के खर्च शामिल हैं। फ्री ड्यूटी कस्टम हाउस में सीमा शुल्क का चुकाना भी सम्मिलित हैं, फ्री हार्बर शब्द मुख्यत बम्बई के व्यापार में प्रयुक्त होता और गतव्य बदरगाह तक के सब खर्च इसमें शामिल होते हैं।

और भी बहुत से शब्द है जो या तो एफ० ओ० बी० के ही रूपातर हैं और या उनमें एफ० ओ० बी० तक के खर्च शामिल नही। उदाहरण के लिए—

एफ० ए० एस० (फ्री अलागसाइड शिप अर्थात् जहाज के पास तक की कीमत) एफ० ओ० बी० ऋण लदान के खर्च के बराबर है।

एफ० ओ० आर० (फ्री औन रेल अर्थात रेल तक माल पहुँचाने की कीमत) में लागत, पैकिंग वसूली और प्रेषक की तरफ रेल तक परिवहन शामिल है, पर रेल का महसूल इसमें शामिल नही।

डी० डी० (डेलीवर्ड डोक्स या फ्री डोक्स) में वस्तुओ को जहाजी घाट और डोक्स में रखने तक के सब खर्च शामिल होते हैं।

फ्री पोर्ट आफ डिपार्चर शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं, इसलिये इससे बचना चाहिये। इससे यह स्पष्ट नही होता कि वस्तुओ पर रवानगी के बदरगाह पर रेल

हुंड तक खर्चा लगाया जायेगा, या जहाजी घाट तक का, अथवा जहाज पर लादने तक का।

लोकों का अर्थ है कि वस्तुएँ जहाँ पड़ी हैं वहीं बिना पैकिंग या किसी तरह की ढुलाई के खर्च के उनको लगान।

फ्रेट फारवर्ड का अर्थ यह है कि भाड़ा प्रेषिती (कन्साइनी) देगा।

पैकिंग या संवेष्टन—वस्तुओं के निर्यातक को प्रेष्य वस्तुओं के पैकिंग पर सावधानी से विचार करना चाहिए। न केवल अपने विदेशस्थ ग्राहकों की दृष्टि में वस्तुएँ सुरक्षित पहुँचाने के लिए वह जिम्मेवार है बल्कि यदि वस्तुएँ अपने गन्तव्य स्थान पर सन्तोषजनक अवस्था में नहीं पहुँचानी तो वह भविष्य के रोजगार को भी खतरे में डालता है। निर्यात व्यापारियों और खरीदने वाले आढ़तियों तथा उन निर्माताओं को जो स्वयं पैकिंग नहीं करते, पैकिंग का निरीक्षण तो अवश्य कर लेना चाहिए और यह निश्चित कर लेना चाहिए कि प्रेषिती के आदेशों का पूरी तरह पालन किया जाय। जब निर्यातक पैक की हुई वस्तुओं को जहाज पर भेजे, उससे पहले उसे यह भी सन्तुष्टि कर लेनी चाहिए कि सब पेटियों पर बड़े बड़े अक्षरों में कम से कम दो पहलुओं पर प्रेषिती का नाम और पता, गंतव्य बंदरगाह का नाम, पहचान कराने वाले अक्षर और संख्याएँ स्पष्ट रूप से अंकित हो गई हैं। कोई विशेष चेतावनी या निर्देश, जैसे 'यह तरफ ऊपर रखो', 'टूटने वाली चीज', इत्यादि, स्पष्टत निर्दिष्ट होना चाहिए।

यदि पैकिंग निर्यातक के यहाँ किया जाय तो यह काम जानकार पैकर को सौंपना चाहिए जो कस्टम की आवश्यकताओं और जहाजी कम्पनियों के नियमों से परिचित हो यहाँ पैकिंग की कुछ विधियाँ दर्शाई जाती हैं। नरम वस्तुएँ क्लॉथ या ऑयल पेपर पेटियों में बिछाकर पैक की जाती हैं, या गाठ बनादी जाती हैं। गाठ की अपेक्षा लकड़ी की पेटी बनाने में खर्चा अधिक आता है पर इसमें हिफाजत ज्यादा होती है और वस्तुओं का रूप भी अधिक अच्छी तरह कायम रहता है। इसलिए अधिक महगी वस्तुओं के लिए यह विधि काम में लाई जाती है। बड़ी मशीनरी में पेटी उसके चारों ओर बनाई जाती है और भार दबाव के ठीक बिन्दुओं पर सावधानी से रोका जाता है। छोटे छोटे टुकड़े बोल्ट और अन्य हिस्से अलग-अलग बक्सों में रखे जाते हैं और बक्सों को बड़ी पेटी के अन्दर मजबूती से जमा दिया जाता है। हार्डवेयर चारों ओर घास आदि लगाकर ढोलों में आसानी से भेजा जाता है। बांधने के काम में आने वाला ऐंठा हुआ तार निकल जाने का भय नहीं होता। कांच और चीनी के बर्तन केरा या ढोल म अच्छी तरह आते हैं।

कुछ वस्तुओं, यथा कपड़े, का पैकिंग करते हुए 'मेकिंग अप' को न भूलना चाहिए। उदाहरण के लिए, भारत में ऊनी छींट के हर टुकड़े की लम्बाई और कटपीसों में मार्गों की संख्या कानूनन छपी होनी चाहिए। मेकिंग-अप का मतलब है तह करने, टिकट चिपकाने, मुहर लगाने, सीधे कागज या कार्ड में लपेटने आदि की

की विधि। मारकीन (लाँग क्लोथ) में छत्तीस तह होती हैं। धोतियों और मलमल में चौड़ाई के अनुसार दो तह या स्ववेमर फोल्ड पर प्रायः बारह इधर, बारह उधर या १८ इधर २१ उधर तहें होती हैं। ड्राम्ड, साटन और इटालियन गत्ते पर तहि यायी जाती हैं और पीले कागज या सफेद टिलोट में लपेटी जाती हैं। कुछ चीजों को तो भेजने के लिए सुसज्जित या 'सेट-अप' किया जाता है और कुछ वस्तुओं को 'नौकडाउन' या अलग टुकड़ों में कर दिया जाता है। यह शब्द मुख्यतः फर्नीचर के सिलसिले में प्रयुक्त होता है। फर्नीचर को इस तरह अलग अलग कर दिया जाता है कि अकुशल आदमी भी माल के गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाने पर मरेन लेकर उसे जोड़ सकता है और जहाज पर भेजने के लिए इसे आयतावार पेटियों में कसकर पैक कर दिया जाता है। इसी प्रकार साइकलों का हिसाब है। उनके हैंडल और पैडल अलग कर लेते हैं और छह छह को इकट्ठा क्रेटों में बंद करते हैं।

शिपिंग या नौवहन—जब कोई निर्यातक आर्डर स्वीकार कर लेता है तब पहला हिस्सा अर्थात कानूनी हस्तान्तरण पूरा हो गया। दूसरी अवस्था है वास्तविक भौतिक हस्तान्तरण, जिसकी पूर्ति नौवहन की सेवाओं का उपयोग करके की जाती है। परन्तु वस्तुओं के नौवहन के लिए पूरे और विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता है। और यदि निर्यातक अपनी वस्तुएँ स्वयं जहाज पर चढ़ाना चाहता है, तो उसे कोई अनुभवी शिपिंग क्लर्क नौकर रख लेना चाहिए, या शिपिंग एजेंट अथवा फारवर्डिंग एजेंट नियुक्त कर लेना चाहिए। प्रायः किसी अच्छे शिपिंग एजेंट की सेवाओं का उपयोग करना लाभदायक होगा, जिसे इस काम का अच्छा अनुभव हो। ज्योंही शिपिंग एजेंट को यह खबर मिलती है कि वस्तुएँ भेजने के लिए पैक की हुई तैयार रक्खी हैं त्योंही वह सबसे अधिक सुविधाजनक जहाज पर स्थान बुक करता है और या तो वस्तुएँ जहाज पर पहुँचा देता है, अथवा निर्यातकर्ता को प्रेषण सम्बन्धी उचित कागजात भेज देता है। जहाँ कहीं वाणिज्य दूतावास की दृष्टि से आवश्यक कागजात की जरूरत होती है, वहाँ शिपिंग एजेंट उन्हें तैयार करके विधिमान्य कराता है। वह आवश्यकता होने पर बिना अतिरिक्त व्यय के सरकारी टटकर दर पर समुद्री और युद्ध बीमा कराता है। अन्त में शिपिंग एजेंट वस्तुओं को कस्टम से बाहर कराता है और वहन पत्र (बिल आफ लेडिंग) या तो जहाज पर प्रेषिती को भेज देता है, अथवा फौरन बीमापत्र, वाणिज्यिक बीजकों आदि के साथ निर्यातक के बैंकर को भेज देता है।

नौवहन में पहला कार्य वह जहाज छाँटना है जिससे वस्तुएँ भेजी जाएंगी। सामान्यतया जहाज कम्पनियाँ अपनी यात्राओं के ऐलान करती हैं, जो जहाजी अखबारों आदि में छपते हैं। इन्हें देखकर फार्वर्डिंग एजेंट या शिपिंग क्लर्क ऐसा जहाज छाँट सकेगा जिससे भेजने पर माल डिलिवरी की स्वीकृत तारीख से पहले पहुँच सके। यदि वस्तुएँ फैलाव में छोटी और ऊँचे मूल्य की हैं, या बहुत शीघ्र

आवश्यकता है, तो लाइनर (डाक और यात्री जहाज जो थोड़ा सा माल भी ले जाता है।) छांटा जायेगा। अन्यथा कोई मालवाही जहाज चुना जायगा, जिसमें भाड़ा कम पड़े। वस्तुएं भेजने से पहले माल भेजने वाला शिपिंग कम्पनी को अपने माल भेजने के इरादे की सूचना देता है। इसपर शिपिंग कम्पनी एक शिपिंग नोट जारी करेगी, जिसमें पेटियों की संख्या, उनकी प्रकृति और अन्तर्वस्तु, चिन्ह, मूल्य, प्रेषिती का नाम और बीमा करने के बारे में निर्देश आदि का पूरा विवरण होता है। शिपिंग नोट भर कर वापस करने के बाद निर्यातक शिपिंग कम्पनी से मेट नोट या भाड़ा पत्र और वहन पत्र (बिल आफ लेडिंग) लेता है। भाड़ा पत्र या भाड़े का क्रेडिट नोट या विकलन पत्र होता है। वहन-पत्र माल भेजने का विस्तृत प्रमाण पत्र होता है, और इसकी प्रायः तीन प्रतिलिपियां बनाई जाती हैं। एक जहाज मालिक रख लेता है, एक माल भेजने वाला रखता है, और तीसरी प्रति तथा सारे के सारे बीजक सीमाशुल्क सबंधी घोषणा, उद्गम का प्रमाण पत्र, तथा माल पहुंचने पर डिलिवरी लेने के लिए आवश्यक अन्य कागजात प्रेषिती को भेज दिए जाते हैं। जिस समय वस्तुएं जहाज पर चढ़ाई जाती हैं उस समय एक रसीद (मेट्स रिसीट) दे दी जाती है, और बाद में उसके बदले पूरा वहन पत्र दे दिया जाता है।

माल भेजने में वहन-पत्र सब से आवश्यक कागज है और इसमें भेजी गई वस्तुओं की सूची और रसीद तथा भाड़े के अनुबन्ध की शर्तों की आवृत्ति और स्वामित्व का प्रमाणपत्र होते हैं। इसपर जहाज का मास्टर या जहाज मालिक की ओर से कोई और बाकायदा प्राधिकृत व्यक्ति हस्ताक्षर करता है। वहनपत्र कई इकट्ठे बनाए जाते हैं और जैसा व्यापार हो उसके अनुसार अलग-अलग संख्या में तैय्यार किये जाते हैं, और आमतौर से तीन होते हैं। कम-से-कम एक स्टाम्प लगा हुआ वहनपत्र प्रेषिती को भेजना आवश्यक है, और एक बिना स्टाम्प लगी हुई प्रतिलिपि मास्टर अभिलेख के लिए रख लेता है। जहाज का मास्टर उसी व्यक्ति को वस्तुओं की डिलिवरी दे देगा जो स्टाम्प लगा हुआ वहन-पत्र पेश करे और इसपर अन्य प्रतिलिपियां व्यर्थ हो जायेंगी। दो प्रकार के वहन-पत्र प्रयोग में आते हैं। पहले प्रकार का "जहाज से भेजने के लिए प्राप्त" वहन पत्र होता है; जिसमें यह कहा होता है कि वस्तुएं भेजने के लिए जहाज पर प्राप्त हुई हैं। दूसरा प्रकार 'जहाज पर लाद दी गई' (शिप्ड) वहन-पत्र होता है, जिसमें स्पष्ट रूप से यह कहा होता है कि वस्तुएं जहाज के ऊपर वास्तव में लाद दी गई हैं। यह प्ररूप अधिक उपयोगी है और ज्यादा काम में लाया जाता है। अगर वस्तुएं जहाज के ऊपर ठीक हालत में प्राप्त होती है तो 'साफ' (क्लीन) वहन-पत्र जारी किया जाता है। वहन-पत्र का एक विशेष महत्व यह है कि यह अल्प-परक्राम्य सलेख (क्वासी-नेगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट) है और माल भेजने वाले के हितों की रक्षा के साथ साथ भुगतान की व्यवस्था करने

के साधन के रूप में उपयोगी है। उदाहरण के लिए, यदि निर्यातकर्त्ता ने 'लेख्यों पर भुगतान' (पेमेंट्स अगेन्स्ट डाकुमेंट्स) की व्यवस्था की है तो वह वहन-पत्र प्रेषिती को भेजने के बजाय आवश्यक हिदायतें देकर गतव्य बंदरगाह के किसी बैंक को भेजता है। प्रेषिती बैंक को वस्तुओं की कीमत चुका कर वहन-पत्र ले सकता है।

अगर निर्यातकर्त्ता प्रेषित माल के आधार पर उसका भुगतान प्राप्त होने से पहले धन लेना चाहता है तो वह जिन लेख्यों को बंधक रखता है उनमें से एक महत्वपूर्ण लेख्य वहन-पत्र है। स्वामित्व प्रदर्शित करने वाला लेख्य होने के कारण वहन-पत्र उस ड्राफ्ट के साथ प्रस्तुत प्रतिभूति होता है जिसे वह डिस्काउंट करना चाहता है। वहन पत्र का रूप परक्राम्य रूप इस तथ्य में है कि इसका और इसमें निर्दिष्ट वस्तुओं का स्वामित्व हस्तांतरकर्त्ता द्वारा हस्तांतरिती के नाम इसे पृष्ठांकित (Endorse) करके और सौंप कर हस्तांतरित किया जा सकता है, पर हस्तांतरिती (Transferee) का स्वामित्व वहीं तक होता है जहाँ तक हस्तांतरक (Transferor) का था। क्योंकि वहनपत्र परक्राम्य लेख्य नहीं है, इसलिए इसका हस्तांतरक हस्तांतरिती को उससे अधिक स्वामित्व नहीं दे सकता जितना उसके खुद के पास है। जब वहन पत्र ग्राहक के नाम के बजाए 'टु आर्डर' (आदेशानुसार) बनाया जाता है, तब प्रेषक को इसे पृष्ठांकित करना चाहिए, अन्यथा जब प्रेषिती माल की डिलिवरी लेना चाहेगा, तब यह उसके लिए निरुपयोगी होगा।

वस्तुएं जहाजी घाट तक ले जाने के लिए कोई वाहन कर लेना चाहिए, और उसके लिए एक कंसाइनमेंट नोट तैयार कर देना चाहिए। यह वस्तुएं पारवहन करने की हिदायत है, और इसमें उसकी विस्तृत सूची, चिन्ह, प्रेषिती का नाम और वाहन व्यय चुकाने के जिम्मेदार व्यक्तियों का उल्लेख होता है। जहाजी घाट पर पहुँचने पर वस्तुएं तौली जाती हैं और एक भारपत्र (वेट-नोट) वाहक को दे दिया जाता है। यह पत्र वाहन व्यय का आधार होता है। बम्बई के व्यापार में वाहक की रसीद प्राप्त करना आवश्यक है, जो डिलिवरी का वार्फिंगर द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र है और अंत में वहन पत्र तथा अन्य लेख्यों के साथ कानूनी प्रमाण के रूप में आगे भेजा जाता है। अग्रेषण (Forwarding) प्रभारों में इस तरह के प्रासंगिक खर्च शामिल होते हैं जैसे जहाजी घाट के देय, श्रम का खर्चा, मास्टर पोर्टरेज, विशेष श्रमिक और सीमा शुल्क सबन्धी प्रविष्टियां। इन्हें साधारणतया एफ० ओ० बी० कहा जाता है। जब वस्तुएं जहाजी घाट भेजनी हों तब यह निश्चय कर लेना आवश्यक है कि क्या जहाज के लिए कोई तटागमनतिथि (एलौंगसाइड डेट) घोषित की जा चुकी है। अन्यथा वस्तुएं पहले पहुँच जायेंगी, और जहाज माल न ले सकेगा तथा डेमरिज पड़ने लगेगा।

अधिकतर देशों में सीमाशुल्क अधिकारी उद्गम (origin) का प्रमाणपत्र और वाणिज्यदूतीय बीजक (Consular in voice) मागते है, अर्थात् जहाज द्वारा भेजी गई वस्तुओ का वह बीजक जिसे उस देश के वाणिज्य दूत ने प्रमाणित किया हो, जिसे वस्तुएँ भेजी जा रही है। वाणिज्यदूत वे अफसर होते हैं, जिन्हे कोई देश अपने व्यापारिक हितो की देख-भाल के लिए किसी विदेश में नियुक्त करता है। वाणिज्यदूतीय बीजको का प्रयोजन यह है कि प्रेषित वस्तु का मूल्य निश्चित हो जाय। वाणिज्यदूतीय बीजक अर्थात् शुल्क लेने के प्रयोजन के लिए और उद्गम के प्रमाणपत्र अधिमान्य छूट (प्रेफरेंशल एलाउंस) देने में काम आते आते हैं। कामनवेल्थ या राष्ट्रमण्डल के अधिकाश के लिए मूल्य और उद्गम के सम्मिलित प्रमाणपत्र आवश्यक होते हैं। इन लेख्यो में दी हुई सब कीमतें निर्माण की असली लागत होनी चाहिए, एफ० ओ० बी० या सी० आई० एफ० नही।

वाणिज्यदूतीय लेख्य और कीमत तथा उद्गम के प्रमाणपत्र तो विदेश के सीमाशुल्क अधिकारियो की सतुष्टि के लिए अपेक्षित होते हैं, परन्तु स्वदेशी सीमा शुल्क अधिकारियो के उपयोग के लिए प्रत्येक कन्साइनमेन्ट का सीमा शुल्क विवरण भरना पडता है। जहाज पर वस्तुएँ लेने से पहले जहाज के मास्टर को सीमाशुल्क कार्यालय में जहाज की अतिम यात्रा का 'इनवार्ड-क्लीरिंग नोट' और जहाज के लिए एक 'एंट्री आउटवार्ड्स' जमा करना पडता है। निर्यात सबधी सब लेख्य अनुमोदित प्रपत्रो के अनुसार ही होने चाहिएँ। ऐसी वस्तुओं के निर्यात पर जिनके लिए किसी वचपत्र की आवश्यकता नही है, जहाज के अध्यक्ष या स्वामी को जहाज की अतिम क्लीयरेंस के बाद छः दिन के भीतर जहाज पर रखी गई सब वस्तुओ का एक 'मैनीफेस्ट' दे देना चाहिए, जिसमें सब पेटियो के चिन्ह, सख्याएं और वर्णन तथा उस-उस वहनपत्र के अनुसार प्रेषिती का नाम उल्लिखित हो, और यह घोषणा करनी चाहिए कि मैनीफेस्ट में जहाज के सारे माल का सही विवरण है।

भाडा (Freight)—भाडा जहाज-मालिक की इच्छानुसार तोल या आकार पर लिया जाता है। सामान्यतया वह चालीस घनफुट के मानक के आधार पर टन की माप पसन्द करता है, जिसमें दो घनफुट, भाडे के हिसाब के लिए, एक हडरवेट माने जाते हैं और इसमें प्राईमेज जोड दिया जाता है। नियमित मार्गों पर भाडे की दरें निश्चित करने के लिए अधिकतर जहाजी कम्पनियाँ वस्तुओ को कई मोटे वर्गो में बाँट देती है और इनके अलावा एक विस्तृत विशेष सूची होती है। कुछ कम्पनियाँ विस्तृत सूचियाँ निकालती हैं और उन सूचियो में न दी गई वस्तुओ की विशेष दरें बताती हैं। भाडे की दरो में एक प्राईमेज शब्द भी होता है। यह वह प्रभार है जो जहाज मालिक माल लादते और उतारते समय जहाज के माल की उठा-धरी करने वाले औजारो के उपयोग के बदले में लेता है। जब वहन-पत्रो में प्राईमेज और एवरिज एकस्टम्ड पदावली होती है, तब इसका अर्थ

यह होता है कि वस्तुए भेजने वाला प्रत्येक प्रेषक कुल प्राईमेज तथा बाफ पाइलटेज आदि अन्य देयों का हिस्सा अनुपात से चुकाएगा। कमीशन या रिबेट, जो प्राय विलम्बित कर दिया जाता है, और भाड़े के धन का कुछ प्रतिशत (प्राय १०%) होता है, जहाज मालिक प्रेषक को लौटा देता है बशर्ते कि कुछ अवधि (प्राय छह मास) के बाद प्रेषक ने किसी प्रतिस्पर्धी कम्पनी या जहाज से वस्तुए न भेजी हो। आजकल शिपिंग कान्फ्रेंस पद्धति अधिक प्रचलित है जिसमें सदस्य शिपिंग कम्पनियां सब प्रेषकों से एक सा भाड़ा लेती हैं। जिन स्थानों को कोई नियमित जहाज सर्विस नहीं है, और अलग जहाज ले जाना पड़ता है, उनमें भाड़ा दरें बाजार के अनुसार होती हैं। इसलिए दरें मांग और संभरण के अनुसार घटती या बढ़ती रहती है। जहाज के अपनी मंजिल पर पहुंचने तक भाड़ा देय हो जाता है। निर्यातकर्त्ता इसके लिए दायी होता है, पर एफ० ओ० बी० बिक्री की सूरत में वह प्रेषिती से भाड़ा वसूल कर सकता है।

कभी कभी प्रेषक को अपनी वस्तुए भेजने के लिए सारे जहाज या उसके किसी निश्चित हिस्से की आवश्यकता हो सकती है। तब प्रेषक एक जहाज चार्टर कर लेगा और चार्टरकर्त्ता कहलाएगा। इसमें एक चार्टर पार्टी अर्थात् किसी विशेष यात्रा के लिए या चार्टर पार्टी अथवा भाड़े पर लेने का समझौता किया जाता है, जो किसी निश्चित समय के लिए किया गया चार्टर पार्टी होता है। पड़ता है यदि डिमाइज चार्टर पार्टी ने तैयार की गई हो तो जहाज पर कब्जा और नियन्त्रण जहाज मालिक का ही रहता है, और चार्टर कर्त्ता को किसी विशेष जहाज से अपनी वस्तुए लेजाने मात्र का अधिकार होता है। चार्टर पार्टी के मुख्य उपबन्ध ये हैं कि जहाज यात्रा के योग्य तथा ठीक तरह सुसज्जित, निश्चित तिथि पर, तय किए हुए बन्दरगाह पर विद्यमान, और बिना अनुचित देरी के उस यात्रा पर रवाना होने वाला होना चाहिए। चार्टरकर्त्ता अपना माल फौरन लादने के लिए तैयार रखता है, और जहाज मालिक के सब प्रभार चुकाता है। प्राय चार्टरकर्त्ता को पूर्ण माल भरना पड़ता है और उस अवस्था म अगर चार्टर कर्त्ता के माल स सारी जगह न भरे तो उसे और माल देना चाहिए। जिसे डोकन स्टोएज कहते है, अथवा माल की कमी की क्षतिपूर्ति करनी होगी, जिसे डेडफ्रेट कहते हैं। चार्टर की अवस्था में भी चार्टरपार्टी के अलावा एक वहन पत्र जारी किया जाता है, पर इस अवस्था में वहन-पत्र सिर्फ वस्तुओ की रसीद होता है, और यह स्वामित्व का लेख्य नहीं, और न जहाज भाड़े पर लेने (एक्रीमेंट) का अनुबन्ध है।

माल चार्टर में जा रहा हो, या वहन पत्र में, पर प्रेषक को अपनी वस्तुए तत्परतापूर्वक भेजनी चाहिए और गन्तव्य बन्दरगाह पर बिना विलम्ब के उनकी डिलिवरी ले लेनी चाहिए। ऐसा न होने पर उसे विलम्ब शुल्क (डिमरेज) भरना पड़ेगा। प्राय माल चढ़ाने और उतारने की अवधियां निश्चित कर ली जाती है,

जो 'ले डेज' (lay days) यानी माल उतारने-चढ़ाने की अवधि कहलाती हैं, जो जहाज के पहुँचने ही शुरू हो जाती हैं।

बीमा—इतने सारे आधुनिक आविष्कारों के बावजूद वस्तुओं को अब भी समुद्री खतरे रहते हैं और उनकी हानि की जोखिम का बीमा कराना पड़ता है। बीमा निर्यातकर्ता उस ग्राहक के नाम से और उसकी ओर से कराएगा जिसे वस्तुएं भेजी गई। समुद्री बीमे के प्रश्न पर पहले अन्यत्र विचार हो चुका है।

भुगतान—बिक्री के समय निर्यातकर्ता यह सन्तुष्टि चाहता है कि वस्तुओं का भुगतान हो जाय और आयातकर्ता यह निश्चित करना चाहता है कि भुगतान करने पर वस्तुएं या वस्तुओं पर स्वत्व उसे मिल जायगा। आयात का भुगतान प्राप्त करने की कई विधियाँ हैं। प्रायः ड्राफ्ट की विधि पसन्द की जाती है, पर भुगतान के अन्य रूप, जैसे विप्रेषण (Remittance) द्वारा भुगतान, लेख्यों पर नकद भुगतान, तार द्वारा भुगतान आदि भी प्रायः काम आते हैं।

अगर बिक्री के अनुबन्ध में ड्राफ्ट शर्तें उल्लिखित हों तो निर्यातकर्ता विदेशी ग्राहक के नाम विनिमय-विपत्र तैयार करता है जिसमें धन की समय पूर्ति, प्रस्तुति (साइट) और वापसी में लगने वाले समय का ब्याज भी होता है। विदेशी ग्राहक इसे स्वीकार कर लेता है बशर्ते कि निर्यातकर्ता की साख अच्छी हो। अन्यथा स्वामित्व के लेख्य मिलने से पहले उसका बैंकर उस विपत्र को स्वीकार कर लेता है। आयातकर्ता को स्वामित्व के लेख्य या तो सम्बद्ध विनिमय-विपत्र की स्वीकृति (D/A) पर या भुगतान (D/P) पर दिए जाते हैं। निर्यातकर्ता अपने बैंक से विपत्र को डिस्काउंट करवा कर अविलम्ब भुगतान पा सकता है। जो प्रेषक विपत्र को डिस्काउन्ट कराना चाहता है, उसे जमानत अवश्य देनी होगी और इसके लिए वह शिपिंग के लेख्यों को बन्धक रख देता है (हाईपोथीकेशन)। विनिमय विपत्र के अतिरिक्त वह बैंक को वहन-पत्रों, बीमा पत्र और बीजक का पूरा सेट बन्धक की एक चिट्ठी के साथ देता है। चिट्ठी में सिर्फ विनिमय विपत्र की शर्तें लिखी होती हैं। शर्तें और अन्य लेख्यों का वर्णन तथा यह प्राधिकरण (अथोराईजेशन) लिखा होता है कि यदि विनिमय विपत्र अस्वीकृत हो जाय तो वस्तुएं प्रेषक के लाभ के लिए यापित (डिस्पोज) की जायेंगी और डिस्काउन्ट की गई राशि घटा दी जायगी, जिसके बदले में अपेक्षित राशि पेशगी देने की प्रार्थना की जाती है। तब बैंकर प्रेषक को वह राशि देता है और लेख्य गन्तव्य बन्दरगाह पर अपने बैंक या एजेन्ट को भेज देता है जो प्रेषिती से विपत्र का धन प्राप्त हो जाने पर लेख्य उसे सौंप देता है। सौदा पूरा हो जाने पर बैंकर प्रेषक को सूचित करता है और साथ ही विपत्र की राशि का शेष अंश जो उसे नहीं दिया गया था, अब उसे दे देता है।

कुछ समय से भुगतान की विधि के रूप में प्रत्यय पत्र या लेटर आफ क्रेडिट बहुत प्रचलित हो गया है। आयातकर्ता को अपने बैंकर के या स्वयं आयातकर्ता

के नाम कुछ धन राशि रख देने के लिए कहता है जो वस्तुओ के प्रेषण को सिद्ध करने वाले लेख्यो के अभ्यर्पण पर ही वास्तव मे निकाली जाएगी। यदि प्रत्यय पत्र किसी भी समय वापिस लिया जा सकता है तो इसे प्रतिसहरणीय या रिवोकेबल कहते है और यदि वह जिस नाम जमा किया गया है उसकी पूर्व-स्वीकृति के बिना वापस नही लिया जा सकता तो उसे अप्रतिसहरणीय कहा जाता है।

निर्यातकर्ता को प्रेषण सम्बन्धी लेख्य ठीक-ठीक प्रत्यय की शर्तों के अनुसार ही तैयार करने चाहिए। प्रत्यय-पत्र का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

दि ब्रिटिश बैंक लिमिटेड
लन्दन, ई० सी० २
१७ जून, १९५६

उत्तर देते हुए प्रत्यय सख्या और प्रथमाक्षर (इनीशियल) लिखने की कृपा कीजिए।

ए० बी० कम्पनी,
लन्दन,

प्रिय महोदय,

प्रतिसहरणीय प्रत्यय
सख्या ४७७४२/६७७८४

हम आपको यह सूचित करना चाहते है कि हमारे यहाँ आपके पक्ष में ३७० पौण्ड १० शिलिंग ६ पेंस (तीन सौ सत्तर पौण्ड दस शिलिंग छः पेंस) की राशि का एक प्रतिसहरणीय प्रत्यय एक्स. वाई. एड कम्पनी, बम्बई, की ओर से खोला गया है। यह प्रत्यय हमारे नाम लिखे गये ड्राफ्ट (विकर्ष) द्वारा......प्रस्तुत करते ही......प्राप्त किया जा सकता है —विकर्ष पर यह लिखा होना चाहिए कि वह प्रत्यय सख्या ४७७४२/६७७८४ के सम्बन्ध में है और उसके साथ निम्नलिखित लेख्य उसकी पुष्टि के लिए होने चाहिये।

वाणिज्यिक बीजक तीन प्रतियाँ
समुद्री बीमापत्र या प्रत्यय के चालू होने का प्रमाणपत्र।
वाणिज्यदूतीय बीजक।

एक्स० वाई० एड कम्पनी बम्बई के २०० फाईबर रस्स के आदेश के वहन पत्रो की पूरी सख्या।

वहन पत्रो से यह सिद्ध होना चाहिए कि वस्तुए वास्तव में जहाज पर लादी गई न कि जहाज पर लादने के लिए प्राप्त हुई है, और उस पर हाथ से हस्ताक्षर होने चाहिये।

यदि प्रत्यय पहले ही रद्द न कर दिया जाय तो विकर्ष हमारे नाम से बनाने चाहिए और २४ दिसम्बर१९५६ को या उससे पहले पेश करने चाहिए।

कृपया ध्यान रखिये कि यह सूचना प्रत्यय की पुष्टि नहीं है। प्रत्यय किसी भी समय बदला या वापस लिया जा सकता है।

कृपया सलग्न स्वीकृतिपत्र पर हस्ताक्षर करके वह लौटा दीजिए।

आपका विश्वासपात्र

जी० ब्राउन

प्रबन्धक

यहाँ यह उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा कि भारत में विदेशी विनिमय का कारबार एक्सचेंज बैंकों द्वारा किया जाता है जो या तो विदेशी बैंकों की भारत में स्थापित शाखाएं हैं, अथवा विदेशी मुद्राओं का कारबार करने के लिए विशेषरूप से स्थापित किए गये विदेशी बैंक हैं, पर कुछ समय से भारतीय बैंक भी वैदेशिक मुद्रा विनिमय का कारबार करने लगे हैं।

दूसरी विधि है "विप्रेषण द्वारा भुगतान" जो चीन देश के व्यापार में तो नियम ही है और कुछ सीमा तक सब बाजारों में चलता है। इस विधि में प्रेषण कर्त्ता ग्राहक की बहुत बड़ी मेहरबानी पर होता है—ग्राहक ऐसे बहाने बना कर कि विनिमय दर प्रतिकूल है, या आजकल हाथ तंग है, भुगतान में विलम्ब कर सकता है। "लेख्य लेकर नकद देना" भुगतान का बहुत सन्तोषजनक तरीका है, क्योंकि इसमें प्रत्यय की कोई आवश्यकता नहीं होती। इस पद्धति में वहन-पत्र तथा अन्य लेख्य गतव्य बंदरगाह के किसी बैंक में भेज दिये जाते हैं और उसे यह हिदायत दे दी जाती है कि माल पर देय राशि लेकर वे लेख्य और वहन-पत्र वह प्रेषिती को दे दे। नकद भुगतान की एक और बहुत प्रचलित विधि है तार द्वारा हस्तांतरण। आयात-कर्त्ता स्थानीय बैंक में भुगतान करता है जो यह तथ्य निर्यातकर्त्ता देश में अपने बैंक के मुख्य कार्यालय को तार से सूचित करता है। बैंक थोड़ा सा कमीशन और तार की लागत लेता है।

वहन-पत्र तथा अन्य लेख्य बैंक से प्राप्त करके आयातकर्त्ता माल छुड़ाने और उसे अपने पास मंगाने के लिए किसी क्लीयरिंग एजेंट के नाम पृष्ठांकित कर देगा। क्लीयरिंग एजेंट "प्रविष्टि-पत्र" (बिल आफ एन्ट्री) की तीन प्रतियाँ, जिनमें माल का पूरा और सही विवरण होगा, सीमाशुल्क अधिकारियों के पास जमा करेगा और वे आयात की वस्तुओं पर सीमा शुल्क वसूल करेंगे। दो प्रतियाँ क्लीयरिंग एजेंट को लौटा दी जाती हैं जो जहाज से वस्तुएं उतरवाता है, और उनका पूरी तरह निरीक्षण करता है। यदि वस्तुओं में क्षति या त्रुटि होती है तो उसकी सूचना शिपिंग कम्पनी के एजेंट को तुरन्त दी जाती है। शिपिंग कम्पनी क्षति की जाँच का प्रबन्ध करती है जिससे बीमा कम्पनी से मुआवजा माँगा जा सके। अगर प्रेषण सम्बन्धी लेख्य उपलब्ध न हो और इसलिए क्लीयरिंग एजेंट प्रविष्टि पत्र जमा न कर

सकें तो एक और लेख्य, जिसे बिल आफ साइट कहते हैं, पेश किया जाता है। वस्तुओं पर अस्थायी सीमा शुल्क लिया जाता है जो अन्त में समजित हो जाता है और वस्तुएँ उतारने दी जाती हैं। वस्तुएँ छुड़ाने के बाद क्लीयरिंग एजंट माल आयात-कर्त्ता को भेज देगा और रेल्वे रसीद तथा सीमा शुल्क और बन्दरगाह अधिकारियों द्वारा दी गई रसीदें भी अपने आयात-कर्त्ता को भेज देगा। यदि शुल्क योग्य वस्तुओं का आयात कर्त्ता शुल्क अधिक होने और सारी राशि फौरन चुकाने की अपनी अनिच्छा के कारण अथवा इस कारण कि वह वस्तुएँ तुरन्त बेच लेने की आशा रखता है, जिससे क्रेता शुल्क समेत कीमत चुका दे, उनकी तत्काल डिलिवरी नहीं लेना चाहता, तो वह वस्तुओं को किसी बधपत्रित वेयर हाउस (बोंडेड वेयर हाउस) में रख देता। वह वेयर हाउस ऐसी फर्म का होता है जिसने सरकार को यह बंधपत्र दे रक्खा है कि शुल्क योग्य वस्तुओं का सब व्यापार कानूनी रीति से किया जावेगा कि वस्तुएं आवश्यक शुल्क पहले बिना अदा किये वेयरहाउस से नहीं निकालने दी जायेंगी। जो आयात कर्त्ता अपनी वस्तुएं बंधपत्रित वेयर हाउस में रखता है उसे थोड़ा सा भार चुकाना पड़ता है। वह उन्हें बेचने के लिए दुबारा पैक कर सकता है और सीमा शुल्क सिर्फ बेचे हुए माल पर लगता है।

कभी कभी वस्तुएं दूसरे देशों को पुनः निर्यात करने के लिये आयात की की जाती हैं पर इसमें ड्रा बैंक हो सकता है। ड्रा बैंक उस छूट या रिबेट को कहते हैं जो आयात कर्त्ता को उन निर्मित (मैनुफैक्चर्ड) वस्तुओं के निर्यात पर मिलता है, जिनके निर्माण में प्रयुक्त वस्तुओं पर शुल्क चुकाया जा चुका है। ड्रा बैंक पद्धति इस सिद्धांत पर आधारित है कि सीमा शुल्क सिर्फ उन वस्तुओं पर पड़ना चाहिए जो आयात कर्त्ता के काम आयें। इसलिए जहाँ कच्चा सामान या अर्ध निर्मित वस्तुएँ देश में आयात की जाती हैं और उनसे कुछ वस्तु बनाकर दूसरे देश को निर्यात की जाती है तब जो कच्चा सामान प्रयुक्त हुआ है उस पर चुकाये गए आयात शुल्क की मात्रा पर रिबेट दिया जाता है।

भारत से आयात करने में फारवर्डिंग एजेंटों की सेवाओं का उपयोग होता है। अधिकतर वस्तुओं पर निर्यात का प्रतिबन्ध नहीं होता पर सरकार के पास प्रतिबंध लगाने की शक्तियां होती हैं। उदाहरण के लिए, सूती कपड़े का निर्यात कुछ मात्रा से अधिक नहीं किया जाता था और मात्रा समय समय पर नियत की जाती थी परन्तु आज देश को अधिकतम निर्यात की आवश्यकता है। कुछ वस्तुओं पर निर्यात शुल्क लगता है और इसलिए सीमाशुल्क सम्बन्धी वैसी ही घोषणा जैसी आयात के लिए की गई थी, की जाती है और वस्तुओं का समुद्री बीमा कराना पड़ता है।

यहाँ यह कह देना भी उचित होगा कि विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुओं की कुछ शिकायतें की गई हैं। कुछ बेईमान निर्यात-कर्त्ताओं ने उन नमूनों से भिन्न वस्तुएँ

भेज दी जिनके आधार पर आर्डर मिले थे। इससे भारतीय व्यापार की बदनामी हुई परन्तु अब अनेक बन्दरगाहों पर यह देखने के लिए कि नकली माल न भेजा जाय निरीक्षण की व्यवस्था है। हमारा पैकिंग भी सन्तोषजनक नहीं और इससे वस्तुओं को क्षति पहुँचती है। जो लोग अपने निर्यात व्यापार को बढ़ाना और अच्छा करना चाहते हों उनको अपने व्यापार से विदेशी क्रेताओं को सब तरह से सन्तुष्ट करना चाहिए।

एक समय यह प्रस्थापना भी थी कि विदेशी व्यापार राज्य द्वारा हो। इस तरह के व्यापार की सम्भावना की जाँच करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई थी। समिति ने उन वस्तुओं का व्यापार राज्य द्वारा किए जाने की सिफारिश की थी जो निम्न शर्तें पूरी करती हों—

निर्यात के लिए

(१) प्राप्त करने में न्यूनतम कठिनाई हो।

(२) सम्बद्ध वस्तु पर एकाधिकार या अर्ध-एकाधिकार हो।

(३) विदेश की माँग का पूर्वानुमान करने और बाजार की आवश्यकताओं के अनुसार सचरण निश्चित रूप से करने का कार्य अनेक क्वालिटियाँ होने के कारण या उपभोक्ताओं की पसन्दगी के कारण जटिल न होना चाहिए।

आयात के लिए यह शर्त रखी गई कि माँग का तखमीना लगाना आसान होना चाहिए।

समिति ने राज्य द्वारा व्यापार के कार्य को सम्भालने के लिए एक निगम (कारपोरेशन) स्थापित करने की सिफारिश की। सरकार ने यह प्रस्थापना स्वीकार नहीं की, यद्यपि उसने अनाज, खाद, इस्पात और चीनी का राजकीय आधार पर आयात किया है। पाकिस्तान को कोयले का निर्यात भी राजकीय आधार पर किया गया।

कार्यालय सगठन—वस्तुओं का निर्यात एक जटिल और विशेषीकृत व्यापार है और इसलिए जो लोग मारकेटिंग, शिपिंग, वित्तीय प्रकार्य आदि विविध कार्यों को पूरी तरह समझते हों, उन्हें ही नियुक्त करना चाहिए। खजांची को साधारण चेक के अलावा अन्य वित्तीय सलेखों का खूब अच्छी तरह पता होना चाहिए। बैंकर के ड्राफ्ट, विनिमय विपत्र, बिल ब्रोकिंग, डिस्काउंटिंग और प्रोटेस्टिंग, उपाधान पत्र (लैटर आफ हाईपोथीकेशन), प्रत्यय पत्र, गारन्टी अकाउंट, विप्रेषण, विनिमय दर आदि वस्तुओं को वह खूब अच्छी तरह समझता हो और निर्यात वित्त के जटिल तन्त्र को वह निश्चय और सरलता के साथ सम्भाल सके।

अगला कार्य है साधारण बहीखाता लेखन, बीजक बनाना और शिपिंग बीमें तथा फार्वर्डिंग और फार्वर्डिंग लेख्य तैयार करना, और यह कार्य विशेषज्ञों को सौंपना चाहिए। उदाहरण के लिए, बीजक क्लर्क बहुत परिशुद्ध और शिपिंग क्रिया का बहुत अधिक ज्ञान रखने वाला होना चाहिए। सामान्य वाणिज्यिक शिपिंग बीजक तैयार करने के अलावा उसे *वाणिज्य-दूतीय बीजक, सीमा शुल्क संबन्धी घोषणाएं* सही रूप में तैयार करना और उन्हें उपयुक्त प्राधिकारी से प्रमाणित कराना पड़ सकता है। उसे "प्रभारों" (चार्जेज) वाले व्यापक अर्थ वाले पद पर विशेष ध्यान देना चाहिए, जिसमें बिलों का डिस्काउन्ट करने तथा अन्य सेवाओं के बैंक कमीशन, दलाली, विपत्रों पर लगी टिकट, डाक व्यय, तार, खरीदने का कमीशन, आदि अनेक चीजें शामिल होती हैं।

लेखाध्यक्ष या मुनीम को निम्नलिखित मुख्य पुस्तकों की उचित देखभाल करनी होगी लेजर या प्रवजी, जिसमें दोहरी प्रविष्टि के लिए रेखाएं खिंची हों, क्रय पुस्तक जिसमें खरीदी हुई वस्तुओं के प्राप्त बीजकों की राशियां या किए गए खर्चों के बीजकों की राशियां दिखाई गई हों। प्रविष्टियां शिपिंग फर्म के लेजर खाते के आकलन पार्श्व में खतियायी जायेंगी। दैनिक बिक्री पुस्तक (सेल्स जर्नल) जो बेची गई सब वस्तुओं का अभिलेख है और इसमें सी० आई० एफ० कीमतें बीमा आदि का हिसाब लगाने में तैयार निर्देश (ready reference) के लिए सब बीजक,जो बाहर भेजे जाते हैं, उतार लिए जाते हैं और इस किताब में, जिस ग्राहक को माल भेजा गया है, उसके लेखे के विकलन पार्श्व में चढ़ाए जाते हैं। रोकड़ बही (कैशबुक) जिसमें प्राप्त किए गए और चुकाए गए सब धन दिखाए जाते हैं, प्राप्य-देयक बही (बिल्स रिसीवेबल बुक) जिसमें उन सब बिलों का विवरण होता है जिनका धन प्राप्त होना है, शोध्य बिल बही (बिल्स पेयेबल बुक) जिसमें उन सब बिलों का विवरण होता है जिनका धन चुकाना है, बहिर्दिश प्रेषण बही (कन्साईमेन्ट्स आउटवर्ड बुक) जिसमें सब प्रेषित वस्तुओं का विवरण होता है।

व्यापार सम्बंधी पत्रव्यवहार किसी योग्य व्यक्ति के हाथ में होना चाहिए जो न केवल इंग्लिश भाषा में अभ्यस्त हो, बल्कि 'विचार बेचने' और ग्राहकों को अपना बनाने में निपुण हो। टाईपिस्ट परिशुद्ध होने के साथ साथ सारणीकरण और अन्य विशेष काम में भी कुशल होना चाहिए। कार्यालय के संगठन से संबंधित अन्य सब मामलों में पाठक को अध्याय १२ देखना चाहिए।

अध्याय ३२

बेचने की कला (Salesmanship)

सफल विक्रय कार्य का महत्व—आज का नारा है अधिकाधिक उत्पादन, परन्तु यदि माँग न हो तो स्मरण का कुछ मूल्य नहीं जो उत्पादन लाभ उठाकर नहीं बेचा जाता वह आस्ति नहीं, बल्कि दायित्व है। वस्तुएं बना कर बेच न सकने वाला दिवालिया हो जाता है। व्यवसाय में लाभ बिक्री से ही होता है; बाकी सब खर्च ही खर्च है। अधिकाधिक बढ़ते हुए उत्पादन के लिये माँग पैदा करने की आवश्यकता बड़ी महत्वपूर्ण है और माँग लगातार न बनी रहे तो उत्पादन गिर जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यापार चक्र पर बिक्री की सफलता या विफलता के अतिरिक्त अन्य बलों का भी प्रभाव होता है। पर माँग पैदा करना एक महत्वपूर्ण अंग है। इस बात का कोई खास महत्व नहीं कि कच्चे सामान का उत्पादक कितनी अच्छी तरह काम करता है, या निर्माता कितनी अच्छी तरह अपनी वस्तुएं बनाता है, या कितनी मितव्ययिता से दुकानदार उन्हें खरीद सकता है। यदि आप वह वस्तु सफलता के साथ मितव्ययिता के साथ और लाभ उठाकर उपभोक्ता को नहीं थमा सकते तो पहले के सब काम बेकार हो जाते हैं। हमें तथ्यों का सामना करना होगा और यह मानना होगा कि "अच्छी बिक्री ही अच्छे कारबार की कुंजी है। यह बड़े महत्व की बात है। क्योंकि अब तक हमारे देश में ठीक ढंग की बिक्री या विक्रय कला दिखायी नहीं देती। जो चीज भी बनायी गयी, वही बेच ली गयी, क्योंकि बाजार बेचने वाले के लिये अनुकूल था। तथ्य तो यह है कि आज वह पीढ़ी कारबार कर रही है जिसे कभी यह नहीं सोचना पड़ा कि उपभोक्ता को खरीदने की प्रेरणा करने के तरीके अपनाये जाएँ। आज जबकि बाजार विक्रेता के हाथ में नहीं रहा है, हमारे व्यवसायियों को अपनी बिक्री में सुधार करना चाहिए और सरकार की औद्योगिक नीति की शिकायत करते रहने की बजाए दूसरे लोगों से कुछ सीखते रहने की कोशिश करनी चाहिए।

आज हम अपने औद्योगिक उत्पादन को बड़ी तेजी से बढ़ा रहे हैं और हमें न केवल स्वदेश में बल्कि विदेशों में भी उसके लिए बाजार ढूँढना होगा। विदेशों में हमें उन लोगों से मुकाबला करना है जो विक्रय कला में बड़े उन्नत हैं। उदाहरण के लिये, हम इस क्षेत्र में युनाइटेड स्टेट्स से बहुत कुछ सीख सकते हैं क्योंकि उसने विक्रय को एक परिष्कृत कला या ललित कला बना दिया है, उनके तरीके दूसरे हैं। 'अन्धी बिक्री' जो हमारे यहाँ आज भी चलती है, वहाँ से कभी की विदा हो चुकी है

वे सृजनात्मक विक्रय कला, प्रवण्टना से बिक्री बढ़ाने और पर्याप्त विज्ञापन द्वारा बिक्री प्रतिरोध को विजय करते हैं। उनके तरीके अपने देश से भिन्न अवस्थाओं वाले देश में भी कितने आश्चर्यजनक रूप से सफल रहते हैं, यह बात कोका कोला की और कुछ ही दिन पहले पेप्सीकोला को हमारे देश के बाजार में लाने से पता चलता है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि इन कम्पनियों को भारतीय उपभोक्ता के लिये बिल्कुल सर्वथा नयी वस्तुएं यहाँ बेचने का साहस कैसे हुआ और उन्होंने किस किस तरह कोका कोला को ठण्डा रखने की सुविधा में सुधार करके, जो इस पदार्थ की खुदरा बिक्री के लिए इतनी आवश्यक बात है, किस तरह सफलतापूर्वक वितरण की समस्या हल कर डाली, उनका वितरण कौशल शायद सिस्ल में अधिक उल्लेखनीय रहा है, जहाँ सचार साधनों की इतनी कमी है, खुदरा दुकानें अच्छी नहीं हैं और ठण्डा रखने की सुविधाओं का अभाव है हमारे दोनों देशों का आकार एक सा है और हम उनके बिक्री के तरीकों से बहुत कुछ सीख सकते हैं। हमारी बिक्री की शक्ति बढ़नी चाहिए और उसे बाजार सवेंक्षण तथा विज्ञापन की सहायता मिलनी चाहिए और इस तरह हमें बिक्री के मैदान में उतरना चाहिए आज हमारे देश में बिक्री की ओर ध्यान रखने वाला प्रबन्ध-कर्त्ताओं की आवश्यकता है और विक्रेता कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है, जो बिक्री के सम्बन्ध में दूसरों द्वारा दी हुई शिक्षा से लाभ उठाने को तैयार हों।

बिक्री कार्य और विक्रय कला का अर्थ—बिक्री कार्य किसे कहते हैं ? विक्रय कला क्या चीज है ? क्या ये कोई नयी चीज हैं ? दूसरे सवाल को पहले ले तो यह कहा जा सकता है कि बिक्री या विक्रय कला नयी कला नहीं है। यह सभ्यता के सारे समय मौजूद रही है। यह कहा जा सकता है कि यह उतनी ही पुरानी है जितना स्वयं मनुष्य। जब मनुष्य ने पहले-पहल विचारों का विनिमय शुरू किया, तब उसने बेचना भी शुरू किया। बिक्री का प्रयोग किसी आदमी से कुछ कराने के साधन के रूप में किया गया है यह विचारों वस्तुओं योजनाओं या सेवाओं का विनिमय करने के रूप में दिखायी दी है। अपनी मजदूरी बेचने वाले मजदूर से लेकर अपने धन का उपयोग बेचने वाले पूँजीपति तक प्राय हर आदमी कम या ज्यादा मात्रा में बिक्री कला इस्तेमाल करता है और प्रत्येक व्यक्ति ने अपने साथियों को कोई न कोई चीज बेचनी है। बिक्री के बारे में जो नयी बात है वह इस सच्चाई को समझ लेना है कि सफल बिक्री या विक्रय कला अब तुक्केबाजी की चीज नहीं रही। यह लोगों को प्रभावित करने की कला है और इस बात का ज्ञान है कि लोगों को प्रभावित करने के लिये उन्हें प्रसन्न करना आवश्यक है।

मोटे अर्थ में बिक्री शब्द प्रेरणा करने का वाचक माना जा सकता है। पर ठीक ठीक वह तो दोनों शब्दों का एक ही अर्थ नहीं है। व्यापार में बिक्री का अर्थ धन लेकर क्रेता को वस्तुओं या सेवाओं का स्वामित्व हस्तांतर करना है।

विक्रय कला किसी व्यक्ति को वस्तुए या सेवाए खरीदने के लिए प्रेरणा देने का प्रयत्न है। इस व्यापारिक अर्थ में ही यहां विक्रय कला या सेल्समैनशिप पर विचार किया जायगा। ऊपरी निगाह से देखनेवाला विक्रय कला के इस अर्थ से यह नतीजा निकालेगा कि विक्रय कर्त्ता का मुख्य काम अपनी वस्तुए बेचना, है पर यह सच्ची विक्रयकला नही है, ऐसी कोई चीज बेचने की कोशिश करना जिसकी भावी गाहक को कोई आवश्यकता नही या उसकी वास्तविक आवश्यकता से अधिक मात्रा में बेचने की कोशिश करना नैतिक दृष्टि से तो गलत है ही, व्यापक बिक्री की दृष्टि से भी बहुत घटिया काम है। यह 'जबरदस्ती' की बिक्री या 'अतिविक्री' सिर्फ एक बार की जा सकती है अन्त में जाकर इसने विक्रयकर्ता और उसकी फर्म के नाम को हानि पहुंचती है' तो भी अतिविक्री और उचित प्रेरणा में बड़ा थोड़ा अन्तर है और जो उचित प्रेरणा की तरफ रहता है, वह मैदान मार जाता है, किसी आदमी को प्रेरणा देने के इस काम में सफल होने के लिए विक्रय कर्त्ता को न केवल अपनी वस्तुओ का विशिष्ट ज्ञान होना चाहिए बल्कि बिक्री की कला अर्थात् विक्रयकला का मनोविज्ञान भी पता होना चाहिए। इस उपर्युक्त कथन से एक परिभाषा निकलती है जिसको अलग-अलग तरह से दिया गया है। विक्रय कला की यह परिभाषा की गयी है कि कोई वस्तु ऐसे ढग से पेश करने की कला की गाहक उसकी आवश्यकता समझे और इसके बाद दोनो पक्षो के लिए सतोषकारक बिक्री हो जाए।' गारफील्ड ब्लेक ने लिखा है कि 'बिक्री कला विक्रेता की फर्म और वस्तुओ में क्रेता का विश्वास जमा देने और इस प्रकार एक नियमित और स्थायी ग्राहक प्राप्त करने का नाम है। यह किसी वस्तु सेवा या विचार की वाछनीयता के बारे में एक ही दृष्टि कोण पर पहुंचने का एक तरीका है। सच तो यह है कि बिक्री का काम (विक्रय कला) एक मानव मन के दूसरे मानव मन को प्रभावित करने का नाम है। यह परिभाषा आधारभूत है। इससे बिक्री का कार्य अपने शुद्ध रूप में सामने आता है, चाहे यह कोई विचार हो, 'कोई धर्म हो' टाइपराइटर हो या चाकलेट का डिब्बा हो। यदि बिक्री हुई है तो एक मानव मन ने इस सरल काम द्वारा दूसरे मानव मन को प्रभावित किया है। सरल काम ? हां बशर्ते कि आपको यह पता हो कि यह कैसे करना है।

हर कोई जानता है कि यदि मनुष्य को जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल होना हो तो उसे अपने आस पास के लोगो को और जिनके साथ वह सम्पर्क में आता है उन्हें अपना दृष्टिकोण बेच सकना चाहिए। विक्रय कर्त्ता भी अपना दृष्टिकोण ही बेचता है, पर वह गाहक के दृष्टिकोण से शुरू करता है और उसके मन को अपने पीछे पीछे उस जगह ले जाता है जहां वह विक्रेता के विचार को स्वीकार करले हैनरी फोर्ड ने अपने विक्रय कर्त्ताओं से कहा था कि आप मोटरें नहीं बेच रहे बल्कि माल इधर से उधर पहुंचाने का साधन बेच रहे हैं पेण्ट और वार्निश, बेचने वाली एक कम्पनी के कार्यपालने अपने विक्रयकर्त्ताओ का ये शब्द कहे थे "सबसे पहले

आपका काम बेचना है। पर आपने क्या बेचना है ? सीधी बात है कि आपने पेण्ट, वार्निश वगैरा बेचने हैं पर ये चीजें साधन मात्र हैं। आधारभूत बात यह है कि आपने कुछ विचार बेचने हैं जैसे सौंदर्य का स्वास्थ्य का, मितव्ययिता का, खुशहाली का, सेवा का विचार। इसलिए विक्रय कर्त्ता को मानव प्रकृति का ज्ञान अवश्य होना चाहिए जिससे वह अपने भावी ग्राहकों के मन को अपना दृष्टिकोण और अपने विचार स्वीकार करने के लिए प्रेरित कर सके।

सच्चे विक्रय कर्त्ता के गुण—शायद विक्रयकर्त्ता के रूप में सफल होने के लिए सबसे अधिक सारभूत बात यह है कि कठिन परिश्रम का अभ्यास होना चाहिए। चीज चाहे जो हो, पर यह आधारभूत बात है और आवश्यक विशेषताओं में एक चीज है फर्म के दृष्टिकोण से और गाहक के दृष्टिकोण से निर्भर योग्यता फर्म का नाम सेल्समैन के हाथों में है। गाहक के लिए वह ही फर्म है और गाहक उसकी ईमानदारी और निर्भरशीलता पर जितना भरोसा करता है उसके हिसाब से उसका उसके मालिक पर, उस द्वारा बनायी जाने वाली वस्तुओं पर और विक्रय कर्त्ता द्वारा की जाने वाली विक्रीय पर विश्वास होगा सच्चे रहकर अपनी फर्म के प्रति और उसके मुख्य अधिकारियों और वस्तुओं के प्रति वफादार रहो। प्रसन्नता और सहानुभूति ये दो और गुण हैं जिनका विकास अवश्य करना चाहिए। अपने गाहकों की असली जरूरतों को समझने की तो सहज बुद्धि पैदा हो जानी चाहिए। धैर्य और लगन को ठीक सतुलित करके रखना चाहिए जिससे भावी ग्राहक पर न तो इतना दबाव पड़े कि वह हाथ से निकल जाए और दूसरी ओर न ऐसा हो कि आर्डर इसलिए रह कम जाये कि ठीक उसी समय आपने गाहक को छोड़ दिया जब उसकी प्रतिरोध शक्ति खतम हो रही थी। अंतिम गुण जिसके बिना किसी को भी सेल्समैन का जीवन ग्रहण करने पर विचार न करना चाहिए यह है कि अपनी वस्तुएं घूमते फिरते जीवन, अधिक समय काम करने और सम्बंधित लोगों से मिलने के लिए उत्साह होना चाहिए। फिर वस्तु के बारे में फर्म के संगठन के बारे में और उत्साह के प्रभाव के बारे में ज्ञान होना चाहिए और इन तीनों का संयोग आपको अनुपम विक्रयकर्त्ता बना देगा। याद रखो कि और किसी मानवीय गुण से उतनी विजय नहीं प्राप्त होती, उतने कारवार नहीं निर्मित होते, उतनी बाधाएं नहीं दूर होतीं जितनी प्रसन्न स्फूर्तिमय उत्साह से।

अपनी सफलता को और पक्का करने के लिए ये गुण और जोड़ लीजिये कुल व्यक्तित्व—अपने साथी मनुष्यों से आसानी से मिलने की योग्यता, दूसरे आदमी पर अपने विचारों की छाप डाल सकना और यह कार्य आकर्षक ढंग से कर सकना, निराशा की बात होने पर भी पुनः पुनः काम करते ही जाने का दृढ़ संकल्प; आकांक्षा अच्छा होने की और अपने साथियों से अच्छा काम करने की अभिलाषा, पर यह कोशिश न करो कि डरे हुए क्रेता पर अवांछित वस्तुएं थोप दी जाएं। याद रखो कि हर गाहक मनुष्य है जो स्वभावतः सुख की भावना कायम रखने की कोशिश

कर रहा हूं और आपका काम यह है कि ऐसे ढंग से बनें और बोलें, जिससे गाहक को सफल होने में मदद मिले। सच्चे विक्रय कर्त्ता बनो अर्थात् मानव मन को प्रभावित करो। ऐसा लिखने में क्षण लगता है पर सीखने में वर्षों लग जाते हैं पर जिन्होंने इसे सीख लिया है वे इसकी ताकत जानते हैं। चुने हुए आदमी को प्रशिक्षण देना आवश्यक है क्योंकि सच्चे विक्रयकर्ता बनाये जाते हैं। वे पैदा नहीं होते, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं।

सेल्समैनशिप का प्रशिक्षण—*कोई भी जन्म से सेल्समैन नहीं होता।* वह सगठित और सुनिश्चित प्रशिक्षण द्वारा बनाया जाता है। तथाकथित जन्मजात सेल्समैन में कुछ आधारभूत विशेषताएं हो सकती हैं जिनके कारण उसका सेल्समैन बनना आसान हो पर सेल्समैनशिप तो उसे सीखनी ही होगी। मनुष्य में स्वाभाविक गुण कोई भी हो और कितनी भी मात्रा में हो, पर उनका विकास करना आवश्यक है। जो वस्तुएं वह बेच रहा है उनके बारे में ज्ञान अध्ययन और ध्यान देने से ही प्राप्त हो सकता है। सेल्समैन के लिए सबसे अच्छा तो यह होगा कि वह उस फैक्टरी में काम करे जिसमें वह वस्तु बनायी जा रही है। उसे वहां इतने दिन रहना चाहिए कि वह उत्पादन के सारे प्रक्रम को जान ले, ताकि वह गाहकों के प्रश्नों का सतोष-जनक उत्तर दे सके अन्दर के प्रशिक्षण से वह अधिकारपूर्वक बोल सकेगा क्योंकि उसे फर्म की परम्पराओं और वातावरण का अच्छा अनुभव और ज्ञान होगा पश्चिमी देशों में बहुत-सी फर्में अपने सेल्समैनों को सेल्समैनशिप का विशेष कोर्स कराती हैं।

वस्तु की बिक्री की बुनियादी बातें पकड़ लेने के बाद प्रशिक्षण में अगली चीज यह है कि किसी सेल्समैन को बिक्री करते हुए देखा जाए। किसी अनुभवी साथी के साथ काफी समय रहना चाहिए और उस समय देखने और सीखने के अलावा कोई जिम्मेवारी अपने ऊपर न लेनी चाहिए, ऐसे समय पुराने साथी अपना सबसे अच्छा रूप प्रस्तुत करेंगे और बात-चीत, चुटकुले तथा प्रदर्शन द्वारा असंख्य बातें आपको बताएंगे। आर्डर बुक किस तरह भरनी चाहिए। नमूने का सबसे बढ़िया उपयोग कैसे हो सकता है, खरीददार के पास पहुंचने का सही रास्ता क्या है, जनरल मैनेजर से और शाप एसिस्टेंट से कैसे व्यवहार करना चाहिए। अच्छा यह है कि पहली कोशिश किसी पुराने साथी के साथ रहते हुए की जाए।

इस तरह दूसरे की देखभाल में पहली कोशिश करलेने के बाद विक्रेता को प्रशिक्षित करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसे कुछ समय जैसे १५ दिन के लिये, तब काम सौंपा जाए जब नियमित आदमी छुट्टी पर गया हो। इससे उसे काम की जटिलता का पता चल जायगा और उसे मालूम हो जाएगा कि उसने जिस योजना निर्माण को अब तक बिल्कुल आसान चीज मान रखा था उसमें सावधानी से विचार और काम की आवश्यकता है जिसमें सारा दिन अच्छी तरह गुजरे। शुरू में नौसिखिया बहुत सी गल्तियां कर सकता है पर गल्तियों से सीखना सेल्समैन की कला सीखने के सर्वोत्तम तरीकों में है पर शर्त यह है कि सीखने की इच्छा बनी रहे। यह

प्रशिक्षण न केवल अपने प्रतिस्पर्धियो के कामो को बल्कि बिल्कुल दूसरी तरह के काम करने वाली फर्मों के कामों को भी सावधानी से देखकर जारी रखा जा सकता है। प्रमुख उद्योगो द्वारा प्रयोग मे लाय जाने वाले विज्ञापनो और टैक्नीक से सजग विक्रयकर्त्ता को बहुत कुछ जानकारी मिल मिल जाती है। गाहक भी वस्तु को या उसे प्रस्तुत करने के तरीके की सीधी आलोचना करके बहुत कुछ सिखाते हैं सावधानी से यह नोट करके कि एक ढग से की गई बिक्री क्यो असफल रही उसमें थोडा परिवर्तन किया जा सकता है और इस तरह सफलता प्राप्त की जा सकती है पर सेल्समैन का चाहे किसी काम भी क्षेत्र में करता हो प्रशिक्षण कभी खत्म नही होता इस तरह हमें वापारिक जगत में मिलने वाले अनेक तरह के सेल्स मैनो पर विचार करना पड़ता है।

सेल्समैनों के प्ररूप—डा० विलियम ए. नोलैण्डर ने सेल्समैनो को दो प्रमुख रूपो में बाँटा है। सृजनशील (Creative) और सेवा (service) सेल्समैन। उन्होने सृजनशील सेल्स मैन की यह परिभाषा की है कि जो बाजार में नई वस्तु या नयी ब्रांड चलाना चाहता है और इसकी माग पैदा करना चाहता है। उसे मिशनरी भी कहा जाता है। सेवा वाला सेल्समैन वह है जो उन लोगो को बेचता है जो विक्रय की वस्तु पहले ही खरीदना चाहते है या कम से कम उससे परिचित है। सृजनशील सेल्समैन व्यवसाय का सृजन या प्रसार करता है। सेवा वाला सेल्समैन व्यापार को चलाये रखता है।

सेल्समैनो के वर्गीकरण का एक और तरीका उन वस्तुओ या सेवाओ के आधार पर है जो वे बेचते है। साधारणतया इस आधार पर दो मुख्य वर्गीकरण है—मूर्त्त (Tangible) या अमूर्त्त (Intangible)। पहले वर्ग में वे लोग है जो वे वस्तुएँ बेचते है जो इन्द्रिय गोचर है और दूसरे वर्ग में वे लोग है जो ऐसी वस्तुएं बेचते है जो इन्द्रियग्राहिय नही, जैसे वह आनन्द जो सिनेमा आदि देखने से प्राप्त होता है। सुरक्षा, जो सुरक्षित नियोजन से प्राप्त होती है। यह वह लाभ है जो विज्ञापन करने से भविष्य में प्राप्त होगा।

सेल्समैनो को वर्गीकृत करने का तीसरा तरीका ग्राहक के आधार पर है जिसे वे बेचते है, जैसे उप भोक्ता खुदरा दुकानदार, थोक दुकानदार, औद्योगिक फर्में और विद्यावृत्ति लोग (Professional men)। पर सेल्समैन का काम ग्राहक के रूप पर उतना निर्भर नही जितना पहले पहल मालूम होता है। हर हालत में उसे एक आदमी से व्यवहार करना है और लोग अधिकतर एक से ही होते है चाहे वे कोई भी पेशा करते हो।

सेल्समैनो का वर्गीकरण निम्नलिखित रीति से किया जाता है—

(१) खुदरा सेल्समैन या शाप एसिस्टेण्ट—जो खुदरा दूकान में काउण्टर पर वस्तुएँ बेचता है। (२) थोक विक्रेता का सेल्समैन जो अपने ग्राहको के पास जाता जाता है और जिसे विविध वस्तुओ के बारे में जानकारी होनी चाहिए। (३) निर्माता

का प्रतिनिधि जो थोड़ी सी अपनी ही वस्तुएँ बेचता है, चाहे वह दूसरे निर्माताओं, थोक विक्रेताओं, खुदरा दुकानदारों, सम्बन्धित पेशे के लोगों या उपभोक्ताओं के पास भी जाना हो। उसे उन थोड़ी सी वस्तुओं के बारे में जो वह बेचना है, बहुत कुछ पता होना चाहिए। (४) सीधा सेल्समैन (डायरेक्ट सेल्समैन) वह होता है जो कोई विशेष वस्तु बेचता है जो उसके गाहकों द्वारा नियमित रूप से नहीं खरीदी जाती। वह *निर्माताओं को या ट्रान्सपोर्ट कम्पनियों आदि को नये तरह के सामान बेचता हो या* व्यापारियों को कार्यालय मशीनें बेचता हो। (५) अमूर्त वस्तुओं का सेल्समैन सेवा या उपयोगिता बेचता है जैसे जीवन बीमा पर यह सब वर्गीकरण बेचने की कठिनाई के आधार पर ३ मोटे समूहों में एकत्र किये जा सकते हैं, अर्थात् (१) शाप एसिस्टैंट या खुदरा सेल्स मैन (२) वाणिज्यिक यात्री जो थोक विक्रेता के सेल्समैन और निर्माता के प्रतिनिधि दोनों के काम करता है और (३) विशेष सेल्समैन या मास्टर सेल्समैन, जो सीधे सेल्समैन और अमूर्त वस्तुओं के सेल्समैन का कार्य करता है। इन प्रश्नों पर विचार करने से पहले यह दोहरा देना उचित होगा कि किसी भी वर्ग का सेल्समैन हो जो अपनी रीतियों को सुधारने के लिये कठोर परिश्रम करता है, उसकी बिक्री बढ़ेगी। इसलिये सेल्समैनों को इस तरह भी वर्गबद्ध किया जा सकता है।

थका हुआ सेल्समैन—जो गाहक के पास से जाता है। मरे मन से जाता है और अपनी वस्तुओं के बारे में अच्छी तरह बात नहीं करता।

नकली सेल्समैन—जो बड़ी-बड़ी बातें करके असर डालने की कोशिश करता है और बेचना भूल जाता है।

आदर्श सेल्समैन— आदमी से बात करना और बिक्री करना जानता है, वह जानता है कि बिक्री कैसे शुरू की जाए और कब बंद करदी जाए। वह मानव मन को प्रभावित करने वाला होता है।

शाप एसिस्टैन्ट, वाणिज्यिक यात्री और विशेष वस्तुओं के सेल्समैनों तथा उनके तरीकों पर विचार करने से पहले खरीदने के प्रेरकों (Buying motives) पर विचार करना उचित होगा।

खरीदने के प्रेरक—अच्छे सेल्समैन को अपने आप से यह पूछना चाहिए कि कोई ग्राहक क्यों खरीदता है और उसे मेरी वस्तु क्यों खरीदनी चाहिये। मनोविज्ञान के बहुत से विद्वानों ने खरीदने के प्रेरक अलग-अलग तरह बताए हैं। खरीदने के *दृष्टिकोण से खरीदने के प्रेरकों की सूची कर उनके उपयोगी विभाजन उनके उद्गम* की प्रकृति के अनुसार इस आधार पर वे प्राथमिक, सेलेक्टिव, वरणात्मक या संरक्षण यानी पैट्रोनेज हो सकते हैं। प्राथमिक प्रेरक क्रेता की प्रकृति से पैदा हो सकते हैं और उनसे यह तय होता है कि किसी इच्छा की तृप्ति के लिए किस तरह की सेवा या वस्तु खरीदी जाएगी। इन्हें *आगे कायिकीय (Physiological)* तथा सामाजिक प्रेरकों में बांटा जा सकता है। इस प्रकार प्राथमिक कायिकीय प्रेरक भूख-प्यास, काम

भावना(Sex), सुविधा, सुरक्षा, कार्यशीलता या आराम की पूर्ति करने वाले हो सकते हैं। प्राथमिक सामाजिक प्रेरक भक्ति, अनुमोदन, बड़प्पन, अभिमान, स्पर्धा आदि हो सकते हैं। सैलेक्टिव या वरणात्मक प्रेरक वस्तु की प्रकृति से पैदा होते हैं और उनसे यह तय होता है कि अनेक किस्मों में से कौनसी खरीदी जाएगी। ये प्रेरक हैं स्वास्थ्यप्रदता, दक्षता, मितव्ययिता, निर्भरणीयता, टिकाऊपन, उपयोग में सुविधा, अनुकूल संरक्षण के प्रेरक वे प्रेरक हैं जो विक्रेता की प्रकृति में से पैदा होते हैं और जिनसे यह तय होता है कि वस्तुएँ या सेवा किससे खरीदी जाएँगी। उनमें विक्रेता की ख्याति, प्रस्तुत सेवाएं, स्थान की सुविधा, सेल्समैन का व्यक्तित्व, आदि हैं। स्पष्ट है कि ऐसा कोई वर्गीकरण पूर्णतः पृथक्ता करने वाला नहीं हो सकता। यह सुझाव मात्र देता है।

खरीदने के प्रेरकों का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया जा सकता है कि वे भावना से पैदा होते हैं या तर्क से। जो प्रेरक 'प्राथमिक सामाजिक प्रेरक' बताये गए हैं वे भावना पर आश्रित हैं, और जो सैलेक्टिव या वरणात्मक बताए गये हैं, वे बुद्धि पर अधिक आश्रित हैं। साधारणतया उपभोक्ता भावनात्मक प्रेरकों से प्रेरित होते हैं और पेशेवर क्रेता बुद्धि मूलक प्रेरकों से।

खरीदने के प्रेरकों का ग्राहक के कार्यों के बारे में यह विश्लेषण करके कि वह अपने हितों से कहां तक नियन्त्रित है और अपनी खरीद से कितना फायदा होने की आशा करता है, वर्गीकरण किया जा सकता है। ग्राहक के प्रेरकों के विश्लेषण से पता चलता है कि वह निम्नलिखित कारणों से प्रेरित होता है। प्रथम उसमें एक वाञ्छा होती है। वाञ्छा उस इच्छा को कहते हैं जो अपूर्ण है और पूरी होना चाहती है। द्वितीय, ग्राहक में एक आवेग होता है और वह आवेग उसे खरीदने के लिए उद्दीपित और उत्तेजित करता है। तृतीय, ग्राहक के पास कोई कारण होता है और वह कारण किसी कमी हुई आवश्यकता के निश्चित ज्ञान पर आधारित होता है। जीवन में मनुष्य के तीन स्वार्थ होते हैं और इन तीन स्वार्थों पर उसके खरीदने के अधिकतर कारण आधारित होते हैं। पहला स्वार्थ है उसका परिवार। वह अपने परिवार को सुख और अच्छा जीवन देने के लिए वस्तुएं खरीदता है। दूसरी दिलचस्पी उसका पेशा या कारोबार है। वह फिर बेचने के लिए वस्तुएं खरीदता है या अपने कारोबार में काम लाने के लिए वस्तुएं खरीदता है या वे वस्तुएं खरीदता है जो उसे उसके कामों में अधिक दक्ष बनाने में सहायता दें। आदमी की तीसरी दिलचस्पी है अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना। यदि हम इन कारणों और दिलचस्पियों का विश्लेषण करें तो हमें पता चलेगा कि उन पर कुछ सुविधाओं का प्रभाव पड़ता है। आदमी पहली सुविधा सुख या मानसिक शान्ति चाहता है। उसे अपनी खरीदी हुई चीज से बड़ा सन्तोष मिलता है, उसकी खरीद से उसमें खुशी पैदा हो जाती है। वह यह अनुभव करता है कि मैं कोई करने योग्य काम कर रहा हूं। वह जो दूसरी सुविधा चाहता है वह है स्वास्थ्यलाभ। वह इसे बड़ा

महत्व देता है क्योंकि वह उसकी सबसे बड़ी और सबसे महत्व की चीज है और यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि कोई वस्तु उसके और उसके परिवार के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है तो वह उसे खरीद लेगा। तीसरी सुविधा वह यह चाहता है कि धन प्राप्त हो। आदमी अनुभव करता है कि धन खर्च करने के लिए धन कमाना जरूरी है। इसलिए वे वस्तुए खरीदेगा, जिनमें वह धन कमा सकता है या जिन्हे पुन बेचकर लाभ कमा सकता है, पर उन सब प्रेरकों, कारणों, दिलचस्पियों और सुविधाओं को खरीदने के निम्नलिखित सात प्रेरकों में रखा जा सकता है —

(१) धन की प्राप्ति।
(२) सावधानी की सन्तुष्टि।
(३) उपयोगिता मूल्य।
(४) अभिमान की सन्तुष्टि।
(५) स्थायी भाव (सैंटिमेंट)।
(६) आनन्द की प्राप्ति।
(७) स्वास्थ्य को लाभ।

अब उन वस्तुओं का बारीकी से विश्लेषण कीजिए जिन्हे आप बेच रहे हैं और आपको पता चल जाएगा कि ग्राहक को किस कारण आपसे खरीदने से लाभ होगा। इसके बाद आप बारी-बारी एक-एक कदम उठा सकते हैं और अपनी वस्तु के खरीदने के कारणों और विश्लेषित विशेषताओं पर विचार करके प्रत्येक कदम के बारे में एक बेचने का वाक्य बना सकते हैं। किसी औसत बिक्री का विश्लेषण करके हम खरीदने और बेचने की सीढ़ियों का पता चला सकते हैं। पर काउण्टर पर बेचने और सम्भावी क्रेता के पास जाकर बेचने में उसे लागू करने का तरीका थोड़ा-सा अलग-अलग है। इसलिए हम यह विचार करेंगे कि शाप एसिस्टैंट वाणिज्यिक यात्री और विशेष वस्तु बेचने वाले सेल्समैन को अलग-अलग कौन से कदम उठाने चाहिए।

खुदरा विक्रेता शाप एसिस्टैंट—हमारे देश में खुदरा बिक्री का काम मालिकों द्वारा अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से किया जाता है। यद्यपि कहीं-कहीं शाप एसिस्टैंट नौकर भी रखे जाते हैं। आम तौर से यह कहा जाता है कि जो आदमी खुदरा दुकान में वस्तुए बेचता है उसका काम सबसे आसान है। जो ग्राहक उसकी दुकान में आता है वह पहले ही कोई विशेष चीज खरीदने का निश्चय कर चुका है। यहा बिक्री करने और नफा पाने के लिए नम्रता और शीघ्र सेवा तथा दक्षता ही काफी है। यह बात वहां तक ठीक है जहां प्रशिक्षित विक्रेता, वे मालिक हों या नौकर, वस्तुएं बेचते हों। पर अनुभव से पता चलता है कि अधिकतर मालिक अपने धन के अभिमान में रहते हैं, जिससे ग्राहक को बेचैनी अनुभव होती है। यदि इस मनोवृत्ति को न बदला गया तो हमारे देश में खुदरा दुकानदारी वैसी सफल नहीं हो सकती जैसी यह दूसरे देशों में है। यह ध्यान रखना चाहिए कि "अच्छी

खुदरा बिक्री अच्छे कारबार की कुञ्जी है, यह अच्छी सेवा, अच्छे अवसर और इसलिए अधिक बड़े लाभ की कुंजी है।" बहुत बार बेचने का ढङ्ग रद्दी होने के कारण, सेवा में त्रुटि या विलम्ब होने के कारण, वस्तुओं का विनिमय करने के लिए तैयार न होने के कारण, विक्रेताओं द्वारा वस्तुएँ बेचने के लिए चालाकी के उपाय बरतने के कारण, अभद्र व्यवहार और उदासीनता के कारण ग्राहक हाथ से निकल जाता है। ७० प्रतिशत से अधिक ग्राहक मानवीय भूल के कारण हाथ से निकल जाया करते हैं। प्रत्येक खुदरा दुकानदार के लिए यह आवश्यक है कि वह उदासीनता और लापरवाही के कारण पैदा हुई प्रतिशोध की भावना को हटाने के लिए दक्ष विधियाँ अपनाए। निम्नलिखित ६ उपाय करके यह किया जा सकता है—

खुदरा बिक्री में सात काम—याद रखो कि बिक्री का अर्थ यह नहीं है कि ग्राहक दुकान में आकर अपनी माँगी हुई वस्तु लिफाफे में डालकर और पैसे वापिस लेकर चला जाय और आप उसे नमस्ते कहकर विदा कर दें। बिक्री तब तक बिक्री नहीं जब तक ग्राहक अपने मन की चीज लेकर इस भावना के साथ दुकान से न जाए कि उसे अपनी खरीदी हुई चीज के साथ कोई और चीज भी मिली है। वह उस भावना के साथ दुकान से जाए जो भावना मेरे दिल में तब होती है जब मैं आपके घर शाम का समय वहाँ बिताने के लिए निमन्त्रित होने के बाद आपके घर से विदा होता हूँ और मेरे मन में कृतज्ञता की, और आपने मेरे लिए स्वेच्छया जो कुछ किया है उसके लिए सराहना की भावना होती है और मैं उन चीजों के कारण, जो आपने मुझे दी हैं और धन से नहीं खरीदी जा सकती बार-बार आपके पास आना चाहता हूँ। *बिक्री वास्तव में पूरी होने से पहले सात महत्वपूर्ण कार्य करने होते हैं।*

पहला काम है स्वागत। इस मौके पर आप प्रतिरोध को बना सकते हैं या खत्म कर सकते हैं, जो अधिकतर आपके स्वागत पर या ग्राहक के प्रति आपके रुख पर निर्भर है। जब कोई ग्राहक दुकान में आये तो उसे यह महसूस होना चाहिए कि *जैसे वह अपने घर पर है। यदि वह दुकान में सिर्फ इधर-उधर देख रहा* है तो उसे देखने दीजिए और उसकी पूरी तरह उपेक्षा न कीजिए। अगर वह कुछ पूछने की इच्छा से सिर उठाए तो जवाब देने के लिए आप उसके पास होने चाहियें। याद रखिए कि कोई भी आदमी किसी चीज की जरूरत होने पर ही आपकी दुकान में आएगा। कुछ दिन हुए मैं कुछ बच्चों की किताबें खरीदने एक दुकान में गया। मैं तीन मिनट तक खड़ा रहा और तब जाकर दुकानदार ने अपना अखबार नीचे रखने और मेरी ओर ध्यान देने की कृपा की और वह भी तब जब मैंने उसका ध्यान अपनी ओर खींचने की कई बार कोशिश की थी। इतने में उसका साझी आ पहुँचा और उसने इन शब्दों में माफी माँगी "मुझे बड़ा अफसोस है कि मेरे साझी से आपको इतनी घटिया सेवा प्राप्त हुई।" जवाब में मैंने कहा "कृपया सेवा के लिए माफी न माँगिये, मुझे कोई भी सेवा नहीं मिली।" और मैं चल दिया। आप लखपति हों, तो भी अपने ग्राहक की ओर ध्यान दीजिए। आपका ग्राहक उस समय

आपका अतिथि है, जिसे किसी तरह के विज्ञापन द्वारा आमन्त्रित किया गया है और यदि आप चाहते हैं कि वह खरीदे तो उससे अतिथि जैसा ही व्यवहार करना चाहिए। अपनी दुकान में आने वाले लोगों का मुस्कराकर स्वागत करो, क्योंकि वह अपनी खरीद के द्वारा आपकी दुकान को सीधे फायदा पहुँचा रहे हैं। आपको मुस्कराकर उनका स्वागत करना चाहिए। क्योंकि उन्होंने अपना धन खर्च करने के लिए शहर की सब दुकानों में से आपकी ही दुकान को चुना है। चीन की इस कहावत को कभी मत भूलो "मुस्कराहटहीन चेहरे वाले मनुष्य को कभी दुकान न खोलनी चाहिए।" यदि आप ग्राहक का नाम जानते हैं तो उसका नाम लेकर उत्साह से नमस्ते कीजिए। नाम से पुकारे जाने पर ग्राहक खुश होते हैं और वह नाम से जाना हुआ होना चाहिए जैसे आपके घर आने वाला अतिथि नाम से जाना हुआ होता है। यदि किसी कारण आप ग्राहक को नहीं जानते तो 'नमस्ते महोदय" या "नमस्ते बहन जी" कहना काफी होगा।

आपका स्वागत सच्चा और हार्दिक, होना चाहिये। दुकान का ग्राहक जीवन में वित्तीय, सामाजिक, राजनैतिक या अन्य दृष्टियों से किसी भी पद पर हो, इसका बिना विचार किये सब से एक सा व्यवहार करो।

दूसरी बात है यह जानना कि ग्राहक क्या चाहता है, साधारणतया ग्राहक खुद यह बात बताता है। सम्भव है कि वह हमेशा उसका नाम न बता सके कभी-कभी ग्राहक उसका थोड़ा बहुत वर्णन करता है और आपको ठीक वस्तु का पता लगाने के लिये अपनी कल्पना और ज्ञान से काम लेना पड़ता है।

तीसरा काम है ग्राहक की दिलचस्पी की चीज दिखाना यदि वह आपको मिल जाय। कभी-कभी ग्राहक दूसरी जगह चला जाता है क्योंकि सेल्समैन माल के बारे में पूरी जानकारी न होने के कारण उससे कह देता है कि वह चीज स्टोक में नहीं है। सेल्समैन को अपने स्टोक का अवश्य पता होना चाहिये जब ग्राहक कम होते हैं तब का समय स्टोक को नये सिरे से लगाने और देखने भालने में काम लाना चाहिये। चौथा काम है वस्तु की विशेषताएं बताना कि यह वस्तु क्यों बनायी गयी काहे से बनायी गयी इसकी क्वालिटी, इसके उपयोग का तरीका और यह बताना कि उससे ग्राहक की समस्या किस तरह हल होगी अपनी चीज के बारे में बात, कीमत के बारे नहीं ग्राहक के मन में और दिल में अच्छी क्वालिटी की चीजों की इच्छा पैदा करो। अपनी जानकारी के द्वारा यह बताओ कि किस्म की वस्तुएं लेने से किस तरह बचत होती है ज्ञान से विश्वास पैदा है विश्वास उत्साह को जन्म देता है आप अपनी वस्तुओं को जानते हैं तो आपको उनमें विश्वास होगा और यदि आपको अपनी वस्तुओं में विश्वास है तो आपको उनके बारे में अवश्य उत्साह होगा और एक आदमी का उत्साह दूसरे आदमी में भी उत्साह पैदा करता है।

पांचवें कदम में आप मांगी गयी वस्तु की बिक्री पूरी कर देते हैं। पर बेचने के काम का महान अवसर छठे कदम अर्थात् सुझाव देने में आता है। जब आप कोई

दूसरी चीज बेचने की कोशिश करते हैं, यह बात मन हैं कि कुछ लोग सुझाव द्वारा चीज बेचना या दूसरी चीज बेचना तब एतराज की बात नहीं जब सेल्समैन दिल से यह समझता हो कि ग्राहक के पास यह चीज होनी चाहिये जब कोई आदमी सच्चे दिल से कोई बात पेश करता है, तब ग्राहक पर बिल्कुल भिन्न मानसिक प्रतिक्रिया होती है। सातवां कदम वह कदम है जिसमें दुकान की दिलचस्पी सबसे अधिक है जब ग्राहक अन्तिम रूप से यह कहता है, "मैं यह लूंगा," या "बस इतना ही," तब उसका ध्यान किसी और दूसरे काम में है और वह वहाँ पहुँचने की जल्दी में है, पर दुकान को इस बिक्री का पर्चा तैयार कर देना चाहिये और यद्यपि इस समय जल्दी करनी चाहिये पर परिशुद्धता सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है। जब पर्चा तैयार हो जाने और वौचर बन जाने तथा भुगतान हो जाने पर वस्तुओं को कागज में लपेट दिया जाता है और सदा याद रखिये कि अच्छी तरह लपटा हुआ पैकेट दुकान का सबसे अच्छा विज्ञापन है। अपनी वस्तुओं को सफाई से और मजबूती से बांधिए पर, डिब्बे या डोरी को बरबाद मत कीजिये। जब पैकेट बंध जाने पर यह ग्राहक को दे दीजिये। इसे काउण्टर पर मत रखिये बल्कि उसके हाथ में थमाइये और "धन्यवाद, नमस्कार" कहकर ग्राहक को विदा कीजिये।

वस्तुओं का प्रदर्शन या विण्डो डिस्पले—फुटकर बिक्री में वस्तुओं के प्रदर्शन का बड़ा महत्त्व है खास कर त्यौहार खरीदने के दिनों में जैसे दिवाली और क्रिसमस में यह याद रखना चाहिये कि प्राय हर चीज आंख की मार्फत बिकती है। यदि कोई वस्तु बेचनी हो तो वह अच्छे रूप में दिखायी पड़नी चाहिए। जितनी वस्तुएं हो सकें, उतनी खिड़की में रखनी चाहिये। अधिक अच्छा यह हो कि एक दूसरे का ध्यान दिलाने वाली वस्तुएं रखी जाएं पर भीड़ भाड़ न मालूम होने लगे। विण्डो डिस्पले विज्ञापन का सब से सस्ता और सबसे कीमती तरीका है। इसके परिणाम देखे जा सकते हैं क्योंकि लोग दुकान में आते जाते हैं और खिड़की में प्रदर्शित वस्तुएं मांगते हैं यहां विण्डो डिस्पले के कुछ आधारभूत तथ्य बता देना उचित होगा अधिकतर लोग खिड़की के निचले हिस्से की ओर देखते हैं। इसके बाद लोग बीच के भाग को देखते हैं। बायीं तरफ की अपेक्षा दायीं तरफ चीजें रखना अच्छा है और आंख की सतह से ऊपर बहुत थोड़े लोग देखते हैं प्रदर्शन के लिये ४ और ५ फुट के बीच की ऊंचाई अच्छी रहती है। खिड़की रखी जाने वाली वस्तुओं के चुनाव में सब से बड़ी बात यह है कि ग्राहकों को वे चीजें देखने का मौका दीजिये जिनकी उन्हें जरूरत है। हो सकता है कि जब तक वे वस्तुएं न देखें तब तक उन्हें यह पता न चले कि वे क्या चाहते हैं पर जब उन्हें किसी ऐसी वस्तु का पता चल जाता है जो उनके मन में बैठ जाती है, तब समझ लीजिये कि बिक्री हो गयी। परिस्थितियों के अनुसार खिड़कियों में चीजों में हेर-फेर करते रहना चाहिए। किसी बड़े शहर की बड़ी दुकान में सप्ताह में परिवर्तन कर देना उचित होगा, पर छोटे

शहर में जहां लोग बहुत बार उन खिड़कियों को देखते हैं, जल्दी-जल्दी बदलना अच्छा होगा।

वाणिज्यिक यात्री—दूसरे वर्ग के सेल्समैनों में वे सेल्समैन शामिल हैं जो आवश्यकता की वस्तुएं बेचते हैं। वे थोक विक्रेताओं और खुदरा दूकानदारों के पास जाते हैं जो दुबारा बेचते हों। खाने-पीने की वस्तुओं की मांग सदा स्थिर सी बनी रहती है और वाणिज्यिक यात्री का काम सिर्फ आर्डर लेना मालूम होता है। जिस आदमी ने अच्छे सेल्समैन के गुण पकड़ लिए हैं वह यात्री नहीं रहता। वह सम्भावी गाहक के साथ व्यवहार में विक्री अनुक्रम (Sales sequence) का तरीका पकड़ता है। इसका काम शाप एसिस्टेंट के काम से बहुत कठिन है। उसे क्रेता की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए बेचने की सीढ़ियों चलना पड़ता है। इसलिए उसे सफल होने के लिए बिक्री अनुक्रम को विधि अपनानी चाहिए।

बिक्री अनुक्रम (Sales sequence)—यदि हम किसी औसत बिक्री का विश्लेषण करें तो हम देखते हैं कि इसमें अनिवार्यतः बिक्री की निम्नलिखित ५ सीढ़ियां आती हैं। बिक्री की पहली सीढ़ी है गाहक से मिलना जिसके द्वारा सेल्समैन सम्भावी गाहक का अनुकूल ध्यान और दिलचस्पी प्राप्त करने के लिए आनन्दमय वातावरण पैदा करता है। बिक्री की दूसरी सीढ़ी है खरीदने के प्रेरक को अपील करना जिससे सम्भावी गाहक अपनी आवश्यकता या इच्छा को पहचानी गयी समझ सके बिक्री की तीसरी सीढ़ी है वस्तु की विशेषताएं या लाभ स्पष्ट करना जिससे सम्भावी गाहक यह जांच कर सके कि वस्तु उनकी आवश्यकता पूरी कर सकती है या नहीं। बिक्री की चौथी सीढ़ी है वस्तु की वाञ्छनीयता का विश्वास जमाने की प्रेरणा देना और खरीदने की इच्छा पैदा करना। अंतिम सीढ़ी है गाहक से माल खरीदवाकर बिक्री खत्म करना। जब इस तरह बात पेश की जाती है तब बिक्री का प्रक्रम बिल्कुल यांत्रिक मालूम होता है पर बिक्री की सीढ़ियों पर यन्त्रवत नहीं चढ़ा जा सकता, क्योंकि उनमें मानवीय अंश से सम्बन्ध होता है और गाहकों में बिक्री का स्वाभाविक प्रतिरोध हुआ करता है।

बिक्री प्रतिरोध सबसे कठिन समस्या है। हर आदमी अपने जीवन और धन का मालिक होना चाहता है, वह आनन्द-प्राप्ति के मार्ग पर चलने के अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहता है। परिणामतः यह सुनना किसी को पसन्द नहीं कि वह अपना जीवन और अपना कारबार कैसे चलाए, प्रत्येक उपभोक्ता को घटिया सेल्समैन से वास्ता पड़ा है जिसने बेढंगी तरह से उसे पहले ठीक तरह प्रेरित किए बिना सलाह मानने के लिए मजबूर करने की कोशिश की। परिणामतः अधिकतर लोग सेल्समैनों से सशंकित रहते हैं और तुरत एक प्रतिरोध की बाधा खड़ी कर लेते हैं। इसके अलावा बहुत से सेल्समैनों का आचार भी आलोचना से परे नहीं होता। अपनी वस्तुओं को गलत रूप में पेश करके उन्होंने क्रेता के मन में, जो इस तरह ठगा गया, एक विरोध की भावना पैदा कर दी है। प्रत्येक नये सेल्समैन को, जो आगे आता है,

सब से पहले इस भय को दूर करना चाहिए कि उसका प्रयोजन बेईमानी करने का है। वह सेल्समैन बिक्री प्रतिरोध को जीत लेता है जो खरीदने के प्रेरकों और ग्राहक के स्वार्थ के साथ अपनी वस्तु का मूल्य चतुराई से जोड़ सकता है। उसे अपने ग्राहकों को ऐसी जगह ले जाना चाहिए जहां स्वयं फैसला करे, न कि सेल्समैन। वह अनुभव करता है मैं खरीद रहा हूँ, न कि मुझे माल बेचा जा रहा है और जब कोई आदमी खरीदता है, तब माल तो बिकना ही है। यह सफल सेल्समैनशिप का सारतत्व है।

बिक्री के लिए तैयार करना—अपनी वस्तु की उपयोगिता का सही चित्र पेश कर सकने के लिए उसे सब तथ्यों की जानकारी होनी चाहिए, हम पहले कह चुके हैं कि ज्ञान से उत्साह पैदा होता है। यदि हमें यह पता हो कि हम सम्भावी ग्राहक द्वारा पूछे जाने वाले किसी भी प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं तो हम ग्राहक से भेंट के लिए उत्सुक रहते हैं चूँकि सेल्समैन असल में सन्तोष बेचता है इसलिए उसे वस्तु के बारे में सब कुछ पता होना चाहिए और उसे उसकी मुख्य बातों, जैसे निर्माण परिपूर्ति और परिचालन का वर्णन कर सकना चाहिए। उदाहरण के लिए कपड़े की जिल्द वाली पुस्तक कागज की जिल्द वाली पुस्तक से अधिक टिकाऊ होती है। जो व्यापारी पुन बेचने के लिए वस्तुएँ खरीदता है वह वितरण सम्बन्धी नीतियाँ जानना चाहता है। वस्तु को बनाने वाली कम्पनी उस उद्योग में बड़ी मशहूर हो सकती है और इसकी बिक्री नीति क्रेताओं के लिए आकर्षक हो सकती है। यह जानना आवश्यक है कि प्रतिस्पर्धियों की वस्तुओं के मुकाबले में यह वस्तु ग्राहकों के आक्षेपों का कहाँ तक समाधान कर सकती है। यह बात आवश्यक है क्योंकि दूसरे की चीज को गिराने के लिए आपको उसकी या उसके निर्माता की आलोचना नहीं करनी है, क्योंकि ऐसा करना बुरा समझा जाता है।

अपनी वस्तु का पूरी तरह अध्ययन कर लेने के बाद अब आप बिक्री पेश करने की स्थिति में हैं। इसका सबसे आसान तरीका यह है कि अपने मन में या किसी कागज पर ही बिक्री की सीढ़ियाँ सोचिए और उनमें से प्रत्येक को पूरा करने के लिए आप जो कुछ कहेंगे, वह सोचिए। इस तरह अलग अलग तरह के ग्राहक से आप अलग अलग ढंग से बात कर सकते हैं। वस्तुत ग्राहक से मिलने से पहले अगला कदम है खोजना या प्रास्पेक्टिंग चूँकि सेल्समैन का समय सीमित होता है, इसलिए उसे यह अधिक से अधिक उपयोगी ढंग से खर्च करना चाहिए। ऐसे सम्भावी ग्राहकों का खोजना, जो ग्राहक बन सकते हैं, समय और शक्ति के बहुत से अपव्यय को बचा देगा। सम्भावी ग्राहक का पता चलने पर सेल्समैन उसे क्रेता बनाने के लिए उसकी विशेषताओं पर विचार करेगा यह देखना चाहिए कि वह खरीदने के लिए तैयार या समर्थ है या नहीं।

मिलने से पहले सम्भावी ग्राहकों की सूची बना लेने के बाद भी सेल्समैन उनसे मिलने के लिए जल्दी नहीं करता। वह सम्भावी ग्राहकों के नाम उनके सही

सर्वलिंग और उच्चारण पता लगाना है। शेक्सपीयर ने तो लिख दिया था—'नाम में क्या रखा है?' पर मनुष्य का नाम उसको औरों से अलग दिखाने वाला मुख्य चिह्न है यह उसका प्रतीक है और वह इसे प्यार करता है। यदि सेल्समैन यह प्रदर्शित करे कि वह इसे जानता है तो उसका अच्छा असर पड़ता है और वह आर्डर मिलने की दिशा में ठीक चल रहा है। अगला काम सम्भावी ग्राहक की निजी विशेषताएँ और उसके शौकों का पता लगाना। जब कोई बिल्कुल नया आदमी जैसे सेल्समैन कालेज में पढ़ने वाले उनके लड़के की प्रगति के बारे में या परिवार के किसी रोगी सदस्य के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ करता है, तब अधिकतर लोग खुशी महसूस करते हैं, चाहे वे इस बात से इनकार करें। सेल्समैन के लिए ग्राहक से मिलने से पहले एक और काम यह है कि वह अपने समय और काम की योजना इस तरह बनाए कि उसका अधिक समय सम्भावी ग्राहकों से बातचीत करने में गुजरे न कि घर में गैरहाजिर ग्राहकों के पास जाने के लिए यात्रा करने में। सेल्समैन का काम बेचना है, यात्रा करने का काम यात्रियों के लिए ही छोड़ दिया जाना चाहिए। पहले से समय की कर लेने से समय में बचत हो सकती है और इससे सेल्समैन के गौरव में वृद्धि होती है। आशा किये जाने पर पहुँचना हमेशा अच्छा रहता है।

बिक्री की सीढ़िया पार करना

पहुँचना या मिलना (Approach)—बिक्री की पहली सीढ़ी यह है कि सम्भावी ग्राहक के पास पहुँचा जाए और प्रसन्नतादायक ढंग से उसका ध्यान अपनी ओर खींचा जाए। यह बात आप शारीरिक रूप, सफाई, प्रसन्नता और विनय की दृष्टि से आकर्षक व्यक्तित्व का विकास करके कर सकते हैं। स्वाभाविक रूप में रहिये और कृत्रिम ढंग मत अपनाइए। अगर आप चाहते हैं कि लोग आपको पसन्द करें। तो मुस्कराइए, उदास चेहरा सफलता में बाधक है और मुस्कराहट सार्वभौमिक परिचय पत्र है। यदि आपने सम्भावी ग्राहक की दिलचस्पी अपने में पैदा कर दी है तो आप उसे पहली सीढ़ी पर पहुँचाने में कामयाब हो गए हैं। दिलचस्पी पैदा करने के लिए दूसरों में दिलचस्पी लीजिए, अगर सम्भावी ग्राहक कुछ कहता है तो ध्यान से सुनिए, तो इससे उसे खुशी होती है, अभी अपनी वस्तु या फर्म के बारे में बात मत कीजिए। ग्राहक के हित की दृष्टि से बातचीत कीजिए। किसी मनुष्य के दिल में पहुँचने का सबसे अच्छा रास्ता यह है कि उन चीजों के विषय में बात कीजिए जिन्हें वह सब से अधिक पसन्द करता है। एक बार डिजराइली ने कहा था—"आदमी से उसके अपने बारे में बात कीजिए और वह घन्टों आपकी बात सुनता रहेगा"।

अपील—सम्भावी ग्राहक का अनुकूल ध्यान अपनी ओर खींच लेने के बाद आपको यह ध्यान अपनी वस्तु पर पहुँचा देना चाहिए और वस्तु के बारे में प्रत्येक सम्बन्धित बात उसे बता कर इसमें उसकी दिलचस्पी पैदा कर देनी चाहिए। जो चीज उसके सुख, उसके स्वास्थ्य या उसके धन को बढ़ाएगी, उसकी ओर सुनिश्चित

शब्दों में उसका ध्यान खींचिए। उसके मन में अपने विचार बो दीजिए और बिक्री की फसल काट लीजिए। यह विचार ऐसे सोचे हुए शब्दों में प्रकट किए जाने चाहिए और इनसे गाहक की सावधानी, बेफिक्री और सुरक्षा की भावना की संतुष्टि होनी चाहिए। सीधे-सादे रोजाना की बोलचाल के शब्द सबसे अधिक कारगर होंगे। उनसे गाहक यह अनुभव करेगा कि यह विचार उसका अपना ही है। उनसे उसे आपकी वस्तु खरीदने के लिए प्रेरणा और विश्वास प्राप्त होता है।

स्पष्टीकरण—किसी अपूर्ण इच्छा में गाहक की दिलचस्पी पैदा कर देने के बाद उसे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि किस तरह यह वस्तु किसी और सम्भव साधन की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह उस इच्छा की पूर्ति करेगी। जिन शब्दों का वह प्रयोग करे वह उसके खरीदने के प्रेरकों से सम्बन्धित होने चाहिए। स्पष्टीकरण का सब से अच्छा तरीका यह है कि वस्तु को यथासम्भव नाटकीय रूप में पेश किया जाए। याद रखिये, करके दिखाने वाला सेल्समैन सिर्फ बातचीत करने वाले एक दजन सेल्समैनों के बराबर है। सफल स्पष्टीकरण वह है जिससे क्रेता पूरी तरह यह जाँच कर सके कि वह वस्तु उसकी आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति कर सकती है।

निश्चय कराना (Conviction)—खरीदने से पहले गाहक को यह निश्चय हो जाना चाहिए कि उस वस्तु की उसे बड़ी आवश्यकता है और जो माल बेची जा रही है वह उस आवश्यकता की सबस अच्छी तरह पूर्ति करेगी, पर निश्चय कराना आसान नहीं होता। सबसे पहले सेल्समैन को यह निश्चय होना चाहिए कि वह यह काम कर सकता है और यह निश्चय उसे अपने ऊपर आस्था, दूसरों पर आस्था और वस्तु पर आस्था के आधार पर होना चाहिये। अगर आप को यह निश्चय है कि आपकी वस्तु गाहक की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त है तो जो चीज आप बेच रहे हैं, उसके बारे में आप बड़े अधिकारपूर्वक बोलेंगे और आपकी बातें संजीदगी की भावना से गूंज रही होंगी। इससे आप में अटल विश्वास और असीमित श्रद्धा पैदा हो जाती है। इसका प्रभाव तुरन्त होता है और गाहक सदा कायल हो जाता है, बल्कि अनुप्राणित हो जाता है, और उसे आपसे खरीदने की प्रेरणा मिलती है। निश्चय कराने का एक तरीका सम्भावी गाहक के साथ तर्क करने का है, पर टैक्निकल खरीदारों को छोड़कर अधिकतर लोग तर्कपूर्ण बातों से प्रभावित नहीं होते। एक और भी खतरा है। अगर आप सावधान नहीं हैं तो इससे वाद विवाद पैदा हो सकता है। इसलिए सुझाव रखिए, बहस न कीजिए, क्योंकि दलील से अधिक से अधिक लाभ उठाने का एक ही तरीका है और वह यह है कि दलील से बचो। बहस से आप कभी जीत नहीं सकते, क्योंकि यदि आप बहस में हार जाते हैं तब तो हार ही जाते हैं और यदि आप जीत जाते हैं तो आप बहस में भी हारते हैं और गाहक से भी हाथ धोते हैं। अगर आदमी को उसकी इच्छा के विरुद्ध विश्वास करा

दिया जाय तो उसकी राय तो अब भी वही रहती है। पर अब आपके प्रति उसकी सद्भावना खत्म हो जाती है। दूसरा तरीका प्रेरणा का तरीका है, प्रेरणा का सारतत्व प्रमाण है। एक प्रमाण है प्रयोग करके दिखाना। दूसरा प्रमाण है विशेषज्ञों के प्रमाणपत्र। वस्तुओं का प्रयोग करने वालों के प्रमाण पत्र विश्वास कराने का एक और साधन है, पर यदि सब आक्षेपों का समाधान न हो जाय तो विश्वास नहीं होता। आक्षेप या तो वास्तविक होते हैं और या बहाने होते हैं। नये सेल्समैन प्राय आक्षेपों से डरते हैं पर अनुभवी सेल्समैन आक्षेपों को बिक्री के रूप में बदल देते हैं। अलग-अलग तरह के क्रेता होते हैं और वे सब तरह के आक्षेप करते हैं। इन क्रेताओं को पांच जोड़ियों में बाँटा जा सकता है।

पहले वह गाहक है जो बोलता ही चला जाता है और उसका विपरीत व्यक्ति वह है जो बिलकुल नहीं बोलता। बोलने वाले महाशय को सम्हालने का एक ही तरीका है—उन्हें टोकिए मत, पर जब वह सांस लेने के लिए रुके तब नम्रता और दृढ़ता के साथ अपनी बात रख दीजिए। डरते रहने से कोई लाभ नहीं। जो कुछ वह कहता है उसका सम्बन्ध अपनी वार्ता से जोड़ दीजिए और ऐसे उत्साह के साथ बेचिये जैसे आप बेच सकें। पर चुप महाशय के साथ समस्या यह है कि उन से बुलवाया जाय। एक एक शब्द वाले प्रश्न और उत्तर करते रहने का कोई लाभ नहीं। उनसे ऐसे प्रश्न पूछिये जिनके उत्तर में उन्हें हाँ या ना कहना पड़े। यदि उसका उत्तर हां में है तो आप अपनी बात जारी रखिये क्योंकि यदि वह प्राय सहमत हो जाता है तो वह अन्त में खरीद लेगा। यदि वह नहीं में उत्तर देता है तो आप सेल्समैन का प्रसिद्ध सवाल 'क्यों' का उपयोग करें। उसके उत्तर से आप अपनी बातचीत को आगे बढ़ा सकेंगे और अपना काम सफल कर सकेंगे। दूसरी जोड़ी में बहुत अधिक मित्रता दिखाने वाले और नाक चढ़ाने वाले तथा व्यंग करने वाले क्रेता हैं। मैत्री-पूर्ण महाशय एक जाल और मृगमरीचिका है। बड़ी प्रसन्नता से पेश आकर वह आप को अपना किस्सा सुना देगा इसलिए सावधान रहो और उसे इतनी दिलचस्पी पैदा करो कि वह काम की बात पर आ जाए। व्यंग करने वाले खरीददार आपको छोटा महसूस करा कर ही खुश होते हैं। ये बेचारे हीन भावना के रोगी होते हैं और वे बड़प्पन दिखा कर इसे दबाने की कोशिश करते हैं। ऐसे ग्राहकों के साथ व्यवहार करते हुए आवेश में मत आओ। मुस्कराते रहो। उन्हें अपने को बड़ा महसूस करने दो और इसमें उनकी सहायता करो और वे यह मानेंगे कि आप बड़े अच्छे आदमी हैं और वे माल खरीदेंगे।

इसके बाद डरता हुआ हिचकचाने वाला क्रेता और बड़ी-बड़ी बात हांकने वाला क्रेता आते हैं। भयभीत क्रेता चिन्तित रहता है और उसे गल्ती हो जाने का डर लगा रहता है। उसे प्राय यह डर होता है कि यदि मैंने खरीदने में गल्ती की तो मेरी नौकरी चली जायगी। अब आपको अधिक उत्साह से यह बताना चाहिए कि यदि वह नहीं खरीदेगा कि तो उसे क्या नुकसान होगा। उसे खरीदने से

जितना भय है उससे अधिक नय न खरीदने से पैदा कर दीजिए। पर बड़ी बड़ी बातें हांकने वाले के साथ आपको इनसे बिल्कुल उल्टा व्यवहार करना होगा। वह अपने मिथ्याभिमान के कारण बड़ी डींग हांकेगा थोड़ी मात्रा में उसे कोई दिलचस्पी नहीं होगी। ऐसे आदमी को कम बेचना (Under selling) होता है। उससे चाहिए कि आप उसकी कृपा की सराहना करते हैं और जब वह चाहेगा तब उसके बड़े आर्डर की पूर्ति खुशी से करेंगे। पर उसे छोटा आर्डर फौरन देने के लिए चाहिये और इसके बिना मत छोड़िये।

चौथी जोड़ी में वह वृद्ध महाशय हैं जो आपके जन्म पहले से कारोबार कर रहे हैं और वे न तो नए विचारों को पसन्द करते हैं और न नए सेल्समैनों को, और वह नौजवान है जो शायद अभी विश्वविद्यालय से निकला है और यह दिखाना चाहता है कि वह सब कुछ जानता है। चिड़चिड़े वृद्ध महाशय के साथ व्यवहार करते हुए यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि वह वर्षों से सेल्समैनों के साथ व्यवहार करता रहा है और जो बातें आप उससे कहने वाले हैं, वे बातें वह पहले अनेकानेक बार सुन चुका है। बिल्कुल ठीक। अब आप उससे सहायता लीजिए, उसका उचित आदर कीजिए, उससे सलाह लीजिए, उसे यह बताइये कि आप निश्चित रूप से ऐसा समझते हैं कि उसने ऐसी प्रत्येक चीज का लाभ उठाया है, जो उसके व्यवहार के लिये लाभदायक हो। उदाहरण के लिए, उसके टेलीफोन और टाइपराइटर के उपयोग की चर्चा कीजिए, जिनमें से किसी का भी उसने अपने शुरू के दिनों में उपयोग नहीं किया था। वह यह सुन कर खुश होगा, उसकी भावना की तृप्ति होगी और वह आपकी वस्तु में दिलचस्पी रखने लगेगा। अजीब बात है कि ऐसे ही तरीके नौजवानों के साथ व्यवहार करने में भी आवश्यक हैं। उसे यह परेशानी है कि वह उमर में कम है और शायद दीखता भी वैसा है और उसे भय है कि उसे मूर्ख बनाया जाएगा। वह यह दिखाना चाहता है कि वह वास्तव में कितना चतुर है और सचमुच होगा भी, क्योंकि अच्छा सेलसमैन प्रत्येक से कुछ सीखने की कोशिश करता है। इसलिए इस नौजवान को यह मौका दीजिए कि वह आपको कुछ सिखावे। उससे अपने काम या वस्तु के पहलुओं के बारे में उसकी राय पूछिये और उसे जब यह अनुभव होगा कि आप उसका आदर करते हैं तब वह खुश हो जायेगा उसे छोटा करके मत देखो उसके प्रति नम्रता प्रदर्शित करो और वह भी बदले में नम्रता प्रदर्शित करेगा, और बड़ी बात यह है कि वह माल खरीदेगा।

अन्त में हम उस व्यक्ति के पास पहुँचते हैं जो आपके कहे हुए को नहीं सुनता और उसके साथ उस सावधान क्रेता को रखते हैं जो ध्यान से सुनता तो है पर जल्दबाजी में आर्डर नहीं देना चाहता। वह न सुनने वाला कितनी कुढ़न पैदा करता है। वह आपकी तरफ नहीं देखता। मालूम होता है जैसे मीलों दूर हो और आपकी ओर बिल्कुल ध्यान न देकर आपकी बढ़िया से बढ़िया बात को बरबाद कर देता है। इसके साथ आपको पहले समूह के चुप महाशय की तरह व्यवहार

करना है। उससे प्रश्न पूछिये ! उसे अपने साथ बातों में लगाइये। अपनी बिक्री सम्बन्धी बात करने से पहले उससे प्रत्येक बात पर हाँ कहलवाइए और धीरे-धीरे वह आपकी बात सुनने लगेगा और आप का माल खरीदेगा। सावधान केता प्राय औरों की अपेक्षा धीरे सोचने वाला और बात करने वाला होता है और यद्यपि वह आपकी बात कान लगा कर सुन रहा है, तो भी आपको यह निश्चय कर लेना चाहिए कि वह आपकी सब बात समझ रहा है। बहुत से सेल्समैन अपने उत्साह में कुछ जल्दी बोलने लगते हैं और बिक्री की बातचीत करते हुए टैक्नीकल या उस पेशे में चलने वाले शब्द बोलने लगते हैं। यह निश्चय कर लेना महत्वपूर्ण है कि आपका सम्भावी ग्राहक आपकी बात समझ रहा है और ऐसा कीजिए कि वह ग्राहक आपकी चीज पर अपने को बेच दे।

आक्षेपों का उत्तर देना—अगली समस्या यह है कि किस किस तरह के आक्षेप उठाये जा सकते हैं और उनका जवाब देने का सबसे अच्छा तरीका क्या है। शुरू में ही यह बता देना उचित होगा कि जब कोई सम्भावी ग्राहक आक्षेप करता है, तब शायद वह अधिक जानकारी मांग रहा है। आखिरकार यदि सम्भावी ग्राहक प्रश्न न पूछे तो उसे माल बेचना बड़ा कठिन है, पर आक्षेप वास्तविक भी हो सकता है और बहाना भी। वास्तविक आक्षेप का प्राय यह अर्थ होता है कि सम्भावी ग्राहक की दिलचस्पी है। वास्तविक आक्षेप का सीधे तौर से परन्तु सम्भावी ग्राहक को बिना नाराज किये जवाब देना चाहिए। बहानों से यह पता चलता है कि सेल्समैन सम्भावी ग्राहक के मन में उसकी आवश्यकता की पर्याप्त भावना पैदा नहीं कर सका। वह यह भावना पैदा नहीं कर सका कि वह वस्तु उसकी आवश्यकता की पूर्ति करेगी। जहां तक हो सके, आक्षेपों का पहले ही अनुमान कर लेना चाहिये और उनका समाधान बिक्री की बातचीत करते हुए पेश कर देना चाहिये। उदाहरण के लिये, ग्राहक यह कह सकता है कि मैं कम्पनी के नाम से वाकिफ नहीं हूं क्योंकि यह नई है। उत्तर में आप उसे यह बता सकते हैं कि यद्यपि फर्म नई बनी है तो भी इसके अफसर बहुत नामी और अनुभवी लोग हैं। उसके कथन के उत्तर में यह न कहो "नहीं आपकी बात गलत है"। अपनी बात का सीधा खण्डन किसी को भी पसंद नहीं आता। इसका उचित उत्तर शायद यह होगा, "यह ठीक है, महोदय, हमारी फर्म पिछले साल ही संगठित हुई है। तो भी इस कम्पनी के अफसरों की यह एक सूची है और उनके पिछले अनुभव का थोड़ा-थोड़ा इतिहास दिया गया है। यह देखिये कि १५ साल से हमारा जनरल मैनेजर अमुक कम्पनी का सेल्स मैनेजर था," इत्यादि। सम्भावी ग्राहक शायद यह कहे, "नहीं आपकी वस्तुएं बहुत महंगी मालूम होती हैं" ऐसी अवस्था में एकदम यह न कह दो "नहीं जनाब, बिलकुल नहीं"। अच्छा तरीका यह है कि ऊँची कीमत की बात स्वीकार कर लो, पर अपनी वस्तु की वे विशेषताएं बता कर जो सस्ती चीज में नहीं है, उसे उचित ठहराओ। उसे वे फायदे बेचो जो लागत के मुकाबले बहुत अधिक हैं। इसलिये मान्य आक्षेपों की अवस्था में

किसी भी आक्षेप का उत्तर सदा इस तरह शुरू करो जैसे आप सम्भावी ग्राहक से सहमत हैं। इसके बाद 'लेकिन' शब्द लगाकर अपनी बात कहिए। ऊपर से सहमति दिखाकर आप सम्भावी ग्राहक को ढीला कर देते हैं और उसके बाद आप अपनी बिक्री सम्बन्धी विशेषताएं उसके दिमाग में बैठा देते हैं। इस तरीके को कभी कभी "जी हां, लेकिन" तरीका कहते हैं और यह सदा अच्छा रहता है। क्योंकि इसमें आप सम्भावी ग्राहक की भावनाओं का आदर करते हैं।

जब आपको यह बिलकुल निश्चित रूप से अनुभव हो कि आपका सम्भावी ग्राहक न खरीदने के बहाने ढूंढ रहा है, तब आप कई बातें कर सकते हैं। एक तरीका यह है कि वह जो बहाना पेश करे, उसी से आप यह सिद्ध करें कि उसे जरूर खरीदना चाहिए। अगर सम्भावी ग्राहक यह कहता है, "मुझे आपसे बात करने की फुरसत नहीं, तो आप इस तरह उत्तर दे सकते हैं, "मैं समझता हूं, महोदय कि आप बड़े कार्यव्यस्त आदमी हैं। इसी कारण तो आप सफल आदमी हैं। आप जानते हैं कि आपको सफलता कायम रखने के लिए आपको आकस्मिक आवश्यकताओं का उपाय कर लेना चाहिये। इसलिए मुझे निश्चय है कि आप इतने व्यस्त नहीं हैं कि यह विचार न कर सकें कि मेरे प्रस्ताव से आपको भविष्य की वित्तीय सुरक्षा करने में किस तरह सहायता मिलेगी"। अगर सम्भावी ग्राहक यह कहता है, "मुझसे अगले सप्ताह मिलिए" या, "मैं इस विषय पर विचार करूंगा" तो इसका उत्तर इस तरह दिया जा सकता है 'यह तो आपकी बड़ी कृपा है कि आपने मुझे फिर मिलने को कहा, पर बहुत आग्रह करने की इच्छा न रखते हुए भी क्या आप सचमुच यह समझते हैं कि आपको मेरी वस्तुओं के विषय में तब अब से अधिक जानकारी मिल सकेगी। उन पर तो हम अच्छी तरह विचार कर ही चुके हैं और मैंने उनके बारे में जो कहा है, उससे आप सहमत हैं। प्रत्येक प्रस्ताव या तो अच्छा होता है या बुरा, यदि यह बुरा प्रस्ताव है तो आप मुझसे न चाहेंगे कि मैं आपसे अगले सप्ताह या फिर कभी मिलूं, पर चूंकि इस बात पर हम असहमत नहीं हैं कि यह अच्छा है, इसलिए मुझे निश्चय है कि कारबारी के नाते आप इसके लाभ जल्दी से जल्दी प्राप्त करना पसन्द करेंगे...... अगर सम्भावी ग्राहक यह कहे कि मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है तो इसका यह उत्तर हो सकता है, "बेशक, आपको दिलचस्पी नहीं और इसका कारण यह है कि आपके कान तक यह बात नहीं पहुंची कि किस तरह हमारी योजना आपका परिचालन व्यय आधा कर देगी। आज मैं आपके सामने जो बात रखना चाहता हूं वह यह है...इस बहाने के जवाब में कि स्टाक बहुत पड़ा है, यह कहा जा सकता है, "प्रत्येक सफल व्यापारी सब सम्बन्धित सौदे सदा स्टाक में रखता है, यह तो मुझे मालूम है। इसी कारण वह सफल होता है क्योंकि आप अपनी वस्तुओं की सूची बड़ी सावधानी से बनाते हैं इसी कारण मुझे निश्चय है कि आप हमारी नई किस्म की कमीजों को उसमें शामिल करना पसन्द करेंगे। अच्छे दूकानदारों के ग्राहकों में हर जगह उनकी मांग है"। बहाने को

सम्भालने का एक और तरीका यह है कि उसकी उपेक्षा कर दी जाए यदि वह बहाना फिर पेश किया जाए तो इस वास्तविक आक्षेप मानकर इसका उत्तर दिया जा सकता है। यदि यह बहाना मात्र है तो अगली बार सम्भावी गाहक कोई और बात कहेगा।

समाप्ति (Close)—बिक्री की समाप्ति बिक्री की आखिरी सीढ़ी है। अगर और सीढ़ियाँ सफलता से पार हो गई हों तो समाप्ति स्वाभाविक रूप से हो जायगी। आखिरकार बिक्री की समाप्ति उस भेंट का तार्किक और स्वाभाविक परिणाम है जो शुरू से ठीक तरह की गई है, पर ऐसा कोई विशेष समय नहीं है जिसमें आर्डर फार्म पेश किया जाय और सम्भावी गाहक बिना कुछ बोले हस्ताक्षर कर दे। यह नियम बनाया जा सकता है कि बिक्री की बात खत्म करने का ठीक समय वह होता है जब आप यह महसूस करते हैं कि सम्भावी गाहक झुक रहा है और आप जानते हैं कि आप आर्डर ले सकते हैं। यदि ठीक समय ५मिनट बाद आजाए तो उसी समय बिक्री की बात खत्म करके मौके का लाभ उठाइये। यदि यह एक घंटे या दो घंटे या तीन घंटे बाद आए तो भी यही तरीका कीजिए। अपने समय से ज्यादा मत ठहरिए। जब आप यह देखें कि सम्भावी गाहक खरीदने वाला है तब बहुत खुश न हो जाइए। सम्भावी गाहक आपको बहुत खुश देखकर पीछे हटने लगता है। सम्भावी गाहक सोचता है कि यह आदमी एक आर्डर लेकर इतना खुश होगया है। तो ऐसा बहुत कम होता दीखता है। इसलिए अच्छा हो कि मैं धीरे चलूं। शांत और गम्भीर रहिए और मन में दृढ़ निश्चय रखिए कि आपको आर्डर मिलेगा। इसके न मिलने पर ही आश्चर्य कीजिए, मिलने पर नहीं। आर्डर लेने का एक निश्चित उपाय यह है कि इस तरह बात कीजिए जैसेसम्भावी गाहक खरीदेगा ही। यह न कहिए "यदि आप यह वस्तु खरीदें", बल्कि यह कहिए "जब आप इसे अपने यहां लगवा लेंगे .. .." इससे अवचेतन मन में प्रेरक विचार जम जाता है। बात खत्म करने के अलग अलग तरीके और रूप हैं।

परख समाप्ति (Trial Close)—अपनी बातचीत में आगे बढ़ते हुए आपको अपने सम्भावी गाहक को अपने पीछे पीछे ले जाने की कोशिश करनी चाहिए और ऐसा करते हुए यह निश्चय करते रहना चाहिए कि उसके विचार आपके बेचने के अनुकूल रहें। प्रत्येक बात के खत्म होने पर अपने सम्भावी गाहक से उसकी राय पूछिए। इससे आपको उसकी प्रतिक्रिया समझने में मदद मिलेगी। इसका प्रत्येक सम्भव जगह प्रयोग कीजिए, प्रश्न पूछते रहिए। यदि इसमें सफलता न हो तो फिर कोशिश कीजिए। याद रखिए, परख समाप्ति परीक्षणात्मक ढंग है।

वैकल्पिक समाप्ति—अगर आप को परख समाप्ति से यह पता चले कि आपको आर्डर मिलने वाला है तो आप बड़े सरल तरीके से एक और खत्म करने की स्थिति पैदा कर सकते हैं। क्रेता बेचे जाना पसन्द नहीं करते। वे खरीदना पसन्द करते

है। वैकल्पिक समाप्ति में गाहक को चुनाव करने दिया जाता है। उदाहरण के लिए, आप इस ढग से यह कह सकते हैं "यह कमीज बहुत बढिया चीज है, जो शुद्ध रेशम जैसे बढिया सिल्क की बनी है और इसमें बिलकुल नये फैशन के दो कालर हैं। यह बहुत दिन चलने वाली है। आप कौनसा रग पसन्द करेंगे, भूरा या नीला"।

सक्षेप समाप्ति---अपनी चीज के बारे में बहुत सी बातें बताने के बाद उन्हें सक्षेप में अपने गाहक की आवश्यकताओ की दृष्टि से पेश कीजिए। अपनी आर्डर बुक निकाल लीजिए और उसे यह समझने दीजिए कि वह कुछ खरीदने वाला है और फिर प्रत्येक चीज लिखते जाइये और लिखते हुए उसे बोलते जाइए। अब उनकी कीमतें लिख दीजिए और सूची पूरी करने के बाद उसे जोड कर अपने गाहक को दे दीजिए और उसे कहिए कि वह इन्हें चक कर लें। इसके बाद उससे आर्डर को ठीक से जाच लेने के लिए कहिए और उसे अपना पैन दे दीजिये। जाचने शब्द में हस्ताक्षर करने के लिए प्रार्थना से बहुत कम बात आती है।

लडाकू समाप्ति (Fighting Close)—कुछ गाहक बिना यह देखे कि प्रस्ताव कितना अच्छा है, बेचे जाने के हर प्रयत्न का आप से आप विरोध करते है। वे सख्त रवैया अपना लेते है और आप की सब दलीलो के जवाब में सक्षेप से नहीं 'कह देते हैं' अगर आप इस हमले मे दब गये तो खत्म हो गये। घबराइये नही और उसको खुश करने की कोशिश कीजिए। वह जो कुछ कहे उस सबसे सहमति प्रकट कीजिए, पर जब सम्भव हो तब ही अपनी बिक्री सम्बन्धी दलील बीच में डालने का मौका न चूकिए। बड़े ध्यान से सुनिये और माफी सी मागते हुए यह कहिए, 'महसूल हम अदा करते हैं", "हम आपको ३० दिन की मोहलत दे सकते है", "आपको समय पर माल पहुँचाने के लिए विशेष रूप से वहा जाना पड़ेगा और मैं वहा तुरन्त चला जाता हूँ" "हम आमतौर से ४ सप्ताह में माल पहुचाते है पर मुझे आशा है कि मैं हैड आफिस को मना लूगा कि वह आपको २ सप्ताह बाद माल पहुँचादें', "अगर हम आपका आडर लें तो आपकी चीजें देने के लिये हमें फैक्टरी में ओवर टाइम कराना पडेगा पर आपकी जैसी ऊँचे पाये की फर्म के साथ......" अपने सम्भावी गाहक को यह अनुभव कराइये कि उसका आर्डर सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और उसकी सेवा करने की इच्छा ने उस असुविधा को मामूली चीज बना दिया है। आप प्राय निश्चित रूप से यह देखेंगे कि वह पछताएगा और आपको आर्डर मिल जाएगा। आपसे कहा जाएगा कि आप अलग कष्ट न करें। सामान्य शर्तें ही स्वीकार कर ली जाएगी।

सेवा समाप्ति (Service Close)—अपनी सारी जानकारी मत देदीजिए, चाहे आप आर्डर की बात समाप्त करने की कोशिश ही कर रहे हो। यदि आप को नकार मिल जाए तो आपके पास कहने के लिए कोई और बात नही रहती,

बिना कारतूस की बंदूक की तरह आप चुप हो जाते हैं। आखिरी प्रेरणाकर्ता के रूप में कुछ चीज बचा रखिए। करीब-करीब प्रत्येक संगठन या वस्तु के साथ ऐसी कोई न कोई बात होती है। सेवा? विज्ञापन? सोल एजेन्सी? पर निश्चय रखिये यह ऐसी चीज है जिसमें आप का सम्भावी ग्राहक दिलचस्पी लेगा और जिसकी उसे आवश्यकता है। यह इस तरह की बात है जैसे प्रत्येक आर्डर के साथ कुछ बोनस देना हम सब को यह महसूस करके खुशी होती है कि हमें मुफ्त में कुछ मिल रहा है। इसलिए वह प्रस्तुत कर दीजिए।

किसी भी तरह से आप बिक्री की समाप्ति करें पर चतुराई से आग्रह कीजिए, संजीदगी से अनुरोध कीजिए और कूटनीति से मनाइये।

विशेष वस्तुएँ बेचने वाले सेल्समैन—विशेष वस्तुएँ बेचने वाले सेल्समैनों का काम सबसे कठिन और सब से अधिक आमदनी वाला होता है। वे बीमा पालिसियाँ, टाइपराइटर, संकलन मशीनें, कैश रजिस्टर और तराजू और इसी तरह की अन्य वस्तुएँ बेचते हैं जिनकी कोई विशेष माँग नहीं होती। विशेष वस्तुएँ बेचने में शौकिया चुस्त सेल्समैन की आवश्यकता नहीं, चाहे वह कितना ही उत्साही हो। यह काम बहुत अधिक प्रशिक्षित और उत्साह, बुद्धि तथा मानसिक चुस्ती से युक्त आदमी कर सकता है जो प्रशिक्षा ग्रहण करने के लिए सदा तैयार है और जिसमें शक्ति, संकल्प और चरित्र का आकर्षण है। इस तरह के सेल्समैन को बुलाया नहीं जाता, उसके आने की आशा नहीं की जाती और उसका स्वागत नहीं किया जाता। यह प्रत्येक आर्डर के लिए लड़ता है और बारबार इनकारी मिलने पर भी पस्त-हिम्मत नहीं होता। वह अपनी असफलता का विश्लेषण करता है और फिर और अधिक दृढ़ता से लड़ता है। हौसला करके खड़े रहना उसकी सफलता का बड़ा महत्वपूर्ण हिस्सा है। शान्तिपूर्वक कर्त्तव्यनिष्ठ, सावधान योजना निर्माण और अपने आकर्षक व्यवहार से वह स्वयं को और अपनी वस्तु को बेचता है। वह वस्तु नहीं बेचता, उसके फायदे बेचता है। उसका काम आसान नहीं। पर यदि उसमें अच्छे सेल्समैन के सद्‌गुण हैं और यहाँ उल्लिखित गुण प्रचुर मात्रा में हैं तो वह सफल हो सकता है और उसकी आमदनी उन बहुत से लोगों से अधिक हो सकती है जो अपने पेशे में ऊँचे पद पर हैं।

इन विशेष वस्तुओं में जीवन-बीमा पालिसी बेचना सबसे कठिन काम है। जीवन बीमा एक अमूल्य वस्तु है और इसके लिए सबसे ऊँचे दर्जे की सृजनात्मक विक्रय-कला की आवश्यकता है। कभी-कभी यह कहा जाता है कि जो आदमी जीवन-बीमा बेच सकता है वह हर चीज बेच सकता है। इस तरह की चीजें खरीदने का प्रेरक सावधानी की भावना की संतुष्टि है। आदमी अपने परिवार की सुरक्षा के बारे में निश्चिन्त होना चाहता है। वह यह निश्चय करना चाहता है कि आवश्यकता के समय उसकी इच्छा की पूर्ति का उपाय हो जाएगा। बुढ़ापा सामने दिखायी दे रहा है

जब वह आये तब आदमी वित्तीय दृष्टि से स्वतन्त्र होना चाहता है। जीवन-बीमा के खरीदने से उसे मानसिक शान्ति प्राप्त होती है और उसके तथा उसके परिवार के मंगल, सुख और सुविधा में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। १८ वर्ष से ऊपर और ६५ वर्ष से नीचे का प्रत्येक व्यक्ति ग्राहक बन सकता है और इसमें स्त्रियां भी शामिल हैं जो पहले से अधिक बीमा पसंद होती जा रही हैं। इसके साथ प्रत्येक व्यक्ति जीवन बीमे को अच्छा समझता है और एक पालिसी खरीद लेना चाहता है पर खरीदता नहीं है। सेल्समैन के नाते आप का काम है उसे खरीदने के लिए प्रेरित करना।

जीवन बीमे की बिक्री योजना बनाने में बहुत विचार की आवश्यकता होती है। जब आप किसी ग्राहक के पास जाएँ तो उसे यह अनुभव कराइये कि जीवन बीमा से उसे क्या लाभ हो सकते हैं। उसका ध्यान अपने और अपने परिवार के लिए सम्पत्ति जमा करने पर केन्द्रित कीजिये, उसका ध्यान इस तथ्य की ओर खींचिए कि इस सम्पत्ति से बहुत से लाभ हैं। उसे बताइये कि इस योजना से बचत होने लगेगी जो आवश्यकता या सकट के समय आसानी से काम आ सकेगी। उसे समझाइये कि यदि किसी तरह की बीमारी या दुर्घटना से वह बिलकुल असमर्थ हो जाए तो इस योजना से उसे प्रीमियम के बारे में कोई परेशानी नहीं होगी और कि उस की सम्पत्ति और बचत जैसी की तैसी बनी रहेगी। जीवन बीमे के बारे में जो कुछ आप जानते है उसे वह आप न बताने लगिए। उसे सिर्फ यह बताइए कि इससे उसे क्या लाभ होगा। यह योजना ग्राहक को अपना रुपया ऐसी जगह लगाने का मौका देती है जहाँ वह बढता रहेगा और जब ग्राहक वहा पहुँचेगा तब भी वह वहाँ होगा। यह उसे वृद्धावस्था में आमदनी की व्यवस्था कर देती है। आज उस आदमी के सामने, जिसके पास बडी सम्पत्ति है, एक बडी कठिन समस्या यह है कि मृत्यु-शुल्क देने के लिए वह नकद रुपया भी छोड कर मरे। प्राय. उसकी आस्तियां आसानी से बिकने योग्य नही होती और उसकी मृत्यु पर उसके आश्रितो के लिए नकदी एक गम्भीर समस्या होती है। जीवन बीमा मृत्यु पर नकदी की व्यवस्था करता है।

विशेष वस्तुएँ बेचने वाले सेल्समैन की सफलता इस बात पर निर्भर है कि वह शब्दों का प्रयोग करने में और शब्दचित्र प्रस्तुत करने में कहाँ तक समर्थ है और यदि वह भविष्य का उज्वल चित्र पेश कर सकता है तो उसका कारबार बढता ही जाएगा।

बिक्री सम्बन्धी पत्र

आपने यह समझ लिया है कि भेंट में किस तरह व्यवहार करना चाहिए। आप को अपनी वस्तुओं या सेवा की बिक्री सम्बन्धी बातें मालूम हैं। आप अपने ग्राहकों और सम्भावी ग्राहकों को जानते हैं और आपने उनका अलग-अलग अध्ययन किया है। आप प्रत्येक व्यक्ति के सम्भावित आक्षेपों का पहले से अनुमान कर सकते हैं और उनका जवाब सोच सकते हैं और उन्हें अपने लिए लाभदायक बना सकते हैं।

आप जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का अनुकूल रुख अपनी ओर खींचने का सर्वोत्तम तरीका क्या है, उसकी दिलचस्पी पैदा करने का सर्वोत्तम तरीका क्या है, उसे अपनी वस्तु या सेवा पसन्द कराने का तरीका क्या है और उससे अपना अभिलषित कार्य कराने के लिए ठीक किस जगह और कैसे बात समाप्त कर देनी चाहिये। आप सबसे अधिक अच्छी तरह जानते हैं कि किस तरह एक आदमी दूसरे से भिन्न है और उसके अनुसार ही बिक्री सम्बन्धी बातचीत करना कितना आवश्यक है। पर यदि आपको इस कारण भेंट का मौका नहीं मिल सकता कि आप का गाहक या सम्भावी गाहक बहुत व्यस्त है या रोगी या छुट्टी पर गया हुआ है या किसी कारण से आपसे मिल नहीं सकता या नहीं मिलता तो सीधी भेंट के बाद सर्वोत्तम चीज है वैयक्तिक पत्र। चतुराई से लिखा हुआ पत्र आपके गाहकों और आप में मैत्री का मजबूत बंधन बांध सकता है और उसके परिणामस्वरूप आपको सम्भावी गाहक से "आज नहीं, धन्यवाद' के स्थान पर अच्छा स्वागत प्राप्त हो सकता है।

याद रखिये कि हर आदमी चिट्ठी पाना पसन्द करता है, और कारबार बड़ा हो या छोटा, प्रत्येक कारबारी सवेरे सबसे पहले डाक देखता है। बहुत बार पत्र से सीधी भेंट की अपेक्षा भी अधिक अच्छा परिणाम हो सकता है। सम्भावी गाहक चुस्त और ग्रहणशील होता है। वह कारबार करने के लिए बैठा है, आकर्षित किए जाने के लिए तैयार है और ऐसे किसी भी प्रस्ताव में दिलचस्पी लेने के लिए तैयार है जो उसके कारबार को अधिक दक्ष और अधिक सफल और अधिक लाभदायक बना सके। कोई गाहक या सम्भावी गाहक आपके प्रस्ताव पर विचार करने के लिए इसके अधिक अनुकूल मानसिक स्थिति में नहीं हो सकता। इसका पूरा लाभ उठाइ एक अच्छा बिक्री सम्बन्धी पत्र लिखिए। इस काम में आप से ज्यादा सुविधा और किसी को नहीं है।

पत्र अनेक प्रकार के होते हैं और इस विषय पर बहुत सी पुस्तकें लिखी गई हैं, पर हम सिर्फ उन पत्रों पर विचार करेंगे जो बिक्री के सम्बन्ध में होते हैं। पत्र किसे कहते हैं ? पत्र एक लिखित संवाद है जो एक खास समय एक खास व्यक्ति को एक खास प्रस्ताव के बारे में आपकी भावनाएं बताता है या सूचना पहुंचाता है। पत्र आपके विचारों का अभिलेख है। जिस पत्र पर आपने कुछ समय और दिमाग खर्च किया है, उससे आपके सम्भावी गाहक को कुछ सोचने की वस्तु मिलती है। अपने पत्रों की सुविधाएँ बेचने की दृष्टि से तैयार कीजिए, वस्तुएँ नहीं। आपको जितने पत्र मिल सकें उन सब को पढ़ने का अभ्यास डालिए और आप देखेंगे कि उनमें से बहुत थोड़ों में वास्तविक सेल्समैनशिप का लेश भी है। व्यापारी फर्मों द्वारा लिखे गए अधिकतर पत्र नीरस और निर्जीव होते हैं जिनमें घिसे-घिसाए विचार और बातें लिखी होती हैं। अधिकतर पत्र ऐसे होते हैं जैसा अच्छे पत्र को नहीं होना चाहिए। उन्हें पथ प्रदर्शक बनाइए और उनसे विपरीत ढंग से लिखिए। इस तरह आप बिक्री सम्बन्धी अच्छा पत्र लिखना सीख जाएंगे।

अच्छा पत्र कैसे लिखें—पत्र पांच हिस्सों में बांटा जा सकता है :-

पहला अभिवादन। पत्र में उस व्यक्ति का उल्लेख होना चाहिए जिसके नाम वह लिखा जा रहा है। बजाए यह लिखने के कि "प्रिय महोदय," लिखिए "प्रिय श्री—"। "प्रिय महोदय" हर किसी के लिए लिखा जा सकता है पर जब आप उसमें किसी व्यक्ति का नाम डाल देते हैं तब उस पत्र में प्रेम और हार्दिकता झलकने लगते हैं। इस तरह आप अपनी बात को व्यक्तिगत रूप दे देते हैं।

दूसरा: आरम्भिक वाक्य। पत्र का पहला वाक्य दिलचस्पी प्रकट करने वाला होना चाहिए। प्रेम और हार्दिकता से लिखिए और स्वार्थ तथा दर्प के ढग से बचिए। "मैं" के बजाए "आप" का प्रयोग करके अपनी दिलचस्पी प्रकट कीजिए। अपने पत्र को "आपका कृपापत्र मिला" से पत्र आरम्भ कीजिए, "मुझे आपका पत्र मिला" से नहीं। पत्र आरम्भ करने का एक और प्रभावी तरीका कोई प्रश्न पूछना है "क्या आपने कभी सोचा है········ ?" इससे उस व्यक्ति में आपकी दिलचस्पी प्रकट होती है जिसे आप पत्र लिख रहे हैं।

तीसरा. पत्र का मध्य भाग। पत्र तभी प्रभावोत्पादक हो सकता है जब वह सीधे तौर से मतलब की बात कहता हो। आप पत्र में जो कुछ लिखना चाहते है उस सब को सिलसिलेवार लगाइए। प्रत्येक शब्द, प्रत्येक विचार और प्रत्येक वाक्य का अपना स्थान होना चाहिए। इसलिए लिखना शुरू करने से पहले यह ठीक ठीक तय कर लीजिए कि आप अपने पाठक से क्या चाहते है और उसी बात को लिखिए। यदि आप उसे नही लिखते तो उसे इसका कभी पता नही चलेगा। याद रखिए कि लोग भावना से अधिक प्रेरित होते है, बुद्धि से कम। इसलिए अपना पत्र प्रेम, लाभ, कर्त्तव्य, अभिमान, सुखभोग, आत्मरक्षण आदि प्राथमिक भावनाओं को प्रेरित करते हुए लिखिए। अपने पत्रो को 'समाचारमय' बनाइए, यदि आप किसी आदमी को समाचार देते है तो उसे आप से दिलचस्पी हो जाती है। रोज लाखों अखबार बिकते हैं और वे समाचारों के लिए बिकते हैं, सम्पादकीय लेखो या विज्ञापनो के लिए नही। फिर, सुझाव दीजिए, दलाल न कीजिए, पाठक के मन में आपके प्रस्ताव से होने वाले लाभो का ऐसा सजीव चित्र पेश कीजिए कि वह उसके लिए बहुत आकर्षक हो जाए। शब्दो से ऐसे चित्र प्रस्तुत कीजिए जिन्हें आपका पाठक समझ सके, जो चीज करने की इच्छा पैदा करने में आपको सफलता हुई है वह तुरत करने के लिए अपने पाठक को कारण दीजिए। बहुत से आदमी कोई काम करने के लिए मन मे तैयार हो जाते हैं पर वे उसे कभी करते नही, क्योंकि उसे तुरन्त करने के लिए कोई कारण नही होता। हजारो बिक्रियाँ रोज सिर्फ इसका कारण रह जाती हैं कि सेल्समैन गाहक को तुरत आर्डर देने के लिए कोई अच्छा और काफी कारण नही पेश कर सके। अपना कारण निश्चित रूप से बताइए और सदेह का कोई गुंजायश न छोडिए अन्यथा विलम्ब का कारण बना रहेगा। पाठक को अपना मन बनाने में सहायता

देकर—जिसने (सर्वथा अपनी स्वतन्त्र इच्छा से) वह काम करने का निश्चय किया किया है जो आप उससे कराना चाहते हैं—और उसे ऐसा तुरन्त करने का कोई उचित पुरस्कार प्रस्तुत करने के बाद अब उसके लिए ऐसा करना आसान बना दीजिए। आप पत्र के अंतिम भाग द्वारा उसे काम करने के लिए प्रेरित कीजिए।

चौथा अन्तिम भाग। पत्र का अन्तिम भाग पत्र के मध्य भाग में प्रस्तुत मुख्य बातें और लाभो का सक्षिप्त सारांश होना चाहिए। छोटे-छोटे वाक्य लिखिए जो चुस्त और तीखे हों। हर एक पंक्ति में कृपा और आदर की भावना डाल दीजिए और पत्र के अन्तिम भाग में भी इसे लाना न भूलिए। पत्र में कृपापूर्ण शब्द लिखिए। उससे सम्भावी गाहक आप के प्रति मैत्री भाव रखने लगता है। अपना पत्र इस तरह खतम कीजिए। "आदर और सद्भावना सहित, आपका हो।"

पाँचवां. हस्ताक्षर। पत्र पर सदा अपने आम तौर से किए जाने वाले हस्ताक्षर स्वाभाविक रीति से कीजिए।

पत्र एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से मुलाकात की तरह दो मनो का सम्मिलन है। इसलिए पत्र में तथ्य और परिस्थितियाँ इस तरह प्रकट होनी चाहिए कि दूसरा प्रभावित, प्रेरित और विश्वसित हो जाय। सब बेकार और निरर्थक शब्द काट दीजिए। व्यापारी दुनिया में गोलमोल बात का कोई अर्थ नही। छोटे-छोटे शब्द लिखिए। छोटे शब्दो में शक्ति और बल होता है। जब आप मिलने जाय और मिल न सकें, तब समयनिकाल कर निजी पत्र लिखिए। दकियानूसी पत्र चाहे वे हैड हाफिस से आए हु या आपने भेजें हो, जिनमें इस तरह का कुछ लिखा रहता है, "हम आपको यह सूचित करना चाहते हैं कि अमुक महाशय अमुक दिन अमुक समय आपसे मिलने आएंगे और विश्वास है कि आप उन्ह भेंट का अवसर देने की कृपा करेंगे", बिल्कुल बेकार होते हैं और रद्दी की टोकरी में फेंक दिए जाते है। प्रेमपूर्ण और मैत्रीपूर्ण निजी पत्र लिखिए जिससे उसे पता चले कि वह आपके प्रस्ताव की उपेक्षा करके कितनी हानि उठा रहा है। उसे यह बताइये कि आपके साथ कारबार करने से और लोगो ने किस तरह लाभ उठाया। यहा एक पत्र का नमूना दिया जाता है जो बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ।

"प्रिय.................श्री

उत्पादन में ३९% वृद्धि—हमारे एक हाल के गाहक को इतना अधिक लाभ हुआ। उसे पहले दिए हुए आर्डरो पर कोई उचित लाभ नही हो रहा था।

आपके लाभ की क्या स्थिति है?—क्या सामान और मजदूरी की बढ़ती हुई लागत या उत्पादन तथा लागत के अपर्याप्त नियत्रण के कारण आपको कम लाभ हो रहा है? आज के कारबार में भीतर की समस्यायो में बाहर की सहायता लेकर प्रगतिशील प्रबन्धको को अपने लाभ की मात्रा बढ़ाने में बड़ी सफलता हुई है।

बहुत सम्भव है कि हम आपको भी उसी तरह का लाभ पहुँचा सकें, जिस तरह हमने अपने अन्य गाहको को लाभ पहुचाया है। हम स्वय उपस्थित होकर आपके सामने अपने काम की रूप-रेखा पेश करने का अवसर चाहते है जो देना आपकी बडी कृपा होगी '' ''इस पत्र को देखिए यह सम्भावी गाहक की दिलचस्पी जागृत करने और उसे इस आश्चर्य में डालने के लिए कि यह सब क्या है, थोडी सी बात बताता है। निम्नलिखित पत्र सदा सम्भावी गाहक की दिलचस्पी पैदा करेगा। "आपकी कपनी के सामने आज एक महत्वपूर्ण स्थिति पैदा हो गई है जो इसके सारे भविष्य के सचालन पर आसानी से असर डाल सकती है। आपको इस स्थिति के बारे में जानकारी होनी चाहिए और मैं आपके सामने तथ्य प्रस्तुत करने के लिए बुधवार के सवेरे लगभग १० बजे आ रहा हू। आपके सहयोग के लिए बहुत धन्यवाद और आदर तथा सद्भावना सहित आपका ही।"

ये पत्र अनुकरण के लिए अच्छे नमूने है। इन नियमो को ध्यान में रखते हुए आप स्वय पत्र की रचना कर सकते है। पर उन पत्रो का उपयोग तभी कीजिए जब आप यह देख लें कि आपका पत्र नियमो के अनुसार है। इन नियमो को नुस्खे के बजाए नमूने के तौर पर प्रयुक्त कीजिए। आपका पत्र जोर से पढने पर ऐसा लगना चाहिए कि जैसे आप बिक्री सम्बन्धी बातचीत कर रहे है। पुराने ढग के प्रचलित शब्द और पदावलियाँ प्रयोग में न लाइये। यह कल्पना कीजिए कि आपका सम्भावी गाहक आपके सामने बैठा है और अपने पत्र की रचना इस तरह कीजिए जैसे आप उससे बात चीत कर रहे है।

विक्रयकर्त्ताओ का पारिश्रमिक—विक्रय-कर्त्ता का पारिश्रमिक बडा जटिल प्रश्न है और इस पर बहुत परीक्षण हुए है। कोई एक विधि सब जगह उपयुक्त नही जचती। चाहे जो विधि या विधियाँ अपनाई जाय पर उद्देश्य यह होना चाहिए कि ठीक ढग के आदमी को आकृष्ट किया जाय और रखा जाय तथा उसकी सेवाओ के मूल्य के अनुसार पुरस्कृत किया जाय। इस समस्या में बहुत कठिनाइया है। उसी कारबार में भी कुछ वस्तुएँ बेचनी सरल होती है और कुछ कठिन और कुछ से अधिक लाभ होता है और कुछ से कम। तेजी (बूम) में बेचना आसान होता है और मन्दी में कठिन। मौसम के समय बिक्री आसान होती है और मौसम के अलावा कठिन। कुछ क्षेत्रो में काम करना आसान होता है, तथा कुछ में कठिन और महगा। फिर उस काम को नापना और पुरस्कृत करना कठिन होता है, जो तत्काल फल देने के बजाय भविष्य की बिक्री का निर्माण करने के आशय से होता है। विक्रयकर्त्ताओ को पारिश्रमिक देने के दो मुख्य तरीके ये है कि या तो सीधे वेतन दिया जाय, और या उनकी कमाई को उनके कार्य के फल के साथ सबद्ध कर दिया जाय। यह पिछला तरीका, जिसके अनेक रूप है, दो उद्देश्यो से अपनाया जाता है। (१) बिक्री की मात्रा बढाने के लिए सीधा प्रलोभन देना और (२) बिक्री के खर्चों और बिक्री की मात्रा में कोई निश्चित अनुपात कायम करना।

भुगतान के मुख्य प्रचलित तरीके ये हैं (१) नियत वेतन। (२) नियत आधार पर कमीशन, (३) बिक्री की मात्रा के अनुसार विभिन्न दरों पर कमीशन (४) वेतन और कमीशन, (५) एकत्रित कमीशन, जब कई विक्रयकर्त्ता इकट्ठे काम करते हैं और प्रत्येक को समूह के कुल कार्य पर कमीशन दिया जाता है। नियत वेतन देना सीधी चीज है पर इससे परिश्रम करने के लिए कोई प्रलोभन नहीं मिलता। तो भी जहां कारबार को उन्नत करना हो, जहां कभी बहुत छोटे कभी बहुत बड़े आर्डर आते हैं या जहाँ आर्डर कभी-कभी आते हैं, वहाँ यही तरीका उपयुक्त है। परन्तु यह भय है कि विक्रय कर्त्ता उस व्यक्ति की अपेक्षा कम मेहनत करेगा, जिसकी आमदनी उसके कार्य के परिणाम से जुड़ी हुई हैं। दूसरी रीति बिक्री पर कमीशन देना है जिसे कभी-कभी 'कार्य के फल के अनुसार देना' कह दिया जाता है। परन्तु ऐसा कहना गलत है। इसका आशय यह होना है कि बड़े और अधिक आदेश प्राप्त करने के लिए प्रलोभन दिया जाय और पैसा देने का भी यह एक अच्छा तरीका है। परन्तु बिक्री भविष्य के कारोबार को हानि पहुँचा कर की जा सकती है। सिर्फ इस आधार पर पारिश्रमिक पाने वाला विक्रयकर्त्ता संभावित ग्राहक की उपस्थिति में कमा सकेगा—इसका तो उसूल है नौ नकद, न तेरह उधार। वह अपने क्षेत्र में कमी किये जाने का या अन्यत्र क्षेत्रों में भेजे जाने का विरोध करेगा, चाहे उसमें फर्म को कितना ही लाभ हो। वह अति-विक्रय के खतरे को नजर-न्दाज कर जाता है।

बुनियादी वेतन तथा कुछ कमीशन से मालिक और विक्रय कर्त्ता दोनों को कुछ फायदे हैं। बेचने की लागत बिक्री की मात्रा के अनुसार ही कुछ दूर तक घटती-बढ़ती रहती हैं। विक्रयकर्त्ता तात्कालिक वित्तीय चिन्ता से मुक्त हो जाता है पर यह पद्धति उन्नति या उत्पादकता की विभिन्न मात्राओं वाले क्षेत्रों के बीच न्यायसंगत नहीं है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए एकत्रित कमीशन की विधि अपनाई जाती है कि निश्चित क्षेत्र में काम करने वाले विक्रय कर्त्ता एक समूह माने जाते हैं उस सारे समूह की बिक्री पर मिला हुआ कुल कमीशन सब सेल्समैनों में विभा-जित कर दिया जाता है। वह विभाजन बराबर हो सकता है, अथवा इसका कुछ अंश वैयक्तिक बिक्री के आधार पर तथा शेष बराबर वितरित किया जा सकता है प्रत्येक व्यक्ति को समूह के प्रत्येक व्यक्ति के उपार्जन का अंशतः जिम्मेवार बना कर थोड़ा सा प्रभाव डाला जाता है जिससे कार्य के उद्दीपन को आशा होती है। बिक्री के कोटे भी बना दिये जाते हैं। प्रत्येक विक्रयकर्त्ता को बिक्री की कुछ मात्रा निश्चित कर दी जाती है जो उसके क्षेत्र की आपेक्षिक समृद्धि, उन्नति की मात्रा और सारे क्षेत्र में जाने की कठिनाई के आधार पर होती है। कुछ फर्म जो यह समझती हैं कि विक्रयकर्त्ता के काम में अनेक कार्य हैं जिनमें से प्रत्येक का मूल्यांकन उसकी योग्यता के आधार पर होना चाहिए, नुक्ता प्रणाली (Point System) अपनाती हैं। इस

यातायात विभाग का काम यह है कि बिलों को, विशेष रूप से महसूल सम्बन्धी बिलों को चैक करे। इसमें ये बातें देखनी पड़ती हैं कि (१) मात्रा ठीक हो, (२) भार ठीक हो, (३) रूटिंग या उनका मार्ग ठीक हो, (४) उनका वर्गीकरण (विशेष रूप से रेलवे परिवहन की अवस्था में) ठीक हो और (५) ठीक दर लगाई गई हो। इसमें कोई गल्तियाँ होने पर उनको ठीक कराया जाता है। अगर कोई कमी या नुकसान हो तो यातायात विभाग क्लेम या दावा तैयार करता है और इसे वाहक को पेश करता है।

बाहर जाने वाले माल के सम्बन्ध में कार्य—वस्तुएँ आती तो क्रय आदेश के परिणामस्वरूप हैं और वे भेजी जाती हैं ग्राहकों द्वारा दिये गए या सेल्समैनों द्वारा लिए गए बिक्री आदेशों पर। संक्षेप में, किसी के क्रयादेश इसके सप्लाई करने वालों के बिक्री आदेश होते हैं और ग्राहक के क्रयादेश फर्म के बिक्री आदेश होते हैं। यह बात नीचे दिये गए रेखाचित्र में बताई गयी है।

आने वाले माल की तरह यहां भी मार्ग निश्चित करने का काम यातायात विभाग पर पड़ता है। साधारणतया ग्राहक आदेश देते समय मार्ग और भेजने का तरीका बता देता है, पर कुछ ग्राहकों की दृष्टि में इस बात का कोई महत्व नहीं, यदि उन्हें उनकी वस्तु जल्दी और कम खर्च मिलसे जाएँ। ऐसी अवस्था में यातायात विभाग को भेजने का रास्ता और तरीका तय करना पड़ता है। यह चुनाव करने में वही बातें सोचनी पड़ती हैं, जो ऊपर आने वाले माल के बारे में कही गयी हैं, और परिवहन की चाल, लागत और सुरक्षा का उचित ख्याल करना पड़ता है। विदेश

के आदेश की अवस्था में शिपिंग कम्पनी से सम्पर्क बनाना होगा और यदि फर्म बन्दरगाह से दूर है तो गाडी से माल पहुँचाने और फिर उसे जहाज पर पहुँचाने की व्यवस्था करनी होगी। यदि माल पहुँचाने में देर हो गयी तो देरी वाले माल का पता लगाना होगा कि वह कहाँ है। और कमी या टूट फूट की अवस्था में क्लेम तैयार करके पेश किया जायगा और उसका ध्यान रखा जायगा।

वस्तुएँ भेजने और प्राप्त करने के सीधे काम के अतिरिक्त पूरा और रोजाना का पत्र व्यवहार, फाइलें, रिकार्ड और टैरिफ रखने होंगे। बड़े कारखाने में यातायात विभाग के जरिये बड़ा पत्र व्यवहार होता है और वस्तुओं की गतिविधि के बारे में सब कागजात का ठीक-ठीक पता रखने के लिए विभाग की फाइलें बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं। यातायात विभाग का एक और महत्वपूर्ण कर्तव्य यह है कि वह बिक्री विभाग से निकट सम्पर्क रखे क्योंकि वाहन को माल देने का काम बिक्री से अधिक सम्बन्ध रखता है। वस्तुएँ जहाँ जब और जिस मात्रा में भेजनी हो बिक्री, विभाग द्वारा ही भेजी जाती हैं। माल पहुँचाने की लागत प्रायः बिक्री कीमत में जोड़ ली जाती है और इस प्रकार एक ऐसी चीज हो जाती है जिसकी सीमा का उन्हीं के अनुसार घटकों द्वारा नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है जो कीमत निर्धारण की साधारण प्रक्रिया को नियन्त्रित करते हैं बिक्री विभाग का क्षेत्र माल भेजने की चाल और लागत से प्रायः निश्चित होता है। भेजने में गलतियाँ या देर होने पर बिक्री विभाग को शिकायतें आती हैं और कभी कभी दोबारा भी माल भेजना पड़ सकता है। इसी प्रकार, यातायात विभाग को खरीदने वाले अफसरों के मांगने पर यह सब जानकारी देनी चाहिये कि बताए हुए स्थानों से माल मंगवाने में कितना समय लगेगा और प्रतिस्पर्धी स्थानों से माल मंगवाने में महसूल कितना कम या अधिक पड़ेगा। यह क्रेडिट विभाग या उधार विभाग के कहने पर माल भेज देगा या वहन-पत्र या रेलवे रसीद भेज देगा और क्रेडिट वालों के कहने पर वह मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग करेगा।

महसूल की दरें और वर्गीकरण—हमारे देश में लम्बी दूरियों (साधारणतया १०० मील से अधिक) का अधिकतर यातायात रेलों द्वारा होता है। इसलिये रेलवे की महसूल दरों का वस्तुओं के यातायात पर बहुत असर पड़ता है। इस दृष्टि से प्रत्येक कम्पनी के यातायात विभाग को महसूल दरों के बारे में जानकारी इकट्ठी करनी चाहिए। हम पहले एक अध्याय में बता चुके हैं कि रेल महसूल के तय करने में मुख्य कारक ये होते हैं (१) माल भेजने वाले को सेवा का महत्त्व या पैसा देने की योग्यता, (२) सेवा करने का खर्च, (३) अन्य वाहनों से प्रतिस्पर्धा (४) निहित स्वार्थों की रक्षा और(५)कानून की अपेक्षाओं का पालन। क्योंकि रेलें सब व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये सम्मिलित कारबार हैं और क्योंकि उन्हें सेवा के मूल्य और उसकी लागत दोनों के अनुसार महसूल लेना होता है। इसलिये वे अलग-अलग वस्तुओं पर

अलग-अलग दर लगाती हैं। रेल से भेजी जाने वाली लाखो चीजो में से प्रत्येक पर अलग-अलग दर नही लगाई जा सकती। इसलिये रेलवे ने सब ज्ञात वस्तुओ को कुछ वर्गों में बाट दिया है जिससे किसी चीज की इन थोडी सी वर्ग दरो के आधार पर निकाली जा सके। वर्गीकरण को प्रभावित करने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण घटक सक्षेप में यहां दिये जाते हैं क्योकि यातायात विभाग का वस्तुओ के वर्गीकरण और महसूल दरो पर इसके प्रभाव से बहुत सम्बन्ध है। प्रथम तो भार की तुलना में वस्तु के आकार पर विचार किया जाता है। अधिक बडी वस्तु जगह घेरती है और इसलिये उसकी ऊँची दर होनी चाहिये। यदि कोई वस्तु दबा कर अच्छी तरह बांध दी जाए तो इसे निचले वर्ग में रखा जा सकता है और इस पर महसूल कम लिया जा सकता है। फिर किसी चीज की टूट-फूट के दायित्व का प्रश्न है। काच चीनी मिट्टी या मिट्टी के नमूने सावधानी से सभालने पडते हैं और उन्हे ऊँची दर के वर्ग में रखा जाता है। चीज के आकार का भी वर्गीकरण पर असर पडता है। छोटे पैकिटो पर भी लगभग उतना ही ध्यान देना पडता है जितना बडो पर। इसलिये छोटी चीजो की दर प्राय. ऊँची होती है, इसी प्रकार, डिब्बा भर माल पर कम दर लगाई जाती है; उदाहरण के लिये, यदि सेवो का भार प्रति वैगन एक टन हो तो उन्हे वर्ग एक अर्थात् निचले वर्ग में रखा जाता है, अन्यथा वर्ग दो में। वस्तुओ के वर्ग का निश्चय करने में उनके अपनी मंजिल पर पहुँचने में लगने वाले समय का भी महत्त्व पूर्ण हिस्सा होता है। थोडे समय में पहुँचाई जाने वाली वस्तुएँ ऊँचे वर्ग में रखी जाती है क्योकि उन्हे अधिक तेज गाडियो से ले जाना पडता है। जल्दी बिगडने वाली और ताजी वस्तुएँ इस वर्ग में आती है। कुछ वस्तुओ को भेजने की नियमितता के आधार पर अलग वर्ग मे रखा जाता है। अगर मैनेजर यह जानता है कि कुछ वस्तुएँ नियमित रूप से भेजी जाती है तो वह उन्हे निचले वर्ग में रख सकता है, या उन पर 'विशेष' दर लागू कर सकता है। काम में आने वाले डिब्बे (मालगाडी) के प्ररूप से भी वर्गीकरण पर प्रभाव पडता है। अगर वस्तुएँ खुले डिब्बे में ले जाई जा सकती है तो वे निचले वर्ग में रखी जाएगी और यदि उनके लिए बन्द डिब्बे की आवश्यकता है तो वे ऊँचे वर्ग में रखी जाएगी। विशेष वैगन के लिये, जैसा घोडे, मवेशी आदि ले जाने के लिये प्रयुक्त होता है। और भी ऊँची दर वसूल की जायेगी, जो वस्तुएं एक दूसरे के स्थान पर काम आती है वे प्राय: एक ही वर्ग में रखी जाती है और अन्य बातो पर ध्यान नही दिया जाता। उदाहरण के लिए, वह सब कच्चा सामान और वस्तुएँ जो कागज बनाने में काम आती है, जैसे एस्पार्टो घास, लकडी की लुगदी (Wood pulp) और चिथडे, एक ही वर्ग में रखे जाते है, पर उसमें कुछ शर्ते होती है।

स्पष्ट है कि हर कम्पनी कम से कम महसूल देना चाहती है। इसीलिए दर क्लर्क (Rate Clerk) को अपनी वस्तुओ पर लागू होने वाली दरो का सदा पता रखना होता है। कुछ विशेष वस्तुओ के लिए विशेष दरें भी होती है उदाहरण के लिए कोयला क्लास रेट से कम में जाता है। कई जगह दो स्टेशनो के बीच अलग दर होती

हैं यह वहां होती है जहां रेलवे को सड़क मोटरों से मुकाबला करना पड़ता है। इन सब दरों से लाभ उठाना चाहिये । दरें बताने वाली सूचियां मिल जाती हैं और वे सदा पास रखनी चाहिये, जहां कोई कम्पनियां कुछ गाहकों या नगरों को एक ही वस्तु बार-बार भेजती हैं वहां यह अच्छा रहता है कि बार-बार सूचियां देखने के बजाय विभिन्न नगरों की दरों की एक सारणी तैयार कर ली जाए पर यह सारणी हमेशा ठीक करते रहना चाहिए

पैकिंग या सवेष्टन—ठीक तरह से पैकिंग करने का बड़ा महत्व है क्योंकि इस से अनावश्यक टूट-फूट से भी बचा जा सकता है और महसूल में भी बचत हो सकती है, अगर पैकिंग का सर्वोत्तम तरीका अपनाया जाय । पैकेज-प्रकृति और पैकिंग के तरीके पर ही महसूल की दर का फैसला किया जाता है । छोटी या मध्यम दर्जे की कम्पनी में पैकिंग की देखभाल शिपिंग क्लर्क करता है, पर बड़ी कम्पनी में जहां बहुत वस्तुएं भेजनी होती हैं, एक विशेष पैकिंग विभाग होता है । कुछ अच्छे प्रबंध वाली कम्पिनियों में यातायात विभाग पैकिंग के तरीके को प्रमापित कर देता है । उचित पैकिंग का अर्थ यह है कि वस्तु इस तरह पैक की जाए जिससे हानि, चोरी, टूट फूट और मौसम से होने वाले बिगाड़ के मौके कम से कम हो जाए, जब वस्तुएं पैक की जाती हैं तब उनकी बिक्री आदेश की नकल से मिलाई भी की जाती है । पैकर और चैकर को पैकिंग स्लिप पर हस्ताक्षर करने चाहिए ताकि जिम्मेवारी उन पर डाली जा सके । यह स्लिप माल के साथ रख देनी चाहिए जिससे गाहक वस्तुओं को इसके साथ मिला सके ।

मार्किंग या निशान लगाना—इसके बाद पैकेज को मार्क किया जाता है । हर पैकेज पर सुपाठ्य अक्षरों में कन्साइनी या माल पाने वाले और पहुंच के स्थान का नाम लिख देना चाहिए । मार्किंग ऐसे तरीके से होना चाहिये कि वह मिट न सके या वस्तुओं से अलग न हो सके। यह सावधानी रखनी चाहिये कि पैकेजों पर मार्क शिपिंग सबंधी हिदायतों के अनुसार ही हो। शिपिंग हिदायतें और वहन-पत्र (Bill of lading) सावधानी से सुपाठ्य अक्षरों में पूरे नाम और पते परिशुद्ध वर्णन, सब पैकेजों के नम्बर और मार्क तथा पूरी हिदायतें देते हुए तैयार करना चाहिये। रेल्वे रसीद, वहन-पत्र एयर कन्साइनमेंट नोट या मोटर ट्रक रसीद ऐसे कागज हैं जो वाहन द्वारा प्राप्त रसीद और वस्तुओं पर स्वत्व प्रकट करने वाले कागज हैं जिनसे धारक (Holder) माल अपने कब्जे में ले सकता है ।

वाहक को सौंपना—अगर बिक्री आदेश यह निर्देश करता है कि या तो कीमत वसूल हो गई है या उधार दिया जाता है तो पैकेज वाहक को सौंप दिये जाते हैं या डाकखाने ले जाये जाते हैं । अगर कुछ स्थानों में रेल्वे की माल उठाने और घर पहुंचाने की सेवा है तो वे माल ले जाएगे और नाममात्र पैसा लेकर उसे पहुंचा देंगे । पार्सल पोस्ट पैकेज डाकखाने को पहुंचा देने चाहिए । मोटर,

ट्रक कम्पनी के कारबार के स्थान से वस्तुएं उठा लेते है और उन्हें वही सौंप देते हैं।

ज्यो ही कोई माल गाहक को सौंप दिया जाता है, त्यो ही शिपिंग क्लर्क बिक्री विभाग को इसकी सूचना देता है, जो इसके बाद गाहक को सूचित करता है। यह सूचना प्राय वहन पत्र, रेलवे रसीद, एयर कन्साइनमेंट नोट, आदि, और बीजक या बिल तथा सहगामी पत्र के रूप में होती है। कभी-कभी पत्र भेजा जाता है और जल्दी के मामला में तार दिया जाता है, जिसमे गाहक को यह पता चल जाए कि उसकी वस्तुएं चल पड़ी है। यदि वस्तुएं अपनी मन्जिल पर सुरक्षित पहुंच जाती हैं, तो यातायात विभाग की अब कोई और जिम्मेवारी नही।

नुकसान या टूट फूट के लिए क्लेम या दावे—भारत में रेल्वे प्रशासन की जिम्मेवारी निक्षेप ग्रहीता (Bailee) की होती है। जहाँ वस्तुएं रेल्वे की जोखिम पर और इसीलिए उसी दर पर जाती हैं और ठीक रीति से पैक की हुई हैं, वहाँ नुकसान के लिए रेलवे जिम्मेवार है। अगर वह मालिक के जोखिम पर ले जाई जाती है तो रेल्वे प्रशासन उस हानि या टूट-फूट के लिए दायी है जो रेल्वे प्रशासन या उसके कर्मचारियो के दुराचरण या लापरवाही के कारण हो। यदि वस्तुएं टूटी फूटी हालत में, अपनी मंजिल पर पहुंचें या नष्ट हो जायें, तो वाहक पर संविदा की शर्तों और कानून के अनुसार ही दायित्व होगा। रिसीविंग क्लर्क को टूट-फूट या हानि नोट कर लेनी चाहिए और यह भी देख लेना चाहिए कि वाहक या उसका एजेंट इस नोट करले। जहाँ कन्साइनमेंट ही नष्ट हो जाये, वहा वाहक को वस्तुओं की कीमत देनी होगी, बशर्ते कि उसे कानून ने छूट न दे रक्खी हो। उदाहरण के लिए, ईश्वरीय प्रकोप से होने वाली हानि या संविदा द्वारा दी गई छूट। भेजने वाले को यह सिद्ध करना पड़ता है कि उसने वस्तुएँ भेजी थी और उनमें यह माल था। वहन-पत्र या रेलवे रसीद या एयर कन्साइनमेंट नोट या वेबिल (Way bill) भेजने का काफी प्रमाण है और बीजक की प्रमाणित प्रति उसकी अन्तर्वस्तुओं का प्रमाण है। भेजते समय के भार में और प्राप्तकर्ता द्वारा प्राप्त करने के समय के भार में कोई कमी हो तो यह पता चलेगा कि कमी उस समय हुई है, जब माल वाहक के पास था।

जब माल को कुछ नुकसान हुआ हो, तब यातायात विभाग उस हानि या नुकसान के लिए दावा वाहक के सामने पेश करता है। इस दावे के साथ रेल्वे रसीद और बीजक आदि समयक कागज होने चाहिए। कानून के अनुसार दावे निश्चित समय के अन्दर पेश करा देना जरूरी है। इसलिए यातायात विभाग का दावे का समर्थन करने के लिए आवश्यक सारी गवाही इकट्ठी करके उसे जल्दी पेश कर देना चाहिए। अधिकारी लोग दावो की जाँच करने और उनका फैसला करने में बड़े सुस्त होते है। इसलिए दोनो के पीछे लगे रहना जरूरी हो जाता है।

जहाँ कोई माल पहुंचने में देर हो गई हो, वहाँ यातायात विभाग के ट्रेसिंग

क्लर्क को देरी की सूचना मिलने पर वहन पत्र या रेलवे रसीद की फाइल कापी निकाल कर उस जगह के स्टेशन मास्टर को टेलीफोन, तार या पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए, जहां माल दिया गया था। उसे माल पाने वाले से भी अपने यहां के स्टेशन मास्टर से पूछ-ताछ करने के लिए कहना चाहिए। रेलवे अधिकारियों से माल का पता लगाने को कहा जाता है और माल का पता लगने पर उसे माल पाने वाले को सौंप देने के लिए कहा जाता है। अगर युक्तिसंगत समय के भीतर माल न सौंप दिया जाय तो क्लेम पेश कर देना चाहिए।

प्रायः यह होता है कि अफसरों, विभागाध्यक्षों, सेल्समैनों और अन्य कर्मचारियों को गाड़ी, विमान या जहाज द्वारा कारबार के लिए यात्रा करनी पड़ती है। यातायात प्रबन्धक से उनके लिए जगह बुक कराने को कहा जाता है। बहुत बार यात्रा करने का निश्चय बहुत देर में किया जाता है और साधारणतया यात्रा करने की इच्छा वाले व्यक्ति के लिए स्थान की व्यवस्था करना बड़ा कठिन होगा। अच्छा यातायात प्रबन्धक अधिक आसानी से ऐसे काम करा सकता है।

---

१. अधिक विस्तृत जानकारी के लिए देखिए अध्याय २७ और मेरी पुस्तक मैनुअल आफ मर्केंटाइल (हिन्दी में यह वाणिज्यिक विधि के नाम से प्रकाशित हुई है)